हिन्दी

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

अष्टम भाग

[प्राद्-चमस्ता—व्याप्त]

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. VIII.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU Prāchyavidyāmahārnava.

Siddhānta vāridhi, Sabda-ratnākara Tattva-chintāmani, M. R. A. S

Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of Bangiya Sāhitya Parishad and Kāyastha Patrikā; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurbhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism; Hony. Archæological Secretary Indian Research Society Member of the Philological Committee, Asiatic Society of Bengal; &c. &c. &c.

Printed by H. C. Mitra, at the Visvakosha Press.
Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9 Visvakosha Lane Baghbazar Calcutta

1924

हिन्दी

विश्वकोष

(अष्टम भाग)

ज़न्द-अवस्ता—पारसियोंका आदि धर्मग्रन्थ। पारसी लोग इसे ईश्वरप्रदत्त मानते हैं। इस ग्रन्थमें पारसियोंके ईश्वर तुल्य पूज्य जरथुस्त्र या जरदुस्तके उपदेशोंका संग्रह किया गया है। वर्तमान समयमें भारतवर्षके पारसी और फारसके 'गबार' जातिके लोग इस ग्रन्थके अनुशासनानुसार अपना जीवन बिताते हैं। आजकल यह ग्रन्थ पूर्ण नहीं मिलता, उसके कुछ अंशमात्र एकत्र संयोजित किये गये हैं। परन्तु ये अंश इरानियोंके धार्मिक इतिहासके लिए अमूल्य हैं। जगत्के प्राचीनतम धर्मों में पारसी धर्म अन्यतम है। यह धर्म किसी समय अत्यन्त विस्तृत था। यदि ग्रीक लोग माराथन, प्लेटिया और सालामिसके युद्धमें पारसियोंको पराजित न कर देते तो सम्भव है यही धर्म समग्र जगत्में फैल जाता। हिन्दुओंके लिये यह ग्रन्थ विशेष शिक्षाप्रद है, क्योंकि इसमें वर्णित देव-देवियोंके नाम और उपासना-पद्धति वैदिक धर्मके साथ मिलती जुलती है।

नामकी निरुक्ति—ज़न्द भाषाके "अवस्ता" और पह्लवी भाषाके 'अविस्ताक' या 'अपिस्ताक' शब्दसे 'अवस्ता' शब्दकी उत्पत्ति हुई है। सम्भवतः अवस्ता शब्द वेदकी भांति "ज्ञान" इस अर्थको सूचित करता है। किसी किसी विद्वान्‌का कहना है कि, अपस्ता शब्दसे अवस्ता शब्द उत्पन्न हुआ जिसका अर्थ 'मूलग्रन्थ' या 'शास्त्र' है और इस शब्दके द्वारा "ज़न्द" अर्थात् टीकासे इसको विभक्त किया गया है। पारसियोंके मध्ययुगके ग्रन्थोंमें प्रायः 'अविस्ताक वा' ज़न्द'शब्द देखनेमें आता है जिसका अर्थ है मूल अवस्ता-ग्रन्थ और उसका पह्लवी भाषामें अनुवाद। यूरोपीय विद्वानोंने इस प्रकारके शब्दोंको देख कर यह समझ लिया था कि मूल अवस्ताका नाम ही ज़न्द अवस्ता है। १७०० ई०में हाइडने तथा १७७१ ई०में आंकतील-दु-पेरोंने ज़न्द अवस्ता शब्दका व्यवहार किया था। ऐसे ही परवर्ती यूरोपीय ग्रन्थकर्ताओंने इस ग्रन्थका ज़न्द अवस्ताके नामसे ही उल्लेख किया है।

अवस्ताका वर्त्तमान आकार—पह्लवी प्रवादसे मालूम होता है कि मूल अवस्ता बारह सौ अध्यायोंमें विभक्त था। तबारी और मासूदी नामक अरब जातिके ऐतिहासिकोंने बारह हजार गोचर्ममें अवस्ता ग्रन्थ लिखा हुआ देखा था। प्लिनि (Pliny the elder)-ने लिखा है कि जरथुस्त्र बीस लाख श्लोकोंमें अपनी उपदेशावली लिपिबद्ध कर गये हैं। पह्लवी ग्रन्थोंमें बार बार कहा गया है कि, महावीर सिकन्दरशाहके बाद जिस समय फारसकी शोचनीय दुर्दशा हुई थी, उस समय अवस्ताके अनेक अंश खो गये थे। अवस्ताके वर्त्तमान आकारके देखनेसे भी यही प्रतीत होता है कि यह किसी विराट् ग्रन्थका अंशमात्र है। पह्लवी भाषाके दीनकार्द और फारसी भाषाके रिवायत् नामक ग्रन्थोंमें अवस्ताके अंशोंका विस्तृत वर्णन और सूची दी गई है। इन दोनों ग्रन्थोंके पढ़नेसे यही

मालूम होता है कि अवस्ता पहले एक विराट् ग्रन्थ था।

उक्त ग्रन्थोंमें दिये हुए अवस्ताके विवरणके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि, अवस्ता सिर्फ धर्मग्रन्थ ही नहीं था बल्कि उसमें पृथिवीके सभी विषयोंका कुछ कुछ समावेश था। सम्पूर्ण अवस्ता २१ नस्कोंमें विभक्त था और सात नस्कोंका एक एक विभाग था। संक्षेपतः २१ नस्कोंमें निम्नलिखित विषय थे—

१ धर्म, २ धर्मानुष्ठान, ३ तीन प्रधान प्रार्थनाओंकी व्याख्या, ४ सृष्टितत्त्व, ५ फलित और गणित ज्योतिष, ६ अनुष्ठान और उसका फल, ७ पुरोहितोंके गुण और कर्तव्य, ८ मानव-जीवनमें नीतिशास्त्रकी उपयोगिता, ९ धर्मानुष्ठान सम्पादनकी नियमावली, १० राजा गुस्तास्पकी दीक्षा शिक्षा और आर्यास्पके सहित उनका युद्ध ११ संसार और धर्मके नाना कर्तव्य, १२ जरथुस्त्रके आविर्भावके समय तक मानव-जातिका इतिहास, १३ जरथुस्त्रके आविर्भावके सम्बन्धमें भविष्यद्वाणी, १४ अहिंमन और देवदूतोंकी पूजा पद्धति १५ धर्माधिकरण और व्यवहारशास्त्र, १६ दीवानी, फौजदारी और युद्धसम्बन्धी कानून, १७ साधारण धर्मके नियम, १८ दायभाग, १९ प्रायश्चित्ततत्त्व, २० पुण्य और धर्म, २१ देवदूतोंकी स्तुति।

इतिहास—प्रवाद है कि, पारसियोंके प्रथम युगमें अखमनीय वंशके सम्राटोंने बड़े यत्नके साथ अवस्ताकी रक्षा की थी। तवारीका कहना है कि सम्राट् विस्तास्पने जरदुस्तके धर्मप्रचारके कार्यमें बहुत कुछ सहायता पहुंचाई थी और अवस्ताग्रन्थकी सुवर्णाक्षरमें लिखवा कर पोथियोंके किलेमें रक्खा था। इस प्रवादकी पुष्टि दीनकर्दग्रन्थके इस विवरणसे होती है कि शापीगानके रक्षागारमें एक बहुमूल्य अवस्ता रक्खा है। "शात्रोहायो ऐरान" नामक पह्लवी ग्रन्थमें लिखा है कि अवस्ताकी दूसरी एक प्रति समरकन्दके अग्नि-मन्दिरके धनागारमें सुवर्णाक्षरोंमें खोदी गयी थी; उसमें १२०० अध्याय हैं। ये दोनों ही ग्रन्थ ईसाकी ३३० पूर्व शताब्दीमें "अभिशप्त इस्कन्दार" (अलेकसन्दर) के द्वारा जब अखेमनीयोंके पारसी-पोलिसका प्रासादमें आग लगाई गई थी; उस समय तथा उनके समरकन्द विजयके समय नष्ट हो गये थे।

सिकन्दरशाहके विजय करने पर जरथुस्त्र-धर्मका प्रभाव बहुत कुछ घट गया था। परवर्ती ५०० वर्ष तक जब सेलुकिडवंशीय और पार्थियान् सम्राट् राज्य करते थे, उस समय अवस्ता-ग्रन्थके अन्यान्य खण्ड भी विलुप्त होने लगे। कई स्थानोंमें इसका कुछ कुछ अंश रक्खा गया और कुछ अंश धर्मके पुरोहितोंने भी कण्ठस्थ कर लिया। ईसाकी ३री शताब्दीके प्रारम्भमें अवस्ताके जो जो अंश रक्खे गये थे, उन्हें ही आर्सकिडवंशके शेष सम्राट्ने संगृहीत किया। खुसरू नोशिरवानकी (५३१-५७८ ई०) एक घोषणासे ज्ञात होता है कि सम्राट् बालखाशने, जिनको साधारणतः हम भोलोगेसेस समझा जाता है, पवित्र ग्रन्थ ज़न्द अवस्ताके अनुसन्धान करनेमें जोजानसे कोशिश की और जितना अंश लोगोंको कण्ठस्थ था, उसको लिपिबद्ध कराया। शासानियवंशके प्रतिष्ठाता सम्राट् अर्डशीर पपकान (२२६-२४० ई०) और उनके पुत्र बालखाशने इस कार्यको बड़ी खुशीसे साथ चलाया और महापुरोहित तानसारको अवस्ताके विच्छिन्न अंशोंके संग्रह करनेके लिए आदेश दिया। २य शाहपुरके राजत्वकाल (३०९-३८० ई०) में उनके प्रधान मन्त्री अदरपाद-मारसपेन्दानने ज़न्दअवस्ताका संशोधन किया और यह घोषित हुआ कि इन्हींके द्वारा संगृहीत और संशोधित ग्रन्थ ही धर्मपुस्तक है।

सिकन्दरशाहके आक्रमण वा उनके परवर्ती युगकी लापरवाहीसे ज़न्दअवस्ताकी जो दुर्दशा हुई थी, उससे भी कहीं अधिक क्षति हुई थी मुसलमानोंके आक्रमण और कुरानके धर्म-प्रचारसे। जरथुस्त्र-धर्मावलम्बियोंको मुसलमानोंने देश-निकाला दे दिया था और उनके धर्मग्रन्थोंको जला डाला था। फारस और भारतवर्षके कुछ पारसियोंको इसका जितना अंश प्राप्त हुआ, उतना उन्होंने यत्नपूर्वक रख लिया। वर्तमानमें उतना ही अंश देखनेमें आता है।

वर्तमान ग्रन्थका विषय—वर्तमान समयमें ज़न्दअवस्ता चार भागोंमें विभक्त है—(१) यस्न—इसमें गाथा, विशपरद और यश्त नामसे तीन भाग हैं, (२) न्यायिड्, गाह् आदि

छुट ग्रन्थ, (२) वन्दीदाद (३) खुर्दित अवस्ता।

(क) यस्न—पारसियोंके उपासना-ग्रन्थोंमें यही ग्रन्थ सबसे प्रधान है। यस्न नामक धर्मानुष्ठानमें यह ग्रन्थ पूरा पढ़ा जाता है। यस्नके अनुष्ठानमें नाना प्रकारके धर्मकार्य किये जाते हैं जिनमें हओम अथवा रस, दूध और अन्यान्य कुछ द्रव्य मिला कर उसकी आहुति चढ़ाना ही प्रधान है। यस्नमें १७ अध्याय हैं, इसीलिए पारसी लोग अपनी मेखलामें १० ग्रंथ रखते हैं। कुछ अध्याय ऐसे भी हैं जिनमें पूर्व अध्यायोंकी पुनरुक्ति मात्र है। ग्रन्थको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भागका आरम्भ अहुरमज़्द और अन्यान्य देवताओंका स्तव करनेके बाद हुआ है। इसके बाद उनको यथोचित अनुष्ठानके साथ अर्घ्य दिया गया है। एक छोटीसी प्रार्थनाके बाद "हओमयश्त"का आरम्भ हुआ है। इसमें हिन्दुओंके सोमरसकी तरह हओम पर व्यक्तित्वका आरोप किया गया है और उस वृक्षको देवता समझ कर पूजा की गई है। चौदहवें अध्यायसे "हफ़ता हइती"का आरम्भ हुआ है। इसके पहले दिन और प्रहरोंकी अधिष्ठात्री देवियों तथा अग्निको विभिन्न मन्त्रोंका आवाहन किया गया है। इक्कीसवें, बीसवें और उन्नीसवें अध्यायमें ' अहुनवैर्य" "आषेम वोहू " और 'येंहे हातम्" नामक तीन पवित्रतम प्रार्थनाओंकी व्याख्या की गई है। इसके बाद पांच गाथाएं हैं। फिर 'वोहुख़त्र' नामके एक स्तोत्रमें स्राओष नामक देवताकी विस्तृत स्तुति की गई है। अनन्तर कुछ देवताओंका पुनः आवाहन कर यस्नकी समाप्ति की गई है।

(ख) गाथा—सम्पूर्ण ज़ेन्द-अवस्तामें छन्दोबद्ध गाथाएं ही सबसे प्राचीन और मूल्यवान हैं। इनकी भाषा छन्द और शैलीमें भी अवस्ताके अन्यान्य अंशोंसे सम्पूर्ण भिन्न है। इनकी संख्या ५ है। इनमें धर्मप्रचारक ज़रथुस्त्रकी शिक्षा, प्रेरणा और वक्तृता आदि वर्णित हैं। इनके पढ़नेसे उनके विषयमें एक सुस्पष्ट धारणा होती है जो अन्य किसी ग्रन्थके पढ़नेसे नहीं होती। इन गाथाओंमें पुनरुक्ति दोष बिल्कुल भी नहीं है और कविता भी उत्तम है। इनमें धर्मके बाह्य आचार-अनुष्ठानोंके विषयमें विशेष कुछ नहीं लिखा है। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि, उस प्राचीन समय तक इस धर्ममें अनुष्ठानादि का प्रवेश न हुआ होगा। अथवा सम्भवतः इसमें प्रधानतः धर्मप्रचारके लिये अहुरमज़्द और अहिर्मनके साथ युद्धके विषयमें उपदेशादि लिखा रहनेके कारण अनुष्ठानादिका उल्लेख करना प्रयोजनीय न समझा गया हो। गाथाओं या कविताओंको विच्छिन्न अवस्था देख कर बहुतसे लोग अनुमान करते हैं कि, बौद्धधर्मकी कविताओंमें निबद्ध बुद्धके उपदेशोंकी भांति ये भी लोगोंसे सुनके सुन कर लिखी गई हैं।

गाथाओंमें सप्ताध्यायी यस्न निहित है। यह गाथाओंके साथ उस-भाषामें लिखे जाने पर भी गद्यमें वर्णित हुआ है। इसमें बहुतसी प्रार्थनाएं और अहुरमज़्द, अमेशस्पेन्त, धर्मात्मा, अग्नि, जल और पृथिवी पर बहुत स्तुतिवाद विद्यमान हैं।

(ग) विस्परद (अर्थात् समस्त प्रभु)—यह स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। इसे यस्नका परिशिष्ट कहा जा सकता है, क्योंकि इसकी भाषा, शैलियों और विषय का यस्नके साथ सामञ्जस्य है। धर्मानुष्ठानों को समय यस्नके अनुष्ठान भी उद्धृत कर दिये गये हैं। समस्त देवताओं का आह्वान कर अर्घ्य दिये जानेके कारण इसका नाम विस्परद पड़ा है।

(घ) यश्त—२१ स्तोत्रोंमें यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। अधिकांश स्तोत्र कवितामें लिखे गये हैं। इसमें पारसी धर्मके देवदूत और धर्मवीरोंके कार्यादिकी प्रशंसा की गई है। जिस प्रकार ईरान-वासियोंने मासके दिनोंके नाम क्रमानुसार रखे हैं, उसी प्रकार इसमें उन देवताओंकी क्रमसे पूजा की गई है। यश्तों की भूमिका और उपसंहारके पढ़नेसे मालूम होता है कि, ये सब एक ही के लिखे हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ये भिन्न भिन्न समयमें रचे गये थे क्योंकि विषय और आकारमें भी परस्पर पार्थक्य है। पहलेके चार यश्त परवर्तीकाल के व्याकरण-दुष्ट छन्दमें रचे गये हैं और शेष दो खास यश्तकी प्रणालीमें लिखे गये हैं। किन्तु मध्यवर्ती यश्त कविताओंमें लिखे गये हैं। उनमें कवित्वशक्तिका भी यथेष्ट परिचय मिलता है एक स्थानमें इह और परलोकके देवता मित्रदेवका इस तरहसे वर्णन किया गया है कि,

मानो वे विराट् समारोहसे अश्वारोहणपूर्वक सेनाके साथ प्रतिज्ञाभङ्ग करनेवालोंको दण्ड देने जा रहे हैं। ये कविताएं पौराणिक रीतिसे लिखी गई हैं। कुछ उपदेश शायद जरथुस्त्रके पूर्ववर्ती ऋषियोंसे लिखा गया है। फार्दुसिके "शाहनामा" के साथ मिला कर पढ़नेसे उसका वास्तविक अर्थ ज्ञात होता है, क्योंकि "शाहनामा"में उक्त विषयका बहुत कुछ वर्णन है।

(ङ) खोर्दा-अवस्ता—इनमें न्यायोशका नाम उसखुशोग्य है। इनमें सूर्य, चन्द्र, जल, अग्नि, खुरशेट, मित्र, मा, अर्दविसूर और अतसको स्तुतियां हैं। ये खोरदाद अवस्ताके अन्तर्भुक्त हैं।

(च) वन्दिदाद—अर्थात् असुरोंके विरुद्ध धर्मनीति। प्रथमतः जुन्दअवस्ताके उन्नीसवें नस्कमें इनको स्थान मिला था। इनमें बहुतसी रचना परवर्ती कालकी हैं।

(छ) उपरोक्त ग्रन्थोंके सिवा कुछ विच्छिन्नांश भी है। पह्लवी भाषाके बहुतसे ग्रन्थोंमें इसकी कविताएं उद्धृत की गई हैं।

जुन्दअवस्ताका जितना अंश प्राप्त हुआ है, उनमें धर्मानुष्ठानका ही उपदेश अधिक है। धर्मानुष्ठान पर लोगोंकी अधिक श्रद्धा होनेके कारण यह अंश बड़ी हिफाजतसे रक्खा गया था।

अवस्ताका समय—इसे जो इतिहास लिखा गया है, उसीसे मालूम हो जाता है कि अवस्ताके एक एक अंश भिन्न भिन्न समयमें रचे गये थे। ईसाके पूर्व २८०० से ३०५ वर्षके भीतर अर्थात् तीन हजार वर्ष तक अवस्ताके अंश आदि लिखे गये हैं, यही वर्त्तमान विद्वानोंका सिद्धान्त है।

भाषा—अवस्ता जिस भाषामें लिखा गया है, उसे "अवस्तीय" भाषा कहते हैं। इसके साथ संस्कृत भाषाका निकट सम्बन्ध है। संस्कृतके साथ इसकी सीमा इस आविष्कृत होनेके बादसे तुलनात्मक भाषातत्त्वकी आलोचना करनेका मार्ग सुगम हो गया है। अवस्ताकी भाषामें दो प्रकारका भेद देखनेमें आता है। प्राचीन गाथाओंकी भाषा दूसरे ही ढंगकी है और परवर्ती भाषा दूसरे ढंगकी। पूर्वोक्त अंश पद्यमें और शेषोक्त गद्यमें लिखे गये हैं। अवस्ताकी लिखावट दहिनी ओरसे पढ़ी जाती है। यह पहले पहल किस अक्षरोंमें लिखा गया था, इसका कुछ भी पता नहीं चलता।

वेद और अवस्ता—पृथिवी पर वेद और अवस्ता इन दो महाग्रन्थोंने आर्य जातिकी दो शाखाओंके धर्म-निरूपण कर महागौरवमय स्थान पाया है। इन दोनों ग्रंथोंका एक साथ मनन करनेसे मालूम हो जाता है कि दोनोंमें बहुत कुछ सादृश्य है। इस सादृश्यसे यह भी अनुमान होता है कि किसी समय—जब पारसी लोग और हमारे पुरखा एक साथ रहते थे—इन दोनों ग्रंथोंका प्रारम्भ एक साथ ही हुआ होगा। अब हम उक्त दोनो ग्रंथोंके उस सादृश्यको दिखलाते हैं जिसने सबसे पहले इस ओर दृष्टि आकर्षित की है।

१। देवताओंके नाम—वेद और अवस्ता दोनों ग्रंथोंमें "देव" और "असुर" शब्द व्यवहृत हुआ है। यह तो सभी जानते हैं कि वेदमें देव शब्द द्वारा अमरलोकवासियोंका निर्देश किया गया है। किन्तु आश्चर्यका विषय है कि अवस्तामें प्रारम्भसे अन्त पर्यन्त दुष्ट प्राणियोंको देव कहा गया है और आधुनिक फारसी साहित्यमें भी देवका वही अर्थ समझा जाता है। यूरोपीय लोग जिसको Devil वा शैतान कहते हैं और हम जिसको असुर कहते हैं, अवस्तामें उसीको देव कहा गया है। अवस्ताके देव सम्पूर्ण अनिष्टोंके मूल कारण हैं, वे ही पृथिवी पर अपवित्रता और मृत्यु संघटन करा रहे हैं। वे सर्वदा इसी चिन्तामें मग्न रहते हैं शस्यक्षेत्र, फलवान् वृक्ष, धर्मात्माके निवासस्थान आदिका नाश किस तरह हो। हमारे यहां जिस प्रकार प्रेतोंका निवास दुर्गन्धपूरित स्थानोंमें कहा गया है, उसी प्रकार जुन्दअवस्तामें देवोंका वासस्थान कदर्यस्थानमें बतलाया गया है।

हमारे वैदिक धर्मका नाम देव-धर्म है और पारसियोंके जुन्दअवस्तीय धर्मका नाम अहुर-धर्म। अहुर शब्द उनके प्रधान देवता अहुर-मज़्दा नामका प्रथमांश है। इस शब्दसे वे अपने भगवान् और उनके अंशादिका निर्देश करते है। हमारे पौराणिक साहित्यमें असुर शब्दका प्रयोग बुरेके लिए किया गया है, किन्तु ऋग्वेद-

भी मनुष्योंको व्याधि दूर कर रहे हैं। (ऋग्० ८।१८।८।)

ईरानके धर्ममें कव-उशने एक प्रधान स्थान अधिकार किया है। उनका विश्वास है कि ये पहले ईरानके राजा थे। हिन्दूधर्मके उशनस् वा शुक्रके साथ इनके नामका सादृश्य है। ऋग्वेदमें इन्द्रका काव्य उशनाके नामसे उल्लेख किया गया है। (ऋक् १।५१।११) जन्दअवस्तामें लिखा है कि कव-उश अत्यन्त उपकारी होने पर भी बड़े अभिमानी थे। उन्होंने एकबार स्वर्गको उड़ना चाहा था और इसी लिए उन्हें कठोर दण्ड मिला था। वैदिक काव्य-उशना मानवजातिके महापुरोहित थे। ये स्वर्गकी गायोंको मैदानमें ले गये थे और इन्द्रकी गदा बनाई थी। वेद और जन्दअवस्ता दोनों ही ग्रन्थोंमें, जिनके साथ युद्ध करना पड़ता था उनको दानव कहा गया है।

जन्दअवस्ताके तिश्त्रका उपाख्यान वैदिक इन्द्र और बृहस्पति-सम्बन्धी कुछ उपाख्यानोंसे सादृश्य रखता है।

वेद और जन्दअवस्ताकी यज्ञविधि—वर्तमान समयमें पारसियोंकी यज्ञविधि अत्यन्त संक्षिप्त होने पर भी उसमें वैदिक यज्ञके साथ सादृश्य पाया जाता है। पहले ही दोनों ग्रन्थोंमें, तुलना करनेवाले पाठकोंकी दृष्टि पुरोहितके नामकी समानता पर पड़ती है। जन्दअवस्तामें पुरोहित शब्दके अभिप्रायमें 'आथ्रव' शब्दका प्रयोग किया गया है जो वैदिक नाम अथर्वन् शब्दका ही रूपान्तर है। वैदिक शब्द ईष्टि (कुछ देवताओंका पुरोडस सहित आवाहन) और आहुति जन्दअवस्तामें ईष्टि और आ-सुइतिके रूपमें व्यवहृत हैं। परन्तु जन्दअवस्तामें उक्त दोनों शब्दोंका अर्थ 'दान' वा 'स्तुति' बतलाया गया है। यज्ञके पुरोहितोंमें वैदिक होता और अध्वर्युके स्थान पर इसमें जाओता और रथ्वि शब्दका उल्लेख मिलता है।

वैदिक ज्योतिष्टोम यज्ञमें जिन कार्योंका अनुष्ठान होता, उनमेंसे अधिकांश पारसियोंके यजिश्न वा इजिश्न यज्ञमें सम्पन्न होते हैं। अग्निहोत्रमें आवश्यकीय अग्निष्टोम यज्ञके साथ जन्दअवस्ताके इजिश्न यज्ञका विशेष सादृश्य है। किन्तु पारसियोंमें प्रचलित यजिश्न यज्ञके सम्पादन करनेमें अग्निष्टोमकी अपेक्षा बहुत थोड़ा समय लगता है। अग्निष्टोम यज्ञमें चार छागोंकी बलि दी जाती है, मांसका कुछ अंश अग्निमें डाला जाता है, कुछ अंश यजमान और पुरोहित भक्षण करते हैं। किन्तु इजिश्न यज्ञमें सिर्फ एक साड़की देहसे कुछ रोम उखाड़ कर अग्निको दिखाते हैं। पूर्वकालमें पारसी लोग भी इस उपलक्षमें मांसका व्यवहार करते थे। वैदिक पुरोडाश जन्दअवस्तामें द्रुण हुआ है। इस प्रकार वेदके उपसद् समयको दुग्धव्यवहारविधि जन्दअवस्तामें गाउश जीव्य व्यवहारविधिमें परिणत हो गई है। हिन्दूगण जिस प्रकार द्रव्यादिको पवित्र करनेके लिए पञ्चगव्य व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार पारसी लोग भी गोमूत्र काममें लाते हैं, इसके सिवा वे हिन्दुओंकी भांति यज्ञोपवीत ग्रहण करना भी कर्तव्य कार्य समझते हैं। उपवीतके बिना दोनों ही समाजमें कोई भी व्यक्ति यथार्थ स्थान को नहीं पाता। हिन्दुओंमें उपवीत ग्रहणका समय आठ वर्षसे सोलह वर्ष निर्णीत हुआ है और पारसियोंमें उस का काल सातवें वर्षमें ही कहा गया है। दोनों जातियोंकी लौकिक क्रियाओंके विषयमें भी थोड़ा बहुत सादृश्य देख पड़ता है। पारसी लोग मृत्युके बाद तीसरे दिन मृत आत्माकी सद्गतिके लिए प्रार्थना करते हैं और ब्राह्मणोंकी भांति उनके यहां भी दशवें दिन अनुष्ठान आदि सम्पन्न होता है।

हिन्दुओंकी तरह पारसियोंने भी पृथिवीको सात भागोंमें विभक्त किया है और सबके बीचमें एक पर्वत (मेरु)-का अस्तित्व माना है।

वेद और जन्दअवस्ताका परस्पर विरोध—वेदमें देव पूज्य माने गये हैं और अवस्तामें असुर। इससे स्वतः इस बातका पता लग जाता है कि उपरोक्त सादृश्य रहने पर भी दोनोंमें यथेष्ट विरोध था। विद्वानोंका अनुमान है कि किसी समय हिन्दू और पारसी दोनों एक ही स्थानमें रहते थे और एक धर्मके आश्रयमें जीवन बिताते थे। हिन्दू पहले खेती-बारी न करते थे, पशुपालन द्वारा जीविका निर्वाह करते थे। जब एक जगह तृणादि घट जाते थे तो वे दूसरी जगह चले जाते थे। पण्डितप्रवर मि० हौगका अनुमान है कि पारसियोंके पुरखा बहुत जल्दी इस तरहकी जीवनयात्रासे विरक्त हो गये। वे

संहृत जीव आ कर सम्पृक्त होता है। एकदिन बाद उसमें कलल जन्मता है। पाँच रात्रिमें वह कलल बुद्बुदाका आकार धारण कर लेता है। वह वीर्य शोणित मय बुद्बुदमें सात रातमें मांसपेशी और दो सप्ताह बाद रक्तमांससे व्याप्त हो कर दृढ़ हो जाता है। पच्चीस रातमें पेशीवीज अङ्कुरित और एक मास पीछे पाँच भागोंमें विभक्त हो जाता है। इसके बाद एक भागसे कण्ठ, ग्रीवा और मस्तक; दूसरे भागसे पीठ, मेरुदण्ड और उदर, तीसरे भागसे दोनों पैर, चौथे भागसे दोनों हाथ तथा पाँचवें भागसे पार्श्व और कटिदेश बनता है। पीछे दो मास होने पर क्रमशः समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग बनते रहते हैं। तीन महीनेमें सर्वाङ्गके सन्धिस्थान बनते हैं। चार मासमें अङ्गुलि और अङ्गकी स्थिरता होती है। पाँच मासमें रक्त, मुख, नासिका और दोनों कान; छठे महीनेमें वर्ण, बल, रोमावली, दन्तपंक्ति, गुह्य और नख; छठा मास बीत जाने पर कानोंके छेद, पायु, उपस्थ, मेढ्र, नाभि और सन्धियां उत्पन्न होती हैं। इस समय मन अभिभूत होता है। जीव भी चैतन्ययुक्त हो जाता है। स्नायु और शिराएं भी इसी समय उत्पन्न होती हैं। सातवें या आठवें मासके भीतर मांस उत्पन्न हो कर वह चमड़ेसे ढक जाता है। इस समय जीवमें स्मरणशक्ति आ जाती है, अङ्ग प्रत्यङ्ग परिपूर्ण और सुव्यक्त हो जाते हैं। नौवें या दशवें महीनेमें प्राणी व्यग्राक्रान्त हो कर प्रबल प्रसववायु द्वारा चालित होता है और योनिछिद्र द्वारा वायुवेगसे बाहर निकल आता है।

चञ्चलचित्तसे गर्भसञ्चार करनेसे प्राणीका आकार विकृत हो जाता है। माताका रज अधिक हो तो कन्या और पिताका वीर्य ज्यादा हो तो पुत्र उत्पन्न होता है, तथा दोनोंका रज-वीर्य समान होनेसे नपुंसक सन्तान होती है।

किसी किसी विद्वान्‌का कहना है कि, विषम तिथिमें गर्भोत्पादन होनेसे कन्या, और सम तिथिमें गर्भोत्पादन होनेसे पुत्र उत्पन्न होता है। गर्भ बाईं तरफ रहनेसे कन्या और दाहिनी तरफ होनेसे पुत्र होता है। गर्भके समय रजका अंश अधिक होनेसे गर्भस्थ शिशु माताकी आकृति और शुक्रका अंश अधिक होनेसे पिताकी आकृति धारण करता है। मिश्रित रजोवीर्यमय गर्भ वायु द्वारा यदि दो भागोंमें विभक्त न हो तो एक सन्तान उत्पन्न होती है। दो भागोंमें विभक्त होने पर दो बच्चे पैदा होते हैं। अनेक भागोंमें विभक्त होनेसे वामन, कुब्ज आदि नाना प्रकार विकृत अथवा सर्पशावक इत्यादि जन्मते हैं।

सारावलीमें लिखा है—योनियन्त्रका पीड़न दुःख गर्भयन्त्रणासे भी करोड़ गुना है। पेटसे निकलते समय बच्चेको मूर्छा आ जाती है। बच्चेका मुंह मल, मूत्र, शुक्र और रजसे आच्छादित रहता है। अस्थिबन्धन प्राजापत्य वातसे जकड़े रहते हैं। प्रबल सूतिका वायु बच्चेको उलटा कर देती है। बच्चेको जन्मकी यन्त्रणा बहुत ज्यादा होती है।। बच्चेके होनेके साथ ही पूर्व दुःख भूल कर वैष्णवीमायामें मोहित हो जाता है। कभी कभी भूख और प्याससे रोने भी लगता है। इस समय—"कहां था, कहां आया क्या किया, क्या करता हूं, क्या धर्म है, क्या अधर्म है" इत्यादि कुछ भी नहीं समझता।

वर्त्तमानके वैज्ञानिकोंने निश्चय किया है कि, जीवजगत्‌के अति निम्न श्रेणीके जीव सबल जीवों द्वारा भक्षित वा निहत न होनेसे, वे कभी भी मरते नहीं थे अर्थात् उनके भाग्यमें सिर्फ अपमृत्यु ही बदी रहती है, उसकी स्वाभाविक मृत्यु नहीं होने पाती। इसका कारण यह है कि, मोनर (Moner), एमिबस् (Amoebas) इत्यादि अति क्षुद्र कीटाणु समूह माताके गर्भमें नहीं जन्मते, किन्तु प्रत्येक अपना अपना शरीर विभक्त कर दो स्वतन्त्र जीवमूर्ति धारण करते हैं और ये ही फिर भिन्न भिन्न जीवरूपमें परिणत होते हैं। इस प्रकार असंख्य जीवोंका आविर्भाव होता है। इनमेंसे प्रत्येक ही, यदि दूसरोंसे मारे न जाते, तो वे चिरकाल तक जीवित रहते। अब प्रश्न यह है कि, यदि इतने छोटे छोटे कीटाणु स्वाभाविक मृत्युके अधीन नहीं होते, तो जीवजगत्‌के शीर्षवर्त्ती मानव आदि उच्चश्रेणीके जीवोंको ऐसी मृत्यु क्यों होती है? विवर्त्तनवादी वैज्ञानिकोंके मतसे मनुष्य आदि जीव, अति क्षुद्र कीटाणुका पूर्ण विकाशमात्र है। कीटाणुका अमरत्व यदि स्वाभाविक धर्म है, तो उच्चश्रेणीके जीवोंका नश्वरत्व स्वाभाविक धर्म कैसे हुआ?

इसी कारणको खोज कर उन लोगोंने स्थिर किया है कि, जन्म ही मृत्युका कारण है। जन्मलेनेसे ही मरना पड़ता है। कीटाणुओं का जन्म नहीं होता, एक जीवका शरीर विभक्त हो कर भिन्न भिन्न जीवों का आविर्भाव हुआ करता है इसी तरह उनको मरना नहीं पड़ता है। उच्चश्रेणीके जीव माताके गर्भसे उत्पन्न होते हैं इसीलिए उनकी मृत्यु होती है। अब यह देखना चाहिये कि, जीव जगत्में जन्मका आविर्भाव कैसे हुआ?

मोनर (Moner)-के पिता माता नहीं हैं, एक मोनर विभक्त हो कर दो स्वतन्त्र जीवरूपमें परिणत होता है।

एमिबा-स्फिरोकोकास् (amaeba sphaerococcus) नामक और एक प्रकारके अति क्षुद्र जीव हैं उनकी संख्या वृद्धिका क्रम मोनरकी अपेक्षा कुछ जटिल है।

इस तरह एक शरीर विभक्त हो कर भिन्न भिन्न जीवोंका आविर्भाव होता है और वे एकबारगी पूर्णावस्थामें विच्छिन्न हो जाते हैं। इनको शैशवावस्था नहीं भोगनी पड़ती। शरीरविभाग-प्रणालीके बाद मुकुलोद्गमप्रणाली (Gemmation)-का क्रम है। यह प्रणाली और भी जटिल है, उससे पुष्पका उद्गम तथा प्रवालादि कीटोंकी वृद्धि इसी नियमके अनुसार हुआ करती है। इसके बाद बीजोद्गमप्रणाली होती है। इस प्रणालीके अनुसार माताके शरीरमें जो बीजाङ्कुर विद्यमान रहते हैं वे ही उद्भिन्न हो कर भिन्न शरीर धारण करते हैं। यहां तक जीव सिर्फ एक ही जीवके शरीरसे आविर्भूत है।

इसके बाद क्रमशः जीव-जगत्में जिन जीवोंका विकास हुआ करता है उनमें स्त्री-पुरुषकी आवश्यकता होती है, बहुतसे ऐसे भी हैं, जो उद्भिद् श्रेणी या जीवश्रेणीके अन्तर्गत हैं इसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। ऐसा प्रमाण मिला है कि दो अङ्कुरों (Cells)-के एकत्र समावेशसे इन जीवोंकी उत्पत्ति होती है। वे विभिन्न अङ्कुरद्वय समधर्मा (Homogeneous) होने पर भी कभी कभी भिन्न आकृतिके हो जाया करते हैं, जीव-जगत्में इस प्रकारका क्रमिक विकास होते होते कालान्तरमें दो अङ्कुर विभिन्न भाव अवलम्बन करते हैं और परस्परके अभावपूरक (Sporogony) भावको धारण कर दो स्वतन्त्र जीवमूर्त्तिमें परिणत हो जाते हैं। इनमें परस्परकी स्वाभाविक मिलनेच्छा अत्यन्त प्रबल होती है। जिस समयसे जीव जगत्में इस तरहके दो परस्परमें मिलनेच्छु विभिन्न आकृतिक जीवों का आविर्भाव हुआ है, तभीसे स्त्री पुरुषका भेद देखा गया है तथा परस्परके समागमके बिना नवीन जीवका उद्भव होना असम्भव हो गया है। इसके बादसे क्रमिक विकासमार्गमें एक जीवसे और नये जीव उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकारके समागमसे जितने भी जीवों का आविर्भाव होता है उन सबको कुछ दिन माताके गर्भमें रह कर पीछे जन्म लेना पड़ता है। जीव जगत्में इस तरहसे जन्म प्रकरणका आविर्भाव हुआ है।

पहले कहा जा चुका है कि मोनर आदि कीटाणु सब अपनेसेही पूर्णावस्थाको प्राप्त हो कर आविर्भूत होते हैं, किन्तु जीव जगत् क्रमशः उन्नति लाभ कर जितना ही स्त्री-पुरुषभेदके समीपवर्ती होता जाता है, उतना ही जीवको शैशवमें निस्सहाय अवस्थामें पड़ना पड़ता है। इस प्रकार उन्नतिपथके पूर्णसीमामें पदार्पण करते ही जीव सम्पूर्ण निस्सहाय हो जाता है। इसीलिए मनुष्य आदि उच्चश्रेणीके जीव शैशवावस्थामें सम्पूर्ण रूपसे असहाय रहते हैं। और परजन्म, जन्मान्तर कर्म, मृत्यु आदि शब्द देखो।

जो लोग जीवों की उत्पत्ति नहीं मानते हैं, जीव संसार में अनादिकालसे है और अनन्त काल तक रहेंगे। इनकी संख्या अनन्त है बराबर मुक्त होते रहने पर भी जीवों का अन्त नहीं हो सकता। जीव अमर है, सिर्फ आयुकर्मके अनुसार शरीर बदलता रहता है। जीव देखो।

जन्मकाल (सं० पु०) जन्मनः कालः, ६ तत्। जन्म समय, पैदा होनेका वक्त।

जन्मकील (सं० पु०) जन्मनः कील इव पोषक इव। विष्णु। पुराणके अनुसार मनुष्य विष्णुकी उपासना कर मोक्ष लाभ करता है, उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। इसीसे विष्णुका नाम जन्मकील पड़ा है।

जन्मकुण्डली (सं० स्त्री०) एक प्रकारका चक्र जिससे किसीके जन्मके समयमें ग्रहों की स्थितिका पता चले।

जन्मकृत् (सं० पु०) जन्म-कृ क्विप् पित्वात् तुगागमः। पिता, जन्मदाता।

जन्मक्रिया (जन्मसंस्कार)—जैनोंके षोडश संस्कारोंमेंसे एक संस्कार। इसका द्वितीय नाम प्रियोद्भवसंस्कार है। यह संस्कार बालकके जन्मग्रहणके दिन किया जाता है। इस दिन गृहस्थाचार्य वा कोई द्विज घरमें देवशास्त्र गुरुकी पूजा करते हैं। अनन्तर सात पीठिकाके मन्त्र पर्यन्त होम होनेके बाद इस मन्त्रको पढ़ कर आहुति दी जाती है।

"दिव्यनेमिजयाय स्वाहा। परमनेमिविजयाय स्वाहा। आर्हन्त्य नेमिविजयाय स्वाहा॥"

अनन्तर नवजात शिशुके शरीर पर अर्हत्-मूर्तिका गन्धोदक छिड़क देवें और बालकका पिता इस प्रकार कहता हुआ आशीर्वाद दे—

"कुलजातिवयोरूपगुणैः शीलप्रजान्वयैः।
भाग्याविधवतासौम्यमूर्तित्वैः समधिष्ठिता॥
सम्यग्दृष्टिस्तवाम्बेयमतस्त्वमपि पुत्रकः।
सम्प्रीतिमाप्नुहि त्रीणि प्राप्य चक्राण्यनुक्रमात्।"

इसके बाद दुग्ध और घृतसे बने हुए अमृतसे शिशुको नाभिको सींचना चाहिये। नाल काटते समय यह मन्त्र बोला जाता है—"घातिजयो भव श्रीदेव्यः तेजातक्रिया कुर्वन्तु।" अनन्तर बालकको स्नान करावें, मन्त्र इस प्रकार है—"मन्दराभिषेकार्हो भव।" फिर पिताको उस पर तण्डुल निक्षेप करना चाहिये, मन्त्र—"चिरञ्जीवयात्" इसके बाद पितामाता और कुटुम्बियोंको मिल बालकके मुंहमें औषधिविशिष्ट घृत लगाना चाहिये, मंत्र—"नश्यात् कर्ममलं कृत्स्नं।" फिर बालकका मुंह माताके स्तनसे लगाना चाहिये, मन्त्र—

"विश्वेश्वरास्तन्यभागीभूयात्।" उस दिन यथाशक्ति दान देना चाहिये और बालकके नालको किसी धान्यशाली पवित्र भूमिमें गाड़ देना चाहिये। भूमि खोदनेका मन्त्र—"सम्यग्दृष्टे सर्वमात वसुन्धरे स्वाहा।" गड्ढेमें पांचो रंगके पांच रत्न निक्षेप कर एवं यह मंत्र पढ़ते हुए कि, "त्वत्पुत्रा इव मत्पुत्रा भूयासुश्चिरजीविनः।" नाल गाड़ देवें। इधर बालककी माताको उष्ण जलसे स्नान कराना चाहिये। मंत्र यह है—"सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्न भव्ये आसन्नभव्ये विश्वेश्वरे विश्वेश्वरे ऊर्जितपुण्ये ऊर्जितपुण्ये जिनमाता जिनमाता स्वाहा।" (जैन आदिपुराण)

जातकर्म देखो।

जन्मक्षेत्र (सं० क्ली०) जन्मनः क्षेत्रं। जन्मभूमि, जन्मस्थान।

जन्मग्रहण (सं० पु०) उत्पत्ति।

जन्मज्येष्ठ (सं० त्रि०) जन्मना ज्येष्ठः। प्रथमजात, जो सबसे पहले पैदा हुआ हो।

जन्मतिथि (सं० पु० स्त्री०) जन्मन उत्पत्तेस्तिथिः काल विशेषः ६ तत्। १ वह तिथि जिसमें जन्म हुआ हो, जन्मदिन। २ उसकी सजातीय तिथि। स्त्रीलिङ्गमें विकल्पसे ङीप् होता है। जन्मतिथी, वर्षगांठ।

प्रतिवर्ष जन्मतिथिके दिन जन्मतिथिकृत्य करना चाहिये। तिथितत्त्वमें जन्मतिथिकृत्य और उसकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

जहां पहले दिन नक्षत्रयुक्त तिथिका लाभ हुआ हो, और दूसरे दिन सिर्फ तिथि ही रहती हो, वहां पहले दिन, तथा जहां दोनों ही दिन नक्षत्रवर्जित तिथि हो, वहां दूसरे दिन जन्मतिथि मानी जाती है।

जिस वर्ष जन्ममासमें जन्मतिथि जन्मनक्षत्रयुक्त हो, उस वर्ष सम्मान, सुख और सुस्थता लाभ होता है।

शनिवार या मङ्गलवारमें यदि जन्मतिथि पड़े, और उसमें यदि जन्मनक्षत्रका योग न हो; तो उस वर्ष पद पदमें विघ्न आया करते हैं। ऐसा होने पर सर्वौषधि मिश्रित जलमें स्नान, देवता, नवग्रह और ब्राह्मणोंकी अर्चना करनेसे शान्ति होती है। वार दोषकी शान्तिके लिए मोती तथा जन्मनक्षत्रका योग न होने पर उसकी शान्तिके लिए काञ्चन दान करना पड़ता है।

जन्मतिथिकृत्यमें गौण चान्द्रमासका उल्लेख हुआ करता है। यदि किसी वर्ष लौंदके महीनेमें जन्ममास पड़ जाय, तो उस मासको त्याग कर चान्द्रमासमें जन्मतिथिका अनुष्ठान करना चाहिये।

जन्मतिथिके दिन तिलका तेल या तिलको पीस कर शरीरमें लगाना चाहिये और तिलयुक्त जलसे स्नान कर तिलदान, तिलहोम, तिलवपन और तिल भक्षण करना चाहिये। इस प्रकारसे तिल व्यवहार करनेसे किसी प्रकारको आपत्ति नहीं आती।

गुग्गुल, गोमयके पत्ते, सफेद सरसों, दूब और गोरो-चना, इनका एकत्र पुट बना कर—

"गोमेधरे याति भूतानि स्थावराणि चराणि च।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे॥"

इस मन्त्रको पढ़ कर दक्षिण भुजामें जन्मग्रन्थि या रक्षाग्रन्थि धारण करना चाहिये।

जन्मतिथिके दिन नित्यक्रियासे निवृत्त हो कर स्वस्ति-वाचनादि पूर्वक "ममेत्यादि जन्मदिवसनिमित्तकपूजादि पूजनमहं करिष्ये।" अथवा "ममेत्यादि शुभवर्षवृद्ध्यै उक्तकर्माङ्ग आयुश्श्रीवृद्ध्यायुष्यकामो मार्कण्डेयादिपूजनमहं करिष्ये" इत्यादि रूपसे संकल्प कर गणेशादि देवताओंकी पूजा करनेके उपरान्त गुरु देव, अग्नि विप्र, जन्मनक्षत्र, पिता, माता और प्रजापतिकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये।

"द्विभुजं जटिलं सौम्यं सुवृद्धं चिरजीविनम्।
एवंरूपगुणं च मार्कण्डेयं विचिन्तयेत्॥" (मार्कण्डेयध्यान)

इस प्रकारसे मार्कण्डेयका ध्यान कर 'ॐ मार्कण्डेयाय नमः" इस मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये फिर

"ओं आयुप्रद महाभाग सोमवंशसमुद्भव।
महातप मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय नमोऽस्तु ते॥"

इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि दे कर—

"चिरजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने।
रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा।
मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन।
आयुरिष्टार्थसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव॥"

इस मन्त्र द्वारा प्रार्थना करना उचित है। इसके उपरान्त व्यास, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, बलि प्रह्लाद, हनुमान और विभीषणकी पूजा कर "ओं षां षष्ठ्यै नमः" इस मन्त्रसे दधि और अक्षत द्वारा षष्ठीदेवीकी पूजा तथा "जातभूतानि भूतानां ब्रह्मणा निर्मिता पुरा, तस्मात् पुत्ररक्षा पालयित्री नमोऽस्तु ते" इस मन्त्रसे प्रणाम कर प्रियजनादिकी पूजा करनी चाहिये। बादमें पूजित देवताओंको नमस्कार कर तिलहोम करनेके उपरान्त दक्षि-णान्त और विष्णुस्मरण करना चाहिये।

स्कन्दपुराणके मतसे जन्मतिथिके दिन नख केशादिका कटवाना, मैथुन, दूर गमन, आमिष भक्षण, कलह और हिंसा नहीं करना चाहिये।

ज्योतिषके मतसे—जीवके सर्वपरित्याग और यथाविधि स्नान करनेसे अभीष्ट सम्पद् प्राप्त होती है। ब्राह्मणोंको मत्स्यदान करने और जीवित मत्स्य पानीमें छोड़ देनेसे आयुकी वृद्धि होती है। इस दिन जो सत्तू खाता है, उसके शत्रुओंका क्षय तथा जो निरामिष भोजन करता है वह दूसरे जन्ममें पण्डित होता है।

हिन्दुओंकी तरह मुसलमानों अन्यान्य प्रधान जातियोंमें भी देशमें प्रचलित प्रथाके अनुसार जन्मदिनमें उत्सव हुआ करता है जिसे वर्षगाँठ मनाना कहते हैं।

जन्मद (सं॰ पु॰) जन्म ददातीति जन्म-दा क। पिता।

जन्मदिन (सं॰ क्ली॰) जन्मका दिन दिवस। जन्म दिवस, वह दिन जिसमें किसीका जन्म हुआ हो, वर्ष गाँठ। जन्मतिथि देखो।

जन्मनक्षत्र (सं॰ क्ली॰) जन्मका नक्षत्र। जन्म समयका नक्षत्र। "भोगेऽस्य जन्मनक्षत्रं चचार दूरे चर्क।" (विष्णुप॰) जन्मनक्षत्र किसीको कहना नहीं चाहिये। ज्योतिषके मतसे जन्मनक्षत्रमें यात्रा और क्षौरकर्म निषिद्ध है। विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि प्रतिमास जन्मनक्षत्रके दिन यथाविधि स्नान कर चन्द्र, जन्मनक्षत्र, अग्नि विष्णु प्रभृति देवों और ब्राह्मणोंको अर्चना करनी चाहिये।

जन्मना (हिं॰ क्रि॰) १ जन्मग्रहण करना, पैदा होना, जन्म लेना। २ आविर्भूत होना अस्तित्वमें आना।

जन्मप (सं॰ पु॰) जन्म जन्मलग्नं पाति पा क। १ जन्मलग्नपति। २ जन्मराशिके अधिपति।

जन्मपति (सं॰ पु॰) १ जन्मलग्नके स्वामी। २ जन्मराशिके अधिपति।

जन्मपत्र (सं॰ क्ली॰) १ जन्म विवरण, जीवनचरित्र। २ कोष्ठी, जन्मपत्री। ३ किसी वस्तुका आदिसे अन्त तक विवरण।

जन्मपत्रिका (सं॰ स्त्री॰) जन्मसूचक पत्र कन् टाप्। कोष्ठी, जन्मपत्री।

जन्मपत्री (सं॰ स्त्री॰) वह पत्र जिसमें किसीको उत्पत्तिके समयके ग्रहोंकी स्थिति, उनकी दशा, अन्त र्दशा आदि लिखे हों।

जन्मपादप (सं० पु०) जन्मनः पादप। यह वृक्ष जिस के नीचे किसीका जन्म हो।

जन्मप्रतिष्ठा (सं० स्त्री०) जन्मना प्रतिष्ठा। १ जन्मस्थान। २ माता।

जन्मभ (सं० क्ली०) १ जन्मनक्षत्र। २ जन्मलग्न। ३ जन्मराशि। ४ जन्मनक्षत्रादि, सजातीय नक्षत्रादि।

जन्मभाज् (सं० पु०) जीव, प्राणी, जानवर।

जन्मभाषा (सं० स्त्री०) मातृभाषा, स्वदेशकी बोली।

जन्मभू (सं० स्त्री०) जन्मभूमि।

जन्मभूमि (सं० स्त्री०) १ जन्मस्थान, वह स्थान जहां किसीका जन्म हुआ हो। २ स्वदेश, वह देश जहां किसीका जन्म हुआ हो।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" अयोध्या माहात्म्यमें रामचन्द्रका जन्मस्थान भी जन्मभूमि नामसे वर्णित है। यहां आ कर स्नान दान करनेसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञके फल होते हैं।

जन्मभृत् (सं० त्रि०) जन्म बिभर्ति जन्म-भृ-क्विप्। प्राणी, जीव।

जन्ममास (सं० पु०) १ वह मास जिसमें किसीका जन्म हुआ हो। २ जन्ममासके सजातीय मास। ज्योतिष के मतसे जन्ममासमें चौरकर्म, विवाह, कर्णवेध और यात्रा निषिद्ध है। वशिष्ठके मतानुसार जन्ममासमें जन्मदिन मात्र, गर्गके मतसे ८ दिन मात्र, यवनाचार्यके मतसे १० दिन मात्र तथा भागुरिके मतसे समस्त मास ही उक्त कार्य वर्जनीय हैं।

जन्मयोग (सं० पु०) कोठी, जन्मपत्री।

जन्मराशि (सं० पु०) वह राशि (लग्न) जिसमें किसीका जन्म हो।

जन्मरोगी (सं० पु०) वह जो जन्मकालसे ही रोगका भोग करता आ रहा हो।

जन्मर्क्ष (सं० पु०) जन्म-ऋक्ष। १ वह नक्षत्र जिसमें किसीका जन्म हुआ हो। २ प्रथम नक्षत्रका नाम

जन्मलग्न (सं० क्ली०) वह लग्न जिसमें किसीका जन्म हो। लग्न देखो।

जन्मवत् (सं० त्रि०) जन्मन् मतुप्। प्राणी, जीव।

जन्मवर्त्म (सं० क्ली०) जन्मनः वर्त्म पन्था। योनि, भग।

जन्मवसुधा (सं० स्त्री०) जन्मस्थान, जन्मभूमि।

जन्मविधवा (सं० स्त्री०) अक्षतयोनि, वह स्त्री जिसका पति उसके बचपनमें ही मर गया हो, वह विधवा जिसका अपने पतिसे सम्पर्क न हुआ हो।

जन्मवैलक्षण्य (सं० क्ली०) पैतृक पद्धतिका विपरीत आचरण।

जन्मशय्या (सं० स्त्री०) जन्मनिमित्त शय्या, प्रसवार्थ शय्या, वह शय्या जिस पर किसीका जन्म होता हो।

जन्मशोध (सं० पु०) वह जो जन्म भरके लिए किया गया हो।

जन्मसाफल्य (सं० क्ली०) जन्मनः साफल्यं। जन्मोद्देश्यकी सफलता।

जन्मस्थान (सं० क्ली०) १ जन्मभूमि। २ मातृगर्भ, माताका गर्भ। ३ कुण्डलीमें वह स्थान जिसमें जन्म समयके ग्रह रहते हैं।

जन्म (सं० पु०) १ जन्मवाला, वह जिसका जन्म हो। (त्रि०) २ उत्पन्न।

जन्माधिप (सं० पु०) १ शिवका एक नाम। २ जन्मराशिका स्वामी। ३ जन्मलग्नका स्वामी। जन्मन् देखो।

जन्मना (हिं० क्रि०) जनमा देना, उत्पन्न कराना।

जन्मान्तर (सं० क्ली०) अन्यत् जन्म जन्मान्तरं। १ अन्यजन्म, दूसरा जन्म। जन्मनः अन्तरं। २ लोकान्तर।

जन्मान्तरकृत (सं० क्ली०) अन्य जन्मका अनुष्ठित कर्म, दूसरे जन्मका किया हुआ काम।

जन्मान्तरीण (सं० त्रि०) जो जन्मान्तरमें हो गया हो या होनेवाला हो।

जन्मान्तरीय (सं० त्रि०) १ जन्मान्तर सम्बन्धीय, दूसरे जन्मका। २ जो जन्मान्तरमें हो गया हो या होनेवाला हो।

जन्मान्ध (सं० त्रि०) आजन्म दृष्टिहीन, जन्मका अन्धा।

जन्मावच्छिन्न (सं० त्रि०) यावज्जीवन, जन्म भर।

जन्माशौच (सं० क्ली०) जन्मसम्बन्धी अशौच, सूतक।

जैनमतानुसार—जब कोई जन्म ग्रहण करता है तब उसके कुटुम्बीजन १० दिन तक देव शास्त्र गुरु पूजा वा मुनि आदिको आहार नहीं दे सकते।

इसको सूतक भी कहते हैं। स्राव पात और प्रसूत के भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। जो गर्भ ३रे वा ४थे मास पर्यन्त गिर जाय उसे स्राव और जो ५वें वा ६ठे मासमें गिरे, उसे पात कहते हैं एवं ७वें मासके बादकी अवस्थामें वह प्रसूत कहलाता है। गर्भस्राव और गर्भपातमें सिर्फ माताके लिए उतने दिनोंका अशौच है जितने मासका गर्भ गिरा हो तथा पिता आदि अन्य कुटुम्बीजन स्नान मात्रसे शुद्ध हो जाते हैं।

प्रसव होने पर घरके लोगोंको १० दिनका अशौच होता है। किन्तु यदि बालक जीवित उत्पन्न हो कर नाल काटनेके पहले ही मर जावे तो माताको १० दिनका तथा पिता आदिको ३ दिनका अशौच होता है। यदि बालक उत्पन्न हो वा नाल काटनेके बाद मर जाय, तो माता पिता आदि समस्त कुटुम्बके लोगोंको १० दिनका सूतक लगता है। अशौच देखो।

जन्माष्टमी (स० स्त्री०) जन्मना श्रीकृष्णाविर्भावस्य अष्टमी, ६ तत्। श्रीकृष्णके जन्मकी अष्टमी तिथि। ब्रह्मपुराणमें लिखा है—

"अथ भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे।
अष्टाविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः।"

२८वें कलियुगमें भाद्रमासकी कृष्णपक्षीय अष्टमी तिथिको देवकीके गर्भसे श्रीकृष्ण आविर्भूत हुए। विष्णुपुराणके मतानुसार महामायासे भगवान्‌ने कहा था—

"प्रावृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहं निशि।
उत्पत्स्यामि नवम्याञ्च प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि॥"

वर्षाकालमें श्रावण मासकी कृष्णाष्टमी तिथिको निशीथ समय पर मैं आविर्भूत हूंगा, तुम दूसरे दिन नवमीको अवतीर्ण होगी।

उपरोक्त दोनों वचनोंमें श्रावण और भाद्र उभय मासको श्रीकृष्णका जन्ममास कहा है। सुतरां मुख्यचान्द्र और गौणचान्द्र भेदसे उसका समाधान होगा।

जब मुख्यचान्द्र श्रावणकी कृष्णाष्टमी ही गौणचान्द्र भाद्रपदकी कृष्णाष्टमी होती है, तो भिन्न भिन्न वचनोंमें महीनेका पृथक् पृथक् उल्लेख असङ्गत नहीं समझ सकते। जन्माष्टमी तिथि किसी वर्ष श्रावण मास और कभी और भाद्रमासमें होती है, उस रोज उपवास, यथानियम श्रीकृष्णकी पूजा चन्द्रको अर्घ्यदान और रात्रिजागरण आदि कर व्रत रखना पड़ता है। अष्टमीका फल भविष्यके मतसे यह है कि केवलमात्र उपवाससे ही सात जन्मका किया हुआ पाप विनष्ट होता है। अनन्तर प्रसूति मुक्त दिनोंमें स्नान पूजा आदि करनेसे जो फल मिलता, जन्माष्टमीके दिन उसका कोटि गुण फल मिलता है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है कि उस दिन केवल तर्पण करनेसे भी सौ वर्षके गयाश्राद्धकी तरह पितृलोक तृप्त होता है। स्कन्दपुराणके मतानुसार जन्माष्टमीका व्रत स्त्री और पुरुष सबको करना चाहिये। यह व्रत करनेसे इस लोकमें सन्तान, सौभाग्य आरोग्य, अतुल आनन्द तथा धार्मिकता आदि पाते और परकालमें वैकुण्ठ जाते हैं। स्कन्दपुराणके मतानुसार जन्माष्टमीके व्रतसे चतुर्वर्ग फल मिलता है।

भविष्योत्तरमें लिखा है—प्रतिवर्ष श्रावण मासके कृष्ण पक्षमें जो मनुष्य जन्माष्टमीका व्रत न करेगा, वह क्रूरकर्मा राक्षसका जन्म लेगा और जो स्त्री जन्माष्टमीके व्रतसे विमुख रहेगी, अरण्यको सर्पिणी बनेगी। श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये भक्तिके साथ एकाग्रचित्तसे भक्तिपूर्वक यत्नसे व्रत करना पड़ता है। इसको न करनेसे चौदह इन्द्रोंके भोग्य समय तक नरक भोग करते हैं। जन्माष्टमी व्रत छोड़ कर दूसरा व्रत करनेसे कोई भी फललाभ नहीं होता। यदि जन्माष्टमी तिथि निशीथ समयके पूर्वदण्ड अथवा परदण्डमें कलामात्र और रोहिणी नक्षत्रके साथ आती, जयन्ती जैसी कहलाती है। इसीका नाम जयन्ती योग है। (वराहसंहिता) जयन्ती योगमें उपवास करनेसे अधिक फल होता है। यह सोमवार वा बुधवारको पड़नेसे और भी प्रशस्त है। कालमाधवीयके मतसे जन्माष्टमीव्रत तथा जयन्तीव्रत पृथक् है। उपवास, जागरण, अर्चना दान एवं ब्राह्मण भोजन इन कार्योंका नाम जयन्तीव्रत है। केवल उपवास को जन्माष्टमी व्रत कहा जाता है।

ब्रह्माण्डपुराणमें इसी जन्माष्टमी वा जयन्तीव्रतको

रोहिणीव्रत कहा है। सौ एकादशी व्रतकी अपेक्षा भी इसका फल अधिक है।

स्मार्तों और वैष्णवोंके मतभेदसे जन्माष्टमीके व्रतको व्यवस्था अलग अलग है। स्मार्तोंमें रघुनन्दन भट्टाचार्य और माधवाचार्यको व्यवस्था एक जैसी नहीं होती। रघुनन्दनके मतसे वशिष्ठ प्रभृतिके वचनानुसार जिस दिन जयन्तीयोग आता, जन्माष्टमी व्रत किया जाता है। किन्तु दोनों दिन वह योग पड़नेसे दूसरे दिन व्रत होता है। जयन्तीयोग न मिलनेसे रोहिणीयुक्त अष्टमीमें व्रत करनेकी व्यवस्था है। यदि दोनों दिन रोहिणीयुक्त अष्टमी हो, तो दूसरे दिन व्रत करना चाहिये। रोहिणी योग न होनेसे जिस रोज निशीथ समयमें अष्टमी रहे, जन्माष्टमीका व्रत करना चाहिये। दोनों दिन निशीथ समयमें अष्टमी मिलने या किसी भी दिन न रहनेसे परदिन ही कर्तव्य है। वैष्णवोंके मतसे जिस रोज पलमात्र भी सप्तमी होती, जन्माष्टमी व्रत नहीं करते। नक्षत्रयोगके अभावमें नवमीयुक्त अष्टमी ग्राह्य है, किन्तु सप्तमीविद्धा अष्टमी नक्षत्रयुक्ता होते भी छोड़ देना चाहिये। (हरिभक्तिविलास)

भविष्यपुराण और भविष्योत्तरमें लिखा है—उपवासके पूर्व दिन हविष्य बना कर खाना चाहिये। इस दिन प्रातःकृत्य आदिके समापनान्तमें उपवासका सङ्कल्प करते हैं। सप्तमी तिथि रहनेसे उसमें "सप्तम्यान्तियावारम्भ" जैसा तिथिका उल्लेख होगा। सङ्कल्पके बाद "धर्माय नमः धर्मेश्वराय नमः धर्मपतये नम, धर्मसम्भवाय नमः गोविन्दाय नमः" आदि उच्चारणपूर्वक प्रणाम कर निम्न लिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये—

> वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये।
> उपवासं करिष्यामि कृष्ण तुभ्यं नमाम्यहम्॥
> अद्य कृष्णाष्टमीं देवीं नभःश्चन्द्रं सरोहिणीम्।
> अर्चयित्वोपवासेन भोक्ष्येऽहमपरेऽहनि॥
> एनसो मोक्षकामोऽस्मि यद्गोविन्दत्रियोनिजम्।
> तन्मे मुंच मां त्राहि पतितं शोकसागरे॥
> आजन्ममरणं यावत् यन्मया दुष्कृतं कृतम्।
> तत्प्रणाशाय गोविन्द प्रसीद पुरुषोत्तम॥"

फिर आधी रातको प्रणव आदि नमः शब्दान्त अपने अपने नामरूप मन्त्रसे वासुदेव, देवकी, वसुदेव, यशोदा, नन्द, रोहिणी, चण्डिका, वामदेव, दक्ष, गर्ग तथा ब्रह्माकी पूजा कर 'श्रीवत्सवक्षः पूर्णाङ्गं नीलोत्पलदलच्छवि' इत्यादि भविष्योत्तरीय ध्यानपूर्वक "ओं श्रीकृष्णाय नमः" मन्त्रसे श्रीकृष्णकी पूजा करनी पड़ती है। अर्घ्य, स्नान, नैवेद्य तथा तिल होम और शयनके विशेष विशेष मन्त्र हैं। श्रीकृष्णकी पूजाके बाद श्रीपूजा और उसके पीछे देवकी पूजा कर्तव्य है। कृष्ण यशोदा प्रभृतिकी स्वर्ण आदि निर्मित प्रतिमूर्ति स्थापन करते हैं। पूजाके अन्तमें गुड़ और घीसे वसुधारा दी जाती है। उसके बाद नाड़ीछेदन, षष्ठीपूजा और नामकरण आदि संस्कार करना चाहिये। इन सब कार्योंके पीछे चन्द्रोदयके समय चन्द्रके उद्देश हरिस्मरणपूर्वक शङ्खपात्रमें जल पुष्प, चन्दन तथा कुश ले "क्षीरोदार्णवसम्भूत" इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्य दे "ज्योत्स्नायाः पतये तुभ्यं" इत्यादि मन्त्रसे चन्द्रको प्रणाम करते हैं। चन्द्रप्रणामके बाद "अनघं वामनं" इत्यादि मन्त्रद्वारा नामकीर्तन एवं "प्रणमामि सदा देवं" इत्यादि मन्त्र द्वारा श्रीकृष्णको प्रणाम कर "त्राहि मां" इत्यादि मन्त्रसे प्रार्थना की जाती है। फिर स्तवपाठ और श्रीकृष्णका जन्म-वृत्तान्त जो अष्टमीकी कथामें उल्लिखित है, श्रवण कर नाचते गाते रात्रि बिता देना चाहिये। कृष्ण देखो। दूसरे दिन सबेरे विधिपूर्वक श्रीकृष्णकी पूजा कर दुर्गामहोत्सव करते हैं। उसके बाद ब्राह्मणभोजन करा और उनको सुवर्ण आदि दक्षिणासे सन्तुष्ट कर "भावाय सर्वेश्वराय" इत्यादि मन्त्रसे पारण तथा 'भूताय' इत्यादि मन्त्रसे उत्सव समापन किया जाता है। स्त्रियों और शूद्रोंको पूजा आदिमें मन्त्र पढ़ना नहीं पड़ता। (तिथितत्त्व)

स्मार्त रघुनन्दनने ब्रह्मवैवर्त प्रभृति पुराणोंके वचनानुसार पारण सम्बन्धमें ऐसी व्यवस्था बतलायी है—उपवासके दूसरे दिन तिथि और नक्षत्र दोनोंका अवसान होनेसे पारण करना पड़ता है। जिस स्थल पर महानिशासे पहले तिथि और नक्षत्रमें किसी एकका अवसान आता और दूसरेका अवसान महानिशाको अथवा उसके बाद दिखलाता, एकके अवसानसे ही पारणका काम चल जाता है। जब महानिशाके समय तिथि और नक्षत्र दोनों रहते हैं तब उत्सवके पीछे प्रातःकालमें पारण करते हैं।

जन्मास्पद (स० क्ली०) जन्मस्थान जन्मभूमि।

जन्मिन् (स० पु०) १ प्राणी, जीव। (वि०) २ जो उत्पन्न हुआ हो।

जन्मेजय (स० पु०) जनमेजय राजा। देवीभागवतके २।११।११ श्लोककी टीकामें लिखा है—

"जन्मेजयाभिधेयेन यन्नू मैथिलदत्तम् मतः।

यत्नात् जन्मने भाष्येऽहि जन्मेजय इति श्रुतः॥"

जनमेजय देखो।

जन्मेश (स० पु०) जन्मराशिका स्वामी। जन्मप देखो।

जन्य (स० क्ली०) जन-यत्। १ हाट बाट, बाजार। २ परिवाद, निन्दा। ३ संग्राम युद्ध, लड़ाई। (पु०) ४ उत्पादक, जनक, पिता। ५ महादेव, शिव। "जनदेवा महादेवा जन्यो विश्वकवित्।"(भारत १३।१७।९८)। ६ देह, शरीर। ७ जनश्रम। जन्य देखो। ८ किंवदन्ती, अफवाह। (त्रि०) ९ उत्पाद्य, उत्पन्न करनेके योग्य। १० जनयिता उत्पादक, जन्म देनेवाला। ११ जातीय देशिक, राष्ट्रीय। १२ जनहित, मनुष्योंका हितकर। १३ जन सम्बन्धी। १४ प्रसूत, जो उत्पन्न हुआ हो। (पु०) १५ नवोढ़ाके भृत्य, नवविवाहिताके नौकर। १६ नवविवाहिताके ज्ञाति, भाईबन्धु बान्धव। १७ नवविवाहिताके मित्र। १८ नवविवाहिताके प्रिय जन। १९ जामाता, दामाद। २० इतर लोक, जनसाधारण, साधारण मनुष्य। २१ जनन, जन्म, पैदाइश। २२ बराती। २३ वरके प्रिय जन, वरपक्षके लोग। २४ ज्ञाति। २५ वर, दूल्हा। २६ पुत्र, बेटा।

जन्यता (स० स्त्री०) जन्य तल टाप्। उत्पाद्यता, जन्म होनेका भाव।

जन्या (स० स्त्री०) जन्य टाप्। १ माताकी सखी। २ प्रीति, स्नेह, प्रेम। ३ वधूकी सहेली। ४ वधू।

जन्यु (स० पु०) जन-युच् बाहुलकात् न अनादेशः। १ अग्नि। २ ब्रह्मा, विधाता। ३ प्राणी जन्तु जीव। ४ जन्म, उत्पत्ति। ५ हरिवंशके अनुसार चौथे मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषिका नाम।

जप (स० त्रि०) जप-कर्तरि अच्। १ जपकारक, जप करनेवाला। (भावे)(पु०) भावे अप्। २ पाठ, अध्ययन। ३ मन्त्र आदिकी आवृत्ति, मन्त्रादिका पुनः पुनः उच्चारण। अग्निपुराण और तन्त्रसारमें लिखा है—निर्जन स्थानमें समाहित चित्तसे देवताकी चिन्ता कर जप करना पड़ता है। जपकालमें विम्मुख स्थान करनेके बिना मनविक्षेप होनेसे जप बिगड़ जाता है। मलिन वेश अथवा दुर्गन्धियुक्त मुखसे जप करने पर देवताकी प्रीति नहीं होती। जपकालमें आलस्य, जृम्भा, निद्रा, क्षाम, निष्ठीवन त्याग क्रोध और नीच अङ्गका स्पर्श सम्पूर्ण रूपसे परिहार करना चाहिये।

जप तीन प्रकारका है—मानस जप, उपांशु जप और वाचिक जप। मन्त्रार्थ सोच कर मन ही मन उसको उच्चारण करनेका नाम मानस जप है। देवताका चिन्तन कर जिह्वा और दोनों ओठोंको अल्पतया हिलाते हुए किञ्चित् श्रवणयोग्य जो जप किया जाता है वह उपांशु कहलाता है। वाक्य द्वारा मन्त्र उच्चारण पूर्वक जप करनेको वाचिक कहते हैं। इसके सिवा इससे दूसरा भी एक जप है। उसको जिह्वाजप कहा जाता है। यह जप केवल जीभसे ही करना पड़ता है। वाचिकसे उपांशु दशगुण जिह्वाजप शतगुण और मानस सहस्रगुण श्रेष्ठ है। जप करते करते इसकी गणना करना उचित है, कितना जप हो गया। इसीके लिये जपमालाका प्रयोजन पड़ता है। जपमाला देखो। अक्षत, हस्तपर्व, धान्य, पुष्प, चन्दन किंवा मृत्तिकासे जपकी संख्या ठहराना निषिद्ध है। लाक्षा या गोमय द्वारा जप गिननेका विधान है। (तन्त्रसार)

कुलार्णवतन्त्रके मतसे उच्चस्वरका जप अधम उपांशु मध्यम और मानस उत्तम—ऐसा होता है। जप अति ह्रस्व होनेसे रोग बढ़ता और बहुत दीर्घ पढ़नेसे तप घटता है। मन्त्रका अर्थ, मन्त्रका तत्त्व और योनि मुद्रा न समझनेसे शतकोटि जपसे भी क्या कोई फल मिलता है। बिना इसके शुभवीर्य अथवा अचैतन्य मन्त्र भी निष्फल है चैतन्ययुक्त मन्त्र ही सर्वसिद्धिकर होता है। चैतन्ययुक्त मन्त्र एकबार जप करनेसे जो फल मिलता, अचैतन्य मन्त्रके शत सहस्र अथवा लक्ष जपमें भी वह दुर्लभ है। चैतन्ययुक्त मन्त्र सर्वसिद्धिकर है। चैतन्ययुक्त मन्त्रका एक बार जप करनेसे ही फल मिलता है, अचैतन्य मन्त्रका हजार या लाख बार जप करनेसे

भी वैसा फल नहीं मिलता। चैतन्ययुक्त मन्त्र एक वार पीछे जप करते ही जपकर्ताको ग्रन्थिभेद सर्वाङ्ग वृद्धि, आनन्द, अश्रु, पुलक, देहावेश और सहसा गद्गद भाषा हो जाती है।

पद्म, स्वस्तिक वा वीरासन आदिमें बैठ जप करना चाहिये, अन्यथा वह निष्फल हुआ करता है।

पुण्यक्षेत्र, नदीतीर, गिरिगुहा, गिरिशृङ्ग, तीर्थस्थान, सिन्धुसङ्गम, वन, उपवन, बिल्ववृक्षके मूल, गिरितट देवमन्दिर, समुद्रतीर अथवा जहां चित्त प्रसन्न हो सके, वहां जप करना उचित है। निर्जन गृहमें सौ गुना, गोष्ठमें लाख गुना, देवालयमें करोड़ गुना और शिवके सन्निधानमें अनन्त पुण्य लाभ होता है। गुरुके मुखसे प्राप्त मन्त्र ही सर्वसिद्धिदायक है। इच्छाक्रमसे सुन अथवा कोशलसे देख किंवा पत्र पर लिखित मन्त्र अभ्यास पूर्वक जप करनेसे कोई अनर्थ नहीं उठता। किन्तु पुस्तकमें लिखा है, मन्त्र देख जो जप करता, ब्रह्महत्या जैसा उसको पाप पड़ता है।

जपजी (हिं॰ पु॰) सिखोंका एक पवित्र धर्मग्रन्थ। इस ग्रंथका नित्य पाठ करना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

जपतप (हिं॰ पु॰) पूजापाठ।

जपता (सं॰ स्त्री॰) जपस्य जपकारकस्य भावः तल्-टाप्। १ जप करनेका काम। २ जप करनेका भाव।

जपन (सं॰ क्ली॰) जप भावे ल्युट्। जप। जप देखो।

"सन्यास एव वेदान्ते वर्त्तते जपनं प्रति।"

(भारत शांति ११६ अ॰)

जपना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी वाक्य वा वाक्यांशको धीरे धीरे देर तक कहना या दोहराना। २ खा जाना, जल्दी जल्दी निगल जाना। ३ किसी मन्त्रका सन्ध्या, यज्ञ वा पूजा आदिके समय संख्यानुसार धीरे धीरे वार वार उच्चारण करना।

जपनी (हिं॰ स्त्री॰) १ माला। २ गोमुखी, गुप्ती।

जपनीय (सं॰ त्रि॰) जप-अनीयर्। जप करने योग्य, जो जपने लायक हो।

जपपरायण (सं॰ त्रि॰) जप एव परमयनं आश्रयो यस्य बहुव्रो॰। जपासक्त, जपनशील, जो जप करता हो।

जपमाला (सं॰ स्त्री॰) जपस्य जपार्था माला। जपके निमित्त व्यवहृत होनेवाली माला, जिस मालाको अव-लम्बन कर जप किया जावे कामभेदसे जपमाला नाना प्रकार बन सकती है।

प्रधानतः जपमाला तीन प्रकारकी है—करमाला, वर्णमाला और अक्षमाला। (मत्स्यसूक्त) तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा इन चार अङ्गुलियों द्वारा मालाकी कल्पना करना पड़ती है। कनिष्ठाङ्गुलि-के तीन पर्व, अनामिकाके तीन पर्व, मध्यमाका एक पर्व और तर्जनीके तीन पर्व सब मिला कर दश पर्वकी एक माला बनती है। इस मालाके मेरु जैसे मध्यमाङ्गुलीके ऊपर दो पर्व समझना चाहिये। (सनतकुमारस॰) इसी-का नाम करमाला है। उसमें जप करनेका क्रम इस प्रकार है—अनामिकाके मध्य पर्वसे आरम्भ कर कनिष्ठाके ३ पर्व ले क्रममें तर्जनीके मूलपर्व पर्यन्त १० पर्व पर जप करना पड़ता है। ऐसे ही नियमसे दश वार जप करने पर एक शत संख्या हो जाती है। अष्टादश, अष्टाविंशति, अष्टोत्तर शत प्रभृति अष्टाधिक जपके स्थल पर अनामिकाके मूल पर्वसे आरम्भ कर कनिष्ठाके ३ पर्व ले क्रमशः तर्जनीके मध्यपर्व पर्यन्त ८ पर्वमें आठ वार जप करते हैं। (सनतकुमारीय)

शक्तिमन्त्रके जपमें करमाला अन्य प्रकार है। उसमें अनामिकाके ३ पर्व, मध्यमाके ३ पर्व, कनिष्ठाके ३ पर्व और तर्जनीका मूलपर्व १० पर्व ले कर एक माला बनती है। तर्जनीका मध्य पर्व और अग्र पर्व उस मालाका मेरु जैसा कल्पित होता है। मेरुके स्थानमें जप निषिद्ध है। इसमें अनामिकाके मध्य पर्वसे आरम्भ कर कनिष्ठाङ्गुलीके ३ पर्व ले क्रममें मध्यमाके ३ पर्वसे तर्जनीके मूल पर्यन्त १० पर्वमें जप करते हैं। उस प्रकारकी मालामें आठ वार जपनेके स्थल पर अनामिका अङ्गुलीकी जड़से आरम्भ करके कनिष्ठाके ३ पोर ले कर क्रमशः मध्यमाके मूल पर्व पर्यन्त ८ पर्वमें आठ वार जप करना पड़ता है।

त्रिपुरासुन्दरीके मंत्र जपमें और ही करमाला होती है। उसमें मध्यमाका मूल एवं अग्र, अनामिकाका मूल तथा अग्र, कनिष्ठा और तर्जनीका मूल, मध्य तथा अग्र पर्व १० पर्वकी माला बनाते हैं। अनामिकाका-

मध्य पर्व और मध्यमाका मध्यपर्व १ पर्व इन मालाके मेरु जैसे गिने जाते हैं।

करके नियम—मध्यमाके मूलपर्वसे आरम्भ कर अना-मिकाका मूलपर्व ले कनिष्ठाके मूल, मध्य तथा अग्र पर्वमें क्रमसे तर्जनीके मूल पर्यन्त जप करनेका नियम है। इसमें दश बार जप होता है। आठ बार जपके स्थल पर कनिष्ठाके मूल पर्वसे क्रमसे तर्जनीके मूल पर्व पर्यन्त जप किया जाता है।

(भीष्म, ईशानेश्वर नामक, मुण्डमालातन्त्र)

सब प्रकार करमालामें करतल किंचित् आकुंचित कर उंगली परस्पर संलग्न भावसे रखते और जप करते हैं। इससे अन्यथा करने पर जप निष्फल होता है। सब उंगलियोंके आगे आगे और पर्वसन्धिमें जप करना और मेरु लांघना बहुत निषिद्ध है। करमालाका नियम तोड़ जप करनेसे उसका फल राक्षस ले जाते हैं। अतएव अंगुष्ठ द्वारा पूर्वोक्त नियममें अपरापर अंगुलीके सब पर्व स्पर्श कर संख्या रखते और जप करते हैं।

(सनत्कुमार)

निरुत्तरतन्त्रमें लिखा है कि जपकी संख्या और जप-माला दोनोंको ढकना पड़ता है।

तन्त्रके मतानुसार हृदय पर हाथ रख कर उंगलियां शुद्ध सूक्ष्म वस्त्र द्वारा आच्छादनपूर्वक जप किया जाता है।

तण्डुल, धान्य, पुष्प, चन्दन, मृत्तिका और अंगुली पर्व इनसे जपकी संख्या रखना निषिद्ध है। रक्तचन्दन, लाक्षा, सिन्दूर, गोमय और कण्डा इनको एकत्र मिला कर गोलियां बनानी चाहिये और उससे माला गूंथ कर जपसंख्या करनी चाहिए।

वर्णमाला—'अ'से 'क्ष' पर्यन्त सब वर्णोंकी एक माला कल्पना करना वर्णमाला कहलाता है। 'अ'के पहले भी एक 'ल' लगाना पड़ता है। सुतरां समष्टिमें ५१ वर्ण हो जाते हैं। 'क्ष' वर्णमालाका मेरु साधो जैसा कल्पना करते हैं। उसके पीछे एक बार मग्न चिन्ता कर फिर वर्णमालाके सर्वप्रथम "अ" बिन्दुयुक्त वर्णको भी चिन्तन किया जाता है। इसी प्रकार एकबार मग्न चिन्ता और पीछे पीछे एक एकबिन्दुयुक्त वर्णकी चिन्ता करनेसे 'क्ष' पर्यन्त पचास बार चिन्ता होती है। ऐसे ही अनुलोमकी चिन्ताके पीछे फिर एक बार विलोम अर्थात् विपरीत क्रमसे 'ल' से 'अ' तक एक एक वर्णको चिन्ता करनेसे सब मिला कर एक शतबार जप हो जाता है। इसके बाद और आठ बार जप या चिन्ता करनेमें अष्टवर्गके आद्य आद्य ८ वर्णको चिन्ता करनी पड़ती है। तन्त्रके मतानुसार अकारसे 'अः' पर्यन्त १६ स्वरमें एक वर्ग, 'म' तक २५ वर्णमें ५ वर्ग; 'य र ल व' चार वर्णमें एक वर्ग और 'श ष स ह क्ष' ५ वर्णमें एक वर्ग होता है। सुतरां अ, क, च, ट, त, प, य और श नामसे सब आठ वर्ग हैं। आठ बार जप या चिन्ताके स्थान पर भिन्न भिन्न तन्त्रमें अलग अलग मत दिया हुआ है। कोई कोई कहता है कि एक अष्टवर्गके अन्त्यवर्ण द्वारा भी आठ बार जप करनेका विधान है। (सनत्कुमार, गरुड़, सिद्धेश्वरतन्त्र)

अक्षमाला—तन्त्रसारमें लिखित है कि रुद्राक्ष, शङ्ख, पद्माक्ष, पुत्रजीव, कच, मुक्ता, स्फटिक, मणि, सुवर्ण, विद्रुम, रौप्य और कुशमूल इन द्रव्योंसे जपमाला प्रस्तुत होती है। इसमें अंगुली द्वारा एक गुण, पर्व द्वारा अष्ट गुण, पुत्रजीवकी मालासे दश गुण, शङ्खमालासे सहस्र गुण, प्रवाल तथा मणि रत्नादि निर्मित एवं स्फटिक मालासे दश सहस्र गुण, मौक्तिक मालासे लक्षगुण, पद्माक्ष मालासे दशलक्ष गुण, सुवर्ण मालासे कोटि गुण, कुशग्रन्थिकी मालासे शतकोटि गुण और रुद्राक्षमालासे जप करने पर अनन्तगुण फल मिलता है। अतएव सब प्रकारकी माला साधकके लिये सिद्धि प्रद है।

कालिकापुराणके मतानुसार रुद्राक्ष या स्फटिककी मालामें पुत्रजीव आदि मिलाना न चाहिये, इससे काम और मोक्ष बिगड़ जाता है।

रुद्राक्षकी मालासे मनुनाम, कुशग्रन्थियुक्त मालासे सब पापों विनाश, पुत्रजीवफलकी मालासे पुत्रसम्पद्, रौप्य तथा मणि रत्नादिकी मालासे अभीष्टसिद्धि और प्रवालकी मालासे जप करने पर विपुल धनलाभ होता है। वाराहीतन्त्रमें लिखा है—भैरवी विद्यामें सुवर्ण, मणि स्फटिक, शङ्ख और प्रवालकी मालाका व्यवहार

करना चाहिये। इसमें पुत्रजीव, पद्माच, रुद्राक्ष और इन्द्राक्ष मालामें जप नहीं करते।

मन्त्रराज तथा कुमारीकल्पमें कहा है—त्रिपुराके जपमें रक्तचन्दन एवं रुद्राक्ष माला, गणेशके जपमें गज-दन्तनिर्मित माला, वैष्णव जपमें तुलसी माला और कालिका, छिन्नमस्ता, त्रिपुरा एवं तारिणीके जपमें रुद्राक्षमालासे काम ले सकते हैं। (किन्तु पुरश्चरणके सिवा दिवसमें रुद्राक्षमाला व्यवहार नहीं करते।) नीलसरस्वती और ताराके जपमें महाशङ्खमयी मालाके व्यवहारका विधान है। उपर्युक्त शक्तियोंको छोड़ दूसरी शक्तिका मन्त्रजप करनेमें रुद्राक्ष नहीं चलता। कर्ण और नेत्रान्तरालके मध्यस्थ ललाटास्थि द्वारा जो माला बनायी जाती, महाशङ्खमयी कहलाती है।

मुण्डमालातन्त्रके मतानुसार महातान्त्रिकोंके लिये धूमावतीके जप विषयमें श्मशानजात धुस्तूरमाला प्रशस्त है। नाडी तथा रक्तवास द्वारा ग्रथित नराङ्गुलिकी अस्थिमाला भी सर्वकामप्रद होती है।

हरिभक्तिविलासमें लिखा है कि गोपालमन्त्रके जपमें पद्मबीजकी मालासे सिद्धि, आमलकीकी मालासे सकल अभीष्टपूर्ति और तुलसी मालासे अचिरात् मुक्ति होती है।

तंत्रमें इसकी भी व्यवस्था है कि, किस प्रकारके सूत्रमें जपमाला पिरोयी जाती है। गौतमीयतंत्रके मतानुसार ब्राह्मण-कन्याका हस्तनिर्मित कार्पाससूत्र ही धर्मार्थकाममोक्षप्रद होता है। शान्ति, वशीकरण, अभिचार, मोक्ष ऐश्वर्य तथा जयलाभके लिये शुक्ल, रक्त और कृष्णवर्ण पट्टसूत्र व्यवहार्य है। किन्तु दूसरे सब रंगोंसे लालसूत्र ही प्रशस्त है। सूतके तीन डोरे एकमें मिला एक एक बार प्रणव जप कर मणि ले सूतके बीच बीच गूंटना और ब्रह्मग्रन्थि देना चाहिये। माला बन जाने पर उसका संस्कार करना पड़ता है। नव अश्वत्थपत्र पद्माकारमें रख कर बीज उच्चारणपूर्वक उसमें माला स्थापन करते हैं। फिर परिष्कृत जल और पञ्चगव्य द्वारा शोधन किया जाता है। उस समय पढ़नेका मन्त्र यह है—

"ओं सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः।
भवेऽभवेऽनादिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः॥"

वामदेव मन्त्रपाठ पूर्वक जपमालाको चन्दन, अगुरु और कर्पूरसे लेपन करना चाहिये। फिर प्रत्येक मणि शतवार जप कर शुद्ध की जाती है। उसके बाद जपमालाकी प्राणप्रतिष्ठा कर स्व स्व इष्टदेवताकी पूजा करते हैं।

रुद्रयामलके मतसे विष्णुके लिये पद्ममाला बनानी हो तो, वाग्भव तथा लक्ष्मीबीज उच्चारणपूर्वक "[illegible] मालिन्यै नमः" इससे मालाकी पूजा करनी चाहिये।

योगिनीतन्त्रमें लिखा है—मालासंस्कार कर देवताभावके सिवाय १०८ बार होम किया जाता है। होम करनेमें अपारक होने पर द्विगुण अर्थात् प्रत्येक मन्त्रमें दो सौ बार जप करते हैं। जपके समय कम्पन होनेसे सिद्धि हानि, करभ्रष्ट होनेसे विनाश और सूत्र टूटनेसे मृत्यु होती है। जप करनेके बाद मालाको कर्णदेश या उससे ऊंची जगह रखना चाहिये।

निम्नलिखित मंत्रसे मालाकी पूजा कर यत्नपूर्वक छिपा रखते हैं—

"ॐ माले सर्वभूतानां सर्वसिद्धिप्रदा मता।
तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते॥"

रुद्रयामलके मतानुसार जिस मालाकी मन्त्र द्वारा यथाविधि प्रतिष्ठा नहीं होती, वह कोई भी फल नहीं देती। इस प्रकारकी अप्रतिष्ठित मालासे जप करने पर देवताको भी क्रोध आता है।

आजकल बहुतसे पण्डित नीलतन्त्रका वचन उद्धृत कर कहते हैं—विषयी गृहस्थ भोजन, गमन, दान और गृहकर्ममें लगे रहते भी सर्वदा सर्वस्थान पर माला फेर सकते हैं। वैसे स्थल पर स्फाटिकी या अस्थिमयी माला धारण करना न चाहिये—रुद्राक्ष, पुत्रजीव, रक्तचन्दनबीज, प्रवाल, शङ्ख और तुलसीकी माला ही प्रशस्त है। किन्तु यह प्रमाण नीलतन्त्र वा बृहन्नीलतन्त्र प्रभृति ग्रंथोंमें नहीं मिलता। वरं गायत्रीतंत्रमें लिखा है—राह चलते चलते माला द्वारा जप करना न चाहिये, उससे हानि होती और जपकारी सर्पयोनि पाता है। किन्तु राहमें करमालाका जप कर सकते हैं। इस प्रकारके विरोधसे मालूम पड़ता है कि जप करनेवाले गमन कालमें भी करमाला वा पर्वसन्धि द्वारा मंत्र जप

कर सकते थे, किन्तु उस मालाने वैसा करनेका विधान न था। परवर्ती कालमें रुद्राक्ष आदिकी बनी माला जो कामाख्य मानी गयी। तदवधि सर्वत्र जपमालाकी व्यवस्था हुई है।

(योगिनीतन्त्र ७म पटल, मातृकाभेदतन्त्र १७ पटल, मुण्डमालातन्त्र ५म पटल वर्णविलासतन्त्र जपमाल पटल और पुराण प्रभृति ग्रन्थोंमें भी जपमालाका विवरण दिया हुआ है)

हिन्दू मुसलमान जैन, बौद्ध और ईसाई सभी जप मालाका व्यवहार करते हैं। मुसलमानोंकी तसबीमें १०० गुरिया होती हैं। जपकालमें वह अल्ला (परमेश्वर) के १०० नाम लेते हैं। जैनोंकी जपमालामें कुल १११ मोती होते हैं जिनमें १०८ पर तो "णमो अरिहन्ताणं" आदि मन्त्र जपा जाता है और अवशिष्ट ३ पर "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः" जपते हैं। ब्रह्मदेशके बौद्धोंकी मालामें १०८ गुटिका रहती हैं। हिन्दू लोग जपकालमें कभी कभी गोमुखी व्यवहार करते हैं। इसका अच्छा भाव है। यहूदी और पुराने ईसाई माला फिरते थे या नहीं ईसाइयोंमें सिर्फ रोमन कैथलिक तसबी इस्तेमाल करते हैं। उनकी तसबी पुष्पोंसे बनती है। मुसलमान योगियोंकी तसबी रखते हैं। वह कन्दाहारमें बहुत अच्छी बनायी जाती है।

भारतवासियोंमें अष्टोत्तर शत जप करनेमें १०८ गुटिकाकी माला प्रयुक्त करते हैं। किन्तु उससे अधिक या न्यून न न्यून जपमें ५० गुटिकाकी जो माला प्रशस्त है। मालाको मन्त्र आदिसे शोधन कर जप करना चाहिये। कारण उसको शोध कर जप करनेसे मन्त्रसिद्धि नहीं होती।

जपयज्ञ (सं॰ पु॰) जप एव यज्ञः। जपरूप यज्ञ। इसके तीन भेद हैं—वाचिक उपांशु और मानस। जप देखो।

जपस्थान (सं॰ क्ली॰) जपसाधन स्थान, वह स्थान जहां जप किया जाता हो। जप देखो।

जपहोम (सं॰ पु॰) जपयज्ञ।

"जपोहैतेर्जुहोति सायम्प्रातः" (मनु १०।१११)

जपा (सं॰ स्त्री॰) जप अच् टाप्। १ जवापुष्प वृक्ष, अड़हुलका पेड़। २ जवापुष्प जवा, अड़हुल।

जपाकुसुमसन्निभ (सं॰ क्ली॰) सिन्दूर।

जपापुष्प (सं॰ क्ली॰) जवा अड़हुल।

जपाप्रसून (सं॰ क्ली॰) जपापुष्प अड़हुलका फूल।

जपिन् (सं॰ त्रि॰) जप इनि। जपकारी, जप करने वाला।

जप्त (सं॰ त्रि॰) जप क्त। जो जप किया गया हो।

जफ (हिं॰ पु॰) जप्य देखो।

जप्तव्य (सं॰ त्रि॰) जप-तव्य। जपनीय जो जपने योग्य हो।

जप्य (सं॰ पु॰) जप-ण्यत्। १ जपका मन्त्र। (त्रि॰) २ जपनीय, जपने योग्य।

जप्येश्वर (सं॰ क्ली॰) एक प्रसिद्ध सिद्धपीठ। (कूर्मपुराण)

जफा (फा॰ स्त्री॰) सख्ती, अन्याय और अत्याचारपूर्ण व्यवहार।

जफाकश (फा॰ वि॰) १ सहिष्णु, सहनशील। २ परिश्रमी मेहनती।

जफीर (हिं॰ स्त्री॰) जफील देखो।

जफीरी (अ॰ स्त्री॰) मिस्र देशमें होनेवाली एक प्रकारकी कपास।

जफील (अ॰ स्त्री॰) १ सीटीका शब्द। यह शब्द कबूतर बाज कबूतर उड़ानेके समय अपनी दो अंगुलियोंको मुंहमें रख कर करते हैं। २ सीटी, वह जिससे सीटी बजाई जाय।

जब (हिं॰ क्रि॰ वि॰) जिस समय, जिस वक्त।

जबड़ा (हिं॰ पु॰) गालके भीतरका अंश, कल्ला।

जबड़ी (हिं॰ स्त्री॰) बहेलखण्डमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

जबर (फा॰ वि॰) १ शक्तिमान् बली, ताकतवर। २ दृढ़, मजबूत।

जबरजद (फा॰ पु॰) पीले रंगका एक प्रकारका पन्ना।

जबरदस्त (फा॰ वि॰) शक्तिमान्।

जबरदस्ती (फा॰ स्त्री॰) १ अत्याचार, सीनाजोरी। (क्रि॰ वि॰) २ बलपूर्वक, दबाव डाल कर।

जबरन् (फा॰ क्रि॰ वि॰) बलपूर्वक इच्छाके विरुद्ध बलात्।

जबरा (हिं॰ वि॰) १ शक्तिमान्, बली, जबरदस्त। (पु॰)

२ एक प्रकारका अनाज रखनेका बड़ा बरतन। ३ एक प्रकारका मटमैले रंगका जानवर। यह घोड़े और गदहेके जैसा होता है। इसके सारे शरीर पर लंबी लंबी सुन्दर और काली धारियां होती हैं। इसके कान बड़े, गरदन छोटी और पूंछ गुच्छेदार होती है। यह एक चपल, जङ्गली और तेज़ दौड़नेवाला जन्तु है। दक्षिण अफ्रिकाके जंगलोंमें और पहाड़ोंमें इसके झुंडके झुंड पाये जाते हैं। यह बहुत कठिनतासे पकड़ा या पाला जाता है। यह प्रायः एकान्त स्थानमें ही रहना पसन्द करता है। मनुष्यों आदिकी आहट पा कर यह शीघ्र भाग जाता है। देखो जेब्रा।

जबरिया भील—मध्यभारतके अन्तर्गत भूपाल एजेन्सीके अधीन एक जागीर। जिस समय मालव प्रदेशका बन्दोबस्त हुआ था, उस समय पिण्डारी-सर्दार पाजूके भाई राजनखांको खिल्चियानगर, कांजरी और जबरियाभील इन तीन गांवोंकी जागीर मिली थी। राजनखांकी मृत्युके बाद, अंग्रेजोंने उनके पांच पुत्रोंको यह जागीर बांट दी थी। राजा वसलको जबरियाभील और जबरी प्राप्त हुआ था। १८७४ ई०में राजा वसलकी मृत्युके बाद उनके पुत्र जमाल खान इसके उत्तराधिकारी हुए थे।

जबरेस बन्दीजन—हिन्दीके एक कवि। ये रीवां नरेश-की सभामें रहते थे।

जबलपुर—१ मध्यप्रान्तका उत्तर डिविजन। यह अक्षा० २१° २६´ एवं २४° २७´ उ० और देशा० ७८° ४´ तथा ८१° ४५´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १८९५० वर्गमील है। इसमें ५ जिले लगते हैं। सागर, दमोह, जबलपुर, मण्डला और सिवनी। भूमि पार्वत्य और जलवायु अनुकूल है। लोकसंख्या कोई २०८१४८९ होगी। इस विभाग ११ नगर और ८५६१ गांव बसे हैं।

२ मध्यप्रान्तके जबलपुर डिविजनका जिला। यह अक्षा० २२° ४९´ एवं २४° ८´ उ० और देशा० ७९° २१´ तथा ८०° ५८´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ३९१२ वर्गमील है। इसके उत्तर तथा पूर्व मैहर, पन्ना एवं रीवां राज्य, पश्चिम दमोह जिला और दक्षिण नरसिंह-पुर, सिवनी तथा मण्डला पड़ता है। दक्षिण-पूर्वमें नर्मदा नदी आ गई है। इसने जिलेके उत्तर-पश्चिम विन्ध्य पर्वत और दक्षिण पश्चिम भानरेर पर्वतश्रेणी है। कहीं कहीं जङ्गल दिखता है। पत्थर भी कई प्रकारका होता है। स्लीमानाबाद, सांसा और सीहोरा प्रसिद्ध है। तालाब और बगीचे बहुत लगते हैं। जलवायु सुखद है।

पहले यहां गोंड़वंशी राजपूतोंका राज्य था। सम्भवतः १२वीं शताब्दीमें यहां पर हैहयवंशका पतन होने पर इनका बल बढ़ा। कोई १६वीं शताब्दीमें संग्राम गोंड़ (गढ़मण्डल) प्रबल राजा हुआ। १७८१ ई०में गोंड़ राजाके पराभूत होने पर जबलपुर मराठोंके शासनमें आया था। १८०८ ई०में यह सागरके भोंसला राजाओंको दिया गया और १८१८ ई०में ब्रिटिश गवर्नमेण्टने पाया।

जबलपुर जिलेकी लोकसंख्या प्रायः ६८०५८१ है। इसमें ६ नगर और २२१८ ग्राम बसे हैं। ब्राह्मणोंकी संख्या ज़्यादा है। यहां बहुत अच्छे मर्द होते। कहीं लोहेकी कई खानें हैं। इसे भट्टियोंमें गला गला कर २५) मन बिकते हैं। कोयला पत्थर भी मिलता है। पत्थरके गहने बनाते हैं। पहले यहां कपड़ा बहुत बुना जाता था। लोगोंकी रङ्गीन साड़ियां आज भी शौकसे बुनते हैं। गेहूं और तेलहन-की बड़ी रफ्तनी है। सन, घी और अलसी भी बाहर भेजा जाता है। बम्बईसे कलकत्ताको जाने वाली बड़ी रेलवे लाइन जिलेके बीचसे निकलती और ८१ मील लम्बी पड़ती है। सिवा इसके ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे और बङ्गाल नागपुर रेलवे भी है। १०८ मील पक्की और ३०१ मील कच्ची सड़क लगी है। मालगुजारी कोई ८०७०००) रु० है।

३ मध्यप्रदेशके जबलपुर जिलेकी दक्षिण तहसील। यह अक्षा० २२° ४९´ उ० तथा २३° ३२´ और देशा० ७९° २१´ एवं ८०° १६´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १५११ वर्ग मील और लोकसंख्या प्रायः ३३२४८९ है। इसमें एक नगर और १००६ गांव बसे हैं। मालगुजारी ४५४०००) और सेस ५१०००) रु० है।

४ मध्यप्रदेशके जबलपुर डिविजन, जिले और तहसील-का सदर। यह अक्षा० २३° १०´ उ० और देशा० ७९°

५० पू०में अवस्थित है। ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला और ईष्ट इण्डियन दोनों रेलें यहां आ कर मिली हैं। नगरकी चारों ओर छोटे छोटे पहाड़ हैं। नर्मदा ६ मील दूर पड़ती है। सड़कें चौड़ी और अच्छी हैं। आस पास बहुतसे तालाब और बाग बन गये हैं। यह नगर समुद्रपृष्ठसे १३०६ फुट ऊंचा है। जलवायु शीतल है। जनसंख्या कोई ८०३१६ होगी। १७८१ ई०को मराठोंने जबलपुर अपना सदर बनाया। किसी प्राचीन ताम्रफलकमें इसका नाम जाबालिपत्तन लिखा है। १८६४ ई०में म्युनिसपालिटी हुई और १८८३ ई०को पानीकी कल लगी। १८६१ ई० में यह सदर बना था। छावनीकी आबादी १३११० है। १९०४ ई०में तोपगाड़ीका कारखाना खुला (Gun-carriage factory)

यहां व्यवसाय और वाणिज्यका प्राधान्य है। कपास ओटने कपड़ा बुनने आदिके मिल हैं। मट्टीके बर्तनों, दर्रे, टेंट और पाटेकी दर्रें बनती हैं। ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवेका कारखाना है। कपड़ा बुनने, पीतलका सामान बनाने और पत्थर काटनेका काम खासा भी होता है। पत्थरकी कई चीजें जैसे मूर्तियां, बटन दूसरे गहने आदि बनती हैं। अंगरेजी, हिन्दी और उर्दूके छापेखाने हैं। अंगरेजी और हिन्दी अखबार निकलते हैं।

यह केवल जिलेका ही नहीं, वरन् कमिश्नर डिविजन, अंगरेजोंके कमसरियेट सुपरिण्टेण्डिङ्ग इञ्जीनियर आबपाशीके इञ्जीनियर, टेलीग्राफके सुपरिण्टेण्डेण्ट और स्कूलोंके इन्सपेक्टरका भी सदर है।

जबर (फा० पु०) हिंसा, ताकत।

जबरा (हि० पु०) साहस, हिम्मत, जीवट।

जबीं (फा० स्त्री०) जबीन देखो।

जबान (फा० स्त्री०) १ जिह्वा जीभ। २ शब्द, बात, बोल। ३ प्रतिज्ञा, वादा, कौल। ४ भाषा, बोल चाल।

जबानदराज (फा० वि०) १ जो बहुत धृष्टतासे अनुचित बातें करता हो। २ जो अपनी झूठी बड़ाई करता हो, सेखी या डींग हांकनेवाला।

जबानदराजी (फा० स्त्री०) धृष्टता, ढिठाई गुस्ताखी।

जबानबन्दी (फा० स्त्री०) १ लिखा आमिलाना इजहार। २ मौन चुप्पी।

जबानी (हि० वि०) मौखिक जो सिर्फ जबानसे कहा जाय।

जबाला (स० स्त्री०) सत्यकाम ऋषिकी माता। "सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयाञ्चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति।" (छान्दोग्य उ०) सत्य कामने ब्रह्मचर्य व्रत अवलम्बन करनेके लिए मातासे अपना गोत्र पूछा। जबालाने उत्तर दिया— 'मैंने यौवन अवस्थामें बहुतोंकी परिचर्या कर तुम्हें पाया है इसलिए तुम किस गोत्रके हो, सो मुझे नहीं मालूम—तुम्हें मेरे नामानुसार 'जाबाल' नाम ग्रहण करना चाहिये।"

जबून (तु० वि०) निकृष्ट, बुरा, खराब, निकम्मा।

जब्त (अ० पु०) १ अधिकारी या राज्य द्वारा दण्ड स्वरूप किसी अपराधीकी सम्पत्तिका हरण। २ कोई वस्तु किसी दूसरेके अधिकारसे ले लेना।

जब्ती (अ० स्त्री०) जब्त।

जब्बरखाद—सिपाराकी शाखा अखिलनदीकी एक उप नदी। इसके किनारे नूरपुर नगर अवस्थित है।

जब्र (अ० पु०) कठोर व्यवहार, सख्ती, ज्यादती।

जब्रन (अ० क्रि० वि०) बलात्, बलपूर्वक, जबरदस्तीसे।

जभन (स० स्त्री०) जभ-ल्युट्। १ मैथुन स्त्रीप्रसङ्ग। २ मैथुन द्वारा धर्षण।

जम्भ (स० पु०) जभ अच्। गन्नेका अनिष्टकारी कीट एक प्रकारका कीड़ा जो धानको नुकसान पहुंचाता है।

जम (हि० पु०) यम देखो।

जमई (फा० वि०) जमा सम्बन्धी, जो जमा हो, नगद।

जमक (हि० पु०) यमक देखो।

जमका—बम्बई प्रान्तमें काठियावाड़का एक छोटा देशी राज्य। क्षेत्रफल कसीसे ज्यादा है। सालाना आय दसो (१५०००) रु० है, जिसमेंसे (८१) रु० गायकवाड़को करस्वरूप देना पड़ता है।

जमखण्डी—१ बम्बई प्रान्तके कोल्हापुर तथा दक्षिण मराठा देशकी पोलिटिकल एजेंसीका एक राज्य। यह अक्षा० १६°२५´ तथा १६°४० उ० और देशा० ७५°० एवं ७५°२० पू०के मध्य अवस्थित है। पेशवाने पटवर्धन वंशके किसी व्यक्तिको यह राज्य प्रदान किया था। १८०८ ई०को यह दो भागोंमें विभक्त हुआ। उसमें एक

भाग उत्तराधिकारीके अभावमें अंगरेजी राज्यमें मिल गया। इसका वर्तमान क्षेत्रफल ५२४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १०५३४७ है। इसमें ८ नगर और ७८ ग्राम हैं। यहां एक मृदु प्रस्तर पाया जाता है। मोटा सूती कपड़ा और कम्बल बनाते हैं। राजा ब्राह्मण हैं और दक्षिण महाराष्ट्र प्रदेशमें प्रथम श्रेणीके सरदार समझे जाते हैं उन्हें गोद लेनेकी सनद मिली है। आय प्रायः ५॥ लाख है। इसमें ६ म्युनिसपालिटियां हैं।

२ बम्बई प्रान्तके जमखण्डी राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० १६° ३०´ उ० और देशा० ७५° २२´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १३०२६ है। यहां ५०० करघे चलते हैं। रेशमी कपड़ेकी भी बड़ी तिजारत है। प्रति वर्ष ६ दिन तक उमारामेश्वरका मेला लगा रहता है।

जमघट (हिं० पु०) मनुष्योंकी भीड़, ठट्ट, जमावड़ा।

जमज (सं० वि०) यमज-जुड़वां। यमज, यमजात।

जमजोहरा (हिं० पु०) जाड़ेके दिनोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका पक्षी। यह उत्तरपश्चिममें पाया जाता है। गरम ऋतु आने पर यह फारस और तुर्किस्तानको चला जाता है। इसकी लम्बाई लगभग एक बालिश्तकी होती है। जैसे जैसे ऋतु बदलती जाती है वैसे वैसे इसके शरीरका रंग भी बदला जाता है।

जमडाढ (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका अस्त्र। यह कटारीकी तरह होता है। इसकी नोक बहुत तेज और आगेकी ओर झुकी रहती है। समय आने पर इसे शत्रुके शरीरमें भोंकते हैं, जमधर।

जमदग्नि (सं० पु०) एक वैदिक ऋषि। ऋक्, यजुः, साम, अथर्व आदि सभी वेदोंमें इसका परिचय मिलता है। (ऋक् ३।६२।१८, शुक्लयजु ३।६२, अथर्व ४।२९।३) सर्वानुक्रमणिकाके मतसे—इन्होंने बहुतसे ऋक् प्रकट किये थे। आश्वलायनश्रौतसूत्रमें भृगुवंशीय बतलाये गये हैं। (आश्व० श्रौ० १२।१०) ऋग्वेदके बहुतसे मन्त्रोंमें विश्वामित्रके साथ ये भी वशिष्ठके विपक्षरूपमें वर्णित हुए हैं। (ऋक १०।१६७।४, ७।१०४।३) और ऐतरेय ब्राह्मणमें (७।१६) यह लिखा है कि, नरमेध यज्ञके समय विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु और वशिष्ठ ब्रह्म पद पर नियुक्त थे। महाभारत हरिवंश, विष्णुपुराण आदिसे जमदग्निका इस प्रकार परिचय मिला है—

ये महर्षि ऋचीकके पुत्र थे। ऋचीक देखो। ये कान्यकुब्जराजकी कन्या सत्यवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। सत्यवती पतिव्रता थीं उनके प्रति सन्तुष्ट हो कर महर्षि ऋचीकने सत्यवती और उनकी माताके लिये दो चरु बना कर कहा—"तुम ऋतुस्नान करनेके उपरान्त उदुम्बर वृक्षको आलिङ्गन कर इस चरुको, तथा तुम्हारी माता अश्वत्थ वृक्षको आलिङ्गन कर दूसरे चरुको ग्रहण करें, तो नियमसे तुम दोनों पुत्रवती हो जाओगी।" इस पर सत्यवती चरु ले कर माताके पास गई और उनसे उन्होंने सब बात खोल कर कह दी। उनकी माताने उत्कृष्ट पुत्र पानेके लिए सत्यवतीको वृक्ष और चरु बदलनेके लिए अनुरोध किया, सत्यवती माके अनुरोधको टाल न सकीं और वे भी इस बातसे सहमत हो गईं। यथासमय दोनों गर्भवती हुईं। ऋचीकने पत्नीके गर्भलक्षण देख कर कहा—'मुझे मालूम होता है कि, तुम लोगोंने चरु और वृक्ष बदल लिए हैं। मैंने चरु बनाते समय इस बातका ध्यान रक्खा था कि, जिससे तुम्हारे गर्भसे विश्वविख्यात ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण और तुम्हारी माताके गर्भसे महाबल पराक्रान्त क्षत्रिय जन्मग्रहण करे। अब उसका विपर्यय होनेसे मालूम होता है कि, तुम्हारे गर्भसे उग्रकर्मा क्षत्रिय और तुम्हारी माताके गर्भसे श्रेष्ठतम ब्राह्मणका जन्म होगा।" यह सुन कर सत्यवती बहुत ही लज्जित हुईं और पतिके पैरों पड़ कहने लगी—'मेरे प्रति प्रसन्न हों, मैं चाहती हूं कि मेरा पुत्र उग्र क्षत्रिय न हो, वरन् पौत्र क्षत्रिय हो तो कुछ क्षति नहीं।" ऋचीकने ऐसा ही मञ्जूर कर लिया। यथासमय सत्यवतीने जमदग्निको और उनकी माता (गाधिराजपत्नी) ने विश्वामित्रको प्रसव किया। पिताके प्रभावसे यद्यपि जमदग्नि क्षत्रिय न हुए, किन्तु तो भी वे सर्वदा क्षत्रियोचित शर-क्रीडामें अनुरक्त रहते थे। क्षत्र देखो। इन्होंने प्रसेनजित्-राजकन्या रेणुकाके साथ विवाह किया था, रेणुकाके गर्भसे इनके रुमण्वान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम ये पांच पुत्र जन्मे। ऋचीकके कथनानुसार परशुराम क्षत्रियधर्मा हुए थे।

एक दिन महर्षि जमदग्नि रेणुकाको व्यभिचार दोषसे दूषित जान कर रुमण्वान् आदिको मातृवध करनेके लिए आज्ञा दी, किन्तु परशुरामके सिवा कोई भी मातृवध करनेके लिए राजी न हुए, इस पर रुमण्वान् आदि दिक्पालोंसे जड़त्वको प्राप्त हुए। परशुरामने पिताका आदेश पाते ही कुठाराघातसे माताको मार डाला। इससे जमदग्निने राम पर सन्तुष्ट हो कर उनको वर मांगनेके लिए कहा। परशुरामने वर मांगा कि— मेरी माता पापमुक्त और पुनर्जीवित हो तथा मैं सबका अजेय होऊं।" इस पर जमदग्निकी कृपासे रेणुका फिर जी गई और रुमण्वान् आदिका भी जड़त्व दूर हो गया।

किसी समय हैहयराज कार्त्तवीर्यार्जुन जमदग्निके आश्रममें आये, उस समय आश्रममें जमदग्निके सिवा और कोई भी न था। इसी मौके पर हैहयराज उनकी गाय चुरा कर चलते बने। पीछे परशुराम पिताके कार्त्तवीर्यके आचरणकी बात सुन कर बहुत ही क्रुद्ध हुए और परशु द्वारा उन्होंने कार्त्तवीर्यकी सहस्र बाहु काट दीं। कार्त्तवीर्यके पुत्रोंने इसका बदला लेनेके लिए परशुरामको अनुपस्थितिमें आश्रममें जा कर जमदग्निको मार डाला। इसीलिए परशुरामने २१ बार पृथिवीको निःक्षत्रिय किया था।

जमदग्नि भी गोत्रकारक ऋषियोंमेंसे एक हैं।

"जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रात्रिगोतमाः।
वसिष्ठकश्यपागस्त्या मुनयो गोत्रकारिणः॥" (मनु)

रेणुका और परशुराम देखो।

जमधर (हिं० पु०) १ जमदाढ़ नामका हथियार। २ एक प्रकारका बादामी कागज।

जमन (सं० क्ली०) १ भोजन। २ खाद्यद्रव्य।

जमन (हिं० पु०) यवन देखो।

जमना (हिं० क्रि०) १ किसी तरल पदार्थका गाढ़ा होना। २ एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें दृढ़तापूर्वक बैठ जाना। ३ एकत्र होना, इकट्ठा होना, जमा होना। ४ अच्छा प्रहार होना, खूब चोट पड़ना। ५ घोड़ेका बहुत समय ठमक कर चलना। ६ हाथसे होनेवाले कामका पूरा पूरा अभ्यास होना। जैसे—अब तो तुम्हारा हाथ खूब जम गया है। ७ बहुतसे आदमियोंके सामने किसी कामका उत्तमतापूर्वक होना। ८ सर्वसाधारणके समक्ष रखनेवाले किसी कामका अच्छी तरह चलने योग्य हो जाना। ९ उत्पन्न होना, उपजना, उगना। (पु०) १० एक घास जो पहली वर्षाके बाद खेतोंमें उपजती है।

जमनिका (हिं० स्त्री०) १ यवनिका, परदा। २ सेवार, काई।

जमनोत्री (यमुनोत्तरी)—युक्तप्रदेशके टेहरी राज्यका मन्दिर। यह अक्षा० ३१° १' उ० और देशा० ७८° २८' पू०में यमुना नदीके उद्गमस्थलसे ८ मील नीचे अवस्थित है। जमनोत्री बन्दरपूंछ पर्वतके पश्चिम पार्श्वमें समुद्रपृष्ठसे १००११ फुट ऊंचे है। मन्दिर छोटा और काठका बना है। इसमें यमुनाकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। पास ही उष्ण जलके निर्झर हैं। प्रति वर्ष ग्रीष्म ऋतुमें तीर्थयात्री जमनोत्री जाते हैं।

जमनौता (हिं० पु०) किसी मनुष्यकी जमानत करनेके बदलेमें दी जानेवाली रकम जो जमानत करनेवालेको दी जाती है। मुसलमानी राज्यके समय इस तरहकी रकम देनेकी रिवाज चालू थी। यह रकम करीब ५) रु० सैकड़ेके हिसाबसे दी जाती थी।

जमपाल चउहाण—एक अति भाग्यवानको पालन करनेवाला दृढ़प्रतिज्ञ चाण्डाल। जैन पुराणग्रन्थोंमें इसकी कथा इस प्रकार लिखी है—

सुरम्य देशके अन्तर्गत पोदनपुर नगरमें राजा महाबल राज्य करते थे। किसी समय वहां हैजेकी बीमारी फैली और प्रजा अत्यन्त कष्ट पाने लगी। राजाको मालूम होते ही उन्होंने नगरमें मनादी करवा दी कि अष्टाह्निका (कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ शुक्ला अष्टमीसे पूर्णिमा तक पाला जानेवाला एक व्रत)-के दिनोंमें कोई भी जीवहिंसा न करे। परन्तु राजपुत्र बल कुमारको मांस खानेकी इतनी चाट पड़ गई थी कि वह अष्टाह्निकाके दिनोंमें भी न रह सका। एक बगीचेमें जा कर चुप चोरीसे उसने अपना काम किया पर तो भी एक सिपाहीने उसकी कार्रवाई देख ली। जब राजाको मालूम हुआ कि मेरे ही पुत्रने राजाज्ञाकी परवाह न कर एक मेढ़ेकी हत्या की है, तब कोतवालको बुला

कर उन्होंने कहा—"इस पापोंने एक तो जीवहतता को और दूसरे मेरी आज्ञा नहीं मानी, इसलिए उसको फाँसीका दण्ड दिया जाय।" बलकुमार तुरन्त ही पकड़ा गया। उस दिन चतुर्दशी थी, तो भी वह फाँसीके स्थान पर पहुंचाया गया। उधर जमपालको बुलानेके लिए सिपाही दौड़ा गया।

जमपालने चण्डाल हो कर भी मुनिके समक्ष यह प्रतिज्ञा की थी कि, "चतुर्दशीके दिन मैं जीव हिंसा न करूंगा।" इसलिए वह दूसरे ही सिपाहीको आते देख घरमें छिप गया और स्त्रीसे उसने कह दिया कि "सिपाही अगर मुझे ढूंढे तो कह देना कि वे दूसरे गांव गये हैं।" स्त्रीने ऐसा ही किया। सिपाही कहने लगा—"यदि आज वह घर होता तो उसे राजपुत्रके सब गहने और कपड़े मिलते।" चाण्डालकी स्त्री ठहरी, उससे अपना लोभ न सम्हलाया गया। वह हाथसे तो पतिकी ओर इशारा करती रही और मुंहसे कहती गई की 'वे तो गावको गये हैं।' सिपाही समझ गया। उसने घरमें घुस कर चण्डालको पकड़ लिया। जमपालने कहा, "आज चतुर्दशी है, मैं जीवहिंसा नहीं करूंगा।" आखिर सिपाही उसे राजके पास ले गया।

राजा तो बलकुमार पर क्रुद्ध थे ही, दूसरे चण्डालका उत्तर सुन कर और भी आगबबूला हो उठे। उन्होंने आदेश दिया कि, "इन दोनोंको समुद्रमें डाल दो, जिससे मगर मच्छोंका पेट भरे।" राजाज्ञा कार्यमें परिणत हुई। दोनोंको एकत्र बांध कर समुद्रमें डाल दिया गया। परन्तु जमपालके पुण्यके प्रभावसे जलदेवताने उसकी रक्षा की, साथ ही राजपुत्रको जान बच गई। जलदेवताने मणिमण्डित नौकामें रत्नजड़ित सिंहासन पर जमपाल चाण्डालको बिठाया और राजपुत्रके द्वारा उस पर चमर ढराया। ऊपरसे अन्य देवगण "अहिंसाव्रतको धन्य है" कहते हुए पुष्पवृष्टि करने लगे। यह देख सब चकित हुए और राजा भी चाण्डालकी प्रशंसा करने लगे। चाण्डालका हृदय भी धर्मरसमें गोते लगाने लगा। उसने अपना पेशा छोड़ दिया। वह सम्यक्त्व सहित पञ्चअणुव्रत और सप्तशीलव्रत धारणके श्रावक हो गया। अहिंसाव्रतका प्रभाव देख कर नगरवासी स्त्री पुरुषोंने भी अहिंसा आदि पांच अणुव्रत धारण किये। जैन शास्त्रोंमें अहिंसाव्रतके प्रभाव दिखानेके लिए यत्र तत्र जमपाल चाण्डालको कथाका उल्लेख मिलता है।

जमर—बम्बई प्रान्तमें काठियावाड़का एक क्षुद्र राज्य। लोकसंख्या प्रायः तोन सौ है और वार्षिक आमदनी ३८६०) रु० है। इसमेंसे ब्रटिश गवर्मेण्टको ४६४) रु० कर स्वरूप देना पड़ता है।

जमरूद (हिं० पु०) एक प्रकारका फल।

जमरूद—उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेशके पेशावर जिलेके उस ओर एक किला और छावनी। यह अक्षा० ३४° ६' उ० और देशा० ७१° २३' पू०में खैबर घाटीके मुहाने पर पेशावरसे १०½ मील पश्चिम पड़ता है। लोकसंख्या प्रायः १८४८ है। १८३६ ई०में पेशावरके सिख सरदार हरिसिंहने यहां किलाबन्दी की थी। आजकल यहां खैबर राइफल्स फौज रहती है और चुङ्गी वसूल होती है। जमरूदमें एक बड़ी सराय है। पेशावरको नार्थ वेष्टर्न रेलवेकी एक शाखा लगी है।

जमवट (हिं० स्त्री०) लकड़ीका गोल चक्कर। यह पहिएके आकारका होता है और कुआं बनानेमें भगाड़में रखा जाता है। इसके ऊपर कोठीकी जोड़ाई होती है।

जमशेद—१ पारस्य देशके प्रसिद्ध पिशदादवंशीय ४र्थ नरपति। वेलि आदिके मतसे ये ईसाके जन्मसे तीन हजार वर्ष पहले जन्मे थे, किन्तु वर्त्तमान ऐतिहासिकोंका विश्वास है कि, ये ईसासे ८०० वर्ष पहले मौजूद थे। इन्होंने प्रसिद्ध पार्शिपोलिस नगरीकी स्थापना की थी, जो अब भी इस्तर और तख्त जमशेदके नामसे प्रसिद्ध हैं।

इन्हीं जमशेदसे पारस्यमें सौर वर्ष प्रारम्भ हुआ है। सूर्य मेषराशिमें जिस दिन प्रवेश करता है, उसी दिनसे यह वर्ष प्रारम्भ होता है। इस नव वर्षके उपलक्षमें महा उत्सव होता था।

फर्दौसिके शाहनामेमें लिखा है—इन्हीं जमशेदके समयसे ही मानव जातिमें सभ्यताका प्रचार हुआ है। सिरीयराज जुहाकने इनका राज्य आक्रमण किया था। दुर्भाग्यवश जमशेद रणमें पीठ दिखा कर सीसस्तान,

भारत, चीन आदि नाना देशोंमें भागते फिरे। हुमायूंके कर्मचारियोंने भी इनका पीछा न छोड़ा, आखिरकार ये कैद कर लिए गये। कैदी अवस्थामें इनको सिरीयराजके पास भेजा गया। अन्तमें सिरीयराजके आदेशानुसार इन्हें दो भालोंके बीच रख कर मार दिया गया। विख्यात पार्सिपोलिस् नगरमें पत्थरके ऊपर जो राज समाजका चित्र खुदा हुआ है, वह बहुतोंके मतसे जमशेदके नौरोज उत्सवका ज्ञापक है। जमशेदके विषयमें पारस्यमें नाना प्रकारके अलौकिक उपाख्यान प्रचलित हैं।

२ मुसलमान लोग ईमिदके पुत्र सुलेमानको भी जमशेद कहा करते हैं।

जमशेद कुतुब शाह—गोलकुण्डाधिपति कुलि कुतुबशाहके पुत्र। पिताकी मृत्युके उपरान्त १५४० ई०के सितम्बर मासमें ये सिंहासन पर बैठे थे। १५५० ई०में इनकी मृत्यु हुई थी।

जमशेदी—भारतके पश्चिम प्रान्तमें मुर्घब नदीके किनारे रहनेवाली पारसियोंकी एक जाति। ये लोग अपनेको पारस्यराज जमशेदसे उत्पन्न बताते हैं। इनका आचार व्यवहार और रीति-नीति तुर्कोंके समान है। ये एक जगह रहना पसन्द नहीं करते। अफगानोंने इन लोगोंको पारस्यसे भगा दिया था। ये खिवामें जा कर ११ वर्ष रहे, पीछे तुर्कियोंके अभ्युदयके समय ये फिर अपनी पैतृक जन्मभूमि मुर्घबमें चले आये।

ये लोग तातारोंकी तरह चरकच्छेके ऊपर कम्बल घेर कर तिरछा तम्बू बना कर रहते हैं। इनका पहनावा और खान पान सब तुर्कोंके जैसा है। ये घोड़े पर सवार होने और युद्ध करनेमें बड़े चतुर होते हैं। ये आदमी पकड़नेके काममें बड़े निपुण हैं। अब भी ये लोग प्राचीन पारसियोंकी तरह अग्निपूजा करते और पूजा द्वारे बनाते हैं।

जमा (अ० वि०) १ एकत्र इकट्ठा। २ जो अमानतके तौर पर या किसी कामसे रखा गया हो। (स्त्री०) ३ मूलधन पूंजी। ४ धन, रुपया पैसा। ५ भूमिकर, मालगुजारी, लगान। ६ सङ्कलन, जोड़। ७ बही आदिका वह हिस्सा जिसमें आय हुए माल या धन आदिका ब्योरा लिखा हो।

जमाई (हि० पु०) १ जामाता, दामाद, जँवाई। (स्त्री०) २ जमनेकी क्रिया। ३ जमनेका भाव। ४ जमानेकी क्रिया। ५ जमानेका भाव। ६ जमानेकी मजदूरी।

जमाखर्च (फा० पु०) आय और व्यय, आमद और खर्च।

जमाजथा (हि० स्त्री०) धन सम्पत्ति नगदी और माल।

जमात (अ० जमाअत स्त्री०) १ श्रेणी कक्षा, दरजा। २ बहुतसे मनुष्योंका समूह या गरोह।

जमात—बहुतसे संन्यासी मिल कर जो एक जगह रहते या तीर्थ पर्यटन करते हैं, उस दलको जमात कहते हैं। इसमें कार्यनिर्वाहके लिए महन्त, पुजारी कोठारी भण्डारी, कारबारी हिसाबी, कोतवाल, चौकीदार और तुरहीवाला आदि कर्मचारी नियुक्त रहते हैं। इनमेंसे महन्त समस्त विषयोंमें अध्यक्षका काम करते हैं। पुजारी विधिके अनुसार दत्तात्रेयकी चरण-पादुकाकी पूजा करते हैं। कोठारी खाने-पीनेकी चीजोंको सम्हालते हैं। पाचकको भण्डारी कहते हैं, उनके ऊपर रांधने और परोसनेका भार रहता है। कारबारी अर्थात् कोषाध्यक्ष जमातके धनकी रक्षा करते हैं तथा आवश्यकतानुसार खर्चके लिए रुपया पैसा दिया करते हैं। हिसाबी रुपयों का हिसाब रखते हैं। कोतवाल महन्तको आज्ञाके अनुसार कर्मचारियोंको नियुक्त करते और उनके कामकी देखभाल रखते हैं। चौकीदार जमातके तम्बू निशान, झंडा आदि चीजोंकी रखवाली करते हैं। तुरहीवाले तुरही बजा कर जमातका गौरव बढ़ाते हैं। इन समस्त कार्योंमें सिर्फ संन्यासी ही नियुक्त किये जाते हैं। कभी कभी योगी परमहंस आदि अन्यान्य शैव उदासीन भी इस दलमें शामिल हो उसकी पुष्टि किया करते हैं।

हरिद्वार, प्रयाग, उज्जयिनी गोदावरी आदि तीर्थ स्थानोंमें कभी कभी बहुतसे जमात इकट्ठे हुआ करते हैं। बड़ोदा, नासिक आदि स्थानोंमें बड़े बड़े जमात हैं। उस अञ्चलके हिन्दू राजा उनके आनुकूल्य रखते हैं।

जमातके किसी भी संन्यासीकी मृत्यु होने पर, वे उनकी दाह क्रिया नहीं करते, बल्कि मिट्टीमें गाड़ देते या पानीमें बहा देते हैं। इसको भूसमाधि या जलसमाधि कहते हैं। इसके उपरान्त तीसरे दिन उनके बदलेमें रोटभोग (घी, शक्कर और चीनी मिश्रित एक

प्रकारका चूर्ण पदार्थ) दिया जाता है तथा तेरहवें दिन पङ्गत और गङ्गढाल नामकी क्रिया की जाती है। रोठ-भोग और पङ्गत दिनमें, तथा गङ्गढाल रातमें किया जाता है। गङ्गढालमें खर्च ज्यादा होता है, इसलिए गङ्गढाल-क्रिया सबके लिए नहीं होती। सिर्फ ज्योत्मार्गानुसारी संन्यासियोंके लिए ही गङ्गढाल-क्रिया की जाती है, दूसरोंके लिए नहीं। मृत व्यक्तिके कोई शिष्य या अनुशिष्य कुशपुत्तल बना कर गङ्गढाल क्रियाका अनुष्ठान करते हैं तथा क्रिया-भूमिस्थ अन्यान्य संन्यासी मंत्रोच्चारण पूर्वक उस पुत्तलके ऊपर जलसेचन करते हैं।

जमातखाना—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत पूना शहरमें अट्टोसवारी-पेंठमें इस्माइली मतावलम्बी शिया मुसल-मानोंका एक सुवृहत् उपासना-गृह। १७३० ई०में यह चन्दा उगाहकर बनवाया गया।

जमादार—१ विहार प्रान्तको नुनिया जातिके चौमान विभागकी एक श्रेणी। २ देशीय सेनाविभागका एक कर्मचारी, इसका पद सूबेदारसे नीचे होता है। ३ पुलिसका एक कर्मचारी, इसका पद दरोगासे नीचे और हेड कानष्टेबलके ऊपर होता है। ४ शुल्क और अन्यान्य विभागका कोई एक कर्मचारी। ५ किसी किसी धनी गृहस्थके घरका कोई एक कर्मचारी, जो निम्नश्रेणी-के नौकरों पर कर्तृत्व चलाता और असबाबको देख रेख करता है। ६ कुछ लोगोंका अधिनायक। ७ प्रेस या छापेखानेका वह कर्मचारी, जो फर्मा कसने और कागज छापने आदिका काम करता है।

जमादारी (अ० स्त्री०) १ जमादारका पद। २ जमा-दारका काम।

जमानत (अ० स्त्री०) जामिनी, वह उत्तरदायित्व जो किसी अपराधी मनुष्यके ठीक समय पर अदालतमें हाजिर होने, किसी कर्जदारके कर्ज अदा करने अथवा ऐसी तरहके किसी और कामके लिए अपने ऊपर ली जाती है, वह जिम्मेदारी जो जबानी किसी कागज पर लिख कर या कुछ रुपये जमा करके ली जाती है।

जमानतनामा (हिं० पु०) वह कागज जो जमानत करनेवाला जमानतके प्रमाण-स्वरूप लिख देता है।

जमानती (हिं० पु०) वह जो जमानत करता हो, जमानत करनेवाला।

जमाना (हिं० क्रि०) १ किसी तरल पदार्थको गाढ़ा करना। २ एक पदार्थको दूसरे पदार्थमें मजबूतीसे बैठा देना। ३ प्रहार करना, चोट लगाना। ४ घोड़ेको ठुमक ठुमककी चालसे चलाना। ५ हाथसे होनेवाले कामका अभ्यास करना। ६ बहुतसे आदमियोंके सामने होनेवाला किसी कामका बहुत उत्तमतापूर्वक करना। ७ सर्वसाधारणसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी कामको उत्तमता पूर्वक चलाने योग्य बनाना। ८ उत्पन्न करना, उपजाना।

ज़माना (फा० पु०) १ काल, समय, वक्त। २ बहुत अधिक समय, मुद्दत। ३ सौभाग्यका समय, एकबालके दिन। ४ संसार, दुनिया, जगत्।

ज़मानासाज़ (फा० वि०) जो अपना मतलब साधनेके लिये दूसरोंको प्रसन्न रखता हो।

ज़मानासाजी (फा० स्त्री०) अपना मतलब साधनेके लिये दूसरोंको प्रसन्न रखनेका काम।

जमाबन्दो—पटवारोके वह कागजात जिन पर आसा-मियोंके नाम और उनसे आई हुई लगानको रकमें लिखो जाती है। मध्यप्रदेशमें—गवर्मेण्टके प्राप्य राजस्व अथवा प्रजाओंको मालगुजारोको तथा जुतो हुई जमोनको विवरण-तालिकाको जमाबन्दी कहते हैं। मन्द्राज और महिसुर प्रान्तमें प्रजाके साथ राजस्वके वार्षिक बन्दोवस्त करनेको जमाबन्दी कहते हैं।

कोड़ग प्रदेशमें जमीनका कर निर्द्धारित करके जो वार्षिक बन्दोवस्त किया जाता है, उसे जमाबन्दो कहते हैं। बम्बई प्रान्तमें—किसो जमींदारो ग्राम वा जिलेका निर्द्धारित राजस्वका बन्दोवस्त, उसकी मालगुजारी और जुतो हुई जमीनको विवरण-तालिका अथवा प्रजाके साथ गवर्मेण्टके प्राप्य राजस्वके बन्दोवस्तको जमाबन्दो कहते हैं।

जमामसजिद - जुम्मामसजिद देखो।

जमामार (हिं० वि०) जो अनुचित रूपसे दूसरोंका धन दबा रखता है।

जमाल—हिन्दीके एक कवि।

जमाल उद्दोन्—हिन्दीके एक कवि। १५६८ ई०में इनका जन्म हुआ था।

जमालखाँ—बादशाह शाहजहाँके एक सेनापति। दिल्लीमें हर साल नुमायशी नामका एक स्त्रियोंका मेला लगता था। इस मेलेमें बादशाहका परिवार तो मातहदार और अमीरोंकी तमाम उच्च महिलाएं बेचनेवाली होती थीं। स्वयं बादशाह भी इस मेलेमें उपस्थित हो कर महिलाओंसे पासके चीजें खरीदते थे।

एकबार इस मेलेमें सम्राट् जहाँगीरके पुत्र शाहजहाँने एक परमसुन्दरी महिलाके पास जा कर पूछा—"आपके पास कोई और चीज बेचनेको रही है या नहीं?" इस पर उस सुन्दरीने उन्हें एक साफ मिसरीकी डली दिखा कर कहा—"यह चीज बेचनेके लिए रखी है, इसकी कीमत एक लाख रुपये है।" शाहजहाँने उसी समय एक लाख रुपये दे कर उस मिसरीकी डलीको खरीद लिया और उनकी बात-चीतमें खुश हो कर उन्हें भोज-भोजनके लिए निमन्त्रण दिया। युवराजके निमन्त्रणकी वह उपेक्षा न कर सकीं। अनुरोध करनेसे उन्हें राजभवनमें तीन दिन रह गये। इसके उपरान्त जब वह घर गईं, तो उनके स्वामी जमालखाँने उन्हें पत्नी रूपसे ग्रहण नहीं किया। यह सुन शाहजहाँने क्रुद्ध हो कर उन्हें हाथीके पैर तले दबानेका हुक्म दिया। जमालखाँ ने पकड़े जानेके बाद अपनी प्राण रक्षामतिके प्रभावसे शाहजहाँसे मिलनेकी प्रार्थना की। प्रार्थना मञ्जूर हुई। शाहजहाँके सामने आ कर जमालखाँने कहा-"युवराजने अनुग्रह कर पाणिग्रहणपूर्वक जिस नारीका सम्मान बढ़ाया है मैं किस तरह उनके साथ सहवास कर सकता हूं?" इस पर युवराजने खुश हो कर उन्हें पाणिग्रहणपूर्वक दस हजार अश्वारोही सेनाका अधिनायक बना दिया। उक्त महिलाका नाम अर्जुमन्द बानू था, येही शाहजहाँकी पटरानी हो कर ममताज नामसे प्रसिद्ध हुई थीं।
(ममताज देखो।)

जमालगोटा (हिं० पु०) एक पौधा या पौधेका फल (Croton Tiglium)। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—जयपाल, सारक, रेचक, तिन्तिड़ीफल, दन्तीबीज, वह्निबीज, मलद्रावि, कोवरेचन, जैपाल, कुम्भीबीज, शुचिकोबीज, वप्ताबीज निकुम्भबीज मोदिनीबीज और चक्रदन्ती बीज। मराठी, नेपाली और गुजराती भाषामें भी इसे जमालगोटा कहते हैं। तामिल और मलयमें निर्वालम्, तैलगूमें नेपालविटुना, ब्रह्ममें कनको और फारसमें दन्ते बतू या हब्बुस्सलातीन कहते हैं। इसका अंग्रेजी नाम Purging Croton है।

इसका पेड़ १५से २० फुट तक ऊंचा होता है। यह भारतमें सर्वत्र और मलका ब्रह्म सिंहल आदि देशोंमें भी उपजता है। इसका फल देखनेमें भारडीकी तरहका और आकारमें सुपारी जैसा होता है। इस फलसे गुलाबकी भांतिका कड़ुआ और अवयवयुक्त एक प्रकारका तेल भी निकलता है। यह तेल बहुत ही तीक्ष्ण और दस्तावर होता है। इसकी कुछ बूंदें पेटमें पहुंचते ही पेट धुल कर साफ हो जाता है। इससे कठिन कोष्ठबद्ध उदरी, संन्यास पक्षाघात और तो क्या रोमो एक बूंद दवा भी नहीं रोक सकता, उनमें भी इस देशमें थोड़ी देर पीछे फायदा मालूम पड़ने लगता है। पहले यहाँसे जमालगोटेका बीज विलायत भेजा जाता था। वहां आधा सेर तेल बनानेमें कुल ८) आने देने खर्च होते थे, किन्तु विलायत जा कर वही (फिर १) में आधी छटांक बिकता था। इतने पर भी लोग छुआ चोरीसे मिलावटी तेल बेचते थे, आखिरकार विलायतमें इसका प्रचार बिलकुल बन्द हो गया। किसीके मतसे—इस पौधेकी नई लकड़ी और पत्तियोंसे भी थोड़ा बहुत तेल निकाला जा सकता है।

जमालगोटेका बीज या तेल बड़ी सावधानीसे व्यवहार किया जाता है, इसका रस चमड़े पर लगते ही वहाँ फफोला पड़ जाते हैं। कफके बढ़ जमने पर छाती पर बाह्यप्रयोग करनेसे उसी समय यह शिरदर्दका काम करता है। बाह्यप्रयोगमें यह चर्मप्रदाहकारी और अति उत्तेजक होता है। इसके तेलमें स्वभावतः मारक गुण विशेष है। जमालगोटे (फल)का छिलका किसीके मतसे जहरीला है। पहले हिन्दूचिकित्सक जमालगोटेका तेल व्यवहार करते थे या नहीं, इसका कुछ विशेष प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु यह निश्चित है कि, इसका फल दूधके साथ उबाल कर या कपड़े पर घुसा कर व्यवहृत होता था।

जमालगोटा बहुत ही थोड़ा काममें लाना चाहिये।

क्यों कि, बहुतोंको नीम-हकोमों द्वारा ज्यादा जमाल-गोटा खा कर मरते देखा गया है।

वैद्यक मतसे इसके गुण—यह कटु, उष्ण, विरेचन, दीपन, क्रमि, कफ, आम और जठरामयनाशक है। (राजनि०) वर्त्तमानके किसी किसी चिकित्सकोंके मतसे ध्वजभङ्गरोगमें पुरुषाङ्ग पर जमालगोटेका प्रलेप लगानेसे बहुत समय उससे सुफल पाया जाता है। भयानक दमेकी बीमारोमें जमालगोटेका बीज दीपशिखामें सुलगा कर उसका धुआं नाकमें लेनेसे श्वास घटने लगता है। सिर दर्द या चक्षुरोगके प्रबल होने पर ललाट पर इसका प्रलेप देनेसे विशेष फायदा पडता है।

जमालगोपाल—हिन्दीके एक कवि। इनकी कविता साधारणतः अच्छी होती थी। नीचे एक कविता उद्धृत की जाती है—

> 'ऐडत कहां नन्दके ढोटा खोल गांठ कछु दे रे दे।
> बाट घटमें बोली ठोली गर न कीजे प्रात, कन्हैया
> गरज पर तो दे रे दे॥
> बिना गोहनी तोहे जान न देहों मोल तोल कछु हे रे हे।
> बिने जमाल गोपालजीके प्रभुको तिहारे दर्श मोहे दे रे जे॥

जमालपुर—१ बङ्गालके मैमनसिंह जिलेका उत्तर-पश्चिम सबडिविजन। यह अक्षा० २४° ४३´ एवं २५° २६´ उ० और देशा० ८९° ३६´ तथा ९०° १८´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १२९८ वर्गमोल है। भूमि पुलिनमयी और बहुसंख्यक नदी नालाओंसे छिन्न विच्छिन्न है। लोकसंख्या कोई ६७३३६८ होगी। इसमें २ नगर और १७४१ गांव हैं।

२ बङ्गाल मैमनसिंह जिलेके जमालपुर सबडिविजनका सदर। यह अक्षा० २४° ५६´ उ० और देशा० ८९° ५६´ पू०में प्राचीन ब्रह्मपुत्रके पश्चिम तट पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १७९६५ है। १८६९ ई०में म्युनिसपालिटी हुई।

जमालपुर—बिहार प्रान्तके मुङ्गेर जिलेका नगर। यह अक्षा० २५° १९´ उ० और देशा० ८६° ३०´ पू०में ईष्ट इण्डियन रेलवेकी लूप लाइन पर पड़ता है। लोकसंख्या प्रायः १६३०२ है। जमालपुर ईष्ट इण्डियन रेलवेके लोकोमोटिव विभागका प्रधान स्थान है। इसमें बहुत बड़े बड़े कारखाने चलते हैं। १८८३ ई०में म्युनिसपालिटी हुई।

जमालाबाद—मन्द्राजके दक्षिण कनाड़ा जिलेकी एक ढालू चटाना। यह अक्षा० १३° २´ उ० और देशा० ७५° १८´ पू०में अवस्थित है। १७८४ ई०में टीपू सुलतानने मङ्गलोरसे लौटने पर अपनी माता जमालबाईके नाम पर यहां किला बनवाया था और उसमें फौज रखी थी। १७९८ ई०में अंगरेजोंने उक्त दुर्ग अधिकार किया, फिर निकल भी गया। परन्तु १८०० ई०के जून मास किलेकी फौज आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुई। पुराना शहर नरसिंहअङ्गदी था।

जमाली—सेख जमाली मौलाना। दिल्ली-निवासी एक सुप्रसिद्ध पारसी कवि। सायर-उल्-आरिफिन् अर्थात् धार्मिक जीवनी नामक ग्रन्थ इन्होंका रचा हुआ है। पहले इनकी उपाधि जलाली थी, पीछे इन्होंने जमाली उपाधि ग्रहण की थी। बादशाह हुमायुनके शासनसमय १५३५ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी। प्राचीन दिल्लीमें इनका समाधिस्थान अब भी मौजूद है। सेख गदाई काम्बो नामके इनके पुत्र वैरामखांके अधीन बहुत दिनों तक युद्धकार्य किया था, आखिर ये भी १५६४ ई०में परलोक सिधारे।

जमाव (सं० स्त्री०) १ जमनेका भाव। २ जमानेका भाव।

जमावट (हिं० स्त्री०) जमनेका भाव।

जमावड़ा (हिं० पु०) भोड़, जत्था।

जमिकुन्त—हैदराबाद राज्यके करीमनगर जिलेका तालुक। इसका क्षेत्रफल ६२६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १२१५१८ है। इसमें १५८ गांव हैं। जमिकुन्त सदर है। उसकी आबादी २६८७ है। मालगुजारी कोई ४ लाख होगी। पश्चिममें बहुत पहाड़ है। जङ्गल कहीं भी नहीं। चावलकी खेती बहुत होती है।

जमीकन्द (फा० पु०) सूरन, ओल।

जमींदार (अरबी जमीन्=भूमि, पारसी दार=अधिकारी) भूस्वधिकारी, भूमिका स्वामी, जमीनका मालिक।

भारतवर्षके भिन्न भिन्न स्थानोंमें जमींदार शब्दका भिन्न भिन्न अर्थ होता है। जमींदार शब्दसे कहीं

भूस्वाधिकारी (Land-Lord), और कहीं सरकारी कर (टैक्स) वसूल करनेवाले किसी कर्मचारीका भी बोध होता है।

जमींदार शब्दका अर्थ भली भाँति समझना हो तो भूमि और उसके स्वत्वके सम्बन्धमें भी कुछ जानना आवश्यक है। भूमि किसकी सम्पत्ति है और उसका वास्तविक अधिकारी कौन है ?—पहले इसी प्रश्नकी मीमांसा करनी चाहिये। मनुका कहना है कि—

"पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः ।"

(मनु ९।४४)

इससे तो यही बोध होता है कि, राजा ही भूमिका स्वत्वाधिकारी है, क्योंकि वह पृथिवीपति है। मनु फिर कहते हैं—

"स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ।" (मनु ९।४४)

शिकारियोंमें जो पहले मृगको घायल करता है, वह जिस तरह मृगको पाता है उसी तरह जो जङ्गल काट कर भूमिका उद्धार कर उसमें हल आदि जोतता है, भूमि उसीकी होती है। इस तरह राजा और किसान दोनों ही भूमिके अधिकारी हुए, प्रत्युत राजा को पैदा हुए अन्नमेंसे छठा अंश ही मिलता है और किसान अवशिष्ट सभी अनाजके अधिकारी होते हैं। पुरोहित, विद्याध्ययी शिक्षक, सूत्रधार, कुम्हार, धोबी नाई, आदिको भी इसमेंसे यथायोग्य हिस्सा मिलता था इस तरह वास्तवमें देखा जाय, तो राजा किसान और समिति इन सभीका भूमि पर थोड़ा बहुत अधिकार है।

समीपवर्ती ग्रामोंका कर तो राजकर्मचारी भी वसूल कर सकता था, किन्तु दूरवर्ती ग्रामोंके लिए राजा ग्रामाधिपति, दशग्रामाधिपति आदिको नियुक्त करते थे।

"ग्रामस्याधिपतिं कुर्यात् दशग्रामपतिं तथा ।

विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ।" (मनु ७।१५)

ग्रामाधिपति अब ग्रामकी भूमिको प्रजाओंमें विभक्त कर फसलकी कटाईके समय उसके परिमाणका निश्चय करके राजाका प्राप्य अंश वसूल कर राजकोषमें भेज दिया करते थे। प्रजाओंमें किसी तरहका झगड़ा विवाद होने पर इन्हें उसकी मीमांसा करनी पड़ती थी। इस कार्यके लिए उन्हें राजासे फसलका कुछ अंश मिलता था अथवा थोड़ी भूमि दे कर वे भूमिका भोग कर सकते थे।

इस प्रकारसे भूमि विभक्त किये जानेके उपरान्त प्रजाओंका वह अंश कालान्तरमें उन्हींकी अपनी सम्पत्ति हो जाती थी। प्रजा उसके चारों ओर बाड़ लगा सकती थी तथा दूसरेके खेतसे कोई कुछ बोझ चुराता तो वह दण्डनीय होता था।

"गृहं तड़ागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ।

शतानि पंच दण्ड्यः स्यादज्ञानात् द्विशतो दमः ॥"

(मनु० ८।२६४)

उस समय किसानोंके पास ज्यादा जमीन रहनेके कारण, वे खुद सभी जोत नहीं सकते थे। अपने लायक जमीन रख कर बाकी दूसरोंके जिम्मे बाँट दिया करते थे। दूसरे लोग लगान और भूस्वाधिकारीके प्राप्य अंशको देनेके लिए राजी हो कर जमीनका बन्दोबस्त कर लिया करते थे। इस तरह रैयतोंकी उत्पत्ति और समितिके रैयतों पर भूमिका स्वत्वाधिकार हुआ।

इसके पीछे भारतवर्ष जब मुसलमानोंके हस्तगत हुआ, तब प्राचीन प्रथाओंका बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। हिन्दूगण पैत्रिक प्रथाओंको छोड़नेके लिए तयार न थे; किन्तु मुसलमानोंके उन प्रथाओंको जड़मूलसे उखाड़ कर फेंकनेके लिए, जीजानसे कोशिश करने पर उसका लोप हो गया।

मुसलमान शास्त्रोंके अनुसार शासनकर्ता ही भूमिका एकमात्र स्वत्वाधिकारी है। भारतवर्षके जिन जिन स्थानों पर मुसलमानोंने अपना अधिकार जमाया, उन प्रदेशों की भूमि पर शासनकर्ताका ही स्वत्व स्थापित हुआ। किसानोंसे जो कुछ वसूल किया जाता था, वह सब राजाका होता था और राजकोषमें भेज दिया जाता था। राजाके सिवा दूसरे किसीको भी उसमेंसे अंश नहीं मिलता था।

राजस्व या कर वसूल करनेके लिए बहुत तरहके कर्मचारी नियुक्त किये गये, जैसे—आमिल, जमींदार, तालुकदार इत्यादि। दूरके प्रदेशों पर शासन करनेके लिए एक एक सूबेदार नियुक्त किये गये। सूबेदार अपने अपने सूबेमें लगान वसूल करने और छोटे छोटे मुकदमों का फैसला करनेका काम करते थे। सूबेदारके

अधीनस्थ जमींदारगण रैयतोंसे लगान वसूल कर सूबेदारके पास और सूबेदार उसको राजाके पास भेज दिया करते थे। अपनी अपनी जमींदारीके प्रजाओंमें अगर कोई झगड़ा टंटा होता, तो जमींदार उसका निपटेरा कर देते थे। इस तरह प्रजाकी रक्षा, जमींदारोंकी देखभाल और कर वसूल करनेका भार जमींदार पर ही रहता था। परन्तु भूमि पर उनका कोई भी अधिकार नहीं था।

अब प्रश्न यह है कि, किस पर इन सब कामोंका भार दिया जाता था, अर्थात् जमींदार पदका अधिकारी कौन होता था? बिहार, उड़िसा और बङ्गालमें बहुत दिनों से मुसलमानोंका आधिपत्य विस्तृत था, इसलिए उक्त तीनों प्रान्तोंमें प्राचीन हिन्दू-प्रथाका सम्पूर्ण लोप हो गया है।

१७६५ ई०में १२ अगस्तको बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी अंग्रेजोंके हाथ पहुंचने पर उन्हें कर वसूल करनेमें प्रवृत्त होना पड़ा। उन्होंने निश्चय किया कि राज्यकी उन्नति करनेके लिए भूमि पर जिनका स्वत्व और स्वार्थ है, उन्हींके साथ राजस्वका बन्दोबस्त कर लेना उचित है; क्योंकि इससे वे अपनी सम्पत्तिको उन्नति करनेकी कोशिश करेंगे। उस समय उक्त तीनों प्रदेशोंमें एक श्रेणीके व्यक्ति रहते थे जो 'जमींदार' नामसे मशहूर थे। उनकी उत्पत्ति और स्वार्थके विषयमें बड़ा वादानुवाद खड़ा हो गया। इस पर सर जर्ज कैम्बेलने इन लोगोंकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसी राय दी—

"मुसलमानोंके प्रबल आधिपत्यके समय राजा और प्रजामें कोई भी किसी तरहका मध्यस्वत्वाधिकारी नहीं था। परन्तु राज-शक्तिके क्रमिक ह्रासके साथ साथ बहुतसे क्षमताशाली हो गये। इस तरह प्राचीन हिन्दू-प्रथाकी भांति पुनः छोटे छोटे सामन्तराजोंका उदय हुआ। तभीसे आधुनिक 'जमींदार'-श्रेणीका अभ्युदय हुआ है। उनकी उत्पत्तिके निम्नलिखित कुछ कारण पेश किये जाते हैं—

(क) अति प्राचीन कुछ करद राजाओंकी मुसलमानी राज्यके समय क्रमशः रायतकी अवस्था प्राप्त हो गई, किन्तु वे अपने महालके शासन कर्तृत्वसे सम्पूर्ण-तया वञ्चित न हुए। इस प्रकार वे स्वत्वाधिकारसे वञ्चित होने पर भी महालका शासन करते थे। सीमान्त प्रदेश और अर्द्धसभ्य वन्यप्रदेशोंमें इसी तरहकी जमींदारी देखनेमें आती है।

(ख) कुछ देशीय दलपति और अधिनायकोंने लूट मचाते हुए कालान्तरमें राज-सरकारके साथ बन्दोबस्त करके किसीने किसी प्रदेशमें और किसीने किसी प्रदेशमें, इस तरह स्थितिलाभ किया था। उन उन प्रदेशोंके ये जमींदार पलीगार आदि नामोंसे पुकारे गये। पीछे क्रमशः राजशक्तिके ह्रास होते रहनेसे इन लोगोंने भी प्रजा पर पूरा प्रभुत्व प्राप्त किया।

(ग) कभी कभी तहसीलदार, आमिल आदि कर वसूल करनेवालोंको उग्र क्षमता प्राप्त होने पर, वे अपने कार्यका किसी प्रकारका हिसाब न समझते थे और कालान्तरमें क्षमता प्राप्त होने पर वे राजाके साथ करका बन्दोबस्त करके जमींदार पदवी प्राप्त कर लेते थे।

(घ) कभी कभी इजारदार पुरुषानुक्रमसे इजारा महलको भोगते थे और कालान्तरमें वे जमींदार हो जाया करते थे।

इस तरह कर वसूल करनेवाले कर्मचारी धीरे धीरे जमींदार हो गये और हिन्दुओंके प्रायः सभी पद वंशानुगत होनेके कारण यह जमींदारोंका पद भी काल-क्रमसे वंशानुगत हो गया। (Cobden Club Essay 141, 142)

मुसलमानोंके अधिकारके समय बङ्गालके जमींदारोंके विषयमें फिल्ड साहबने इस प्रकार लिखा है—

"जिस समय बङ्गाल आदिकी दिवानी अंग्रेजोंके हाथ लगी, उस समय यहांके जमींदार कर वसूल करते थे और उसके लिए उन्हें जिम्मेदार होना पड़ता था। जहां जहां प्रभुत्वशाली गण्यमान्य व्यक्ति रहते थे, मुसलमान राजा और सूबेदार वहांके कर वसूल करनेका भार उन्हीं पर छोड़ दिया करते थे तथा जहां जहां इस प्रकारके प्रभुत्वशाली व्यक्तियोंका वास नहीं था, वहांके कर वसूल करनेका भार उन्हें मिलता था जो सम्राट्को सबसे ज्यादा नजर भेंट करते थे। किसी समय ऐसी

रीति प्रचलित थी कि, जमींदार पदवी पानेके लिए सम्राट्को नजर भेंट करनी ही पड़ती थी, और जो वंशानुक्रमसे जमींदार थे, उन्हें भी नजर भेंट करनी पड़ती थी। कारण शासनकर्त्ताओंकी इच्छाके अनुसार कार्य न करनेसे जमींदारी छिन जानेका डर था और दूसरे लोग नजर भेंट करके जमींदारी लेनेके लिए तैयार रहते थे। इसलिए लाभकी आशासे उन्हें नजर भेंट करनी ही पड़ती थी।

उस समयके बहुतसे युरोपीय राजस्व कर्मचारियोंने उपर्युक्त दोनों श्रेणियों पर लक्ष्य न दे कर सब जमींदारोंको एक श्रेणीमें मिला देनेके कारण वे जमींदार शब्दके यथार्थ अर्थके समझनेमें असमर्थ थे। इसलिए जमींदारके स्वत्वके विषयमें नाना प्रकारके तर्क वितर्क होने लगे। जो प्रधानतः प्रथम श्रेणीके जमींदारों पर लक्ष्य देते थे, वे समझते थे कि जमींदारीका स्वत्व वंशानुगत है, पिताकी मृत्युके बाद उनके उत्तराधिकारी उस पद पर अभिषिक्त होते हैं। परन्तु जो दूसरी श्रेणी पर लक्ष्य देते थे, वे सोचते थे कि जमींदारी पद राजकीय पदवी मात्र है, नकि वंशानुगत। किसी किसी जमींदारको पुरुषानुक्रमसे जमींदारीका भोग करते हुए देख कर, वे कहते थे कि मुसलमानोंके समयमें भारतवर्षके सभी पद कालान्तरमें वंशानुगत हो जाया करते थे। (Field's Introduction to the Regulations 29, 80)

दोनोंहीने अपने अपने मतकी पुष्टि करनेके लिए नाना प्रकारकी युक्तियां दिखाई हैं। परन्तु कोई भी युक्ति सम्पूर्ण भ्रमशून्य नहीं है। हारिङ्गटन साहबने उस समयके जमींदारोंकी अवस्थाका इस प्रकार वर्णन किया है—

"जमींदार प्रजासे कर वसूल करते थे। जमींदारी स्वत्व वंशानुगत था, किन्तु सम्राट्को पेशकार और सूबेदारको नजर दे कर ही जमींदारी पद पर अधिष्ठित होना पड़ता था। जमींदार दान वा विक्रय करके अपनी जमींदारी दूसरेको दे सकते थे, पर इसके लिए उन्हें कभी कभी आज्ञा लेनी पड़ती थी। कर वसूल करनेका बन्दोबस्त जमींदारके साथ ही होता था, पर कभी कभी सरकार बहादुरकी इच्छाके अनुसार दूसरेसे भी बन्दोबस्त किया जाता था और जमींदारको कुछ समय वा हमेशाके लिए जागीर अथवा नक्त तमूखा दिया जाता था। निर्द्धारित राजस्वके अनुसार सूबेदारके किसी भाव वा वेश निश्चय करने पर जमींदारके भिन्न भिन्न परगना वा मौजा आदिमें उसका विभाग कर देनेकी क्षमता बहुतसे जमींदारोंको (१८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें) दी जाती थी। किन्तु कभी कभी, कौनसे परगनेका कैसा विभाग किया गया है इस बात की जांचके लिए और उनके ऊपर किये गये अत्याचारों को दूर करनेके लिए सरकारकी तरफसे कर्मचारी भेजे जाते थे। राजस्वका बन्दोबस्त जितने दिनके लिए होता था, उतने दिनके भीतर निर्द्धारित राजस्वके सिवा जितनी ऊपरी आमदनी होती थी, वह जमींदारको मिलती थी; परन्तु निर्द्धारित राजस्वका हिसाब उन्हें पूरा पूरा देना पड़ता था। जमींदारीके भीतर शान्तिभङ्ग न होने पावे, इस बातकी जिम्मेवारी जमींदार पर थी। वे अपराधीको पकड़ कर किसी मुसलमान विचारकको सौंप सकते थे।" *

जमींदार शब्दका अर्थ पञ्चम रिपोर्टके ग्लसारीमें इस प्रकार लिखा है—

"मुसलमानोंके राजत्वकालमें राजस्व महालकी देख रेख, प्रजाको सन्तान और अपत्य समझके माल गुजारी वसूल करनेका भार जमींदारों पर रहता था। उन्हें राजस्वमेंसे १०) रु० सैकड़ा कमीशन मिलता था। कभी कभी भरणपोषणके लिए नानकार स्वरूप कुछ मौजोंके उत्पन्न शस्यमेंसे भी सरकारसे हिस्सा उन्हें दिया जाता था। कभी कभी नवीन व्यक्तिको जमींदारका पद दिया जाता था; किन्तु सन्तोषजनक कार्य करनेसे एक ही व्यक्ति पर उसका भार रहता था और वह वंशानुगत हो जाता था। कालान्तरमें मुसलमानोंके आधिपत्यका ह्रास होनेके कारण जमींदार लोग अपने जमींदारीका स्वत्व वंशानुगत ठहराने लगे और शासनकर्त्ताओंने भी उस पर विरक्ति न की। आखिरकार बहुतसे जमींदार महालके तहसीलवाचक पदसे क्रमशः भूभागके वंशानुगत स्वत्वके अधिकारी हो गये और अब

* Harington's Analysis.

तक जो राजस्व निर्दिष्ट न था, वह भी हमेशाके लिए निर्धारित हो गया।" (5 th Report)

इस तरह नाना प्रकारके वादानुवादके बाद सुचारु रूपसे कुछ भी मीमांसा न होनेके कारण अंग्रेजी राजस्व कर्मचारियोंने यह निश्चय कर लिया है कि, मुसलमानोंके समयमें जमींदार शब्दका चाहे कुछ भी अर्थ क्यों न होता हो, जमींदारोंको इंग्लैण्डके भूस्यधिकारियोंकी तरह भूमिका स्वत्वाधिकारी बना देना चाहिये। इस निर्णयके अनुसार १७८० ई०में बङ्गालके तथा १७८१ ई०में विहार और उड़ीसाके जमींदारोंके साथ दश वर्षके लिए राजस्वका बन्दोवस्त हो गया। इसको 'दशसाला बन्दोवस्त' कहते हैं। इस बन्दोवस्तके अनुसार जमींदारोंको भूस्यधिकारी बनाया गया।

१७९३ ई०में २२ मार्चको यह बन्दोवस्त जब चिरस्थायी हो गया, तब कोर्ट आफ् डिरेक्टरोंके आदेशानुसार भारतवर्षके गवर्नर जनरल मार्कुइस आफ् कार्नवालिसने एक घोषणापत्र प्रकट कर दिया।

चिरस्थायी बन्दोवस्तके अनुसार जमींदारोंका कैसा स्वत्व और स्वार्थ कायम रहा, इस विषयमें हारिङ्टन साहबने ऐसा लिखा है—

"जमींदार जमींदारी महालके स्वत्वाधिकारी हैं जमींदारीका स्वत्व पुरुषानुक्रमसे उत्तराधिकारियोंको मिलेगा। जमींदार दान, विक्रय, वईल आदिके द्वारा अपनी जमींदारीको हस्तान्तरित कर सकेंगे। जमींदार महाल पर निर्धारित राजस्व नियमानुसार सरकारको देनेके लिए वाध्य होंगे। जमींदारीके अन्तर्गत प्रजावर्गसे अथवा भूमिके उत्कर्ष साधनके लिए कानूनके अनुसार जो कुछ उन्हें मिलेगा, उसमेंसे राजस्वके सिवा वाकीका हिस्सा उन्हींका रहेगा। भविष्यमें सरकार रायत या अन्य प्रजाके स्वत्व और स्वार्थकी रक्षा तथा अन्यान्य अत्याचार और उत्पीड़नसे उनकी रक्षाके लिए जो कानून बनेगा, वह जमींदारोंको मान्य होगा।"

जमींदारी (फा० स्त्री०) जमींदारकी वह जमीन जिसका वह अधिकारी हो। २ जमींदार होनेकी अवस्था। ३ जमींदारका स्वत्व।

जमींदोज (फा० वि०) नष्ट भ्रष्ट, जो तहस नहस कर दिया गया हो।

ज़मीन (फा० स्त्री०) १ पृथिवी। २ पृथिवीके ऊपरका कठिन भाग, भूमि, धरती। ३ सतह, फर्श। ४ भूमिका, आयोजन, पेशबंदी।

जमीमा (अ० पु०) क्रोड़पत्र, अतिरिक्त पत्र, पूरक।

जमीरापात—मध्यप्रदेशके सरगुजा जिलेकी एक पहाड़। यह अक्षा० २३° २२' एवं २३° २६' उ० और देशा० ८३° ३३' तथा ८३° ४१' पू०के मध्य अवस्थित है। इसकी ऊंचाई ३५०० फुट है। जमीरापात सरगुजा राज्यकी पूर्व सीमा है।

जमुई—१ विहार प्रान्तके मुङ्गेर जिलेका दक्षिण सबडिविजन। यह अक्षा० २४° २२' एवं २५° ७' उ० और देशा० ८५° ४६' तथा ८६° ३७' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १२७६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३७४८८८ है। इसमें ४६८ गांव बसे हैं। जङ्गल बहुत है।

२ विहार प्रान्तके मुङ्गेर जिलेमें जमुई सबडिविजनका सदर। यह अक्षा० २४° ५५' उ० और देशा० ८६° १३' पू०में क्यूलनदीके वाम तट पर पड़ता है। ईष्ट इण्डियन रेलवेका जमुई ष्टेशन ४ मील दक्षिण पश्चिम है। लोकसंख्या कोई ४७४४ होगी। महुवा, तेल, घी, लाह, तेलहन, अनाज और गुड़की रफ्तनी होती है। गांवसे दक्षिणको इन्द्रपेगढ़ नामक एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष है।

जमुना (हिं० स्त्री०) यमुना देखो।

जमुना—१ पूर्व बङ्गाल और आसामकी एक नदी। (अक्षा० २५° ३८' उ० और देशा० ८८° ५४' पू०) यह दीनाजपुर जिलेसे (अक्षा० २५° ३८' उ० और देशा० ८८° ५४' पू०) से बगुड़ा जिलेकी दक्षिण सीमासे बहती हुई भवानीपुर ग्रामके निकट (अक्षा० २४° ३८' उ० और देशा० ८८° ५७' पू०) आतराईमें जा गिरती है। लंबाई ८८ मील है। नीचेकी बारहो मास और ऊपरको वर्षा ऋतुमें ही नावें चलती है।

२ बङ्गालमें गङ्गाकी एक नदी। जसोर जिलेमें बालियानीमें यह चौबीस परगना पहुंचती और दक्षिण-पूर्वको बहती हुई रायमङ्गलमें अपने आपको खाली करती है। इसमें बारहों महीने नावें चलती हैं। चौड़ाई १५०से ३००।४०० गज तक है।

१पूर्व बङ्गाल और आसाममें ब्रह्मपुत्रनदका निम्न भाग। इसको मुहाना अक्षा० २५ २३ उ० तथा देशा० ८८ ३१' पू० और गङ्गाके साथ सङ्गम अक्षा० २३ ५०' उ० एवं देशा० ९० ३१' पू० में है। यह दक्षिणको १२१ मील तक गयो है। वर्षा ऋतुमें चौड़ाई ३।४ मील रहती है। बारहो महीनेमें नावें और जहाज चला करती हैं।

जमुनादास—जमुनामञ्जरी नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता।

जमुनियाँ (हि० पु०) १ जामुनी, जामुनका रंग। (वि०) २ जामुनके रंगका।

जमूरो (फा० स्त्री०) १ नालबन्दोंका एक औजार। यह चिमटोके आकारका होता है इससे घोड़ोंके नाखून काटे जाते हैं। २ संड़सी।

जमुर्द (हि० पु०) पन्ना नामका रत्न।

जमुर्रदी (फा० वि०) १ जिसका रंग पन्नाके जैसा हो। (पु०) २ पन्नाका रंग, वह रंग जो नीलापन लिए हुए हरा दीख पड़ता हो।

जमैराबाद—सिन्धु प्रदेशके थर और पारकर जिलेका तालुक। यह अक्षा० २५ ५० एवं २६ १८ उ० और देशा० ६८ १३' तथा ६८ ३१ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २४०१८ और क्षेत्रफल ५०१ वर्ग मील है। इसमें १८८ गांव हैं। मालगुजारी और सेस प्रायः १ लाख ७० हजार पड़तो है।

जम्पती (सं० पु०) जाया च पतिश्च। दम्पती, जायापती, स्त्रीपुरुष।

जम्ब (सं० पु०) जम्बीरवृक्ष जंबीरी नीबूका पेड़।

जम्बा (सं० स्त्री०) जम्बूफल, जामुनका फल।

जम्बाद्यतैल—वैद्यकोक्त औषध तैलविशेष, एक दवाईका तेल। जामुनकी नई पत्तियां, बेल आदासके फूल यह एक एक सबके साथ नीम, बरना और सरसोंका तैल बनाकर चाहिये। इसीको जम्बाद्यतैल कहते हैं। इसे कानमें डालनेसे बधिरताव अच्छा हो जाता है।

जम्बाल (सं० पु०) १ पङ्क कीचड़ कादो। २ शैवाल सेवार। ३ केतकवृक्ष, केतकोका पेड़। (स्त्री०) ४ सुगन्ध तृण, एक प्रकारकी सुगन्धित घास।

जम्बाली (सं० स्त्री०) केतकोका वृक्ष।

जम्बालिनी (सं० स्त्री०) जम्बाल अस्त्यर्थे इनि। १ नदी। २ शैवालिनी। ३ पद्मिनी।

जम्बिर (सं० पु०) जम्बीर निपातनात् साधुः। जम्बीर, जंबीरी नीबूका पेड़। जम्बीर देखो।

जम्बीर (सं० पु०) जम्बीर भवे निपातनात् ईरन् गुणश्च। (जम्बीरादयश्च) १ मरुवकवृक्ष, मरवाका पेड़। २ फणिज्झक वृक्ष छोटा तुलसीका पौधा। ३ श्वेतार्जकवृक्ष, सफेद या कोई रंगका तुलसीका पौधा। (राजनि०) ४ (क्लिब) किसीके मतसे पुदीनाका साग।

५ जम्बीरी नीबूका वृक्ष। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—दन्तशठ, जम्भ, जम्भीर, जम्भल, जम्भक जम्भर, दन्तहर्षण, दन्तशय, दन्तहर्षक, जभिर, गम्भीर, रेवत, रक्तबीजो, जम्मो, रोचनक, शोधक और वक्रादि।

इसे मराठी और गुजरातीमें इड़, कनाड़ीमें बड़िलिम्बि तैलगूमें निम्मपेंडु, निम्मपण्डु मलयमें चेरनारंगा, तामिलमें यम्पनम् अरबीमें लौमू-ए-कार्मिज पारसीमें और सिन्धमें लीमू तथा दक्षिणी भाषामें लिमुन कहते हैं। इसी लिमुनसे अंग्रेजीमें Lemon हुआ है। इसका वैज्ञानिक नाम Citrus Bergamia, The Bergamot orange है। भारतमें इस श्रेणीके बहुतसे नीबू देखनेमें आते हैं जैसे राजपुरी नीबू, चोना, जम्बीरी नीबू कागजी नीबू बिजौरा नीबू इत्यादि।

सारे भारतवर्षमें, सुन्दा और मलक्का उपद्वीपोंमें तथा यूरोपके नाना स्थानोंमें जम्बीरी नीबू उत्पन्न होते हैं। मान्स, सिसिली और कालाब्रियामें इसकी खेती होती है। इस जातिके नीबूओंमें—कोई गोल, कोई छोटा, कोई कोमल, कोई चिकना कोई खरदरा या मोटे छिलकेका और कोई तीतेपनको लिए ज्यादा रस वाला पाया जाता है। इसके सिवा कोई कोई ऐसे भी हैं जो पकने पर भी हरे बने रहते हैं।

इस नीबूके छिलकेको निचोड़ कर रस निकालनेसे उससे एक तरहका तैल बनता है, जिसे अंग्रेजीमें Bergamot oil कहते हैं। यह तैल सुगन्धिके लिए काममें लाया जाता है। यह तैल बाह्य प्रयोगकी किसी किसी औषधमें सुगन्धि लानेके लिए डाला जाता है। इसके एक कपसे भी थोड़ा बहुत तैल निकाला जा सकता

है। इस नीबूके रसका गुण बीजपूर या बिजौरा नीबूके समान है। बीजपूर या बिजौरा देखो। ज्वमरा, विषम और उत्तापजनक अन्यान्य ज्वरमें इसका रस शान्तिकर होता है। कण्ठनली, उदर, जरायु, वृक्क इत्यादि आभ्यन्तरिक यन्त्रसे रक्तस्राव होने पर इस नीबूका व्यवहार किया जा सकता है।

जम्बीरी नीबूके गुण—अम्ल, मधुररस, वातनाशक, पथ्य, पाचन, रुचिकर, पित्त, बल और अग्निवर्द्धक। (राजनि०) पका हुआ नीबू मधुर, कफरोग, रक्त और पित्तदोषनाशक, वर्णवीर्य, रुचिकर पुष्टिकर और तृप्तिकर होता है।

(राजवल्लभ)

जम्बीरक (सं० पु०) जम्बीर स्वार्थे कन्। जंबीरी नीबू।

जम्बीरिकी (सं० स्त्री०) जम्बीरभेद, एक प्रकारका जंबीरी नीबू।

जम्बु (सं० स्त्री०) जमु भक्षणे निपातनात् कु बाहुलकात् ह्रस्व। १ वृक्षभेद, जामुन। जम्बू देखो। २ सुमेरु पर्वतसे निकली हुई एक नदीका नाम, जम्बु नदी।

जम्बूनदी देखो।

३ जम्बुवृक्ष फल, जामुनका फल। ४ जम्बूद्वीप।

जम्बूद्वीप देखो

जम्बुक (सं० पु०) जमु भक्षणे कु निपातनात् वुक् स्वार्थे-कन्। १ जम्बुवृक्षभेद, बड़ा जामुन, फरेंदा। २ श्योनाकवृक्ष, सोनापाठा। ३ सुवर्णकेतकी, केवड़ा। ४ शृगाल, गीदड़। ५ वरुण। ६ वरुणवृक्ष, वरुनका पेड़। ७ स्कन्दका अनुचरभेद, स्कंदका एक अनुचर। ८ नीच, अधम।

जम्बुकतृण (सं० स्त्री०) भूतृण, एक प्रकारकी सुगन्धित घास।

जम्बुकेश्वर—एक प्रसिद्ध शैवतीर्थ। शिवपुराणके रेवा-माहात्म्य तथा श्रीरङ्गमाहात्म्यके मतानुसार यह ६ शैव तीर्थोंमेंसे एक होता है। यहां महादेवकी जलमूर्ति विराजमान है। स्कन्दपुराणमें लिखा है कि वहां जा कर देवादिदेवको जलमूर्तिका दर्शन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता।

श्रीरङ्ग-महामन्दिरसे आध मील दूर जम्बुकेश्वरका विख्यात मन्दिर अवस्थित है। इस देवालयके बहिर्भागमें एक छोटे कूपसे सर्वदा अल्प अल्प जल निकला करता है। मन्दिरका चत्वर कुएंके पानीसे एक फुट नीचा है। सुतरां उसके भीतर हमेशा एक फुट पानी भरा रहता है। अपने आप हमेशा पानी निकलता देख कर बहुतोंको विश्वास है कि वहां महादेव जलमूर्तिमें प्रकाशित हुए हैं। देवालयकी बगलमें एक पुरातन जम्बुवृक्ष है। श्रीरङ्गमाहात्म्यके मतानुसार महादेवने उसी जामुनके नीचे बहुकाल तपस्या की थी।

मि० फर्गुसन कहते हैं कि १६०० ई०के आरम्भमें जम्बुकेश्वरका वर्तमान मन्दिर निर्मित हुआ। किन्तु यहां उत्कीर्ण शिलालिपिमें लिखा है कि १४० शकको देवालयके व्ययनिर्वाहार्थ भूमि दी गयी। इससे अनुमान होता है कि वह मन्दिर उससे भी पहले बना होगा। परन्तु रामानुजकी जीवनी और सह्याद्रिखण्ड प्रभृति पढ़नेसे समझ पड़ता है कि यह उससे भी बहुत प्राचीन है।

इस मन्दिरमें चार उच्च प्राकार हैं। द्वितीय प्राकारमें ६५ फुट ऊंचा एक गोपुर और कई एक मण्डप हैं। तीसरे प्राकारमें दो प्रवेशद्वार लगे हैं। इनमें एक ७३ और दूसरा १०० फुट ऊंचा गोपुर हैं। फिर इसके प्राङ्गणमें एक पुष्करिणी और नारिकेलका एक बाग है। चतुर्थ प्राकार सर्वापेक्षा वृहत् है। यह दैर्घ्यमें २४३६ और प्रस्थमें १४९३ फुट पड़ता है। इसमें सहस्र स्तम्भ-मण्डप बना है। आजकल हजार खम्भे न रहते भी नौ सौ अड़तीस लगे हुए हैं। इन सब स्तम्भोंमें विस्तर अनुशासन-लिपि खोदित है। पहले मन्दिरके खर्चको बहुत भूसम्पत्ति थी। वृटिश गवर्नमेण्ट वह सब अधिकारकर देवसेवाके लिये हर साल ९०५०) रु० देती है। यहां बहुत तीर्थयात्री आते हैं। वह जो दक्षिणा देते, पूजक ही ले लेते हैं।

जम्बुकोल—सिंहलके नागद्वीपका एक प्राचीन नगर। यह महावंशमें वर्णित हुआ है। बहुतसे लोग वर्तमान जाफना प्रदेशके कलम्ब गांवको ही जम्बुकोल नामसे उल्लेख करते हैं।

जम्बुखण्ड (सं० पु०) जम्बुद्वीप।

जम्बुद्वीप—जम्बूद्वीप देखो।

जम्बुध्वज (सं० पु०) १ जम्बुद्वीप। २ एक नागका नाम।

जम्बुनदी (सं० स्त्री०) जम्बूनदी देखो।

जम्बुपर्वत (सं० पु०) जम्बुद्वीप।

जम्बुप्रस्थ (सं० पु०) किसी नगरका नाम। यह काश्मीर राज्यका वर्तमान जम्बू नगर है। राजा दशरथके मरने पर भरत मातुलालयसे अयोध्या इसी नगर हो कर गये थे।
(रामायण २।७०।११)

जम्बुमत् (सं० पु०) १ एक पर्वतका नाम। २ एक बानर का नाम।

जम्बुमती (सं० स्त्री०) एक अप्सरा।

जम्बुमाली (सं० पु०) एक राक्षसका नाम। इसके पिता का नाम प्रहस्त था। यह लाल वस्त्र पहनता था, इसके दांत बड़े बड़े थे। रावणके आदेशानुसार यह हनूमानसे लड़ने गया था और इसी युद्धमें इसकी मृत्यु हुई।

जम्बुमार्ग (सं० क्लो०) पुष्करस्थ तीर्थभेद, पुष्करके एक तीर्थका नाम।

जम्बुक (सं० पु०) पातालवासी एक नागराज, पातालमें रहनेवाला सर्पोंका एक राजा।

जम्बुल (सं० पु०) १ जम्बुवृक्ष जामुनका पेड़। २ केतकी पुष्प वृक्ष, केतकीका पेड़। ३ कर्णपाली नामक रोग। इसमें कानकी लौ पक जाती है, कुप कनपा।

जम्बुवनज (सं० क्लो०) श्वेत जवापुष्प, सफेद अड़हुल।

जम्बुसर—१ बम्बई प्रान्तके भड़ौच जिलेका उत्तर तालुक। यह अक्षा० २१° ५४' एवं २२° १५' उ० और देशा० ७२° ११' तथा ७२° ५४' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ३८० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६१८३६ है। इसमें १ नगर और ८१ गांव है। भूमि समान है। पश्चिमको उजाड़ मैदान और पूर्वको अच्छी जमीन है।

जम्बुसर—बम्बई प्रान्तके भड़ौच जिलेमें जम्बुसर तालुकका सदर। यह अक्षा० २२° ३' उ० और देशा० ७२° ३८' पू० में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १०१८९ है। प्रथमतः १७७२ ई०में अंगरेजोंने इसको अधिकार किया था। १७८३ ई० तक यह उन्हींके अधीन रहा, फिर मराठोंको लौटा दिया गया। आखिर १८१७ ई०में पूनाकी सन्धिके अनुसार जम्बुसर अंगरेजोंको मिला। नगरसे उत्तर नागेश्वर ह्रद है। ह्रदके बीचमें आम तथा और भी नाना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित एक छोटासा द्वीप है। इसके किनारे पर भी बहुतसे देवमन्दिर हैं। यहां अंगरेजोंका बनाया हुआ एक सुदृढ़ दुर्ग है। १८७६ ई०में म्युनिसिपालिटी हुई। पहले यहां बड़ा व्यापार था। अधुना पीठमीके कई कारखाने हैं। चमड़ेकी रंगाई भी होती है। हाथी दांतके तावीज और खिलौने अच्छे बनते हैं।

जम्बू (सं० स्त्री०) १ नागदमनी, नागदौना। (राजनि०) नागदमनी देखो। २ जामुनका पेड़। इसका फल पर्वमें पर काममें हो आता है। पर्याय—सुरभिपत्रा, नीलफला, श्यामला, महास्कन्धा, राजार्हा, राजफला, शुकप्रिया, मेघमोदिनी, जम्बु, और जम्बुल।

जम्बू शब्द हिन्दीमें पुंलिङ्ग माना गया है।

वर्तमान उद्भिद् तत्त्वविदोंके मतसे—दुनियामें करीब ७०० प्रकारके जम्बू वृक्ष पाये जाते हैं। इनमेंसे भारतमें करीब ११० प्रकारके जंबू वृक्ष देखे जाते हैं। कोई कोई कहते हैं कि पहले भिन्न जातिके वृक्ष जम्बू जातीय समझे जाते थे, उनमेंसे बहुतसे तो भिन्न जातीय हैं। किसी किसीके मतसे जामरुल आदिके वृक्ष भी इसी जातिके हैं। भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र ब्रह्म, मलय, सिंहल, अमेरिका देशके वेस्ट इन्डिज और पैसिफिक द्वीपपुञ्ज इत्यादि ग्रीष्मप्रधान स्थानोंमें जम्बू वृक्ष बहुत उत्पन्न होते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम यूजिनिया (Eugenia) है। कहा जाता है कि 'सामयराज यूजिनके नामानुसार यह नाम रक्खा गया था।

जंबू जातीय वृक्षोंमें निम्नलिखित वृक्ष ही प्रधान हैं—

जामुन—(Eugenia Jambolana) अंगरेजीमें ब्लैक प्लम (Black plum), बर्मीमें थब्येग्यु, सिन्धुमें जमोह, उड़ियामें जामकुलि आसाममें जमु और बङ्गालमें जाम कहते हैं।

यह जामुन ज्येष्ठ आषाढ़ मासमें पकता है। इस जातिका वृक्ष मझोला होता है। यह भारतके प्रायः सर्वत्र होता है। पञ्जाब और हिमालय प्रदेशमें ३००० फुट की ऊंचाईमें भी यह अपने आप पैदा होता है। आसामकी तरफ तथा छोटे नागपुर और अन्यान्य स्थानों इसकी छालके साथ दूसरे पदार्थ मिला कर (क्वाथ आदि) बहुतसी औषधि बनाई जाती हैं।

नील बनाते समय इसकी छालका क्वाथ व्यवहृत होता

है। अंव, बहुतसो औषधियोंमें भो काममें आता है। इसका वल्कल सङ्कोचक, अजीर्णनिवारक, आमाशयनाशक और मुखक्षतनिवारक है। अपक्व फलका रस वायुनाशक और जोर्णकारक होता है। आमाशय (पेचिश) रोग तथा बिच्छूके काटने पर इसके पत्तेका रस फायदा पहुंचाता है। इसके बोजोंका चूर्ण बहुमूत्रनिवारक है। पथरी अजोर्ण, उदरामय आदि रोगोंमें इसका पका हुआ फल फायदेमन्द होता है।

जामुन कहीं कहीं कबूतरके अण्डेके बराबर बड़े और पकने पर बिल्कुल स्याह हो जाते हैं। यह खानेमें कसैले और खट्टापनको लिए मोठे होते हैं। नमक डाल कर खानेसे और भी स्वादिष्ट लगते हैं। गोआ प्रान्तमें इससे एक प्रकारको सराब बनती है, जो खानेमें पोर्ट जैसो लगती है। मद्य देखो। ज्यादा जामुन खानेसे ज्वर होनेको सम्भावना रहती है।

जामुनको लकड़ो कुछ ललाई लिए हुए धूसर-वर्णको होती है। यह न बहुत कड़ो और न ज्यादा नरम हो होती है। इसके काष्ठमें एक प्रकारके कोड़े लग जाते हैं। जामुनको लकड़ो किवाड़, चौखट, हल इत्यादि बनानेके काममें आती है। वैद्यकमतसे इसके फलके गुण—यह कषाय, मधुर तथा श्रम, पित्तदाह, कण्ठरोग, शोष, क्रिमिदोष, श्वास, कास और अतोसार रोगनाशक, विष्टम्भो, रुचिकर और परिपाकजनक होता है। (राजनि॰) राजवल्लभके मतसे यह गुरु, स्वादु, शोतल, अग्निमन्दोपन, रुक्ष और वातकर है।

वैद्यक मतानुसार यह तीन प्रकारका होता है—बृहत्, क्षुद्र और जङ्गलो। बृहत् फलके पर्याय हैं—महाजम्बू, महापत्रा, राजजंबू, बृहत्फला, फलेन्द्र, नन्द, महाफला और सुरभिपत्रा। क्षुद्रजंबूके पर्याय ये हैं—सूक्ष्मा, कृष्णफला, दोर्घपत्रा और मध्यमा। इसको हिन्दोमें छोटी जमुनो कहते हैं। जङ्गलो जामुनके पर्याय ये हैं—भूमिजंबू, काकजंबू, नादेयो, शीतपल्लवा, सूक्ष्मपत्रा और जलजंबुका। भूमिजंबूका वृक्ष छोटा और प्रायः नदियोंके किनारे उत्पन्न होता है। भावप्रकाशके मतसे इसके गुण ये हैं—विष्टम्भो, गुरु और रुचिकर। यमजंबूफलके गुण—यह ग्राहो, रुक्ष; कफ, पित्त और दाहनाशक होता है। (भावप्र॰) इसको लकड़ो पानोमें रहनेसे अच्छो और टिकाऊ होती है। इसीलिए इसकी नावें बनाई जाती हैं।

क्षुद्रजम्बू—इसका वैज्ञानिक नाम (Eugenia caryophyllaea) है। इसे संथाल भाषामें बटजनिया कहते हैं। यह भारतवर्षके प्रायः सर्वत्र हो पैदा होता है। फल बहुत हो छोटा होता है। इसको पत्तियां नुकीलो और औषध बनानेके काममें आती हैं। इसको लकड़ो सफेद, मजबूत और टिकाऊ होती है।

गुलाब जामुन—इसका वैज्ञानिक नाम Eugenia jambos है। इसे अंग्रेजोमें रोज एप्ल (Rose Apple) और अरबोमें तोफाह कहते हैं।

गुलाबजामुनका पेड़ छोटा और फल फूलोंसे भूषित होने पर अति मनोहर लगता है। भारतवर्ष और अन्यान्य ग्रीष्मप्रधान देशोंके बगोचेमें इसका पेड़ लगाया जाता है। गुलाबजामुनका पेड़ बेरके बराबर होता है। यह देखनेमें बहुत हो सुन्दर और कोई कोई सेवसा बड़ा होता है। गरमियोंमें यह पकता है पकने पर इसका रंग चम्पई, सुगन्ध गुलाबके फूलके समान और खानेमें सुस्वादु होता है, किन्तु रस इसमें ज्यादा नहीं होता। इसका फूल ललाईको लिए और खुशबूदार होता है। साल भरमें ३।४ बार फूल लगते हैं।

गुलाबजामुनके विशेष गुण—प्रत्येक बार फलोंके समयमें, जिस तरफ फल लगते हैं, उस तरफके पत्ते झर जाते हैं; किन्तु जिस ओर फल न लगें उस तरफके पत्ते भो नहीं झरते। इसको लकड़ोका रंग लोहिताभ धूसर होता है। गुलाबजामुनकी पत्तियोंसे एक प्रकारको चक्षुरोगको औषध बनती है।

जमरूल या समरूल—इसका वैज्ञानिक नाम है Eugenia Javanica। मलक्का, आन्दामन, निकोबर आदि द्वोप जमरूलके आदि-वासस्थान हैं। अब तो हिन्दुस्तानमें जगह जगह जमरूल पैदा होता है। ग्रोष्म ऋतुमें इसके फल पकते हैं। फल सफेद, चिकने और उजले होते हैं। स्निग्ध और रसदार होने पर भी इसमें कोई स्वाद नहीं पाया जाता। इसका काष्ठ धूसर वर्ण और मजबूत होता है; किन्तु किसी काममें नहीं

जाता। और भी एक तरहका जमरूद होता है, जिसका वैज्ञानिक नाम इउजिनिया मलक्केन्सिस् (Eugenia Malaccensis) है। अंग्रेजोंमें मालय ऐप्ल (Malay apple) और बङ्गालमें 'मलाक्का जामरूल' कहते हैं।

यह पहले पहल मलक्काद्वीपपुञ्जसे लाया गया था। इस समय बङ्गाल और ब्रह्मदेशमें (बगीचोंमें) उत्पन्न होता है। इसका फूल लाल और फल रसदार अमरूद जैसा होता है। यह पेड़ भी दो तरहका है।

उरुमण जामुन—इसका वैज्ञानिक नाम है, Eugenia operculata इसे हिन्दीमें रायजम, पयमान और जमना कहते हैं। यह हिमालय पर्वतको तराईमें तथा आसाम, ब्रह्म, पश्चिमघाट और सिंहलको वनभूमिमें पैदा होता है। इसका पेड़ बड़ा होता है। ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें इसका फल पकता है। यह खानेमें सुस्वादु और वातरोगमें उपकारी है। इसकी जड़, पत्तियां तथा वल्कल आदि भी औषधार्थ व्यवहृत होते हैं।

२ जम्बूफल, जामुन। (अमर०) ३ जनामप्रसिद्ध नदी, जम्बूनदी। (मत्स्यपु० ११ ।६७) ४ जम्बूद्वीप।
जम्बूद्वीप देखो।

जम्बू—काश्मीरके डोगराओंकी एक राजधानी। काश्मीरमें जम्बू नामका एक नगर है जहांसे इनका निकास हुआ है।

जम्बू—कर्णाटक देशकी एक नीच जाति। यह साधारणतः होलया और महार नामसे भी प्रसिद्ध है। इस जातिके लोग अधिकतर धारवाड़में ही रहते हैं।

इन लोगोंका कहना है कि, इनके आदि पुरुषका नाम जम्बू था। उनके समयमें यह पृथिवी पानी पर तैरती थी, इसलिए लोग सुखी या निश्चिन्त नहीं रह पाते थे। जम्बूने अपने पुत्रको जीवितावस्थामें ही जमीनमें गाड़ कर पृथिवीकी बुनियाद मजबूत की थी। तभीसे इस पृथिवीका जम्बू नाम पड़ा है।

वे कहते हैं कि, "पहले हमारे पूर्वपुरुष ही इस पृथिवी पर आधिपत्य करते थे, बादमें ब्राह्मण क्षत्रिय आदि आ गये और उन्होंने उनको भगा कर अपना आधिपत्य जमा लिया।"

इनमें होलया और पोतराज ये दो श्रेणियां हैं। दयमव, उड़चव और येलव, ये तीन इनकी उपास्य देवियां हैं।

पोतराजका अर्थ है—महिषका राजा। पोतराजोंका कहना है कि किसी समय उनके एक पूर्वपुरुषने ब्राह्मण के वेषमें धोखेसे अवतार दयमवके साथ विवाह किया था। कुछ दिनों तक वे दोनों सुखसे रहे थे।

एक दिन दयमवने सासको ऐसभैंको इच्छा प्रकट की। होलया अपनी माताको ले आया। दयमवने मिष्टान्न बना कर सासको खिलाया। सासने खुश हो कर पुत्रसे कहा—"बेटा! भोजन तो बहुत अच्छा बना है, यह खानेमें ठीक महिषके दांतके समान लगता है।" इससे दयमव समझ गईं कि, मैं अवश्य होलयाके चक्करमें पड़ गई हूँ। अन्तमें उन्होंने गुस्सेमें आ कर स्वामीको मार डाला। इसी उपलक्षमें अब भी दयमवके उत्सवमें महिष की बलि हुआ करती है। इनमव देखो। होलयासे उत्पन्न दयमवके पुत्रगण तभीसे पोतराज कहाते हैं।

ये ग्राम या नगरके किनारे रहते हैं, दूसरोंसे कोई भी संसर्ग नहीं रखते। अन्य जातियां भी इनसे घृणा करती हैं। मरे हुए जानवरोंको उठाना, चन्दन बनाना और बोझ ढोना यही इन लोगोंका निजकर्म या उपजीविका है। ये मरे हुई गाय और भैंसोंको ला कर उस का मांस खाते हैं। इसीलिए साधारण लोग इन्हें 'होलया' अर्थात् गन्दे कह कर पुकारते हैं, ये लोग मांसके सिवा शराब पीना भी खूब पसन्द करते हैं।

ये कठिन परिश्रमी और आतिथेय होते हैं। इनकी पोशाक निम्नश्रेणीके मराठियों जैसी है। सभी लोग कानमें कुण्डल और हाथमें अंगूठी पहनते हैं। ये कनाड़ी भाषामें बातचीत करते हैं।

ये किसी ब्राह्मणकी भक्ति श्रद्धा या ब्राह्मण्य देव देवियोंकी पूजा नहीं करते। परन्तु होली, नागपञ्चमी, दशहरा और दीवालीके पर्वको मानते हैं। इन लोगोंमें बसवसाप्प नामक सजातीय गुरु हैं, जो बेलारीमें रहते हैं।

सन्तान उत्पन्न होते ही ये उसका नार काट कर घरके सामने गाड़ देते हैं। उसके ऊपर एक पत्थर बिछा देते हैं जिस पर बैठ कर बच्चेके साथ प्रसूति स्नान करती है।

पांचवें दिन ओकरिय एक मिट्टीके ऊपर पांच पत्तों

में उबाली हुई कँगनी (कङ्गु नामक अन्न) और चीनी रख दी जाती है, बादमें पाँच सुहागिन स्त्रियां आ कर उसे खाती हैं। नौवें दिन भी कँगनी, अरहर, मूंग, गेहूं और जी इनको एक साथ उबाल कर तथा थोड़े तेलमें भूंज कर उसे चीनीके साथ पाँच सुहागिन स्त्रियोंको खिलाते हैं। उस दिन बच्चेको भूलनेमें बिठा कर भुलाते और नृत्य गीत करते हैं। २१वें दिन बच्चेको उड़चव देवीके मन्दिरमें ले जा कर उसे देवीके चरणों पर रख देते हैं। पुजारी एक पानको कैंचीकी तरह बना कर उसे बच्चेके सिर पर छुआता है, फिर ध्यानस्थ हो कुछ देर तक बैठ कर बच्चेका नाम बता देता है। इसके उपरान्त सब मिल कर फूल, हलदी और सिन्दूर चढा कर घर लौट आते हैं। इसके बाद किसी दिन बच्चेके बाल कटा देते हैं।

विवाह स्थिर होने पर लड़कीवाला लड़केको २०) रुपये देता है। विवाहके दिन कन्यापक्षके लोग कन्याको ले कर लड़केके घर पहुँचते हैं। लड़की यदि समर्थ हो तो पैदल नहीं तो बैल पर चढ़ कर जाती है।

कन्यापक्षवाले जब लड़केके घरके पास पहुंचते हैं, तब वरपक्षके लोग एक पात्रमें धूप और दूसरेमें दीपक जला कर उनकी आरती उतारते हैं। पीछे लड़कीवाले भी वरपक्षवालोंकी आरती उतारते और फिर घरमें प्रवेश करते हैं।

इसके उपरान्त वर और कन्या दोनों माड़के नीचे कम्बल बिछा कर बैठते हैं। इस समय एक लिङ्गायत चेलवासी मन्त्र पढ़ता रहता है। पीछे वह वर-कन्याको धान्य देते हुए आशीर्वाद कर कन्याके गलेमें मङ्गलसूत्र बाँध देता है। इसके उपरान्त भोजनादि कर चुकने पर विवाह-कार्य समाप्त हो जाता है।

इनमें स्त्रियोंके पहले पहल ऋतुमती होने पर उन्हें तीन दिन तक एक जगह बैठना पड़ता है। इस समय वे सिर्फ भात, गुड़ और नारियल खाती हैं। चौथे दिन बबूलके पेड़के तले जा कर दाहिने हाथसे आलिङ्गन करतीं और घरमें आ स्नान कर शुद्ध होती हैं।

पुत्र और कन्या ज्यादा होने पर ये कन्याका विवाह करते हैं, किन्तु यदि पुत्र न हो तो एक कन्याको घर ह रखते हैं। ऐसी लड़कीको बासवी कहते हैं, यह व्याह नहीं कर सकती। शुभ दिनमें वह कन्या पान, सुपारी, फूल और नारियल ले कर उड़चव देवीके मन्दिरमें पहुंचती है। यहां पुजारी देवीको पूजा कर लड़कीके कण्ठमें स्वर्ण वा काँचकी माला और मस्तक पर कण्डेकी राख लगा कर कहते हैं—"आजसे तुम बासवी हुई।" बासवी हो कर वह इच्छानुसार वेश्यावृत्ति कर सकती है, इसमें किसीको कुछ उज्र नहीं; किन्तु उस दिनसे उसे रोज देवीके मन्दिरमें जा कर देवी पर पङ्खेको हवा करनी पड़ती है, जिससे देवीके शरीर पर एक भी मक्खी न बैठ सके। पिता-माताके मरे पीछे वही सम्पत्तिकी मालकिन होती है। उसकी लड़की हो तो वह अच्छे घरमें व्याही जा सकती है।

इनमें भी एक समाज है। सामाजिक झगड़ा होने पर चेलवाड़ी उसका निबटेरा कर देते हैं। कोई अगर उनकी बातको न माने, तो वह उसी समय जातिसे छेक दिया जाता है। जन्म और मृत्युमें ये ११ दिन तक अशौच मानते हैं। विवाहित जम्बूकी मृत्यु होने पर उसे समाधिस्थानमें ले जा कर चेलवाड़ी द्वारा उसके सिर पर विभूति और मुंहमें सोनेका एक टुकड़ा रखवा दिया जाता है। इसके बाद उसे जमीनमें गाड़ देते हैं। बासवी औरतोंके लिए भी यही नियम है। परन्तु अविवाहितकी मृत्यु होने पर उसे ला कर सिर्फ गाड़ देते हैं, भस्म आदि कुछ नहीं लगाते।

जम्बू—उड़ीसाके अन्तर्गत कटक जिलेकी एक छोटी शाखा नदी। यह फल्स् प्वाइन्टके पास वङ्गोपसागरमें जा मिली है। इसमें नावका चलाना बड़ी जोखमका काम है। सागरसङ्गमके पास एक चर पड़ गया है, वहां भाटाके वक्त १ फुट पानी रहता है। कभी कभी इसमें भाटाके समय १८ फुट पानी रहता है। समुद्रके किनारेसे १२ मील दूरी पर देलपाड़ा नामक स्थान तक इसमें बड़ी नाव जा सकती है। अब यह वर्द्धमान महाराजके अधिकारमें है।

जम्बूक (सं० पु०) १ शृगाल, गीदड़। २ वाराहीकन्द। ३ व्राह्मी। ४ मत्स्याक्षी। ५ पीत लोध्र।

जम्बूका (सं० स्त्री०) काकलीद्राक्षा, किसमिस।

जम्बुकी (सं० स्त्री०) शृगाली, मादा गीदड़।

जम्बूखण्ड (सं॰ पु॰) जम्बुखण्ड देखो।

जम्बूद्वीप (सं॰ पु॰) पृथिवीके सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीप। इसको लवणसमुद्र चारों ओरसे घेरे हुए है। जम्बूद्वीप पृथिवीके बीचमें और अन्य छह द्वीप चारों ओर कमल दलोंकी तरह अवस्थित हैं। भागवतके मतसे—जम्बूद्वीप लाख योजन विस्तीर्ण और पद्मपत्राकार कोषकी तरह अवस्थित है। यह पद्मपत्रकी भांति गोल और लाख योजन विस्तीर्ण लवणसमुद्र द्वारा वेष्टित है। यह द्वीप नौ खण्डोंमें विभक्त है। प्रत्येक खण्ड नौ हजार योजन विस्तीर्ण और सीमापर्वतों द्वारा भलीभांति विभक्त है। इन नौ खण्डोंके नाम इस प्रकार हैं—इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, हरिवर्ष, किम्पुरुष, भारत, केतुमाल और भद्राश्व। इनमेंसे इलावृत जम्बूद्वीपके बीचमें है। इसके उत्तरमें क्रमशः नीलपर्वत रम्यक, श्वेतपर्वत हिरण्मयवर्ष, शृङ्गवान् पर्वत और उसके उत्तरमें कुरुवर्ष है तथा उसके बाद समुद्र पड़ता है। इलावृतके दक्षिणमें क्रमशः निषध पर्वत, हरिवर्ष हेमकूट, किम्पुरुषवर्ष, हिमालय और भारतवर्ष है, फिर उसके बाद समुद्र पड़ता है। इलावृत वर्षके पूर्वमें क्रमशः गन्धमादन पर्वत, भद्राश्ववर्ष और फिर समुद्र है, तथा पश्चिम दिशामें माल्यवान् पर्वत, केतुमालवर्ष और फिर समुद्र पड़ता है।

इलावृतके बीचमें सुमेरु नामका एक ८४ योजन ऊंचा स्वर्णपर्वत है। सुमेरुके निम्नदेशमें पद्मकिञ्जल्ककी तरह २० पर्वत और भी हैं, जैसे—कुरङ्ग, कुरर, कुसुम्भ, वैकङ्क, त्रिकूट, शिखर, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शितिवास, कपिल, शङ्ख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर और नारद। इलावृतकी पूर्वकी तरफ मन्दर, दक्षिणमें मेरुमन्दर, पश्चिममें सुपार्श्व और उत्तरकी तरफ कुमुदपर्वत है। मन्दर पर्वत पर बहुयोजन विस्तृत एक महान् चूतवृक्ष है। निपतित आम्रसमूह विदीर्ण हो कर अरुणोदा नामक एक नदी मन्दरपर्वतसे प्रवाहित हो कर इलावृतकी पूर्वदिशाको प्लावित कर रही है। इस प्रकारसे मेरुमन्दर पर्वत पर बहु योजन विस्तृत एक विशाल जम्बूवृक्ष भी है। इसी जम्बूवृक्षके कारण इस द्वीपका नाम जम्बू हुआ है। यहां हस्तिप्रमाण पतित जम्बूफलसे इक्षुरस एक नदीकी सृष्टि हुई है, जो इलावृतके दक्षिण भागको प्लावित कर रही है। इस नदीका नाम जम्बू नदी है। इसके किनारेकी मिट्टीमें 'जाम्बूनद' नामका सुवर्ण उत्पन्न होता है। इलावृतसे पश्चिममें सुपार्श्व पर्वत पर एक बहुत बड़ा कदम्बवृक्ष है। इस वृक्षके पांच कोटरोंसे मधुकी धारा बह कर उस स्थानको आमोदित करती है। उत्तर दिशामें कुमुद पर्वत पर एक बृहत् वटवृक्ष है। यह वृक्ष कल्पतरुके समान है। लगातार उसमेंसे दूध, दही, घी, मधु, गुड़, अन्न, वस्त्र, अलङ्कार आदि निकलते रहते हैं, जिससे वहांके अधिवासियोंको किसी प्रकारका अभाव नहीं रहता। इलावृतवर्ष पर दूध, मधु, इक्षुरस और जलसे परिपूर्ण चार ह्रद तथा नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र नामके चार देवकानन हैं जो नाना शोभाओंसे सुशोभित हो वहांके लोगोंको सर्वदा प्रसन्न रखते हैं। सुमेरु पर्वतके पूर्वमें जठर और देवकूट, दक्षिणमें कैलास और करवीर, पश्चिममें पवन और पारियात्र तथा उत्तरमें मकर और त्रिशृङ्ग नामके आठ पर्वतों पर देवगण सर्वदा क्रीड़ा करते रहते हैं। (भाग॰ ५।१६ अ॰)

इसी प्रकार अन्यान्य खण्डोंमें भी बहुतसे नद, नदियों और पर्वतोंका वर्णन है।

उनका विवरण उन्हीं शब्दोंमें देखो।

सभी पुराणोंमें जम्बूद्वीपका ऊपर लिखे अनुसार वर्षभेदादिका विवरण मिलता है सिर्फ कहीं कहीं पर्वतादिके नाममें थोड़ा बहुत अन्तर पाया जाता है। (भारत भीष्मपर्व, लिङ्गपु॰ विष्णुपु॰ ४९ अ॰, वामनपु॰ ११ अ॰, कूर्मपु॰ ४५ अ॰, वराहपु॰ ७७ अ॰, अग्निपु॰ ११९ अ॰ गरुडपु॰ ५५ अ॰, कुमारिकाखण्ड इत्यादि ग्रन्थोंमें जम्बूद्वीपका विवरण लिखा हुआ है।) पौराणिक ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि, इस समय जिसको हम एशिया महाद्वीप कहते हैं, वही पुराणोंमें जम्बूद्वीपके नामसे वर्णित है। पहले इसका कोई कोई अंश पानीमें डूबा हुआ था तथा कोई कोई अंश अब डूब गया होगा।

रत्नाकर और बंग देखो।

बौद्ध मतसे—जम्बूद्वीपसे भारतवर्षका बोध होता है।

जैनमतानुसार—मध्य लोकके अन्तर्गत असंख्यात द्वीप और समुद्रोंमेंसे एक द्वीप। यह जंबूद्वीप सबके बीचमें है। इसके चारों ओर लवणसमुद्र, उसके चारों तरफ धातुकीखण्ड द्वीप, उसके चारों ओर कालोदधि समुद्र, उसके चारों तरफ पुष्करवर द्वीप और उसके चारों ओर पुष्करवर समुद्र है, इसी प्रकार एक दूसरेको (क्रमशः एक द्वीप और एक समुद्र) वेष्टित किये हुए अन्तके स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्य द्वीप और समुद्र हैं।

जम्बूद्वीप एक लाख योजन (एक योजन २००० कोसका माना गया है) विस्तृत है. इसका आकार थालीके समान गोल है। इसकी परिधि ३१६२२७ योजन, ३ कोश, १२८ धनुष (३॥ हाथका एक नाप) १३ अङ्गुलसे कुछ अधिक है। इसके चारों तरफ जो लवणसमुद्र है, वह इससे दूना अर्थात् २ लाख योजनका है, इसी तरह आगेके द्वीप और समुद्र दूने दूने विस्तारवाले समझना चाहिये।

इस जम्बूद्वीपमें भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र या खण्ड हैं।

"भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि।"
(तत्त्वार्थसूत्र ३ अ०)

उक्त सातों वर्ष या खण्डोंको विभाग करनेवाले पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी ये छह पर्वत हैं, जिनको वर्षधर (क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले) कहते हैं। इन सातों पर्वतोंके समूहको षट्कुलाचल कहते हैं। इन पर्वतोंका रंग क्रमशः पीला, सफ़ेद, ताये हुए सोने जैसा, मयूरकण्ठी (नीला), चाँदी जैसा शुक्ल सोने और जैसा पीला है। इसके सिवा हिमवन्पर्वत पर पद्म, महाहिमवान् पर महापद्म, निषिध पर तिगिञ्छ, नील पर केशरी, रुक्मी पर महापुण्डरीक और शिखरीपर्वत पर पुण्डरीक नामके छह ह्रद हैं। इन छह ह्रदोंमेंसे पहले ह्रदको (पूर्वसे पश्चिम तक) लम्बाई १००० योजन, चौड़ाई (उत्तरसे दक्षिण तक) ५००, योजन और गहराई दश योजनकी है। दूसरा महापद्म ह्रद इससे दूना और उससे दूना तीसरा तिगिञ्छ ह्रद है। शेष उत्तरके तीन पर्वतों पर भी इसी परिमाणके ह्रद हैं। इन छहों ह्रदोंमें कमलके आकारके रत्नमय छह उपद्वीप हैं, जिनमें श्री, ह्री, धृति, कीर्त्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामकी सात देवियां वास करती हैं। ये देवियां आजन्म ब्रह्मचारिणी रहती हैं। श्री, ह्री आदि शब्द देखो।

उक्त छह वर्षधर पर्वतोंके ह्रदमेंसे गङ्गा, सिन्धु, रोहित्, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा ये चौदह नदियां निकली हैं, जो क्रमशः पूर्व और पश्चिमकी ओर बहती हुई लवणसमुद्रमें जा मिली हैं। गंगा, सिन्धु आदि शब्द देखो। प्रत्येक क्षेत्रमें दो दो नदियां हैं, जैसे—भरतक्षेत्रमें गङ्गा और सिन्धु, हैमवत्क्षेत्रमें रोहित और रोहितास्या, इत्यादि।

भरतक्षेत्र, जिसमें कि हम रहते हैं, दक्षिण उत्तरमें ५२६ $\frac{6}{19}$ योजन विस्तृत है। हैमवत्क्षेत्र इससे दूना, उससे दूना हरि और उससे दूना विदेहक्षेत्र है। विदेहके उत्तरके तीन क्षेत्र (पर्वत भी) दक्षिणके बराबर हैं। इनमेंसे भरत और ऐरावतक्षेत्रके अधिवासियोंको आयु आदि उत्सर्पिणी (वृद्धि) और अवसर्पिणी (हानि) कालके प्रभावसे बढ़ती और घटती रहती है। विदेह क्षेत्रमें सदा ४थे काल (जिसमें जीव मुक्ति पा सकें) रहता है। बाकीके चार क्षेत्रोंमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं होता, वहां कल्पवृक्ष होते हैं, जिससे अधिवासियोंको अपने आप वाञ्छित वस्तुएं प्राप्त होती रहती हैं। अन्यान्य द्वीपोंका विस्तार आदि सब कुछ दूना दूना समझना चाहिये। परन्तु ३रे पुष्करद्वीपके बीचमें मानुषोत्तर पर्वत होनेके कारण उसके आगे मनुष्योंका गमन नहीं हो सकता। उसके आगे विद्याधर, ऋद्धिमान् ऋषि भी नहीं जा सकते और न उसके आगे मनुष्य उत्पन्न ही होते हैं। (क्षेत्रसमास)

भरतक्षेत्र छह भागोंमें विभक्त है, जिसमें पाँच म्लेच्छ खण्डोंमें म्लेच्छ और एक आर्य क्षेत्रमें आर्य रहते हैं। भारतवर्षके सिवा चीन, जापान आदि सब आर्य क्षेत्रमें ही अवस्थित हैं।

भरतक्षेत्र देखो।

जम्बूनदप्रभ (सं० पु०) भावि बुद्धका नाम।

जम्बूनदी (सं० स्त्री०) १ जम्बुद्वीपस्थ विख्यात जम्बुवृक्षसे पतित जम्बूफल-रससे जात नदी, जम्बुद्वीपके विख्यात जामुनके पेड़के रससे निकली हुई नदी।

"जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्महामुने।
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि वै ॥
पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः।
रसेन तेषां प्रख्याता तत्र जम्बूनदीति वै ॥"
(विष्णुपु० २।२।१९ २०)

२ ब्रह्मलोकसे प्रवाहित सप्तनदीके अन्तर्गत एक नदी, ब्रह्मलोकसे निकली हुई सात प्रधान नदियोंमेंसे एक नदी।

"ब्रह्ममेकादशमन्या कथया प्रतिपद्यते ।
वस्वौकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती ॥
जम्बूनदी च सीता च गंगा सिन्धुश्च सप्तमी ॥"
(भारत ६।६ अध्याय)

जम्बूमार्ग (स० पु०) पुष्करस्थ तीर्थभेद, पुष्करके एक तीर्थका नाम। इस तीर्थमें जो भ्रमण करता है उसे अश्वमेध यज्ञ करनेका फल होता है और वहां पांच रात वास करनेसे वह समस्त पापोंसे विमुक्त हो कर अन्तमें मोक्ष पाता है।

'जम्बूमार्गं गमिष्यामि जम्बूमार्गं महाम्बरम्।
दृष्टं संवत्सरस्योऽपि मत्येके महीपते ॥"
(हरिवंश १११ अ०)

जम्बूर (फा० पु०) १ जम्बूरक, पुरानी छोटी तोप जो अक्सर ऊंटों पर लादी जाती थी। २ भ्रमुरका, जम्बूरा। ३ तोपका चरख।

जम्बूर—दाक्षिणात्यके कोङ्कण प्रदेशमें अम्बरनाथपत्तन तालुकका एक अवस्थित ग्राम। यह अक्षा० १९° ३६' उ० और देशा० ७२° ११' पू०में अवस्थित है। प्रत्येक रविवारको बाजार लगता है। यहां कोङ्कणाधिप शिवराजका समाधि-मन्दिर बना है।

जम्बूरक (फा० पु०) १ तोपका चरख। २ पुरानी छोटी तोप जो प्रायः ऊंटों पर लादी जाती थी। ३ भंवर कली।

जम्बूरची (फा० पु०) १ सिपाही, गोलन्दाज, तुपकची। २ जम्बूरक नामक छोटी तोपका चलानेवाला, तोपची।

जम्बूरा (फा० पु०) १ भंवरकली, भंवर कड़ी। २ तोप चढ़ानेका चरख। ३ मस्तूल पर आड़ा लगा रहनेवाला लकड़ीका बल्ला जिस पर पालका डांडा रहता है। ४ सुनारों या लुहारोंका एक बारीक काम करनेका औजार जिससे वे तार आदि पकड़ कर ऐंठते, ऐंठते या घुमाते हैं। इसका आकार कामके अनुसार छोटा बड़ा भी होता है और अक्सर करके यह लकड़ीके टुकड़ेमें जड़ा हुआ रहता है। इसमें चिमटेकी भांति चिपक कर बैठ जानेवाले दो चिपटे पत्ते होते हैं। इन पत्तोंके पार्श्वमें एक पेंच होता है जिससे पत्ते खुलते और कसते हैं। इसको बांक भी कहते हैं।

जम्बूराज (सं० पु०) राजजम्बु, गुलाब जामुन जातिका एक फल।

जम्बूल (स० पु०) १ जम्बूवृक्ष, जामुनका पेड़। २ केतक वृक्ष, केतकी। (स्त्री०) ३ वरपक्षीय स्त्रियोंके परिहास वचन वर और कन्यापक्षका परस्पर हास्य परिहास।

जम्बूलमालिका (स० स्त्री०) १ वर और कन्यापक्षका परिहास वचनसमूह। २ कन्या और वरकी मुखचन्द्रिका। ३ जम्बूलपुष्पकी माला, केतकी फूलकी माला।

जम्बूवनज (स० स्त्री०) श्वेतजवापुष्प, सफेद अड़ौल। जम्बुवनज देखो।

जम्बूवृक्ष (स० पु०) जम्बू नामका एक वृक्ष, जामुनका पेड़। जम्बू देखो।

जम्बूस्वामी—जैनियोंके अन्तिम श्रुतकेवली, इनका जन्म राजा श्रेणिकके राजत्वकालमें अर्हद्दास सेठकी स्त्री जिनदासीके गर्भसे हुआ था।

प्रसिद्ध जैनाचार्य गुणभद्र स्वामी अपने उत्तरपुराणमें लिखते हैं—पाटलीपुत्रके अन्तर्गत राजगृह नगरमें विपुलाचल पर्वत पर सुधर्माचार्य भगवान्के उपदेशसे जम्बूस्वामीको यौवन अवस्थामें ही वैराग्य आ गया। इन्होंने पिता माता आदि घरके लोगोंसे दीक्षा ग्रहण करनेके लिए आज्ञा मांगी, किन्तु उन्होंने आज्ञा न दी, प्रत्युत कहा कि,—"हम भी थोड़े वर्ष बाद तुम्हारे साथ दीक्षा धारण करेंगे।" इसके उपरान्त इनके पिता माताने इन्हें मोहजालमें फंसानेके लिए बहुत कुछ प्रयत्न किये। किन्तु उनके मनकी गतिको किसी तरह भी फिरा न सके।

इनके पिता सागरदत्त, कुबेरदत्त आदि चार सेठोंसे यह कह चुके थे कि, वे अपने पुत्रके साथ उनकी चार कन्याओंका विवाह करेंगे। पिता माताने उक्त बातको पुत्रसे कहा। जंबूकुमारको इच्छा न होते हुए भी माता पिताकी बात माननी पड़ी। जंबूकुमारका पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री और रूपश्रीके साथ विवाह हो गया। विवाह करने पर भी ये उदासीन रहते थे।

एकदिन रातको इनकी माता जिनदासी अपने पुत्रके मनकी जांच करनेके लिए उनके शयनागारके पास कहीं छिप गईं। उन्होंने देखा कि, जंबूकुमार अपनी स्त्रियोंमें इस प्रकार बैठे हैं, मानो उन्हें जबरन किसीने कैद कर रखा हो। इसी समय पोदनपुरके राजा विद्युद्राजके पुत्र विद्युत्प्रभ जो बड़े भाईसे लड़ कर घरसे निकल चोरी, डकैती आदि दुर्व्यसनोंमें फँस गये थे—वे भी यहाँ डकैती करनेके अभिप्रायसे आ पहुंचे। यहां आ कर उन्होंने जिनदासीको जगती हुई देख उनसे जगनेका कारण पूछा। जिनदासीने कहा—"मेरे एक ही पुत्र है, वह भी सङ्कल्प कर बैठा है कि, मैं सुबह ही दीक्षा लेनेके लिए तपोवनमें जाऊंगा। यदि तुम मेरे पुत्रको समझा बुझा कर रोक सको, तो मैं तुम्हें मुंह मांगा धन दूंगी।" यह सुन कर विद्युत्प्रभ सोचने लगे कि "हाय! जिसका धन है, वह तो उसे छोड़ना चाहता है और मैं उसे चुरानेके लिए यहां आया हूं। धिक्कार है मुझे!" इसके बाद विद्युत्प्रभ जंबूकुमारके पास गये। जंबूकुमारसे उनका अनेक प्रश्नोत्तर हुआ। आखिर जंबूकुमारके मनोमुग्धकर पवित्र धर्मोपदेशसे विद्युत्प्रभके मनने पलटा खाया। इनके उपदेशका ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनकी माता और चारों स्त्रियोंको भी संसारसे वैराग्य हो गया।

जम्बूकुमार संसारसे विरक्त हो कर तपोवन (विपुलाचल)को चले। वहां जा कर इन्होंने सुधर्माचार्यके समीप दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षाका नाम जम्बूस्वामी हुआ। इनके साथ विद्युत्प्रभ (जो पहले चोर थे)के सिवा और भी पांच सौ योद्धाओंने दीक्षा ग्रहण की थी।

सुधर्माचार्यकी मोक्ष प्राप्त होनेके उपरान्त इन्हें केवलज्ञान हुआ था। इनके भव नामके एक शिष्य थे; जिनके साथ चालीस वर्ष तक विहार (भ्रमण) करते हुए इन्होंने धर्मोपदेश दिया था। इनके बाद जैनोंमें फिर केवलज्ञानके धारक, सर्वज्ञ या अर्हन्त नहीं हुए हैं। इनका जीव (आत्मा) ब्रह्मस्वर्गके ब्रह्महृदय नामक विमानसे चय कर आया था। ये पूर्व जन्ममें उक्त स्वर्गमें विद्युन्माली नामके इन्द्र थे; इनको प्रियदर्शना, सुदर्शना, विद्युत्प्रभा और विद्युद्वेगा ये चार देवियां थीं।

(जैन उत्तरपुराण पर्व ७६)

श्वेताम्बर जैन-सम्प्रदायके ऋषिमण्डलप्रकरणवृत्ति नामक ग्रन्थमें इनके पिताका नाम ऋषभदत्त और माताका नाम धारिणी पाया जाता है। इसके सिवा उक्त सम्प्रदायके स्थविरावलीचरित नामक ग्रन्थमें इनकी आठ स्त्रियोंका उल्लेख मिलता है—पद्मश्री, कनकश्री, जयश्री, समुद्रश्री, पद्मसेना, नभःसेना, कनकसेना और कनकवती। और सब विषयमें दोनोंका प्रायः एक मत है।

जम्बीर (सं० क्ली०) वैद्योंके अम्लविकिस्सार्थ शाकविशेष। जम्बीर देखो।

जम्भ (सं० पु०) जभते जृम्भते इति जभ गात्रविनामे अच्। १ एक दैत्य, महिषासुरका पिता। किसी समय जम्भ इन्द्रसे पराजित हुआ था। बाद इसने शिवजीको तपस्या की। शिवने इसकी घोर तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर वर दिया—"तुम! त्रिभुवनविजयी पुत्र लाभ करोगे।" दैत्य यह वर पा कर जब घरको लौटा आ रहा था तो इन्द्रने नारदसे यह सम्वाद पा कर रास्तेमें ही युद्ध करनेके लिये उसे ललकारा। जम्भ स्नान करनेका बहाना लगा कर किसी एक सरोवरके पास चला गया। वहां पर उसने अपनी स्त्रीको देखा। इसके बाद उसका गर्भोत्पादन कर वह इन्द्रके साथ लड़नेके लिये पहुंचा। इसी युद्धमें इन्द्रसे वह दैत्य मारा गया। (मार्कण्डेयपुराण)

२ प्रह्लादके तीन पुत्रोंमेंसे एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ३।८।१५) ३ हिरण्यकशिपुका एक पुत्र, प्रह्लादका भाई। (हरिवंश १६८।१०) ४ हिरण्यकशिपुके श्वशुर और कयाधूके पिता। (भागवत ६।१८।१२) जभते भक्षयते अनेनेति जभ करने घञ्। ५ दन्त, दांत। जभ-णिच्-ण्वुल्। ६ जंबीर, जंबीरी नीबू। जम्भ भावे घञ्। ७ भक्षण,

भरत चक्रवर्तीके माम्राज्यमें थोड़े ही दिनके बाद स्वयंवर (कन्या द्वारा पतिका स्वयं वरण करना) विधिका प्रचलन हुआ। प्रथम हो काशीके राजा अक म्पनने अपनी पुत्री सुलोचनाका स्वयंवर कराया। स्वयंवर मण्डपमें बड़े बड़े विद्याधर और राजा महा राज एवं अनेक राजपुत्रोंके उपस्थित होते हुए भी सुलोचनाने हस्तिनापुरके स्वामी राजा जयकुमारके गलेमें वरमाला डाल दी। राजराजेश्वर भरत चक्र-वर्तीके ज्येष्ठपुत्र अर्ककीर्ति भी स्वयंवरमें उपस्थित थे। सुलोचनाने जब जयकुमारके गलेमें माला पहना दो तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। उसो समय वे जयकुमारसे युद्ध करनेके लिए तैयार हो गये। दोनोंमें घमसान युद्ध हुआ। अर्ककीर्तिको अभिमान था कि, मैं चक्रवर्तीका पुत्र हूं, मुझे कौन जीत सकता है। किन्तु यह नियम है कि अमर्यादियोंका ही असफल चूर होता है। राजा जयकुमार असीम पराक्रमी और उदार चेता महापुरुष थे। उन्होंने जीवित अवस्थामें ही अर्ककीर्तिको पकड़ लिया और पोछे बन्धनसे मुक्त कर यथाप्पूर्वक उन्हें छोड़ दिया। चक्रवर्तिपुत्र अर्ककीर्ति लज्जित हो अपने घर गये। जब सुलोचनाके साथ जयकुमार अयोध्या आये, तो भरतचक्रवर्ती उन पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बार बार उनको प्रशंसा करने लगे। अनन्तर जयकुमारने हस्तिनापुर जानेकी आज्ञा मांगी। भरतचक्रवर्तीने उन्हें यथाप्पूर्वक विदा कर दिया। (जैन हरिवंशपुराण १२।८-१ अ०)

एक दिन सन्ध्याके समय हस्तिनापुरके स्वामी राजा जयकुमार अपनी अनेक रानियों सहित महलके छत पर बैठे थे, कि इतनेमें एक विद्याधर (आकाश गमन आदि शक्तियोंसे धारक मनुष्य या राजा) अपनी स्त्रीके साथ उनके सामनेसे निकल गये। विद्याधरोंको देखते ही वे मूर्छित हो गये। उनकी मूर्छित अवस्थाको देख कर रानियां घबरा गईं और अनेक उपचार करने लगीं। जब कुछ होश हुआ तो वे "हाय ! प्रभावती तू कहां गयी गई इत्यादि कह कर दुःखित होने लगे।" उसी समय उन्हें पूर्व जन्मका स्मरण हो आया। उधर रानी सुलोचनाको भी महलके छज्जे पर कबूतर कबूतरीको क्रीड़ा करते देख मूर्छा आ गई। उन्हें भी पूर्व जन्मकी बातें स्मरण हुआ और 'हिरण्यवर्मा'को पुकारने लगीं। 'हिरण्यवर्मा'का नाम सुनते ही जयकुमारने कहा— "प्रिये ! मेरा ही नाम हिरण्यवर्मा था।" सुलोचनाने गद्गद्कण्ठसे कहा—"नाथ ! मैं भी पहले जन्ममें प्रभा वती थी।" इस प्रकार अपनेको पूर्व भवके विद्याधर जान जयकुमार और सुलोचनाको परम आनन्द हुआ। दोनों सुखसे काल यापन करने लगे। अन्तःपुरको अन्य रानियोंको इनके पूर्व जन्मका यह चरित देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सुलोचनासे पूर्व जन्मकी कथा सुनानेके लिये अनुरोध करने लगीं। सुलोचना कहने लगी—

'इसी पृथिवी पर किसी जगह सुकान्त नामक एक वणिक अपनी स्त्री रतिवेगाके साथ सुखसे रहते थे। किसी कारणसे रुद्रदत्तकारि नामक एक व्यक्तिसे सुकान्तको शत्रुता हो गई। रुद्रदत्तकारिका दूसरा नाम भवदेव था। उसने सुकान्त और रतिवेगाको अग्निमें डाल कर मार डाला। दम्पतीमें परस्पर खूब प्रेम था। मर कर वे दोनों अपने कर्मके मावानुसार कबूतर कबूतरी हुए। रुद्रदत्त कारिको भी राजदण्ड हुआ। राजा मन्त्रिने उसको अग्नि निक्षिप्त करनेका आदेश दिया। वह मर कर मार्जार हुआ। वहां भी उसने अपना वैर न छोड़ा और कबूतर कबूतरीको खा गया। कबूतर और कबूतरोके जीवने किसी समय मुनि महाराजके लिये किसीको आहार दान करते देख उसका अनुमोदन किया था, अतः उस पुण्यके प्रभावसे कबूतर तो मर कर हिरण्यवर्मा नामक विद्याधर हुआ और कबूतरी उसकी स्त्री (प्रभावती) हुई। वह मार्जार भी, कुछ दिन बाद मर कर विद्युद्वेग नामका चोर हुआ। राजा हिरण्यवर्मा और प्रभावती को किसी कारणवश संसारसे वैराग्य हो गया। दोनों ने राज्य-सुखको छोड़ कर मुनि और आर्यिकाकी दीक्षा ले ली। वनमें भी उन्हें शान्ति न मिली। घूमता फिरता विद्युद्वेग भी वहां आ पहुंचा। मुनि एवं आर्यिकाको देख कर उसे पूर्व जन्मके प्रबल शत्रुताके कारण क्रोध आ गया और दोनों को उसने प्राणरहित कर दिया। दोनों मर कर सौधर्म नामक प्रथम स्वर्गमें देव और देवांगना हुए। विद्युद्वेगको राजाने कारावासका दण्ड

दिया। वहां उसे एक चारणमुनिके उपदेशसे ज्ञानकी प्राप्ति तो हो गई थी, पर मुनि-हत्याके पापसे पीछे उसे मर कर नरकके कष्ट सहने पड़े। नरकसे निकल कर ज्ञान की महिमासे वह भीम नामका वणिक् पुत्र हुआ और संसारसे विरक्त हो उन्होंने मुनि दीक्षा ले ली। किसी समय उपरोक्त देव अपनी देवाङ्गनाके साथ मर्त्यलोकमें आये और उन्हें मुनि भीमदेवके दर्शन हुए। भीमदेवसे धर्मका स्वरूप पूछने पर उन्होंने धर्मकी व्याख्या के साथ साथ उनके पूर्व-जन्मका वर्णन भी सब कह सुनाया। भीमदेव और देव एवं देवाङ्गनाकी शत्रुता का यहीं अन्त हो गया और सब परस्पर प्रेम करने लगे। मुनि भीमदेवकी तपस्याके प्रभावसे मोक्षकी प्राप्ति हो गई और हम दोनोंने स्वर्गसे च्यवन कर यहां जयकुमार और सुलोचनाके रूपमें जन्मग्रहण किया।"

(जैनहरिवंश १२।१०-१२)

पूर्व जन्मका स्मरण होने पर जयकुमार और सुलोचनाको पहलेकी विद्याएं (ऋद्धियां भी) प्राप्त हो गईं। दोनों तीर्थदर्शनार्थ कैलास पर्वत पर पहुंचे, जहांसे श्री ऋषभनाथ भगवान्‌को मोक्षकी प्राप्ति हुई है। इसी समय सौधर्म स्वर्गमें इन्द्र अपनी सभामें जयकुमारके परिग्रहपरिमाण-व्रतकी प्रशंसा कर रहे थे। रतिप्रभ नामक एक देव भी वहीं बैठे थे। इन्द्रके मुखसे जयकुमारकी प्रशंसा सुन कर रतिप्रभदेव उनकी परीक्षा करनेके अभिप्रायसे कैलास पर्वत पर पहुंचे और एक पीनोन्नत-पयोधरा सुन्दरी युवतीका रूप धारण कर, चार सखियों-के साथ जयकुमारके पास गये। हाव-भाव दिखाते हुए उक्त छद्मवेशधारी रतिप्रभ जयकुमारके सामने जा कर कहने लगे—"हे जयकुमार! सुलोचनाके स्वयंवरके समय जिस नमि विद्याधरके साथ आपका युद्ध हुआ था, मैं उसी की स्त्री हूं। सुरूपा मेरा नाम है। आपके रूप और बल-की प्रशंसा सुन कर मुझसे रहा न गया, मैं नमिसे विरक्त हो कर आपको अपना सर्वस्व सौंपनेके लिए यहां आई हूं, मैं सब तरहसे आप पर मोहित हूं। मुझ पर कृपा कीजिये, मुझे अङ्गीकार कर अपनी दासी बनाइये और मेरे तमाम राज्यको ग्रहण कर भोग कीजिये।" यह सुन कर जयकुमारने उत्तर दिया—"हे सुन्दरी! आप ऐसे वचन न कहें। आप स्त्री-रत्न हैं और मेरे लिए आप पर स्त्री होनेके कारण माताके समान हैं। ऐसे राज्यकी मुझे तनिक भी आवश्यकता नहीं, जिसके लिए मैं अपना और आपका धर्म नष्ट करूं। परस्त्री और पर-सम्पत्तिको मैं कदापि ग्रहण नहीं कर सकता, चाहे प्राण रहें या जायं। बहन! आप जैसी रूपवती हैं, वैसी ही यदि शीलवती होतीं तो, आप मानवी नहीं देवी थीं। मुझे अत्यन्त दुःख है कि, आप इतनी सुन्दरी हो कर भी पतिव्रता न हुईं। आपको उचित है कि, पतिकी पदसेवा कर इस शरीरका सदुपयोग करें।"

इसके बाद जयकुमारने सामायिक या आत्मध्यानमें मन लगा कर ध्यानमें लीन हो गये। परन्तु इतने पर भी रतिप्रभने उनका पीछा न छोड़ा। उन्हें ध्यान-च्युत करनेके लिए नाना तरहके हावभावादि करने लगे। अन्तमें झक मार कर उन्होंने विकराल रूप धारण कर जयकुमारको डरानेका भी प्रयत्न किया, परन्तु धीर-वीर जयकुमारका हृदय जरा भी चपल न हुआ। जब वे किसी तरह भी जयकुमारको ध्यान-च्युत न कर सके तब उन्हें इन्द्रकी प्रशंसा सार्थ जान कर अत्यन्त हर्ष हुआ। अपना यथार्थ रूप धारण कर कहने लगे—"हे धीरश्रेष्ठ! आप धन्य हैं। आपके सत्शील और हृदय की स्थिरताको देख कर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ है। मैं सुन्दरी युवती नहीं किन्तु स्वर्गका देव हूं, मेरा नाम है रतिप्रभ। स्वर्गमें इन्द्रके मुंहसे आपकी जैसी प्रशंसा सुनी थी, आप सर्वथा उसके योग्य हैं।" इस प्रकार जयकुमारकी प्रशंसा करते हुए रतिप्रभदेवने उन्हें वस्त्राभूषण आदि उपहारमें दिये और उनको नमस्कार कर वहांसे प्रस्थान किया।

इसके बाद ये कई दिन तक कैलास पर्वत पर भगवान्‌की पूजा करते रहे। फिर अपने राज्यमें आ कर कुछ दिन राज्य किया। अन्तमें संसारसे विरक्त हो राज्यसुखको त्याग कर ये मुनि हो गये और कठिन तपस्याके फलसे इन्हें मोक्ष प्राप्त हुई। रानी सुलोचनाने भी श्रावकके व्रत धारण किये और समाधिपूर्वक मरण होनेसे उनकी आत्मा स्वर्गमें गई। (महापुराणान्तर्गत आदिपुराण)।

विस्तृत था। इसके बाद जयचन्दके साथ लाख सिपाही और प्रायः १ लाखसे ज्यादा सेना थी। इसी युद्धमें जयचन्द निहत हुए थे।'

२ नागरकोट या कांगड़ाके राजा, सम्राट् अकबरके समय इनका प्रादुर्भाव हुआ था।

३ जयपुरनिवासी एक ग्रन्थकार।

जयचन्द्राय छाबड़ा देखो।

४ मिथ्यात्वखण्डन नामक जैन ग्रन्थके रचयिता।

जयचन्द्राय छाबड़ा—जयपुर निवासी एक हिन्दीके प्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार। इनकी जाति खण्डेलवाल और छाबड़ा गोत्र था। आपने हिन्दी भाषामें निम्नलिखित धर्म ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

ग्रन्थ		
१ सर्वार्थसिद्धि	विक्रम सम्वत्	१८६१में
२ परीक्षामुख (न्याय)	"	१८६३में
३ द्रव्यसंग्रह	"	१८६३में
४ स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा	"	१८६६में
५ आत्मख्याति-समयसार	"	१८६४में
६ देवागम (न्याय)	"	१८६६में
७ अष्टपाहुड़	"	१८६७में
८ ज्ञानार्णव	"	१८६९में
९ भक्तामरचरित्र	"	१८७०में
१० सामायिक पाठ		
११ चन्द्रप्रभकाव्यके २य सर्गका न्याय भाग	समय मालूम नहीं।	
१२ मतसमुच्चय (न्याय)		
१३ पत्रपरीक्षा (न्याय)		

इन सब ग्रन्थोंमें सिवा 'भक्तामरचरित्रके सभी उच्च कोटिके तात्त्विक ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थोंकी हिन्दी भाषा प्राचीन ढूंढ़ारी होने पर भी अति सरल है।

जयजयवन्ती (हिं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक संकर रागिणी। यह धूलकी बिलावल और सोरठके योगसे बनती है। इसमें समस्त स्वर शुद्ध लगते हैं। यह वर्षा ऋतुमें तथा रातको ६ दण्डसे १० दण्ड तक गाई जाती है। कुछ लोगोंका कहना है कि यह मालकोषकी सहचरी अथवा मेघरागकी भार्या है।

जयढक्का (सं० स्त्री०) जयार्था ढक्का, मध्यपदलो०। वाद्य विशेष, प्राचीनकालका एक प्रकारका बड़ा ढोल। अवधान करनेके लिये ढोल बजाया जाता था।

जयंत कवि—हिन्दीके एक कवि। ये अकबर बादशाहके दरबारमें रहते थे। १५५४ ई०में इनका जन्म हुआ था।

जयतन (सं० पु०) नन्दीवृक्ष।

जयताल (सं० पु०) तालके साठ प्रधान भेदोंमेंसे एक। इसमें क्रमसे एक लघु एक गुरु, दो लघु दो गुरु दो प्लुत और एक लघु होता है। यह ताल मालताका कहलाता है।

जयति, जयत् (हिं० पु०) गौरी और ललितके मेलसे बननेवाला एक संकर राग।

जयतिश्री (स० स्त्री०) एक रागिणी। यह दीपक राग की भार्या मानी जाती है।

जयती (हिं० स्त्री०) श्रीरागके अन्तर्गत एक रागिणीका नाम। यह सम्पूर्ण जातिकी रागिणी है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। किसी किसीका कहना है कि पूरिया ललित और वसन्तके योगसे बनी है। बहुतसे लोग इसे टोड़ी, विभास और बड़हंसके मेलसे बनी मानते हैं। संस्कृत पर्याय—जयेती।

जयतीर्थ (सं० क्ली०) १ तीर्थविशेष, एक तीर्थस्थान। (सिन्धु०)

२ एक प्रसिद्ध दार्शनिक। पद्मनाभ और अक्षोभ्यतीर्थ के शिष्य। इनका पूर्वनाम ढोंढ रघुनाथ था, संन्यास ग्रहण के पीछे ये जयतीर्थ नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने संस्कृत भाषामें अनेक ग्रन्थ रचे हैं। इन्होंने आनन्दतीर्थकृत प्रायः समस्त ग्रन्थोंकी टीकाएं लिखी हैं। उनमेंसे निम्नलिखित टीकाएं मिलती हैं—ब्रह्मसूत्रभाष्यकी तत्त्वप्रकाशिका नामक टीका, उपाधिखण्डनकी तत्त्वप्रकाशिकाविवरण नामकी टीका, ब्रह्मसूत्रव्याख्यानकी न्यायसुधा नामक टीका, अनुव्याख्यानन्यायविवरणकी पञ्जिका, प्रमाण लक्षणकी न्यायकल्पलता नामक टीका, ईशोपनिषद्भाष्य की टीका, कर्मनिर्णयकी टीका, कथालक्षणकी टीका, कार्यनिर्णयकी टीका, तत्त्वविवेक टीका, तत्त्वसंख्यानकी टीका, तत्त्वोद्योतकी टीका, मायावादखण्डनकी टीका, मन्त्रोपनिषद्भाष्यकी टीका, प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानखण्डन की टीका, भगवद्गीताभाष्यकी प्रमेयदीपिका नामक

टीका, गीतातात्पर्यनिर्णयको न्यायदीपिका नामक टीका, विष्णुतत्त्वनिर्णयकी टीका और अणुभाष्यकी टीका इसके सिवा जयतीर्थ पद्यमालिका, वेदान्तवादावलि, प्रमाणपद्धति आदि न्याय और वेदान्त सम्बन्धी कई-एक ग्रन्थोंका प्रणयन किया है। १२६८ ई०में जयतीर्थका तिरोभाव हुआ था। नृसिंहस्मृत्यर्थसागरमें इनका मत उद्धृत पाया गया है।

जयतुङ्गनाड—मन्द्राज प्रान्तके त्रिवाङ्कुड राज्यका एक पुराना उपविभाग। सुचीन्द्रम् मन्दिरमें राजा आदित्य-वर्माके समयकी जो शिलालिपि मिली, उसमें लिखा है कि त्रिवाङ्कुड राज्य १८ विभागोंमें बंटा हुआ था। जय-तुङ्गनाड उसकी राजधानी था। इसका अपर नाम जय-सिंहनाड है। किन्तु आजकल जयतुङ्गनाड़की सीमाका निर्धारण अनुमानसापेक्ष है। मालूम होता है कि यह घाट पर्वतकी पूर्व दिक्में अवस्थित था।

जयतोड़ा—बङ्गालके अन्तर्गत मानभूम जिलेका एक परगना। इसका रकबा करीब २२५० मील होगा। यह पञ्चकोटके राजाको जमींदारीके अन्तर्भुक्त है।

जयत्‌कल्याण (सं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक सङ्कर राग। यह कल्याण और जयन्तिश्रीको मिलानेसे बनता है। यह रात्रिके प्रथम प्रहरमें गाया जाता है।

जयत्सेन—१ विराटनगरमें गुप्तावस्थानके समयका नकुलका एक नाम। २ मगधके एक राजा। ३ पुरुवंशीय सार्व-भौम राजाके पुत्र। सार्वभौमके औरस और केकयराज कन्याके गर्भसे इनकी उत्पत्ति है। ४ सोमवंशीय अहीन राजाके एक पुत्रका नाम।

जयद (सं० त्रि०) जयं ददाति जय दा क्विप्। जयदाता, जितानेवाला।

जयदत्त (सं० पु०) जयेन विजयेन दत्तएव। १ इन्द्रपुत्र। २ एक राजा। इनके पुत्रका नाम देवदत्त था।

३ एक प्रसिद्ध आयुर्वेदविद्, विजयदत्तके पुत्र। इन्होंने संस्कृत भाषामें अश्ववैद्यक नामक अश्वचिकित्सा सम्बन्धी एक ग्रन्थ प्रणयन किया था।

जयदुर्गा (सं० स्त्री०) दुर्गाकी एक मूर्ति। तन्त्रसारमें जयदुर्गाकी मूर्त्तिका इस प्रकार विवरण पाया जाता है—

'कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥'
दुर्गा देवी।

जयदेव—संस्कृत साहित्यमें इस नामके बहुतसे कवियोंका उल्लेख मिलता है, जिनमें बङ्गालके गीतगोविन्द-प्रणेता जयदेवकी ही सर्वत्र प्रसिद्ध है।

१ गीतगोविन्द-प्रणेता जयदेवके पिताका नाम था भोजदेव और माताका नाम रामादेवी। वीरभूम जिलेके केन्दुविल्व (केन्दुली) ग्राममें इनका जन्म हुआ था। जय-देवचरितके लेखकका कहना है कि वे १५वीं शताब्दी-में विद्यमान थे। परन्तु हम इन्हें उससे भी प्राचीन समझते हैं, क्योंकि श्रीधरदासके सूक्तिकर्णामृतमें इनकी कविता उद्धृत है। गीतगोविन्दकी एक प्राचीन प्रतिमें "—लक्ष्मणसेन नाम नृपतिसमये श्रीजयदेवस्य कविराजप्रतिष्ठा" लिखा है। इससे भी प्रमाणित होता है कि महाकवि जयदेव गौड़ाधिप लक्ष्मणसेनकी सभामें थे। 'प्रसन्नराघव'में लिखा है, जयदेव उत्कलराजके सभाकवि थे।

भक्तिमाहात्म्य आदि संस्कृत ग्रन्थोंमें जयदेवका परिचय इस प्रकार मिलता है—

थोड़ी उम्रमें ही जयदेवको वैराग्य हो गया और वे पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चले गये। वहां वे सर्वदा पुरुषोत्तमकी सेवा करते रहते थे। जगन्नाथ भी इनके गुणों पर मुग्ध हो गये थे। इसी समय एक ब्राह्मण जगन्नाथकी कृपासे एक कन्या प्राप्त कर उसे उन्हींके श्रीचरणोंमें अर्पण करनेके लिए आया। पुरुषोत्तमने प्रत्यादेश दिया—'जयदेव नामका एक मेरा सेवक है, तुम उसे ही यह कन्या अर्पण करो।" इस पर ब्राह्मण अपनी कन्या पद्मावतीको ले कर जयदेवके पास पहुंचा और उनसे सब हाल कहा। जयदेव किसी तरह भी राजी न हुए। आखिर वह पद्मावतीको इनके पास छोड़ कर चला गया। जय-देवने पद्मावतीसे घर पहुंचा आनेके लिए कहा, पर वे राजी न हुई और कहने लगीं—"पिताने जगन्नाथके आदेशानुसार मुझे तुम्हारे हाथ सौंपा है, तुम्हें ही मैं

मनवचनकायसे पति बना चुकी हूँ। मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं भी न जाऊँगी—तुम्हारी ही परिचर्या किया करूँगी।" जयदेव क्या करते, वे पद्मावतीको त्याग न सके, उन्हें पुनः गृहस्थाश्रममें फँसना ही पड़ा।

जयदेवने अपने घरमें नारायणविग्रहकी प्रतिष्ठा की, उनका हृदय प्रेमसे गद्गद हो गया। इसी समय उन्होंने गीतगोविन्दका प्रचार किया था। कहा जाता है—वे गीतगोविन्दमें यह बात न लिख सके थे, कि, श्री गोविन्द जगत्पिता परमपुरुष हैं वे ही श्रीकृष्ण श्री राधिकाके पैर पकड़ेंगे। दैवक्रम एक दिन वे समुद्र नहाने गये थे, इतनेमें भगवान जयदेवका भेष धारण कर उनके घर पहुँचे और पुस्तकको खोल कर उसमें "देहि पद पल्लवमुदारं" यह लिख आये।

जब जयदेव घर आये तो पद्मावती कहने लगी— "अभी तो तुम पुस्तकमें कुछ लिख कर गये थे, इतनी जल्दी समुद्रसे लौट आये!" जयदेवको पद्मावतीने सब हाल कह सुनाया, उन्होंने कहा—"तुम्हीं धन्य हो, तुम्हारे भाग्यमें महाप्रभुके दर्शन बदे थे, मैं अभागा हूँ, इसीलिए मुझे दर्शन न मिले।"

जयदेवके गीतगोविन्दकी महिमा चारों तरफ फैल गई। भक्त और भावुकगण गीतगोविन्दके गीत गा कर आपा भूल जाते थे। प्रवाद है कि, एक मालिनी खेतमें जा कर गीतगोविन्द गा रही थी। स्वयं जगन्नाथ उसे सुनने गये थे जिससे उनके श्रीअङ्ग पर धूलि और काँटे लग गये थे। राजाने मन्दिरमें जा कर जब जगन्नाथके अङ्ग पर धूलि और काँटे देखे, तो वे उसका कारण पूछने लगे। इस पर प्रत्यादेश हुआ कि, अमुक स्थान पर एक मालिनी गीतगोविन्द गा रही थी, उसका गीत सुनने गये थे, इसलिए शरीर पर धूलि और काँटे लग गये हैं। तबसे जगन्नाथ मन्दिरमें बराबर गीतगोविन्दका गान किया जाता है।

राधामाधवकी इन पर बड़ी कृपा थी। एक दिन वे अपना छप्पर छा रहे थे, धूप-भरी दिन राधामाधवको दया आई। वे इन्हें फूस उठा कर देने लगे। जयदेवने समझा था कि पद्मावती यह काम कर रही है, पर बाहर आ कर देखा तो वहाँ, किसीको भी न पाया। राधामाधवके हाथोंमें कालिख लगी देख कर उन्होंने निश्चय कर दिया कि यह काम राधामाधवका ही है। इन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे राधामाधवकी उत्सव करनेकी इच्छासे अर्थोपार्जनके लिए परदेश चले। रास्तेमें डकैतोंने इनका सर्वस्व छीन लिया और हाथ-पैर काट कर इन्हें एक कूएँमें डाल दिया। इसी समय उस स्थानसे एक राजा जा रहे थे। उन्होंने 'कृष्ण कृष्ण' की आवाज सुन कर कुएँसे इनको निकाला और अपने महलमें ले गये। जयदेव राजप्रासादमें ही रहने लगे। एक दिन वैष्णवका भेष धारण कर वे ही डकैत राजभवनमें भोजन करने आये। जयदेवने उन्हें पहचान लिया और उनके साथ अच्छा सलूक किया।

उधर रानीके साथ भी पद्मावतीकी खूब मुहब्बत हो गई। एक दिन रानी अपने भाईकी मृत्युके कारण भावजका सहगमन सुनकर रो रही थीं। पद्मावतीने कहा "यह तो स्वाभाविक बात है, पतिके मरने पर पतिप्राणा स्त्रीके प्राण ठहर ही नहीं सकते।" रानीने पद्मावतीकी परीक्षा करनेके लिए एक दिन उनको जयदेवकी मृत्यु हो जानेकी खबर सुना दी। पद्मावतीके तुरंत ही प्राण छूट गये। पीछे जयदेवने आ कर उन्हें पुनर्जीवित किया। इसके उपरान्त वे अपने इष्टदेव राधामाधवको झोलीमें डाल कर वृन्दावन चल दिये। वहाँके कालीघाट पर एक महाजनने सन्तुष्ट हो कर राधामाधवका एक मन्दिर बनवा दिया। जयदेवके अप्रकट होनेके बाद जयपुरके राजा उस मूर्तिको जयपुर ले गये और घाटो नामक स्थानमें उसको स्थापन कर दी।

जयदेवने अपना शेष-जीवन जन्मभूमि केन्दुलीमें ही बिताया था। कहा जाता है कि वे १८ कोस चल कर रोज गङ्गास्नान किया करते थे। एक दिनकी जिक्र है कि वे गङ्गा न जा सके, इतनेमें गङ्गाने कृपा कर केन्दुलीमें ही पदार्पण किया और इनकी मनस्कामना पूर्ण की। यहीं इनकी मृत्यु हुई थी। अभी तक इनके स्मरणार्थ माघसंक्रान्तिको यहाँ मेला लगता है।

जयदेवका गीतगोविन्द ग्रन्थका एक अपार्थिव पदार्थ है। इसका हिन्दी, बङ्गला, आसामी, उड़िया आदि

भारतीय नाना भाषाओंमें अनुवाद हो कर प्रकाशित हुआ है। गीतगोविन्द देखो।

२ प्रसन्नराघव और चन्द्रालोकके रचयिता। ये नैया-यिक भी थे इन्होंने अपने "प्रसन्नराघव"की प्रस्तावनामें एक शङ्का उठाई है कि सुकवि कैसे नैयायिक हो सकता है? इसका समाधान अपने विलक्षण रीतिसे किया है। नीचे वे श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

"येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेपि किं हीयते।
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिता
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः॥

श्लोकका तात्पर्य यह है कि, जिन लोगोंकी वाणी कोमल काव्यरचनाके चातुर्यकी कलासे भरी और चमत्कार उपजानेवाली है, क्या उनकी वही वाणी न्यायशास्त्रके कर्कश और कुटिल शब्दोंके उच्चारणसे हीन हो सकती है? भला जिन विलासियोंने आनन्दमें आ कर अपनी प्रियतमाओंके गोल गोल स्तनों पर नखोंके चिह्न किये हैं। वे क्या मदोन्मत्त हस्तीके समुच्च गण्ड-स्थलों पर अपने वाणोंका घाव नहीं करते?

उन्होंने अपने पिताका नाम महादेव, माताका नाम सुमित्रा और अपने आपको कुण्डिनपुरवासी बतलाया है। इन्होंने अपने ग्रन्थमें चोर, मयूर, भास, कालिदास, हर्ष और वाण कविका नामोल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि ये सातवीं शताब्दीके पीछे हुए हैं। 'प्रसन्नराघवके सिवा' इन्होंने 'चन्द्रालोक' नामका एक आलङ्कारिक ग्रन्थ भी रचा है।

३ त्रिपुरासुन्दरीस्तोत्रके कर्त्ता। ४ न्यायमञ्जरीसारके कर्त्ता और नृसिंहके पुत्र। ये नैयायिक थे। ५ रसा-मृत नामक वैद्यकशास्त्रके रचयिता।

६ मिथिलावासी एक प्रसिद्ध नैयायिक, हरिमिश्रके शिष्य और भ्रातुष्पुत्र। इनकी पक्षधर उपाधि थी। ये नवद्वीपके प्रसिद्ध नैयायिक रघुनाथशिरोमणिके समसाम-यिक थे। इन्होंने तत्त्वचिन्तामण्यालोक वा चिन्तामणि-प्रकाश, न्यायपदार्थमाला और न्यायलीलावतीविवेक नामक प्रसिद्ध न्याय ग्रन्थ और द्रव्यपदार्थ नामक वैशे-षिक ग्रन्थकी रचना की है। इन ग्रन्थोंमें तत्त्वचिन्ता-मण्यालोक ही बड़ा और आदरणीय है।

रघुनाथ शिरोमणि देखो।

७ एक छन्दःशास्त्रकार।

८ गङ्गाष्टपदी नामक संस्कृत काव्यके रचयिता।

९ दशतन्त्र नामक व्याकरणके कर्त्ता।

१० एक मैथिल कवि। ये कवि विद्यापतिके समसामयिक थे और सुगौनाके राजा शिवसिंहकी सभा में रहते थे।

जयदेव—इस नामके नेपालके दो राजा हो गये हैं। एक तो अति प्राचीन हैं उनका यह भी पता नहीं कि उन्होंने किस समय राजत्व किया था। हां, २य जयदेवके समयका शिलालिपि अवश्य मिलता है। उसमें लिखा है—महाराज शिवदेवने मौखरि-राज भोगवर्माकी कन्या और मगध राज आदित्यसेनकी दौहित्री वत्सदेवी-का पाणिग्रहण किया था। इन्हीं वत्सदेवीके गर्भसे (२य) जयदेवका जन्म हुआ जिनका दूसरा नाम पर चक्रकाम था। इन्होंने गौड़, उड़, कलिङ्ग और कोशला-धिपति श्रीहर्षदेवकी कन्या एवं भगदत्तवंशीय राज दौहित्री राज्यमतीके साथ विवाह किया था (१)। ये राजकुमार होने पर भी कवि थे। उक्त शिलालिपिके पांच श्लोक इन्होंने स्वयं बनाये थे। इन २य जय-देवके समय और वंशनिर्णयके विषयमें यहांके प्रधान प्रधान पुराविदोंने नया मत प्रकट किया है। ये कौनसे हर्षदेवके जामाता हैं, इस बातका कोई भी निश्चय नहीं कर सके हैं। प्रधान प्रत्नतत्त्वविद् डा० बुहर (Buhler)-ने लिखा है—उक्त भगदत्त और श्रीहर्षदेव सम्भवतः प्राग्ज्योतिष-राजवंशीय हैं, जिस वंशमें हर्ष-वर्द्धनके समसामयिक कुमारराजने जन्मग्रहण किया था। (२)

प्रत्नतत्त्ववित् मि० फ्लीटने बहुत विचारनेके बाद कहा है कि, जयदेव (२य) ठाकुरीय वंशके राजा थे, ये १५३ हर्ष सम्वत् अर्थात् ७५८ ई०में राज्य करते

(१) पशुपति-मन्दिरके शिलालेखकी १३वीं और १४वीं पंक्ति-में ऐसा लिखा है।

(२) Note 57 by Dr. Buhler in Twenty-three Inscriptions from Nepal, p. 68

थे। (१) डा० कीलहोर्नने भी फ्लीटके मतको माना है। अतएव स्वीकार करना पड़ता है कि, जयदेवके मामा मौखरीवंश सम्राट् हर्षवर्द्धनसे पृथक् थे। उक्त हर्षदेव और जयदेवके नानिया ससुर दोनों ही प्राग्ज्योतिष राजवंशीय थे एवं नेपालके राजा जयदेव सम्राट् हर्षवर्द्धनसे १११ वर्ष पीछे हुए हैं।

हम पहले ही प्रमाणित कर चुके हैं कि, गुप्तराजवंश उग्र हैहय। एवं जयदेव लिच्छविवंशीय थे। लिच्छविवंशीय राजाओंके शिलालेखोंमें गत सं० और गुप्त सं० लिखा है। डा० बुहूर आदिके मतसे, सम्राट् हर्षवर्द्धनने ही नेपाल जीत कर वहां अपना संवत् चलाया था। परन्तु हमें इसका विशेष प्रमाण नहीं मिलता जिससे उक्त मतको मान्य कर सकें। अब विद्वानोंने दो हर्ष संवतोंका उल्लेख किया है, उनमेंसे एक तो ईसासे ४५० वर्ष पहलेका था और दूसरा ६०० ई०से प्रारम्भ हुआ था। उनके मतसे शिलादित्य हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद ही गड़बड़ी हुई थी, उसी समयसे हर्ष संवत्का प्रारंभ हुआ था। (२) परन्तु चीन परिव्राजक हुएनसुआंगकी जीवनीमें लिखा है कि शिलादित्य हर्षवर्द्धन ६४८ ई० तक जीवित थे। इसलिए उनकी मृत्युसे हर्ष संवत्का प्रारम्भ बिलकुल असम्भव है। निश्चित ईसासे ४५० वर्ष पहले जो हर्ष संवत्का उल्लेख है, उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

आजतक प्राचीन ग्रन्थों वा शिलालेखोंमें ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है कि काश्मीरके सिवा और भी कहीं हर्ष संवत् प्रचलित था। बाणभट्ट और हुएन सुआंगने हर्षवर्द्धनके विषयमें बहुतसी बातें लिखी हैं परन्तु संवत् प्रचलनके विषयमें उन्होंने कहीं भी कुछ नहीं लिखा। ऐसी दशामें हर्षवर्द्धनके साथ हर्ष-संवत्का सम्बन्ध है या नहीं इसमें सन्देह हो है। अतएव जयदेव आदिके शिलालेखोंमें उत्कीर्ण संवत्के अंकोंको हम निःसन्देह हर्ष संवत् नहीं कह सकते। हर्ष शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। नेपालकी पार्वतीय वंशावलीमें लिखा है कि, विक्रमादित्य ठाकुरीवंशीय प्रथम राजा अंशुवर्माके ससुरके समयमें नेपालमें आये थे और वे ही यहां वि० संवत् प्रचलित कर गये थे। (३)

गुप्त-सम्राटोंके समय भी नेपालमें प्रबल पराक्रमी लिच्छविवंशीय राजा राज्य करते थे। गुप्त संवत् प्रवर्तक महाराजाधिराज १म चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य)ने लिच्छवि राजकन्याका पाणिग्रहण किया था, और उन्हींके गर्भसे महावीर समुद्रगुप्तका जन्म हुआ था। जिस तरह सम्राट् हर्षवर्द्धनके पितामह आदित्यवर्द्धनने महासेनगुप्तकी भगिनी महासेनगुप्ताका पाणिग्रहण किया था (४) और जैसे मौखरिराज आदित्यवर्माने हर्षगुप्तकी भगिनी हर्षगुप्ताके साथ विवाह किया था उसी तरह महाराजाधिराज समुद्रगुप्तके पुत्र विक्रमादित्य उपाधिधारी २य चन्द्रगुप्तने नेपालके लिच्छविराज ध्रुवदेवकी भगिनी ध्रुवदेवीका पाणिग्रहण किया था। महाराज ध्रुवदेव और ठाकुरीवंश महाराज अंशुवर्मा दोनों एक ही समयमें हुए हैं। नेपालके आविष्कृत ३८ संवत्-ज्ञापक शिलालेखमें महाराजाधिराज ध्रुवदेवके राजत्वकालमें महाराज अंशुवर्मा द्वारा तिलमक निर्माणका प्रसङ्ग है। डा० बुहूर आदि प्रत्नतत्त्वविदोंने एक स्वरसे इस ३८के अंकको हर्ष संवत्ज्ञापक कहा है। परन्तु हम पहले ही कह चुके हैं कि, नेपालमें कभी हर्ष संवत् प्रचलित हुआ था, इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। यह भी कह चुके हैं कि नेपालमें विक्रमादित्यके द्वारा गुप्त संवत् प्रचलित हुआ था। ऐसी दशामें नेपालके राजा ध्रुवदेवकी भगिनी ध्रुवदेवीके साथ २य चन्द्रगुप्तके विवाह होनेके पहले और सम्भवतः विक्रमादित्य-उपाधिधारी गुप्त संवत् प्रवर्तक १म चन्द्रगुप्तके साथ लिच्छवि राजकन्या कुमारदेवीके विवाहके समय समागत १म चन्द्रगुप्तके द्वारा नेपालमें गुप्त संवत्का प्रचार हुआ होगा। ऐसी हालतमें अंशुवर्मा और ध्रुवदेवके शिलालेखके अंक गुप्त संवत्ज्ञापक ठहरते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

अब २य जयदेवके शिलालेखमें उत्कीर्ण १५३के

(१) Fleet's Corp. Inscriptionum Indicarum, p. 189

(२) Journal Roy. As. Soc. Vol. XII p. 44, (O. S.)

(३) Inscriptions from Nepal, p. 38.

(४) Epigraphia Indica, vol. I

श्रद्धको भी गुप्त-संवत्-ज्ञापक कहा जा सकता है। गुप्तराजवंश देखो। यदि यह ठीक है, तो प्रमाणित होता है कि लिच्छविराज २य जयदेव (२८८×३१८।२०=) ६१८।१८ ई०में नेपालके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे। इस समय सम्राट् हर्षवर्द्धन शिलादित्य कन्नौजके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। बाणभट्ट और युएनचुआंगको वर्णनासे मालूम होता है कि, सम्राट् हर्षदेवने समस्त उत्तर भारत और गौड़, उड्र, कलिङ्ग आदि अनेक स्थानोंमें अपना आधिपत्य विस्तृत किया था। ऐसी अवस्थामें सन्देह नहीं कि २य जयदेवके ससुर गौड़-उड्र-कलिङ्ग-कोशलाधिप श्रीहर्षदेव और शिलादित्य हर्षवर्द्धन दोनों एक ही व्यक्ति थे।

यहां एक प्रश्न हो सकता है। प्रत्नतत्त्वविद् फ्लीटने लिखा है, 'हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद कन्नौजराज्यके विशृङ्खल हो जाने पर मगधराज आदित्यसेनने महाराजाधिराज अर्थात् सम्राट् उपाधि प्राप्त की थी। शाहपुरके शिलालेखानुसार वे ६७२-७३ ई०में विद्यमान थे (७)।' इसलिए आदित्यसेनकी दौहित्रीके पुत्र २य जयदेवका ६१८ ई०में विद्यमान रहना असम्भव है।

परन्तु हम प्रमाणित कर चुके हैं कि, "शाहपुरकी सूर्यप्रतिमा पर उत्कीर्ण शिलालेखमें ६६६ संवत्में राजा आदित्यसेनका उल्लेख है।" गुप्तराजवंश देखो। ऐसी दशामें यही निर्णीत होता है कि ६०८ ई०में आदित्यसेन मगधके सिंहासन पर बैठे थे। उस समय भी श्रीहर्षदेवका आधिपत्य विद्यमान था। मगधराज आदित्यसेनके पिता माधवगुप्त हर्षदेवके सहचर थे तथा सम्बन्धमें भी आदित्यसेन सम्राट् हर्षवर्द्धनके किसी नातेसे भाई लगते थे। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि, आदित्यसेन और हर्षदेव दोनों समसामयिक ही थे।

इसमें यह आपत्ति हो सकती है कि, जब माधवगुप्त हर्षके मित्र थे, तब उनके पुत्र आदित्यसेन हर्षदेवकी अपेक्षा उम्रमें छोटे होंगे। वर्तमानके प्रत्नतत्त्वविदोंने निर्णय किया है कि, सम्राट् हर्षवर्द्धन ६०६-७ ई०में सिंहासन पर बैठे थे। ऐसी हालतमें आदित्यसेनके ६०८ ई०में राज्याभिषिक्त होने पर भी ६१८ ई०में उनके दौहित्रीपुत्रका राज्य ग्रहण करना नितान्त असम्भव है। इसका उत्तर इस प्रकार है—चीन-परिव्राजक युएन-चुआंगकी जीवनीमें लिखा है कि, ६४० ई०में (८) उन्होंने वलभीराज्यमें जा कर वहांके राजा ध्रुवभट्टको देखा था। सम्राट् हर्षवर्द्धनकी पोतीके साथ इन ध्रुवभट्टका विवाह हुआ था। वे (६४७ ई०में) प्रयागकी धर्मसभामें श्रीहर्षदेवके पास मौजूद थे (८)।

बाणभट्टके हर्षचरितमें श्रीहर्षदेवके विवाहका प्रसङ्ग नहीं है, किन्तु उनके द्वारा दिग्विजयका प्रसङ्ग है। ऐसी दशामें यही अनुमान किया जा सकता है कि, उन्होंने सम्राट् होनेके बाद अपना विवाह किया था, पहले (अपनी इच्छासे) नहीं।

अतएव इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने ज्यादा उम्रमें विवाह किया था। ६०६ ई०के पहले राजपदके मिलने पर भी शायद उसी समय वे सम्राट् पद पर अभिषिक्त हुए थे। सम्भवतः विवाहके दूसरे वर्ष इनको कन्या राज्यमतीका जन्म हुआ था। राज्यमतीकी अवस्था जब १० वर्षकी थी, तब (सम्भवतः ६१६-१७ ई०में) लिच्छविराजकुमार २य जयदेवके साथ उनका विवाह हुआ था जो उनके समवयस्क थे।

श्रीहर्षचरितमें बाणभट्ट और हर्षका परिचय पढ़नेसे यह अनुमान नहीं होता कि श्रीहर्ष अल्प-वयस्क युवक थे। बाणभट्ट बहुत दिन तक हर्षकी सभामें थे। सम्भवतः बाणभट्टकी मृत्युके बाद प्रौढ़ावस्थामें हर्षका विवाह हुआ होगा। यदि यह ठीक है, तो हर्षदेवने ४० या ४१ वर्षकी उम्रमें (ई० सन् ६०६ ७में) विवाह किया था। ऐसा होनेसे प्रायः ५६६ ई०में हर्षदेवका जन्म हुआ था। पहले ही लिख चुके हैं कि, माधवगुप्त हर्षदेवके सहचर होने पर भी उनके पुत्र आदित्यसेनके किसी नातेसे हर्षदेवके भाई लगते थे। इस प्रकारसे आदित्यसेनको हर्षको अपेक्षा ७ ८ वर्ष छोटा समझना चाहिये। ऐसी दशामें प्रायः ५७०-७१ ई०में आदित्य-

(७) Fleet's Inscriptionum Indicarum, Vol III. p. 14.

(८) Cunningham's Ancient Geography of India p. 566.

(६) La Vie de Hiouen-Thsang par Stanislas Julien, p 254.

सेनका जन्म हुआ होगा। शायद आदित्यसेन एवं उनके दामादके अल्पवयसमें हो पुत्र पैदा हुए थे।

जैसे ज्योतिषमें ६१० ई०से ६४० ई०के भीतर अर्थात् ४७।२८ वर्षमें ही पुत्र, पोते और पुत्रके दामादका मुंह देख लिया था उसी प्रकार आदित्यसेनके भी (५७०से ६१८ ई०के भीतर) ४८।४८ वर्षके भीतर कन्या, दौहित्री और दौहित्रीके पुत्रका होना असम्भव नहीं।

महाराज आदित्यसेनको शिला-लिपिमें महाराजाधि राजको उपाधि दिया कर जो फ्लीट साहबने उन्हें सम्राट् समझ लिया है, परन्तु केवल महाराजाधिराज नाम देखकर किसीको सम्राट् नहीं माना जा सकता। राढ़ और वरेन्द्रमें मुसलमानोंका आधिपत्य विस्तृत होने पर भी जैसे गौड़ाधिप लक्ष्मणसेनके पुत्र विश्वरूपदेव क्षुद्रराज्यके अधीश्वर हो कर भी महाराजाधिराज परम-भट्टारककी उपाधिसे भूषित हुए हैं (१०)। उसी प्रकार आदित्यसेन भी केवल मगधके राजा हो कर महाराजाधिराजकी उपाधिसे विभूषित थे, न कि सम्राट् थे।

गुप्तराजवंश देखो।

ब्युह्लर साहबने नेपाल राज २य जयदेवके श्वशुर और ममिया श्वशुर दोनोंहीको एक ही गोत्र बतलाया है, किन्तु श्वशुर एवं मामाके पिता कभी भी एक वंशके नहीं हो सकते। सम्भवतः महावीर जयदेवने कामरूप-पति भगदत्त गोत्र कुमारराज भास्करवर्माको कन्या अथवा भगिनीका पाणिग्रहण किया था और उनके गर्भसे ही २य जयदेवको पत्नी राज्यमतीका जन्म हुआ था। इसी लिए शिलालेखमें राज्यमतीको 'भगदत्तराजकुलजा' कहा गया है।

२य जयदेवकी शिलालेखमें लिखा है—जयदेवको माता वत्सदेवीने अपने स्वामीके लिए पशुपतिको एक रजतपद्म उत्सर्ग किया था। शायद इस शिलालेखके खुद-नेसे कुछ ही पहले शिवदेवकी मृत्यु हुई थी। किन्तु होने पर भी उस समय जयदेव बालक थे।

जयदेव कवि—१ हिन्दीके कवि। इनकी कविता उत्तम होती थी। सं० १८१५में इनका जन्म हुआ था।

२ मैनपुरी जिलेके अन्तर्गत कम्पिलाके रहनेवाले एक हिन्दीके कवि। इनके गुरुका नाम सुखदेव मिश्र था। ये नवाब फाजिलअलीखांके पास रहते थे। सं० १७२८ ई०में इनका जन्म हुआ था।

जयदेवपुर—ढाका जिलेके अन्तर्गत भावाल राजकी राजधानी। भावाल देखो।

जयबल (सं० पु०) विराटभवनमें अवस्थित भीमसेन का दिनका उस समयका छद्मनाम जब वे विराटके यहां अज्ञातवास करते थे।

जयद्रथ (सं० पु०) जयत् रथो यस्य, बहुव्री०। १ सिन्धु सौवीर देशके एक राजा, वृद्धक्षत्रके पुत्र। ये दुर्योधनके बहनोई और दुःशलाके स्वामी थे। ये किसी समय काम्यकवनके भीतरसे जा रहे थे। उस समय पाण्डवगण भी उसी वनमें थे।

द्रौपदीको अकेली वनमें देख कर उनको पानेके लिए इनका मन ललचाया। इन्होंने पार्षद कोटीकास्यको दूतकी तरह द्रौपदीके पास भेजा। कोटीकास्यने द्रौपदी के पास जा कर कहा—"मैं सुरथ राजाका पुत्र हूं, मेरा नाम है कोटीकास्य। सिन्धुदेशाधिपति राजा जयद्रथने मुझे आपके पास यह पूछनेके लिए भेजा है कि, आप कौन हैं, किनको पुत्री और किनकी भार्या हैं?" द्रौपदीने अपना परिचय दे दिया। जयद्रथको परिचय मालूम होते ही वे उन्हें हरण करनेकी चेष्टा करने लगे। परन्तु भीम और अर्जुन द्वारा वे अत्यन्त अपमानित किये गये। दोनों भाइयोंने मिल कर जयद्रथका मस्तक मूंड़ दिया। जय-द्रथने इस अपमानका बदला लेनेकी इच्छासे महादेवको प्रस्थान किया। वहां पहुंच कर वे शङ्करकी तपस्या करने लगे। महादेवने सन्तुष्ट हो कर उन्हें वर मांगनेको कहा। जयद्रथने कहा—"भगवन्! मैं पांचों पाण्डवोंको युद्धमें पराजित करूं।" महादेवने उत्तर दिया—"नहीं तुम अर्जुनके सिवा चार पाण्डवोंको पराजित कर सकोगे। श्रीकृष्ण अर्जुनको सर्वदा रक्षा करते हैं, इस लिए अर्जुन देवोंके भी अजेय हैं। इसलिए मैं वर देता हूं कि, एक दिन तुम अर्जुनके सिवा युद्धमें अवशिष्ट पाण्डवोंको परास्त कर सकोगे।" इसके अनुसार इन्होंने द्रोणाचार्यके बनाये हुए चक्रव्यूहके द्वाररक्षक बन कर चारों पाण्डवोंको परास्त किया था। इसी चक्रव्यूहमें

(१०) Vide the Sena kings of Bengal, by N. Vasu.

असहाय प्रविष्ट अभिमन्यु निहत हुए थे। इसलिए अर्जुनने जयद्रथको अभिमन्युकी मृत्युका कारण समझ कर मार डाला। जयद्रथके पिताने पुत्र (जयद्रथ)-को वर दिया था कि, जो कोई उनका मस्तक भूमि पर गिरायेगा, उसका मस्तक उसी समय शतधा चूर्ण हो जायगा। अर्जुनने कृष्णके मुंहसे यह बात सुन रक्खी थी, इसलिए उन्होंने जयद्रथका मस्तक भूमि पर न गिरा कर कुरुक्षेत्र सन्निहित समन्तपञ्चकस्थ तपोपरायण वृद्धक्षत्रकी गोदमें रख दिया। तपस्या पूर्ण कर ज्यों वृद्धक्षत्र उठे त्योंही मस्तक भूमि पर गिर पड़ा। फिर क्या था, उन्हीं-का मस्तक शतधा चूर्ण हो गया। (भारत वन और द्रोण) इनके पुत्रका नाम सुरथ था।

२ काश्मीरके एक प्रसिद्ध कवि। सुभटदत्त, शिव और सङ्खधर इनके गुरु थे। इनके पूर्वपुरुषगण प्रायः सभी सुपण्डित और काश्मीरराज यशस्कार, अनन्त, उच्छल आदिके सचिव थे। इनके पिताका नाम-शृङ्गाररथ था ये भी राजराजके सचिव थे। इनके ज्येष्ठ सहोदर जयरथकृत तन्त्रालोकविवेक नामक ग्रन्थमें इनके पूर्वपुरुषों का परिचय दिया गया है। जयद्रथकी महामाहेश्वर और राजानक ये दो उपाधियां थीं। इन्होंने हरचरित-चिन्तामणि, अलङ्कारविमर्शिनी, अलङ्कारोदाहरण आदि संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना की थी।

३ वामकेश्वरतन्त्रविवरण नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता।

४ एक यामलका नाम।

जयधर्म (सं॰ पु॰) एक कुरुसेनापतिका नाम।

जयध्वज (सं॰ पु॰) १ कार्तवीर्यार्जुनके पुत्र, अवन्ती-के राजा। इनके पुत्रका नाम तालजङ्घ था। (लिंगपुराण ६८।१९ अ॰) २ जयंती, जयपताका।

जयन (सं॰ क्ली॰) जीयते अनेन करणे ल्युट्। १ अश्वादि की रक्षा, घोड़ेकी साज। २ जय।

जयनगर- विहारमें दरभङ्गा राज्यके मधुबनी सबडिविजन का गांव। यह अक्षा॰ २६° ३५´ उ॰ और देशा॰ ८६° ८´ पू॰में कमला नदीसे कुछ पूर्वको अवस्थित है। जनसंख्या ३५५१ है। मट्टीका एक किला बना है।

जयनगर—बङ्गालके चौबीसपरगना जिलेका नगर। यह अक्षा॰ २२° ११´ उ॰ और देशा॰ ८८°२५´ पू॰में अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ८८१० होगी। १८६९ ई॰में म्युनिसपालिटी हुई।

जयनन्दी—सूक्तिकर्णामृतधृत एक प्राचीन कवि।

जयनरेन्द्रसिंह—पातियालाके एक महाराज। ये एक सुकवि भी थे। १८४५ ई॰में इनके पिता करमसिंहकी मृत्यु होने पर ये राजसिंहासन पर बैठे थे। सिक्ख-युद्धके समय इन्होंने वृटिश गवर्मेण्टको यथेष्ट सहायता की थी, जिसके लिए गवर्मेण्टने इन्हें १८४६ ई॰में तीस हजार रुपये आयकी एक जागीर दी थी। इन्होंने अपने राज्यमें अन्य समस्त प्रकारकी पण्यद्रव्योंका महसूल उठा दिया था, इसलिए वृटिश गवर्मेण्टने दूसरे वर्ष लाहोर-राजकी अधीनस्थ कुछ सम्पत्ति छीन कर राजा नरेन्द्रसिंह-को प्रदान की थी। सिपाहीविद्रोहमें इन्होंने अंग्रेजोंकी यथेष्ट सहायता की थी, जिसके लिए, इन्हें दो लाख रुपये आयकी झज्झररियासत और पुरुषानुक्रमसे दत्तक ग्रहण करनेका अधिकार प्राप्त हुआ था। १८६१ ई॰ १ली जनवरीको इन्हें G. C. S. I. की उपाधि मिली थी। १८६२ ई॰में १४ नवम्बरको इनकी मृत्यु हुई, मरते समय ये अपने द्वादशवर्षीय पुत्र महेन्द्रसिंहको राज्य दे गये थे।

जयनाथ—तमसानदी प्रवाहित प्रदेशके एक महाराज। उच्चकल्पमें इनकी राजधानी थी, इसलिए ये उच्चकल्पके राजा, इस नामसे प्रसिद्ध हैं। ये व्याघ्र महाराजके औरस और अज्झितदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ये १७४-१७७ (गुप्त या कलचुरि) सम्वत्में राज्य करते थे। इनके पुत्रका नाम था महाराज सर्वनाथ।

जयनारायन—१ एक संस्कृत ग्रन्थकार। इनके पिताका नाम कृष्णचन्द्र था। इन्होंने शङ्कसङ्गीतकी रचना की थी।

२ सप्तशती चण्डीके एक टीकाकार।

जयनारायण तर्कपञ्चानन—एक बङ्गाली आलङ्कारिक और नैयायिक विद्वान्। १८६१ संवत्में कलकत्तेसे दक्षिण चौबीस परगनेके अन्तर्गत सुचादिपुर ग्राममें, पाश्चात्य वैदिक वंशमें इनका जन्म हुआ था। बचपनमें ही इनकी माता मर गई थी। इनके पिता हरिश्चन्द्र विद्या सागर एक प्रसिद्ध अध्यापक थे। इन्होंने न्याय व्याकरण

पाणि इन्हीं विषयोंमें व्युत्पत्ति लाभ की थी। कभी कभी ये अध्यापकोंके साथ पण्डित सभाओंमें भी जाया करते थे और वहां शास्त्रार्थमें अच्छे अच्छे पण्डितोंको परास्त करते थे। इस तरह थोड़े ही दिनोंमें इनकी खूब प्रसिद्धि हो गई। इन्होंने चतुष्पाठी स्थापन की और किसी समय "ला कमिटि" की परीक्षा दे कर जज-पण्डित होनेका प्रशंसापत्र प्राप्त किया। किन्तु अध्यापनामें व्याघात होगा जान, इन्होंने उस पदको स्वीकार नहीं किया। १८६० ई०में ये संस्कृत-कालेजमें दर्शन शास्त्रके अध्यापक नियुक्त हुए।

१८६८ ई०में ये पेन्शन प्राप्त कर बनारस रहने लगे। वि० संवत् १८६०में काशीमें ही इनकी मृत्यु हुई।

जयन्ती (सं० स्त्री०) जयन्त ङीप्। इन्द्रकी कन्या

जयन्त (स० पु०) जयतीति जि झच्। १ इन्द्रके पुत्र। २ विष्णु। ३ शिव, महादेव। ४ चन्द्र चन्द्रमा। ५ विराट पर्वमें हस्तिवेषी भीम भीमका अज्ञातमें नाम जब वे विराटके यहां गुप्तरूपसे रहते थे। भव देखो। ६ मरुत्वती गर्भजात धर्मके एक पुत्रका नाम। ये उपेन्द्र नामसे विख्यात हैं। ७ राजा दशरथके एक मन्त्रीका नाम। ८ पर्वतविशेष, एक पहाड़का नाम। ९ यात्रिक योगविशेष, यात्राका एक योग। यह योग उस समय पड़ता है जब चन्द्रमा उच्च हो कर यात्रीकी राशिसे ग्यारहवें स्थानमें पहुंच जाता है। यह युद्धादि यात्राका उपयुक्त समय माना गया है क्योंकि इस योगका फल शत्रुपक्षका नाश है। १० ध्रुवको कालिका एक तारा। ११ जैनमतानुसार विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तर-स्वर्गोंमेंसे एक। इस स्वर्गके देव सम्यक् दृष्टि होते हैं और दो बार मनुष्य जन्म धारण कर मोक्ष पाते हैं। इनकी आयु बत्तीस सागरकी होती है। ये आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करते हैं और सर्वदा अध्यात्मको चर्चा करते रहते हैं। (त्रि०) १२ विजयी, विजेता। (पु०) १३ एक रुद्रका नाम। १४ कार्तिकेय, स्कन्द। १५ धर्मके एक पुत्रका नाम। १६ अक्रूरके पिताका नाम।

जयन्त—१ काव्यप्रकाशकी जयन्ती या दीपिका नामक टीकाके कर्त्ता। इनके पिताका नाम भारद्वाज था। ये गुजरातके कविराज सारङ्गदेवके मन्त्रीपुरोहित थे। सारङ्गदेव भी इनकी विशेष भक्ति श्रद्धा करते थे। सम्वत् १३५० ज्येष्ठ मास कृष्णपक्षीय चतुर्थीके दिन काव्यप्रकाशदीपिकाकी रचना की थी।

२ एक प्रसिद्ध नैयायिक। इन्होंने न्यायकलिका और न्यायमञ्जरी इन दो ग्रन्थोंका प्रणयन किया है। काश्मीरमें ये ग्रन्थ प्रचलित हैं।

३ कातन्त्रव्याकरणकी "वादिघटमुद्गर" नामक टीकाके रचयिता।

४ प्रकाशपुरीके मधुसूदनके पुत्र, इन्होंने तत्त्वचन्द्रके नामसे प्रक्रियाकौमुदीकी टीका रची है।

५ पद्यामृतोद्धृत एक प्राचीन कवि।

६ जयन्तस्वामीके नामसे प्रसिद्ध एक ग्रन्थकार। इनके पिताका नाम कान्त, पितामहका नाम कल्याण स्वामी और पुत्रका नाम अभिनन्द था। इन्होंने विमलोदयमालाके नामसे आश्वलायनगृह्यसूत्रका भाष्य आश्वलायन कारिका और सामवेदके स्वरनिर्णयके विषयमें स्वराङ्कुश नामक एक संस्कृत ग्रन्थ रचा है। हरिहर, कमलाकर, नीलकण्ठ, आदि बड़े बड़े विद्वानोंने जयन्तस्वामीका ग्रन्थ उद्धृत किया है।

जयन्तपुर—निमिराजाका स्थापित किया हुआ एक नगर। यह गौतमाश्रमके निकट है।

जयन्तिका (सं० स्त्री०) जयन्तीव कायतीति कै क, ततो ह्रस्वो निपातनात्। १ हरिद्रा, हलदी। (राजनि०) २ दुर्गाकी सखी। (कालीका० ४७।२९) ३ एक प्राचीन राष्ट्र। (भाग० ५।१६।१९)

जयन्तिया—बङ्गाल और आसामके श्रीहट्ट जिलेका एक परगना। यह अक्षा० २४ ५२ से २५ ११ उ० और देशा० ९१ ४१ से ९२ ११ पू० पर जयन्तिया पहाड़ तथा सुरमा नदीके बीचमें अवस्थित है। भूपरिमाण ३०८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १२९१२० है। यहां बहुत सी छोटी छोटी नदियां हैं जो सबकी सब सुरमा नदीमें जा मिली हैं। नदीका किनारा बहुत ऊंचा होता पड़ता है। यहांके भूतपूर्व जयन्तिया राजा सिनती तथा खासी वंशके थे। इस वंशके बाईस राजाओंने यहां राज्य किया। प्रवाद है, कि अठारहवीं शताब्दीमें ये अहोमके सरदारोंसे परास्त किये गये और पकड़े गये। किन्तु इन्होंने

स्वीकृत उपढौकनको ग्रहण कर तथा पेशावर और लमघन अधिकार कर अपने देशको लौट गये। इसी समयसे पेशावर हिन्दू और मुसलमान राज्यका सीमा स्थान हो गया। १००१ ई०में २७ नवम्बरको सबक्तगीनके पुत्र सुलतान महमूदने १२००० अश्वारोही और ३०००० पदातिके साथ जयपाल पर आक्रमण किया। जयपाल पराजित हुए और कैद कर लिए गये। परन्तु वास्तविक कर देना मञ्जूर करने पर महमूदने उन्हें छोड़ दिया। उस समयकी प्रथाके अनुसार कोई राजा युद्धमें यदि दो बार पराजित हो जाय, तो वह राजा चलानेमें असम समझा जाता था और राज्य नहीं कर सकता था। इसलिए जयपाल अपने पुत्र अनङ्गपालको राजसिंहासन पर बिठा कर खुद प्रज्वलित अग्निकुण्डमें कूद पड़े। इस प्रकारसे जयपालको जीवन लीला समाप्त हुई।

२ लाहोरके राजा अनङ्गपालके पुत्र और १म जयपालके पौत्र। १०१३ ई०में ये पितृसिंहासन पर बैठे थे। इरावती नदीके किनारे १०२२ ई०में गजनीपति सुलतान महमूदके साथ इनका युद्ध हुआ था। इस युद्धमें जयपालकी पराजय हुई। इसी युद्धके उपरान्त लाहौर मुसलमानोंके हाथ चला गया। भारतवर्षमें मुसलमान राजाकी यही बुनियाद थी।

३ हमीर महाकाव्यके मतसे चौहानवंशीय पाँचवें और सत्ताईसवें राजा। पाँचवें राजा जयपाल चक्री महाराज चन्द्रराजके पुत्र तथा सत्ताईसवें राजा जयपाल महाराज विशालके पुत्र थे। चौहान देखो।

जयपुत्रक (सं० पु०) प्राचीन कालका जुआ खेलनेका एक प्रकारका पासा।

जयपुर—१ राजपूतानेकी एक रेसीडेन्सी। यह अक्षा० २५° ४१´ एवं २८° ३४´ उ० तथा देशा० ७४° ४१´ तथा ७७° १३´ पू०में अवस्थित है। इसमें जयपुर, कृष्णगढ़ और लाव राज्य लगता है। जयपुर रेसीडेन्सीके उत्तरमें बीकानेर और पञ्जाब पश्चिममें जोधपुर एवं अजमेर, दक्षिणमें शाहपुर, उदयपुर, बूंदी, टोंक, कोटा और ग्वालियर तथा पूर्वमें करौली, भरतपुर और अलवर है। रेसीडेन्सीका सदर जयपुर है। लोकसंख्या कोई २७५२२०७ और क्षेत्रफल १६४५६ वर्गमील है। इसमें ४१ नगर और ५९५८ ग्राम बसे हैं।

२ राजपूतानाका उत्तर-पूर्व और पूर्व राज्य। यह अक्षा० २५° ४१´ एवं २८° ३४´ उ० और देशा० ७४° ४१´ तथा ७७° १३´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल १५५७९ वर्गमील है। जयपुरमें उत्तर बीकानेर, लोहारू एवं पातियाला, पश्चिम बीकानेर, जोधपुर, कृष्णगढ़ तथा अजमेर, दक्षिण उदयपुर, बूंदी, टोंक कोटा एवं ग्वालियर और पूर्वमें करौली, भरतपुर तथा अलवर है। इस देशमें बहुतसे पहाड़ होने पर भी यहांकी जमीन समतल है। किन्तु मध्यभागकी जमीन त्रिकोणाकार है जो समुद्रपृष्ठसे लगभग १४००से १६०० फुट ऊंची है। यह त्रिकोणाकार जयपुर शहरसे पश्चिमकी ओर विस्तृत है और इसके पूर्व भागमें बहुतसे पहाड़ हैं जो उत्तर दक्षिण अलवर तक फैले हुए हैं। रघुनाथगढ़ पर्वतशिखर समुद्रपृष्ठसे ३४५० फुट ऊंची है। राजमहलके पास बनास नदीका दृश्य निराला है। यह राज्यकी सीमाके साथ साथ ११० मील तक बहती चली जाती है। ग्रीष्मऋतुमें प्रायः सब छोटी छोटी नदियां सूखी देख पड़ती हैं। झीलोंमें सांभर ही बड़ी है। खेतड़ी और सहारनमें तांबा और बबईमें निकल निकलता है। जयपुर राज्यमें लौहखनि भी है। जलवायु शुष्क तथा स्वास्थ्यकर है।

जयपुर महाराज श्रीरामचन्द्रके पुत्र कुशवंशीय कछवाह राजपूतोंके सर्दार हैं। कहते हैं प्रथमतः उनके पूर्वपुरुष रोहतासमें बसे थे, फिर खृष्टीय ३री शताब्दीके अन्तमें ग्वालियर और नरवर चले गये। वहां कच्छवाहोंने कोई ८०० वर्ष राजत्व किया, परन्तु उनका शासन स्वाधीन और अप्रतिहत न था। प्रथम कच्छवाह नृपति वज्रदाम ९७७ ई०में कन्नौजके राजाओंसे ग्वालियर छीन कर स्वाधीन हुए। उनके अष्टम वंशधर तेजकरण (दूल्हाराय)-ने ११२८ ई०में ग्वालियर छोड़ा। इन्होंने अपने श्वशुरसे देवासा दहेजमें पाया था। उसी समयसे पूर्व राजपूतानेमें कच्छवाह राज्य प्रतिष्ठित हुआ। यह दिल्लीवाले राजपूत राजाओंके अधीन था। कोई ११५० ई०में दूल्हारायके किसी उत्तराधिकारीने सुसावत मीनाओंसे अम्बर ले लिया और उसको अपनी राजधानी बना दिया। कइ सौ वर्ष तक अम्बर इसी तरह राज-

बासोंके रूपमें रहा। कहा जाता है, कि दूलहरायके उत्तराधिकारी चौथे पजून (किसीके मतसे पांचवें) ने दिल्लीके हिन्दूराजा पृथ्वीराज चौहानकी लड़कीके साथ विवाह किया था। ११९२ ई०में ये अपने ससुरके साथ महम्मद गोरीके हाथसे मारे गये। चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें उदयकरण अम्बरके प्रधान थे। इस समय जो जिला आजकल शेखावाटी कहलाता है वह इनके हाथ लगा।

मुगलोंके आने पर भारमल (१५४८से १५७४ई०) राजा मुसलमानोंके अधीन हुए। इन्होंने अपनी लड़की अकबरसे ब्याहा। भारमलके पुत्र भगवानदास अकबरके मित्र थे क्योंकि इन्होंने सरनालकी लड़ाईमें अकबरकी जान बचाई थी। इस कारण ये ५००० अश्वारोहियोंके अध्यक्ष तथा पञ्जाबके गवर्नर बनाये गये। १५८५ या १५८६ ई०में इन्होंने अपनी लड़कीको सलीमसे जो पीछे जहांगीरके नामसे प्रसिद्ध हुए, ब्याहा। १५९० ई०में भगवानदासके मरने पर उनके दत्तकपुत्र मानसिंह उत्तराधिकारी हुए, किन्तु १६१४ ई०में इनका देहान्त हो गया। मानसिंह बड़े शूरवीर थे। तथा मुगलराजके विश्वासपात्र भी थे। हिन्दू होने पर भी उस समय इन्हींकी चलती बनती थी। इन्होंने उड़ीसा, बङ्गाल तथा आसाम देशको जीता था और कुछ काल ये काबुल, बङ्गाल, बिहार तथा दक्षिण प्रदेशके शासक थे। मानसिंहके बाद प्रथम जयसिंह राजाके उत्तराधिकारी हुए। राजा होने पर इन्होंने अपना नाम मिरजा राजा रखा। दक्षिण प्रदेशमें औरङ्गजेबको जितनी लड़ाइयां हुई उनमें इनका नाम पाया जाता है। ये ६००० अश्वारोहियोंके अध्यक्ष थे। इन्होंने महाराष्ट्र और शिवाजीको परास्त किया था। बाद औरङ्गजेब इनसे डाह करने लगे और १६६७ ई०में इन्हें विष खिला कर मार डाला। इनकी मृत्युके बाद द्वितीय जयसिंह १६९९ ई० में सिंहासनारूढ़ हुए। मुगलबादशाहसे इन्हें सवाईकी उपाधि मिली थी। इस कारण ये सवाई जयसिंह नामसे प्रसिद्ध थे। कुछ काल राज्य कर १७४३ ई०में इनका प्राणान्त हुआ। ये शिल्पकार्य तथा वैज्ञानिक शास्त्रमें बड़े ही निपुण थे। इन्होंने गणितके कई ग्रन्थ संस्कृत भाषामें अनुवाद किये। इन्होंने जयपुर, दिल्ली, बनारस, मथुरा और उज्जैनमें वेधशालाएं बनायीं। अम्बरसे राजधानी उठा कर १७२८ ई०में इन्होंने जयपुरनगर बसाया था। जयपुरके अन्य राजाओंमें जयसिंह ही सबसे प्रसिद्ध थे। उस समय उनकी तूती बोलती और धाक रहती थी। इन्होंने अनेक विपत्तियोंका सामना कर अपना राज्य विस्तृत किया था। जबसे जयपुर और जोधपुरके प्रधान अपनी लड़की मुगल बादशाहको देने लगे तबसे उदयपुरके साथ इनका सद्भाव नहीं था। किन्तु द्वितीय जयसिंहने मुसलमानोंके विरुद्ध उदयपुरसे मेल कर लिया और तभीसे वे अपनी लड़कियोंको उदयपुर-परिवारमें ब्याहने लगे। इनके मरने पर भरतपुरके जाटोंने राज्यका कुछ अंश ले लिया और १७९० ई०को माचेरी (वर्तमान अलवर)के राजाओंने और भी उनकी सीमा घटा दी। १८०३ ई०को ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और जयपुर नरेश जगत्सिंहमें मराठोंके विरुद्ध एक मत बनानेके लिए सन्धि हुई, परन्तु १८०५ ई०में इस कारण वह टूट गयी कि राज्यने होलकरसे लड़नेमें अंगरेजोंकी सहकारिता न की थी। १८१८ ई०को सन्धिके अनुसार अंगरेजोंने राज्यरक्षाका भार अपने ऊपर लिया और कर लगा दिया।

जगत्सिंहकी मृत्युके बाद उत्तराधिकारके विषयमें फिर झगड़ा खड़ा हुआ। राजपूतोंमें ऐसी प्रथा प्रचलित है कि, निःसन्तान अवस्थामें राजाकी मृत्यु होने पर मृत्युके अव्यवहित बाद पोते जो किसी भी गोत्रका बालकको दत्तकपुत्र ग्रहण कर उससे मृत राजाकी अन्त्येष्टिक्रिया कराई जाती है।

पहले नरवरमें कछवाह राजाओंका राज्य था। नरवरके शिव राजाकी अपुत्रकावस्थामें मृत्यु होने पर, वहांके सामन्तोंने आमेरके राजा १म पृथ्वीराजके एक पुत्रको ला कर उन्हींको राज्याभिषिक्त किया था। उनके १म पुत्र मनोहरसिंह थे। इस समय उन्हीं मनोहरसिंहके पुत्र मोहनसिंहको ही जयपुरके राजासिंहासन पर बिठाया गया। इसके कुछ दिन बाद ही प्रकट हुआ कि जगत्सिंहकी महिषी भटियानी गर्भवती हैं और शीघ्र ही उनकी सन्तान होनेवाली है।

सामन्तोंने पहले तो विश्वास न किया ; पीछे जब अपनी पत्नियोंको अन्तःपुरमें भेज कर खबर मंगाई, तो बात ठीक निकली। यथासमय रानी भट्टियानीके गर्भसे ३य जयसिंहका जन्म हुआ और मोहनसिंह गद्दीसे उतार दिये गये। सामन्तों और बृटिश गवर्मेण्टकी सम्मतिके अनुसार ३य जयसिंह ही राजा हुए। इस समय भी २य पृथ्वीसिंहका पुत्र ग्वालियरमें सिन्धियाके आश्रमसे राज्य पानेकी कोशिश कर रहा था। पहले तो बहुतसे सामन्त उसे राजगद्दी देनेके लिए राजी हो गये थे, पर पीछेसे उसकी मूर्खता और असच्चरित्रताकी बात सुन कर किसीने भी उसे राजा न बनाया।

३य जयसिंहके राजा होने पर, उनकी माता रानी भट्टियानी ही राज्य-शासन करने लगीं। राजाके स्वार्थके लिए बृटिश गवर्मेण्टने रावल बैरिलालको जयपुरके मन्त्रिपद पर नियुक्त किया। जगत्सिंहकी शेषावस्थामें उनके अधीनस्थ सामन्तोंने जयपुरराज्यकी बहुतसी जमीन अपने अधिकारमें कर ली थी। परन्तु बृटिश गवर्मेण्टके साथ सन्धि होने पर जगत्सिंहको उक्त जमीन पुनः मिल गई। सामन्तगण फिर जमीन न ले लें, इसके लिए भट्टियानीने उनके हस्ताक्षर ले लिए। पहले रानी भट्टियानीने राज्यकी उन्नतिके लिए विशेष मनोयोग लगाया था, किन्तु जटाराम नामक एक व्यक्तिसे गुप्तप्रेममें फंस जानेके कारण पुनः अनर्थका सूत्रपात हुआ। भट्टियानीने सदाशय बैरिलालको निकाल कर धूर्त जटारामको प्रधान मन्त्रित्वका पद दे दिया। यह जटाराम ही धीरे धीरे राज्यका हर्ताकर्ता हो गया। १८३३ ई०में भट्टियानी रानीकी मृत्यु हो गई। उनके सम्मानरक्षार्थ अब तक गवर्मेण्टने जयपुर पर दृष्टिपात नहीं किया था। किन्तु अब 'प्राप्य कर नहीं चुकाया' इस बहानेसे जयपुरराज्य पर हस्तक्षेप किया। इसी समय जयपुर राजधानीमें महा विभ्राट् उपस्थित हुआ। ३य जयसिंहके बड़े होने पर शीघ्र ही वे शासन-भार ग्रहण करेंगे, यह धूर्त जटारामको सह्य न हुआ। उसे मालूम थी कि जयसिंहके शासन-भार ग्रहण करने पर, फिर उसका अधिकार कुछ भी न रहेगा। यह विचार कर उस दुष्टने १७ वर्षके बालक जयसिंहको विष दे कर मार डाला। उस समय ३य जयसिंहके २य रामसिंह नामक एक पुत्र हुए थे। ये २ वर्षके बालक रामसिंह ही राजा हुए। इनके राज्यारोहणके समय जटारामके षड्यन्त्रसे राजधानीमें बड़ी गड़बड़ी मच गई।

१८२० ई०को बलवा होने पर राजाने अंगरेज अफसरको जयपुरमें रहनेके लिये बुलाया था। १८३५ ई०को राजधानीमें जो उपद्रव उठा, गवर्नर जनरलके राजपूतानास्थ एजेण्ट आहत हुए और उनके सहकारी मारे गये। इसके बाद बृटिश गवर्नमेण्टने शान्ति रक्षाका उपाय किया। पोलिटिकल एजेण्टकी देखभालमें ५ सरदारोंकी एक रिजेन्सी कौंसिल बनी, जो सब जरूरी काम करने लगी, सेना घटायी गयी और प्रबन्धके सब विभागोंका संस्कार हुआ। १८४२ ई०को ८ लाख वार्षिक कर घटा कर ४ लाख रखा गया। १८५१ ई०को अंगरेजोंने जयपुरके नरेश महाराज रामसिंहको पूर्ण अधिकार दिया। सिपाही विद्रोहके समय अंगरेजोंको सहायता देनेसे उन्होंने कोट कासिम परगना पुरस्कारमें पाया। १८६२ ई०को उन्हें गोद लेनेका अधिकार भी मिला था। १८६४ ई० में राजपूतानेमें जो घोर दुर्भिक्ष पड़ा था, उसमें इन्होंने बृटिश गवर्मेण्टको ओर अनेक प्रशंसनीय कार्य किए थे, इस कारण इन्हें G. C. S. I. की उपाधि मिली थी एवं २१ तोपोंके अतिरिक्त दो और सम्मानसूचक तोपें मिलने लगीं। १८७८ ई०में G. C. I. E. बनाये गये। १८८० ई०को निःसन्तानावस्थामें इनकी मृत्यु हुई। महाराज रामसिंह एक विज्ञ शासक थे। विद्याकी उन्नति तथा अपने राज्य भरमें सड़क बनवानेकी ओर इनका विशेष लक्ष्य था। इन्होंने अपने जीतेजी महाराज जगत्सिंहके द्वितीय पुत्रके वंशज इसारदके ठाकुरके छोटे भाई कायमसिंहको अपना उत्तराधिकारी बना रखा था। १८८० ई०को कायमसिंह २य सवाई माधवसिंह नाम धारण कर गद्दी पर बैठे। इनका जन्म १८६२ ई०में हुआ था। इनकी नाबालिगीमें एक सभा द्वारा राजकार्य चलाया जाता था। १८८२ ई०में इन्हें राज्यका पूरा अधिकार दे दिया गया। पहले इन्हें १७ तोपें दी जाती थीं, बाद १८८७ ई०में दो

लगते हैं। लोगोंका प्रधान खाद्य बाजरा और जुआर है। इस राज्यमें कई बड़े बड़े तालाब हैं। जङ्गलोंमें हकदार मुफ्त और दूसरे लोग महसूल दे कर मवेशी चराते हैं। सिवा नमकके दूसरा धातु बहुत कम निकलता है। लोहेका काम बन्द है। सङ्गमरमर बहुत मिलता है। अबरकको भी खान है। कङ्कर और चूनेकी कोई कमी नहीं। यहां ऊनी और सूती कपड़ा बनता है। सङ्गमरमर पर नक्काशी और मट्टी तथा पीतलके बर्तन तैयार करते हैं। जयपुरके रंगे और छपे कपड़े बहुत अच्छे होते हैं। सोने, चांदी और तांबेकी मीनाकारी मशहूर है। राज्यमें रुईकी कई कलें भी हैं। प्रधानतः नमक रुई, घी, तेलहन, छपे कपड़े, ऊनी पोशाक, सङ्गमरमरी मूर्तियां, पीतलके सामान और चूड़ियोंकी रफ्तनी होती है। राजपूताना मालवा रेलवेसे सब माल आता जाता है। ऊंट भी चीजें ले जानेमें व्यवहृत होता है।

जयपुर राज्यमें कोई २८३ मील पक्की और २५६ मील कच्ची सड़क है। महाराज १० सदस्योंकी कौंसिलसे राज्य प्रबन्ध करते हैं। इसमें अर्थ, न्याय और परराष्ट्र आदि तीन विभाग सम्मिलित हैं। तहसीलदारी सबसे छोटी अदालत है। इसके ऊपर निजामत है। महाराज अपनी प्रजाको फांसी दे सकते हैं। राज्यका साधारण आय प्रायः ६५ लाख है। यहां झाड़शाही सिक्का चलता है। टकशालमें अशर्फी रुपया और पैसा ढालते हैं। पढ़नेकी फीस नहीं लगती।

२ राजपूतानाके जयपुर राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २६° ५५' उ० और देशा० ७५° ५०' पू०में राजपूताना मालवा रेलवे पर अवस्थित है। यह राजपूतानेका सबसे बड़ा शहर है। लोकसंख्या कोई १६०१६७ होगी। सुप्रसिद्ध महाराज सवाई जयसिंहके नाम पर ही जयपुरका नामकरण हुआ है। दक्षिण दिक् भिन्न सब ओर पहाड़ों पर किले बने हैं। नाहरगढ दुर्ग अभेद्य है। नगरको चारों ओर प्राचीर है। सड़कें बहुत उम्दा हैं। प्रधान पथ १११ फुट चौड़ा है। बीचमें राजप्रासाद देखते ही बनता है। तालकटोरा तालाब चारों ओर दीवारसे घिरा है। राजमहलके तालाबमें घड़ियाल बहुत हैं। पुरातत्त्व सम्बन्धीय संग्रहशाला देखनेकी चीज है। रातको गैसकी रोशनी होती है। १८७४ ई०में अमानशाह नदीका पानी नलोंसे यहां आता है। १८६८ ई०को म्युनिसपालिटी हुई। सरकारी कोषसे उसका सब खर्च दिया जाता है। शहरका कूड़ा ढोनेको भैंसोंकी ट्राम चलती है। प्रधान व्यवसाय रंगाई, सङ्गमरमरकी नक्काशी, सोनेकी मीनाकारी, मट्टीके बर्तन और पीतलका सामान है। १८६८ ई०को यहां कलाविद्यालय खुला। उसमें चित्रविद्या, रंगसाजी, नक्काशी, आदि उपयोगी विषयोंकी शिक्षा दी जाती है। महाजनों और दुर्राणीवालोंका खूब काम होता है। १८८५ ई०को नगरके बाहर रुईके २ पुतलीघर खुले थे। यहां शिक्षण संस्थाएं बहुत हैं। महाराज कालेज उल्लेखयोग्य है। अस्पतालोंकी भी कोई कमी नहीं। शहरसे बाहर २ जेल हैं। रामनिवासबागमें अजायबघर है।

जयपुर—आसामके लखीमपुर जिलेमें डिबरूगढ़ सबडिविजनका गांव। यह अक्षा० २७° १६' उ० और देशा० ८४° २३' पू०में बूढ़ी दिहिङ्ग नदीके वाम तट पर अवस्थित है। इसके निकट ही कोयले और मट्टीके तेलकी खान है। यह स्थान स्थानीय व्यापारका केन्द्र है।

जयपुर—१मन्द्राज प्रान्तके विशाखपत्तन जिलेकी एक जमींदारी। यह उक्त जिलेके समग्र उत्तर भागमें विस्तृत है। यह्लालके कालाहण्डी राज्यने उसको दो भागोंमें बांट दिया है। १८६१ में कानून बना करके नरबलि रोका गया।। जयपुर घरानेके पूर्वपुरुष उत्कलस्थ गजपति राजाओंके सहगामी थे। १५वीं शताब्दीको चन्द्रवंशीय राजपूत विनायकदेवने गजपति राजाकी कन्यासे विवाह किया। उन्होंने ही इन्हें जयपुर जमींदारी दी थी। फिर यह विशाखपत्तनके अधीन हुआ। परन्तु १७६४ ई०में मन्द्राज सरकारने जयपुरके शासकको एक निराली सनद दी। कारण इन्होंने विजयनगरम्-युद्धके समय वफादारी की। १८०३ ई०को इसकी मालगुजारी (पेशकश) १६०००) रु० थी। १८४८ ई०में गवर्नमेण्टने राजपरिवारके गृह-कलहसे उसकी कुछ तहसीलें ले लीं। १८५५ ई०में फिर बखेड़ा हुआ और सरकारकी दीवानी और फौजदारी

जामान जारी करना पड़ा। उसके बाद यहां कोई झगड़ा नहीं लगा, केवल १८६१—६ ई०को सावरोंने कुछ उपद्रव किया था। १८८६ ई० को मिस्तमदेवको "महाराजा" उपाधि मिली। इस राजको वन-विभागसे बड़ी आय है। इस जमींदारीका अधिकांश राजा एवं तहसारी हस्ति-एजेन्टके सर्वत्वाधीन है तथा कुछ (गुनपुर और रायगड़ जिला) सिनियर असिटेण्ट कलक्टरके अधीनमें है। पार्वतीपुरमें उनकी कचहरी है।

इस जमींदारीके मध्यभागमें पांच हजार फुट ऊंची गोमर्गिरि नामक गिरिमाला है। यहांसे स्रोतस्वती है, जो दक्षिण-पूर्वको ओर वंगधारा नामसे कलिङ्ग-पत्तनमें तथा चिकाकोलको भाग होती हुई नागावलि नामसे समुद्रमें जा मिली है। वंशधारा नदीके दोनों किनारे बांसके पेड़ बहुत उपजा करते हैं। पूर्व एवं उत्तर-पूर्वांशमें ऊंचा पहाड़ है जिसको उपत्यका प्रायः दो सौ वर्गमील विस्तृत है।

जमींदारीके अधिकांश स्थानमें असभ्य आदिम जातिका वास है। उनमेंसे खोंड़ेरो, विषमकटक और नारायणपुर ये तीन स्थान तीन प्रधान सामन्तोंके अधीन हैं। जमींदारीके प्रधान नगर जयपुर नवरङ्गपुर और कोटपाड़ है।

यहां असभ्य और शवर जातिका वास ही अधिक है। अधिवासियोंमें अधिकांश हिन्दूधर्मावलम्बी हैं। इन का चेहरा मोङ्गलिक और कोलमाववमिश्रित होता है। यहां प्रकृत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि आर्यजाति बहुत कम है। यहांकी प्रजा करीब बारह आना आर्य भाषापन्न है। मगर आदिवासी प्रजाको अपेक्षा पहाड़ी प्रजा बहुत कुछ स्वाधीन है। उनमें एक एक गोष्ठी पति होता है, सबको उन्हींके आदेशानुसार आचरण करना पड़ता है। जमींदारीके दक्षिणांशमें जङ्गल काटने और वहांसे लकड़ी वगैरह लेनेमें झगड़ा हुआ करता है।

इस जमींदारीका बन्दोबस्त प्राचीन हिन्दू प्रथाके अनुसार होता है। यहां गोष्ठीपतिके ऊपर ग्रामपति और उनके ऊपर राजा होते हैं। राजा ही जमीनको यथार्थ स्वत्वाधिकारी है। गोष्ठीपति भी इच्छानुसार किसी जमीनको हस्तान्तरित या विक्रय कर सकते हैं, इसके लिए राजा या राजपुरुषोंसे अनुमति नहीं लेनी पड़ती।

२ राजपुताना प्रान्तके जयपुर राज्यके अन्तर्गत एक तहसील। यह बाट पर्वत पर अवस्थित है। भू-परिमाण १०१६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ११९८३१ है। लोग १२१३ गांवोंमें रहते हैं। प्रधान नगर जयपुर है। इसकी आमदनी कोई ६३८८ होती। इसी नगरमें जय पुर राज्यके महाराज रहते हैं। समग्र राज्यको मालगुजारी लगभग २६०००) रु० है। इसके मध्य होकर नदी प्रवाहित है।

जयपुरदुर्ग—अजयगढ़का एक प्राचीन नाम। रुद्रयामल तन्त्रके मतसे जयपुर एक पीठस्थान है।

जयप्रिय (सं० पु०) १ विराट-राजाके भाईका नाम। २ तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक। इसमें एक लघु, एक गुरु और तब फिर एक लघु होता है।

जयभट—इस नामके कई एक गुर्जरराजोंका उल्लेख मिलता है, जो भरकच्छमें राज्य करते थे। कावी, उमेटा, बगुमड़ा और इलाउसे आविष्कृत ताम्रलेख द्वारा जयभटोंका इस प्रकारसे सम्बन्ध निर्णय किया जाता है—

१म दद्द
|
१म जयभट वीतराग
(३८६ सम्वत्)
|
२य दद्द—प्रशान्तराग
(शक सं० ४००—४१७)
|
•
|
३य दद्द
|
२य जयभट—वीतराग
|
४र्थ दद्द—प्रशान्तराग
|
(चेदिसं० ३८०—३८६)
|
३य जयभट
|
५म दद्द—बाहुसहाय
|
४र्थ जयभट
(चेदिसं० ४५६ ४८६)

उक्त राजाओंके ताम्रलेखमें लिखा है कि, पहले इस वंशके महासामन्त मात्र थे। १म जयभटने समुद्र-कुलवर्ती गुजरात और काठियावाड़में घोरतर युद्ध किया था। मालूम होता है कि, इन्होंने पहिले पहल यथार्थ राजपट पाया था, क्योंकि इनके पुत्र २य दद्दने अपनेको महाराजाधिराज उपाधि द्वारा विभूषित किया है। खेड़ासे प्राप्त अनुशासनपत्रके पढ़नेसे मालूम होता है कि, २य जयभटके पिता ३य दद्दने नागवंशीय राजाओं पर आक्रमण कर बहुतसे स्थान अधिकार किये थे। परन्तु वे भी सामंत मात्र थे। खेड़ा और नौसारोसे प्राप्त ताम्रलेखमें लिखा है कि, ३य जयभटके पिता ४थे दद्दने वल्लभी राजाको, सम्राट् श्रीहर्षदेवके हाथसे बचा कर महासुख्याति अर्जन की थी। इन्होंने चेदि-सम्वत् ३८०से ३८५ तक अर्थात् ६२८से ६३३ ई० तक राज्य किया था। इस समयसे कुछ पहले हर्षदेवने वल्लभीराज्य पर आक्रमण किया था, ऐसा मालूम होता है। कुछ भी हो, भरुकच्छाधिपतिके साथ वल्लभीराजकी मित्रता बहुत दिनों तक नहीं रहने पाई थी। क्योंकि ६४८ ई०में भरुकच्छको वल्लभीराज ध्रुवसेनके अधिकृत होते और यहांके जयस्कन्धावारसे वल्लभी राजोंके शासनपत्र मिलते दिखाई देते हैं।

जयमङ्गल (सं० पु०) जय एव मङ्गलं यस्य, जयेन मङ्गलं यस्मादिति वा। १ राजवाहन योग्य हस्ती राजाके सवार होने योग्य हाथी। २ वह हाथी जिस पर राजा विजय करनेके उपरान्त सवार हो कर निकले। ३ ध्रुवक जातीय तालविशेष, तालके आठ भेदोंमेंसे एक।

जयमङ्गल—१ जयसिंहकी सभाके एक पण्डित। इन्होंने जयसिंहके आदेशानुसार (१०९४से ११४३के भीतर) कविशिक्षा नामक एक संस्कृत अलङ्कार ग्रन्थ रचा था।

२ एक प्रसिद्ध टीकाकार। इनकी रचित भट्टिकाव्य और सूर्यशतककी टीका मिलती है। भट्टोजीदीचित, हेमाद्रि, पुरुषोत्तम आदिने इनका उल्लेख किया है।

जयमङ्गलरस (सं० पु०) जयेन रोगजयेन मङ्गलं यस्मात्, तादृशो रसः। ज्वरनाशक औषध। इनके बनानेकी विधि—हिंगुलका रस, गन्धक, सुहागेकी भस्म, तांबा, रांगा, स्वर्णमाक्षिक, सैन्धव और मरिच, प्रत्येकका ४ मासा, स्वर्ण १ तोला, लौह ४ मासा, रौप्य ४ मासा, इनको एकत्र बाँट कर धतूरे और शेफालि (सिहरू के पत्तेके रसमें, दशमूल और चिरायतेके क्वाथमें क्रमसे तीन बार भावना दे कर दो रत्तीके बराबर गोलियां बनानी चाहिये। अनुपान—जीरेका बुकनी और मधु। इसका सेवन करनेसे नाना प्रकारका धातुस्थ ज्वर नष्ट हो जाता है। यह विषम और जीर्णज्वरको उत्कृष्ट औषध है। (भैषज्यर०)

चिकित्सासारसंग्रहके मतानुसार इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—हड़, बहेड़ा, आंवला, पीपल, प्रत्येक २ मासा, लौह ४ मासा, अभ्र २ मासा, ताम्र २ मासा, रौप्य ५ रत्ती, स्वर्ण ५ रत्ती। रस और गन्धककी कज्जली कर इनका पर्पटी पाक कर लेना चाहिये। फिर उसमें ४ माशे पर्पटी डाल कर निम्नलिखित औषधोंमें भावना दे कर मूंगके बराबर गोलियां बनानी चाहिये। अनुपान—तुलसीके पत्तेका रस और मधु। भावनाके लिए—जयन्तीपत्रका रस, विजयाका रस, चीतेका रस, तुलसीका रस, अदरकका रस, केशराज (भेंगरिया) का रस, भृङ्गराजका रस, निर्गुण्डीका रस, प्रत्येकका परिमाण दो तोला है। यह औषध शीतज्वर और सर्वदा विषम ज्वरमें प्रयोज्य है। (चिकित्सासारसंग्रह)

जयमङ्गली—महिसुर राज्यमें बहनेवाली एक नदी। यह देवरायदुर्ग नामक पर्वतसे निकल कर उत्तरकी ओर तुमकुड़ जिलेके कोत्तगिरि तालुकके भीतरसे बेलारी जिलेके उत्तरमें पिनाकिनी नदीमें जा मिली है। इसके बालुकामय गर्भमें स्थित कपिली नामक कूपके पानीसे खेतोंमें पानी भेजा जाता है।

जयमल—१ एक प्रसिद्ध राजपूतवीर और बेदनोरके अधिपति। ये मेवारमें एक प्रधान सामन्त समझे जाते थे। जिस समय सङ्गराणाके पुत्र कायर उदयसिंह अकबरके भयसे चितोर छोड़ कर चले गये थे, उस समय बेदनोरके जयमल और केलवाके पुत्तने चितोरकी, रक्षाके लिए बादशाहके विरुद्ध असिधारण की थी।

उक्त दोनों महावीरोंकी असाधारण वीर्यवत्ताको देख कर मुगलसेनापतियोंके भी छक्के छूट गये थे।

अन्तमें जयमल अपनी जन्मभूमिके लिए १५६८ ई०में

अकबरके हाथ निहत हुए। अकबर बादशाहने यद्यपि धोखासे इनको मारा था, किन्तु तो भी वे इनकी अनुपम वीरोचितकी महिमा न भूल सके थे। उन्होंने इन दोनों राजपूतोंकी प्रस्तरमूर्त्तियां बनवा कर दिल्लीमें अपने प्रासादके सामने स्थापित करवाई थीं।

इस घटनाके बाद सौ वर्ष पीछे प्रसिद्ध भ्रमणकारी बर्नियरने दिल्लीके सिंहद्वारमें प्रवेश करते समय उन मूर्तियोंको देख कर दोनों वीरोंकी तथा उनकी वीरप्रसू माताओंकी बहुत प्रशंसा की थी।

२ एक धर्मशील राजा। ये परम विष्णुभक्त थे, इनके प्रासादमें श्यामसुन्दर नामकी एक देवमूर्त्ति थी। आप कामसे कम दण्डएक समय लगा कर नित्य उनकी पूजा किया करते थे। इस दण्डएक समयके भीतर यदि उनका राज्य भी नष्ट हो जाय तो भी वे इष्टपूजा छोड़ कर नहीं उठते थे। इनका ऐसा नियम जान कर एक राजाने इसी अवसरमें इनके राज्य पर आक्रमण किया। शत्रुओंके हाथसे जब इनका राज्य नष्ट होने लगा, तब इनकी माता रोती हुई देवस्थलमें पहुंची और बोलीं—"वत्स! सर्वनाश उपस्थित है, शत्रु आ कर तुम्हारे राज्यको लूट रहे हैं, राज्य नष्ट हुआ जा रहा है इतने पर भी तुम निश्चिन्त बैठे हो क्यों? तुम्हारी आज्ञाके बिना सेना युद्ध नहीं करना चाहती सम्मुख खड़ी खड़ी पराजित हो रही है।" परन्तु जयमल को जरा भी घबड़ाहट नहीं प्रत्युत वे कहने लगे—"माता! क्यों आप उद्विग्न हो रही हैं? जिन्होंने हमें यह विपुल सम्पत्ति दी है वे जो अब उसे ले रहे हैं, तो किसको मजाल है जो उन्हें रोक सके। सामान्य राज्यकी बात तो दूर रहे इस समय यदि शत्रु आ कर मेरे मस्तकको उतार लें, तो भी मैं नियमित पूजा नहीं छोड़ूंगा।" इसी समय जयमलके इष्टदेव श्यामसुन्दर अपने भक्तके हितसाधनार्थ घोड़ेसे निकल पड़े, और शत्रुसैन्यमें प्रवेश कर उन्होंने राजाके सिवा और समस्त शत्रुओंका विनाश कर दिया। इसके उपरान्त राजा भी नियमित पूजाको समाप्त कर योद्धृवेशमें समर भूमिमें पहुंचे वहां उन्हें राजाके सिवा और समस्त शत्रुओंको धराशायी देख बड़ा आश्चर्य हुआ, वे सोचने लगे, कौनसे सैनिकोंने मेरे इन शत्रुओंको इस प्रकार निहत किया? इतनेमें वह पराजित राजा भी उनके सामने आ गया और हाथ जोड़ कर कहने लगा—"महाराज! मैं बिना जाने ऐसा अन्याय कार्य करने आया था, उसका प्रतिफल मुझे अच्छी तरह मिल गया। आपके कोई एक श्याममूर्त्तिधारी वीरपुरुष घोड़े पर सवार हो कर आये और क्षणमात्रमें मेरी समस्त सेनाको धराशायी कर किधर होके न मालूम कहां चले गये। अब मैं आपसे शत्रुता नहीं करना चाहता, आप मेरा समस्त राज्यासन ग्रहण करें। मैं आपकी सम्पूर्ण वश्यता स्वीकार करता हूं। किन्तु उस श्यामसुन्दर पुरुषको देखनेके लिए मेरा मन चञ्चल हो रहा है, यदि आप उन्हें पुनः एकबार दिखा दें, तो मैं अपनेको कृतकृतार्थ समझूंगा। मेरा सर्वस्व गया है, जाने दो मुझे जरा भी दुःख नहीं, किन्तु उस महावीर मूर्तिके भीतर न मालूम कैसी एक अनिर्वचनीय मधुर मूर्त्ति थी, जिसको देख कर मेरा हृदय पिघल गया है। मैं फिर उन्हें देखना चाहता हूं।" अब जयमल समझ गये कि, वह वीरपुरुष इष्टदेव श्यामसुन्दर ही थे। तदनन्तर जयमल अपने शत्रु राजाको साथ ले कर श्यामसुन्दरके मन्दिरमें पहुंचे, वहां जा कर उन्होंने कहा 'महाराज! आप जिस वीरपुरुषको देखना चाहते हैं देखिये, ये ही वे वीर पुरुष हैं।" पीछे शत्रु राजा भी हरिभक्त बन कर दिन बिताने लगे। (भक्तमाल)

जयमाधव—सह्याद्रिवर्णित एक वणिक्का नाम।

जयमाल (हि॰ स्त्री॰) १ विजयोंको विजय पाने पर पहनाई जानेवाली माला। २ वह माला जिसे स्वयंवरके समय कन्या अपने वरे हुए पुरुषके गलेमें डालती है।

जययज्ञ (स॰ पु॰) जयार्थ यज्ञ। अश्वमेध यज्ञ।

जयरथ—काश्मीरके सुप्रसिद्ध कवि जयद्रथके भ्राता। इन्होंने अभिनवगुप्तरचित तन्त्रालोकको तन्त्रालोकविवेक नामसे टीका लिखी है। जयद्रथ देखो।

जयराज—मगधपुरके एक प्रसिद्ध राजा।

जयरात (स॰ पु॰) कलिङ्गराजके पुत्र, कौरव पक्षके एक योद्धा। ये कुरुक्षेत्रके युद्धमें भीमके हाथसे मारे गये थे। (भारत ७।१५५।२८)

जयराम—इस नामके बहुतसे ग्रन्थकारोंका पता चलता है। १ एक प्रसिद्ध संस्कृत ज्योतिर्विद्। इन्होंने कामधेनु पद्धति, खेचरकौमुदी, ग्रहगोचर, मुहूर्त्तालङ्कार, रसनामृत आदि कई एक ज्योतिर्ग्रन्थ रचे हैं।

२ कामन्दकीय नीतिसारसंग्रहके प्रणेता।

३ काण्डोद्गण्डके एक टीकाकार।

४ दानचन्द्रिका नामके स्मृतिके एक संग्रहकर्त्ता।

५ एक वैदान्तिक। जयरामाचार्य और विजयरामाचार्यके नामसे भी इसका परिचय मिलता है। इन्होंने माध्वसम्प्रदायके मतके विरुद्ध पाषण्डचपेटिका नामक एक युक्तिपूर्ण शास्त्रीय संस्कृत ग्रन्थ लिखा है।

६ राधामाधवविलास नामक काव्यके रचयिता।

७ शिवराजचरित्र नामक संस्कृत ग्रन्थके कर्त्ता।

८ देशोद्धार नामक भागवतीके एक टीकाकार।

९ एक वैदिक पण्डित. वलभद्रके पुत्र. दामोदरके पौत्र और केशवके शिष्य। आपने पारस्करगृह्यसूत्रको सज्जनवल्लभा नामक टीका लिखी है।

१० पद्यामृततरङ्गिणीकी सोपानार्चता नामक टीकाके रचयिता।

११ हिन्दीके एक कवि। इनकी एक कविता उद्धृत की जाती है।

"रघुवर जानकी रसमाते।
मन प्रमोदमें विहरत दोउ हँस हँस करत रसीली बातें॥
कहुं कहुं ठाढ़े होत नवल प्रिय झुक झुक गहत सुमनकी पातें।
ले सुमनन सियकों सिंगारत बिच बिच श्याम श्वेत पितरातें॥
श्रुति कीर्ति विमलादि नागरी सिखवत कोक कलाकी घातें।
जयराम हित मृदु मुसुक्याते गहि लीन्हो मिथुलाके नाते॥"

जयराम तर्कवागीश—बङ्गालके एक प्रसिद्ध पण्डित। आपने भगवद्गीतार्थसंग्रह और भागवतपुराण—प्रथम श्लोकव्याख्या नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं।

जयराम तर्कालङ्कार—पावना जिलेके एक बङ्गाली नैयायिक। आप वारेन्द्रश्रेणीके ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम जयदेव और गुरुका नाम गदाधर था। ये गदाधरकृत शक्तिवादकी विशद टीका लिख कर अपनी विद्वत्ताका यथेष्ट परिचय दे गये हैं।

जयराम न्यायपञ्चानन भट्टाचार्य—एक प्रसिद्ध बङ्गाली नैयायिक, रामभद्र भट्टाचार्यके छात्र और जनार्दन व्यासके गुरु। इन्होंने जयरामीय नामक न्यायग्रन्थ शिरोमणिकृत तत्त्वचिन्तामणिदीधितिकी टीका, न्यायकुसुमाञ्जलीकी टीका, अन्यथाख्यातितत्त्व, आकाङ्क्षावाद, उद्देश्यविधेयबोधस्थलीविचार, जातिपक्षवाद, प्रतियोगिभावाद, विशिष्टवैशिष्ट्यवाद, विषयतावाद, व्याप्तिवादटीका, समासवाद, सामग्रीवाद, पदार्थमणिमाला, गौतमसूत्रका न्यायसिद्धान्तमाला नामके भाष्य (सम्वत् १७५०में) इत्यादि संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना की थी।

जयरामा—काकन्दीपुराधिपति इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुग्रीवकी प्रधान महिषी और नवम तीर्थङ्कर भगवान् पुष्पदन्तकी माता। गर्भावस्थामें इनकी सेवाके लिए स्वर्गकी देवियां नियुक्त थीं। (जैन आदिपुराण)

जयलेख (सं० पु०) जयपत्र, वह पत्र जो पराजित पुरुष अपने पराजयके प्रमाणमें विजयीको लिख देता है।

जयवत् (सं० त्रि०) जयी, विजयी, जीतनेवाला।

जयवन-काश्मीर राज्यकी एक पुरानी जगह। यह तक्षककुण्डके लिये विख्यात था। (विक्रमांकच०) आजकल इसे जेवन कहते हैं। वह श्रीनगरसे ३ कोस दूर है।

जयवन्त—तत्त्वार्थसूत्र नामक जैन-ग्रन्थके एक टीकाकार।

जयवन्धनन्दन—एक कवि। ये दिगम्बर जैन और कर्नाटकके रहनेवाले थे।

जयवर्म देव—१ धाराके एक महाराज। ये यशोवर्मदेवके पुत्र। भोपालसे प्राप्त ताम्रलेखमें इनका परिचय है। ये ११४३ ई०में राजगद्दी पर बैठे थे।

२ चन्द्रात्रेयवंशके एक राजा। चन्द्रात्रेय देखो।

जयवराहतीर्थ (सं० क्ली०) नर्मदातीरस्थ तीर्थविशेष, नर्मदा किनारेके एक तीर्थका नाम।

जयवाहिनी (सं० स्त्री०) जयस्य जयन्तस्य वाहिनी यद्वा स्वयंवरसभायां संग्रामे वा जयं वहतीति वह-णिनि, ततो ङीप्। १ शची, इन्द्राणी। २ जययुक्त सैन्य, विजयी सेना।

जयशब्द (सं० पु०), जयसूचकः शब्दः। जयध्वनि।

पितृव्य शिवदेवको राजधानीमें छोड़ कर यवनोंके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए रवाने हुए। युद्धमें गज मारे गये। यवनराजके गजनी अधिकार करनेके समय भी ३० दिन तक शिवदेवने युद्ध किया और अन्तमें उन्होंने शाका-यज्ञका अनुष्ठान किया। इस युद्धमें नौ हजार यादवों ने प्राण विसर्जन किये थे। शालिवाहन इस दुर्घटनाके बाद पञ्जाब चले गये। यहांके भूमियाओंने उन्हें राजा समझ कर रक्खा। उन्होंने वि० सं० ७२में शालिवाहन पुरकी स्थापना की। उनके बारह पुत्र थे-बलन्द, रसाल, धर्मांङ्गद, वत्स, रूप, सुन्दर, लेख, यशस्कर्ण, निमा, मत, गङ्गायु और यचायु। सभीने एक एक स्वाधीन राज्य स्थापन किया।

बलन्दके साथ तोमरवंशीय जयपालकी कन्याका विवाह हुआ। दिल्लीपति जयपालकी सहायतासे शालि-वाहनने गजनीका उद्धार किया और वहां ज्येष्ठपुत्र बलन्ददेवको रख छोड़ा।

शालिवाहनके बाद बलन्दको पितृ-अधिकार प्राप्त हुआ। उनके अन्य भ्राताओंने पहाड़के पार्वत्यप्रदेशमें आधिपत्य विस्तार किया। बलन्द स्वयं ही राजकार्य देखते थे। उनके समयमें यवनोंने पुनः गजनी पर अधि-कार जमा लिया बलन्दके सात पुत्र थे—भट्टि, भूपति, कल्लर, जिञ्ज, सरमोर, मङ्गिपरेख और मङ्गराव। भूपतिके पुत्र चकितसे ही चकताई जातिकी उत्पत्ति हुई। चकि-ताके आठ पुत्र थे। देवसिंह, भैरवसिंह, क्षेमकर्ण, नाहर, जयपाल,धरसिंह, विजलीखां और शाह सम्मन्द। बलन्दने चकितको गजनीका आधिपत्य प्रदान किया। यवनोंने गजनी अधिकार कर चकितसे कहा—'यदि तुम हमारा धर्म ग्रहण करो, तो तुम्हें बलिच् बुखाराका राजा दे देंगे।' इस पर चकितने म्लेच्छधर्म ग्रहण कर बलिच् बुखा-राकी एक कन्याका पाणिग्रहण किया और उस विस्तीर्ण राज्यको ग्रहण किया। उन्हींके वंशधर अब चकितो-मोगल वा चगताई मुगलके नामसे प्रसिद्ध हैं। चकित-के स्तने कल्लरने भी म्लेच्छधर्म अवलम्बन किया था।

भट्टिको पितृ-अधिकार प्राप्त हुआ। इन्हींसे इनके वंशधर अपनेको यदुभट्ट राजपूत कहने लगे।

भट्टिराजके दो पुत्र थे, मङ्गलराव और मसुरराव। मङ्गलरावके समयमें गजनीपतिने लाहोर पर आक्रमण किया। इसी समय शालिवाहनपुर (सियालकोट) यदुपतिके हाथसे निकल गया। मङ्गलरावके मध्यम-राव, कल्लरसिंह, मण्ड़राज, शिवराज, फूल और केवल ये छ पुत्र थे। गजनीपतिके आक्रमणके समय मङ्गलराव अपने ज्येष्ठ पुत्रको साथ ले कर जङ्गलकी तरफ भाग गये थे।

उनके अन्य पुत्र शालिवाहनपुरमें एक वणिक्के घर गुप्तरीतिसे रक्खे गये। पठोदास नामक तक (तक्षक) जातीय एक भूमियाने जा कर विजयी यवनराजको यह खबर सुनाई। इस भूमियाके पूर्वपुरुषोंसे भट्टि-राजके पूर्वपुरुषोंने धन सम्पत्ति छीन ली थी; इस समय पठोदासने उसीका बदला लिया।

गजनीपतिने वणिक्को आज्ञा दी कि, शीघ्र ही राज पुत्रोंको वे उनके पास भेज दें। सदाशय वणिक्ने उनको प्राणरक्षाके लिए कहला भेजा कि, 'मेरे घरमें कोई भी राजकुमार नहीं है; एक भूमिया देश छोड़ कर भाग गया है, उसीके लड़के मेरे घर रहते हैं।" परन्तु यवन-राजने उन्हें उपस्थित होनेका आदेश दिया। वणिक् उन लड़कोंको दीन कृषकके भेषमें राजदरबारमें ले गये। धूर्त यवनराजने भी जाट जातीय कृषकोंकी लड़कियोंसे उनका विवाह कर दिया। इस तरह कल्लोरके पुत्र कल्लोरिया जाट, मण्ड़राज और शिवराजके वंशधर मण्ड़-जाट और शिवराजाट कहलाये। फूलने नापित और केवलने अपनेको कुम्भकार कहा था, इसलिए उनके वंशधर नापित और कुम्भकार हुए।

मङ्गलरावने गहरा जङ्गलमें जा कर नदी पार हो एक नवराज्य अधिकार किया। उस समय यहां नदीके किनारे बराह, भूतवनमें भूत, पूगलमें परमार, धातमें सोढ और लदोर्वा नामक स्थानमें लोदरा राजपूतोंका वास था। यहां सोढा राजकुमारोंके साथ मिल कर मङ्गलरावने निर्विघ्न राज्य किया।

उनके पुत्र मध्यमराव (मझमराव)-ने सोढा-राज कन्याका पाणिग्रहण किया। इनके तीन पुत्र थे—केयूर, मूलराज और गोगली। केयूरने बहुत जगह मचा लूट

पहु चे। यहां उनको दुःखिनी मातासे भेंट हुई। दोनों के आंसुओंसे दोनोंकी छाती भीग गई, इस पर उनकी माताने कहा—

"जिस तरह यह अश्रुनीर विगलित हुआ है, उसी तरह तुम्हारे शत्रुकुलका विलगित होगा।"

मामाके घर भी वीरवर देवराजको अधीनता अच्छी न लगी, उन्होंने एक ग्राम मांगा। परन्तु उन्हें मरुभूमिके बीच एक बहुत छोटा स्थान मिला। वहां ६०८ संवत्में भाटन दुर्ग निर्माता कैकय नामक शिल्पीकी सहायतासे उन्होंने अपने नामसे एक दुर्ग बनवाया, जिसका नाम रक्खा देवगढ वा देवरावल।

दुर्ग निर्माणका समाचार पाते ही भूतराजने भानजेके विरुद्ध सेना भेज दी। परन्तु देवराजने कौशलसे सेना नायकों को दुर्गमें ले जा कर मार डाला।

ऐसा प्रवाद है कि, जब देवराज वाराहराजमें योगीके आश्रममें रहते थे तब एक दिन योगीकी अनुपस्थितिमें उनके रसकुम्भसे एक बूंद रस तलवारमें पड जानेसे वह सोनेकी हो गई। यह देख कर देवराजने उस रसको ले लिया। उसी की सहायतासे उन्होंने दुर्ग बनवाया था। एक दिन उस योगीने आ कर देवराजसे कहा—"तुमने मेरा योगसाधनका धन चुराया है। यदि तुम मेरे चेला हो जाओ, तो तुम बच जाओगे, नहीं तो जानसे भी हाथ धोना पडेगा। देवराज उसी समय योगीके शिष्य बन गये और गेरुआ वसन, कानमें मुद्रा, कटि पर कौपीन एवं हाथमें कुम्हडेका खोपड ले कर 'अलख' 'अलख' कहते हुए अपने ज्ञाति कुटुम्बोंके द्वारों पर फिरने लगे। उनके हाथका खोपडा सोने और मोतियोंसे भर गया था।

देवराजने राव उपाधि छोड कर 'रावल' उपाधि ग्रहण की। योगीके आदेशानुसार अब भी जयशलमेरके अधिपति "रावल" उपाधि ग्रहण करते हैं और राज्याभिषेकके समय देवराजकी तरह भेष धारण करते हैं।

देवराजके अधस्तन षष्ठ पुरुषका नाम था जयशाल। इन्होंने अपने नामानुसार जयशलमेर दुर्ग और नगर स्थापित कर वहां राजधानी नियत की थी। तभीसे इस महाराजका नाम जयशलमेर पड़ा है। जयशालके बाद इस वंशमें और भी बहुतसे वीर पुरुषोंने जन्म लिया था जो सर्वदा युद्धविग्रह और लूट करनेमें मत्त रहते थे। इसी कारण १२९४ ई०में भट्टिगण दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीनके विरागभाजन हो गये थे। बादशाहने बहुत सी सेना भेज कर जयशलमेर दुर्ग और नगर पर कब्जा कर लिया। इसके बाद कुछ दिन यह नगर मनुष्य हीन हो गया था। यदुवंशीय राजाओंने बार बार पराजित होने पर भी मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार न की थी। रावल सवलसिंहने ही सबसे पहले शाहजहांकी अधीनता स्वीकार की और वे दिल्लीके एक सामन्त-राज कहलाये। उस समय भी जयशलमेर राज्य शतद्रु नदी तक विस्तृत था। १७६२ ई०में जब मूलराजका राज्याभिषेक हुआ, तभीसे जयशलमेरका सुखसूर्य अस्ता चलगामी हो गया। इसके बहुतसे स्थान जोधपुर और बीकानेर राज्यके अन्तर्भुक्त हो गये।

मरुमय होनेके कारण ही इस राज्य पर दुर्दान्त महाराष्ट्र-दस्युओंकी दृष्टि नहीं पडी थी।

१८१८ ई० १२ दिसम्बरको जो सन्धि हुई, वृटिश गवर्नमेण्टने राजाको वंशपरम्परानुगत राज्य करनेका अधिकार दिया। १८२० ई०में मूलराजकी मृत्युके पश्चात् आज तक जयशलमेरमें कोई गडबड नहीं हुई। १८२९ ई०में बीकानेरकी फौजने जयशलमेर आक्रमण किया, परन्तु वृटिश गवर्नमेण्ट और उदयपुर महाराणाके बीचमें पड़नेसे झगडा मिट गया। १८४४ ई०में इसके कई किले अङ्गरेजोंने वापस दे दिये। मूलराजके बाद उनके पुत्र गजसिंह राजा हुए और १८४६ ई०में उनका देहान्त हो गया। उनकी विधवा महिषीने गजसिंहके भतीजे रणजित्‌सिंहको गोद रक्खा। १८६४ ई०में रणजित्‌सिंह-की मृत्यु होने पर उनके छोटे भाई वैरिशालको और उनके पीछे जवाहिरसिंहको महारावलका पद मिला (१)।

(१) रावल देवराजसे लगा कर जिन जिन व्यक्तियोंने जयशलमेरका राज्य किया है, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं,—

१ देवराज।
२ मण्ढ वा चामुण्ड।

और ५ फुट मोटी प्रस्तर-प्राचीर है। पूर्व और पश्चिममें दो द्वार बने हैं। ध्वंसावशेष देखनेसे विदित होता है कि किसी समय वह नगर बहुत समृद्ध रहा। दक्षिणमें एक पहाड़ पर किला है। इस पहाड़में बहुतसे घर और बचाव बने हैं। नगरकी ओर एक दरवाजा लगाया गया है। दुर्गके भीतर महारावलका महल खड़ा है। किलेके जैन मन्दिर बहुत अच्छे और १४०० वर्षके पुराने हैं। नगरमें हिन्दी भाषाकी पाठशाला भी है।

जयशाल—जयशालमेर नगर और दुर्गके प्रतिष्ठाता, यदुपति दुसाजके ज्येष्ठपुत्र। ज्येष्ठपुत्र होने पर भी इन्हें पिताकी मृत्युके बाद राजसिंहासन नहीं मिला था। दुसाजकी मृत्युके उपरान्त सामन्तोंने मेवाड़राजनन्दिनीके गर्भसे उत्पन्न, दुसाजके ३य पुत्र लञ्जविजयको सिंहासन पर बिठाया था। महावीर जयशाल अपने स्वत्वसे वञ्चित होनेके कारण जन्मभूमि छोड़ कर चले गये। वे पितृसिंहासन अधिकार करनेके लिए तरकीबें सोचने लगे। थोड़े दिन पीछे राजा लञ्जविजयकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र भोजदेव राजगद्दी पर बैठे। इन भोजदेवकी ५०० सोलङ्की राजपूतों द्वारा सर्वदा रक्षा की जाती थी, इसलिए जयशाल इनका कुछ भी न कर सके। इस समय गजनीपति साहवउद्दीन ठट्टप्रदेश अधिकार कर पाटनकी तरफ जानेका उद्योग कर रहे थे। जयशालने दूसरा कोई उपाय न देख आखिरको दो सौ असमसाहसी अश्वारोहियोंके साथ पञ्चनदराज्यमें आ कर साहव उद्दीन् गोरीसे साक्षात की। जयशाल जानते थे कि, अनहिलवाडपत्तन मुसलमानों द्वारा आक्रान्त होने पर भोजदेवका शरीररक्षक सोलङ्कीगण अवश्य ही उन्हें छोड़ कर अपनी जन्मभूमिकी रक्षार्थ गमन करेंगे और वे भी उसी मौके पर मरुस्थली अधिकार कर बैठेंगे। यहां आ कर जयशालने अपने मनका भाव गजनीपतिसे कहा। साहव-उद्दीनने उन्हें आदरके साथ ग्रहण किया और सहायताके लिए कई हजार सेना प्रदान की। उस यवन सहायतासे जयशालने लदोर्वा आक्रमण किया। भीषण समरमें भोजदेव निहत हुए। आखिरको भट्टिसेनाओंको जयशालकी वश्यता स्वीकार करनी पड़ी। जयशालके सहगामी मुसलमान सेनापति करीमखां लदोर्वा लूट कर विखार प्रदेशको तरफ चल दिये।

वीरवर जयशाल महासमारोहसे यादवराजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उन्होंने राजा होनेके बाद देखा कि लदोर्वा नगर सुरक्षित नहीं है, सहजहीमें शत्रु उस पर आक्रमण कर सकते हैं। इसलिए १२१२ सम्वत्में लदोर्वासे ५ कोस दूरी पर उन्होंने अपने नामका दुर्ग और नगर स्थापित किया और खुद भी वहीं रहने लगे। उनके समयमें भट्टिजातिके प्रधान शत्रु चन्नराजपूतोंने ख्यादाल प्रदेश आक्रमण किया था। परन्तु महावीर जयशालने इसका यथेष्ट प्रतिफल दिया था। उक्त घटनाके पांच वर्ष बाद १२२४ सम्वत्में इनका देहान्त हुआ था। दो पुत्र थे—एक कल्याण और दूसरे शालिवाहन।

जयशाल प्रबल पराक्रमी पाहुजातिमेंसे मन्त्री चुनते थे। ज्येष्ठपुत्र कल्याण उन मन्त्रियोंके विरागभाजन होनेके कारण उन्हें भी राज्य न मिला, आखिर वे भी मन्त्रियों द्वारा निर्वासित किये गये थे। जयशालकी मृत्युके उपरान्त उनके कनिष्ठपुत्र शालिवाहन राजा हुए थे।

जयश्री (सं० स्त्री०) १ विजयलक्ष्मी, विजय। २ तालके मुख्य साठ भेदोंमेंसे एक। ३ देशकार रागसे मिलती जुलती सम्पूर्ण जातिकी एक रागिणी। यह सन्ध्याके समय गायी जाती है। बहुतसे इसे देशकारकी रागिणी मानते हैं।

जयसमन्द—राजपूतानाके उदयपुर राज्यका एक झील। इसका दूसरा नाम ढेवर है।

जयसिंह—१ मेवाड़के प्रसिद्ध राणा राजसिंहके पुत्र। इनके जन्मनेसे कई एक घण्टे पहले भीम नामका एक सहोदर हुआ था। समय पर दोनों भाईयोंमें राजगद्दीको ले कर झगड़ा होगा, यह सोच कर एक दिन राणा राजसिंहने अपने ज्येष्ठपुत्र भीमको बुलाया और उसके हाथमें तलवार दे कर कहा—"यदि तुम्हें निष्कण्टक राज्य करना हो, तो इस तलवारसे तुम अपने भाई जयसिंहका मस्तक धड़से अलग कर दो।" सदाशय भीमने उसी समय उत्तर दिया—"सामान्य राज्यके लिए मैं अपने प्राणाधिक सहोदरका अनुमात्र भी अनिष्ट नहीं कर

पीछे इन्होंने सोमनाथ और गिरनार पर्वतके नेमिनाथ मन्दिरके दर्शन, ब्राह्मण और याचकोंको दान, सहस्त्रलिङ्ग सरोवरका खनन नानास्थानोंमें देवमन्दिर, मठ तथा और शास्त्रचर्चाके लिए विद्यालय बनवाया था।

११४३ ई०में महावीर सिद्धराजने इष्टदेवके पाद पद्मोंमें मन लगा कर तथा अनशनव्रत (सम विसर्ग) अवलम्बनपूर्वक इस नश्वर शरीरको छोड़ा। प्रसिद्ध वीर जगदेव परमार इनके सेनापति थे। जयमङ्गल आदि बहुतसे कवि इनकी सभामें रहते थे। प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र भी पहले इनकी सभामें रहते थे।

३ काश्मीरके एक प्रसिद्ध राजा, सुस्सलके पुत्र। आपने ११२८से ११५० ई० तक राज्य किया था। कविवर मङ्खने इन्होंके आश्रयमें रह कर ख्यातिलाभ की थी। काश्मीर देखो।

४ आंबेरके एक राजा। आप सिद्धान्ततत्त्वसर्वस्व-रचयिता गोपीनाथ मौनीके प्रतिपालक थे।

५ सम्राट् महम्मदशाहके समयके आगरेके एक सूबेदार। इन्होंने आगरेके चारों तरफ सहरपना अर्थात् ऊँची भीत बनवाई थी, जिसमें बहुतसे तोरण थे, अब सिर्फ दो ही तोरण रह गये हैं।

जयसिंह ३य—जयपुरके एक कच्छवाह राजा। इनके पिता जगत्सिंहकी मृत्युके बाद ये पैदा हुए थे। १८९१ सम्वत् (१८३४ ई०) में कामदार झूटाराम द्वारा विष प्रयोगसे इनकी मृत्यु हुई थी। जयपुर देखो।

जयसिंह कवि—हिन्दी भाषाके एक कवि। इनकी शृङ्गाररसकी कविता अच्छी होती थी।

जयसिंहदेव—नयमाधवमानसोल्लास नामक संस्कृतग्रन्थके रचयिता।

जयसिंहनगर—मध्यप्रदेशके सागर जिलेका एक ग्राम यह अक्षा० २३° ३८´ उ० और देशा० ७८° ३७´ पू०में सागरसे २१ मील दक्षिणपश्चिममें अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या तीन हजार होगी।

करीब १६९० ई०में सागरके शासनकर्ता जयसिंहने यह ग्राम बसाया था। इन्होंने सामन्तोंके आक्रमणसे इस ग्रामकी रक्षाके लिए यहां एक किला बनवाया था, जिसका खण्डहर अब भी मौजूद है। १८१८ ई०में सागरके साथ साथ यह ग्राम भी वृटिशके अधिकारमें आ गया। इसके बाद १८२९ ई०में अप्पा साहबकी विधवा महिषीने रुक्माबाईको रहनेके लिए यह गांव दे दिया। यहां थाना डाकघर, मदरसा और हाट लगती है।

जयसिंह मिश्र—चण्डीस्तवके एक टीकाकार।

जयसिंह मीर्जा—अम्बर (आमेर)के एक प्रसिद्ध राजा, राजा महासिंहके पुत्र। महासिंहकी मृत्युके उपरान्त आमेरराज्यके उत्तराधिकारीके विषयमें आन्दोलन चल रहा था। उस समय जगत्सिंहके पौत्र महावीर जय-सिंहने जोधाबाईके पास राज्य पानेकी आशा व्यक्त की। जोधाबाईके अनुरोधसे सम्राट् जहांगीरने जयसिंहको ही आमेरका सिंहासन दिया। परन्तु इससे नूरजहां अत्यन्त असन्तुष्ट हो गई।

वीरवर जयसिंह सिंहासन पर बैठ कर अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और बाहुबलसे राज्य विस्तार करनेको प्रवृत्त हुए। बादशाहने उनके प्रति सन्तुष्ट हो कर उन्हें 'मोर्जा' उपाधि दी।

जब दिल्लीके मयूरासन पानेके लिए दारा और औरङ्ग-जेबमें झगड़ा हुआ था, तब पहले इन्होंने दाराका पक्ष लिया था, किन्तु पीछे विश्वासघातकता कर औरङ्गजेबकी तरफ मिल जानेके कारण दाराकी साम्राज्यप्राप्तिकी आशा पर पानी फिर गया।

जयसिंहने औरङ्गजेबका वास्तविक उपकार किया था। बादशाहने उन्हें छ हजारी सेनाओंका अधिनायक बनाया था। जिस समय महावीर शिवाजीके अभ्युदयसे मुगल साम्राज्य एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त तक कांपने लगा था, जिनके प्रतापसे मुगल सेनापति पुनः पुनः परास्त हुए थे, जिनके भयसे सम्राट् औरङ्गजेब तक सर्वदा सशङ्कित रहते थे, उन वीरकुलतिलक शिवाजीको एकमात्र अम्बर-राज जयसिंहने ही परास्त करके बन्दी कर पाया था। परन्तु जयसिंहने महावीर शिवाजीका कभी भी अपमान नहीं किया था, शिवाजीको कैद कर दिल्ली लाते समय इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि, बादशाह उनका केशाग्र भी स्पर्श नहीं कर सकेंगे। किन्तु जब देखा कि, औरङ्गजेब शिवाजीको मुट्ठीमें पा कर उन्हें मारनेकी चेष्टा कर रहे हैं, तब जयसिंहने उन्हें भागनेका सुभीता दे अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा की। शिवाजी देखो।

जयसिंहको अपनी वीरताका कुछ गर्व था। वे दरबारमें सबके सामने स्पर्धाके साथ कहा करते थे कि 'मैं चाहूं तो सतारा या दिल्लीका अधःपतन कर सकता हूं।' बादशाह औरङ्गजेबने उनको यह बात सुनी थी किन्तु वे भी जयसिंहको डरते थे, इसलिए प्रकाश्यमें वे इनका कुछ न कर सकते थे। अन्तमें जयसिंहके पुत्र कीरतसिंहको आमेर राज्यका लोभ दिखा कर उनको पिताकी हत्याके लिए उत्तेजित किया। निर्बोध कीरतसिंहने दुष्टोंकी बातमें आ कर अफीमके साथ जहर मिला कर पिताको मार डाला। किन्तु कीरतसिंहको पापका फल हाथों हाथ मिल गया, उनके ज्येष्ठ भ्राता रामसिंह ही पिताके आसन पर अभिषिक्त हुए।

जयसिंह सवाई—जयपुरके एक प्रसिद्ध राजा और भारतके एक अद्वितीय ज्योतिर्विद्। ये अम्बरके राजा जयसिंह मिर्जाके प्रपौत्र और विष्णुसिंहके पुत्र थे। बचपनसे ही ये विद्यानुरागी थे। सम्वत् १७५५में ये राजसिंहासन पर बैठे थे। राज्याभिषेकके बाद ही ये दाक्षिणात्यकी तरफ युद्ध करने गये। उस युद्धमें जय प्राप्त कर ये बादशाहके प्रेमभाजन हुए थे। सम्राट्ने इन्हें पहले डेढ़ हजारी और पीछे दो हजार सवारका मनसबदार बनाया था।

औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद जिस समय साम्राज्यको ले कर बादशाह कुमारोंमें गृहकलह उठा था, उस समय जयसिंहने आजिमशाहके पुत्र कुमार बेदारबख्तका पक्ष अवलम्बन कर बहादुरशाहके विरुद्ध युद्ध किया था। इसलिए बहादुरशाहने दिल्लीके तख्त पर बैठते ही अम्बरराज्य दखल कर लिया। पीछे अम्बरका शासन करनेके लिए एक शासनकर्ताको भी भेजा था। उस समय जयसिंहके छोटे भाई विजयसिंहने भी राजा बननेकी कोशिश की। जिस समय जयसिंहने आजिम शाहका पक्ष लिया था, उस समय विजयसिंह बहादुरशाहकी तरफसे लड़े थे। इसलिए बहादुरशाहने उन्हें तीन हजारीकी मनसबदारी प्रदान की।

विजयसिंहकी माता जयसिंहकी विमाता थी। इसलिए वे चाहती थी कि जयसिंह किसी भी तरह राजा न बन सकें। इसलिए उन्होंने मौका देख कर विजयसिंहको मणि, माणिक्य हीरा आदि जवाहरात दे कर बादशाहके पास भेज दिया। किन्तु सम्राट्ने उन्हें मीठी बातोंसे सन्तुष्ट कर सैयद हुसेनअलीको अम्बरराज्यका फौजदार बना कर भेज दिया।

इस समय जयसिंह कुछ दिनोंके लिए भी सिंहासन पर न बैठ पाये थे, इसलिए उनके हृदयमें मुसलमानोंके ऊपर दारुण विद्वेषाग्नि जलने लगा। रात-दिन वे इसी चिन्तामें रहते थे कि किस तरह वे राजा बन सकेंगे।

जिस समय (१७०८ ई० में) बहादुरशाहने भाई कामबख्शको दमन करनेके लिए दाक्षिणात्यकी तरफ यात्रा की, उस समय जयसिंहने मारवाड़के राजा अजितसिंहके साथ मिल कर मुसलमान फौजदारको भगा दिया और खुद सिंहासन पर बैठ गये। अजितसिंहकी कन्या सूर्यकुमारीके साथ जयसिंहका विवाह हुआ था। इन्होंने वैमात्रेय भाई विजयसिंहको सन्तुष्ट रखनेके लिए उनकी प्रार्थनानुसार उन्हें अम्बरराज्यके भीतर अतीव उर्वरा बसवा प्रदेश दे दिया। परन्तु इससे विजयकी माताको सन्तोष न हुआ। उन्होंने विजयको राज्यलाभका लोभ दिखा कर पुनः उत्तेजित किया। विजयसिंहने दिल्ली जा कर प्रधान प्रधान अमीरोंको अर्थद्वारा वशीभूत किया और ज्येष्ठ भ्राता जयसिंहके विरुद्ध बहुतसे अभियोग लगा कर वे पुनः राज्य पानेके लिए कोशिश करने लगे। रिश्वत खा कर सम्राट्के प्रधान मन्त्री कमर-उद्-दीनखाँने भी विजयसिंहके पक्षका समर्थन किया।

कमर-उद्दीनने बादशाहके पास जा कर कहा—"विजयसिंह बराबर हम लोगोंके साथ सद्व्यवहार करते आये हैं। परन्तु चतुर जयसिंह हमेशा हम लोगोंके विरुद्ध रहते हैं। ऐसी दशामें अम्बरका राज्य विजयसिंहको ही देना ठीक है। विजयसिंहको राजा करनेसे वे पाँच करोड़ रुपये देनेको तयार हैं। इसके सिवा जरूरत पड़ने पर पाँच हजार तक सवारोंको सैन्य भेजते रहेंगे।" मन्त्रीकी बात सुन कर सम्राट्ने पूछा—"विजयसिंह अपने वचनके अनुसार ही कार्य करेंगे, इसका क्या ठीक है? कोई जामिन है?" मन्त्रीने उत्तर दिया—"मुझे ही उसका जामिन् समझिये।" इस पर

बादशाहने विजयसिंहको पक्षको सनंद बनानेके लिए आज्ञा दे दी।

खाँ दौरान् नामक एक प्रधान अमीरके साथ जयसिंहने पगड़ी बदल कर उन्हें अपना मित्र बना लिया था। अब उन्हीं अमीरने गुपचुप उक्त वृत्तान्तको सुन कर जयसिंहके दरबारस्थ वकील कृपारामसे कहा और कृपाराम द्वारा शीघ्र ही वह सम्वाद जयसिंहके पास भेजा गया।

कृपारामका पत्र पा कर जयसिंह भी चिन्तित हुए। उनके भाई भी मुगल सेनाके साथ उनके विरुद्ध आवेंगे, इसीलिए उन्हें चिन्तामें पड़ना पड़ा था। दूसरा कोई होता तो उन्हें कुछ भी पर्वाह नहीं होती। उन्होंने शीघ्र ही अम्बरके समस्त सामन्तोंको बुला कर शीघ्र ही आनेवाली विपत्तिकी बात कही। सामन्तोंने उनको अभयदान दिया और विजयसिंहके पास अपने अपने सन्धियों को भेजा तथा यह कहला भेजा कि, "आपको बसवा प्रदेश ले कर ही सन्तुष्ट रहना चाहिये। ज्येष्ठ भ्राताके साथ आपका झगड़ा करना न्यायतः और धर्मतः उचित नहीं। आप जिससे सम्मानके साथ बसवा प्रदेशका भोग कर सकें, उसके लिए हम सभी प्रतिज्ञाबद्ध रहेंगे।"

बहुत अनुनय विनय करनेके उपरान्त विजयसिंहने इस बातको मंजूर किया। सामन्तगण यह भी कोशिश करने लगे कि, जिससे दोनों भाईयोंमें मेल-मुलाकात हो कर सौहार्द उत्पन्न हो जाय। निश्चय हुआ कि, प्रधान सामन्तकी राजधानीमें दोनों भाईयोंका मिलन होगा। इस पर दोनों पक्षके लोग घूमू नगरमें उपस्थित हुए। इसी समय खबर आई कि, "महाराज्ञी दोनों भाईयोंके नयनानन्ददायक मिलनको देखना चाहती हैं"। सामन्तगण भी महाराज्ञीकी इच्छाके विरुद्ध कुछ न कह सके। सबोंकी अनुमतिके अनुसार उसी समय महाराज्ञीका महादोला और पुरमहिलाओंके लिए तीन सौ रथ सजाये गये। परन्तु महादोलामें राजमाताके बदले सामन्तवीर उग्रसेन और पश्चाद्गत प्रत्येक रथमें स्त्रियोंके बदले दो दो सशस्त्र सैनिक बठाये गये। सामन्तगण पहले ही जयसिंहके साथ चल दिये थे, वे इस षड्यन्त्रका बिन्दु विसर्ग तक नहीं जानते थे।

जयसिंह और सामन्तगण पहलेहीसे सांगानेर आ कर राजमाताके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। एक दूतने आ कर उनके आनेका समाचार सुनाया तो सभी प्रासादकी तरफ दौड़े गये। प्रासादमें जयसिंह और विजयसिंह दोनों भाईयोंका मिलन हुआ। जयसिंहने विजयके हाथ पर बसवाकी सनंद रख कर स्नेहसे कहा—"यदि तुम्हारी इच्छा अम्बरराज्य लेनेके लिए हो, तो वह भी मैं दे सकता हूं।" जयसिंहके स्नेह भरे वाक्यसे दुष्टमति विजयसिंहका मन भी पघल गया, उन्होंने जवाब दिया—"भाई! मेरी सब आशाएं पूरी हो गईं।"

इसके कुछ देर बाद एक नौकरने आ कर कहा कि, "राजमाता आप दोनोंसे मिलना चाहती हैं।" इस पर सामन्तोंसे अनुमति ले कर दोनों भाई अन्तःपुरमें घुसे। प्रवेशद्वार पर एक खोजा खड़ा था, जयसिंहने उसको हाथमें तलवार दे कर कहा—'माताके पास शस्त्र जानेकी क्या जरूरत ?" विजयसिंहनेभी ज्येष्ठ भ्राताकी देखादेखी तलवार वहीं छोड़ दी और भीतर चले गये।

भीतर घुसते ही माताके स्नेहालिङ्गनके बदले विजयसिंह पर महि सामन्त उग्रसेनका कठोर आक्रमण हुआ और वे बन्दी हो गये। मुंह और हाथ पैर आदि बांध कर उन्हें महादोलामें डाल् गुप्त रीतिसे अम्बर राज्यकी राजधानीमें लाया गया। सभीने समझा कि, राजमाता प्रासादको लौटी जा रही हैं। इधर जयसिंह करीब एक घण्टा बाद कई एक अस्त्रधारी सैनिकोंके साथ बाहर निकले। उन्हें अकेले आते देख सभी पूछने लगे—"विजयसिंह कहां हैं ?" चतुर नीतिज्ञ जयसिंहने उत्तर दिया—"मेरे पेटमें। अगर आप लोगोंका यह अभिप्राय हो कि, विजयसिंह ही राजा हों ; तो मुझे मार कर उसे निकाल लें। यह निश्चय समझिये कि; विजय मेरा और आप लोगोंका शत्रु है। कभी न कभी वह शत्रुओंको अम्बरमें ला कर हम सभीको मरवा डालता इसमें सन्देह नहीं।" सभी सामन्त आश्चर्यसे दंग रह गये। दूसरा कुछ उपाय न देख वे चुपचाप चल गये। जब विजयसिंह अम्बर आये थे, तब कमर उद्-दीनखांने उनके साथ एकादल मुगल अश्वारोही

सैन्य भेजी थी। विजयसिंहको कोटमें देरी होते देख उस सेनाके नायक उनसे विलम्बका कारण पूछा। जयसिंहने उत्तर दिया—'तुम्हें कारण जाननेकी कोई जरूरत नहीं; बल्कि अभी चुप कर दो, नहीं तो तुम लोगोंके घोड़े छीन लिए जायेंगे।" यह सुन कर तमाम मुगल सेना भाग गई। इस प्रकारसे चतुर राजनीतिज्ञ महापात्र जयसिंहने अपनी और जन्मभूमिकी रक्षा की। विजयसिंह अन्तरङ्ग किलेमें कैद रहे।

बादशाह अम्बरराज जयसिंहके इस व्यवहारसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। किन्तु अकस्मात् लाहोरमें उनकी मृत्यु हो जानेसे उस समय जयसिंह दिल्लीश्वरके प्रबल आक्रमणसे साफ बच गये।

बहादुरशाहकी मृत्युके बाद फर्रुखसियर दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। उनके साथ जयसिंहका विशेष सद्भाव था। उन्होंने जयसिंह पर सन्तुष्ट हो कर उन्हें 'महाराजाधिराज'की उपाधि प्रदान की थी।

सम्राट फर्रुखसियर भी बहुत दिन राज्य नहीं कर सके। वे धूर्त सैयद भाइयोंकी क्रीड़ापुत्तली बन गये। परन्तु वे उनके हाथसे निकलनेके लिए चेष्टा भी कर रहे थे। उनके इस अभिप्रायको सैयद हुसेन अलीने ताड़ लिया और वे दाक्षिणात्यसे बालाजी विश्वनाथकी अधीनस्थ बहुत सी महाराष्ट्र सेना ले आये। इस समय महाराज जयसिंह भी बादशाहको बचानेके लिए दिल्ली उपस्थित हुए थे किन्तु कायर फर्रुखसियार सैयद द्वारा परिचालित महाराष्ट्र सेनाओंके डरसे अन्तःपुरमें जा छिपे। इस विपत्तिकालमें जयसिंहने बारबार बादशाहको कहला भेजा कि "आप बाहर निकल कर अपनी सेनाओंके सामने खड़े हो कर कहिये कि दोनों सैयद राजद्रोही हैं। इससे आप पर किसी तरहकी विपत्ति न आवेगी, सभी आपकी सहायता करनेको तैयार हैं, मैं भी आपको जी जानसे सहायता दूंगा।" किन्तु भीरु फर्रुखसियारने किसी भी जयसिंहकी बात पर जरा भी ध्यान न दिया, आखिर वे अन्तःपुरमें ही कैद कर लिए गये।

इसके उपरान्त महम्मदशाह बादशाह हुए। उनके राजत्वकालमें पहले जयसिंहने राजनैतिक उत्सव त्याग कर ज्योतिषकी चर्चा आरम्भ की। उन्होंने क्या यूरोपीय और क्या देशीय समस्त प्राचीन और अर्वाचीन वैज्ञानिक ज्योतिर्ग्रन्थोंका संग्रह कर उन्हें पढ़ना आरम्भ किया। उनको मेनुयल् नामक एक पोर्तगीज पादरीकी भेंट हुई। यूरोपमें ज्योतिर्विद्याकी कहां तक उन्नति हुई है यह जाननेके लिए जयसिंहने उक्त पादरीके साथ कई एक विश्वस्त आदमियोंको पोर्तुगलके अधीश्वर एमानुएलकी सभामें भेज दिया। पोर्तुगलके राजाने अम्बरपतिके पास जेवियर डि॰ सिलभा नामक एक सम्भ्रान्त ज्योतिर्विदको भेजा था। डि॰ सिलभाने यहां आकर जयसिंहको पोर्तुगलमें डा॰ लेहायर द्वारा आविष्कृत कई एक यन्त्र दिये थे। इसके सिवा जयसिंहने तुर्कीके ज्योतिर्विदों द्वारा व्यवहृत और समरकन्द पर स्थापित कई एक यन्त्रों तथा बहुतसे भिन्न भिन्न शास्त्रोंका संग्रह किया था। वास्तवमें उन्होंने उस समयके प्रचलित प्रायः सम्पूर्ण ज्योतिष-समुद्र मन्थन कर प्रकृत ज्योतिषामृत पान किया था। दुनियाके तमाम इतिहास पढ़ डालिये किन्तु राजाओंमें जयसिंह जैसे ज्योतिर्विद् दूसरे न मिलेंगे। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि, जयसिंहने भारतमें वास्तविक ज्योतिषशास्त्रोंके उद्धार करनेके लिए भरपूर प्रयत्न किया था और उन्होंने अनेक अंशोंमें सफलता भी पाई थी।

जयसिंहने अपने बनाये हुए "जीज महम्मदशाही" नामक ग्रन्थमें लिखा है कि, उन्होंने लगातार सात वर्ष तक ज्योतिषशास्त्रका अध्ययन किया था। उनके ज्योतिष शास्त्रमें असाधारण पाण्डित्यको देख कर ही बादशाह महम्मदशाहने उनसे उस समयमें प्रचलित पञ्जिकाका संशोधन कराया था और इसीलिए बादशाहने उनको "सवाई" अर्थात् समस्त राजकुमारोंसे श्रेष्ठ, यह उपाधि दी थी। इसी समय (१७२८ ई॰में) जयसिंहने अपने मन्त्री और ज्योतिर्विद् विद्याधरके परामर्शानुसार वर्त्तमान जयपुर नगर बसाया था।

जयपुर देखो।

धीरे धीरे सवाई जयसिंहकी प्रसिद्धि तमाम हिन्दुस्तानमें फैल गई। उनकी सभामें नाना स्थानोंके प्रधान प्रधान ज्योतिर्विद् और शास्त्रविद् पण्डितगण आने

करतीं और उन्हें आदर पूर्वक आहार कराती हैं। यदि मेरा वश होता तो मैं ऐसे साधुओंको राज्यसे निकाल बाहर करती।" रानी कुछ गई थीं, उन्होंने मुनिराज को सुना सुना कर दो चार बातें कहीं किन्तु मुनि राजने उस पर कुछ भी ध्यान न दिया।

कुछ ही दिन बाद, मुनिनिन्दाके महापापसे रानीको कुष्ठव्याधि हो गई। उनका अनुपम सौन्दर्य घृणाका स्थान बन गया। शरीरसे दुर्गन्ध निकलने लगी, पीप, खून आदि बहने लगा। महारानीकी थोड़े ही दिनोंमें ऐसी दुर्दशा देख कर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने रानीसे पूछा—"सच तो कहो, एकाएक तुम्हारा शरीर ऐसा क्यों हो गया?" महारानी जयसेनाको सच-मुच ही बड़ा पश्चात्ताप हुआ था। उन्होंने कहा—"नाथ! उस दिन जो मुनिराज आहारके लिए आये थे; उनकी मैंने खूब निन्दा की थी उन्हें बुरे वचन भी कहे थे। शायद उसी महापापका यह फल है।" जयसेनको बड़ा दुःख हुआ; उन्होंने कहा—"पापिनी! यह तूने क्या किया? मुनिनिन्दाके महापापसे तुझे नरकके घोर दुःख सहने पड़ेंगे, यह तो कुछ भी नहीं है।" रानी नरकका नाम सुनते ही कांप उठीं। वे उसी समय पालकी-में बैठ कर मुनिराजके पास वनमें पहुंचीं और बड़ी भक्तिसे प्रणाम कर मुनिराजसे कहने लगीं—"कृपा-सिन्धो! मेरा अपराध क्षमा कीजिये; मैंने अज्ञानतासे मुनिनिन्दा की है। कृपा कर नरक दुःखसे मेरा उद्धार कीजिये।" मुनिराजको महारानीके परिवर्तनसे बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने उन्हें धर्मका उपदेश दिया। रानीको मुनि महाराजके व्यवहारसे जैनधर्म पर और भी श्रद्धा हो गई। उन्होंने सम्यग्दर्शनपूर्वक गृहस्थधर्म (आठ मूलगुण पांच अनुव्रत आदि) अवलम्बन किया।

इसके बाद भक्तामरस्तोत्रके २८वें श्लोकके मन्त्रका जल छिड़कते रहनेसे कुछ दिनोंमें उनका कुष्ठरोग भी जाता रहा। इससे महारानी जयसेनाको जैनधर्म पर पूर्ण श्रद्धा हो गई। (भक्तामरकथा श्लो० २९)

जयसोम गणि—एक विख्यात जैनपण्डित। इन्होंने खण्ड-प्रशस्तिवृत्तिकी रचना की है।

जयस्कन्धावार (सं० क्लो०) वह शिविर जिसे विजयी राजा जीते हुए स्थान पर स्थापित करते हैं।

जयस्तम्भ (सं० पु०) जयसूचकः स्तम्भः। जयसूचक स्तम्भ, वह स्तंभ जो विजयी राजासे किसी देशको विजय करनेके उपरान्त विजयके स्मारक स्वरूप बनाया जाता है।

जयस्वामी (सं० पु०) कात्यायन-कल्पसूत्रके भाष्यकार।

जयश्यामा (सं० स्त्री०) जैनोंके १२वें तीर्थङ्कर विमल नाथ भगवानकी माता।

जया (सं० स्त्री०) जीयतेऽनया जि करणे अच्, ततष्टाप्। १ दुर्गा। २ जयन्तीवृक्ष, जैंतका पेड़। जयन्ती देखो। ३ तिथिविशेष, त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया तिथिका नाम जया है। ४ पुत्रदायिनी द्वादशी तिथिका नाम। ५ हरीतकी, हड़। ६ दुर्गाकी एक सहचरीका नाम। ७ दुर्गा। वराहशैलके पीठस्थान पर भगवती जयादेवीकी मूर्ति विराजमान है। (देवीभा० ७।३०।५२) ८ शान्ता शाशमी वृक्ष छौंकर। ९ नीलदूर्वा, हरी दूब। १० अग्नि-मन्यवृक्ष, अरणीका पेड़। ११ पताका, ध्वजा। १२ ज्वरघ्न औषधविशेष, बुखार हटानेवाली एक प्रकारकी दवा। १३ भङ्गा, भाँग। १४ जवापुष्प, गुड़हलका फूल, अड़हुल। १५ सोलह मातृकाओंमेंसे एक। १६ एक प्रकारका पुराना बाजा। इसमें बजानेके लिए तार लगे होते थे। १७ पार्व-तीका एक नाम। १८ माघमासकी शुक्ल एकादशी। १९ जवापुष्पवृक्ष, अड़हुलका पेड़। २० महादन्तीवृक्ष, केवाँच वा कौंछका पेड़। २१ अपराजिता, विष्णुक्रान्तालता, कौवाठोंठी। २२ शाल्मलीवृक्ष, सेमका पेड़।

जयाञ्जन (सं० क्लो०) स्रोतोञ्जनभेद, सुरमा।

जयादित्य (सं० पु०) काश्मीरके एक विख्यात राजा और काशिकावृत्तिके प्रणेता। कायस्थ, काश्मीर और जया-पीड़ देखो।

जयाह्वय (सं० स्त्री०) जयन्ती और हड़।

जयानन्द—१ एक मैथिल कवि। ये करण कायस्थ थे। २ चैतन्यमङ्गल प्रणेता।

जयानीक (सं० पु०) १ द्रुपदराजाके एक पुत्रका नाम। विराट् राजाके एक भाईका नाम। जयप्रिय देखो।

जयापीड़ (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा। संग्रामा-

पौण्ड्रकी मृत्युके बाद ७५१ ई॰ में ये राजगद्दी पर बैठे थे। ये जब राजा हो कर दिग्विजय करनेके लिए सेना सहित बाहर गये, तब इनके श्यालक राजसिंहासन अधिकार कर बैठे। इन्होंने कई एक दिन बाद कुछ दूर जा कर देखा कि, उनको बहुतसी सेना रातको इन्हें छोड़ कर भाग गई है। यह देख कर इन्होंने अपने करद राजाओंको अपने अपने देश लौट जानेके लिए कहा और खुद कई एक अनुचरों और मांगे हुए थोड़े से घोड़े ले कर प्रयागधाममें उपस्थित हुए। इस समय इन्होंने एक स्तम्भ बनवाया और ब्राह्मणोंको ८८८८९ अश्व दान दिये। इस स्तम्भ पर लिखा है कि, "मैंने एकोनलक्ष अश्व ब्राह्मणोंको दानमें दिये हैं। यदि कोई १ लाख अश्व दान कर सके तो इस स्तम्भको तोड़ दे"

अनन्तर ये पुनः अपनी समस्त सेनाको लौट जानेका आदेश दे कर रात्रिके समय यहांसे चल दिये। घूमते फिरते ये गौड़ राज्यमें पहुंचे, जहां जयन्त नामक राजा राज्य करते थे। गौड़की राजधानी पौण्ड्रवर्द्धन नगरमें पहुंचने पर कमला नामक एक वेश्याने राजा समझ कर इनका स्वागत किया। ये उसीके घर ठहर गये। वेश्याने इनसे अपनी इच्छा प्रगट की। इस पर जयापीड़ने उत्तर दिया—"जब तक मेरी दिग्विजययात्रा समाप्त न होगी, तब तक स्त्रियोंसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं।" एक दिन उस नगरमें एक सिंह घुस पड़ा और प्रजाका विनाश करने लगा। जयापीड़को मालूम होते ही उन्होंने बड़ी वीरताके उसे मार डाला। दूसरे दिन जब राजाने मार्गमें सिंहका शव पाया, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सिंहको कटवाया तो उसके नीचे एक आभूषण पड़ा मिला, जिस पर "जयापीड़" लिखा था। राजाको बड़ी खुशी हुई, उन्होंने घोषणा की कि "जो जयापीड़को ढूंढ कर ला देगा उसे आशातीत पुरस्कार दिया जायगा।" जयापीड़का पता लग गया। राजाने उन्हें निमन्त्रण दे कर घर बुलाया और अपनी पुत्री कल्याणदेवीका उनके साथ विवाह कर दिया।

जयापुष्प (सं॰ क्ली॰) जवापुष्प।

जयावती (सं॰ स्त्री॰) जय विद्यते ऽस्याः अस्त्यर्थे मतुप मस्य वः, ततो ङीप्। १ कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। २ रागिणीविशेष, एक संकर रागिणी। यह धनाश्री, और सरस्वतीके योगसे बनती है।

जयावती—१ पोदनपुराधिपति राजा प्रजापतिकी प्रधान महिषी और प्रथम बलदेव विजयकी माता। ये भगवान् श्रेयांसनाथके समयमें हुई थीं।

२ चम्पापुराधिपति इक्ष्वाकुवंशीय राजा वसुपूज्यकी प्रधान महिषी और बारहवें तीर्थङ्कर भगवान् वासुपूज्यकी माता। (जैन-आदिपुराण)

जयावहा (सं॰ स्त्री॰) जय आवहतीति आ वह-अच्। १ भद्रदन्तीवृक्ष। २ नीलदूर्वा, हरीदूब।

जयाशिस् (सं॰ स्त्री॰) जयका आशीर्वाद।

जयाश्रया (सं॰ स्त्री॰) जय आश्रयति आ-श्रि अच् टाप्। गड़रीतृण, जरड़ी घास।

जयाश्व (सं॰ पु॰) विराट-राजाके एक भाईका नाम।

जयाह्वा (सं॰ स्त्री॰) जयस्य आह्वा आख्या यस्याः। भद्रदन्तीका वृक्ष।

जयिन् (सं॰ त्रि॰) जेतु शीलमस्य जि इनि। जयशील, विजयी फतहमंद।

जयिष्णु (सं॰ त्रि॰) जि शीलार्थे इष्णुच्। जयशील जो जीतता हो।

जयुस (सं॰ त्रि॰) जि-उसि। जयशील जीतनेवाला।

जयेत् (सं॰ पु॰) पुरिया और कल्याण योगसे उत्पन्न एक संकर रागिणी। इसमें पञ्चम स्वर नहीं लगता। यथा—"स म ग॰ ध नि सा ऋ।" (संगीतर॰)

जयेती (सं॰ स्त्री॰) रागिणीविशेष एक प्रकारकी संकर रागिणी। यह गौरी और जयन्तश्रीयोगसे उत्पन्न होती है। यह सामन्त, ललित और पुरिया अथवा तोड़ी आसावरी और विभास योगसे भी उत्पन्न हो सकती है।

(संगीतर॰)

जयेन्द्र (सं॰ पु॰) काश्मीर-राज विजयके पुत्र। इनकी बांह इतनी बड़ी थी कि वे घुटने तक पहुंच जाती थी। इनके मन्त्रीका नाम सन्धिमति था। इन्होंने ३७ वर्ष तक राज्य किया था। काश्मीर देखो।

जयेश्वर (सं॰ पु॰) एक प्राचीन शिवलिङ्ग।

जय्य (सं० त्रि०) जि-जेतुं शक्यः। जयकरणयोग्य, जो जीतने योग्य हो, फतह करने काबिल।

जर (सं० पु०) जॄ-भावे अप्। १ जरा, वृद्धावस्था। जरा देखो। २ नाश वा जीर्ण होनेकी क्रिया। ३ एक तरहका समुद्री सेवार, कचरा। ४ जैन मतानुसार वह कर्म जिससे पाप पुण्य, राग द्वेष आदि शुभाशुभ कर्मोंका क्षय होता है।

ज़र (फा० पु०) १ स्वर्ण, सोना। २ धन, दौलत, रुपया।

जरई (हिं० स्त्री०) १ अन्नविशेष, जई नामका अनाज। २ धान आदिके वे बोज जिनमें अङ्कुर निकले हों। धानको दो दिन तक दिनमें दो बार पानीमें भिगो कर तोसरे दिन उसे पयालसे ढक देते हैं और ऊपरसे पत्थर दबा देते हैं। इसको मारना कहते हैं। दो एक दिन ढके रहनेके बाद पयाल उठा देना चाहिए। फिर उसमें सफेद सफेद अङ्कुर निकल आते हैं। कभी कभी इन बीजोंको फैला कर सुखाते हैं। ऐसे बीजोंको जरई कहते हैं। यह जरई खेतमें बोनेके काम आती है और जल्दी जमती है। कभी कभी धानकी सुजारोंको भी बन्द पानीमें डाल देते हैं और तीन चार दिन बाद उसे खोलते हैं। इस समय तक वे बोज जरई हो जाते हैं।

जरक (सं० क्लो०) हिङ्गु, हींग।

जरकटी (हिं० पु०) एक शिकारी पची।

ज़रकश (फा० पु०) जिस पर सोनेके तार लगे हों।

ज़रखेज़ (फा० वि०) उर्वरा, उपजाऊ।

जरगह (फा० स्त्री०) राजपूतानेमें होनेवाली एक प्रकारकी घास। चौपाये इसे बड़े चावसे खाते हैं। यह खेतोंमें कियारियां बना कर बोई जाती है छठे या सातवें दिन इसमें जलकी आवश्यकता पड़ती है। यह पन्द्रहवें दिनमें काटी जा सकती है। इसी तरह एक बार बोने पर यह कई महीनों तक चलती है। इसके खानेसे बैल बहुत जल्द बलवान् हो जाते हैं।

जरज (हिं० पु०) एक प्रकारका कन्द। यह तरकारीके काममें आता है। इसके दो भेद हैं। एककी जड़ गाजर या मूलीकी तरह और दूसरेकी जड़ शलगमकी तरह होती है।

जरजर (हिं० वि०) जर्जर देखो।

जरठ (सं० त्रि०) जीर्यं वनेनेति जॄ-अठ। १ कर्कश, कठोर। २ पाण्डु पोलापन लिये सफेद रंगका। ३ कठिन, कड़ा, सख्त। ४ वृद्ध, बुड्ढा। ५ जोर्ण, पुराना (पु०) ६ जरा, बुढ़ापा।

जरठी (सं० स्त्री०) जॄ-बाहुलकात् अठ ततो गौरादित्वात् ङोष्। तृणविशेष, जरठी नामकी घास। इसके संस्कृत पर्याय—गर्मोटिका, सुनाला और अश्याश्रया। इसके गुण—मधुर, शीतल, सारक, दाहनाशक, रक्तदोषनाशक और रुचिकर। इसके खानेसे गायें भैंस अधिक दूध देती है।

जरण (सं० क्लो०) जरयतीति जॄ-णिच्-ल्यु। १ हिङ्गु, हींग। २ कृष्ठोषध। ३ श्वेतजीरक, सफेद जीरा। ४ जीरक, जीरा। ५ कृष्णजीरक, काला जीरा। ६ सौवर्चल लवण, काला नमक। ७ कासमर्द, कसौंजा। ८ जरा, बुढ़ापा। ९ दश प्रकारके ग्रहणोंमेंसे एक। इसमें पश्चिम ओरसे मोक्ष होना प्रारंभ होता है। (वि०) १० जीर्ण, पुराना।

जरणद्रुम (सं० पु०) जरणो जीर्णः द्रुमः। अश्वकर्ण वृक्ष, साखूका पेड़। २ सागौनका पेड़।

जरणा (सं० स्त्री०) जरण-टाप्। १ कृष्णजीरक, काला जीरा। २ जीर्ण। ३ वृद्धत्व, बुढ़ापा। ४ जरा, वृद्धावस्था। ५ मोक्ष, मुक्ति। ६ स्तुति, प्रशंसा, तारीफ।

जरणि (सं० त्रि०) स्तुतिकारक, प्रशंसा करनेवाला।

जरणिप्रिया (सं० त्रि०) स्तुतिकारक, तारीफ करनेवाला।

जरण्ड (सं० त्रि०) जीर्ण, पुराना।

जरण्या (सं० स्त्री०) जरा, वृद्धावस्था, बुढ़ापा।

जरण्यु (सं० त्रि०) आत्मनः जरणं स्तुतिं इच्छति क्यच् उन्। जो अपना प्रशंसा चाहता हो।

जरत् (सं० त्रि०) जॄ-अतृन्। १ वृद्ध, बुड्ढा। २ पुरातन, पुराना। (पु०) जरतीति जॄ-शतृ। वृद्ध, बुड्ढा मनुष्य।

जरती (सं० स्त्री०) जरत् ङीप्। वृद्धा, बुड्ढी औरत।

जरत्कर्ण (सं० पु०) एक वैदिक ऋषिका नाम।

जरत्कारु (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम, यायावर।

"जरेति क्षयमाहुर्वै दारुणं कारुसंज्ञितम्।
शरीरं कारु तस्यासीत्तत् स धीमाञ्छनैः शनैः॥

क्षपयामास तीव्रेण तपसेत्यत उच्यते ।
जरत्कारुरिति ब्रह्मन् वासुकेर्भगिनी तथा ॥"
(भारत १।४ ।३-४)

जरा शब्दका अर्थ है क्षय, और कारु शब्दका अर्थ दारुण। इन महर्षिका शरीर अतिशय दारुण था, इन्होंने कठोर तपस्याके द्वारा शरीर क्षय किया था इसी लिए इनका नाम जरत्कारु पड़ गया था।

जरत्कारु ऋषि प्रजापतिके समान ब्रह्मचारी और तपःपरायण थे। वे सर्वदा व्रत अनुष्ठान और उग्र तपस्यामें लगे रहते थे, वे किसी समय पृथ्वीमण्डल परिभ्रमणके लिए निकले। जहां शाम होती थी, वहीं वे ठहर जाते थे। इस तरह बहुत दिनों तक आहार निद्रा परित्याग और इधर उधर पर्यटन करते रहनेसे इनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था। तो भी वे वायुमात्र भक्षण कर कठोर कृच्छ्रसाधन करते थे। एकदिन भ्रमण करते करते इन्होंने कहीं पर देखा कि, कुछ लोग उलटे जमीनमें गड़े हुए हैं। इन्हें दया आ गई। इन्होंने उनसे पूछा—"आप लोग कौन हैं? क्यों आप लोग [illegible] उशीरस्तम्भ मात्र अवलम्बन कर अधोमुख हो इस गड्ढेमें पड़े हो?" उत्तर मिला—"हम लोग यायावर नामक महर्षिके वंशधर हैं। सन्तान क्षय होनेके कारण अधःपतित होते हैं। हम लोगोंके दुर्भाग्यकी सीमा नहीं है। हम लोगोंका जरत्कारु नामक एक अभागा पुत्र है, जो बिना दारपरिग्रह किये हो दिन-रात सिर्फ तपस्यामें ही लीन रहता है। इसीलिए कुलक्षय होते देख हम लोग अधोमुख हो गड्ढेमें पड़े हैं। हमारे वंशवर्द्धन जरत्कारुके रहते हुए भी हमलोग अनाथ और दुष्कृतीकी तरह पड़े हैं। तुम कौन हो, और किस लिए तुम बान्धवोंकी तरह अनुशोचना कर रहे हो?" जरत्कारुने उत्तर दिया—"मैं ही आप लोगोंका अभागा पुत्र जरत्कारु हूं। अब क्या करूं, आप लोग आज्ञा दीजिये।" यह सुन कर लोगोंको बड़ी खुशी हुई, वे बोले—"वत्स! दारपरिग्रह कर सन्तानोत्पादनपूर्वक हम लोगोंकी रक्षा करो।" जरत्कारुने कहा—"मैं प्रतिज्ञा करता हूं—यदि कन्याके नाममें मेरा नाम मिल जाय और उसके बन्धुबान्धवगण उसे स्वेच्छापूर्वक मुझे भिक्षा-स्वरूप दान दें, तो मैं उसके साथ यथाविधि विवाह कर उसके गर्भसे सन्तानोत्पादन करूंगा।" इतना कह कर वे अभीष्ट स्थान पर चले गये। एकदिन वनमें प्रवेश कर इन्होंने तीन बार उच्च स्वरसे भिक्षा स्वरूप कन्या मांगी। इनके उच्च [illegible] वाक्यको सुन कर नागराज वासुकिने अपनी बहन जरत्कारुको ला कर महर्षिके सुपुर्द की। इन्होंने भी स्वनाम्नी जान कर विधिपूर्वक उनसे विवाह कर लिया। विवाह करते समय यह निश्चित हो गया कि, महर्षि पर इनके भरणपोषणका भार नहीं रहेगा और पत्नी यदि इनके प्रति अप्रिय आचरण करेंगी, तो वे उन्हें तत्क्षणात् त्याग देंगे। कुछ दिन पीछे नागकन्या जरत्कारु महर्षिके संयोगसे गर्भिणी हुई। एकदिन वे पत्नीकी गोदमें मस्तक रखकर सो रहे थे, ऐसे समयमें सूर्य को अस्त होते देख स्वामीको क्रियालोप होनेकी आशङ्कासे इनको पत्नीने इन्हें जगा दिया। इससे महर्षि जरत्कारुने कुपित हो कर कहा—"तुमने आज मेरा अपमान किया है इसलिए मैं तुम्हें जन्म भरके लिए परित्याग करता हूं। तुम अपने भाईसे कह देना कि, वे मुनि चले गये हैं। इसके सिवा यह भी कह देना कि, तुम्हारे जो गर्भ रह गया है, उससे अग्निसतेजा एक पुत्र उत्पन्न होगा।" इतना कह कर मुनि चल दिये। पत्नीने बहुत कुछ अनुनय विनय किया किन्तु इन्होंने जरा भी ध्यान नहीं दिया। (भारत आदि)

(स्त्री०) २ जरत्कारुकी पत्नी, आस्तीककी माता, वासुकिकी बहन, मनसादेवी। मनसा देखो।

"आस्तीकस्य मुनेर्माता भगिनी वासुकेस्तथा ।
जरत्कारुमुनेः पत्नी मनसादेवी नमोऽस्तु ते ॥"

जरत्कारुप्रिया (स० स्त्री०) जरत्कारोः स्वनामख्यातस्य मुनेः प्रिया, ६-तत्। मनसा देखो।

जरथुस्त्र—प्राचीन पारसिक धर्म-प्रचारक। ये ग्रीकोंके पास ज़रथुस्त्रदेस (Zarastrades) या ज़ोरोअस्त्रेस् (Zoroastres) रोमकोंके यहां ज़ोरोअस्तर (Zoroaster) (यूरोपमें भी इसी नामसे प्रसिद्ध हैं) और वर्तमान पारसियोंके यहां जरदोश्त नामसे प्रसिद्ध हैं। परन्तु पारसी

जातिके प्राचीनतम ग्रन्थोंमें "जरथुस्त्र" नाम ही पाया जाता है।

इस समय जरथुस्त्र या जरदोस्त कहनेसे सिर्फ एक आवस्तिक धर्मप्रचारकका ही बोध होता है। किन्तु पूर्वकालमें कई-एक जरथुस्त्र थे, अवस्ता ग्रन्थमें उनका उल्लेख है। उक्त ग्रन्थके देखनेसे ज्ञात होता है कि, उम्र और ज्ञानमें जो सबसे प्रधान और हद्द होते थे, उन्हींको जरथुस्त्र कहा जाता था। वैदिक जरदष्टि शब्दके साथ इस जरथुस्त्र शब्दका बहुत कुछ सादृश्य है।

इस समय जैसे 'दस्तूर' कहनेसे अग्न्युपासक पारसिक पुरोहितोंका बोध होता है, पहले जरथुस्त्र कहनेसे भी ऐसा ही बोध होता था।

धर्मप्रचारक जरथुस्त्र भी पहले इसी तरहके एक "दस्तूर" थे। इनके पिताका नाम था पोरुषस्प।

स्पितमवंशमें इनका जन्म हुआ था, इसलिए प्राचीन ग्रन्थोंमें इनका स्पितमजरथुस्त्र नामसे उल्लेख है। स्पितम वंश "हएचदस्प" नामसे भी प्रसिद्ध है। इसीलिए धर्मवीर 'स्पितम जरथुस्त्रको कन्याका यस्न नामक ग्रन्थमें 'पौरुचिष्ट हएचदस्पाना स्पितामी' नामसे वर्णन किया गया है।

किसी किसी ग्रन्थमें "जरथुस्त्रतेमो" अर्थात् श्रेष्ठतम और सर्वोच्च जरथुस्त्र, इस नामसे भी अभिहित हैं। इससे जाना जाता है कि, ये वर्तमान 'दस्तुर ए दस्तुरान्'को तरह सबसे प्रधान आचार्य थे।

अन्यान्य प्राचीन धर्मवीरोंकी तरह जरथुस्त्रका वास्तविक इतिहास नहीं मिलता है।

ग्रीकोंमें लिदियावासी जनथोस् (४७० ई०से पहले)ने सबसे पहले लिखा था कि, जरदोस्त ट्रययुद्धके सात सौ वर्ष पहले जीवित थे। आरिष्टटल और इउडोक्सस् प्लेटोसे छह हजार वर्ष पहले इनका आविर्भाव हुआ था। प्लिनिके मतसे-ट्रय-युद्धसे ५ हजार वर्ष पहले जरदोस्तका आविर्भाव हुआ था। इधर अग्न्युपासक पारसीगण कहा करते हैं कि, "जन्दअवस्तामें जिनका कववोस्तास्प नामसे वर्णन है, वे ही पारस्यराज दरायुसके पिता हयस्तास्पेस् थे। उन्हींके समयमें जरदोस्त आविर्भूत हुए थे।" ऐसी दशामें जरथुस्त्र इस्लोसे ५५० वर्ष पहिलेके मालूम होते हैं। किन्तु प्रसिद्ध पारसिक धर्मशास्त्रविद् मार्टिन हौग लिखते हैं कि,—"ईरानीके प्रवादमूलक वोस्तास्प और ग्रीकवर्णित हयस्तस्पेस् दोनों एक व्यक्ति नहीं थे। वोस्तास्प किस समय हुए हैं, इसका अभी तक कुछ निर्णय नहीं हुआ। पारसिक धर्मशास्त्रों को पर्यालोचना करनेसे जरथुस्त्रको ईसासे १००० वर्ष पहलेके सिवा बादका नहीं कहा जा सकता।"

पारसिकोंके धर्मग्रन्थोंमें जरथुस्त्रके विषयमें बहुतसी अलौकिक घटनाओंका उल्लेख है, उनमें जरथुस्त्रको असाधारण देवातीत गुणसम्पन्न ईश्वरतुल्य व्यक्ति बतलाया गया है। किन्तु प्राचीनतम ग्रन्थोंमें इन्हें मन्त्रपाठक, वक्ता, अहुरमज्दका दूत और उन्होंके आदिष्ट उपदेशादिका प्रचारक कहा गया है। नवम यस्नमें इन्हें ऐर्यनवए जो अर्थात् आर्यनिवासमें प्रसिद्ध और बख्दिदादमें इनको वाखधी (वाह्लीक) वर्त्तमान बालख नामक स्थानके रहनेवाला बतलाया गया है।

जरथुस्त्र एकेश्वरवादी थे। जिस समय देवधर्मावलम्बी भारतीय आर्यों और असुरमतावलम्बी पारसिकोंका परस्परमें विवाद हुआ था, तथा जिस समय अधिकांश पारसिक विविध देवियोंको उपासना और कुसंस्कारोंके जालमें फँस गये थे, उस समय जरथुस्त्रने एकेश्वरवादका प्रचार किया था। पारसियोंके प्राचीनतम गाथा और यस्नग्रन्थसे इनके द्वारा प्रवर्तित ज्ञान और धर्मतत्त्वोंको जान सकते हैं। ये द्वैतवादी अर्थात् आध्यात्मिक और प्राकृत जगत्‌के दो मूलकारणोंको स्वीकार करते थे। वाक्, मन और कर्म इन तीनों योगों पर इनकी धर्मनीति स्थापित थी। जिस समय ग्रीकोंने वास्तविक ज्ञानमार्ग पर विचरण करना नहीं सीखा था, महात्मा प्लेटो भी जब गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वको नहीं समझ सके थे, उससे बहुत पहले जरथुस्त्रने ज्ञान और धर्मके विषयमें सुयुक्तिपूर्ण तत्त्वोंको प्रगट किया था। अहुनवैति गाथामें जरथुस्त्रका मत उद्धृत है। उसके पढ़नेसे मालूम होता है कि, उस समयके तथा उससे भी बहुत शताब्दी बादके भावुक ज्ञानियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक अनेक गभीर तत्त्व उनके हृदयमें उदित हुए थे। इन्हींके प्रभावसे अब भी पारसिकगण उस प्राचीन आवस्तिक धर्मको

जरमान (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

जरमुआ (हिं० वि०) १ बहुत ईर्ष्या करनेवाला जल मरनेवाला। (पु०) २ एक गाली जिसे ज्यादातर स्त्रियां कहती हैं।

जरमुई (हिं० वि०) जरमुआका स्त्रीलिङ्ग।

जरमुआ देखो।

जरयितृ (सं० त्रि० जरणकारी, निगलने या ·· नेवाला।

जरयु (सं० त्रि०) जो वृद्ध होता जा रहा हो।

जरह (अ० पु०) १ हानि, नुकसान। २ आघात, चोट। ३ विपत्ति, आफत, मुसीबत।

जरल (हिं० स्त्री०) मध्यप्रदेश और बुंदेलखंडमें होने· वाली एक प्रकारकी घास, यह बारहों महीने होती है।

जरस (सं० क्ली०) १ जरा, वृद्धावस्था। (पु०) २ श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम।

जरमान (सं० पु०) जीर्य्यति जराग्रस्तो भवतीति जृ वयो· हानौ असानच्। पुरुष, मनुष्य।

जरांकुश (हिं० पु०) एक प्रकारकी सुगन्धित घास। यह मुंजीकी तरह होती है। इसमें नीबूकीसी सुगन्ध आती है। इससे एक प्रकारका तेल निकलता है। साबुन या किसी दूसरी चीजमें इसका तेल देनेसे नीबूकी महक आती है।

जरा (सं० स्त्री०) जीर्य्यत्यनयाजृ अङ्। षिद्भिदादिभ्यो ऽङ्। पा ३।३।१४०। ऋदृशोऽङि गुणः। पा ७।४।१६। इति गुणः। १ वृद्धावस्था, वार्द्धक्य, बुढ़ापा। २ कालकी कन्याका नाम। पर्याय विस्रसा। (भागवत)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मतसे—कालकी कन्या जरादेवी चतुःषष्ठी रोग इत्यादि भ्राताओंके साथ पृथिवी पर सर्वदा परिभ्रमण करती रहती हैं। यह मौका पाते ही लोगों पर आक्रमण करती रहती हैं। जो व्यक्ति प्रतिदिन आंखोंमें पानी देते, व्यायाम करते, पैरके अधोभाग, कान और मस्तक पर तेल लगाते, वसन्त ऋतुमें सुबह शाम भ्रमण करते, यथासमय बाला स्त्रीसे सम्भोग करते, ठण्डे पानीसे नहाते, चन्दनका तेल लगाते, गन्दे पानीका व्यवहार नहीं करते, समय पर भोजन करते, शरत्‌ऋतु· में घाममें बचते, गरमियोंमें वायुसेवन करते, बरसातमें गरम पानीसे नहाते और वृष्टिके जलसे बचते हैं, तथा जो मद्यमांस, दुग्ध और घृत भोजन करते, भूंखके समय आहार, प्यासके समय पानी और नित्य ताम्बूल भक्षण करते, हैयङ्गवीन (कालका बना हुआ घी) और नवनीत नियमित भोजन करते हैं तथा जो शुष्कमांस, वृद्धा स्त्री, नवोदित रौद्र, तरुण दधि और रात्रिमें दही, रजःस्वला, पुंश्चली, ऋतुहीना वा अरजस्का नारीका सेवन नहीं करते, ऐसे लोगों पर जरा अपने भाइयों सहित आक्रमण नहीं कर सकती। जो लोग उक्त नियमोंसे विरुद्ध आचरण करते हैं, उनके शरीरमें जरा सर्वदा वास करती है। (ब्रह्मवैवर्तपुराण १६।३३ ५५)

३ एक कामरूपा राक्षसी, जो मगध देशके एक श्मशानमें रहती थी। इस राक्षसीने जरासन्धका आधे आधे शरीरको जोड़ कर उन्हें जिलाया था। जरासन्ध देखो। यह राक्षसी प्रत्येकके घरमें जाती थी, इसलिए ब्रह्माने इसका नाम गृहदेवी रक्खा था। जो व्यक्ति इसकी नवयौवनसम्पन्न सपुत्र मूर्त्तिको अपने घरमें लिख रखेगा, उसका घर सदा धनधान्य और पुत्रपौत्रादि· से परिपूर्ण रहेगा। इसी राक्षसीका नाम षष्ठीदेवी है। (भारत आदि०)

(पु०) ४ एक व्याधका नाम। श्रीकृष्ण जब यदु· वंश ध्वंसके उपरान्त वृक्षकी नीचे मौन भावसे तिष्ठते थे, उस समय इस व्याधने मृगके भ्रमसे उन्हें तीर मारा था, जिससे उनका वध हो गया। कहा जाता है कि, यह व्याध द्वापरमें अङ्गदके अवतार थे। (भाग०) जैन हरिवंशपुराणमें उक्त व्याधका जरत्कुमार नाम लिखा है। क्षीरिका वृक्ष खिरनीका पेड़। (शब्दर०) (स्त्री०) ६ स्तुति, प्रशंसा (ऋक् १।१८।१३७) ७ अप्रियवादिनी स्त्री, दुर्वचन कहनेवाली औरत (चाणक्य)

जरा (अ० वि०) १ कम, थोड़ा। (क्रि० वि०) २ थोड़ा, कम।

जराकुमार (सं० पु०) जरासन्ध।

जराग्रस्त (सं० वि०) जरया ग्रस्तः। जराभिभूत, वृद्ध बुड्ढा

जराती ((हिं० पु०) चार बार उड़ाया हुआ शोरा।

जरातुर (सं० त्रि०) जरया आतुरः। १ जीर्ण, पुराना, जो बहुत दिनोंका हो। २ जरारोगग्रस्त, जिसे वृद्धावस्थाका रोग हुआ हो।

जराद (स० पु०) टिक।

जरापुष्ट (सं० पु०) जरया राक्षस्या पुष्टः ३-तत्। जरासन्धका एक नाम।

जराबोध (सं० पु०) जरया स्तुत्या बुध्यते बुध-घञ्। स्तुति द्वारा बोध्यमान अग्नि वह अग्नि जो स्तुति करके प्रज्वलित की गई हो।

जराबोधीय (सं० पु०) जराबोधिवत्साम्यं च भागः। साम्भेद।

जराभीरु (सं० पु०) जरायाः भीरुः। १ कामदेव। (त्रि०) २ जरासे भयभीत, जो वृद्धावस्थामें डरता हो।

जरामीप (सं० पु०) जरासन्ध।

जरामृत्यु (सं० पु०) जरा और मृत्यु, बुढ़ापा और मरण।

जरार्थि (सं० पु०) जरायाः राक्षस्याः अपत्यं जरा बाहुलकात् इञ्। जरासन्धका एक नाम।

जरायु (सं० पु०) जरामेतीति जरा-इण् उण्। १ गर्भवेष्टन चर्म, गर्भको भिल्ली जिसमें बच्चा बँधा हुआ उत्पन्न होता है। इसके पर्याय—गर्भाशय, जरायु और कलल है। २ योनि, भग। ३ अग्निजार वृक्ष समुद्रफेन नामका पेड़। ४ जटायु पक्षी ५ कुमारानुचर मातृभेद कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

जरायुज (सं० त्रि०) जरायौ जायते जन-ड। गर्भाशय जात, जिसने गर्भाशयमें अवस्थान किया हो मनुष्य गौ प्रभृति। वीर्य और शोणितके संयोगसे जरायुमें गर्भ उत्पन्न होता है। गर्भके परिपुष्ट होने पर निर्दिष्ट समयमें अर्थात् १०।८।९।११ मासमें गर्भ प्रसूत होता है। उसी प्रसूत जीवका नाम जरायुज है।

"पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः।
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः॥ (मनु० १।४३)

जरायुदोष (सं० पु०) गर्भरोगभेद गर्भका एक प्रकारका रोग।

जरावस्था (सं० स्त्री०) पलित, सिरके बालोंका उजला होना, बाल पकना।

जराशोष (सं० पु०) एक प्रकारका शोष रोग। यह रोग प्रायः कर बुढ़ापेमें होता है। इसमें रोगी कमजोर हो जाता है, भूख नहीं लगती और बलवीर्य तथा बुद्धिका क्षय होता है।

जरासन्ध (सं० पु०) जरया तदाख्यया प्रसिद्धया राक्षस्या सन्धा देहस्य योजनमस्य। मगधके एक प्रसिद्ध राजा चन्द्रवंशीय राजा बृहद्रथके पुत्र। राजा बृहद्रथने पुत्रकी इच्छासे चण्डकौशिककी आराधना की थी। भगवान् चण्डकौशिकने इनकी कठोर तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर इन्हें एक फल दे कर कहा— "यह फल तुम अपनी महिषियोंको खिला देना इससे तुम्हें एक अभिमत पुत्र की प्राप्ति होगी।" राजा बृहद्रथकी दो महिषी थीं, इस लिए उन्होंने उस फलके दो टुकड़े कर दोनोंको खिला दिया। ऋषि प्रदत्त उस फलसे एकदिन दोनों महिषी गर्भिणी हुई और समय पर दोनोंके गर्भसे आधा आधा पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा इस समाचारको सुन कर बहुत ही क्षुब्ध हुए, आखिरकार उन्होंने दोनों अर्द्ध पुत्रोंको श्मशानमें फेंक आनेका आदेश दिया। राजाके आदेशानुसार दोनोंको श्मशानमें फेंक आ दिया गया। उस श्मशानमें जरा नामकी कामरूपा एक राक्षसी रहती थी। उसने उन दोनों खण्डोंको जोड़ कर बालकको जिला दिया इसलिए इसका नाम जरासन्ध हो गया। वह कामरूपा राक्षसी उस बालकको जिला करके राजा बृहद्रथके पास गई और बालकको दे कर बोली—"महाराज! यह बालक अत्यन्त पराक्रमी होगा और इसके अभिषेक बिना किए हुए इसका सुख ना नहीं होगे।" धीरे धीरे जरासन्ध पराक्रमशाली हो उठे। इन जरासन्धकी अस्ति और प्राप्ति नामकी दो कन्याएँ थीं, जिनका विवाह कंसके साथ हुआ था। वसुदेवके श्रीकृष्णके हाथसे कंसके मारे जानेके कारण, जरासन्धने जामाताके वधसे अत्यन्त कुपित हो कर शत्रु निर्यातनके लिए इन्होंने १८ बार मथुरा पर आक्रमण किया था। और सब राजाओंको अत्यन्त उत्पीड़ित किया था। किन्तु वे कृष्णका कुछ नहीं कर सके थे। इन्होंने कंस वधका संवाद सुनते ही क्रोधोन्मत्त हो कर गिरिव्रजसे कृष्णको वध करनेकी इच्छासे एक गदा ९९ (एकोनशत) बार घुमा कर फेंका, जो मथुराके पास हो गिरी थी। यह गदा जहां पड़ी उस स्थानका नाम गदावसान पड़ गया। जरासन्धने राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छासे अनेक राजाओंको जीत कर उन्हें कैद किया था। युधिष्ठिरने राज

सूय यज्ञ करते समय जरासन्धको पराजित न कर सकनेके कारण यज्ञको होते न देख श्रीकृष्णकी शरण ली थी। श्रीकृष्ण भीम और अर्जुनके साथ स्नातक ब्राह्मणका वेश धारण कर जरासन्धको वध करनेके लिए मगध देशमें आये। यहां आ कर नारायणने कहा कि—"देखो अर्जुन! यह गिरिव्रज अत्यन्त भयसङ्कुल है। वह देखो। वैहार, वराह, ऋषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक, ये पांचों पर्वत नगरीके चारों ओर कैसे शोभा दे रहे हैं, ये पर्वत इस तरह हैं कि, जिससे अकस्मात् कोई शत्रु आ कर नगरी पर आक्रमण नहीं कर सकता। इसके सिवा न्याय-युद्धमें भी जरासन्धको परास्त करना अत्यन्त कठिन है। इसीलिए आज हम सब अपने अपने वेशको छोड़ कर ब्रह्मचारी वेश धारण कर यहां आये हैं। वह जो तीन भेरियां देख रहे हो, उनको राजा बृहद्रथने वृष-रूपधारी दैत्यको मार कर उसीके चमड़ेसे बनवाया था। उन तीनों भेरियों पर एक बार आघात करनेसे उनमेंसे एक मास तक गम्भीर ध्वनि निकलती रहती है। अब तुम लोग शीघ्र हो उन भेरियोंको तोड़ डालो।" भीम और अर्जुनने श्रीकृष्णको बात सुन तुरन्त ही भेरियोंको तोड़ डाला। पीछे कृष्णके आदेशसे चैत्यप्राकारके पास जा कर उन्होंने सुप्रतिष्ठित पुरातन चैत्यशृङ्गको तोड़ दिया और हृष्टचित्तसे वे मगधपुरमें घुस गये। धीरे धीरे ये तीनों जरासन्धके पास पहुंच गये। स्नातक ब्राह्मणका वेश देख किसीने भी उन्हें न रोका।

जरासन्धने उन लोगोंको स्नातक ब्राह्मण समझ मधु-पर्कादि दे कर कुशल पूछा। इस पर श्रीकृष्णने कहा—"ये दोनों इस समय नियमस्थ हैं, पूर्वरात्रके व्यतीत होनेसे पहले ये लोग न बोलेंगे।" जरासन्ध कृष्णकी बात सुन उन लोगोंको यज्ञागारमें छोड़ कर खुद अपने घरको चले गये। पीछे इन्होंने आधी रातके समय आ कर स्नातक ब्राह्मणोचित उन लोगोंकी पूजा की। भीम और अर्जुनने पूजा ग्रहण कर ब्राह्मणोचित स्वस्तिवाक्योंका प्रयोग कर आशीर्वाद दिया। जरासन्धको उन लोगोंके वेश पर सन्देह हुआ, इन्होंने पूछा—"हे विप्रगण! मैं जानता हूं कि, स्नातकगण सभामें जाते समय ही माला या चन्दन धारण करते हैं, अन्य समय नहीं; किन्तु आप लोगोंके वस्त्र रक्तवर्ण, सर्वाङ्ग चन्दनानुलिप्त और भुजाओं पर ज्याचिह्न देख रहा हूं। शरीरकी आकृति भी क्षात्रतेजका प्रमाण दे रही है, तथापि आप लोग ब्राह्मण कह कर अपना परिचय दे रहे हैं। अब सत्य कहिये कि आप लोग कौन हैं?" इस पर कृष्ण जलद गम्भीर स्वरसे कहने लगे—"नराधिप! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनोंही जातियां स्नातक व्रत ग्रहण कर सकती हैं। इसके विशेष और अविशेष दोनों ही नियम हैं। क्षत्रिय जाति विशेष नियमी होने पर धनशाली होती है और पुष्पधारी तो अवश्य ही श्रीमान् होती है। इसीलिए हम लोगोंने पुष्प धारण किये हैं। क्षत्रिय बाहु-बलसे बलवान् अवश्य हैं, किन्तु वाग्वीर्यशाली नहीं हैं। क्षत्रियका बाहुबल ही प्रधान है, इसलिए हम लोग यहां युद्धार्थी हो कर उपस्थित हुए हैं, शीघ्रही हम लोगोंसे युद्ध कर आप क्षत्रियधर्मकी रक्षा कीजिये। राजन्! वेदाध्ययन, तपोनुष्ठान और युद्धमें मृत्यु होना स्वर्गप्राप्ति-में कारण अवश्य है; किन्तु नियमपूर्वक वेदाध्ययनादि नहीं करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती। परन्तु यह निश्चित है कि, युद्धमें प्राणत्याग करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होगी। इसलिए देरी न कर शीघ्र ही युद्धमें प्रवृत्त होओ। मैं वासुदेवतनय कृष्ण हूं और ये दोनों वीरपुरुष पाण्डुतनय भीम और अर्जुन हैं। तुम्हें वध करनेके अभिप्रायसे ही हम लोग इस वेशसे यहां आये हैं, अब समय नहीं है, शीघ्र ही तुम अपने दुष्कृतोंके फल भोगने-के लिए तयार हो जाओ।" जरासन्ध कृष्णकी इस बातको सुन कर बहुत ही कुपित हुए और उसी समय वे योद्धृ-वेश धारण कर भीमके साथ बाहु-युद्धमें प्रवृत्त हो गये। दोनोंमें घमसान युद्ध होने लगा। क्रमशः प्रकर्षण, आकर्षण, अनुकर्षण और विकर्षण द्वारा एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे। युद्धमें जरासन्धको अत्यन्त क्लान्त देख श्री-कृष्णने जरासन्धको मारनेके अभिप्रायसे भीमको इशारा कर कहा—"हे भीम! अब तुम्हें जरासन्धको अपना दैवबल और बाहुबल दिखाना चाहिये।" कृष्णका इशारा पा कर भीमने जरासन्धको उठा लिया और उन्हें घुमाने लगे, सौ बार घुमानेके बाद उन्होंने जानुद्वारा आकुञ्चनपूर्वक जरासन्धको पीठ तोड़ दी तथा निष्पेषण-

पूर्वक दोनों पैर आक्रमणित कर उसका सन्धिस्थान दो भागोंमें विभक्त कर दिया। जिससे हुए जरासन्धके आर्तनाद और भीमकी गर्जनको सुन कर समस्त मगधवासी डर उठे। इस तरह भीमके हाथ जरासन्धका वध हुआ। इसके उपरान्त कृष्ण, भीम और अर्जुनने उसके पुत्रको राज्याभिषिक्त कर राजन्यवर्गको मुक्ति प्रदान की। (भारत सभा० जरासन्धवधपर्वाध्याय)

जैनमतानुसार—ये अन्तिम (९वें) प्रतिनारायण और अर्द्धचक्रवर्ती थे। भारतमें प्रतिनारायण राम के पीछे इनका आविर्भाव हुआ था। इनके अपराजित आदि कई एक भाई और कालिन्दसेना नामकी एक प्रधान महिषी थीं। यादवोंके साथ इनका घोर युद्ध हुआ था। इनके पक्षमें कौरवगण तथा विपक्षमें पाण्डव और यादव वंश था। बहुत युद्ध होनेके उपरान्त इन्होंने क्रोधमें अन्धे हो कर नारायण कृष्ण पर चक्र चलाया, किन्तु प्रतिनारायणका चक्र नारायण पर चलता नहीं और छूटने पर वह वार नहीं करता है, इसलिए चक्र कृष्णको तीन प्रदक्षिणा दे कर उनके हाथमें आ गया पीछे श्रीकृष्णने उस चक्र द्वारा जरासन्धका विनाश किया। जरासन्धने बहुरूपिणी विद्याके बलसे कृष्णको कई बार मोहमें डाला था किन्तु चक्र तो असली मनुष्यको पकड़ता है इस प्रकारसे चक्र द्वारा इनकी आयु पूर्ण हुई थी। (जैन हरिवंशपुराण।)

जरासुत (स० पु०) जरासन्ध।

जरित (स० त्रि०) जरा जाताऽस्य तारकादित्वादितच्। जराग्रस्त, बुड्ढा।

जरिता (सं० स्त्री०) १ मन्दपाल ऋषिकी स्त्री। २ पक्षिणी विशेष, एक प्रकारकी चिड़िया।

जरितारि (स० पु०) जरितागर्भजात मन्दपाल ऋषिके ज्येष्ठपुत्र, जरिताके गर्भसे उत्पन्न मन्दपाल ऋषिके बड़े लड़केका नाम।

जरिण (सं० त्रि०) जृ-इनन्। १ स्तुतिकारक, प्रशंसा करनेवाला। (स्त्री०) २ जीर्णा स्त्री, बुड्ढी औरत।

जरिन् (स० त्रि०) जरास्त्यस्येति इनि। १ वृद्ध, बुड्ढा २ ज्वर युक्त।

जरिमन् (स० पु०) जॄ भावे इमनिच्। १ जरा, बुढ़ापा १ वृद्धावस्थाकी मृत्यु।

जरिया (अ० पु०) १ सम्बन्ध लगाव, द्वार। २ हेतु, कारण सबब।

जरिश्क (फा० पु०) दारुहल्दी।

जरी (फा० स्त्री०) १ बादलेसे बुने जानेका ताश नामका कपड़ा। २ सोनेके तारों आदिसे बना हुआ काम।

जरीगान (हिं० स्त्री०) कहारोंकी एक बोली। यह उसी समयमें बोली जाती है जब रास्तेमें ईंटें और रोड़े पड़े रहते हैं।

जरीब (फा० स्त्री०) १ भूमि मापनेकी नाप। भारतीय जरीब ५५ गजकी और अंगरेजी जरीब ६० गजकी होती है। एक जरीब बीस गट्ठेके बराबर मानी गई है। [illegible] देखो। २ लाठी, छड़ी।

जरीबकश (फा० पु०) वह मनुष्य जो जमीन मापनेके समय जरीब खींचता है।

जरीबाना (हि० पु०) जुरमाना देखो।

जरूथ (स० पु०) जोयतीति जृ-ऊथन्। १ मांस, गोश्त। २ असुरविशेष। ३ कटुभाषी, कटुभाषी।

जरूर (अ० क्रि० वि०) अवश्य, निःसन्देह।

जरूरत (अ० स्त्री०) आवश्यकता, प्रयोजन।

जरूरी (फा० वि०) १ प्रयोजनीय, जिसकी जरूरत हो। सापेक्ष, आवश्यक।

जरोल (हिं० पु०) बङ्गाल, आसाम और उत्तरीय सीमाप्रदेशमें होनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत, जहाज और तोपोंके पहिये बनानेके काममें आती है।

जर्कबर्क (फा० वि०) चमकीला, भड़कदार।

जर्जर (स० पु०) जर्जयति जरां गुणेनापनयति, निन्दति जर्ज बाहुलकात् अरः। १ शैलज, छरीला। २ शक्रध्वज, इन्द्रकी ध्वजाका नाम। जलमें भिंगाती कर्मके बहुत बलकारक। ३ जरातुर। ४ शैवाल, सिवार। ५ शल्लकीपर। (त्रि०) ६ जीर्ण जो बहुत पुराना होनेके कारण बेकाम हो गया हो। ७ विदीर्ण फूटा टूटा। ८ वृद्ध, बुड्ढा।

जर्जरानना (स० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी अनुचरी एक मातृकाका नाम।

जर्जरित (सं० त्रि०) जर्जर करोति जर्जर-णिच् कर्मणि क्त। १ जीर्णीकृत जो पुराना हो गया हो। २ खण्डित, टूटा फूटा।

जर्जरीक (सं० त्रि०) जर्जति जीर्णो भवति जर्ज-ईकन्। १ बहुच्छिद्रविशिष्ट द्रव्य, जिसमें बहुतसे छेद हो गये हों। २ जरातुर, बहुत वृद्ध, बुड्ढा।

जर्जी—अंगरेज लोग जिनको George or St George कहते हैं, वे ही मुसलमानों द्वारा जर्जी कहाते हैं। मुसलमानोंके मतसे ये भी एक पैगम्बर हैं।

जर्हन—तुर्कस्थानकी एक नदी। हर्मान् पहाड़के नीचे जहां कई एक शिलालिपियां लगीं, यह निकली और ग्रोरोमें झील, जूलिया शहर, टाईबेरिया झील, अलगोर उपत्यका आदि जगहों होती हुई बहरेलात या मृत समुद्रमें जा गिरी है। इसका पानी ईसाइयोंके लिये बहुत पवित्र है।

जर्णी (सं० पु०) जीर्य्यति क्षीणो भवति जृ-नन्। १ चन्द्र, चन्द्रमा। २ वृक्ष, पेड़। (त्रि०) ३ जीर्ण, पुराना।

जर्त्त (सं० पु०) जायतेऽस्मात् जन बाहुलकात् त प्रत्ययेन साधुः। १ योनि, भग। २ हस्ती, हाथी।

जर्त्तिक (सं० पु०) जृ बाहुलकात् तिकन्। १ वाहीक-देश, प्राचीन वाहीक देशका एक नाम। २ उक्त देशका निवासी।

जर्त्तिल (सं० पु०) वनजात तिल, जङ्गली तिल।

जर्त्तु (सं० पु०) जायतेऽस्मात् जन तु। १ योनि, भग। २ हस्ती, हाथी।

जर्द (फा० त्रि०) पीत, पीला।

जर्दा (फा० पु०) जरदा देखो।

जर्दालु (फा० पु०) खूबानी नामकी मेवा।

जर्दी (फा० स्त्री०) पीलापन, पीलाई।

जर्दोज (हिं० पु०) जरदोज देखो।

जर्दोजी (हिं० स्त्री०) जरदोजी देखो।

जर्नल (हिं० पु०) जरनल देखो।

जर्भरि (सं० त्रि०) जृभ-गात्रविनाशे अरिः। १ गात्र-विनाशकर्त्ता जभाई लेनेवाला। २ स्तुतिकारक, प्रशंसा करनेवाला।

जर्मनी—मध्य यूरोपका एक प्रसिद्ध देश। १८७१ ई०में १८वीं जनवरीको उत्तर-जर्मन सङ्घ, दक्षिण जर्मनीके छोटे छोटे राज्य-समूह और फरासीसियोंसे जीते हुए आलसक एवं लोरेन इन सबको मिला कर जर्मन साम्राज्यका संगठन हुआ था। गत महासमरके कारण इसका विस्तार और पराक्रम सङ्कुचित हो गया है। १९१९ ई०की भार्सेलिसकी सन्धिके फलसे वर्तमान जर्मनी राज्य संगठित हुआ है। परन्तु जर्मनोंको अब आलसक और लोरेन प्रदेश फरासीसियोंको लौटा देना पड़ा है। इसका पूर्वको तरफका कुछ हिस्सा पोलोंके स्वाधीन राज्यके साथ जुड़ दिया गया है। उत्तरके स्लिज उइग हलष्टियानका बहुतसा अंश डेनमार्कको देना पड़ा है। दक्षिणका हर्लेटिसन् नामक छोटा जिला जेकोस्लोभाकिया नामक नवगठित राज्यके हाथमें चला गया है। पश्चिमके इउपाल और मेलमिडी नामक दो स्थान बेलजियमको मिले हैं। इस प्रकार विभाग हो जानेके कारण अब पश्चिमको राइन नदीने फरासीसी और जर्मनियोंको विभक्त कर रक्खा है। पूर्वमें पोलैण्ड राज्यके गठित होने और वहांके कुछ प्रान्तदेशीय स्वाधीन राज्योंके संस्थापित होनेसे जर्मनीके साथ रूसियाका साक्षात् संस्रव कुछ भी नहीं रहा और न हो सकता है। वर्तमान समयमें जर्मनीके पश्चिममें हालैण्ड, बेलजियम, लक्सेमबर्ग, और फ्रान्स, दक्षिणमें सुइजरलैण्ड, अष्ट्रिया और जेकोस्लोभाकिया तथा पूर्वमें पोलैण्ड अवस्थित है।

नवगठित जर्मनराज्यका क्षेत्रफल ४७२०१४·६ वर्ग-मील है, परन्तु १८७१ ई०में इसका रकबा ५४०८५७·५ वर्गमील था। भार्सेलिसको सन्धिका परिणाम यह हुआ कि जर्मनीको बड़े बड़े दस शहरोंसे हाथ धोना पड़ा, जिनमें पचीस पचीस हजार लोगोंका वास था। सन्धि होके कारण उसकी जनसंख्या ५५,७६८१२ घट गई है।

१८७१ ई०से जर्मनीकी लोकसंख्या क्रमशः बढ़ रही थी। १९१४ ई०में महासमरके प्रारम्भसे पहले जो गणना हुई थी, उससे मालूम हुआ है कि वहां ६,७,७९०,००० मनुष्योंका वास था। परन्तु महायुद्धमें १९१४ ई०से १९१८ ई० तक करीब १८०,००० मनुष्य मारे जानेके कारण जर्मनीको बड़ी हानि हुई। १९१९ ई०के नव-गठित जर्मनीमें ६०,८,३७,५७८ मनुष्य गिने गये थे, जिनमें २८,९८२,१३७ पुरुष और ३१,८५५,४४२ स्त्रियां हैं। इस तरह जर्मनीमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां हजार

संगठनके लिए ६ फरवरी १९१९ ई०को सभा बुलाई गई। उसी साल ११ अगस्तको उइमार नामक स्थानमें जो शासनपद्धति संगठित हुई, उसे ही कार्यरूपमें परिणत करनेका निश्चय किया गया। 'जर्मन साम्राज्य' यह नाम उठा कर अब उसे 'जर्मनरीक्' यह नवीन नाम दिया गया।

१८७१ ई०की शासनपद्धतिके प्रारम्भमें ही लिखा था कि, वह प्रूसियाके राजाके नेतृत्वाधीनमें राजन्यमण्डली के द्वारा गठित हुआ। और नव पद्धतिमें, इस बात-को समझानेके लिए कि यह राजाओंको नहीं बल्कि जनसाधारणकी है, यह घोषित किया गया—जर्मन जातिने एकत्र हो कर अपने राष्ट्र वा रिकमें न्याय और स्वाधीनताके प्रवर्तनकी इच्छासे अन्तर्भाग और बहिर्भाग शान्ति-स्थापन एवं सामाजिक उन्नतिके लिए यह पद्धति संगठित की।

जर्मनोंने इस बार किसी भी राजाकी अधीनता स्वीकार न की · अपना शासन स्वयं करेंगे, ऐसा निश्चय किया। उन्हें आन्तर्जातिक सम्मिलनीमें अभी तक स्थान नहीं मिला, किन्तु उनकी शासन पद्धतिमें पहले ही लिखा है कि वे अन्तर्जातिक विधिको पूर्णतया मानते हैं।

गणतन्त्रनीति स्थापित करनेके लिए उन लोगोंने दो रीतियां ग्रहण की हैं ; प्रथमतः रिक्ष्टेग और रिक्स् प्रेसिडेण्ट नामक दो प्रतिष्ठान और द्वितीयतः समस्त विषयोंमें और सब समय जनसाधारणका मतामत जानने के लिए Referendum Initiation (जो सुइजरलैण्डमें बहुत दिनोंसे प्रचलित था) का प्रवर्तन किया।

नव-पद्धतिके अनुसार बीस वर्षसे ज्यादा उम्रवाले पुरुष और स्त्री सभी भोट देनेके अधिकारी हो सकते हैं और पचीस वर्षसे ज्यादा उम्रवाला कोई भी व्यक्ति प्रति-निधिपदका प्रार्थी हो सकता है। जर्मन-राष्ट्रके सभा-पतिका चुनाव भी सर्वसाधारणकी भोटके अनुसार होगा। यहां Proportional Representation रीति-का प्रवर्तन होनेसे जिन लोगोंकी शक्ति अल्प है, वे भी भोट-युद्धमें न्याय विचार पाते हैं।

जर्मनीकी प्रतिनिधि सभा फिलहाल ४ वर्षके लिए चुनी जाती है। प्रतिनिधिकी संख्याकी कोई हद नहीं है, जनसंख्याके अनुसार उसकी संख्या हुआ करती है। प्रतिनिधिसभा अन्य किसी प्रतिष्ठान वा Political body के आह्वान पर निर्भर नहीं है। यह अपनी इच्छा के अनुसार एकत्र हो कर जातीय कार्य सम्पादन कर सकती है। जर्मन रिकके सभापति ७ वर्षके लिए चुने जाते हैं। ३५ वर्षसे ज्यादा उम्रके पुरुष वा स्त्री हर एक व्यक्ति इस पदका प्रार्थी हो सकता है। सभापति निर्वाचन जनसाधारणके द्वारा ही होता है, उसमें प्रतिनिधिसभा कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करती, परन्तु उस-का प्रत्येक कार्य प्रतिनिधि-सभाके अनुमोदनानुसार होना चाहिये। वे चाहे प्रतिनिधि-सभाके सभ्य हों वा न हों, हर एक व्यक्तिको मंत्रित्व दे सकते हैं। परन्तु वह मन्त्री प्रतिनिधि-सभाका विश्वासभाजन होना चाहिए। प्रतिनिधि-सभाका विश्वास उठ जाने पर प्रत्येक मन्त्री-को अपने कार्यसे अवसर ग्रहण करना पड़ता है। सभा-पति पर वे ही भार दिये जाते हैं, जो साधारणतः राष्ट्र-पति पर न्यस्त किये जाते हैं।

नव्य जर्मनी एकमात्र महासभाके द्वारा परिचालित है। जैसे इंग्लैण्डमें हाउस् आफ लार्डस् है, फ्रान्स और इटलीमें सिनेट है, सुइजरलैण्ड और अमेरिकामें सिनेट वा Federal council है, उस प्रकार जर्मनीमें कुछ भी नहीं है। स्वतन्त्र प्रदेशके प्रतिनिधियोंने यहां कोई स्वतन्त्र प्रतिष्ठानका संगठन नहीं किया। हां, जन संख्याके अनुसार कुछ प्रदेशोंसे उनके प्रतिनिधि अवश्य भेजे जाते हैं। इन प्रतिनिधियोंकी सभा जनसाधारणकी प्रतिनिधि सभा वा Reichstag के अधीन है। इसको Reichsrat कहते हैं। फिलहाल इसमें ६५ भोट हैं, जिनमें २६ भोट प्रूसियाके हैं। हर एक कानूनका कच्चा चिट्ठा इसीमें पेश किया जाता है। परन्तु Reichsrat के बिना अनुमोदन किये ही वह चिट्ठा Reichstag में पेश किया जा सकता है। Reichstag द्वारा अनु मोदित कानूनको अगर Reichsrat पसन्द न करे, तो उस पर प्रथमोक्त सभा पुनः विचार करती है। उस पर यदि ⅔ अंश सभ्य सम्मति दें, तो वह आइन रूप-से ग्रहण किया जाता है। सभापति महाशय चाहें तो प्रतिनिधिसभाके आइनको अस्वीकार नहीं कर सकते।

जर्मनीकी वर्तमान अवस्था—महायुद्धके कारण जर्मनी की आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई है। आहार और जिन्दगीके यथेष्ट उत्पन्न न होनेसे जर्मनों को सुदैवकी शोभा नहीं रही है। इसके सिवा व्हार्साई की सन्धिके अनुसार जर्मनोंको युद्धकी क्षतिपूर्तिके लिए जिम्मेवार होना पड़ा है। उसके लिए रुपये वसूल करनेमें जर्मनोंको काफी कोशिश करनी पड़ रही है। अवसित' नये टैक्स बहुत ज्यादा कर लगा कर रुपये उगाहनेकी व्यवस्था हुई है। मिलों, महाजन, व्यवसायी और धनाढ्य सम्प्रदायसे बहुत कर वसूल किया जा रहा है। छोटे छोटे कारखानेवाले ज्यादा मालगुजारी देनेमें असमर्थ हैं। अब मिल कर कम्पनी बना लें और फिर व्यवसाय करें, तो अधिक लाभ होगा और साथ ही गवर्मेण्टको ज्यादा मालगुजारी भी दे सकेंगे। इस अभिप्रायसे जर्मन लोग अब कम्पनी बना कर व्यवसाय करते हैं।

जर्मन समाजमें युद्धके समय तक "ट्रस्ट" का जातीय योथ व्यवसाय प्रचलित नहीं था कहनेसे अत्युक्ति न होगी। जर्मन लोग साधारणतः छोटे छोटे व्यक्तिगत कारोबार करना पसन्द करते थे। परन्तु फिलहाल वे योथ व्यवसाय करनेके लिए बाध्य हुए हैं। यह देख इंग्लैण्ड अमेरिका और फ्रान्सके धनी लोग डर गये हैं।

एशिया और अफरीकाके जर्मन राज्य अब निर्वासित हैं। जर्मनीके अधीन फिलहाल कोई भी उपनिवेश शासित या पोषित नहीं हो रहा है। इसलिए 'कच्चे मालके विषयमें जर्मनी अब अन्यान्य देशोंका मुहताज है। विशेष कर राइन और सिलेशिया इन दो प्रदेशों पर जर्मनीका तनिक भी कब्जा नहीं है। इसलिए उन प्रदेशोंकी खनिज सम्पत्ति जर्मनीके हाथ नहीं लगती। ऐसी दशामें जर्मन महाजन लोग परस्परका ईर्षा द्वेष भूल कर जातीय उन्नतिके लिए सहयोग होंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या है? सस्ते दामोंमें माल न बेचनेसे जर्मनोंको अन्य देशोंके विरुद्ध व्यापारमें हार खाना पड़ेगा और बड़े कारखानोंके बिना माल सस्ता बन नहीं सकता इसलिए आजकल जर्मनीने कुदरती मालसे लेकर फैक्टरियोंमें माल बनाने और उसे जहाज पर रख कर दक्षिण अमेरिकाके बाजारों और शहरोंमें भेजने तकके सभी काम बड़े बड़े संघों पर सौंप दिये हैं। बिजली, कोयले, रासायनिक और लोहेके कारखानोंमें 'ट्रस्ट' संगठित हो गये हैं।

रूसियाके साथ जर्मनोंका व्यवसाय क्रमशः उन्नति कर रहा है। लाखों आदमी रूसियासे भाग कर जर्मनीमें रोजगार करने लगे हैं। बर्लिन इन भागे हुए रूसियों का एक प्रधान केन्द्र है। रूसियाके किसान तक अपने देशमें जिस शिल्पका व्यवहार करते हैं, उसमें भी यथेष्ट निपुणता पाई जाती है। युद्धके पहले यूरोपके लोग उन चीजोंका काफी आदर करते थे। फिलहाल जर्मनोंने अपने देशमें ही उस शिल्पका बाजार लगा दिया है। अब जर्मनोंके घर घर रूसी किसानोंके हाथकी बनी हुई चीजें नित्य व्यवहारमें आती हैं। विशेषतः जर्मनीसे यह रूसका शिल्प यूरोपके अन्यान्य देशों तथा अमेरिकामें भी पहुंच रहा है।

जर्मनी ही इस समय रूसकी सभ्यता और उन्नतिका संरक्षक है। जर्मनीमें आ जानेसे रूसियाको मदद मिलना बहुत सहज है। जर्मनीमें रूस साहित्यका खूब प्रचार है। रूस भाषाके कई एक दैनिक संवादपत्र भी बर्लिनसे प्रकाशित होने लगे हैं।

जर्मनीमें सिक्केका बाजार डमाडोल है। एक शिला अभी पाउण्डके बदले एक या डेढ़ हजार मार्क तो हरवक्त मिलते हैं। इसके सिवा किसी किसी प्रान्तमें एक पाउण्ड पर दस हजार मार्क तक लग जाते हैं। विदेशी लोग जो पाउण्ड भुना कर एक बारही माल ले लेते हैं उन्हें पीछेसे पछताना पड़ता है। सिक्केके साथ साथ चीजें भी महंगी होती जाती हैं जिससे वहांके अधिवासियोंके कष्टकी सीमा नहीं है। यहां विदेशी सिक्के नहीं आते और इसीलिए दूसरा कोई उपाय न होनेके कारण सबको महंगीमें ही गुजर करनी पड़ती है।

मध्यवित्त जर्मन-परिवारकी आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। उन्हें अच्छा भोजन या सौजन्य शिष्टाचार इत्यादिकी ओर दृष्टि डालनेका फिलहाल इनको अवसर ही नहीं है। जर्मनोंसे लोग जो विनय हमारा सरकारने भी विमरत मिला है, वैसे यहां उन्नत

कर देखनेसे ही जर्मनीकी वर्तमान परिस्थितिका पता लग जायगा—

"एक सम्भ्रान्त जर्मन महिला यह कहते हुए रोने लगी कि, युवा अवस्थामें मैं फरासीसी, इटाली, रूस और अंग्रेजी भाषा सीख रही थी, सङ्गीत सिखानेके लिए भी एक शिक्षक नियुक्त था, मेरे बहन चित्र बनानेमें निपुण है, सुकुमार शिल्पमें उसका खूब यश था, बार्लिनके उच्चपदस्थ समाजमें हमारे कुटुम्बस्वजन हैं, कहना फिजूल है कि दासदासियोंकी भी मेरे घर कमी न थी। पीछे वह फिर कहने लगी—'अब मेरी ऐसी अवस्था है कि, विदेशी लोगोंके लिए अपने रहनेका मकान तक खाली कर दिया है। उनकी सेवा करना यही मेरा एकमात्र कार्य है। उन लोगोंकी मकानमें ठहरा कर मैं जो रोजगार करती हूं, उसके बिना मेरी गृहस्थीका खर्च नहीं चल सकता। इसलिए मुझे उनकी मरजीके मुताबिक काम करना पड़ता है। एक मुहूर्तके लिए भी मैं स्वाधीन नहीं हूं। मैं साहित्य, शिल्प, सङ्गीत, देश सेवा, सामाजिकता सब कुछ भूल गई हूं। युद्धके पहले जिन विदेशियोंको चोर, बदमाश, धोखेबाज समझ कर इनकी छायासे दूर रहती थी, आज उन्हींकी सेवा कर रही हूं।" वास्तवमें बार्लिनके प्रत्येक मध्यवित्त परिवारको ही आज विदेशी अतिथियोंकी चाकरी बजानी पड़ रही है।"

गत युद्धमें ब्रिटिश-साम्राज्य ही जर्मनीका सर्वप्रधान और एक ही शत्रु था। किन्तु जर्मनीकी वर्तमान अवस्थाको देख कर इस बातको बिल्कुल भूल जाना पड़ता है। आजकल अङ्गरेजोंको जर्मन परम मित्र समझते हैं। बहुतसे जर्मन राष्ट्र-नायक इस मतका पोषण करते हैं कि, ब्रिटिश-साम्राज्यकी क्षमताके ह्रास होनेसे जर्मनीकी हानि होगी। भारतीय स्वराज और महात्मा गान्धीकी अपूर्व कृतकार्यताका संवाद सुन कर बहुतसे उच्चपदस्थ जर्मन डर गये हैं। मिसर, भारतवर्ष आदि देशोंको स्वाधीनता मिलनेसे ब्रिटिश-जाति दुर्बल हो जायगी यह विचार कर बहुतसे जर्मन जननायक दुःखित हो रहे हैं। जर्मनी-प्रवासी एक बंगाली महाशयका कहना है—"यह सहजमें ही समझ सकते हैं कि एशियावासियोंमें विद्रोह उपस्थित होने पर उसके निवारणके लिए ब्रिटिश साम्राज्य अवश्य ही जर्मनीकी सहायता प्राप्त करेगा।"

जर्मनीमें फिलहाल विद्या, व्यवसाय, संवादपत्र-परिचालन आदि नाना विभागोंमें यहूदियोंने ही प्रधान स्थान अधिकार किया है। इसलिए जर्मन लोग उन पर बहुत नाराज रहते हैं। सुना जाता है कि इस समय जर्मन-राष्ट्रमें भी यहूदियोंका प्रभाव अधिक है। असली ईसाई जर्मनोंमें बहुत कम लोग ही गणतान्त्रिक या रिपब्लिक पन्थी हैं। जर्मनके लोग प्रायः सभी राजभक्त हैं। ये लोग कैसरको पुनः राजा बनानेके लिए उत्सुक हैं। कमसे कम रिपब्लिककी जगह राजतन्त्रको पुनः कायम करनेके लिए इन लोगोंका छिपी तौरसे आन्दोलन जारी है। कोलनके "ज़ाइटुङ्ग" और बार्लिनके "ज़ाइटुङ्ग" आदि संवादपत्रोंका सुर एकसा ही मालूम पड़ता है। इन पत्रोंकी खपत अच्छी है, प्रत्येककी पचास हजार प्रतियां बिक जाया करती हैं।

इतिहास हम लोग जहां तक अनुमान करते हैं कि, जर्मनीका ऐतिहासिक विवरण तभीसे आरम्भ है, जबसे जूलियस सीजर ई० सन्के ५८ वर्ष पहले गौलके शासक नियुक्त हुए थे। इससे कुछ पहले जर्मनीका विशेष सम्बन्ध दक्षिण प्रदेशोंसे था और भूमध्यसागरसे अनेक यात्री समय समय पर यहां आते थे, किन्तु उनके भ्रमण-वृत्तान्तका पूरा पता नहीं चलता है। पहले पहल टिउटोनिक लोगोंने दूसरी शताब्दीके अन्तमें इलिरिया, गौल और इटली पर आक्रमण किया था। जब सीजर गौल पहुंचे, तब वह समग्र पश्चिमी भाग जो अब जर्मनी कहलाता है गौलिश वंशके अधिकारमें था। सीजरके आनेके पहले जर्मनोंकी एकदल सेनाने राइन पर जो जर्मन और गौल लोगोंको उत्तरीसीमाके रूपमें अवस्थित था चढ़ाई कर दी और उसे अधिकृत कर वहां वे रहने लगे। इस समय गौल लोग जर्मनसे बहुत उत्पीड़ित किये जा रहे थे, तब सीजरने पहले पहल जर्मनीके राजा आरियोविसतसके विरुद्ध लड़ाई ठान दी। ई०सन्के ५५ वर्ष पहले उन्होंने इसीपेट और टेनकेटेरीको जो निम्न राइनसे आये हुए थे

मार भगाया। सीज़रने अपने शासनकालमें समस्त गौल तथा राइन पर अपना अधिकार जमा लिया।

राइनके पश्चिममें जो गौलिश वंशके लोग रहते थे, उनमेंसे ट्रीवेरो प्रधान थे। इनका वास विशेष कर मोसेलीमें था। इन्हीं लोगोंके रहनेके कारण शहरका नाम ट्रायर पड़ा है। अलसेसके दक्षिणमें रौरसी ट्रेवेरोके दक्षिणमें मडियोमेट्रिसी और पश्चिममें बेल्जी वंशके लोग रहते थे। ट्रेवेरी लोग और बेल्जियमवासी अपनेको प्रधान जर्मन बतलाते थे। इनमेंसे बेल्जियमके निरवी श्रेष्ठ और बलिष्ठ थे। किन्तु सीज़र कहते हैं कि बेल्जियमके कोनडूसी, एबुरोन, केरसी और पेमनी वंश ही यथार्थ जर्मन हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ये सबके सब कैलटिक थे।

औगस्टसके समयमें मारकोमनोंके राजा मरोबोडुअस जर्मनोंके पराक्रमी शासक थे। उनका आधिपत्य सुएविक तथा पूर्वी जर्मनीके लोगों पर अच्छी तरह विस्तृत था। किन्तु थोड़े समयके बाद चेरुस्कोंके राजकुमार आरमिनियसके साथ इनकी लड़ाई छिड़ी, जिसमें ये परास्त हो गये और राजसिंहासनसे च्युत कर दिये गये। पहली शताब्दीकी पश्चिमी जर्मनोंमें चौकी और चत्ती नामके दो वंश बहुत प्रभावशाली निकले। तीसरी शताब्दीके आरम्भमें जर्मनोंके दक्षिण-पश्चिम भागमें अलमनी नामक एक पराक्रमी वंशने प्रवेश किया। इसी समय दक्षिण-पूर्वमें गोथ लोग भी आ गये। आनेके बाद ही उनका प्रभाव उन स्थानोंमें खूब फैल गया। बाद तीसरी शताब्दीके मध्य भागमें फ्रैंक लोग यहां आये।

४थी शताब्दी तक पश्चिम जर्मनोंमें फ्रैंक और अलमनोंका अधिकार खूब बढ़ा चढ़ा था। इसी समय सैक्सनने भी आ कर उत्तरी और पश्चिमी जर्मनों पर चढ़ाई कर दी और फ्रैंकको मार भगाया। चौथी शताब्दीके मध्यभागमें गोथ लोगों का ही पूर्व जर्मनीमें एकाधिपत्य था। उन लोगोंके राजाका नाम हरमनरिक था जिनका राज्य कृष्णसागर (Black sea)से ले कर बोल्टिक तक विस्तृत था। उनकी मृत्युके पश्चात् पूर्व जर्मनी हूणोंके हाथ लगा। पांचवी शताब्दीमें पश्चिमके अलमनी और मारकोमनीके वंशजोंने रोम प्रदेश पर धावा किया और पूर्वके वनदलने सुएवी और अलन मलुद्रेनिक अलमनोंको साथ ले कर गौल पर चढ़ाई कर दी। ४३५-४३७ ई०में बरगण्डियन अट्टिलासे परास्त किये गये और उन लोगोंके राजा गुण्डहरियस मार डाले गये। इसी समय फ्रैंकने प्राचीन बेल्जियम पर आक्रमण किया और उसे ले लिया। ४५३ ई०में अट्टिला के मरने पर हूणोंकी शक्ति बहुत ह्रास हो गई।

६ठी शताब्दीमें यहां फ्रैंकोंकी खूब चलती थी। उन्होंने उत्तर गैलियाको जीत लिया और उन लोगोंके राजा क्लोविसने ४९६ ई०में अलमनीको पराजय किया था। इस तरह भिन्न भिन्न वंशके राजाओंने जर्मनोंमें यथाक्रम राज्य किया।

४८१ ई०को क्लोविसोंके शासनकालमें जर्मनी ४ प्रधान जिलोंमें विभक्त था और हर एक जिला तीन सौ वर्ष तक भिन्न भिन्न वंशके राजाओंके अधीन रहा। उत्तर पूर्वमें सैक्सनका दक्षिण पश्चिममें अलमनोंका और दक्षिण-पूर्वमें बवेरियोंका आधिपत्य था। अब क्लोवियों का ध्यान पूर्व जर्मनकी ओर आकर्षित हुआ। वहां जा कर उन्होंने अलमनोंसे लड़ाई ठान दी जिसमें अलमनोंकी हार हुई। ५११ ई०में क्लोवियोंके मरने पर उनका लड़का थुडेरिक राजा हुआ। पीछे पिपलिन और उनके लड़के चार्ल्स मारटलने जर्मनोंको युद्धमें परास्त कर अपना आधिपत्य मध्य जर्मनोंमें फैलाया। इन्हींके समयमें समस्त जर्मनोंमें ईसाई धर्म प्रचलित हुआ। इस धर्मके प्रचारके लिये अनेक पादरी नियुक्त किये गये और बहुतसे गिरजे बनवाये गये।

चार्ल्स मारटलके बाद उनके लड़के चार्लमेन राजा हुए। इनके समयमें समस्त जर्मनोंमें एक जातीय सङ्गठन हुआ जिससे सभी लोगोंमें उन्नतिकी आशा झलकने लगी। इनके बाद प्रथम लुइ जर्मनोंके सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनके समयमें कोई विशेष घटना न हुई। बाद प्रथम कोनार्ड राजा हुए। इनके समयमें ड्यूकका प्रभाव खूब बढ़ा चढ़ा था। वे अपनेको स्वतन्त्र समझते थे। किन्तु प्रथम हेनरीसे थोड़ेमें वे परास्त कर दिये गये और उनका सभी अधिकार छीन लिया

गया। जर्मनीमें जितने राजा हो गये हैं, सभोमें ये हो शूरवीर थे। इनके समयमें सामरिक विभागकी खूब उन्नति हुई जिससे विदेशी राजा लोग इस देश पर आक्रमण करनेका साहस नहीं कर सकते थे। इनकी मृत्यु ८३६ ई०के जुलाई महीनेमें हुई। बाद प्रथम ओटो जर्मनी के राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उस समय उनकी उमर केवल चौबीस वर्षकी थी। ठनकमर नामके इनके एक सौतेला भाई था जिसने राजके यथार्थ अधिकारीका दावा करते हुए उनसे लड़ाई ठान दी। ओटोकी जीत हुई और वे निष्कण्टक राज्य करने लगे। थोड़े समयके बाद इन्हें फ्रांसके राजा ४र्थ लुइसे लड़ना पड़ा था। ये कट्टर ईसाई थे। इनके समयमें भी ईसाई धर्मका खूब प्रचार हुआ। ८७३ ई०में २य ओटो जर्मनीके राजा और रोमके सम्राट्के पद पर सुशोभित हुए। ८७४ ई०में बहुतसी सेनाको साथ ले वे फ्रांसकी राजधानी पेरिसकी ओर अग्रसर हुए, किन्तु बाध्य हो कर इन्हें लौट आना पड़ा। ८८० ई०में दोनोंमें सन्धि हो गई। ८८० ई०में ये इटलीको गये और वहांसे फिर कभी लौट कर नहीं आये। ८८३ ई०में इनके लड़के ३य ओटो राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनके समयमें राज्य भरमें बहुत गोलमाल मचा। इनके मरने पर १००८ ई०में २य हेनरी राजा हुए। सिंहासन पर बैठनेके साथही इनका ध्यान सबसे पहले राजशासनकी ओर आकर्षित हुआ। इन्हींके समयमें लोरेनमें दश बड़ी बड़ी लड़ाइयां लड़ी गई जिनमें बहुतोंकी खूनखराबी हुई। इनकी मृत्युके पश्चात् कम्बमें एक सभा हुई जिसमें २य कोनराड राजा चुने गये। १०२४ ई०में ये राज्यसिंहासन पर बैठे। इनके सौतेले लड़के २य अरनेस्टने इनके राज्यकार्यमें बहुत बाधा डाली और कई बार भावी उत्तराधिकारी होनेके लिये इनसे लड़ भी पड़े। किन्तु उसकी सब चेष्टाएं निष्फल हुई। कनार्डने जीतेजी अपने लड़के ३य हेनरीको राज्यभार सौंपा। ये शान्तिप्रिय राजा थे। इनके समयमें समस्त जर्मनीमें शान्ति विराजती थी, लड़ाई दंगे बहुत कम होते थे। इनके राजत्वकालके प्रारम्भमें सम्पूर्ण यूरोपका गिर्जोंकी दशा शोचनीय हो गई थी। लेकिन इनके यत्नसे उनका पुनरुद्धार किया गया। १०४६ ई०में एकदल सेनाके साथ ये इटली गये थे। १०५६ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी। पीछे इनके लड़के ४र्थ हेनरीके नामसे राजसिंहासन पर बैठे। नाबालिग अवस्थामें इनकी माता महारानी आगनस राजकार्य चलाती थी। इन्होंने कईएक दुर्ग बनवाये थे। राज्य शासनकी ओर इनका अच्छा ध्यान था। १०८५ ई०में इन्होंने इटलीसे लड़ाई ठान दी और उसी साल ये वीबर्टसे रोमके सम्राट् बनाये गये। इनके मरने पर इनके लड़के ५म हेनरीके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका सारा समय लड़ाईमें ही व्यतीत हो गया, क्योंकि इन्हें कई बार फ्लाण्डर, बोहेमिया, हङ्गरी और पोलेण्डसे लड़ना पड़ा था।

५म हेनरीकी मृत्युके साथ साथ फ्रानकोनियन वंशका भी लोप हो गया। उसी साल ११२५ ई०में सैक्सनीके ड्यूक लोथैर जर्मनीके राजा निर्वाचित हुए। पहले पहल इन्हें बोहेमियासे युद्ध करना पड़ा था। ११३३ ई०में इटली जाकर इन्होंने २य इनोसेण्ट नामक पोपसे राज्यमुकुट प्राप्त किया था। ११३७ ई०में इटलीसे लौट आने पर इनका प्राणान्त हुआ। पीछे ११३८ ई०में फ्रेङ्कोनियाके ड्यूक कोनरद सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनके समयमें कोई उल्लेखयोग्य घटना न हुई। ११५२ ई०में बम्बर्गमें ये पञ्चत्वको प्राप्त हुए। पीछे स्वाबियाके भूतपूर्व ड्यूक फ्रेडरिकके पोते बरबरोस १म फ्रेडरिक नाम धारण कर जर्मनीके राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। तीन वर्ष राज्य करने बाद ये रोमका सम्राट् बननेके लिये आल्पस पर्वत पार कर गये। इनका अधिकांश समय इटलीमें ही व्यतीत होता था। रोइनलेण्ड आदि स्थानोंमें शान्ति स्थापन करनेके बाद ये ११५७ ई०में पोलेण्ड गये थे। इनके समयमें शहरोंकी उन्नति दिन दूनी और रात चौगुनी होने लगी। हेनरीदी-लायनके जानी दुश्मन थे। जो कुछ हो इनके समय प्रजा आनन्दसे समय बिताती थी। इनकी मृत्युके बाद ११६८ ई०में इनके लड़के ६ष्ठ हेनरी राजा हुए। इस समय सब जगह शान्ति विराजती थी, अतः किसीसे इन्हें लड़ाई न करनी पड़ी, तथा इनके समय और कोई विशेष घटना न हुई। अब ४र्थ ओटो

पुनः जर्मनीके राजा निर्वाचित हुए। सभी राजाओं तथा पोपोंने इन्हें स्वीकार किया। समस्त जर्मनीमें कोई गड़बड़ी न हो, सब कोई चैनसे रहते थे। लेकिन ऐसा सब दिन न रहा। १२०८ ई०में रोमके सम्राट का पद पा कर ये पोपोंके विरुद्ध अपनी इच्छानुसार आचरण करने लगे। इस पर उन्होंने राजाको दण्ड देनेके लिये ६ठ हेनरीके लड़के फ्रेडरिकको जो उस समय सिसिलीमें रहते थे राजा बनाया। ओटो भाग कर इटली चले गये। फ्रेडरिक अधिक दिन राज्य न करने पाया था कि १२१८ ई०में उनका देहान्त हो गया। पीछे २य फ्रेडरिक राजा हुए। ये कमजोर राजा थे सही किन्तु साहित्य शिल्प तथा वैज्ञानिक शास्त्रमें इनका अच्छा प्रवेश था। पिताकी मृत्युके बाद ४र्थ कोनरड राजसिंहासन पर बैठे, किन्तु १२५१ ई०में ये इटलीमें शत्रुओंके हाथसे मारे गये। पीछे जर्मनीका कौन राजा होगा, इसके लिये बहुत गड़बड़ी मची। अन्तमें होलैण्डके विलियम बहुतोंकी सलाहसे राजा बनाये गये। उन्होंने बहुत दिन राज्य करने नहीं पाया था कि १२५६ ई०में वे विपक्षियोंसे मार डाले गये। अब यहां दो दल तैयार हो गये। एक दल स्पेनियाके फिलिपके पोते १०म अलफोनसो (कासटाइलके राजा) को जर्मनीके राजसिंहासन पर बैठाना चाहता और दूसरा ३य हेनरीके भाई रिचार्डको जो कोर्नवालके अर्ल थे। किन्तु रिचार्डके पक्षको लोग ज्यादा अधिक थी, इसलिये ये ही १२५७ ई०में जर्मनीके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इस समय आपसमें मतभेद रहनेके कारण जर्मनीमें अशान्ति फैल गई। सभी कर्मचारी अपनी इच्छानुसार कार्य करने लगे। प्रजाकी भलाईकी ओर किसीका लक्ष न था। कई एक देश भी स्वतन्त्र हो गये। इस प्रकारकी अराजकता जर्मनीमें और कभी नहीं हुई थी। १२७२ ई०के अप्रिल मासमें रिचार्डकी मृत्यु होने पर १०म पोप ग्रेगरीने राज निर्वाचक-समितीसे कहा कि "यदि आप लोग जर्मनीके लिये एक उपयुक्त राजा न चुनेंगे, तो मैं स्वयं ही अपनी इच्छासे किसी योग्य पात्रको राजसिंहासन पर बैठाऊंगा। यह सुन कर सब कोई डर गये। अन्तमें सभीकी सम्मतिसे हैप्सबुर्गके काउण्ट रुडोल्फ राजा बनाये गये। ये बड़े वीर तथा निर्भीक थे। इन्होंने अपने बाहुबलसे राज्यका जो उस समय प्रायः अस्तव्यस्त हो गया था उद्धार किया। इस कारण उन्हें सब कोई जर्मनीके राज्यका सुधारक कहा करते थे। अपने जीतेजी ये राज्यभार अपने लड़के एलबर्ट पर सौंपना चाहते थे किन्तु ऐसा न हुआ। १२९१ ई०के जुलाई मासमें इनके मरने पर इनके लड़के एलबर्टको राजा न बनाकर लोगोंने नसौके काउण्ट अडोल्फको ही राजा बनाया। किन्तु ये बहुत कायर थे, राजकार्य अच्छी तरह चला नहीं सकते थे। फिर भी अशान्ति फैल जानेकी सम्भावना थी, किन्तु उसी साल १२९८ ई०में ये परलोकको प्राप्त हुए। इसी अवसरमें १२९८ ई०को रुडोल्फके सुयोग्य पुत्र प्रथम एलबर्ट राजा निर्वाचित हुए। इन्होंने अपने पिताके नियम अनुसरण कर राज्यकी बहुत कुछ उन्नति की। अच्छा राजा होने पर भी इनके अनेक विपक्षी हो गये जिन्होंने इन्हें १३०८ ई०में मार डाला। पीछे लुक्सेमबुर्गके काउण्ट हेनरी ७म हेनरीके नामसे राजसिंहासन पर बैठे। इन्होंने अपने लड़के जोनको बोहेमियाका राजा बनाया। १३१० ई०में ये थोड़ी सेनाको साथ ले इटली गये और वहीं लड़ते लड़ते १३१३ ई०में मारे गये।

हेनरीकी मृत्युके बाद निर्वाचकोंने सोचा कि यदि इस समय इनके लड़के जोन राजसिंहासन पर बिठाये जांय तो जर्मनीराज्य उनका पैत्रिक हो जायगा इस डरसे उन्होंने किसी दूसरेको राजा बनाना चाहा। इस बार भी दो दल हो गये। बहुमतसे अपर बवेरियाके ड्यूक लुई और अल्पमतसे प्रथम एलबर्टके लड़के फ्रेडरिक दी-फेयर राजा निर्वाचित हुए। इस कारण ८ वर्ष तक दोनोंमें लड़ाई होती रही। अन्तमें १३२२ ई०के सितम्बर मासमें फ्रेडरिक म्युलडोर्फकी लड़ाईमें सम्पूर्णरूपसे पराजित हुए। इस समय भी आपसमें मतभेद हो जानेसे जर्मनीकी दशा शोचनीय हो गई। लुई अयोग्य तथा अभिमानी राजा थे। इस कारण पोप भी इनसे बहुत विरक्त हो गये और इन्हें पदच्युत करनेकी इच्छा की। इधर लुईने भी पोपकी अधीनता स्वीकार नहीं करनेकी इच्छासे १३२७ ई०में इटली गये। १३२८ ई०में इन्होंने इटलीका राज

मुकुट धारण किया और उन्हीं लोगोंकी सहायतासे पोप जोनको पदच्युत कर उनके स्थान पर कोरवाराके पीटरको पोपके पद पर नियुक्त किया। १३४८ ई०में इनकी मृत्यु हुई। पीछे १३४६ ई०के जनवरी महीनेमें ४थ चार्लस जर्मनीके राजसिंहासन पर बैठे। इन्होंने अच्छी तरहसे राज्य चलाया। आपसका मतभेद जाता रहा। ये थोड़े ही समयमें जर्मनी, बोहेमिया, लोमबरडी और बरगण्डीके भी राजा थे। इन्होंने निम्न लुसतिया और साईलेसियाके कुछ भाग बोहेमियाके अन्तर्गत कर लिये थे। इनके मरने पर इनके लड़के वेनसेसलस १३७६ ई०में राजा बनाये गये। इनके समयमें स्वीसका घोरतर युद्ध हुआ था। इनकी मृत्युके पश्चात् रुपर्ट कुछ काल तक जर्मनीके राजा था। निःसन्तान अवस्थामें इनकी मृत्यु हो जाने पर इनके चचेरे भाई जोवस्ट और सिगिसमुण्डमें राज्य पानेके लिये विवाद आरम्भ हुआ। किन्तु १४११ ई०में जोवस्टके मर जाने पर सिगिसमुण्ड ही राजा बनाये गये। इन्होंने दूसरे दूसरे राज्योंसे चौथ वसूल कर अपने राज्यकी आय बढ़ानेकी खूब चेष्टा की थी, लेकिन वे इसमें कृतकार्य न हो सके। १४३७ ई०में इनका देहान्त हुआ। पीछे इनके जमाई अष्ट्रियाके एलबर्ट राजसिंहासन पर बैठे। ये केवल जर्मनीके ही राजा न थे वरन हंगरी और बोहेमिया भी इन्हींके अधिकारमें था। राज्यशासनकी ओर इनका अच्छा लक्ष्य था। १४३८ ई०में इनका देहान्त हो जाने पर इनके आत्मीय स्टोरीयाके ड्यूक फ्रेडरिक ४र्थ फ्रेडरिक नामसे जर्मनीके राजसिंहासन पर बैठे। १४५२ ई०में जब इन्हें रोमकी गद्दी मिली तब ये ३य फ्रेडरिक नामसे प्रसिद्ध हुए। अष्ट्रियाके इतिहासमें इनका नाम बहुत मशहूर हो गया है सही किन्तु जर्मनी देशकी दशा इनके समयमें बहुत खराब हो गई। चारों ओर लड़ाई छिड़ी हुई थी, शत्रुओंको ये दमन नहीं कर सकते थे। इटलीमें इनका कुछ भी प्रभाव नहीं था। फ्रांसके राजाने इनके कई एक अधिकृत भूभाग दखल कर लिये।

अनन्तर १४८६ ई०में मक्सीमिलियन राजा बनाये गये। १४६० ई०में इन्होंने भीयन्नासे हंग्रीयनको मार भगाया और उनकी पैतृक सम्पत्ति ले ली। पीछे वे इटलीको गये। इनके समयमें सर्वोच्च विचारालय स्थापित हुआ जिसमें १६ सदस्य नियुक्त किये गये। १५१८ ई०में इनका देहान्त हुआ। बाद राजगद्दीके लिए इनके पौत्र स्पेनके राजा चार्लस और १म फ्रांकिस आपसमें झगड़ने लगे। किन्तु उसी सालके जून मासमें चार्लस राजा बनाये गये। उस समय इनकी गिनती अच्छे राजाओंमें होती थी केवल जर्मनीमें ही इनका आधिपत्य नहीं था, वरन स्पेन, सिसली नेपल्स और सरडोनियाके लोग भी इन्हें अपना राजा मानते थे। इन्होंने ईसाई धर्मका पुनरुद्धार किया। इस समय जर्मन कृषकगण कई एक कारणोंसे बहुत अप्रसन्न हो गये और उन्होंने मिल कर चार्लससे लड़ाई ठान दी। यह लड़ाई बहुत दिनों तक चलती रही जो इतिहासमें कृषककी लड़ाई कह कर मशहूर है। फ्रांस और टर्कीसे भी इन्हें कई बार लड़ना पड़ा था। इनके बाद १म फरडीनन्द पोपकी सम्मतिके बिना राजा बनाये गये। तुर्कोंने इन्हें बहुत उत्पीड़न किया इसलिये १५६८ ई०में दोनोंमें एक सन्धि स्थापित की गई। १५६४ ई०में ये कराल कालके गालमें फँसे। इनके समयमें राजकार्यमें बहुत परिवर्तन किया गया। इनके पश्चात् इनके लड़के २य मक्सिमिलियन राजा हुए। ये शान्तप्रकृतिके थे। इस समय कोई विशेष घटना न हुई। पीछे इनके लड़के २य रुडोलफ राज्याधिकारी बनाये गये। १५७५ ई०के अक्तुबर मासमें रोममें भी इनका आधिपत्य स्वीकार किया गया। इनके राजशासनसे प्रजा खुश नहीं थी। इनकी मृत्युके बाद इनका लड़का ४र्थ फ्रेडरिक उत्तराधिकारी ठहराया गया। किन्तु ये नाबालिग थे इसलिये इनका चचा जोन कासीमोर ही राजकार्य देखते थे। ये बहुत दयालु तथा युद्धप्रिय राजा थे। इस समय भी तुर्क लोग पूर्व जर्मनीमें बहुत ऊधम मचा रहे थे। इसलिये १५८३ ई०में दोनोंमें लड़ाई छिड़ी और १६०६ ई०के नवम्बर मासमें समाप्त हुई। तुर्कोंने हार मान कर राजासे सन्धि कर ली जिससे उन्हें राजासे जा कर मिला करता था वह बन्द कर दिया गया। रुडोलफके बाद २य फरडीनन्द राजा हुए। ये कट्टर ईसाई थे तथा अपने धर्मके प्रचारके

किये परन्तु खूब चेष्टा की थी। इन्हींके समयमें १६१८ ई०को प्रसिद्ध तीस वर्षका युद्ध आरम्भ हुआ था। जिससे जर्मनो प्राय: तहस नहस हो गई थी। इनके मरने पर इनके पीछे राजा १म फ्रेडरिक जर्मनीके राज सिंहासन पर बैठे। इन्होंने बहुत थोड़े समय तक राज्य किया। बाद इनके लड़के १म फिडरीक राजा हुए। ये बहुत कमजोर राजा थे। इस समय फ्रांसके राजा १४वें लुइने अच्छा मौका देख जर्मनी पर चढ़ाई कर दी। फ्रेडरिक उन्हें रोकनेमें बिलकुल असमर्थ थे। अन्तमें १६७८ ई०को निमिमर्येगेनमें एक सन्धि स्थापित हुई जिससे फरासीसियोंने अधिकृत प्रदेश लौटा दिये। बाद जोसेफके भाई ६म चार्ल्स राजा बनाये गये। इस समय जर्मनो को ३० वर्षके युद्धसे अपना प्राचीन गौरव तथा समृद्धि जो बैठे थे, क्रमशः सुधरने लगे। चार्ल्सने कई एक प्रदेश जीत कर अपने राज्यमें मिला लिये। १७४० ई०में इनका देहान्त हुआ। इनके कोई लड़का नहीं थे इसलिए इनको लड़की मेरिया थेरेसाने अपने लड़केको जो पीछे २य जोसेफ नामसे प्रसिद्ध हुआ उत्तराधिकार बनानेकी खूब चेष्टा की। किन्तु फरासीसियोंकी सहायतासे ७म चार्ल्स राजा बनाये गये। दोनोंमें कुछ काल तक लड़ाई होती रही। बाद १७४८ ई०को एक्स ला चापेलेमें सन्धि हुई जिसमें मेरिया थेरेसाने साइलेसिया देश प्रशियाको प्रदान किया।

चार्ल्सके बाद मेरिया थेरेसाके स्वामी टसकनीके प्रधान ड्यूक फ्रैन्सीस जर्मनोकी राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने १७४५से १७६५ ई० तक राज्य किया था। इन्हींके समयमें (१७५६-६३) सात वर्षका युद्ध (Seven years' war) जो जर्मनके इतिहासमें प्रसिद्ध है आरम्भ हुआ था। पीछे २य जोसेफ जर्मनीके सिंहासन पर बैठे। इन्होंने रूसिया और प्रुसियाके साथ मिल कर फरासीसियोंसे लड़ाई ठान दी। कई वर्षके बाद १७९५ ई०में दोनोंमें सन्धि हो गई जिससे राइन नदीका दक्षिण तीरवर्ती भूभाग फरासीसियोंके हाथ लगा। जोसेफके बाद २य फ्रान्सिस राजा बनाये गये। इस समय नेपोलियन बोनापार्टका प्रभाव फ्रांसमें खूब बढ़ा चढ़ा था। जर्मनी भी इनके भयसे कांपने लगी थी। नेपोलियन १८१० ई०में एल्बे तथा समुद्रके उत्तरी किनारेका भूभाग अपने राज्यमें मिला कर जर्मनोको घोर अपमान हुए थे। किन्तु फ्रान्सिसने १८१४ ई०की पहली मार्च को चौमोण्टमें उनसे सन्धि कर ली। पीछे १८७१ ई०की ८वीं जनवरीको प्रुसियाके राजा १म विलियम बहुत समारोहके साथ जर्मनीके सिंहासन पर अभिषिक्त किये गये।

नेपोलियनके युद्धके बाद जर्मनो को 'एकता' प्राप्त करनेकी तीव्र आकांक्षा हुई। यह आकांक्षा फरासीसियोंके साथ युद्ध करनेमें चरितार्थ हुई। जिस जर्मन जातिने फ्रान्सके सम्राट के पैरो पड़ कर आत्मभिक्षा मांगी थी भाग्यचक्रके परिवर्तनसे कुछ अधिक साठ वर्षमें वही जाति फिर फ्रान्स जय करके उन पर प्रभुत्व करने लगी। फरासीसियों को परास्त कर जर्मनीने अलसेस और लोरेन ये दो प्रदेश हस्तगत किये। इन प्रदेशोंमें बहुत दिनोंसे फरासीसियों का शासन रहने पर भी जर्मनो का दावा बना था। इसलिए सब तरफसे जर्मनोमें एकता करनेकी ठानी। इसके बाद ही १८ जनवरी १८७१ ई०को जर्मनोमें साम्राज्य स्थापनकी घोषणा कर दी। प्रुसियाके राजा ही सम्राट् बनाये गये। इस साम्राज्यवादके महापुरोहित थे बिसमार्क। नवीन साम्राज्यमें गणतन्त्रनीति अवलम्बित होने पर भी सम्राट् और प्रधान मन्त्रीको मुख्य शक्ति अर्पित की गई। इस साम्राज्यके सिंहासन पर कुल तीन व्यक्ति अधिष्ठित हुए थे—

सम्राट १म विलियम—१८७१—८८ ई०।

सम्राट ३य फ्रेडरिक्—१८८८ ई०, ९ मार्चसे १५ जून तक।

सम्राट २य विलियम—१८८८ ई०से महायुद्धके बाद तक।

इनमेंसे आदिके दो सम्राटोंके समय राज्यकालमें तथा द्वितीय विलियमके राज्यके प्रारम्भिक कालमें बिसमार्क ही कर्त्ताधर्त्ता भी थे।

जर्मन-साम्राज्यके प्रारम्भिक समयमें भीतर धर्म विवादमें बड़ी अशान्ति फैल गई थी। इस युद्धको कुल्टर केम्फ या सभ्यता रक्षार्थ युद्ध कहते हैं। इसके एक पक्षमें जर्मन राष्ट्र था बिसमार्क थे और दूसरे

पक्षमें रोमन कैथलिक चाहे। बिसमार्कका मत यह था कि धर्म-सम्प्रदाय राजनैतिक स्रोतसे बाहर अवस्थान करे। इसीलिए जब रिकष्टैग सभाके निर्वाचनमें ६३ प्रतिनिधि रोमन कैथलिकोंमेंसे चुने गये, तब वे उनके विरुद्ध खड़े हुए। इस युद्धका आपात प्रतीयमान कारण यह है कि १८७० ई०में जब "पोप भूल नहीं कर सकते" यह नीति घोषित हुई, तब कुछ कैथलिक विशपोंने पुरातन कैथलिकका नाम ग्रहण कर उक्त नीतिको अस्वीकार किया। कैथलिक सम्प्रदाय पुरातन कैथलिकोंको विश्वविद्यालय और धर्ममन्दिरादिसे बहिष्कृत करने पर उतारू हो गया। परन्तु प्रूसियाके राष्ट्रने उन लोगोंको दूरीभूत करना नहीं चाहा। बस, इसीसे विवादकी उत्पत्ति हो गई। १८७२ ई०में साम्राज्यकी महासभाने जेस्युइट नामके कैथलिक धर्मसम्प्रदायको ही जर्मनीसे निकाल दिया। बिसमार्कने समझा कि जर्मनीकी एकताके विरोधियोंने इस धर्म-युद्धकी अवतारणा की है; इसलिये उन्होंने सारी शक्तिको उसके निवारणके लिए लगा दी। उन्होंने कानून बना दिया कि कैथलिक लोग किसी तरह भी राष्ट्रके कार्यमें हस्तक्षेप न कर सकेंगे। विवाह-कार्य भी उन्होंने पुरोहित-सम्प्रदायके हाथसे ले कर राष्ट्रके अधीन कर दिया। इसके विरुद्ध कैथलिकोंने तीव्र प्रतिवाद किया। परिणाम यह हुआ कि भीषण विवादकी सृष्टि हो गई। १८७७ ई०में जब देखा कि कैथलिक लोग रिकष्टैग सभामें सिर्फ ९२ प्रतिनिधि ही भेज पाये हैं, तब बिसमार्कने उनके साथ वृथा युद्ध न कर अन्य कार्यमें मन लगाया। उन्होंने फिर धर्म-सम्बन्धीय नीतिमें परिवर्तन कर कैथलिकोंकी सहानुभूति प्राप्त की। जर्मनी मुख्यतः प्रोटेष्टाट धर्मावलम्बियों द्वारा अध्युषित होने पर भी कैथलिकोंने ही वहांकी महासभामें प्राधान्य प्राप्त किया था।

१८७८ ई०में बिसमार्कने जर्मनीके समाजतन्त्रवादियोंके विरुद्ध आन्दोलन उठाया। जर्मनीमें समाजतन्त्रवादियोंका एक दल १८४८ ई०से ही चला आ रहा था। उक्त दलके लोग स्वाधीनताके उपासक थे; सर्वतोभावसे स्त्री और पुरुषोंकी स्वाधीनता मिले, यही उनका उद्देश्य था। वे यह भी चाहते थे कि धनाढ्य व्यक्ति प्रचुर धनको सिर्फ अपने ही काममें खर्च न कर पावें। किन्तु इससे जर्मनीका शासक-सम्प्रदाय डर गया। बिसमार्ककी समाजतन्त्रवादियों पर यथार्थमें बड़ी घृणा थी। वे एक ओर तो विविध कठिन दण्डमूलक आईन बना कर उनके आन्दोलनको दबानेकी चेष्टा करते थे और दूसरी ओर श्रमजीवी सम्प्रदायकी अवस्थाकी उन्नति कर उनकी सहानुभूति राष्ट्रके लिए आकर्षित करनेका प्रयास करते थे। परन्तु कुछ भी फल न हुआ। समाजतन्त्रवादियोंमें दिनों दिन नवीन शक्तिका आविर्भाव होने लगा। १८८० ई०में उन लोगोंने रिकष्टैग महासभामें ३५ प्रतिनिधि भेजे फिर क्या था, बिसमार्क स्वयं राष्ट्रके अधीन समाजतन्त्र नीतिके प्रवर्तनकी चेष्टा करने लगे। State Socialism की एक प्रकारकी विधि हम अपने देशके कौटिल्य अर्थशास्त्रमें पाते हैं। परन्तु यूरोपमें ऐसी नीतिके प्रवर्तक पहले पहल बिसमार्क ही हुए हैं। इन्होंने नाना प्रकारकी बीमाकम्पनियोंका प्रचलन कर श्रमजीवियोंकी अवस्थाकी उन्नति की थी।

१८७९ ई०में बिसमार्कने वाणिज्यनीतिमें संरक्षणशीलता अवलम्बन कर यूरोपमें एक विराट् परिवर्तनकी सृष्टि की। उनके दो उद्देश्य थे, एक साम्राज्यकी आय बढ़ाना और दूसरा देशीय शिल्पियोंको उत्साहित करना। इस विषयमें, इंगलैण्डके विरुद्ध खड़े होने पर भी वे कृतकार्य हुए थे। बिसमार्ककी नीतिके कारण ही जर्मनी धन एकत्र करनेमें समर्थ हुआ था।

बिसमार्कने अपने कर्ममय जीवनके शेषभागमें जर्मन सम्प्रदायकी बहुल विस्तृतिके लिए औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापन करनेका प्रयास किया। जब उन्होंने वाणिज्यमें संरक्षणनीतिका अवलम्बन किया था, तब उन्हें जर्मनीके बाहर प्रस्तुतद्रव्यके बेचनेके लिए बाध्यतासे उपनिवेश स्थापित करना पड़ा। क्योंकि यदि वे बाहरकी चीजें अपने देशमें न आने देते, तो औरोंको क्या पड़ी थी जो वे जर्मनी चीजोंको अपने देशमें आने देते? इस लिए १८८४ ई०में वे वणिकों और भ्रमणकारियोंको उपनिवेश-स्थापनके कार्यमें यथोचित उत्साह देने लगे। उसी वर्ष जर्मनीने अफरीकाके दक्षिण व पश्चिम भागमें

तथा पश्चिम और पूर्वके बहुतसे स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने इंगलैण्ड आदि शक्तिशाली देशोंके साथ सन्धि कर अपने अधिकारकी नींव मजबूत कर ली। इस तरह जर्मनीने अफ्रीकाके कामेरून, टोगोलैण्ड तथा जर्मन-दक्षिण पश्चिम अफ्रीका जर्मन पूर्व अफ्रीका और न्यूगिनिके कुछ भाग पर अधिकार जमा लिया। १८८९ ई०में जर्मनीने स्पेनसे कारोलाइन और मेरियन द्वीप खरीद लिया।

बिसमार्ककी दृष्टि सिर्फ जर्मनोंके उपनिवेशोंमें ही निबद्ध न थी, जिससे बहिर्देशोंमें भी जर्मनीकी मित्र शक्ति रहे इस विषयमें भी वे यथेष्ट प्रयत्न करते थे। उन्होंने फ्रान्सको एक बारगी पस्त करनेके लिए पूर्व यूरोपके तीनों सम्राटोंमें अर्थात् जर्मनी, अष्ट्रिया और रूसियामें एक सन्धि कर डाली, जो Tripple Alliance के नामसे मशहूर है। १८८२ ई०में इटली भी इन तीनों शक्तियोंमें शामिल हो गया।

२९ वर्षकी उम्रमें २य विलियम सम्राट पद पर अभिषिक्त हुए। ये ही गत महासमरके प्रधानतम नायक थे। इनके चरित्रमें उस समय कार्यदक्षता, कल्पनाकी उज्ज्वलता, नाना विद्याओंमें पारदर्शिता और उच्चाकांक्षा दिखलाई देती थी। ऐसी दशामें यह आशा नहीं की जा सकती कि वे बिसमार्कके इशारे पर चलते होंगे। बिसमार्कने पहलेसे ही कह दिया था कि, नवीन सम्राट् स्वयं ही अपने प्रधान मन्त्रीका कार्य करेंगे। किन्तु क्षमतामें ऐसी ही मोहिनी शक्ति है कि उन्होंने ऐसा समझ कर भी नवीन सम्राट्के राज्यारोहणके समय अपना पद न छोड़ा। आरम्भसे ही दोनोंमें वैमनस्य चलने लगा। १८९० ई०में नवीन सम्राट्ने प्रधान मन्त्रीसे त्यागपत्र या इस्तीफा मांगा। बिसमार्कने देशके लिए जी जानसे परिश्रम किया था किन्तु बुढ़ापेमें उन्हें इस तरहके अपमानके साथ पदत्याग करना पड़ा।

१८९० ई०से सम्राट् २य विलियम ही जर्मनोंके साम्यविधाता समझे जाने लगे। उन्होंने समाजतन्त्रवादके विरुद्ध आन्दोलन करना छोड़ दिया। उनके राजत्वमें जर्मन शिल्पवाणिज्यका बहुत प्रसार हुआ। देखते देखते जर्मन वाणिज्य इंगलैण्ड और अमेरिकाका प्रतिद्वन्द्वी हो गया। साथ ही जर्मनका सैन्य भी यथेष्ट बढ़ गया।

इसके बाद समाजतन्त्रवादका प्रभाव और भी बढ़ने लगा। धीरे धीरे महासभामें उन्हींकी संख्या अधिक हो गई। जर्मनीकी शासनपद्धति (Constitution)में परिवर्तन कर जनसाधारणके हाथमें अधिकतर भार सौंपनेके लिए भी इस समय विपुल आन्दोलन होने लगा।

बीसवीं शताब्दीमें जर्मनी जिस तरह अपूर्व प्रभावके साथ यूरोपकी प्रधानतम शक्तियोंके रूपमें परिणत हो गया, इसका कारण बतलाते हुए प्रिन्स वन् बुलोने बिसमार्कके बाद ही जिनका नाम लिया जा सकता है, प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे अपनी १९१४ ई०में लिखित आत्मचरितमें लिखा है—

"Prussia attained her greatness as a country of soldiers and officials, and as such she was able to accomplish the work of German union; to this day she is still in all essentials, a state of soldiers and officials" अर्थात् 'प्रशियाने सैनिक और कर्मचारियोंकी जातिकी हैसियतसे ऐश्वर्य प्राप्त किया था और उसी गुणके कारण वह जर्मनोंकी एकता सम्पादनमें कृतकार्य हुआ था। अब भी वह प्रायः सब विषयोंमें सैनिक और कर्मचारियोंकी जातिके रूपमें ही विद्यमान है।' इस कथनका यथार्थ आशय यह है कि, जर्मनोंके प्रत्येक व्यक्तिने स्वदेशानुरागसे प्रेरित हो कर शरीर या मस्तिष्कसे देशकी सेवा करनेके लिए आत्मोत्सर्ग किया था।

१९०८ ई०में राजकीय अर्थनीतिके विषयमें मतभेद हो जानेसे प्रिन्स बुलोने अपना पद छोड़ दिया। १९१० ई०में रिकष्टैग महासभामें सम्राटकी असीम शक्तिके विरुद्ध कुछ आन्दोलन हुआ था। एक प्रतिनिधिने कहा था सम्राट को ऐसी क्षमता प्राप्त है कि वे चाहें तो कह सकते हैं कि "आठ दस आदमी ले कर इस सभाको बन्द कर दो।" इससे मालूम होता है कि, १९१८ ई०में जब सम्राट जर्मनीसे निकाल दिये गये थे, तब यह कार्य सहसा नहीं हुआ था, बल्कि बहुत पहलेसे ही यह अग्नि प्रज्वलित हो रही थी।

१८११ ई०में अलसक और लोरेन प्रदेशको कुछ स्वाधीनता दी गई थी।

युद्धके पहले लगातार ४० वर्ष तक जर्मनीमें जो उन्नतिका स्रोत बहा था, उससे जर्मन जाति अर्थनीति और राजनीतिमें शक्तिशाली हो गई थी। उस शक्तिकी उन्मत्ततासे नवजाग्रत जाति फूली न समाई; वह पृथिवीको मिट्टीका सरवा समझने लगी। उन लोगोंका यह मूलमन्त्र था कि, जर्मनकी शिक्षा और सभ्यता ही जगत्में उत्कृष्ट वस्तु है, जैसे बने विश्वमें उसका प्रचार करना ही होगा। जिस प्रकार मुसलमानोंने अपने धर्मप्रचारके लिए तत्कालीन समग्र परिचित जगत् जय करनेकी चेष्टा की थी, जर्मनोंने भी मानो उसी प्रकार सभ्यताके प्रचारके लिए विश्व विजय करनेका निश्चय कर लिया। यही गत महायुद्धका यथार्थ कारण था।

१८१४ ई०में जर्मनीने साराजिभोके हत्याकाण्डके बाद युद्धकी घोषणा की। उनमें जो दलबन्दी थी, उसे मिटानेके लिए सम्राट्ने कहा—"I no longer know any parties among my people, there are only Germans." अर्थात् 'मैं नहीं जानता कि मेरी प्रजामें किस प्रकारकी दलबन्दी है, मैं सिर्फ इतना जानता हूं कि सभी जर्मन हैं।' इसके बाद सब एक हो गये और युद्ध करनेके लिए रणक्षेत्रमें कूद पड़े।

बेलजियमको पददलित करनेके बाद जब महावीर हिन्डेनबार्गने ऐलेंष्टाइनके युद्धक्षेत्रमें रूसियाको पराजित कर दिया, तब जर्मन-जातिके आनन्दकी सीमा न रही। जर्मन-जाति इस महायुद्धमें विजयी होगी ही, ऐसी धारणा प्रत्येक जर्मनके हृदयमें बद्धमूल हो गई। जर्मनी मार्नके पास युद्धमें विजयी न हो सका, सिंटाउरका पतन हुआ और फकलैंडके पास उसका जंगी जहाज डूब गया, पर किसी तरह भी जर्मनीकी आशा और उत्साहका ह्रास नहीं हुआ। १८१४ ई०के अन्तमें इङ्गलैण्ड भी जर्मनीके विरुद्ध खड़ा हुआ, किन्तु जर्मनीने उसकी कुछ भी परवाह न की।

१८१५ ई०के प्रारम्भमें भी जर्मनीकी अवस्थामें कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। १९१५ ई०के मई मासमें जब इटली राज्य भी जर्मनीके विरुद्ध खड़ा हुआ, तब कोई कोई कहने लगे कि शत्रुओंकी संख्या धीरे धीरे बढ़ती ही जाती है, अतः जर्मनीको विजयाभिलाष कुछ घट रही है। इस धारणाको बेजड़ सिद्ध करनेके लिए जर्मनीके अधिकारीवर्ग विशेष प्रयत्न करने लगे।

१९१६ ई०के प्रारम्भमें ही जर्मनीमें युद्धजनित क्लान्ति और अवसन्नताका भाव दिखलाई देने लगा। आहार आदिके विषयमें जर्मन-गवर्मेंटने ऐसे कड़े कानून बनाये थे कि जिससे जर्मनजाति विलासिता तो भूल ही गई थी, प्रत्युत उपयुक्त आहारसे भी वञ्चित रहती थी।

इस युद्धके लिए जर्मनीने जब (१ अगस्त १९१४ई०) पहले पहल रणक्षेत्रमें पदार्पण किया था, तब उसने सिर्फ रूसियाके विरुद्ध ही अस्त्रधारण किया था। उसके बाद उसने ३ अगस्तको फ्रान्सके विरुद्ध युद्ध घोषणा की। इसके दूसरे ही दिन (४ अगस्तको) जर्मनीने बेलजियमसे युद्ध ठान दिया और उसी दिन ग्रेटब्रिटेन भी इसका शत्रु हो गया। तदनन्तर ६ अगस्तको सर्भिया और ६ अगस्तको मोण्टो-निग्रो जर्मनीसे युद्ध करनेके लिए तयार हो गया। २३ अगस्तको प्राच्य शक्ति जापानने मित्रशक्तिपुञ्जके साथ मिल कर जर्मनीसे शत्रुता करना प्रारम्भ कर दिया। इन शक्तियोंके अतिरिक्त इटली भी समराङ्गणमें अवतीर्ण हो जर्मनीको विजयाशाको क्षीण करने लगा। ६ मार्च १८१६ ई०को जर्मनीने पोर्तगालके विरुद्ध भी अस्त्रधारण किया। २८ अगस्तको रूमेनियाको भी उसने शत्रुओंकी श्रेणीमें समझा। १८१७ ई०को ६ठी अप्रेलको अमेरिकाके युक्तराज्यने भी नाना कारणोंसे जर्मनीसे असन्तुष्ट हो अपनी सनातन नीति छोड़ दी और जर्मनीसे युद्ध करनेके लिए उतारू हो गया। अब सचमुच ही जर्मनी कुछ हताश हो गया। युक्तराज्यके साथ साथ ७ अप्रैलको पानामा और क्यूबा राज्य भी जर्मनीका शत्रु हो गया। २६ अक्टोबरको ब्रेजिलने भी जर्मनीके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। महासमरने सचमुच ही विश्वसमरका रूप धारण कर लिया। यही कारण है कि सुदूरवर्ती श्याम राज्यने भी २२

जुलाई १९१७ ई०को सभामें जर्मनोंके विरुद्ध पत्र पेश किया। काफिरोंके अफ्रीकाका स्वाधीन और सुमात्रा राज्य लिबेरिया भी अपनी क्षुद्र शक्ति से ४ अगस्त १९१७ ई०को जर्मनोंके विरुद्ध मित्रपक्षके साथ मिल गया। १४ अगस्त १९१७को चीन देशने भी जर्मनोंके विरुद्ध युद्ध घोषणा की। उसके बाद १९१८ ई०में २१ अप्रेलको गुआटेमाला ६ मईको निकारागुआ, २४ मईको कोस्टारिका १५ जुलाईको हायटी और १८ जुलाईको हण्डूरसने जर्मनोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। इस तरह समस्त पृथिवी ही जर्मनोंके विरुद्ध लड़नेके लिए तैयार हो गई थी। ऐसी दशामें जर्मनीको पराजय स्वीकार करनेके लिए बाध्य होना पड़ेगा इसमें आश्चर्य ही क्या था?

जर्मनीके पराजय स्वीकार करने पर मित्रशक्तियोंने उससे वर्सेलिसमें सन्धिपत्र स्वीकार करा लिया। जर्मनीकी अन्यान्य असमताओंका जिस तरह नाश किया गया, वह सब प्रारम्भमें ही कह चुके हैं।

इसके बाद जर्मनीमें एक अन्तर्विप्लव उपस्थित हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि कैसरको जर्मनीसे भाग जाना पड़ा और वहां गणतन्त्र घोषित हुआ।

फरासीसियोंको बहुत दिनोंसे जर्मनी पर बदला लेनेकी जो मौका पड़ती थी उसने युद्धकी क्षतिपूर्तिके बहानेसे रूढ़ प्रदेश पर कब्जा कर लिया।

जर्मनका साहित्य—यूरोपकी अन्यान्य जातियोंके साहित्यके विकासमें जैसा क्रमोन्नतिका भाव परिलक्षित होता है, जर्मन साहित्यमें वैसा देखनेमें नहीं आता। जर्मन साहित्य कभी तो उन्नतिके शिखर पर चढ़ गया है और कभी अवनतिकी चरम सीमामें पतित हुआ है। इसका कारण जर्मनीके इतिहास पढ़नेसे मालूम हो जाता है। उन्नीसवीं शताब्दीके पहले जर्मनीमें जातीय एकता का भाव भी परिस्फुट नहीं हुआ था। यही कारण है कि फरासीसियों और इटालियनोंके लिए जर्मन पर आक्रमण या अधिकार करना विशेष कठिन न था। इस तरह जर्मनी प्रायः इटली और फरासीसी साहित्यके अनुकरणमें आता था किन्तु जर्मनकी साहित्य प्रतिभा कभी भी अनुकरणके स्रोतमें बही नहीं है। युग युगमें उसने विदेशीय प्रभावसे अपनेको मुक्त कर आत्मस्वरूपके रक्षाकी चेष्टा की है। इस प्रकार विदेशीय साहित्यके अनुकरणसे आत्मरक्षा करनेकी सर्वदा चेष्टा करते रहनेसे जर्मनोंने अपने साहित्यकी धारावाहिक उन्नति नहीं कर पाई। कभी किसी युगमें ऐसा भी हुआ है कि अपनी भाव सम्पद् खोनेके कारण जर्मनोंने अपने प्रतिवासियोंके साहित्यका अनुकरण किया, किन्तु जब फिर उनके साहित्यकी उन्नति प्रारम्भ हुई तभी उस विदेशी प्रभाव को दूर कर दिया।

जर्मनके साहित्यको साधारणतः इन ६ भागोंमें विभक्त करते हैं।

१। पुरातन हाइ जर्मन युग—८वीं शताब्दीसे ११वीं शताब्दी तक।

२। मध्य हाइ जर्मन युग—११वीं शताब्दीके मध्य भागसे १४वीं शताब्दीके आरम्भ पर्यन्त।

३। युगसन्धिकाल—१४वीं शताब्दीके मध्यभागसे १६वीं शताब्दीके नवजागरण युग पर्यन्त।

४। नवजागरण और तत्सामयिक प्राचीन साहित्यका युग—१६वीं शताब्दीसे लेकर १८वीं शताब्दीके मध्यभाग तक।

५। आधुनिक जर्मन साहित्यकी चरम उन्नतिका युग—१८वीं शताब्दीके मध्यभागसे १८३२ ई०में गेटेकी मृत्यु तक।

६। गेटेकी मृत्युकालसे वर्तमान समय पर्यन्त।

१म युग।—जर्मन-जातिकी सब, ऐंग्लोसैक्सन आदि शाखाओंमें जिस समय साहित्यके विकासकार्यमें मन लगाया था, उस समय भी जर्मनोंके अधिवासियोंमें साहित्यचर्चा आरम्भ नहीं की थी।

जर्मन साहित्यका प्रथम परिचय हमें ईसाकी ८वीं शताब्दीसे मिलता है। हम जर्मनके महाकाव्यमें प्राप्य गीति या Saga का प्रमाण देख कर, उसके पहले भी जर्मन साहित्य था इस बातका अनुमान कर सकते हैं। उन Saga गीतोंकी उत्पत्ति ईसाकी ५वीं शताब्दीमें जर्मन जातिके विराट आन्दोलनके समय हुई होगी। प्रथम अवस्थाका जर्मन-साहित्य धर्म मन्दिरके साधुओं द्वारा समालोचित है। कभी कभी (जैसे Monsee Frag-

ments आदिमें) इस प्रकारकी रचनामें परिणत रस का परिचय मिलता है। परन्तु इस युगमें हाइ जर्मनकी अपेक्षा लो-जर्मन-साहित्यको ही इस जातीय प्रतिभा का सम्यक् विकाश देखते हैं।

इसी युगमें हिलडाबैण्डली गीतिका, हेलियण्ड आदि उभययुगोंके ग्रन्थ रचे गये थे। इस युगमें नाटक वा गीतिकाव्यकी उत्पत्ति नहीं हुई थी। इसके सिवा इस युगमें जर्मनोंने प्रायः लाटिन भाषामें साहित्य रचना की थी, इस कारण जर्मन-साहित्यकी उतनी उन्नति नहीं हुई जितनी कि होनी चाहिए थी।

२। मध्य हाई जर्मन युग (१०५०—१३५० ई०) ईसाकी १०वीं शताब्दीमें क्लूनिके विहार करनेमें जो तपश्चर्या और कृच्छ साधनाका भाव जागरित हुआ था, उसके द्वारा जर्मनी सबसे अधिक आक्रान्त हुआ था। परन्तु यह प्रभाव शीघ्र ही दूरीभूत हुआ था, इसके प्रमाण उस युगके जर्मन-गीतिकाव्योंमें पाये जाते हैं। ये गीतिकविताएं ईसाकी माताके विषयमें तथा अन्यान्य साधुपुरुषोंकी जीवनीके आधार पर लिखी गई थीं। किन्तु उनमें एक प्रकारको रहस्यानुभूतिका रस पाया जाता है। बादमें जब धर्म-युद्धके उपलक्षमें जर्मन वीरोंने प्राच्यदेशमें पदार्पण किया, तब इस देशकी जीवन यात्रा प्रणालीको देख कर वे मुग्ध हो गये। उनकी कल्पना नयी रागिनी गाने लगी। यही कारण है कि Alexanderlied और Herzog Ernst में इस उपन्यासका आस्वाद पाते हैं। राजसभामें काव्य और साहित्यका हमेशासे ही विकाश होता आ रहा है। जर्मनीमें भी इस नियमका व्यतिक्रम नहीं हुआ। इलहर्ट भन-वार्ग नामक एक कविने अपने Tristant नामक काव्यमें राजसभाके लिए उपयोगी विषयोंका वर्णन किया है।

इसके बाद फरासीसी कविताके भावसे जर्मन-साहित्य कुछ प्रभावान्वित हुआ। किन्तु कुछ समयके पश्चात् जर्मन-साहित्यने पुनः स्वाधीन मार्ग पर चलना शुरू कर दिया। इसके बाद जर्मनीमें मध्ययुगके गौरवमय साहित्यकी सृष्टिका काल उपस्थित हुआ। होहेनष्टफेनवंशके प्रतापी राजाओंके अधीन जर्मनजातिको जिस नवशक्तिकी प्राप्ति हुई थी, उसका विकाश साहित्यमें दिखलाई दिया। इस युगमें सुप्रसिद्ध Nibelungenlied नामक महाकाव्यकी रचना हुई। इसमें जर्मनोंकी जातीय गीतिकविता, गल्प, प्रवाद आदि सभीको स्थान दिया गया। मध्य युगके जर्मनोंका जीवन वृत्तान्त इसमें बड़ी खूबीके साथ दरसाया गया है। इसके नाटकीय भावका वर्णन और साहित्यिक सौन्दर्य को देख कर सभीको विस्मित होना पड़ता है।

इस महाकाव्यके बाद हार्टमन, ओलफ्राम और गटफ्राइड इन तीन कवियोंने जर्मन-साहित्य पर अपना प्रभाव फैलाया था। किन्तु इस युगमें जर्मन गद्य-साहित्यका उद्भव नहीं हुआ था।

३। युग सन्धिका साहित्य (१३५०—१६००)—ईसकी १४वीं शताब्दीके मध्यभागसे ही यूरोपीय समाजमें Gluvalry भावका ह्रास हो रहा था। इसलिए उस भावके उदित होनेसे जो साहित्य बन रहा था, वह धीरे धीरे विलुप्त होने लगा। अब भावशर्ण नामक साहित्यका कुछ परिचय दिया जाता है। इस युगमें हुगोभन मण्ट फोर्ट (१३५७—१४२३ ई०) और ओसवाल्ड भन ओल्केनष्टाइन कवियोंने जर्मन-साहित्य-की प्रतिभाके गौरवकी रक्षाकी थी। किन्तु गीतिकविता इस समय बिलकुल हीनप्रभ हो गई थी। पशुओंकी जीवन यात्रा सम्बन्धी नाना प्रकारकी कहानियोंको इस समयके लोग बड़ी दिलचस्पीसे पढ़ते थे।

इसी समय जर्मनीमें नाट्य साहित्यकी उत्पत्ति हुई थी। १५वीं शताब्दीके पहले धर्मविषयक किस्से कहानियोंके आधारसे छोटे छोटे नाटक रचे जाने लगे थे। परन्तु १५वीं शताब्दीमें साधारण जीवनयात्रा सम्बन्धी उत्कृष्ट नाटकादिकी भी उत्पत्ति होने लगी। Hans Rosenplut और Hans Folz ये दो साहित्यिक इसमें अग्रणी थे।

इसके बाद जर्मनीमें धर्मसंस्कारका आन्दोलन उठा, इसमें मार्टिन लूथर आदि महापुरुषोंने एक नवीन शक्ति और प्रेरणाकी सृष्टि की। प्रोटेस्टण्टोंकी दिल्लगी उड़ानेके लिए कैथलिकोंने जो हंसी मजाक की थी, उसने जर्मनीके हास्यरसके साहित्यमें स्थायी आसन ग्रहण कर लिया।

उपन्यासका आविर्भाव भी इसी समय हुआ था। Fischart Torg Wickram आदि लेखकगण जर्मन उपन्यासके सृष्टिकर्त्ता हैं।

३। अवनमन युग (१६०० १७५० ई०)—ईसाकी १७वीं शताब्दीमें लगातार धर्मयुद्धके होते रहनेसे जर्मनोंमें ज्ञानचर्चा सन्तोषजनक न हो सकी। रोमनुष साहित्यके अनुकरणमें कई एक ग्रन्थ रचे जाने पर भी उनमें जातीय हृदय प्रकट नहीं हुआ। किन्तु धर्म मन्दिरके सङ्गीतोंमें अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा की थी। इस युगमें Paul Gerhardt (१६०७-१६७६ ई०) जर्मन धर्मगानसङ्गीतोंके सर्वश्रेष्ठ लेखक प्रतीत हुए थे। प्रोटेस्टेण्ट और कैथलिक दोनों ही सम्प्रदायोंने मिश्रित साहित्य या धर्मोपन्यासका अनुवर्त्तन कर काव्यादिकी रचना की थी।

Opitz जर्मन-साहित्यके नवयुगके अग्रदूत थे। इन्होंने काव्यसम्बन्धी सभी प्रकारकी रीतियोंका अवलम्बन कर कविता बनाई थी। उनका लिखा हुआ Buch von der deutschen Poterey (१६२४ ई०) हमारे देशके "साहित्यदर्पण" के समान व्यवहृत होता था। ये प्राचीन रीतिके अनुसार कई एक वियोगान्त नाटक भी लिख गये हैं। इस शताब्दीमें उपन्यासों की भी कुछ उन्नति हुई थी।

इसके बाद भी कुछ साहित्यिक धुरन्धरोंने आविर्भूत हो कर *जर्मन साहित्यको गौरवान्वित किया था* जिनमेंसे- Samuel Pufendorf Christian Thomasius (१६५५—१७२८ ई०) Christian von Wolff Leibnitz (१६४६—१७१६ ई०) आदि लेखकोंके नाम अब भी प्रसिद्ध हैं। इनके बाद Johann Christop Gottsched ने (१७००—१७६६ ई०) जर्मन भाषाका संस्कार कर साहित्यका महत् उपकार किया है।

५। आधुनिक जर्मनीकी उन्नतिका युग (१७००-१८३२ ई०) इस युगमें जर्मन-साहित्यने भावोच्छ्वास प्रकट हो कर ऐसे विराट् वन्याप्रवाहकी सृष्टि की कि उससे स्रोतमें समग्र यूरोपके बह जानेका डर हुआ। इस युगमें साहित्यका प्रभाव इतना बढ़ा चढ़ा था और उनको पुस्तकोंकी कीमत इतनी ज्यादा थी, कि उनका संक्षिप्त सार लिखनेसे वह पर अन्याय करना होगा। अतएव यहां हम सिर्फ उन ग्रन्थकारोंके नाम लिख कर ही शान्त होते हैं। C F Gellert ने (१७१५—१७६८ ई०) कवितामें कुछ स्पष्ट उपन्यास प्रकाशित की थीं। G W Rabener (१७१४—१७७१ ई०) हास्यरसकी अवतारणा कर यशस्वी हुए थे। Schelger ने (१७१८—१७४९ ई०) नवीन प्रकारसे युग प्रवर्त्तक शैलीके आविर्भावकी सूचना दी थी। इसके बाद जर्मन-महाकाव्यके लेखक F G Klopstock का (१७२४—१८०३ ई०) आविर्भाव हुआ। लेसिङ्गने (१७२८—१७८१ ई०) जर्मन साहित्यको यूरोपमें सम्मानका आसन दिया। जर्मन जातिके कल्पनाक्षेत्रके प्रसार कार्यमें O M Wielandने (१७३३—१८१३) अधिक सहायता दी थी। J G Herder ने (१७४४—१८०३ ई०) अपनी लेखनी द्वारा चिन्ताजगत्में एक विप्लव उपस्थित कर दिया।

इसके बाद ही महाकवि Goethe (१७४९—१८३२ ई०) Romantic आन्दोलनका सूत्रपात कर समग्र विश्वमें एक नवीन भावका प्रवर्त्तन किया था।

६। आधुनिक युग—गेटेकी मृत्युके बाद जर्मन साहित्य कुछ समयके लिए होनप्रभ हो गया। किन्तु उसके बाद "नवीन जर्मनी" नामके एक नवीन सम्प्रदायका उद्भव हुआ। इनमें हाइन, गुजकाउ, हजवर्ग, मुण्ड और लाउबका नाम विशेष उल्लेखयोग्य है।

आधुनिक युगमें ज्ञानके नाना विभागोंका अनुशीलन करनेके कारण जर्मन जातिका पृथिवीमें सर्वश्रेष्ठ विद्वान्-जातिके समान सम्मान हुआ है। किन्तु बीसवीं सदीमें उनमें किसी अतिशय प्रतिभावान् साहित्यिकका आविर्भाव नहीं हुआ। युद्धके बादसे जर्मनीकी ऐसी अवस्था हो गई है कि उसे साहित्यचर्चा करनेका अवसर ही नहीं है।

जर्मन जाति—ऐतिहासिक प्रवर टासस साहबके मतसे जर्मनकी जातियोंमें अति प्राचीन कालमें कोई साधारण नाम प्रचलित न था। पीछे जब वे समस्त जातियां एक ही भाषामें कथोपकथन करने लगीं तब भी उस भाषा का नाम जर्मनो-भाषा न कह कर सिन्धुवासियोंकी

कहा करते थे। रोमन लोग इन्हें जर्मन कहते थे ; इस का कारण यह था कि उनके प्रतिवादी गर्लोंने उनका उक्त नाम रक्खा था।

रोमनोंके भ्रमणकारी ऐतिहासिक टसिटस जर्मन नामका एक इतिहास लिख गये हैं। उनका कहना है कि, जर्मन लोग स्वयं कहा करते हैं कि उनका वह नाम नया है। टसिटस इस बातको ईसाके जन्मसे पहले ही लिख गये हैं। उनका और भी कहना है कि, टुंग्रि यन (Tungrians) नामक जिस जातिने गर्लोंको भगा दिया था, पहले उन्हीं लोगोंका नाम जर्मन था। पोछे उस शाखाविशेषके नामको समग्र जर्मन जातिने अपना लिया। जर्मन नाम भीति उत्पादक है, इसीलिए विजयि योंने पहले पहल उस नामको ग्रहण किया था।

यूरोपके प्रसिद्ध विद्वान् लाथाम केम्बलने अपने "Horae Ferales" नामक ग्रन्थकी भूमिकामें लिखा है—प्रथम अवस्थामें जर्मनीको शाखाजातियोंके भिन्न भिन्न नाम थे ; यदि कोई उस समय उन्हें जर्मन कहता था, तो वे उसे समझ न पाते थे। क्योंकि वह नाम सिर्फ लाटिन भाषामें और रोमनोंमें ही प्रचलित था। इसके सिवा उनका ऐसा सिद्धान्त है कि—"जर्मन जाति कभी भी प्राचीन कालमें अपनेको जर्मन कहती थी, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। हां यह असम्भव नहीं हो सकता कि कोई नगण्य शाखा उस नामसे परिचित थी। टलेमीके कथनानुसार यह नाम 'सक्सनोंका था और अन्यान्य जातिके सहयोगमें एलब और आइडर नदीके किनारे एक छोटेसे स्थानमें तथा उपकूलके पास तीन द्वीपोंमें इनका वास था।"

उपरोक्त मतोंसे प्रमाणित होता है कि बहुत समयसे विदेशियों द्वारा वारम्वार जर्मन नामसे पुकारे जानेके बाद, उन लोगोंने जर्मन नाम ग्रहण कर लिया।

जर्य (सं० त्रि०) जराक्रान्त, वृद्ध, बुड्ढा।

जर्रा (अ० पु०) १ अणु। २ छोटे छोटे कण जो सूर्यके प्रकाशमें उड़ते हुए दीख पड़ते हैं। ३ जौके सौ भागोंमें से एक भाग। ४ बहुत छोटा टुकड़ा।

जर्रार (अ० वि०) १ बलिष्ठ, प्रबल। २ वीर, बहादुर, लड़ाका।

जर्रारी (हिं० स्त्री०) वीरता, बहादुरी, सूरमापन।

जर्राह (अ० पु०) शास्त्रचिकित्सक, वह जो चीर फाड़ का काम करता हो।

जर्राही (अ० स्त्री०) शास्त्रचिकित्सा, चीर फाड़का काम।

जर्वर (सं० पु०) एक नागपुरोहित। इन्होंने यज्ञ कर के सर्पोंको मरनेसे बचाया था।

जर्हिल (सं० पु०) अरण्यतिल, जङ्गली तिल।

जल (सं० क्लो०) जलति जीवयति लोकान्, जलति आच्छादयति, भूम्यादीन् वा जल घञर्थे क। १ वह तरल पदार्थ जो प्यास लगने पर पीने और स्नान करने आदिके काममें आता है, पानीय, पानी, आब। जलके संस्कृत पर्याय ये—हैं अप्, वा:, वारि, सलिल, कमल, पय, कीलाल अमृत, जीवन, वन, भुवन, कबन्ध, उदक, पयः, पुष्कर, सर्वतोमुख, अम्भः, अर्णः, तोय, पानीय, क्षीर, नीर, अम्बु, सम्बर, मेघपुष्प, घनरस, आप, सलिल, सल, जड, कबन्ध, कपन्ध, उद, दक, नार, शम्बर, अभ्रपुष्प, घृत, पीप्पल, कुश, विष, काण्ड, सवर सर, क्षपीट, चन्द्रो- रस, मदन, कर्बुर, व्योम, सम्ब, सरस्, इरा, वाज, तामर कम्बल, स्यन्दन, सम्वस, जलपीथ, धार, ऋत, ऊर्ज, कोमल सोम। वेदोक्त पर्याय अप् शब्दमें देखो। दार्शनिक मतसे यह पञ्चभूतमेंसे एक है। जलमें रूप, द्रवत्व प्रत्यक्ष- योगित्व और गुरु रस है। इसमें चौदह गुण हैं—स्पर्श, संख्या, परिमित, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग, गुरुत्व, द्रवत्व, रूप, रस और स्नेह। जलका वर्ण शुक्ल, रस मधुर और स्पर्श शीतल है। स्नेह और द्रवत्व इसका स्वाभाविक गुण है। परमाणु- रूप जल तो नित्य है और अवयवविशिष्ट अनित्य। अनित्य जल शरीर, इन्द्रिय और विषय इन तीन भेदोंमें विभक्त है। अयोनिजको शरीर, रसग्रहणकारी रसन को इन्द्रिय और सरित्समुद्रादिके जलको विषय कहते हैं। (भाषापरि०)

शब्दतन्मात्रसे शब्दगुण आकाश, शब्द तन्मात्र सहित स्पर्श तन्मात्रसे शब्द और स्पर्श गुण वायु, शब्द और स्पर्श तन्मात्र सहित रूप तन्मात्रसे शब्द, स्पर्श और रूपगुण- विशिष्ट तेजः, शब्द, स्पर्श और रूप तन्मात्र सहित रस तन्मात्रसे शब्द स्पर्श रूप और रसगुणविशिष्ट जल उत्पन्न हुआ है। (सांख्यतत्त्वकौमुदी)

जैनमतानुसार—जल स्थावर या एकेन्द्रिय जीव है। इसे अप्कायिक भी कहते हैं।

"स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः।" (तत्त्वार्थसूत्र ५ अ०)

इसमें रूप, रस गन्ध और वर्ण ये चारों गुण मौजूद हैं। इसके एक स्पर्श इन्द्रिय और दश प्राणोंमेंसे सिर्फ इन्द्रियप्राण कायबलप्राण श्वासोच्छ्वासप्राण और आयु प्राण ये चार ही प्राण होते हैं।

वैद्यकशास्त्रानुसार जलके गुण ये हैं—आकाशसे जो जल गिरता है वह अमृततुल्य जीवनदायी, तृप्तिकर, धारक, श्रमघ्न तथा क्लान्ति क्लमा मद, मूर्च्छा तन्द्रा निद्रा और दाहको प्रशम करता है। पृथिवी पर जो जल गिरता है उसे भौम जल—कहा जा सकता है। भौमजल वर्षा ऋतुमें गुरुपाक, मधुर और मारक, शरत्‌ऋतुमें लघुपाक हेमन्तमें स्निग्ध, बलकर धातुपोषक और गुरुपाक शिशिर ऋतुमें कफ और वायुनाशक, हेमन्तकी अपेक्षा लघुपाक तथा वसन्तमें कषाय, मधुर और रूक्ष होता है। ग्रीष्मऋतुमें भौम जल पीया जा सकता है। हेमन्तकालमें सरोवर और पुष्करिणीका जल पीना चाहिये। वसन्त और ग्रीष्मऋतुमें कूपोदक और प्रस्रवण जलका सेवन करना चाहिये वर्षाऋतुमें उद्भिद् और अन्तरीक्ष जलका पीना लाभदायक है। जो नदी पश्चिमकी तरफ बहती है उसका पानी हलका जो नदी पूर्वकी ओर बहती है, उसका पानी भारी और दक्षिणको बहनेवाली नदीका पानी समगुण सम्पन्न होता है। सह्याद्रि उत्पन्न नदीका जल कुष्ठजनक विन्ध्योत्पन्न नदीका जल पाण्डुकुष्ठजनक मलयोत्पन्न नदीका जल क्रिमिरोगजनक और महेन्द्रपर्वतोत्पन्न नदीका जल श्लीपद और उदररोगजनक होता है। हिमवत्के पासकी नदीका जल पीनेसे हृद्रोग शिरोरोग श्लीपद (पैरोंका फूल जाना और गलगण्ड हो जाता है। हिमवती नदीका पानी लघुपाक और मन्दगामी नदीका पानी गुरुपाक होता है। मरुदेशकी नदियोंका जल प्रायः तिक्त और लवणरसयुक्त ईषत् कषाय, मधुर, लघु और बलकर होता है। सब तरहका भौम जल प्रातःकालमें ग्रहण करना चाहिये क्योंकि उस समय जल निर्मल और शीतल रहता है। जिस जलमें सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश पड़ता है, वह जल रूक्ष या [illegible] नहीं होता। वृष्टिका जल त्रिदोषशान्तिकर बलप्रद रसायन, मेधाजनक, रुचक, शीतल, मधुरकर और ज्वरदाह तथा विष रोगमें शान्तिकारक है। इसे पवित्र पात्रमें ग्रहण करना चाहिये। चन्द्रकान्तमणिका जल विशुद्ध और विमल, तथा मूर्च्छा, पित्त दाह, विष रोग, मुखरोग, उन्मादरोग, श्रम क्लान्ति वमनरोग और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तका नाशक है। नदीका जल वातवर्द्धक, रूक्ष अग्निकर और हलका है। सरोवरका जल पिपासा नाशक, बलकर कषाय और कटुपाक होता है। बावड़ीका पानी वात और श्लेष्माके लिए शान्तिकर, क्षारीय, कटु और पित्तवर्द्धक है। कुएंका पानी क्षार पित्तवर्द्धक, कफघ्न, अग्निदीप्तिकर और लघु है। छोटे कुएंका पानी अग्निकर, रूक्ष, मधुर किन्तु श्लेष्मकर नहीं होता। झरनेका पानी कफघ्न, अग्निकर, दीपक, हृद्य और लघु है। उद्भिज्जल मधुर, पित्तघ्न और अविदाही तथा खेत और छोटे तालाबका पानी मधुर, गुरु और दोषवर्द्धक होता है। समुद्रका जल आमिषगन्धी लवणरसयुक्त और सर्वविधदोषवर्द्धक है। तनैया (जो खेतोंके पास पास होता है) का पानी बहुदोषाकर है। जङ्गल प्रदेशका जल सर्वगुणविशिष्ट, विदाही, प्रीतिकर, दीपक, स्वादु शीतल और लघु होता है। उष्ण जल एक सेरका तीन पाव रह जानेसे वायुनाशक, आध सेर रह जाय तो पित्तनाशक और एक पाव रहनेसे कफनाशक, लघुपाक और अग्निकर होता है। शिशिर ऋतुमें पाव भाग वसन्तमें पाव बचा हुआ। शरत् वर्षा और ग्रीष्म ऋतुमें आधासेर बचा हुआ गरम पानी प्रशस्त है। दिनमें गरम किया हुआ दिनमें ही और रात्रिका गरम किया हुआ पानी रात्रिमें ही उपकारप्रद है, अन्य समयमें अनिष्टजनक है। गरम पानी सब ऋतुओंमें ही पथ्य है। यह श्वास ज्वर, कोठबद्ध कफ वायु और आम दोषनाशक तथा पाचक श्लेष्मा नाशक और वायुप्रशम कर है। रात्रिमें गरम पानी पीनेसे कोष्ठशुद्धि हो कर अजीर्ण रोग नष्ट हो जाता है। नारियलका जल स्निग्ध शीतल हृद्यप्रिय अग्निकर, वस्तिशोधक, वृष्य, तेजस्कर, पित्तघ्न, पिपासाके लिए शान्तिकर और गुरु होता है।

कोमल नारियलका पानी पित्तघ्न और भेदक, पक्के नारियल का पानी गुरुपाक, पित्तकर और कोष्ठवर्द्धक होता है। भोजनके उपरान्त आधी रात बीतने पर नारियलका जल पीना उचित नहीं। ताड़का जल गुरुपाक, पित्तघ्न, शुक्र जनक और स्तन्यवृद्धिकर है। पानीको दिन भर सूर्यकी किरणसे गरम और रात भर चन्द्रमाकी चाँदनी द्वारा शीतल करनेसे उसमें वृष्टिके जलके समान गुण आ जाते हैं। ओलोंका पानी अमृतके समान है। सुगन्धित जल तृष्णानाशक, लघु और मनोहर है। रात्रिके अन्तमें जल पीना काम, श्वास, अतीसार, ज्वर, वमन, कटिरोग, कुष्ठ, मूत्राघात, उदररोग, अर्श, श्वयथु, गल, शिरः, कर्ण, नासा और चक्षुःरोगनाशक है। आकाशमें मेघ न रहने पर रात्रिके अन्तमें नासिका द्वारा जल पान करना बुद्धिकारक, चक्षुर्हितजनक और सर्व रोग नाशक है। तुषार, मेघ, समुद्र आदि शब्द देखो।

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके मतसे—पहले जल प्राकृत जगत्के चार महाभूतोंमें गिना जाता था। किन्तु अब हाइड्रोजन और अक्सिजनके संयोगसे जलकी उत्पत्ति स्थिर की गई है। इसलिए जल एक यौगिक पदार्थ हुआ, इसमें सन्देह नहीं। जल तरल, वाष्पीय और घन इन अवस्थाओंमें देखा जाता है। यह वर्णहीन, स्वच्छ, गन्धहीन और स्वादहीन है, तथा ताप और विद्युत्का असम्पूर्ण परिचालक है। वायुमण्डलके दबावसे इसका अति सामान्य ही सङ्कुचित होता है; किसीके मतसे ४६ लाख भागका एक भाग मात्र सङ्कुचित होता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १ है। इसी १ संख्याके अनुसार ही अन्य समस्त तरल और घन द्रव्योंका आपेक्षिक गुरुत्व निर्णीत होता है। सम आयतन वायुकी अपेक्षा जल ८१५ गुना भारी है। अन्यान्य तरल पदार्थोंकी भाँति यह भी वायुकी अधिकतासे प्रसारित होता है। ४०° डिग्री फारेनहिटसे जल शीतलीभूत और ३२° डिग्रीसे अति घनीभूत हो जाता है। इस तरहके जलमें जितना उत्ताप दिया जाता है, उतना ही वह विस्फारित होता रहता है। इसके विपरीत अधिक शीतल होते रहनेसे, अन्तमें कठिन हो जाता है। जल इतनी तेजीसे कठिन आकार धारण करता है कि, उस समय लोहेकी चीज भी उसके वेगसे चकनाचूर हो जाता है। बर्फ जलकी अपेक्षा हलकी होती है। इसका घनत्व ०·८४ मात्र है, इसीलिए यह पानीमें तैरती है। यूरोपीय लोग जलको साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त करते हैं जैसे—अन्तरीक्ष जल, भौमजल और खनिज जल। ओस आदिका जल जो कि आकाशसे गिरता है, उसे अन्तरीक कहते हैं। समुद्र, नदी और जलाशय आदिका पानी भौम और खानसे निकला हुआ जल खनिज कहलाता है। जल सम्पूर्ण विशुद्धावस्थामें नहीं मिलता; उसमें लावणिक, वाष्पीय पचायमान जान्तव और उद्भिज्ज पदार्थ मिश्रित रहते हैं। इनके तारतम्यानुसार जलमें विभिन्न गुण उत्पन्न होते हैं तथा एक तरहका स्वाद और गन्ध भी होती है। मनुष्यकी घ्राणेन्द्रिय इतनी प्रबल नहीं कि जिससे वह जलकी गन्धका अनुभव कर सके; आस्वादन न पानेका भी यही कारण है। किन्तु ऊँट मरुभूमिमें बहुत दूरसे जलकी गन्धका अनुभव कर सकता है। समुद्र और खनिज जलमें लावणिक उपादान अधिक हैं, इसीलिए इन दोनोंका आपेक्षिक गुरुत्व अधिक है। किसी किसी महानदीमें भी कर्दम तथा और और पदार्थोंके अधिक जम जानेसे उसके जलका आपेक्षिक गुरुत्व बढ़ जाता है।

साधारण लोगोंका विश्वास है कि वर्षाका जल सबसे विशुद्ध होता है, किन्तु यह भी सम्पूर्ण अविमिश्र नहीं है। वायुमण्डलमें जो कुछ विभिन्न पदार्थ रहते हैं, वर्षा होते समय जलके साथ पहले ही वह गिर जाते हैं, इस तरहसे वृष्टिके जलमें भी यवक्षाराम्ल, अङ्गाराम्ल और क्लोरिन, इसके सिवा अणुके बराबर लोह, निकेल और मैङ्गानिस तथा एक प्रकारका अपूर्व जान्तव पदार्थ मिश्रित रहता है। उत्तरपश्चिमकी तरफ वायु चलनेसे वृष्टिके जलमें दीपकाम्ल (Phosphoric acid) भी दिखलाई देता है। प्रसिद्ध रासायनिक लिबिगके मतसे—सभी बरसाती पानीमें एमोनिया (नौसादर) रहता है, जो वृक्षस्थ नाइट्रोजनका मूल कारण है।

हाँ, अन्यान्य जलकी अपेक्षा वृष्टिका जल विशुद्ध अवश्य है, इसमें द्रावकशक्ति भी अधिक है, इसलिए रासायनिक परीक्षाओंसे यही जल विशेष उपयोगी

आधुनिक आग्नेयगिरिशिलामें दानेदार या अन्य आदिम शिलाखण्डमें हो कर बहनेवाले जलमें गन्धकित हाइड्रोजन, अङ्गारकाम्ल कार्बनेट् अफ् सोडा, कार्बनेट् अफ लाइम, शिकता, मुक्तगन्धकिक एसिड और सिलिसिक एसिड पाये जाते हैं, किन्तु इसमें सलफेट् अफ लाइम्, मैग्नेसियासे उत्पन्न लवण, और अक साइड अफ् आयरन् नहीं रहते। और जलीय शिला (Sedimentary rocks) में हो कर निकलनेवाले बहुतसे प्रस्रवण पास पास रहने पर भी परस्परके जलमें तारतम्य और भिन्न द्रव्यादिका संयोग देखा जाता है।

इस प्रकारसे स्तरोंकी विभिन्नताके कारण प्रस्रवणके जलके गुणोंमें न्यूनाधिकता होती है, सभी जलसे समान फल नहीं होता। प्रस्रवणके जलकी गरमीको देख कर स्वतः ही ज्ञात होता है कि, उसे औषधके काममें लानेसे फल होगा; किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। इस जलकी अपेक्षा कृत्रिम उपायोंसे जो जल गरम किया जाता है, वही अधिक उपयोगी है। उष्णप्रस्रवणमें आग्नेयगिरिकी प्रक्रियाका सम्बन्ध है। उक्त प्रक्रियाका सम्बन्ध जहां जितना प्रबल है, वहांका जल उतना ही ज्यादा गरम होता है।

सभी प्रकारके जलमें जान्तव पदार्थ रहते हैं। अणुवीक्षण द्वारा जलमें जीवित कीट और वृक्षलता इत्यादि देखे जाते हैं। ये वृक्ष और कीटादि यथासमय प्राण त्यागते हैं, जो जान्तव पदार्थमें द्रव होनेसे पड़ते सड़े पचेके रूपमें दिखलाई देते हैं। इसलिए यह पानीके साथ जीव-शरीरमें प्रविष्ट हो कर रोग उत्पन्न कर सकते हैं। प्रस्रवणके जलकी अपेक्षा नदीके जलमें ऐसे पदार्थ अधिक पाये जाते हैं। इसलिए नदीके पानीसे प्रस्रवणका पानी विशुद्ध होता है। जो प्रस्रवण वृष्टिके जलसे वर्द्धित हो कर नदी रूपमें परिणत होता है, वह यदि बालू या दानेदार पत्थरके (granite) ऊपरसे प्रवाहित हो, तो उसका जल अति पवित्र होता है; इसमें प्रायः अङ्गारकाम्ल नहीं मिल पाता। परन्तु यह जल अत्यन्त निर्मल होने पर भी प्रस्रवणके जलके समान स्वादु नहीं होता। इस जलमें अम्लजान शोषण और ग्रहण करनेकी शक्ति होती है। यही कारण है कि, नदी और सागरके जलके ऊपरी हिस्सेमें यवक्षारजान जलकी अपेक्षा अम्लजानका भाग अधिक रहता है। प्रसिद्ध रासायनिक उर्वनिके मतसे-यवक्षारजान जलकी अपेक्षा समुद्र, नदी आदिके जलमें फी सदी ३४०१ भाग अक्सिजन अधिक है। ज्यादा अक्सिजनके रहनेसे ही मछली आदि जानवर गहरे पानीमें आसानीसे निःश्वास प्रश्वास ले सकते हैं तथा जलीय उद्भिज्जसमूह भी वर्द्धित होते रहते हैं।

झीलके जलके उपादान इससे भिन्न ही होते हैं। जिस झीलमें पानीके निकलनेका मार्ग है, उसका जल बहुत अंशोंमें नदीके जलके समान है, नदीकी अपेक्षा बहुत थोड़ा स्रोत बहता है, इसलिए इसमें जीव और उद्भिदोंकी वृद्धि होनेकी सम्भावना अधिक है। किन्तु जिस झीलमें पानी निकलनेका रास्ता नहीं, उसका जल अधिकांश नुनखरा और उसके उपादान भी समुद्र-जलके समान हैं। किसी किसी झीलमें तो सुहागाही भरा रहता है। आनूप (तर जमीनका जलाशय जो बहुधा खेतोंमें होता है) का जल स्थिर है, इसमें जान्तव और उद्भिज्ज पदार्थ परिपूर्ण रहते हैं। यही कारण है कि, इसका जल अधिकांश ही अस्वास्थ्यकर होता है। इसमेंसे एक प्रकारकी तीव्र गन्धयुक्त वाष्प निकलती है। इस जलके पीनेसे नाना तरहके रोग उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु इस जलमें कटु और कषाययुक्त शाक दाना आदि उत्पन्न होनेसे उसके दोष बहुत कुछ घट जाते हैं, तब वह गाय भैंस आदि जानवरोंके पीने लायक हो जाता है। ऐसा पानी यदि मनुष्यको पीना पड़े, तो वह उसमें कटु और तिक्त आस्वादयुक्त लता पत्ता आदि डाल कर पी सकता है। ऐसा करनेसे जल परिशुद्ध न होने पर भी उसके दोष बहुत कुछ दूर हो जाते हैं।

अपरिष्कृत जलको बालू और कोयलाके जरिये अथवा घाममें एक पात्रसे दूसरे पात्रमें बार बार उड़ेल कर शुद्ध किया जा सकता है।

समुद्रके जलमें बहुत ज्यादा लावणिक पदार्थ रहनेसे वह मनुष्यके निहायत अपेय है। समुद्रके जलको छान कर, फिल्टर द्वारा शोधन अथवा ताप द्वारा घनीभूत

पू॰में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८४८० है। प्राचीन खण्डहरोंमें इसको नरनाल सरकारके परगनेका सदर लिखा है। यह रुई रुईको कपड़े और रुईका बाजार है।

जलगाँव—१ बम्बई प्रान्तके पूर्व खानदेश जिलेका तालुक। यह अक्षा॰ २० ४७ तथा २१ ११´ उ॰ और देशा॰ ७५ २१ एवं ७५ ४५ पू॰में अवस्थित है। क्षेत्रफल ११८ वर्गमील है। इसमें २ नगर और ८६ ग्राम लगे हैं। लोकसंख्या प्रायः ८५१११ है। मालगुजारी कोई ९ लाख ८ हजार और सेस (१८०००) रु॰ पड़ती है। जलवायु अपेक्षाकृत स्वास्थ्यकर है।

२ बम्बई प्रान्तके पूर्व खानदेश जिलेमें जलगाँव तालुकका सदर। यह अक्षा॰ २१ १ उ॰ और देशा॰ ७५ ३४ पू॰में ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे पर पड़ता है। जनसंख्या कोई १६२५६ है। इसकी १९वीं शताब्दीमें इसका व्यापार खूब बढ़ा चढ़ा था। १८६२ ई॰को अमेरिकन युद्धके समय खानदेशमें यह रुईका बड़ा बाजार था, किन्तु लड़ाईके बाद जब रुईकी दर घट गई तब शहरको बड़ी क्षति हुई थी। यहांका प्रधान वाणिज्य-द्रव्य रुई, अलसी और तिल है। १९०१ ई॰में यहां रुईके ६ पेंच दो बिनौले निकालनेके कल चलते एक रुई गांठनेकी कल और एक कपड़े बुननेकी कल थी। ये सब कलें भाफसे चलाई जाती थीं। उनमें काम बन्द एक बरसे भी न समाये गये थे। इस कारण यह शहर बहुत दरिद्र हो गया है। २ मील दूर मेहरूण नामक तालाबसे नलमें पानी आता है। मेरे नल पक्का सड़क है। १८६४ ई॰में म्युनिसपालिटी हुई। यहां एक प्रधान जजकी अदालत, एक चिकित्सालय तथा पांच विद्यालय हैं। इनके सिवा अमेरिकन अलायन्स मीशन (American allance mission) की एक शाखा यहांमें स्थापित हुई है।

जलगाँव—मध्यप्रदेशके बरार जिलेको अकोला तहसीलके अधीन एक बड़ा ग्राम। यह अकोलेसे करीब ६ कोस उत्तर पश्चिममें है। यहां खूबसूरत बागके करीब, कुछ मनोहर उद्यान और ८० कूप हैं। यहांकी जनसंख्या करीब ३५०० होगी।

जलगाँव—मध्यप्रदेशके बड़वानी राज्यका एक प्रधान परगना। इसका रकबा ६२७ वर्गमील है। इस परगनेमें मतिया और मिसल नामक दो बड़े ग्राम हैं।

जलगार—दाक्षिणात्यवासी एक नीच जाति। किसीका मत है कि, ये लोग मानिक जातिके हैं।

इस जातिकी संख्या बहुत थोड़ी है। धारवाड़ जिलेमें पहले ये ही नदीकी बालू धो कर सोना निकाला करते थे। शीत ऋतुमें जब कि नदी सूखी हो जाती है— ये लोग क्योंकि पर्वत पर जा कर नदी और नालोंके बालू को धो कर सोना संग्रह किया करते हैं। अन्य समयमें सुनारोंकी दूकानोंकी रेती धो कर सोनेको चूर निकाला करते हैं।

इस जातिके सभी लोग दरिद्र हैं। इस समय इनका रोजगार बिल्कुल नष्ट हो गया है। इसलिए मजदूरी का काम किये बिना इनको गुजर नहीं होता।

ये लोग कनाड़ी भाषा बोलते हैं। ये कुटीर या छोटे घरोंमें वास करते हैं। ये बकरे, कुत्ते और मुर्गे पालते हैं। बाजरा और गेहूं इनका दैनिक आहार है। मद्य मांस खाना भी इन्हें पसंद है। इनमें पुरुषगण कानमें कुण्डल पहनते हैं औरतोंको तो बात ही क्या? ये अत्यन्त परिश्रमी, स्वल्पविच और बहुत मन्द होते हैं।

येल्लमा, दुर्गव्वा और हनुमाप्पा, ये तीनों इनका इष्टदेवता हैं। ये होली, दशहरा और दिवाली आदि हिन्दुओंके उत्सवोंको मानते हैं। देव और ब्राह्मणों पर इनकी अधिक भक्तिमत्ता है। ये सभी धार्मिक अनुष्ठान ब्राह्मणों द्वारा कराते हैं। ये दयमवा और दुर्गा नामकी ग्राम्य देवियोंकी भी पूजा करते हैं। भूत, प्रेत, डाकिनी, दैवज्ञादि आदिमें इनका विश्वास नहीं और न ये हिन्दू संस्कारका ही पालन करते हैं।

सन्तान भूमिष्ठ होते ही ये लोग ही उसकी नाड़ी काट डालते हैं। बादमें पांचवें दिन सातवां देवीकी पूजा और ज्ञातिभोज कराते हैं। धारवाड़ जिलेमें इस दिन यमनूरके पीर राजा बख्शीवरको बाल पर एक भैंस चढ़ाई जाती है।

विवाहके दिन इनके तेल चढ़ता है। इसके दूसरे

दिन ज्ञातिकुटुम्बका भोजन और तीसरे दिन वरकन्या-को घोड़े पर चढ़ा कर नगरको प्रदक्षिणा कराई जाती है। किसीकी मृत्यु होने पर ये चिता पर लकड़ी अथवा कंडे सजा कर उस पर मुर्देको रखते और दाग देते हैं। इनमें बाल्यविवाह और पुरुषोंमें बहुविवाह प्रचलित है, परन्तु विधवा-विवाह प्रचलित नहीं है। इस ज्ञातिके लोग परस्पर एकतासूत्रसे आबद्ध हैं।

जलगालन—जैन-गृहस्थोंका एक आवश्यक कर्त्तव्य-कर्म। सुप्रसिद्ध जैनपण्डित आशाधरका जलगालनके विषयमें ऐसा मत है कि, दुहरे कपड़ेसे छना हुआ जल ही गृहस्थके लिए प्रशस्त है। छना हुआ जल भी चार घड़ी वा दो मुहूर्तके बाद पीने योग्य नहीं रहता। इसके सिवा छोटे, मलिन और पुरातन वस्त्रसे छाना हुआ पानी भी असेव्य है। वस्त्र (छन्ना) ३६ अङ्गुल लम्बा और २४ अंगुल चौड़ा एवं दुहरा होना चाहिये; अर्थात् पात्रके मुंहसे वस्त्र त्रिगुण बड़ा हो। जैन आचार ग्रन्थोंमें लिखा है कि, साधारणतः जलमें कीट रहते हैं जो दीखते नहीं किन्तु दूरवीक्षण आदि यन्त्रोंकी सहायतासे दृष्टिगोचर होते हैं। जल छाननेसे वे कीट तो पृथक् हो जाते हैं, किन्तु जलकायिक एकेन्द्रिय जीव विद्यमान रहते हैं जिनका कि गृहस्थोंके त्याग नहीं होता। परन्तु मुनि वा साधु प्रासुक (निर्जीव) जल ही पीते हैं। जलको गरम करनेसे १२ घंटे तक, खूब ज्यादा उबालनेसे २४ घण्टे तक और सिर्फ लवङ्ग, मरिच, इलायची आदि डालनेसे वह जल ६ घण्टे तक प्रासुक रहता है। श्रावक वा जैन-गृहस्थ जल छान कर पान करते हैं, जो बिना छना पानी पीते हैं, उन्हें श्रावक नहीं कहा जा सकता। (जैन गृहस्थधर्म)

जलगुल्म (सं० पु०) जलस्य गुल्म इव। १ जलावर्त्त, पानीका भंवर। २ कच्छप, कछुआ। ३ जलचत्वर, वह देश जिसमें जल कम हो। ४ चतुष्कोण पुष्करिणी, चौखूंटा तालाब।

जलङ्ग (सं० पु०) जलं गच्छति जल-गम-ड ततो मुम्। महाकाल लता।

जलङ्गम (सं० पु०) जलं आशात्वाजलभूमिं गच्छति जल-गम-खच्। चाण्डाल।

जलङ्गी (खड़िया) बङ्गालके नदीया जिलेकी एक नदी। यह अक्षा० २४° ११' उ० और ८८° ४३' पू०में गङ्गासे निकल नदीया जिलेमें बहती है और जिलेके उत्तर-पश्चिम ५० मील तक बहती हुई उसे मुर्शिदाबादसे पृथक् करती है। नदीया नगरके समीप जङ्गली भागीरथीसे मिलती है। इन्हीं दोनों मिलित नदियोंका नाम हुगली है। ग्रीष्मऋतुमें जलङ्गी सूख जाती है।

जलघटी (हिं० स्त्री०) समयका ज्ञान करनेका एक यन्त्र। इसमें एक कटोरा रहता है जिसके तलेमें छेद होता है। कटोरा पानीकी नांदमें रखा जाता है। छेदके छेदसे कटोरेमें पानी जाता है और वह एक घंटेमें डूब जाता है। जब कटोरा भर जाता है तो उसमेंसे जल निकाल कर उसमें फिर रख दिया जाता है और पूर्ववत् उसमें पानी भरने लगता है। इस तरह एक एक घंटे पर वह कटोरा पानीसे भर जाता और फिर उसे पानी निकाल कर पानीकी नांदमें छोड़ दिया जाता है।

जलचत्वर (सं० क्ली०) जलेन चत्वरं। अल्पजलयुक्त देश, वह देश जिसमें जल कम हो।

जलचर (सं० पु०) जले चरति जल-चर-ट। जलचारी ग्राहादि जलजन्तु, पानीमें रहनेवाले मछली, कछुआ मगर आदि।

जलचरजीव (सं० पु०) चलेचरः जलचरः यो जीवः। मत्स्य जीवी, वह जो मछली खा कर जीविका निर्वाह करता हो।

जलचारी (सं० पु०) जले चरति चर-णिनि। १ मत्स्य, मछली। (त्रि०) २ जलचर, जो जलमें रहता हो।

जलडिम्ब (सं० पु०) जले डिम्ब इव। शम्बूक, घोंघा।

जलतण्डुलीय (सं० पु०) जलजातस्तण्डुलीय। कञ्चट शाक, चौराईकी साग।

जलतरङ्ग (सं० पु०) १ जलकी तरंग, लहर, हिलोर। २ वाद्ययन्त्रविशेष, एक प्रकारका बाजा। यह धातुकी बहुतसी छोटी बड़ी कटोरियोंकी एक क्रमसे रख कर बनाया और बजाया जाता है। बजाते समय सब कटोरियोंमें पानी भर दिया जाता है और उन पर किसी

जलको सुनरोमें आकाश कर तरह तरहके गीले जये स्वर उत्पन्न किये जाते हैं।

जलतरोई (हिं० स्त्री०) मत्स्य, मछली।

जलतापिक (सं० पु०) जलतापिन् स्वार्थे कन्। १ हेल मछली। २ चाकची मत्स्य एक मछली। ३ जल ताल हिलसा मछली।

जलतापी (सं० पु०) जलतां कटेमपथं जलमवतां प्राप्नोति, जले तपति प्रकाशते इति वा। जलताप् कि न का जल तप णिनि। ग्रील नामक मछली।

जलत्रास (सं० पु०) जलतार्थे भवति पर्याप्नोति पक्ष अच्। मत्स्यविशेष ग्रील मछली।

जलतिक्तिका (सं० स्त्री०) जलका तिक्ता तिक्तिका, जल प्रधाना तिक्तिका। शल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़।

जलत्रा (सं० स्त्री०) जलात् त्रायते त्रै-क। १ छत्र, छाता। २ जडमकुटी, घर कुटी जो एक स्थानसे उठा कर दूसरे स्थान तक ले जाई जा सके।

जलत्रास (सं० पु०) जलात् तदंश्रिम् त्रास भोऽस्य वा। जलसे भय, पानी देख कर डरजाना। कुत्ते, शृगाल आदिके काटनेके बाद जल देख कर मनुष्य भय लगता है, उसको त्रिक कहते हैं। ऐसी अवस्थामें काटे हुए मनुष्यका बचना असाध्य है। जलातङ्क देखो।

जलद (सं० पु०) जलं ददाति दा-क। १ मेघ बादल। २ मुस्तक, मोथा। ३ कर्पूर, कपूर। ४ शाकद्वीपमें अवस्थित वर्षविशेष पुराणके अनुसार शाकद्वीप के अन्तर्गत एक वर्षका नाम। (भारत ६।११।२२) (त्रि०) ६ जलदाता, जल देनेवाला। (पु०) ७ कारस्करवृक्ष, कुचलेका पेड़ ८ पोतवाहक, परोवाला।

जलदकाल (सं पु०) जलदस्य कालः, ६-तत्। वर्षा काल बरसात।

जलदक्षय (सं० पु०) जलदानां क्षयो यत्र। शरत्काल, शरद ऋतु।

जलदतिताला (हिं० पु०) मृदङ्गतालकी रागिनी विशेष एक साधारण तिताला ताल। इसकी गति साधारणसे कुछ तेज होती है। कोई कोई कहते हैं कि यह ठोका मोमें कुछ भिन्न किस होता है।

जलदर्दुर (सं० पु०) जल दर्दुर इव। जलरूप दर्दुरादि वाद्यभेद, पानी द्वारा जलमें शब्द करना।

जलदागम (सं पु०) जलदानां मेघानां आगमः आगमन यत्र। वर्षाकाल, बरसात।

जलदाशन (सं पु०) जलदैरश्नाति अश यतो अश कर्मणि ल्युट्। शालवृक्ष साखूका पेड़। प्रवाद है कि बादल साखूको पत्तियां खाते हैं, इसीसे साखूका यह नाम पड़ा है।

जलदुर्ग (सं० क्ली०) जलवेष्टितं दुर्गं। दुर्गभेद एक प्रकारका दुर्ग जो चारों ओर नदी झील आदिसे सुरक्षित हो। दुर्ग देखो।

जलदेव (सं० पु०) जलं देवो अधिष्ठात्री देवता यस्य। १ पूर्वाषाढ़ नक्षत्र। अश्लेषा देखो।

२ वितुपद युक्त नक्षत्रका नाम। जलदेवके वितु पक्षके साथ मिलने पर कामोपतिका नाम होता है।

३ जलस्थित देवता, वरुण।

जलदेवता (सं० स्त्री०) जलस्य अधिष्ठात्री देवता। जलस्थित देवता, वरुण।

जलदोदो (हिं० पु०) काईको तरहका एक पौधा। यह भी पानी पर फैलता है। इसके शरीरमें लगनेसे खुजली पैदा होती है।

जलद्रव्य (सं० क्ली०) जलस्थितं यत् द्रव्य। मुक्ता, शङ्ख प्रभृति समुद्रजात द्रव्य।

जलद्राक्षा (सं० स्त्री०) जले द्राक्षा इव। पानिकी शाक, एक प्रकारका साग।

जलद्रोणी (सं० स्त्री०) जलस्य जलसेचनार्थं द्रोणीव। १ नौकाका जल फेंकनेका पात्र विशेष, नावका पानी बाहर निकालनेका डोल। २ डोल डोलची।

जलद्वीप (सं पु०) जलप्रधानो द्वीपः। द्वीपभेद, एक द्वीप नाम।

जलढका—उत्तर बङ्गालको एक नदी यह नदी भूटानसे निकल कर भूटानराज्य और दार्जिलिङ्ग जिलेके सीमा प्रदेश होती हुई जलपाईगुड़ीमें मिलती है। फिर वहांसे पूर्वकी ओर कोचबिहार हो कर बहती हुई धरला नदीसे मिल गई है। यह नदी अपने उत्पत्तिस्थानसे कुछ दूर तक डिञु और उसके बाद सिङ्गीमारी नामसे पुकारी जाती है। पराणगु, रंगु और साञ्जु उपनदियां दाक्षि

लिङ्गमें, मूर्त्ति और टोना जनपाईगुडोमें और मुजनाई, सतङ्गा, दुदया, टोलङ्ग और टनखोया कोचविहार में प्रवाहित है। यह नदो वहुत चौड़ी है किन्तु गहरो कम है।

जलधर (सं पु०) धरतीति धरः धृ-अच् जलस्य धरः १ मेघ, बादल। २ मुस्तक मोथा। ३ समुद्र। ४ तिनिश वृक्ष, तिनसका पेड़ (त्रि०) ५ जलधारक, जल रखनेवाला।

जलधरकेदारा (सं० स्त्री०) मेघ और केदाराके योगसे उत्पन्न एक रागिणोका नाम।

जलधरमाला (सं० स्त्री०) जलधरस्य माला, ६ तत्। १ मेघश्रेणी, बादलोंकी पंक्ति। २ छन्दोविशेष, एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १२ अक्षर होते हैं। ४था और ८वां अक्षर यति होता है। ५, ६, ७ और ८वां वर्ण लघु होता है, बाकोके वर्ण दीर्घ होते हैं।

जलधरी (सं० स्त्री०) पत्थर या धातु आदिका बना हुआ अर्घा। इसमें शिवलिङ्ग स्थापित किया जाता है, जलहरी।

जलधार (सं० पु०) जलं धारयति धारि-अण्, उप०। शाकद्वीप स्थित पर्वत। (त्रि०) २ जलधारक। (स्त्री०) ३ जलसन्तति।

जलधारा (सं० स्त्री०) १ जलप्रवाह, पानीकी धारा। २ एक प्रकारकी तपस्या। इसमें कोई मनुष्य तपस्या करनेवाले पर बराबर धार बांध कर जल डालता रहता है।

जलधारा तपस्वी—एक प्रकारके संन्यासी। ये बैठनेके योग्य किसी एक निर्दिष्ट स्थानमें गड़ा खोद कर उस पर मञ्च बनाते हैं, उस मञ्चके ऊपर एक बहु छिद्रयुक्त जलका पात्र रहता है। संन्यासी इस गड्ढेके भीतर बैठ कर तपस्या करते हैं। और उनका कोई शिष्य उस पात्रमें बराबर जल भरता रहता है। इस प्रकारकी तपस्या ये रात्रिमें करते हैं। शीत ऋतुमें भी इनका यह नियम भङ्ग नहीं होता। परन्तु जब ये तपस्याभङ्ग कर उठते हैं, तब इनके शरीर पर कुछ भी नहीं रहता।

जलधारी (सं वि०) १ जलका धारण करनेवाला, जलधारक (पु०) २ मेघ, बादल।

जलधि (सं० पु०) जलानि धीयन्ते ऽस्मिन् जल-धा-कि। १ समुद्र। २ दश शङ्ख संख्या, दश संख या एक सौ लाख करोड़की एक जलधि होती है।

जलधिगा (सं० स्त्री०) जलधिं समुद्रं गच्छति गम-ड स्त्रियां टाप्। १ नदो। २ लक्ष्मी।

जलधिज (सं० पु०) जलधौ जायते जन-ड। १ चन्द्र, चांद। (त्रि०) समुद्रजात द्रव्य, समुद्रमें मिलनेवाला पदार्थ

जलधेनु (सं० स्त्री०) जलकल्पिता धेनुः। वह धेनु या गाय जो दानके लिए कल्पित की गई हो। वराहपुराणमें दानका विधान इस प्रकार लिखा है—पुण्यके दिन यथाविधिसंयतचित्त हो कर जो जलधेनु दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है और उसे अक्षय स्वर्गको प्राप्ति होती हैं। भूभागको गोमय द्वारा परिमार्जन कर चर्म कल्पना करो। उसके बीचमें एक कुम्भ रख कर उसे जलसे परिपूर्ण करो और उसमें चन्दन, अगुरु आदि गन्धद्रव्य डाल कर उसमें धेनुको कल्पना करो। अनन्तर और एक घृत-पूर्ण कुम्भमें घीको दूर्वा पुष्पमाला आदिसे भूषित कर उसमें वत्सको कल्पना करो। उस घड़े पर पञ्चरत्न निक्षेप कर मांसो, उशीर, कुष्ठ, शैलेय, बालुका, आंवला और सरसों निक्षेप करो। इसी तरह एकमें घृत, एकमें दधि, एकमें मधु और एकमें शर्करा भर कर रखें पीछे उनमें सुवर्ण द्वारा मुख और चक्षु, कृष्णागुरु द्वारा शृङ्ग, प्रशस्त पत्र द्वारा कर्ण, मुक्तादल द्वारा चक्षु, ताम्र द्वारा पृष्ठ, कांस्य द्वारा रोम, सूत्र द्वारा पुच्छ, शुक्ति द्वारा दन्त शर्करा द्वारा जिह्वा, नवनीत द्वारा स्तन और इक्षुद्वारा पैरोंकी कल्पना कर गन्धपुष्प द्वारा शोभित करो इसके बाद उन्हें कृष्णाजिनके ऊपर स्थापन कर वस्त्र द्वारा आच्छादित करो। पीछे गन्धपुष्पसे अर्चना कर उन्हें वेदपारग ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। इस प्रकारकी जलधेनु दान करनेवाला ब्रह्महत्या, पितृहत्या, सुरापान, गुरुपत्नीगमन इत्यादि महापातकोंसे विमुक्त हो जाता है और दान लेनेवाले ब्राह्मणका भी महापातक नष्ट होता है। (वराहपुराण)

जलन (हिं० स्त्री०) १ बहुत अधिक ईर्षा। २ जलनेको पीड़ा या दुःख।

जलनकुल (सं० पु०) जलने कुल इव। जलजन्तुविशेष, ऊदविलाव। इसके पर्याय—उद्र, जलमार्जार, जलाखु,

जलभ्रम, जलविडाल नोराड्, पानीयनकुल भोर भी है।

जलना (हिं॰ क्रि॰) १ दग्ध होना, भस्म होना। २ अधिक गरमी लगनेके कारण किसी पदार्थका भाप या कोयले आदिके रूपमें हो जाना। ३ झुलसना, भौंसना। ४ बहुत अधिक डाहके कारण चिढ़ना।

जलनिधि (स॰ पु॰) जलानि निधीयन्ते ऽस्मिन् धा कि। जलानां निधिः वा। १ समुद्र। २ चारकी संख्या।

जलनिर्गम (स॰ पु॰) जलानां निर्गमः बहिर्गमनः यस्मात् सार्थे अप्। जलनि:सरणमार्ग, पानीका निकास। इसके पर्याय—भ्रम जलमार्ग और कुटमेद है।

जलनीम (हिं॰ स्त्री॰) जलाशयोंके किनारे दलदली भूमिमें उत्पन्न होनेवाली एक प्रकारकी बोनिया। इसका स्वाद कड़ुआ होता है।

जलनीलिका (सं॰ स्त्री॰) जलनीली स्वार्थे कन् स्त्रियां टाप्। शैवाल, सेवार।

जलनीली (स॰ स्त्री॰) जलं नीलयति तत् करोति णिच् ततो अच् गौरादित्वात् ङीष्। शैवाल, सेवार।

जलनेत्र (स॰ पु॰) जलमयूक जल मयूरा।

जलन्धम (स॰ पु॰) जलं धमति धा अच्। दानवभेद, एक राक्षसका नाम। २ सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न कृष्णकी एक कन्याका नाम।

जलन्धर (सं॰ पु॰) जलं ब्रह्मनेत्रच्युताश्रुजलं धरति धृ अच् ततो मुम्। १ असुरविशेष, एक असुरका नाम। एक दिन इन्द्र शिवजीके दर्शन करनेकी इच्छासे वहां गये। वहां उन्होंने एक भयानक आकृतिका मनुष्य देखा। इन्द्रने उसे देख कर पूछा—"भगवान् भूतभावन महेश्वर कहां है?" किन्तु उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इस पर इन्द्रने गुस्सेमें आ कर वज्र द्वारा उन पर प्रहार किया। इससे उस पुरुषके ललाटसे अग्नि निकल कर इन्द्रको दग्ध करनेका उपक्रम करने लगी। इन्द्रने उन्हें रुद्र समझ कर नाना प्रकारसे स्तुति कर उन्हें परितुष्ट किया। महादेवने इन्द्र पर सन्तुष्ट हो कर उस अग्निको सागरसङ्गममें निक्षेप किया। उस अग्निसे एक बालक जनमा और वह बड़े जोरसे रोने लगा। इसके रोनेसे दुनियां बहरी हो गई। इस रोदनसे अस्थिर हो कर ब्रह्मा देवों सहित समुद्रके किनारे गये और समुद्रसे पूछने लगे कि, "यह किसका पुत्र है?" समुद्रने कहा—"मेरा पुत्र है, आप ले जाइये और जातकर्मादि सम्पन्न कीजिये।" ब्रह्माकी गोदमें आते ही वह बालक उनकी दाढ़ी पकड़ कर खींचने लगा जिसकी पीड़ासे ब्रह्माकी आंखोंसे आंसू टपकने लगे। ब्रह्माने उस बालकका जलन्धर नाम रख कर इस प्रकार वर दिया—"यह बालक सर्वशास्त्रविद् और रुद्रके सिवा सर्वभूतोंका अवध्य होगा।" इसके बाद यह ब्रह्माके द्वारा असुर राज्यमें अभिषिक्त हुए। इन्होंने कालनेमि सुता वृन्दाके साथ विवाह किया। इसके उपरान्त इन्होंने इन्द्रको परास्त कर अमरावती पर अधिकार कर लिया। इन्द्रने राज्यच्युत हो कर महादेवकी शरण ली। शिव इन्द्रको पक्ष ले कर इनसे लड़ने लगे। वृन्दाने पतिकी रक्षाके लिए विष्णुकी पूजा आरम्भ कर दी। किन्तु जलन्धरके रूपसे वृन्दाके पास पहुंचे, जिससे वृन्दाने पतिको आया जान विष्णुकी पूजा बिना पूर्ण किये ही छोड़ दी इससे जलन्धरकी मृत्यु हुई। वृन्दा विष्णु के इस कपटको जान कर शाप देनेको उद्यत हुई। विष्णुने उन्हें अनेक सान्त्वना दे कर कहा—"तुम सहमता होओ। तुम्हारी भस्मसे तुलसी, धात्री, पलाश और अश्वत्थ ये चार वृक्ष उत्पन्न होंगे।" (पद्मपुराण)

२ एक ऋषिका नाम। ३ योगाङ्ग बन्धभेद, योगका एक बन्ध। (काशीखं॰ ४१ अ॰)

जलपक्षी (स॰ पु॰) जलाश्रित पक्षी। जलचर पक्षी, जलके आसपास रहनेवाली चिड़िया।

जलपति (सं॰ पु॰) जलस्य पतिः ६-तत्। १ वरुणने काशी तीर्थमें आ शिवमूर्ति स्थापन कर पन्द्रह हजार वर्ष शिवकी आराधना की। शिवने सन्तुष्ट हो कर उनसे कहा—"मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हुआ हूं, तुम वर मांगो।" वरुणने कहा—"यदि मुझ पर सन्तुष्ट हो हुए हैं, तो मुझे जलाधिपति बना दीजिये।" इस पर शिवने "आजसे तुम समस्त जलके अधिपति हुए" इतना कह कर प्रस्थान किया। (काशीख॰ १० अ॰) २ समुद्र। ३ पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

जलपथ (स॰ पु॰) जलमेव पन्था-अच्। १ जलमार्ग, जल बहनेका रास्ता। जलस्य पन्थाः ६ तत्। २ प्रणाली, नाली।

जलपाई—एक प्रकारका वृक्ष। भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र ही यह पेड़ उपजता है। इसे कनाड़ोमें पेरिकट और सिंहलमें वेरलू कहते हैं। इसके फलमें गूदा बहुत होता है और उसकी तरकारी बना कर खाई जाती है। यह रुद्राक्षके पेड़से छोड़ा, पर उससे मिलता जुलता होता है। आसामके लोग इसके फलको खूब पसन्द करते हैं।

जलपाईगुड़ी—१ बङ्गाल प्रान्तका एक जिला। यह अक्षा० २६´ तथा २७´ उ० और देशा० ८८° २०´ एवं ८९° ५३´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल २९३२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें दार्जिलिङ्ग एवं भूटान राज्य, दक्षिणमें दिनाजपुर, रङ्गपुर तथा कोचविहार, पश्चिममें दिनाजपुर, पुरनिया एवं दार्जिलिङ्ग और पूर्वमें सङ्कोस नदी है। भूटानकी ओर पर्वतके पाददेशमें प्राकृतिक दृश्य अतीव मनोहर है। कई नदियां पहाड़से निकल करके आयी हैं। यहां तांबा पाया जाता है। जङ्गली हाथी, भैंसे, गैंड, चीते, सूअर, भालू और हरिण बहुत हैं। सरकारकी तर्फसे कुछ हाथी पकड़े जाते हैं।

यहां मलेरिया, फोड़ा, यकृत् और उदारामय ये रोग प्रधान हैं। पार्वत्य प्रदेशमें गलगण्ड रोगकी प्रबलता है। बक्साके सेनानिवासके देशीय सैनिक सर्वदा शीतादि रोगसे आक्रान्त होते हैं। बहुतोंका अनुमान है कि, दीर्घव्यापी वर्षाकालमें ताजे फलमूलादि न मिलनेके कारण ही यह रोग होता है। फिलहाल यहां हैजाका भी प्रकोप होने लगा है।

जलपाईगुड़ी जिलेमें सब जगह अब भी लवणका व्यवहार नहीं होता। प्रायः सभी लोग एक प्रकारका क्षारजल काममें लाते हैं, जिसको वहांके लोग "छेका" कहते हैं।

इतिहास—जलपाईगुड़ीके प्राचीनतम इतिहासके विषयमें विशेष वर्णन नहीं मिलता। कालिकापुराणके पढ़नेसे ज्ञात होता है यह स्थान पूर्वकालमें कामरूप राज्यके अन्तर्गत था। यहांके जल्पीश नामक महादेवका विवरण भी कालिकापुराणमें वर्णित है।

(कालिका॰पु॰ ७७ अ॰)

जलपाईगुड़ी नाम कैसे पड़ा, यह भी मालूम नहीं हो सकता। हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यहां जल्पीके अधिष्ठाताके रूपमें प्राचीनतम शिवलिङ्ग जल्पीश नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। जल्पीश देखो।

सम्भवतः यह स्थान भगदत्त वंशीय प्रागज्योतिष राजाओंके अधिकारमें था। ईसाकी ७वीं सदीमें भी हम भगदत्तवंशीय कुमारराज भास्करवर्माको यहांके अधिपति पाते हैं, परन्तु उनके बाद इस प्रान्तका राज्य किसने किया, इसका कुछ पता नहीं चलता। सम्भव है परवर्ती कामरूप वा गौड़के राजाओंने जलपाईगुड़ीका शासन किया हो। किन्तु पहले यहां सिर्फ असभ्य लोग ही रहते थे और कभी कभी जल्पीश महादेवके दर्शनार्थ कुछ उच्च जातीय हिन्दुओंका आगमन होता था।

किसीका मत है कि, पहले यहां पृथ्वी राय नामक किसी राजाका राज्य था। कोचक जातिने आकर उनको राजधानी पर आक्रमण किया। राजाने असभ्यों के अधीन रहनेकी अपेक्षा मृत्युको श्रेय समझा और राजप्रासादके मध्यस्थित एक दीर्घिकामें कूद कर अपने प्राण गमा दिये। इस समय उक्त राजधानीका कुछ अंश बोदा और कुछ अंश वैकुण्ठपुर परगनेके अन्तर्गत है। अब चार परिखा और चार प्राचीरें निदर्शन मात्र हैं। प्रथम परिखाकी प्राचीर मिट्टी की है, उसकी लम्बाई करीब ७००० गज और चौडाई ४००० गज है। जगह जगह टूटी हुई ईंटें भी दीख पड़ती हैं। बहुतोंका अनुमान है कि ये ईंटें देव-मन्दिरादिका ही भग्नावशेष है।

इसके सिवा संन्यासीकाटा नामक तालुकमें भी कुछ भग्न मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंके सम्बन्धमें प्रवाद है कि, वर्तमान रायकतवंशके आदिपुरुष शिशुदेव वा शिवकुमारने यहां दो किलोंका बनवाना शुरू किया। किलेकी नीव खोदनेके समय जमीनसे एक संन्यासी निकले। संन्यासी समाधिस्थ थे। खोदनेवालेने विना जाने उनके शरीर पर अस्त्राघात किया था। परन्तु ध्यान भङ्ग होने संन्यासीने उनने कुछ न कहा, कहने लगे कि "मुझे पुनः जमीनमें गाड़ दो" सबने उनका आदेश पालन किया। शिशुदेवने वहां एक मन्दिर बनवा दिया। तबसे उस स्थानका नाम 'संन्यासी काटा' पड़ गया।

कोचविहारके यथार्थ इतिहासके साथ ही जलपाईगुड़ीके यथार्थ इतिहासका प्रारम्भ होता है।

वर्तमान कोचबिहार-राजवंशके आदिपुरुष विश्व सिंहके शिशु नामक एक भ्राता थे। (कोचबिहार देखो।) विश्वसिंहके कामरूपमें राज्य-सिंहासन पर अभिषिक्त होने पर उनके ज्येष्ठ सहोदर शिशुने उनके मस्तक पर राजछत्र धारण किया था और "रायकत" * उपाधि प्राप्त की थी। ये ही शिशुसिंह वर्तमान जलपाईगुड़ीके राजवंशके आदिपुरुष थे। शिशु विश्वके मन्त्री थे और प्रधान सैन्याध्यक्षका भी कार्य करते थे। उस समय शिशुके बाहुबलसे ही कामरूप राज्यका विस्तार हुआ था। वे भूटानके देवराजको परास्त कर गौड़राज्य जय करने आये थे। गौड़की राजधानी पर आक्रमण न कर सकने पर भी उस समय रङ्गपुर और जलपाईगुड़ी जिलेका अधिकांश स्थान कामरूप राजाके अधिकारमें था। विश्वसिंहने ज्येष्ठ भ्राताको उक्त अधिकृत स्थान दे दिये थे। शिशुने इसी वर्तमान जलपाईगुड़ीके अन्तर्गत वैकुण्ठपुर नामक स्थानमें, राजधानी स्थापित की थी और वहीं वे रहते थे। इसी वैकुण्ठपुरके नामानुसार यह वैकुण्ठपुर परगनेका नाम हुआ है। बहुत दिनों तक जलपाईगुड़ीके राजा वैकुण्ठपुरके राजाके नामसे प्रसिद्ध थे।

शिशुदेव वैकुण्ठपुरके राजा वा रायकत कहे जाते थे, वे कोचबिहारके प्रधान मन्त्री और सेनापति भी समझे जाते थे।

शिशुदेवकी मृत्युके बाद उनके पुत्र मनोहरदेव रायकत हुए। मनोहरदेवके बाद उनके पुत्र माणिक्यदेवको और उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र विश्वदेवको रायकत पद मिला। उक्त माणिक्यदेवके तीन पुत्र थे—ज्येष्ठ विश्वदेव मध्यम महीदेव और कनिष्ठ मावतिदेव।

विश्वदेवने कोचबिहारराज लक्ष्मीनारायणके सहायतार्थ मुसल्मानोंसे युद्ध किया था। उस समय दिल्लीके सिंहासन पर सम्राट् जहांगीर अधिष्ठित थे। राजा लक्ष्मीनारायण हार कर दिल्ली गये थे और बादशाहसे उन्हें मुसल्मानोंकी अधीनता माननी पड़ी। परन्तु वैकुण्ठपुराधिप विश्वदेवने मुसल्मानोंकी अधीनता स्वीकार न की थी। उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र रत्नदेवके रायकत होनेकी बात थी; किन्तु महीदेवने भतीजेको मार कर राज्य अधिकार कर लिया।

१६२१ ई०में वीरनारायणके राज्याभिषेकके समय कुलप्रथाके अनुसार महीदेव कोच-राजसभामें आये थे। महीदेवके पूर्ववर्ती सभी रायकतोंने कोचराजके अभिषेकके समय राजछत्र धारण किया था किन्तु महीदेवने कोच राजको यथेष्ट सम्मान दिखा कर छत्र धारण न करनेमें अनिच्छा प्रकट की। इसी समयसे रायकत द्वारा छत्र धारणकी प्रथा उठ गई। मोदनारायणके राजत्वकालमें कोचबिहार राज्यमें बड़ी विशृङ्खलता हुई थी। महीदेवने उसके निवारणार्थ बहुत प्रयत्न किया था।

१६८० ई०में ८६ वर्ष राजत्व करनेके बाद महीदेवकी मृत्यु हो गई। उनके दो पुत्र थे ज्येष्ठका नाम था भुजदेव और कनिष्ठका यज्ञदेव।

पिताकी मृत्युके बाद भुजदेव रायकत हुए। इनका अपने छोटे भाई पर बड़ा स्नेह था। ज़रा ज़रासे काममें भी वे उनकी सम्मति लिया करते थे। उनके समयमें भूटानके देवराजने कोचबिहार पर आक्रमण किया था। किन्तु भुजदेवने कौशलसे भूटानकी सेनाको परास्त कर वासुदेवनारायणको कोचबिहारके सिंहासन पर बिठा दिया।

भुजदेव अपने राज्यकी उन्नतिके लिए विशेष यत्नशील थे। यद्यपि उनके पितृराज्यमें कोई निर्दिष्ट सैन्यदल न था, सिर्फ राज-प्रासादकी रक्षाके लिए कुछ सिपाही नियुक्त थे। युद्धके समय मुसल्मान और पार्वतीय असभ्योंको एकत्र किया जाता था। परन्तु भुजदेवने एक दल वेतनभोगी सेना नियत की। उनको वे युद्धशिक्षा देने लगे। कोचराज वासुदेवनारायणके भूटानियोंके डरसे राज्य छोड़ कर भाग आने पर भुजदेवने भाईके साथ जा कर भूटानियोंको परास्त किया और महेन्द्रनारायणको कोचके सिंहासन पर बिठा दिया।

कोचबिहारसे लौटनेके कुछ दिन बाद ही यज्ञदेवकी मृत्यु हो गई। प्रियतम सहोदरकी मृत्युसे भुजदेव अत्यन्त शोकाकुल हुए और कुछ दिन बीमार रह कर

* रायकत 'रायक' शब्दसे लिया गया है और इसका अर्थ क्या है इस बातका अभी तक निर्णय नहीं हुआ। सम्भवतः यह केवल 'राजदण्ड' शब्दका रूपान्तर मात्र है।

१६८७ ई॰में उनका शरोरान्त हो गया। उनके समयमें ही रायकत वंशकी चरम उन्नति हुई थी। किन्तु उनकी मृत्युके बाद हो मुगलोंके अत्याचारसे वैकुण्ठपुर राज्य बरबाद हो गया।

भुजदेवके कोई पुत्र नहीं था। उनके बाद यज्ञ देवके दो पुत्र विशुदेव और धर्मदेवने यथाक्रमसे रायकत पद प्राप्त किया।

१६८७ ई॰में विशुदेव रायकत हुए। इनके कुछ दिन बाद हो ढाकाके सूबेदार इब्राहिमखांके पुत्र जबरदस्तखांने वैकुण्ठपुरके दक्षिणांश पर धावा किया। विशुदेव विलासी और डरपोक थे, युद्ध विना किये जो वे कर देनेके लिए राजी हो गये। कुछ दिन बाद भूटानके राजाने भो मुगलोंके आक्रमणके डरसे पूर्व शत्रुता भूल कर वैकुण्ठपुर और कोचविहार राज्यसे मेल कर लिया। फिर तीनों शक्तियोंने मिल कर मुगलोंसे युद्ध किया। मुगलने विपक्षके सैनिकोंके सिर काट कर एक जगह बांस पर लटका दिये। तबसे उस स्थानका "मुण्डमाला" नाम पड गया। और जहां मुगल-सेना मारी गई थो, उन स्थानोंका नाम "तुर्ककटा" और 'मुगलकटा" हो गया। इस युद्धमें रायकतोंकी बहुत सेना मारी गई, जिससे वे दुर्बल हो गये। इसी समयमें मुगलोंने बोदा, पाटग्राम और पूर्वभाग पर दखल कर लिया।

१७०८ ई॰में विशुदेवकी मृत्यु हुई। उनके बाद ज्येष्ठपुत्र बालक मुकुन्ददेव राजाभिषिक्त हुए, किन्तु धर्मदेवने षडयन्त्र रच कर भतोजेको मरवा डाला और स्वयं राज्य अधिकार कर रायकत हो गये।

धर्मदेवके राजत्वकालमें मुसलमान लोग और भी अत्याचार करने लगे। इसी समय वैकुण्ठपुरका दक्षिणांश सम्पूर्णरूपसे मुसलमानोंके अधिकारमें चला गया। धर्मदेवने १७११ ई॰में जबरदस्तखांके साथ एक सन्धि कर लो और मुगलोंके अधिकृत समस्त भूभागके लिए कर देनेको राजी हो गये। १७२४ ई॰में धर्मदेवकी मृत्यु होने पर उनके ज्येष्ठपुत्र भूपदेव रायकत हुए। कुछ दिन बाद हो उनके साथ भूटानके देवराजका झगड़ा हो गया।

१७३६ ई॰में भूपदेवकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्रके ही रायकत होनेकी बात थी, किन्तु पिताकी मृत्युके अव्यवहित काल पश्चात् उनका जन्म हुआ था; इसलिए राजपरिवारने भूपदेवके मध्यम सहोदर विक्रमदेवको रायकत बनाया। इनके समयमें भी भूटानियोंने बहुतसा स्थान अधिकार कर लिया और अत्याचार करते रहे। १७५८ ई॰में विक्रमदेवकी मृत्यु हो गई। मरते समय वे एक पुत्र छोड गये थे। इनके साथ रायकतोंकी स्वाधीनता लुप्त हो गई। पूर्ववर्ती रायकतने नाम मात्रके लिए मुसलमानोंको अधोनता स्वीकार की थो राज्य सम्बन्धी सभी बातोंमें उनको सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त थी। किन्तु इष्ट इण्डिया कम्पनीके दिल्लीश्वरसे बङ्गालकी दीवानी प्राप्त करनेके बाद वैकुण्ठपुरके राजा भी वृटिश गवर्मेण्टके अधीन हो गये।

विक्रमदेवके बाद उनके छोटे भाई दर्पदेव रायकत हुए। इनके समयमें राज्यके उत्तरांश पर देवराज और दक्षिणांश पर महम्मद अलीने आक्रमण किया। राज्यकी रक्षाके लिए दर्पसे बहुत लड़े, पर अन्तमें वे मुसलमानोंसे परास्त हो बन्दो हो गये। पीछे अधिक कर देनेको स्वीकारता दे मुक्त हुए। इसके बाद ही वे सैन्य संस्कारमें प्रवृत्त हुए। देवराजने भी उनसे सन्धि कर लो और उन्हें पूर्वाधिकृत स्थान लौटा दिया। प्रवाद है कि, देवराजने दर्पराजको सहायतासे कोचविहार पर आक्रमण किया था। १७७३ ई॰में कोचविहारके नाजिरदेवने देवराज और इष्टइण्डिया कम्पनीसे सन्धि कर लो। उसके अनुसार देवराजने कोचविहार छोड दिया, किन्तु दर्पदेव रायकत उस गड़बड़के मूलकारण थे, इसलिए तबसे सिर्फ जमींदार गिने जाने लगे। कोचविहारके राजकार्यमें हस्तक्षेप करनेका उनको अधिकार न रहा। सन्धिके बाद हो देवराजके साथ दर्पदेवका झगड़ा हो गया। देवराजको सन्तुष्ट करनेके लिए इष्ट इण्डिया कम्पनीने वैकुण्ठपुरको बहुतसी जगह उन्हें दे दी। इससे दर्पदेव अत्यन्त असन्तुष्ट हो गये, उन्होंने युद्ध कर भूटानियोंसे बहुतसी भूमि छीन लो। देवराजने यह बात बडे लाटसे कह दो। अंग्रेज अध्यक्षने देवराजको सन्तुष्ट करनेके लिए, उनके मांगे हुए स्थान उन्हें दे दिये। अनेक अभियोगोंके बाद

१८०० ई०में देवराजको पुनः चाईनवाश काटा और अयोध्य मिल गया। इस तरह विस्तृत बैकुण्ठपुर राज्य थोड़े थोड़े क्षुद्रायतन हो गया। इस समय रायकतोंको २८११॥) रुपया करस्वरूप देना पड़ता था, किन्तु देवराजको कुछ स्थान दे देनेके कारण राजस्व घटा कर (१८८८०॥) कर दिया गया। पीछे १८०१ ई०में (१८ ०१) निर्धारित हुआ, दूसरे वर्ष इसमेंसे भी ११६५) रु० घटा दिये गये। इसके बाद फिर गवर्मेण्टने (५११) रु० बढ़ा दिये। परन्तु इसका कुछ कारण नहीं मालूम पड़ा।

दर्पदेव सिर्फ युद्धप्रिय और राजनैतिक झगड़ोंमें ही व्यस्त थे, ऐसा नहीं। उससे पहले यहां कामरूपी ब्राह्मणोंके सिवा और किसी ब्राह्मणका वास न था। दर्पदेवने कोचबिहारसे कुछ पण्डितोंको ला कर अपने राज्यमें बसाया। जिस ग्राममें वे रहते थे उसका नाम "पण्डा पड़ा" पड़ा। उन पण्डितोंके वंशधर अब भी उस गांवमें रहते हैं।

१७९३ ई०में दर्पदेवकी मृत्यु हो गई। उनके बाद ज्येष्ठ पुत्र जयन्तदेव रायकत हुए। जयन्त बहुत ही निष्ठावान धार्मिक थे, उनका अधिकांश समय देवपूजामें व्यतीत होता था। इसी समयमें देवराजने भाधानीके पांडाकाटा आदि कई एक स्थानों पर कब्जा कर लिया। जयन्तदेवने उनके उद्धारके लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। पहले बैकुण्ठपुर नामक स्थानमें ही राजधानी थी जयन्तदेव वहांसे राजधानी उठा कर जलपाईगुड़ीमें आये। जलपाईगुड़ीमें जो राज-प्रासाद है उसके पश्चिममें करला नदी और पूर्व, दक्षिण एवं उत्तरमें परिखा है। परिखाके उत्तर और दक्षिण बाहुद्वय करला नदीमें आ मिले हैं। राजधानीको देखनेसे यही कहना पड़ता है कि यह खूब सुरक्षित है।

१८०८ ई०में जयन्तदेवकी मृत्यु हो गई। उस समय उनके पुत्र सर्वदेवकी उमर पांच वर्षकी थी। इसलिए जयन्तके भाई प्रतापदेव ही राजकार्य चलाने लगे। उनके शासनसे सभी सन्तुष्ट हुए थे। किन्तु भतीजेको मार कर निर्विघ्न राज्यसुख भोगनेकी लिप्साने उनका हृदय अधिकार कर लिए। अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिए उन्होंने अघोरोंका पूजा करना शुरू कर दिया। उनकी इच्छा थी, भतीजेको ही देवीके सामने बलि दे, किन्तु उनकी दुरभिसन्धि प्रगट हो गई। बालक कुमार सर्वदेवको गुप्तरीतिसे रङ्गपुर ले गई और वहां उसने कलक्टर साहबसे सब बात कह दी। कलक्टर साहबने शीघ्र ही प्रतापदेवको हाजिर होनेके लिये आदेश दिया। धूर्त प्रतापने कलक्टर साहबके पास पहुंच कर सब दोष अपने दीवान रामानन्द शर्माका बतलाया। रामानन्द कैद कर लिए गये।

१८२२ ई०में सर्वदेवने रायकत पद पाया। इसके कुछ दिन बाद ही प्रतापदेवने रायकत पद पानेके लिए दीवानी अदालतमें मुकदमा चलाया, पर वे हार गये। सर्वदेव बुद्धिमान् और बहुत चतुर थे। रायकत होनेके बाद जब उन्हें मालूम हुआ कि उनके पितृराज्यका अधिकांश ही देवराजने हस्तगत कर लिया है, तब उन्हें उसके उद्धारकी सूझी। उन्होंने बहुतसी सेना इकट्ठी कर १८२४ ई०में देवराजसे युद्ध ठान दिया। एक वर्षमें ही उन्होंने देवराज द्वारा अधिकृत समस्त स्थानों पर अधिकार कर लिया। देवराजने वृटिश गवर्मेण्टके समक्ष इस विषयका अभियोग उपस्थित किया। गवर्मेण्टकी बिना आज्ञाके उनके मित्रराजसे युद्ध करनेके अपराधमें सर्वदेवको ७ वर्षकी सजा हुई। अपील हुई। अपीलमें उनके लिए १ वर्षकी सजाका हुक्म हुआ। रङ्गपुरके एक पृथक् मकानमें उन्हें तीन वर्ष रहना पड़ा। मुक्ति पानेके बाद उन्होंने राजनैतिक चर्चा बिलकुल ही छोड़ दी, सर्वदा धर्मचर्चा करने लगे। इस समय उनकी सभामें बहुतसे ब्राह्मण पण्डित उपस्थित रहते थे। जयन्तदेवने जलपाईगुड़ीमें परिखा आदि खुदवाई थी किन्तु अट्टालिका दीर्घिका और मन्दिर सर्वदेवके समयमें ही बने थे।

१८३० ई०में सर्वदेवकी मृत्यु हो गई। उनके दस पुत्र थे, जिनमें मकरन्ददेव सबसे बड़े थे। सर्वदेवकी मृत्युके बाद मन्त्रियोंने षड्यन्त्र कर नाबालिग राजेन्द्रदेवको रायकत पद पर अभिषिक्त किया। कुमार मकरन्ददेव बेचारे मध्यपाद(?) पड़ गये और जमींदारी पानेके लिए उन्होंने नालिश की। मुकदमा जीत गये। १८४८

ई०में वे रायकत हुए। १८५५ ई०में इनकी मृत्यु होने पर उनके इच्छापत्रके अनुसार नारायण चन्द्रशेखर देव रायकत हुए।

१८५० ई०में इनका शासनभार कोर्ट-आफ-वार्डके अधीन हो गया और विद्याभ्यासके लिए ये कलकत्ते लाये गये। १८६२ ई०में ये स्वदेश पहुंचे, किन्तु विलासिताके दोषसे कर्जदार हो गये। थोड़े दिन बाद १८६५ ई०में इनकी मृत्यु हो गई। इनके कोई पुत्र न था, इसलिए भाई योगीन्द्रदेव रायकत हुए। इसी समय उनके काका मौलासाहब उर्फ फणीन्द्रदेवने राजा पानेके लिए मुकदमा किया, पर वे परास्त हो गये। इस मुकदमाके कारण राज्य और भी कर्जदार हो गया। नाना चिन्ताओंके कारण १८७७ ई०में इनकी मृत्यु हो गई।

मृत्युसे तीन महीने पहले उन्होंने एक लड़का गोदमें रखा था। उनका नाम था जगदिन्द्रदेव। कुछ दिनके लिए वे ही रायकत हुए। किन्तु उनके भाग्यमें राज्य सुख बदा न था। कुछ समय बाद फणीन्द्रदेव रायकत पद पर अभिषिक्त हुए। इनके समयमें राजाकी बहुत उन्नति हुई थी। इनके पुत्रादि अब भी जीवित हैं।

जलपाईगुड़ीका लोकसंख्या प्रायः ७८७३८० है। उत्तर पश्चिम चायके बाग हैं। बहुतसे कुली दूसरे स्थानोंसे आ करके बस गये हैं। लोगोंकी भाषा रङ्गपुरी या राजवंशी है कुछ लोग हिन्दी बोलते हैं। दूसरी भी कई भाषाएं प्रचलित हैं। चावल प्रधान खाद्य है। यहां तम्बाकू खूब होती है। १८७४ ई०को युरोपियोंने चायके बाग लगाये थे। मवेशी छोटे और कमजोर हैं। उनको विस्फोटका कई मेले लगा करते हैं। सरकारी जङ्गल बहुत है। खानसे निकलनेवाले द्रव्योंमें चूनेका कङ्कर प्रधान है। कोयला भी कुछ निकलता है। जिलेके पश्चिम अञ्चलमें बोराका मोटा कपड़ा बुना जाता है। रेशमी आरमादी और फोटा भी तैयार करते हैं। भूटानकी विलायती कपड़े और रेशमकी रफ्तनी होती है। चाय, तम्बाकू और पाट बाहर भेजनेके लिये ही उत्पन्न करते हैं। रेलोंकी कोई कमी नहीं। ईष्टर्न बङ्गाल ष्टेट रेलवे और बङ्गाल और दुआर्स रेलवे फैली पड़ी है। ८०७ मील सड़क है। मालगुजारी कोई ७ लाख ७३ हजार होगी।

राज्यकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला जलपाईगुड़ी और अलीपुर नामक दो उपविभागोंमें विभक्त किया गया है। पहला विभाग डिपुटी-कमिश्नर और पांच डिपुटी मजिष्ट्रेट कलेक्टरके और दूसरा युरोपियन डिपुटी मजिष्ट्रेट कलेक्टरके अधीन है। डिष्ट्रिक्ट और सेसन जज तथा दिनाजपुरके सब-जज विचारकार्य सम्पादन करते हैं। दीवानी अदालतका विचार जलपाईगुड़ीके दो मुन्सफ और अलीपुरके एक सब डिविजनल अफसरोंके अधीन है।

२ बङ्गाल प्रान्तके जलपाईगुड़ी जिलेका सब डिविजन। यह अक्षा० २६° एवं २७° उ० और देशा० ८८° २०' तथा ८८° ० पू०के मध्य पड़ता है। क्षेत्रफल १८२० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६६८०२७ है। इसमें १ नगर और ५८८ ग्राम बसे हुए हैं।

३ बङ्गाल प्रान्तके जलपाईगुड़ी जिलेमें जलपाईगुड़ी सब डिविजनका सदर। यह अक्षा० २६° ३२' उ० और देशा० ८८° ४३' पू०में अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८००८ है। १८२५ ई०को मुनिसपालिटी हुई।

जलपाटल (हिं० पु०) पद्मस्त्र, काजल।

जलपाटव (सं० पु०) हंस।

जलपान (हिं० पु०) सुबह और शामका हलका भोजन, कलेवा, नाश्ता।

जलपारावत (सं० पु०) जले पारावत इव। पक्षिविशेष. जलकपोत। इसके पर्याय कोपो और जलकपोत है।

जलपिण्ड (सं० क्लो०) जलस्य पिण्डमिव। अग्नि, आग।

जलपिप्पलिका (सं० स्त्री०) जलपिप्पली, जलपीपल।

जलपिप्पली (सं० स्त्री०) जलजाता पिप्पली। पिप्पली विशेष, जलपीपल नामको दवा। इसके पर्याय—मत्स्याक्षी, शारदी, तपवल्लरी, मत्स्यादिनी, मत्स्यगन्धा, लाङ्गली, शकुलादनी अग्निज्वाला, चित्रपर्णी, प्राणदा, तृणशीता और बहुशिखा हैं। इसके गुण कटु, तीक्ष्ण. कषाय मलशोधक, दीपका, व्रणकीटादिके दोष और रसदोषनाशक है। (भावप्र०)

जलपिप्पिका (सं० स्त्री०) मत्स्य, मछली।

जलपीपल (हिं० स्त्री०) जलपिप्पली देखो।

जलपुर (सं० पु०) जलस्य पुरः, ६-तत्। जलसमूह।

जलपुष्प (सं॰ क्लो॰) जलजातं पुष्प । १ पद्म प्रभृति जलजपुष्प, जलमें उत्पन्न होनेवाले कमल आदि फूल । २ दलदली भूमिमें होनेवाला एक प्रकारका पौधा । इस प्रकारके पौधेमें बहुत कुछ मिलता जुलता है ।

जलपूर (सं॰ पु॰) जलपूर्ण नले, पानीसे भरी हुई नदी ।

जलपृष्ठजा (सं॰ स्त्री॰) जलस्य पृष्ठे उपरि प्रदेशे जायते जन-ड-स्त्रियां टाप् । शैवाल, सेवार ।

जलप्रदान (सं॰ क्ली॰) प्रेतादिभ्यः जलस्य प्रदान । प्रेत वा पितर आदिको उदकक्रिया, तर्पण ।

जलप्रदानिक (सं॰ क्ली॰) जलप्रदान मधिकृत्य कृते ग्रंथ जलप्रदान ठन् । स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिक पर्वाध्याय ।

जलप्रपा (सं॰ स्त्री॰) जलस्य जलपानार्थं प्रपा । जलदान का स्थल, वह स्थान जहां सर्वसाधारणको पानी पिलाया जाता है, पौसर, सबील ।

जलप्रपात (सं॰ पु॰) जलपतन । नदीका स्रोत गिरिशिखरसे होकर जब प्रबलवेगसे ऊंचे स्थानसे नीचेको गिरता है, इसीको जलप्रपात कहते हैं । प्रपात शब्दमें विस्तृत विवरण देखो ।

जलप्रान्त (सं॰ पु॰) जलस्य प्रान्तः, ६ तत् । जलका समीप स्थान, जलाशयके आसपासकी जगह ।

जलप्राय (सं॰ क्ली॰) जलस्य प्रायो बाहुल्यं यत्र । जल बहुलस्थान, अनूपदेश, जहां जल अधिकतासे हो ।

जलप्रिय (सं॰ पु॰) जलं प्रियं यस्य । १ चातकपक्षी पपीहा । २ मत्स्य, मछली । ३ शूकर । ४ हिम मोचिका । (त्रि॰) ५ जो जल बहुत चाहता हो ।

जलप्लव (सं॰ पु॰) जले प्लवते प्लु-अच् । जलनकुल उद बिलाव ।

जलप्लावन (सं॰ क्ली॰) जलस्य प्लावनं ६ तत् । १ बाढ़, पानीसे किसी एक देशका डूब जाना जैसे—नदीकी बाढ़ । २ प्रलयविशेष एक प्रकारका प्रलय जिसमें सारा देश आदि समस्त हो पानीमें डूब जाते हैं ।

जगत्‌में कितने बार इस प्रकारका जलप्लावन हुआ है, इसका कोई ठीक नहीं । प्रायः सभी सभ्य जातियोंमें जलप्लावनका प्रवाद प्रचलित है । उनमेंसे हिन्दू शास्त्रोक्त वैवस्वत मनु, पारसिक शास्त्रोक्त नूह और बाइबलके शास्त्रोक्त यमसे नूहका वर्णित नौयाकी जलप्लावनसे रक्षाकी कथा सर्वजनप्रसिद्ध है ।

हमारे शतपथब्राह्मण, महाभारत तथा मत्स्य, भागवत, अग्नि आदि पौराणिक ग्रन्थोंमें जलप्लावनकी कथा वर्णित है । इनमेंसे शुक्लयजुर्वेदीय शतपथब्राह्मणका विवरण हो सबसे प्राचीन है ।

शतपथब्राह्मणमें लिखा है कि, एक दिन मनुने हाथ धोनेके जलमेंसे एक मछली पकड़ी । वह मछली बोली—"मुझे यत्न पूर्वक रक्खो । मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी ।" मनुने पूछा—"क्यों मेरी रक्षा करोगी ?" मछलीने उत्तर दिया—"जलप्लावनसे सभी जीव जन्तु बह जायेंगे, उस समय मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी ।"

इसके उपरान्त मछलीने पहले एक मिट्टीके बर्तनमें फिर सरोवरमें और उससे भी बड़ी होने पर समुद्रमें छोड़ देनेके लिए कह दिया । इसके बाद कुछ ही दिन पीछे वह मछली बड़ी हो गई और मनुको सम्बोधन कर कहने लगी—"इस वर्ष वर्षाके बीत जानेके उपरान्त महाप्लावन होगा । एक नौका बनाओ और मेरी पूजा करो । जब जल बढ़ने लगेगा, तब तुम उस पर बैठ जाना, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी ।" मछलीके कथनानुसार मनुने नाव बनाई, मछलीको समुद्रमें छोड़ दिया और उसकी पूजा करने लगे । पृथ्वीमण्डल जलसे प्लावित हो गया । मनुने मछलीके सींगसे अपनी नावको रस्सी बांध दी । नाव उत्तरगिरि (हिमालय)के ऊपरसे बहने लगी । अन्तमें उस मत्स्यराजने एक वृक्षसे नौका बांधने को कहा और खुद भी उसके साथ नीचे चली गई । मनुने उसमें नावको बांध कर चारों ओर देखा कि सभी जीव जन्तु पानीके वेगमें बह गये हैं । सिर्फ वे हो बचे हैं । प्रजाकी सृष्टिके लिए उन्होंने यज्ञ और तपस्यामें मन लगाया । पश्चात् एक स्त्री उत्पन्न हुई उसने मनुके पास आ कर कहा—"मैं आपकी कन्या हूं ।" उसके साथ मनुने सहवास किया, फिर वे प्रजाकी इच्छासे याग-यज्ञ करने लगे । इस स्त्रीसे मनुकी सन्तान की प्राप्ति हुई । यही पुत्र फिर मानव नामसे प्रसिद्ध हुआ

महाभारतमें लिखा है—मनु एक दिन नदीके किनारे तपस्या कर रहे थे, उस समय एक मछलीने आ कर

कहा—"आपदसे मेरी रक्षा करो।" मनुने पहले उसे एक स्फटिकके पात्रमें रख दिया था ; किन्तु पीछे वह मछली इतनी बड़ी हो गई कि, उसको रखनेके लिए समुद्रके सिवा कहीं जगह ही न मिली। समुद्रमें पहुंचनेके बाद उस मच्छने मनुसे कहा—"शीघ्र ही महाप्लावन होगा, एक नाव बना कर सप्तर्षि सहित तुम उसमें बैठ जाओ।" मनुने भी वैसा ही किया ; नावकी रस्सी मत्स्यके सींगोंसे बाँध दी। देखते देखते वह नाव महासमुद्रमें बह चली। चारों ओर पानी ही पानी दीखने लगा। इस तरह जब समस्त जगत् जलमें डूब गया, तब उस प्रबल तरङ्गमें मनु, सप्तर्षि और मत्स्यके सिवा और कुछ भी नजर नहीं आया। इस प्रकारसे वह मच्छ नावको लिए हुए वर्षों घूमते घामते हिमालय पर्वतकी चोटी पर पहुंचा और हंसते हंसते मनुसे कहने लगा—"इस ऊंची शिखरसे शीघ्र ही नावको बाँध दो। मैं ही प्रजापति विधाता हूं, तुम लोगोंकी रक्षाके लिए ही मैंने यह मूर्ति धारण की है। इस मनुसे ही देवासुर नरकी उत्पत्ति होगी और उससे ही स्थावर जङ्गम समुदायकी सृष्टि होगी।"

अग्नि और मत्स्यपुराणमें लिखा है—एक दिन वैवस्वत मनु कृतमाला नामक नदीमें जा कर तर्पण कर रहे थे ; इसी समय उनकी अञ्जलीमें एक छोटी मछली आ पड़ी। मछलीके कथनानुसार मनुने पहले उसे कलसमें, फिर जलाशयमें और अन्तको शरीर बढ़ने पर समुद्रमें छोड़ दिया। मछलीने समुद्रमें गिरते ही क्षणमात्रके भीतर अपना शरीर लाख योजन विस्तृत कर लिया। यह देख मनु कहने लगे—"भगवान्! आप कौन हैं? आप देव देव नारायण हैं, इसमें सन्देह नहीं। हे जनार्दन! मुझे क्यों मायाजालमें मुग्ध कर रहे हो?" इस पर मत्स्यरूपी भगवान्ने उत्तर दिया—"मैं दुष्टोंका दमन और साधुओंकी रक्षा करनेके लिए मत्स्यरूपमें अवतीर्ण हुआ हूं। आजसे सात दिनके भीतर भीतर यह निखिल जगत् समुद्रके जलसे प्लावित हो जायगा। उस समय एक नाव तुम्हारे पास आवेगी। तुम उस पर समस्त जीवोंके एक एक दम्पतीको स्थापन कर सप्तर्षिसे परिवृत हो उसीमें एक ब्राह्मी निशा अतिवाहित करना। उस समय मैं भी उपस्थित होऊंगा। तुम उस समय नौकाकी नागपाश द्वारा मेरे सींगसे बाँध देना।" यथा समय समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ी। नाव भी वहां आ पहुंची। मनुने उस पर बैठ कर एक ब्राह्मी निशा अतिवाहित की। आखिरकार एक शृङ्गवाले नियुत योजन विस्तृत काञ्चनमय एक मत्स्य भी उपस्थित हुआ। नावको उसके सींगसे बाँध मनु मत्स्यका स्तव करने लगे।"

ईसाइयोंके धर्मग्रन्थ बाईबलके मतसे—सृष्टिके १६५६ वर्ष बाद और ईसाके जन्मसे २२८३ वर्ष पहले भीषण जलप्लावन हुआ था। उस समय महागभीर प्रस्रवण का चकनाचूर हो गया था, स्वर्गके गवाक्ष खुल गये थे और ४० दिन ४० रात तक लगातार मूसलधारसे पानी बरसा। क्रमशः पानी इतना बढ़ गया कि, समस्त पर्वतों शिखरोंसे भी १५ हाथ ऊंचा हो गया। इससे इस जगत्के अधिवासी समस्त जीवोंका ही विनाश हो गया। प्ल्याटेशके अनुसार नोआ समस्त प्राणियोंके एक एक जोड़ेको ले कर एक बहुत बड़ी नाव पर चढ़ गये। अब सिर्फ नोआ और उसको नावके प्राणी ही बच रहे। १५० दिन तक यह जल ज्यों का त्यों रहा, पीछे ईश्वर ने पृथिवी पर हवा चलाई जिससे जल धीरे धीरे घटने लगा। समुद्र और प्रस्रवणका स्रोत तथा स्वर्गके गवाक्ष बन्द हो गये। वर्षा भी थम गई। नोआ २य मासके १७वें दिन नाव पर चढ़े थे। ७म मासके १७वें दिन नाव आरा-राट पर्वतकी चोटीसे जा लगी। दूसरे वर्षके पहले दिन से जल सूखने लगा। दो मास बाद पृथिवी भी सूख गई। इस प्रकारसे महाजलप्लावनसे नोआने रक्षा पाई थी।

ग्रीक, पारसी, अमेरिकाके मेक्सिको और पेरुवासी भी जलप्लावनकी कथाका वर्णन किया करते हैं। पूर्वोक्त विवरणोंमें परस्पर थोड़ा बहुत विरोध रहने पर भी, नौकामें चढ़ कर रक्षा पानेकी कथाको सभी स्वीकार करते हैं। मनु देखो।

प्रसिद्ध चीन-ज्ञानी कन्फुचिने अपने इतिहासमें लिखा है—"उस भीषण जलप्लावनके आकाशके समान ऊंचे पानीने समस्त भुवन और उच्च पर्वतोंको डूबो दिया था। चीन सम्राट् जामकी आज्ञासे वह पानी हट गया था।"

यूरोपके अनेक भूतत्त्वविद्गण कहा करते हैं कि—बाइबलमें जिस जलप्लावनकी कथा लिखी है, भूतत्त्व द्वारा

जलभीति (सं० स्त्री०) जलातङ्क रोग ।

जलभू (सं० पु०) जलस्य भूः भवंयस्मात् अपादाने क्विप् । १ मेघ, बादल । जलं भूः उत्पत्तिर्यस्य । २ कच्छट शाक, जलचौंराईका साग । ३ कर्पूर, कपूर । (स्त्री०) ३ जलकी आधारभूमि ।

जलभूषण (सं० क्ली०) वायु, हवा ।

जलभृत् (सं० पु०) जलं बिभर्ति भृ क्विप् । मेघ, बादल । २ एक प्रकारका कपूर । ३ जल रखनेका पात्र ।

जलमक्षिका (सं० स्त्री०) जलजाता मक्षिका । जलकृमि, पानीका कीडा ।

जलमण्डपिका (सं० स्त्री०) शैवाल, सेवार ।

जलमण्डल (सं० पु०) एक प्रकारकी बडी मकड़ी । इसके काटनेसे मनुष्य मर जा सकता है ।

जलमण्डूक (सं० क्ली०) जलं मण्डूकमिव । मण्डूकरव सदृश वाद्यकारक एक प्रकारका बाजा जो मेढ़कको बोली जैसा बजता है ।

जलमद्गु (सं० पु०) जलं मद्गुरिव । मत्स्यरङ्ग पक्षी, मछरंग, कौड़िल्ला ।

जलमधूक (सं० पु०) जलजातो मधूकः । मधुकवृक्ष, जल-महुआ । इसके पर्याय—मधूल्य, दीर्घपत्रक, मधुपुष्प, क्षौद्रप्रिय, पतङ्ग, कोरिष्ट गैरिकाख्य है । इसके गुण—मधुर, शीतल, गुरु, व्रण और वान्तिनाशक, शुक्र, बल कारक और रसायन है ।

जलमय (सं० वि०) जलात्मकः जल-मयट् । १ जलपूर्ण, पानीसे भरा हुआ । (पु०) २ जलमय चन्द्रादि । ३ शिवकी एक मूर्ति ।

जलमसि (सं० पु०) जलेन जलाकारेण मस्यति परिणमति मस-इन् । १ मेघ, बादल । २ कर्पूरभेद, एक प्रकारका कपूर ।

जलमहुआ (हिं० पु०) एक प्रकारका महुआ । इसके पत्ते उत्तरी भारतके महुएके पत्तोंसे बड़े होते हैं । इसमें बहुत छोटे फूल लगते हैं । जलमधूक देखो ।

जलमातृका (सं० स्त्री०) जलस्थिता मातृका । जलस्थिता मातृभेद, एक प्रकारकी देवियाँ जो जलमें रहती हैं । इनकी संख्या सात हैं—मत्स्यी, कूर्मी, वाराही, दर्दुरी, मकरी, जलुका और जन्तुका ।

"मत्स्यी कूर्मी वाराही च दर्दुरी मकरी तथा ।
जलुका जन्तुका चैव सप्तैते जलमातृकाः ।"

जलमानयन्त्र – जल मापनेका यन्त्र । (Hydrometer)

जलमानुष (सं० पु०) पशेरनामक कल्पित जलजंतु । इसकी नाभिसे ऊपरका भाग मनुष्याकारका और नीचेका मछलीका सा होता है ।

जलमार्ग (सं० पु०) जलस्य मार्गः निर्गमस्थः । १ प्रणाली, पानी बहनेकी नली । जलमेव मार्ग । जलपथ ।

जलमार्जार (सं० पु०) जलस्य मार्जारः । जलनकुल, ऊदबिलाव ।

जलमीन (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक मछली ।

जलमुच् (सं० पु०) जलं मुञ्चति मुच्-क्विप् । १ मेघ, बादल । २ कर्पूरभेद, एक प्रकारका कपूर । (वि०) ३ जलमोचनकर्त्ता, जल बरसानेवाला ।

जलमुठा (हिं० स्त्री०) वह मुलैठी जो जलाशयके तट पर पैदा होती है ।

जलमूर्त्ति (सं० पु०) जलं मूर्त्तिरस्य । शिव, महादेव ।

जलमूर्त्तिका (सं० स्त्री०) जलस्य मूर्त्तिः घनीभूताकृतिः संज्ञायां कन् ततो टाप् । करका, ओला । करका देखो ।

जलमोद (सं० पु०) जलेन जलसंयोगेन मोदयति, मुदण्यन्त-अण् । उशीर, खस ।

जलम्बल (सं० क्ली०) नदी, दरिया । २ अञ्जन, काजल ।

जलयन्त्र (सं० क्ली०) २ जलानां उत्क्षेपणार्थं यन्त्रं । १ धारायन्त्र, फौआरा । कूपसे जल निकालनेका यन्त्र, वह यंत्र जिससे कूएं आदि नीचे स्थानोंसे पानी ऊपर निकाला या उठाया जाता है । ३ कालज्ञापक घटीयन्त्रभेद, जलघड़ी । घटीयन्त्र देखो ।

जलयन्त्रगृह (सं० क्ली०) जलयन्त्रमिव कृतं गृहं । जलमध्यस्थित गृह, वह घर जिसके चारों ओर जल हो । इसके पर्याय—समुद्रगृह, जलयन्त्रनिकेतन और जलयन्त्रमन्दिर है ।

जलयन्त्रनिकेतन (सं० क्ली०) जलयन्त्रमिवकृतं निकेतनं । जलयन्त्रगृह ।

जलयन्त्रमन्दिर (सं० क्ली०) जलयन्त्रमिव कृतं मन्दिरं । जलयन्त्रगृह ।

जलवादित (सं० क्लो०) जले वादितं। जलवाद्य, एक प्रकारका बाजा जो पानी दे कर बजाया जाता है।

जलवाद्य (सं० क्लो०) जलं वाद्यमिव। जलवाद्य, पानी का बाजा।

जलवाना (हिं० क्रि०) किसी दूसरेसे जलानेका काम कराना।

जलवानीर (सं० पु०) जलजातो वानीरः। जलवेतस, जलबेंत।

जलवायस (सं० पु०) जले वायसः काक इव। मद्गु पक्षी, कौडिल्ला पक्षी।

जलवालक (सं० पु०) विन्ध्य पर्वत।

जलवास (सं० क्लो०) जलेन वासो गन्धः यस्य। १ उशीर खस। (पु०) जलं वासयति वस-णिच्-अण्। २ विष्णु-कन्द। ३ सलिल-निवास, जलमें रहना।

जलवाह (सं० पु०) जलं वहति वह-अण्। १ मेघ, बादल। (त्रि०) २ जलवाहक पानी ले जानेवाला।

जलवाहक (सं० पु०) जलवहनकारी, वह जो पानी ढोता हो।

जलवाहन (सं० पु०) जलवाहक।

जलविडाल (सं० पु०) जले विड़ाल इव। जलनकुल, ऊदबिलाव।

जलविन्दुजा (सं० स्त्री०) जलविन्दुभ्यो जायते जन्-ड-स्त्रियां टाप्। १ यावनानी शर्करा, यावनाल शर्करा नामकी दस्तावर औषध। इसे फारसीमें शीरखिश्त कहते हैं। २ मैना। (त्रि०) ३ जलविन्दुजात, जो पानीकी बूंदसे पैदा होता हो। (स्त्री०) ४ तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

जलविल्व (सं० पु०) जलप्रधानो बिल्व इव। कर्कट, केकड़ा। २ पञ्चाङ्ग, कछुवा। ३ जलचत्वर, चौखूंटा तालाब। ४ जलवल्कल।

जलविषुव (सं० क्लो०) जलप्रधानं विषुवं। तुलासङ्क्रान्ति, आश्विन विहित। (शब्दर०) सूर्य जिस दिन कन्याराशिसे तुलाराशिमें जाता है, उस दिनका नाम जलविषुव सङ्क्रान्ति है। सूर्यके सञ्चार होते समय, नक्षत्रोंकी अवस्थितिके विषयमें ज्योतिष-शास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—मुखमें १८—२२, हृदयमें २३—२६, दक्षिण हस्तमें २७।१।२, दक्षिण पादमें ६—८, वाम पादमें ९—११, वाम हस्तमें ३—५, मस्तकमें १२—१७। सञ्चार होते समय नक्षत्रोंके अवस्थानका फल—मुखसे मान, हृदयसे सुखसम्भोग, दक्षिण हस्त और दक्षिणपादसे भोग, वाम हस्त और वामपादसे त्रास तथा मस्तकसे सुख होता है। जलविषुव सङ्क्रान्तिके अशुभ होने पर उसकी शान्तिके लिए कनकधुस्तूर बीज और सर्वौषधि जलमेंसे स्नान तथा विष्णुका जप करना आवश्यक है, इससे समस्त शुभ होता है। सङ्क्रान्तिमें कोई भी पुण्य कर्म करनेसे अधिक फल होता है। सङ्क्रान्ति देखो। गृह पुष्करणी प्रतिष्ठादिके कार्य कालाशुद्धि होने पर भी जलविषुव सङ्क्रान्तिमें किये जा सकते हैं। "अयने विषुवे चैव तथा विष्णुपदी मता" प्रतिष्ठातत्त्व।

जलवीर्य (सं० पु०) भरतके एक पुत्रका नाम।

जलवृश्चिक (सं० पु०) जले वृश्चिक इव। चिङ्गटमत्स्य, झींगा मछली।

जलवेतस (सं० पु०) जलजातो वेतसः। वानीर वृक्ष, जलबेंत। इसका पर्याय--निकुञ्जक, परिव्याध और नादेयी है। इसका गुण—शीतल कुष्ठनाशक और वातवृद्धिकर है।

जलवैकृत (सं० क्लो०) विकृतस्य भावः वैकृतं जलस्य वैकृतं, ६-तत्। नदी आदिके जलमें अमङ्गलको सूचित करनेवाले विकारोंका उत्पन्न होना। वराहमिहिरके मतसे—नगरके पाससे नदियोंके सरक जाने वा नगरके अन्य कोई अशोष्य ह्रदादिके सूख जानेसे शीघ्र ही नगर शून्य हो जाता है। नदियोंमें यदि तेल, रक्त वा मांस बहता दिखाई दे; पानी यदि मैला हो जाय, वा उलटा बहने लगे, तो उसे छह मासके भीतर परचक्रके आगमनकी सूचना समझनी चाहिये। कुएंमें ज्वाला, धुआं आदिका दिखाई देना, उसके पानीका गरम होना या उसमें रोदन, गर्जन और गानेकी आवाज होना, यह सभी लोक-नाशके कारण हैं। आघातसे जलकी उत्पत्ति होने, जलके रूप, रस, गन्ध आदिका अकस्मात् बदल जाने या जलाशयके बिगड़ जानेसे महत् भय उपस्थित होता है। इस प्रकारके जलवैकृतोंके उपस्थित होने पर वारुण मन्त्र द्वारा वारुणकी पूजा,

होम और जप करनेसे उक्त दोषोंकी शान्ति होती है।
(बृहत्सं० ४६ अ०)

[illegible] (स० पु०) मत्स्य विशेष, एक प्रकारकी मछली।

जलव्यध (स० पु०) जले विध्यति व्यध-अच्। अहोलोट मत्स्य, कमोड़ या कोपा नामकी मछली।

जलव्याघ्र (स० पु०) दक्षिण सागरमें सेटलैण्ड टापूके पास होनेवाला एक प्रकारका जन्तु। यह सीलकी जातिका होता है। यह बहुत कुछ जलमार्जारसे मिलता जुलता है, किन्तु इसके शरीर परके बाल जलमार्जारसे कुछ छोटे होते हैं। चीतेकी तरह इसके शरीर पर भी दाग या धारियां होती हैं। यह बड़ा क्रूर और हिंसक पशु है।

जलव्याल (स० पु०) जलस्थितो व्यालः हिंस्र जन्तुः। १ अलगर्द सर्प, पानीमेंका सांप। २ क्रूरकर्मा जलजन्तु।

जलशय (त्रि० पु०) जले शेते शी-अच्। विष्णु।

जलशयन (स० पु०) जले क्षीरोदसलिले शेते शी-ल्युट्, जल शयन यस्य वा। विष्णु।

जलशय्यी—एक प्रकारके संन्यासी। ये लोग सूर्योदयसे लगा कर सूर्यास्त पर्यन्त शरीरको पानीमें रख कर तपस्या करते हैं। ऐसी तपस्याको जलशय्या और इसके पालक तपस्वियोंको जलशय्यी कहते हैं।

जलशय्या तपस्वी देखो।

जलशायी (स० पु०) जले शेते शी-णिनि। विष्णु।

जलशिरीष (स० पु०-स्त्री०) शिरीषभेद, छिंछिनी।

जलशुक्ति (स० स्त्री०) जलस्थिता शुक्तिः। शम्बूक, घोंघा। इसके पर्याय—वारिशुक्ति, क्षुद्रशुक्ति, क्षुद्रशुक्तिका, शम्बुका, मत्स्यशुक्ति, पुटिका और तोयशुक्तिका है। इसके गुण—कटु, स्निग्ध, दीपन, गुल्मदोष और विषदोषनाशक, रुचिकर, पाचक तथा बलदायक है।

जलशूचि (स० पु०) शृङ्गाटक, सिंघाड़ा।

जलशूक (स० स्त्री०) जले शूक सूक्ष्मावयव। शैवाल, सिवार।

जलशूकर (स० पु०) जलस्थ शूकर इव। कुम्भीर, कुमीर या नाक नामक जलजन्तु।

जलश्यामाक (स० पु) श्यामाकधान्यविशेष, एक प्रकारका धान।

जलसंस्कार (स० पु०) १ धोना, पखारना। २ मुर्देको पानीमें बहा देना। ३ स्नान करना, नहाना।

जलसन्ध (स० पु०) धृतराष्ट्रके एक पुत्र। इन्होंने सात्यकि साथ सोपच युद्ध कर तोमरके आघातसे उनकी बाईं भुजा छेद दी थी। अन्तमें सात्यकिके हाथसे ये मारे गये थे। (भारत १।११०।१२)

जलसमुद्र (स० पु०) जलमयः समुद्रः। लवणादि सात समुद्रोंमेंसे अन्तिम समुद्र।

जलसरस (स० स्त्री०) जलमिव सरः। सरोवरविशेष, एक तालाब।

जलसर्पिणी (स० स्त्री०) जले सर्पति सृप-णिनि ङीप्। जलौका, जोंक।

जलसा (अ० पु०) १ किसी उत्सवमें बहुतसे मनुष्योंका एकत्र होना जिसमें खाना, पीना, गाना, बजाना, नाच रंग और अनेक तरहके आमोद प्रमोद किये जाते हैं। २ सभा समितिका बड़ा अधिवेशन इसमें सर्व साधारण सम्मिलित होते हैं।

जलसिंह (सं० पु०) अमेरिका और एशियाके बीच कमस कटका। परीप तथा कूरायल आदि द्वीपोंके आस पास मिलनेवाला सीलकी जातिका एक प्रकारका जलजन्तु।

विशेष विवरण जलहस्ती शब्दमें देखो।

जलसिरस (हि० पु०) एक प्रकारका सिरस वृक्ष। यह जलाशयके समीप पैदा होता है। कहीं कहीं इसे छाछोन भी कहते हैं।

जलसीप (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी सीप जिसमें मोती होता है।

जलसूकर (स० पु०) १ कुम्भीर। २ जलमें सूअर।

जलसूचि (स० पु०) जले सूचिरिव अभिधानात् पुंस्त्व। १ कङ्गोट मत्स्य, कमोट या कोपा नामकी मछली। २ शृङ्गाटक, सिंघाड़ा। ३ शिशुमार, सूंस। ४ क्रोञ्च पक्षी। (स्त्री०) ५ जलौका, जोंक। ६ काक, कौआ। ७ कच्छप, कछुआ।

जलसूत (स० पु०) नहरुआ रोग।

जलसेनी (स० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

जलस्तम्भ (स० पु०) एक नैसर्गिक या दैवी घटना, भूँओ। इसमें जलीय वाष्प स्तम्भाकारमें दिखाई देता

किसीके आक्रमण करने पर भी यह थप्-थप् कर चलता रहता है, और तेलके कुप्पेके समान पेट हिलाते हुए जाते थोड़ी दूर जाकर थक जाता है। इसकी आंखें स्वभावतः नीलाई लिए सब्ज होती हैं, किन्तु किसीके आक्रमण करने पर लाल सुर्ख हो जाती हैं।

जलहस्तिनी और उसके बच्चोंकी आवाज पेचक (उल्लू) के समान है; किन्तु बड़े जलहस्तीकी आवाज़ अत्यन्त भयानक (बुलन्द) होती है इसकी सूंडके भीतरसे जब आवाज़ निकलती है, तब वह बहुत दूरसे सुनाई पड़ती है।

यह नदी, ह्रद और जलाशयोंमें रहना पसन्द करता है। यह सूर्यका उत्ताप नहीं सह सकता; इसलिए जब यह जलाशयके किनारे बैठता है, तब देहसे भीगी बालू लपेट लेता है।

ज्यादा ठण्ड या ज्यादा गरमी इनको अच्छी नहीं लगती। इसलिए ये झुण्ड बांधबांध कर शीतके प्रारम्भमें उष्णप्रधान उत्तर प्रदेशमें और ग्रीष्मके प्रारम्भमें दक्षिणकी तरफ चले जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतुके बाद ही जलहस्तिनी सन्तान प्रसव करती है। किसीके मतसे एक बारमें एक और किसीके मतसे एक बारमें दो बच्चे जनती है। इनके हालके जाये बच्चोंका वजन प्रायः एक मन होता है।

प्रसूत होनेके बाद जलहस्तिनी समुद्रके किनारे पर अपने अपने बच्चोंको बगलमें सुलाकर उन्हें दूध पिलाया करती है और जलहस्ती चारों तरफ रह कर इनकी रक्षा करते हैं। इनके बच्चे आठ दिनके अंदर दूने बढ़ जाते हैं। इसके उपरान्त नर-मादे दोनों मिल कर उन्हें तैरना सिखाते रहते हैं। दो तीन सप्ताहके बाद ये फिर बच्चोंको लेकर किनारे पर आ जाते हैं। जब तक बच्चे स्वयं अपनी रक्षा करनेको समर्थ न हो जांय, तब तक वे माके पास ही रहते हैं। २—३ वर्षमें ही वे पूर्णायतनको प्राप्त होते हैं इसी समय नर (जलहस्ती) के सूंड निकला करती है।

सूंड निकल आने पर फिर वे (बच्चे) जलहस्तीनीके पास नहीं रह पाते। सूंड निकल आने पर इनके यौवनका विकाश होता है। किन्तु निर्दिष्ट समयके सिवा ये दूसरे समयमें सङ्गम नहीं करते। सङ्गम-कालके उपस्थित होने पर नरोंमें खूब लड़ाई होती है। जो जलहस्ती अपने पराक्रमसे सबको पराजित कर देता है, वही स्त्री सहवास कर सकता है। इसीलिए बंदरियोंके समान इनमें भी १८।२० जलहस्तियोंमें एक एक वीर जलहस्ती देखा जाता है। लड़ते समय ये कभी भी अपनी जातिको जानसे नहीं मारते, जो हार जाते हैं, वे किसी निर्जन स्थानमें जा कर मनका दुःख निकाला करते हैं।

यह जन्तु स्वभावतः शान्त प्रकृतिका होता है। अपनी और बच्चोंकी रक्षा करनेके सिवाये किसी दूसरे कारणसे किसी पर आक्रमण नहीं करता। पालनेसे यह हिलते हैं और पालककी बहुत दूरसे बुलाने पर भी ये उसी समय उसके पास पहुंच जाते हैं। नाविक लोग इस प्रकारके पालतू जलहस्ती पर चढ़ कर खेला करते हैं। ये ३०।३२ वर्षतक जीवित रहते हैं।

जलहस्तीका मांस काला चरबी मिला हुआ और अजीर्णकर होता है। नाविक (मल्लाह) लोग इनके दांतोंको नमकमें गला कर बड़ी रुचिके साथ खाते हैं। इसकी चमड़ी बहुत कड़ी, काले रंगको और बिना बालोंकी होती है। इसके चमड़ेसे घोड़े और गाड़ीका साज बनता है। इसकी चरबीसे मोमबत्ती आदि अनेक चीजें बनती है, इसीलिए इसका शिकार किया जाता है।

जलभालू—जलहस्तीकी भांति समुद्रमें जलभल्लूक, जलव्याघ्र और जलसिंह आदि भी पाये जाते हैं। ये सभी एक जातिके हैं। सिर्फ मुंहकी आकृति और शरीरके परिमाणके अनुसार भिन्नता पाई जाती है। अमेरिका, कामसकट्का और क्यूलरायल आदि द्वीपोंमें जलभालू देखे जाते हैं। ये बसन्त ऋतुमें सिर्फ जलाशयके किनारे रहते हैं, यही इनके सङ्गम और गर्भधारणका समय है।

जलहस्तीकी तरह एक एक जलभालू ७०—८० स्त्रियोंका उपभोग करता है। मादा जलभालुओंमें वही नर एकमात्र कर्ता है, वह जो चाहे कर सकता है। किन्तु जब वह अपनी प्रणयिनियोंसे परित्यक्त होकर अन्य

आकाशः। जलप्रतिबिम्बयुक्त जलविशिष्ट आकाश, पानी-का भरा और पानीदार आसमान।

"जलावच्छिन्नके नीरं यत्र प्रतिबिम्बिता।
साभ्र नक्षत्र आकाशो जलाकाश उदीर्यते।" (शब्दार्थचि०)

आकाशका रूप नहीं है जिस पदार्थका रूप नहीं उसका प्रतिबिम्ब भी नहीं हो सकता। इसलिए नक्षत्र और मेघयुक्त होनेके कारण इसका जलाकाश नाम पड़ा है। आकाश देखो। मेघ और नक्षत्रयुक्त आकाश, बादल और ताराओं सहित आकाश।

जलाची (सं० स्त्री०) जलं अञ्चति व्याप्नोति अच-अच्। जलपिप्पली, जलपीपल।

जलाखु (सं० पु०) जले आखुरिव। जलनकुल, उद-बिलाव।

जलाजल (हिं० पु०) गोटे आदिकी झालर।

जलाञ्चल (सं० क्लो०) १ शैवाल, सेवार। २ पानीका नहर।

जलाञ्जन (सं० क्लो०) जलं अञ्जति व्याप्नोति अञ्ज-बाहुल-कात् अलच्। १ शैवाल, सेवार। जले अञ्जनः अन्त-प्राप्त इव। २ स्वभावतः जलनिर्गम, आपसे आप जलका बाहर होना।

जलाञ्जलि (सं० पु०) जलपूर्णा अञ्जलिः। १ जलकी अंजुली, पितरों वा प्रेतादिके उद्देश्यसे अंजुलीमें जल भर कर देना। २ तर्पण।

जलाटन (सं० पु०) जले अटति भ्रमति अट-ल्यु। कङ्क-पक्षी, बगला, बूटोमार। कंक देखो।

जलाटनी (सं० स्त्री०) जले अटति भवति अट-ल्यु, स्त्रियां ङीप्। जलौका, जोंक।

जलाण्डक (सं० क्लो०) जले अण्डरिव कायति कै-क छोटी छोटी मछलियोंका झुण्ड।

जलाण्टक (सं० पु०) जलं अपटते इतस्ततो भ्रमति अष्ठ ण्वुल्। पृषोदरादित्वात् टस्य-टः। नक्रराज, ग्राह।

जलाण्डक (सं० क्लो०) जले अण्ड मिव कायति कै-क। छोटी छोटी मछलियोंका झुंड।

जलातङ्क (सं० पु०) रोगविशेष, एक तरहकी बीमारी। (Hydrophopia) सुश्रुतमें इस रोगका जलत्रासके नामसे वर्णन किया गया है * किसी हिंस्र (पागल) पशुकी लार शरीरमें प्रवेश करने पर यह रोग होता है। इस रोगकी प्रथम दशामें पानी पीते समय गलेमें इस तरहकी वेदना और कंपकंपी होती है कि, कभी कभी श्वास तक रुक जाता है। धीरे धीरे इस रोगका प्रकोप इतना बढ़ जाता है कि, पानीकी याद आते ही इस रोग-के सारे लक्षण प्रगट होने लगते हैं। पानीको देखने या पानीका नाम सुनते ही मनमें बड़ा भयका सञ्चार होता है, इसलिए इस रोगको जलातङ्क कहते हैं। मनुष्यके शरीरमें, किसी हिंस्र पशुकी लारके बिना प्रवेश किये कभी भी यह रोग नहीं होता। प्रबल अपस्मार वायु-रोगमें भी कभी कभी जलातङ्कके लक्षण दिखाई देते हैं; किन्तु वास्तवमें यह जलातङ्क नहीं है। अन्यान्य पशु नैसर्गिक कारणोंसे इस रोगसे पीड़ित होते हैं या नहीं, इसकी अभी तक निःसन्दिग्धरूपसे परीक्षा नहीं हुई है। किन्तु यह एक तरहसे निश्चित हो चुका " कि कुक्कुरको अन्य किसी हिंस्र प्राणीके बिना काटे यह रोग नहीं होता। जहां तक परीक्षा की गई है; उससे जाना गया है कि, सभी प्राणी इस रोगसे आक्रान्त हो सकते हैं, पर व्याघ्र, शृगाल, कुत्ता और बिल्लीके सिवा अन्य कोई भी प्राणी इस रोगको सङ्क्रामित (फैला) नहीं कर सकता। मनुष्यको यह रोग होने पर वह अन्य प्राणियोंकी तरह दूसरेको काटनेके लिए उत्तेजित नहीं होता।

मनुष्य शरीरके किसी क्षत स्थानमें किसी हिंस्र प्राणी-की लार लग जानेसे भी इस रोगकी उत्पत्ति हो सकती है। हिंस्र पशुके काटने पर चाहे थोड़ा ही स्थान बिगाड़

* सुश्रुतने "दंष्ट्रिणा येन दुष्टेन—" इत्यादि कई एक श्लोकों-में लिखा है कि,—जो उन्मत्त पशु (शृगाल, कुक्कुर, भालू आदि) किसीको काटता है, काटे हुए व्यक्तिको यदि उस तरहका पशु पानी या और किसी वस्तुमें दीखे तो वह असाध्य दुर्लक्षण है। पानीको देख कर या पानीका नाम सुनते ही जिस रोगीको डर लगता है, उस रोगको जलत्रास कहा जा सकता है। यह भी अति दुर्लक्षण है। पूर्वोक्त उन्मत्त पशुके न काटने पर भी जिसे जलत्रास रोग होता है, वह किसी तरह भी बच नहीं सकता। सुस्थ अवस्थामें सोते या जागतेके साथ ही सहसा जलत्रास उत्पन्न होने पर भी वह रोगी नहीं जीता।

क्यों न हुआ हो—थोड़ा खासकर विषाक्त होने पर भी यह रोग पैदा हो सकता है। सभी पशुकी लार एकसी विषैली नहीं होती। किस कुत्तेकी अपेक्षा किस प्राणीकी लार कहीं अधिक विषाक्त होती है। एक कुत्तेने २१ आदमीको काटा था, जिसमेंसे एक आदमीको जलातङ्क रोग हुआ और एक व्याघ्रने १० आदमीको काटा तो १० आदमी जलातङ्क रोगसे यमराजके घर पहुंच गये।

यह रोग पशुओं पर ही अधिक आक्रमण करता है। मनुष्य बहुत थोड़े ही इस रोगसे आक्रान्त होते हैं।

शरीरके भीतर विष प्राणीकी लार प्रविष्ट होनेके बाद सभीके एक समयमें जलातङ्क रोग प्रगट नहीं होता। विष प्राणीके काटनेके उपरान्त किसीको सोलह दिनमें किसीको अठारह दिनमें और किसी किसी अठसठ दिनमें जलातङ्क रोग होता है। काटनेके अर्से बाद कब यह रोग होगा इसका कुछ निश्चय नहीं। हां, साधारणतः यह देखनेमें आता है कि २० और ३० दिनके भीतर इस रोगके लक्षण दिखाई देने लगते हैं; किन्तु कहीं कहीं १८ मास बाद भी इसका प्रकोप होते देखा गया है। कोई कोई कहते हैं कि, विष प्राणीके काटने पर यदि किसी तरहकी औषधिका प्रयोग न किया जाय तो दो वर्ष बिना बीते इसका भय दूर नहीं होता। ऐसा सुना गया है कि काटनेके उपरान्त बारह वर्ष पीछे कोई कोई व्यक्ति इस रोगसे आक्रान्त हुए हैं।

कोई विष प्राणीद्वारा दंशित होने पर वह आरोग्य लाभ कर सकता है, यह कोई असाध्य रोग नहीं है। जलातङ्कके लक्षण प्रकट होनेसे पहले क्षत-स्थान फूल कर लाल हो जाता है, और वहीं वेदना होती है। इस स्थानकी तमाम नसोंमें इस तरहका दर्द होता है कि, मानो सभी स्थान विषम क्षतमें परिणत हो गया हो। पीछे रोगीको सिरकी पीड़ा होती है उसका शरीर हमेशा अस्वस्थ रहता है, भूख नहीं लगती और किसी भी तरल पदार्थ देखनेसे घृणा और भय उत्पन्न होता है। ऐसी दशामें समझना चाहिये कि, रोगी जलातङ्कसे पीड़ित है। ये लक्षण एक बार प्रकाशित होने पर रोगीको बहुत सताते हैं। पहले पानी देखते ही उसकी सांस बन्द हो जाती है, पीछे पानीका नाम याद आनेसे या एक पात्रसे दूसरे पात्रमें पानी ढालनेका शब्द सुनने हीसे मालूम होने लगता है कि उसकी दम बन्द होती जाती है। अन्तमें ऐसा होता है कि वह पानीकी तरह चमकीले किसी भी वस्तुको देख कर मृत्यु-कालीन श्वासरोधकी यन्त्रणाका अनुभव करने लगता है। पहले सिर्फ कौरके पीने या खाते समय शिरा आक्षेप होता है धीरे धीरे वह आक्षेपिक उत्तेजनामें परिणत हो जाता है। रोगी सर्वदा अस्थिर और भयसे विह्वल रहता है उसकी आंखें चारों तरफ घूमती रहती हैं और वह बराबर अटपट बकता रहता है। रोगकी वृद्धिके साथ इसका शारीरिक आवेग (कंपकंपी) भी बढ़ता रहता है। अति मृदु शब्द और तो क्या निश्वासके शब्दसे ही उसका शिरा आक्षेप उत्तेजित हो जाता है, नाड़ीकी गति द्रुत हो जाती है, सिरपीड़ा और पसीना लालाकी मात्रा बढ़ जाती है। कंठ आक्षेपसे प्रमुख रोगीकी निश्वास-क्रिया रुक जाती है, इसलिए रोगी जो पहलेसे ही श्वासरोधका अनुभव कर रहा है उसकी मात्रा भी बढ़ जाती है। इस कष्टसे परित्राण पाने और सुखसे निश्वास ग्रहण करनेके लिए रोगी कामना प्रारम्भ करता है, तथा आक्षेप और उच्च शब्द करता है। इसी लिए लोगोंकी धारणा भी हो गई है कि रोगीको जो जानवर काटता है वह उसी जानवरकी तरह भौंकने लगता है। बड़े भारी परिश्रम करनेके उपरान्त लोग जिस तरह निद्राभिभूत हो जाते हैं, जलातङ्क रोगी भी अन्तिम बार एक घण्टे तक उसी तरह सोता है और कोई कोई रोगी सोता भी नहीं, तो वह चुपचाप पड़ा रहता है। इस नींदसे उठते ही पहलेसे कुछ मृदु भावसे उसका कम्प अथवा सारा शरीर कांपता है। इसके बाद ही वह मर जाता है।

जलातङ्क रोगसे आक्रान्त होने पर रोगी ६ दिनसे अधिक नहीं जीता, साधारणतः २४ घण्टेके भीतर ही रोगीको प्राणवायु निकल जाती है।

जलातङ्क रोगी कठिनसे कठिन पदार्थको भी सहज-में पा जाता है। सियारके द्वारा काटे हुए जलातङ्क

रोगीको पानीसे घृणा कुछ कम होती है।

जलातङ्कका यथार्थ तत्त्व अभी तक अभ्रान्त रूपसे निर्णीत नहीं हुआ है। इसलिए किस प्रकारकी औषधसे यह शान्त होता है, उसका भी कुछ निर्णय नहीं हो पाया है। साधारणतः इसके लिए जिन औषधोंका व्यवहार किया जाता है, उनमें इस व्याधिको दूर करनेकी शक्ति नहीं है। हां, उनसे कभी कभी उपसर्गोंका ह्रास अवश्य हो जाता है। अफीमका व्यवहार कर कुछ उपसर्गोंको दूर अवश्य किया जा सकता, है; किन्तु उससे जीवनकी रक्षा नहीं हो सकती। रक्तमोचण करानेसे कंप कंपी घट सकती है और हाइड्रोसाइएनिक एसिड (Hydrocyanic-acid) के व्यवहार करनेसे उपसर्ग कई दिनों तक निश्चेष्ट रहते हैं। यदि कुफल उत्पादन करनेसे पहले ही उस विषाक्त लाला (लार) को चतस्थानसे निकाल दिया जा सके, तभी इस रोगसे छुटकारा मिल सकता है, अन्यथा दैवाधीन है। चतस्थानका छेदन करना ही प्रशस्त उपाय है। विशेष सतर्कताके साथ चतस्थानके शेष अंश तकको काट देना चाहिये, क्योंकि, ज़रा भी अगर विषाक्त पदार्थ शरीरमें रह गया तो रोगीके जीवनकी अधिक आशा नहीं की जा सकती। यदि चतस्थान बहुत बड़ा हो अथवा ऐसा अङ्ग हो जिसके काटनेसे शरीरका आवश्यक अंग नष्ट होता हो, तो उसे काटना नहीं चाहिये, बल्कि उस पर नाइट्रिक एसिड (Nitric Acid) आदिकी भांतिकी किसी दाहक औषधका प्रयोग करना उचित है। अथवा जब तक किसी औषधका प्रयोग न किया जाय, तबतक उसे पूर्ण सावधानीके साथ बारबार धोते रहना चाहिये। ४ या ५ फुट ऊंचेसे ८० या १०० डिग्री गरम पानी २–३ घन्टे तक छोड़ कर चतस्थान धोया जाता है। किसी भी हिंस्र प्राणीके काटने पर जलातङ्क रोग उत्पन्न हो सकता है, किन्तु साधारणतः और अधिकांश ही कुत्तेके काटनेसे यह रोग होता है।

कुत्तेका काटा हुआ जलातङ्क-रोगी अत्यन्त उदास और कर्कशभाषी हो जाता है, घर छोड़ कर चारों तरफ दौड़ता रहता है और जिसे सामने पाता है, उसे ही काटनेकी चेष्टा करता है; परन्तु वह गन्तव्य पथको छोड़ दूसरी तरफ जाकर किसीको नहीं काटता। यह सर्वदा घास, तृण और लकड़ी चबाता रहता है। इस प्रकारका जलातङ्क-रोगी पहले जिसके साथ जैसा व्यवहार करता था, उस समय भी प्रायः वैसा ही व्यवहार करता है।

हिंस्र कुक्कुर पानीको देख कर डरता नहीं। यह पानी पीते और उसमें तैरते भी हैं। कुत्ता इस रोगसे आक्रान्त हो, जितना मृत्युके पास पहुंचता जाता है, दिनों दिन वह उतना ही भीषण होता जाता है। चारों तरफ जिसे पाता है, उसे ही काटने दौड़ता है। साथ ही मुंहसे लगातार फसकर निकालता रहता है। इस रोगसे आक्रान्त मनुष्य जितने दिन जीता है, कुत्ता भी उतने दिन जी सकता है।

कुत्तेके काटने पर कलकत्तेके आस पासके लोग गोन्दलपाड़ा और युक्तप्रान्त आदिके लोग किसौली (सिमला) इलाज कराने जाते हैं।

सुश्रुतमें कल्पस्थानके ६ठे अध्यायमें जलातङ्ककी चिकित्सा लिखी है।

जलातन (हिं० वि०) १ क्रोधी, बदमिजाज। २ ईर्षालु, डाही।

जलात्मिका (सं० स्त्री०) जलमेव आत्मा, यस्याः। १ जलौका, जोंक। २ कूप, कूआं।

जलात्यय (सं० पु०) जलस्यात्ययो यत्र, बहुव्री०। १ शरत्काल। जलानां अत्ययः, ६-तत्। जलका अपगम, जलका अलग अलग होना।

जलाधार (सं० पु०) जलानां आधारः, ६-तत्। जलाशय।

जलाधिदैवत (सं० पु० क्ली०) जलस्य अधिदैवतं अधिष्ठात्री देवता। १ वरुण। जलं आधिदैवतं यस्य। २ पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

जलाधिप (सं० पु०) जलस्य अधिपः ६-तत्। १ जलके अधिपति, वरुण।

"नाशकोदमतः स्यातु विप्रचित्तेर्जलाधिपः।" (हरिवंश २४२ अ०)

२ फलित ज्योतिषके अनुसार रवि प्रभृति ग्रह संवत्सरमें जलके अधिपति होते हैं।

जलाना (हिं० क्रि०) १ प्रज्वलित करना, दहकाना।

२ किसी पदार्थको अधिक गरमी द्वारा भाप या कोयले आदिके रूपमें लाना । ३ गरमीसे पीड़ित करना, कुढ़ना । ४ किसीके मनमें डाह इत्यादि उत्पन्न करना ।

जलान्तक (सं० पु०) जलस्थितकाले भूमध्यस्थ सीमा यस्य । १ सात समुद्रोंमेंसे एक समुद्र । २ सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न कृष्णके एक पुत्रका नाम ।

जलापा (हिं० पु०) १ वह दुःख जो डाह या ईर्षा आदिके कारण होता हो । २ एक प्रकारकी [illegible] दवा ।

जलापात (सं० पु०) जलस्य आपातः । उच्चस्थानसे प्रबल वेगसे जलपतन बहुत ऊंचे स्थान परसे नदी आदिके जलका गिरना । प्रपात देखो ।

जलाम्बर (सं० पु०) एक बोधिसत्व । इनके पूर्व जन्मका नाम [illegible] था ।

जलाम्बिका (सं० स्त्री०) जलस्य अम्बिका माता इव । कूप, कूआं ।

जलाम्बुसभा (सं० स्त्री०) गोपाका दूसरे जन्मका नाम ।

जलायुका (सं० स्त्री०) जलमायुरस्याः कप् पृषोदरादित्वात् सलोप । जलौका, जोंक । जोंक देखो ।

जलारपेट—मन्द्राजके सलेम जिलान्तर्गत तिरुपत्तूर तालुकका एक ग्राम । यह अक्षा० १२ ३५ उ० और देशा० ७८ ३३ पू०में अवस्थित है । लोकसंख्या प्रायः २ ३१ है । मन्द्राज और बङ्गलोर रेलवेका जंक्सन होनेके कारण यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है । यह मन्द्राजसे १३२ मील और बङ्गलोरसे ८० मीलकी दूरी पर अवस्थित है ।

जलार्क (सं० पु०) जले प्रतिबिम्बितोऽर्कः । जलमें प्रतिबिम्बित सूर्य, पानीमें सूर्यकी परछाईं ।

जलार्णव (सं० पु०) जलमयोऽर्णवः । १ जलसमुद्र । २ वर्षाकाल बरसात ।

जलार्थी (सं० त्रि०) जल अर्थयति अर्थ णिनि । जलाभिलाषी, प्यासा ।

जलार्द्र (सं० पु०) जलेन आर्द्रः निरु० । १ आर्द्र वस्त्र भीगा हुआ कपड़ा । (त्रि०) २ जलसिक्त जो जलसे भीगा हो गया हो ।

जलार्द्रा (सं० स्त्री०) १ क्लिन्नवस्त्र भीगा कपड़ा । २ आर्द्र तालवृन्त, भीगा पंखा ।

जलाल (अ० पु०) १ प्रकाश, तेज । २ आतङ्क, प्रताप ।

जलाल उद्-दीन पूर्वी—बङ्गदेशके एक राजा । ये हिन्दू राजा गणेशके पुत्र थे । इनका असली नाम था जीतमल और किसीके मतसे यदु । पिताकी मृत्युके उपरान्त मुसलमानधर्म ग्रहण कर ये ११८२ ई०में सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे । किसीके मतसे—इन्होंने एक मुसलमान औरतके प्रेममें पड़ कर मुसलमान धर्म अवलम्बन किया था । इनको पहले पहल हिन्दूधर्म पर अनुराग रहा था । किन्तु मुसलमान होने पर इन्होंने हिन्दुओं पर काफी अत्याचार किये थे । ये मुसलमान प्रजाओंको पुत्रके समान मानते थे इसलिए मुसलमानों द्वारा ये "नोशेरवान्" कहलाते थे । १७ वर्ष राज्य करनेके उपरान्त १४१० ई०में ये अपने पुत्र अहमदको राज्यप्रदान कर परलोक सिधारे थे ।

जलाल उद्दीन मजुती—मिश्र देशके एक प्रसिद्ध पण्डित । इनके पिताका नाम रहमन बिन अबूबकर था । प्रवाद है कि, इन्होंने कुल चार सौ पुस्तकें लिखी थीं । उनमेंसे दुर्-अल मन्सूर, तफसीर जलालैन, तुबक़, [illegible] आदि कई एक पुस्तकें प्रसिद्ध हैं । पिछोक्त पुस्तकमें—७११ ई० से उनके समय तक जितने भूकम्प हुए हैं—उन सबका विवरण लिखा है । १५०५ ई०में इनकी मृत्यु हुई ।

जलाल उद्दीन फिरोज खिलजी—फिरोजशाह खिलजी देखो ।

जलालखेरा—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलेका एक शहर । यह अक्षा० २१ २३ उ० और देशा० ७८ २८ पू०में तथा काटोलसे १४ मील पश्चिम जाम और वर्धा इन दो नदियोंके सङ्गम स्थान पर अवस्थित है । यहांके रहनेवाले अधिकांश कृषक हैं । प्रवाद है, इस नगरमें एक समय १० हजार मनुष्य रहते थे बाद अफजल खांके अत्याचारसे यह शहर तहस नहस हो गया । अभी भी शहरके चारों ओर प्रायः २ वर्ग मील स्थानमें नगरका भग्नावशेष देखनेमें आता है । कोई कोई अनुमान करते हैं कि अमनेर और जलालखेरा एक बड़े नगर थे ।

जलालउद्दीन—हिन्दीके एक कवि ।

जलाल दीन अकबर—हिन्दीके एक कवि ।

जलाल उद्दीन महम्मद अकबर—अकबर देखो ।

जलालउद्दीन मुहम्मद—उर्दूके एक कवि । अकबर बादशाह

की तारीफमें इन्होंने कई एक कविताएं बनाई हैं।

जलालद्दीन मुहम्मद गाजी—एक हिन्दीके कवि।

जलालपुर—बम्बई प्रान्तके सुरत जिलेका मध्य तालुक। यह अक्षा० २०° ४५' एवं २१° उ० और देशा० ७२° ४७ तथा ७३° ८' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १८८ वर्गमोल और लोकसंख्या प्रायः ८११८२ है। इसके उत्तरमें पूर्णानदी, पूर्वमें बरोदा उपविभाग, दक्षिणमें अम्बिका नदी और पश्चिममें अरब समुद्र है। इसको लम्बाई २० मील और चौड़ाई १६ मील है। इसमें कुल ८१ गांव लगते हैं। इसकी भूमि समतल पंकमय है और समुद्रकी ओर कुछ नीचा हो कर लवणमय दल-दलमें परिणत हो गई है। समुद्रके किनारेकी लवण-भूमि छोड़ कर सब जगहकी जमीन उर्वरा है और अच्छी तरह आबाद की जाती है। यहां तरह तरहके फलके बगीचे और जंगल हैं। समुद्रकूलके अतिरिक्त पूर्णा और अम्बिका नदीके किनारे बहुत लम्बी चौड़ी दलदल भूमि है। १८७५ ई०में जलाभूमिके प्राय: आधे भागमें खेती करनेकी चेष्टा की गई थी। तभीसे इसमें थोड़ा बहुत धान उपज जाता है। ज्वार, बाजरा और चावल ही यहांका प्रधान शस्य है। इसके सिवा रुई, चना, सरसों, तिल, ईख, केला आदि उत्पन्न होता है। यहांकी जलवायु नातिशीतोष्ण और स्वास्थ्यकर है। प्रति वर्ष ५४ इञ्च पानी बरसता है। यहां २ फौजदारी अदालत और १ थाना है। मालगुजारी और सेस कोई २६००००) है।

जलालपुर—पञ्जाब प्रान्तके गुजरात जिलेका नगर। यह अक्षा० ३२° ३८' उ० और देशा० ७४° १३ पू०में गुजरात नगरसे ८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या कई १०६४० होगी। यहां स्यालकोट, झिलम, जम्मू और गुजरातकी सड़कें मिल जानेसे अच्छा बाजार लगता है। कश्मीरी लोग शाल बनाते हैं। १८६७ ई०में म्युनिसिपालिटी हुई।

जलालपुर—पञ्जाब प्रान्तके झिलम् जिलेकी पिण्डदादनखाँ तहसीलका एक प्राचीन स्थान। यह अक्षा० ३२° ३९' उ० और देशा० ७३° २८ पू०में झिलम् नदीके दक्षिण तट पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ३१६१ है। प्रत-तत्त्वविद् ब्रिगेडियर साहबके कथनानुसार अलेकसन्दरने इसे अपने प्रधान सेनापतिके स्मरणार्थ बनाया, जो पोरस राजाके साथ युद्ध करनेमें मारा गया। जलालपुरका प्राचीन नाम बुकफला है। पहाड़की चोटी पर आज भी प्राचीन भित्तियोंका ध्वंसावशेष विद्यमान है। प्राचीन आविष्कृत मुद्राओंमें ग्रीक तथा बाकटियाके राजाओंका संवत् पड़ा है। अकबरके समय भी यह नगर चौगुना बड़ा था।

जलालपुर (पीरवाला) पञ्जाब प्रान्तके मुलतान जिलेकी शुजाबाद तहसीलका नगर। यह अक्षा० २९° ३२' उ० और देशा० ७१° १४ पू०में भाटरी नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ४१४८ है। पीरवाला नामक मुसलमान साधुके नाम पर ही इसको पीरवाला कहा जाता है। १५४५ ई०की इनकी यहां कब्र बनी। चैत्र मासमें प्रति शुक्रवारको बड़ा मेला लगता है। उसमें दिनको मुसलमान और रातको हिन्दू स्त्रियोंको सतानेवाली चुड़ैलें भाड़ी जाती हैं। १८७३ ई०में म्युनिसिपालिटी हुई। रेलवे खुल जानेसे स्थानीय व्यापार घट गया है।

जलालपुर—युक्तप्रदेशके फैजाबाद जिलेकी अकबरपुर तहसीलका नगर। यह अक्षा० २६° १८' उ० और देशा० ८२° ४५ पू०में अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ७२६५ है। नगर तोन नदीके उच्च तट पर होनेसे बहुत अच्छा लगता है। नगरमें बाहर १२वीं शताब्दीमें जुलाहोंने चन्दा करके एक बड़ा इमामबाड़ा बनाया था। १८५६ ई०के कानूनसे इसका प्रबन्ध किया जाता है। आज भी यहां सूती कपड़ा बहुत बुना जाता है।

जलालपुर देहो—अयोध्याप्रदेशके अन्तर्गत रायबरेली जिलेकी दलमऊ तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २६° २' उ० और देशा० ८१° ६२' पू० में दलमऊसे ८ मील पूर्व और रायबरेलीसे १८ मील दक्षिण-पूर्वमें देहो नामक एक प्राचीन ध्वंसावशिष्ट नगरके पास अवस्थित है। यहां हर पखवाड़े शहरसे कुछ दूरमें हाट लगा करती है।

जलाल बुखारी सैयद—एक प्रसिद्ध मुसलमान पण्डित। सैयद महम्मदकबीरके वंशधर और सैयद महम्मद

हुमायूँके पुत्र। १५८४ ई०में इनका जन्म हुआ था। बादशाह शाहजहाँ इनको अत्यन्त सम्मान करते थे। बादशाहके मनसबदारोंमें इन्होंने तमाम हिन्दुस्तानको 'सदारत्' और छह हजारी मनसबदारका पद पाया था। ये बहुतसी कविताएं लिख गये हैं जिनमें 'रजा' नामसे इन्होंने अपना उल्लेख किया है। १६४७ ई०में (१०५७ हिजिरीमें) २१ मईको इनका देहान्त हुआ था।

जलालाबाद—१ अफगानिस्तानका एक बड़ा जिला। इसके उत्तरमें बदख्शान्, पूर्वमें चित्राल तथा अस्मरको राज्य, दक्षिणमें अफरीदी तिराह पश्चिममें काबुल प्रान्त है। समस्त देश एक समान है। पूर्व सीमामें हिन्दूकुश पहाड़ है जिसकी कई एक बड़ी बड़ी चोटियाँ हैं। पश्चिमी सीमामें सफेदकोह है जो जलालाबाद उपत्यकासे ले कर अफरीदी तिराह तक विस्तृत है। सारा जिला काबुलकी नहरसे सींचा जाता है। इसके सिवा अलीशिङ्गो, अलिङ्ग, अलिनगार और कुनार नामकी और कई एक सोते हैं जिनका जल सिंचाईके काममें आता है। यहाँ विभिन्न जातीय लोग रहते हैं। हिन्दुओंकी संख्या अधिक नहीं। खृष्टीय ५वीं शताब्दी तक इस उपत्यकामें बौद्ध धर्मका प्राबल्य रहा। हजारों वर्ष मुसलमानोंका प्रभुत्व रहते भी जलालाबादमें प्राचीन हिन्दू अधिवासियोंके बहुतसे निदर्शन आज भी देख पड़ते हैं। यहाँ पुराने पूर्वरोमक साम्राज्यके और सासानीय तथा हिन्दू सिक्के मिले हैं।

२ अफगानिस्तानके जलालाबाद जिलेका एक मात्र नगर। यह अक्षा० ३४ २६ उ० और देशा० ७० २७ पू०में पेशावरसे ७८ मील दूर और काबुलसे १०१ मील दूर अवस्थित है। नगरकी चारों ओर २१०० गज विस्तृत प्राचीर है। लोकसंख्या प्रायः २००० रहती, परन्तु शीत ऋतुमें पहाड़ियोंके आ बसनेसे चौगुनी पड़ती है। जलालाबादसे काबुल, पेशावर और कन्नौजको सड़क गयी है। पेशावरको मेवा और कपड़ा भेजी जाती है। पश्चिम द्वारसे २०० गज दूर अमीरका राजप्रासाद है। यह १८८२ ई०में बना था। गर्मीमें रहनेके लिए अमीरके लोके बसते हैं। इसमें बरामदेसे उपत्यका और निकटका पर्वतोंका दृश्य अच्छा लगता है। जलवायु पेशावर जैसा है।

१५७० ई०में अकबर बादशाहने जलालाबाद बसाया था। १८३४ ई०में अमीर दोस्त मुहम्मदने इसे तहस नहस कर डाला। १८३९-४२ के अफगानयुद्धमें सर रोबर्ट सेलने बहुतसी कठिनाइयोंको झेलते हुए १८४१ ई०के नवम्बर महीनेमें इस शहरको हस्तिय आत्मसात् किया। किन्तु रसद घट जानेके कारण अंग्रेजी सेना यहाँ रह न सकी। अन्तमें १८४२ ई०को फरवरीको अफगान सरदार मुहम्मद अकबरखाँने इसे पुनः दखल किया। लेकिन १८७८-८० ई०को अफगान युद्धमें अंग्रेजोंने जलालाबाद अधिकार किया। आजकल यहाँ अफगान सैन्य रहता है।

जलालाबाद—१ युक्त प्रदेशके शाहजहाँपुर जिलेकी दक्षिण पश्चिम तहसील। यह अक्षा० २७ ३१ तथा २७ ५१ उ० और देशा० ७९ २० एवं ७९ ४४ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ३२४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १०५६०४ है। इसमें एक शहर और ३६० गांव आबाद हैं। मालगुजारी कोई २१००००) रु० है। दक्षिण पश्चिम सीमा पर गङ्गा बहती और मध्यभागसे रामगङ्गा बहती है।

२ युक्तप्रदेशके शाहजहाँपुर जिलेकी जलालाबाद तहसीलका सदर। यह अक्षा० २७ ४१ उ० और देशा० ७९ ४० पू०में बरेली शाहजहाँपुर सड़कोंके मोड़ पर बसा है। लोकसंख्या प्रायः ७०१० होगी। जलालाबाद पठानोंका पुराना शहर है। कहते हैं कि—जलाल उद्दीन फिरोजशाहने इसे पत्तन किया था। एक पुराने किलेमें सरकारी दफ्तर है। रेलवे स्टेशनसे दूर होनेके कारण यहाँका वाणिज्य व्यवसाय कुछ कम हो गया है। यहाँ एक भी अच्छा मन्दिर या मस्जिद नहीं है। यहाँ एक अस्पताल और American Methodist mission स्कूलकी एक शाखा है।

जलालाबाद—युक्तप्रदेशके मुजफ्फर नगरको कैराना तहसीलका नगर। यह अक्षा० २९ ३० उ० और देशा० ७७ ३० पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६८२१ है। कहते हैं कि औरङ्गजेबके समय जलालखाँ पठानने इसको बसाया था। यहाँसे आध मीलकी दूरी पर रोहिल्लेके प्रधान नजीबखाँके बनाये हुए प्रसिद्ध गौसगढ़ दुर्गका

भग्नावशेष विद्यमान है। मराठोंने इसे कई बार लूटा पीटा। बलवेके समय स्थानोय पठान शान्त रहे। यहां केवल १ स्कूल है।

जलाली—युक्त प्रदेशके अलीगढ़ जिलेका नगर। यह अक्षा० २७° ५२´ उ० और देशा० ७८° १६´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८८३० है। प्रधानतः यहां सैयद लोग रहते हैं। यह कमाल उद्-दोनके वंशधर हैं जो १२८५ ई०को आ कर बसे थे। इन्होंने पठानोंको निकाल करके नगरका पूर्ण अधिकार पाया। जलालीमें कई इमामबाड़ा है। यहांकी सड़कें कच्चो और कम चौड़ी हैं और बाजार भी अच्छे नहीं हैं। व्यवसाय वाणिज्य भी प्रायः नहींके समान है। यहांके प्रायः सभी अधिवासी कृषिजीवी हैं। नगरसे आधमोल दूर सेना ठहरनेकी एक मठी है।

जलाली—मुसलमान फकोरोंकी एक श्रेणी। वे लोग बुखाराके रहनेवाले सैयद जलाल-उद्दीनको अपना गुरु मानते हैं। खुदा या ईश्वरको ओर इन लोगोंका कम ध्यान रहता है। भङ्ग इस श्रेणीके फकीरोंका प्रधान आहार है। ये लोग डाढ़ी, मूंछ और भौं मुड़वा डालते हैं, तथा सिर पर दाहिनी ओर एक छोटी चोटी रखते हैं। मध्य एशियामें इस श्रेणीके फकीर अधिक पाये जाते है।

जलालु (सं० पु०) जलजाता आलु। पानीयालुक, जिमीं कंद, ओल।

जलालुक (सं० क्लो०) जलालुरिव कायति प्रकाशते कै-क। पद्मकन्द, कमलकी जड़, भसीड़।

जलालुका (सं० स्त्री०) जले अलति गच्छति अल-आभुल-कात् उक-टाप्। जलौका, जोंक।

जलालुद्दीन कवि—हिन्दीके एक सुकवि। सं० १६१५में इनका जन्म हुआ था। हजारामें इनके बनाए हुए कवित्त मिलते हैं।

जलालोका (सं० स्त्री०) जले आलोक्यते दृश्यते आ-लोक कर्मणि घञ्। जलौका, जोंक।

जलाव (हिं० पु०) १ खमीर या आटे आदिका उठना। २ खमीर, गूंधे हुए आटेका सड़ाव। ३ शहदके समान गाढ़ा किया हुआ शरबत, किमाम।

जलावतन (अ० वि०) निर्वासित, जिसे देश निकालेकी सजा मिली हो।

जलावतनी (अ० स्त्री०) निर्वासन, देश निकाला।

जलावन (हिं० पु०) १ ईंधन, जलानेकी लकड़ी या कंडा। २ वह उत्सव जो कोल्हूके पहले पहल चलानेके दिन किया जाता है। इसमें गृहस्थ अपने अपने खेतोंसे ईख ला कर कोल्हूमें पेरते हैं, और सन्ध्या समय चूड़ा, दही और ईखका रस ब्राह्मणों, भिखारियों आदिको खिलाते पिलाते हैं, भंडरस। ३ किसी वस्तुका वह अंश जो उसके तपाये गलाये वा जलाए जाने पर जल जाता है।

जलावर्त्त (सं० पु०) जलस्य आवर्त्तः सम्भ्रमः। जल-गुल्म, जलभ्रम, समुद्र नदी आदिके जलकी घूर्णायमान भंवर। समुद्रनदी आदिमें जो भंवर पड़ता है, उसे जला-वर्त्त कहते हैं।

समुद्र और नदीके स्थानविशेषमें प्रायः समान वेगके दो स्रोत विपरीत दिशासे प्रवाहित हो कर यदि किसी कम चौड़े स्थान पर परस्पर टकरावें अथवा यदि चारों ओरसे स्रोत प्रवाहित हो कर समुद्रमें डूबे हुए पर्वत, तट या वायुगति द्वारा उनकी गति प्रतिरुद्ध हो जाय, तो उन स्रोतोंके परस्पर घात प्रतिघातसे जलराशि घूर्णाय मान हो कर ,जलावर्त्त उत्पन्न हो जाता है। जिस जगहका पानी हमेशा घूमता रहता है उस स्थानको कोई कोई जलावर्त्त कहते हैं। समुद्रमें जगह जगह जलावर्त्तका प्रचण्ड वेग देखा जाता है। ग्रीसीय द्वीप-पुञ्जके निकटवर्त्ती युरिपासका आवर्त्त, सिसिली और इटालीके मध्यवर्त्ती 'सेरिबडिस' और नोरवेके निकट-वर्त्ती मेलष्ट्रम नामके आवर्त्त हो ज्यादा प्रसिद्ध हैं। भागीरथीके मध्यवर्त्ती विशालाक्षीका भौंरा इस देशमें विख्यात है।

पहले जिस सेरिबडिस् जलावर्त्तका उल्लेख किया गया है, उसका जल सर्वदा ही घूमता रहता है और एक साथ अधिकांश जगह मण्डलाकार आवर्त्त देखा जाता है। यह जलावर्त्त इतना बड़ा होता है कि, स्थानकी कल्पना कर इसे नापा जाय तो इसका व्यास १०० फुट होगा। इसके सिवा वायुका वेग बढ़ने पर उसका व्यास और भी बढ़ जाता है। इस स्थानका स्रोत अति प्रबल होता है और बराबर वायुके आघातसे यह

घूर्णावर्त्त उत्पन्न होता है। इसमें विशेषता यह है कि इसका स्रोत पर्यायक्रमसे ६ घण्टे तक उत्तर दिशासे प्रवाहित हो कर फिर ६ घण्टे दक्षिण दिशासे प्रवाहित होता है। चन्द्रके उदय और अस्तके साथ स्रोतकी गति भी पर्यायक्रमसे परिवर्त्तित होती है। जिस समय मन्द मन्द हवा चलती है उस समय जहाज आदि पर सवार हो कर इस जगह जानेसे विशेष कुछ अनिष्ट होनेकी तो सम्भावना नहीं, पर पानीके साथ साथ जहाजको घूमना अवश्य पड़ता है। जिस समय प्रबल वेगसे वायु चलती हो उस समय यदि कोई छोटे जहाज या नाव पर चढ़ कर वहां जाय तो वह डूबे बिना नहीं रह सकता और यदि जहाज खूब बड़ा हो, तो वह तरङ्ग और स्रोतके वेगसे हटते हटते उपकूलकी तरफ चला जाता है और वहां पहुंचते न पहुंचते सिफला नामक पर्वतसे टकरा कर उसका चकनाचूर हो जाता है।

घूमते हुए पानीके घात प्रतिघातसे तरङ्ग तरङ्गके शब्द उत्पन्न हुआ करते हैं। पेलोरो अन्तरीपके पासके पर्वतसे टकरा कर वहांका पानी कुत्तेके भौंकनेके समान शब्द करता है। इसी लिए शायद यूरोपके लोगोंमें ऐसी कहावत प्रसिद्ध है कि, पेलोरो अन्तरीपके पास एक राक्षसी वहांसे जानेवाले मल्लाहोंको खानेके लिए— कुक्कुर और व्याघ्रोंसे परिवेष्टित हो कर सदा बैठी रहा करती है।

नोरवे उपकूलवर्त्ती जलराशि एक प्रबल वेगयुक्त प्रवाहके द्वारा पर्यायक्रमसे दक्षिण और उत्तरकी तरफ प्रवाहित होती है, यह प्रवाह वायु द्वारा प्रतिहत होने पर भीषण शब्द करता है, जो समुद्रमें बहुत दूर तक सुनाई पड़ता है। इस घूर्णावर्त्तका नाम मेलष्ट्रम है। वायुका प्रकोप न रहने पर इसमें जहाज आदि निरापदसे आ जा सकते हैं। परन्तु प्रबल वायु रहने पर जहाज आदिको बचा कर ले जाना चाहिये। अन्यथा स्रोतके वेग या भँवरमें पड़ कर डूब जानेका पूरा पूरा भय है। उस स्थानके पानीका वेग इतना ज्यादा होता है कि कभी कभी तिमि और अन्यान्य मत्स्य मरे हुए उपकूलमें देखे गये हैं।

अर्कनी उपद्वीपोंके बीचके जलावर्त्त वायु और प्रवाहकी परस्परकी क्रिया द्वारा उत्पन्न होते हैं। परन्तु इसके जलावर्त्त भयानक नहीं होते। उन जलावर्त्तोंमें एक काठका टुकड़ा या बहुतसे वृक्ष डाल देनेसे जलकी घूर्णायमान गति बन्द कर यहांका पानी सहज ही निरापद हो जाता है। इसलिए यदि नौका पर चढ़ कर यहांसे जाना हो तो पहले उस जगह काठका टुकड़ा या बहुतसे वृक्ष डाल कर निर्विघ्नतासे जा सकते हैं।

नदीमें जो जलावर्त्त होता है, वह मण्डलाकार प्रवाहित होता रहता है। नदीस्रोतके मार्गमें किसी पदार्थके नत होने पर अथवा सङ्कीर्ण होने पर स्रोत उसी किनारेके साथ समान्तराल अवस्थामें नहीं जा सकता, प्रत्युत अकस्मात् मार्गसे मध्यकी ओर परिवर्तित हो कर मण्डलाकारमें प्रवाहित होता है और नदीके ऊपरी भागका पानी तटके द्वारा रक्षित होता है। यह तट और समान्तराल स्रोतका पानी भिन्न भिन्न अंश द्वारा चालित होता है। इस प्रकारके भिन्न गतिके कारण स्रोतमें भ्रमा-यमाणी गति उत्पन्न होती है इसीलिए आवर्त्तके केन्द्र स्थलका पानी नदीके ऊपरी भागके पानीके समान सम तल नहीं होता।

कल्पना करो कि, किसी नदीका निम्नस्तर क्रमशः सङ्कुचित हो रहा है अब उस स्थानके एक पारमें क बिन्दु और दूसरे पारमें ख बिन्दुको और उनके पास पास जहां नदी अकस्मात् खूब आयतन हो वहां ग घ बिन्दुको कल्पना करो। नदीकी आकृति और स्रोतकी गतिसे तटके क ख ग घ द्वारा कुछ अंशमें जलका प्रवाह प्रतिहत होता है, निकटवर्ती जलको अपेक्षा अधिक ऊंचा हो जाता है और वहां प्रतिक्षिप्त हो कर खं ग की तरफ चालित होता है। जलके साधारण धर्मानुसार ख ग स्थानके पानीके वेगकी अपेक्षा सूक्ष्म स्रोतके पानीका वेग ज्यादा होता है। ख म गं स्थान का पानी क खं म की तरफ चालित होता है और घ स्थानसे पानी वहां आता है। इस तरह खं ग की तरफ एक स्रोत प्रवाहित होता है और घ बिन्दुसे म खं और ग से ख गं की तरफ पानी आता जाता रहता है। इस विभिन्न प्रकारसे स्रोतके घात प्रतिघातसे जलराशि मण्डलाकार घूर्णायमान होती है। इस प्रकारसे नदीके

किसी स्थान पर सर्वदा ही जलावर्त्तका कार्य होता रहता है और यह जलावर्त्त केवलमात्र उसही जगह आबद्ध न रह कर नदीके स्वाभाविक स्रोतमें और भी कुछ दूर जाकर उत्पन्न होता है।

क ग चिह्नित मध्यवर्ती भूभागकी आकृति सदृश होने पर नदीके दूसरे पार भी घूर्णावर्त्त हो सकता है और विक्षित स्थान यदि संकीर्णायतन हो, तो वहांसे क ग प्रवाह—प्रतिक्षिप्त हो कर जलावर्त्त उत्पन्न कर सकता है। इसीलिए यदि नदीका फाट कम चौड़ा हो और वहां कोई पुल बना हो तो उस पुलके स्तम्भके पास आवर्त्त उत्पन्न होते हैं। उक्त आवर्त्तोंके निम्न स्तर, उनके चारों ओरके स्तरोंकी अपेक्षा बहुत कम ही विरुद्ध बलकी गतिको रोक सकते हैं। इन स्तरोंके नीचे जो पानी है, वह अपने साधारण धर्मके अनुसार समतल अवस्थामें रहनेके लिए उठते समय मट्टी आदि-को ऊपर उठाता है और कभी कभी तो पुलके स्तम्भों तकको ऊपर फेंक देता है।

नदीके निम्नस्तर सर्वत्र समान नहीं होते; कोई स्तर नीचा और कोई ऊंचा होता है। स्तरको उच्चता और निम्नताकी तारतम्यताके अनुसार ऊंचे स्थानमें पानीकी गति प्रतिक्षिप्त हो कर जलावर्त्त उत्पन्न हो सकता है। यह प्रवाह पीछे वक्रभावसे ऊर्द्ध्वगामी होता है और तरङ्गके आकारमें ऊपरको आता रहता है। इसी तरह यदि कोई स्थान अचानक नीचा हो जाय तो उस स्थानमें भी जलावर्त्त उत्पन्न हो सकता है।

जलाशय (सं० पु०) जलस्य आशयः आधारः। १ जलाधार, वह स्थान जहां पानी जमा हो, समुद्र, नद, नदी, पुष्करिणी गड़हा इत्यादि। पुष्करिणी देखो। (क्ली०) जले जलबहुलप्रदेशे आशेते शी अच्। २ उशीर, खस। ३ लामज्जक तृण। ४ शृङ्गाटक, सिंघाड़ा। (त्रि०) ५ जलशायी, जो जलमें शयन करता हो। (पु०) ६ मत्स्य विशेष, एक मछली।

जलाशया (सं० स्त्री०) गुण्डला तृण, गुंडला, नागर मोथा।

जलाश्रय (सं० पु०) जले जलप्रचुर प्रदेशे आश्रयो उत्पत्तिस्थानं यस्य। १ वृत्तगुण्ड तृण। दीर्घनाल नामको घास। २ शृङ्गाटक, सिंघाड़ा। ३ ईहामृग, भेड़िया। ईहमृग देखो। ४ गर्मोटिका तृण, जड़ घी। ५ लामज्जक तृण।

जलाश्रया (सं० स्त्री०) स्त्रियां टाप्। १ शूलीतृण, शूली घास। २ बलाका, एक प्रकारका बगुला पक्षी।

जलाष (सं० क्ली०) जायते जल ड ज: लाषोऽभिलाषो यत्र अर्शादित्वादच्। १ सुख, आराम, चैन। २ सबके लिए सुखकर। ३ जल, पानी।

जलाषाह (सं० त्रि०) जलं सहते सह णिच पूर्व्ववद् दीर्घः, गम्य यत्वं। जलसोढ़, पानीको बरदास्त करनेवाला।

जलाष्ठीला (सं० स्त्री०) जलेन अष्ठीला सदृशा। पुष्करिणी।

जलासुका (सं० स्त्री०) जलमेव असवो यस्याः कप् टाप्। जलौका। जोंक देखो।

जलाहल (हिं० वि०) जलामय, पानीसे भरा हुआ।

जलाह्वय (सं० क्ली०) जले आह्वयः स्पर्द्धा यस्य। १ उत्पल, कमल। २ कुमुद, कुई। ३ वालक, वाला।

जलिका (सं० स्त्री०) जलं उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्याः जल ठन्। जलौका जोंक देखो

जलिकाट—जलीकाट देखो।

जलीकाट—मदूरा राज्यमें प्रचलित एक तरहका खेल। कुछ गाय भैंसोंके सींगमें कपड़ा या अंगोछा बांध देते हैं, उस अंगोछेके छोरमें कुछ रुपये-पैसे भी बांधे रहते हैं। किसी लम्बे चौड़े मैदानमें उन सबको लेजाकर एक साथ छोड़ देते हैं। इस समय दर्शकवृन्द ताली बजाते हुए हल्ला मचाते हैं; जिससे वे जानवर उत्तेजित हो कर जी-जानसे दौड़ते हैं और साथ ही द्रुतगामी मनुष्य भी उनके साथ दौड़ते रहते हैं। जो अग्रगामी पशुको पहले पकड़ता है, उसीको जय होती है और वही उक्त पशुके सींगमें बंधे हुए रुपये-पैसोंका अधिकारी होता है।

अंग्रेज लोग जिस तरह घुड़दौड़में मस्त हो जाते है, उसी तरह मदूर, त्रिचिरापल्ली, पदुकोटा और तञ्जोर-के लोग भी इस खेलसे उन्मत्त हो जाते हैं। इस खेलको उनके जातीय उत्सवोंमें गिनती थी, इस लिए धनी दरिद्र सभी इस खेलमें शामिल होते थे। इसमें कभी कभी

बड़ी विपत्ति पाती थी इस कारण १८५६ ई०में गवर्मेण्टने इसे बन्द कर दिया।

जलील (अ० वि०) १ तुच्छ, बेकदर। २ अपमानित जिसे नीचा दिखाया गया हो।

जलील—हिन्दीके एक कवि। इनका पूरा नाम अब्दुल जलील बिलग्रामी था। १७१८ संवत्‌में इनका जन्म हुआ था। हरिप्रसादसे इन्होंने हिन्दी पढ़ी थी। औरङ्गजेब बादशाह इनका बहुत सम्मान करते थे।

जलुका (सं० स्त्री०) जले तिष्ठति जल बाहुलकात्-उत्व। जलौका, जोंक।

जलूका (सं० स्त्री०) जलुकाकी यथा। पृषोदरादित्वात् साधु। जोंक जलौका।

जलूस (अ० पु०) किसी उत्सवमें बहुतसे मनुष्योंका सज-धज कर विशेषतः किसी सवारीके साथ किसी निर्दिष्ट स्थान पर जाना या नगरके चारों ओर घूमना।

जलेचर (सं० पु०) जले चरति चर ट। १ जलचर पक्षी, हंस, बक प्रभृति। इनके मांसके गुण—गुरु, उष्ण, स्निग्ध, मधुर, वायुनाशक और शुक्रवर्द्धक। (त्रि०) २ जल-चारी, जो पानीमें चलता हो।

जलेक्षुका (सं० स्त्री०) जलमेति जल इ क्विप् जलेन जलमधुरत्वात् इक्षुरिव कन्-टाप्। हस्तिपर्णा क्षुप, शाखी सुन्द नामका पौधा। यह पानीमें उपजता है।

जलेज (सं० क्ली०) जले जायते जन ड। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ जलजात, जो पानीमें उपजता हो।

जलेजात (सं० क्ली०) जले जात सप्तम्या अलुक्। १ पद्म कमल। (त्रि०) २ जलेजात, पानीमें होनेवाला।

जलेन्द्र (सं० पु०) जलस्य इन्द्र अधिपतिः। १ वरुण। २ महासमुद्र। ३ जम्भलाख्य महादेव। ४ पूर्व यम। (मेदिनी)

जलेन्धन (सं० पु०) जलान्येवेन्धनानि यस्य। १ वाड़वाग्नि। २ और विद्युतादि तेज वह पदार्थ जिसकी गरमीसे पानी सूखता है।

जलेतन (हिं० वि०) १ चिड़चिड़ा, जिसे बहुत जल्द क्रोध आ जाता हो। २ जो डाह, ईर्ष्या आदिके कारण बहुत जलता हो।

जलेबा (हिं० पु०) बड़ी जलेबी।

जलेबी (हिं० स्त्री०) १ इमरतीकी भांति एक प्रकारकी गोल मिठाई। इसको प्रस्तुत करनेको नाना स्थानोंमें नाना प्रकार है। यहां एक प्रकारकी प्रक्रिया लिखी जाती है—उरदकी दाल भिगो कर उसे पीसते हैं और फिर उसमें चावलका बारीक आटा और थोड़ा पानी मिला कर फेंटते हैं। अच्छी तरह फेंटे जानेके बाद सछिद्र मोटे कपड़ेमें या किसी पात्रमें रख कर उस पात्रको खौलते कड़ाहीके ऊपर रख कर इस तरह घुमाते हैं कि उसकी धार निकल कर कुण्डलाकार होती जाती है। भली भांति सिक जानेपर घीमेंसे निकाल कर रस या शीरेमें छोड़ देनेसे जलेबी बन जाती है। कहीं कहीं चावलके आटेके बदले मैदा भी काममें लाते हैं तथा कहीं कहीं खमीर उठाये हुए पतले मैदेसे भी जलेबी बनाते हैं। २ बिसारेकी भांतिका एक प्रकारका पौधा। यह चार पांच हाथ ऊंचा होता है। इसमें पीले रंगके फूल लगते हैं। इसके फूलके भीतर कुण्डलाकार बहुतसे छोटे छोटे बीज रहते हैं। ३ कुण्डली, गोलघेरा लपेट।

जलेभ (सं० पु०) जलजात-इभ। जलहस्ती।

जलहस्ती देखो।

जलेयु (सं० पु०) पुरुवंशीय रौद्राश्व नृपतिके एक पुत्र-का नाम। (भाग० ९।२०।४)

जलेरुह उड़िसाके एक प्राचीन राजा। तारानाथ-प्रणीत मगधराजवंशावली-चरित्रमें इनको उड़िसाका प्रबल पराक्रमी राजा बतलाया गया है।

जलेरुहा (सं० स्त्री०) जले रोहति रुह क टाप् सप्तम्या अलुक्। १ कुकुन्दिनी क्षुप, सूरजमुखी नामक फूलका पौधा। (त्रि०) २ जलजात, पानीमें होने-वाला।

जलेला (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद कार्त्तिकेयकी अनुचरी एक मातृका नाम।

जलेवाह (सं० पु०) जले जलमध्ये वाहते अवगाह्य द्रव्यस्य मार्गार्थं प्रयतते। १ वह मनुष्य जो पानीमें गोता लगा कर चीजें निकालता हो, गोताखोर। २ जल-कुक्कुट, पानीका मुरगा।

जलेश (सं० पु०) जलस्य ईशः, ६-तत्। १ वरुण। २

२ षोड़श पदार्थवादी गौतमने सोलह पदार्थोंमें जल्पको भी एक पदार्थ माना है। उनके मतसे जल्प, विजिगीषु व्यक्तिका परमत निराकरण पूर्वक स्वमत अवस्थापक एक वाक्य है। वह वाक्य जिसके द्वारा विजिगीषु व्यक्ति, विवाद आदिके समय परमतका खण्डन कर अपने मतकी पुष्टि करते हैं। (गौतमसूत्र १।२) वाद देखो।

३ प्रलाप, व्यर्थकी बातचीत, बकवाद।

जल्पक (सं॰ त्रि॰) जल्प स्वार्थे कन्। बकवादी, वाचाल, बातूनी।

जल्पन (सं॰ क्ली॰) जल्प भावे ल्युट्। वाचालता, अनर्थक शब्द, बकवाद। २ डींग, बहुत बढ़ कर कही हुई बात।

जल्पना (हिं॰ क्रि॰) व्यर्थकी बात करना, फिजूल बकवाद करना, डींग मारना।

जल्पाईगोड़ी — जलपाईगुड़ी देखो।

जल्पाक (सं॰ त्रि॰) जल्पति जल्प-षाकन्। बहुकुत्सितभाषी, बहुतसी फिजूल बातें करनेवाला, बकवादी। इसके पर्याय—वाचाल, वाचाट और बहुगर्ह्य वाक्।

जल्पित (सं॰ त्रि॰) जल्प-क्त। १ उक्त, कहा हुआ। २ मिथ्या, झूठ।

जल्पीश—कालिकापुराणमें वर्णित एक विख्यात शिव लिङ्ग। जल्पेश देखो।

जल्पेश—बङ्गाल प्रान्तके जलपाईगुड़ो जिलेका एक गांव। यह अक्षा॰ २६° ३१´ उ॰ और देशा॰ ८८° ५२´ पू॰में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २०८८ है। कोई ३ शताब्दी पूर्व कोच विहारके राजाओंने किसी प्राचीन मन्दिरको जगह शिवमन्दिर निर्माण किया था। यह जरदा (जटोदा) नदीके किनारे है। ईंट लाल लगी हैं। बड़े गुम्बटका बाहरी व्यासार्ध ३४ फुट है। शिवरात्रिको बड़ा मेला होता है। जलपाईगुड़ी देखो।

जल्ला (हिं॰ पु॰) १ झील। २ हद, हौज। ३ ताल, तालाव।

जल्लाद (अ॰ पु॰) घातक, वधुआ जिस दोषीको प्राणदण्डकी आज्ञा होती है, वह जल्लादके हाथ मारा जाता है।

जल्हु (सं॰ पु॰) दह वाहु॰ पृषोदरादित्वात् साधुः। अग्नि।

जव (सं॰ पु॰) जु-अप्। १ वेग।

जव (हिं॰ पु॰) यव, जौ।

जवन (सं॰ क्ली॰) जु-भावे-ल्युट्। १ वेग। (त्रि॰) जु कर्त्तरि ल्युट्। २ वेगवान्, वेगयुक्त, तेजो। (पु॰) ३ वेग युक्त-अश्व, तेज घोड़ा। ४ देशविशेष, अरब देश, पारस देश और यूनान देश। ५ उक्त देशोंका रहनेवाला। यवन देखो। ६ म्लेच्छ जातिविशेष, मुसलमानोंकी एक जाति। पहले ये यवनदेशोद्भव क्षत्रिय थे, बाद सगर राजाने इनके मस्तक मुण्डन कर इन्हें सब धर्मोंसे वहिष्कार कर दिया। (हरिवंश) ७ स्कन्दके सैनिकोंमेंसे एक सैनिकका नाम। (भा॰ ९।४५।७२) ८ शिकारी मृग। ९ घोटक, घोड़ा १० यवद्वीपके अधिवासी।

जवनाल—जुन्हरी देखो।

जवनिका (सं॰ स्त्री॰) यवनिका देखो।

जवनिमन (सं॰ पु॰) जव, वेग, तेजी।

जवनी (सं॰ स्त्री॰) जूयते आच्छाद्यतेऽनया। जु करणे ल्युट् स्त्रियां ङीप्। १ अपटी। अजवायन जवाइन। २ औषधिभेद, एक प्रकारको दवा। ३ यवन स्त्री, मुसलमान औरत। (त्रि॰) ३ वेगशीला, तेज।

जवर आमला—बङ्गालके अन्तर्गत बाखरगञ्ज जिलेका कचुआ नदीके किनारे पर अवस्थित एक ग्राम। यहांसे चावल और गुड़को रफ़्तनी होती है।

जवस् (सं॰ पु॰) जु-असुन्। वेग, तेजी।

जवस (सं॰ क्ली॰) जुयते भच्चार्थं प्राप्यते बाहुलकात् जु कर्मणि अ सु। तृण, घास।

जवहरबाई—राणा संग्रामसिंहको मृत्युके उपरान्त उनके पुत्र रत्न मेवाड़के सिंहासन पर बैठे। रत्नकी अकस्मात् मृत्यु हो गई। उनके भाई विक्रमजीतने १५८९ संवत्‌में चितोरके सिंहासन पर बैठ कर अपनी सेनाओंमें तोप चलानेकी प्रथा चलाई और वे पयादोंका खूब आदर करने लगे। इस नवीन घटनासे चित्तोरके सामन्त और सर्दारगण विक्रमजीतके प्रति अत्यन्त विरक्त हो गये। गुर्जरराज बहादुरके पूर्वपुरुष मजफ्फर चित्तोरके पृथ्वीराज द्वारा कैद किये गये थे इसलिए बहादुरने

में बादशाहको इस दलबल विध्वंसको देख कर अपना बदला लेनेके लिए अमर नाम की।

चित्तोर पर आक्रमण होने पर प्रधान प्रधान वीरोंने अद्भुत वीरत्वके साथ उनको गतिको रोका। उनकी वीर्य-वत्तासे अनेक मुसलमान पतङ्गवत् दग्ध होने लगे। परन्तु इससे भी कुछ फल न हुआ। इसी समय राठोर कुलमें उत्पन्न राजमहिषी जवहरबाई वर्म भी अपूर्व मणिसे सुसज्जित हो कुछ स्त्रियोंके साथ शत्रुसमुद्रमें कूद पड़ी। उसी मुहूर्तमें वे सबकी एक थोडा जलबुदबुद की तरह उस समरार्णवमें विलीन हो गई। राजम-हिषी जवहरबाई भी स्वदेशकी रक्षाके लिए अपने जीवनको उत्सर्ग कर जगत्‌में अपना नाम अमर कर गई।

जवहार- बम्बईके थाना जिलान्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा॰ १९ ४०´से २० ४ उ॰ और देशा॰ ७३ २ से ७३ २३´पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण ३१० वर्ग मील है। इस राज्यमें दो असमान प्रदेश अवस्थित हैं बड़ा खण्ड थाना जिलेका उत्तर-पश्चिमी और छोटा दक्षिण-पश्चिमी भाग है। छोटे खण्डके पश्चिममें दमई, बरोदा और मध्य भारत रेलवे आ कर मिली है।

इस राज्यमें कई एक अच्छी पक्की सड़कें हैं। इसके दक्षिण और पश्चिमका भाग समतल और अवशिष्ट असम-तल है। यहांकी प्रधान नदियां देहरजी, सूर्य, विष्णुसी और वाघ हैं।

१२९४ ई॰में जब मुसलमानोंने दक्षिण प्रदेश पर आक्रमण किया था उस समय जवहार वारलोंके प्रधान के अधीन था। न कि कोलोंके जिस तरह कोली राजा गोवरके इयत्तर्म परिमित भूमि मांग कर एक विस्तृत भू भागको स्वामी हो गई थी, उसी तरह कोलिके प्रधान पौपेराने जो जयब नामसे प्रसिद्ध हो गये हैं जवाहारमें अपना अधिकार जमा लिया था। जयबके मरने पर उन का लड़का नीमशाह जिसे दिल्लीके सम्राट्‌से राजाकी उपाधि मिली थी जवहारके राजसिंहासन पर बैठा। १३४१ ई॰की ५वीं जून जवहारके इतिहासमें बहुत प्रसिद्ध है क्योंकि उस दिन इन्हें राजाकी उपाधि मिली थी और एक नवीन शाकका आरम्भ हुआ था। मराठा-ओंने इस देश पर कई बार चढ़ाई की और इसका अधि-कांश अधिकार कर लिया था।

यहांकी लोकसंख्या लगभग ४७५३८ है जिनमेंसे ४७००० हिन्दू और ४०१ मुसलमान हैं। यहांकी जमीन पथरीली है, इसलिये कोई अच्छी फसल नहीं लगती है। राज्यकी आमदनी एक लाख रुपयेसे अधिककी है। सबसिडी कुछ भी कर नहीं देना पड़ता है। राज्य भरमें दो स्कूल और एक चिकित्सालय है।

जवांमर्द (फा॰ वि॰) १ शूरवीर, बहादुर। २ वह सिपाही जो अपनी इच्छासे सेनामें भरती होता हो।

जवांमर्दी (फा॰ स्त्री॰) वीरता, बहादुरी।

जवा (स॰ स्त्री॰) जवति रक्तवर्णत्व गच्छति जु अच् ततः टाप्। १ जवापुष्प, अड़हुल। Chinese rose इसका पर्याय—ओड्रपुष्प, जवा ओड्रा, रक्तपुष्पी, अर्क-पुष्पी, अर्कप्रिया, रामपुष्पी प्रतिका और हरिवल्लभा है। वैद्यक राजनिघण्टुके मतसे इसके गुण—कटु, उष्ण, इन्द्रलुप्तविनाशक, विच्छर्दि और जन्तुजनक तथा सूर्याराधनाके उपयुक्त है। राज वल्लभके मतसे यह मल मूत्रस्तम्भन तथा रेचन कारी है। वैद्यक शास्त्रवालोंका मत है कि जवापुष्प घृतमें भून कर खानेसे स्त्री ऋतुमती होती है।

जवा (हि॰ पु॰) १ लहसुनका एक दाना। २ एक तरह की सिलाई जिसमें तीन बखिया लगती है और इसको चीर कर दोनों ओर तुरप देते हैं।

जवाई (हि॰ स्त्री॰) १ जानेकी क्रिया, गमन २ जानेका भाव। ३ वह धन जो जानेके लिए दिया जाय।

जवाइन (हि॰ स्त्री॰) अजवाइन।

जवाखार (हि॰ पु॰) जौके खारसे बनने वाला एक प्रकारका लवण। वैद्यकमें यह पाचक माना गया है।

जवाड़ी-मन्द्राज प्रान्तका एक पर्वत। यह अक्षा॰ १२ १८ तथा १२ ४४ उ॰ और देशा॰ ७८ ३५´एवं ७९ ११ पू॰ मध्य अवस्थित है। उत्तर अकाटमें इसकी कुछ चोटियां ४००० फुट तक ऊंची हैं। तामिल भाषी मल यालियोंके झोंपड़े इधर उधर पड़े हैं। जलवायु बहुत बुरा नहीं है। दक्षिण-पश्चिम मन्द्राज रेलवे निकलते समय उसकी बहुत भाड़ी कटी। गांजाकी खेती होती है। हिन्दू मन्दिरोंका ध्वंसावशेष विद्यमान है।

जवादि (सं० क्ली०)सुगन्धि द्रव्य भेद, एक तरहकी खुश-बूदार चीज।

"जवादि नीरसं स्निग्धमीषत् पिङ्गलसुगन्धिदं।
आयते बहुलामोदं राज्ञा योग्यञ्च तन्मतम्।"

यह एक प्रकारके मृगके पसीनेसे बनता है। इसके गुण-सुगन्ध, स्निग्ध, उष्ण, सुखावह, वातमें हितकर और राजाओंके लिए आल्हादजनक है। (राजनि०) इसके पर्याय ये हैं—गन्धराज, कृत्रिम, मृगधर्मज, गन्धाढ्य, स्निग्ध, मार्जारिकाद्दम, सुगन्धतैलनिर्यास और कटुमोद।

जवाधिक (सं० त्रि०)१ अत्यन्त वेगयुक्त, बहुत तेज दौड़नेवाला। (पु०) १ अधिक वेगविशिष्ट घोटक, बहुत तेज दौड़नेवाला घोड़ा।

जवान (फा० वि०)१ युवा, तरुण। २ वीर बहादुर। (फा० पु०) ३ मनुष्य। ४ सिपाही। ५ वीर पुरुष।

जवानसिंह—उदयपुरके महाराणा भीमसिंहके पुत्र। १८२८ ई० में इनका राज्याभिषेक हुए था। ये बड़े विलासी और आलसी थे। इनके समयमें भी गवर्मेण्टसे सन्धि-पत्र लिखा गया था। राज्यशासनमें इन्होंने तनिक भी योग न दिया था। इनकी फिजूल-खर्चीने इन्हें कर्ज-दार बना दिया था।

जवानिल (सं० पु०) प्रचण्डवायु, तेज हवा।

जवानी (सं० स्त्री) अजवाइन, जवाइन।

जवानी (फा० स्त्री०) युवावस्था, तरुणाई।

जवापुष्प (सं० पु०) जवा, अड़हुल। जवा देखो।

जवाब (अ० पु०) १ प्रत्युत्तर, उत्तर। २ वह उत्तर जो कार्य रूपमें दिया गया हो, बदला। ३ जोड़, मुकाबले की चीज। ४ नौकरी छूटने की आज्ञा, मौकूफी।

जवाब-तलब (फा० वि०) जिसके सम्बन्धमें समाधान कारक उत्तर मांगा गया है।

जवाबदावा (अ० पु०) वह उत्तर जो प्रतिवादी वादीके निवेदनपत्रके उत्तरमें लिखकर अदालतमें देता है।

जवाबदेह (फा० वि०) उत्तरदाता, जिससे किसी कार्य के बनने बिगड़ने पर पूछ ताछ की जाय, जिम्मेदार।

जवाबदेही (फा० स्त्री०) १ उत्तर देनेकी क्रिया। २ उत्तरदायित्व, जिम्मेदारी।

जवाब-सवाल (अ० पु०) १ प्रश्नोत्तर। २ वाद विवाद।

जवाबी (फा० वि०) उत्तर सम्बन्धी, जिसका जवाब देना हो, जवाबका। जैसे जवाबी कार्ड।

जवार (अ० पु०) १ पड़ोस। २ आस पासका प्रदेश। ३ अवनति, बुरे दिन। ४ झंझट।

जवार (हिं० स्त्री०) जुआर।

जवारा (हिं० पु०) विजयादशमीके दिन यह पवित्र माना गया है। स्त्रियां इसे अपने भाईके कानों पर खोंसती हैं और श्रावणीमें ब्राह्मण अपने यजमानोंको देते हैं।

जवारी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकार की माला। यह जौ, छुहारे, मोती आदि मिला कर गूँथी जाती है। २ तारवाले बाजोंमें षड़जका तार। ३ सारङ्गी, तम्बूरा आदि तारवाले बाजोंमें लकड़ी या हड्डी आदिका वह छोटा टुकड़ा जो नीचेकी ओर बिना जुड़ा हुआ रहता है तथा जिसके ऊपरसे सब तार खूंटियोंकी ओर जाते हैं।

जवाल (अ० पु०) १ अवनति, उतार, घटाव। २ आफत, झंझट, बखेड़ा।

जवाशीर (फा० पु०) एक प्रकारका गन्धविरोजा। यह कुछ पीला रंग लिए बहुत पतला होता है। इसमेंसे ताड़पीन की गंध आती है। यह सिर्फ औषधके काममें आता है।

जवास, जवासा (हिं० पु० एक कांटेदार क्षुप। पर्याय—यवासक, अनन्ता, कण्टकी। यवास देखो।

जवासिया—मध्यभारतके अन्तर्गत मालवा प्रान्तकी एक ठाकुरात।

जवाह (हिं० पु०) आंखका एक रोग, प्रवाल, परवल। इसमें पलकके भीतरकी ओर किनारे पर बाल जम जाते हैं। २ बैलोंको आंखका एक रोग। इसमें पलकके नीचे मांस जम जाता है।

जवाहद (हिं० स्त्री०) बहुत छोटी हद।

जवाहर (अ० पु०) रत्न, मणि।

जवाहरखाना (अ० पु०) बहुतसे रत्न और आभूषण रहनेका स्थान, रत्नकोष, तोशाखाना।

जवाहरात—हीरा, पन्ना, मणि, मुक्तादि रत्न।

जवाहिर (अ० पु०) रत्न, मणि।

जवाहिरकवि—१ हिन्दीके एक कवि। ये हरदोई जिलेके

मिरजापुरके रहनेवाले और बन्दीजन थे। १८८८ ई०में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने जवाहिर रत्नाकर नामक एक ग्रन्थ बनाया था।

२ वैद्यविद्या नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता। ये पन्नाके रहनेवाले और कायस्थ थे। १८३१ ई० में विद्यमान थे।

जवाहिरलाल—एक जैन-हिन्दी ग्रन्थकार। इन्होंने सिद्धचक्र पूजा, सम्मेदशिखरमाहात्म्य पूजाविधान, मोक्षमार पूजा और तीस-चौबीसी पूजा इन ग्रन्थोंकी रचना की है।

जवाहिरसिंह—जाटवंशके एक राजा। इनके पिताका नाम सूरजमल जाट था। १७६३ ई०के दिसम्बर मासमें सूरजमलकी मृत्युके बाद जवाहिरसिंह भरतपुर और डीगके सिंहासन पर बैठे। १७६८ ई में जवाहिरसिंहको गुप्तहत्याके बाद राव रतनसिंह राजगद्दी पर बैठे थे। बहुतोंको सन्देह हुआ कि इन्हीं रतनसिंहने अपने भाईको मारनेके लिए षड़यन्त्र रचा था।

२ एक सिक्ख-सरदार। हीरासिंहकी मृत्युके बाद ये महाराज दिलीपसिंहके मन्त्री नियुक्त हुए थे। १८४५ ई०के २१ सितम्बरको ये लाहोरमें सेनाओंके हाथ मारे गये और इनके पद पर राजा लालसिंह नियुक्त हुए।

३ जौहर नामसे परिचित एक हिन्दू। ये गोपापुरके मुंशी गालिबके शिष्य थे। इन्होंने फारसी और उर्दू भाषामें कई एक दीवान (गजलोंके संग्रह या काव्य) बनाये थे। १८५१ ई०में भी ये जीवित थे।

जवाहिरसिंह—१ वैद्यप्रिया नामक हिन्दी ग्रन्थके प्रणेता। ये पन्नानरेश अमानसिंहके दीवान थे। २ सिंदोके एक कवि। इन्होंने १८८६ संवत्में वाल्मीकीय रामायणका छन्दोबद्ध अनुवाद किया था और मड़चरामा नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ रचा था।

जवाहिरसिंह महाराज—काश्मीरके एक शासनकर्त्ता। ये ध्यानसिंहके पुत्र और महाराज गुलाबसिंहके भतीजे थे।

जवाहिरात (अ० पु०) जवाहरात देखो।

जवाही (हि० वि०) १ जिसको पांवमें जवाह रोग हुआ हो। २ जवाहरोगयुक्त पांव।

जवाक्षा (सं० स्त्री०) यवक्षार।

जविन (सं० पु०) जोकड़पम।

जविन् (सं० त्रि०) जव अस्त्यर्थे इनि। १ वेगयुक्त, तेज। (पु०) जव वाहनम्। १ घोड़ा, हिरन। २ उष्ट्र, ऊँट। ३ घोटक, घोड़ा।

जविनाराम नागर—एक हिन्दू शासनकर्त्ता, इलाहाबादमें इनकी राजधानी थी। १७२० ई० (११३२ हिजरा)में महम्मदशाहके शासनके प्रारम्भमें छविलाराम नागरकी मृत्यु हुई थी। इनकी मरनेके उपरान्त इनके भतीजे गिरिधर अयोध्याके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। १७२४ ई० (११३६ हिजरा)में ये मालवके शासनकर्त्ता नियुक्त किये गये और बुर्हान् उल्-मुल्क सादतखाँ अयोध्याके सूबेदार हुए। १७२८ ई० (११४२ हि०)में महाराष्ट्र राजा साहुके सेनापति बाजीरावके मालव पर आक्रमण करने पर राजा गिरिधरको मृत्यु हो गई और उनके ज्ञातिके राय बहादुर उनके पद पर नियुक्त हुए। रायबहादुरने शत्रुओंके साथ प्रबल पराक्रमसे युद्ध किया; किन्तु १७३० ई० (११४३ हि०) में ये भी मारे गये।

जविष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन जववान् जव इष्ठ। अत्यन्त वेगगामी, बहुत तेज दौड़नेवाला। (ऋक् ७।५१)

जवीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन जववान् जव ईयसुन्। अतिशय वेगयुक्त, बहुत तेज।

जवरखाट—जगरखाट देखो।

जवरिया झील—जररिया झील देखो।

जवैया (हि० वि०) जानेवाला, गमनशील।

जशन (फा० पु०) १ धार्मिक उत्सव। २ उत्सव जलसा। ३ आनन्द, हर्ष। ४ वह नाच या गाना जिसमें कई वेश्याएं एक साथ सम्मिलित हों। अक्सर करके यह नाच या गाना महफिलकी समाप्ति पर होता है।

जशपुर—मध्यभारतका एक करद राज्य। यह अक्षा० २२ १७ एवं २३ १५ उ० और देशा० ८३ ३० तथा ८४ २४ पू० मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १९४८ है। १९०५ ई० तक यह छोटा नागपुरमें सम्मिलित रहा। इसके उत्तर तथा पश्चिम सरगुजा राज्य, पूर्व रांची जिला और दक्षिणको गाङ्गपुर, उदयपुर एवं रायगढ़ है। जशपुरमें जितनी ही ऊंची, उतनी ही नीची जमीन भी है।

नदीसे सोना निकलता है। उसी जैसा जो लोहा मिलता है उसको गला करके बाहर भेज दिया जाता है। जङ्गली पैदावारमें लाह, टसर, और मोमको रफ्तनी होती है।

१८१६ ई०को माधव रावजो भोंसलाने यह राज्य अंगरेजोंको दे डाला था। १२५०) रु० सरगुजाको कर देना पड़ता है। लोकसंख्या १३२११४ है। ५६६ गांव बसे हैं। कुल वर्ष हुए कोरवाओंने विद्रोह करके बड़ा उत्पात मचाया। छत्तोसगढ़ कमिश्नरके अधीन यह राज्य है। वार्षिक आय १२६०००) रु० होता है। ११६ मील सड़क है। मालगुजारो ६०००) रु० आती है।

जशपुर नगर (जगदीशपुर) मध्य प्रान्तके जशपुर राज्यको राजधानी। यह अक्षा० २२° ५३' उ० और देशा० ८४° ८' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १६५४ है। यहां औषधालय, जेल और राजप्रासाद बना है।

जसकरण संघो—मल्लिनाथपुराण-छन्दोबद्ध नामक जैन-ग्रन्थके रचयिता।

जसद (सं० पु०) जस्ता नामकी धातु। जस्ता देखो।

जसदान—बम्बई प्रान्तको काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सोका राज्य। यह अक्षा० २१° ५६' एवं २२° १७' उ० और देशा० ७१° ८' तथा ७१° ३५' पू० मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल २८३ वर्गमोल और लोकसंख्या प्रायः २५७२७ है। क्षत्रिय वंशोय स्वामी यहमके नामानुसार इसका नाम रखा हुआ है। जूनागढ़के गोरी राजत्वकालको यहां एक सुदृढ़ दुर्ग बना। उस समय इसका नाम गोरोगढ़ था। फिर यह खेरडो खुमानोंके हाथ लगा और १६६५ ई० के समय विका खाचरने जस खुमानसे जोत लिया। विजयकर खाचरके समदभाऊ नागरने उसे अधिकार किया था। अन्तका जसदान नवानगरके जामने जीता और जामजसजोके विवाहोपलक्षमें विजयसूर खाचरको सौंपा। १८०७-८ ई० को विजयसूरने अंगरेजों और ग्वालियरके मराठोंसे सन्धि की। उन्हींके वंशधर आजकल राजा हैं। वंश परम्परागत उत्तराधिकारसे राजा होते हैं।

जसदान—काठियावाड़ प्रान्तके जसदान राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ५' उ० और देशा० ७१° २०' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या कोई ४६२८ होगो। यह नगर अतिप्राचोन है। एक सुदृढ़ दुर्ग खड़ा है। विनचियाको अच्छोसो सड़क लगो हुई है। कृषिके लाभार्थ एक कृषिसम्बन्धीय बङ्क खुला है।

जसपुर—युक्त प्रदेशके नैनोताल जिलेको काशीपुर तहसीलका नगर। यह अक्षा० २९° १७' उ० और देशा० ७८° ५०' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या कोई ६४८० होगो। १८५६ ई०को २०वीं धारासे इसका प्रबन्ध किया जाता है। सूतो कपड़ा बहुत तैयार होता है। शक्कर और लकड़ीका भो थोड़ा कारवार है।

जसवन्तनगर—युक्तप्रदेशके इटावा जिला और तहसीलका नगर। यह अक्षा० २६° ५३' उ० और देशा० ७८° ५३' पू०में इष्टइण्डियन रेलवे पर अवस्थित है। लोकसंख्या कोई ५४०५ होगो। मैनपुरोके कायस्थ जसवन्त रायके नाम पर हो उसको यह आख्या दो गयो है। १८५७ ई० १८ मईको बागियोंने नगरका पश्चिमस्थ मन्दिर अधिकार किया था। घो और खारू वा कपड़ेको रफ्तनो होतो है। पोतलको नक्काशोका भो माल बुनता है। सूत, पशु, देश जात द्रव्य और विलातो कपड़ेका भो बड़ा कारवार है।

जसवन्तसागर—बम्बई प्रान्तको बोजापुर पोलिटिकल एजेन्सोका देशो राज्य।

जसानि काठो—मालवप्रदेशको एक जाति। कहा जाता है कि, रामकच्छके पञ्चम पुत्र जसके वंशधर होनेके कारण ये जसनिकाठो नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। प्रवाद है कि, कुन्तोके पुत्र कर्ण, और कौरवोंको सहायतार्थ गोहरणपटु कच्छजातोय काठियोंको लाये थे। कौरवोंको पराजयके बाद वे मालव प्रदेशमें रहने लगे थे।

जसावर—मथुराके पास अरिङ्गकी रहनेवालो एक राजपूत जाति। इनकी संख्या बहुत कम हो है।

जसुरि (सं० पु०) जस्यते मुच्यते हन्यते अनेन जस-उरिन् जसि सहोरुरिन्। उण् २।७३। १ वज्र। २ व्यथित। (त्रि०) ३ उपचययुक्त, नुकसान किया हुआ, बिगड़ा हुआ।

जसुस्वामी (सं० पु०) एक भक्त वैष्णव। ये अन्तर्वेदी (वर्त्तमान—दोआब) में रहते थे। ये अत्यन्त दरिद्र

जस्ता (हिं० पु०) मूल अष्ट धातुओंमेंसे एक धातु। इसका रंग कालापन लिए सफेद होता है। खानिसे निखालिस जस्ता नहीं निकलता। इसके साथ गन्धक, अक्सिजन आदि मिश्रित रहते हैं। भिन्न भिन्न देशोंमें इसके भिन्न भिन्न नाम हैं, जैसे—

देश	नाम
इंग्लैण्ड और फ्रान्स	जिङ्क (Zinc)
जर्मनी	जिङ्क (Zinc)
हलण्ड	स्पेल्टर
इटली और स्पेन	जिङ्क, जिङ्गो
रूसिया	श्पाटेर (Schpater)
नेपाल	दस्त
फारस	कलखुबरो (Oxide of Zinc)
तामिल	मदल तुतम, तातानगम्, वुषे तुतम्
तेलगू	तुतम
मलय	तम्बग पुटी
ब्रह्म	थौट
दाक्षिणात्य	सङ्ग्, बुसरो, सफेद तूंत (Sulphate Zinc)
पञ्जाब	जस्त, जसद, सफेदसिगो
बङ्गाल	दस्ता Impure Calamina)

संस्कृतमें इसको यशद और हिन्दी जस्ता या जस्त कहते हैं। खानसे गन्धकयुक्त जो जस्ता निकलता है, वह अंग्रेजोंमें Sulphide of Zinc अथवा Zinc blende नामसे परिचित है एवं जो अक्सिजन-मिश्रित निकलता है वह Zincite नामसे प्रसिद्ध है।

भारतवर्षके मद्राज, बङ्गाल, राजपूताना, हिमालय, पञ्जाब आदि प्रदेशों और अफगानिस्तान आदि देशोंमें जस्ता निकलता है।

हजारीबाग जिलेके महाबाँक और बड़गुण्डको खानसे, तथा संथाल परगनेमें बेदकी नामक स्थानमें जो गन्धक मिश्रित जस्ता (blende) निकलता है, उसमें भी सीसा और ताम्बा मिला रहता है।

राजपुतानामें उदयपुर राज्यके जवार नामक स्थानसे पहले जस्ता निकाला जाता था। टाड साहबके राजस्थानके पढ़नेसे मालूम होता है कि, किसी समय उक्त स्थानको खानसे २२००० रुपये राजस्वके वसूल होते थे। परन्तु 'राजपुताना-गजेटियर' में यह बात नहीं लिखी है।

कप्तान बुक साहबका कहना है कि, खानमें ३-४ इञ्च मोटी धातु गिराए होते हैं। देशीय लोग उन्हें इकट्ठी करते हैं और चूरा करके आग पर रख कर जस्ता बनाते हैं। ८-९ इञ्च ऊंची घड़िया (मुषा)में उक्त चूराको रख कर उसका मुंह बंद कर देते हैं। २-३ घण्टे में वह गल जाता है। १८१२-१३ ई०में दुर्भिक्षके समय इन खानोंका काम बंद हो गया था।

हिमालय और पञ्जाबके जिगरो नामक स्थानमें काफी जस्ता निकलता है। ऐण्टिमनि (अञ्जन)-की खानके पास ही जस्ता रहता है। गढ़वालके अन्तर्गत पैनाकी ताम्र-खनि और सिमलाके अन्तर्गत सबाथूको सीमाको खानमें तथा काश्मीरमें भी जस्ता उत्पन्न होता है। जौनसार प्रदेशमें गन्धक मिश्रित जस्ताकी खान है।

अफगानिस्तानमें घोरबंद उपत्यकाके उत्तर प्रदेशमें इसकी काफी खानें हैं। स्थानीय लोग इसको जाक (Sulphate of zinc) कहते हैं। यह किसीमें व्यवहृत होता है या नहीं, इस बातका अभी तक पता नहीं लगा।

ब्रह्मदेशके अधीन टाभर और मारगुइ द्वीपमें जस्ता पाया जाता है, परन्तु यह नहीं मालूम हुआ कि उत्तर-ब्रह्ममें मिलता है या नहीं।

सुश्रुतमें औषधके लिए जस्ताका व्यवहार नहीं दीख पड़ता। भावप्रकाशमें रङ्ग-शोधन-प्रणालीको भांति जस्ता वा खर्पर-शोधन प्रणालीका भी कथन है। मूत्र सम्बन्धी वा मूत्र यान्त्रिक पीड़ामें तथा श्वासपीड़ामें भावप्रकाशमें जस्ताका व्यवहार बतलाया है। युक्तप्रान्तमें हिन्दू हकीम लोग पुरातन ज्वर, गौण उपदंश, पुरातन मेह, प्रदर आदि रोगोंमें जस्ता काममें लाते हैं। मुसलमान हकीम घाव और उसके क्षतमें तथा दर्द और सूजनमें यूरोपीय डाक्टरोंकी तरह जस्ताका व्यवहार करते हैं। तामिलके वैद्यगण मिट्टीकी घड़ियामें मनसा-वृक्षकी जातिके एक वृक्ष (Euphorbia nerrifolia) के पत्तेके साथ जस्ताको गलाते हैं। दोनोंके गल जानेसे उसमें आग लग जाती है। उसकी भस्मको दो तीन बार अग्निमें शोधन करके मेह, शुक्रक्षय और अर्श रोगमें

जो छत बनानेके काममें आती हैं। पानीके नल और टेलियाफके तार आदि पर भी इस द्दोकी कलई चढती है। इसको गला कर नाना प्रकारके बरतन, जरूरी चीजे, मूर्ति पुतली आदि भी बनाई जाती हैं। इससे एक तरहका तैलाक्त सफेद रंग भी बनता है जो लोहे आदिकी चीजों पर चढ़ाया जाता है। इस देशमें मुसलमानोंके व्यवहारार्थ कम कोमतके बरतन भी इसीसे बनते हैं, जैसे रकाबी, गिलास, हुक्का आदि। स्पेलटर वा जस्ता की बडी बडी चद्दरोंसे पनालेके नल आदि भी बनते हैं। टीन की जगह भी ज्यादा टिकाऊ बनानेके लिए जस्ता व्यवहृत होता है। जहाजोंके नीचे जस्ताकी चद्दर लगाई जाती है। साचेमें ढाल कर भी इससे नाना प्रकार की चीजे बनाई जाती हैं। अमेरिकाके युक्तराज्यमें सबसे अधिक जस्ता उत्पन्न होता है।

यूरोपमें १८वीं शताब्दीसे पहले जस्ता उत्पन्न नहीं होता था। ष्ट्राबोके ग्रन्थमें False silver नामकी एक धातुका उल्लेख है। १८वीं शताब्दी तक पुर्त्तगीज लोग भारतवर्ष और चीनसे स्पेलटर और तुतेनाग नामक जस्ता ले जाकर यूरोपमें बेचते थे। उस समय पीतल बनानेके सिवा और किसी कार्यमें इसका व्यवहार न होता था। और न इस बातको कोई जानते ही थे कि जस्ता एक स्वतन्त्र धातु है। १८०५ ई०में सिल्वेष्टर नामक एक व्यक्तिने पहले पहल जस्ताका पेटेण्ट प्राप्त किया। अमेरिकाके अन्तर्गत निउजारसी नामक स्थान की Red Zinc वा लाल-जस्तकी खान ही जगत्प्रसिद्ध थी।

जस्ताकी सहायतासे Zincograph नामक एक प्रकारकी चित्रप्रस्तुत-प्रणाली उद्भावित हुई है, जिससे कागज पर फोटोग्राफकी तरह तसवीर बन जाती है। लिथोग्राफमें जैसे पत्थर पर तसवीर बनाई जाती है, वैसे ही इसमें जिङ्कप्लेट पर तसवीर खींची जाती है। Zinc Ethyl नामक एक प्रकार की तरल धातु भी इसीसे उत्पन्न होती है। यह हवाके लगते ही जलने लगती है। और उसमेंसे बहुत कडी गन्ध निकला करती है। फ्राङ्कलैण्ड नामके किसी व्यक्तिने इसे पहले पहल बनाया था।

डाक्टर लोग जस्तासे नाना प्रकार तरल, चूर्ण और घृतवत् पदार्थ बना कर तरह तरहके रोगोंमें उनका व्यवहार करते हैं। प्राय. सब ही देशोंके चिकित्साशास्त्रोंमें जस्ता की रोगोपशमता शक्तिका उल्लेख पाया जाता है।

जस्वन् (सं० त्रि०) जस वनिप्। उपक्षयकर्त्ता, बिगाड़ने या नाश करने वाला।

जम्मो—मध्यभारत एजेन्सीके बघेलखण्ड पोलिटिकल चार्जकी एक सनदप्राप्त रियासत। यह अक्षा० २४ २०´ एवं २४° २८´ उ० और देशा० ८०° २८ तथा ८०° ४०´ पू० मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ७२ वर्गमील है। इसके उत्तर, पूर्व तथा दक्षिण नागोद राज्य और पश्चिम अजयगढ राज्य हैं। लोकसंख्या कोई ७२०८ है। जागीरदार बुंदेला राजपूत हैं। १८ वीं शताब्दीके आदि भागमें यह राज्य बांदाके अली बहादुरने अधिकार किया था। अंगरेजी अधिकार होने पर १८१६ ई० की मूर्तिसिंहको अलग सनद दी गयी। इसमें ६० गांव बसे हैं। कुल आमदनी २३००० रु० है।

राजधानी जस्सो अक्षा० २४° ३०´ उ० और देशा० ८०° ३० पू०में एक उम्दा झील किनारे विद्यमान है। कहते हैं, यह नाम यशोवर्द्धी नगर शब्दका सक्षिप्त रूप है। विभिन्न समयमें इसको महेन्द्री नगर, अभरपुरी और हरदीनगर कहा जाता रहा है। नगरमें एक छोटा मन्दिर, आश्चर्यमय लिङ्ग और कई एक सतीचौरा है। इसके चतुःपार्श्वमें जैन तथा हिन्दू कीर्तियोंका ध्वंसावशेष पडा है।

जह (हिं० क्रि० वि०) जहां देखो।

जहक (सं० पु०) जहाति-परित्यजति हा क हा-कन् द्वित्वं। १ काल, समय। (त्रि०) २ त्यागकारक, छोडनेवाला। ३ निर्मोह, जिसके मनमें मोह या ममता न हो। (स्त्री०) टाप्। ४ गात्रसङ्कोचनी, वह जो शरीरको सिकुडाती है।

जहतिया (हिं पु०) वह जो भूमिका कर वसूल करता हो, जगात (चंगो) उगानेवाला।

जहत्स्वार्था (सं० स्त्री०) जहत्स्वार्थोऽर्था। लक्षणाभेद एक

प्रकारकी लक्षणा। इसमें पद वा वाक्य अपनी वाच्यार्थ को छोड़ कर अभिप्रेत अर्थको प्रकट करता है। यथा "आयुर्घृतं" आयु ही घृत है, ऐसा कहनेसे घृत हो एक मात्र आयुका कारण जान पड़ता है, घृत भोजन ही एक मात्र आयुवर्द्धक है, इतना परित्याग आयुष्यका कारण है, अर्थात् जिस लक्षणसे स्वार्थ हो एक मात्र परित्यक्त होता है, उन्हींको जहत्स्वार्था कहते हैं। लक्षण देखो।

जहदजहल्लक्षणा (स॰ स्त्री॰) जहत् अजहत् लक्षणा कार्यों या। लक्षणाभेद, एक प्रकारकी लक्षणा। इसमें बोलने वालेको शब्दके वाच्यार्थसे निकलनेवाले कई एक भावोंमें कुछका परित्याग कर केवल किसी एकका ग्रहण अभिप्रेत होता है।

जहदना (हिं॰ क्रि॰ अ॰) १ कीचड़ होना दलदल हो जाना। २ शिथिल पड़ना, थक जाना।

जहदा (हिं॰ पु॰) अधिक कीचड़ दलदल।

जहन्नुम (अ॰ पु॰) १ मुसलमानोंका नरक या दोजख। मुसलमानोंके शास्त्रोंमें इन सात दोजखोंका वर्णन मिलता है—मुसलमानोंका जहन्नुम इसाईयोंका लतमा, यहूदियोंका हुतमा साबियोंनोंका सैर, पारसी अग्नि उपासकोंका सगर, पौत्तलिकोंका जहम और कपटियोंके लिए हबीया निर्दिष्ट है। २ वह जगह जहां बहुत ज्यादा तकलीफ और दुःख हो।

जहन्नुमरसीद (फा॰ वि॰ जो नरकमें गया हो, दोजखी

जहन्नुमी (फा॰ वि॰) नारकी नरकमें जानेवाला।

जहमत (अ॰ स्त्री॰) १ आपत्ति, मुसीबत, आफत। २ झंझट, बखेड़ा।

जहर (फा॰ पु॰) १ विष गरल वह चीज जो शरीरके भीतर पहुंच कर प्राण ले ले या किसी अङ्गमें पहुंच कर उसे रोगी बना दे। २ अप्रिय काम वह बात जो अच्छी न लगती हो। (वि॰) ३ प्राणनाशक, मार डालनेवाला। ४ हानिकारक, नुकसान पहुंचानेवाला।

जहरगत (हिं॰ स्त्री॰) घूंट काट कर गानेका एक तरीका।

जहरदार (फा॰ वि॰) विषाक्त, जहरीला।

जहरपुरदौड़—बङ्गालके अन्तर्गत मालदह जिलेको एक

नहर। यह नहरको पदमा नामक एक शाखासे निकल कर काइमारीके पास महानन्दामें जा मिली है। इसे देख कर यही अनुमान होता है कि किसी समय यह एक नदी थी, पीछे नाव चलानेके लिए खोद कर गहरी की गई है। परन्तु किस समय ऐसा हुआ, सो नहीं मालूम।

जहरबाद (फा॰ पु॰) एक प्रकारका भय कर और विषाक्त फोड़ा। यह फोड़ा विगड़नेसे उत्पन्न होता है। इसके प्रारम्भमें शरीरके किसी अङ्गमें सूजन और जलन होती है। यह रोग सिर्फ मनुष्यको ही नहीं, बल्कि घोड़ों बैलों और हाथियोंको भी हुआ करता है। ऐसा देखा गया है कि इस फोड़ेके अच्छे हो जाने पर भी रोगी अधिक दिनों तक नहीं जीता।

जहरमोहरा (फा॰ पु॰) एक प्रकारका काला पत्थर। यह सांप काटनेके कारण शरीरमें चढ़े विषको खींच लेता है। सांपके काटे हुए स्थान पर यह रख दिया जाता है। इसमें ऐसा गुण है कि यह रखे हुए स्थानसे जब तक शरीरका सम्पूर्ण विष खींच नहीं लेता तब तक उस स्थानको नहीं छोड़ता है। प्रवाद है कि यह पत्थर बड़े मेंढकके सिरमेंसे निकलता है। २ अनेक तरहके विषों को हरनेवाला एक प्रकारका हरे रंगका पत्थर। यह बड़ा ठण्डा होता है। लोग इसे गरमीके दिनोंमें शरबतके साथ घोर कर पीते हैं।

जहरीला (हिं॰ वि॰) विषाक्त जिसमें जहर हो।

जहल्लक्षणा (स॰ स्त्री॰) जहत् स्वार्था। लक्षणाभेद, एक प्रकारकी लक्षणा। लक्षण देखो।

जहां (हिं॰ क्रि॰ वि॰) १ स्थानसूचक एक शब्द, जिस स्थान पर जिस जगह। २ सब स्थानों पर सब जगह। ३ जहान, दुनिया संसार। इस शब्दका (इस रूपमें) व्यवहार सिर्फ कविता या यौगिक शब्दोंमें होता है। जैसे—जहांगीर, जहांपनाह।

जहांगीर (जहान्‌गीर)—बादशाह अकबरके ज्येष्ठ पुत्र। १५६९ ई॰में २ सितम्बरको, अकबरकी प्रिय महिषी जयपुरराजकी पुत्री मरियम जमानीके गर्भसे इनका जन्म हुआ। मकापन्थोंने मुसलमान शाह सलीम चिश्तीके वरसे इनको पाया था इसलिये इनका

नाम महम्मुद नूरउद्दीन सलीम मिर्जा रक्खा। बादशाह अकबरने इनके जन्मके उपलक्षमें विविध उत्सव आदि किये थे। यह पुत्र भी सम्राट्‌के अत्यन्त प्रिय थे।

१५८५ ई०में सलीमके साथ आमेरके राजा भगवानदास की कन्या और प्रख्यात राजा मानसिंहकी भगिनी जोधाबाईका विवाह हुआ।

१५८७ ई० में रायसिंहने कुमार सलीमके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया।

बादशाहने, बचपनसे सलीमको विविध शिक्षाएँ दी थीं और उन्हें सच्चरित्र बनानेके लिए पूरी तौरसे कोशिश की थी। परन्तु बादशाह की कोशिश विशेष कार्यकारी नहीं हुई। सलीम तरह तरह की कुक्रियाओंमें आसक्त हो गये। इन्होंने युद्धविद्या सीख ली थी। बादशाहने इन्हें राजा मानसिंहके साथ वीरकेशरी महाराणा प्रताप सिंहके विरुद्ध प्रसिद्ध हलदीघाटके युद्धमें भेजा था। इस युद्धसे ये बड़ी मुशकिलसे लौट पाये थे।

अकबर शेष अवस्थामें अपने प्रियपुत्र सलीमके लिए मानसिक कष्टसे पीड़ित हुए थे, पर अन्तमें सलीमने भी अपने अपराधको समझ कर पिताके पास जा मुआफी मांगी थी। १६०५ ई० में मृत्युशय्या पर पड़े हुए अकबरने पुत्रको बुलाया और राज्यके प्रधान प्रधान अमीर उमरावोंके सामने सलीमको सम्राट्-पद पर मनोनीत कर उन्हें राजकीय परिच्छद, मुकुट और तलवारसे सुसज्जित करनेके लिए अनुमति दी।

१०१४ हिजरा, ८ जुमादस्सानी (१६०५ ई०, १२ अक्टोबर) वृहस्पतिवारको ३८ वर्ष की उम्रमें सलीमने आगरेके किलेमें पितृसिंहासन पर बैठ कर 'जहांगीर' अर्थात् 'विश्वविजयी' उपाधि पाई। आगरेके किलेके देहली-दरवाजेके एक पत्थर पर जहांगीरकी अभिषेक-घटना लिखी हुई है। इसकी अन्तिम पंक्तिमें इस प्रकार लिखा है—"हमारे बादशाह जहांगीर दुनियाके बादशाह हों, १०१४।" जहांगीरके अभिषेकके उपलक्षमें जिन्होंने आनन्दसूचक कविताएँ बनाई थीं, उन कवियोंको तथा गरीबोंको बहुत धन दिया गया था।

जहांगीरने सिंहासन पर बैठ कर यह घोषणा की कि, वे निरपेक्ष भावसे और शान्तिमयी राजनीति पर राज्यशासन करेंगे। किन्तु उनके असत् चरित्रने इस विषयमें प्रधान अन्तरायका काम किया। आन्तरिक इच्छा रहने पर भी वे सुशृङ्खलतासे राज्य शासन न कर सके थे। परन्तु इतना होनेपर भी अकबर द्वारा प्रतिष्ठित राज्य की नींव उस समय तक खूब मजबूत थी। कुछ भी हो, जहांगीरने सम्राट् हो कर सुशासनका कुछ आभास दिया।

पहले हर एक की तकदीर इतनी जोरदार नहीं होती थी कि, जिससे वे बादशाहके दर्शन पासकें, कोई भी विचारका प्रार्थी सम्राट्‌के सामने नहीं पहुंच सकता था। कर्मचारियोंको डालियां या उत्कोच बिना दिये कोई भी अपनी फरियादको बादशाहके कानों तक न पहुंचा सकता था। इस दिक्कतको दूर करनेके लिए तथा जिससे सब कोई सहजमें सुविचारको पा सकें, इसलिए नवीन सम्राट् जहांगीरने एक सोने की जंजीर बनवाई। इसके एक छोरका सम्बन्ध राजप्रासादके प्राचीरके साथ और दूसरे छोरका जमुना किनारेके एक पत्थरसे था। यह जंजीर ३० गज लम्बी थी और इसमें सोनेके ६० घण्टे बंधे हुए थे। ये घण्टे बादशाहके घरके घण्टोंसे संयुक्त थे।

यदि कोई आदमी इस जंजीरको हिलाकर घण्टा बजाता, तो उसी समय बादशाहको मालूम हो जाता और वे सामने आ जाते थे। हर एक आदमी घण्टोंको हिलाकर बादशाहके पास विचार प्रार्थना कर सकता था। इसलिए कर्मचारी गण उत्पीड़ित व्यक्तियोंके पाससे किसी तरहका उत्कोच न ले सकते थे और उत्पीड़ित प्रजा कर्मचारियों की इच्छाके विरुद्ध भी सम्राट्‌के सामने उपस्थित हो सकते थे।

बादशाह जहांगीरने कर वसूल करनेके अनेक दोषोंका सस्कार किया। उन्होंने समगा और मीरबाड़ी नामके दो कर बिल्कुल ही उठा दिये। इसके सिवा जायगीरदार लोग प्रजासे जो अन्याय कर लिया करते थे, वे भी उठा दिये। नौकालयसे दूरवर्ती मार्गमें जहां कि चोर और डकैतोंका डर रहता था, उन स्थानोंमें सराय बनवाने और कुएँ खुदवानेके लिए जागीरदारोंको हुक्म दिया। और खालिसा जमीनके निकटवर्ती स्थानपर

सराय बनाने और कुएँ खुदवानेके लिए राजकर्मचारियोंको भी आदेश दिया। इसके अतिरिक्त यह नियम भी बना दिये कि व्यक्तियोंकी बिना अनुमतिके कोई भी व्यक्ति उनके असबाबको न खोल सकेगा, कोई भी सैनिक या राजकर्मचारी घरमें न ठहर सकेगा कोई भी व्यक्ति मादक मद्य, प्रस्तुत व्यवहार और बेच न सकेगा, कोई भी जागीरदार किसी भी प्रजाकी सम्पत्ति को बलपूर्वक छीन न सकेगा अथवा सम्राट् की अनुमतिके बिना प्रजासाधारणके साथ मिल न सकेंगे।

अकबर बादशाहके समयमें कभी कभी अपराधियोंको नाक या कान काट लिये जाते थे। जहांगीरने इस प्रथाको भी बिलकुल बन्द कर दिया।

इन्होंने प्रधान प्रधान शहरोंमें अस्पताल कायम किये और अच्छी चिकित्सा हो, इसलिए योग्य चिकित्सकोंका भी प्रबन्ध किया। सप्ताहमें दो दिन, बृहस्पतिवार (जहांगीरके राज्याभिषेकका दिन) और रविवार (अकबरका जन्म दिवस)को पशुहत्या बन्द की गई।

इन्होंने अपने पिताके रक्खे हुए कर्मचारियोंको गुणके अनुसार—कुछ कुछ दरजा बढ़ा दी। बहुत दिनोंसे जो कैदमें सड़ रहे थे, उन्हें मुक्त कर दिया। इन्होंने अपने पिताके द्वारा रक्खे गये कर्मचारियोंमेंसे बहुतोंको तो अपने अपने पद पर रहने दिया, किन्तु जिन्होंने अकबर प्रवर्त्तित धर्ममतका अवलम्बन किया था, उनको पदच्युत कर दिया। पहले जैसा इसलाम धर्मका आचार व्यवहार था, उसी नियमके अनुसार चलनेके लिए प्रजाको आज्ञा दी गई। इन्होंने अपने प्रिय मित्र शरीफखांको प्रधान मन्त्री और सैयदखांको पञ्जाबका शासनकर्त्ता नियुक्त किया।

बादशाह जहांगीरने हरिदास रायको विक्रमाजितकी उपाधि दे कर उन्हें गोलन्दाज सेनाका अध्यक्ष और राजा मानसिंहके पुत्र भावसिंहको एक मनसबदार बना दिया। पीछे घयूरबेगके पुत्र जमानाबेग महबत खांकी उपाधिसे विभूषित हो एक मनसबदार हुए।

राजा नरसिंह देव नामक एक बुंदेले राजपूतने शेख अबुलफजलको मार दिया जिससे जहांगीरने उन्हें भी उच्च पद दिया।

राजा मानसिंहकी बहन जोधाबाईके गर्भसे सलीमका खुसरू नामका एक पुत्र हुआ। अकबरकी शेष दशामें इन्हींको बादशाह बनानेकी कोशिश की गई थी, पर सब व्यर्थ हुई। जहांगीरने सिंहासन पर बैठ कर खुसरूको कैद किया, पर कुछ मास पीछे एक दिन रात्रिके समय खुसरूने अकबरकी कब्र देखनेकी इच्छा प्रकट की। जहांगीरके आदेश देने पर खुसरूके साथ १० अश्वारोही अनुचर जानेको तैयार हुए। खुसरू उनके साथ पञ्जाबकी तरफ चल दिये। खुसरूके विद्रोही हो कर भाग जानेकी खबर सुनते ही बादशाहने शेख फरीद बुखारीको उनका अनुसरण करनेके लिए आदेश दिया और दूसरे दिन प्रातः काल ही उन्होंने खुद उनका अनुसरण किया। खुसरूने रास्तेमें हुसेन बेग बाकि साथ मिल कर उन्हें सेनापति नियुक्त किया और रुपये इकट्ठे करनेके लिए वणिक् तथा राहगीरोंका सर्वस्व लूटना शुरू कर दिया।

जहांगीर आगरेसे चलते समय, तमाम राजकार्यका भार इतिमाद्‌उद्दौला पर छोड़ आये थे। हिन्दान नामक स्थान पर पहुंच कर इन्होंने दोस्त मुहम्मदको अपना प्रतिनिधि बना कर आगरे भेज दिया। इधर दिलावर खांने खुसरूके आनेकी खबर सुन अपने पुत्रको यमुना पार हो कर बढ़नेके लिए कहला भेजा और वे खुद लाहोरकी तरफ चल दिये। दिलावर खां बहुत ही जल्दी लाहोरकी तरफ अग्रसर होने लगे और राहमें सबको खुसरूके विद्रोही होनेका सम्वाद देते हुए सावधान रहनेके लिए कहते चले।

२४ जिलहज्ज—खुसरूके पाँच अनुचर पकड़े और सम्राट्के सामने लाये गये। बादशाहने उनमेंसे दो को तो हाथीके पैर तले दबा कर मार देनेका और अन्य लोगोंको कैद कर रखनेका हुक्म दिया। दिलावरखांने अग्रसर हो कर लाहोर दुर्गमें प्रवेश किया और वे युद्धके लिए तैयार हो गये। इसके दो दिन बाद ही खुसरू मात्र १२०० सेनाके साथ लाहोर दुर्गके पास उपस्थित हुए। खुसरूने अपने अनुचरों को नगरके द्वारमें आग लगा देनेकी अनुमति दी और कहा कि, नगर अधिकृत होने पर सेनाके लोग सात दिनों तक नगर लूट सकेंगे।

भी हाथी पर चढ़ा कर यहां लाया गया।*

शेख फरीदको पुरस्कार स्वरूप मुर्तजा खाँकी उपाधि दी गई। विपाशाके निकटवर्ती भिन्न भिन्न जागीरदारोंने खुसरूको पकड़नेमें सहायता दी थी, उन सबको फिर जागीरें प्राप्त हुईं। इन जमींदारोंमेंसे कमाल चौधरीके दामाद कमालने ही विशेष सहायता दी थी। सिक्खोंके चतुर्थ गुरु अर्जुन मल (आदिग्रन्थ के संकलयिता) इस अभियोगमें कि—उन्होंने विद्रोही खुसरूको धर्मसमरमें सहयोग किया—अभियुक्त हुए। आखिर इनको भी निर्जन स्थानमें कैद कर विशेष यन्त्रणा द्वारा मार दिया गया। परन्तु अर्जुनमलकी मृत्युके विषयमें सिक्खोंका इस प्रकार है कि एक दिन वे चन्द्रभागा नदीमें स्नान करते करते एकाएक अदृश्य हो गये। सिक्खोंके मतसे अर्जुनमल हो उनके शेष और प्रथम शास्त्रगुरु हैं तथा उनकी मृत्यु होनेके कारण ही यह शान्तिप्रिय सिक्ख जाति संग्राम प्रिय हो गई है।

खुसरूको दूरवर्ती किसी कारागारमें नहीं भेजा गया। बादशाहने उन्हें अपने साथ ही रक्खा।

जहांगीरने लाहोरमें ही सम्वाद पाया कि पारस्य बादशाहने कान्दाहार पर चढ़ाई की है। उन्होंने माओ-बेगकी अधीनतामें एक दल सेना भेज दी। कुछ दिन बाद वे मिर्जा खाँ, मिरन सदर और जहांगीर मरोव-के ऊपर लाहोरकी रक्षाका भार दे कर खुद काबुलकी तरफ चल दिये।

१६०६ ई०में (१०१५ हिजरा) में बादशाह काबुल को तरफ गये। जहांगीर दिलामेज उद्यानमें चार दिन ठहर कर हरिपुरमें आकर ठहरे। यहांसे फिर जहांगीरपुरको आये। यहां जहांगीर पहले शिकार खेला करते थे। इस ग्रामके पास सम्राटके आदेशसे एक मृगकी कब्रके ऊपर एक मसजिद बनी थी। इस मृगको जहांगीरने खुद पकड़ा था और इसी लिए वह उनका बहुत प्यारा हो गया था। यह मृग अन्य मृगोंको फुसला लाता था। मसजिदकी दीवार पर मुल्ला महम्मद हुसैनकी लिखी हुई एक इबारत मिलती है—"इस आनन्दमय स्थानमें बादशाह नूर-उद्-दीन महम्मद द्वारा एक मृग पकड़ा गया था और वह एक महीनेमें खूब हिल गया था यह बादशाहका बहुत प्यारा था। जहांगीर प्यारसे उसको राजा कह कर पुकारते थे।" कुछ भी हो बादशाहने सबको बार यहां आकर भी इसके आसपासमें शिकार न किया। इन्होंने धीरे धीरे अग्रसर होकर जमन खाँ कोकाके पुत्र जाफर खाँको आमरादि और अटककी सरकार प्रदेशका शासनकर्ता बना दिया और यह हुक्म दिया कि बादशाहकी फौजके लाहोर छोड़नेके पहलेसे आतुरके सर्दारोंको गिरफ्तार कर कैद कर दिया जाय। सिन्धुनदके किनारे पहुंचने पर सहायताओंको २५०० सेनाका अधिनायक बना दिया। बादशाह पेशावर

* पंजाबके इतिहासलेखक सैयद महम्मद लतीफ कहते हैं कि, खुसरूकी माता अपने बेटेकी दुर्दशा देख न सकी और इसी दुःखसे उन्होंने जहर खा कर अपने प्राण गमा दिये। अकबर बादशाहके लेखक यह लिखते हैं कि राजपूतनीसे उत्पन्न और खुसरूकी माता शाहबेगम (जहांगीर) की प्रियतमा भार्या थी। वे अन्तःपुरस्थ किसी भी स्त्रीकी सफलता नहीं सह सकती थीं। एक दिन जहांगीरके शिकार खेलनेके लिए चले जाने पीछे अन्तःपुरकी किसी स्त्रीके साथ कोप व ईर्षा कलह हो गई। शीघ्र ही इस अपमानको सह न सकी और अफीम खा कर उन्होंने आत्म हत्या कर ली। जहांगीर शिकारसे लौटे तो उन्हें बेगमको जीवित न मिली। इसके शोकसे जहांगीर बहुत दिनों तक उदास रहे थे। आखिर अकबरने जा कर उनको सान्त्वना दी थी। किन्तु जहांगीर स्वरचित जीवनवृत्तान्तमें शोकाकुल ईर्षा आत्मघातका कारण दूसरा ही बतलाते हैं। वे लिखते हैं कि मेरे बादशाह होनेसे पहले खुसरूकी माता अपने पुत्र (खुसरू) के अन्याय व्यवहारसे अत्यन्त मर्माहत हुई और इसी कारण उन्होंने अफीम खा कर आत्मघात कर लिया। वह मुझे (जहांगीरको) प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती थी। और तो क्या, वह मेरे एक केशके लिए सैकड़ों पुत्रों और भ्राताओंको छोड़नेमें जरा भी आनाकानी न करती थी। वह हमेशा खुसरूको मेरे अनुग्रहकी बात कहती थी, परन्तु खुसरू उनकी बात पर जरा भी ध्यान न देता था। जब देखा कि, पुत्रका चरित्र किसी तरह भी परिवर्तित न होगा, तब उन्होंने यह सोच कर कि—शायद मेरे मरने पर खुसरू अपनी भूलोंको समझ सके और पुनः बाप—मेरी अनुरक्तिसे आशीर्वाद प्राप्त कर अपनी रक्षा कर सके। (१०११ हिजरा, २६ जेलहज्ज)

पहुंच कर सरदारखांके उद्यानमें ठहरे। इस स्थान पर गुलफजाई अफगानोंने आ कर जहांगीरकी वशता स्वीकार की। शेरखां नामके एक अफगानको उक्त प्रदेशका शासनकर्त्ता बना दिया गया। ३री सफर तारीखको राजा विक्रमजित्के पुत्र कल्याण गुजरातसे बादशाहके पास आये। इनके विरुद्ध बहुतसे अभियोग लगाये गये थे। इन्होंने एक मुसलमीन वेश्याको अपने घर रख लिया था तथा उसके पिता और माताकी हत्या कर, उन्हें अपने घरमें गाड़ दिया था। इसलिए जहांगीरने उनकी जीभ काट कर जन्म भर उन्हें कैद कर रखनेका हुक्म दिया। बादशाह खुसरूको शृङ्खलाबद्ध कर काबुलमें लेते आये थे। यहां आकर उन्होंने खुसरूकी जंजीरें खोल दीं। खुसरूने फतेउल्ला, नूरउद्दीन, आसफखां और सरीफखां आदि प्रायः ५०० आदमियोंकी सहायतासे बादशाहको मार डालनेकी कोशिश की। परन्तु उनमेंसे एकने कुमार खुर्रम (पीछे शाहजहां) के दीवान ख्वाजा कुरासमीसे यह बात कह दी। खुर्रमने बादशाहसे कहा। उन्होंने फतेउल्लाको कैद कर दिया और प्रधान प्रधान ३—४ षड़यन्त्रकारियोंको मार डालनेके लिए हुक्म दिया।

१६०८ ई०में बादशाहने राजा मानसिंहके ज्येष्ठपुत्र जगत्सिंहकी कन्याके साथ अपना विवाह करनेके अभिप्रायसे खर्चके लिए ८००००) रुपये भेज दिये। ४थी रबि-उल अव्वल तारीखको जगत्सिंहकी कन्या बादशाहके अन्तःपुरमें भेजी गई। इसी समय जहांगीरने चित्तौरके राना अमरसिंहके विरुद्ध महाबतखांको भेज दिया।

दिल्लीश्वरने सोचा कि, भारतके हिन्दू और मुसलमान सब ही जब उनके वशीभूत हो गये हैं तब राना ही क्यों मस्तक उठाये रहें? का पुरुष अमरसिंहने जब युद्धके लिए अनिच्छा प्रकट की, तब सर्दार कुलतिलक चन्दावत् और शालुम्ब्रा वीरोंने जबरन उनके द्वारा युद्ध घोषणा करवा दी। इस युद्धमें बादशाह जहांगीरका मनोरथ सफल न हुआ। कुछ भी हो, युवराज खुर्रमके कनिष्ठ मातुलने इस युद्धमें बादशाह की तरफसे विशेष साहसिकताका परिचय दिया था।

दाक्षिणात्यमें ज्यादा गड़बड़ी फैल जानेके कारण (१६०८ ई० में) सम्राट्-कुमार पारविज वहां भेजनेके लिए मनोनीत हुए। इसी समय इङ्गलैण्डके वणिक् सम्प्रदायने भारतमें वाणिज्य करनेका अधिकार प्राप्त करनेके लिए हकीनस्को जहांगीरके दरबारमें दूतस्वरूप भेजा।

हकीनस् १६०८ ई० में १६ अप्रैलको सूरत आ पहुंचे। व्यवसायके सुभीतेके लिए इन्होंने कैसी २ प्रार्थनाएँ कीं, बादशाहने उन सबमें अपनी स्वीकारता दी और हकिनस्को वार्षिक ३०००) रुपये वेतन दे कर अंगरेजोंका दूतस्वरूप उन्हें दरबारमें रखनेकी इच्छा प्रकट की। हकिनस्ने अर्थके लोभसे कार्य ग्रहण कर लिया। हकीनस् सम्राट्के इतने प्रियपात्र हो गये कि, बादशाहने दिल्लीके अन्तःपुर की एक अर्मनी महिलाके साथ उनका विवाह कर दिया। कुछ भी हो, सम्राट्के साथ अंगरेजोंकी जो सन्धि हुई, भारतके पर्त्तुगीज लोग उसे तुड़वानेकी कोशिश करने लगे और कर्मचारियोंको घूस दे कर वे इस विषयमें कृतकार्य भी हुए। कर्मचारियोंने सम्राट्को समझा दिया कि, अंगरेजोंके साथ सन्धि होने पर जितने सुफलकी सम्भावना है, उससे कहीं अधिक अनिष्ट होनेकी सम्भावना पर्त्तुगीजोंसे मेल न होनेसे है। जहांगीरने इस बातको ठीक मान कर हकीनस्को शीघ्र ही भारत छोड़ कर चले जानेकी आज्ञा दी।

१६१० ई०में कुतुब नामका एक फकीर पटनाके पास उज्जयनीमें आकर रहने लगा। उसने वहांके बहुतसे असत् लोगोंके साथ मिल कर अपना खुसरू नामसे परिचय दिया। उसने कहा कि, "हम कैदखानेसे भाग आये हैं, और वहां रहते समय हमारी आंखों पर गरम कटोरी बांध दी जाती थीं, इसलिए आंखों पर दाग पड़ गये हैं"।

इस प्रकार परिचय देनेसे कुछ लोगोंने आकर उसका साथ दिया। इन लोगोंके साथ कुतुबने पटनामें प्रवेश कर वहांके दुर्ग पर अधिकार किया। उस समय पटनाके शासनकर्त्ता अफजल खां, शेख बनारसी और गयास जैन-खानी पर नगररक्षाका भार देकर गोरखपुरमें अपनी नयी जागीरमें गये हुए थे। विद्रोहियोंके दुर्गमें प्रवेश करने पर दुर्गरक्षकोंने भाग कर अफजलखांके पास

जानेका प्रयत्न किया। उधरसे अफजलखां भी इस सम्बादको पाकर बहुत जल्द पटना की तरफ रवाना हुए। बार बार लोगोंको चेतावनी दी गई कि यह अमली कुतब नहीं है। शेखबनारसी कुतुबने जब अफजलखांके आनेकी खबर सुनी तब वह दुर्ग छोड़कर युद्ध करनेको अग्रसर हुए, किन्तु अन्तमें उसे परास्त हो कर भागना पड़ा। पीछे फिर उन लोगोंने अफजलखांके मकान पर कब्जा किया। आखिरकार कुतुब अपने साथियोंके समय मरने देख अफजलके सामने आ खड़ा हुआ। अफजलने उसी समय उसको मार डाला। सम्राट के पास सम्वाद पहुंचने पर उन्होंने शेख बनारसी गयासदिवानी तथा अन्यान्य कर्मचारियोंको बुला भेजा। उन विद्रोहियोंको फटे पुराने कपड़े पहना कर तथा दाढ़ी मूछ मुड़ा कर शहरके चारों तरफ घुमाया गया।

१६१० ई०में अहमदनगरमें विद्रोह उपस्थित हुआ। खानखानान्को कुमार पारविजका सहकारी बना कर दाक्षिणात्यकी तरफ भेजा गया। उन्होंने बुरहानपुर पहुंच कर सेनाको बालाघाट भेज दिया। वहां पहुंचने पर कर्मचारियोंमें परस्पर झगड़ा हो गया। सेना बहुत नष्ट गई। चावल और खाद्य सामग्रीका भी अभाव हो गया। इसलिए सेना फिर बुरहानपुर भेजी गई। इन सब असुविधाओंके कारण शत्रुओंसे कुछ दिनोंके लिए सन्धि कर ली गई। खानखानान्के विरुद्ध नाना रूप अभियोग होने लगे। इस पर बादशाहने खानखानान्को वहांसे खारिज कर दिया और उनकी जगह खांजहान्को भेज दिया।

१६११ ई०में जहांगीरके साथ मिर्जा गयासबेगकी कन्या नूरमहल (नूरजहान्) का विवाह हुआ।

इयाजाबादके वजीर ख्वाजा महम्मद शरीफकी मृत्युके उपरान्त उनके पुत्र मिर्जा गयासबेग अत्यन्त दारिद्र्य-पीड़ित हो कर दो पुत्र और एक कन्याको लेकर हिन्दुस्तानकी तरफ आ रहे थे। इस समय उनकी स्त्री गर्भवती थी; इस गर्भसे भारतकी भावी सम्राज्ञीका जन्म हुआ। ये लोग जिन पथिकोंके साथ आ रहे थे उन लोगोंमें मालिक मसूद नामके एक उदार व्यक्ति भी थे। ये इस बालिकाके असाधारण सौन्दर्यको देख कर तथा उनको दरिद्र दशासे दुःखित हो कर उन्हें साथ लेते गये।

बादशाह अकबर उस व्यक्तिका बहुत सम्मान करते थे। मसूदने मिर्जा गयासका अकबरसे परिचय करा दिया। सम्राट को यह मालूम होने पर कि—गयासके पिताने हुमायुनको दुरवस्थाके समय उनका बहुत उपकार किया था तथा गयासके आचरणसे अत्यन्त सन्तुष्ट हो अकबरने उन्हें दीवानके पद पर नियुक्त कर दिया। पीछे गयासकी स्त्रीसे अकबरकी महिषी या सलीमको माता मरियम जमानीकी गाढ़ी मित्रता हो गई। गयासकी स्त्री प्रायः सलीमको माताके साथ मुलाकातके लिए जाते समय अपनी कन्या मेहेरउन्निसाको भी साथ ले जाया करती थी। मेहेरउन्निसा नाचने गाने और नाना प्रकारकी कलाओंमें चतुर और अत्यन्त रूपवती थीं। इनके समान रूपवती कामिनी पृथिवी पर बहुत कम ही पैदा हुई हैं इनका शरीर क्या और तमाम खूबसूरतीको लिए हुए तसवीर जैसा मालूम होता था। इनके रूप और गुणसे सभी मोहित होते थे। एक दिन मेहेरउन्निसा अपनी माताके साथ सलीमकी माताके घर जाकर सम्राज्ञीके मनोविनोदके लिए नाच रही थी, कि इतनेमें सलीम भी वहां आ पहुंचे। दोनोंको चार आंखें हो गई, सलीम मेहेरउन्निसाके रूपमें मग्न हो गये। दोनोंकी ही यह दशा हुई। सलीमने उनसे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। परन्तु अली कुलिखां नामक ईरान प्रदेशके एक सज्जनसे उनका विवाह सम्बन्ध पहले ही स्थिर हो चुका था। अबदुल रहीम (बादमें खानखानान्) ने मुलतानके युद्धके समय अलीकुलिके वीरत्व पर सन्तुष्ट हो कर बादशाह अकबरसे उनका परिचय करा दिया था। जो हो, सलीम मेहेरउन्निसाको पानेके लिए बहुत ही व्याकुल हुए; वे समय समय पर उनसे प्रेमसम्भाषण भी करने लगे। मेहेरकी माताने इस व्यवहारसे विरक्त हो कर सब हाल सम्राज्ञीसे कहा और उन्होंने सब बात खोल कर अकबरसे कह दी। बादशाहने इस तरहके अन्यायको प्रश्रय न देकर अलीकुलीखांके साथ शीघ्र ही मेहेरका विवाह करनेके लिए गयाससे कहा। मेहेरउन्निसाकी सम्मतिके

साथ विवाह करने की इच्छा होने पर भी उनका विवाह अलीकुलिके साथ हो गया। बादशाहने अलीकुलिको शासनकर्त्ता बना कर बङ्गाल भेज दिया।

जहांगीर मेहेरउन्निसाको भूल न सके। वे बादशाह होकर उनहें पानेके लिए सुभीता ढूंढ़ने लगे। अलीकुलि अत्यन्त साहसी और धनाढ्य अमीर थे, उनकी हत्या करानेके लिए सम्राट्‌का साहस न हुआ, वे कौशल-जाल फैलाने लगे। अलीकुलिको मारनेके लिए जहांगीरने इतने घृणित और भीषण उपायोंका अवलम्बन किया था कि, इतिहास न मिलनेसे कोई भी उस बात पर विश्वास न कर सकता था। सम्राट्‌के आदेशसे एक व्याघ्र लाया गया। अलीकुलिको आज्ञा दी गई कि, 'तुम्हें इस व्याघ्रके साथ युद्ध करना पड़ेगा। सम्राट् स्वयं उनकी मृत्यु देखनेके लिए दर्शक बन बैठे। प्रकाण्ड व्याघ्रके साथ युद्ध सम्भव नहीं; परन्तु अस्वीकार करनेसे उस बातको सुनता कौन है? ऐसी दशामें अपनी मृत्यु अनिवार्य समझ कर ही अलीकुलि नंगी तलवार हाथमें ले आगे बढ़े थे; किन्तु आश्चर्य है कि उन्होंने अपने अतुल साहस और अदम्य विक्रमके साथ व्याघ्र पर आक्रमण कर उसे प्राण-रहित कर दिया। सभी लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। बादशाहने लोगोंको दिखानेके लिये उन्हें 'शेर अफगान'की उपाधि दी। कोई कोई कहते हैं कि, यह उपाधि उन्हें अकबर द्वारा प्राप्त हुई थी। कुछ भी हो, जहांगीरने मन ही मन अत्यन्त क्रुद्ध हो कर उनको मार डालनेके लिए एक मदोन्मत्त हाथी मंगाया। अकस्मात् उनके शरीरके ऊपरसे उस हाथीको चलाया गया। वीरवर अलीकुलिने एक आघातसे उस हाथीकी सूंड़ जमीन पर गिरा दी। नराधम नृशंस सम्राट्‌ने अन्य कोई उपाय न देख एक दिन रात्रिके समय अलीकुलिके शयनगृहमें चालीस गुप्त घातकोंको भेज दिया किन्तु वे भी कार्यसिद्धि न कर सके। तमाम प्रयत्नोंको व्यर्थ होते देख जहांगीरने कुतुबउद्दीनको बङ्गदेशमें भेजा और उनसे यह कह दिया कि "अलीकुलि अगर सीधी तरहसे मेहेरउन्निसाको न दे, तो तुम उसका मस्तक काट डालना।" कुतुबउद्दीनके बादशाहका अभिप्राय जाहिर करने पर अलीकुलिने घृणाके साथ उसका प्रत्याख्यान किया। आखिरको शान्ति देनेके बहानेसे उन्हें बुलाया। शेर-अफगान इस मायाचारीको समझ कर एक तीक्ष्ण तलवार कपड़ोंमें छिपा ले गये। कुतुबके फिर मेहेरउन्निसा की बात छेड़ने पर वादानुवादमें शेरअफगानने उनके वक्षस्थल पर तलवार भोंक दी। इतने चिल्ला उठे। पीर मुहम्मदने आगे बढ़ कर शेर अफगानके मस्तक पर एक वार किया। परन्तु अव्यर्थ सन्धानसे उसे रोक कर शेरने पीरका मस्तक चूर्ण कर दिया। प्रहरियोंके आगे बढ़ने पर शेरने देखते देखते चार आदमियोंको जमीन पर गिरा दिया। परन्तु वे अकेले क्या कर सकते थे? तब भी वीरका उत्साह नहीं घटा था। आखिर प्रहरियोंके दूरहीसे गोलियोंकी वर्षा करने पर उन्हें भूतलशायी होना पड़ा। इस तरह असमवीर कायरों और घृणित व्यक्तियोंके हाथ निहत हुए। इसके उपरान्त जहांगीरने राजद्रोह और षडयन्त्रका अपराध लगा कर मेहेरउन्निसाको आगरामें बुला लिया। कुतुबकी सारी सम्पत्ति राजकोषमें मिला ली गई। मेहेरउन्निसाके आगरा आ जानेपर जहांगीरने उनसे विवाहकी इच्छा प्रकट की, किन्तु मेहेरने अपने पतिहन्तारकके विवाह-प्रस्तावको घृणाके साथ अग्राह्य किया। जहांगीर इस व्यवहारसे बहुत ही चिढ़ गये। उन्होंने मेहेरको राजमाताकी किङ्करी नियत की और खर्चेके लिए उन्हें रोज एक रुपया देनेके लिए हुक्म दिया। जहांगीर कुछ दिनोंके लिए मेहेरउन्निसाको भूल गये। पीछे नौरोजके दिन हरममें प्रवेश कर जहांगीरने देखा कि, मेहेरने सफेद पोशाक पहन ली है; उनकी खूबसूरती उछल रही है। बस, फिर क्या था, जहांगीरकी पूर्वपिपासा दूनी बढ़ गई। बादशाह इस बातको सह न सके उन्होंने उसी वक्त अपने गलेका हार मेहेरके गलेमें डाल दिया।

बड़ी शान-शौकतके साथ विवाह-कार्य समाप्त हुआ। बादशाह मेहेरके हाथोंकी पुतली बन गये। उन्होंने मेहेरको पहले नूरमहल (महलकी रोशनी) और पीछे नूरजहान् (पृथिवी-सुन्दरी) की उपाधि दी। बादशाह जहांगीर इनकी सलाह बिना लिए कोई भी काम न करते थे। सम्राट्‌के तमाम सुख और सान्त्वनाका आधार

नूरजहां थीं। धीरे धीरे नूरजहांने साम्राज्यको प्रधान प्रधान शक्तियोंको अपने अधिकारमें कर लिया। कोई भी सम्राज्ञी इनके समान शक्तिशालिनी नहीं हुई है। इनके नामके सिक्के भी चलने लगे। जहांगीर बचपन ही से अफीम और शराब पीनेमें अभ्यस्त थे, प्रायः सर्वदा ही वे शराब पीया करते थे। नूरजहांने उनको शराबकी कुराह छुड़ा दी और उन्हींके प्रयत्नसे उनका सबके सामने शराब पीना बन्द हो गया। नूरजहांने राजदरबारका बाह्य आडम्बर और अपव्यय बहुत कुछ घटा दिया। १६ वर्ष तक राजकार्य और अन्यान्य विषयोंमें नूरजहांकी असीम और अप्रतिहत क्षमताका परिचय मिलता है। नूरजहांका १६ वर्ष तकका जीवन-वृत्तान्त ही जहांगीर का इतिहास है। नूरजहांके पिताको प्रधान वजीर और उनके भाई अबुल हसनको इतिमाद खांकी उपाधि दी गई।

अब्बास हादी (जहांगीरके इतिहास लेखक) का कहना है कि, कई एक वर्षोंमें ऐसा हुआ कि, बादशाहने राजकीय समस्त भार नूरजहांको दे दिया। नूरजहान् जैसा चाहती थीं, वैसा ही होता था। जहांगीर प्रायः कहा करते थे—"मैंने अपना राज्य नूरजहांको दे दिया है। मुझे अपने लिए सिर्फ कुछ मद्य और मांस मिलना चाहिये, यही मेरे लिए यथेष्ट है।"

बादशाहोंका ऐसा नियम था कि, वे प्रति दिन सुबहके वक्त अपने झरोखेके सामने बैठते थे और राज्यके प्रधान प्रधान व्यक्ति आ कर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शन किया करते थे। बादशाहने नूरजहांके लिए भी ऐसा ही नियम कायम किया। अमीर उमराव और नूरजहांकी आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते थे। नूरजहांके नामका जो सिक्का चलता था उस पर इस प्रकार लिखा रहता था—"जहांगीरके हुक्मसे सिक्के पर नूरजहांका नाम लिख जानेसे इसकी खूबसूरती हजार गुनी बढ़ गई है।" किसी राजकीय आदेश पत्रों पर नूरजहांका नाम लिखा रहता था और उसकी मुहरके नीचे यह बात लिखी रहती थी कि—"माननीय महारानी नूरजहान् बेगमके हुक्मसे।" बादशाह नूरजहांका विरह क्षण भरके लिए भी नहीं सह सकते थे। जब कभी वे राज दरबारमें बैठते थे तब उनके बगलमें परदा डाल दिया जाता था और उसकी ओटमें नूरजहां बैठती थीं। नूरजहांके लिए जहांगीर सब कुछ कर सकते थे। कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि, जहांगीर बादशाहने नूरजहांके लिए मुसलमानोंको चिर प्रचलित रीतिको भी छोड़ दिया था—वे नूरजहांके साथ खुली बग्घी पर बैठ कर आगराके राजपथ पर हवा खाते थे।

बादशाहने १६११ ई०में योमान्त प्रदेशीय अमीरोंके लिए कुछ आज्ञाएं निकाली थीं जिनमेंसे ये प्रधान हैं—(१) कोई भी झरोखाके सामने न बैठ पावेगा (२) अपराधीको सजा देते समय उसे अन्धा नहीं कर सकेंगे और न किसीको नाक या कान ही काटे जा सकेंगे, (३) अनुचरोंको किसी तरहकी उपाधि न दे सकेंगे। (४) वे अपने बाहर जानेके समय किसी तरहका ढाक न बजा सकेंगे। इन्होंने जो आज्ञाएं निकाली थीं, वे आइन-ए-जहांगोरीके नामसे प्रसिद्ध हैं।

बादशाह अकबरने मेवाड़देशमें अमरसिंहको दमन करनेके लिए कई बार प्रयत्न किया था; किन्तु कृतकार्य न हो सके थे। जहांगीरने खुर्रमको उनके विरुद्ध युद्ध करनेको भेजा। खुर्रमकी अधीनतामें मुजाफरखां नामक एक साहसी सेनापति थे। इन्हीं के साहस और युद्धकौशलसे खुर्रमने इस युद्ध विजयलक्ष्मीको प्राप्ति की। एक वर्ष मामूली लड़ाइयोंके लगनेसे अमरसिंहकी बस्ती होने पर उनके पुत्रोंने बादशाहकी अधीनता स्वीकार कर ली।

१६१२ ई०में खुर्रमखांके बादशाहके पास विजय वार्ता भेजने पर जहांगीरने उन्हें दश हजारी मनसब दारका ओहदा दिया और मुजाफरखांको दस्तमकी पदवी दी।

इस वर्ष बादशाहने अपनी हाथसे अपने कनिष्ठ पुत्र दनियालके पुत्र के ललाट पर राजटीका लगाया।

पहले ही लिखा जा चुका है कि, १६१० ई०में अह-मदनगरमें मालिक अम्बरने विद्रोही हो कर बादशाही फौजको परास्त कर दिया था। उस समय खुर्रम भी विद्रोही थे और दिल्लीके सेनाको परास्त कर अपने बलको

हद करनेकी कोशिश कर रहे थे परन्तु मुगल लोग उस समय अहमदनगरमें थे। इस मौके पर मालिक अम्बर दौलताबादमें राजधानी स्थापित कर स्वाधीन भावसे राज्यकार्य चलाने लगे।

जहांगीरने मालिक अम्बरको दमन करनेके लिए खाँ जहान् लोदीके साहाय्यार्थ एक दल सेना अबदुल्लाखाँकी अधीनतामें भेज दी। परन्तु अबदुल्लाखाँके बिना किसीकी सलाह लिए युद्ध करनेको अग्रसर होनेके कारण मालिक अम्बाने प्रचण्ड विक्रमसे सामना कर बादशाही फौज को परास्त कर दिया। अबदुल्ला मरहटों द्वारा विशेष क्षतिग्रस्त हो कर भाग गये। खाँजहान्‌ने साहसी हो कर फिर उन पर आक्रमण नहीं किया।

१६१३ ई०में सूरत और अहमदनगरके शासनकर्त्ताओंके विशेष अनुरोध करने पर बादशाहने अंग्रेजोंको भारतमें रोजगार करनेका हक दे दिया। साथ ही उन लोगोंको सूरत, अहमदाबाद, काम्बे और गोया इन चार नगरोंमें कोठी बनानेकी भी इजाजत दे दी। इन्होंने अंग्रेजोंसे एक दूत मांगा, जिसके अनुसार १६१५ ई०में सर टमस-रो दूत बन कर जहांगीरके दरबारमें आये। ये जहांगीरके दरबार और चरित्रका वर्णन कर गये हैं। सर टमस-रो लिखते हैं कि, जहांगीरके दैनिक नियम इस प्रकार थे—पहले वे उपासना करते थे, फिर उनके पास ४ ५ तरहके सुस्वादु और सुपक्व मांस लाये जाते थे, जिनको वे अपनी इच्छाके अनुसार थोड़ा थोड़ा खा कर बीच बीचमें शराब पीते जाते थे। इसके बाद वे खास कमरेमें जाते थे, जहां बिना आज्ञाके दूसरा कोई भी नहीं जा सकता था। वहां बैठ ३ २ ५ प्याले शराबके पीते और फिर अफीम खाते थे। सबके चले जाने पर २ घण्टे सोते थे। २ घण्टे बाद उन्हें जगा कर भोजन करा देना पड़ता था ; बाकीको रात सो कर बिताते थे।" सर टमस-रो और भी कहते हैं कि, जब वे पहले पहल आये थे, राजकार्यका प्रत्येक विभागमें ही यथेच्छा और विशृङ्खला थी। सूरतमें आ कर देखा कि, यहांके शासनकर्त्ता वणिकोंसे खाद्य सामग्री छीन रहे हैं और उन्हें नाममात्र मूल्य दे कर उनसे सब चीजें जबरन् ले रहे हैं। राज्यके भीतर सब ही जगह ध्वंसके चिह्न वर्त्तमान थे। परन्तु जहांगीरके दरबारको देख कर वे अत्यन्त विस्मित हुए थे। जहांगीर सर टमस-रोके साथ निष्कपटताका व्यवहार करते थे। प्रायः सब जगह बादशाह उन्हें साथ रखते थे। १६१३ ई०में ६ फरवरीको अंग्रेजोंके साथ जो सन्धि हुई थी, सर टमस-रो उसे ही हस्तगत कर गये थे। यह सन्धि बेटके साथ हुई थी और इसीके नियमानुसार अंग्रेजोंको सैकड़ा पीछे ३॥) रुपयेसे अधिक आमदनीका महसूल नहीं देना पड़ेगा, यह स्थिर हुआ था।

बादशाहने चितौर जय करनेके अभिप्रायसे १६१० ई०में जो सेना भेजी थी, उसके अकृतकार्य होने पर क्रुद्ध हो कर वे सेना संग्रह करने लगे। १६१२ ई०के शेष भागमें उन्होंने अपने पुत्र खुर्रम (पीछे शाहजहां) को अधीनतामें एक दल बड़ी सेना भेजी।

जहांगीरने बार बार राणा अमरसिंह द्वारा पराजित हो कर १६१३ ई०में यह प्रतिज्ञा की कि, अजमेर पहुंचते ही वे अपने विजयी पुत्र खुर्रमको राणाके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए भेजेंगे। यह प्रतिज्ञाकार्य्यमें भी परिणत हुई। राणा निस्सहाय थे, क्योंकि, हिन्दुस्थानके क्या हिन्दू और क्या मुसल्मान, सभी लोग बादशाहकी पदधूलिके प्रार्थी हो चुके थे। एक मात्र शिशोदीयकुल जातीय गौरवसे उन्नतमस्तक था। ऐसी दशामें और कितने दिनों तक वे महाबल पराक्रान्त दिल्लीश्वरके साथ युद्ध कर सकते थे। लगातार मुसलमानोंके साथ युद्ध कर वे क्रमशः हीनबल हो रहे थे, इनकी सैन्य संख्या क्रमशः घट रही थी। उधर दिल्लीके बादशाह जहांगीरने बार बार परास्त होनेके उपरान्त असंख्य सेनाके साथ कुमार खुर्रमको मेवारगौरव ध्वंस करनेके लिए भेज दिया। राणा अमरसिंह इतने कष्टसहिष्णु न थे। कुछ भी हो अतुलवीर प्रतापसिंहके वंशधर होनेके कारण ही वे अब तक दिल्लीके बादशाहके साथ युद्ध करते रहे थे। अबकी बार उनसे युद्ध न हो सका। १६१४ ई०में राणा अमरसिंहने जहांगीरकी अधीनता स्वीकार कर खुर्रमके पास शूभकर्ण और हरिदासको भेजा। जहांगीरको खुर्रम से जब राणाके अधीनता स्वीकारका समाचार मिला, तब उन्होंने राणाको अभय देनेके लिए पत्र लिखा। इसके बाद

उन्हें दिल्लीके अधीन राजाओंमें शुमार कर राज्य पर अभिषिक्त किया गया। राणाने अपने पुत्र कर्णको खुर्रमके साथ बादशाहके पास भेज दिया। जहांगीरने उन्हें पांच हजार सेनाका अधिनायक बना दिया।

१६११ ई०में एक दिन बादशाहने खुर्रमके साथ बैठ कर एकत्र शराब पी। खुर्रम पहले शराब न पीते थे जहांगीरके अनुरोधसे उन्हें यह पहिले पहल शराब पीनी पड़ी। इसी वर्षमें मालिक अम्बरका उन्होंके पारिषदोंके साथ कुछ मनोमालिन्य हो गया। इसलिए उन लोगोंने आ कर सम्राट्की अधीनता स्वीकार कर ली। थोड़े समय मालिक अम्बरकी सेनासे उन लोगोंका युद्ध हुआ, जिसमें मालिक अम्बरकी सेना पराजित हो कर भाग गई। कुछ दिन बाद मालिक अम्बरने भारी बड़े कर बादशाही सेना पर आक्रमण किया। दोनोंमें युद्ध हुआ आखिर बादशाहकी विजय हुई।

जहांगीरके राजत्वके ग्यारहवें वर्ष पञ्जाबमें प्लेग फैली, जिससे बहुतोंकी अकाल मृत्यु हुई। इसी समय मामन आदि सात डकैतोंने मिल कर कोतवालोंके खजानेमेंसे चोरी कर ली। इन्हें पकड़ कर कड़ी सजाएं दी गईं। १६१६ ई०में कुमार खुर्रमको १०००० अश्वारोहियोंका अधिपति बनाया गया और शाहजहां (अर्थात् पृथिवीके राजा) की उपाधि दे कर सम्राट्ने उन्हें अपने राज्यका उत्तराधिकारी मनोनीत किया। अबकी बार जहांगीरने शाहजहांको सेनापति बना कर मालिक अम्बरको भली भांति सजा देनेके लिए दाक्षिणात्यकी तरफ भेज दिया। बादशाह खुद माण्डू तक उनके साथ गये थे। मालिक अम्बर परास्त हुए और अहमदनगर छोड़ कर भाग गये। बिजयपुरके आदिलशाहने दिल्लीकी अधीनता स्वीकार कर ली। शाहजहांके पराक्रमसे दक्षिणदेशमें सुख प्रसुप्त स्थायी हो गया शाहजहांके लौट आने पर बादशाहने खुश हो कर उन्हें अपने सिंहासनके पास सिंह आसन पर बैठने और उनके अधीन २०००० अश्वारोही सेना रखनेका अधिकार दिया।

इस समय जहांगीरने प्रचलित स्वर्ण-मुद्राके २० गुने भारी स्वर्ण और रौप्यके सिक्के बनानेका आदेश दिया। यह सिक्का इन्होंने पहिले पहल चलाया था, इस लिए इसका नाम जहांगीर सिक्का पड़ गया। जहांगीरके शासनकर्त्ता सुजाअतखांके पुत्र मकरमखांने खुरदाके राजाको परास्त कर उनका राज्य दिल्लीके अधीन कर लिया। १६१७ ई०में बादशाहने गुजरात पर अधिकार किया।

इनके सिक्कों पर एक तरफ बादशाहका नाम और दूसरी ओर स्थान मास और सम्वत् लिखा रहता था। १६१८ ई०में जहांगीरने मासके बदले उस मासकी राशिके चिह्न (मेष, वृष, आदि) छापनेके लिए आज्ञा दी। इसी मास जहांगीरने एक कैदीको प्राणदण्डकी आज्ञा दी थी। परन्तु आज्ञा देनेके कुछ देर बाद उन्होंने अपने एक प्रिय पारिषदके अनुरोधसे उस हुक्मको रद्द करके उसके पैर काट लेनेका हुक्म दिया। किन्तु हाय! इस आदेशके पहुंचने से पहले ही उस अभागीका सिर धड़से अलग कर दिया गया था। इसलिए सम्राट्ने ऐसा नियम कर दिया कि 'आजसे किसीके लिए प्राणदण्डका आदेश दिये जाने पर भी सूर्यास्तके पहिले उसका वध न किया जायगा और सूर्यास्तके समय तक दण्डका किसी प्रकारसे परिवर्तन न हो, तो उसके अनुसार कार्य किया जायगा।'

१६१८ ई०में प्रसिद्ध विद्वान् मिश्र अबदुल हक दिल्लीसे बादशाहके दरबारमें आ कर रहने लगे। जहांगीर इनके प्रति अत्यन्त सौजन्य दिखलाते थे।

१६२० ई०में कुमाऊँके जमींदारोंने विद्रोही हो कर वहांके शासनकर्त्ता असदखांको पराजित कर दिया। बादशाहने खबर पाते ही वहां दिलावरखांके पुत्र जलाल को भेजा। खुर्रमने कांगड़ा-दुर्ग अवरोध कर उस पर कब्जा कर लिया यह दुर्ग बहुत ही प्राचीन था और कोई भी बादशाह इसे अधिकार न कर सका था। इसी समय दाक्षिणात्यमें विद्रोह उपस्थित हुआ। मालिक अम्बरने बहुत सी सेना इकट्ठी कर देश लूटना शुरू कर दिया। कभी कभी अतर्कित अवस्थामें बादशाही सेना पर आक्रमण कर उन्हें दिक करने लगी। इस समय कुमार खुर्रम कांगड़ा अवरोध करनेमें व्यस्त थे। प्रधान प्रधान योद्धा भी उनके साथ थे। इस लिए जहांगीर विद्रोहियोंको दमन करनेके लिए कौनसी नीतिका अव-

अम्बर करें, कुछ निश्चय न कर सके। उधर विद्रोहियों ने वालाघाट और माण्डू तक बढ़ कर अधिवासियोंको तंग करना शुरू कर दिया था। सौभाग्यवश कांगड़ाकी विजयवार्त्ता शीघ्रही जहांगीरके कर्णगोचर हुई। बादशाहने युवराज खुर्रमको दाक्षिणात्यमें विजयके लिए भेजा। खुर्रम योग्य कर्मचारियोंको साथ ले दाक्षिणात्यको चल दिये। इनके आगमनसे विद्रोही डर गये। खुर्रमने अटल उत्साह और अदम्य साहसके साथ आगे बढ़ कर विद्रोहियोंको पूरी तरह परास्त कर दिया। मालिक अम्बरने भी इनकी अधीनता स्वीकार की। युद्धके व्यय स्वरूप उन्हें ५० लाख रुपये बादशाहके खजानेमें भेजने पड़े। इसी समय खुर्रमके अनुरोध से खुशरूको कारामुक्त किया गया ; किन्तु शीघ्र ही शूल वेदनासे उनकी मृत्यु हो गई। कोई कोई इतिहास-लेखक लिखते हैं कि, बादशाहने काश्मीरसे लौटते समय लाहोरमें तम्बू डाले थे और वहीं १६२२ ई०में खुसरूकी मृत्यु हुई थी।

नूरजहान्‌के पिता अत्यन्त दक्ष और राजनीतिज्ञ थे। नूरजहाँ पिताके परामर्शानुसार चल कर ही राजकार्यमें विशेष क्षमताशालिनी हुई थीं। १६२२ ई०में नूरजहान्‌के पिताकी मृत्यु हुई। नूरजहांने, पिताके उपदेशके न मिलनेसे अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करके जहांगीरकी शासन विधिको अत्यन्त शिथिल कर दिया। उन्होंने बादशाहके कनिष्ठ पुत्र शाहरयारके साथ पहले पति शेर अफगानके औरससे उत्पन्न अपनी कन्याका विवाह कर दिया। अब उनकी इच्छा हुई कि, शाहरयार ही भारतका भावी सम्राट् हो। परन्तु पहले उन्होंने ही उद्योग करके खुर्रमको भावी सम्राट् बनानेके लिए जहांगीरको सहमत किया था। कुछ भी हो, अब शाहजहांको स्थानान्तरित करनेका मौका देखने लगीं, क्योंकि उनको स्थानान्तिरित किये बिना उनके उद्देश्य सिद्धिका दूसरा कोई मार्ग नहीं था। मौका भी जल्द हाथ लगा।

१६२१ ई०के शेष भागमें पारसके शाह अब्बासने कान्दाहार पर आक्रमण किया था। नूरजहान्‌की ओरसे उत्तेजना पा कर बादशाहने उक्त प्रदेशको अधिकार करनेके लिए शाहजहांको शीघ्र ही जानेकी आज्ञा दी। शाहजहान् इस मायाचारको समझ गये। उन्होंने कहला भेजा कि, 'भविष्यतमें मुझे सिंहासनके मिलनेमें किसी तरहकी गड़बड़ी न होगी इसका सन्तोषजनक सिटिफिकेट मिले बिना मैं वहां नहीं जा सकता।" बादशाहने शाहजहान्‌की बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया, वरन् उनके अधीनस्थ प्रधान प्रधान कर्मचारियों और सेनाको भेज देनेका आदेश दिया। १६२२ ई०के प्रारम्भमें शाहजहान्‌ने शाहरयारकी कई एक जागीरें अधिकृत कर लीं और उनके कर्मचारी-असरफ उल-मुल्कके साथ एक खण्ड युद्ध कर डाला। इस पर जहांगीरने विद्रोही कह कर उनको तिरस्कृत किया और उनकी सारी सेना शाहरयारकी सेनामें मिला देनेका आदेश दिया। शाहजहां आगरा अवरोध करनेको अग्रसर हुए। खान्‌खानान्‌ने शाहजहांके साथ मिल कर लूटना प्रारम्भ कर दिया। जहांगीरने विद्रोहियोंके विरुद्ध महावतखाँ और असदुल्लाखांको भेजा। किन्तु असदुल्लाने शत्रुओंसे सब रहस्य जान लिया।

पहले जब बादशाह अकबर जीवित थे और सलीम अजमेरके शासनकर्त्ता थे, उस समय उन्होंने एक बार दिल्लीके सिंहासनको प्राप्त करनेको चेष्टा की थी। अकबर जब विद्रोह दमन करनेके लिए राजधानी छोड़ कर दक्षिण देशको गये थे, उस समय अकबरकी अनुपस्थितिमें जहांगीर दिल्लीकी तरफ अग्रसर हुए थे ; किन्तु रास्ते ही में अकबरने उन्हें परास्त कर इसका बदला चुका दिया था। उसी तरह अब जहांगीरके जीते जी ही साम्राज्यको ले कर उनके पुत्रोंमें युद्ध होने लगा। पहले जहांगीरने जिस तरह अपने वृद्ध पिताको क्लेशित किया था, उसी तरह उनके प्रिय पुत्र शाहजहान् विद्रोही हो कर उन्हें सताने लगे। १६२३ ई०में बादशाह खुद उनके विरुद्ध लड़ने चले। राजपूतानाके पास दोनों सेनाओंमें घमसान युद्ध हुआ। शाहजहां पराजित हो कर माण्डूकी तरफ भाग गये। बादशाहने अजमेर तक उनकी पीछा किया और कुमार पारविजको प्रधान सेनापति नियुक्त कर महावतखाँ, महाराज गजसिंह, फज़लखाँ, राजा रामदास आदि सुदक्ष कर्मचारियोंके साथ एक दल

ऐसा न की। नर्मदा नदीके किनारे कालिया नामक स्थान पर दोनों पक्षके तम्बू तन गये और महाबतखांके प्रबन्धसे युद्धके समय शाहजहांके कितने अनुचरगण परविज़की तरफ आ मिले। उधर गुजरातके शासनकर्त्ताने शाहजहांका पक्ष छोड़ दिया। इससे शाहजहान् डर कर बुरहानपुर भाग गये। यहां आने पर खानखानान्‌ने महाबतकी तरफ मिलनेके लिए उनके पास एक दूत भेजा। वह दूत शाहजहांके अनुचरों द्वारा पकड़ा गया। शाहजहांने क्रोधित हो कर खानखानान्‌को कैद कर रक्खा। परन्तु अन्तमें अत्यन्त दुरवस्थामें पड़ कर उन्हें मुक्त कर दिया। खानखानान् दोनों पक्षमें सन्धि करानेकी चेष्टा करने लगे। एक रात्रिके समय कुछ साहसी बादशाही सैन्यने अकस्मात् विद्रोहियों पर आक्रमणपूर्वक उन्हें परास्त कर खानखानान्‌को महाबतके सामने उपस्थित किया। शाहजहान् तैलिङ्गानाको भाग गये। उस स्थानसे १६२४ ई०में व बङ्गालमें आये। स्थानीय शासनकर्त्ताओंने उनका साथ दिया। जिससे उन्होंने राजमहलके शासनकर्त्ताको परास्त कर उस प्रदेश पर कब्जा कर लिया। इधर परविज़ और महाबत उनके पीछे पीछे इलाहाबाद तक आने पर शाहजहान्‌के साथ युद्ध हुआ। किन्तु अन्तमें वे पराजित हो कर दाक्षिणात्यकी तरफ भाग गये। वहां आ कर वे मालिक अम्बरसे मिल गये। मालिक अम्बरके साथ उन्होंने बुरहानपुर घेर लिया। परन्तु सर बुलन्दरायके कौशलसे वे उस प्रदेशको जीत न सके। इधर परविज़ और महाबतखां नर्मदा तक अग्रसर हुए। शाहजहां इस खबरको पा कर बहुत डर गये और १६२५ ई०में उन्होंने अपने पितासे क्षमा प्रार्थना की। बादशाहने उनके पुत्र दारा और औरङ्गजेबको प्रतिभूस्वरूप रख उनके तमाम दोष क्षमा कर दिये। शाहजहान्‌ने अपने अधिकृत प्रदेशको छोड़ दिया। बादशाहने बालाघाट प्रदेश उनको अर्पण किया।

इधर महाबतखां साम्राज्यके भीतर अत्यन्त क्षमताशाली हो उठे। इससे नूरजहान्‌को अत्यन्त ईर्षा और आशङ्का हुई। बङ्गदेशमें रहते समय महाबतके विरुद्ध बहुतसे अभियोग उपस्थित हुए थे। उन्होंने बादशाहके धनका अपव्यय किया था और राजधानीमें बादशाहका प्राप्य हस्ती नहीं भेजा था। १६२६ ई०में महाबतको आगरा बुलाया गया। महाबतखां समझ गये कि, बेगम नूरजहान् और आसफखांके उत्तेजित करने पर बादशाहने उन्हें अपमानित करनेके लिए ही बुलाया है। इस लिए वे ५००० राजपूतोंके साथ आगराकी तरफ चल दिये। मुगलोंमें ऐसा नियम प्रचलित था कि उच्च पदस्थ कर्मचारियोंको अपनी कन्याके विवाह स्थिर करनेसे पहले बादशाहका हुक्म लेना पड़ता था। महाबतखांने ऐसा न कर बरखुरदारके साथ अपनी कन्याका विवाह स्थिर कर दिया था। महाबत राजाज्ञाके मिलने पर बादशाहके पास उपस्थित हुए। सम्राट उस समय नूरजहान्‌के साथ काबुल जा रहे थे। बितस्ता नदीके किनारे उनके डेरे लगाये गये थे। महाबतने फिर प्रचलित नियमको भङ्ग करनेके कारण अपने भावी जामाताको क्षमा प्रार्थनाके लिए बादशाहके पास भेज दिया। युवकको सम्राट शिविरमें प्रवेश करने पर हाथीसे उतार दिया गया, पोशाक खोल कर भद्दी पोशाक पहनाई गई और उनके सामने उनके शरीरमें कांटे चुभाये जाने लगे। पीछे उन्हें एक दुबले घोड़े पर—पूंछकी तरफ मुंह कर चारों तरफ घुमाया गया। बादशाहने उनकी सारी सम्पत्ति राजकोषमें मिला ली।

महाबतके आगे बढ़ने पर उन्हें शिविरके भीतर जानेसे रोक दिया गया। महाबतने इस तरह अपमानित हो कर और अपने सर्वनाशकी तय्यारियोंको देख कर बादशाहको वशमें करनेकी ठान ली। बादशाहने बितस्ता नदीको पार करनेके लिए जो पुल बनवाया था महाबतने उसे नष्ट कर देनेके लिए अपने अनुचरोंको आज्ञा दे दी और वे रात्रिके समय १०० अनुचरोंको साथ ले सम्राट् शिविरमें घुस पड़े। बादशाह सो रहे थे जागने पर उन्होंने अपनेको महाबतकी सेना द्वारा परिवेष्टित पाया। उन्होंने महाबतसे पूछा— 'विश्वासघातक तेरा अभिप्राय क्या है?" महाबतने उत्तर दिया—"मैंने अपने जीवनकी रक्षाके लिए ऐसा किया है।' कुछ भी हो, बादशाहको विशेषरूपसे सम्मान कर उन्हें हाथी पर बैठा कर अपने शिविरको ले चले। कुछ दूर अग्रसर होने

पर गजपतिसिंह सम्राट्का खास हाथी ले आये। बादशाहके उस पर सवार होने पर उनके पास गजपति भी बैठ गये। बादशाहने किसी प्रकारकी बाधा नहीं दी, वे महावतके साथ चल दिये। उधर नूरजहान्ने छद्मवेश धारण कर जबाहिर खांके साथ नदीके उस पार राजकीय सैन्य शिविरमें प्रवेश किया। नूरजहान् अपने भाईके साथ मिल कर सम्राट्के उद्धारार्थ युद्धके लिए आयोजना करने लगीं। उन्होंने कहा सेनापतिके दोषसे ही ऐसा हुआ; क्योंकि उन्होंने बादशाहकी रक्षाके लिए सेनाको शिविरमें न रख करके नदीके उस पार भेज दिया था, और इसीलिए महावत विना बाधाके बादशाहको काबू करनेमें समर्थ हुआ।" जिस रातमें बादशाह महावतके हाथ बन्दी हुए, उसके दूसरे दिन प्रातःकाल ही नूरजहान् राजकीय सेनाके आगे आगे चलीं; किन्तु वे नदी पार न हो सकीं; क्योंकि पुल तो शत्रुओंने पहले हीसे तोड़ दिया था। नूरजहान्ने पैदल पार होनेके लिए आदेश दिया और वे ही पहले पानीमें उतरीं, पर उस पारसे शत्रुओं द्वारा तोरोंकी वर्षा होने कारण वे नदी पार न हो सकीं। फिदाई खांने महावतकी सेना पर फिर एक बार आक्रमण किया, पर वह भी निष्फल हुआ नूरजहान् बादशाहके उद्धारके लिए कोई भी उपाय न देख हताश हो गईं और अपनी इच्छासे वे बन्दी बादशाहके साथ मिल गईं।

जहांगीर।

महावत बन्दी सम्राट्को ले कर काबुल चल दिये। यहां आ कर जहांगीर महावतके साथ सद्भावसूचक व्यवहार करने लगे। नूरजहान् बादशाहके उद्धारके लिए उनको गुप्त भावसे जो कुछ कहती थीं, वे प्रायः उस बातको महावतसे कह दिया करते थे। जहांगीरने महावतसे यह बात भी कह दी थी कि, आयस्ता खांकी स्त्री जब कभी मौका पावेंगी तभी वे उन्हें (महावतका) गोलोंके आघातसे मार डालेंगी। इन सब कारणोंसे महावतने बादशाहका कारावास शिथिल कर दिया। इधर राजपूत विदेशमें उपस्थित थे और स्थानीय लोग बादशाहके प्रति सदय थे। इसी मौकेमें नूरजहान् अपने पक्षको वृद्धि करने लगीं। होशियारखां नामक इनके एक अनुचर लाहोरसे २००० सेना लेकर काबुलकी तरफ अग्रसर हुए। काबुलमें बहुत सेना इकट्ठी की गई। बादशाहने एक दिन महावतके पास सम्वाद भेजा कि, वे नूरजहांकी सेना देखना चाहते हैं और उस दिन महावतको सेना कूच-कवायद न करे; क्योंकि ऐसा होनेमें दोनों पक्षमें संघर्ष होनेकी सम्भावना है। नूरजहांकी सेना सम्राट्की तरफ इस तरह अग्रसर हुई कि, जिससे महावतके रजपूतरक्षक सम्राट्से अलग हट गये। नूरजहान्के भाई आसफ खां महावतके हाथ बन्दी हो गये थे, इसलिए उन पर आक्रमण न कर जहांगीरने उनके पास निम्न लिखित चार आदेश भेज दिये—

(१) महावत शाहजहान्के विरुद्ध यात्रा करें। (२) आसफखां और उनके पुत्रको बादशाहके पास पहुंचाया जाय। (३) युवराज दानियलके पुत्रोंको वापिस भेज दें। (४) अपनो ज़ामिनके लिए लश्करीक राजदरबारमें भेज दें। इसके सिवा उन्हें यह भी जतला दिया कि, यदि वे आसफखांको भेजनेमें देर करेंगे, तो उनके विरुद्ध सेना भेजी जायगी। बादशाहने काबुलसे लौट कर आसफखांको पञ्जाबका शासनकर्त्ता नियुक्त किया।

शाहजहान्ने बादशाहको अधीनता स्वीकार कर ली और कुछ अनुचरोंके साथ वे अजमेर चले गये। पारस्यराज शाह अब्बासके साथ शाहजहांकी मित्रता थी। उन्हें आशा थी कि, अब्बासके पास जानेसे उनको कुछ दुर्दशा सुधर जायगी। इसी आशासे वे अजमेर गये थे। वहां पहुंचने पर शाहरयारके विश्वस्त अनुचर शरीफ उल्मुल्क उन पर आक्रमण करनेके लिए आगे बढ़े। परन्तु डर कर ही हो अथवा और किसी कारणसे वे

आक्रमण न कर किलेमें घुस गये। शाहजहान्की सेना नियत होने पर भी उनके एक अनुचरने किले पर चढ़ाई कर दी।

शाहजहान् वास्तवमें उस समय विद्रोही न थे उनके पास कुल १००० ही सेना थी। उनके मित्र राजा रूपचन्द्रको भी उस समय बरख हो चुकी थी। शाहजहान् सुभीतेके मारे अजमेर गये थे। अजमेरके दुर्ग पर आक्रमणका सम्वाद सुन बादशाहने महाबत खाँको शाहजहाँके विरुद्ध युद्धके लिए आदेश दिया। शाहजहान्की सेना जब दुर्गको जीत न सकी तब वे पारसकी तरफ चल दिये। परन्तु रास्ते होमें उन्हें भाई परविजका मृत्यु सम्वाद मिला, जिससे उनके मनकी गति पलट गई। इस दुरवस्थामें भी उनको राज्य लाभकी पिपासा बलवती हो उठी। वे शीघ्र ही मालिक उपस्थित हुए। महाबत सम्राट् द्वारा शाहजहान्के विरुद्ध भेजे गये थे; किन्तु शाहजहाँके दाक्षिणात्यमें चले जानेसे महाबतने उन्हींका साथ दिया।

ये दोनों मिल कर क्या करेंगे, इस बातका निश्चय होनेसे पहले ही उन्हें शाहरयारकी पीड़ा और बादशाहकी मृत्युका सम्वाद मिला। शाहजहान् फिर शासन अधिकार करनेके लिए शीघ्र ही राजधानीकी तरफ चल दिये।

काश्मीरमें रहते समय बादशाह बहुत ही अस्वस्थ हो गये थे। उस देशकी आब हवा उनको सह्य न हुई। इसलिए वे १६२० ई०में लाहोर लौट आये।

जहांगीरको शिकार खेलनेका बड़ा शौक था, परन्तु इधर उन्होंने बहुत दिनोंसे शिकार न किया था। लाहोर लौटते समय भैरामकाला नामक स्थानमें उन्होंने शिविर स्थापन किया था। एक दिन वे शिविरके द्वार पर बैठे थे, इतनेमें उन्होंने देखा कि, स्थानीय कुछ लोग एक हरिणको भगाये लिये जा रहे हैं। बादशाहने हरिण पर गोली चलाई। गोलीके लगते ही वह मृग दौड़ा हुआ गर्तके पास पहुंचा और वहीं उसने प्राण गवां दिये। इसी समय एक आदमी भी मर गया था यह आदमी हरिणके पीछे था और बन्दूककी आवाजसे डरके स्थानके नीचे लुढ़क गया था। बादशाहने उसकी माको बहुत रुपये दिये, परन्तु इस आदमीकी मृत्युसे वे बहुत ही व्यथित हुए। यहांसे वे राजपुर गये। चलते समय उन्होंने शराब पीनेकी इच्छा प्रगट की; किन्तु शराबके आने पर वे उसे पी न सके। उनका शरीर क्रमशः अवसन्न होने लगा। उन्होंने अपने जीवनकी आशा छोड़ दी।

१०३१ हिजरीमें २८ सफर तारीखके प्रातःकालके समय हिन्दुस्तानके बादशाह महम्मद नूरउद्दीन जहांगीरका दमाकी बीमारीसे शरीरान्त हो गया। यह बीमारी उन्हें बहुत दिनोंसे सता रही थी। दूसरे दिन उनका मृतशरीर लाहोर भेजा गया और नूरजहान्ने जो उद्यान बनवाया था, वहीं उन्हें समाधिस्थ किया गया। उन्होंने अपने लिए समाधिस्थान पहले होसे बनवा लिया था। इस तरह बादशाह जहांगीर २२ वर्ष राज्य करके ५८ वर्षकी उम्रमें १६२७ ई०की २८ अक्टूबरको सदाके लिए सो गये।

जहांगीर अत्यन्त स्वेच्छाचारी और भ्रष्टचरित्र थे। उनके राजत्वकालमें अत्यन्त विशृङ्खलता फैल गई थी। इनके पिता (अकबर)को छोटेसे लगा कर बड़े तक सभी मानते और भक्ति करते थे, इसीलिए जहांगीर राजत्व करनेमें समर्थ हुए थे।

जहांगीर बचपनसे ही शराब आदि पीनेमें अभ्यस्त थे; किन्तु दूसरा कोई इस दोषसे दूषित न हो इसके लिए उन्होंने कानूनकी व्यवस्था की थी। यूरोपके पर्यटकोंका कहना है कि, जहांगीर बड़े शिष्टाचारी और मिलनसार सम्राट् थे। ये इङ्गलैण्डके राजा १म जेम्सके समसामयिक थे। आश्चर्यका विषय है कि इन दोनोंका राज्यकाल प्रायः समान था और चरित्रमें भी बहुत कम फर्क था। दोनों ही कौतुक और आमोदप्रिय थे। जहांगीरने १६१० ई०में तम्बाकू न पीनेका हुक्म जारी किया, ठीक इसी समय इङ्गलैण्डमें भी ऐसा ही नियम जारी हुआ। जहांगीर क्षमाशाली थे उन्होंने विद्रोही कुमार खुसरूको बहुत बार क्षमा किया था, तथा मानसिंह और खानखानान्के लिए भी यथेष्ट क्षमा दिखलाई थी। कभी कभी ये क्रोधमूर्ति भी धारण करते थे जिस पर इनका क्रोध होता, उसे ये जिस तरह हो मारनेकी कोशिश करते थे। पहले इन्होंने अकबर प्रवर्तित धर्म

मतका अवलम्बन किया था, किन्तु सिंहासन पर बैठ कर ये इस्लाम-धर्ममें कट्टर हो गये थे। अन्तिम समय फिर उनका यह भाव दूर हो गया था। उनके भजनालयमें बौद्ध और ईसाई धर्मकी तसवीरें मिलती थीं।

जहांगीर स्थापत्यविद्या और भास्करकार्यके अनुरागी थे। इन्होंने बादशाह अकबरका एक समाधि-मन्दिर बनवाया था। इनकी ऐसी इच्छा थी कि, यह मन्दिर पृथिवी पर सबसे उत्कृष्ट हो; किन्तु खुसरूके विद्रोहसे चञ्चलचित्त होने कारण यह मन्दिर उनके आशानुरूप नहीं बन सका। कुछ भी हो, उन्होंने कई एक स्थान तोड़ कर फिरसे बनानेके लिए आदेश दिया था। जो बढ़िया तसवीरें बना सकते थे, बादशाह उन्हें काफी इनाम देते थे। इनका काव्य और संस्कृत ग्रन्थोंके अनुवादमें विशेष अनुराग था। इनके बहुतसे सभासद् गजल बना कर इन्हें सुनाया करते थे। इनके राज्यमें फल-कर नहीं लिया जाता था। इन्होंने इस प्रकारको आज्ञा दी थी कि, 'अगर कोई आबादी ज़मीन पर फलोंके पेड़ लगावेगा तो उससे किसी तरहका महसूल न लिया जायगा।' जहांगीरने एक कहानीको सुन कर फलकर उठा दिया था। कहानी यह है—"एक दिन किसी राजाने सूर्यकिरणोंसे अत्यन्त उत्तप्त हो कर निकटवर्त्ती एक फलके उद्यानमें प्रवेश किया। वह उद्यानपालको देख कर राजाने कहा—यहां दाड़िम मिल सकता है या नहीं। उद्यानपालने उन्हें दाड़िमका पेड़ दिखा दिया। राजाने एक कटोरी दाड़िमका रस मांगा। उद्यानपालकी लड़को पास हो खड़ी थी। उससे कहने पर उसने शीघ्र ही एक कटोरेमें दाड़िमका रस ला कर राजाको दिया। पीछे उक्त राजाके पूछने पर उद्यानपालने उत्तर दिया कि, 'मुझे फल बेच कर सालाना ३०० दीनारका लाभ होता है और इसके लिए मुझे किसी तरहका कर नहीं देना पड़ता।' इस बात को सुन कर राजाने मन ही मन सोचा कि, मेरे राज्यमें बहुतसे बाग हैं; यदि प्रत्येक बागके लाभका दशमांश राजकरस्वरूप लिया जाय, तो राज्यको आमदनी बहुत कुछ बढ़ जाय।' इसके बाद ही उन्होंने एक और कटोरी रस मांगा, परन्तु अबकी बार रस लानेमें विलम्ब हुआ और मिला भी बहुत थोड़ा। राजाने इसका कारण पूछा, तो लड़कीने यह जवाब दिया 'पहले एक ही दाड़िमके रससे कटोरी भर गई थी, परन्तु इस बार बहुतसे दाड़िमोंके निचोड़ने पर भी कटोरी न भरी।' इस पर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। उद्यानपालने कहा-'राजाको इच्छा होने पर फसल अधिक होता है। महाशय शायद आप इस देशके राजा हैं। सम्भवतः इस उद्यानको आमदनीको बात सुन कर आपके मनकी गति पलट गई है। इसीलिए कटोरी भर रस नहीं निकला है।' राजाने लज्जित हो कर मन ही मन प्रतिज्ञा की कि—'यदि यह सत्य है, तो कभी भी फल-कर न लूंगा।' कुछ देर पीछे उन्होंने फिर कटोरी भर रस मंगाया। लड़कीने शीघ्र ही कटोरी भर कर रस ला कर राजाको दिया। सुलतानने उद्यानपालकी बुद्धि और ज्ञानकी प्रशंसा कर उसको अपना परिचय दिया। उन्होंने लोगोंको शिक्षा देने और इस घटनाको चिरस्मरणीय बनानेके लिए उस कन्याके साथ विवाह कर लिया।" बादशाह जहांगीरने इसी आख्यायिकाको सुन कर फल-कर नहीं लगाया था।

जहांगीरके राजत्वकालमें नूरजहान् और उनकी माताने अतरका आविष्कार किया था।

जहांगीर देखनेमें सुडौल, सुपुरुष, और लम्बे कदके थे। इनका वक्षस्थल अत्यन्त प्रशस्त, बाहें लम्बी और रंग ललाईको लिए हुए था। ये कानोंमें सोनेके कुण्डल पहनते थे। इन्होंने काबुल, कान्दाहार और हिन्दुस्तानमें नाना प्रकारके सिक्के चलाये थे। इनके समयमें राजदरबारमें फारसी भाषा व्यवहृत होती थी। जनसाधारण हिन्दी भाषा बोलते थे। बादशाह और इनके कई एक वजीर तुर्की भाषामें वार्तालाप करते थे। जहांगीरका इतिहास बहुतोंने लिखा है; इसके सिवा राजत्वके १८ वर्ष तकका इतिहास जहांगीर खुद लिख गये हैं। शेषके कई वर्षोंका इतिहास महम्मद हादी द्वारा लिखा गया है। जहांगीर चगताई तुर्की भाषामें लिखते थे।

जहांगीर कुलिखां—बादशाह अकबर और जहांगीरके एक कर्मचारी, ये खां आजिम मिर्जा अजीज कोकाके पुत्र थे। १६३१ ई०में शाहजहान्‌के राजत्वके ४र्थ वर्ष इनकी मौत हुई।

जहांगीर कुलीखां काबुली—बादशाह जहांगीरके राज समयके एक अमीर। ये पांच हजार सेनाके अधिनायक थे। १६०७ ई०में जहांगीर बादशाहने इन्हें बङ्गालका शासनकर्ता नियुक्त किया था। १६०८ ई०में बङ्गाल होमें इनकी मृत्यु हुई।

जहांगीर मिर्ज़ा—१ दिल्लीश्वर २य अकबरके ज्येष्ठ पुत्र। इन्होंने दिल्लीके रेसीडेण्ट मि० सिटनको गोली मारी थी, इसलिए राजद्रोह कैदियोंकी तरह ये इलाहाबाद लाये गये और वहां खुसरू बागके उद्यानमें कई वर्ष कैदी की तरह रहे। १८२१ ई०में ३१ वर्षकी उम्रमें उस उद्यान हीमें इनकी मृत्यु हुई। इनकी समाधिस्थ करनेके समय इलाहाबादके किलेसे ३१ तोपें दागी गई थीं। पहले तो उसी उद्यानमें उन्हें समाधिस्थ किया गया था, पीछे उनका कङ्काल दिल्लीमें ले आकर निज़ामउद्दीन औलियाके कबरिस्तानमें गाड़ा गया था।

२ अमीर तैमूरके ज्येष्ठपुत्र। १३७४ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनके लड़केका नाम पीर महम्मद था।

जहांगीरा—*बिहारके भागलपुर जिलेमें गङ्गाका एक टीप* यह अक्षा० २५ १५´ उ० और देशा० ८६ ४४ पू०में अव स्थित है। इसमें एक गिर्जा, एक मन्दिर और बहुतसी पत्थरकी खुदी हुई चीजें हैं।

जहांगीराबाद—युक्तप्रदेशमें बुलन्दशहर जिलेकी अनूप शहर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८ २५ उ० और देशा० ७८ ४५´ पू० बुलन्द शहरसे १५ मील पूर्वमें अवस्थित है। बड़गूजरके राजा अनुरायने इस नगरको स्थापना की थी और वे ही अपने प्रभु जहांगीरके नाम पर इसका नाम जहांगीराबाद रख कर गये हैं। यहां कोंट, गाड़ी और रथ आदि तैयार होते हैं। यहांका वाणिज्य दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। यहां विद्यालय, सराय, थाना, और डाकघर हैं। नगरके चारों ओरकी जमीन उर्वरा है। जिसमें तरह तरहके फल, तिल और सरसों पैदा होती है।

जहांगीराबाद—अयोध्याके सीतापुर जिलेका एक शहर। यह सीतापुरसे २८ मील पूर्व मङ्गोखके उत्तर पश्च प्रान्तमें अव स्थित है। यहां बहुतसे ब्राह्मण और मुसलमान, तालुकदार वास करते हैं और प्रति अप्तमें एक हाट लगती है।

जहांगीरी (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारका जड़ाऊ गहना जो हाथमें पहना जाता है। २ एक प्रकारकी चूड़ी जो लाहकी बनी होती है।

जहांदीद, जहांदीदा (फा० वि०) अनुभवी, जिसने दुनियांको देख कर बहुत कुछ तजरबा किया हो।

जहांपनाह (फा० पु०) संसारका रक्षक, जहानका मालिक। *इस शब्दका प्रयोग बादशाह या बड़े राजा के लिए किया जाता है।*

जहां (म० स्त्री०) जहातिका मातृसकाश। सुकातिका, गोरखमुखी।

जहाज (अ० पु०) जलयान, समुद्रयान अर्णवपोत, वह सवारी या बहुत बड़ी नाव जो जलपथसे जानेके काम आती है और ऊपर नदी पानी विशेषतः समुद्रमें चलती है। इसे अंगरेजीमें Ship (शिप) कहते हैं। जलपथसे जाने आने या द्रव्यादि एक देशसे दूसरे देशको ले जानेके लिए मानवजातिने जिस यानका आविष्कार किया था, उसीका नाम 'जहाज' है।

प्राचीन कालमें मानवजातिने सभ्यताके पैरोंके साथ, से बड़ी कठोंका सामना करते हुए सर्वदा कुछ न कुछ प्रयत्न करते रहनेसे दिनों दिन इस यानके बनानेमें सफलता प्राप्त की थी। यह सहज ही बोधगम्य है कि वर्तमान समयमें जो बड़े बड़े जहाज देख रहे हैं, वे एक ही समयमें उत्पन्न नहीं हुए, बल्कि कई युगोंके क्रम विकाशसे ही उनकी वर्तमान उन्नति हुई है।

जहाजके क्रमविकाशमें निम्न लिखित स्तर नियत किये जा सकते हैं। जैसे—१ प्रथम अवस्थामें पानीमें लकड़ी या सूखी लता आदिको एक साथ बांध कर उस पर सवार हो पार हुआ करते थे। २ पीछे उसमें कुछ उन्नति हुई, लोग इसके स्तूनमाम (काष्ठ) में गड़हा कर एक प्रकारकी डोंगी बना, उस पर बैठ कर पार होने लगे। (३) इसके बाद पशुचर्म या इसके वल्कलको रखड़ा कर उससे एक प्रकारकी मजबुत नाव, बनाई जाने लगी। पुरातत्त्वविद् ऐतिहासिकोंका कहना है कि अति प्राचीनकालमें भारतवर्षमें द्राविड़ जातिकी एक शाखा चर्म निर्मित छोटो छोटी नावों पर चढ़ कर महासमुद्रकी भीषण तरङ्गमालाओं को अतिक्रम करती

हुई अट्रे लिया महादेशमें* पहुंची थी। (४) उसके बाद काष्ठ-निर्मित बहुत सी नावोंको पशुकी स्नायु या लताओंकी रस्सीसे बांध कर बृहत् जलयान बनानेकी प्रचेष्टा की गई। (५) उसको भी कुछ उन्नति करके सोतरसे रस्सी आदिके द्वारा तख्तोंको बांध कर बड़ी नाव बनाई गई। (६) उसके बाद, पहले जहाजके अवयवोंको बना कर फिर उसमें कीलोंसे तख्ता और डांड़ पतवार आदि बैठा कर जहाज बनानेकी रीति प्रचलित हुई।

उल्लिखित प्रत्येक प्रकार जलयान अब तक असभ्यों-के ही व्यवहारमें आया करता है। किन्तु उन्नतिशील देशोंने सभ्यताकी वृद्धिके साथ साथ जलयानकी भी यथेष्ट उन्नति कर वाणिज्य और भावविनिमयमें सुगमता कर ली है।

जहाजका इतिहास—पाश्चात्य विद्वानोंने जहाजको क्रमोन्नतिका वर्णन करते हुए वा मानव द्वारा उसके व्यवहारकी प्राचीनता दिखाते हुए, बतलाया है कि, मिसरदेशमें तीन हजार वर्ष पहले जहाज व्यवहृत होता था। किन्तु यदि उन्हें हमारे देशके वैदिक साहित्य और चित्रशिल्पादिके विषयमें कुछ परिज्ञान होता, तो सम्भव है उन्हें ऐसे भ्रममें न पड़ना पड़ता। हमारे देशमें ही सबसे पहले जहाज बनाये और काममें लाये जाते थे। इसलिए पहले हम अपने देशके अर्णवपोतका (अति प्राचीनकालसे वर्त्तमान समय तकका) इतिहास लिख कर, पीछे पाश्चात्य देशमें उसके क्रमविकाशके विषयका आलोचना करेंगे।

ऋग्वेदका प्रथमांश कितने समय पहले रचा गया था, इस विषयमें विद्वानोंका मतभेद है। लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलकके मतसे हिन्दुओंका परम पवित्र ऋग्वेद आजसे तीस हजार वर्ष पहले रचा गया था। यद्यपि यह मत सबके लिए मान्य नहीं है, तथापि यह निश्चित है कि ऋग्वेदकी रचना अति प्राचीनकालमें हुई थी। इस ऋग्वेदमें हमें जहाज और समुद्र यात्राके अनेक उल्लेख मिलते हैं।

* वर्तमान अट्रेलियाके आदिम अधिवासी सम्भवतः उन्हीं द्राविड़ोंकी सन्तान हैं।

"वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेदनावः समुद्रियः।" (ऋक् १।२५।७)

इस पदमें इस बातका उल्लेख है कि वरुणदेव समुद्रके उन मार्गोंसे परिचित थे जहांसे जहाज आया जाया करते थे। इस प्रथम मण्डलके सिवा हमें और भी एक सूक्तमें समुद्रयात्राकी उत्कृष्ट वर्णनामूलक एक प्रार्थना मिलती है—

"द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय।
सनः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये॥"

अर्थात्—'हे विश्वदेव! जिनका चारों ओर ही मुख है, वे हमारे शत्रुओंको उसी प्रकार भगा दें, जिस प्रकार जहाज उस पार भेज दिया जाता है। तुम हम लोगोंको समुद्रमें जहाज पर चढ़ा कर ले जाओ, जिससे सबका मङ्गल हो।' और एक जगह, वणिकोंने धनकी लालसासे विदेशमें जहाज भेजे थे, इस बातका उल्लेख है—

"उवासोषा उच्छाच्चनु देवी जीरा रथानाम्।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः॥"

(ऋक् १।४८।३)

इसके अलावा अन्यत्र एक जगह (ऋक् १।५६।२) ऐसे वणिकोंका उल्लेख आया है कि जिनका कर्मक्षेत्र किसी सीमाके द्वार आबद्ध नहीं है, लाभके लिए वे सर्वत्र जाया करते थे और प्रत्येक समुद्रमें उनके जहाज चलते थे। सातवें मण्डलके एक सूक्तमें लिखा है—वशिष्ठ और वरुणने बड़े कौशलसे एक जहाज बनवाया था और उस पर चढ़ कर भ्रमण किया था। (ऋक् ७।८८।३-४) समुद्रयात्राके विषयमें प्रथम मण्डलको एक कहानीसे (१।११६।३) हम जान सकते हैं कि बहुत प्राचीन समय-में हमारे देशमें एकसौ डांड़ोंसे खेया जानेवाला जहाज भी मौजूद था। कहानी इस प्रकार है—ऋषिने तुग्र अपने पुत्र भुज्युको शत्रुके विनाशनार्थ किसी दूरदेशमें भेजा था, किन्तु मार्गमें जहाजके टूट जानेसे वे अनुचर सहित समुद्रमें गिर पड़े। इस विपत्तिमें अश्विनी-युगलने एकसौ डांड़ोंका जहाज ला कर उनकी रक्षा की।

रामायणके पढ़नेसे भी हमें इस बातका परिज्ञान हो जाता है कि प्राचीन भारतमें जहाज और समुद्रयात्रा-

है। कोटिभट राजा श्रीपाल वाणिज्यके लिए विदेश गये थे; मार्गमें धवल सेठने उनको रानी रैनमंजूषाके सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर श्रीपालको समुद्रमें डाल दिया था। जैन पुराणानुसार आजसे प्रायः बहुत हजार वर्ष पहले नेमिनाथके समयमें चारुदत्त वाणिज्यके लिये समुद्रयान द्वारा विदेश गये थे। जीवन्धरस्वामीने, जो श्रीमहावीरस्वामीके समयमें हुए थे, समुद्रयात्रा की थी तथा जिनदत्त सेठ जहाज पर चढ कर सिंहलद्वीप गये थे। इसके सिवा जैन-पुराणोंमें और भी बहुत जगह समुद्रयात्रा और जहाजका उल्लेख पाया जाता है।

वेद, पुराण, स्मृति आदि धर्मग्रन्थोंके सिवा संस्कृत काव्य, नाटक आदिमें भी प्राचीन भारतके अर्णवपोतकी गौरव-वार्ताका अभाव नहीं है। कालिदासके रघुवंशमें लिखा है—राजा रघुने बङ्गाधिपतिकी सुदृढ रणतरीको पराजित कर गङ्गाके मध्यस्थित द्वीपमें विजयस्तम्भ स्थापित किया था।

"वङ्गान् उत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्।
निचखान जयस्तम्भं गंगास्रोतोऽन्तरेषु च॥"
(रघु० ४।३६)

श्रीहर्षराज लिखित रत्नावली नामक सुप्रसिद्ध नाटकमें भी, सिंहलकी राजकुमारीके वत्सराजकी राजधानीमें आते समय मार्गमें जहाज फट जानेके कारण उनकी दुरवस्थाका वर्णन मिलता है।

दशकुमारचरितके रत्नोद्भव वणिक् किस तरह कालयवनद्वीपमें गये थे और वहांसे सुन्दरी पत्नीको व्याह कर आते समय जहाजके फट जानेसे उन्हें कैसी विपत्तिमें पड़ना पड़ा था, यह किसीसे छिपा नहीं है। शिशुपालवधमें प्राचीन भारतके वाणिज्यके विषयमें एक जगह बड़ा अच्छा वर्णन आया है—'श्रीकृष्णने देखा, कि दूरदेशसे बहुतसे जहाज इत्यादि ले कर इस देशमें आये और उन्हें बेच बहुतसा अर्थ संग्रह कर इस देशकी चीजें ले पुनः अपने देशको चल दिये।"

संस्कृत कथासरित्सागरके ८वें लम्बककी १ली तरङ्गमें कहा गया है, कि पृथ्वीराज एक रूपदक्ष व्यक्तिके साथ अर्णवयानमें चढ़ कर मुक्तापोड़द्वीपमें उपस्थित हुए थे। उक्त ग्रंथमें और भी बहुत जगह समुद्रयात्राका विवरण लिखा है। हितोपदेशके कन्दर्पकेतु वणिक भग्न ... पर सवार हो समुद्रयात्रा की थी, यह कौन नहीं जानता। इस प्रकार हम प्राचीन संस्कृत साहित्यके प्रायः सभी विभागोंमें भारतवर्षके जहाजोंको वर्णना पाते हैं।

जहाजका उल्लेख सिर्फ संस्कृतमें ही निबद्ध हो, ऐसा नहीं। पालि साहित्यके जातकों एवं प्राकृत भाषामें लिखित प्राचीन जैन-पुराणोंमें भी जहाज और समुद्रयात्राका बहुत कुछ विवरण पाया जाता है। जनक जातक, वालहस्स जातक आदिमें अर्णवयान फट जानेका जिक्र है। "समुद्र-वाणिज-जातक"का जहाज इतना बड़ा था कि एक ग्रामके १००० सूत्रधार उसमें बैठ कर भाग गये थे। "वभेरु जातक"के पढ़नेसे अनुमान होता है, प्राचीन भारतवर्षके वणिक् बबिलोनिया (Babylonia) के साथ व्यापार करते थे। उक्त देशके इतिहासके पढ़नेसे भी यह अनुमान दृढ़ होता है। "दीर्घनिकाय" (१।२२) के पढ़नेसे मालूम होता है कि जहाज पर चलते चलते भारतीय वणिकोंकी दृष्टि किनारे तक न पहुंचती थी।

पालि साहित्यका भली भांति मनन करके Mrs. Rhys. Davids ने निम्नलिखित सिद्धान्त निश्चित किया है—

प्राचीनकालमें भारतवर्षके साथ बबिलोन और सम्भवतः अरब, फिनिसिया और मिसर देशका समुद्र पथसे वाणिज्य-सम्बन्ध प्रचलित था। पश्चिम देशीय वणिक् प्रायः बनारस वा चम्पासे जहाज खेते थे, इसका उल्लेख प्रायशः देखनेमें आता है।

भारतीय स्थापत्य, चित्रशिल्प और मुद्राकी सम्यक् आलोचना करनेसे भी हम प्राचीनकालके जहाजोंकी प्रतिकृतिका परिज्ञान हो सकता है।

ईसाके पूर्व द्वितीय शताब्दीके साञ्चीस्तूपसे प्राचीन भारतकी नौविद्याका कुछ परिचय मिलता है। पूर्व द्वारके १नं० स्तूप पर तथा पश्चिमद्वारके १नं० स्तूप पर जहाजकी प्रतिकृति है। शेषोक्त स्थापत्यमें सम्भवतः राजकीय प्रमोद अर्णव अङ्कित है।

बम्बई प्रदेशके कानडीकी गुफामें ईसाकी २य शताब्दीके खुदे हुए चित्रमें एक भग्न जलयानका विवरण लिखा है। उसमें यात्रिगण व्याकुलचित्त हो देव

वहसाथियोंसे प्रार्थना कर रहे हैं ऐसा उल्लेख है। समुद्रयात्राविषयक उल्लेख विशेषि, मत्स्य तथा विष्णुपुराणमें हैं। कितने युग बीत गये कितने तूफाने हो गये किन्तु उनका गौरव अब भी उज्ज्वल और अक्षुण्ण है। इसकी ६ठी और ७वीं शताब्दीमें वे अङ्कित हुए थे। अजन्ता गुफाकी २य गुफामें जो जहाजके चित्र अङ्कित हैं। उस युगमें भारतवर्षके जहाज अत्यन्त गौरवान्वित थे। ग्रिफिथका कहना है, कि वे प्राचीन भारतके वैदेशिक वाणिज्यके उज्ज्वल साक्षी हैं। एक चित्रमें विजयकी सिंहलयात्राका वर्णन अङ्कित है। चित्रके अधिकांश जहाज बहुतसे पालों और लम्बे लम्बे मस्तूलोंसे सुशोभित हैं। देखनेसे उनके सुदृढ़ होनेमें ज़रा भी सन्देह नहीं रह जाता।

प्राचीन भारतवासी जिस तरह जावामें उपनिवेश स्थापन करनेके लिए गये थे, वह चित्रमें वह अच्छीभांति अङ्कित किया गया है। इस चित्रमें जहाज लोग मौको बना कर पाल चढ़ा रहे हैं, यह देख कर उनके साहस और कौशलका यथेष्ट परिचय मिलता है। जिमार्ड साहिबके यारेस्ट्र जियममें जावा वासी हिन्दुओंसे एक जहाजका नमूना रक्खा गया है, जिसकी लम्बाई ६० फुट और चौड़ाई १५ फुट है। मथुराके मन्दिरमें एक चित्र है, जिसमें पाल चढ़ा कर समुद्रमें जाता हुआ जहाज दिखाया गया है।

ईसाकी २य और ३य शताब्दीके अन्ध्र राजाओंकी कुछ मुद्राओंमें जहाजकी प्रतिलिपि है। ऐतिहासिक भिन्सेंट स्मिथका कहना है कि जहाजकी चिह्नोंके देखनेसे ऐसा अनुमान होता है कि उनलोगोंका साम्राज्य सिर्फ भूमिभागमें ही आबद्ध नहीं था। जिस युगमें भारतवासियोंने अर्णवयानके मूल्यका स्मरण कर सिक्केमें भी उसका चित्र अङ्कित किया था, उस युगमें भारतवर्ष धनधान्यसे परिपूर्ण होगा इसमें आश्चर्य ही क्या? भाव-मुद्राम जहाजका चित्र देख कर केनेडीने कहा है कि उस समय भारतवर्षका पश्चिम एशिया, ग्रीस, रोम, मिस्र और चीनके साथ जलपथ और स्थलपथसे वाणिज्य प्रचलित था।* पल्लव राजाओंके सिक्केमें भी जहाजका चित्र देखनेमें आता है।

मौर्ययुगमें प्राचीन जहाजोंकी अवस्था—मौर्य साम्राज्य स्थापनके पूर्वमें महावीर सिकन्दर शाहने पञ्जाब प्रदेशमें बहुतसे जहाज इकट्ठे किये थे। उसके बाद उनके सेनापति निआरकसने भारतवर्षसे स्वदेश लौटते समय जितने भी जहाज या बड़ी नावें देखी थीं, सबको अपने काममें लगाया था। अरियन (Arrian) ने स्पष्टरूपसे कहा है, कि Xathroi नामक जाति तीस डांड़वाले जहाज बना कर उन्हें भाड़े पर दिया करती थी। इसके सिवा उन्होंने जहाज बांधनेके लिए बन्दर बनाये जानेका भी उल्लेख किया है।

मौर्ययुगमें जहाज बनानेके कार्यमें भारतवासी विशेष पटुता प्राप्त थे। किन्तु ये कार्य राजकी देखरेखमें हुआ करते थे। ग्रीक-दूत मेगास्थिनिसने कहा है, कि एक जाति सिर्फ जहाज बनानेका ही काम करती थी। किन्तु वे साधारणके वेतनभोगी कर्मचारी न थे अर्थात् राजकार्यके सिवा अन्य किसीका भी कार्य न करते थे। स्ट्राबोका कहना है कि ये जहाज व्यवसायी वणिकोंको भाड़े पर दिये जाते थे।

इन जहाजोंके लिये राज्यमें एक स्वतन्त्र विभाग खोलना पड़ा था। स्ट्राबो और मेगास्थिनिसके सिवा कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्रमें इस विभागके विषयमें बहुतसी बातें लिखी हैं। इस विभागका सम्पूर्ण भार उसके अध्यक्षके ऊपर था। वे समुद्रयात्रा विषयक समस्त कार्योंमें कर्त्तृत्व करते थे। इसके सिवा नदी, हृद, खाड़ीका भार भी उन्हींके ऊपर था। वे बन्दरमें जितने सब तरहके कर सुचारु रूपसे वसूल हो, इस पर भी दृष्टि रखते थे। वर्तमान समयमें पोर्ट कमीशनर पर जिन कार्योंका भार है, उक्त विभागके अध्यक्ष पर भी उन्हीं कार्योंका भार था। समुद्र तीरवर्ती ग्रामोंसे एक प्रकारका विशेष कर वसूल किया जाता था। वणिक लोग बन्दरके नियमानुसार कर देते थे§। राजकीय जहाजों पर जानेवाले यात्रियोंसे काफी भाड़ा लिया जाता था‡।

* Imperial Gazetteer, New Edition Vol. II p. 32.

§ "पत्तनानुवृत्तं शुल्कभागं वणिजो दद्युः।"

‡ "यात्रावेतनं राजनौभिः सम्पतन्तः।"

नौ-विभागके अध्यक्षको बन्दरमें शृङ्खलाको रक्षाके लिए नाना उपायोंका अवलम्बन करना पड़ता था। जब कभी कोई जहाज तूफानके कारण बहता हुआ बन्दरके पास उपस्थित होता था, तो उस समय उसे सबसे पहले आश्रय दिया जाता था। पानीसे यदि किसी जहाजका रफ़तनी किया हुआ माल बिगड़ जाता था, तो वे उस मालका महसूल माफ कर देते थे। यदि मल्लाह वा नाविकके अभावमें अथवा अच्छी तरह मरम्मत न होनेसे जहाज डूब या फट जाय, तो शासन-विभागसे वणिकोंकी क्षति-पूर्ति की जाती थी। जो उनके बनाये हुए नियमके प्रतिकूल चलते थे, उन्हें दण्ड भी दिया जाता था। उनको जलदस्युके जहाज, शत्रुदेशगामी जहाज तथा बन्दरके कानूनभङ्ग करनेवाले जहाजोंको नष्ट कर देने तकका अधिकार था। जहाज पर सवार हो, यदि निम्न प्रकारके व्यक्ति कहीं भागनेका प्रयत्न करते थे, तो वे उन्हें पकड़वा कर दण्ड दे सकते थे। जैसे—दूसरेकी स्त्री, कन्या वा धन चुरानेवाला एक व्यक्ति, दण्डित व्यक्ति, भारविहीन व्यक्ति, छद्मवेशी, अस्त्र वा विष ले जानेवाला व्यक्ति, इत्यादि। जो लोग बिना अनुमति (वा बिना टिकटके) भ्रमण करते थे, उनकी चीज-वस्तु वे जब्त कर सकते थे।

चन्द्रगुप्तके पौत्र प्रियदर्शी अशोकने भी पितामहके राजत्वका गौरव इस विषयमें अक्षुण्ण रक्खा था। सिंहल, मिसर, ग्रीक, सिरिया आदि देशोंमें उनका लेन-देन चलता था। समग्र भारतवर्षमें किस प्रकारका जहाजका व्यवसाय प्रचलित था, इसका परिचय मिल चुका। अब वङ्गदेशका विवरण लिखा जाता है, क्योंकि इस विषयमें इसने यथेष्ट ख्याति लाभ की थी।

वङ्गदेशके राजपुत्र विजयबाहु पिताके द्वारा निर्वासित होने पर किस तरह सिंहल गये थे, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। विजयबाहु अपने आदमियोंको तीन जहाजों पर चढ़ा कर सिंहलके लिए रवाना हुए थे। उन जहाजोंमें मस्तूल थे, पाल थे, अर्थात् ष्टीम और इंजन बननेके पहले जिन जिन चीजोंकी जरूरत थी, वे सब थीं। बहुतसे लोग विजयबाहुकी कथा पर अविश्वास करते हैं, किन्तु उनकी लङ्का यात्राका चित्र अजन्ता-गुहामें अब भी मौजूद है और वह आजसे १४०० वर्ष पहले अङ्कित हुआ था। उस समय भी लोग समझते थे, कि विजय इस तरह और इस प्रकारकी नौका पर चढ़ कर लङ्का पहुंचे थे।

ईसाके ४००० वर्ष बाद फाहियान ताम्रलिप्तसे एक जहाज पर चढ़ कर चीन गये थे। इस जहाज पर नाना देशके लोग थे। चीन समुद्रमें भयङ्कर तूफान उपस्थित होने पर जब जहाजके डूबनेमें कुछ कसर न रही, तब फाहियानने बुद्धदेवका स्तव करना प्रारम्भ कर दिया। तूफान शान्त हो गया और जहाज बच गया।

उसके बाद ताम्रलिप्तसे चीन और जापानको जहाज गया था, ऐसा सुननेमें आता है। कुछ दिन बाद भारतवासी सुमात्रा, जावा, बाली आदि द्वीपोंमें जा कर बसने लगे और वहां शैव, वैष्णव और बौद्धधर्मका प्रचार करने लगे।

महाकवि कालिदासने कहा है, कि वङ्गदेशके राजा नौकाओं पर चढ़ कर युद्ध करते थे। पालराजागण युद्धके लिए बहुतसी नौकाएं रखते थे, इसमें सन्देह नहीं। खालिमपुरमें धर्मपालका जो ताम्रलेख मिला है, उसमें यह बात लिखी है कि युद्धके लिए धर्मपाल बहुत सी नावें रखते थे। रामपाल नौकाओंका पुल बना कर गङ्गा पार हुए थे, यह बात रामचरितमें स्पष्ट लिखी है। १२७६ ई०में ताम्रलिप्तसे कुछ बौद्ध-भिक्षु जहाज पर सवार हो पेगन गये थे और वहांके बौद्धधर्मका संस्कार किया था, यह बात कल्याणी नगरके शिलालेखमें स्पष्टतया कही गई है।

इसके अतिरिक्त मनसा और मङ्गलचण्डीकी पोथीमें भी हमें बङ्गालकी नौकायात्राका यथेष्ट विवरण मिलता है—एक एक सौदागर एक साथ पन्द्रह सोलह जहाज एक नाविकके अधीन समुद्रमें ले जाया करते थे और यथा समय सिंहल पहुंचा, वहां १५-१६ दिन ठहर कर व्यापार करते थे। फिर वहांसे महासमुद्रमें जाते थे और नाना द्वीप उपद्वीपोंमें वाणिज्य करते थे। चांद

सौदागरके प्रधान जहाजका नाम मधुकर था। किसी किसी पोथीमें लिखा है, कि मधुकर नामक जहाजमें १२०० डांड़ थे। द्विज वंशीदासने 'मनसार भासान'में लिखा है कि सिंहलसे १२ दिन महासमुद्रमें चलनेके बाद भीषण तूफान उठा तुषाराग्निकी तरह हिमराशि नौकाके ऊपरसे जाने लगी चांदसौदागर 'मेरा सर्वस्व इन्हीं नावों पर है' कह कर रोने लगे। आखिर वे नाविक को पकड़ कर खींचातानी करने लगे कहने लगे—'तुम इसका कुछ बन्दोबस्त करो।' नाविकने उन्हें बहुत समझाया, पर उन्होंने एक न मानी। आखिर नाविकने 'मधुकर'से कुछ तेलके पीपा निकाल कर समुद्रमें डाल दिये जिससे तूफान कुछ कुछ बन्द हो गया। दूरमें सब जहाज दिखलाई देने लगी। चांद सौदागर मारे खुशीके फूले न समाये।

इन पुस्तकोंके लिखे जानेके बाद भी जिस समय केदारराय और प्रतापादित्य खूब प्रबल हो उठे थे उस समय वे सर्वदा ही जहाज ले कर युद्ध किया करते थे और कभी कभी दूर देशको जाया करते थे; किन्तु उस समय पुर्त्तगीज जलदस्युओंका एक दल उनका सहायक था। इसके बाद भी जब आराकानके राजा और पुर्त्तगीज जलदस्यु बङ्गालमें बहुत अत्याचार करने लगे थे उस समय बङ्गाली नाविकोंकी सहायतासे ही मायस्ताखाँने उनका दमन किया था।

समुद्रसेवा, जहाज निर्माण और समुद्र तत्पर वाणिज्य के लिए बङ्गालका चट्टग्राम आवहमान कालसे प्रसिद्ध है। अब भी इस देशके उत्तर न विभागमें बहुतसे ऐसे मनुष्य हैं, जो बचपनसे खलासीका काम कर पृथ्वीके समस्त बड़े बड़े बन्दरोंका स्पर्श कर आये हैं। भारत महासमुद्रके मालद्वीप, लाक्षाद्वीप आन्दामन, निकोबार जावा सुमात्रा, सिंगापुर, पिनांग, बर्म्मा आदि जाना तो व्यापारके लिए 'सहज आना' था। भारत-महासमुद्रके द्वीपपुञ्जसे ले कर चीन, ब्रह्मदेश और मिसर तक तो उनका वाणिज्य सम्पर्क अनिवार्य था। भारतवर्षके साथ जलपथसे वाणिज्य सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए १४०५ ई में चीन-सम्राट ने चेङ्गहो नामक एक सचिव को यहां भेजा था। उन्होंने इस यात्राका अच्छा सा विवरण लिखा है। उसमें पहले १३३४ ई०में इब्नबतूता नामक एक मूर परिव्राजक मलबार उपकूलसे मालद्वीप स्पर्श करते हुए चट्टग्राम आये थे और देशीय जहाज पर चढ़ कर चीन पहुंचे थे। उस समयके अन्य एक चीनपरिव्राजक माहुयन्द लिखते हैं, कि चट्टग्रामने उस समय ताम्रलिप्तको अतिक्रम कर चीन और मलयद्वीपपुञ्जके साथ वाणिज्य सम्बन्धका मानो ठेका कर लिया था। इस देशका जलस्थान और जहाज निर्माण प्रथाकी इतनी अच्छी थी कि इसके सम्राटने अपने अभिज्ञमिस्त्रियोंसे जहाज और जहाजके कारखानेको मालमन्द कर इस चट्टग्राममें जहाज बनवाया था। तीन वर्ष पहले भी, कर्णफूली नदी समुद्रसंगमोंकी तरफ से होकर देशीय जहाजोंसे समाच्छन्न रहती थी। यह ग्रामक दक्षिणमें फातिकछड़ि, पतेङ्गा आदि ग्रामोंमें देशीय मिस्त्रियोंके बहुतसे जहाजके कारखाने थे। ये कारखाने रात दिन हथौड़ेकी आवाजसे गूंजा करते थे। इन *मिस्त्रियोंके पूर्वपुरुष ईशान मिस्त्री* एक दक्ष और प्रसिद्ध कारीगर थे प्रसिद्ध ऐतिहासिक वेवर साहबका कहना है, "इस जहाजके कारखानेमें १७०५ ई० तक अपना साहसी मनुष्य रहता था।" इससे कुछ पहले एक हिन्दू सौदागरका "[illegible]" नामका जहाज इस देशके नाविक द्वारा परिचालित हो कर इङ्गलैण्डके "डण्डी" तक सफर कर आया था। अंग्रेजी राज्यके प्रारम्भमें जब इस देशके जहाजने उत्तमाशा अन्तरीप वेष्टन करते हुए सबसे पहले इङ्गलैण्ड [illegible]के बन्दरमें पहुंच कर लङ्गर डाला था, तब इङ्गलैण्डके विस्मित नरनारियोंके कण्ठसे जो विस्मय और ईर्षाकी आवाज निकली थी उसका उल्लेख ईष्ट इण्डिया कम्पनीके इतिहासमें पाया जाता है।

१८११ ई०के मार्च मासमें भी चट्टग्रामके धनी श्रेष्ठ सौदागर अबदुल रहमान दुभाषी साहबका 'अमीना खातुन' नामक एक नया देशीय बड़ा जहाज पानीमें छोड़ा गया था। इस जहाजको देख कर गवर्नमेण्टके मेरिन सरवेयरने स्वयं कहा था कि "यह किसी अंशमें विलायती जहाजकी अपेक्षा निर्माण कौशलमें कम नहीं

है। गठन और सुन्दरतामें भी तदनुरूप है। इसमें मोटर वा इंजन लगा देनेसे ही 'ष्टीम शिप' बन सकता है।'

ईसाकी १२वीं शताब्दीके पहले चट्टग्रामकी वाणिज्य ख्याति यूरोपमें प्रचारित हुई थी। ईसाकी १४वीं शताब्दीमें वहां अरब और चीन देशके वणिकोंका समागम होता था। पाश्चात्य वणिकोंने "पोर्ट ग्रेण्डो" नामसे इसका परिचय दिया है। भिनिस देशके वणिक सोजर फ्रेडरिक ईसाकी १६वीं शताब्दीमें यहां आये थे। उनका कहना है, कि पेगुसे बहुतसी चाँदी चट्टग्राममें आया करती थी। उस समय चट्टग्राम ही बङ्गालमें चाँदीका प्रधान बन्दर था। शक सं० १५५२में हवर्ट साहब चट्टग्रामको बङ्गालका वाणिज्योन्नत और समृद्धि-सम्पन्न अन्यतम नगर बतला गये हैं। शक सं १५६१में मण्डलेस् लुई राजमहल, ढाका, फिलिपाटम और चट्ट-ग्राम इन स्थानोंको बङ्गालके प्रधान नगर बतला गये हैं।

प्राचीन भारतमें जहाजकी निर्माणप्रणाली—भारतवर्षमें किस तरह जहाज बनाये जाते थे, इसका परिचय हमें भोजके 'युक्तिकल्पतरु' नामक संस्कृत ग्रंथसे मिल सकता है। उनके मतसे क्षत्रियश्रेणीके काठसे निर्मित जहाज द्वारा ही सुख और सम्पद प्राप्त होती है। इसी प्रकारके जहाज दुरवगम्य स्थानोंमें संवादादि भेजनेके लिए प्रशस्त हैं। विभिन्न श्रेणीके काठसे बना हुआ जहाज मङ्गल वा सुखप्रद नहीं होता और न वह ज्यादा दिन ठहरता ही है। पानीमें सड़ जाता है और जरासा धक्का लगते ही टूट जाता है। काष्ठ संयोजनाके विषयमें भोजने बहुत मार्केका उपदेश दिया है—

"न सिन्धु गद्योर्हति लौहबन्धं
तल्लौहकान्तैर्ह्रियते हि लौहम्।
विपद्यते तेन जलेषु नौका
गुणेन बन्धु निजगाद भोज॥"

जहाजके नीचे काठके साथ लोहा काममें न लाना चाहिए; क्योंकि इससे समुद्रमें चुम्बकके द्वारा जहाज आकृष्ट हो कर डूब सकता है। इससे मालूम होता है कि हिन्दू लोग पहले खूब गहरे और अज्ञात समुद्रमें भी जहाज ले जाया करते थे। इसके सिवा भोजने आकार के अनुसार जहाजके भेद भी बतलाये हैं। प्रधानतः जहाजके दो भेद किये हैं—एक साधारण, जो नदी आदिमें चलते हैं और दूसरे विशेष जो सिर्फ समुद्र यात्राके लिए व्यवहृत होते हैं। यहां विशेषश्रेणीके जहाजोंका ही विवरण लिख रहे हैं। विशेषको उन्होंने दो भागोंमें विभक्त किया है—(१) दीर्घा और (२) उन्नता। दीर्घाके दश भेद हैं और उन्नताके पांच। नीचे उनके नाम, लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई लिखी जाती है—

नाम	लम्बाई	चौड़ाई	ऊँचाई
(१) दीर्घिका	३२ हाथ	४ हाथ	३⅕ हाथ
(२) तरणी	४८ ,,	६ ,,	४⅘ ,,
(३) लोला	६४ ,,	८ ,,	६⅖ ,,
(४) गत्वरा	८० ,,	१० ,,	८ ,,
(५) गामिनी	९६ ,,	१२ ,,	९⅗ ,,
(६) तरिः	११२ ,,	१४ ,,	११⅕ ,,
(७) जङ्गला	१२८ ,,	१६ ,,	१२⅘ ,,
(८) प्लावनी	१४४ ,,	१८ ,,	१४⅖ ,,
(९) धारिणी	१६० ,,	२० ,,	१६ ,,
(१०) वेगिनी	१७६ ,,	२२ ,,	१७⅗ ,,

इनमेंसे कुछके रखनेसे दुर्भाग्य होता है; जैसे—

"अत्र लोला गामिनी च प्लाविनी दुःखदा भवेत्।
लोलाया भारमारन्य यावद्भवति गत्वरा।
लोलायाः फलमाधत्ते एवं सर्वासु निर्णयः॥"

उन्नता श्रेणीके भेद इस प्रकार हैं—

नाम	लम्बाई	चौड़ाई	ऊंचाई
(१) ऊर्ध्वा	३२ हाथ	१६ हाथ	१६ हाथ
(२) अनूर्ध्वा	४८ ,,	२४ ,,	२४० ,,
(३) स्वर्णमुखी	६४ ,,	३२ ,,	३२ ,,
(४) गर्भिनी	८० ,,	४० ,,	४० ,,
(५) मन्थरा	९६ ,,	४८ ,,	४८ ,,

इनमें भी अनूर्ध्वा, गर्भिनी और मन्थरा गर्हित हैं।

जहाजके यात्रियोंके सुभीतेके लिए भोजने कुछ नियम लिखे है। जहाजके सजानेके लिए स्वर्ण, रौप्य, ताम्र अथवा इन तीनोंकी मिश्रित धातु काममें लानी चाहिए। जिस जहाजमें चार मस्तूल हैं, उस पर सफेद रङ्ग, जिसमें तीन मस्तूल है उस पर लाल रंग, जिसमें दो मस्तूल हैं

ज्यादा न समाते थे—ऐसे जहाजको नौका कहनेसे अत्युक्ति न होगी। क्रुजेड नामक धर्मयुद्धके समय जहाजोंको काफी उन्नति हुई थी। इस समय भेनिस और जनोआके लोग जहाज पर चढ़ कर तत्कालीन पृथिवीके समग्र परिचित स्थानोंमें वाणिज्यके लिये जाते थे। इङ्गलैण्डके वीर राजा सिंहहृदय रिचार्ड (११८८—११८८ ई०में) बड़े भारी जहाज पर चढ़ कर युद्ध करने गये थे। उनकी अधीनतामें २३० जहाज युद्ध करते थे उस समय मुसलमानोंके भी बड़े बड़े जहाज थे। कहा जाता है, कि उनके एक जहाजमें १५०० आदमी समाते थे। उस समय वाणिज्यके काम आनेवाले जहाजों ही में युद्धके समय अस्त्र-शस्त्र द्वारा सुसज्जित कर लिये जाते थे—युद्धके लिए पृथक् जहाजोंकी उत्पत्ति उस समय तक न हुई थी।

परन्तु धर्मयुद्धके बाद ही यूरोपकी जातियोंमें पाश्चात्य-देश सम्बन्धी ज्ञानकी वृद्धि हुई। उसके कुछ समय बाद, यूरोपमें नवजागरणका आन्दोलन हुआ। वहांके एक श्रेणीके लोगोंके हृदयमें पृथिवीके अपरिज्ञात सुदूर देशोंमें जानेकी आकांक्षा उत्पन्न हुई। उन्हीं लोगोंकी कोशिशसे जहाजकी निर्माण-प्रणालीमें जमीन आसमानका फेर हो गया। उसी समय बारूदका भी आविष्कार हुआ और साथ ही जहाजोंमें तोप बैठानेके स्थान निर्दिष्ट किये गये।

इंगलेण्डमें राजा ५म हेनरीने बहुत बड़े बड़े जहाज बनवाये, जिनमें एक एक हजार टन माल समाता था। कोलम्बसने जिस जहाज पर चढ़ कर अमेरिकाका आविष्कार किया था, उस श्रेणीका जहाज "Carvet" कहलाता है। यह देखनेमें छोटा होने पर भी बहुत तेजीसे जाता है और बड़ा मजबूत होता है।

पर्तुगीजोंने एक तरहका बड़ा जहाज आविष्कृत किया था, जिसका नाम था 'Barracks'। ईसाकी १६वीं शताब्दीमें जलयुद्ध अकसर हुआ करता था और इसीलिए इंगलैण्ड आदि देशोंमें एक प्रकारके युद्धके जहाजोंका बनना शुरू हो गया था।

ईसाकी १८वीं शताब्दीमें ६० तोपोंवाले जहाजोंकी साधारण लम्बाई थी १६४ फुट और उनमें १५७० टन माल समाता था। इसी समयसे जहाजका आकार बदल कर उसमें उन्नति करनेकी कोशिश होने लगी। अब १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें पालसे चलनेवाले जहाजोंकी प्रथा उठा कर किस प्रकार ष्टीम वा वाष्पसे चलनेवाले जहाजोंका प्रवर्तन हुआ, उसकी आलोचना की जाती है।

१७७७ ई०में सबसे पहले एक लोहेकी नौका बनाई गई। पीछे उसीके आदर्श पर एक दो चार जहाज भी लोहेसे बनाये गये। कहा जाता है जब मस्कलैण्ड नहरमें "भालकान" नामका जहाज बन कर तैयार हुआ, तभीसे लोहे- केजहाज बनानेकी रिवाज पड़ गई। पहले पहल लौह पोतके विषयमें बहुतोंने बहुत प्रकारसे आपत्ति की थी, किन्तु पीछे उसका व्यवहार होनेसे वह उनका मुंह बन्द हो गया। १८६०से १८७५ ई० तक जहाजके लिए इस्पात काममें आता रहा। काठके जहाजोंकी अपेक्षा लोहे और इस्पातसे बने हुए जहाजमें तीन विशेषताएं पाई जाती हैं—(१) इसका भार वजन कम होता है, (२) यह ज्यादा दिनों तक टिकाऊ होता है, (३) मरम्मत करनेमें बहुत सुभीता है। इस उन्नतिसे जानेसे जहाजके द्वारा मानवसमाजका इतना उपकार हुआ है कि लेखनीसे उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

यद्यपि ई०को १८वीं शताब्दीके अन्तमें वाष्पद्वारा चालित जहाज दो एक हो चुके थे, तथापि उसका यथार्थरूपसे व्यवहार १८वीं शताब्दीके प्रारम्भसे ही हुआ है। पहले यह जहाज डाक ले जानेके लिए ही व्यवहृत होते थे, कारण पालके जहाजोंकी अपेक्षा यह जल्दी पहुंचता था। १८२३ ई०में इङ्गलैण्डमें डाकका काम राजाके हाथसे ले कर साधारण कम्पनीके हाथमें सौंपा गया। "सैभाना" नामक वाष्पीय जलयान सबसे पहले अटलाण्टिक महासागर पार हो गया। १८२५ ई०में "Enterprise" नामक एक वाष्पयान ४७० टन माल लाद कर लण्डनसे उत्तमाशा अन्तरीप होता हुआ १०दिनमें कलकत्ते आया था। भारतवर्षमें ष्टीम-जहाजका यही पहला आविर्भाव था।

ये जहाज 'पैडल ह्वील' नामक यन्त्रसे चलते थे। इसके बाद अनेक वैज्ञानिकोंके बहुत दिनों तक कोशिश करनेके बाद Screwpropeller" द्वारा जहाज चलानेका उपाय आविष्कार किया। उसके बाद जहाजकी और भी उन्नति करनेकी कोशिश होने लगी। अब कल और सिलिण्डरकी क्षमता बढ़ा कर जहाजकी गति वृद्धि की गई। फिलहाल माल लादनेवाले जहाज प्रति इञ्चके लिए १०० से १८० पौण्ड तक और महा समुद्रगामी मुसाफिरी जहाजमें १४०से २२० पौण्ड तक भाफकी दाब दी जाती है।

२० वीं शताब्दीमें जहाजकी खूब उन्नति हुई है। अब तक जहाज पानीके ऊपर ही तैरता था किन्तु अब वैज्ञानिकगण कोशिश करने लगे कि किस तरह जहाजको पानीके भीतरसे चला कर शत्रुके जहाजों का विनाश किया जाय। उनकी अक्लान्त शक्तिके फलसे 'टर्पेडो' और 'सबमेरिन' नामक दो प्रकारके पानीके भीतरसे चलनेवाले जहाजका आविष्कार हुआ।

गत महासमरके समय प्रत्येक जातिने ही अपनी नौशक्ति वृद्धि करनेको यथा शक्ति प्रयत्न किया था। परिणाम हुआ कि १८२०-२१ ई०में जहाज निर्माणके बहुत से नये नये तरीके निकल गये। कोयलेकी जगह तैल-व्यवहारका होना विशेष उल्लेखयोग्य विषय है। इसमें खर्च भी कम पड़ता है और तैल जहाजमें ज्यादा रक्खा भी जा सकता है।

महायुद्धके पहले 'सबमेरिन' नामक पानीके भीतर से चलनेवाले जहाजके बारेमें लोगोंको कुछ मालूम न था। जर्मनीने सिर्फ २८ सबमेरिनके भरोसे ही युद्ध आरम्भ कर दिया था। हठात् अगस्तमें उसने पहले ५६ 'सबमेरिन' खड़े किये थे। इस प्रकारके जहाजोंने सिर्फ शत्रुके जहाज ही डुबोये हों, ऐसा नहीं, बल्कि बहुत से वणिकोंकी वाणिज्य सम्पद और अनेक निर्दोष व्यक्तियोंके प्राण भी इसने नष्ट किये हैं। पहले 'सबमेरिन' जहाजसे आत्मरक्षा करनेका कोई उपाय न था। पीछे १८१६ ई०में नाना प्रकारके प्रयत्न करने पर इस भीषण उत्पातसे जहाजकी रक्षा पानेके लिए कथंचित् उपाय आविष्कृत हुए।

युद्धके बाद, १९२१ ई०में वाशिंगटन नगरमें शान्ति स्थापक बैठक हुई थी, उसमें 'सबमेरिनों' को अवैध निर्देश कर, इस विपत्तिके उपशम करनेकी कोशिश की गई थी। मि० इवन्स ह्यूजसने प्रस्ताव किया कि युक्त राष्ट्र और ग्रेटब्रिटेनमें (प्रत्येक) सिर्फ ६०,००० टन, फ्रान्स सिर्फ ३१,५०० टन एवं जापान ३१,००० टन जहाज अवशिष्ट रक्खें। किन्तु फ्रान्स इस प्रस्ताव पर राजी न हुआ, आखिर यही प्रथा प्रचलित रही कि जो जाति जितने 'सबमेरिन' बना सके, वह उतने ही रक्खें।

उक्त बैठकमें साधारण नौ-शक्तिके विषयमें एक नियम बनाया गया था। उसमें निश्चय किया गया कि युनाईटेड स्टेट्स और ग्रेट ब्रिटेन (प्रत्येक) ५,२५,००० टन जहाज रख सकेंगे। जिस अनुपातसे यह नियम बनाया गया था, वह यह है, ५. ५: ३। इस प्रकारसे मालूम होता है कि अधुना पृथिवीमें अमेरिका और इंगलैण्डके जहाज सबसे ज्यादा हैं।

जहाजगढ़—पञ्जाब प्रान्तके रोहतक जिलेके अन्तर्गत झज्जरके नजदीक एक दुर्ग। यह अक्षा० २८ ३८ उ० और देशा० ७६ १४ पू०में अवस्थित है। अंग्रेज साहबका कथन है कि विगत शताब्दीके अन्तमें जार्ज टोमस नामक किसी व्यक्तिने इस प्रदेश पर कुछ समय तक शासन कर अपने नाम पर यह दुर्ग निर्माण किया। देशी लोगोंने जोजगढ़से जहाजगढ़ नाम रखा है। १८०१ ई० में महाराष्ट्रोंने इस दुर्ग पर आक्रमण किया। जार्ज टोमस बहुत कष्टसे भागे किन्तु हांसी नगरमें पूर्णरूपसे पराजित हुए।

जहाजपुर—राजपूतानाके उदयपुर राज्यका एक जिला और उसका सदर। यह नगर अक्षा० २५ १० उ० और देशा० ७५ १० पू०में देवली छावनीसे १२ मील दक्षिण पश्चिम अवस्थित है। लोकसंख्या ३९८८ है। एक निराले पहाड़ पर नगर और घाटीके पूर्व मार्गकी रक्षा करनेको किला बना हुआ है। यह दुर्ग दोहरा है और प्रत्येकमें चार बुर्ज हैं। कहते हैं, १५८० ई०को अकबरने राणासे जहाजपुर लिया था और ७ वर्ष पीछे जगमलको जागीरमें दे दिया। अपने बड़े भाई राणा

प्रताप सिंहसे कुछ अनबन होने पर वे दिल्ली-दरबार गये थे। खृष्टीय १८वीं शताब्दीको थोड़े समय तक यह नगर शाहपुर नरेशके अधिकारमें रहा और १८०८ ई०को कोटाके प्रसिद्ध दीवान जालिम सिंहने अधिकार किया। १८१८ ई०को बृटिश गवर्नमेण्टके मध्यस्थ होने पर उदयपुरने फिर जहाजपुर पाया। इस जिलेमें १ नगर और ३०६ गांव हैं।

जहाजी (अ० वि०) जहाजसे संबन्ध रखनेवाला।

जहान (फा० पु०) जगत्, संसार, दुनियां।

जहानक (सं० पु०) जहाति शीलार्थं हा-शानच् संसाया कन्। प्रलय, ब्रह्माण्डका नाश।

जहानआरा बेगम—बादशाह शाहजहांकी औरत और उमके वजीर आसफ खांकी पुत्री। मुमताज़महलके गर्भसे १६१४ ई०में २३ मार्च बुधवारके दिन जहानआराका जन्म हुआ था। उस समयको स्त्रियोंमें यह राजकुमारी सच्चरित्रा, तोक्ष्णबुद्धिसम्पन्ना, लज्जाशीला, उदारहृदया, विदुषी और अत्यन्त रूपवती समझी जाती थीं। हिजरा १ ५४ महरम २७ तारीखको रात्रिके समय, जब ये अपने पिताके पाससे अपने घर लौट रही थीं, उस समय एक जलते हुए प्रदीपसे लग कर उनकी पोशाक जल उठी। ये मसलिनकी बनी हुई पोशाक पहने थीं। देखते देखते उनकी पोशाक तमाम जल गई, इनका जीवन सङ्कटमें पड़ गया। इतने पर भी इन्होंने किसी तरहको आवाज न दी; क्योंकि वे समझती थीं कि चिल्लानेसे पासके युवकगण आकर उन्हें अनावृत अवस्थामें देखेंगे और आग बुझानेके बहाने, सम्भव है शरीर पर भी हाथ लगावेंगे। जल्दीसे वे अन्तःपुरकी तरफ बढ़ीं और वहां पहुंचते ही बेहोश होकर गिर पड़ीं। बहुत दिनों तक उनके जीवनकी कोई आशा नहीं थी। अनेक चिकित्सकोंको दिखा कर जब कुछ फल न हुआ तब शाहजहान्ने बाउटन नामक एक अंग्रेज चिकित्सकको बुलाया। इनसे राजकुमारीका स्वास्थ्य अच्छा हो गया। बादशाहने इस उपकारके पुरस्कारस्वरूप उन्नतहृदय डाक्टरको उनकी प्रार्थनाके अनुसार अंग्रेज वणिकोंको मुगल साम्राज्यमें बिना शुल्कके वाणिज्य करनेकी सनद प्रदान की।

१६४८ ई०में १०५८ (हिजरा) जहानआरा बेगमने कमसे कम ५ लाख रुपये लगा कर आगरा दुर्गके पास एक लाल पत्थरकी मसजिद बनवाई थी इन्होंने अपने भाई आलमगीरके राजत्वकालमें १०८२ हिजरा, ३री रमजान तारीखको (१६८० ई० ता० ५ सेप्टेम्बर) इस संसारसे विदा ले ली। जहांनआराको पिता पर विशेष भक्ति थी और वे अतिशय कर्त्तव्यपरायणा थीं। इनकी बहन रोशनआराका चरित्र इनसे बिल्कुल उलटा था। रोशनआरा अपने पिताको सिंहासनच्युत करानेके लिए औरङ्गजेबको उत्साहित करती थीं और इससे जहानआरा अपने वृद्ध पिताकी कारावासमें भी सान्त्वना देती और उनकी सेवा शुश्रूषा करनेके लिए व्यग्र रहती थीं। जहानआरा कब्रके ऊपर सफेद संगमरमर पत्थरकी एक मसजिद बनी है और उसके ऊपर फारसीमें एक इबारत लिखी है, जिसका अभिप्राय इस प्रकार है—"कोई भी मेरी कब्र पर हरे रंगके पत्तों आदिके सिवा और कुछ न बखेरें; क्योंकि निरभिमान व्यक्तियोंकी कब्र पर इसीकी शोभा है।" इसके बगलमें लिखा है—चिश्तीके मुरशिदात्माओंकी चेलिन और शाहजहांकी कन्या विलासिनी फकीर-जहानआरा बेगमने १०९२ हिजरामें मानव-लीला समाप्त की।

जहानखातून—एक प्रसिद्ध रमणी। प्रथम स्वामीके मर जाने पर इनका सिराजके शासनकर्त्ता शाह आबू इसहाकके सचिव अमीनउद्दीनके साथ द्वितीय परिणय हुआ था। यह बहुत खूबसूरत और कविता बना सकती थीं।

जहानदारशाह—दिल्लीके बादशाह बहादुरशाहके ज्येष्ठ पुत्र। बहादुरशाहकी मृत्युके उपरान्त १७१२ ई०में उनके जहानदार, आजिम उश्-शान, रफी उश्-शान और खोजास्ता, इन चार पुत्रोंमें परस्पर राज्यको ले कर झगड़ा होने लगा। आजिम् उश्-शान बहादुर शाहके २य पुत्र थे। इन्हीं पर बहादुर शाहका विशेष स्नेह था और उनके जीवित अवस्थामें ये बहुत समय राजकार्यमें व्यापृत रहते थे। बादशाहकी मृत्युके बाद आजिम उश्-शानने ही सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इस पर तीनों भाइयोंने मिल कर उनके विरुद्ध

युद्ध करनेके लिए यात्रा की। उन लोगोंमें सन्धि हो गई कि आजिम उश् शानको पराजित कर तीनों भाई बराबर राज्य बाँट लेंगे। अमीर उल् उमराव जुल्फिकार खाँ उन लोगोंके प्रधान परामर्शदाता और सेनापति थे। उन लोगोंने लाहोरमें शिविर स्थापन किया। आजिम उश्-शान अत्यन्त वीर और साहसी थे। वे भी भ्राताओंको रोकनेके लिये आगे बढ़े। ५ दिन तक बन्दूकों और तोपोंसे युद्ध हुआ। ८ वें दिन आजिम उश्-शानकी सेना विपक्षियोंसे पराजित हो गई। मोहकम चन्द नामके एक क्षत्रिय राजा और रामसिंह नामके एक जाटराजाने उश् शानकी तरफसे युद्ध करते करते असाधारण वीरताके साथ अपने प्राण गँवा दिये। सन्ध्याके समय आजिमकी सेनाने लाहोरमें आकर आश्रय लिया।

दूसरे दिन सबेरा होनेके कुछ आजिम-उश-शानने एक हाथी पर सवार हो कर शत्रुओंका सामना किया, परन्तु बहुतसी सेनाने उनका साथ छोड़ दिया। ऐसे समयमें राजा जयसिंहने आकर उनका साथ दिया। परन्तु इसी समय एक बड़ी जोरकी आँधी आई, जिससे उनकी बहुत हानि हुई। युद्धमें तीन भाइयोंकी जय हुई। आजिम उश्-शान आहत हो कर हाथीके साथ पानीमें गिर पड़े, फिर उनका पता न लगा।

पूर्व सन्धिके नियमानुसार दक्षिण राज्यको तीन भागोंमें विभक्त करनेके लिए चर्चा होने लगी। इस पर जुल्फिकारखाँके कूटमन्त्रणाबलसे जहान्दार शाह १ य को दबा कर बैठे। इससे तीनों भाइयोंमें झगड़ा हो गया।

खोजस्ता अख्तरने अपनेको—जहानशाहकी उपाधि से विभूषित कर—राजा प्रसिद्ध किया। जहान्दारशाहके साथ युद्ध हुआ। अन्ततः पराजित और निहत हुए। रफी उश्-शान अब तक उदासीन थे, जुल्फिकारके साथ उनकी मित्रता था। उन्होंने सोचा था कि, उनके दो भाइयोंमें युद्ध करके जो विजयी होंगे, जुल्फिकारकी सहायतासे उनको परास्त कर वे साम्राज्य अधिकार करेंगे। परन्तु जब देखा कि, वे जहान्दारशाहकी सहायता कर रहे हैं, तब उन्होंने प्रबल पराक्रमसे उन लोगों पर आक्रमण किया किन्तु अन्तमें वे भी परास्त हो कर निहत हुए।

जहान्दार शाहका असलीका नाम मोज उद्-दीन था। इन्होंने सिंहासन पर बैठ कर अपनेको जहान्दार शाहके नामसे प्रसिद्ध किया। ये सिंहासन पर बैठ कर पहले अपने राजवंशियोंको हत्या करने लगे। आजिम-उश्-शानके पुत्र सुलतान करीम उद्दीन, आजिमशाहके पुत्र अली तबर, कामबख्शके दो पुत्र इत्यादि राजवंशियों को हत्या कर वे लाहोरसे दिल्ली आये।

जहान्दार शाहने अपने भाइयों को लाशें दो दिन तक युद्धक्षेत्रमें रखवाई, फिर उनको दिल्लीमें मँगा कर हुमायुनकी मसजिदमें गड़वा दिया।

जहान्दारशाह अत्यन्त विलासी, आलसी, चरित्रहीन व्यसनी और दुर्बल थे। इनमें सम्राट् होनेकी योग्यता जरा भी न थी। ये एक वाराङ्गनाके आज्ञाधीन अत्यन्त थे। उस स्त्रीका नाम था लालकुमारी। जहान्दार अपने कर्त्तव्यको भूल गये थे, हमेशा उस गणिकाके साथ रहते थे। लालकुमारी धीरे धीरे इतनी क्षमताशालिनी हो गई कि, बादशाह तक उसके हाथके कठपुतली बन गये। बादशाहने लालकुमारीको 'इमतियाज महल बेगम' नाम दिया और उसके हाथ खर्चके लिए वार्षिक २ करोड़ रुपयेका इन्तजाम कर दिया। राजवंशीयके सिवा दूसरा कोई भी हाथीके ऊपर बादशाहके पास न बैठ सकता था; किन्तु जहान्दारने उस गणिकाको यह अधिकार भी दे दिया। इन्होंने कोकलताशखाँको अमीर-उल्-उमरावका पद और खाँ जहानकी उपाधि प्रदान की। लालकुमारीके भाई खुशहालको ७००० अश्वारोही सेनाका अधिनायक और उसके चाचा नियामतको १००० अश्वारोही सेनाका सेनापति बनाया गया और तो क्या लालकुमारीको प्रिय सखी जोराको भी एक जागीर दे दी गई। राज्यके प्रधान प्रधान व्यक्ति बादशाहका अनुग्रह पानेके लिए जोराकी खुशामद किया करते थे। बादशाह प्रायः सभी समय लालकुमारीके साथ एकान्त गाड़ीमें बैठ कर भ्रमण करते थे। एक दिन बादशाह अपनी महिषियोंके साथ शराब आदि पी कर इतने बेहोश हो गये कि, वे रातको प्रासादमें भी न लौट सके, रास्तेमें जोराके साथ रात बिता दी। इनको शर्म तो जरा भी न थी।

ये इतने निर्लज्ज और भ्रष्टचरित्र हो गये कि, गरीब घर-की बहू-बेटियोंकी इनके हाथसे छुटकारा मिलना मुश्किल हो गया। लालकुमारीको बादशाहकी प्रणयिनी होनेका इतना गुमान था, कि एक दिन उसने औरङ्गजेबकी विदुषी कन्या जेब-उल्-निशाका भी अपमान कर दिया।

जहानदारशाहके राजत्वकालमें जुलफिकरखां ही सर्वेसर्वा थे उन्हीके इच्छानुसार शासनकार्य सम्पन्न होता था। साम्राज्यकी इस गड़बड़ीके समय आजिम-उश-शानके पुत्र फरुखशियर, अबदुल्लाखां और हुसैन अली नामके सैयद भाइयोंकी सहायतासे पटनाके सम्राटके विरुद्ध तयारियां करने लगे तथा उन्होंने अपने नामके सिक्के भी चला दिये। सम्राट्ने आज-उद्-दीन, खोजा आसनखां और खांदुरानके अधीन एक दल सेना भेजी। युद्धमें सम्राट्की सेना हार गई। इस पर जुलफिकर खांको सेनापति बना कर ७०००० अश्वारोही, बहुसंख्यक पदातिक और गोलन्दाज सैनिकों-को साथ ले कर बादशाह खुद अग्रसर हुए। १७१२ ई०में घोर युद्ध हुआ; किन्तु जयकी आशा न देख बादशाह लालकुमारीके साथ हाथी पर सवार हो कर आगरा भाग गये। वहां जा कर इन्होंने दाढ़ीमूंछ मुड़ा ली और वे छद्मवेशमें रहने लगे; छद्मवेशसे ये दिल्ली पहुंचे, वहां जाकर पहिले पहल ये पुराने वज़ीर आसद-उद्दौलाके घर गये। आसदने इन्हें कैद करके फरुख-शियरके हाथ सौंप दिया।

१७१३ ई०में फरुख-शियर सिंहासन पर बैठे। कुछ दिन बाद श्वासरोध कर जहानदारको हत्या की गई। इन्होंने कुल ११ मास ही राज्य कर पाया था।

जहानदारशाह (जवान वखत)—बादशाह शाह आलमके ज्येष्ठ पुत्र। ये अपने पिताके कार्योंसे तंग हो कर दिल्लीसे लखनऊ भाग आये। इसी समय आसफ उद्दौलाके साथ इष्ट-इण्डिया कम्पनीके कार्यनिर्वाहके लिये मि० हेष्टिं भी लखनऊ ठहरे हुए थे। जहानदार मि० हेष्टिंस्के साथ बनारस आये और वहीं रहने लगे। हेष्टिंस्के अनुरोधसे लखनऊके नवाब-वजीरने इनके लिए वार्षिक ५ लाख रुपयेका इन्तजाम कर दिया। १७८८ ई०में १ली अप्रीलको जहानदारने बनारसमें अपना शरीर छोड़ दिया। उनको बनारसमें ही एक अच्छी मसजिदमें गाड़ दिया गया। कब्रके समय उनके सम्मानार्थ सभी मान्यगण्य व्यक्ति और अंग्रेज रेसीडेण्ट वहां उपस्थित थे। ये मरते समय अपने तीन पुत्रोंको अंग्रेजोंकी देखरेखमें छोड़ गये थे। अंग्रेज लोग अब भी इनके वंशधरोंको सहायता पहुंचाते रहते हैं।

जहानदार एक सुपण्डित व्यक्ति थे। इन्होंने "बयाज़ इनायत मुर्शिदज़ादा" नामका एक अच्छा फारसी ग्रन्थ भी लिखा है। मि० हेष्टिंस्ने बङ्गालकी (अवस्थाकी) समालोचना कर जो ग्रन्थ प्रकाशित किया है, उसमें मि० स्काटका भी एक निबन्ध था, वह जहानदार कृत एक फारसी पुस्तकके कुछ अंशका अनुवाद है।

जहानो बानो बेगम—बादशाह अकबरके पुत्र मुरादकी कन्या। जहांगीरके पुत्र शाहजादा परवीजके साथ इनका विवाह हुआ था। परवीजके औरससे इनके नदीया बेगम नामकी एक कन्या हुई थी, जिसका विवाह शाहजहान्के ज्येष्ठ पुत्र दारा सिकोहके साथ हुआ था।

जहानशाह तुर्कमान—करा-युसफ तुर्कमानके पुत्र और सिकन्दर तुर्कमानके भाई। १४३७ ई० (८४१ हिजरा) में सिकन्दरकी मृत्यु होने पर जहानशाह अमीर तैमूर-के पुत्र शाहरुक मिर्जा द्वारा अज़र बैजानके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। १४४७ ई०के बाद जहानशाहने पारस्यका बहुत अंश अपने राज्यमें मिला लिया था। ये दयारबिकर तक अग्रसर हुए, किन्तु १४६७ ई०के १० नवम्बरको सत्तर वर्षकी उम्रमें हासनबेगके साथ युद्धमें निहत हुए।

जहानसज—सुल्तान अलाउद्दीन हासनगोरीको एक उपाधि।

जहानाबाद—कोंच और कोंच-जहानाबाद देखो।

जहानाबाद—१ विहारके अन्तर्गत गया जिलेका एक उपविभाग। इसका भूपरिमाण ६०६ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: २८३८१७ है। यह अक्षा० २४°५८´ से २५° १८´ उ० और देशा० ८४° २७´ से ८५° १३´ पू०में अवस्थित है। यहां अरवाल और जहानाबाद नामके दो थाना-

पुत्र। (भारत अनु० ४ अ०) ३ कुरुचेत्रपति कुरुके पुत्र। ४ राजा सुहोत्रके पुत्र। ये अत्यन्त तपःपरायण राजर्षि थे। ये जिस समय यज्ञ कर रहे थे, उस समय भागीरथी-ने आ कर इनके समस्त यज्ञद्रव्यको बहा दिया। इस पर जह्नुने भागीरथीको एक गण्डूषमें पान कर लिया। राजा भगीरथने जह्नुकी बहुत कुछ स्तुति की। जह्नुने उनकी स्तुतिसे सन्तुष्ट हो कर उसको कानसे निकाल दिया। इसलिए गङ्गाका नाम जाह्नवी पड़ गया। (भाग० विष्णुपु०) मतान्तरमें—जह्नुने उरुस्थलसे गङ्गाको निकाला था।

जह्नुकन्या (सं० स्त्री०) जह्नोः कन्या, ६-तत्। गङ्गा।

जह्नुतनया (सं० स्त्री०) जह्नोः तनया, ६-तत्। गङ्गा।

जह्नुसप्तमी (सं० स्त्री०) जह्नोः सप्तमी, ६-तत्। गङ्गा-सप्तमी वैशाख मासकी शुक्ला सप्तमी। वैशाखकी शुक्लसप्तमी तिथिमें जह्नु मुनिने गङ्गाको पी लिया था। तभीसे यह तिथि जह्नुसप्तमीके नामसे प्रसिद्ध है। इस दिन जो गङ्गामें स्नान करता और यथाविधि पूजा करता है, वह समस्त पापोंसे विमुक्त हो कर अन्तमें अक्षय स्वर्गसुख भोगता है। (कामाख्यातन्त्र ११ प०)

जह्नुसुता (सं० स्त्री०) जह्नोः सुता, ३-तत्। जाह्नवी।

जह्मन् (सं० क्ली०) हा-मनिन् पृषोदरादित्वात् साधुः। उदक, जल, पानी। उदक देखो।

जा (सं० स्त्री०) जायते सम्बन्धिनी या, जन-ड टाप्। १ माता, मां। २ देवरपत्नी, देवरकी स्त्री देवरानी। (त्रि०) ३ जायमान, उत्पन्न, सम्भूत।

जा (फा० वि०) उचित, वाजिब, मुनासिब।

जाई—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत अहमदनगर जिलेमें रहने वाले एक प्रकारके ब्राह्मण। मराठी माताके गर्भ और ब्राह्मण पिताके औरससे इस जातिकी उत्पत्ति है, जारज दोषसे इनको समाजसे पतित ब्राह्मणोंमें गिनती है। अन्यान्य ब्राह्मण इनसे घृणा करते हैं और इनका छुआ हुआ अन्न जलग्रहण नहीं करते। इनकी पोशाक प्रायः मराठी ब्राह्मणों जैसी है। पौरोहित्यके सिवा ये ब्राह्मणोंके सभी काम करते हैं। कृषि, वाणिज्य, मुनीमी, नौकरी, भिक्षावृत्ति ये सब इन लोगोंकी उपजीविकाएं हैं। ब्राह्म-णोंकी तरह इनमें भी १०-१२ वर्षकी उम्रमें बालकों की उपनयनक्रिया होती है, पर क्रियाकलापोंमें वेदोच्चा-रण नहीं होता, अन्यान्य मन्त्र पढ़े जाते हैं। इन लोगोंमें बाल्यविवाह, बहुविवाह और विधवाओंका विवाह प्रचलित है। इनमें स्वजातीय प्रेम बहुत ज्यादा पाया जाता है। किसी कठिन सामाजिक विषयकी मीमांसा करनी हो, तो विज्ञव्यक्तिगण एकत्र हो कर स्थानीय ब्राह्मण पण्डितोंकी सहायता ले कर उसकी मीमांसा कर लेते हैं।

जाइस—१ अयोध्याके रायबरेली जिलान्तर्गत सलोन तह-सीलका एक परगना। इसका भूपरिमाण १५४३ वर्ग-मील है। इसके उत्तरमें मोहनगञ्ज परगना, पूर्वमें अमेठी परगना, दक्षिणमें प्रसादपुर और अतेहा परगना और पश्चिममें रायबरेली परगना है। यहांकी जमीन उर्वरा है, किन्तु कहीं कहीं विस्तीर्ण ऊसरक्षेत्र भी देखनेमें आता है। निम्नभूमि प्रतिवर्ष बाढ़से डूब जाया करती है। इस परगनेमें पोस्तेकी खेती अधिक होती है। इसमें कुल ११० ग्राम लगते हैं। पांच पक्की सड़कें परगनेके बीच होकर गई हैं।

२ सलोन तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २६° १५´ ५५´´ उ० और देशा० ८१° ३५´ ५५´´ पू०में रायबरेली-से सुलतानपुरके रास्ते पर नासिराबादसे ४ मील पश्चिम तथा सलोनसे १६ मील दक्षिणपश्चिम नैया नदीके किनारे अवस्थित है। पहले इस नगरका नाम उभय नगर था, पीछे सैयद सालर मसौदने इसे अधिकार कर वर्त-मान नाम रखा। यह शहर एक उच्च भूमिखण्डके ऊपर अवस्थित है, जो चारों ओर सुदृश्य आम्रकाननसे परि-वेष्टित है। लोकसंख्या प्रायः ११८२६ है, जिसमें हिन्दू ६२४५, मुसलमान ५५६१ और जैन २० हैं शहरमें एक भी हिन्दू-देवालय नहीं है। जैनियोंका बनाया हुआ पार्श्वनाथका मन्दिर, मुसलमानोंकी दो मसजिदें और एक सुन्दर इमामबाड़ा है। इमामबाड़ेके खम्भे और दीवारमें कुरानके अच्छे अच्छे अंश खुदे हुए हैं। इस शहरसे मुसलमानोंके बुने हुए तांतकी तथा अन्यान्य कपड़ोंकी रफतनी होती है। यहां सामान्य सोरा तैय्यार होता है। शहरमें देशीय और अंग्रेजी भाषा सिखानेके विद्यालय है।

जाङ्घनी (सं० स्त्री०) जङ्घा, जाँघ।

जाङ्घाप्रहतक (सं० त्रि०) जङ्घा द्वारा आघातजनक, जाँघसे चोट पहुँचानेवाला।

जाङ्घलायन (सं० पु०) प्रवर ऋषिका नाम।

जाङ्घि (सं० त्रि०) जङ्घायां भवः जङ्घा-इञ्। जङ्घाभूत, जाँघसे निकला हुआ।

जाङ्घिक (सं० त्रि०) जङ्घाभिश्चरति इति ठन्। १ उष्ट्र, ऊँट। २ ओकारो हच। ३ ओकारो नामका मृग। ४ जङ्घाजीवी, वह जिसकी जीविका बहुत दौड़ने आदिसे चलती है, हरकरा। ५ प्रशस्त जङ्घाविशिष्ट, जिसकी जाँघ अच्छी हो।

जाङ्घिकाह्वय (सं० पु०) ओकारो मृग, एक प्रकारका हिरन।

जाचक (हिं० पु०) १ भिक्षुक, भिखारी। २ भिखमंगा, भीख माँगनेवाला।

जाजगढ़—अजमेर राज्यका एक नगर। कोटा नगरके जालिमसिंहने १८०३ ई०में इस नगरको उदयपुरसे अलग कर दिया। इसमें कुल ८४ ग्राम लगते हैं, जिनमें से २२ ग्रामोंमें केवल मीना जातिके लोग रहते हैं। ये लोग रूपवान, बलवान् तथा बड़े शूरवीर होते हैं। ये रुपये दे कर राजस्व नहीं चुकाते, बल्कि परिश्रम करके। इन लोगोंको गिनती हिन्दूमें होती है। ये सबके सब शिवोपासक हैं।

जाजदेव—नयचन्द्रसूरि-प्रणीत "हम्मीर-महाकाव्य" नामक संस्कृत ग्रन्थमें वर्णित रणस्तम्भपुरराज हम्मीरके सेनापति।

जाजन (सं० त्रि०) योधशील, युद्ध करनेका जिसका स्वभाव हो।

जाजपुर—१ उड़ीसा प्रान्तके कटक जिलेका उत्तर-पश्चिम सब डिविजन। यह अक्षा० २०° ३८´ तथा २१° १०´ उ० और देशा० ८५° ४२´ एवं ८६° ३७´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ११११५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ५६०४०२ है। इसमें १ नगर और १५८० ग्राम आवाद है।

२ उड़ीसाके कटक जिलेमें जाजपुर सब-डिविजनका सदर। यह अक्षा० २०°५१´ उ० और देशा० ८६° २०´ पू०में वैतरणी नदीके दक्षिण तट पर अवस्थित पुण्यतीर्थ माना गया है। लोकसंख्या प्रायः १२१११ है। प्राचीन केशरी राजाओंके अधीन यह उत्कलकी राजधानी रहा। ईसाकी १६वीं शताब्दीमें यहां हिन्दू और मुसलमानोंमें बड़ा बखेड़ा हुआ था, जिससे यह बरबाद हो गया। यहां वराहदेवी तथा वराहावतार विष्णुका मन्दिर है और विशाल सूर्यस्तम्भ, जो नगरसे १ मील दूर है, देखने योग्य है। सिवा इसके हिन्दू देवदेवियोंकी बहुतसी ऐसी मूर्तियां भी हैं जिनको नाक कान पछाड़ने काट डाली थी। १७वीं शताब्दीमें नवाब आबू नसीरको बनायी मसजिद भी अच्छी है। १८६८ ई०में जाजपुर म्युनिसपालिटी बन गई।

जाजपुर—जङ्गाजपुर देखो।

जाजम (तु० स्त्री०) एक प्रकारकी चादर। इस पर बेल बूटे आदि छपे होते हैं और यह फर्श पर बिछानेके काम आती है। वैतरणी, याजपुर देखो।

जाजमऊ—युक्त प्रदेशके कानपुर जिलेकी कानपुर तहसीलका पुराना नाम।

जाजमलार (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

जाजरूर (फा० पु०) पाखाना, टट्टी।

जाजल (सं० पु०) अथर्ववेदकी एक शाखाका नाम।

जाजलि (सं० पु०) १एक ऋषिका नाम। ये अथर्ववेदवेत्ता पथ्यके शिष्य थे। किसी समय इन्होंने समुद्रके किनारे घोरतर तपस्याका अनुष्ठान किया। क्रमशः तपके प्रभावसे त्रिभुवन भ्रमण कर इन्होंने मन ही मन सोचा कि, इस जगत्में मैं ही एक मात्र तपस्वी हूं। अन्तरीक्षस्थित राक्षसोंने उनके मनका भाव समझ कर कहा—'हे भद्र! तुम्हारा इस प्रकारका विचार करना सर्वथा अन्याय है। वाराणसीनिवासी वणिक् तुलाधार भी इस बातको कहनेके लिये साहस नहीं करता।" इस बातको सुन कर ये तुलाधारसे मिलनेके लिए काशी गये वहाँ तुलाधारके मुखसे सनातन धर्मविषयक विविध उपदेश सुन कर इन्हें शान्ति लाभ हुई। (भारत शान्ति०) ये जाजलि ऋषि प्रवरप्रवर्त्तक थे। (हेमाद्रि प्र०)

२ ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें कथित एक वैद्य।

आवल्लदेव—दक्षिण देशके एक प्राचीन राजा। इनका जन्म चेदिराज कोक्कलके वंशमें पृथ्वीय या पृथ्वीदेवके औरससे हुआ था। बहुतसे शिलालेखोंमें इनका नाम मिलता है। वहांके ९८९ चेदिसम्वत्के एक शिलालेखके पढ़नेसे मालूम होता है कि इनकी माताका नाम राजल्ला था। उसमें यह भी लिखा है कि, चेदिराजके साथ इनका मैत्रीभाव था, कान्यकुब्ज और जिझाभुक्तिके राजा इन्हें मानते थे। इन्होंने सोमेश्वर नामक एक राजाको पराजित कर कैद कर लिया था, पीछे उन्हें छोड़ भी दिया था। इन्हें दक्षिण कोशल, अन्ध्र, खिमिड़ी, वैरागढ़, लांजिका, भाणाड़ा, तलहारी, दण्डकपुर, नन्दावली और कुक्कुट आदि मण्डलपतियोंसे कर और उपढौकनादि प्राप्त होता था। हैहयवंश देखो।

आवल्लपुर—दक्षिणदेशका एक प्राचीन नगर। आवल्लदेवने इस नगरकी स्थापना की थी।

आजिम (तु० स्त्री०) सिपाहियोंके काममें आनेवाली एक प्रकार छपी हुई चादर। आजम देखो।

आजी (स० स्त्री०) जीरक, जीरा।

आज्वल (स० त्रि०) १ प्रज्वलित प्रकाशयुक्त। २ तेजवान्।

आज्वल्यमान (सं० त्रि०) आ-ज्वल ज्वलति ज्वल-यङ् शानच्। १ अत्यन्त दीप्तिमान्। २ तेजस्वी, तेजवान्।

आझाणि (स० पु०) अभ्र सङ्घाती-पृष त ज्ञाति-स्य ङि। वृक्षविशेष, एक प्रकारका पेड़।

जाट—१ भारतवर्षकी एक प्रसिद्ध जाति। भारतवर्षके युक्तप्रदेश पञ्जाब राजपूताना और सिन्धमें अधिकांश अधिवासी जाट ही पाये जाते हैं। इन प्रदेशोंके सिवा अफगानिस्तान, बेलुचिस्तान आदि प्रदेशोंमें भी इनका वास है। जाट जातिकी संख्या बहुत ज्यादा है। ये भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हैं। मतलब यह कि, जुती जिती, जौत, जूट या जाट इनमेंसे कोई भी नाम क्यों न हो। भारतवर्षमें तीन शताब्दी पहले उनकी संख्या अन्यान्य जातियोंसे कहीं अधिक थी। जाट जातिकी उत्पत्तिके विषयमें सबोंका एक मत नहीं है। कोई कहते हैं, देवादिदेव महादेवकी जटासे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है इसीलिए इनका जाट नाम पड़ा है। किसीका यह भी कहना है कि जाट जाति चन्द्रसूर्यवंशीय है। अध्यापक लासेन प्रमुख पण्डितोंका कहना है कि महाभारतमें जो मद्र और आरट्टोंका उल्लेख है जाट जाति उन्हींमें शामिल है। इसके अतिरिक्त कोई कोई कहते हैं कि जाटगण राजपूत हैं—किसी निम्नश्रेणीकी राजपूतशाखासे उत्पन्न होनेके कारण राजपूत-समाजमें इनका यथोचित सम्मान नहीं है। इस मतसे सहमत पण्डितगण कहते हैं कि राजपूत और जाटोंमें जातिगत विशेष कुछ पार्थक्य नहीं है किन्तु व्यवसायके तारतम्यानुसार इनमें सामाजिक प्रभेद पड़ गया है। राजपूतोंके ३६ वंशोंमें जाटोंका भी उल्लेख है। पहले राजपूतगण इन लोगोंसे वैवाहिक सम्बन्ध करनेमें किसी प्रकारकी लज्जा नहीं करते थे। यद्यपि इस समय इन लोगोंके साथ राजपूतोंका प्रकाश्य विवाह प्रचलित नहीं है किन्तु तथापि राजपूतगण वैवाहिक सम्बन्धमें इनसे पूर्णतया विच्छिन्न नहीं हो सके हैं।

जाटोंकी उत्पत्तिके विषयमें एक प्रवाद है—एक दिन एक गुर्जर जातीय स्त्री सिर पर पानीसे भरी एक गागर ले जा रही थी। उसी समय एक भैंस रस्सी तोड़ कर भागी जा रही थी। उस स्त्रीने अपने पैरसे भैंसकी रस्सीको इस तरह दबाया कि वह भैंस जहांकी तहां खड़ी रह गई। एक राजपूत राजा दूरसे यह दृश्य देख रहे थे, वे उस स्त्री पर बहुत ही सन्तुष्ट हुए और उसे अपने घर ले गये। राजपूत और इस गुर्जर जातीय स्त्रीके सम्मिलनसे एक नवीन जातिकी उत्पत्ति हुई, जो इस समय जाटके नामसे प्रसिद्ध है। अधिकांश जाट ही अपनी उत्पत्तिके विषयमें इस विवरणको सुनाया करते हैं।

यूरोपीय विद्वानोंका कहना है कि, जाटगण भारतके आदिम अधिवासी नहीं हैं। अलिकसन्दरके अधःपतनके समय अक्सस् नदीके किनारे बाक्ट्रिया और तुरानके मध्यवर्ती स्थानसे सिदीय (शक)-गण भारतकी तरफ अग्रसर हुए थे। इन लोगोंने क्रमशः भारतमें प्रवेश किया। इन (शक)की एक शाखा सिन्धु देशमें आ कर आर्यों नामसे रहने लगी और मेद नामकी दूसरी एक

गाया पञ्जाबमें घुस पड़ी। कास्पियान हृदके निकटवर्त्ती स्थानसे आ कर जो लोग सिन्धुनदके उस पार रहते थे, वे अत्यन्त बलशाली और साहसी थे। सुलतान महमूद सोमनाथके मन्दिरसे बहुत धनरत्न लूट कर जिस समय गजनी लौट रहे थे, उस समय मार्गमें एक दल जाटोंने उन्हें घेर लिया था, जिससे उनकी विशेष क्षति हुई थी। ४१६ हिजरा (१०२६ ई०)में सुलतान महमूदके साथ जाटोंका एक घमसान युद्ध हुआ था। इस युद्धमें बहुतसे जाट मारे गये और कुछ लोगोंने भाग कर बीकानेर राज्यका सूत्रपात किया। सम्राट् बाबरको भी जाटोंके द्वारा बहुत कुछ नुकसान उठाना पड़ा था।

ईसाकी चौथी शताब्दीमें पञ्जाबमें जुटी या जाट-राज्य प्रतिष्ठित था, किन्तु इस बातका निर्णय करना दुःसाध्य है कि, इससे कितने समय पहले जाट जातिने इस प्रदेशमें प्रथम उपनिवेश स्थापन किया था। इस जातिने भारतवर्षमें मुसलमान शासनके विस्तारमें विशेष बाधाएं पहुंचाई थीं। पहिले पहल कुछ लोगोंके एकत्र रहनेसे क्रमशः इनमें जातीय भाव उत्पन्न होनेके उपरान्त लोगोंमें एक राज्य स्थापन करनेकी इच्छा हुई। पीछे चूड़ामणके नेतृत्वमें ये लोग कुछ कृतकार्य भी हुए थे और सूर्यमलके अधीन इन लोगोंने वास्तवमें भरतपुरमें एक जाटराज्यको स्थापना कर ली। भरतपुर देखो।

पाश्चात्य मतसे-स्किदीय जातिके जाटोंने बोलान गिरिसङ्कटको पार कर सिन्धुनदको प्रान्तर भूमिके बीचसे सिन्धु और पञ्जाब प्रदेशमें उपनिवेश स्थापन किया है; वे लोग हिमालयके पार्वतीय प्रदेशके निम्नभागमें नहीं रहे हैं। सिन्धु प्रदेशके ऊर्द्ध्वभागमें अधिकांश अधिवासी जाट ही हैं और उन्हीं लोगोंकी भाषा उस प्रदेशकी चलती भाषा है पहले सिन्धुमें जाटोंका ही प्रभुत्व था; किन्तु अब नहीं है। पञ्जाबके अधिकांश अधिवासी जाट हैं, जिनकी संख्या ४॥ लाख है। दोआबसे ले कर मुलतान तक समस्त भूमि जाटोंके अधिकारमें है।

पञ्जाबके अधिकांश जाट खेतीबारी करते हैं। आधुनिक सिखोंमेंसे बहुतोंकी उत्पत्ति जाटवंशसे है। पञ्जाबके बहुतसे जाट मुसलमान धर्मको पालते हैं। ये लोग भारेन, सागरी, सतवार, रज आदि भिन्न भिन्न शाखाओंमें विभक्त हैं। पञ्जाबके पूर्वांशमें और जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर आदि प्रदेशोंमें हिन्दूधर्मावलम्बी जाट रहते हैं। बरेली, फरुखाबाद, ग्वालियर आदि प्रदेशोंमें भी जाटोंका फैलाव हो गया है। भरतपुर, दिल्ली, दोआब, रोहिलखण्ड आदि स्थानोंमें भी जाटोंका वास पाया जाता है। संयुक्त प्रदेशको जाट जाति पच्छाद और हेले इन श्रेणियोंमें विभक्त है। पञ्जाबके पुराने वाशिन्दा पच्छाद जाटोंको घृणासूचक शब्दोंमें 'पच्छादा' कहा करते हैं, काले सांप और बूढ़े गधेके विषयमें जो कहावत प्रसिद्ध है वह पच्छादोंके ऊपर भी घटाई जाती है। कहावत यह है—

"बूढ़ो भैंस पुराना गाढा।
काला सांप और सग पच्छादा।
कुछ काम हुआ तो हुआ;
नहीं तो खाद ही खादा।"

पहले सभी जाट एक साधारण नामसे प्रसिद्ध थे। ये आवर कहलाते थे। उस समय ये लोग पड़ोसी या दूसरी घरसे पालतू घोड़े आदि चुराया करते थे। प्रायः सभी लोग अपनेको राजपूतवंशसे उत्पन्न बतलाते हैं। बलन और नोहल जाट चोहान वंशसे तथा सरवत और सलफलान जाट अपनेको तूयार वंशसे उत्पन्न कहते हैं। कोई कोई यूरोपीय विद्वान् कहते हैं—भरतपुरके और सिन्धुप्रदेशके जाट भिन्न भिन्न शाखाओंसे उत्पन्न हैं। और किसी किसीका यह कहना है कि, सभी जाट एक ही वंशसे उत्पन्न हैं, जाटोंने पहले सिन्धुप्रदेशमें उपनिवेशकी स्थापना की थी, पीछे बल्लियासे बहुतसे जाट भारतमें आये और वे धीरे धीरे बढ़ते हुए राजपूतानामें पहुंच गये। समयका आगे पीछेका अंदेज और आवासके परिवर्त्तन हो जानेसे वे लोग प्रधान शाखासे नहीं मिल सके हैं।

जाटोंमें कुछ लोग हिन्दू और कुछ मुसलमान हैं। मुसलमान जाटोंका कहना है कि, वे गजनीसे भारतमें आये हैं। युक्तप्रदेश और सिन्धुप्रदेशमें बहुतसे जाट ऐसे पाये जाते हैं, जिनका आचार व्यवहार मुसलमान-धर्मावलम्बी न होने पर भी—सम्पूर्ण हिन्दू धर्मानुयायी नहीं है। इन लोगोंका विश्वास है कि—'विश्वजननी भवानी एक जाट-

जमीनोंका स्वत्व भिन्न भिन्न व्यक्तियों पर है। पर पतित और गाय भैंसोंको चरानेको जमीन साधारण सम्पत्ति समझी जाती है। इनमें किसी एक व्यक्तिके कहनेके अनुसार कोई काम नहीं होता ; बल्कि गाँवके प्रधान प्रधान व्यक्ति मिल कर समस्त कार्योंका निर्वाह करते हैं। आधुनिक महाजराजाओंकी तरह पहले राजपूतानेके जाटोंमें साधारण तन्त्र प्रचलित था। इन जाटोंमें विधवाओंको विवाह प्रचलित है। जाटगण भिन्न भिन्न शाखाओंमें विभक्त हैं; ये अपनी श्रेणोके सिवा अन्यान्य शाखाओंसे विवाह-सम्बन्ध करते हैं। कृषिव्यवसायी जाटोंकी संख्या पञ्जाबमें ही अधिक पाई जाती है। पञ्जाबी भाषामें जाट, जमींदारी और कृषक ये तीनों शब्द एकार्थबोधक हैं। टाड आदि इतिहासवेत्ताओंके मतसे—महाराज रणजितसिंहने जाटवंशमें जन्म लिया था।

आयोदेवंशके जाटगण पानीपत और सुनपत नामक स्थानोंमें रहते हैं, इनकी मालिक उपाधि है। इसीलिए ये लोग वंशगौरवसे अपनेको अन्य जाटोंसे श्रेष्ठ बतलाते हैं। पञ्जाब, काचगन्धव तथा गङ्गा और यमुनाके निकटवर्त्ती प्रान्तोंमें अनेक जाटोंका वास है, जिनकी भाषा अन्य जातियोंसे भिन्न है। जेल प्रदेशके जमींदार जाटवंशके हैं। ये कहीं जाते समय अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो कर बैल पर सवार होते हैं। बहुतसे जाटोंको आधी नंगी तलवार लिए बैल पर सवार हुए जाते देखा है। जाटगण काचगन्धव प्रदेशमें बहुत दिनोंसे रहते हैं, इसलिए बहुतोंने इन्हें यहांका आदिम अधिवासी बतलाया है। जाट गण कहीं भी रहें, वे भूमि कर्षणके लिए वहांकी सबसे ऊंची जमीन पर अधिकार जमाते हैं। अलीगढ़के जाटोंके साथ राजपूतानाके जाटोंका जातिगत विरोध देखनेमें आता है। इनमें विरोध इतना प्रबल है कि, ये दोनों जातियां कभी एक ग्राममें नहीं रहती। अमृतसरके सिख जाटगण बड़े साहसी और कार्यक्षम होते हैं। इन लोगोंके समान साहसी और योद्धा दुनियामें बहुत कम हो पाये जाते हैं। जाटोंकी वीरताका दो-एक विवरण सुननेमें आता है। १७५७ ई०में जाटोंने रामगढ़ अधिकार किया था, जिसका नाम बदल कर इन लोगोंने कोल रक्खा था। अलीगढ़में गामनी नामक स्थानमें जाटोंने एक मृण्मय दुर्ग बनाया था। अफगानिस्तानमें भी जाटोंकी बस्ती है। वहां ये गुर्जर नामसे

जाट जाति।

परिचित हैं। जाटोंमें सभीका धर्म एक नहीं है,—कुछ हिन्दू कुछ मुसलमान और कुछ सिख धर्मको मानते हैं। पञ्जाबके जाटोंका धर्म सम्बन्धी नियमोंमें विशेष विश्वास नहीं था, इसीलिए महात्मा नानकने उन्हें सहजमें सिखधर्ममें दीक्षित कर लिया था।

२ एक तरहका गाना, जो रंगीन या चलता होता है। ३ जाठ देखो।

जाटलि (सं० पु०) १ पटोललता, परवलकी लता।

जाटालि (सं० स्त्री०) किंशुक वृक्षसदृश वृक्षभेद, पलासको जातिका एक पेड़ जिसे मोखा कहते हैं।

जाटालिका (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम।

जाटासुरि (सं० पु०) जटासुरस्य अपत्यं पुमान्। जटासुरके पुत्रका नाम।

जाटिकायन (सं० पु०) अथर्ववेदके एक ऋषिका नाम।

जाटिलिक (स॰ पु॰ स्त्री॰) जटिलिकाया अपत्य शिवादित्वादण्। जटिलिकाके पुत्रका नाम।

जाड़ (हिं॰ पु॰) १ तालाब आदिके बीचमें गड़ा हुआ लकड़ीका ऊंचा और मोटा लट्ठा। २ जलकड़ीका वह ऊंचा और मोटा लट्ठा जो कोल्हूकी कूंड़ीके बीचमें जमा रहता है। इसके घूमने तथा दाब पड़नेसे कोल्हूमें डाली हुई चीजें पेरी जाती हैं।

जाठ—१ बम्बईके अन्तर्गत बिजापुर पोलिटिकल एजेन्सी का एक देशीयराज्य। बिजापुर देखो।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान नगर। यह अक्षा॰ १७ १ उ॰ और देशा॰ ७५ १६ पू॰के मध्य सतारा नगरसे ८९ मील दक्षिण-पूर्व बेलगामसे ८६ मील उत्तर-पूर्व और पूनासे १३० मील दक्षिण पूर्वमें अव-स्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५३०४ है।

जाठर (स॰ पु॰) जठरे भवः अण्। १ जठरस्थित पाचक अग्नि पेटकी वह अग्नि जिसकी सहायतासे खाया हुआ अन्न आदि पचता है। २ कुमारानुचर मातृकाभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। ३ उदर, पेट। ४ क्षुधा, भूख।

जाठर (हिं॰ वि॰) १ जठर सम्बन्धी। २ जो जठरसे उत्पन्न हो।

जाठराग्नि (हिं॰ स्त्री॰) जठराग्नि देखो।

जाठर्य (सं॰ क्लि॰) जठरे भव जठर-ष्यञ्। जठररोगविशेष पेटकी एक बीमारी।

जाड़र (स॰ पु॰ स्त्री॰) जड़स्यापत्य जड़-अरण्। जड़का पुत्र।

जाड़ा (हिं॰ पु॰) वह ऋतु जिसमें बहुत ठण्ड पड़ती हो, शीतकाल, सरदीका मौसम।

जाड़ा—१ कच्छप्रदेशके जाड़ेजा राजवंशके एक राजा। इनके नामके अनुसार इनके पुत्र लाखाने अपने वंशका नाम जाड़ेजा रखा था। कच्छ देखो।

२ ब्रह्मपुत्रमें कथित पूर्वभारतके एक ग्रामका नाम।

जाड़ेजा—कच्छप्रदेशका सर्वप्रधान राजपूत वंश। ये लोग अभी तक कच्छप्रदेशके नाना स्थानोंमें राज्य कर रहे हैं। जाड़ेजा लोग अपनेको श्रीकृष्णके वंशधर बताते हैं। इनके पूर्वपुरुषगण अपनेको सम्मान बढ़ाने के लिये बतलाते थे। यह जाड़ेजा वंश प्रधान प्रधान व्यक्तियोंके नामानुसार देदा, होथी गज्जन, अबड़ा मोड़, हाला, कुमड़ आदि बहुतसी शाखाओंमें विभक्त है। इसकी वंशा वली और इतिहास कच्छ शब्दमें देखा।

जाड़े राणा—एक प्राचीन राजा। ईसाकी ८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें पारसियोंने सबसे पहले भारतमें आ कर संस्कृतके १५ श्लोकों द्वारा इस राजाके पास अपने धर्मकी व्याख्या की थी। पारसी ग्रन्थोंमें इनका नाम जाड़े राणा लिखा है। परन्तु डाक्टर जे॰ हरसनका अनुमान है कि ये जाड़े राणा सम्भवतः अणहिलवाड़पत्तनके अधी श्वर जयदेव वा वाघराजा होंगे। इन वाघराजाने ७४५ से ८०६ ईसवी तक राज्य किया था।

जाड्य (स॰ क्ली॰) जड़स्य भावः जड़-ष्यञ्। १ जड़ता, जड़का भाव। २ मूर्खता बेवकूफी। ३ आलस्य, सुस्ती। ४ अविवेक रूप दुःख, वह अनुष्ठानिक अर्थात् वेद विहित कर्मादि जो आत्यन्तिक अर्थात् दुःख द्वारा निवृत्ति नहीं हो सकती है उसीको जाड्य कहते हैं।

जाड्यारि (सं॰ पु॰) जाड्यस्य अरिः ६-तत्। जम्बीर, जम्बीरीनीबू।

जात (सं॰ त्रि॰) जन कर्त्तरि क्त। १ उत्पन्न जन्मा हुआ। २ व्यक्त प्रकट। भावे क्त। ३ प्रशस्त, अच्छा। ४ जिसमें जन्मग्रहण किया हो। (पु॰) ५ जन्म। ६ पारिभाषिक पुत्र जात, अनुजात अतिजात और अपजात इन चार प्रकारके पारिभाषिक पुत्रोंमेंसे एक। ७ पुत्र बेटा। ८ जीव प्राणी।

जान (हिं॰ स्त्री॰) जानि देखो।

जात (प॰ स्त्री॰) शरीर, देह काया।

जातक (स॰ क्ली॰) जात जन्म तदधिकृत्य कृतो ग्रन्थः इत्यण् तत स्वार्थे कन् वा जातेन निर्वृत्त जन्म कालीन ग्रहस्थिति । १ जात या उत्पन्न हुए बालकके शुभाशुभका निर्णय करनेवाले ग्रन्थ। जातकदीपिका जातकपद्धति जातकतरङ्गिणी जातककौमुदी, जातकरत्नाकर जातक सार, जातकार्णव, जातकचन्द्रिका लघुजातक बृहज्जा तक आदि ज्योतिषके ग्रन्थोंको जातक कहते हैं। इन ग्रन्थोंमें उत्पन्न हुए बालककी जन्मराशि, होरा द्रेकाण आदि तथा उनमें जन्मलेनेसे बालकका शुभ होगा या

अशुभ इत्यादि विषय परिस्फुट रीतिसे लिखे हैं।

२ बौद्धोंके एक प्रकारके ग्रन्थ। जातक अर्थात् बुद्धदेवके एक एक जन्मका विवरण। बौद्धोंका कहना है कि, सम्पूर्ण जातकोंकी संख्या ५५० है। बुद्धदेवने स्वयं श्रावस्तीमें रहते समय अपने शिष्योंको मोक्षधर्मकी शिक्षा देनेके लिए ५५० पूर्व जन्मोंमें जो जो अलौकिक कार्य किये थे, उन्हींकि वे इन ५५० जातकोंमें आख्यानके रूपसे कह गये हैं। ये ग्रन्थ बुद्धके मुखसे निकले हैं, ऐसा समझ कर बौद्धगण इनको परम पवित्र मानते हैं। इस समय बहुतसे जातक विलुप्त हो गये हैं। जो मौजूद है, उनमेंसे फिलहाल निम्नलिखित कुछ जातक प्रचलित है-अगस्त्य, अपुत्रक, अधिसख्य, अट्टी, आयो, भद्रवर्गीय, ब्रह्म, ब्राह्मण, बुद्धबोधि, चन्द्रसूर्य, दशरथ, गङ्गापाल, हंस, हस्ती, काक, कपि, क्षान्ति, काल्मषपिण्ड, कुम्भ, कुश, किन्नर, महाबोधि, महाकपि, महिष मैत्रिबल, मत्स्य, मृग, मवादेवीय, पद्मावती, रुरु, शत्रु, शरभ, शश, शतपत्र, शिवि, सुभाम, सुपारग, सुतसोम, श्याम, उन्मादयन्ती, वानर, वत्तकपोत, विश, विश्वम्भर, वृषभ, व्याघ्री, यज्ञ, वृपहरणीय, ललुब, विदुर पुष्कर इत्यादि।

ये सब ग्रन्थ संस्कृत और पालि भाषामें रचित हैं। बहुतोंकी सिंहली भाषामें टीका भी है। बहुतोंका अनुमान है कि, ये जातक प्रायः २००० वर्ष पहलेके रचे हुए हैं। इनमें कई एक आख्यायिकाएं ऐसी है, जिनकी शैली पञ्चतन्त्र या ईसपकी आख्यायिकाओंसे मिलती है। और बहुतसी ऐसी हैं जो हिन्दूपौराणिक गप्पोंको बिगाड़ कर बौद्धोंके मतानुसार लिखी गई है।

(पु०) ३ शिशु, बच्चा। ४ भिक्षु, भिखारी। ५ हींगका पेड़। ६ कारण्डी वन।

जातकर्म (सं० क्ली०) जातस्य जाते सति वा यत्कर्म। दश प्रकारके संस्कारोंमेंसे चतुर्थ संस्कार, सन्तानकी उत्पत्तिके समयका एक कर्त्तव्य कर्म। जातकर्मका विधान भवदेवमें इस प्रकार लिखा है—

पुत्रके जन्मते ही उसके पिताके पास सम्वाद भेजना चाहिये। पिताको पुत्रका जन्म-वृत्तान्त सुनते ही "नाभिमाछन्तत स्तनंच मादत्त" अर्थात् 'नार नहीं काटना स्तनोंका दूध न पिलाना'—यह कह कर वस्त्र सहित स्नान करना चाहिये। स्नानसे निवृत्त हो कर यथाविधि षष्ठी, मार्कण्डेय और षोडशमातृका पूजा, वसुधारा और नान्दीमुख श्राद्धका अनुष्ठान करना उचित है। तदनन्तर एक शिलाको ब्रह्मचारी कुमारी, गर्भवती या श्रुतस्वाध्यायशील ब्राह्मण द्वारा अच्छी तरह धुला कर, उसीह पर दाहिने हाथकी अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा "इमाऽरस्व जिह्वानिर्माष्टि इयमाज्ञा" इस मन्त्रका उच्चारणपूर्वक स्पर्श कराना चाहिये। इसके उपरान्त सुवर्ण द्वारा घृत ले कर यथाविधि मन्त्रोच्चारण कर बालककी जिह्वामें छुलाना चाहिये और "नाभि कृन्तत, स्तनं च दत्त" (नाभि छेद दो स्तन दुग्ध दो) इस प्रकारकी आज्ञा दे कर उस स्थानसे निकल जाना चाहिये। पुत्र जन्मते समय यदि अन्य अशौच रहे तो भी पुत्रका पिता जातकर्म कर सकते हैं।

"अशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्।
कर्त्तव्या तात्कालिकी शुद्धिर् शुद्धः पुनरेव सः॥" (संस्कारतत्त्व)

पुत्रके मुख देखनेसे पहिले पिताको चाहिये कि, वह ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दान देवे। जातकर्म नाभिच्छेदसे पहले करना पड़ता है।

"प्राङ्नाभिवर्द्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते।" (मनु)

ज्योतिष शास्त्र-विहित तिथि नक्षत्र न होने पर भी जातकर्म करना पड़ता है। आजकल इस बीसवीं शताब्दीमें शिक्षास्रोतमें इस संस्कारका प्रायः लोप हो गया है। संस्कार देखो।

जातकध्वनि (सं० पु०) जलौका, जोंक।

जातकाम (सं० त्रि०) जातः कामः यस्य, बहुव्री०। जातकामना, जिसकी इच्छा उत्पन्न हुई हो।

जातकोप (सं० त्रि०) जातः कोपः यस्य, बहुव्री०। जातक्रोध, जो क्रोधित हो गया हो।

जातक्रिया (सं० स्त्री०) जातस्य क्रिया। जातकर्म देखो।

जातघातरोग (सं० पु०) वह रोग जो बच्चेको गर्भहीसे माताके कुपथ्य आदिके कारण हो।

जातना (हिं० स्त्री०) यातना देखो।

जातपाँत (हिं० स्त्री०) जाति, बिरादरी।

जातपुत्र (सं० त्रि०) जातः पुत्रः यस्य, बहुव्री०। जिसके पुत्र हुआ हो।

जातपुत्रा (स० स्त्री०) वह स्त्री जिसने पुत्र उत्पन्न किया हो।

जातपक्ष (स० त्रि०) जिसके पक्ष हो गये हों, शक्तिमान् ताकत वर।

जातभी (स० स्त्री०) एक स्त्रीका नाम।

जातमात्र (स० त्रि०) सद्योजात, जो अभी पैदा हुआ हो।

जातरूप (स० क्लो०) जातं प्रशस्तं रूपं यस्य। प्रायशर्य जातः रूपप् प्रत्यय। १ सुवर्ण, सोना। (पु०) २ धूस्तूर, धतूरा पेड़। (त्रि०) जातं रूपं यस्य बहुव्री। ३ उत्पन्न रूप, उत्पन्न मूर्ति।

जातरूपप्रभ (स० क्लो०) हरिताल।

जातरूपमय (स० त्रि०) सुवर्णमय।

जातरूपशैल (स० पु०) एक सुवर्णमय जनपद।

जातवासगृह—जातवेश्मन देखो।

जातविद्या (स० स्त्री०) जाने सिध्यन्ते होमादयो यया विद्या विधायिनी विद्या। प्रायश्चित्तप्रतिपादिका शास्त्र होमके बाद प्रायश्चित्तबोधक शास्त्र।

जातवेदस् (स० पु०) विन्दति लभ्यते विद् लाभे असुन् जा जात वेदो धनं यस्मात्। १ अग्नि। महाभारतमें इस अग्निका लक्षण इस प्रकार लिखा है— अग्नि लोगोंको पवित्र करते हैं, इसलिए पावक हैं। हव्य वहन करते हैं इसलिए हव्यवाहन और वेदार्थके लिए उत्पन्न हुए हैं, इसलिए जातवेदस् हैं। (भारत ५।११।१०) (ऋक् ५।१।१०)

जात मात्र ही कठराग्नि रूपमें अवस्थित है इस अग्निका नाम जातवेद है। २ जिन्हें सम्पूर्ण ज्ञानविषय ज्ञात हों।

३ जातप्रज्ञ। ४ जातधन, ५ सूर्य। (ऋक् १।५०।१) पञ्चाग्निसाध्य तपस्यामें तपन भी एक अग्निस्वरूप है। ६ अन्तर्यामी, परमेश्वर। (भाग० ६।७।१४) ७ चित्रक वृक्ष, चीतेका पेड़।

जातवेदस (स० त्रि०) जातवेदका इद जातवेदस् देवता अस्य जातवेदस् अण्। अग्नि सम्बन्धीय सामवेदके वाक्य सामभेद।

जातवेदसीय (स० क्लो०) जातवेदसम्बन्धीय।

जातवेश्मन् (स० क्लो०) वह घर जिसमें बालकका जन्म हो, सूतिकागार, सौरी।

जातश्रम (स० त्रि०) क्लान्तियुक्त, थका हुआ।

जातस्नेह (स० पु०) जातः स्नेहः यस्य बहुव्री०। जिसको प्रेम हुआ हो।

जाता (स० स्त्री०) १ पुत्री, कन्या बेटी। (त्रि०) २ उत्पन्न।

जातापत्य (सं० पु०) जातं अपत्यं यस्य, बहुव्री०। जिसके पुत्र हुआ हो।

जातापत्या (स० स्त्री०) प्रसूता स्त्री वह स्त्री जिसने बच्चा उत्पन्न किया हो।

जातामय (स० त्रि०) जिसको रोग या भय हो।

जातायन (स० पु०) जातस्य गोत्रापत्य। जातमीका अपत्य।

जाताश्रु (सं० त्रि०) जिसकी आँखोंसे आँसू टपक रहा हो।

जाति (स० स्त्री०) जन क्तिन्। १ जन्म। २ गोत्र। ३ धर्मनिष्ठा। ४ सामान्य, आँवला। ५ छन्दविशेष, एक प्रकारका छन्द। छन्द दो प्रकारका है, एक वृत्ति और दूसरा जाति। अक्षरोंके साथ भिन्न वर्णोंसे वृत्ति और मात्राके अनुसार जो छन्द होता है, उसे जाति कहते हैं। (छन्दोम०) ह्रस्व और दीर्घके अनुसार मात्रा होती है। ह्रस्वस्वरकी एक मात्रा, दीर्घस्वरकी दो मात्रा, प्लुत स्वरकी तीन मात्रा और व्यञ्जनकी आधी मात्रा होती है। जैसे—आर्याजाति आदि प्रथम और तृतीय पादमें बारह मात्रा द्वितीय पादमें अठारह मात्रा और चतुर्थ पादमें पन्द्रह मात्रा होनेसे आर्याजाति छन्द होता है।

६ जातीफल जायफल। ७ मालती चमेली। (मेदनी) ८ बेदस्याभेद भेदकी कोई मात्रा। ९ षड्ज आदि सप्तस्वर। १० अलङ्कारभेद। ११ जुही पुष्प। (शब्दार्थचि०) १२ काम्पिल्ल। (वैद्य)

१३ व्याकरणके मतसे किसी किसी शब्दके प्रतिपाद्य पदको जाति कहते हैं। वैयाकरणोंका कहना है कि शब्दके चार भेद हैं। जातिवाचक भी उनमेंसे एक है। व्याकरणशास्त्रमें जातिका लक्षण इस प्रकार है—

"आकृतिग्रहणा जातिर्लिङ्गानां च न सर्वभाक्।

सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रं च चरणैः सह॥"

आकृति द्वारा जिस पदार्थका ज्ञान हो, उसका नाम है जाति। मनुष्यत्व आदि और मनुष्य आदि एक ही बात है, ऐसा समझ लेनेसे जातिका अर्थ सहजहीमें समझा जा सकता है जातिके उदाहरण मनुष्य वा मनुष्यत्व आदि और हस्त, पाद आदि विशेष विशेष आकृतिके विना जाने मनुष्य वा मनुष्यत्वका ज्ञान नहीं हो सकता। भिन्न भिन्न आकृति द्वारा भिन्न जातिका ज्ञान होता है। मनुष्यको देख कर वृक्षका ज्ञान नहीं होता। क्योंकि, मनुष्य और वृक्षकी आकृति एकसी नहीं है। मान लो, किसीने कभी भी वृक्ष नहीं देखा, और न उसे यही मालूम है कि, वृक्ष कैसा होता है, तो उसे वृक्षका ज्ञान यह कह कर करना होगा कि—"जिस पर डालियां, पत्तियां और वल्कलादि हों, उसे वृक्ष कहते हैं।" इस तरह वह डालियों और पत्तियोंकी आकृतिसे ही वृक्ष वा वृक्षत्व जान सकता है।

आकृति देख कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र अथवा ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व वैश्यत्व, शूद्रत्व आदिका ज्ञान नहीं हो सकता इसलिए दूसरा लक्षण लिखा जाता है—लिंगानांच च सर्वभाक्।"

जो सब लिङ्गोंको ग्रहण नहीं करते अर्थात् सभी लिङ्गोंमें जिनका शब्दरूप नहीं होता, वे भी जाति हैं। जैसे—ब्राह्मण वा ब्राह्मणजाति आदि। इन शब्दोंका रूप पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्गमें ही चल सकता है; क्लीव लिङ्गमें नहीं। इस लक्षणके अनुसार देवदत्त कणादास आदि एक लिङ्गभागी संज्ञाशब्द भी जातिवाचक हो सकते हैं, इसलिए ऊपर कहे हुए दोनों लक्षणोंके ही विशेषण रूपसे कहा जाता है। "सकृदाख्यात निर्ग्राह्य।"

एकबार उपदेश देने पर निश्चय रूपसे किसी एक श्रेणीका ज्ञान होना जरूरी है। देवदत्त कणादास आदि एक लिङ्गभागी होने पर भी केवल एक एक व्यक्ति कोई भी निर्दिष्ट श्रेणी नहीं है।

वेदैकदेश क्रियावाचक कठादि शब्द और गार्ग, गार्गी आदि अपत्य प्रत्ययान्त त्रिलिङ्गभागी शब्दोंको जातिवाचक करनेके लिए तीसरा लक्षण कहा जाता है—

"गोत्रंच चरणैः सह।"

वेदैकदेश कठादि शब्द और अपत्य प्रत्ययान्त शब्द भी जातिवाचक हो सकते हैं।

महाभाष्यमें जातिका लक्षणान्तर कहा है—

"प्रादुर्भावविनाशाभ्यां सत्त्वस्य युगपद्गुणैः।
असर्वलिंगां बह्वर्थां तां जातिं कवयो विदुः।"

किसी पण्डितके मतसे समस्त जो एक अनुगत धर्म है वही जाति और ब्रह्म है।

गो आदि समस्त पदार्थोंके सम्बन्ध भेदसे जो 'सत्ता' रूप एक पदार्थ है, उसीका नाम जाति है। इसीमें सकल शब्द विद्यमान है। इसी जातिको धात्वर्थ और प्रातिपदिकार्थ समझना चाहिए। यह नित्य और आत्मस्वरूप है। त्व तल् आदि भावार्थक प्रत्ययोंमें इसी जातिका बोध होता है। सिर्फ जाति ही एक और नित्य है, व्यक्तिको अनेक और अनित्य समझना चाहिये।

'अनेकव्यक्तयभिव्यंग्या जाति, स्फोट इति स्मृताः।'

अनेक व्यक्तियोंमें अभिव्यक्त जातिको स्फोट कहते हैं। शब्द दो प्रकारके हैं—नित्य और अनित्य। नित्य शब्द एकमात्र स्फोट है, इसके सिवा वर्णात्मक शब्दसमूह अनित्य हैं। वर्णके सिवा स्फोटात्मक जो एक नित्य शब्द है, उसके विषयमें बहुतसे ग्रन्थोंमें बहुतसी युक्तियां दिखाई गई हैं। उनमेंसे प्रधान युक्ति यह है कि, स्फोटके नहीं रहनेसे केवल वर्णात्मक शब्दोंसे अर्थका बोध नहीं हो सकता था। यह सभी स्वीकार करते हैं कि, अकार गकार, नकार, इकार, इन चार वर्णों द्वारा उत्पन्न जो अग्नि शब्द है, उससे वह्नि या आगका बोध होता है। परन्तु वह सिर्फ चारों अक्षरोंसे सम्पादित नहीं हो सकता। क्योंकि, यदि उक्त चारों वर्णोंमेंसे प्रत्येक वर्ण द्वारा वह्निका बोध होता, तो सिर्फ अकार वा गकार उच्चारण करनेसे भी अग्निका बोध हो सकता था। इस दोषके परिहारके लिए उक्त चारों वर्ण एक साथ मिल कर वह्निका बोध उत्पन्न कर देते हैं। यह कहना बड़ी भारी भूल है कि, समस्त वर्ण आशुविनाशी हैं (आगे आगे वर्णोंकी उत्पत्तिके समय पहलेके वर्णोंका नाश हो जाता है), अतएव अर्थबोधकी बात तो दूर रही; उनकी एकत्र स्थिति भी नहीं होती। इन चारों वर्णोंसे पहले तो स्फोटकी अभिव्यक्ति अर्थात

स्फुटता उत्पन्न होती है। फिर स्फुटता (स्फोट)-से वाक्यका बोध होता है।

"कैश्चिद्व्यञ्जकध्वन्यात्मानमेव प्रकीर्त्तिताः।"

कोई कोई ऐसी भी कल्पना करते हैं कि, व्यक्तियां इसी जातिको ध्वनि है। जातिको जो स्फोट कहा गया है, वह वाक्य वाचकको स्वीकार कर कहा गया है— ऐसा समझना चाहिये।

१७ नैयायिक मतसे षोड़श पदार्थोंके अन्तर्गत जाति भी एक प्रकार पदार्थ है। गौतमसूत्रमें इसका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

'समानप्रसवात्मिका' (गौ० १।१।१८)

जिस पदार्थमें समानताका ज्ञान हो, उसे जाति कहते हैं। जैसे—मनुष्यत्व पशुत्व आदि।

मान लो एक आदमी ब्राह्मण है और दूसरा शूद्र है इन दोनोंको समान या एक कहना हो तो, किस तरहसे कहा जा सकता है ? दोनोंका धर्म भी पृथक् पृथक् है। ब्राह्मण सन्ध्या-पूजा करता है शूद्र उसकी सेवामें लगा रहता है। ब्राह्मणके गलेमें यज्ञोपवीत है और शूद्रके गलेमें माला। ऐसी दशामें दोनों मनुष्य हैं इस आधार पर उन्हें समान कहा जा सकता है। मनुष्यत्व दोनोंमें है इसलिए मनुष्यत्व जाति हुआ।

समानताका ज्ञान जिससे हो वह जाति है, इसीलिए उसका दूसरा नाम सामान्य है। जाति कहनेसे जिसका बोध हो, सामान्य कहनेसे भी उसीको समझना चाहिये।

इस जातिके अनेक प्रकार लक्षण और नाना प्रकार भेद है। व्याप्ति निरपेक्ष साधर्म्य और वैधर्म्य द्वारा जो दोषोंका कहना है, वही जाति है। छल आदि व्यतिरेक में दोषके लिए जो अयोग्य है, उसका नाम जाति है। अप्रतिबन्धक उत्तरको भी जाति कहते हैं। (गौ० सू० ११५०)

वक्ता जिस अर्थके तात्पर्यसे जिस शब्दका प्रयोग करता है उसका वह अर्थ ग्रहण कर, उसके विपरीत अर्थको कल्पना पूर्वक मिथ्या दोषका लगाना छल कहा जाता है। जैसे—'हरिप्रसादमद्य भक्षयामि।—मैं हरिका प्रसाद भक्षण कर रहा हूं।' इस जगह हरि शब्दका विष्णु इस तात्पर्यको छोड़ कर बानरका कल्पना कर यह कहना कि—"क्या! तुम बन्दरका झूठा खाते हो" इत्यादि दोषारोप करना। छल देखो। इस प्रकारके वाक्छल, सामान्यछल और उपचारछलोंसे रहित जो सदुत्तर, अर्थात् आदिद्वारा संस्थापित मतमें दूषण लगानेमें असमर्थ अथवा अपने मतके लिए हानिजनक जो उत्तर, उसे जाति कहते हैं। यह जाति पदार्थ २४ प्रकारका है। जैसे—

साधर्म्यसम वैधर्म्यसम उत्कर्षसम, अपकर्षसम, वर्ण्यसम, अवर्ण्यसम, विकल्पसम, साध्यसम, प्राप्तिसम, अप्राप्तिसम प्रसङ्गसम, प्रतिदृष्टान्तसम, अनुत्पत्तिसम, संशयसम प्रकरणसम, हेतुसम, उपपत्तिसम उपलब्धिसम, अनुपलब्धिसम, नित्यसम अनित्यसम, कार्यसम ये २४ प्रकारके जाति पदार्थ हैं।

प्रभाकरके मतसे—आकृति द्वारा व्यङ्ग्य पदार्थको हो जाति माना जा सकता है गुणत्वादिका जातित्व नहीं।

नैयायिकोंके मतसे गुणत्व आदि भी जाति हो सकते हैं। तर्कसङ्ग्रहकारने जातिका लक्षण इस प्रकार लिखा है।—'नित्यमेकमनेकानुगतम्।'

जो पदार्थ नित्य अर्थात् ध्वंस और प्रागभावरहित तथा समवाय सम्बन्धसे पदार्थमें विद्यमान है, उसे जाति कहते हैं। जैसे—द्रव्यत्व, गुणत्व घटत्व, कर्मत्व इत्यादि।

घटत्व अर्थात् घटगत जो एक विलक्षण धर्म है वह नित्य है, क्योंकि घटके नष्ट हो जाने पर भी घटत्व नष्ट नहीं होता। घटत्व सभी घड़ोंमें विद्यमान है क्योंकि एक घड़ेको देखनेसे, फिर दूसरे घटको देखते ही घटका ज्ञान हो जाता है। यह घटत्व समवाय सम्बन्धसे विद्यमान है इसलिए घटत्व जाति हो गया। (भाषापरि और) सिद्धान्तमुक्तावलीमें भी ऐसा ही जातिका लक्षण लिखा है। भाषापरिच्छेदमें जाति दो भेदोंमें विभक्त की गई है 'जातिश्च द्विविधा प्रोक्ता परत्वमपरमेव च।'

सामान्य अर्थात् जाति दो प्रकारकी है—एक पर जाति और दूसरी अपरजाति। व्यापक जातिको परजाति कहा गया है, और यद्यपि जातिके नामसे निर्दिष्ट जो द्रव्यगुण और कर्म इन तीनों पदार्थोंकी जो सत्ता है उसे भी परजाति कहते हैं। सत्ता जाति कभी भी

अपरजाति नहीं होती। घटत्व पटत्व आदि जो जाति है, वे अपर जाति कहलाती हैं; ये कभी भी परजाति नहीं होती। परन्तु द्रव्यत्व आदि जाति पर, अपर दोनों ही हो सकती है। द्रव्यत्व जाति सत्ता जातिकी अपेक्षा अव्यापक है अतएव वह अन्यान्य घटत्व जातिकी अपेक्षा व्यापक होनेके कारण परा है। (भाषाप०)

वात्सायनके मतसे एक पदार्थ दूसरे पदार्थसे पृथक् है, इस भेदको उत्पादनके कारण सामान्यविशेषका नाम जाति है। जैसे—गोत्व, मनुष्यत्व इत्यादि। (वात्सा० २।२।७१) वैशेषिक दर्शनके मतसे—छह भावपदार्थोंका अन्यतम एक पदार्थ जाति है। (वैशेषिक)

अनुगत एकाकार बुद्धिजनक पदार्थका नाम जाति है। यह सामान्य और विशेषके भेदसे दो प्रकार है, जिसमें सामान्यके दो भेद हैं—एक पर और दूसरा अपर। जाति—जातिके कहनेसे इस देशमें ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णोंका बोध होता है। भारतवर्षके सिवा अन्य किसी भी देश पर दृष्टि डालनेसे यह मालूम होता है कि, उन देशोंके अधिवासी गण भिन्न भिन्न श्रेणी और भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंमें विभक्त होने पर भी सभी एक जातिमें गण्य हैं। किन्तु इस भारतवर्षमें ऐसा नहीं है। यहां प्रधानतः चार वर्णोंका वास है, इन चार वर्णोंमेंसे असंख्य श्रेणियों, असंख्य शाखाओं और अनेक सम्प्रदायोंकी उत्पत्ति हुई है।

धर्म और नीतिकी भित्तिसे हिन्दू-समाजमें जातीयता संगठित हुई है। ऐहिक और पारलौकिक सभी विषयोंमें हिन्दूगण जातिधर्मकी रक्षा किया करते हैं। जातित्वकी रक्षा न करने पर हिन्दूका हिन्दुत्व नहीं रहता। इसप्रकारकी अनिवार्य जातिभेद-प्रथा किस तरह प्रवर्त्तित हुई; इस बातको कौन नहीं जानना चाहेगा?

उत्पत्ति—ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें चार जातिकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार पाई जाती है—

१। "यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरूपादा उच्येते।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्वाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।"

(ऋक् १०।९०।११ १२)

जिस समय पुरुष विभक्त हुए थे, उस समय कितने भागोंमें उन्हें विभक्त किया गया था? उनके मुख, बाहु, ऊरु और दोनों पैरोंका क्या हुआ? इनके मुखसे ब्राह्मण, दोनों बाहुओंसे क्षत्रिय, ऊरुसे वैश्य और दोनों पैरोंसे शूद्र जन्मे। वाजसनेयसंहिता (३१।१६) और अथर्ववेद (१९।६।६)में भी उक्त पुरुषसूक्तका जिक्र है और सर्वोंसे पाठ भी प्रायः एकसे हैं, सिर्फ अथर्ववेदमें "ऊरु"के स्थानमें "मध्य तदस्य यद्वैश्यः" इतना पाठान्तर पाया जाता है।

२—तैत्तिरीयसंहिता (कृष्णयजुर्वेद)में कुछ विशेष लिखा है—

"प्रजापतिरकामयत प्रजायेयेति स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत तमग्निर्देवतान्वसृज्यत गायत्रीच्छन्दो रथन्तरं साम ब्राह्मणो मनुष्याणामजः पशूनां तस्मात्ते मुख्या मुखतो ह्यसृज्यन्तोरसो बाहुभ्यां पंचदशं निरमिमीत तमिन्द्रो देवतान्वसृज्यत त्रिष्टुप्छन्दो बृहत्साम राजन्यो मनुष्याणामविः पशूनां तस्मात्ते वीर्यवन्तो वीर्याध्यसृज्यन्त मध्यतः सप्तदशं निरमिमीत तं विश्वेदेवा देवता अन्वसृज्यन्त जगतीच्छन्दो वैरूपं साम वैश्यो मनुष्याणां गावः पशूनां तस्मात्त आद्या अन्नधानाध्यसृज्यन्त तस्माद्भूयांसोऽन्येभ्यो भूयिष्ठा हि देवता अन्वसृज्यन्त पत्त एकविंशं निरमिमीततमनुष्टुप्छन्दः अन्वसृज्यत वैराजं साम शूद्रो मनुष्याणामश्वः पशूनां तस्मातौ भूतसंक्रामिणावश्वश्च शूद्रश्च तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तो न हि देवता अन्वसृज्यत तस्मात्पादावुपजीवतः पत्तो ह्यसृज्येताम्।"

(७।१।१४)

प्रजापतिको जन्मग्रहण करनेकी इच्छा हुई। उन्होंने मुखसे त्रिवृत् बनाया, फिर अग्निदेवता, गायत्री छन्द, रथन्तरसाम, मनुष्योंमें ब्राह्मण और पशुओंमें अज (मुखसे) उत्पन्न हुए। मुखसे सृष्टि होनेके कारण ये मुख्य हैं। वक्ष और बाहुयुगलसे पञ्चदश (स्तोम) का निर्माण किया। इसके उपरान्त इन्द्रदेवता, त्रिष्टुप्छन्द, बृहत्-साम; मनुष्योंमें क्षत्रिय और पशुओंमें मेषकी सृष्टि हुई। वीर्यसे उत्पन्न होनेका कारण वे सब वीर्यवान् हैं। मध्यसे सप्तदश (स्तोम) का निर्माण किया। फिर विश्वेदेव देवता जगती छन्द, वैरूप साम, मनुष्योंमें वैश्य और पशुओंमें गौओंकी सृष्टि हुई। अन्नाधारसे उत्पन्न होनेके कारण ये अन्नवान् हैं। इनकी संख्या बहुत है,

अप्रतिरथके पुत्र कण्व और कण्वके पुत्र मेधातिथि थे। इन्होंसे काण्वायन ब्राह्मणोंको उत्पत्ति हुई है। इस विषयमें भागवतमें भी कुछ लिखा है—

"सुमतिध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः।
तस्य मेधातिथिस्तस्मात् प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः।
पुत्रोऽभूत्सुमतेरेभिर्दुष्मन्तस्तत्सुतोमतः॥" (९।२०।७)

भागवतके मतसे अजमीढके वंशमें प्रियमेधादि ब्राह्मणोंने जन्म लिया था।

"अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः।" (९।२१।२१)

विष्णु, भागवत और मत्स्यपुराणके मतानुसार क्षत्रिय-राज अजमीढ़के सप्तम पुरुषमें मुद्गल जन्मे थे और उनसे मौद्गल्य नामक क्षत्रोपेत ब्राह्मणको उत्पत्ति हुई थी।

"मुद्गलास्यापि मौद्गल्य क्षत्रोपेता द्विजातय.।
एतेह्यंगिरसः पक्षे संस्थिताः कण्व मुद्गलाः॥"(मत्स्य)

मत्स्यपुराणमें और भी लिखा है—

"काव्यानान्तु वराह्येते त्रयः प्रोक्ताः महर्षयः।
गर्गाः संकृतयः काव्या क्षत्रोपेता द्विजातयः॥"

गर्ग, सङ्कृति और काव्य ये तीनों कविवंशीय महर्षि क्षत्रोपेत ब्राह्मणोंमें शामिल हैं। भागवत, विष्णु, मत्स्य और ब्रह्माण्ड पुराणके मतसे—

"गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद्ब्रह्मह्यवर्त्तत।"

(भाग० ९।२१ १९)

गर्गसे शिनि और शिनिसे गार्ग्यगण उत्पन्न हुए। ये गार्ग्यगण क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मण हुए थे।

सभी प्रधान प्रधान पुराणोंमें लिखा है कि, गर्गके भ्राता महावीर्य, उनके पुत्र उरुक्षय थे। इन उरुक्षयके तीन पुत्र जन्मे—त्रय्यरुण, पुष्करी और कपि। इन तीनोंने क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था।

"उरुक्षयसुतः ह्येते सर्वे ब्राह्मणतां गताः।" (मत्स्यपु०)

भागवत (८।२१। १८)के टोकाकार श्रीधरस्वामीने भी लिखा है—

"येऽत्र क्षत्रवंशे ब्राह्मणगतिं ब्राह्मणरूपतां गतास्ते।"

इस प्रकार बहुतसे क्षत्रिय पहले ब्राह्मण हुए थे, जिनका क्षत्रिय शब्दमें विवरण दिया गया है। वर्त्तमान-में भारतवासी ब्राह्मणोंमें जो विश्वामित्र, कौशिक, काण्व, आङ्गिरस, मौद्गल्य, वात्स्य, काण्वायन, शुनक, हारित आदि बहुतसे गोत्र देखनेमें आते हैं, वे क्षत्रोपेतगोत्र अर्थात् उक्त ब्राह्मणोंके सभी आदिपुरुष क्षत्रिय थे।

इसके अतिरिक्त क्षत्रियके वैश्यत्व और वैश्यके ब्राह्मणत्वके पानेकी कथा भी बहुतसे पुराणोंमें पाई जाती है। सभी प्रधान प्रधान पुराणोंके मतसे क्षत्रिय राज नेदिष्ट वा दिष्टके पुत्र नाभाग थे। विष्णु और भागवतपुराणके मतसे नाभागको वैश्यत्व हुआ था।

"नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणावैश्यतां गताः।"

(भाग० ९।२।२३।)

मार्कण्डेयपुराणके मतसे नाभागने वैश्यकन्याका पाणिग्रहण कर वैश्यत्व प्राप्त किया था। हरिवंश (११अ०)में लिखा है—

"नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।"

नाभारिष्टके दो पुत्र वैश्य थे, जिन्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ था।

ब्राह्मणोंके सिवा बहुतसे क्षत्रिय और वैश्य भी वेदके ऋषि थे, ऐसा वर्णन मिलता है। मत्स्यपुराण (१३२ अ०) में लिखा है—भलन्द, वन्ध्य और संकृति इन तीन वैश्योंने वेदके मन्त्र बनाये थे। कुल ९१ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंसे अनेक वेद मन्त्र उत्पन्न हुए हैं।

"भलन्दश्चैव वन्ध्यश्च संकृतिश्चैव ते त्रयः।
ते मन्त्रकृतो ज्ञेयाः वैश्यानां प्रवराः सदा॥
इत्येकनवतिः प्रोक्ताः मन्त्राः येश्च बहिष्कृताः॥"

उपरोक्त प्रमाणोंके मनन करनेसे मालूम होता है कि, यथार्थमें गुण और कर्मके अनुसार ही जातिभेदकी प्रथा प्रवर्त्तित हुई है।

महाभारतके अनुशासनपर्वमें लिखा है—

"ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्राप्यं निसर्गाद्ब्राह्मणः शुभे।
क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः।
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति वै द्विजः।
ज्येष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्माद् रक्षेत वै द्विजः।
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा ब्रह्मभूय स गच्छति॥
यस्तु ब्रह्मत्वमुत्सृज्य क्षात्रं धर्मं निषेवते।
ब्राह्मण्यात् स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते॥

वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः ।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ।
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् ॥
स्वधर्मात् प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुते ॥
एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा ।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत् ॥"

महादेव कहते रहे हैं—"हे देवि ! मनुष्यमें ब्राह्मणत्व प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। मेरी रायसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण जो प्रकृतिसिद्ध हैं। दुष्कर्मके अनुसार द्विज अपने धर्मसे च्युत हो सकता है। इसलिए ब्राह्मणत्व प्राप्त कर, (बहुत प्रयत्नसे) उसको रक्षा करना ही विधेय है। जो क्षत्रिय या वैश्य ब्राह्मणधर्म अवलम्बन कर जीविका-निर्वाह करते हैं, वे ब्राह्मणत्वको प्राप्त होते हैं। किन्तु जो ब्राह्मणत्व पा कर क्षत्रधर्मको पालते हैं, वह फिर ब्राह्मणधर्मसे परिभ्रष्ट हो कर क्षत्रयोनिमें उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार जो अल्पमति ब्राह्मण दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पा कर लोभ और मोहके वशवर्ती हो वैश्यधर्मका आश्रय लेते हैं, वैश्यत्व प्राप्त करते हैं। वैश्य भी शूद्रत्वको प्राप्त हो सकते हैं। ब्राह्मण भी स्वधर्मसे च्युत हो कर शूद्रत्वको प्राप्त होते हैं। परन्तु स्वधर्मके अनुष्ठान कर शूद्र भी ब्राह्मणत्व लाभ कर सकते हैं तथा वैश्य भी क्षत्रियत्व प्राप्त कर सकते हैं। महाभारतके वनपर्वमें भी (१८० अ०) लिखा है—

"सर्प उवाच ।"
ब्राह्मणः को भवेद्राजन् वेद्यं किञ्च युधिष्ठिर ।
ब्रवीह्यतिमतिं त्वां हि वाक्यैरनुमिमीमहे ॥
युधिष्ठिर उवाच ।
सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतिः ॥
वेद्यं सर्प परं ब्रह्म निर्दुःखमसुखं च यत् ।
यत्र गत्वा न शोचन्ति भवतः किं विवक्षितम् ॥
सर्प उवाच ।
चातुर्वर्ण्यं प्रमाणं च सत्यं च ब्रह्म चैव हि ।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च ॥
आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर ।
वेद्यं यच्चात्र निर्दुःखमसुखञ्च नराधिप ॥
ताभ्यां हीनं पदं चान्यन्न तदस्तीति लक्षये ।
युधिष्ठिर उवाच ।
शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो न च ब्राह्मणो ब्राह्मणः ॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥
यत् पुनर्भवता प्रोक्तं न वेद्यं विद्यतीति च ।
ताभ्यां हीनमतोऽन्यत्र पदं नास्तीति चेदपि ॥
एवमेतन्मतं सर्प ताभ्यां हीनं न विद्यते ।
यथा शीतोष्णयोर्मध्ये भवेन्नोष्णं न शीतता ॥
एवं वै सुखदुःखाभ्यां हीनं नास्ति पदं क्वचित् ।
एषा मम मतिः सर्प यथा वा मन्यते भवान् ॥
सर्प उवाच ।
यदि ते वृत्ततो राजन् ब्राह्मणः प्रसमीक्षितः ।
वृथा जातिस्तदायुष्मन् कृतिर्यावन्न विद्यते ॥
युधिष्ठिर उवाच ।
जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते ।
संकरात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः ॥
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः ।
वाङ्मैथुनमथो जन्म मरणञ्च समं नृणाम् ॥
तावच्छूद्रसमो ह्येष यावद्वेदे न जायते ॥"

सर्पने कहा—हे युधिष्ठिर ! तुम्हारी बातोंसे ही मैं समझ गया हूँ कि, तुम बुद्धिमान हो। मुझे बताओ कि, ब्राह्मण कौन है ? और जाननेकी बात कौनसी है ? युधिष्ठिरने उत्तर दिया—नागराज ! श्रुतिके मतसे सत्य, दान, क्षमा शील निर्दोष तप और घृणा ये गुण जिसमें पाये जाय, वही ब्राह्मण है। दुःख सुखवर्जित ब्रह्म ही जाननेकी चीज है जिसके पानेसे फिर शोक नहीं करना पड़ता और आपको क्या कहना है ? सर्पने कहा—चारों वर्णके विषयमें वेद ही एकमात्र प्रमाण और सत्य माना जा सकता है। शूद्रमें भी सत्य, दान अक्रोध, अनृशंस्य अहिंसा और घृणा पाई जाती है। और जाननेके विषयमें जिसमें सुख दुःख नहीं है उस द्विजोंसे शून्य (ब्रह्मके सिवा) कुछ भी नहीं दिखाई देता। युधिष्ठिरने उत्तर दिया—जिस शूद्रमें जो जो

लक्षण हैं, वे वे लक्षण द्विजमें भी होते हैं। ऐसी अवस्थामें शूद्रवंश होनेसे ही वह शूद्र होगा और ब्राह्मणवंश होनेमें ही वह ब्राह्मण होगा ऐसा कोई नियम नहीं। जिस व्यक्तिमें वैदिक आचार आदि पाये जायँ, वही ब्राह्मण है; जिसमें उक्त आचार नहीं, उसको शूद्र कह कर निर्देश किया जा सकता है। और आप जो कहते हैं कि, सुखदुःखहीन कुछ भी जाननेको चीज नहीं, वह भी ठीक है। जैसे शीत और उष्णमें उष्ण और शीत नहीं हो सकता उसी तरह कोई भी पद सुख दुःख हीन नहीं हो सकता। मेरा भी ऐसा ही मत है। आप क्या उचित समझते हैं ?

सर्पने कहा—राजन्! यदि वृत्तिके अनुसार ही ब्राह्मण हुए, तो उस वृत्तिके न होने पर उनकी जाति (जन्म) वृथा है।

युधिष्ठिरने उत्तर दिया—हे महासर्प! इस मनुष्य-जन्ममें सभी वर्णके सङ्करत्वके कारण जातिका निर्णय करना बहुत कठिन है। सभी वर्णोंके लोग सभी वर्णों के स्त्रियोंके द्वारा सन्तान उत्पादन करते हैं। सबका भय, सबका मैथुन, सबका जन्म और सबकी मृत्यु एक ही प्रकार है। वास्तवमें, जब तक मनुष्यको वेदाधिकार नहीं होता तब तक वे शूद्र ही रहते हैं।*

फिर शान्तिपर्वमें (१८८ और १८९ अध्यायमें) लिखा है—

"असृजद्ब्राह्मणानेवं पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतीन्।
आत्मतेजोऽभिनिर्वृत्तान् भास्कराग्निसमप्रभान्॥
ततः सत्यं च धर्मं च तपो ब्रह्म च शाश्वतम्।
आचारं चैव शौचं च स्वर्गाय विदधे प्रभुः॥
देवदानवगन्धर्वा दैत्यासुरमहोरगाः।
यक्षराक्षसनागाश्च पिशाचा मनुजास्तथा॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम।
ये चान्ये भूतसङ्घानां वर्णास्तांश्चापि निर्ममे॥
ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां च लोहितम्।
वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा॥

भरद्वाज उवाच।

चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते।
सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्णसंकरः॥
कामः क्रोधो भयं लोभः शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रमः।
सर्वेषां नः प्रभवति कस्माद्वर्णो विभिद्यते॥
स्वेदमूत्रपुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितम्।
तनुः क्षरति सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभज्यते॥
जङ्गमानामसङ्ख्येयाः स्थावराणां च जातयः।
तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः॥

भृगुरुवाच।

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥
कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः॥
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः।
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते॥
इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्वज्ञानतां गताः॥
ब्राह्मणा ब्रह्मतन्त्रस्थास्तपस्तेषां न नश्यति।
ब्रह्म धारयतां नित्यं व्रतानि नियमांस्तथा॥
ब्रह्म चैव परं सृष्टं ये न जानन्ति तेऽद्विजाः।
तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्र हि जातयः॥
पिशाचा राक्षसाः प्रेता विविधा म्लेच्छजातयः।
प्रनष्टज्ञानविज्ञानाः स्वच्छन्दाचारचेष्टिताः॥

भरद्वाज उवाच।

ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम।
वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद्ब्रूहि वदतां वर॥

भृगुरुवाच।

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः।
वेदाध्ययनसम्पन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः॥

---

* टीकाकार नीलकंठने ऐसा मत प्रकट किया है—"एतेन ब्राह्मणपदेन ब्रह्मविदं विवक्षिता शूद्रस्यापि ब्राह्मणत्वमभ्युपगम्य परिहरति शूद्रेत्विति। शूद्रलक्षणकामादिकं न ब्राह्मणेऽस्ति न ब्राह्मणलक्षणशमादिकं शूद्रेऽस्ति इत्यर्थः। शूद्रोऽपि शमाद्युपेतो ब्राह्मणः। ब्राह्मणोऽपि कामाद्युपेतः शूद्र एव इत्यर्थः।"

शौचाचारस्थितः सम्यग् महानिष्ठः गुरुप्रियः ।
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥
सत्यं दानमथोद्रोह आनृशंस्यं त्रपा घृणा ।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥
क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसंमतः ।
दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥
विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः ।
वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥
सर्वभक्ष्यरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः ।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ॥
शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च ॥"

भगवान् ब्रह्माने पहले अपने तेजसे भास्कर और अनलके समान प्रतिभाशाली ब्रह्मनिष्ठ मरीचि आदि प्रजापतियोंको सृष्टि कर स्वर्गप्राप्तिके उपाय स्वरूप सत्य, धर्म, तपस्या, शाश्वत वेद आचार और शौचकी सृष्टि की। पीछे देव, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार प्रकारकी मनुष्य जातिकी सृष्टि हुई। उस समय ब्राह्मणोंको श्वेतवर्ण (अर्थात् सत्त्व गुण), क्षत्रियोंको लोहितवर्ण (अर्थात् रजोगुण), वैश्योंको पीतवर्ण (अर्थात् रज और तमोगुण) और शूद्रोंको कृष्णवर्ण अर्थात् निरवच्छिन्न तमोगुण प्राप्त हुआ। भरद्वाजने कहा—भगवन्! जो तो सभी मनुष्योंमें सब तरहके वर्ण विद्यमान हैं। इसलिए सिर्फ वर्ण (या गुण) को देख कर ही मनुष्योंमें वर्णभेद नहीं किया जा सकता। देखिये, सभी लोग काम क्रोध भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा और परिश्रमसे व्याकुल होते हैं तथा सभीके शरीरसे मल, मूत्र, स्वेद श्लेष्मा पित्त और शोणित निकला करता है; ऐसी दशामें गुणके द्वारा किस प्रकार वर्णविभाग किया जा सकता है? भृगुने उत्तर दिया—इन लोगोंमें वस्तुतः वर्णका सामान्य विशेष नहीं है। समस्त जगत् ही ब्रह्ममय है। मनुष्यगण पहले ब्रह्मा द्वारा सृष्ट हो कर क्रमशः कार्यके अनुसार भिन्न भिन्न वर्णोंमें परिगणित हुए हैं। जिन ब्राह्मणोंने रजोगुणके प्रभावसे कामभोगप्रिय, क्रोधपरतन्त्र साहसी और तीक्ष्ण हो कर अपना धर्म त्याग दिया है, वे क्षत्रिय हैं। जिन्होंने रजः और तमोगुणके प्रभावसे पशुपालन और कृषिकार्यका अवलम्बन किया है वे वैश्य हैं और तमोगुणके प्रभावसे हिंसापर, लुब्ध, सब कर्मोपजीवी, मिथ्याभाषी और शौचभ्रष्ट हो गये हैं, वे ही शूद्रत्वको प्राप्त हुए हैं। ब्राह्मणोंने इस प्रकारसे भिन्न भिन्न कार्योंके द्वारा ही पृथक् पृथक् वर्ण पाये हैं। अतएव सभी वर्णको नित्य धर्म और नित्य यज्ञ करनेका अधिकार है। पहले भगवान् ब्रह्माने जिनको सृष्टि कर वेदमय शास्त्र पर अधिकार दिया था, वे ही लोभके वशीभूत हो कर शूद्रत्वको प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मणगण सर्वदा वेदाध्ययन तथा व्रत और नियमानुष्ठानमें अनुरक्त रहते हैं, इसीलिए तपस्या नष्ट नहीं होती। ब्राह्मणोंमें जो परमार्थ ब्रह्मपदार्थको नहीं समझ पाते वे अति निकृष्ट गिने जाते हैं और ज्ञानविज्ञानहीन स्वेच्छाचारपरायण पिशाच, राक्षस, और प्रेत आदि विविध म्लेच्छजातित्वको प्राप्त होते हैं।

भरद्वाजने कहा—हे द्विजोत्तम! ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंका लक्षण क्या है, सो हमें बतलाइये? भृगुने उत्तर दिया—जो जातकर्मादि संस्कारसे संस्कृत हैं, जो परम पवित्र और वेदाध्ययनमें अनुरक्त होकर प्रति दिन सन्ध्यावन्दन, स्नान, जप, होम, देवपूजा, अतिथिसत्कार इन षट्कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, जो शौचाचारपरायण, नित्यब्रह्मनिष्ठ गुरुप्रिय और सत्यनिष्ठ हो कर ब्राह्मणका भुक्तावशिष्ट अन्न भक्षण करते हैं, और जिनमें दान, अद्रोह, अक्रूरता, क्षमा, घृणा और तप ध्यानमें अत्यन्त आसक्त पाया जाय, वे ही ब्राह्मण हैं। जो वेदाध्ययन सुरकार्यका अनुष्ठान, ब्राह्मणोंको धन दान और प्रजाओंके पाससे कर वसूल करते हैं, वे क्षत्रिय हैं, जो पवित्र हो कर वेदाध्ययन और कृषि वाणिज्य आदि करते हैं, वे वैश्य हैं, तथा जो वेदहीन और आचारभ्रष्ट हो कर सर्वदा समस्त कार्योंका अनुष्ठान और सर्व वस्तु भक्षण करते हैं वे ही शूद्र हैं। यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण कुलमें जन्म ले कर शूद्रकी भांति व्यवहार करे, तो उसे शूद्र और यदि कोई शूद्र कुलमें जन्म ले कर ब्राह्मणकी

भाँति नियमनिष्ठ हो, तो उसे ब्राह्मण कह कर निर्देश किया जा सकता है।

उपरोक्त महाभारतके प्रमाण और पौराणिक वंश विवरणोंसे तो स्पष्ट हो विदित होता है कि, पूर्व समय में इस समयकी भाँति जातिभेद न था; प्रत्युत किसी व्यक्तिके गुण और कर्म द्वारा उसकी जाति वा वर्णका निश्चय किया जाता था। पहलेके लोग पितृपुरुषोंके गुण और कर्मोंका सब तरहसे अनुकरण करते थे, इस प्रकारसे एक एक वंश बहुत पीढ़ियों तक एक ही प्रकार कर्म और गुणशाली हो कर एक एक जातिरूपमें परिणत हो गये हैं। इसी तरह चातुर्वर्ण्यकी उत्पत्ति हुई है। किन्तु परवर्त्ति कालमें वैदेशिक आक्रमण और वास्तविक गुणकर्मके अभावसे नीच जातिका उच्चवंशीय कह कर परिचय देनेसे भी समाजमें विशृङ्खलता उपस्थित हुई, तभीसे भारतके जातिधर्ममें वैलक्षण्य दिखाई देने लगा। यही कारण है कि, अब चारों वर्णोंमें पूर्वकालके शास्त्र निर्दिष्ट आचार व्यवहारोंमें बहुत कुछ पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। कौण्डन्य और पुष्कर ब्राह्मण तथा पंचाल शब्द देखो।

"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थः एकजातिस्तु शूद्रः नास्ति तु पंचमः॥" (१०।४)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये ही चार वर्ण वा जातियाँ हैं; इनके सिवा पाँचवीं कोई जाति नहीं है। मनुके टीकाकार कुल्लुकभट्टने लिखा है—

"पंचमः पुनर्वर्णो नास्ति संकीर्णजातीनां त्वश्वतरवत् मातृपितृजातिव्यतिरिक्तजात्यन्तर त्वाद्म वर्णत्वम्।"

पाँचवां कोई वर्ण नहीं है। सङ्कीर्ण अर्थात् दो भिन्न वर्णके मिश्रणसे उत्पन्न जाति जो अश्वतरादिकी तरह माता पितासे होन अन्य जातित्व प्रयुक्त हैं, उसकी वर्णोंमें गिनती नहीं हो सकती।

मनुके मतसे—

"द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्।
तान् सावित्री परिभ्रष्टान् व्रात्या इति विनिर्दिशेत्॥"
(१०।२०)

सवर्णा स्त्रीसे उत्पन्न द्विजातिगण जब नियमादिहीन और गायित्रीपरिभ्रष्ट हो जाते हैं, तब उन्हें व्रात्य कहते हैं। शक, काम्बोज आदि पतित क्षत्रियको वृषल कहा जा सकता है। व्रात्य तथा वृषल शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

मनु फिर कहते हैं—

"मुखबाहूरूपज्जानां या लोके जातयो वहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥"
(१०।४५)

ब्राह्मण आदि चार वर्णोंमें क्रियाकलाप आदिके कारण जिनकी गिनती वाह्य जातिमें है, वे चाहे साधु भाषी या म्लेच्छभाषी हों; वे दस्यु ही कहलाते हैं।

मनु आदि स्मृतिकारोंके मतसे—उच्च वर्णके पिता और नीच वर्णकी मातासे जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसको अनुलोम तथा नीच वर्णके पिता और उच्च वर्णकी मातासे उत्पन्न हुई सन्तानको प्रतिलोम वर्ण-सङ्कर कहते हैं। अनुलोमकी अपेक्षा प्रतिलोम सन्तानें अत्यन्त हेय समझी जाती है। भगवान् मनुके मतसे—अनुलोम सन्तान माताके दोषसे दुष्ट होनेके कारण मातृ-जातिके संस्कारयोग्य होती है। शूद्रसे प्रतिलोमके क्रमसे उत्पन्न आयोगव, क्षत्ता, चण्डाल ये तीन जातियोंको और्द्ध-दैहिक आदि किसी प्रकार पितृकार्यमें अधिकार नहीं है। इसीलिए ये लोग नराधम हैं।

आश्वलायन स्मृति आदि ग्रन्थोंमें अनुलोमज और प्रतिलोमज अनेक प्रकारकी जातियोंका उल्लेख है। उन सब सङ्कर जातियोंसे भी भारतमें असंख्य जातियोंका आविर्भाव हुआ है।

सङ्कर और भारतवर्ष शब्दमें उक्त जातियोंके नाम और उन्हीं शब्दोंमें उनकी उत्पत्ति और आचार व्यवहार आदि देखना चाहिये।

पाश्चात्य मानवतत्त्वविद्गण वर्त्तमान भारतवासियोंके आर्य, द्राविड़ और मोङ्गलीय, इन तीन प्रधान वर्णोंमें विभक्त करते हैं। उनके मतसे—वैदिककालमें भारतमें आर्य और अनार्य इन दो जातियोंका वास था। आर्य-गण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंमें विभक्त थे और अनार्य या कृष्णवर्ण आदिम अधिवासिगण शूद्र कहलाते थे। परन्तु हमारी समझमें यह युक्ति समीचीन नहीं मालूम पड़ती। आर्योंके आर्यावर्त्त

परिवार करने पर बहुतसे आन्ध्र अधिवासी उनके साथ आ मिले थे। ये भी कर्मके अनुसार चातुर्वर्ण्यमें शामिल किये गये थे इसमें सन्देह नहीं। किन्तु अन्य सब आदिम जातिके लोग जितने भी आर्य जातिके विरोधी हुए, वे सभी शूद्र कहलाये।

वर्ण शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

इसी प्रकार आर्यमें भी बहुतसी अनार्य जातियोंकी उत्पत्तिकी कथा सुन पड़ती है। जिसमें इसे ऐतरेय ब्राह्मणमें (७।१८) लिखा है—

"तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः पंचाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पंचाशत् कनीयांसः तद्ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे। तानन्तु व्याजहारान्तान् वः प्रजा भक्षीष्टेति त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः।"

उन विश्वामित्रके एक सौ पुत्र थे, उनमेंसे पचास तो मधुच्छन्दासे उमरमें बड़े और पचास उनसे छोटे थे। ज्येष्ठ पुत्रों को इससे (शुन शेफको अभिषेक करने) अच्छा नहीं मालूम हुआ। इस पर विश्वामित्रने उन लोगों को अभिशाप दिया—"तुम्हारा वंशधर सभी नीच जातिके होंगे।" इस कारण विश्वामित्रके ज्येष्ठ अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द और मूतिबगण भ्रष्ट हो गये और विश्वामित्रके पुत्रोंको दस्यु मूर्तियोंमें गिनती हुई।

पाश्चात्य लोग शबर आदिको द्राविड़ शाखासे उत्पन्न अनार्य जाति बतलाते हैं। किन्तु ये आर्य जातिसे ही उत्पन्न हुए हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति का शेषमें आख्यान विवरण देखना चाहिये।

जैनमतानुसार—वर्तमान कल्पके अवसर्पिणीकालके तृतीयकालके अन्त और चतुर्थकालके प्रारम्भमें आदि तीर्थंकर श्रीऋषभनाथ भगवान्ने पहले पहल क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंका प्रवर्तन किया। जिन्होंने शस्त्र धारण किये, वे क्षत्रिय कहलाये। जिन्होंने खेती, व्यापार और पशुपालनका कार्य किया, वे वैश्य कहलाये। और इन दोनों वर्णोंकी सेवा करनेवाले शूद्र कहलाये। इसप्रकार श्रीऋषभदेवने तीन वर्णोंकी स्थापना की। इससे पहले वर्ण-व्यवहार नहीं था। वर्णोंमें वर्ण व्यवहार चला और उनको अपना अपनी आजीविका-के अनुसार कार्य करने लगे। इसके बाद भगवान्ने शूद्रोंके दो भेद किये—एक कारु और दूसरा अकारु। धोबी नाई आदि कारु कहलाये और इनसे भिन्न अकारु। कारु शूद्रों को भी दो भागोंमें विभक्त किया—स्पृश्य और अस्पृश्य। इनके बाद भगवान्ने सम्राट् पदसे विभूषित हो क्षत्रियों को युद्ध करने और वैश्यों को पर देश जानेकी शिक्षा दी। साथ ही स्थलयात्रा और जलयात्राका प्रचार किया।

विवाह आदि सम्बन्ध भगवान्की आज्ञाके अनुसार किये जाते थे। इन्होंने विवाहके नियम इस प्रकार बनाये थे। शूद्र—शूद्रकी कन्यासे विवाह करे वैश्य—वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे एवं क्षत्रिय—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे। उस समयमें वर्णोचित जीविकाके सिवा कोई भी अन्य जीविका नहीं कर सकता था।

अनन्तर भगवान् ऋषभदेवके पुत्र भरत चक्रवर्तीने अपनी लक्ष्मीका दान करनेके लिये एक दिन समस्त प्रजाको निमन्त्रण दिया और राजप्रासादके मार्गमें घास आदि बो दी। इनका अभिप्राय यह था कि, जो व्यक्ति दयालु और व्रतधारी होंगे वे जीवहिंसाके बचनेके लिए इस मार्गमें न आ कर अवश्य ही अन्य मार्गका अवलम्बन करेंगे और वे ही वर्णोत्कृष्ट ब्राह्मण होनेके योग्य होंगे। अनन्तर जो लोग उस मार्गसे न आये उन्हें यज्ञोपवीत दिया गया और व्यापार, खेती, दान, स्वाध्याय आदिका उपदेश दिया गया। साथ ही यह भी कहा कि—"यद्यपि जातिनामकर्मके उदयसे मनुष्य-जाति एक ही है, तथापि जीविकाके पार्थक्यसे वह भिन्न भिन्न चार वर्णोंमें विभक्त हुई है। अतएव द्विज जातिका संस्कार तप और शास्त्रज्ञानसे ही कहा गया है। तप और ज्ञानसे जिसका संस्कार नहीं हुआ वह सिर्फ जातिसे ही द्विज है। एक बार गर्भसे और दूसरी बार क्रियाओंसे, इस प्रकार दो जन्मोंसे जिसकी उत्पत्ति हुई हो, वह द्विज है एवं जो क्रिया और मन्त्र रहित है वह केवल नाम धारण करनेवाला द्विज है, वास्तविक नहीं।" चक्रवर्ती द्वारा सत्कार किये जाने पर प्रजा भी इन वर्णोंका खूब आदर करने लगे। इन वर्णोंके

मनुष्य प्रायः गृहस्थाचार्य होते थे और शेष जीवनमें अधिकांश मुनिधर्म अवलम्बनपूर्वक अपनी यथार्थ आत्मोन्नति किया करते थे।

इसके कुछ दिन बाद भारत चक्रवर्ती भगवान् ऋषभदेवके समवशरणमें गये और अपने स्वप्नों तथा ब्राह्मणवर्णको स्थापनाका वृत्तान्त कहा। भगवान्‌की दिव्यध्वनि द्वारा इस प्रकार उत्तर मिला—"यद्यपि इस समय ब्राह्मणोंकी आवश्यकता थी, किन्तु भविष्यमें १०वें तीर्थङ्कर श्रीशीतल नाथके समयसे ये जैनधर्मके द्रोही और हिंसक हो जांयगे तथा यज्ञादिमें पशुहिंसा करेंगे।" (जैन आदिपुराण)

पाश्चात्य मानवतत्त्वविद्‌गण इस तरह जगत्‌का वर्ण-निर्णय करते हैं—

इस पृथिवीस्थ मानवों पर दृष्टि डालनेसे उनकी मुखकी श्री, दैहिक उन्नति, मस्तक-गठन आदि बाह्य आकारमें बहुत कुछ विषमता पाई जाती है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय, तो स्थानके अनुसार (अनेक विषयोंमें) सभी सभी लोगोंमें सदृशता पाई जाती है। यह वैषम्य और सादृश्य उत्पत्ति-मूलक है। यही कारण है कि, जो मनुष्य जैसी आकृतिवालेसे जन्म लेता है, उसकी आकृति भी प्रायः वैसी ही होती है। वैषम्यप्रयुक्त मानवगण साधारणतः पाँच प्रधान जातियोंमें विभक्त किये जाते हैं; जैसे—ककेशीय, मोङ्गलीय, इथियोपीय वा काफ्रि जाति, आमेरिक और मलय। कोई कोई शेषोक्त दो जातियोंको मोङ्गलीय जातिके अन्तर्गत बतलाये हैं। वे कहते हैं, ककेसीय जातिके लोग पहले कास्पीय सागर और कृष्णसागरके मध्यवर्ती पर्वतसङ्कुल स्थानमें रहते थे। मोङ्गलीयगण आलताई पर्वतके भूभागमें और इथियोपीय अर्थात् निग्रोजाति आतलास पर्वत-शृङ्खलाकीर्ण भूभागमें रहती थी। इन सब जातिओंकी आदिम वासभूमिका यथार्थ निर्णय करना बहुत ही कठिन या दुःसाध्य है। कुछ भी हो, पण्डितोंका तो यह कहना है कि, ककसीय जातिसे दो प्रधान (विभिन्न) शाखाओंकी उत्पत्ति हुई है। इनमेंसे एक शाखा आर्य नामसे और दूसरी समितिक (Semetic) नामसे प्रसिद्ध है। हिन्दू, पारसिक, अफगान, आर्मेनी और प्रधान प्रधान यूरोपीय जातियां आर्यशाखासे उत्पन्न हुई हैं। इसी प्रकार सिरीय और अरबीय जाति समितिक शाखासे उत्पन्न है। आर्य और समितिक जातिके लोगोंमें शारीरिक उज्ज्वल वर्णका सादृश्य अवश्य है, किन्तु इनकी भाषाओंमें किसी तरहकी सदृशता नहीं पाई जाती। इस जातिके लोगोंका धर्मज्ञान बहुत ऊँचा है। इनके मस्तककी गठन यथासम्भव पूर्ण है। इनके शारीरिक आभ्यन्तरीन यन्त्र पूरी तरहसे कार्यकारी हैं। अरबी लोग अत्यन्त कार्यकुशल होते हैं। इनके शरीरका रंग भूरापन लिए पीला, ललाट ऊंचा, आखें बड़ी, नासिकाका अग्रभाग सूक्ष्म और ओठ पतले होते हैं। अरबी लोग साधारणतः अत्यन्त भ्रमणशील होते हैं। किसी किसीका कहना है कि, अरबीय कालदी-शाखासे यहूदियोंकी उत्पत्ति हुई है, तथा अफ्रिकाके मूर लोग और कैनानाइट (Cananite) नामक जाति भी अरबीय शाखासे उत्पन्न हुई है। आतलास पर्वतके दोनों तरफ तुयारिक नामकी एक जाति वास करती है। ये लोग यद्यपि अरबियोंकी अपेक्षा दुर्दान्त है और इनका रंग भी मैला है, तथापि अन्यान्य विषयोंकी तरफ दृष्टि डालनेसे ये अरबीय शाखासे उत्पन्न हुए हैं; ऐसा ही मालूम होता है।

आर्य शाखासे उत्पन्न मनुष्य पहले अक्सस नदीके किनारे रहते थे। फिर वे वहाँसे भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें चल गये। एक अंश पारस्य देशमें और दूसरा अंश यूरोपमें जा कर रहने लगा। जो काश्मीरके उत्तरमें मध्य-एशियाके भीतर रहते थे, उनमेंसे कुछ मनोमालिन्य हो जानेके कारण भारतवर्षमें चले आये। यूरोपीय विद्वानोंने शब्दविद्यानुशीलन द्वारा यह निश्चय किया है कि, हिन्दू, पारसी, ग्रीक आदि तथा प्रधान प्रधान यूरोपीयगण सभी एक आर्यवंशसे उत्पन्न हुए हैं। आर्य शाखाके जितने भी लोगोंने यूरोपखण्डमें प्रवेश किया है, उनमेंसे एक दल यूरोपके पश्चिम प्रान्तमें जा कर रहने लगा, जो केल्ट नामसे प्रसिद्ध है। आधुनिक आइरिस, स्कोट, वेल्स और अमेरिकाके लोग केल्ट जातिसे उत्पन्न हुए हैं। और एक दल उत्तरखण्डमें जा कर रहने लगा, जो अब जर्मनके नामसे प्रसिद्ध है। यह जर्मन जाति दो भागोंमें विभक्त है। एक भागसे नोरवे, सुइडेन और डेनमार्कके

अधित्यासोगण उत्पन्न हुए और दूसरी शाखासे टिउटन जातिकी उत्पत्ति हुई। आधुनिक जर्मन और अंग्रेज आदि जातियां टिउटन शाखासे उत्पन्न हुई हैं और एक दूसरी शाखा केल्टिक नामसे प्रसिद्ध हो कर यूरोपमें उपनिवेश स्थापन किया। इस केल्टिक जातिसे ही स्कटियोंकी उत्पत्ति है। चौथी शाखा स्लाभोनीय नामसे प्रसिद्ध हो कर यूरोपके पूर्वप्रान्तमें रहने लगी है। यह शाखा भी दो भागोंमें विभक्त है—एक भागसे पोल, बोहेमीय आदिकी और दूसरीसे रूस और सरवियोंकी उत्पत्ति हुई। ऊपर कही हुई समस्त जातियोंकी उत्पत्ति एक काकसीय जातिसे है। काकसीय लोगोंका साधारण वर्ण शुभ्र ईषत् लाल,

काकेसीय जाति।

मस्तक और मुखकी आकृति बड़ी सुन्दर अण्डेके समान, ललाट प्रशस्त और नासिका उन्नत होती है। इनका मानसिक ज्ञान और बुद्धि शक्ति अति प्रखर है। अन्यान्य जातिके लोगोंकी अपेक्षा ये बहुत उन्नत हैं।

मोङ्गोलीयगण भी पहले काकेसीय जातिके पास पास ताई पर्वत पर रहते थे। इस जातिके लोग भी अति प्राचीन हैं। तातार, मोङ्गोलिया, एशियामाइनर इत्यादि देशोंके अधिवासीगण मोङ्गोलीय जातिसे उत्पन्न हैं। तुर्की लोग भी इस जातिकी एक शाखासे उत्पन्न हुए हैं। चीन, जापान और उत्तर महासागरके उपकूलके अधिवासीगण भी मोङ्गोलीय जातिके अन्तर्गत हैं। साधारणतः मोङ्गोलीय लोगोंका रंग कभी जलपाई (जइतूनी जैतून) के समान और किसी किसीका रंग प्रायः पीला होता है; इनके बाल काले, सीधे और लम्बे होते हैं तथा दाढ़ी बहुत कम उपजती है। इनकी नाक मोटी छोटी

मोङ्गोलीय जाति।

और चपटी होती। इनका मस्तक आयताकार पार्श्वदेश किंचित् चौरस और ललाट नीचा, चक्षु ईषत् असमान्तराल कोणबद्ध और ओठ मोटे होते हैं। यह जाति अपना अनुकरणप्रियताशील है, परन्तु बुद्धिबलसे कुछ नवीन कार्य करनेकी इनमें क्षमता नहीं। वे अनुकरणमें पूरे पटु। पर नीति मानसे शून्य होते हैं। इस जातिकी भाषाका अनुशीलन करनेसे जाना जा सकता है कि यह जाति भी काकेसीय जातिकी तरह दो शाखाओंमें विभक्त है। एक शाखासे चीनोंकी उत्पत्ति हुई है। चीनोंकी भाषामें विशेषता यह है कि इनके सभी शब्द एकाक्षरिक हैं।

इथियोपीय अर्थात् काफ्रिजाति—अफ्रिकाके सर्वत्र ही इस जातिका वास है; सिर्फ भूमध्यसागरके उपकूल प्रदेशमें इस जातिके लोग कुछ कम दिखाई देते हैं। अफ्रिका महादेशके उत्तर अंचलमें ककेसीय जातिका वास देखनेमें आता है। काफ्रि जातिके लोगोंके वर्ण और चक्षु दोनों ही काले हैं। इनके बाल काले, मस्तकका पार्श्वदेश चपटा और सामना बढ़ा हुआ, ललाट अप्रशस्त और क्रमशः नीचा, कपोल स्फीत और निःसारित, नासिका स्थूल और चपटी, चक्षु कुञ्चित और ओठ अत्यन्त मोटे होते हैं।

काफ्रि जाति।

पहले अफ्रिका इथियोपीय नामसे प्रसिद्ध था, इसीलिए उस स्थानके लोग इथियोपीय कहाते थे। यह जाति निग्रो नामसे भी प्रसिद्ध है। दास-व्यवसायी निग्रो लोगोंकी आकृति और वर्णादिका जैसा वर्णन किया गया है, वैसे निग्रो गिनी प्रदेशके सिवा और किसी जगह नहीं पाये जाते। अफ्रिकाके दक्षिण प्रान्तके निवासी हटेण्टटोंकी आकृति बहुत अंशोंमें चीनोंसे मिलती जुलती है। इनके मुखकी आकृति अत्यन्त कदर्य और शरीर खर्व होता है। उत्तर प्रान्तके एबिसिनियाके काफ्रिगण उतने बलिष्ठ और पिङ्गलवर्णके होते हैं। सिर्फ हटेण्टट प्रदेशके सिवा अफ्रिकामें सब जगह ही भाषाका सादृश्य पाया जाता है। काफ्रियोंकी बुद्धि बहुत मोटी है इनके बनाये हुए किसी प्रकारके अक्षर नहीं, इनका धर्मज्ञान भी अत्यन्त निकृष्ट है। इस जातिके लोग क्रमशः उन्नतिमार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं।

अमेरिक जातियोंकी आवासभूमि पहले अत्यन्त विस्तृत थी। अब उनके अधिकांश स्थान ककेसीय जातिके अधिकारमें आ गये हैं। ये लोग अमेरिकाके आदिम

आदिम अधिवासीके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। इनका रंग ललाईको लिए काला, बाल काले, सीधे और मजबूत तथा थोड़ी और छोटी दाढ़ी भी उपजती है। कपाल-देशकी अस्थि उन्नत, नासिका नुकीली, मस्तक छोटा,

आमेरिक जाति।

अग्रभाग उन्नत, पश्चाद्‌ भाग चपटा, मुख बड़ा और ओष्ठ मोटे होते हैं। इन लोगोंमें शिक्षा-शक्ति बहुत थोड़ी है और न इन्हें समुद्र-यात्राकरनेका साहस ही है। ये लोग प्रतिहिंसापरायण, चञ्चल और युद्धप्रिय होते हैं। कोई कोई इस जातिको दो भागोंमें विभक्त करते हैं। मेक्सिको, पेरुवीय और वसोट-के आमेरिकगण (अपेक्षासे) उन्नत होते हैं। इनमें सब की आकृति एकसी नहीं होती, किन्तु गुण प्रायः एकसे होते हैं तथा भाषा भी एकसी है। इस जातिका क्रमशः क्षय ही होता जाता है।

मलय जाति सुमात्रा, वर्णिओ, जावा, फिलिपाइन आदि द्वीपोंमें वास करती है। इनका शरीर ताम्रवर्ण, बाल काले, पर देखनेमें कदर्य, मुख बड़ा, नासिका स्थूल और छोटी, मुखदेश प्रशस्त और चपटा तथा दांत बड़े बड़े होते हैं। इनका मस्तक ऊंचा और गोल, ललाट

मलय जाति।

नीचा और प्रशस्त है। इनका नैतिकज्ञान अत्यन्त निकृष्ट। ये लोग आमेरिकोंकी तरह आलसी अथवा समुद्रसे डरते नहीं हैं। ये लोग समय समय पर कार्यकालमें अपनी बुद्धिका परिचय दिया करते हैं।

पृथिवी पर प्रायः सर्वत्र ही देखा जाता है कि, प्रत्येक प्रदेश आदिम अधिवासियोंसे शून्य हो कर नये लोगों द्वारा आबाद हुआ है। यूरोपखण्ड पर दृष्टि डालनेसे इसका सम्यक्‌ दृष्टान्त मिल सकता है। यूरोपके प्रत्येक प्रदेशमें केल्ट, जर्मन, लाटिन आदि जातिको शाखाओंके घातप्रतिघातसे एक एक नई जातिका सङ्गठन हुआ है। कोई कोई विद्वान्‌ कहते हैं कि, केल्टजाति पृथिवी पर प्रायः सर्वत्र विस्तृत है। इस जातिने मध्य एशियासे दो शाखाओंमें विभक्त हो कर यूरोपमें प्रवेश किया है। प्रत्यक्ष वा परोक्षभावसे यूरोपको सभी जाति ककेसीय केल्ट शाखासे उत्पन्न हुई हैं। वास्तवमें—पृथिवी पर सर्वत्रही ककेसीय जातिका आधिपत्य देखनेमें आता है। अमेरिकामें वहांके आदिम निवासियोंके साथ ककेसीय जातिके लोगोंका संमिश्रणसे नई नई जातियां उत्पन्न हो रही हैं।

इसी प्रकार युरोपीय और निग्रो जातिके संमिश्रणसे मूलाटो (Mulatto) निग्रो, और आमेरिक जातिके सम्बन्धसे जम्बो (Zamboe) आदि जातियोंकी उत्पत्ति होती है।

पहले ही लिख चुके हैं, कि पाश्चात्य मतसे मनुष्य पांच प्रधान जातियोंमें विभक्त हैं ; उनमेंसे ककेसीयगण श्वेतवर्ण, मोङ्गलीय पीतवर्ण, इथिओपीय कृष्णवर्ण और आमेरिकगण ताम्रवर्ण होते हैं। परन्तु शारीरिक वर्णके के द्वारा सब समय जाति विशेषका निर्वाचन नहीं किया जा सकता। एक जातिके लोग भी भिन्न भिन्न वर्णके हो जा सकते हैं। हिन्दू लोग ककेसीय जातिके अन्तर्गत होने पर भी उनका वर्ण यूरोपियों जैसा सफेद नहीं होता। कृष्णवर्णवाले अधिक उत्ताप सह सकते हैं, इसीलिए निग्रो जातिका वास उष्णप्रधान देशोंमें पाया जाता है। इनका शरीर भी उत्तापको सह कर बना है। कृष्ण और श्वेतवर्णवाला लोगोंके शरीरसंस्थानके विषयमें इतना प्रभेद पाया जाता है कि, एक श्रेणीके लोगोंके चुपकने चमड़े पर ही रक्तके उपकरण मिश्रित रहते हैं और दूसरी श्रेणीवालोंके वह नहीं होते।

भिन्न भिन्न मनुष्यके भिन्न भिन्न प्रकारके केश देखनेमें आते हैं। कोई कोई कहते हैं—केशोंकी जड़में शारीरिक वर्णके उपादान विन्यस्त हैं। निग्रो लोगोंके केश पशमके समान और काले हैं तथा आमेरिकोंके खड़े और लाल रंगके बाल हैं ; इससे मालूम होता है कि, शारीरिक वर्णके साथ भी केशोंका सम्बन्ध रहता है। इसी तरह आंखोंके साथ भी इनका सम्बन्ध है। साधारणतः सुन्दर वर्णवाले लोगोंकी आंखें उज्ज्वल और केश भी सुहावने होते हैं। भिन्न भिन्न जातीय लोगोंके मस्तकको गठन विभिन्न प्रकारको होती है, और इसीलिए उनकी

कुञ्चितकेशमें भी पार्थक्य हुआ करता है। साधारणतः ककेशीय लोगोंका मस्तक प्राय गोल, ललाटदेश मध्य आकार, कपोलकी अस्थियां छोटी और आगेके दांत लम्बे होते हैं। मोङ्गलीय लोगों का मस्तक आयताकार, कपोलकी अस्थियां निःसारित, नासिकाके छिद्र अप्रशस्त और नासिका चिपटी होती है। इथिओपीय जातिके लोगों का मस्तक छोटा और पार्श्वदेश चपटा, ललाट कुछ न्यून कपोलकी अस्थियां कुछ प्रसारित और नासारन्ध्र विस्तृत होते हैं। आमेरिकाके लोग बहुत अंशोंमें मोङ्गलीयसे मिलते हैं सिर्फ उनका कुछ देश गोलाकार और पार्श्वदेश मोङ्गलीयोंकी तरह उतना दबा हुआ नहीं है। मलय जातिके लोगों का तालुदेश उन्नत होता है। मुख और मस्तककी अस्थियोंकी दीर्घताके कारण ही ककेशीय लोगोंमें अन्यान्य जातियोंकी अपेक्षा विद्या, बुद्धि आदिकी उन्नति अधिक है। इस ककेशीय जातिकी भिन्न भिन्न शाखाओंसे उत्पन्न जाति विशेषमें मस्तककी अस्थियोंके तारतम्यके अनुसार बुद्धिवृत्तिमें न्यूनाधिकता पाई जाती है। यूरोपीय जाति-समूहमें मस्तककी अस्थियों का विशेष वैषम्य दृष्टिगोचर होता है।

मानव जाति-विभागके विषयमें यूरोपीय पण्डितोंमें भी मतभेद पाया जाता है। लिवनिज और लैसपिड (Leibnitz and Lacepede) ने मानवजातिको यूरोपीय, आफ्रीकीय, मोङ्गलीय और निग्रो इन चार श्रेणियोंमें विभक्त किया है। लिनियस (Linnæus) ने वर्णके भेदसे श्वेत, पीत, रक्त और कृष्ण, इन चार श्रेणियोंमें मनुष्य जातिको विभक्त किया है। कान्ट (Kant) मानवसमूहको श्वेतवर्ण, ताम्रवर्ण, कृष्णवर्ण, और जलपाईरङ्गका वर्ण, इन चार वर्णोंमें विभक्त करते हैं। ब्लुमेनबक (Blumenbach) मनुष्यजातिके पांच भेद बतलाये हैं—ककेशीय, मोङ्गलीय इथिओपीय, आमेरिक और मलय। बाफून (Buffon) मनुष्य जातिको उत्तर प्रदेशीय तातार प्रदेशीय, दक्षिण एशीय कृष्णवर्णीय यूरोपीय और आमेरिक इन छह श्रेणियोंमें विभक्त करते हैं। मिचाउका कहना है—मनुष्य-जाति ईरान (ककेशीय), तूरान (मोङ्गलीय) आमेरिक, हटेण्टट, निग्रो, पापूय और अष्ट्रेलीय (अष्ट्रेलीय) इन छह श्रेणियोंमें विभक्त है। पिकारिङ्ग (Pickering) ने मानवजातिके ग्यारह भेद किये हैं—श्वेत मोङ्गलीय मलय, भारतीय, निग्रो, इथिओपीय, हबसी पापूय, निग्रिटो अष्ट्रेलीय और हटेण्टट। पिशेल (Peschel) के मतसे मनुष्योंके सात भेद हैं, यथा—(१) अष्ट्रेलीय और तामसलीय, (२) पापूय (३) मोङ्गलीय (४) द्राविड़ीय * (भारतवर्षके पश्चिम प्रान्तमें रहनेवाले अनार्यगण इसी जातिसे उत्पन्न हुए हैं)। (५) हटेण्टट और बुशमैन (६) निग्रो और (७) भूमध्य-सागर प्रदेशीय। यह भूमध्यसागर प्रदेशीय जाति ही हक्सलीके मतसे श्वेतीय जाति है।

जाति—सिन्ध और बम्बईके कराची जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २४ ११ से २४ ३८ उ० और देशा० ६८ १′ से ६८ ३८ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ७४१ वर्गमील और जनसंख्या प्राय ११०५२ है। इसमें ११७ ग्राम लगते हैं, मगर शहर एक भी नहीं है। यहांकी आय एक लाख रुपयेकी है। तालुकका उत्तर-पूर्व अंश उर्वरा है। यहांकी प्रधान उपज धान, बाजरा, तिल्ल जौ और तिलहन है।

जातिकोश (सं० क्ली०) जाति कोषमिव। जातीफल जायफल।

जातिकोशी (सं० स्त्री०) जातिकोषी देखो।

जातिकोष (सं० क्ली०) जातेः कोषमिव। जातीफल, जायफल। इसके गुण—रस, तिक्त, तीक्ष्ण उष्ण, रोचन लघु कटु दीपन, ग्राही और वायुनाशक, मुखकी विरसताका नाशक, मलकारक, कृमि, कास वमि, श्वास और शोषनाशक तथा [illegible]कारक।

* द्राविड़ जातिके लोगोंका मस्तक कुछ चपटा नासिका चौड़ी और प्रशस्त, कुञ्चित केश, ओष्ठाधर स्थूल, मध्यमाङ्ग प्रशस्त और मांसल होता है। इनका चेहरा बहुत चौड़ा होता है। इनकी भिन्न भिन्न शाखाओंकी ऊंचाई लगभग ६१.०१ इंचसे ६५.८२ इंच तक होती है। शरीर स्थूल और अंग प्रत्यङ्ग दृढ़ होते हैं। इनके शरीरका वर्ण श्यामल धूम्रवर्णसे लेकर प्राय और कृष्णवर्ण तक होता है।

जातिकोषो (सं० स्त्री०) जातिकोषमस्या अस्तीति अच्-अर्श आदिभ्यो अच्। पा ५।२।१२७। ततः ङीप्। जातिपत्री.

जातिङ्गा—आसामको एक नदी। यह उत्तर कछार पर्वतसे (हाफलङ्गके पास) निकल कर पश्चिम तथा दक्षिणको बहती हुई वराकमें जा मिली है। दक्षिण तटके साथ साथ आसाम बङ्गाल रेलवे है। इसको पूरी लम्बाई २६ मील है।

जातिच्युत (सं० त्रि०) जो जातसे अलग कर दिया गया हो।

जातिज (सं० क्ली०) जातीफल, जायफल।

जातित्व (सं० पु०) जातीयता, जातिका भाव।

जातिधर्म (सं० पु०) जातीनां धर्मः, ६ तत्। ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका धर्म। (गीता)

महाभारतके शान्तिपर्वमें जातिधर्मका विषय लिखा है। युधिष्ठिरके भीष्मसे जातिधर्मका विषय पूछने पर उन्होंने बतलाया था—क्रोध परित्याग, सत्य वाक्यप्रयोग, उचित रूपसे धनविभाग, क्षमा, अपनी पत्नीमें पुत्रोत्पादन, पवित्रता, अहिंसा, सरलता और भृत्यका भरणपोषण ये नव चारों वर्णोंके साधारण धर्म हैं। ब्राह्मणका धर्म इन्द्रियदमन और वेदाध्ययन है। शान्तस्वभाव ज्ञानवान् ब्राह्मण यदि असत् कार्यका अनुष्ठान छोड़ भले काममें रह कर धनलाभ करे, स्त्री-दारपरि-ग्रह कर उनको अवश्य सन्तान उत्पादन दान और यज्ञा-नुष्ठान करना चाहिये। वह दूसरा कोई काम करे या न करे, वेदाध्ययननिरत और सदाचारसम्पन्न होनेसे हो ब्राह्मण समझा जावेगा।

धनदान, यज्ञानुष्ठान, अध्ययन और प्रजापालन ही क्षत्रियका प्रधान धर्म है। याच्ञा, याजन वा अध्यापन उसके लिये निषिद्ध है। नियत दस्युके वधको उद्यत होना और युद्धस्थलमें पराक्रम दिखलाना क्षत्रियका अवश्य कर्तव्य है। जो यज्ञशील, शास्त्रज्ञानसम्पन्न और समरविजयी रहते हैं। उन्होंको क्षत्रिय कहते हैं। जो क्षत्रिय युद्धसे अक्षत शरीर लौट आता है, वह अधम समझा जाता है। दान, अध्ययन और यज्ञ द्वारा ही वह मङ्गललाभ करते हैं। अतएव धर्मार्थी नरपतिको धनके लिये लड़ना अवश्य चाहिये। उनको ऐसी चेष्टा करना उचित है, जिससे प्रजा अपने अपने धर्ममें रहती हुई शान्त भावसे इसका अनुष्ठान करे। क्षत्रिय दूसरा कोई कार्य करें या न करें, आचारनिष्ठ हो प्रजापालनसे उन्हें चूकना न चाहिये।

दान, अध्ययन, यज्ञानुष्ठान, सदुपाय अवलम्बनपूर्वक धनसञ्चय वाणिज्यादि और पुत्रकी तरह पशुपालन वैश्यका नित्य धर्म है। सिवा इसके दूसरा कोई काम करनेसे वह अधर्ममें लिप्त हो जाता है। भगवान् ब्रह्माने जगत्-को सृष्टि करके ब्राह्मण तथा क्षत्रियको मनुष्य और वैश्य-को पशुको रक्षाका भार सौंपा था। सुतरां पशुपालनसे ही उनको मङ्गललाभ होता है। वैश्य छह गौ तथा एक धेनु-का रक्षक होनेसे दुग्ध, सौ धेनुका रक्षक होनेसे संवत् सरमें एक गोमिथुन, दूसरेका धन ले कर कारवारमें लगानेसे लब्ध धनका सप्तम भाग और कृषिकार्य करनेसे सात हिस्सोंमें एक हिस्सा वेतन स्वरूप लेता है। पशु-पालनमें अनास्था उसको कभी भी दिखलाना न चाहिये। वैश्यके पशुपालनकी इच्छामें कौन हस्तक्षेप कर सकता है।

भगवान् प्र[illegible] [illegible]र्णत्रयका दास [illegible] बनाया है। इसलिए तीनों वर्णों[illegible]को सेवा ही उ[illegible]का सबसे बड़ा धर्म है। इस [illegible] धर्मको पालन [illegible]नसे हो वह परम सुख पाता है। यदि शूद्र धन सञ्चय करे, ब्राह्मण आदि बड़े आदमी [illegible] उसके वशीभूत हो सकते हैं। इसमें उसको पापग्रस्त होना पड़ता है। इसलिए शूद्रके लिए भोगाभिलाषासे [illegible]पया जोड़ना बहुत बुरा है। किन्तु राजाके आदेशसे [illegible]र्मकार्यानुष्ठानके लिए वह दौलत इकट्ठी कर सकता [illegible] है। वर्णत्रय उसका भरण-पोषण तथा छत्र वेष्टन [illegible]ी और शयन, आसन, पादुका चामर वस्त्र आदि देंगे। [illegible] शूद्रका यही धर्मलब्ध धन है। शूद्रका परिचारक [illegible]हीन होनेसे उसका पिण्ड-दान और वृद्ध तथा दुर्ब[illegible] रहनेसे उसको खिलाना पिलाना प्रभुका जरूरी फ[illegible] है। मालिक पर विपद् आने या उसका धन उ[illegible]जाने पर शूद्रको अन्यत्र न जाना चाहिए। ब्राह्मण आ[illegible]तीनों वर्णोंकी भांति शूद्रको यज्ञका अधिकार है, पर [illegible] स्वाहा, वषट् और वैदिक मन्त्रका व्यवहार नहीं [illegible] सकता। सुतरां उसको स्वयं व्रती न हो ब्राह्मणसे य[illegible]नुष्ठान कराना चाहिये। उस यज्ञको दक्षिणा पूर्ण [illegible]त है।

भगवान् मनुने जातिधर्मका विषय इस प्रकार लिखा है—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन दान और प्रतिग्रह, ये ही छह प्रकारका ब्राह्मणोंका जातिधर्म है। क्षत्रियका जातिधर्म प्रजापालन, दान यज्ञ अध्ययन और विषयमें अनासक्ति है। पशुपालन, दान यज्ञ अध्ययन, वाणिज्य कुसीद (सूद) और कृषि वैश्योंका जातिधर्म। इन्हीं तीनों वर्णोंकी शुश्रूषा और अनुसूया करना शूद्रका जातिधर्म है।

जातिपत्र (सं० पु०) जावित्री।

जातिपत्री (सं० स्त्री०) जातेः पत्री ६-तत्। गौरादित्वात् ङीष्। गन्ध द्रव्यविशेष जावित्री जातिफलका त्वक् विशेष। गुण—लघु स्वादु, कटु, उष्ण, रुचिकारक एवं कफ, काम, वमि, श्वास, तृष्णा, कृमि और विष नाशक होता है।

जातिप्रवाद (सं० पु०) जातिविमश्रय, जायफलका पत्ता।

जातिपर्ण (सं० पु०) जावित्री।

जातिपाति (हिं० स्त्री०) जाति वर्ण, आदि।

जाति (ती) फल (सं० क्ली०) जात्याख्यं फलं मध्यपदलो० कर्मधा०। जातीफल, सुगन्ध फलविशेष, जायफल। संस्कृत पर्याय—जातीकोष, फल जाति, फलजाती, कोषक, कोल, जातिकोष शालीनस्य जातीकोष, जाति फल, जातिशस्य, शालूक, मालतीफल मज्जसार, जाति सार, पुट, सुमनःफल।

अंग्रेजीमें इसको नटमेग (Nutmeg) कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम मायरिस्टिका फ्रागान्स (Myristica Fragrans) है। इसके सिवा इसको M Officinalis, M Moschata, M Aromatica आदि भी कहते हैं।

जातिफल या जायफल एक प्रकारके वृक्षका फल है। यह मनोहर वृक्ष हमेशा उत्पन्न श्यामवर्ण, निविड़ पत्रावृत और ३०।४० फुट तक ऊंचा होता है। इस जातिके बहुत तरहके वृक्षोंके फल देखनेमें जातिफलके सम्पूर्ण अनुरूप मालूम पड़ते हैं। किन्तु उनके गुणोंमें जमीन आसमानका भेद है और वे यथार्थमें जायफल जैसे खुशबूदार भी नहीं होते। असली जायफल १२५ से १३५ पूर्व देशा० तक और १०से ७० उत्तर अक्षा० तक इस चतुःसीमाके भीतर उत्पन्न होते हैं। मलक्काम द्वीपपुञ्ज, जिलोलो, सेराम आम्बोयाना तथा निउगिनीका पश्चिमांश आदि कई स्थानोंमें यह वृक्ष जङ्गली तौर पर पाया जाता है। इन द्वीपोंके सिवा और कहीं भी यह वृक्ष नहीं उपजता। परन्तु मनुष्योंने जगह जगह इसके पौधे गाड़े हैं और जायफलके खानेवाले पक्षी भी बहुत दूर जा कर इसके बीज डालते हैं, जिससे अन्यत्र भी इसका प्रसार हो रहा है। जलवायु और मट्टीके उपयोगी होने पर यह वृक्ष अनायासमें बढ़ता है। सिङ्गापुरके समअक्षांशवर्ती सार्जेंट द्वीपमें पहले जायफल पैदा होता था, ओलन्दाजोंने उसकी उन्नतिके लिए १६१२ ई०में सार्जेंटसे बान्दा द्वीपपुञ्जमें इसका बगीचा बनाया। तभीसे आज तक बान्दासे प्रचुर जायफल नानादेशोंको रफ्तनी हो रहे हैं।

ईसाकी १८वीं शताब्दीके अन्तमें अंग्रेजोंने पेनाङ्ग, और सिन्धु एडमाउ द्वीपमें इसकी खूब आबादी की थी; उसके बाद क्रमशः मलय, सिङ्गापुर, पिनाङ्ग और यहांके बेञ्चिन और भारतीय द्वीपपुञ्जमें इसकी खेती होने लगी। कलकत्तेके उद्भिद्विद्याविषयक उद्यानमें भी इसके वृक्ष उत्पन्न हुए हैं। बेङ्कुलेन द्वीपमें अब भी प्रचुर जातिफल उत्पन्न होते हैं। इस समय प्रधानतः बान्दा और बेङ्कुलेन इन दोनों स्थानोंसे अधिकांश जातीफल नाना देशोंको जाते हैं। वर्त्तमान शताब्दीके प्रारम्भमें पिनाङ्ग और सिङ्गापुरमें ही अधिक जायफल उत्पन्न होते थे। बान्दामें भी बहुत जायफल उत्पन्न हुए थे, किन्तु १८६० ई०में वे सब उद्यान एकबारगी नष्ट हो गये। चीन देशमें भी इस समय इसकी आबादी की जा रही है। भारतवर्षके नीलगिरि पर्वत पर और सिंहलमें इसकी खेती हो रही है। बहुतोंको आशा है कि, अंग्रेजी राज्यके भीतर जामैका द्वीपमें ही भविष्यमें प्रचुर जायफल उत्पन्न होने लगेंगे।

जन्मकालमें ये सब वृक्ष नवम वर्षमें पूर्ण अवस्थाको प्राप्त होते हैं, और करीब ७५ वर्ष तक जीवित रहते हैं। पका जायफल देखनेमें अखरोटके समान होता है। इसके ऊपरका छिलका पक कर सूख जाने पर यह बरा

वर हिस्सोंमें फट जाता है। छिलकेको उतारते ही भीतर कोमल पत्तियोंकी भांतिका स्वच्छ टन निकलता है; ताजा हो तो इसका रंग और लाल होता है इसीको जावित्री और जावित्रीके बाद जायफल कहते हैं। इसके ऊपर भी दो आवरण रहते हैं। ऊपरका आवरण चिकना और कठिन, तथा भीतरका पतला और धूसरवर्णका होता है। छिलका फलके भीतर तक गैठ जाता है और इसीलिए फलको काटने पर उसमें मार्बिल जैसे चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। जावित्रीका परिमाण तमाम सूखे फलमें प्रायः एकपञ्चमांश है।

जावित्री और जायफल एक ही पेड़में उत्पन्न होते हैं। ये दोनों वस्तुएं बहुत समयसे एशिया और यूरोपमें आहारके साथ मसालेके काममें लाई जाती हैं: किन्तु आश्चर्यका विषय यह है कि, जहां ये पैदा होती हैं, वहांके लोग इसको ज़रा भी क़दर नहीं करते और न इसे मसालेके काममें ही लाते हैं।

बान्दाद्वीपमें जातिवृक्ष पर वर्षमें तीन बार फल लगते हैं। १म श्रावणके महीनेमें, २य कार्तिक और अगहनमें तथा अन्तिम बार चैत्र मासमें ये फल पक जाते हैं। फिर उसके छिलकेको उतारकर जावित्री निकालकर उसे अलग सुखा लेते हैं। जायफल छिलकेके भीतर दो मास तक लकड़ीके धुएँसे सुखा लेने पड़ते हैं; नहीं तो कीड़े लग कर नष्ट कर देते हैं। बान्दाके लोग पहले कुछ दिनों तक घाममें सुखा कर पीछे धुएँसे सुखाते हैं। जब भीतरसे हलने लगता है, तब उसे तोड़ कर जावित्री निकाल ली जाती है। कभी कभी कीड़ोंसे बचानेके लिए जायफल चूनेके पानीमें डाल दिये जाते हैं। परंतु धुएँसे सुखाये हुए जातिफलही बहुतोंको अच्छे लगते हैं।

जातिफलसे दो प्रकारका तैल बनता है। १म उड़ायी तैल और २य स्थायी तैल। इनमेंसे पहला तैल शुभ्र और जायफलकी अत्यन्त तीव्र सुगन्धियुक्त होता है। दूसरा तैल कठिन, पीताभ और मनोहर गन्धविशिष्ट है। शेषोक्त तैल बेकाम जायफलके चूरेको भाफके तापसे गरम करके और फिर उसे पेर कर निकाला जाता है। शीतल होने पर यह तैल कठिन, दानेदार और पाटलवर्णमें परिणत होता है।

पानीके साथ भुभाने कर जावित्री और जायफल दोनों हीमें सुगन्धित पदार्थ निकाल लिया जाता है। यह पदार्थ तैलवत् और अत्यन्त उड़ायी होता है। इस पदार्थको जावित्री या जायफलका अर्क कह सकते हैं। जावित्रीका अर्क कुछ बीमारीके लिए और जायफलका अर्क स्वच्छ होता है। दोनों तरहके अर्कसाबुन सुगन्धित करनेके काममें आते हैं। इसीलिए विलायती जावित्री और जायफलकी खपत ज्यादा है। पिस् (Piesse) साहबने अपने "आर्ट आफ् परफ्यूमरी" नामके ग्रन्थमें लिखा है कि, इङ्गलैण्ड और स्काटलैण्डमें प्रति वर्ष १,४०,००० पौण्ड (प्रायः २१७५०) मन जायफल खर्च होता है। और सिमोण्ड्स (Simmonds) साहब लिखते हैं कि, १८१० ई०से पहलेके पांच वर्षोंमें प्रतिवर्ष लगभग प्रायः ५,८२,७३६ पौण्ड जायफल सिर्फ इङ्गलैण्ड और स्काटलैण्डमें खर्च हुआ था। यह पहलेकी तौलसे प्रायः चौगुनेसे भी ज्यादा है।

बहुत तरहके विलायती गन्धद्रव्योंमें जायफलका अर्क मिलाया जाता है। थोड़ा मिलानेसे इसके साथ रहिये लभेण्डर बर्गामट आदिकी सुगन्धि और भी मनोरम हो जाती है।

पहले 'बान्दाका साबुन' इस नामका जायफलके स्थायी' तैलसे एक तरहका साबुन बनाया जाता था। अब जायफलके अर्कसे साबुन सुगन्धित करनेकी प्रथा चल जानेके कारण उसको चाल बन्द हो गई है।

बहुतसे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें जातीफलका नामोल्लेख और उसके गुणोंका वर्णन मिलता है। अतएव इस बातका निर्णय करना बहुत ही मुश्किल है कि, भारतवर्षमें किस समयसे जातीफलका व्यवहार चला है। प्रमाण मिला है कि, ईसाकी १६वीं शताब्दीमें अरब देशके वणिक् पूर्वसे जायफल मंगाकर यूरोपको भेजा करते थे। उस समय पारस्य और अरब देशके वैद्य इसके गुण अवगुण जानते थे। हिन्दू वैद्य और मुसलमान हकीम उदरामय आदिके लिए जायफलको अति उत्कृष्ट औषध बताते हैं। हकीमोंके मतसे—जायफल उत्तेजक मादक, पाचक, बलकारक और उपदंशरोगके लिए हितकर है।

यूरोपीय चिकित्सकगण भी अधिकतासे जायफलके अर्क आदि काममें लाने लगे हैं। उनके मतसे—जायफल उत्तेजक, वायुनाशक और सब तरहके उदरामय रोगमें फायदेमन्द है। ज्यादा सेवन करनेसे निद्रा आती है। इसकी खुराक साधारणतः १०से २ ग्रेन तक है। जायफलका भिगोया हुआ पानी देनेसे शान्ति करता है। जातिफलसे तीन प्रकारके द्रव्य औषधके लिए बनते हैं—१ उड़नेवाला तेल, २ अर्क और ३ स्थायी तेल। स्थायी तेल वात, पक्षाघात (लकवा) और अन्यान्य वेदनाओं पर मलहमकी तरह व्यवहृत होता है।

इस देशके वैद्यगण जायफलसे उदरामयको एक दवा बनाते हैं जिसकी तरकीब इस तरह है—एक जायफलमें एक छेद करके उसमें थोड़ासा अफीम (रोगी की अवस्था और उसके अनुसार उसकी मात्रा होती है) भर कर उसीके चूरसे छेदको बन्द कर देना चाहिये। बादमें उस जायफलको थोड़ेसे मैदाकी लोईमें भरकर गरम राखमें भूनना चाहिये। इसके बाद उस जायफल और अफीमको चूर्ण कर रोगीको (उसके अनुसार) खुराक देनी चाहिये। यह धारक और वातनाशक होता है। पानीमें घोंट कर इसको फूली स्थान पर लगा देनेसे आराम पहुंचता है। बच्चोंको उदरामय रोगमें घी और चीनीके साथ जायफल दिया जाता है।

इसके अलावा जावित्री और जायफल दोनों ही रांधने और पान आदिमें मसालेकी तरह खाये जाते हैं।

वैद्यक मतमें जायफलके कषाय, कटु, उष्ण, गन्धदोषनाशक, रक्तातिसार और मेहनिवारक, रुच, दीपन लघु। (राजनि०) रस, तिक्त, तीक्ष्ण, रोचन, ग्राहक, स्वर हितकर, श्लेष्मा, वायु और मुखकी विरसता नाशक तथा मल दौर्गन्ध्य, कृशता, कृमि, कास, वमन, श्वास शोष, पीनस और हृद्रोगनाशक माना गया है। (भावप्र०) यह तृष्णा-शूलको भी नष्ट करता है। (राजव०)

जातिफलत्वक् (सं० स्त्री०) जातीपत्री जावित्री।

जातिफलादिचूर्ण—वैद्यकोक्त एक औषध। इसको प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—जायफल, विड़ङ्ग, चीतेकी जड़ तगरपादुका (तगरपत्री), तालिशपत्र, लालचन्दन, सोंठ, लवङ्ग, कालाजीरा, कपूर हड़, आंवला, कालोमोर्च पीपल, वंशलोचन, दारचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर इनमेंसे प्रत्येकका २ तोला सिद्धिचूर्ण ४० पल और सबके बराबर बराबर चीनी एकत्र करके अच्छी तरह पीटना चाहिये। यह जातिफलादिचूर्ण ग्रहणी, कामाखोर अग्निमान्द्य और प्रतिश्याय (पीनस रोग) आदि रोगोंमें व्यवहृत होता है।

जातिबाधक (सं० त्रि०) जातिबाधक, ६ तत्। प्राचीन नैयायिकोंके मतसे व्याप्तिका भेद। जाति देखो।

जातिब्राह्मण (सं० पु०) जात्या ब्राह्मणः, ३ तत्। तपः स्वाध्यायादि रहित ब्राह्मण। तपस्या वेदाध्ययन और योनि इन ब्राह्मणत्वके कारण तपस्या और वेदाध्ययन रहित ब्राह्मण जाति ब्राह्मण कहे जाते हैं।

"तपः श्रुतं च योनिश्च एतद् ब्राह्मणकारणम्।
तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः।" (शब्दार्थचि०)

जातिभ्रंश (सं० पु०) जातेः भ्रंशः, ६ तत्। जाति भ्रंश जातिका नष्ट होना।

जातिभ्रंशकर (सं० क्ली०) जातिभ्रंशं करोति कृ-ट। नव प्रकारके पापोंमेंसे एक पाप जिसके करनेसे जाति नष्ट हो जाती है। भगवान् मनुके मतसे—ब्राह्मणको पीड़ा देना, अघ्रेय लहसुन, शराब आदि पीना, मित्रके साथ कुटिलताका व्यवहार करना और पुरुषके साथ मैथुन सेवन करना जातिभ्रंशकर है। (मनु ११।६८)

यह पातक ज्ञानकृत होनेसे पर सान्तपन प्रायश्चित्त और अज्ञानकृत होने पर प्राजापत्य प्रायश्चित्त करनेसे शुद्धि होती है। प्रायश्चित्त देखो।

जातिमत् (सं० त्रि०) उच्चपदाभिषिक्त, जिसमें ऊंचा पद पाया हो।

जातिमन्त्र—जैनोंके गर्भाधान संस्कारके होममें पढ़ा जाने वाला एक मन्त्र। यह पीठिकामन्त्रके बाद पढ़ा जाता है और इसकी आहुति देनेके उपरान्त निस्तारकमन्त्र पढ़ा जाता है। जातिमन्त्र, यथा—

"ॐ सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्ये ॥१॥ ॐ अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्ये ॥२॥ ॐ अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्ये ॥३॥ ॐ अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्ये ॥४॥ ॐ अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्ये ॥५॥ ॐ अनुपमजन्मनः शरणं प्रपद्ये

॥ ६ ॥ ॐ रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे ज्ञानमूर्ते ज्ञानमूर्ते सरस्वति स्वाहा ॥८॥

जातिमह (सं० पु०) जन्मोत्सव,

जातिमात्र (सं० क्लो०) जातिरेव, एवार्थे जाति मात्रच्, स्वाध्यायादि हीन, जन्ममात्र।

जाति वचन (सं पु०) जातिज्ञान।

जातिवैर (सं० क्लो०) ६-तत् जात्यास्वभावतो वैरं स्वाभाविक शत्रुता, सहज वैर। महाभारतमें जातिवैर पांच प्रकारका माना गया है—१ स्त्रीकृत, २ वास्तुज, ३ वाग्ज ४ सापत्न और ५ अपराधज।

जातिव्यूहविधान (सं० क्लो०) जातिव्यूहस्य जातिसमूहस्य विधानं, ६ तत्। विभिन्न जातिके मनुष्योंके परस्पर व्यवहार विषयक नियम।

जातिशक्तिवाद (सं० पु०) शब्दका जातिशक्तिसमर्थक विषय। शक्तिवाद देखो।

जातिशब्द (सं० पु०) जातिवाचकः शब्द मध्यपदलो०। प्रकार विषयक, विशेषविषयक, जातिवाचक शब्द जैसे हंस, मृग आदि।

जातिशस्य (सं० क्लो०) जातेः शस्यं, ६-तत्। सुगन्धगन्ध द्रव्यविशेष, जायफल।

जातिसङ्कर (सं० पु०) जात्योः विरुद्धयो परस्पर विरुद्धयः परस्पराभाव समानाधिकरण योः सङ्करः, ६-तत्। वर्णसङ्कर, विभिन्न जातीय माता पितासे उत्पन्न, दोगला। सङ्कर देखो।

जातिसम्पन्न (सं० त्रि०) सद्वंशजात, उच्चवंशका, अच्छे कुलका।

जातिसार (सं० क्लो०) जातेः सारं ६ तत् वा जात्या स्वभावतो सारोऽत्र। जातीफल, जायफल।

जातिसूत (सं०) जायफल।

जातिस्फोट (सं० पु०) वैयाकरणके मतसे प्रसिद्ध आठ प्रकारके स्फोटोंमेंसे एक। स्फोट देखो।

जातिस्मर (सं० पु०) जातिःस्मर्य्यतेऽत्र स्नानादिना स्मृ आधारे, वाहुलकात् अप्। १ तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। इसमें स्नान करनेसे मनुष्य पूर्व जन्मका वृत्तान्त स्मरण कर सकता है।

"ततो ऽन्हृदेऽरण्येकृष्णवेण्वाजलोद्भवे।
जातिस्मरहृदे स्नात्वा भवेज्जातिस्मरोनरः॥" (भा० ३।८५।७०)

जातिं पूर्व्वजन्मवृत्तान्तं स्मरति, स्मृ-अच्। (त्रि०) -२ पूर्वजन्मवृत्तान्तस्मारक, जो पूर्व जन्मकी बात याद करता हो। सर्वदा वेदाभ्यास, शौच, तपस्या और अहिंसा द्वारा पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण होता है।

"वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च।
अद्रोहेण च भूतानां जातिस्मरति पौर्विकीम्॥" (मनु ४।१४८)

जातिस्मरण (सं० क्लो०) पूर्वजन्मका स्मरण होना।

जातिस्मरता (सं० स्त्री०) जातिस्मरस्य भावः तल्, स्त्रियां टाप्। पूर्वजन्मका स्मरण।

जातिस्मरत्व (सं० क्लो०) जातिस्मरस्य भावः भावे त्व। पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंका स्मरण।

जातिस्मरह्रद (सं० पु०) जातिस्मरो नाम ह्रदः। तीर्थ विशेष, एक तीर्थका नाम। जातिस्मर देखो।

जातिस्वभाव (सं० पु०) एक प्रकारका अलङ्कार। इसमें आकृति और गुणोंका वर्णन किया जाता है।

जातिहीन (सं० त्रि०) जात्या हीनः ६ तत्। जातिरहित, नीच जाति।

जाती (सं० स्त्री०) जन क्तिच् ततो ङीप्। १ जातीपुष्प, चमेली। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—सुरभिगन्धा, सुमनस्, सुरप्रिया, चेतकी, सुकुमारा, सन्ध्यापुष्पी, मनोहरा, राजपुत्री, मनोज्ञा, मालती, तैलभाविनी और हृद्यगन्धा। यह पुष्प सब पुष्पोंसे श्रेष्ठ होता है। (उद्भट)

मल्लिका, मालती आदि बहुतसे फूलोंके पेड़ इसके समजातीय हैं। इनमें सबसे श्रेष्ठ जातीपुष्प ही है। इसका पेड गुल्मकी आकृतिका तथा भारतवर्षमें सर्वत्र ही देखनेमें आता है। हिमालयके उत्तरपश्चिमसीमामें दो हजारसे ले कर पांच हजार फुट तक ऊंचाई पर यह पौधा (जङ्गलकी अवस्थामें) उपजता है। ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें इस पौधे पर सफेद रंगके बड़े बड़े, अति सुगन्धि युक्त मनोहर फूल लगते हैं। सूख जाने पर भी इनकी सुगन्धि नहीं जाती, इसलिए लोग उन फूलोंको गन्धद्रव्य बनानेके लिए रख लेते हैं। जाती पुष्पसे एक प्रकारका बहुत बढ़िया अतर बनता है।

ताजे फूलोंके साथ तिल बखेर देनेसे, फूलोंकी सुगन्धि उन तिलोंमें आ जाती है। प्रतिदिन नये नये फूलों द्वारा तिलोंको सुगन्धित करनेसे, उनमेंसे अच्छा चमेलीका तैल निकलता है।

युरोपका स्पानिश जैसमिन (Spanish Jasmine) नामक पुष्प इस जातीपुष्पके समान है, जो फ्रांसमें अधिकतर पैदा होता है। वहां एक परत सूअर या गायकी चरबीके ऊपर लगातार नये नये फूल बखेर कर वह चरबी सुगन्धित की जाती है। इस चरबीके साथ थोड़ी बहुत स्पिरिट मिला कर कुछ दिन रख देनेसे सुगन्धित एसेन्स् बन जाता है। चरबीके बदले एक साफ कपड़े पर तेल पोत कर उसमें फूल बांध देनेसे भी तेल सुगन्धित हो जाता है। कुछ दिन ऐसा करके पीछे निचोड़ देनेसे चमेलीका तेल बन जाता है। मनोहर सुगन्धिके कारण यह फूल युरोप और भारतवर्षमें सर्वत्र ही आदरणीय है।

वैद्यक मतसे—यह शीतल है। इसकी पत्तियोंका रस पीनेसे सब तरहका चर्मरोग, कुष्ठ, कर्णस्राव आदि जाता रहता है। मतस्यदेशीय हकीमोंके मतसे जाती पुष्प रुचिकर, दस्तावर, कृमिनाशक, मूत्रकारक और रजोनिःसारक है। किसीका कहना है कि, इसके फूलका प्रलेप कामोद्दीपक है। कुछ प्रदेशमें इसके फूल तथा तेल चर्मरोग, मस्तकवेदना और इन्द्रियादिके दौर्बल्यमें और पत्ते दन्तशूलमें दिये जाते हैं।

इसकी पत्तियोंको चबानेसे मुखकी सब किस्म फुंसी-के घाव आरोग्य हो जाते हैं। पत्तियोंको घीमें भिगो कर लगानेसे भी उक्तरोग अच्छा हो जाता है। कुष्ठ शरीर पर इसका तेल लगानेसे चमड़ी कोमल और निरापद हो जाती है। इसकी कली नेत्ररोग, व्रण, विस्फोटक और कुष्ठको नष्ट करनेवाली है। (राजनि०)

२ आमलकी, आंवला। ३ मालती। ४ जायफल।
(हिं० पु०) ५ हाथी।

जाती (अ० वि०) १ व्यक्तिगत। २ निजका अपना।

जातीकोष (सं० पु०) जातिफल, जायफल।

जातीकोषी (सं० स्त्री०) जावित्री जायत्री।

जातीपूग (सं० पु०) जातिफल, जायफल।

जातीफल (सं० क्ली०) जात्याख्य फल। जातिफल, जायफल।

जातीफलतैल (सं० क्ली०) जातीफलजन्य तैल, १ तत्। जातिफल रहित जायफलका तेल। इसका गुण—उत्ते-जक, अग्निकारक, शोथातीसार, आध्मान, आक्षेप शूल और आमवातनाशक, मद्य, दन्तवेष्ट, और प्रमेहरोग नाशक है।

जातीपत्री (सं० स्त्री०) आमलकी वृक्ष आंवलाका पेड़।

जातीफलादिवटी (सं० स्त्री०) अजीर्ण वटी एक प्रकार की दवा जिसके खानेसे अजीर्ण रोग जाता है। इसकी प्रस्तुतप्रणाली—जातीफल, लवङ्ग, पिप्पली निर्गुण्डी, धुस्तूर बीज (धतुराका बीज), विद्रुम और विद्रुप चार इन सबोंको बराबर बराबर लेकर कम्बीर नीबूके रसमें गोली बनानी पड़ती है। २ या ३ रत्ती परिमाणकी गोली प्रति दिन सेवन करनेसे अजीर्ण रोग जाता रहता है।

जातीय (सं० त्रि०) जाती भव छ। १ जातिभव, जाति सम्बन्धीय जातीयता, जातिवाला। २ तद्धित प्रत्यय विशेष तद्धितका एक प्रत्यय।

जातीयक (सं० त्रि०) जातीय स्वार्थे कन्। जातीय, जाति वाला।

जातीयता (सं० स्त्री०) जातित्व जातिका भाव।

जातीरस (सं० पु०) जात्या रस इव रसो यस्य। बोल नामक गन्ध द्रव्य।

जातु (अव्यय) जन् तुन् पृषोदरात् साधु। १ कदाचित्। २ सम्भावनार्थ। ३ निन्दार्थ।

जातुक (सं० क्ली०) जातु गर्हितं निन्दितं कं जलं यस्मात्। हिङ्गु, हिंग।

जातुकर्णिका (सं० स्त्री०) गान्ध जातीय वृक्ष भेद, गान्ध जातिके एक वृक्षका नाम।

जातुकर्णी (सं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पेड़।

जातुज (सं० पु०) जातु-जन् ड। गर्भिणीका अभिलाष गर्भवती स्त्रीकी इच्छा।

जातुधान (सं० पु०) धीयते अधिधीयते इति धान अधिम् जातमस्य जातुगर्हितं धानमपि धानमस्य वा। राक्षस, निशाचर, असुर।

जातुष (सं० त्रि०) जतुनो विकार इति अण् षुकच। जतु निर्मित, लाहका बना हुआ।

जातू (सं० स्त्री०) जान् तुदति हिनस्ति तुदं क्विप् पृषो-दरा दीर्घः। वज्र।

जातूकर्ण (सं० पु०) ऋषिभेद, उपस्मृति बनानेवालोंमेंसे एक ऋषिका नाम। हरिवंशके अनुसार इनका जन्म अट्ठाइसवें द्वापरमें हुआ था।

जातूकर्णी (सं० पु०) महाकवि भवभूतिके पिताका नाम।

जातूकर्ण्य (सं० पु० स्त्री०) जातूकर्णस्य अपत्यं पुमान् अपत्ये यञ्। जातूकर्णके अपत्य, जातूकर्ण ऋषिके वंशज।

जातूभर्म्म (सं० त्रि०) जातूरूपं भर्म्म आयुधं यस्य बहुव्री०। १ अशनि रूप अस्त्र, वज्रका बना हुआ हथियार। २ जात प्रजाका भर्त्ता, सृष्टिके पालन करनेवाला।

जातूष्ठिर (सं० त्रि०) जातु कदाचित् स्थिरः सस्य यत्वं दीर्घश्च। सर्वदा अस्थिर, चंचल।

जातेष्टि (सं० स्त्री०) जाते पुत्रजनने इष्टिः, ६-तत्। वह तत्याग जो पुत्रके उत्पन्न होने पर किया जाता है, जातकर्म। जातकर्म देखो।

जातेष्टिन्याय (सं० पु०) जैमिनि प्रदर्शित पितृक्षत यज्ञ द्वारा पुत्रगत फलसूचक नैमित्तिक रूप न्याय। न्याय देखो

जातोक्ष (सं० पु०) जातः प्राप्तदस्यावस्थः उक्षा टच् समा०। अचतुरेत्यादि पा। ५।४।७७। इति निपातनात् साधुः। युवा हुए, वह बैल जो छोटी अवस्थामें वधिया कर दिया गया हो।

जात्य (सं० त्रि०) जातौ भवः इति यत्। १ कुलीन, उत्तम कुलमें उत्पन्न। २ श्रेष्ठ। ३ सुन्दर, जो देखनेमें बहुत अच्छा हो। ४ कान्त। ५ त्रिकोण, जिसमें तीन कोने हों।

जात्यत्रिभुज (सं० पु०) वह त्रिभुज-क्षेत्र जिसमें एक कोण समकोण हो। (Right-angled Triangle.)

जात्यन्ध (सं० त्रि०) जात्याजन्मना अन्धः। जन्मान्ध, जन्मका अन्धा।

जात्यासन (सं० क्लो०) जात्यं जातिस्मारकं आसनं। योगाङ्ग आसनविशेष, तान्त्रिकोंका एक आसन। जिसमें हाथ और पैर जमीन पर रख कर गमनागमन किया जाता है, उसीको जात्यासन कहते हैं। इस जात्यासनके सिद्ध हो जानेसे पूर्वजन्मकी सब बातें स्मरण हो आती हैं।

जात्युत्तर (सं० क्लो०) जात्या व्याप्तिविधुरसाधर्म्यवैधर्म्यादिना उत्तरं। न्यायकथित असदुत्तरविशेष, न्यायमें वह दूषित उत्तर जिसमें व्याप्ति स्थिर न हो। यह अठारह प्रकारका माना गया है। जाति देखो।

जादयुग्पल (सं० क्लो०) श्वेतरक्तकमल, सफेद रंग लिये लालकमल।

जादर—बम्बई प्रेसोडेन्सीके अन्तर्गत बेलगांव जिलेकी एक जाति। ये लोग पाठशालो सोमेश्वर, कुरिनवार और हिलकर इन चार शाखाओंमें विभक्त हैं। इन शाखाओंमें परस्पर विवाह आदि सम्बन्ध नहीं होते और न ये गुरुके समक्ष वा मठके सिवा अन्यत्र कहीं एकत्र भोजन आदि ही करते हैं। ये लोग साफ-सुथरे, परिश्रमी, सरल, न्यायपरायण, मितव्ययी, शान्तप्रकृतिके तथा आतिथेय होते हैं। कपड़ा बुनना ही इनका प्रधान कार्य वा उपजीविका है। इसके सिवा ये लोग कपड़ाका रोजगार और गाय, भैंस, घोड़ों आदिके चरानेका काम भी करते हैं। इन लोगोंको स्त्रियां वयन-कार्यमें विशेष सहायता पहुंचाती हैं; इसलिए बहुतसे लोग गृहकार्यके सुभीतेके लिए एकसे अधिक व्याह भी कर लेते हैं। लड़कियोंके विवाहके लिए इनमें कोई निर्दिष्ट समय नहीं है। बहुतोंका यौवन अवस्थामें भी विवाह होता है। वरको कभी कभी रुपये दे कर विवाह करना पड़ता है। इनमें विधवाओंका भी विवाह होता है। विधवाके विवाहके समय कन्याका पिता पहली बारमें दूने रुपये लेता है। विधवाके पहली बारके बाल-बच्चे अपने चचा-ताऊ आदिकी देख रेखमें रहते हैं। इनकी बोल-चालकी भाषा कनाड़ी है।

ये हिन्दूधर्मको मानते हैं; जिनमें कुछ शैव हैं और बाकीके सब वैष्णव हैं। शैवगण मृतदेहको गाड़ देते हैं। किन्तु वैष्णव लोग उसे जलाते हैं। जादरोंके पुरोहित जङ्गम हैं। जंगम देखो। किसी जादरीके मरने पर जङ्गम पुरोहित आ कर उसके मस्तक पर पैर रखता है। इसके बाद पुरोहितके पैरका धोवन उसके मुंहमें डाला जाता है। पीछे उस मुर्देको एक लकड़ीके सन्दूकमें रखते और बाजा बजाते हुए उसे गाड़ आते हैं। इनमें नई प्रथा है, जो भारतवर्षमें और कहीं भी नहीं पाई

जानकी-जानि (सं० पु०) वह जिसकी स्त्री जानकी हैं, रामचन्द्र।

जानकी जीवन (सं० पु०) श्रीरामचन्द्र।

जानकीतीर्थ—अयोध्या नगरके सन्निकट सरयू नदीका एक घाट। यह धर्महरिके ईशान कोणमें पड़ता है और भारतीयोंका एक तीर्थ है। श्रावण मासके शुक्ल पक्षमें वहां स्नान, दान, पूजा और ब्राह्मण भोजन आदि करानेसे अक्षय पुण्यसञ्चय होता है।

जानकीदास—अखण्डबोध नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता।

जानकीदास कायस्थ—हिन्दीके एक कवि। ये लगभग १८१२ ई०में दतिया नरेश महाराज परीक्षितके यहां रहते थे। इन्होंने नामबत्तीसी नामक एक पुस्तक तथा फुटकर कविताएं लिखी थीं।

जानकीनन्दन कवीन्द्र—हंसदर्पण नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। ये रामनन्दनके पुत्र और गोपालके पौत्र थे।

जानकीनाथ (सं० पु०) जानकीके स्वामी, श्रीराम।

जानकीनाथ भट्टाचार्य चूड़ामणि—न्यायसिद्धान्तमञ्जरी नामक न्याय ग्रन्थके रचयिता। ये बंगाली थे।

जानकीप्रसाद कवि—बनारसके एक हिन्दी कवि। इनका जन्म १८१४ ई०में हुआ था। आपने केशवदास-प्रणीत रामचन्द्रिका नामक ग्रन्थको टीका और हिन्दी भाषामें सूक्ति-रामायण और रामभक्तिप्रकाशिका ये दो ग्रन्थ रचे हैं। इनकी बनाई हुई एक कविता नीचे उद्धृत की जाती है—

"कुंडलित सुण्ड गण्ड भुण्डत मलिन्द वृन्द
बन्दन बिराजै मुण्ड अदभुत गतिको।
बाल ससि भाल तीनि लोचन विशाल राजै
फनि गन माल सुभ सदन सुमतिको॥
ध्यावत बिना ही श्रम लावत न बार नर
पावत अपार भार मोद धनपतिको।
पापतरु कन्दनको विघन निकन्दको
आठौ जाम बन्दन करत गनपतिनको।"

२ राय-बरेली जिलेके रहनेवाले एक हिन्दीके प्रसिद्ध कवि। ये पण्डित ठाकुरप्रसाद त्रिपाठीके पुत्र थे। १८८३ ई०में ये जीवित थे। फारसी और संस्कृत, दोनों भाषामें इनकी विलक्षण व्युत्पत्ति थी। इन्होंने उर्दूमें शाहनामा नामक हिन्दुस्तानका एक इतिहास लिखा है। इसके अलावा आपने हिन्दीभाषामें रघुवीरध्यानावली, रामनवरतन, भगवतीविनय, रामनिवास-रामायण, रामानन्दविहार और नीतिविलास, इन कई एक ग्रन्थोंकी रचना की है। इनकी रचना अति विशद और अच्छी है। उदाहरणार्थ एक छन्द उद्धृत करते हैं—

"धीर बली सरदार जहा तहं जीति बिजै नित नूतन छाजै।
दुर्ग कठोर सुठौर जहां तहं भूपति संग सो नाहर गाजै॥
पालै प्रजाहि महीपै जहां तहं सम्पति श्रीपति धामसी राजै।
है चतुरंग चमू असवार पंवार तहा छिति छत्र बिराजै॥"

३ नर्मदा-माहात्म्य और शृङ्गारतिलक नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता।

जानकीमङ्गल (सं० पु०) गोस्वामी तुलसीदासकृत एक ग्रन्थ। इसमें श्रीरामजानकीके विवाहका वर्णन है।

जानकीरमण (सं० पु०) श्रीरामचन्द्र।

जानकी रसिकशरण—१ रसिकसुबोधिनी नामक भक्तमालकी एक टीकाके रचयिता। ये लगभग १६६२ ई०में विद्यमान थे।

२ हिन्दीके एक उत्कृष्ट कवि। आप लगभग १७०३ ई०में विद्यमान थे। आपने 'अवधसागर' नामक एक बड़ा ग्रन्थ रचा है, जिसमें श्रीरामचन्द्रका यश गाया गया है, उदाहरणार्थ एक कविता उद्धृत की जाती है—

"रथ पर राजत रघुबर राम।
क्रीट मुकुट सिर धनुष बान कर शोभा कोटिन काम।
श्याम गात केसरिया बानो, सिर पर मौर ललाम।
बैजन्ती बनमाल लसै उर, पदिक मध्य अभिराम॥
मुख मयंक सरसीरुहलोचन हैं सबके सुख धाम।
कुटिल अलक अतरनमें भीनी, दुहुं दिसि छूटी श्याम॥
कम्बु कंठ मोतिनकी माला, किंकिनि कटि दुति दाम।
रस माला यह रूप रसिक बर कहुं हिये अभिराम॥"

जानगीर—मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलेकी पूर्व तहसील। यह अक्षा० २१° २७´ तथा २२° ५०´ उ० और देशा० ८२° १८´ एवं ८३° ४०´ पूर्वके मध्य बसा है। क्षेत्रफल ३०३९ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ४५१०२४ है। सदर जानगीर गांवमें कोई २२५७ आदमी रहते हैं।

इसमें १३३१ गांव है। मालगुजारी प्रायः १ लाख ३९ हजार है। यहां जङ्गल और पहाड़ बहुत है।

जानजी—आसाम प्रान्तके शिवसागर जिलेकी एक नदी। झांजी देखो।

जानजी निम्बालकर—करमोलाके एक महाराष्ट्र शासनकर्त्ता। इन्होंने निजामकी तरफसे फरासिसियोंके साथ युद्ध किया था। इनके पिताका नाम आरमाजी बाबाजी, इन्होंने करमाला नगर स्थापन किया था और वहां एक दुर्ग बनवाना आरम्भ किया था, किन्तु वे पूरा न कर सके थे। जानजीने उस दुर्गको पूरा बनवा दिया था। वह दुर्ग अभी तक मौजूद है।

जानजो भोंसले—बरारके एक महाराष्ट्र शासनकर्त्ता। इनके पिताका नाम था रघुजी भोंसले जिनको 'सेना-साहब सूबा' उपाधि थी। १७५५ ई०में रघुजी भोंसलेने पिताके सिंहासन पर आरोहण किया। फिर वे पेशवाके जरिये पितृपद पर प्रतिष्ठित होनेके अभिप्रायसे पूना गये। उन्होंने पेशवाको मराठा राज्यके बन्दोबस्तके लिए वार्षिक ८ लाख रुपये देने और महाराष्ट्र-राज्यकी रक्षाके लिए १० हजार अश्वारोहियोंसे सहायता करने का वचन दिया। इसके बाद पेशवाने जानजीको 'सेना साहब सूबा'की उपाधि दे कर यथारीति अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। इसके पहले १७५१ ई०में जानजीने पेशवाओंके साथ यह सन्धि कर ली थी कि, महाराष्ट्रोंको चढ़ाईके राजकरमेंसे एक निर्दिष्ट अंश मिलेगा। पेशवा बालाजीरावने इस सन्धिका अनुमोदन किया था।

१७६३ ई०में जानजीकी प्रतारणासे गोदावरीतीरस्थ युद्धमें निजामको पराजित हो जानेके कारण जानजीके लिए बहुतसा स्थान छोड़ देना पड़ा था। परन्तु १७६६ ई०में निजामने पेशवाके साथ मिल कर उसका ३ अंश पुनः अधिकार कर लिया था।

१७६८ ई०में पेशवा माधवरावने रघुनाथरावको सहायता पहुंचानेके अपराधमें जानजीको दण्ड देनेके अभिप्रायसे यात्रा की। पेशवाके बरारकी तरफ अग्रसर होने पर जानजी पश्चिमकी तरफसे लूटते लूटते पूनाकी तरफ बढ़ने लगे। पूनामें उपस्थित होने पर अधिवासियोंने जानजीको समस्त अर्थ सम्पत्ति भेंट दी। इसके बाद माधवरावने जब निजामकी सहायतासे जानजीको पराजित कर दिया, तब उनको सन्धिको प्रार्थना करनी पड़ी। सन्धिके अनुसार उन्हें प्रतारणासे प्राय समस्त राज्य को लौटा देना पड़ा। पीछे ये पेशवाको अधीनतामें पूनाके राज-प्रतिनिधि नियुक्त हुए। १७७२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

जानदार (फा० वि०) सजीव, जिसमें जान हो।

जानना (हि० क्रि०) १ ज्ञान प्राप्त करना अभिज्ञ होना, वाकिफ होना। २ सूचना पाना, अवगत होना, पता पाना। ३ अनुमान करना, सोचना।

जानन्तपि (सं० पु०) जनन्तपके अपत्यकी उपाधि।

जानन्ति (सं० पु०) सत्यदियोंमें तपःशील ऋषि।

जानपद (सं० पु०) १ जनपद सम्बन्धी वस्तु। २ देशस्थ जनपदके निवासी, लोक, मनुष्य। ३ देश। ४ कर, मालगुजारी। ५ मिताक्षराके मतसे लेख या दस्तावेजके दो भेदोंमेंसे एक। इसमें प्रजावर्गके परस्पर व्यवहार सम्बन्धीय लेख रहता है। यह दो प्रकारका होता है—एक अपने हाथसे लिखा हुआ और दूसरा अन्य व्यक्तिके हाथका लिखा हुआ।

जानपदिक (सं० त्रि०) जनपद सम्बन्धी।

जानपदी (सं० स्त्री०) जनपदस्य इयं, जनपद-अण् ङीप्। १ वृत्ति। २ अप्सराविशेष, एक अप्सराका नाम। देवराज इन्द्र गौतम शरद्वान्‌की कठोर तपस्यासे भयभीत हो गये थे, इसलिए उन्होंने उनका तप भङ्ग करनेके लिये इसी अप्सराको भेजा था। जानपदीको देख शरद्वान्‌ने मोहित हो कर जो शुक्रपात किया उससे कृप और कृपीकी उत्पत्ति हुई। (महाभारत आदि पर्व) कृप देखो।

जानमाम (फा० पु०) बकसठेर, मार्टिवर।

जानमाज (फा० पु०) मुसलमानोंके नमाज पढ़नेका एक छोटा कालीन, नमाज पढ़नेका फर्श।

जानराज्य (सं० क्ली०) राजत्व, आधिपत्य अधिकार।

जानराय (हि० पु०) अत्यन्त ज्ञानी पुरुष सुजान।

जानराय साधू—हिन्दीके एक कवि।

जानवर (फा० पु०) १ प्राणी, जीव। २ पशु, जंतु, हैवान। (वि०) ३ मूर्ख, जड़।

जानवादिक (सं० त्रि०) जनवादे भवः जनवादस्य इदं वा, जनवाद-ठक् । जनवाद सम्बन्धीय कथा इत्यादि ।

जान विहारीलाल—विज्ञान-विभाकर नामक हिन्दी नाटकके प्रणेता।

जानशीन (फा० पु०) १ वह जो दूसरेको स्थानापन्न, उसके स्थान, पद या अधिकार पर हो। २ उत्तराधिकारी ।

जानश्रुति (सं० पु०) जनश्रुतेः ऋषेरपत्यं इति ढक् । जनश्रुति ऋषिके पुत्र ।

जानश्रुतेय (सं० पु०) जनश्रुतेः ऋषेरपत्यं इति ढक्। जनश्रुतिके पुत्र औपवि नामक राजर्षि ।

(शत० ब्रा० ५।१।१।५)

जानसथ—१ युक्तप्रदेशके मुजफ्फर नगर जिलेकी दक्षिण-पूर्व तहसील। यह अक्षा० २९° १०' एवं २९° ३६' उ० और देशा० ७७° ३६' तथा ७८° ६' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ४५१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २१६४११ है। इस तहसीलमें ४ नगर और २४४ ग्राम प्रतिष्ठित हैं। मालगुजारी लगभग ३६०१००) और सेस ४७०००) रु० है। पूर्व सीमा पर गङ्गा नदी प्रवाहित है।

२ युक्तप्रदेशके मुजफ्फर नगर जिलेमें जानसथ तहसीलका सदर। यह अक्षा० २९° १९' उ० और देशा० ७७° ५१' पू०में पड़ता है। जनसंख्या प्रायः ६५०७ है। १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जानसथ सैयद यहां रहते थे। १७३७ ई०में वजीर कमर उद्‌दीनकी आज्ञासे रोहीलोंने जानसथ लूटमारा और सैयदोंको मार डाला या निकाल बाहर किया। इनके वंशधर अब भी इसी जिलेमें रहते हैं। १८५६ ई०की २० धाराके अनुसार इस नगरका प्रबन्ध होता है। हालमें सड़कें और मोरियां पक्की करके नगरकी बड़ी उन्नति की गई है।

जानसाहब—इनका प्रकृत नाम मि० जन खृष्टियन (Mr. John Christian) है। इन्होंने हिन्दी भाषामें कई एक ईसाई गीत रचे हैं। त्रिहुत जिलेमें आजकल भी उनके गीत गाये जाते हैं। वे मुक्तिमुक्तावली नामक छन्दोबन्धमें ईसाकी सुन्दर जीवनी लिख गये हैं।

जाना (हिं० क्रि०) १ प्रस्थान करना, गमन करना। २ अलग होना, दूर होना। ३ अधिकारसे जाना, हानि होना। ४ नष्ट करना, खोना। ५ व्यतीत होना, गुजरना। ६ सत्यानाश होना, बिगड़ना, बरबाद होना। ७ मृत्युको प्राप्त होना, मरना। ८ बहना, जारी होना।

जानायन (सं० पु० स्त्री०) जनस्य तन्नामकर्षेर्गोत्रापत्यं अश्वादित्वात् फञ् । जन नामक ऋषिके वंशज।

जानार्दन (सं०-पु०) जनार्दनके वंशज।

जानि (सं० स्त्री०) भार्य्या, स्त्री।

जानिब (अ० स्त्री०) ओर, तरफ, दिशा।

जानिबदार (फा० वि०) पक्षपाती, तरफदार।

जानिबदारी (फा० स्त्री०) पक्षपात, तरफदारी ।

जानी (फा० वि०) जानसे सम्बन्ध रखनेवाला।

जानु (सं० क्ली०) जायते इति जन-ञुण् । ऊरुसन्धि, जांघ और पिण्डलीके मध्यका भाग, घुटना। इसके पर्याय-ऊरुपर्व, अष्ठीवत्, अष्ठीवान् और चक्रिका।

जानु (फा० पु०) जांघ, रान।

जानुकारक (सं० पु०) सूर्यके पार्श्वगामीका नाम।

जानुजङ्घ (सं० पु०) नृपभेद, एक राजाका नाम।

जानुपाणि (सं० क्रि०-वि०) घुटनों और हाथोंके बल, बैयां पैयां।

जानुप्रहृतिक (सं० क्ली०) जानुना प्रहृतं प्रहारस्तेन निर्वृत्तं अक्षद्यूतादित्वात् ठक् । मल्लयुद्धविशेष, वह मल्लयुद्ध जिसमें घुटनोंसे विशेष काम लिया जाता हो।

जानुवां (हिं० पु०) हाथीके अगले और पीछले पैरोंमें होनेवाला एक प्रकारका रोग।

जानुविजानु (सं० क्ली०) खड्ग युद्धका प्रकारभेद, तलवारके ३२ हाथोंमेंसे एक। भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, प्रविद्ध, वहुनिःसृत, आकर, विकर, भिन्न, निर्मर्य्याद, अमानुष, सङ्कुचित, कुलचित, सव्य, जानु, विजानु, आहित, चित्रक छिन्न, कुद्रव, लवण, घृत सर्ववाहु, विनिर्बाहु, सव्येतर, उत्तर, त्रिबाहु, उत्तुङ्गवाहु, सव्योन्नत, उदासि, योधिक, पृष्ठप्रथित और प्रथित ये ३२ प्रकारके खड्गयुद्ध हैं।

जानुहित (सं० त्रि०) जनैः हितं परिकल्पितं पृषोदरादित्वात् साधुः। जनपरिकल्पित।

जानू (फा० पु०) जङ्घा, जांघ।

जान्य (सं० पु०) ऋषिविशेष एक ऋषिका नाम।

जाप (स॰ पु॰) जप भाव वा जपे सम्बोधार्थे कर्मणि अप् घञ्। १ एक मन्त्रजपादि मन्त्रको विधिपूर्वक आवृत्ति। २ मन्त्रजपकर्त्ता, जप करनेवाला। ३ जापानके अधिवासी। जपाय देखो।

१ जापक (सं॰ त्रि॰) जपति जप-ण्वुल्। जपकर्त्ता जपनेवाला। (त्रि॰) २ जपभव जप सम्बन्धी।

जापन (सं॰ क्ली॰) जप स्वार्थे णिच् भावे ल्युट्। निरसन, निराकरण परिहार। २ निवर्त्तन। ३ जप।

जापमो— आसाम प्रान्तका सर्वोच्च पर्वत। यह अक्षा॰ २५ ३६´ उ॰ और देशा॰ ८४ ४´ पू॰में कोहिमासे थोड़ी दूर दक्षिणको अवस्थित है। इसकी ऊंचाई ९८९० फुट है।

जापान—एसिया महाद्वीपका एक विस्तीर्ण राज्य वा राष्ट्रमण्डल। एसिया महाद्वीपने मानो प्रशान्त महासागर की ओर दोनों हाथ पसार दिये हैं—एकका नाम है कामस्कटका जो उत्तरकी तरफ है और दूसरेका नाम है मलका जो दक्षिणको ओर है। इन दोनोंके बीचमें जितने भी द्वीप हैं उन सबको मिला कर जापान-साम्राज्य संगठित हुआ है। यह अक्षा॰ ५० ५६ उ॰ और देशा॰ १२६ ३२ पू॰में अवस्थित है।

जापान' शब्द चीन देशके एक अद्भुत शब्दका अपभ्रंश रूप है। इसका असली रूप "निफन" है जिसका अर्थ है उदीयमान सूर्यका देश। यह शब्द एसियाके पूर्वस्थ समुद्रोपवर्ती स्थानों का नामरूप व्यवहृत होता है।

जापानी लोग जापानके आदिम अधिवासी नहीं हैं वे इस जगह ताम्रयुगके अन्तमें वा लौह-युगके प्रारम्भमें आये थे। प्रत्नतत्त्वविदोंको इस बातके प्रकट प्रमाण मिल चुके हैं कि जापानमें सबसे पहले 'ऐनुस' नामक जातिका वास था। किसी किसीका अनुमान है कि वे मङ्गोलीय जातिके थे किन्तु यूरोपीय विद्वान् उन्हें ककेशीय जातिके बतलाते हैं। वर्त्तमानमें ऐनुस जातिके १७०० मनुष्य एजो द्वीपमें वास कर रहे हैं। ये जापानियोंको अपेक्षा मजबूत हैं।

जापानियोंके जातितत्त्व और उत्पत्तिके विषयमें अपार मतभेद पाया जाता है। यह निश्चित है कि कोरिय और मङ्गोलिया जातिके साथ संमिश्र किसी वा उनसे जिनमें धातु-निर्मित अस्त्रादिका व्यवहार करना सीखा था, कोरियाके भीतरसे क्रमशः जापान जय किया था। सम्भवतः इस विजयियोंमें 'ऐनुस' जातिका रक्त और मध्य जातिका वैशिष्ट्य विद्यमान है।

जापानमें १८९० ई॰में १ अक्टूबरको सबसे पहले मर्दुमशुमारी हुई थी जिसमें नीचे लिखे अनुसार संख्या पाई गई थी—

स्थान	आबादी	पुरुष	स्त्री
जापान (प्रकृत)	११२२२०५१	२८०१२८८१	२०८१८२४५
फर्मोसा	४८००००	१८८४१०१	१०६०२५०
बाराफूतो	२२०८०	६०२३१	११११२८
कोरिया	११८०२२८	८८२१०६०	८३६११०५

इससे मालूम होता है कि पृथिवीमें जनसंख्याके विषय जापानने ६ठा स्थान अधिकार किया है। जापान से क्रमशः चीन, भारत रूसिया युनाइटेड और अमेरिकामें अधिक जनसंख्या है। जापानमें १०० ३ पुरुष पीछे १०० स्त्रियां हैं।

जापानका उत्तरांश समतल तो है परन्तु समुद्रके पासकी ज़मीन पथरीली हो गई है। यद्यपि जापानमें बड़े बड़े पर्वत नज़र नहीं आते तथापि छोटे मोटे पहाड़ यहां बहुत हैं। खूब छोटे छोटे पहाड़ोंके प्रायः उपरिभाग तक खेती की जाती है और जहां खेती नहीं होती वह ज़मीन अनुर्वर समझ कर छोड़ दी जाती है। तोमिया उपसागरसे थोड़ी दूर फुदजी नामका एक ऊंचा पर्वतशृङ्ग है। निफनद्वीपके उत्तर अंशमें पहाड़ोंकी लड़ी बंध गई है। जापानमें बहुतसे आग्नेयगिरि हैं। बहुतोंसे आग भी निकला करती है।

जापानके भूभाग पर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि वहां कोई बड़ी नदी नहीं है। परन्तु कुछ जापानी नदियां इतने वेगसे बहती हैं कि उन पर पुल नहीं बन सकते। शिदोगोया नदी सबसे बड़ी है। यह निफन द्वीपके मध्य योशितिन झीलसे निकली है जिसकी लम्बाई ८० मील है। इसमें सब जगह नाव चल सकती है। बोजिमगामा तथा और थापाकामागा ये नदियां भी छोटी नहीं हैं।

जापानके दक्षिण भागमें कभी कभी वर्फ गिरती है। परन्तु शीघ्र ही वह गल जाती है। थोड़ा जाड़ा पड़नेसे तापमानयन्त्रका पारा ३५° डिग्री नीचे उतरता है और ग्रीष्मकालमें ८८° डिग्री ऊपर चढ़ जाता है। यहां गर्मीकी शिद्दत ज्यादा नहीं रहती; क्योंकि दिनमें दक्षिणी और रातमें पूर्वी हवा चला करती है। जापानकी ऋतु अत्यन्त परिवर्तनशील है। बारहो महीने पानी बरसा करता है। वर्षा ऋतुमें अत्यधिक वर्षा होती है और साथ ही खूब आंधी चलती है।

जापान-साम्राज्यके निकटस्थ समुद्रमें जैसा जलस्तम्भ होता है वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं होता। भूमिकम्प और वज्रपतन तो वहांकी दैनिक-घटना है जापानमें ऐसा कोई भी महीना नहीं जाता, जिसमें भूकम्प न होता हो। भूकम्प अपेक्षाकृत अधिक समय तक ठहरता है और बहुत अनिष्ट करता है। जमीन हिलनेसे आलोक-मञ्च तक गिर पड़ता है। इसलिए वैज्ञानिक उपायसे आलोकमञ्च इस प्रकार लगाया जाता है कि सब कुछ हिलने पर भी वह ज्योंका त्यों बना रहता है। जापानियोंको भूकम्पके जोरसे शरीरके सम्हालनेकी तरकीब बाध्य हो कर सीखनी पड़ती है कारण उसमें चोट लगनेका डर रहता है। पहली हिलोरमें ही घरसे बाहर निकल आते हैं। यदि उस समय किसी खास सबबसे ऐसा न कर सकें, तो छोटे छोटे बच्चोंके सिवा नौजवान और बुड्ढे लोग एक एक वालिदा मस्तक पर रख धीरे धीरे पासके शून्य स्थानमें पहुंचते हैं और उसे जमीन पर पटक कर उसके बीचमें बैठ जाते हैं। पहले जापानियोंका विश्वास था कि पृथिवीके नीचे कोई बड़ी तिमि है। उसके हिलते ही जमीन हिलने लगती है और जहां वैसा नहीं होता, वहां देवताओंका विशेष अनुग्रह है।

जापानमें आग्नेयगिरियोंकी संख्या अधिक होनेके कारण ही जल्दी जल्दी भूकम्प हुआ करता है। सिकुफिन शहरमें पहले कोयलेकी एक खान थी। कर्मचारियोंकी असावधानीसे एक दिन अचानक उसमें आग लग गई। उस दिनसे बराबर उसमें आग भभका करती है। 'फिसी' नामक पर्वतसे दुर्गन्धमय काला धुआं निकलता है। 'उनसेन' पहाड़ भी सर्वदा धूआं छोड़ता रहता है। यह इतनी बदबू फैलाता है कि चिड़िया तक उसके पास नहीं फटकती। वर्षा होनेके समय यह पहाड़ बहुत खतरनाक है। मालूम होता है, मानो सारा पहाड़ आगमें झुलस रहा है। इस पहाड़के पास एक स्नानकुण्ड है। इस उष्ण प्रस्रवणमें नहानेसे उपदंशकी प्राय: सब पीड़ा जाती रहती है।

उस झरनेमें नहानेसे पहले 'ओबामा' प्रस्रवणमें नहाना पड़ता है। स्नान करनेके बाद गरम चीज खा कर गरम कपड़ा ओढ़ सो जाना चाहिए, जिससे पसीना निकलने लगे।

जापानमें आलू, कद्दवा, मूली, तरबूज, तरह तरहकी खाने लायक सब्जी और घास वगैरह बहुत ज्यादा उपजती हैं। सन, ऊन, रूई, शहतूत, ओक, देवदारु आदिकी भी काफी उपज होती है। नीबू, नारङ्गी, अंगूर, दाड़िम, अखरोट, अमरूद, पिच, चैरी आदि सुस्वादु फल भी अधिक पाये जाते हैं। जापानी चायकी खेती अच्छी तरह करते हैं। प्राय. देखा जाता है कि परती जमीन तथा धानके खेतोंके चारों तरफ चायके खेत हैं। जापानियोंके घर पर किसी बन्धुके आते वा जाते समय वे उसे चाय पिलाते हैं।

जापानमें चायकी उपज होने पर भी चीनदेशसे ज्यादा नहीं होती। यहांकी चाय अन्य देशोंमें नहीं जाती। जापानमें शहतूत बहुत ज्यादा उपजता है और उससे तरह तरहके ऊनी कपड़े बनाये जाते हैं। यहां एक प्रकारका वारनिशका वृक्ष पाया जाता है जिससे दूधकी नाईं एक प्रकारका सफेद रस निकलता है। इस रससे वे अनेक तरहके पात्रोंमें पालिश करते हैं। जापानका कोई भी व्यक्ति वारनिशके काम करनेमें लजाता नहीं। दरिद्र वा भिक्षुकसे ले कर अत्यन्त धनी सम्राट् तक वारनिशका काम करते हैं। सम्राट्के प्रासादमें सोने और चांदीके पात्रकी अपेक्षा जापानी वारनिशसे पालिश किये हुये पात्रोंका ही अधिक आदर है। कृषि-कार्यका भी यहां यथेष्ट समादर है। कृषि-कार्यमें उत्साह बढ़ानेके लिये सम्राट्की ओरसे ऐसा आदेश था कि 'जो मनुष्य परती जमीनमें खेती करेगा दो वर्ष तक उस जमीनकी समूची फसल उसी मनुष्यकी होगी और जो मनुष्य

एक वर्ष किसी ज़मीनमें खेती नहीं करेगा, उस ज़मीनमें उसका कुछ भी स्वत्व नहीं रहेगा।"

जापानके घोड़े मध्यमाकारके होते हैं, किन्तु वे अत्यन्त बलिष्ठ होते हैं। इनकी संख्या बहुत कम है। जापानके लोग प्रायः आरोहण करनेके लिये ही घोड़े पालते हैं। गाड़ी खींचने या दलदल भूमिमें खेती करनेके लिये भैंसे और बैल आदिसे काम लेते हैं। जापानी इनका दूध या मांस नहीं खाते। जापानमें हंस, मुरगा, बतक तथा काम नामका एक प्रकारका पक्षी पाया जाता है। बन्दर हरिण, भालू, सूअर आदि जङ्गली जन्तु भी यहां अधिक पाये जाते हैं। पहले जापानमें कुत्तेका अत्यन्त आदर होता था। सम्राट्के आदेशानुसार प्रत्येक रास्ते पर बहुतसे कुत्ते रक्खे जाते थे और हर एक व्यक्तिको कुत्तोंके खानेके लिए आहार रखना पड़ता था। कहा जाता है कि एक जापानी मरे हुए कुत्तेको पहाड़के ऊपर गाड़नेके लिये ले जा रहा था, किन्तु बहुत थक जानेके कारण वह सम्राट्को अभिशाप देने लगा। उसके साथीने कहा—"भाई! चुप रहो सम्राट्की निन्दा मत करो, वरन ईश्वरको धन्यवाद दो कि सम्राट्ने अश्व-चिह्नित समयमें जन्म नहीं लिया नहीं तो हम लोगोंको और भी ज्यादा बोझ लादना पड़ता।" पहले जापानी अपनेको बारह चिह्नोंमें चिह्नित करते थे तथा उसके जिस चिह्नित अब्दमें मनुष्यका जन्म होता था वह उसीके अनुसार गिना जाता था।

जापानमें दीमक बहुत होती हैं जिससे वहांके अधिवासियोंको बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। इनसे छुटकारा पानेके लिये किसी चीज़के नीचे और इनके चारों ओर नमक छिड़क दिया जाता है। जापानी दीमकको 'दोतुम' कहते हैं। जापानमें सर्प बहुत कम पाये जाते हैं। कहीं कहीं 'तिमाकाम्ब' तथा 'किमाकरो' नामक सर्प देखे जाते हैं। इस जातिके सर्प अत्यन्त भयानक होते हैं और इनके काटनेसे मनुष्य मर जाता है, सूर्योदयके समय काटनेसे वह मनुष्य सूर्यास्तक पहलेही मर जाता है। जापानके सैनिक इस सर्पका मांस खाते थे। उन लोगोंका विश्वास था कि इसका मांस खानेसे वे अत्यन्त साहसी और बहादुर हो जाते। इसके अलावा जापानमें और एक प्रकारका सांप है जिसे 'जामाका गाटो' या 'दोजा' कहते हैं। बहुतसे जापानी इस सांपको दिखा कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं।

जापानमें तरह तरहकी मछलियां पाई जाती हैं। जापानी लोग मछली खा कर ही जीवन धारण करते हैं। यहां 'इराबिरु' नामक एक प्रकारकी मछली बहुत विषाक्त होती है। सावधानीसे बिना धोये उस मछलीको खानेसे मनुष्य मर जाता है। यह मछली आत्महत्या करनेके लिए सहज उपाय है। इस मछलीको खा कर बहुतसे जापानी मर भी चुके हैं, तोभी वे इसका खाना नहीं छोड़ते। इस मछलीका मूल्य भी अधिक है। जापान-सागरमें और एक तरहकी आश्चर्यजनक मछली देखी जाती है, जो देखनेमें दस बरसके लड़केकी नाईं है। इसका मस्तक बड़ा होता है आंखें और मुंह पर किसी तरहका छिलका नहीं होता पेट बड़ा होता है, जिसमें बहुतसा पानी समाता है। इस मछलीके पैर होते हैं और बालककी तरह उसमें अंगुलियां होती हैं। इस तरहकी मछली चीनी उपसागरमें ही अधिक पाई जाती है। 'ताइ' नामकी एक तीसरी जातिकी मछली भी यहां मिलती है जो देखनेमें सफ़ेद मालूम पड़ती है। पहले जापानी इस मछलीको अत्यन्त शुभ समझते थे। 'कम' तथा 'सुचि' नामके कछुएको भी वे शुभ समझते थे। जापानके अधिकांश लोग अपने आहारके लिये मछली पकड़ते और बेचते हैं।

जापानके समुद्रमें मोती पाया जाता है। जापानी उसे शीना तामा कहते हैं। पहले वे मोतीका व्यवहार तथा मूल्य नहीं जानते थे, पीछे चीनोंसे यह सीखा। मोती निकालनेके लिये उन्हें किसीको राजकर नहीं देना पड़ता। प्रत्येक जापानीको मोती निकालनेका अधिकार है। बड़े बड़े मोतीको जापानी भाषामें 'आकोया' कहते हैं। पहले जापानी लोग कहते थे कि इस सीपमें एक विशेष गुण यह है, कि एक जापानी चिकने पालिश किये हुए बक्समें रखे रखने पर इसके दोनों बगल दो छोटे छोटे मोती हो जाते थे। यह पालिश 'तकाराबें' नामक सीपसे बनती है। सामुद्रिक

मूंगा, पत्थर आदि जापानके समुद्रमें पाये जाते हैं। एक प्रकारका बड़ा सीप भी पाया जाता है जिसमें डांडी लगाकर चमचा बनाते हैं।

जापानमें सोना, चांदी, तांबा, लोहा और टीन उत्पन्न होती है, किन्तु तांबा ही अधिक परिमाणमें पाया जाता है। सम्राट्की सम्मतिके बिना सोनेकी खान नहीं खोदी जा सकती। जिस प्रदेशमें सोनेकी खान आविष्कृत होती है, उस प्रदेशके शासनकर्त्ता इसका कुछ अंश सम्राट्को देते हैं और शेष अपने दखलमें रखते हैं। बहुत वर्ष व्यतीत हुए, एक पर्वतके गिर जानेसे एक सोनेकी खान निकली है। पहले जापानी अत्यन्त असभ्य थे, वहां एक सोनेकी खान खोदते समय वृष्टि हो जानेके कारण उन्होंने इसे ईश्वरका अनभिप्रेत समझ कर खानका खोदना छोड़ दिया था। विङ्गो प्रदेश की टीन, चांदीसी सफेद होती है। जापानके लोग लोहे को बहुमूल्य समझ कर अस्त्रशस्त्र और बरतन आदि तांबेके बनाते हैं। यहां एक प्रकारकी सुन्दर मट्टी पायी जाती जिसे 'चीना मट्टी' कहते हैं। इस मट्टीसे अच्छे अच्छे बरतन तैयार होते हैं।

जापानके नगर और ग्रामोंमें बहुत मनुष्योंका वास है। यहांके छोटे छोटे शहरोंमें भी ५०० घर बसते हैं और बड़े शहरमें २००० से अधिक घर हैं। यहांके प्रायः सभी मकान दुमंजले हैं और प्रत्येकमें बहुत मनुष्योंका वास है।

जापान-साम्राज्यका 'किउसिउ' द्वीप अत्यन्त उर्वरा है और वहां कई जगह खेती होती हैं।

'निफन'का थोड़ा ही भाग अनुर्वर है। यहांका शिल्पकार्य अत्यन्त उत्कृष्ट है। सिमनसेकि, ओसाका, मियाको, कीयानो और जेडो ये निफनके प्रधान शहर हैं। ओसाका वाणिज्यका प्रधान स्थान है। यहां बहुत-सी नदियां प्रवाहित हैं और प्रत्येक नदीके ऊपर अच्छे अच्छे पुल बंधे हैं। इस शहरकी सड़कें ज्यादा चौड़ी नहीं हैं, किन्तु हमेशा साफ रहती हैं। यहांके घर भी काठके हैं और उसमें चूने और मिट्टीका लेप है। यहांके लोग अधिक धनी हैं। जापानी ओसाका शहरको प्रमोद भवन मानते हैं। इस शहरके पास ही एक स्थानमें आयनमें एक प्रकारकी अच्छी शराब बनाई जाती है, जिसका नाम 'साकि' रक्खा गया है। मियाको शहरमें प्रधान धर्मयाजक रहते हैं, जो साधारणतः 'दैरि' नामसे ख्यात हैं। इस शहरके पश्चिम भागमें पत्थरका बना हुआ एक प्राचीन दुर्ग है। टेंदसुमें जापानी एक प्रकारकी शराब तैयार करते जिसे "सय" कहते हैं।

जापानमें तरह तरहके उद्भिद और फूल देखे जाते हैं, जो देखनेमें अत्यन्त मनोहर हैं। ओसाका शहरमें भिन्न भिन्न प्रकारके फल मिलते हैं। उद्यान और धर्म-मन्दिरके चारों ओर बहुत यत्नसे फूलके पौधे रोपे जाते हैं।

जापानी चरित्रका वैशिष्ट्य—जापानियोंके जोड़की खुशदिल जाति दुनियांमें दूसरी नहीं है। पृथिवीमें सर्वत्र ही ये अपनी हंसीको मुंहमें लिए फिरते हैं। जीवनके छोटे छोटे आघात इनके धैर्यको नष्ट नहीं कर सकते। हां, इतना अवश्य है कि किशोर जब अपने पहले यौवनमें पदार्पण करता है तब उसके हृदयमें मानसिक दुःखका कुछ अधिकार हो जाता है; किन्तु वह अधिक समय तक ठहर नहीं सकता, शीघ्र ही अपना रास्ता पकड़ता है। ये यह समझ कर कि, जीवनकी समस्याओंकी कोई पूर्ति नहीं कर सकता, निश्चिन्तचित्तसे अपना जीवन बिताते हैं।

उच्च विद्याशिक्षा और अपने जीवन निर्वाहके लिए अधिकांश जापानी युवक कायिक परिश्रम द्वारा अर्थ उपार्जन करते हैं। इनका धैर्य असाधारण है—किसी भी अवस्थामें ये विरक्त नहीं होते। परन्तु यदि इन्हें हदसे ज्यादा तंग किया जाय, तो ये बहुत खफा हो जाते हैं; फिर इनको शान्त करना कठिन हो जाता है। ये लोग अपने देशके लिए सर्वस्व लुटा सकते हैं—जीवन तक दे सकते हैं। यूरोपके स्टोइक नामक प्राचीन दार्शनिक जिस प्रकार अविचलितचित्तसे सब कष्टोंको सहते थे, जापानी भी उसी प्रकार कष्टोंको सह लेते हैं।

जापानी लोग इस तरह पेश आते हैं कि विदेशी लोग सहज ही उन पर मुग्ध हो जाते हैं। इन लोगोंकी सभ्यताका सर्वप्रधान आदर्श यह है, कि ये अपना दुखड़ा रो कर किसीके हृदय पर भार नहीं लादते।

माता अपनी एकमात्र सन्तानको मृत्युशय्यासे उठ कर अतिथि विशेषतः विदेशीय अतिथियोंकी प्रसन्नचित्तसे अभ्यर्थना करती है। इस प्रकार आभ्यन्तरिक भावोंका दमन करना उनके जीवनका दैनिक कार्य है। युवक और युवतियोंका जब परिणय होता है, तब वे किसी प्रकारका भाव प्रकट नहीं करते। इससे लोग समझ लेते हैं कि जापानमें प्रेम नहीं है। परन्तु यह बात सत्य नहीं है; क्योंकि हताश-प्रणयों और प्रणयिनियोंके आत्मघातकी संख्या सब देशोंसे जापानमें ही अधिक है। जापानके पुरुष यद्यपि स्त्री पर सर्वदा विश्वास नहीं करते, तथापि वहांकी स्त्रियां सतीसाध्वी होती हैं। यदि विचार कर देखा जाय तो जापानकी लड़कियां अन्य देशोंकी लड़कियोंसे बहुत कुछ शान्त होती हैं। कार्यक्षेत्रमें जापानकी लड़कियां अतुलनीय हैं; वे सम्भ्रान्त होने पर भी इस बातका आडम्बर नहीं करतीं; बुद्धिमती होने पर भी अहंभावको हृदयमें स्थान नहीं देतीं। वे जीवनमें अपने माता पिता, स्वामी और सन्तानके प्रति समान भावसे कर्तव्य सम्पादन करती हैं।

जापानी चरित्रमें पांच विशेषताएं पायी जाती हैं। प्रथमतः वे मितव्ययी होते हैं। स्मरणातीत कालसे ही बहुतसे लोग विलासिता किसे कहते हैं नहीं जानते। इस कारण वे थोड़ेमें ही सन्तुष्ट हो कर जीवन बिताते हैं। दूसरा गुण—कष्टसहिष्णुता है। जापानियोंने सबसे पहले 'रिक्शागाड़ी' (जिसे आदमी खींचते हैं) का आविष्कार किया था। ये भारतमें पांच फुटसे कम होने पर भी असाधारण परिश्रम कर सकते हैं। 'रिक्शा' खींचनेवाले घण्टेमें ७-८ मील चल सकते हैं और इस तरह ८ घंटे तक अपना काम चला सकते हैं। जापानके लोग शीत और ग्रीष्मके प्रभावको, समान धैर्यके साथ किसी प्रकारके उत्तापप्रद या शैत्यदायक वस्तुकी बिना सहायता लिए, सह लेते हैं। इनके चरित्रका तीसरा गुण है—आज्ञानुवर्तिता। उच्चपदस्थ व्यक्ति जैसा कह देते हैं वे उसीके अनुसार चलते हैं। चौथा गुण यह है कि वे अपने परिवारके लिए किसी कार्यको तिलाञ्जलि दे देते हैं। इनमें पांचवां वैशिष्ट्य है कि प्रत्येक पदार्थके विषयमें वे सूक्ष्मसे सूक्ष्म तत्त्वको जाननेके लिए भरपूर कोशिश करते हैं और उसमें सफलता पाते हैं। इन गुणोंके रहने पर भी साधारण लोगोंकी यह शिकायत रहती है कि जापानी सत्य पर विशेष ध्यान नहीं देते।

जापानका प्राचीन इतिहास—जापानमें इतिहास सम्बन्धी दो प्राचीन जापानी ग्रन्थ पाये जाते हैं। एकका नाम है "कोजिकी" या प्राचीन कालकी घटनाओंकी और दूसरेका "निहोन गोकी" या जापानका लिखा हुआ इतिहास। पहले ग्रन्थमें सिर्फ राजाओंकी वंशावली दी गई है—समयके विषयमें कुछ नहीं लिखा। दूसरा ग्रन्थ चीन देशके इतिहासकी भांति लिखा गया है। इन दोनों ग्रन्थोंकी सहायतासे हम जापानका इतिहास जान सकते हैं। एकका ७१२ ई०में और दूसरा ७२० ई०में एक ही ग्रन्थकार द्वारा लिखा गया है। प्राचीनतम समयके वृत्तान्तोंके विषयमें इन ग्रन्थोंकी उक्ति निर्भर योग्य नहीं है। क्योंकि सम्राट्की आज्ञासे लिखे जानेके कारण इनमें राजवंशकी बहुत सी मिथ्या प्रशंसा भी की गई है।

जापानके प्रवादानुसार 'ईजानागि-नो-मिकोतो' और उनकी स्त्री 'ईजानामि नो मिकोतो'ने जापानके द्वीपपुञ्जकी सृष्टि की है। सूर्यलोककी अधिष्ठात्री देवी 'तेनशो दैजिन'के पञ्चम अधस्तन पुरुष 'जिम्मु-तेनो'को ही जापान साम्राज्यका प्रतिष्ठाता कहा गया है। वे स्वयं देवत्व सम्पन्न थे, इसीलिए आज तक उनके वंशधर जापानके सम्राट् देवताओंकी भांति पूज्य माने जाते हैं। जापानमें यूरोपीय सभ्यताका प्रवेश होने पर भी यहांका प्रत्येक व्यक्ति देवताकी तरह सम्राट्की भक्ति श्रद्धा करता है। 'जिम्मु-तेन्नो'ने जिस राजवंशकी प्रतिष्ठा की थी, वह लगातार ढाई हजार वर्षसे राजत्व करता आया है। जगत्के इतिहासमें सचमुच ही यह अनोखी बात है।

सम्राट् जिम्मु तेन्नो 'क्यू सिउ' द्वीपके 'हिउगा' प्रदेशमें रहते थे। कहा जाता है कि वे ईसासे ६६० वर्ष पहले सिंहासन पर बैठे थे। शत्रुओंको जीत कर उन्होंने 'उनेबी' पर्वतके नीचे एक वृहत् प्रासाद बनवाया था।

सम्राट् जिम्मूके बाद ५६० वर्ष तकका इतिहास विशेष उल्लेखयोग्य नहीं है। इस वंशके दशम सम्राट् 'सुजिन तेन्नो'ने ८७से ३० खृष्ट पूर्वाब्द तक राज्य किया था। इन्हीं के समयमें जापानके साथ 'कोरिया' का सम्बन्ध स्थापित हुआ था। कोरियाके अधिवासियों द्वारा जब 'करक राज्यके लोग बहुत तंग होने लगे, तब उन्होंने सुजिनसे सहायता मांगो। इन्होंने ३३ खृष्टीय पूर्वाब्दमें 'करक' अधिकार कर लिया, तबसे यह राज्य जापानके अन्तर्भुक्त हो है। उस समय सम्राट्ने आदिम अधिवासियों को दमन किया था। पीछे ईसाकी २य शताब्दीमें कोरिया सम्राज्ञो 'जिङ्गो'के अधीन जापान द्वारा आक्रान्त हुआ था।

ग्यारहवें सम्राट् 'सुइनिन'ने (२८ खृष्ट पूर्वाब्दसे ७० खृष्टाब्द पर्यन्त) एक भीषण कुप्रथाको उठा कर इतिहासमें अच्छी प्रतिष्ठा पाई है। पहले, सम्राट्की मृत्यु होने पर उनके साथ कुछ जीवित भृत्योंको गाड़ दिया जाता था। इसका उद्देश यह था कि 'परलोकमें भी सम्राट्की वे सेवा करते रहेंगे।' सुइनिनने इस कुसंस्कारके विरुद्ध घोषणा कर दी, कि "मेरे बाद और कोई भी सम्राट् इस प्रकारका नृशंस कार्य न कर सकेगा।"

कोरियाका वृत्तान्त पढ़नेसे मालूम होता है कि ई.स.की ३री शताब्दीमें प्रायः जापानके साथ उसका विवाद हुआ करता था और उसमें जापानकी ही जय होती थी। जापानके विरुद्ध कोरियाके बहुत बार विद्रोह उपस्थित करने पर भी साधारणतः ६६८ ई० तक जापानने कोरिया पर अपना अधिकार अक्षुण्ण रक्खा था। कोरिया विजय जापानके इतिहासमें एक प्रयोजनीय घटना है, क्योंकि जापान और चीनके संसर्गमें यही कारण है।

जापानमें चीनकी लेखनप्रणाली और साहित्य कोरियाके भीतर हो कर हो आया था। चीनके प्रभावसे जापानको अधिक उन्नति हुई थी। चीन देशसे जुलाहों और दरजियोंने आ कर जापानियोंकी शिल्प-विद्याकी शिक्षा दो थी। कहा जाता है कि सम्राट् 'जुरियाकी'ने (४५७—४७८ ई०) चीनके दक्षिणभागमें दूत भेजा था और वहांसे शिल्पियोंको बुलाया था। जापानको सम्राज्ञी शिल्पकार्यमें उत्साह बढ़ानेके लिए स्वयं रेशमके कोड़े पालती थीं।

४६६ ई०में 'मिकिडो-जुरयाकु'ने 'मिरागो' पर आक्रमण किया था, किन्तु इसमें वे विशेष कृतकार्य न हो सके। ६६० ई०में चीनके 'टाङ्'-वंशीय सम्राट् 'कायो माङ्'ने जापानके द्वारा रक्षित 'कुदारा' राज्य पर धावा करनेके लिए अनपथसे बहुतसी सेना भेजी थी। जापानियोंने 'कुदारा' राज्यकी सहायताके लिए वहां जा कर चीनकी सेनाको भगा दिया। परन्तु ६६२ ई०में चीनोंने जापानियोंको परास्त कर 'कुदारा' और 'कोमा' जीत लिया। इस समयसे ई०की १६वीं शताब्दी तक नाना कारणोंसे जापानियोंने कोरिया पर हस्तक्षेप नहीं किया।

६५२ ई०में जापानकी शासन-प्रणालीका (चीनदेशके अनुकरणसे) संस्कार हुआ। ७०१ ई०में 'तैहो' नामक आईनको किताब प्रचारित हुई और उसके सात वर्ष बाद 'नारा' नामक स्थानमें नवीन राजधानी स्थापित हुई। इसी समय जापान की कला और साहित्यने विशेष उन्नति की थी। 'नारा' नगरमें बुद्धदेवकी मूर्ति इसी समय बनी था। जापानमें इतिहास लिखनेका सूत्रपात भी इसी समय हुआ था। ७८४ ई०में राजधानी नारासे पुनः 'कोयटा' लाई गई। राजधानीके इस परिवर्तनके बादसे हो जापान-साम्राज्यकी अवनति होने लगी।

प्रथम युगमें जापानको सभ्यताने चीनसे बहुत कुछ ऋण लिया था। जापानमें बौद्धधर्म, चित्रविद्या, स्थापत्यविद्या आदिका प्रचार चीनसे ही हुआ था। चीनोंके दर्शनशास्त्रोंका अध्ययन करते रहनेसे जापानियोंके चरित्रमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। 'कनफुची' नामक चीनदेशीय धर्मप्रवर्तकके धर्ममें जो पांच वैशिष्ट्य हैं, उनको जापानियोंने अपने चरित्रमें प्राप्त कर लिया था। वे वैशिष्ट्य ये हैं—(१) राजभक्ति, (२) पितृभक्ति, (३) संयम, (४) भ्रातृभाव और (५) मित्रमैत्री। इस विषयमें जापानके सुप्रसिद्ध अध्यापक Inouye Testsu Jiroका कहना है कि "चीनके महर्षिकी शिक्षा जापानमें इतनी अधिक विस्तृत और बद्धमूल है कि उसे जापानी सभ्यताका आदि कहा जा सकता है। इसके सिवा हमें यह भी न भूलना चाहिये कि

जापानियोंने अति पूर्वकालसे ही कनफ्यूसियसको अपना लिया था।" जापानियोंने आचार व्यवहारमें भी चीनका अनुकरण किया है। चीनकी तरह जापानमें भी मनुष्योंको भद्र, कृषक, वणिक और शिल्पी इन चार श्रेणियोंमें विभक्त किया जाता था। किन्तु जापानमें भद्र श्रेणीके विद्वानोंकी अपेक्षा सैनिकोंका अधिक सम्मान होता था। आमोद प्रमोदमें भी जापानने चीनके थियेटर नाच और खेलोंका अनुकरण किया था।

जापानमें जब सामन्ततन्त्रशासन प्रचलित हुआ था, उस समय 'एन्‌का शिमिसि' नामक आदिम जाति सम्पूर्ण रूपसे पराजय स्वीकार कर भारतियोंके आर्योंकी तरह जङ्गलोंमें भाग गई थी।

८६६ ई०से लगा कर वर्त्तमान कालके कुछ पहले तक 'फुजि' नामक क्षत्रिय श्रेणीके लोगोंने चीनके प्रभावमें प्रभावान्वित हो 'मिकाडो'के प्रभावको आच्छादित कर रक्खा था। ८६६ ई०से ११५८ ई० तक फुजिवाराओंने तथा ११५८ से ११८५ ई० तक 'टैरा' वंशोंने सम्राट्‌का शासन अधिकार कर रक्खा था। किन्तु शासन केन्द्र 'क्योतो' नामक स्थानमें ही था। सामन्ततन्त्र ई०की १२वीं शताब्दीके अन्त तक स्थापित नहीं हुआ था।

'क्योतो'के शासनकर्त्ताओंने क्षुद्र इन्द्रियपरायण होनेके कारण जमींदारों और क्षत्रिय श्रेणीके लोगों पर विशेष शासन न किया था। राजकीय प्रतिनिधिगण शासनका कार्य स्वयं न कर अन्य लोगोंसे कराते थे इसलिए प्रादेशिक जमींदारगण नामसे नहीं तो कार्यतः स्वाधीन अवश्य हो गये थे। कुछ जमींदार पत्र विवाह, क्रय वा दान सूत्रसे बहुतसे देशोंमें अधिकार कर अत्यन्त क्षमताशील हो गये थे। जापानके सम्राटोंने फरासियों की तरह एक दलसे दूसरे दलको भिड़ा कर स्वयं क्षमताशील होना चाहा था। किन्तु उनका उद्देश्य सफल नहीं हुआ। 'टैराओं'ने एकबार 'मिनामोतो'को पराजित कर साम्राज्य प्राप्त किया था। पीछे दोनों वंशोंमें भीषण द्वन्द्व चलता रहा। आखिर ११८५ ई०में 'योरितोमो'की अधीनतामें 'मिनामोतो'की जय हुई। 'योरितोमो'ने सबसे पहले "शोगुन" या 'योद्धा और शासनकर्त्ताकी उपाधि ग्रहण की और 'कामाकुरा'में राष्ट्रीय केन्द्र स्थापित किया। जिस तरह फ्रान्सके मेरोविञ्जियन नरपतियोंके अन्तिम भागमें Mayors of the Palace उपाधिधारी राजकर्मचारी राजाओंको कठपुतली समझ कर स्वयं कर्त्ताधर्त्ता बन गये थे, उसी तरह जापानके 'शोगुनों-'ने भी मध्ययुगमें कार्य्य किया था।

जापानके इतिहाससे मालूम होता है कि 'शोगुन' पदकी प्रतिष्ठा सिर्फ एक ऐतिहासिक दुर्घटनासे नहीं हुई। बल्कि बहुत समयसे पुञ्जीभूत घटनाराशिके फलसे उक्त पदकी प्रतिष्ठा हुई थी। 'फुजिवारा'के समयसे ही जापानमें सामन्ततन्त्रका आभास पाया गया था। इसके कुछ बाद उसका पूर्णविकाश हुआ। 'योरितोमो-'ने अपने सामन्तों की विश्वस्त अनुवर्त्तिताके कारण ही राष्ट्रीय क्षमता प्राप्त की थी। सम्राट् और उनके कर्म-चारियोंकी क्षमता इस युगमें बिलकुल लुप्त हो गई थी। युरोपमें भी इस समय सामन्ततन्त्र प्रचलित था। मध्यके कुछ वर्षोंके सिवा आधुनिक काल पर्य्यन्त जापानमें सबदा ही 'शोगुन' द्वारा शासन होता रहा है। यूरोप जैसे सामन्ततन्त्रके प्रभावसे Chivalry या वीरत्वव्यञ्जक भद्रताकी उत्पत्ति हुई थी जापानमें भी उसी तरह 'बुशिदो' प्रथाका प्रचार हुआ था।

'योरितोमो'के बाद उनके वंशमें और भी दो व्यक्ति 'शोगुन' हुए थे। उसके बाद राजशक्ति 'होजो' परिवारके हाथमें चली गई। 'होजो' लोग सम्भ्रान्त परिवारके न थे। इसलिये बहुतसे लोग उनको 'शोगुन' माननेके लिए तैयार न थे। आखिर उन्होंने एक युद्धमें सम्राट्‌की सेना तकको विध्वस्त कर अपनी क्षमताको दृढ़ बना लिया। उन्होंने 'सिक्केन' उपाधि ग्रहण की थी।

इन लोगोंके शासनकालमें सर्वप्रधान घटना जापान पर मङ्गोलियोंका आक्रमण है। यूरोपविजयसे सुविख्यात चङ्गेजखाँके पौत्र मान्दखाँनने अपने भाई क्युबलाईखाँको चीन अधिकार करनेको भेजा था। क्युबलाईने चीनका अधिकांश भाग तथा कोरिया अपने अधिकारमें कर लिया। भाईकी मृत्युके बाद उन्होंने 'पिकिङ्' नगरमें राजधानी स्थापित की और अधीनता स्वीकार करानेके लिए जापानमें दूत

भेजा। 'सिकेन'के परामर्शसे दूत भगा दिया गया। फिर क्या था, खुबलाईखाँ ३० हजार सेनाके साथ जहाजमें चढ कर जापान पहुंच गये। किन्तु होजोटोकि मुनि'ने अपने पराक्रमसे उस सेनाको जमीन पर उतरने नहीं दिया। आखिर उन्हें लौटना पड़ा। लौटते समय आँधी चली, जिससे एक जहाज डूब गया। इस घटनाके बाद ही जापानने शत्रुके आक्रमणसे बचनेके लिए 'हाकूता' बन्दर पर कडा पहरा लगा दिया। १२८१ ई०में खुबलाईखांने पुनः जंगी जहाज भेजे, जिसमें एक लाख सेना थी। किन्तु 'होजोटोकिमुनि'ने कौशलसे उन्हें भगा दिया। इसके बाद फिर किसी भी विदेशोने जापान पर आक्रमण नहीं किया। इस युद्धके कारण, जापानका विवरण सबसे पहले पाश्चात्य जगत्‌को मालूम हुआ था।

१३३३ ई०में सम्राट् 'गो-डैगोतेवो' होजोंके कवलसे अपनी रक्षा कर राष्ट्रीय क्षमताके यथार्थ अधिकारी हुए और 'सोगुन'का पद हमेशाके लिए उठा दिया। किन्तु इसके बाद सम्राट् सिर्फ छ वर्ष ही राज्य कर पाये थे।

ई०की १६वीं शताब्दीके अन्त और १७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जापानियोंने पोर्तुगाल, स्पेन, हलैण्ड और लण्डन आदिके वाणिज्य-जहाजोंको सादर अपने देशमें आने दिया था। इस समय विदेशियोंने जापानको शोषण करनेकी यथेष्ट चेष्टा की थी, तथा जेसुइट नामक रोमन केथलिक-सम्प्रदायके ईसाई पादरियोंने पोर्तगाल और स्पेनके वणिकोंके साथ जापान पहुंच कर वहां ईसाई धर्मका प्रचार किया था। फलतः जापानमें प्रायः सभी श्रेणीके लोग, जिनकी संख्या १० लाखसे कम न होगी, ईसाई हो गये थे। परन्तु जापानके अधिकारियोंको सन्देह हुआ, कि सम्भव है वे धर्म-प्रचार करते करते राजनैतिक आन्दोलन उठावें और जापानकी स्वतन्त्रता छीन लें। इसलिए वे पादरियोंके विरुद्ध खड़े हुए। रोमनके सम्राट् नेरोकी तरह ये भी ईसाई धर्मके पादरियोंको तङ्ग करने लगे। आखिर पादरियों मार भगाया गया। यहां तक कि, विदेशी वणिकों तकको जापानमें स्थान न दिया गया; सिर्फ ओलन्दाजोंको एक क्षुद्र उपनिवेश स्थापन कर रहनेका अधिकार मिला। ओलन्दाजों पर नानाप्रकार कर लगाये जाने पर भी, जापानके साथ वाणिज्य करके अर्थोपार्जन किया था। जापानियोंने घोषणा कर दी थी कि "अन्य कोई यूरोपीय जाति यदि जापानमें पदार्पण करे, तो उसे मृत्युका दण्ड दिया जायगा।" साथ ही जापानियोंको भी विदेश जानेके लिए मुमानियत थी। मध्ययुगमें जापानियोंने एक वीर-हृदय—साहसी जातिके समान अज्ञात समुद्रोंमें जहाज चलाये थे। चीन, श्याम और तो क्या प्रशान्त महासागर-हो कर मैक्सिको तक पहुंच कर इन्होंने व्यवसाय किया था। किन्तु इस समय उन्हींके अधिकारियोंने उन्हें बाहर जानेके लिए रोक दिया। इतना ही नहीं, बल्कि ५० टनसे ज्यादा माल लादनेवाले जहाजोंका भी बनना बन्द कर दिया गया। विदेशियोंसे विशेष शत्रुता हो जानेके कारण ही, विपद्‌की आशङ्कासे जापानियोंने अपनेको इस तरह घरमें बन्द कर रक्खा था। यही कारण है, कि विदेशीय ऐतिहासिक जापानियोंकी विशेष निन्दा किया करते हैं। किन्तु हमसे-भारतवासियोंसे यह छिपा नहीं है कि विदेशियोंका आगमन कभी कभी कैसा भीषण रूप धारण करता है और अतिथिसत्कारके बदले जातिको कैसा कठोर प्रायश्चित्त करना पडता है। सुतरां हम तो यही कहेंगे कि जापानियोंने उस समय बडी बुद्धिमानीका कार्य किया था, नहीं तो आज उनकी भी भारतवासियोंकी भांति शोचनीय दुर्दशा होती।

२२० वर्ष तक जापानियोंने बहिर्जगत्‌से कुछ भी सम्बन्ध न रक्खा था। इस बीचमें जापानको निज उच्च सामाजिक सभ्यता, कला और साहित्यका विकाश हुआ था और उसीमें वह सन्तुष्ट भी था। उस समय यूरोपने शिल्प-वाणिज्य, राजनीति और युद्धविद्याकी असाधारण उन्नति की थी, किन्तु जापानने उसका अनुसन्धान करना आवश्यकीय समझा।

आठवें 'सोगुन' जोशी मुनि'के शासनकाल (१७१६—१७४५ ई०)-में जापानकी नाना प्रकारसे उन्नति हुई थी। इन्होंने फिजूल-खर्चीको हटा कर मितव्ययिताकी स्थापना की थी। इसके सिवा जमीनकी उपजाऊ बनानेके लिए भी इन्होंने काफी कोशिश की थी।

'को' प्रदेशमें नारको 'सातसुमा' और 'हिज़ाँ' प्रदेशमें तम्बाकूकी खेती इन्होंने आरम्भ की। समुद्रके पानीसे इन्होंने नमक भी बहुत बनवाया था। 'ई' प्रदेशमें ज्वारा-चेन स्थापन कर ये उत्कृष्ट शराब बनानेकी व्यवस्था कर गये हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने आलू ईख आदिकी खेतीका भी उचित प्रबन्ध किया था।

'ओगोसुमि' स्वयं एक विद्वान् व्यक्ति थे। ज्योतिषमें ये असाधारण पाण्डित्य रखते थे। इन्होंने ज्योतिषसम्बन्धी कुछ यन्त्रोंका भी आविष्कार किया था। इन्होंने 'मूरो क्यूसो' नामक चीनदेशीय एक सुप्रसिद्ध विद्वान्को जापान बुलाया था एवं यूरोपीय विद्या अर्जन करनेकी चेष्टा की थी। एक कर्मचारीको इन्होंने ओलन्दाजी भाषा सीखनेके लिए आदेश दिया था और जापानमें जो यूरोपीय ग्रन्थोंके प्रवेश न होने देनेका नियम था, उसे उठा दिया।

परन्तु इस समयकी शासन-प्रणाली इतनी कड़ी थी कि उसमें प्रजाकी स्वतन्त्रता बिलकुल क्षीण हो गयी थी। 'शोगुन' उपाधिधारी ही शासनदण्डके यथार्थ परिचालक थे—वे सम्राट्‌की अधीनता नाममात्रको स्वीकार करते थे। साम्राज्यकी तृतीयांश सम्पत्ति उनके हाथमें थी और उससे जो कुछ आमदनी होती थी, उसे वे अपने काममें खर्च करते थे। अवशिष्ट सम्पत्तिका उपस्वत्व २६० सामन्तोंमें विभक्त होता था। इन सामन्तोंमें भी सबकी क्षमता समान न थी—जिसके पास जितनी सम्पत्ति थी, उसका उतना ही प्रभाव था। किन्तु एक विषयमें सबका अधिकार समान था। अपने अपने प्रदेशमें सभी स्वाधीन थे—कानून बनाना या तोड़ना उनके रायका खेल था। इस कार्यमें कोई भी हस्तक्षेप न करता था। सामन्तगण वंशानुक्रमिक सेना रखते थे। यह सेना अपने स्वामीके सिवा और किसीकी भी आज्ञा न मानती थी—सम्राट्‌की भी नहीं। यह सेना इतनी स्वामिभक्त होती थी कि अपने स्वामीके लिए प्राण तक देनेके लिए तैयार रहती थी। हर एक सामन्त 'शोगुन'की अधीनता स्वीकार करते थे। ज़मींदारी पाने पर 'शोगुन' द्वारा इन्हें मुकुट प्राप्त होता था। दरबारमें उपस्थित होनेके लिए भी इन्हें 'शोगुन'से अनुमति लेनी पड़ती थी। 'शोगुन' जब कभी इनसे सेना द्वारा सहायता चाहते थे तभी इन्हें सेना ले कर उनके पास पहुँचना पड़ता था। सामन्तगण खूब धनवान् होते थे और सबके अलग अलग दुर्ग थे। सामन्त और उनके प्रधान कर्मचारियोंकी संख्या प्रायः २० लाख थी। ये ही सम्भ्रान्त-भद्र समझे जाते थे और सुखसे ज़िन्दगी बिताते थे। इनके नीचेकी श्रेणीके थे कृषक, शिल्पजीवी और वणिक्, जिनकी संख्या करीब १ करोड़ थी। इनके जीवनका कार्य उक्त भद्र श्रेणीके लिए विलास उपकरणोंके संग्रह करनेके सिवा और कुछ भी न था। अछूतोंकी विषयमें पहले प्राचीन भारतवर्ष या मिसरमें निम्न श्रेणीके लोग जिस तरह उच्च श्रेणीके द्वारा पददलित होते थे, उसी तरह ये भी किसी प्रकारसे अपनी गुज़र करते थे। जापानमें कानूनन दास प्रथा प्रचलित न रहने पर भी वहाँके निम्न श्रेणीके लोग ७० वर्ष पहले भी निग्रोजातिकी तरह जीवन यापन करते थे। वे किस कामको करके अपनी जीविका चलावें, कैसी पोशाक पहनें, किस ढङ्गके घरमें रहें इन सबकी व्यवस्था वे स्वयं न कर पाते थे; उनके मालिक जो कुछ कह देते थे, उसीके अनुसार उन्हें कार्य करना पड़ता था। यहाँ तक कि वे अपने मालिकोंके डरसे कराहने तक भी न पाते थे—मालिकके बुरी तरह मारने या पीटने पर भी वे चुपचाप उसे सह लेते थे। पाश्चात्य सभी अनुन्नत जातियोंमें उच्च श्रेणीवालोंने लोगोंके विरुद्ध अत्याचार किया है किन्तु जापानमें ऐसा कभी भी नहीं हुआ।

सम्राट् 'कियोतो' उस समय नगरके एक कोनेमें काठपुतलियोंकी भाँति रहते थे और देवत्वके अभिमानमें जो सन्तुष्टचित्तसे काल यापन करते थे। 'शोगुन' जो कार्यमें कर्त्ताधर्त्ता या मन्त्रि-परिचालक थे, इसलिए यूरोपीय लोग उन्हें ही सम्राट् कहते थे। वे सभी विद्वान् और बुद्धिमान थे किन्तु इस विषयमें सभीको भ्रम था। 'शोगुन' जब राजधानीसे महासमारोहके साथ बाहर निकलते थे तब मार्गमें कोई भी अस्थिर वस्तु न रहने पाती थी। मकानोंके झरोखे तक बन्द कर दिये जाते थे क्योंकि उनके ऊँचे रहनेसे ऊपरसे उन पर अपमानकी दृष्टि पड़नेकी सम्भावना रहती थी। निकलनेसे दो दिन पहले उन रास्तोंमें कोई आग न जला पाता था, क्योंकि,

उससे वहांके परमाणु धूम्रमय हो जाते थे। यूरोपोयगण रोम, माद्रिद वा लिसवनके राज-ऐश्वर्यसे पराजित होने पर भी, 'सोगुन'की धन-सम्पत्तिको देख कर बड़ा आश्चर्य करते थे। सोगुन'की शासनप्रणालोसे असन्तुष्ट हो कर कुछ सामन्त भोतर भोतर विप्लववादो हो गये थे। किन्तु इनके शासनकालमें देशमें शान्ति रहनेके कारण विद्या-चर्चा और साहित्यकी आलोचना बढ़ गई थी। आठवें सोगुन 'कादा आजूमामारो'के समय (१०१६-१०४५ ई०)में लोग 'कोजिकी'की काव्य आदरके साथ पढ़ते थे। 'कोजिको' जापानमें वाल्मीकि वा होमरके समान माने जाते हैं, उनके ग्रन्थमें सम्राट् पर चपला भक्ति रखनेको शिक्षा दी गई है। यूरोपमें मध्ययुगके सामन्त-तन्त्रके समय जैसे रोमके कानूनोंको पढ़ कर लोग राजा पर भक्ति करना सीख गये, वे उसी प्रकार जापानमें भी 'कोजिको'के ग्रन्थ पढ़ कर लोगोंमें राजभक्तिका स्रोत बहने लगा था। ऐतिहासिक आलोचना भी इस समय बढ़ गई थी, जिससे लोगोंने सिद्धान्त किया कि सम्राट्की क्षमता पुनःस्थापित होनी चाहिए।

१०८६ ई०के पहले ही रूसियाने साइबिरियाका समग्र भाग अधिकार कर लिया था, अब उसने जापान-को उत्तरांशमें अवस्थित ऐजोद्वीप तथा और एक स्थान जोत लिया। इसके सिवा रूसने और भी स्थान जय करनेके लिए दूत भेजे थे। १८०८ ई०में अंग्रेजोंने 'क्यूसिउ' नामक स्थानमें उतर कर 'नागसाकी' नामक ग्राम जला दिया था। इस प्रकारके अत्याचारोंके कारण ही 'सोगुनों'ने विदेशियोंका जापानमें आना बन्द कर दिया था। १८२५ ई०में जब एक दल यूरोपीय वणिक् 'नागसेको'के पास पहुंचे, तो जापानके अधिकारियोंने उन्हें भगा देनेकी घोषणा कर दी।

उस समय जिन जापानियोंने ओलन्दाजो भाषा पढ़ कर उसकी सभ्यता ग्रहण की थी, वे इसका प्रतिवाद करने लगे। वे कहने लगे—"यदि यूरोपियोंसे अपनी रक्षा की करनी है, तो वह उनसे मिल कर ही हो सकती है।" इस पर जापान सरकारने उनकी दण्डनीति द्वारा दमन करनेकी कोशिश की, किन्तु उनके भावों का वह दमन न कर सकी। कारण, विदेशियोंका देशमें जितना अधिक प्रवेश होने लगा, जापानियोंको यूरोपीय सभ्यता उतना ही अधिक पसन्द आने लगी।

१८५३ ई०के जुलाई मासमें चार अमेरिकन जहाज जापानके 'सागामी' प्रदेशके 'उरागा' नामक स्थानमें आ लगे। जहाजोंके अध्यक्षने जापानके साथ वाणिज्य सम्बन्धीय सन्धि करनेके लिए 'सोगुन'के पास आवेदन-पत्र भेजा। 'सोगुन'ने इसके उत्तरमें कहला भेजा कि "एक वर्ष विचार कर उत्तर दिया जायगा।" इसके दो महीने बाद ही एक रूसियाका जहाज 'नागसेको'में आ लगा और उसके अध्यक्षने जारका नाम ले कर जापानसे वाणिज्य सम्बन्धी सन्धि करनेकी प्रार्थना की। किन्तु उनकी प्रार्थना नामंजूर हुई। अन्तमें अमेरिकनोंको जापानके दो निकट बन्दरोंमें आनेकी आज्ञा मिली। १८५४ ई० १ली मार्चको पेरीके साथ जापानकी सन्धि हुई। इसके कुछ दिन बाद रूसिया इंग्लैण्ड और हालैण्डके साथ भी सन्धि हो गई और उक्त दोनों बन्दरोंमें आनेके लिए उन्हें आज्ञा मिल गई।

उस समय जनसाधारणमें बहुतसे लोग ऐसे थे जो सम्राटके पक्षपाती और विदेशियोंको प्रवेशाधिकार देनेके कारण सोगुनोंके विरोधी थे। अन्तमें वे 'सोगुन'से लड़नेके लिए आमादा हो गये थे।

इसी बीचमें वे सामन्तोंके शासनसे भी असन्तुष्ट हो गये थे। उन लोगोंने 'कियोतो'में जा कर सम्राट्का पक्ष अवलम्बन किया। १८६२ ई०में उन लोगोंने सम्राट्की तरफसे 'सोगुनोंको आह्वान किया तथा विदेशियोंको भगा देने और कुछ नियमोंका संस्कार करनेके लिए उपदेश लिख भेजा। सोगुनोंने इस निमन्त्रणको रक्षा न की। इधर सम्राट्पक्षके लोगोंने अंग्रेज और अमेरिक-नोंके दोत्यागार जला दिए। इसतरह विदेशियों पर प्रायः अत्याचार होने लगा। अंग्रेज जब युद्ध करनेके लिए तैयार हुए, तब 'सोगुन'ने बहुतसा धन दे कर उन्हें शान्त कर दिया। 'सोगुन'ने सम्राट्को यह बात समझाई कि विदेशियोंको तंग करनेमें बड़ी भारी आफत आ सकती है, जिससे सम्राट् भी उन्हींके पक्षमें हो गये। १८६५ ई०में उन्होंने १८५८ ई०को सन्धियोंको

स्वीकार कर लिया। १८६६ ई०में शक 'शोगुन' और सम्राट् दोनों की मृत्यु हो गई। इधर सम्राट पक्षीय लोग शोगुनके विरुद्ध गोपन षड़यन्त्र और आन्दोलन करने लगे। अन्तमें उपायान्तर न देख पन्द्रह शोगुनने १८६७ ई०के १८ नवम्बरको सम्राट के पास अन्त्यागपत्र भेज दिया। इसी पत्रसे जापानके नवयुगकी घोषणा की थी, इसलिए यहां सब उद्धृत किया जाता है—"मध्ययुगसे ही 'फुजिवारा' वंशके कारण सम्राट की क्षमता क्रमशः घटती आई थी। पीछे 'मिनोमोतो योरितोमो' 'शोगुनों'को क्षमताके अधिकारी हुए और शासन शासनका भार भी उन्होंने ग्रहण किया। दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि शासन-परिचालनके विषयमें हमारे सामने अनेक बाधाएं उपस्थित हैं। वैदेशिक सम्बन्धके विषयमें बहुत ज्यादा गड़बड़ी मच गई है। और उनका सम्बन्ध भी क्रमशः जटिल होता जा रहा है। इसलिए अब जापानका उसके मङ्गलके लिए एक शासनकर्ताके द्वारा शासित होना आवश्यकीय है। इसीलिए हम अपनी क्षमताको सम्राट्के करकमलोंमें अर्पण करते हैं। हमारी जाति वैदेशिकों के साथ प्रतिद्वन्द्विता तभी कर सकती है जब सम्राट स्वयं शासन करेंगे और सम्पूर्ण अधिवासी एकत्र हो कर देशकी रक्षाके लिए कमर कस लेंगे। इस प्रकार हमने देश और सम्राटके प्रति अपना कर्तव्यका पालन किया।"

इस तरह सम्राट ६८६ वर्ष तक क्रीड़ापुत्तलिका बन् रहनेके बाद अब यथार्थ क्षमताके अधिकारी हुए। इस विषयमें शोगुनोंके स्वार्थत्यागकी प्रशंसा किये बिना रहा नहीं जाता।

जिस समय सम्राटके हाथमें क्षमता अर्पित की गई थी, उस समय उनकी उमर कुल पन्द्रह वर्षकी थी। फलतः शासनकार्य सम्राट के नामसे उनके मन्त्रिमण्डल ही चलाने लगे। मन्त्रियोंने वर्तमान परिस्थिति देख कर विदेशियोंसे मित्रता रखना ही उचित समझा। १८६८ ई०की ७वीं फरवरीको यह बात समस्त वैदेशिकोंको कह दी गई। इसी वर्ष ६ नवेम्बरको सम्राट्ने जापानी प्रथानुसार इस नवयुगका नाम रक्खा—'मैजी' या उज्ज्वल युग। सचमुच ही इनके राजत्वमें जापान सभ्यताके सर्वांशोंमें प्रदीप्त हो उठा था। इन्होंने 'यादो' नगरमें राजधानी स्थापित कर उसका 'तोकियो' नाम रख दिया।

१८६६ ई०की १०वीं जूनको कानूनके अनुसार सामन्त तन्त्र रद्द कर दिया गया। कारण नवीन यूरोपीय सभ्यता ग्रहणके लिए यह कार्य प्रशस्त और प्रयोजनीय था।

विप्लवके बाद जापानमें पुनः शान्ति स्थापित हो गई। इस समय यहांके राजनीतिज्ञगण यह बात भलीभांति समझ गये थे, कि अब सामाजिक संस्कार कर जापानको अन्य सभ्यदेशोंके समान बनानेकी जरूरत है। जब तक साधारण लोगोंको शिक्षित और उन्नत न बनाया जायगा, तब तक जापानकी यथार्थ उन्नति नहीं हो सकती। किन्तु इस नवयुगमें भी पहलेके सामन्तगण अपनी जातिगत वैषम्य भावको छोड़नेके लिए तैयार न थे।

जापान नवजन्मसे पहले पास उस समय न तो सेना थी और न जहाज। इसके सिवा कोषागारमें धन भी पर्याप्त न था। देशमें जो शिल्पवस्तुएं बनती थीं उन्हींसे किसी तरह देशका अभाव दूर किया जाता था। जापानमें एक जगहसे दूसरी जगह संवादादि भेजनेके लिए कोई सुव्यवस्था नहीं थी। रेल टेलिग्राफ या जहाज उस समय तक कुछ भी आविष्कृत न हुए थे। वैदेशिक वाणिज्य भी उस समय तक विदेशियोंके हाथमें था; वे यहांका धन खूब ही लूटने लगे। आधुनिक विज्ञानकी चर्चासे भी जापानी लोग परिचित न थे। इन्होंने सिर्फ शस्त्र और चिकित्साविद्याके विषयमें ओलन्दाजोंसे कुछ सीखा था। इन समस्त अभावों और समस्याओंका समाधानका भार नवगठित मन्त्रियों पर पड़ा। उन्होंने इस कार्यके लिये नाना प्रकारकी बाधाओंका सामना करना पड़ा था और उपरसे देशीय कुसंस्कारोंके कारण भी कार्यमें अनेक कठिनाइयां आ पड़ी थीं।

इस समय मन्त्रि सम्प्रदाय और जापानके सौभाग्यसे ग्रेट ब्रिटेनके एक उत्तम प्रतिनिधि जापानमें काम करते थे। वे जापानको, इस विप्लवके समय भी नाना प्रकारकी सहायता देते आ रहे थे। सेना, जहाज, कारखानों

आदि द्वारा भी उन्होंने इस नवजाग्रत जातिको काफी सहायता पहुंचाई थी।'

नव्य जापानकी उन्नतिके लिए और एक दल पैदा हुआ जो विदेशागत विशेषज्ञका दल था। ग्रेटब्रिटेनके विशेषज्ञोंने नौ-सेनाके गठनकार्य में जापानियोंको काफी सहायता दी थी। अमेरिकाके युक्तराज्यके प्रतिनिधियोंने जापानके डाक और शिक्षाविभागका पाश्चात्यदेशीय नव प्रणालीके अनुसार संगठन किया। भारतमें पहले पहल पादरियोंने जिस प्रकार देशीय भाषामें शिक्षा देनेके लिए उत्साह दिखाया था, उसी तरह जापानमें भी वे शिक्षा-प्रचारके लिए यथेष्ट चेष्टा करने लगे।

प्रथम ही गवर्नमेंटके उन कानूनोंको रद्द किया गया, जो वर्वरोचित और अमानुषिक थे। जापानकी दण्डनीति और कारागार मनुष्योंके लिए हदसे ज्यादा कष्टदायक थे। समस्त सुसभ्य देशोंके कारागारोंके परिदर्शनार्थ चारों ओर विशेषज्ञ भेजे गये। उन लोगोंने लौट कर जापानके कारागारोंकी ऐसी उन्नति की कि जिसे देख कर लोग चकित हो गये। वर्तमानमें जापानके कारागारोंकी अवस्था अन्यान्य सभी सुसभ्य देशोंका अपेक्षा उन्नत है। एक फरासीसी आईनज्ञने जापानके कानूनोंका संस्कार कर दिया। इस संस्कारके फलसे विचार और शासनकार्यके भार पृथक् पृथक् व्यक्तियोंके अधीन हो गया। जगह जगह न्यायालय स्थापित हो गये, जिनमें विचारपति स्वाधीन भावसे, किसीका लिहाज न कर, विचारकार्य चलाने लगे। सुशिक्षित व्यक्तियोंको वकील बना दिया गया।'

१८७२ ई०में 'इयकोहामा'से 'तोकियो' तक रेल खुल गई। बन्दरोंकी आलोकमालासे सुशोभित कर उनमें डाक और तार विभागकी प्रतिष्ठा की गई। डाक्टरी और इञ्जिनियरीको शिक्षा देनेके लिए बड़े बड़े कालेज खुल गये। इसी समय जापानमें संवादपत्र भी प्रकाशित होने लगे और व्यापारियोंके सुभीतेके लिए बैंक भी खुल गये। जापानमें पहले सिक्केमें नाम भरी जाती थी और भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके सिक्के बनते वा चलते थे, अब वे निकालसि धातुके ही बनाये जाने लगे और सर्वत्र एक प्रकारके सिक्कोंका प्रचार जारी किया गया।

१८७१ ई०में इन संस्कारोंका सूत्रपात हुआ था। उसके बाद कुछ ही वर्षोंमें जापानी सभ्यतामें उनको जड़ मजबूत हो गई। जापानी जाति बड़ी बुद्धिमान् और परिश्रमी होती है यही कारण है कि वह बड़ी तेजीके साथ नवीन सभ्यताके प्रकाशमें आगे बढ़ने लगी। चीनके आचार-व्यवहारके पक्षपाती बीच बीचमें कहीं कहीं विप्लव उठाने लगे किन्तु उससे कुछ फल न हुआ।

जापानियोंके हृदयमें यह उच्चाकांक्षा उत्पन्न हुई कि, इङ्गलैण्डके पाश्चात्यभागकी तरह जापानके प्राच्य भागमें भी सर्वोत्कृष्ट नौ-शक्ति संगठित हो। इस विषयमें जापान सफल मनोरथ हुआ। १८७२ ई०में यहां वाध्यतामूलक सामरिक शिक्षाका प्रवर्तन हो गया, जिससे बहुत थोड़े समयमें ही प्रायः सभी जापानी योद्धा हो गये। योद्धा होनेके बाद इस जातिको आज तक रणक्षेत्रमें वीरता दिखानेके अवसर पांच बार प्राप्त हुए हैं।

१। १८११ ई०में अन्तर्विप्लवके दमनके लिए ४६००० योद्धा रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे। २। १८८४ ई०में चीनके साथ युद्ध करनेके लिए (जापानकी सम्पूर्ण सामरिक शक्तिके दिखानेके लिए) २२०,००० सेनाने समराङ्गणमें पदार्पण किया था। ३। १९०० ई०में वक्सर-के युद्धमें जापानियोंने सबसे पहले यूरोपीय सेनाके साथ अपने वीरत्वको तुलना करनेका सुयोग पाया था। ४। रूसके साथ भीषण युद्ध करके जब जापानने विजय प्राप्त की तब वह संसारमें एक विजयी और वीर जाति समझी जाने लगी। क्षुद्र जापान शक्तिने रूसियाके जार-की विपुलवाहिनीको किस प्रकार कठोरता और आत्म-त्यागके साथ परास्त किया था यह बात इतिहासमें हमेशाके लिए सुनहरी अक्षरोंसे लिखी रहेगी। रूसियाके साथ युद्धमें विजय प्राप्त करनेके बाद जापानने भीतर भीतर एक नवीन बल पाया और अपनी उन्नतिके लिए वह और भी अधिक प्रयत्न करने लगा। संसारको भी मालूम हो गया कि पृथिवीमें सिर्फ ग्रेटब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी, इटली और युक्तराष्ट्र ये पांच ही महाशक्ति नहीं हैं, किन्तु जापान भी पृथिवीमें अन्यतम महाशक्ति है।

इसके बाद गत महायुद्धके समय भी जापानी सेना-ने ग्रेटब्रिटेन आदि मित्रशक्तियोंका साथ दिया था। इस

महायुद्धमें जापानियोंके साहस और शौर्यको देख कर सबको चकित होना पड़ा था। युद्धके बाद १९२१ ई०में वाशिंगटनमें जो बैठक हुई थी उसमें जापानका बहुत सम्मान किया गया था और भी समताका अधिकार भी वापस लिया गया था।

जापानमें शिक्षा प्रचारके लिए १८७१ ई०में एक नया विभाग खुल गया। जापानके लोग यह जानते थे कि जब तक स्त्री और पुरुष, धनी और निर्धन सबको शिक्षा न दी जायगी, तब तक जापानकी सच्ची उन्नति किसी तरह भी नहीं हो सकती। इसीलिए उन्होंने बाध्यता-मूलक अवैतनिक प्राथमिक शिक्षाकी व्यवस्था की थी। इसी समय चीनदेशीय पण्डिताऊ ढंगकी प्रथा उठा दी गई और उसके बदले चीनसे द्वारा प्रवर्तित यूरोपीय ढंगकी पठन-पाठन-प्रथा चलाई गई। लड़कियोंकी उन्नतिके लिए उन्हें आवश्यकतामूलक परिश्रममें युक्त किया गया। इस समय सम्राट् बालक थे, तो भी प्रत्येक कार्यमें उनका नाम व्यवहृत होता था।

जापानके नवजागरणके प्रथम प्रभातमें ही यह घोषणा की गई कि जनसाधारणकी सम्मतिके अनुसार ही शासनकार्यका सम्पादन होगा। जापानी राजनैतिकोंके ध्यानमें यह बात भली भाँति आ गई थी कि इस अवस्थाके समयमें कोई भी जाति बिना एक स्वेच्छाचारी सम्राटकी इच्छाके अनुसार चल कर अपनी उन्नति नहीं कर सकती। यह नीति प्रारम्भसे ही काममें लाई गई हो ऐसा नहीं। क्रमशः धीरे धीरे इसका व्यवहार हुआ था। १८६८ ई०में 'तोकियो' नगरमें एक व्यवस्थापक सभाका संगठन हुआ था जिसमें २७६ प्रतिनिधि थे। इनमें प्रायः सभी सम्भ्रान्तवंशीय लोग थे। इस सभाको कानून बनाने या संस्कार करनेका अधिकार नहीं दिया गया था। आखिर १८७० ई०में यह सभा टूट गई। इसके बाद २० वर्ष तक जापानकी शासनव्यवस्था नाममें साधारणकी होने पर भी कार्यतः यह राजपुरुषोंकी ही थी। १८८१ ई०में जापानके साधारण लोगोंमें राजनैतिक जागरणका सूत्रपात दिखाई दिया। आवेशके प्रभावसे लोगोंमें राष्ट्रसम्बन्धी भावनाका भी खूब प्रचार होने लगा। इतनेमें वे लोग भी लौट आये जो शिक्षा प्राप्त करनेके लिए इंग्लैण्ड अमेरिका आदि देशोंमें गये हुए थे और सब मिल कर गणतन्त्रको व्यवहारमें लानेके लिए जी जानसे कोशिश करने लगे। वे अपनी लेखनी एवं वक्तृताओं द्वारा शासनकर्ताओंकी स्वेच्छाचारिताको दूर करनेकी आन्दोलन करने लगे। यद्यपि इनमेंसे बहुतोंको इसके लिए जेल भी जाना पड़ा था तथापि वे अपने उद्देश्यसे च्युत न हुए। यहाँ तक कि राजकीय उच्चपदस्थ कर्मचारियोंकी हत्या करनेमें भी इन्होंने संकोच नहीं किया। १८७८ ई०में जब प्रभावशाली मन्त्री 'ओकुबो' मारे गये तब गवर्नमेण्टने डर कर जनसाधारणको कुछ क्षमता देनेका वचन दिया किन्तु वह नाममात्रके लिए। इस पर, सन्तुष्ट होना तो दूर रहा लोगोंने और भी जोरसे आन्दोलन करना शुरू कर दिया। 'हिजेन' निवासी 'ओकुमाने' नेतृत्व ग्रहण कर इस नवीन आन्दोलनको और भी शक्तिशाली बना दिया। उन्होंने १८८१ ई०में गवर्नमेण्टके साथ असहयोग कर इङ्गलैण्डकी तरह शासन प्रणाली प्रवर्तित करनेके लिए जापानमें घोरतर आन्दोलन उपस्थित किया।

आखिर इस आन्दोलनका फलोदय हुआ। १८८० ई०में सम्राट्की तरफसे यह घोषणा निकाली गई कि — जनसाधारणके मतानुसार शीघ्र ही पार्लामेण्ट स्थापित की जायगी। पहलेके मन्त्रियोंको पृथक् कर दस नवीन मन्त्री नियुक्त किये गये। ये मन्त्री सम्राट्की इच्छा पर निर्भर होने पर भी, बहुत अंशोंमें ग्रेटब्रिटेनकी तरह स्वाधीन या क्षमतापन्न थे। १८८४ ई०में सम्राट्ने जापानके सम्भ्रान्त-श्रेणीयोंको पाँच भागोंमें विभक्त कर यथोचित उपाधियोंसे विभूषित किया। इससे प्राचीन सामन्तोंके वंशधर सब अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और सम्राट्के अनुरक्त हो गये। इसके सिवा सम्राट्ने और भी एक नियम बनाया कि इङ्गलैण्डकी तरह जापानके सम्राट् भी चाहें जिसको सम्भ्रान्त श्रेणीमें उन्नीत कर सकेंगे। इसका फल यह हुआ कि जापानमें अब भी ऐसे बहुतसे मनुष्य हैं जो अपनेको सम्भ्रान्त कहते हैं; किन्तु उनके पुरखा सामान्य कृषक थे।

साधारण श्रेणीके लोगोंमें सबसे पहले, १८८४ ई०में

महामति 'इतो'ने सम्भ्रान्त-पद पा कर साम्राज्यके प्रथम प्रधान मन्त्री एवं सभापतिका पद ग्रहण किया था।

१८६० ई०में साधारण महासभा आहूत हुई, जिसमें दो विभाग थे, एकमें ३०० सामन्त व्यक्ति प्रतिनिधि थे, जिनमें कुछ वंशानुक्रमिक सामन्त थे, कुछ साधारण द्वारा निर्वाचित और कुछ सम्राट् द्वारा मनोनीत हुए थे। दूसरे विभागमें पहले ३००, फिर ३७८ सभ्य निर्वाचित हुए। प्रथम विभागको इंगलैण्डके House of lords के समान क्षमता प्राप्त थी और कार्य करनेका अधिकार भी उसीके बराबर था। दूसरी सभामें गवर्नमेण्टकी क्षमताको और भी साधारणके हाथमें लानेके लिए घोरतर आन्दोलन चलने लगा। परिणाम स्वरूप साधारणने बहुत अंशोंमें क्षमता प्राप्त की और मन्त्रियोंको अपने हाथमें ले आये। किन्तु इंगलैण्डकी तरह ये इच्छानुसार मन्त्रियोंको पृथक् करनेमें समर्थ न हुए; प्रत्युत जर्मन साम्राज्यकी तरह मन्त्रियोंको सम्राट्के अधीन रहनेकी प्रथा प्रवर्तित हुई। जापानके सम्राट्ने आईन सम्बन्धी समस्त व्यवस्था करनेकी क्षमता अपने ही हाथमें रक्खी।

बीसवीं शताब्दीमें, जापानमें बहुतसे राजनैतिक दलोंकी सृष्टि हो गई, जिनमें 'सैयुकै' नामक दल ही प्रधान है। १८१२ ई०में सम्राट् 'मुत्स्हितो' ४५ वर्ष तक गौरवके साथ राज्य करनेके बाद परलोक सिधारे। ये ही जापानकी उन्नतिके प्रतिष्ठाता थे। १८१७ ई०में जापानके प्रधान मन्त्रीने लायड जार्जकी तरह 'तेरायूचि'-के समस्त दलोंका पारस्परिक मनोमालिन्य मिटा कर, युद्धके लिए सबसे सहायता ली थी।

१८१८ ई०के मार्च मासमें एक नवीन राजनैतिक संस्कार हुआ, जिसमें ऐसा नियम बनाया गया कि जो तीन 'इयन' मात्र कर देते हैं, वे भी भोटके अधिकारी होंगे। इससे १४,५०,०००की जगह ३०,००,००० व्यक्ति भोटके अधिकारी हुए। १८२० ई०में सबको भोट देनेका अधिकार होगा ऐसा बिल पेश हुआ, किन्तु वह नामंजूर हो गया।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि, जापानमें प्रायः भूमिकम्प हुआ करता है। जापानके जिस आग्नेय गिरिको वैज्ञानिकगण निर्वाणिमाग्नि समझते थे, उसके छिद्रोंसे प्रायः बाष्प निकला करती है। उसी 'फुजी' यामा पर्वतके पास १८२३ ई०में भीषण भूमिकम्प हो गया है।

१ सेप्टेम्बरको समाचार मिला कि भूमिकम्पके बाद 'इयोकोहामा' शहरमें आग लग जानेसे नष्ट हो गया है और 'टोकियो' शहरका राजपथ मुर्दोंसे भर गया है। २ तारीखके संवादसे मालूम हुआ कि 'इयोकोहामा' और 'टोकियो'में प्रायः २ लाख आदमी मर गये, आग लग जानेसे बारूदखाना उड़ गया और रेलकी बड़ी सुरङ्ग टूट जानेसे ६ सौ आदमियोंकी जान गई। भूमिकम्पके समय आकाश मेघाच्छन्न था और आंधी भी खूब चल रही थी। भूकम्पके शुरू होते ही लोग डरके मारे भागने लगे; बहुतसे लोग उस भीड़में पिस कर मारे गये और शहर जल कर भस्म हो गया। इसके बादके समाचारसे ज्ञात हुआ कि इस दुर्घटनासे ५ लाखसे भी ज्यादा आदमी मारे गये हैं।

पृथिवीके इतिहासमें भूकम्पसे ऐसी भारी हानि होनेका विवरण कहीं भी नहीं मिलता। 'पम्पे' भी भूकम्पके कारण ध्वंस हुआ था, किन्तु सिर्फ एक ही नगर पर बीती थी। जापानके भूकम्पने एक विराट् साम्राज्यको ही ध्वंसोन्मुख बना डाला है। जापानके जिन प्रदेशोंमें जनसंख्या अधिक थी और जो व्यापारके बड़े केन्द्रस्थान थे, उन्हीं प्रदेशोंका अधिक सर्वनाश हुआ है। 'इयोकोहामा'के बड़े बन्दरमें पोताश्रय विलुप्त हो गये हैं, जहाज नष्ट हो गये हैं और टेलिग्राफ या टेलीफोनके तार आदि ध्वंस प्राय हो गये हैं। किन्तु 'टोकियो'के वृहत् बौद्ध-मन्दिरने सम्पूर्ण ध्वंस हो जाने पर भी अपना अस्तित्व ज्यों का त्यों रक्खा है।

जापानी परिश्रमी, वीरप्रकृति और कर्मपटु हैं, इसलिए आशा की जाती है कि अवश्य और शीघ्र ही 'इयोकोहामा' बन्दर वाणिज्यके कलरवसे पुनः मुखरित होने लगेगा और 'टोकियो'के पुरपथ पार्श्व स्थित सौधश्रेणीकी शोभासे फिरसे लोगोंको मुग्ध करेंगे। परन्तु वर्तमानमें जापानकी जो हानि हुई है, उसकी पूर्ति कितने दिनोंमें होगी, यह नहीं कहा जा सकता।

किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जापान अपनी शक्तिका यथार्थ परिमाण बतलाना नहीं चाहता।

जापानका शिल्प और वाणिज्य—वर्तमान समयमें जापानने वाणिज्यजगत्‌में अच्छा अधिकार किया है। जापानमें उत्पन्न शिल्पद्रव्यने पृथिवीमें प्रायः सर्वत्र ही विशेषतः भारतवर्षमें खूब आदर पाया है। जापानने अपने अध्यवसाय और बुद्धिबलसे ७० वर्षके भीतर असाधारण उन्नति की है—पृथिवी पर जितने शिल्पोंके विकाश हैं उनमें करीब सोलह-आना भाग जापानका ही है।

पहले पहल जापानमें चाय और रेशमका व्यवसाय चलाया था। उस समय फ्रान्स और इटलीमें रेशमके कीड़ोंमें बीमारी फैल जानेसे जापानी रेशमकी खूब ही खपत हुई थी। अगलेके पन्द्रह वर्षोंमें जापानका रोजगार दूना हो गया। इसके बादके पन्द्रह वर्षोंमें उसका वाणिज्य दशगुणा बढ़ गया। इस तरह जापान दिन दिन सम्पत्तिशाली हो उठा—इसने अपनी राष्ट्रीय शक्ति खूब ही बढ़ा ली। १८६८ ई०में जापानको आमदनी और रफ्तनी चीजोंका मूल्य था २ करोड़ ६० लाख 'इयेन' या २६ १०,००० पौण्ड। १८८५ ई०में इससे दश गुणा हो गया और १९१० ई०में उससे भी दो गुणा बढ़ गया। इसके बाद १९२० ई०में उसका परिमाण १९१० गुणा हो गया। जगत्‌के इतिहासमें वाणिज्य सम्बन्धी एतादृश उन्नति अन्यत्र कहीं भी देखनेमें नहीं आती।

गत युद्धके समय जब यूरोप और अमेरिकाकी जातियां युद्धकार्यमें मशगूल थीं, तब जापानने युद्धके उपकरणादि बना कर प्रचुर अर्थोपार्जन किया था। जापानमें १८८६ ई०में ही जहाजका रोजगार खूब तेजीसे चल रहा था। १९१२ ई०में जापानमें सिर्फ ६ जहाजके कारखाने थे, किन्तु १९१८ ई०के मार्च मासमें वहां ५० जहाजके कारखाने बन गये थे और उनमें यूरोप और अमेरिकाके जहाज बने थे।

जापानने पश्चिमी देशोंसे इतना काम करते हुए भी भारतका व्यवसाय शिथिल नहीं किया। उसने महात्मा गान्धीके असहयोग आन्दोलनमें भी कृत्रिम खद्दर (या खादी) बना कर भारतमें भेजा और वह बहुत कम दामोंमें बिकने लगा। इसमें सन्देह नहीं कि जापान कर एक चीजोंके बनाने और नकल करनेमें बहुत ही पटु है।

१९१८ ई०में जापानमें प्रायः २७०० कारखानोंमें यन्त्रादि बनाते थे—रासायनिक पदार्थ भी अधिक बनाते थे।

कृषिकार्यमें भी जापानने काफी उन्नति की है। १८८८ ई०में जापानमें जितनी खेती बारी होती थी, १९१८ ई०में उससे दूनी हो गई थी, किन्तु धानकी खेती ज्यादा होने पर भी चाय, रुई और तम्बाकूकी खेती घट गई है।

जापानी भाषा—१८२० ई०में 'क्लैपरथ'ने निश्चय किया कि जापानी भाषा 'उरल आल्टायिक' जातियोंकी भाषाके अन्तर्गत है। तभीसे भाषातत्त्वविद्‌गण जापानी भाषाकी उत्पत्तिके विषयमें गवेषणा कर रहे हैं। यदि जापानी लोग मङ्गोलीय जातिके हैं, तो उनकी भाषाके साथ 'कोरिय' और चीन भाषाका सादृश्य होना सम्भव है। इतिहासके पढ़नेसे मालूम होता है कि ईसाकी १ली शताब्दीमें भी जापानी कोरियाके लोगोंके साथ द्विभाषाविदोंकी बिना सहायताके वार्तालाप नहीं कर सकते थे। इसलिए कहना पड़ेगा कि उस प्राचीनकालमें भी 'कोरिया' और जापानकी भाषा भिन्न भिन्न थी। जापानके चीना अक्षर और साहित्यके ग्रहण करने पर भी, आज हजार वर्षसे दोनोंकी भाषा पृथक् हो रही है। डा० हिरे माइरने प्रमाणित करना चाहा है कि जापानी आर्यजातिकी ही एक शाखा है। परन्तु यह मत अभी तक सर्वजनसम्मत नहीं हुआ है। प्रत्नतत्त्वविदोंका कहना है कि चीनके सम्पर्कमें आनेसे पहले भी जापानमें एक प्रकारके अक्षर प्रचलित थे, किन्तु यह मत फिलहाल सब मान्य नहीं हुआ।

सम्भव है, इस सिद्धान्तके निश्चित करनेसे कि प्राचीन समयमें जापानियोंने 'कोरिया'के अक्षर देख कर उनका अपने देशमें प्रचार करनेके लिए कोशिश की थी, उक्त समस्याओंका समाधान हो जायगा। उसके बाद जब जापानने चीनसे बौद्ध धर्म और साहित्य ग्रहण किया, तब उसके साथ चीना अक्षर भी अपने

देशमें प्रचार किया। परिणाम स्वरूप एक एक चित्रात्मक अक्षरकी दो प्रकार ध्वनि होने लगी, एक चीनमें और दूसरी जापानमें।

जापानी भाषाका सीखना, विदेशियोंके लिए टेढ़ी खीर है; क्योंकि इसके लिए उन्हें तीन प्रकारकी भाषा सीखनी पड़ती है—प्रथमतः जापानकी साधारण बोलचालकी भाषा, द्वितीयतः भद्र-समाजकी भाषा और तृतीयतः लिखित भाषा। इन तीनोंमें यथेष्ट पार्थक्य है; इसके सिवा यह भी एक बड़ी भारी दिक्कत है कि प्रत्येक शब्दके पृथक् पृथक् अक्षर सीखने पड़ते हैं।

जापानी साहित्य—सबसे पहले जापानी साहित्य-ग्रन्थ ७११ ई०में लिखा गया था। इसका विवरण (जापान शब्दके प्रारम्भ) में लिखा जा चुका है, कि सम्राट् तेम्मू़न (६७३ ६८६ ई०) सिंहासन पर अधिरोहण कर देखा कि संभ्रान्त परिवारोंका इतिहास इतस्ततः विच्छिन्न पड़ा हुआ है, जिसका ग्रन्थाकारमें प्रगट होना आवश्यकीय है। 'हियेदानोअारे' नामवा किसी सम्भ्रान्त महिलाकी स्मृतिशक्ति अत्यन्त प्रखर थी, उन्हीं पर इसके लिखनेका भार सौंपा गया। सम्राट्की मृत्युके बाद सम्राज्ञी 'गेंमो'के समय भी यह ग्रन्थ लिखा गया था। इसका नाम है "कोजिकी"।

जर्मनीके 'सागाओं' की भाँति इसमें भी पृथिवीकी सृष्टिका विवरण, राजाओंका सिंहासनाधिरोहण और उनके राज्यका वैशिष्ट्य लिखा है। इस समय चीनकी सभ्यता और साहित्य जापानमें इतना अधिक व्याप्त हो गया था, कि इसके परवर्ती ग्रन्थमें ही चीनका प्रभाव दीख पड़ता है। इसका नाम "निहोंगी' या जापानका इतिहास है।

ईसाकी १७वीं शताब्दीमें जब जापानी साहित्यका नव उद्बोधन हुआ, तब लोगोंका मन पुनः "कोजिकी" पढ़ने और प्राचीन तथ्यके संग्रह करनेमें दौड़ा। इस समय जापानमें बहुतसी प्राचीन पोथियोंका संग्रह हुआ था। जापानी साहित्यमें प्रधान वैशिष्ट्य है तो वह एक मात्र इतिहास आलोचना है। १८२७ ई०में 'निहोन गैसी' नामक जो ग्रन्थ रचा गया था, उसमें राजकीय सभाकी घटनाओंके सिवा जातिका यथार्थ इतिहास नहीं मिलता इसके अलावा ये सब इतिहास सूखे और नीरस भी हैं।

हां, जापानी कविता चिरकालसे अपने भावोंकी रक्षा करती आई है। इसके छन्द और ताल एक ऐसी स्वतन्त्र वस्तु है कि जो अन्य किसी भी देशकी कविता वा काव्यसे नहीं मिलती। ईसाकी १०वीं शताब्दीके प्रारम्भमें 'सुरायुकि' और उनके तीन सहचरोंने कुछ प्राचीन और तदानीन्तन कविताओंका संग्रह किया है, उस ग्रन्थका नाम है "कोकिनसु"। ईसाकी १३वीं शताब्दीमें 'तियेका कियोनि' एक सौ कवियोंकी एक सौ कविताओंका संग्रह किया था।

जापानी कविताओंमें वाक्-संयम और भाव-संयम यथेष्ट समावेश पाया जाता है इनके हृदयकी गभीरता भावके उच्छ्वासमें व्यथित नहीं होती और न वह झरनेके पानीकी तरह शब्द ही करती है। इनका हृदय सरोवरके जलकी तरह स्वच्छ है।

जापानकी दो प्रसिद्ध और प्राचीन कविताओंका दृष्टान्त देना ही पर्याप्त होगा—

(१) "पुरानी पोखर
मेंढ़ककी कुदाई
पानीकी आहट।"

बस, अब जरूरत नहीं। जापानी पाठकोंका मन मानो आखोंमें भरा है। पुरानी पोखर मनुष्यके द्वारा परित्यक्त हुई है और वहां अब निस्तब्ध अन्धकार है। उसमें एक मेंढ़कके कूदते ही शब्द सुन पड़ा। यहां एक मेंढ़कके कूदने पर शब्दका सुनाई देना पुरानी पोखरकी गम्भीर निस्तब्धताको प्रकट करता है। इस कवितामें पुरानी पोखरका चित्र किस खूबीके साथ खींचा गया है, इसका अनुमान पाठक ही करें; कविने सिर्फ इशारा कर दिया है। दूसरी कविता यह है—

(२) "सूखी डाल
एक काक
शरत् काल।"

बस, इतनेहीसे समझ लिया गया कि शरदृतुमें

(१) (२) यहां जापानी भाषाकी कविता उद्धृत न करके उसका हिन्दी अभिप्राय वा छायानुवाद प्रगट किया गया है।

पेड़की डालीसे पत्ते नहीं हैं, तो एक डाली सूख का गल गई है और उस पर कौआ बैठा है। शीतप्रधान देशोंमें शरत्काल उपस्थित होने पर पेड़ोंके पत्ते झड़ जाते हैं, फूल गिर जाते हैं और देशमें आकाश म्लान हो जाता है। यह ऋतु-हृदयमें सूखा का भाव लाती है। सूखी डाल पर कौआ बैठा है, इतनेसे ही पाठक शरत् कालको सम्पूर्ण रिक्तता और म्लानताका चित्र अपनी आँखोंके सामने देख सकते हैं। और भी एक कविताका दृष्टान्त दिया जाता है जिससे जापानके आध्यात्मिक भावका परिचय मिलता है—

'स्वर्ग और मर्त्य देवता और बुद्ध फूल हैं मनुष्यका हृदय है उन फूलोंका अन्तरात्मा।"

इस कवितामें जापानके साथ भारतके अन्तरका मिलन हुआ है। जापानने स्वर्ग और मर्त्यको विकसित फूलके समान सुन्दर देखा है। भारतवर्षमें कहा है—"एक वृन्त पर दो फूल लगे हैं—स्वर्ग और मर्त्य, देवता और बुद्ध; मनुष्यके यदि हृदय न होता तो वह सिर्फ बाहरके लोगोंकी ही सम्पत्ति होती। इस सुन्दरका सौन्दर्य मनुष्यके हृदयमें है।"

जापानके साहित्य पर महिलाओंका प्रभाव बहुत अधिक है। पहले पहल सम्राटो 'सुइको'के अधीन जापानमें पोथियोंका अनुसन्धान प्रारम्भ हुआ था। सम्राज्ञी 'गेम्मेई'की अधीनतामें प्रथम इतिहास लिखा गया था। ईसाकी ८वीं शताब्दीमें, ऐसा मालूम पड़ता है मानो जापानकी स्त्रियों पर ही जापानी साहित्यकी रक्षाका भार सौंप दिया गया है। पुरुष जिस समय चीनका अनुकरण करनेमें मस्त थे उस समय स्त्रियोंने घरमें बैठ कर जापानी भाषाकी उत्तमोत्तम कविताओं और साहित्यकी सृष्टि की थी। अब भी जब कि सभी लोग देशी पोशाक छोड़ कर विदेशी पोशाकको अपना रहे हैं जापानी स्त्रियां अपने घरकी और देशकी पोशाक ही पहनती हैं। जापानी स्त्रियोंकी कथित भाषा अब भी पुरुषोंकी अपेक्षा कोमल और मधुर होती है। ईसाकी ११वीं शताब्दीके प्रारम्भमें 'मुरासाकि नो शिकबु' नामक एक महिलाने सबसे पहले जापानी उपन्यास लिखा था जिसका नाम है "गेन्जी मोनोगातारी"। यह उपन्यास क्या है मानो एक गद्य-काव्य है। इसकी जैसी भाषा है वैसे ही भाव हैं—दोनों ही मधुर और उत्तम हैं। उस समयके और एक उपन्यासका नाम है 'माकुरा नो सोशी" या तकियेकी कहानी। यह भी एक महिला का लिखा हुआ है। इसमें दैनन्दिन जीवनकी घटनाओं और इतस्ततः विक्षिप्त चिन्ताराशिका चित्र खींचा गया है। इसके समान सरल और स्वाभाविक ग्रन्थ संसारमें बहुत कम देखनेमें आते हैं।

ईसाकी १४वीं शताब्दीके प्रारम्भसे ले कर १७वीं शताब्दी पर्यन्त जापानी साहित्यकी विशेष कुछ उन्नति नहीं हुई। इस बीचमें सर्वदा युद्ध होते रहनेसे साहित्य का विकास बिलकुल बन्द गया था। इतने बड़े समयमें सिर्फ दो ही ग्रन्थ रचे गये थे जिनमें एक राजनैतिक और दूसरा ऐतिहासिक था। इनमें कुछ विशेषता न थी।

परन्तु इस तमसाच्छन्न युगमें ही जापानी नाटककी उत्पत्ति हुई थी। कहा जाता है कि जैसे ग्रीस या भारतवर्षमें धर्ममूलक नृत्यसे नाटककी उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार जापानमें भी 'शिन्तोधर्म'के नृत्यसे नाटक उत्पन्न हुआ है। परन्तु यथार्थमें देखा जाय तो बौद्धधर्मके प्रभावसे ही जापानमें नाटकका विकास हुआ है। प्रथम युगमें, नाटकमें भगवान् प्रदत्त दण्ड जीवनकी अनश्वरता और पाप-तापसे मुक्ति होनेके उपायका विषय लिखा जाता था और कुछ नाटक ऐसे भी होते थे जिनमें युद्धादि का विवरण रहता था। परवर्ती युगमें सैनिक और सामन्त सम्प्रदायने नाटक-रचनाके लिए यथेष्ट उत्साह प्रदान किया था। १८वीं शताब्दीमें नाट्यकार 'चीकामात्सु मोन्जाएमोन' और उनके पुत्र 'मोतोकियो'ने बहुतसे नाटक लिखे थे। पाश्चात्य सभ्यताके प्रथम समागमके समय जापानके नाटक लुप्तप्राय हो गये थे किन्तु शीघ्र ही जातीय भावके जाग्रत होनेसे यह विपत्ति दूर हो गई।

जापानी लोग हास्यप्रिय होते हैं। इसलिए यह सहज ही अनुमान होता है कि उनके साहित्यमें प्रहसनोंकी संख्या अधिक होगी। जापानी प्रहसनों को 'किओगेन' पागलकी बात कहते हैं।

१६०३से १८६७ ई० तक जापानी साहित्यकी खूब ही उन्नति हुई। 'फुजिवारा-सैकोया'ने (१५६०-१६१८ ई०) जापानमें चीनके 'चू-हि' नामक दार्शनिकके ग्रन्थोंका प्रचार किया था। 'हयासि रासान'ने (१५८७ १६५७ ई०) दर्शन सम्बन्धी प्राय: ७० ग्रन्थ रचे थे। 'कैबरा-एकेन'ने (१६३०—१७१४ ई०) नीतिशास्त्रका प्रचार किया था। 'आराई हाकूसेकि' (१६४७—१७२५ ई०) जापानके प्रसिद्ध ऐतिहासिक, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और अर्थनीतिज्ञ विद्वान् थे। इन विद्वानोंकी कोशिशसे जापानी साहित्यकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। इस समय कथा-साहित्य वा उपन्यास आदिका काफी प्रचार था। जापानमें ईसाकी १७वीं शताब्दीमें बच्चोंके लिए नाना प्रकारके साहित्य ग्रन्थ रचे गये थे।

वर्तमानयुगमें जापान पर पाश्चात्य सभ्यता, विज्ञान और साहित्यका प्रभाव खब ही पड़ा है। बहुतसे अंग्रेजी ग्रन्थोंका जापानी भाषामें अनुवाद हो चुका है और हो रहा है। 'रूसो' के Contract Social-के जापानी भाषामें अनुवाद होने पर, जापानमें सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनका सूत्रपात हुआ था। ब्लडैरन, लिटन, डिसरैली, बायरन, सेक्सपियर, मिल्टन, टुर्गेनिभ, कार्लाइल, टोदत्, एमर्सन, ह्यगो, ह्वाइन, डिकुइन्सि, डिकेन्स्, फोरनर, गेटे प्रभृति पाश्चात्य लेखकोंने जापान पर अपना यथेष्ट प्रभाव डाला है और उनके प्राय: सभी ग्रन्थ अनूदित हुए हैं। जापानमें मौलिक साहित्यका सूत्रपात भी फिलहाल हो चला है।

जापानमें चित्रकला—जापानियोंमें यह एक बड़ा भारी गुण है कि वे किसी भी चीजको छोटी समझ कर उसकी अवहेला नहीं करते, सभी चीजोंमें उन्हें एक प्रकारका सौन्दर्य नजर आता है। स्त्री और पुरुषमें स्रष्टाकी जो महिमा प्रकाशित हुई है, वह पशु और पक्षी वा कीट और पतङ्गोंमें भी विद्यमान है। क्या छोटा और क्या बड़ा क्या सुन्दर और क्या असुन्दर, जापानी चित्रकारके लिए सभी समान हैं। बङ्गालके शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ लिखते हैं—"जापानी शिल्पीके लिए सुन्दर और असुन्दर, स्वर्ग और मर्त्य सब बराबर हैं। वे गोचर और अगोचर समस्त पदार्थोंका मर्म ग्रहण कर लेते हैं और उस मर्मको सहजमें साफ तौरसे प्रकट कर सकते हैं।"

जापानी चित्रकारोंकी रेखाङ्कणकी एक पृथक् भाषा है। पहाड़, नदी, समुद्र, वृक्ष, पत्थर आदि विभिन्न पदार्थोंकी विशेषता प्रकट करनेके लिए वे विभिन्न प्रथाओंका अवलम्बन करते हैं। वे दो एक बार कूंची फेर कर नितान्त नगण्य वस्तुमें भी, जो हमारी दृष्टि आकर्षित नहीं करती, अपूर्व सौन्दर्य भर देते हैं। यह बात अन्य देशोंके चित्रकारमें नहीं पाई जाती।

जापानमें एक ऐसा मैत्रीभाव है, जिससे उन लोगोंने विश्वके समस्त पदार्थोंको सुन्दर बना डाला है। जापानी लोग यथार्थमें सौन्दर्यके उपासक हैं। जापान देशने जापानियोंको सौन्दर्यप्रिय बना दिया है। जापान देश मानो एक तसवीरोंकी किताब है—इसके एक छोरसे दूसरे छोर तक चले जाओ, मालूम होगा, मानो तसवीरके पन्ने उलट रहे हैं।

जापानके प्राचीन चित्रकारोंमें, अधिकांश कोरियन शिल्पियोंके नाम देखनेमें आते हैं। उस समय राजकुमार 'शोटाकू'ने उन लोगोंको यथेष्ट उत्साहित किया था। उन्होंने अपनी तसवीर भी खींची थी। नारा-युगमें (७०८ से ७८४ ई० तक) अनेक सुन्दर चित्र बनाये गये थे। होरिउजि-मन्दिरमें भी उस समय बहुतसे चित्र खींचे गये थे। ये चित्र हमारे अजान्ताके चित्रके समान हैं। अजान्ताकी १ नं० कोठरीमें प्रवेश करते समय दरवाजेके बाईं ओर बोधिसत्वकी जो मूर्ति है, उसके साथ 'होरिउजि' मन्दिरकी बोधिसत्वकी मूर्तिका सादृश्य है।

नारा-युग वा बौद्धयुगके बाद 'असन इय मातो' चित्रकारोंका युग है। इनमें सबसे प्रसिद्ध चित्रकार 'हलकानोका' थे, जो ८वीं शताब्दीमें हो गये हैं। इनके श्रेष्ठ चित्रका नाम है "नाचिका जलप्रपात"। इसमें पर्वत-शिखरके ऊपर मेघाच्छन्न रात्रि है और झरनेका जल बहुत ऊंचेसे गिर रहा है, ऐसा दृश्य दिखलाया गया है।

इसके बाद 'टोसा'-चित्रकारोंका युग है। ये प्रधानत: दरबारका दृश्य और सम्राट्, उमरावोंका चित्र खींचते थे।

किया। प्राचीनकालसे ही जापानका चीनसे घनिष्ट सम्बन्ध है, यह बात पहले कह चुके हैं। कहा जाता है कि जिस समय चीनमें बौद्धधर्मका घोरतर आन्दोलन हुआ था, उस समय जापान चीनसे सर्वशेष परिचित था और फिर ५५२ ई०में चीनदेशसे उसने बौद्धधर्म ग्रहण किया।

बौद्धधर्म चीनकी अपेक्षा जापानमें अधिकतर बद्धमूल हुआ है; इसके कई एक कारण हैं। चीनमें कनफुचिका धर्म जातीय धर्मके रूपमें परिगणित हुआ था। राजाओंने उसी धर्मको राष्ट्रीय धर्म बतलाया था। इसलिए चीनमें बौद्धधर्मका उतना प्रचार नहीं हुआ, जितना कि जापानमें हुआ है। जापानमें बौद्धधर्मके आविर्भावसे पहले कनफुचि-धर्मका अधिक प्रचार नहीं हुआ था, इसलिए छोटेसे लगा कर बड़े तक, सबने बौद्धधर्मको खूब अपनाया।

बौद्धधर्मके साथ जापानकी सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्थाके सिवा सैन्यव्यवस्थाका भी घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता है। यही कारण है कि जापानमें बौद्धधर्मकी अनेक शाखाएं हो गई हैं। भारतवर्ष अथवा चीनकी तरह यहांकी शाखाओंने सामान्य पार्थक्योंका अवलम्बन नहीं किया है। वहां एक शाखाका दूसरी शाखासे विभिन्न प्रकारका मतभेद पाया जाता है और उस पर प्रतिद्वन्द्विता होती है।

जापानमें बौद्धधर्मकी बारह शाखाएं हैं। परन्तु इनका नाम सर्वदा एकसा नहीं रहता। साधारणतः उनके नाम इस प्रकार है—१ कुशा, २ जो-जित्सु, ३ रिट्सु वा रिसु, ४ सनरन, ५ होसो, ६ केगोन, ७ टेण्डे, ८ सिङ्गन, ९ जोदो, १० जेन, ११ शिन और १२ निचेरेन।

ऐतिहासिक दृष्टिसे ये शाखायें सत्य प्रतीत होती हैं। परन्तु १ली, २री, ३री, और ४थी शाखा प्रायः निर्मूल हो गई है। सुतरां वर्तमानमें कोई कोई इस प्रकार भी बारह शाखा गिनाते हैं—१ होसो, २ केगोन, ३ टेण्डे, ४ सिङ्गन, ५ युजु वा नेम्बुत्सू, ६ जोदो, ७ रिझ्जे, ८ सोटो, ९ ओवाकु, १० शिन, ११ निचेरेन और १२ जी।

इनमें ७वीं, ८वीं और ९वीं शाखा जेनकी ही उपशाखाएं हैं तथा ५वीं और १२वीं शाखा अचल चुङ्कायी हैं। पहली तालिकामेंसे प्रारम्भकी ८ शाखाओंको जापानी लोग 'ह्रासू' कहते हैं और वे चीनसे लाई गई हैं। उनमें चीनके 'नारा' और 'हे-यान' युगके बौद्धधर्मका वैशिष्ट्य अब भी विद्यमान है। शेष चार शाखाओंका आविर्भाव ११७० ई०के बाद हुआ है। जापानमें उनकी सृष्टि नहीं हुई, किन्तु नवीनतासे संगठन अवश्य हुआ है। समयानुसार श्रेणीभेद करनेसे प्रत्येक शाखाकी प्रतिष्ठाका समय इस प्रकार निरूपित होता है—

१। सप्तम शताब्दी—सानुरन ६२५ ई०
जोजित्सू ६२५ ई०
होसो ६५८ ई०
कुशा ६६० ई०

२। अष्टम शताब्दी—केगोन ७३५ ई०
रित्सू ७४५ ई०

३। नवम शताब्दी—टेण्डाई ८०५ ई०
सिङ्गन ८०६ ई०

४। द्वादश और त्रयोदश शताब्दी—
युजु नेम्बुत्सू ११२३ ई०
जेदो १२०२ ई०
शिन १२२४ ई०
निचिरेन १२५३ ई०
जी १२७५ ई०

जापानी बौद्धधर्मकी प्रत्येक शाखा जो उल्लेखयोग्य हैं, महायान-सम्प्रदायके अन्तर्गत है। हीनयन सम्प्रदायके मतका सिर्फ कुसू, जोजित्सू और रिसू शाखा ही अनुवर्तन करती थी। परन्तु इनमेंसे पहलेकी दो शाखाएं तो विलुप्त हो गई हैं, तीसरीके कुछ अनुयायी मौजूद हैं और चौथी शाखा महायान सम्प्रदायकी विरोधी नहीं है—सिर्फ आचार-व्यवहारमें थोड़ासा भेद मानती आ रही है।

होसो और केगोन ये दो शाखाएं इस समय मौजूद तो हैं, पर उनका अस्तित्व धर्मभावकी रक्षाके लिए नहीं, बल्कि कुछ सम्प्रदायी जमींदारीकी रक्षाके लिए है।

इस धर्मका प्रधान गुण साम्यवाद है। इसमें किसी प्रकारका जाति-विचार नहीं है, तन्त्र मन्त्र भी नहीं है। यह न तो स्वर्ग पहुंचानेकी तमन्ना देता और न नरकमें पटकनेका भय। इसमें मूर्ति पूजा नहीं है, पुरोहितोंका अत्याचार नहीं है, यहां तक कि धार्मिक वादविवाद और उससे मनोमालिन्य होनेका भी डर नहीं है। ऐसी दशामें यह कहना बाहुल्य न होगा कि इस देशके इतिहासमें धार्मिक वाग्‌वितण्डा, कलह या युद्धादिका उल्लेख ही नहीं है। यहां सभी धर्मोंको स्थान मिल सकता है। शिन्तो धर्मका आदर्श महत् है, इसमें सन्देह नहीं।

जापानके अधिकारियोंने विदेशियोंको तभी दण्डित किया है, जब उन्होंने धर्म-प्रचारकी ओटमें राजनैतिक चाल चल कर साम्राज्यके अनिष्ट करनेकी चेष्टा की है। जापानी इतिहासके ज्ञाता इस बातको अवश्य जानते हैं, कि साम्राज्यकी विपदाशङ्कासे जापानकी तलवार अवश्य चमक उठी है, पर केवल धर्म-विश्वासके लिए उसने कभी किसी पर अत्याचार नहीं किया है। कोई कोई पाश्चात्य विद्वान् इस बात पर हंस देते हैं, परन्तु यह उनकी भूल है।

इस धर्मका प्रधान अङ्ग है प्रकृतिकी पूजा करना और मृत व्यक्तिके लिए सम्मान दिखाना। जापान जैसी सौन्दर्यप्रिय जातिको स्वदेश प्रति और देशभक्तिमें दीक्षित करनेके लिए इससे उत्कृष्ट धर्म दूसरा नहीं हो सकता।

जापान पाश्चात्यका मोह अब भी नहीं छोड़ सका है। यही कारण है कि अब वह पार्थिव उन्नतिके लिए जी-जानसे कोशिश कर रहा है। पारमार्थिक विषयमें जापानका बिलकुल ही नहीं है। जापानके शिक्षित व्यक्ति इस समय धर्मसे सम्पूर्ण उदासीन हैं।

जापानकी सामाजिक-प्रथा—पुरुषोंकी तरह जापानकी स्त्रियां भी अत्यन्त परिश्रमशील और कर्तव्यपरायण होती हैं। छोटे छोटे बच्चोंको पीठसे बांध कर आसानी से सब काम किया करती हैं।

जापानी ऊपरसे जितने साफ सुथरे रहते हैं, भीतरसे उतने नहीं। शौचके लिए ये पानी काममें न ला कर कागजसे ही काम चलाते हैं। ये किसी बड़े पात्रमें पानी रख कर दोनों हाथोंसे मुंह धोते हैं और उस मैंसे पानी-की ज्योंका त्यों पड़ा रहने देते हैं। इनकी स्नान करने-की रीति बहुत ही भद्दी है। पहले स्त्री और पुरुष दोनों नंगे हो कर एक हौजमें नहाया करते थे, किन्तु अब नव-सभ्यताके प्रकाशमें उसका कुछ परिवर्तन हो गया है—स्त्री और पुरुष भिन्न भिन्न हौजोंमें नहाने लगे हैं। किन्तु एक मात्र २०।२५ स्त्री वा पुरुषोंका नग्नावस्थामें नहाना अब भी नहीं जाती है। नहाते वक्त भद्र अभद्र-का वा बड़े छोटेका भेद नहीं रहता, सब एक ही हौजमें नहाते और मुंह आदि धोया करते हैं। एक ही हौजमें लगातार सौ दो सौ आदमी नहा जाते हैं, पर तो भी उसका पानी नहीं बदला जाता। इनके स्नानका कोई निर्दिष्ट समय नहीं है। 'फुरो' नामके स्नाना-गार रातको १२ बजे तक खुले रहते हैं, उनमें जिसकी जब तबीयत हो नहा आते हैं। साधारणत: ये दिन भर परिश्रम करनेके बाद सोनेसे पहले रातको नहाते हैं।

जापानके लोग सामको ६।७ बजेके भीतर ही सन्ध्या भोजन कर लेते हैं। सुबह रसोई बनानेके लिए ज्यादा समय न मिलनेसे तथा दोपहरको काममें लगे रहनेसे भोजनकी व्यवस्था ठीक नहीं होती। इसलिए सामको ही उनका असली 'गोस्नी' वा आहार बनता है। साम-को ये चार पांच तरहकी तरकारियां और कई तरहके तेमन बनाते हैं। किन्तु दोपहरको साधारण भोजन से ही काम चला लेते हैं।

कोई भी परिचित वा अपरिचित जापानी जब किसी घरमें प्रवेश करना चाहता है, तब वह असभ्योंकी तरह बाहरसे चिल्लाता वा दरवाजेमें धक्का नहीं लगाता; बल्कि "माफ कीजिये" कह कर उंगलीसे दरवाजा खटकाता है। पलक मारनेके साथही घरकी मालकिन द्वार पर आ जाती है और "पधारिये" कह कर आगन्तुक व्यक्तिको घरमें बुलाती है। आगन्तुक भी बार बार "धन्यवाद" देता हुआ घरमें प्रवेश करता है। इस 'धन्य-वाद'के लेन देनमें करिब २-३ मिनट समय चला जाता है। फिर घरमें जा कर वह एक प्याला चाय और कुछ 'बिस्कुट' खाता है।

जापानियोंके मृतदेह संस्कारमें भी अपेष्ट वैचित्र्य पाया जाता है। जापानी रीतिके अनुसार मुरदेको २४ घण्टे तक घरहीमें रखना पड़ता है। इस समय मृत-व्यक्तिके परलोकमें मङ्गलके लिए पुरोहित पत्र, पिष्टक, धूप और प्रदीप द्वारा पूजा करते हैं। इस पूजामें फूलों आदिका व्यवहार नहीं होता। जो लिस कोठरी या कमरेमें मुरदा रहता है, उसे फूलोंसे अलङ्कृत करते हैं। इस पूजामें बौद्धधर्मावलम्बी पुरोहित चीन भाषामें मन्त्र पाठ करते हैं। मुरदा पुरोहितके सामने एक सुरम्य सन्दूक या डोलीमें रखा जाता है और ऊपरसे एक बहुमूल्य वस्त्र ढक दिया जाता है। मृतव्यक्तिके आत्मीय स्वजन मात्र सुफेद कपड़े पहन कर चारों तरफ बैठ जाते हैं। देखनेसे यही मालूम होता है, मानो किसी वृहत् पूजनका अनुष्ठान हो रहा है। किसीके मुखसे शोक या दुःख प्रकट नहीं होता, सभी रोजकी तरह प्रसन्नचित्त रहते हैं। जापानियोंका सिद्धान्त है कि 'जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य ही' फिर उसके लिए दुःख या शोक करना वृथा है। ऐसी दशामें दृढ़चित्तसे उसके परलोक सुधारने या मङ्गलके लिए कामना करना ही युक्तियुक्त है। साधारणतः जापानी लोग मृतव्यक्तिको उसके जन्म-स्थानमें समाधिस्थ करते हैं। यदि किसीकी मृत्यु दूर देशमें हो, तो उसका दाह किया जाता है तथा उसके दांत और कुछ केश जन्मस्थानमें गाड़े जाते हैं। जन्म-भूमि जापानियोंके लिए कितनी प्रिय वस्तु है यह बात इसीके दृष्टान्तसे सहज ही समझ सकते हैं।

समाधि शेष होने पर ४९ दिन तक अशौच रहता है और समाधिस्थानमें प्रति मास पिष्टक या अन्यान्य खाद्यद्रव्य भेजे जाते हैं। माता अथवा पिताकी मृत्यु होने पर एक काठ पर पुत्र उनके नाम लिख कर घरके एक कोनेमें स्थापित करता है। प्रतिदिन सुबह शाम उस स्थानमें कुछ खाद्यद्रव्य दिया जाता है। इस तरह जापानमें पूर्वपुरुषों की पूजा प्रचलित हुई। प्रत्येक जापानीके मकानमें पितृपुरुषोंकी पूजाके लिए एकान्त स्थान निर्दिष्ट है। वहां नाना उपचारों द्वारा उनकी पूजा की जाती है। वे पूर्व पुरुषों को देवताके समान पूजा करते हैं। वर्षमें एकबार उनकी पूजा की जाती है। किसीके पिता अथवा माताकी मृत्यु होने पर चार वर्ष तक उनकी प्रतिमास पूजा की जाती है। पीछे वर्षान्तमें एकबार पूजा की जाती है।

जापानियोंमें काम कर स्त्रियां खूब सुबह उठती हैं और अपना काम करने लग जाती हैं।

जापानकी तरह पादुकाओंके विचित्र और विभिन्न विभाग और कहीं भी नहीं है। देशीय पादुकाएं प्रधानतः ६ भागोंमें विभक्त हैं—१ 'गेटा'—यह खड़ाऊ की भांतिकी होती है, किन्तु इसमें खूंटी नहीं होती। यहां यही प्रधान समझी जाती है। इसे पहन कर लोग ११।२० मील तक चल सकते हैं। २ 'अमोदा'—इसकी गठन 'गेटो'के समान ही है, फर्क सिर्फ इतना ही है कि इसके नीचे ७।८ अंगुल लम्बे दो पाये लगे रहते हैं। इसका व्यवहार सिर्फ बरसातके दिनोंमें ही होता है। ३ 'ज्योरे'—इसकी आकृति ठीक बर्मा स्लीपर जैसी है। फर्क इतना ही है कि बर्मा स्लीपर चमड़ेकी होती है और यह पुआल या बांसकी। ४ 'वाराजो'—इसकी शक्ल 'ज्योरे' जैसी ही है; सिर्फ इसमें डोरीसी रस्सी लगी रहती है जिसे पैरमें बांध कर चलना पड़ता है। चलते समय इसमें स्लीपरकी तरह आवाज नहीं होती। इसे किसान लोग पहनते हैं। ५ 'धकापुटा'—यह जाड़ोंमें बर्फके ऊपरसे चलनेके लिए व्यवहृत होती है। ६ 'चैरा' इनके सिवा जापानमें और भी बहुत तरहके विदेशी जूतोंका प्रचलन है, जो बनते यहीं है पर आदर्श विदेशका है।

जापानमें प्रतिवर्ष मृत्युसंख्याकी अपेक्षा जन्मसंख्या ५ लाख अधिक हुआ करती है। इसीसे मालूम हो सकता है कि जापानमें लोकसंख्या किस तरह बढ़ रही है। यह ठीक है कि दरिद्रके ज्यादा सन्तानका होना दुर्भाग्य-का चिह्न समझा जाता है, किन्तु जापानमें सन्तानकी शिक्षा दीक्षाका भार सिर्फ पितामाता पर ही नहीं रहता, बल्कि सामाजिक सहायताकी भी वहां उत्तम व्यवस्था है। यही कारण है कि यहांकी भी दरिद्र सन्तान खाद्यद्रव्य या शिक्षा दीक्षाके अभावसे वञ्चित नहीं रहती। १८२१ ई०में मिचेल मार्कहैड यान्गार

नामक एक मार्किनमहिला जापानमें जन्म-मंगोष-प्रणालीके विषय वक्तृता देने गई थीं, किन्तु कलकत्ता विश्वविद्यालयके अध्यापक श्रीयुक्त आर० किमूराका कहना है कि उनकी बात पर किसीने भी ध्यान नहीं दिया था। इससे मिसेज मार्गरेट असन्तुष्ट हो कर प्रचारार्थ कोरिया और चीन चली गईं।

जापानियोंकी विवाह-प्रणाली भारतसे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। वहां भी पहले पुत्रकन्याओंका विवाह-सम्बन्ध मातापिता ही करते हैं और उनकी असम्मति न होने पर "नाकाद" भेज घटक द्वारा सम्बन्ध स्थिर करते हैं। यहां जैसे विवाह कार्यकी धर्मानुष्ठान समझ कर पुरोहितों द्वारा उसका कार्य सम्पादन होता है, वैसा जापानमें नहीं होता। जापानियोंके लिए विवाह कार्य एक सामाजिक अनुष्ठानके सिवा और कुछ भी नहीं है। इसीलिए वहां विवाहके सब कार्य घटक द्वारा ही सम्पादित होते हैं।

जापानमें ऐसा कानून है कि पुरुषकी उमर १७ और स्त्रीकी उमर १५ वर्ष होने पर, उन्हें विवाह करनेका अधिकार हो जाता है। परन्तु इस कानूनको कोई मानता नहीं। सामाजिक व्यवहार-क्षेत्रमें स्त्रियां १८ से २५ और पुरुष २२ से ३५ वर्षके भीतर व्याह कर लेते हैं। कहीं कहीं इससे भी ज्यादा उमरमें व्याह होता है। शिक्षालाभ और आर्थिक असामर्थ्य ही प्रधानतः इस विलम्बमें कारण है।

घटक और पितामाताके साथ मुलाकात होने पर लड़के और लड़कियां भी परस्पर मिल कर भावी स्त्री वा स्वामीको चुन लेती हैं। लड़कीकी गोद भरते समय लड़केका बाप लड़कीवालेको रुपया देता है। धनी व्यक्ति पांच छ सौ रुपया तक दे डालता है। रुपयेके साथ एक लाल वृहत् सामुद्रिक 'भेटकी' मछली उपहारमें देता है, जो बड़ा शुभ समझी जाती है। इस दिन लड़कीवाला लड़केवालेको बड़े आदरके साथ जिमाता है। जिमानेमें पहले सामाजिक नियमानुसार शराब पिलाता है और साथ ही विवाहमङ्गलके गीत गाये जाते हैं। इसी दिन विवाहका मुहूर्त्त शोधा जाता है।

इसके प्रायः तीन चार मास बाद विवाह हो जाता है। जापानमें रुपये पैसेके लेन-देन नहीं होता, किन्तु लड़कीवाला लड़कीको पोशाक और गहना बहुत बनवा देता है।

जापानी लोग जमीन पर थाली रख कर नहीं खाते और न अङ्गरेजोंकी तरह टेबिल पर ही खाते हैं। उनके भोजनके कमरेमें १ फुट ऊंचा तख्त बिछा रहता है, जिस पर १ इञ्च मोटी चटाई रहती है।

उस पर स्त्रीपुरुष सब एकसाथ वीरासनसे बैठते हैं और अपने अपने सामने चौकी पर थाली रख कर भोजन करते हैं। किन्तु आजकल पाश्चात्यके अनुकरणसे कुछ लोग टेबिल पर भी खाने लगे हैं। वे ज्यादातर चीना-मिट्टीके बरतन ही काममें लाते हैं।

विशेष भोज उपस्थित होने पर भात ही खिलाया जाता है, किन्तु उसके साथ नाना प्रकारके व्यञ्जन और मिठाई भी परोसी जाती है और बड़े बड़े भोजोंमें 'गेसा' बालिकाएं परोसनेके लिए नियत की जाती हैं, जो नाट्य-गीतकलामें सुदक्ष होती हैं। हर एक 'गेसा' बालिकाको इस कामके लिए १०) रु० घण्टेके हिसाबसे मेहनताना दिया जाता है। इनमेंसे कुछ परोसती हैं, कुछ गाती हैं कुछ बजाती हैं और कुछ हावभाव दिखा कर नाचतीं वा अभिनय करती हैं; सारांश यह है कि वे भोजन करनेवालोंको सब तरहसे खुशदिल रखती हैं। कभी कभी, यदि बन्दोबस्त ठीक हो तो, रात भर इसी तरह आनन्दभोज होता रहता है।

जापानमें एक प्रकारकी देशीय पोशाक प्रचलित है, जो 'किमोनो' कहलाती है। १८६८ ई०में जब पहले पहल जापानी पाश्चात्य सभ्यतासे परिचित हुए थे, तभीसे जापानके पुरुष काम काजके सुभीतेके लिए यूरोपीय पोशाकका व्यवहार करने लगे हैं। यही कारण है कि इस समय जापानमें क्या कर्मस्थल और क्या विद्यालय, सर्वत्र ही कोट पतलून नजर आने लगे हैं। इसलिए आजकल जापानके उच्च और मध्यम श्रेणीके लोगोंको बाध्य हो कर देशीय और पाश्चात्य दोनों प्रकारकी पोशाक रखनी पड़ती है।

'किमोनो' पोशाकके नीचे जापानी स्त्री और पुरुष भिन्न भिन्न पोशाक पहनते हैं। पुरुष गलेसे कमर तक

एक रस्सीकी गद्दी और उसके नीचे 'फाक्-दोसी' की छोटा 'पेन्ज' पहनते हैं तथा स्त्रियां भी पहना करती हैं। भीतरके इस पोशाकके ऊपर हर वक्त 'किमोनो' पहना जाता है, जो चोगेका सरीखा होता है। इसमें बटन नहीं होते। दोनों पल्लों को समान कर उनमें कमर पर कपड़े की पट्टी बांध कर काम लिया जाता है। इस पट्टीको जापानी भाषामें 'ओबी' कहते हैं। पुरुषों की 'ओबी' लम्बाई चौड़ाईमें बहुत कैसी होती है किन्तु स्त्रियों की 'ओबी' लम्बाईमें आठ दस हाथ लम्बी होने पर भी चौड़ाईमें आध हाथसे ज्यादा नहीं होती। स्त्रियों की 'ओबी' कमखाबकी और देखनेमें खूबसूरत होती है। स्त्रियां इसे दो तीन फेरा कमरके लपेट कर बाकीका हिस्सा पीठकी तरफ लटकाती हैं।

कार्तिकसे चैत तक छः मास जापानमें शीत ऋतु रहती है। इन दिनों यहांके लोग रुईदार पोशाक पहनते हैं।

जापानी स्त्रियां नाचते समय सिर्फ जमीनसे पैर छुलाती हुई इधर उधर घूमा करती हैं पैरोंकी आवाज सुनाई नहीं पड़ती। नाचते वक्त वे तरह तरहकी गत बनाती हैं; कभी पुष्पपतिकी तरह पंख फैलाती हैं और कभी आपसमें एक दूसरेका हाथ पकड़ कर घिरका आकार बना लेती हैं। तात्पर्य यह है कि इनका नाच बड़ा विचित्र और मनोमुग्धकर होता है। नाच होते समय कुछ युवतियां 'सामिसेन' और उसके द्वारा बाज ढाट (ऐकतान) बजाती हैं। नाचकी पोशाक इतनी लम्बी होती है कि नाचनेवालोंके पैर तक नहीं दीखते। इसीलिए नाचते समय उनकी शोभा रंगीन बादलों की तुलना करने लगती है।

कामाकुरा-पद्धति— मेइजी (१८६८ ई०)के पहले जापानमें विद्याचर्चा बहुत कम थी। बुद्धिजीव विद्या चर्चाकी अपेक्षा शस्त्रचर्चाका अधिक आदर करते थे। यहांके राज समासदोंकी यह धारणा थी कि जिनमें धर्म विद्यमान है, उनके लिए विद्याचर्चा शोभा नहीं देती, विद्याचर्चा दुर्बलों का धर्म है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि उस समय वहां विद्यालय थे ही नहीं।

अब जापानकी शिक्षा प्रणाली अमेरिकाके आदर्श पर संगठित हुई है। साधारण विद्यालयोंकी प्रतिष्ठा कर उनके द्वारा शिक्षाप्रचारका उपाय सबसे पहले डा० डेविड मरे नामक एक अमेरिकन सज्जनने आविष्कृत किया था। ये १८७३ से १८८० ई० तक जापानके शिक्षा सचिवके परामर्शदाता थे।

यहांके बालक या बालिकाओंकी उम्र जब ६।७ वर्ष की हो जाती है तब उन्हें स्कूलोंमें भेजा जाता है उससे पहले वे घरहीमें शिक्षा पाते रहते हैं। माता उन बच्चों की शिक्षाप्राप्तिमें यथेष्ट सहायता पहुंचाती है। उनको घर ही पर गाना सिखाया जाता है और संगीत द्वारा सफर एवं ऋषियोंको साधारण भूगोल पढ़ाई जाती है। जापानी लड़कोंको पढ़नेमें चीना अक्षर सीखनेके लिए बहुत समय नष्ट करना पड़ता है। चीन अक्षरों की कोई तादाद नहीं कि वे कितने हैं। जिसे जितने अधिक अक्षरों का ज्ञान है, वह उतना ही अधिक विद्वान् समझा जाता है। साधारणतः प्रत्येक जापानीको तीन चार हजार अक्षर सीखने पड़ते हैं। इस भाषामें एक एक शब्दके लिए एक एक अक्षर व्यवहृत होता है। जैसे—'घोड़ा' के लिए एक अक्षर, 'गाय' के लिए एक अक्षर, इत्यादि।

सरकारकी तरफसे हर एकको प्राथमिक शिक्षा दी जाती है। अत्यन्त दरिद्र होने पर भी वह प्राथमिक शिक्षासे वंचित नहीं रह सकता। प्राथमिक विद्यालय दो भागों में विभक्त हैं-१ निम्न प्राथमिक और २ उच्च प्राथमिक। निम्न प्राथमिक शिक्षा ६से लगा कर १४ वर्ष तक प्रत्येक बालक या बालिकाको ग्रहण करनी ही पड़ती है। इस शिक्षाके समाप्त करनेमें कमसे कम ४।५ वर्ष लगते हैं। उच्चप्राथमिक शिक्षाके लिए और भी ३।४ वर्ष समयकी जरूरत पड़ती है। साधारणतः निम्न प्राथमिक विद्यालयोंमें नीति, जापानी भाषा, पाटीगणित और व्यायामकी शिक्षा दी जाती है। लड़कियोंको इनके अतिरिक्त सीना पिरोना भी सिखाया जाता है। उच्च प्राथमिक विद्यालयमें इतिहास, भूगोल और गणितकी शिक्षा अधिकतर दी जाती है।

जिन बालकोंने उच्च प्राथमिक विद्यालयमें कमसे कम

दो वर्ष शिक्षा पाई है वे ही माध्यमिक विद्यालयमें प्रविष्ट होनेके योग्य समझे जाते हैं। प्रतिवर्ष माध्यमिक विद्यालयमें प्रवेशेच्छुओंकी संख्या अधिक होनेके कारण, उनमेंसे परीक्षा द्वारा निर्दिष्ट संख्यक छात्र चुन लिये जाते हैं। माध्यमिक विद्यालयमें नीति, जापानी और चोना भाषा, अंग्रेजी-इतिहास, भूगोल, गणित, प्राकृत-विज्ञान, पदार्थ-विज्ञान, रसायन, देश-शासन-प्रणाली और राष्ट्रनीति, चित्रकला, सङ्गीत, व्यायाम और फौजी कवायद सिखाई जाती है। जापानी और चीना भाषाके लिए जितना समय दिया जाता है, उतना ही समय अंग्रेजीशिक्षाके लिए भी व्ययित होता है।

माध्यमिक विद्यालयकी शिक्षा समाप्त कर वे छात्र फिर उच्च विद्यालयमें प्रविष्ट होते हैं। इसमें भी परीक्षा ले कर विद्यार्थियोंकी भरती किया जाता है। उच्च विद्यालय छात्रोंकी विश्वविद्यालयमें प्रविष्टके उपयुक्त बना देते हैं। इसकी शिक्षा तीन भागोंमें विभक्त है। जो विश्वविद्यालयमें कानून वा साहित्य अध्ययन करेंगे, उनके लिए प्रथम विभाग, जो औषध-प्रस्तुतप्रणाली इञ्जिनियरिङ् विज्ञान वा कृषिविद्या अध्ययन करेंगे, उनके लिए द्वितीय विभाग और जो चिकित्साशास्त्र अध्ययन करेंगे, उनके लिए तृतीय विभाग है। प्रथम विभागमें नीति, उच्चाङ्गका जापानी और चीना साहित्य, अंग्रेजो, जर्मनो और फरासोसी इनमेंसे कोई भी एक साहित्य, न्याय और मनोविज्ञान, कानूनका मूलतत्त्व, मिताचार और व्यायामकी शिक्षा दी जाती है।

बालिका-विद्यालयोंमें विद्याभ्यासका समय ४ वर्ष निर्दिष्ट है। बालिकाओंको जापानी और अंग्रेजी भाषा, इतिहास, भूगोल, गणित, धातु, उद्भिद् और प्राणियोंका वृत्तान्त, चित्रकला, गृहस्थोका काम, सीना-पिरोना, सङ्गीत और व्यायाम सिखाया जाता है।

जापानमें दो राजकीय विश्वविद्यालय हैं—एक 'टोकिओ'में और दूसरा 'कियोटो' में। 'टोकिओ'-विश्वविद्यालयके २० वर्ष बाद 'कियोटो'-विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठा हुई थी।

'टोकिओ' विश्वविद्यालयके अधीन छः कालेज है—आईन, चिकित्सा, इञ्जिनियरिङ्, साहित्य, विज्ञान और कृषि कालेज। इसके सिवा जापानके उत्तरमें 'साप्पोरो'में एक कृषि विद्यालय है। राजकीय विश्वविद्यालयके सिवा 'टोकिओ'में और भी दो उल्लेखयोग्य विश्वविद्यालय है। एकका नाम है 'केयो' और दूसरेका 'ओयासेदा'। 'केयो' विश्वविद्यालय १८६५ ई०में स्थापित हुआ था। इसके प्रतिष्ठाता 'फुकुजावा' स्वनामधन्य पुरुष थे। इन्होंने सबसे पहले जापानमें पाश्चात्य शिक्षा और संवादपत्रोंका प्रवर्तन किया था। जिस समय जापानमें अन्तर्विप्लव चल रहा था, उस समय इनके विद्यालयको प्रतिष्ठा हुई थी। जिस समय जापानमें भीषण अन्तर्विप्लवके कारण अन्यान्य सभी विद्यालय बन्द हो गये थे, उस समय भी इनका विद्यालय अपना कार्य करता रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि इनका उत्साह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

समग्र जापानमें मूक और अन्धोंके २६ विद्यालय है। जिनमें सिर्फ एक सरकारी है।

लड़कोंको सिर्फ भाषा सिखानेके लिए एक सरकारी विद्यालयको स्थापना हुई है। साधारणतः इसके विद्यार्थी व्यवसायी हो कर विदेश जाया करते हैं। इसमें निम्न लिखित देशोंकी भाषा सिखाई जाती है, जैसे—१ इङ्गलैण्ड, २ जर्मनी, ३ फ्रान्स, ४ इटली, ५ रूसिया, ६ स्पेन, ७ चीन और ८ कोरिया। फिलहाल इसमें तामिल और हिन्दी-भाषाकी भी शिक्षा दी जाने लगी है।

जापानमें प्रायः साढ़े तीन हजार शिल्प-विद्यालय हैं। जापानियोंकी जाति शिल्पोकी जाति है, प्रायः समग्र जगत्में उनको शिल्प-वस्तुएं व्यवहृत होती हैं। इसलिए उनके देशमें शिल्प-विद्यालयोंकी संख्या ३५०० होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इन विद्यालयोंमें चीना मिट्टीसे बरतन बनाना, कांच बनाना, कपड़ा बुनना, फलित रसायन और इञ्जिनियरिङ् आदि नाना प्रकारकी शिल्पविद्या सिखाई जाती है।

जापानके छात्रोंमें एक विलक्षणता यह पाई जाती है, कि चाहे वे माध्यमिक विद्यालयके छात्र हों और चाहे विश्वविद्यालयके, विद्यालय जाते समय वे हाथमें दावात जरूर लटका ले जाते हैं।

इन लोगोंकी कृषिविषयक शिक्षा इतनी उन्नत है कि जापानके माली पुराने पेड़ों को एक जगहसे उखाड़ कर दूसरी जगह रोप सकते हैं। पहले पहल ही एक दल यूरोपीय शिक्षकों को भाड़े पर लाये थे, पीछे इन्होंने सब काम अपने हाथमें ही कर उन्हें विदा कर दिया। एसियाके अन्दर एकमात्र जापानमें ही यूरोपके समान शिल्प चलन धर्मका अस्तित्व है और इसीलिए इसने इतनी जल्दी अपनी असाधारण उन्नति कर ली। किन्तु दुर्दैव दुर्दमनीय है, एक भूकम्पने ही इसे पछाड़ दिया। परन्तु इससे क्या? जापान परिश्रमशील है, कर्मवीर है, वह शीघ्र ही अपनी क्षतिपूर्ति कर लेगा।

जापी (स० त्रि०) जप शीलार्थे णिनि। जपकारक, जप करनेवाला।

जाप्य (स० त्रि०) जप-ण्यत्। जपयोग्य।

जाफत (अ० स्त्री०) भोज, दावत।

जाफनापत्तन—सिंहलद्वीपके उत्तरांशका एक नगर। यह समुद्रकूलसे कुछ दूरी पर खाड़ीके किनारे अक्षा० ८ २१ उ० और देशा० ७८ १ पू०में अवस्थित है। इस खाड़ीके वाणिज्य-पोत नगर तक आ सकते हैं। यहां एक दुर्ग है जिसका आकार पञ्चकोण है। इसके चारों ओर नहरें काटी हैं और बहुत दूर तक साफ पत्थर बिछे हैं। इस दुर्गके करीब आध मील पूर्वमें अंग्रेज, पर्त्तगीसो, ओलन्दाज, सिंहली आदि नाना जातीय और नाना धर्मावलम्बियोंका वास है। इस जगहको आबहवा बहुत उमदा है और खाने-पीनेकी चीजें भी यहां सस्ती मिलती हैं; इसलिए बहुतसे ओलन्दाज यहां आ कर रहते हैं। यहां खेती-बारीकी अच्छी उन्नति हो रही है। तम्बाकूकी उपज भी अच्छी है। इसके सिवा यहां के ताल और मछली रफ्तनी भी है। जाफनाके पास समुद्रकूलमें बहुतसे छोटे छोटे द्वीप हैं। ओलन्दाजोंने वहांके नगरोंके नामानुसार उन द्वीपों का नाम रक्खा है। जैसे—डेल्फ, लीडेन, हार्लेम, आमस्टर्डम इत्यादि। इस प्रदेशमें सिंहलके समस्त प्रदेशों की अपेक्षा जनसंख्या अधिक है। बहुत पहले ईसाइयोंने यहां गिर्जाघर बनवाये थे जिनके खण्डहर अब भी मौजूद हैं।

जाफरअलीखां—इनका साधारणतः मीरजाफरके नामसे परिचय मिलता है। १७५७ ई०में अंग्रेजोंने पलासीके युद्धमें सिराजउद्दौलाको पराजित कर इनको बङ्गाल बिहार और उड़ीसाका नवाब बनाया था। १७६० ई०में राजकार्यमें लापरवाही करनेके कारण अंग्रेजोंने इनको हटा दे कर पदच्युत कर दिया और इनके दामाद मीरकासिमअलीखांको बङ्गालका नवाब बना दिया। मीरकासिमने बङ्गालसे अंग्रेजोंको भगानेके लिए उद्योग किया किन्तु १७६३ ई०में वे भी उदुआनालाके युद्धमें पराजित और पदच्युत हुए। इसके बाद जाफरअलीखां (मीरजाफर) फिरसे नवाब हुए। १७६५ ई०में ५ फरवरीको इनकी मृत्यु हुई। मुर्शिदाबादमें इनकी कब्र है। मीरजाफर देखो।

जाफर खां—इनका असली नाम मुर्शिदकुलि खां था। ये एक ब्राह्मणके पुत्र थे। बचपनहीसे एक मुसलमानने इनका लालनपालन किया था और उन्हींके जरिये इन्होंने शिक्षा पाई थी। बादशाह आलमगीरने १७०४ ई०में इनको बङ्गालका शासनकर्त्ता बनाया। इन्होंने अपने नामके अनुसार बङ्गालकी राजधानी मुर्शिदाबाद नगरकी स्थापना की। १७२५ ई०में इनकी मृत्यु हुई। मुर्शिदकुलि खां देखो।

जाफरगञ्ज—त्रिपुरा जिलेका गोमतीतीरस्थ एक शहर और वाणिज्यका स्थान। एक सेतुनिर्मित राजपथ द्वारा यह शहर १२ मील दूरस्थ कुमिल्ला नगरसे संयुक्त किया गया है।

जाफरपीर—एक कवि। इनकी कविताका एक नमूना दिया जाता है—

"[illegible] समसान [illegible]।
बचपन सुरी नाथा सुरी [illegible]।
कोई मन मेरे [illegible] फिर मिले?"

जाफरबेग (आसफ खान)—बादशाह अकबरके समयके एक अमात्य और कवि। इनके चचा अली आसफखां इनको बादशाहके पास ले आये थे। अकबरने इन्हें २० घोड़ोंके ऊपर जमादार बना दिया। कुछ दिन बाद ये उस अयोग्य पदसे असन्तुष्ट हो कर अपमान पूर्वक बङ्गालकी तरफ चल दिये। वहां नये शासनकर्त्ता मुजाफरखांके साथ रहने लगे। थोड़े दिन पीछे बङ्गालमें

विद्रोह उपस्थित हुआ और ये शत्रुओंके हाथ फँस गये। कुछ भी हो, जाफर अपनी चतुराईसे शत्रुओंके पञ्जेसे छुटकारा पा कर भाग गये। फतेपुर पहुँच कर इन्होंने दो हजार सेनाके अधिनायकका पद और आसफखान्‌की उपाधि पाई।

जलाल रौसानी, वराकजाई और आफ्रिदीके अफगानोंको उत्तेजित कर विद्रोह करने पर, आसफखान् उनके दमनके लिए भेजे गये। जैनखाँ कोकाकी सहायतासे इन्होंने जलालको परास्त कर दिया।

जहाँगीरके बादशाह होने पर आसफखान् राजपुत्र पारविजके आतालिक अर्थात् वजीर बनाये गये। इसके बाद इन्होंने वकील उपाधि और पांच हजार सेनाका अधिनायकत्व प्राप्त किया।

इसके उपरान्त ये राजपुत्र पारविजके साथ दाक्षिणात्य जय करनेको गये थे, किन्तु पराजित हो कर लौट आये। बुर्हानपुरमें इनकी मृत्यु हो गई।

आसफखाँ जाफरवेग अत्यन्त बुद्धिमान थे। इनके समान सुदक्ष राजस्व-सचिव और हिसाब रक्षक बहुत कम ही देखनेमें आते हैं। प्रवाद है, ये जिस हिसाबके चिट्ठे पर एक वार निगाह फेर लेते थे, उसका सब हिसाब इन्हें याद रहता था। बगीचेका इन्हें खूब शौक था। इनको बहुतसी स्त्रियां थीं।

धर्मके विषयमें ये अकबरके शिष्य थे। कविता बनानेमें इनकी विलक्षण क्षमता थी। अकबरके समयमें इनकी श्रेष्ठ कवियोंमें गिनती थी।

जाफरवाल—१ पंजाबके सियालकोट जिलेके उत्तर पूर्वांशकी एक तहसील। यहांकी भूमि उर्वरा और पर्वतनिःसृत असंख्य निर्झरिणी-विशिष्ट है। इसका रकबा ३०२ वर्गमील है। यहां एक फौजदारी और दो दीवानी अदालत तथा दो थाने हैं।

२ उक्त तहसीलका सदर। यह अक्षा० ३२° २२′ ३०″ और देशा० ७४° ५४′ पू०में देग नदीके पूर्व किनारे पर, सियालकोटसे २५ मील अग्निकोणमें अवस्थित है। प्रवाद है, कि सजवा जाट-वंशीय जाफरखाँ नामक एक व्यक्तिने प्रायः ४ शताब्दी पहले इस नगरकी स्थापना की थी। यहां चीनी और अनाजका रोजगार अच्छा है तथा तहसील, थाना, डाकघर, विद्यालय और राहगीरोंके ठहरनेके लिए डाक-बंगला है।

जाफ़र सादिक—मुसलमानोंके १२ इमामोंमेंसे छठे इमाम। मदिनानगरमें इनका जन्म हुआ था। ये महम्मद बेकारके पुत्र, अली जैनउल आबेदीनके पौत्र और इमाम हुसेनके प्रपौत्र थे। ये सभी इमाम थे। जाफ़र सादिक (अर्थात् साधु जाफर) मुसलमानोंमें एक तत्त्वज्ञानी मनीषी गिने जाते थे। कहा जाता है, एकदिन खलिफा अल्‌मनसूरने सदुपदेश सुननेके लिए इन्हें राजसभामें उपस्थित होनेके लिए आह्वान किया। इस पर जाफरने उत्तर दिया कि, "सांसारिक-विषयोंकी उन्नति चाहनेवाला व्यक्ति कभी अमली उपदेश नहीं दे सकता और जिस व्यक्तिमें सांसारिक विषयोंकी स्पृहा नहीं और उस जन्मके लिए सुख चाहता है, वह बादशाहके पास जायगा हो क्यों?" १७६५ ई०में ६५ वर्षकी उम्रमें मदिनानगरमें इनको सनको मृत्यु हुई। मदिनाके अल्‌बकिया नामक कब्रस्तानमें इनकी तथा इनके पिता और पितामहकी कब्र अभी तक मौजूद है।

कोई कोई कहते हैं, जाफ़र सादिकने पांचसौसे अधिक मुसलमानी धर्मग्रन्थ रचे हैं। "फालनाम" नामक अदृष्टव्यापक ग्रन्थ इन्होंका रचा हुआ है।

ज़ाफ़रान (अ० पु०) कुङ्कुम, केसर। इसका पौधा प्याज लहसुन आदिकी भांति और छोटा होता है। पत्तियां घासकी तरह लम्बी और पतली होती है। इसका पौधा स्पेन, फारस, चीन और काश्मीरमें होता है। काश्मीरी केसर सबसे अच्छी समझी जाती है। इसका फूल बैंगनी रंगकी आभा लिए कई रंगका होता है। प्रत्येक फूलमें सिर्फ तीन ज़ाफ़रान निकलते हैं, इस हिसाबसे एक छटांक असली केसरके लिए करीब आठ हजार फलोंकी जरूरत होती है। केसर निकाल लेनेके बाद उन फूलोंको घाममें सुखा कर कूटते हैं और फिर उन्हें पानीमें डाल देते हैं। उसमेंसे जो अंश नीचे बैठ जाता है उसे "मोंगला" कहते हैं, यह मध्यमश्रेणीका ज़ाफ़रान है। जो अंश ऊपर तैरता रहता है, उसे फिर सुखा कर कूटते और पानीमें डालते हैं। अबकी वार जो अंश

नीचे बैठ जाता है। यह मिश्रण ये चीका 'मोदन जाफ़रान" कहलाता है। जाफ़रानका पौधा विशेष प्रकारकी ढालुवां जमीनमें होता है और जमीन इसी कामके लिए आठ वर्ष पहलेसे बिलकुल परती छोड़ दी जाती है। जाफ़रानके पौधेकी गांठें जमीनमें गाड़ी जाती हैं और एक बारकी लगाई हुई गांठोंसे १४ वर्ष तक फूल जमते रहते हैं। कार्तिक मासमें इसके फूल लगते हैं और उसी समय वे जमा किये जाते हैं।

२ अर्मीन्स आदि देशोंमें किसी समय जाफ़रानकी खेती बहुतायतसे होती थी और १८ शताब्दीके राजत्व कालमें यह खाद्यद्रव्यको सुगन्ध और स्वादिष्ट बनानेके लिए व्यवहृत होती थी। यूरोपमें ऐसेक्सके निकटवर्ती जागीरमें तथा कैम्ब्रिज सायरके अन्तर्गत ईंकलेमें अब भी बहुत जाफ़रान पैदा होता है। इसका रंग पीला, देखनेमें सुन्दर और सुगन्धि भी बहुत मीठी होती है। इसे पानीमें डालनेसे एक प्रकारका तैलाक्त पदार्थ बनने लगता है। औषधमें भी जाफ़रानका व्यवहार होता है। इससे रोगीको नींद आती है और पाकस्थलीको विराम लाभ हो जाता है।

भारतमें जाफ़रानकी आमदनी काश्मीर, पंजाब और फारससे होती है। हमारे देशकी स्त्रियां कभी कभी देहमें जाफ़रान लगाती हैं जिससे देह पीली हो जाती है। राजपूत योद्धा भी समय समय पर जाफ़रानसे रंगी हुई पोशाक पहना करते हैं। जैनगण चावल और नारियलकी गरीके टुकड़ोंको जाफ़रानसे रंग कर उनमें पुष्प और दीपकी कल्पना करते हैं और उससे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करते हैं। केसरिया भात आदि खाद्य पदार्थोंमें भी जाफ़रानका व्यवहार होता है।

कुसुम देखो।

जाफ़रान—अफ़गानिस्तानकी एक तातारी जाति।

जाफ़रानी (अ० वि०) केसरिया, केसरके रंगका।

जाफ़रानीतांबा (हिं० पु०) पीले रंगका एक प्रकारका कृत्रिम तांबा। यह चांदी सोनेमें मेल देनेके काममें आता है।

जाफराबाद—१ बम्बईकी काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २० ५२ एवं २० ५८ उ० और देशा० ७१ २४ तथा ७१ २८ पू०के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ४२ वर्गमील है। जाफराबाद कोंकण तटस्थ जंजीरा नवाबके अधीन है।

१७११ ई०में काठियावाड़में मुगलोंका जोर घटनेसे जाफराबादके थानेदार स्वाधीन राजत्व करते थे। उन्होंने मुसलमान चोर और स्थानीय कोलियोंके साथ बहुत डाके डाले। सूरतके जाते भार तथा जहाज को बड़ा नुकसान हुआ था। जंजीरा नवाबके सीदी सिपाहने आक्रमण करके उनके जहाज तोड़ डाले और बहुतसे कोलियोंको गिरफ्तार करके जाफराबादसे भारी जुर्माना तलब किया। थानादारोंने जुर्माना न दे सकने पर जाफराबाद सीदी सिपाहके हाथों बेच दिया। १७६२ ई०में उन्होंने इसे जंजीरा नवाबको सौंपा। लोकसंख्या प्राय १२०८० है। इसमें एक नगर और ११ गांव आबाद हैं। स्वदेशनिर्माणार्थ प्रस्तर काट काट कर निकाला जाता है। मोटा सूती कपड़ा बुना जाते हैं। वार्षिक आय प्रायः ६१००० रु० है। बाजरा, रुई और गेहूं ज्यादा उपजती है।

२ काठियावाड़ प्रान्तके जाफराबाद राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २० ५२ उ० और देशा० ७१ २५ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६०१८ होगी। इस बन्दरगाहसे माल खूब आता जाता है। गुजरातके सुलतान मुजफ्फरने यहां किलेबन्दी करायी थी। जंजीरा नवाबकी ओरसे एक मामलतदार प्रबन्ध करते हैं। यहां म्युनिसपालिटी भी है।

जाफराबाद—युक्तप्रदेशके फतेपुर जिलेकी कल्याणपुर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २६ ४४ उ० और देशा० ८० ३३ पू०में फतेपुरसे १० मील दूर ग्रेण्ड ट्रङ्क रोडके किनारे पर अवस्थित है। कुरमी यहांके प्रधान अधिवासी हैं।

जाफ्फ़—नेपालकी नेवार जातिकी एक शाखा। ये लोग उपजीविकाके अनुसार कई सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। ये नेवार समाजमें अति माननीय और अन्य समस्त जातियोंकी अपेक्षा उच्च स्थानमें अवस्थित हैं। तमाम नेवार जातिमें प्रायः आधे जाफ्फ़ हैं। ये बौद्धमतको मानते हैं, पर बहुतसे लोग हिन्दू देवदेवियोंको भी पूजते हैं।

पूजा और विवाह आदिके समय एक बौद्ध याजक और एक ब्राह्मण पुरोहित, दोनों मिल कर कार्य समाम करते हैं। नेपालमें जाफ़ा़ुओंकी छह सम्प्रदायोंकी तरह और भी प्रायः २४ सम्प्रदाय ऐसे हैं, बुद्धदेव और हिन्दू देवदेवीकी एकत्र उपासना करते हैं। धार्मिक विषयोंमें समान होने पर भी समाजमें ये लोग जाफ़ा़ुओंसे हीन समझे जाते हैं। जाफ़ा़ुओंके उक्त छह सम्प्रदायोंमें परस्पर विवाह और खान पान चलता है।

जावजा (फा० क्रि०-वि०) जगह जगह, इधर उधर।

जावता (अ० पु०) कायदा, नियम, जब्ता।

जावप्रेस (अं० पु०) वह छोटी कल जिसमें कोई विज्ञापन आदि छापे जाते हैं।

जावर (हिं० पु०) वह चावल जो घीएके महीन टुकड़ोंके साथ पकाया जाता है।

जावाल (सं० पु०) जवालाया: अपत्यं पुमान् इति अण्। १ मुनिविशेष, सत्यकाम, जवालाके पुत्र। जवालाने बहुतसे पुरुषोंके साथ सहवास किया था। इनके पुत्र सत्यकाम जब वेदकी शिक्षा लेनेको गये, तब ऋषियोंने इनसे अपना परिचय देनेके लिए कहा। परन्तु इन्हें अपना गोत्र मालूम नहीं था। इससे माताके पास जा कर इन्होंने अपना गोत्र पूछा। माताने उत्तर दिया—"मैंने बहुतोंके साथ सहवास किया है, इसलिए मैं नहीं जानती कि, तुम किसके औरससे पैदा हुए हो। तुम गुरुके पास सत्यकाम जावालके नामसे अपना परिचय देना।" इसके अनुसार ये सत्यकाम जावालके नामसे प्रसिद्ध हुए। (शतपथब्रा०, ऐतब्रा० और छान्दोग्यउ०) ये एक स्मृतिकार थे। २ महाशालकी उपाधि। ३ एक वैद्यकग्रन्थ। ४ अजाजीव। (अमर २।१०।११) ५ एक उपनिषद्का नाम। (मौक्तिकोपनि०) ६ एक दर्शनशास्त्रका नाम। (रामदत्तशाप०)

जावालयन (सं० पु०) एक वैदिक आचार्य।

जावालि (सं० पु०) जवालाया: अपत्य पुमान इति इञ्। काश्यप वंशके एक मुनि। ये दशरथके गुरु थे। इन्होंने चित्रकूटमें रामचन्द्रको राज्य ग्रहण करनेके लिए अनेक युक्तियां बतलाई थीं। (रामा०) ये व्यासकथित हृदयमपुराणके श्रोता थे। (मत्स्य०)

जावाली (सं० पु०) वेदकी एक शाखा।

जाबिर (फा० वि०) १ अत्याचार करनेवाला जबरदस्ती करनेवाला। २ प्रचण्ड, जबरदस्त।

जाब्ता (अ० पु०) व्यवस्था, नियम कायदा, कानून।

जाम (हिं० पु०) १ जम्बू, जामुन। २ प्रहर, पहर, एक जाम ७॥ घड़ी या तीन घण्टेके बराबर होता है। ३ जहाजकी दौड़। (लश०) ४ जहाजके दो चट्टानोंके बीचमें अटकाव, फसाव। (लश०)

जाम (फा० पु०) १ प्याला। २ प्यालेके आकारका कटोरा।

जामकी—पञ्जाब प्रान्तके सियालकोट जिलेकी डस्का तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३२° २३' उ० और देशा० ७४° २५' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ४२१६ है। इसका असली नाम पिण्डीजाम है क्योंकि पिण्डी नामक खत्री और चीभ नामक जाटने इसे बसाया था। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपालिटी स्थापित हुई थी।

जामखेड़—१ बम्बई प्रान्तके अहमदनगर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १८° ३३' एवं १८° ५२' उ० और देशा० ७५° ११' तथा ७५° ३५' पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ४६० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६४२५८ है। इसमें एक नगर और ७५ गांव है। मालगुजारी करीब एक लाख और सेस ७०००) रु० है। यहांकी जलवायु स्वास्थ्यकर है।

इस उपविभागके ग्राम कहीं तो एक दूसरेसे सटे हुए हैं और कहीं अलग अलग, किन्तु उनके चारों तरफ निजामका अधिकार है। इसका अधिकांश स्थान उच्च मालभूमि है। नागौर और बालाघाटकी पर्वतश्रेणी इसके बीचमें फैली हुई है। यहांकी मट्टी कोमल और उपजाऊ है। निकटमें उच्च पर्वत होनेसे यहां वर्षा खूब होती है। यहां धान, गेहूं, बाजरा, ज्वार, मूंग, मसूड़, मटर, तिल, सरसों आदिकी पैदावार अच्छी है। इसके सिवा यहां तम्बाकू और सन भी पैदा होता है।

जामखेड़से अहमदनगर (४६ मील) तक पक्की सड़क गई है; जिसका कुछ अंश अङ्गरेजी राज्यमें और कुछ निजाम-राज्यमें है। इस सड़कके होनेसे यहांका

वाणिज्य अच्छा चलता है, किन्तु निज़ाम राज्यके भीतर दो बार माल जानेसे कर लिया जाता है यह बड़ी भारी असुविधा है। इसके सिवा जामखेड़से परंदा, कोठरात और करमाला तक और भी १ सड़क गई है किन्तु उनकी अवस्था ठीक नहीं है। यहां पर हफ्तेमें पांच हाटें लगती हैं। चाकोला और खेड़ा नगरमें रविवारको, खरदामें मङ्गलवारको तथा जामखेड़ और जवलखिनी नगरमें शनिवारको हाट लगती है। दूर दूरके लोग यहां व्यापार करने आते हैं। यहां बकरी और भैंस आदि बहुत सस्ती मिलती हैं।

यहां कुछ कपड़े बुननेके कारखाने हैं जिसका प्रधान स्थान खरदा है। कई जगह पीतल और कांसेके बरतन भी बनते हैं। जवलखिनी नगरमें चूड़ीका कारखाना है।

पहले इसके अधिकांश ग्राम पेशवाके अधिकारमें थे। १८१८ १९ ई०में पेशवासे अङ्गरेजोंको कुछ ग्राम प्राप्त हुए। पीछे जामखेड़ तथा और और पांच गांव निज़ामसे लिये गये। इस तरह और भी बहुतसे गांव अङ्गरेजी राज्यमें मिलाये गये। यह उपविभाग कई बार करमालाके संयुक्त और वियुक्त हुआ है। आखिर १८६१ ६६ ई०में सम्पूर्ण पृथक् हो कर यह अहमदनगरके अन्तर्गत हो गया।

२ उपरोक्त जामखेड़ उपविभागका सदर और नगर। यह अक्षा० १८ ४३´ उ० और देशा० ७५ २१ पू०, अहमदनगरसे ३५ मील अग्निकोणमें अवस्थित है। यहां एक हेमाड़पन्थियोंके मल्लिकार्जुन महादेवका तथा दूसरा नटाम्बर महादेवका मन्दिर है। मल्लिकार्जुन महादेवके मन्दिरमें केवल लिङ्गमूर्त्ति और भग्नस्तम्भ इतस्तत पड़े हैं। नटाम्बरका मन्दिर बहुत दिनोंसे भूमिमें प्रोथित था। शनिवारको यहां हाट लगा करती है। जामखेड़के ईशानकोणमें ६ मीलकी दूरी पर निज़ामराज्यान्तर्गत सौताड़ा ग्रामके पास इयाम नदी है। इसमें २१८ फुट गहरा एक जलप्रपात है, वर्षा कालमें यहांकी प्राकृतिक शोभा दर्शकोंके लिए [illegible] है।

जामगिरी (हिं० पु०) बन्दूकका पलीता। (मरा०)

जाम-जो तन्दो—बम्बई प्रान्तके अन्तर्गत सिन्धु प्रदेशके हैदराबाद जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २५ २२ १०´´ उ० और देशा० ६८ १३´ १०´´ पू०में अवस्थित है। यहांके मुसलमान अधिवासियोंमें अधिकांश सिन्धी जातिके सैयद या शाखकी सम्प्रदायभुक्त हैं। हिन्दुओंमें अधिकांश लोहाने हैं। तालपुरके मीरअमीरोंने इस नगरको बसाया है। उनके खानदानी लोग अब भी यहां वास करते हैं। हैदराबादसे अलहियर जो-तन्दो होती हुई मीरपुरखास तक जो सड़क गई है यह नगर उसीके किनारे पर अवस्थित है। तन्दो शब्द सिन्धी भाषाका है जिसका अर्थ नगर है।

जामताड़ा—१ सन्थाल परगनेका दक्षिण पश्चिम सबडिविजन। यह अक्षा० २३ ४८ एवं २४ १० उ० और देशा० ८६ ३०´ तथा ८७ १८ पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ६९८ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय १८०८८८ है। इसमें १०७१ गांव आबाद हैं। २ उक्त सब डिविजनका एक नगर और रेलवे ष्टेशन।

जामदग्न (सं० पु०) चतुरह यागभेद।

जामदग्निय (सं० पु०) जमदग्नि सम्बन्धीय।

जामदग्नेय (सं० पु०) जमदग्नेरपत्य, प्रत्ययको तदन्तं पक्षगमा प्रतिषिद्धोऽपि आर्षत्वात् ढक्। परशुराम भार्गव।

जामदग्न्य (सं० पु०) जमदग्नेरपत्यं पुमान् इति यञ्। जमदग्निके पुत्र परशुराम।

जामदानी (फा० पु०) १ एक प्रकारका बेल-बूटेदार कढ़ा हुआ कपड़ा। साधारणत: सूती कपड़े पर ही तरह तरहके फूल और बेल बूटे काढ़ कर यह कपड़ा बनाया जाता है। ढाका नगरमें बहुत बढ़िया जामदानी कपड़ा बनता है। लखनऊमें भी यह कपड़ा बनता है। चिकन शब्द देखो।

२ कपड़े आदि रखनेकी टीन या चमड़ेकी पेटी। ३ अबरक या शीशेकी बनी हुई एक प्रकारकी सन्दूकची यह छोटी होती है और बच्चे इसमें अपनी खेलनेकी चीजें रखा करते हैं।

जामन (हिं० पु०) १ दूधको जमानेका थोड़ासा दही या कोई खट्टा पदार्थ। २ जामुन देखो। ३ पंजाबसे ले कर सिकिम और भूटान तक होनेवाला एक प्रकारका पेड़। यह जामुनकी जातिका होता है। इसमेंसे एक

प्रकारका गोंद तथा विषयुक्त तेल निकलता है जो दवाके काममें बहुत उपयोगी है। मनुष्य इसके फल खाते हैं और पत्तियां चौपायोंके चारेके काममें आती हैं। इसका दूसरा नाम पारस है।

जामनगर—बम्बई प्रान्तके काठियावाड़ जिलेका देशी राज्य और नगर। नवा-नगर देखो।

जामनिया (दबोर)—मध्य भारतकी मानपुर एजेन्सीको एक ठाकुरात। यहांके सरदारोंकी उपाधि भूमिया है। ठाकुरोंमें प्रायः सभी भूलाल जातीय हैं। प्रवाद है कि भूलाल जाति राजपूतोंके संमिश्रणसे उत्पन्न हुई है। जामनियामें प्रसिद्ध भूमिया नादिरसिंहने प्रादुर्भूत हो कर चारों ओर अपनी क्षमताका विस्तार किया था। सिन्धियाके पांच गांवोंको मिला कर इस ठाकुरातका संगठन हुआ है। इसके सिवा खेरी, दाभर और ४७ भीलोंके मुहल्ले इसके अन्तर्गत हैं। इसका रकबा करीब ४६५७५ बीघा है। मानपुरसे धार नगरकी सड़क करीब ७ मील तक इसी जमींदारीके भीतरसे गई है। फिलहाल इसका सदर कुक्षरोड है।

जामनी—मध्यभारतके बुन्देलखण्ड प्रदेशकी एक नदी। यह नदी मध्यभारतसे उत्पन्न हो कर बुन्देलखण्ड और चन्देरी होती हुई प्रायः ७० मील चल कर बेतवामें जा मिली है।

जामनेर—१ बम्बईके पूर्व खानदेशका एक तालुक। यह अक्षा० २०° ३३' एवं २०° ५५' उ० और देशा० ७५° ३२' तथा ७६° १' पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ५२७ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८१७३८ है। इसमें २ नगर और १५५ गांव बसे हैं। मालगुजारी कोई २ लाख ४० हजार और सेस १७०००) रु० पड़ती है। भूमि नीची ऊंची हैं और नदियोंके तट पर बबूल खड़े हैं। उत्तर-दक्षिणके पर्वतों पर साखूके पेड़ हैं। पानी बहुत है। जलवायु साधारणतः अच्छी है। वर्षा ऋतुमें जूड़ी बुखार बढ़ जाता है। यहां करीब १८५० कूएं हैं। २ उक्त तालुकका सदर। यह अक्षा० २०° ४८' उ० और देशा० ४५°४७' पू०में अवस्थित है। जन संख्या ६४५७ है। पेशवाके समय एक बड़ा स्थान था। रूईका कारबार बढ़ रहा है।

जामपुर—१ पञ्जाबके डेरागाजीखां जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २८° १६' एवं २८° ४६' उ० और देशा० ७०° ४' तथा ७०° ४३' पू०के मध्य पड़ता है। क्षेत्रफल ८४८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८७२४७ है। इसके पूर्वमें सिन्धु नदी और पश्चिममें स्वाधीन प्रदेश है। इसमें एक नगर और १४८ गांव हैं। मालगुजारी लगभग १ लाख ५० हजार है। नीची भूमिमें बाढ़ आनेका डर रहता है।

२ उक्त तहसीलका सदर। यह अक्षा० २८° ३८' उ० और देशा० ७०° ३८' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या कोई ५८२८ है। यहांसे नीलकी रफ्तनी बहुत होती है और लाहका भी कारखाना है। १८७३ ई०में यहां म्युनिसपालिटी हुई।

जाम वेतुआ (हिं० पु०) बरमा, आसाम और पूर्व बंगालमें होनेवाला एक प्रकारका बांस। यह टट्टर बनाने, छत पाटने आदिके काममें आता है।

जामराव—सिन्धु प्रदेशकी एक बड़ी नहर। यह सांभर तालुकके दक्षिण पश्चिम कोणमें जमेसाबाद तालुक होती हुई नार नदीमें जा गिरी है। सोंच १३० मील है। जामराव नहर और उसकी नालियां सब मिल कर के ५८८ मील लम्बी हैं। पश्चिम शाखा बहुत बड़ी है। यह १८९९ ई०में खोली गयी थी।

जामरी—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत भण्डारा जिलेकी एक छोटी जमींदारी। यह अक्षा० २१° ११' ३०" उ० और देशा० ८०° ५' ३" पू०, ग्रेट इष्टर्न रोडके उत्तरमें साकोलीके निकट अवस्थित है। इसका रकबा १५ वर्गमील है, जिसमेंसे सिर्फ १ मील जमीनमें खेती होती है। यहांके जमींदार जङ्गलकी लकड़ी बेच कर बहुत लाभ उठाते हैं।

जामर्थ्य (सं० त्रि०) प्राणियोंको अमर करनेवाला।

जामल (सं० क्ली०) आगमशास्त्रविशेष, एक प्रकारका तन्त्र। जैसे—रुद्रजामल इत्यादि।

जामली—मध्यभारतकी भोपावर एजेन्सीके अन्तर्गत झाबुआ राज्यका एक शहर। यह सर्दारपुरसे २४ मील उत्तरमें तथा झाबुआ नगरसे २० मील ईशानकोणमें अवस्थित है। यहां ठाकुर उपाधिधारी एक उमराव रहते हैं।

जामवन्त—जाम्बवान देखो।

जाम मालोजी—कच्छ प्रदेशके जाड़ेजा व शोत्र एक प्राचीन राजा। जाम-पार्श्वके पश्चिम मोड़ाके साथ इनका झगड़ा चल रहा था। सूर्यवंशीय वीरवरके पुत्र काठि राज बाभाजीकी सहायतासे इन्होंने पार्श्वर जीत कर लूट लिया। वहांसे लौटते समय एक दिन काठिकी सेनाने पड़ाव डाल कर मिगाना सरोवरके किनारे वृक्षोंसे घोड़े बांध दिये। सरोवरके किनारे थोड़े ही पेड़ थे। कुछ दिन पीछे जब जाम मालोजीने आ कर देखा कि, काठि-सेनाने सभी वृक्षोंकी छाया दखल कर ली है उनके लिए भी जगह नहीं रक्खी तब उन्होंने गुस्सा हो कर बाभाजीसे तम्बू उठानेके लिये कहा। इससे बाभाजीने अपना बड़ा अपमान समझा और वे इसका बदला लेनेकी प्रतिज्ञा कर उसी समय अपनी सेनासहित वहांसे चल दिये। जाम मालोजीने आनेवाली विपत्तिका स्मरण कर बाभाजीको शान्त करनेके लिए अनुनय विनय द्वारा बहुत कुछ कोशिश की पर वे किसी तरह भी शान्त न हुए। कुछ दिन पीछे रात्रिके समय बाभाजीने अचानक चढ़ाई करके पर आक्रमण किया और पांच सादमी के साथ जाम मालोजीको मार डाला। किन्तु छोटे भाई जाम पाकड़ाको किसी तरह जान बची। इन्होंने बाभाजीको बहुतबार परास्त किया किन्तु अन्तमें बाम्बके युद्धमें वे भी पराजित हुए। प्रवाद है कि इस युद्धमें स्वयं सूर्यदेवने श्वेत अश्व पर सवार हो कर बाभाजीकी तरफसे युद्ध किया था।

जामसुता बाईजी श्रीप्रतापबाला—जामनगरके महाराज रिड़मलकी राजकुमारी तथा जोधपुरके भूतपूर्व महाराज श्रीतखतसिंहकी महारानी। इनका जन्म १८३४ और विवाह १८४१ ई०में हुआ था। ये बड़ी विदुषी उदार हृदया और धर्मात्मा थीं। इन्होंने प्रतापकुंवर रत्नावली' नामक एक हिन्दी पद्य-ग्रन्थकी रचना की है। इनकी कविता सरल और भक्तिरसपूर्ण है। उदाहरण—

"आवो मारा सुन्दर श्याम सुजान (टेक)
मंद मंद मुख हास बिराजे कोटिन काम लजात।
अनियारी अंखियां रसभरी बांकी भौंह कमान।
दाड़िम दसन अधर अरुनारे बचन सुधा सुखदान।
जामसुता प्रभुको पर वारी है तन मन धन प्रान॥"

जामा (सं॰ स्त्री॰) जम-अदने अच् ततः स्त्रियां टाप्। दुहिता कन्या बेटी।

जामा (फा॰ पु॰) १ वस्त्र कपड़ा पहरावा। २ एक प्रकारका पहरावा जो घुटने तक होता है। इसके नीचेका घेरा बहुत बड़ा और कलीदार घुमटदार होता है। यह प्राचीनकालका पहरावा जान पड़ता है। हिन्दुओंमें अब भी विवाहके अवसर पर यह पहरावा वरको पह नाया जाता है।

जामात (हिं॰ पु॰) जामातृ देखो।

जामाता (हिं॰ पु॰) जामातृ देखो।

जामातृ (सं॰ पु॰) जायां माति, मिमीते, मिनोति वा। १ दुहिताका पति, कन्याका पति, दामाद। २ सूर्यावर्त्त सूर्यमुखी। ३ धवका पेड़। ४ खसम, स्वामी।

जामातृक (सं॰ त्रि॰) १ जामाता-सम्बन्धीय, दामादका। (पु॰) २ कन्याका पति, दामाद।

जामातृत्व (सं॰ क्ली॰) जामातुर्भाव' जामातृ त्व। जामाताका कार्य दामादका काम।

जामि (सं॰ स्त्री॰) जम-इन्। अम् निपातनात् साधुरित्यें वे। १ भगिनी, बहिन। २ कुलकी वरकी बहू बेटी। ३ दुहिता, कन्या, लड़की। ४ पुत्रवधू पतोह। ५ निकट सम्बन्ध सपिण्ड स्त्री अपने सम्बन्ध या गोत्रकी स्त्री। ६ सत्तु।

"भगिनीकुलस्त्रीसम्बन्धीबन्धुस्त्रीप्रतिग्रहसुतपुत्रवधू दुहितृषु च वा।" (कुल्लूक)

भगिनी, अहपति और सन्निहित सपिण्ड पत्नी पत्नी, दुहिता और पुत्रवधू इन सबको जामि कहते हैं। जिस घरमें जामि अपमानित या लाञ्छित होती है, उस घर का कभी भी मङ्गल नहीं होता। जिस घरमें वह पूजित होती है उसमें सुखकी वृद्धि होती है। ७ उदक जल पानी। ८ अङ्गुलि, उंगली। (निघण्टु)

जामिकृत् (सं॰ त्रि॰) जामि करोति जामि-कृ क्विप्। सम्बन्धकारी, सम्बन्ध करनेवाला।

जामित्र (सं॰ स्त्री॰) विवाहादि शुभकर्मके लग्नके लग्नसे सातवां स्थान। (ज्योतिष)

जामित्रवेध (सं० पु०) विध्-घञ्, जामित्रस्य वेधः, ६-तत्। शुभकर्मविषयक ज्योतिषका एक योग। यदि कर्मकालीन नक्षत्र-घटित राशिसे सातवीं राशिमें सूर्य वा शनि अथवा मङ्गल रहे, तो जामित्रवेध होता है। किसी किसीके मतसे सातवें स्थानमें पापग्रह रहने पर ही जामित्रवेध होता है। इसमें विशेषता यह है कि, चंद्रमा यदि अपने मूल त्रिकोण या क्षेत्रमें हो, अथवा पूर्णचन्द्र हो वा पूर्णचन्द्रमें शुभग्रह या निजग्रहके क्षेत्रमें हो, तो जामित्रवेधका जो दोष होता है, वह नष्ट हो जाता है। इससे अत्यन्त मङ्गल होता है।

जामित्व (सं० क्लो०) सम्बन्ध, रिश्ता।

जामिन (अ० पु०) १ प्रतिभू, जिम्मेदार, जमानत करने वाला। २ दो अङ्गुल लम्बी एक लकड़ी जो नीचेकी दोनों नालियोंको अलग रखनेके लिए चिलमश है और चूलके बीचमें बांधी जाती है।

जामिनदार (फा० पु०) जमानत करनेवाला।

जामिनी (हिं० स्त्री०) १ यामिनी देखो। २ जमानत, जिम्मेदारी।

जामी—एक फारसी कवि। इनका असली नाम मौलाना नूर-उद्दीन अबदुल-रहमन था। १४०१ ई०में हीरातके निकटवर्त्ती जाम नामके एक ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इसीलिए लोग इन्हें जामी कहते थे। इनके समयमें इनके समान वैयाकरण, दार्शनिक और कवि दूसरा कोई भी न था। बचपनसे ही इन्होंने सूफीका दर्शनशास्त्र पढ़ा था। आपने जीवनके शेष भागमें समस्त गृहकार्योंसे अवसर ले लिया था।

जामुखा (जुमखा)—गुजरातके रेवाकाठाको एक छोटी जमींदारी। इसका रकबा १ वर्गमील है।

जामुन (हिं० पु०) जम्बू देखो।

जामुनी (हिं० वि०) जामुनके रङ्गका, जो जामुनकी तरह बैंगनी या काला हो।

जामेय (सं० पु०) भागिनेय, भानजा, बहिनका लड़का।

जामेवार (हिं० पु०) १ बेल बूटोंसे जड़ा हुआ एक प्रकारका दुशाला। २ एक प्रकारकी छींट जिसमें बेल बूटे दुशालेकी भांतिके होते हैं।

जाम्पुई—बङ्गालके अन्तर्गत पार्वत्य त्रिपुराका एक पर्वत यह पहाड़ दैव और लुङ्गाई इन नदियोंके बीच उत्तर-दक्षिणमें विस्तृत है। इसकी सर्वोच्च शिखरका नाम बैतलिङ्ग शिखर है, जो समुद्रपृष्ठसे ३२०० फुट तथा जाम्पुई शृङ्गसे १८६० फुट ऊंची है।

जाम्बव (सं० क्लो०) जम्ब्वाः फलं अण्। जम्ब्वा वा। पा ४।३।१६५। इति अण् तस्यावधानात् न लुक्। १ जम्बूफल, जामुन। जम्बू देखो। २ सुवर्ण, सोना। ३ आसव, जामुनका अर्क।

जाम्बवक (सं० त्रि०) जाम्बवेन निर्वृत्त अरीहणादित्वात् वुञ्। जम्बूफल, जामुन।

जाम्बवती (सं० स्त्री०) श्रीकृष्णकी पत्नी और जाम्बवान्की कन्या। श्रीकृष्ण स्यमन्तक मणिके अन्वेषणके लिए वनमें प्रविष्ट हो कर जाम्बवान्के भवनमें पहुंच गये थे। वहां मणिका पता लगने पर जाम्बवान्को युद्धमें परास्त कर मणिके साथ जाम्बवतीको ले आये थे। स्यमन्तक देखो। इनके गर्भसे साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविण और केतुका जन्म हुआ था। (भागवत)

जैन-हरिवंशपुराणमें लिखा है कि, नारदने कृष्णको जाम्बवतीका समाचार सुनाया। नारदके मुखसे जाम्बवतीकी प्रशंसा सुन कृष्णसे न रहा गया। वे उसी समय कुमार अनावृष्णि और सेनाको साथ ले कर जम्बूपुरको चल दिये। वहां सखियोंके सहित जाम्बवतीको नहाते देख, श्रीकृष्णने चटसे उन्हें हरण कर लिया। किन्तु इस समाचारको सुन कर जाम्बवतीके पिता जाम्बव बहुत ही क्रुद्ध हुए और वे श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये उनके सामने जा अड़े। कृष्णने युद्धमें उन्हें परास्त कर बांध लिया। इस अपमानसे जाम्बवको वैराग्य हो गया और वे अपने पुत्र विश्वक्सेनको कृष्णके सुपुर्द कर मुनि हो गये। (जैन-हरिवंश ४४ सर्ग)

जाम्बवन्त—जाम्बवान् देखो।

जाम्बवान् (सं० पु०) १ जाम्ब-मतुप् मस्य वः। एक ऋक्षराज, सुग्रीवके मन्त्री। इन्होंने लङ्काके युद्धमें रामचन्द्रकी सहायता की थी। ये पितामह ब्रह्माके पुत्र थे। द्वापर युगमें सिंहको मार कर ये उसके पाससे स्यमन्तक मणि लाये थे। इसी कारण इनकी कन्या

जायनजरूर (फा० पु०) टट्टी, पाखाना।

जायजा (अ० पु०) १ पड़ताल, जाँच। २ हाजिरी, गिनती।

जायद (फा० वि०) अधिक, ज्यादा।

जायदाद (फा० स्त्री०) सम्पत्ति, किसीकी भूमि, धन या सामान आदि। कानूनके अनुसार जायदादके दो भेद हैं, मनकूला और गैर मनकूला। जो एक स्थानसे दूसरे स्थान पर हटाई जा सके उसे मनकूला जायदाद कहते हैं और जो स्थानान्तरित न की जा सके उसे गैर मनकूला जायदाद कहते हैं।

जायदाद गैरमनकूला (फा० स्त्री०) जायदाद देखो।

जायदाद जौजियत (फा० स्त्री०) स्त्रीधन, वह संपत्ति जिस पर स्त्रीका अधिकार हो।

जायदाद मनकूला (सं० स्त्री०) जायदाद देखो।

जायदाद मुतनाजिआ (फा० स्त्री०) विवादग्रस्त सम्पत्ति, वह सम्पत्ति जिसके अधिकार आदिके विषयमें कोई तकरार हो।

जायदाद शौहरी (फा० स्त्री०) स्त्रीको उसके पतिसे मिली हुई सम्पत्ति।

जायनमाज (फा० स्त्री०) मुसलमानोंके नमाज पढ़नेका एक बिछौना, मुसल्ला।

जायपत्री (हिं० स्त्री०) जावित्री देखो

जायफर (हिं० पु०) जायफल देखो।

जायफल (हिं० पु०) जातिफल देखो।

जायल (फा० वि०) विनष्ट, जो नष्ट हो गया हो।

जायस—युक्तप्रदेशके रायबरेली जिलेका एक विख्यात और ऐतिहासिक नगर। यहां बहुत दिनोंसे सूफी फकीरोंको गद्दी है तथा मुसलमान विद्वान् होते आये हैं। बहुतसी जातियां अपना आदि स्थान इसी नगरको बताती हैं। पद्मावतीके रचयिता प्रसिद्ध कवि मालिक मुहम्मद यहींके निवासी थे।

जाया (सं० स्त्री०) जायते पुत्ररूपेणात्मा अस्यां जन-यक् अलच्च। १ पत्नी, यथाविधि परिणीता भार्या, विवाहिता स्त्री। पति शुक्ररूपसे भार्याके गर्भमें प्रविष्ट हो कर, फिरसे नवीन हो कर जन्म लेता है, इसलिए पत्नीका नामजाया है। (मनुस्मृति, वह्वृच पुराण और कुल्लुक।) अथवा भार्याकी रक्षा करनेसे पुत्रकी रक्षा होती है, और पुत्रकी रक्षा करनेसे आत्माकी भी रक्षा होती है, क्योंकि आत्मा ही भार्याके गर्भमें जन्म लेती है। इसीलिए पण्डितोंने पत्नीका नाम जाया बतलाया है। अविवाहिता स्त्रीको जाया नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसके गर्भसे जो पुत्र होता है, उसमें पिण्डदान देनेकी योग्यता नहीं होती और वह जारज कहलाता है। एक पुरुषकी बहुतसी जाया हो सकती हैं।

"एकस्य पुंसो बह्वयो जाया भवन्ति" (शतपथब्रा० ९।४।१।६)

इनमेंसे महिषी, वावाता, परिवृक्ता और पालागली ये चार अभिमत हैं। (शतपथब्रा० १३।४।१।८)

२ ज्योतिषोक्त लग्नसे सातवां स्थान। इस सप्तम स्थानसे पत्नीके सम्बन्धकी समस्त शुभाशुभकी गणना की जाती है। ३ उपजाति वृत्तका सातवां भेद। इसमें पहिलेके तीन चरणोंमें ।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ और चतुर्थ चरणमें ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ होता है।

जाया (फा० वि०) नष्ट, खराब, खोया हुआ।

जायाघ्न (सं० पु०) जायां हन्ति, जाया हन्-टक्। १ पत्नीनाशक योगयुक्त पुरुष, वह पुरुष जिसमें पत्नीनाशक योग रहे। २ तिलकालक, शरीरका तिल। ३ ज्योतिषोक्त योगविशेष, ज्योतिषमें ग्रहोंका एक योग। यह योग उस समय होता है जब जन्म-कुण्डलीमें लग्नसे सातवें स्थान पर मंगल या राहु ग्रह रहता है। जिसमें यह योग पड़ता है उस मनुष्यकी स्त्री अवश्य ही नाश होती है।

जायाजीव (सं० पु०) जायया तन्नर्त्तनद्वारा जीवति, वा जाया आजीवः जीवनोपायः यस्य, जीव-अच्। १ नट, अपनी स्त्रीके द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला, वेश्यापति। २ बकपक्षी, बगला पक्षी।

जायात्व (सं० क्ली०) जायायाः भावः जाया-त्व। पत्नीत्व, स्त्रीका धर्म। जाया देखो।

जायानुजीवी (सं० पु०) जायया सङ्गीतनर्त्तनादिना अनुजीवति, अनु-जीव-णिनि। १ जायाजीव देखो। २ दरिद्र। ३ बक पक्षी, बगला।

जायापती (सं० पु०) जाया च पतिश्च तौ द्वन्द्व०। स्वामी और स्त्री। द्वन्द्व समासमें जाया और पतिका समास

होनेसे तीन पद होते हैं—जायापती दम्पती और जम्पती। यह शब्द नित्य द्विवचनान्त है।

जायी (सं० त्रि०) जि-णिनि। १ जययुक्त। (पु०) २ ध्रुवक जातीय तालविशेष सङ्गीतमें ध्रुपदकी जाति। ३ एक प्रकारका ताल।

जायु (सं० पु०) जयति रोगान् जि उण्। १ औषध, दवा। २ जायमान, जो पैदा हुआ हो। ३ जेता वह जिसने विजय पाई हो। (त्रि०) ४ जयशील जीतनेवाला।

जायेन्य (सं० पु०) जि-न्यण्। १ जायन्य वह जिसने जय पाई हो। रोगविशेष एक प्रकारकी बीमारी।

जार (सं० पु०) जीर्यति स्त्रिया सतीत्वमनेन करणे जृ-घञ्। १ उपपति, पराई स्त्रीसे प्रेम करनेवाला पुरुष यार, आशना। २ जरयिता। ३ पारदारिक परस्त्रीगामी। (त्रि०) ४ नाश करनेवाला मारनेवाला।

जार—रूमके सम्राट्‌की उपाधि।

जारक (सं० त्रि०) जीर्यति जृ-ण्वुल्। परिपाचक।

जारकर्म (सं० क्ली०) व्यभिचार, छिनाला।

जारघ्नी (सं० स्त्री०) क्षुद्ररोगविशेष।

जारज (सं० पु०-स्त्री०) जारात् उपपतेर्जायते जार जन-ड। उपपतिजात पुत्र किसी स्त्रीकी वह सन्तान जो उसके उपपतिसे उत्पन्न हुई हो। धर्मशास्त्रोंमें जारजके दो भेद बतलाये गये हैं—कुण्ड और गोलक। "कुण्ड" सन्तान उसे कहते हैं जो स्त्रीके विवाहित पतिके जीवन कालमें उसके उपपतिसे उत्पन्न हो और जो विवाहित पतिके मर जाने पर उत्पन्न हो उसे "गोलक" कहते हैं। जारज पुत्र किसी प्रकारके धन-दाय या पिण्डदान आदिका अधिकारी नहीं होता।

जारजयोग (सं० पु०) जारजसूचक योग। फलित ज्योतिषमें कहा हुआ वह योग जो बालकके जन्म समयमें पड़ता है। जन्मकालमें यदि लग्न और चन्द्रमामें वृहस्पतिकी दृष्टि न हो अथवा रविके साथ चन्द्र संयुक्त न हो और पापयुक्त चन्द्रमाके साथ यदि रवि युक्त हो तो उस बालकका जारजयोग होगा। द्वादशी द्वितीया या सप्तमी तिथिमें रवि, शनि वा मङ्गलवारमें और कृत्तिका मृगशिरा पुनर्वसु उत्तरफल्गुनी, चित्रा विशाखा, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा और पूर्वभाद्रपद, इनमेंसे किसी भी एक नक्षत्रमें जन्म होनेसे उस बालकका जारजयोग होता है। (ज्योति०) इतना विशेष है कि धनु वा मीनराशि होनेसे यदि अन्य किसी घरमें चन्द्रके साथ वृहस्पतिका योग हो और चन्द्रमा वा वृहस्पतिके द्रेक्काण वा नवांशमें जन्म हो, तो उत्पन्न हुए बालकका जारजयोग होने पर भी वह जारज नहीं समझा जाता।

जारजात (सं० पु०) जारात् उपपतेः जात जार जन क्त। उपपति जात पुत्र, यार वा आशनासे पैदा हुआ लड़का जारज।

जारजातक (सं० पु०) जारात् जात स्वार्थे कन्। उपपति या जारसे उत्पन्न हुआ पुत्र, जारज। पिता माता आदि गुरुजनोंके आदेशके बिना यदि कोई स्त्री दूसरे किसीके जरिये सन्तान उत्पन्न करे अथवा पुत्रके होते हुए भी देवर द्वारा सन्तान उत्पन्न करावे तो वह (दोनों प्रकारकी) सन्तान जारजातक होनेके कारण पिताके धनकी अधिकारी नहीं हो सकती।

(मनु ९।१४७)

जारण (सं० पु०) जारयति जॄ णिच्-ल्यु। १ जारक द्रव्यभेद पारेका ग्यारहवां संस्कार। जार्यतेऽनेन जॄ णिच् करणे ल्युट्। २ जारणसाधन द्रव्यभेद। कर्त्तरि ल्यु। ३ जीरक जीरा। (राजनि०) भावे ल्युट्। (क्ली०) ४ जीर्णता सम्पादन, जलाना भस्म करना।

१०। वैद्यक मतसे—धातुओंको भस्मवत् वा चूर्ण करनेको जारण कहते हैं। वैद्य लोग पहले सोना चांदी, तांबा, पारा, वङ्ग, सीसा आदिको शोध कर, पीछे अनेक प्रकारके द्रव्योंके संयोग और प्रक्रियासे पुटपाक द्वारा उनको बार बार जलाते या फुकते हैं। इस तरह बहुत बार करने पर उस धातुका स्वरूप नष्ट हो जाता है और वह भस्म रूपमें परिणत होता है। इस भस्मको धातुके नामानुसार जारित स्वर्ण जारित अभ्र आदि कहते हैं।

जारित धातु आदिको मारित भी कहते हैं और भस्म होने पर जीर्ण वा मृत कहते हैं। इसकी विशेष विवेचना और गुणागुण उन उन शब्दोंमें देखना चाहिये।

इस जारण प्रक्रियाको अङ्गरेजीमें 'कैलसिनेशन'

(Calcination) वा 'श्रोक्सिडेशन' (Oxidation) कहा जा सकता है। धातुद्रवको वायु द्वारा उत्तप्त करनेसे वह धातु वायुमें स्थित श्रक्सिजनको खींच कर उसी धातुके मोरचे (जंग)-के रूपमें परिणत हो जाती हैं। फिर अम्ल आदिके साथ मिलाये जाने और ऋतु आदिके परिवर्त्तन होने पर उससे एक नवीन पदार्थ उत्पन्न होता है। फिर उसे देखनेसे यह नहीं मालूम होता कि, वह धातु है। यह ही धातु-जारणका मूल सूत्र है। प्रवाल आदि किसी किसी वस्तुको उत्तप्त करने पर उसमेंसे द्रवल अङ्गारक वाष्प निकल जाती है और कठिन प्रवाल आदि भस्म रूपमें परिणत होते हैं। वैद्य गण जिस प्रणालीसे जारण करते हैं उसमें भी निःसन्देह ये सब मूल प्रक्रियाएँ होती हैं। हाँ, उसमें आनुषङ्गिक और अन्यान्य कुछ परिवतन अवश्य होता है। विलायत-में धातुका जारण आदि रासायनिक उपायसे सहजहीमें हो जाता है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि, वह वैद्यक जारणके समान गुणसम्पन्न होता है या नहीं।

जारणवीज (सं० क्ली०) १ रसजारणार्थ वीजद्रव्य-भेद।

जारणी (सं० स्त्री०) जारण स्त्रियां ङीप्। स्थूल जीरक, बड़ा जीरा, सफेद जीरा।

जारता (सं० स्त्री०) जारस्य भावः तल् टाप्। उपपतित्व, यार वा आशनाका नाम।

जारनिनेय (स ० पु०-स्त्री०) जरत्या अपत्यं ढक्। कल्याण्या-दीनामिनङ् च। पा ४।१।१२६। इति इनङ्। जरतीका पुत्र।

जारत्कारव (सं० पु०) जरत्कारोरपत्यं शिवादि-त्वादण्। जरत्कारुका पुत्र।

जारद-बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत बरोदाका एक उपविभाग। इसके उत्तरमें रेवाकान्हा एजेन्सी, पश्चिममें बरोदा उपवि-भाग, दक्षिणमें डाभई उपविभाग और पूर्वमें हलोल जिला है। क्षेत्रफल ७५० वर्गमील है। यहांकी जमीन समतल और चारों ओर जंगलसे घिरी है। विश्वामित्री, सूर्य और जाम्बु नदी यहां प्रवाहित हैं। यहांकी मिट्टी काली अथवा पीली होती है। कपास, बाजरा और ज्वार ही प्रधान उपज है। सावली नगर इस उपविभागका सदर है।

जारद्गवी (सं० स्त्री०) एक वीथि, ज्योतिषमें मध्यमार्ग-की एक वीथिका नाम। इसमें विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं। (विष्णुपु० टी० २।८।८०) लेकिन वराह-मिहिरके मतसे इसमें श्रवणा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र रहते हैं। (बृहत्सं० ९।३)

जारभर (सं० पु०) जारं बिभर्त्ति पोषयति, भृ-पचा-दित्वादच्। जारपोषक।

जारा (हिं० पु०) १ सोनार आदिकी भट्ठीका एक भाग। कोई चोज गलाने या तपानेके लिये इसमें आग रहती है। भाथीकी हवा आनेके लिये इसके नीचे एक छोटा छेद होता है। २ जाला देखो।

जाराशङ्का (सं० स्त्री०) जारस्य आशङ्का, ६-तत्। उप-पतिको आशंका।

जारिणी (सं० स्त्री०) कामुकी, दुश्चरित्रा स्त्री, खराब चाल चलनकी औरत।

जारित (सं० त्रि०) जॄ णिच्-क्त। १ शोधित, शुद्ध किया हुआ। २ मारित, मारा हुआ, कतल किया हुआ।

जारो (सं० स्त्री०) जारयति जॄ णिच्-अच् गौरादित्वाद् ङीष्। औषधभेद, एक प्रकारकी दवा।

जारी (अ० वि०) १ प्रवाहित, बहता हुआ। २ प्रच लित, चलता हुआ।

जारी (हिं० पु०) १ झरबेरीका पौधा। २ एक प्रकारका गीत। मुसलमानों की स्त्रियाँ इसे मुहर्रमके अवसर पर ताजियोंके सामने गाती हैं। ३ परस्त्री-गमन, जारकी क्रिया वा भाव।

जारु (सं० पु०) जॄ-उण्। १ जरायु, वह झिल्ली जिसमें बच्चा बंधा हुआ उत्पन्न होता है, आँवल, खेड़ी। (त्रि०) २ जारक।

जारुज (सं० त्रि०) जारौ जरायौ जातः जारु-जन-ड। जरायुजात, झिल्लोसे उत्पन्न, मनुष्य इत्यादि।

जारुधि (सं० पु०) जारुर्जारको द्रव्यभेदो धीयते ऽस्मिन् धा-आधारे कि, उपस०। सुमेरु कर्णिकाकेशर-भूत पर्वतविशेष, भागवतके अनुसार एक पर्वतका नाम जो सुमेरु पर्वतके कर्णिका केसर माना जाता है। (भागवत ५।१६। ७)

जारुथी (सं० स्त्री०) जरूथेन असुरविशेषेण निर्वृत्ता,

च् लोप्। नगरी विशेष, हरिवंशके अनुसार एक प्राचीन नगरीका नाम। (हरिवं ११८अ०)

जारूथ्य—जारुथ्य देखो।

जारूथ्य (सं॰ त्रि॰) जरूथं मांसं स्तोत्रं वा तदर्हति यत्। १ मांसशालपुष्ट। २ स्तोताई। ३ त्रिगुण दक्षिणायुक्त यज्ञ वह अश्वमेध यज्ञ जिसमें तिगुनी दक्षिणा दी जाय

“ततो देवर्षिवत्पित्रा हरिरे गोमतीमनु।

इष्ट्वाश्वमेधानाजह्रे जारूथ्यान् स त्रिरप्युतान्।”

(भारत ३।१२१।४०)

कोई कोई पण्डित जारूथ्य शब्द पाठ करते हैं, किन्तु वह प्रामादिक है क्योंकि “गृधून्वामूधम्” इस इत्यादि सूत्रसे गृधातुका उत्तर ऊथन् करके जरूथ शब्द होता है, बाद तद्धितसे जारूथ्य हुआ है, तथा इसके साथ वैदिक प्रयोग भी मिलता है, यथा—‘जरूथोऽप्यभिमीत,’ (वेदभाष्य)

जारोब (फा॰ स्त्री॰) झाड़, बुहारी, कूचा।

जारोबकश (फा॰ पु॰) झाड़ देनेवाला चमार।

जार्तिक (सं॰ त्रि॰) जार्तिकदेश वा तत्रासक्त जाति सम्बन्धीय, जार्तिकदेशका रहनेवाला वा जार्तिक जातिका।

जार्य (सं॰ त्रि॰) जृ-ण्यत्। स्तुत्य, प्रशंसित, तारीफ़के लायक।

जार्यक (सं॰ पु॰) जार्य स्वार्थे कन्। अथर्व्वेद एक प्रकारका हरिण।

जाल (सं॰ पु॰ क्ली॰) जल घाती ज्वलादित्वात् ण। १ मछली या पक्षियों आदिको फंसानेके लिए तार या सूत आदिका बहुत दूर दूर पर बुना हुआ एक पट या यन्त्र। (भारत १३।२०अ०)

२ गवाक्ष, झरोखा। ३ समूह, यथा—पद्मजाल। ४ क्षार, वनस्पति आदिको जला कर उसकी भस्मसे बना हुआ नमक। ५ दम्भ अहङ्कार, घमण्ड। (मेदिनी) ६ इन्द्रजाल। ७ गवाक्षच्छिद्र। (मनु ८।१३२) ८ पुष्पकलिका, फूलकी कली। जालयति शाखाग्रशाखादिभिः संवृणोति जल-णिच्-अच्। अमिरमा[दि]। पा ५।३।११२। ९ कदम्बवृक्ष, कदमका पेड़। १० लोहेके तारोंकी बनी हुई वह जाली जो मकानके झरोखों आदिमें लगायी जाती है।

११ एक तरहकी तोप। १२ मकड़ीका जाल। १३ वह युक्ति जिससे दूसरे व्यक्तियोंको फंसाया या वशमें किया जाता हो। १४ किसीको ठगने या धोखा देनेके अभिप्रायसे यदि कोई झूठा दस्तावेज बनाया जाय अथवा दस्तावेज या उसका कोई अंश बदल दिया जाय या किसीके हस्ताक्षरोंकी नकल की जाय, तो उसको जाल कहते हैं। अच्छी तरह मालूम होने पर भी झूठे दस्तावेजका असली बताना भी यह भी जाल है। दस्तावेजका तमाम किस्सा ज्योंका त्यों रहने पर भी और तो क्या हस्ताक्षर तक असली होने पर भी यदि कोई एक सारवान् शब्दको परिवर्त्तित किया जाय या बुरे अभिप्रायसे यदि कुछ नया लिखा जाय अथवा यदि एक नामको काट कर दूसरा नाम बैठाया जाय तो वह भी जाल कहलाता है। किसी जीवित व्यक्तिके नामसे झूठा दस्तावेज बनानेसे जैसा जाल होता है, मृत व्यक्तिके नाम बनानेसे भी वैसा ही जाल होता है। साधारणतः किसी व्यक्तिविशेषका स्वत्व नष्ट करनेके लिए यदि बुरे अभिप्रायसे उसकी मुहर या हस्ताक्षर आदिकी नकल या उसको मुहरका कुछ परिवर्त्तन किया जाय। अथवा यदि किसीको नुकसान पहुंचानेके लिए उसके हस्ताक्षरोंका अनुकरण किया जाय तो उसे भी जाल कहते हैं। जिसके नामसे जाल किया जाय, उसके हस्ताक्षरोंसे यदि उस जाल दस्तावेजको लिखावटमें सादृश्य हो और साधारण बुद्धिवाले किसी अभिज्ञ व्यक्तिके मनमें ‘दोनों दस्तावेजोंके दस्तखत एक ही आदमीके हैं’ ऐसा सन्देह उत्पन्न हो; और यदि उसीको समझा हो, तो वह भी जाल करना हुआ।

यदि कोई व्यक्ति दूसरे पक्षवालेको धोखा देनेके लिए दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षर लिख कर पहलेकी तारीख डाल दे, तो वह भी जालके अपराधमें अपराधी है। यदि कोई व्यक्ति किसीके इच्छा-पत्र (Will) बनाते समय जैसा उसको कहा गया है वैसा न लिख कर या लिख अपनी इच्छाके अनुसार दस्तावेजमें कुछ लिख दे, तो वह उसका जाल करना हुआ। अभिप्राय यह है कि धोखा देनेकी इच्छासे उस प्रकारके किसी भी कार्यके करनेको जाल कहते हैं।

पहले इंगलैण्डमें यदि कोई जाल दस्तावेज़ बनाता और व्यवहार करता वा जाल दानपत्र वा किसी अदालतमें जाल दस्तावेज़ प्रमाण देनेके लिए हाजिर करता, तो उसको ५ एलिजाबेथ, सो१४ धाराके अनुसार प्रतिवादीको क्षतिपूर्त्ति करनी पड़ती थी और उसके खर्चसे दूने रुपये देने पड़ते थे। जालके अपराधीके दोनों कान काट कर नासारन्ध्र जला दिये जाते थे। इस प्रदेशमें व्यवसाय वाणिज्यकी वृद्धिके साथ साथ जब लिखित कागजातों पर ज्यादह काम होने लगा, तब जाल रोकनेके लिए कानूनोंमें नाना प्रकारका परिवर्त्तन होने लगा। २ आइन ४र्थ जर्ज और १ विलियम (४र्थ) सो६६ धाराके अनुसार, यदि कोई राजकीय मुहरका जाल करता था, तो उसे राजद्रोहके अपराधसे मृत्युदण्ड दिया जाता था। बादमें सिर्फ इच्छापत्र और विनिमयपत्र (Bill of exchange)के जाल करने पर मृत्युदण्ड मिलता था। इस समय ७, ४र्थ विलियम और १ विक्टोरिया ८४ धाराके अनुसार जालसाज़ोंको मृत्युदण्डसे छुटकारा दिया गया। क्योंकि दोषको सुधारनेके लिए आइनका विधान है, न कि लोगोंको फाँसी देनेके लिए।

अब जालसाज़ोंको कैदमें रखा जाता है। जिसका अपराध जितना अधिक होता है, विचारकके विवेचनानुसार उसको उतने ही अधिक दिनोंके लिए कारादण्डसे दण्डित किया जाता है। किसी किसीको यावज्जीवन द्वीपान्तर या कालेपानीका दण्ड दिया जाता है और किसी किसीको एक वर्षकी कैदकी सजा दी जाती है।

बहुत पहले जिसका नाम जाल किया जाता था, वे हस्ताक्षर उसके हैं या नहीं, यह प्रमाणित करनेके लिए उसको गवाहियोंमें शामिल किया जाता था। परन्तु सब समय हस्ताक्षर देख कर जालका पता नहीं लगाया जा सकता। एक ही व्यक्तिके हाथकी लिखावट किसी समय दूसरी तरहकी हो सकती है। यदि कलम और कागज खराब हो, यदि उसे जल्दी जल्दी कुछ लिखना हो तथा यदि किसी कारणसे उसके हाथ काँपते हों; तो उसकी लिखावट दूसरी तरहकी हो जा सकती है। इसलिये हस्ताक्षरोंके सादृश्यकी परीक्षा विशेष मनोयोगके साथ करनी पड़ती है।

जो लोग जालमें सहायता पहुंचाते हैं, उनको दो वर्ष तक कारारुद्ध किया जा सकता है।

जाल बहुत तरहके होते हैं—दस्तावेज, तमस्सुक आदि जाल, रुपया जाल, आदमी जाल, ष्टैम्प जाल इत्यादि।

भिन्न भिन्न देशमें भिन्न भिन्न प्रकारके सिक्के चलते हैं तथा राजाके आदेशानुसार सिक्के बनते और व्यवहृत होते हैं। जिस देशमें जैसे सिक्के चलते हैं, उस देशमें यदि कोई राजासे छिपा कर वैसे ही सिक्के बना कर चलावे, तो वह रुपया जाल होता है। नोट जाल करना भी ऐसा ही है। जो जाली रुपया बनाता है और जो जान बूझ कर उसको काममें लेता है वर्तमान कानूनके अनुसार उसे ७ वर्षकी कैद भोगनी पड़ती है। यदि कोई किसीको जाली रुपये बनाने या चलानेके लिये प्रवर्त्तित करे, तो उसको भी जालसाजीके अपराधमें दण्डित किया जाता है।

राजस्वके लिए राजाको आज्ञासे जैसे ष्टाम्प आदि व्यवहृत होते हैं, यदि कोई गवर्मेण्टको धोखा देनेके अभिप्रायसे हूबहू वैसा ही ष्टाम्प खुद बनावे या काममें लावे, तो उसे भी कैदको सजा भोगनी पड़ती है।

किसी व्यवसायोको क्षति पहुंचा कर अपने लाभके लिए यदि उसका व्यवसायचिह्न (Trade mark) व्यवहृत किया जाय, तो जालके अपराधसे अपराधी होना पड़ता है। यदि कोई व्यक्ति, दूसरे किसी व्यक्तिके उस चिह्नका—जिसे कि वह अपनी सम्पत्तिकी ठीक रखनेके लिए व्यवहृत करता है (अर्थात् Property Mark)—अपव्यवहार करे, तो वह उसका जाल करना हुआ। यदि कोई व्यक्ति अपने परिचयको छिपा कर दूसरे किसी व्यक्तिके नामसे अपना परिचय दे कर किसीको धोखा दे, अथवा जान बूझ कर अपनेको वा अन्य किसी व्यक्तिको दूसरे किसीके नामसे परिचय करावे, तो उसका यह आदमी जाल बनाना हुआ। जिसके नामसे परिचय दिया जाय, यदि वास्तवमें वह आदमी न भी हो, तो भी वह जाल ही कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति दीवानी या

निर्वासित हो कर कुछ समयके लिए इसी नगरमें वास किया था। तब जालना एक मुगल सेनापतिका जागीर था। १८०३ ई०में महाराष्ट्र युद्धके समय कर्नल स्टिवेन्सनकी सेना इसी नगरमें टिकी थी। यहां पत्थरकी बनी हुई सराय एक मसजिद, तीन हिन्दू देवमन्दिर और कई एक नगरकी प्रधान अट्टालिकायें हैं। यहांका वाणिज्य व्यवसाय दिनों दिन ह्रास होता जा रहा है। यहां सोने और चांदीका गोटा और कुछ कपड़े भी तैयार होते हैं। जालना दुर्ग १७२५ ई०में निर्माण किया गया था। यह अब बहुत तहस नहस दशामें है। इसके उत्तरमें एक विस्तृत उद्यान है। यहांका फल बम्बई, हैदराबाद आदि देशोंमें भेजा जाता है। शहरसे आध मील पश्चिममें मतिनलाव नामका एक बड़ा सरोवर है। इसीका जल नगरके काममें आता है। यहां डाकघर, डाकबङ्गला और दो गिरजा हैं।

जालना पहाड़—हैदराबाद राज्यकी पर्वतश्रेणी। यह दौलताबादसे औरङ्गाबाद जिलेको चला गया है। बरार की सीमाके निकट जालनाका पर्वत आ मिलनेसे ही इसका यह नाम पड़ा है। फिर यह सह्याद्रि पर्वतमें मिल जाता है। जालना पर्वत २४०० फुट ऊंचा है। दौलताबाद चोटी समुद्रपृष्ठसे ३०२२ फुट ऊंची पड़ती है। इसकी पूरी लम्बाई १२० मील है।

जालन्धर—शतद्रु और चन्द्रभागा नदीके मध्यवर्ती दुआब का ऊर्ध्वांश। पहले इस प्रदेशका नाम त्रिगर्त था। इस प्रदेशका प्रधान शहर जालन्धर है। कोटकाङ्गड़ा (अथवा नागरकोट) नामक स्थानमें एक सुदृढ़ दुर्ग था, विपद कालमें जालन्धरवासी उस स्थानमें आ कर रहते थे।

पद्मपुराणमें जालन्धरके उत्पत्ति सम्बन्धमें एक सुन्दर गल्प है—किसी समय समुद्रके औरस और गङ्गाके गर्भसे जालन्धर नामका एक दानव उत्पन्न हुआ। उसके जनमते ही पृथिवी देवी कांप उठी। स्वर्ग, मर्त्य और रसातल उसके गर्जनसे प्रकम्पित हो गया। जब ब्रह्माका ध्यान टूटा तो वे तीनों लोकको व्याकुल देख भयभीत हो गये। बाद वे हंस पर चढ़ कर समुद्रके सामने उपस्थित हुए और समुद्रसे पूछा, 'हे सागर! तुम क्यों इस तरहका गम्भीर और भयङ्कर शब्द कर रहे हो?' समुद्रने उत्तर दिया, 'हे देवादिदेव! यह मेरा गर्जन नहीं है, मेरे पुत्रके गर्जनसे ऐसा शब्द उत्पन्न होता है।" ब्रह्मा समुद्रके पुत्रको देख कर अत्यन्त विस्मित हो गये। जब ब्रह्माने उसे अपनी गोदमें बिठा लिया तब उसने उनकी दाढ़ी इतने जोरसे खींची कि उनकी आंखोंसे आंसू निकल पड़े और वे किसी तरह दाढ़ी न छुड़ा सके। तब समुद्रने हंसते हंसते आगे बढ़ अपने पुत्रका हाथ छुड़ा दिया। ब्रह्मा सागर-पुत्रके पराक्रमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हो कर बोले कि इस लड़केने मुझे अत्यन्त जोरसे आकर्षण किया है, इसलिये यह संसारमें जालन्धर नामसे प्रसिद्ध होगा। ब्रह्माने उसे एक और भी वर दिया, कि यह बालक देवताओंसे भी अजेय होगा और मेरे अनुग्रहसे त्रिलोकका अधिपति कहलावेगा।

बड़े होने पर एकदिन दैत्यगुरु शुक्र समुद्रके समीप जा कर बोले, "हे सागर! तुम्हारा पुत्र अपने भुजबलसे त्रिलोकका राजा होगा, इसलिये तुम पुण्यात्माओंके वासस्थान जम्बूद्वीपसे कुछ दूर हट कर वास करो और अपने पुत्रके रहने योग्य कुछ स्थान दे कर वहां उसे एक छोटा राज्य प्रदान करो।" दैत्यगुरु शुक्रके कहने पर समुद्र ३०० योजन दूर हट गया। वही जल-निर्मल स्थान पीछे जालन्धर नामसे मशहूर हो गया है।

(पद्मपुराण उत्तर०)

उक्त कथा काल्पनिक कह कर उड़ाई नहीं जा सकती। इसमें साथ एक प्राकृतिक परिवर्तनका सम्बन्ध भी है। जालन्धर प्रदेश गङ्गा और सिन्धु नदके उपत्यका प्रदेशके अन्तर्गत पड़ता है। पहले उक्त प्रदेश सम्पूर्ण रूपसे समुद्रके मध्य था, बाद समुद्रके हट जानेसे यह मनुष्यकी आवासभूमि हो गया है।

जालन्धर दानवका कुल वृत्तान्त अत्यन्त शोचनीय है। उसे वर मिला था, कि जब तक उसकी स्त्री वृन्दाका चरित्र निष्कलङ्क रहेगा, तब तक उसे कोई जीत नहीं सकता। किन्तु विष्णुने जालन्धरका रूप धारण कर वृन्दाको ठगा था, इसीसे थोड़े समयके बाद शिवजीने जालन्धरको पराजित किया। आश्चर्यका विषय यह था कि परस्पर युद्धकालमें शिवजी जितनी बार जालन्धरके मस्तकको काटते जाते थे, उतनी बार फिर उसका मस्तक

पूजता जाता था। अन्तमें शिवजीने कोई दूसरा उपाय न देख कर उसके कटे हुए मुण्डको मट्टीमें गाड़ दिया। दानवका शरीर इतना प्रकाण्ड था कि उसको ढकनेके लिये १२ कोस जमीनकी जरूरत पड़ी थी। इसीसे आधुनिक जालन्धरतीर्थ भी १२ कोस तक फैला हुआ है। जालन्धर जिलेके प्रधान शहरको हिन्दूगण जालन्धर पीठ कहते हैं। जालन्धरवासी हिन्दुओंका कहना है कि जालन्धर दानवको गाड़ते समय उसका मस्तक विपाशा नदीके उत्तरकी ओर ज्वालामुखी नामक स्थानमें रखा गया था। उसका शरीर शतद्रु और विपाशा नदीके मध्यवर्ती भूभाग तक फैला था। उसकी पीठ जालन्धर जिलेके तलदेश और उसके पैर मुलतान तक पहुंचे थे। इस प्रदेशके मानचित्रके प्रति दृष्टिपात करनेसे मालूम हो जायगा कि इस कहानीके साथ इस प्रदेशकी आकृतिका सामञ्जस्य है। रुदयोन नामक स्थानसे शतद्रु और विपाशा नदी २४ मील आगे बढ़ कर दानवके पदाकारमें परिणत हो गई हैं। इसके बाद वे अलग अलग हो कर ९८ मील तक बही हैं और अन्तर्देशकी सृष्टि हुई है। अभी वे दोनों नदियां फिरोजपुरमें एक दूसरेसे मिलती हैं। किन्तु कई एक शताब्दीके पहले उन नदियोंके १९ मीलसे कुछ अधिक दूरमें आ कर मिलनेसे कटिदेशकी सृष्टि और मुलतान तक समान्तर भावमें प्रवाहित होनेसे पाददेशकी उत्पत्ति हुई थी।

जालन्धरकी उत्पत्ति सम्बन्धमें एक दूसरी उत्तम कथा इस तरह है—जलन्धर नामका एक राक्षस था। जब भगवान्ने अमरोंकी सृष्टि की, तब इस राक्षसने बहुत ऊधम मचाया। बाद भगवान् विष्णुने वामनरूप धारण कर इस राक्षसको मारा। राक्षस आहत हो कर औंधे मुंह गिर पड़ा और उसकी पीठके ऊपर एक नगर निर्माण किया गया। यही नगर जालन्धर नामसे प्रसिद्ध है। राक्षसकी लम्बाई उसके पृष्ठदेशके मध्यस्थलसे दोनों ओर १२ कोस विस्तृत थी। पहले इसी स्थान पर नगर बसाया गया; बाद अन्यान्य स्थान अधिकृत हो गये हैं। यह राक्षस कितनी दूर फैल गया था उसका निर्णय करना दुःसाध्य है। कोई कोई कहते हैं कि निगम नदीके ऊपर जिन्दाहन नामक स्थानमें नन्दिकेश्वर महादेवके मन्दिरके नीचे जालन्धर राक्षसका मस्तक रखा हुआ है। इस स्थानको तथा पालमपुरके मध्यवर्ती जङ्गलमय प्रदेशको जालन्धरकी स्त्री वृन्दाके नामानुसार वृन्दावन कहते हैं। इस राक्षसका मस्तक बैजनाथसे १ मील उत्तर पूर्व कोनमें मुमसोधके मुकेश्वर मन्दिरके नीचे रखा हुआ है। एक हाथ नन्दिकेश्वरमें और दूसरा हाथ केयलामें स्थापित है। इसके दोनों पैर ज्वालामुखीके दक्षिण विपाशा नदीके पश्चिम मालत कामपुरमें अवस्थित हैं।

शतद्रु और चन्द्रभागा नदीका मध्यवर्ती प्रदेश त्रिगर्त्त अथवा त्रैगर्त्तदेश नामसे भी पुकारा जाता है। इस प्रदेशमें शतद्रु विपाशा और चन्द्रभागा नामकी तीन नदियां प्रवाहित हैं इसीसे इसको त्रिगर्त्त कहते हैं। महाभारत, पुराण और काश्मीरके इतिहास राजतरङ्गिणी नामक ग्रन्थमें इसका नाम त्रिगर्त्त दिया जाता है। हेमचन्द्रने भी 'त्रिगर्त्त'-को जालन्धरके प्रतिशब्द रूपमें व्यवहार किया है।

जालन्धरका राजवंश अत्यन्त प्राचीन है, राजवंशीय गण कहते हैं, कि उन्होंने चन्द्रवंशमें जन्मग्रहण किया है। इनके पूर्वपुरुष सुशर्मा आधुनिक मुलतानमें राज्य करते थे, और उन्होंने कौरव-पाण्डवकी लड़ाईमें दुर्योधनका पक्ष लिया था। लड़ाई समाप्त होने पर इन्होंने सुशर्माचन्द्रके अधीन जालन्धरमें आ कर अपनी राजधानी स्थापन की और कोटकाङ्गड़ामें एक दृढ़ दुर्ग बनाया। चन्द्रवंशीय होनेके कारण ये चन्द्र उपाधि धारण करते थे। उनका कहना है कि उन लोगोंके पूर्वपुरुष सुशर्मा राजाके समयसे हो वे चन्द्र उपाधि धारण करते आ रहे हैं। ८०४ ई० में जालन्धरके राजाका नाम जयचन्द्र था। कल्हण पण्डितने लिखा है कि ८वीं शताब्दीके अन्तमें त्रिगर्त्तराज पृथ्वीचन्द्र शङ्करवर्माके भयसे भाग गये थे। १०४० ई०में इन्दुचन्द्र जालन्धरके राजा हुए थे।

त्रिगर्त्त राजाओंके राज्यकी सीमाका पता लगाना बहुत कठिन है। किसी समय निकटवर्ती दक्षिण प्रदेशके राजाओंने त्रिगर्त्तके किसी भाग पर अपना अधिकार जमाया था, बाद वह फिर त्रिगर्त्त राजाओंके हाथ आ गया है। जब शक राजाने भारतवर्षमें प्रवेश

कर कई एक स्थान अधिकार कर लिये थे, तब त्रिगर्त्त-राजगण अपने समस्त अधिकारसे विच्युत न हुए थे। वे शकके अधीन करद राजा थे और जब कभी उन्होंने सुविधा पाई तभी अपने प्राचीन दुर्ग कोटकाङ्गड़ाको अधिकारमें लानेकी चेष्टा की। एक समय महम्मद तुगलकने इस दुर्ग पर अधिकार किया था, किन्तु वह फिर राजा रूपचन्द्रके हाथ आ गया। इसके बाद फिरोज शाहने इसे अपने अधिकारमें लाया। पीछे तैमुरके आक्रमणके समय त्रिगर्त्तराजाने इस दुर्गको पुनः अपने हाथमें कर लिया और सम्राट् अकबरके समय तक यह दुर्ग उन्हींके अधीन था। अकबरके समयमें राजा धर्मचन्द्रने दिल्लीकी अधीनता स्वीकार की। राजा त्रैलोक्यचन्द्र जहांगीरके समयमें विद्रोही हो गये थे, किन्तु उन्होंने पराजित हो कर अधीनता स्वीकार की। कालक्रमसे राजा संसारचन्द्रने कोटकाङ्गड़ा दुर्ग अपने हाथमें कर लिया और समस्त जालन्धर प्रदेशको अधिकारमें लानेकी चेष्टा की। किन्तु अन्तमें उन्होंने गोरखासैन्यसे प्रतिहत हो कर रणजित्‌सिंहसे सहायता मांगी थी। उन्हें सहायता दी गई सही, किन्तु कोटकाङ्गड़ा दुर्ग उसी समय जालन्धर राजाओंके हाथसे सदाके लिये जाता रहा।

चीन-भ्रमणकारी युएनचुयाङ्गने भारतसे लौटते समय जालन्धर राज भवनमें आतिथ्य स्वीकार किया था। वे जालन्धरराजको उतितो नामसे अभिहित कर गये हैं। शायद राजा आदित्यको उन्होंने उतितो (उदित) नामसे उल्लेख किया है। ८०४ ई०में जयचन्द्र त्रिगर्त्तके राजा थे जयचन्द्रके बाद क्रमशः १८ राजाओंने राज्य किया बाद १०२८ ई०में इन्द्रचन्द्र जालन्धरके सिंहासन पर बैठे। उनके बादसे ले कर राजा रूपचन्द्रके समय तक ३४ राजा हुए। राजा रूपचन्द्रके बाद ४७ राजाओंने जालन्धर पर राज्य किया। १८४७ ई०में रणवीरचन्द्र राजा थे, थोड़े समयके बाद ये सिंहासनसे हटा दिये गये। रूपचन्द्रके वंशमें हरि और कर्म नामके दो भाइयोंने जन्मग्रहण किया। हरि बड़े होनेके कारण सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। एक समय वे हरसर नामक स्थान पर एक कूपमें अकस्मात् गिर पड़े, बहुत तलाश करने पर भी उनका पता न चला। इसलिये उनके भाई कर्म राजसिंहासन पर बैठे। २ या ४ दिन बाद किसी व्यापारीने उन्हें कूएंमें बाहर निकाला। किन्तु इसके पहले ही उनकी प्रेतक्रिया हो चुकी थी, अतः वे पुनः राज्यके अधिकारी न हो सके, उन्हें गुलार नामका एक छोटा राज्य दे दिया गया। उसी समयसे गुलारमें भी जालन्धर राजका एक वंश राज्य करता आ रहा है।

प्राचीन त्रिगर्त्त राज्यमें जालन्धर, पाठानकोट, धरमेरि, कोटकाङ्गड़ा, वैद्यनाथ और ज्वालामुखीका देवमन्दिर ही प्रसिद्ध हैं।

१ अभी जालन्धर कहनेसे पञ्जाबका एक राजस्व विभाग समझा जाता है। इसके अधीन जालन्धर, होसियारपुर और काङ्गड़ा ये तीन जिला पड़ते हैं। यह अक्षा० २८° ५५' उ०से ३२° ५८' उ० और देशा० ७१° ५२' से ७८° ४२' पू०में अवस्थित है। जालन्धरकी निम्न प्रान्तर भूमि मुसलमानों के हाथ आ जाने पर यहांके प्राचीन राजवंश पार्वतीय प्रदेशमें आ कर रहते हैं और प्रसिद्ध दुर्ग काङ्गड़ाके नामानुसार यह स्थान भी काङ्गड़ा नामसे मशहूर हो गया है। इस स्थानको कोई कोई कतोच कहते हैं।

वृटिश अधिकारभुक्त जालन्धर प्रदेशमें हिन्दू, जैन, सिख धर्मावलम्बी जाट, राजपूत, ब्राह्मण, गुर्जर, पाठान, मेवट आदिका वास है। जालन्धरके उच्च प्रदेशमें बहुतसे कूएं हैं जिनके जलमें खनिज पदार्थ मिश्रित है। इस स्थान पर मणिकर्ण नामक एक गरम झरना निकला है जिसका जल ५३८१ फुट ऊपर उछलता है। मणिकर्णके समीप पार्वतीय तुषार-स्रोत बहते हैं। यहां विसत् नामक गन्धकगर्भ उष्णप्रस्रवण है।

जालन्धरके कोहिस्थान, सुखेत और मन्दि उपत्यकामें तथा मन्दि नगरके निकटवर्त्ती छोटे छोटे ग्रामोंमें यदि कोई विदेशी मनुष्य पहुंच जाय, तो उन ग्रामोंकी स्त्रियां उसके सत्कारके लिये भिन्न भिन्न दलमें उसके समीप आ जाती हैं और अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर अभ्यर्थनासूचक गीत गाती हैं। इस उपलक्षमें उस आगन्तुकको प्रतिदलमें एक एक रुपया देना पड़ता है।

जालन्धर विभागका क्षेत्रफल १९८१० वर्गमील है। इस विभागमें ५ जिले, १७ नगर और ६११५ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः ४१०७६६२ है।

४४०१५६१२ एकड़ जमीनमेंसे २०५८०८६ एकड़ जमीन आबाद होती है। ५०२८८०५ एकड़ जमीन परती रहती है। इस भूमिका प्रायः ½ अंश पर्वत मय है।

यहांकी उपज जो, धान, गेहूं, तिल, ज्वार, चना, ईख, रुई, तमाकू, नील, येमता और तरह तरहकी शाक सब्जी प्रधान है। जालन्धर विभाग एक कमिश्नरके अधीन है। विचार कार्यके लिये यहां एक सहकारी कमिश्नर रहते हैं। इस विभागमें ३ डिपुटी कमिश्नर और कार्य निबाहके लिये प्रत्येकके एक एक सहकारी हैं। इसके सिवा ९ सहकारी कमिश्नर, ८ अतिरिक्त सहकारी कमिश्नर, १ सेनानिवासके मजिष्ट्रेट, २१ तहसीलदार, ११ मुनसफ और बहुतसे अधीनस्थ कर्मचारी हैं।

२ ब्रटिश अधिकारभुक्त जालन्धर जिला पञ्जाब गवर्मेण्टके अधीन है। यह अक्षा० ३० ५६ से ३१ ३७ उ० और देशा० ७५ ४ से ७६ १६ पू०के मध्य जालन्धर विभागके दक्षिण सीमा पर अवस्थित है। इसके उत्तर पूर्व कोणमें होशियारपुर उत्तर पश्चिममें कपूरतला मित्रराज्य और दक्षिणमें शतद्रु नदी है। जालन्धर जिलेकी लोकसंख्या प्रायः ८१७५८७ है। यह जिला ४ तहसील अथवा महकमेमें विभक्त है। जालन्धर तहसील के उत्तरमें नव शहर, फिल्लौर और दक्षिणमें नाकोदर है। इस जिलेका भूपरिमाण १४३१ वर्गमील है। राज्य संक्रान्त प्रधान कर्मचारी जालन्धरमें रहते हैं। शतद्रु और विपाशा नदीके मध्यकी त्रिकोणाकार भूमि जालन्धर अथवा बिसत दुआब नामसे मशहूर है। इस भूखण्डके कई अंश कपूरतला राज्यके अन्तर्गत और कई अंश ब्रटिश अधिकारभुक्त हैं। पञ्जाबमें यही दुआब सबसे अधिक उर्वरा है। इसके थोड़े स्थानोंमें ताल भी देखे जाते हैं। यहां एक प्रकार तरह तरहकी खेती लगती है। इस दुआबके बीच एक भी पहाड़ नहीं है। इसकी रोचक समभूमि समुद्रतलसे १०१२ फुट ऊंची है, किन्तु विश्व महादेवी और मध्य अत्यन्त नीची है। इस प्रदेश

की नदियोंमें ग्रीष्मकालके समय १५ फुटसे अधिक जल नहीं रहता है। इनकी नाव इस नदीमें बारहो मास चलती जाती है। फिल्लौरके निकट शतद्रु नदीके ऊपर पञ्जाब और दिल्ली रेलका एक पुल है। पाक्पट्टन रास्तेमें मालपत्रकी आमदनी और रफ्तनीके लिये ग्रीष्म कालमें नदीके ऊपर नावका पुल तैयार होता है। होशियारपुर जिलेमें भिन्नभिन्न पहाड़से दो छोटे छोटे सोते निकले हैं और वे क्रमशः एक दूसरेसे मिल कर दो बड़ी नदियोंके रूपमें परिणत हो गये हैं। जिनमेंसे एकका नाम गोंत अथवा पूर्व-बैन और दूसरेका कृष्ण अथवा पश्चिम बैन रक्खा गया है। ये दोनों नदियां कपूरतला और जालन्धर प्रदेशमें प्रवाहित हैं। इस जिलेमें बहुतसी झीलें हैं जिनमें बरसाती जल जमा रहता है। ग्रीष्मकाल में भी उनका जल बिलकुल नहीं सूख जाता है। राहव के निकटकी झील ही सबसे बड़ी है जो ८६६० फुट लम्बी और ३००० फुट चौड़ी है। फिल्लौरके पासकी झील भी बहुत बड़ी है। इन सब झीलोंमें तरह तरह के जलचर पक्षी रहते हैं। जालन्धरमें भेड़िए बहुत देखे जाते हैं। यहां हिंसक पशु बहुत कम हैं।

सम्राट् अकबरके समय जालन्धर सरकार प्रदेशके अन्तर्गत लिया गया था। इस प्रदेशके शासनकर्त्ता दिल्ली सम्राट्को कुछ कर दे कर स्वाधीन भावसे राज्य करते थे। इस प्रदेशके अन्तिम मुसलमान शासनकर्त्ता अदीना बेग इतिहासमें सुपरिचित हैं। मुसलमानोंकी अवनतिके समय बहुतसे सिख सर्दार अपनेअपने जालन्धरके थोड़े स्थानों पर स्वाधीन भावसे राज्य करते थे। १७६६ ई०में यह प्रदेश फैजुल्लाह-पुरिया मिसलदलके हाथ आ गया। उस समय खुशालसिंह इस मिसिल (दल)के सभापति थे। खुशालके पुत्र और उत्तराधिकारी बुधसिंहने इस शहरमें एक दुर्ग निर्माण किया था। १८११ ई०में रणजीतसिंहने दीवान फैजुल्ला पुरिया राज्य जीतनेके लिये भेजा। बुधसिंह उरसे भाग गया। उसी समय यह जिला रणजीतसिंहके राज्यमें आ गया और वहांके सदार अपने अधिकारसे च्युत किये गये। प्रथम सिख युद्धके बाद शतद्रु और विपाशा नदीके मध्यका भूभाग ब्रटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया और एक कमिश्नर

इस प्रदेशके शासनकर्त्तारूपमें नियुक्त हुए। १८४८ ई०में यह प्रदेश पहले लाहोरके वृटिश रेसिडेण्टके शासनाधीन किया गया, बाद समस्त पञ्जाब प्रदेश अङ्गरेजोंके हाथ आ जाने पर इस प्रदेशका शासनकार्य साधारण नियमके अनुसार हो चलता था। जालन्धर कमिश्नरके वास-स्थानके रूपमें परिणत हुआ और यह जालन्धर, होसियार-पुर और काङ्गड़ा इन तीनों जिलोंमें विभक्त किया गया। जब यह प्रदेश लाहोर दरबारके अधीन था, तब गुलाम मोहिउद्दीनने अधिक राजस्व वसूल करके अधिवा-सियोंको जिस तरह तकलीफ दी थी, अङ्गरेजोंने उस तरहकी नीति अवलम्बन न की। पहले फैजुल्लाह पुरिया मिशिलके अधीन अत्यन्त दयालु और न्यायवान् सिख शासनकर्त्ता रूपलाल जिस तरह कर वसूल करते थे, अङ्गरेज भी उसी तरह काम करते आ रहे हैं।

जालन्धर प्रदेशमें १४ प्रधान शहर हैं—जालन्धर, कर्त्तारपुर, अलवालपुर, आदमपुर, वङ्गा, नवशहर राहण, फिल्लोर, नूरमहल, महतपुर, नाकोदर, बिलगा, कानदिवाला, करका और कलन। साधारणतः इस प्रदेशमें पञ्जावी भाषा प्रचलित है। निम्न श्रेणीके लोग हिन्दी भाषामें बोलते हैं।

प्रदेशकी १३६६३२८३ एकड़ आबादी जमीनमें २२५७२२ एकड़ जमीनमें पानी सींचना पड़ती है। पानी सींचनेके लिये जगह जगह कुएँ हैं। इस प्रदेशमें ईख बहुत उपजती है और इसीको बेच कर गृहस्थ लोग मालगुजारी देते हैं। यहां गाय, बैल, घोड़े, खच्चर, गदहे, भेड़े और बकरे बहुत पाये जाते हैं। खेती करनेके लिये जो नौकर नियुक्त किये जाते हैं उन्हें वेतन स्वरूप कुछ फसल दी जाती है।

व्यवसाय वाणिज्य—लुधियाना, फिरोजपुर और आस पासके स्थानोंसे जालन्धरमें अनाज आदि भेजा जाता है, किन्तु कभी कभी जालन्धरसे भी चावल आदिकी रफ्तनी आगरा और वङ्गदेशमें होती है। यहांकी ईख ही प्रधान पण्यद्रव्य है। यहांकी चीनी और गुड़ बीकानेर, लाहोर, पञ्जाब और सिन्धुप्रदेशमें भेजा जाता है। अगहनसे माघ महीने तक यहां ईख पेरी जाती है। किसी किसी गांवमें ५०से भी अधिक ईख पेरनेके कोल्हू हैं। जालन्धरवासी ईखका रस निकाल लेते हैं और जो भाग फेंक दिया जाता है उससे वे रस्सी तैयार करते हैं। जालन्धर, राहण, कर्त्तारपुर और नूरमहलमें एक प्रकार-का कपड़ा प्रस्तुत होता है। जालन्धरका घाटि नामक वस्त्र अत्यन्त सुन्दर और चमकीला होता है। यहांका सूसी नामक वस्त्र भी खराब नहीं होता है। यहां एक-सौसे अधिक करघे चलते हैं जिनमें तरह तरहके रेशमी कपड़े तैयार होते। यहां प्रायः पगड़ीके लिये लुङ्गी व्यवहृत होती है। राहणमें एक प्रकारकी चादर और मोटा कपड़ा बनता जो जालन्धरके कपड़ोंमें बहुत प्रसिद्ध है।

जालन्धरका बढ़ईका काम अत्यन्त मनोहर लगता है। काठके ऊपर अच्छे अच्छे चित्र खोदे रहते हैं। ये इतने सुन्दर बने रहते हैं कि हर एक २०) रु०से कममें नहीं बिकता है। यहां एक तरहकी कुर्सी तैयार होती है। उसके हत्थे शीशम और तूणकाठके बने रहते हैं। खानखानेके काठका काम विशेष प्रसिद्ध है।

जालन्धरमें चांदीकी पत्ती और एक प्रकारका सोने-का बढ़िया गोटा बनता है। यहांका मृण्मय कार्य भी खराब नहीं है। तमाकू पीनेके लिये एक प्रकारकी चिलम और मर्त्तबान तैयार होता जिसका मूल्य भी अधिक होता है।

जालन्धर जिलेमें ४८ मील रेलपथ गया है। फिल्लौर, फगवारा, जालन्धरसैन्यनिवासके समीप और जालन्धर शहरमें सिन्धु-पञ्जाब और दिल्ली रेलवेके ष्टेशन हैं। होसियारपुरसे काङ्गड़ा तक ८६ मीलकी एक पक्की सड़क चली गई है। रेलपथ तथा ग्राण्डट्रङ्क पथ पर तार बैठाया गया है।

जालन्धर जिलेमें एक डेपुटीकमिश्नर, एक या दो सहकारी तथा दो या उससे अधिक अतिरिक्त सहकारी कमिश्नर रहते हैं। अतिरिक्त कमिश्नरोंमें एक युरोपियन रहनेका नियम है। इसके सिवा राजस्व और चिकित्सा-विभागके कर्मचारी भी वहां रहते हैं। पुलिसमें ३६४ स्थायी कर्मचारी रहते हैं। म्युनिसीपल पुलिसमें १०० और सेनानिवासकी पुलिसमें ५६ कानस्टेबल हैं। इस प्रदेशमें प्रायः ११७८ ग्राम्य चौकीदार रहते हैं। गवर्मेण्ट

और साधारणतम विद्यालयोंकी संख्या १५० है। इसके अतिरिक्त और कई एक छोटे छोटे विद्यालय हैं। राजकर वसूल करनेके लिये प्रत्येक जिला ४ तहसील और ८ थानोंमें बँटा है।

जालन्धर प्रदेशकी जलवायु उतना स्वास्थ्यकर नहीं है। यहां प्रतिवर्ष कमसे कम २८ ४८ इंच वर्षा होती है। मलेरिया ज्वरका प्रकोप भी यहां अधिक है जिससे प्रतिवर्ष बहुत मनुष्य मरते हैं। यहांके प्रायः अधिकांश अधिवासी हो पेटकी बीमारीसे पीड़ित रहते हैं।

२ जालन्धर जिलेकी उत्तर तहसील। यह अक्षा० ३१ १२ से ३१ ३७ उ० और देशा० ७५ ४८ पू०में अवस्थित है। इस तहसीलमें करतारपुर और अलावलपुर नामक दो शहर और ४०८ गांव लगते हैं। यहां मुसलमानोंकी संख्या अधिक है। यहांका भूपरिमाण ३८१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३०१८७४ है। गेहूं, तेल, जौ ज्वार, चना, रुई, मक्र, धान, ईख और तरह तरहके शस्य उपजते हैं। इस तहसीलका शासनकार्य चलानेके लिये एक छोटी अदालतके जज, एक तहसीलदार, २ मुनसफ और अवैतनिक मजिष्ट्रेट हैं। इस तहसीलके अधीन ४ थाना हैं जिनमें १४४ स्थायी पुलिस कर्मचारी,और २०४ चौकीदार रखे जाते हैं।

३ पञ्जाब प्रदेशके जालन्धर जिलेका प्रधान शहर। यह अक्षा० ३१ २० उ० और देशा० ७५ ३५ पू०। नाथ वेस्टर्न रेलवे और ग्राण्ड ट्रङ्क रोड पर अवस्थित है। रेलके रास्तेसे यह शहर कलकत्तेसे ११९० मील, बम्बईसे १२४० मील और कराचीसे ८१६ मील दूर पड़ता है।

जालन्धर पहले कतोचके राजपूत राजाओंको राजधानी था। चीनपरिव्राजक युएनचुयाङ्गने लिखा है, कि इस शहरकी परिधि प्रायः २ मील है। यहां दो अत्यन्त प्राचीन सरोवर हैं। गजनोके इब्राहिमशाहने यह स्थान मुसलमानोंके अधीन किया। मुगल राजाओंके शासनकालमें इस शहरमें सतद्रु और विपाशा नदीके मध्यवर्ती दुआबकी राजधानी थी। यहां दीवारसे घेरे हुए कई एक भिन्न भिन्न महल्ल हैं। शहरसे एक या दो मीलकी दूरी पर बहुतसे बस्तियां और एक सुन्दर सराय है। कहा जाता है कि इमामउद्दीनके प्रतिनिधि शेख करिम बख्सने इस सरायको निर्माण किया था।

जालन्धर शहरमें प्रायः ६७०११ लोगों का वास है। यहां अमेरिकाके प्रेसबिटेरियन धर्मशालाका एक स्कूल और एक पादरोका एक बालिका विद्यालय भी है। इस शहरमें एक इरिङ्ग थायस है जहां सब ऋतुओंमें इरिङ्ग मनाया जाता है। शहरसे ४ मील दूर सैन्यावास है जो १८४६ ई०में स्थापित हुआ था। इस सैन्यावासका भूपरिमाण ७। वर्गमील है। जालन्धर दुर्गमें एक दल युरोपीय पदातिक, एक दल गोलन्दाज और एक दल देशीय पदातिक सैन्य है।

यह एक पीठस्थान है। यहां भगवतीका स्तनभाग गिर पड़ा था। भगवतीको त्रिपुरकी मूर्त्ति इसी स्थान पर विराजित है। (देवीभा० ७।३०।७२)

४ जालन्धर देशवासी जालन्धरके रहनेवाले। ६ देशविशेष, एक दानवका नाम।

"पुरा जालन्धरं दैत्यं जघान परमेश्वरः।
स्वांगुष्ठस्य रेखायाश्चक्रं तदुद्भवाभवत्॥"
(काशीख० ५१ २०६)

७ ऋषिविशेष, एक ऋषिका नाम।

जालन्धरायण (सं० पु०) जलन्धरका गोत्रज।

जालन्धरि (सं० पु०) एक प्राचीन देवका नाम।

जालपाद् (सं० पु०) जालमिव पादौ यस्य। हंस। इसका मांस खानेवाला महापातकी समझा जाता है, यदि उसका प्रायश्चित्त न किया जाय तो पातित्य दोष लगता है।

"हंसं जालपदं चैव भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।" (स्मृति)

जालपाद (सं० पु०) जालमिव पादोऽस्य। १ हंस। २ महाशिल्पी। ३ वह पक्षी या पशु जिसके पैरकी उंगलियां जालदार झिल्लीसे ढँको हों। यथा—सिन्धुघोटक बीन प्रभृति। ४ जनपदविशेष, एक प्राचीन देशका नाम। ५ नाथ सिद्धविशेष, एक सिद्धका नाम।

जालमाया (सं० स्त्री०) जालरूप मायो बाहुल्य यज्ञ बहुव्री०। मीठास चार्वजिकी काला, संमोद।

जालबन्द (हिं० पु०) एक प्रकारका गलीचा। इसमें जालकी तरहकी बेलें बनी होती हैं।

जालभुज (सं० त्रि०) जिसको उँगलियोंके ऊपरका चमड़ा जालके समान हो।
जालमानि (सं० पु०) १ शस्त्र-व्यवसायिविशेष, शस्त्रोंसे अपनी जीविकानिर्वाह करनेवाला मनुष्य। २ त्रिगर्त्तके अधिवासी। जालकि देखो।
जालव (सं० पु०) एक दैत्य। यह बलवनका पुत्र था। बलदेवके हाथसे इसकी मृत्यु हुई थी।
जालवत् (सं० त्रि०) १ तन्तुवत्, सूत या तागाके समान। २ कवचसे ढका हुआ। (क्ली०) ३ कपट, छल।
जालवर्बुरक (सं० पु०) जालाकारो वर्बुरकः। दृढ़ स्थूल कण्टकयुक्त शाखाविशिष्ट वर्बुर जातीय वृक्ष, बबूलकी जातिका एक प्रकारका पेड़ जिसमें बहुत कांटा और छोटी छोटी डालियां होती हैं। इसके पर्याय—छत्राक, स्थूलकण्टक, सूक्ष्मशाख, तनुच्छाय और वज्र कण्ट है। इसके गुण—शातामय और कफनाशक पित्तदाहकारक, कषाय और उष्ण है।
जालवाल (सं० पु०) मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली।
जालविन्दुजा (सं० स्त्री०) यावनाली शर्करा।
जालसंज्ञक (सं० पु०) शुक्लगत नेत्ररोगविशेष, मोतियाबिन्द।
जालसाज़ (अ० पु०) वह जो दूसरोंको धोखा देनेके लिये किसी प्रकारकी झूठी कारवाई करे।
जालसाजी (फा० स्त्री०) फरेब या जाल करनेका काम, दगाबाजी।
जालकूट (सं० त्रि०) जलप्रचुरो कूटः तस्येदं वा, शिवादित्वादण्। जलप्रचूरकूट सम्बन्धीय।
जाला (हिं० पु०) १ जाल देखो। २ नेत्ररोगविशेष, आँखका एक रोग। इसमें पुतलीके ऊपर एक सफेद झिल्लीसी पड़ जाती है और इसी कारण दिखाई कम पड़ता है। जब झिल्ली अधिक मोटी हो जाती है तो दृष्टि नष्ट होने लगती है। इसे माड़ा कहते हैं। ३ घास, भूसा आदि पदार्थ बांधनेका जाल। ४ चीनी परिस्कार करनेका एक प्रकारका सरपत। ५ पानी रखनेका एक मट्टीका बना हुआ बरतन।
जालाक्ष (सं० पु०) जालमिवाक्षि-पच्। गवाक्ष, झरोखा।
जालापहाड़—दार्जिलिंग सब डिवीजनका एक पहाड़। यह अक्षा० २७° १' उ० और देशा० ८८° १६' पू० पर अवस्थित है। १८४८ ई०में यहां छावनी बनी थी और अब वह बढ़ा कर ४०० फौजी रहनेलायक कर दी गई है। यह समुद्रपृष्ठसे ७५२० फीट ऊंचे पर है।
जालाव (सं० क्ली०) शान्तिकर औषधविशेष, एक प्रकारकी हितकर दवा।
जालि—धान्यविशेष, जारी नामका धान। यह नदिया जिलेमें वैशाख मासमें रोपा जाता और कार्तिक मासमें काट लिया जाता है।
जालिआ—जालिया देखो।
जालिक (सं० पु०) जालेन जीवति। वेतनादिभ्यो-जीवति। पा ४।४।१२। इति ठन्। १ जालजीवी, धीवर, मछुआ। जालिया देखो। २ मर्कट, मकड़ी। ३ मर्कटक, वह जो जालसे मृगादि जन्तुओंको फँसाता हो। (त्रि०) ४ कूटलेखक, इन्द्रजालिक, मदारी, बाजीगर।
जालिका (सं० स्त्री०) जालं जालवदाकृतिरस्ति अस्याः। जाल-ठन् ततष्टाप्। १ स्त्रियोंके मुखावरक वस्त्रविशेष, स्त्रियोंके मुख ढाकनेका एक प्रकारका कपड़ा। २ गिरिसार, लोहा। ३ जलौका, जोंक। ४ विधवा स्त्री। ५ अङ्गरक्षिणी, कवच, जिरहबकतर, सँजोया। ६ चारक, पक्षीका जाल, चिड़ियोंका फन्दा। ७ मर्कट, मकड़ी। ८ कोषातकी।
जालिनी (सं० स्त्री०) जालं चित्रकर्मवस्तुसमूहो विद्यतेऽस्यां जाल इनिस्ततो ङीप्। १ चित्रशाला, वह स्थान जहां चित्र बनते हों। २ कोषातकी, तरोई, घिया। ३ घोषातकी, लटजीरा। ४ पटोललता, परवलकी लता। ५ प्रमेहरोगीका पीड़कभेद, पिड़िका रोगका एक भेद, जिसमें रोगीके शरीरके मांसल स्थानोंमें दाह युक्त फुन्सियां हो जाती हैं। प्रमेह देखो। ६ देवदाली। ७ दारुहरिद्रा, दारुहलदी।
जालिनीफल (सं० क्ली०) घोषाफल, तरोई, घिया।
ज़ालिम (अ० वि०) अत्याचारी जुल्म, करनेवाला।
जालिमसिंह—झाला जातिके एक राजपूत। इनके पिताका नाम पृथ्वीसिंह था। इनके पूर्वपुरुष सौराष्ट्र देशके अन्तर्गत झाला प्रदेशके हलवड़ नामक स्थानमें रहते थे। इनके पूर्वपुरुष कोटा आये थे और वहांके राजाने इन्हें सेना-

पतिका पद दिया था। १७१८ ई०में इनका जन्म हुआ था। इनके चाचा हिम्मतसिंहने इन्हें दत्तक ग्रहण किया था। फिर ये कोटा राज्यके फौजदार नियुक्त हुए। किन्तु भटवाड़ेके रणक्षेत्रमें इनकी वीरता देख कर कोटाके राजा गुमानसिंहको खटका हुआ, क्योंकि अपने राज्यसे इन्हें निकाल दिया। अनन्तर ये उदयपुर चले गये। उदयपुरके राणा अड़सीने इन्हें "राजराणा" उपाधिसे विभूषित किया। इसके बाद फिर ये कोटा पहुंचे थे और गुमानसिंहको खुश कर लिया था।

जालिया (हिं० वि०) १ जालसाज फरेब या धोखा देनेवाला। (पु०) २ जालसे मछली पकड़नेवाला। धीवर देखो।

जालिया अमराजी—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के उत्तरपूर्वीय जिलेका एक छोटा राज्य। यह चित्तलनासे प्राय ८ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। इस राज्यमें केवल एक ग्राम लगता है। यहांके सामन्तराज सर्वीय राजपूतवंशसे उत्पन्न हैं।

जालियादेवानी—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के हालार जिलेका एक छोटा राज्य। इसमें १० गांव लगते हैं।

जालिया मनाजी—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के उत्तरपूर्वीय जिलेका एक छोटा राज्य। इसके अन्तर्गत केवल एक गांव है।

जाली (स० स्त्री०) जालमस्त्यस्याः अच् गौरादित्वात् ङीष्। १ ज्योत्स्नी, मसिद पत्लकी तरोई। २ पटोल, परवल।

जाली (हिं० स्त्री०) १ बहुतसे छोटे छोटे छेदोंका समूह जो लकड़ी पत्थर या धातुकी चादरमें बना रहता है। २ कसीदेका एक प्रकारका काम। इसमें किसी फूल या पत्ती या आदिके बीचमें बहुत छोटे छोटे छेद बनाये जाते हैं। ३ बहुत छोटे छोटे छेदवाला एक प्रकारका कपड़ा। ४ कच्चे आमके भीतर गुठलीके ऊपरके रेशे। इसके उत्पन्न होनेके बाद आमके पकने लगते हैं।

जाली (अ० वि०) बनावटी, नकली, झूठा।

जालीदार (हिं० वि०) जिसमें जाली बना हो।

जालीलेट (हिं० पु०) एक प्रकारका कपड़ा। इसकी सारी बुनावटमें बहुतसे छोटे छोटे छेद होते हैं।

जालुवमल्लगड़—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत सतारा जिलेका एक पहाड़। यह सह्याद्रिकी एक शाखा है और कराड़के निकट कोयना और कृष्णाके सङ्गमस्थानसे ४ मील उत्तर पश्चिमसे आरम्भ हो कर १२ मील विस्तृत है।

जालेन्द्र—जालन्धर देखो।

जालोर—राजपूतानेके अन्तर्गत जोधपुर या मारवाड़ राज्यका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २५ २१ उ० और देशा० ७२ ३७ पू०में जोधपुरसे ७५ मील दक्षिण तथा मारवाड़ मरुभूमिके दक्षिण प्रान्तमें अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या प्रायः ७४३१ है। परमारवंशके किसी राजाने आठवीं शताब्दीमें यह नगर स्थापन किया। बाद चौहानराज कीर्त्तिपालने इसे अपनी राजधानी बनाई। इसके बाद १३१० ई०में अलाउद्दीन खिलजीने इस पर अपना अधिकार जमाया, किन्तु थोड़े समयके बाद यह फिर चौहान राजाके हाथ लग गया। प्रायः १८० वर्षके बाद पठानोंने इस नगरको कान्हरदेव चौहानसे जीता और वहां तीन सुन्दर मस्जिदें बनाईं। १५३० ई०में यहांका दुर्ग और जिला जोधपुरके राजा मालदेवके अधिकारमें आ गया। इस शहरका प्राचीन नाम जालन्धर है। यहांके ठठेरे कांसेके बरतन बनाते हैं जिनमें अच्छे अच्छे फूल कढ़े रहते हैं। जालोरका दुर्ग बहुत प्राचीनकालसे प्रसिद्ध है और यह नगरके निकट प्रायः १२०० फुट ऊंचे स्थान पर बना है। इसकी लम्बाई ८०० फुट और चौड़ाई ४०० फुट है। किलेमें दो तालाब भी बने हुए हैं।

जालोरि—पञ्जाबके अन्तर्गत कांगड़ा जिलेका एक पर्वत। यह हिमालय पहाड़की एक शाखा है। पहाड़के ऊपर हो कर दो रास्ते गये हैं जिनमेंसे एक १०८८० फुट ऊपर जालोर घाटेसे निकला है और दूसरी १०८० फुट ऊपर रामपुरकी ओर गई है।

जालोन—१ युक्तप्रदेशका एक जिला। यह अक्षा० २५ ४६ एवं २६ २७ उ० और देशा० ७८ ५६ तथा ७९ ५२ पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल १४८० वर्गमील है। इसके उत्तर तथा उत्तर-पूर्वमें यमुना नदी, दक्षिण-पूर्वमें

बघेलो राज्य, दक्षिणमें बेतवा नदी एवं सम्थर राज्य, और पश्चिममें पहुज नदी है। जालौन बुंदेलखण्डके मैदानमें पड़ता है। यहां कङ्कर बहुत निकलता है। कांसका भी कोई कमी नहीं। जलवायु उष्ण तथा शुष्क है, परन्तु अस्वास्थ्यकर नहीं। ओरछाके वीरसिंहदेवने जालौनका अधिकांश दबाया और जहांगीरने उन्हें इसका राजा बनाया था। शाहजहांनके समय बलवा करने पर उनका प्रभाव यहां घट गया। फिर छत्रसालने जालौन अपने राज्यमें मिलाया। १७३४ ई०में उन्होंने यह जिला अपने मराठा मित्रों को दे दिया। फिर यहां अत्याचार और उत्पात हुआ। १८३८ ई०में अंगरेजोंने जालौन अधिकार किया था। कानपुरमें बलवा होने पर १५ जूनको झांसीके विद्रोहियोंने यहां आ करके सभी युरोपीय अफसरोंको जो उनके हाथ लगे, मार डाला। १८५८ ई०में फिर इसके पश्चिम भागमें अराजकता बढ़ी। १८८१ ई० तक यह विश्रृङ्खल जिला समझा जाता था।

जालौन जिलेमें ६ नगर और ८३७ गांव आबाद हैं। लोकसंख्या ३९९७२६ है। इसमें ४ तहसीलें लगती हैं बेतवाकी नहरसे खेत सींचे जाते हैं। पहले खूब सूती कपड़ा बनता था। थोड़ा बहुत सूती कपड़ा रंगते और छापते हैं। चना, तेलहन, रूई और घीको रफ्तनी होती है। ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे यहां चलती है। ६६८ मील सड़क है। कलेक्टर, डिपटी कलेक्टर और तहसीलदार प्रबन्धकर्त्ता हैं। डाके प्रायः पड़ जाते हैं। इसमें तीन बड़ी जमीन्दारियां हैं। मालगुजारी कोई ८ लाख ८० हजार है। इसमें ३ म्युनिसपालिटियां हैं। शिक्षाकी अवस्था अच्छी है।

२ युक्तप्रदेशके जालौन जिलेकी उत्तर तहसील। यह अक्षा० २६° एवं २६° २०´ उ० और देशा० ७९° ३´ तथा ७९° २१´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ४२४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १६०३८१ है। इसमें २ नगर और ३८१ गांव बसे हैं। मालगुजारी प्रायः ३१६०००) रु० है। पश्चिममें पहुज और उत्तरमें यमुना नदी प्रवाहित है।

३ युक्तप्रदेशके जालौन जिलेकी जालौन तहसीलका सदर। यह अक्षा० २६° ८´ उ० और देशा० ७९° २१´ पू०में अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८५७३ है। खृष्टीय १८वीं शताब्दीमें यह मराठा राजधानी था। प्रायः सभी सम्भ्रान्त अधिवासी मराठा ब्राह्मण हैं। उनमें बहुतसे पेनशन पाते और निष्कर भूमि रखते हैं। व्यवसाय छोटा किन्तु बढ़ता हुआ है। १८८१ ई०में एक बढ़िया बाजार बना। कुछ मारवाड़ी महाजन यहां बस गये हैं।

जाल्म (सं० त्रि०) जालयति दूरीकरोति हित हितज्ञान जल-णिच् बाहुलकात् मः। १ नीच व्यक्ति, पामर, नीच। २ जो गुरुके सामने खाट पर बैठता हो, मूर्ख, बेवकूफ।

"नरेन्द्र जाल्मो ह्यपाठी वृत्तिमेतामुपैष्यति"

(भारत १२।११२ अ०)

जाल्मक (सं० त्रि० जाल्म स्वार्थे कन्। मित्र ब्राह्मण और गुरुद्वेषी, जो अपने मित्र, गुरु या ब्राह्मणके साथ द्वेष करे।

जाल्य (सं० पु०) जल-ण्यत्। १ शिव, महादेव।

"मत्स्यो जलचरो जाल्योऽकल: केलिकल कलि:"

(भारत १३।२८६ अ०

(त्रि०) २ जालमें पकड़ने योग्य।

जावक (सं० पु०) अलक्तक महावर।

जावजी—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत अहमदनगर जिलेके एक कोलि सर्दार। इनके पिताका नाम था हीराजी। हीराजीको मृत्युके उपरान्त जूनारस्थ पेशवाके कर्मचारीने जावजीको पिताके पद पर अधिष्ठित नहीं किया, इस पर जावजीने पेशवाके शासनको कुछ भी परवाह न कर बहुतसे आदमी संग्रह किये और लूटना शुरू कर दिया। तब जावजीको पर्वत छोड़ कर पेशवाके सैन्यदलमें मिल जानेका आदेश मिला। परन्तु जावजीने इसको धोखा समझा और वे खानदेशको भाग गये। रामजी सामन्त नामका जूनारका एक कर्मचारी जावजीका शत्रु था। उसने जावजीको पकड़वा देनेके अभिप्रायसे कुछ सेनाको चारों ओर भेज दिया और खुद कुछ सेनाको साथ ले उनको तलाशमें निकला। जावजीने अकस्मात् एक दिन रामजी और उनके पुत्रको मार डाला। इस पर पेशवाने घोषणा की कि "जो जावजीका मस्तक ला देगा, उसे उपयुक्त पुरस्कार दिया जायगा।" जावजीने रघुनाथरावके आश्रयमें रह कर युद्धमें उनको भरपूर सहा-

गया हो। नाना फड़नवीसने दाजीकीबात मानकर एक कोलि सर्दारको जावजीको पकड़नेके लिए भेजा। एक दिन जङ्गलमें दाजी और जावजीको भेंट हो गई। दाजीने अपनेको जावजीका मित्र बताया। पीछे दोनों साथ रहने लगे। लोभ देकर जावजीके एक आदमीने दाजीके बक्सका भीतरका देखा, तो उसमें नानाफड़नवीसका आदेशपत्र पाया। यह बात जावजीको मालूम हुई। इन्होंने उसी रातको दाजी और उनके तीन पुत्रोंको मार डाला। इसके बाद जावजीको पकड़नेके लिए विशेष प्रयत्न किये जाने लगे। जावजीने मालवके शासनकर्त्ता तुकोजी होलकरके दरबारमें समस्त दुर्ग आदि तथाको होलकरको सौंप दिये। होलकरकी मध्यस्थतामें जावजीके सारे अपराध माफ कर दिये गये और उन्हें राजूरके ६० गाँवोंका सूबेदार बना दिया। जावजी इस पद पर १७९८ ई० तक रह कर अपने ही किसी अनुचरके आघातसे इहलोक त्याग गये। जीवनके शेष भागमें जावजीने डकैतियां बन्द कर दी थीं।

जावजीकी युवा अवस्थाका विवरण इस प्रकार मिलता है कि, इनका शरीर दोहरा था। काम करनेमें इनका बहुत उत्साह था और देखनेमें भी खूबसूरत थे। ये बहुत ही चञ्चलप्रकृतिके और दुर्दमनीय थे।

जावद—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यमें मन्दसोर जिलेका नगर। यह अक्षा० २४ ३६ उ० और देशा० ७४ ५२ पू०में समुद्रतलसे १४११ फुट ऊंचे पर अवस्थित है। जनसंख्या कोई ८००१ होगी। प्रायः १०० वर्ष पहले जावद बसा था। यहां मेवाड़के राजाओंका राज्य रहा। राणा संग्रामसिंह और उनके उत्तराधिकारी जगतसिंहके समय बजारदोवाले बने। १८१८ ई०में यशवन्त भाउने इसे अधिकार किया, परन्तु पीछे सेंधियाको लौटा दिया। १८४४ ई०को जावद उन जिलोंमें गया, जो ग्वालियर कण्टिन्जेण्टके खर्चको थे। परन्तु १८६० ई०में यह सेंधियाको सौंपा गया। अनाज और कपड़ेका बड़ा काम है। पहले यह पागकी रंगाईके लिये प्रसिद्ध था। आज भी जावदमें बहुत चूड़ियां बनती और राजपूताना पहुंचायी जाती हैं।

जारूथ (स० क्ली०) जरूथस्य मांसादि इत्यादि या अण्। दमकता तेज पात्र।

जावरा—१ मध्य भारतकी मालवा एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २३ १० तथा २३ ५५ उ० और देशा० ७५ ० एवं ७५ १० पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ५६८ वर्गमील है। इसकी सीमा पर इन्दोर ग्वालियर रतलाम प्रतापगढ़ और ठकुरात हैं। आबादी कोई ८४२०२ है। इसमें २ नगर और ३३७ गांव बसे हैं। लोग राजस्थानीका मालवीय भाषा अधिक बोलते हैं। भूमि बहुत उर्वरा है। नीमच मऊ तथा जावरापिपलोदा सड़क और राजपूताना मालवा रेलवे एवं बम्बई बड़ोदा सेण्ट्रल इण्डिया रेलवेकी रतलाम गोधरा बड़ोदा शाखासे आना जाना होता है। राज्य ७ तहसीलोंमें विभक्त है। आय ५ लाख ८० हजार है। अफीम पर प्रति मन कोई ७) रु० महसूल पड़ता है। १८८५ ई०से यहांका सिक्का बना है।

२ मध्यभारतके जावरा राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २३ ३८ उ० और देशा० ७५ ८ पू०में राजपूताना मालवा रेलवेकी अजमेर खाण्डवा शाखा पर पड़ता है। गफूरखांने पहलेपहल इसे अपनी राजधानी बनानेके लिये चुना था। यह विभिन्न वस्तु देखनेके लिये २६ मुहल्लोंमें बंटा है। लोकसंख्या प्रायः २१८२४ है।

जावली—बम्बई प्रान्तके सतारा जिलेका उत्तर तालुक। यह अक्षा० १७ ३२ एवं १७ ५८ उ० और देशा० ७३ ३६ तथा ७३ ५८ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ४२१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६५५८७ है। इसमें एक नगर और २४८ गांव बसते हैं। मालगुजारी कोई ८१०००) और सेस ८०००) रु० है। वर्ष भर यहां ठण्ढक रहती और हवा चला करती है।

जावा (यवद्वीप)—भारत महासागरस्थ सुन्दाद्वीपपुञ्जका एक प्रसिद्ध और बड़ा द्वीप। यह अक्षा० ५ ५२ १२ से ८ ४६ ३६ द० और देशा० १०५ १२ ४० से ११४ ३५ १८ पू०में अवस्थित है। यह द्वीप पूर्वपश्चिममें ६२२ मील और उत्तरदक्षिणमें १२१ मील विस्तृत है। इसमें ओलन्दाजोंका यह प्रधान भेदमिश्र साम्राज्य है। जावा आकारमें बड़ा न होने पर भी अतीतकालकी प्राचीन कीर्तियोंके गौरवमय स्तम्भोंको मस्तक पर

धारण कर ऐतिहासिकोंको चमत्कृत कर रहा है। यहां हिन्दूराज्यकी गौरवसमाधि और बौद्धाविर्भावके पदचिह्न अब भी उज्ज्वल वर्णोंसे चित्रित हैं। भारतमहासागरीय अन्यान्य समस्त द्वीपोंकी अपेक्षा यहांकी जनसंख्या सबसे अधिक है। यहांकी शस्यसमृद्धिने इंलैण्डको ऐश्वर्यशाली बनाया है। इसके १½ मील पूर्वांशमें अवस्थित बालिद्वीपको पाश्चात्य भौगोलिकगण जावाका ही अंश बतलाते हैं, और इसीलिए उसका नाम छोटा जावा (Little Javo) पड़ा है। बालिद्वीप देखो।

जावा इंलैण्डसे चौगुना बड़ा है, इसका रकबा ५०३८० वर्गमील है। जनसंख्या कुछ अधिक ३ करोड़ है।

वर्तमान समयमें भार्विक आदि ओलन्दाज भूतत्त्वविदोंने भूतत्त्वकी पर्यालोचना कर स्थिर किया है कि दक्षिणपूर्व एशियासे इस द्वीपका सर्वांशमें सौसादृश्य है। इस ओर लक्ष्य देनेसे अनुमान होता है कि अति प्राचीनकालमें जावा और बालिद्वीप एसियामें ही संयुक्त था। यहां टर्टिआरी (Tertiary) युगके शैलखण्ड बहुत देखनेमें आते हैं। जावामें आग्नेयगिरिकी अधिकता देख कर भूतत्त्वज्ञ विद्वानोंने स्थिर किया है कि यहांके भू-पञ्जरमें बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है और कई बार खण्ड प्रलय भी हुई है। अब भी प्रायः बीस सजीव आग्नेयगिरि समय समय पर भीषण उपद्रवके साथ अग्न्युद्गीरण किया करते हैं और कभी कभी भूकम्प भी हुआ करता है।

जावाको भूगर्भस्थ अग्निशक्ति अब भी क्रियाशील अवस्थामें है। पर्वतमालाका अधिकांश भाग अग्निगिरि निक्षिप्त भूगर्भस्थ पदार्थसे उत्पन्न हुआ है। भूतत्त्वज्ञ विद्वानोंका कहना है कि जिस समय जावा मनुष्य वासके योग्य हुआ था, उस समय वह सुमात्रा, बोर्निओ आदि आठ द्वीपोंमें विभक्त था। रामायणमें भी जावाके विवरणमें 'सप्तराज्योपशोभित' ऐसा विशेषण पाया जाता है। यवद्वीप वा जावाके आग्नेयपर्वतोंमें सर्वोच्च और सर्वप्रधान सुमेरुपर्वत है। इसके सिवा और भी रावण, अर्जुन, लव, शम्भू, इत्यादि नामके अग्निशैल विद्यमान हैं। साधारणतः पर्वतोंकी ऊंचाई २०००से १८६०० फुट तक है।

जावा साधारणतः पूर्व और पश्चिम इन दो प्राकृतिक भागोंमें विभक्त है। पश्चिमांशकी नदियां प्रधानतः उत्तरवाहिनी हैं, जिनमेंसे 'जि-तारङ्' और 'जि-मानुक' ये दो नदी ही सबसे बड़ी और विस्तृत हैं। नदियोंके नामके पहले प्रायः 'काली' शब्द जोड़ दिया जाता है। पूर्व जावाकी नदियां वाणिज्यके लिए विशेष उपयोगी हैं और दक्षिण जावाकी नदियोंसे खेतोंमें बहुत सहायता मिलती है। जावाके उत्तर-उपकूलमें वाणिज्यप्रधान बन्दर आदि हैं। यहांकी उपत्यका भूमि अत्यन्त उर्वरा और नाना प्रकार शस्यसमृद्धिपूर्ण है। यहां कई तरहके मिट्टी देखनेमें आती है, जिससे पण्यद्रव्य प्रस्तुत होते हैं। एक तरहकी मिट्टीसे 'पोर्सिलेन' बनती है। यहां 'अम्पो' नामक एक प्रकारको स्वादिष्ट मिट्टी होती है, जिसे यहांके लोग खाया करते हैं। किसी किसी जगहकी मिट्टी और पीली भी होती है। इसके अलावा यहां संगमरमर, चूना खड़ियामिट्टी, गन्धक आदि नाना प्रकारके शैलखण्ड पाये जाते हैं।

समतल प्रदेशकी जमीन दरियाबरार (Alluvium) और संग शिकस्त (Diluvium) है। कोई कोई स्थान प्रवाल कीटके ध्वंसावशेषसे परिपूर्ण है। नदीके किनारे तथा दलदल जमीनमें बहुत धान्य उत्पन्न होता है। इसी लिए भारतके लोग जावाको भारतसागरीय द्वीपोंका शस्यभाण्डार कहते हैं।

चारों ओरसे समुद्रवेष्टित और विषुवरेखाके सन्निहित होनेके कारण यहांकी जलवायु उष्ण और मधुर है। यह द्वीप वाणिज्यवायुके प्रवाहपथ पर अवस्थित है। वातावीयाके वेधालयमें आवहविद्याविषयक (Meteorological) परीक्षा द्वारा निर्णीत हुआ है कि वर्षमें औसत ७८८० इञ्च वर्षा होती है। यहां वैशाखसे आश्विन तक दक्षिणपूर्वीय और कार्त्तिकसे चैत्र तक उत्तरपश्चिमीय वायु चलती होती है। पश्चिम और मध्य जावाकी जलवायु पूर्व जावासे सम्पूर्ण भिन्न है। कारण यह है कि पूर्व-जावामें वर्षा अधिक नहीं होती। स्थानकी उच्चता और समुद्रके सान्निध्यके कारण उत्तापमें भी तारतम्य हुआ करता है। वातावीयामें प्रायः बारहो महीने वर्षा होती है। वायुकी गरमी कभी कभी ८६° (फा०)

डिग्री तक हो जाती है। ग्रीष्म और वर्षा ये दो जावाकी प्रधान ऋतुएं हैं। कभी कभी वहां कार्तिक और अग्रहायण मासमें झंझावात और विद्युत् सहित बड़े जोरका तूफान आता है, जिससे अधिवासियोंको विशेष विपद ग्रस्त और उत्पीड़ित होना पड़ता है।

भूतात्त्विक परीक्षासे निर्णीत हुआ है कि जावामें खनिज धातुओंका बिलकुल अभाव है। सोना बहुत थोड़ा नजर आता है। सोना रूपा और तांबा दो एक जगहके सिवा अन्यत्र नहीं पाया जाता। कोयला बहुत जगह है पर अधिकतासे उठाया नहीं जाता। पारओडिन, गन्धक और नमक कहीं कहीं बहुतायतसे पाया जाता है।

जावा उद्भिज्ज सम्पत्तिमें पृथिवीके समस्त देशोंको पराजित कर सकता है। भूमिकी उर्वरता ही इसका अन्यतम कारण है। छोटे छोटे गांवोंसे लगा कर अन्य कोई बड़े बड़े नगर भी वृक्षोंसे परिपूर्ण हैं। उद्भिद् विद्याविद् विद्वान् जावाको उद्भिज्जोंको चार भागों में विभक्त करते हैं। समुद्रतीरसे २००० फुट भूभागमें उत्पादित प्रथमश्रेणीके अन्तर्गत है। इस विभागका नाम 'उष्णप्रधान विभाग' है। २०००से ४००० फुट तक 'नातिउष्ण विभाग' और उस स्थानसे ७५०० फुट तक 'शीत विभाग' तथा इससे भी उच्चतर स्थानोंको 'शीत प्रधान उद्भिज्जविभाग' कहते हैं। इनमेंसे १म विभागमें ¾ अंश भूमि घेर ली है। समुद्रके किनारे पोषण मध्र और नौयज्ञोंका ही माधुर्य देखनेमें आता है। नीची जमीनमें धान, ईख दारचीनी ताड़ और कपास बड़ी कसरतसे पैदा होती है। समुद्रोपकूलमें नारियल और ताड़के वृक्ष ही अधिक देखनेमें आते हैं। आमो, तड़ा आदि कुमुद, कह्लार और कमलोंसे अलङ्कृत दीख पड़ते हैं। कहीं कहीं बांसके भी जङ्गल हैं। मालभूमिमें कहवा और चाय बहुत पैदा होती है तथा मका और ज्वारकी भी उपज अच्छी होती है। इस भूभागमें वन बड़े बड़े वृक्षोंसे परिपूर्ण और दीर्घ गुल्मोंसे समाच्छन्न हैं। तृतीय विभागमें नाना प्रकार भारतीय शस्य गोभी मोम आलू और तम्बाकू पैदा होती है। चतुर्थ विभागमें जो उद्भिज्ज देखे जाते हैं, वे यूरोपीय,शीतप्रधान स्थानोंके अनुरूप हैं।

पर्यटकगण एक स्वरसे कहते हैं कि जावामें ¾ अंश भूमि अब भी दुर्भेद्य अरण्यावृत्त है। दक्षिणांशमें बहुत से पासका जंगल अब भी अनाविष्कृत है। इस जङ्गल में १२० फुट तक ऊंचे पेड़ हैं। आग्नेय और पर्वतीय पर्वत पर अब भी बहुतसे बड़े बड़े वृक्ष मौजूद हैं। रससाला नामक वृक्षमें ६० हाथकी ऊंचाई पर डालें निकलती हैं, उनके नीचे नहीं। यहां नाना स्थानोंमें रक्तवर्ण सुन्दर काठ पाया जाता है। लमक, समरङ्, जापारा आदि प्रदेशोंमें ११०० वर्गमील स्थान सागौनके पेड़ोंसे भरा हुआ है। यह लकड़ी विदेश बाहर भेजी जाती है। इसके सिवा यहां अधिक काठका वाणिज्य ठीक नहीं चलता।

फसल और खेतोंमें यहां धान्य ही लक्ष्मीका अनन्त भाण्डारस्वरूप है। यहां लक्ष्मीदेवी वा श्रीदेवी (धान्याधिष्ठात्री)के विषयमें अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। धान्याधिष्ठात्रीदेवीकी पूजा अब तक भी प्रचलित है। जावामें मुसलमान धर्मको प्रचलित हुए, आज चार सौ वर्षसे भी अधिक समय हुआ होगा। यहांके अधिवासी शिव, विष्णु और बुद्धकी पूजा छोड़ कर कुरानका कलमा पढ़ने लगे हैं। किन्तु इतने पर भी वे धनधान्यकी अधिष्ठात्री लक्ष्मीकी पूजा नहीं छोड़ सके हैं। अब भी लक्ष्मीपूजाके पुरोहितोंका सम्प्रदाय अपेक्षा उन्नत है। शरत्कालमें (सम्भवतः कोजागरी लक्ष्मीपूजाके समय) जावाके अधिवासी धनधान्यदायिनी कमलवासिनी लक्ष्मीदेवीकी पूजा किया करते हैं। पूजाके समय उगामक्रमश युगपत् विकसित कमल और लक्ष्मीका स्तव पढ़ते हैं। किसान लोग शुभ मुहूर्त देख कर हल जोतते और फसल काटते हैं। साधारणतः बृहस्पतिको ही हल जोतना शुरू करते हैं। खेतके बीचमें नाना भी ले पहले दक्षिणसे उत्तरकी ओर हल जोत जाता है इस समय नैवेद्य आदि द्वारा पितृकी पूजा की जाती है। जावामें फी सदी ४० बीघा जमीनमें खेती होती है। यहांका कृषिकार्य साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त है। गवर्नमेण्ट अथवा राज्य अथवा बड़े बड़े जमींदारों द्वारा अनुष्ठित कृषि और साधारण प्रजाकी कृषि। गवर्नमेण्टके लिए कहवाकी खेती करनी ही आवश्यक है,

इस प्रकारके पक्षी पृथिवीमें और कहींभी दृष्टिगोचर नहीं होते। यहां छ सात प्रकारके सुनहरी पूंछवाले मयूर देखे जाते हैं। इस देशकी तितली (Calliper butterfly) भी सौन्दर्यचित्रको चरम निदर्शन है।

जावामें 'कलङ्' नामक एक प्रकारका चमगादड़ पाया जाता है। इनके उपद्रवसे नारियल तथा अन्यान्य फलोंको रक्षा करना कठिन हो जाता है। ये खेतमें घुस कर मक्का और ईख खूब खाते हैं। किसान लोग इन्हें जाल बिछा कर पकड़ते हैं। इसके अलावा हिन्दुस्तानी चमगादड भी बहुत हैं। ये बड़े बड़े पेड़ों और पहाड़ों पर लाखोंको संख्यामें इकट्ठे हो कर लटके रहते हैं। पेड़ोंके नीचे जो चमगादड़ोंकी कीट पड़ी रहती है, उससे प्रतिवर्ष हजार मनसे भी ज्यादा सोरा बनता है। 'सुरकर्त्ता'के अधिवासियोंके लिए यह ही प्रधान पण्य है।

यहां बन्दर भी बहुत प्रकारके पाये जाते हैं। जावा-भाषामें बन्दरको 'कवि' (कपि) कहते हैं। इनमें घोर काले रङ्गका बन्दर अधिक प्रसिद्ध है। ये ७००० फुट ऊँचे पहाड़ों पर विचरण करते हैं। चूहा, खरगोश, सेही और गिलहरी यहां बहुत हैं। सर्पको यहांके लोग पूज्य मानते हैं। यहांके जुगनू रातको चिराग जैसे चमकते हैं। अर्जुनपक्षीके पह्नोंमें उज्ज्वल स्वर्णरेणुकी भाँतिका पदार्थ लगा रहता है। इसके सिवा यहां Babirussa, Peri crocotus, Miniatus, Yellow Torgon, Anaclipus, Sanguinolentus, Stenopus, Javanicus, आदि नाना प्रकारके प्राणी दृष्टिगोचर होते हैं।

यहाकी नदियां और ह्रद विविध मत्स्यपूर्ण हैं। अधिवासिगण नाना प्रकारके जालोंसे नदी और समुद्रमें मछली पकड़ा करते हैं तथा नाना प्रकारके सुनहरी जलचर पक्षियोंको भक्षण करते हैं। यहांके समुद्रमें एक प्रकारके अद्भुत कीट देखनेमें आते हैं, जिनकी पूंछ तैरते समय पेंचदार पीले और हरे रङ्गके फीतेकी तरह चमकती है। ऐसे उज्ज्वलवर्णके कीट पृथिवीमें अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं—ये समुद्र मध्यस्थ प्रवालद्वीपमें वास करते हैं।

आधुनिक भूतत्त्वविद् विद्वानोंने स्थिर किया है कि पहले सिंहलसे जावा तक विस्तीर्ण महादेश था। यह भी प्रमाणित हुआ है कि भूगर्भस्थ अग्निशक्ति और आग्नेयगिरिके अग्न्युत्पातसे उस भूभागके समुद्रमें डूब जानेपर भी, अनति प्राचीनकालमें सुमात्रा, बोर्नियो, जावा आदि द्वीप एकतासम्बद्ध थे। सुमात्राके गभीर कूपके खोदे जानेके समय उसमेंसे हिन्दूदेवीको मूर्ति निकली थी। अफरीकाके सोमाली तथा अमेरिकाके मेक्सिको प्रदेशसे मिली हुई हिन्दू-देवमूर्तिके साथ जावाके मूर्तिशिल्पका सम्पूर्ण सादृश्य है। सुतरां यह प्रमाणित होता है कि अति प्राचीनकालमें ही जावामें ब्राह्मणोप निवेश स्थापित हुआ था। अमेरिकामें हिन्दुओंका सजीव निदर्शन कुछ भी नहीं है, किन्तु वालि और यवद्वीप (जावा)-में अब भी हिन्दुत्वका जीवित निदर्शन विद्यमान है।

इतिहास—जावा नाम जहां तक सम्भव है, यवद्वीप शब्दका अपभ्रंश है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि 'जावा' कहनेसे वर्त्तमान समयमें जिस द्वीपका बोध होता है, प्राचीनकालमें भी ठीक उसी द्वीपका बोध होता हो। यह निश्चित है कि किसी समय भारत महासागरके द्वीपपुञ्ज विशेषतः सुमात्रा 'जावा' नामसे अभिहित होता था। इसका प्रमाण यह है कि 'इब्न बाटूटा' नामक मुसलमान परिव्राजकने ईसाकी १०वीं शताब्दीमें सुमात्राको 'जावा' और वर्त्तमान जावाको 'मूल जावा' लिखा है। जावाको राजसभाकी भाषामें इसे 'जायि' कहते हैं और साधारण भाषामें जावा। कुछ भी हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि यवद्वीप शब्द ही जावाके रूपमें परिणत हुआ है। ग्रोक ऐतिहासिक टलेमिने इसे 'जाव-दिउ' एवं चीन-परिव्राजक फाहियानने 'जे-पो-थी' लिखा है। अरबी भाषामें इसका प्राचीनतम नाम 'जावेज' है। सबसे पहले जावा शब्दका उल्लेख १३४३ ई०के एक शिलालेखमें दृष्टिगोचर हुआ। अफरीकाके परिव्राजक मार्को पोलोने 'जावा' शब्दसे समस्त सुन्दर द्वीपका बोध किया था।

रामायण पढ़नेसे यह सहज ही प्रतीत हो जाता है कि यवद्वीप नामसे हिन्दूगण अतिप्राचीनकालसे ही

परिचित थे। सीता हरणके बाद जब उन्हें खोजनेके लिए नाना स्थानोंमें चर भेजे गये थे उस समय वे यवद्वीप द्वारा गठित सप्त राज्य और सुवर्णपरिपूर्ण यवद्वीपमें भी पहुंचे थे, जैसा कि लिखा है—

"यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितं।
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णाकरमण्डितम्॥ ३०॥
यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः।
दिवं स्पृशति शृङ्गेण देवदानवसेवितः॥" ३१॥

(रामा० किष्किन्धा० ४० सर्ग)

"सुवर्णरूप्यकद्वीप" इस पदकी कोई कोई ऐसी व्याख्या करते हैं कि उस नामका दूसरा कोई द्वीप था। सम्भव है, रामायणके इस अंशके लेखकने सुमात्राके जावाका पार्थक्य नहीं किया हो। उन्होंने लिखा है कि यवद्वीपके बाद, शिशिर पर्वत है। यह सम्भवतः भारतीय ज्योतिःशास्त्रचूड़ामणि आर्यभट्ट द्वारा उल्लिखित यमकोटि होगा। आर्यभट्टने ४९८ ई०में उक्त यमकोटिका उल्लेख किया है। रामायण महाकाव्यके सम्पूर्ण भाग किसी एक समयमें नहीं लिखे गये बहुत दिनोंके क्रमविकासके फलस्वरूप उसने वर्तमान आकार धारण किया है। इस लिए यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि यवद्वीपसे हिन्दुओंका परिचय किस समय हुआ था। पाश्चात्य विद्वान्‌गण अनुमान लगाते हैं कि रामायणका उक्त अंश ईसाकी १ली शताब्दीमें लिखा गया होगा। किन्तु रामायणके उक्त अंशको इतना अर्वाचीन बतलानेका कोई हेतु वा विशिष्ट प्रमाण नहीं है। अनुमानतः १३० ई०में अलेकजेन्ड्रियाके भौगोलिक टलेमिने इसका "जबदिउ" नामसे उल्लेख किया है, इससे अनुमान होता है कि हिन्दूगण उससे बहुत पहले जावासे परिचित थे और उन्हींका दिया हुआ नाम 'यवद्वीप सर्वत्र प्रचलित था। चीनके ऐतिहासिकगण भी इस बातकी पुष्टि करते हैं। 'सियङ्ग्‌वंशका इतिहास ५०२-५५६ ई में रचा गया था। उसमें लिखा है कि सम्राट् 'ओयन-ती'के राजत्वकालमें (अर्थात् ७१-७५ खृष्टाब्दके भीतर) रोमक और भारतवर्षीयोंने यवद्वीपके रास्तेसे चीनमें दूत भेजे थे। इससे प्रमाणित होता है कि ईसाके पहलेसे ही भारतीयगण यवद्वीपसे परिचित थे। उक्त ग्रन्थमें यह भी लिखा है कि "लाङ्‌—ग्या सिउ नामक देशमें बौद्धधर्म प्रचलित है और वहांके लोग संस्कृतमें वार्तालाप करते हैं। वहांके लोगोंका कहना है कि यह देश ४०० वर्षसे भी पहले स्थापित हुआ था।" बहुतोंकी धारणा है कि 'लाङ ग्या-सिउ' जावाका ही नामान्तर है। किन्तु कोई कोई इसको मलयकी उपत्यका भी बतलाते हैं। परन्तु जावा कहना ही सङ्गत है, क्योंकि चीनके 'मिङ्'-इतिहाससे मालूम होता है कि १४३२ ई०में जावावासियोंने, १३७६ वर्ष पहले उनका देश स्थापित हुआ था, ऐसा कहा था। इस उक्तिके साथ 'लाङ्-ग्या सिउक'का कहना मिल जाता है। इस प्रसङ्गमें यह कहा जा सकता है कि अति प्राचीनकालसे ही हिन्दूगण यवद्वीपसे परिचित हैं। हां, यह हो सकता है कि ईसीकी १ली शताब्दीमें उन्होंने इस जगह उपनिवेश स्थापित किया हो और इसीलिए चीनके इतिहासमें वही समय जावाका स्थापनकाल निर्धारित हुआ हो।

४१८ ई०में चीन-परिव्राजक फाहियान भारतवर्षसे चीन लौटते समय इस जगह उतरे थे। उन्होंने इसे "या-बा-दि" लिखा है। फाहियानने जावाके विवरणमें लिखा है कि "इस देशमें नास्तिक और ब्राह्मणोंका वास है, बौद्धधर्मावलम्बियोंकी संख्या उल्लेखयोग्य नहीं है।"

ब्रह्माण्डपुराणमें भी यवद्वीपका वर्णन है। परन्तु यह विवरण सम्भवतः अधिक प्राचीन नहीं है।

"यवद्वीपमिति प्रोक्तं नानारत्नाकराभिधं।
तत्रापि द्युतिमान्नाम पर्वतो धातुमण्डितः॥
बहुरत्नानां प्रभवः प्रभवः काञ्चनस्य तु।
तथैव मलयद्वीपमेवमेव सुसंवृतं॥
मणिरत्नाकरं स्फीतमाकरं कनकस्य च।
आकरं चन्दनानां च समुद्राणां तथाकरम्।
नानाम्लेच्छगणाकीर्णं नदीपर्वतमण्डितम्॥'

अथात् बहुविध रत्नोंके आकर यवद्वीपमें भी नाना प्रकार धातुमण्डित द्युतिमान् नामक एक पर्वत है, जिससे अनेक नदनदियोंका प्रादुर्भाव हुआ है और जहां सुवर्णकी खनि है। इसी प्रकार हिरण्यमणिरत्नादिका आकर प्रायुक्त मलयद्वीप भी समुद्रपरिवेष्टित एवं नदी

वन-पर्वत-परिशोभित है, जिसमें विविध म्लेच्छ जातिका वास है।

ग्रीक-ऐतिहासिक 'आरियन' से लगा कर आधुनिक पुरातत्त्वविद् पर्यन्त सभी कहते हैं, कि हिन्दुओंने कभी भी भारतके बाहर उपनिवेश स्थापन करनेकी कोशिश नहीं की। किन्तु यह उनका कितना बड़ा भ्रम है, यह बात जावाके हिन्दु उपनिवेश स्थापनके इतिहाससे मालूम होती है। ७५ ई०में कलिङ्गसे वीरपुरुषोंके एक समूहने जहाज पर चढ़ कर भारत-महासागरसे यात्रा की थी और रास्तेमें जावा उतर कर उन्होंने उपनिवेश स्थापित किया था। थोड़े ही दिनोंमें उनके प्रयत्नसे जावामें बड़े बड़े नगर और अट्टालिकाओंकी प्रतिष्ठा हो गई। उन्होंने भारतके साथ जो वाणिज्य-सम्बन्ध स्थापित किया था, वह बहुत दिनों तक चलता रहा। इस विषयमें सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक मि० एलफिनष्टोनने ऐसा लिखा है—"जावाके इतिहासमें स्पष्टरूपसे वर्णित है कि कलिङ्गसे चल कर बहुतसे लोग जावा उतरे थे और वहांके लोगोंको सुसभ्य बनाया था। वे जिस दिन यहां आये थे, उसे चिरस्मरणीय बनानेके लिए एक युगका प्रवर्तन कर गये हैं। वह युग ७५ ई०से प्रारम्भ हुआ है।" फाहियान द्वारा लिखित विवरणके पढ़नेसे ही इसकी सत्यता मालूम हो सकती है।

१८२० ई०में क्रफोर्डने जावाका इतिहास सङ्कलित किया था, उसमें भी हिन्दुओंका कलिङ्गसे आना लिखा है। फर्गूसन साहबने लिखा है— 'अमरावतीमें जो विराट् ध्वंसावशेष पड़ा है, उसीसे ज्ञात होता है कि कृष्णा और गोदावरीके मुहानेसे उत्तर और उत्तरपश्चिम भारतके बौद्धोंने पेगु और कम्बोडिया होते हुए जावामें जा कर उपनिवेश स्थापन किया था। १६६६ ई०में टामारनियरने लिखा है कि "बङ्गोपसागरमें मछलिपत्तम ही एकमात्र ऐसा स्थान है जहांसे जहाज बङ्गाल, आराकान, पेगु, श्याम, सुमात्रा, कोचीन, चीन, पश्चिम होरमुज, मक्का और मदागास्कार पहुंचते हैं।" शिलालेखोंके पढ़नेसे भी हमें जावाके साथ कलिङ्गका सम्बन्ध मालूम हो सकता है*। डा० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर लिखते हैं—"कुछ लिपियोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि सुमात्रामें मागधी प्रभाव बङ्ग और उड़ियासे आया था और सुमात्रासे वह जावामें फैला था।" और भी कहा है कि "सुमात्रामें हिन्दू उपनिवेश भारतवर्षके पूर्व उपकूलसे हुआ था। बङ्गदेश, उड़िया और मछलिपत्तमने जावा और कम्बोडियामें उपनिवेश-स्थापनकार्यमें प्रधान अंश ग्रहण किया था।" †

हिन्दुओंने कलिङ्गसे चल कर जावामें उपनिवेश स्थापन करनेके प्रायः ५०० वर्ष बाद पुनः उक्त द्वीप पर लक्ष्य किया था। ईसाकी ६ठी और ७वीं शताब्दीमें गुजरातके हिन्दुओंका झुण्डका झुण्ड जावा पहुंचा और उसे हिन्दू राजत्वके रूपमें परिणत कर दिया।

जावाके इतिहासमें लिखा है कि ६०३ ई०में गुजरातके राजा कुसुमचित्र वा साल्यप्रचाके पुत्र भ्रुविजय सेवलचलने जावामें वासस्थान स्थापित किया था।‡ इस इतिहासमें यह भी लिखा है कि गुजरातके राजा कुसुमचित्र अर्जुनके अधस्तन दशम पुरुष थे। उन्हें एक दिन मालूम हुआ कि उनका राज्य ध्वंस हो सकता है। इसलिए उन्होंने अपने पुत्र भ्रुविजयको उपनिवेश स्थापनके लिए जावा भेजा। उनके साथ पांच हजार अनुचर गये थे, जिनमें कृषक, शिल्पी योद्धा, चिकित्सक, लेखक आदि भी शामिल थे। इनके साथ छ बड़े और एक सौ छोटे जहाज थे। चार मास जलपथमें भ्रमण करनेके बाद वे एक द्वीपमें पहुंचे। पहले उसे ही उन्होंने जावा समझा, किन्तु पीछे नाविकोंको अपनी भूल मालूम पड़ गई और वहांसे चल दिये। थोड़े ही समयमें वे जावाके 'मातारेम' नामक स्थानमें पहुंचे। राजपुत्रने वहां 'मैताडाङ् कुमुलान नामक नगर स्थापित किया। उसके बाद उन्होंने पिताको और भी आदमी भेजनेके लिए लिख भेजा। इस बार दो हजार आदमी जावा पहुंचे, जिनमें बहुतसे अच्छे, अच्छे कसेरे और संगतराश थे। इसके बाद गुजरात और अन्यान्य देशोंसे जावाका वाणिज्य-सम्बन्ध स्थापित हुआ। 'मातारेम' का बंदर वैदेशिक जहाजोंसे भी गया और राजधानीमें नाना प्रकारके मन्दिर बन गये। भ्रुविजयके पौत्र अद्रि-

* Indian Antiquary, Vol. V, p 314 & VI. p 356.

† Bombay Gazetteer, Vol I pt. I p 493.

‡ Sir Stamford Raffles, Java, Vol. II. p 83.

विजयके समयमें इन्हींने सुविख्यात बोरोबुदरका मन्दिर बना था।

गुजरात उस समय गुर्जरोंके अधीन था। गुर्जरोंके साथ सुप्रसिद्ध मसुद्रगामी मिहिर या मिद नामक जातिका घनिष्ट सम्बन्ध रहनेसे अनुमान होता है कि उसने सम्भवतः जावामें उपनिवेश स्थापन करनेके समय सहायता दी थी। यह भी सम्भव है कि उन लोगोंके उपासनास्थान की जगहको राजधानीका नाम मेन्दाङ रक्खा गया था। पीछे जब वहां ब्राह्मण धर्मका प्रभाव खूब बढ़ गया, तब उसका नाम मेदङ्गकमुलन या ब्राह्मण नगर रख दिया।

जावा और कम्बोडियाके प्राचीन इतिहासमें गुजरातके सिवा हस्तिनापुर, तक्षशिला और रूमदेशका भी उल्लेख है। इन नामों तथा गान्धारका उल्लेख रहनेसे यह प्रश्न सहज ही उदित होता है कि, क्या उनसे काबुल, पेशावर और पश्चिम पञ्जाबके साथ भी जावाका सम्बन्ध सूचित होता है? कम्बोज, गान्धार, तक्षशिला या रूमदेशकी ख्याति अयोध्या या इन्द्रप्रस्थके समान नहीं थी। अतएव यह सम्भव नहीं कि जावा-वासियोंने वृथा ही उन नामों पर गर्व किया हो। प्रत्युत यही अनुमान होता है कि उन स्थानोंसे सचमुच और जावाका ऐतिहासिक सम्बन्ध था। दक्षिण मारवाड़में अब भी यह प्रवाद प्रचलित है कि मारवाड़के लोग जावामें जा कर बसे थे। १८८१ ई०में मीनमालके एक चारणने कैम्पबेल साहबसे आ कर कहा था कि "उज्जैनके राजा भोजने असन्तुष्ट हो कर अपने पुत्र चन्द्रभानको देश निकाला दिया था। चन्द्रभानने गुजरात आ कर जहाजोंका संग्रह किया और जावा पहुंचे। मारवाड़ और गुजरातमें एक कहावत प्रचलित है; उससे भी जावाके साथ भारतका सम्बन्ध प्रमाणित होता है। जैसे—

"जो जाय जावा सो कभी नहीं आवे।
आवे तो आध पोती बेटे खावे॥"

पहले जो रूमदेशका उल्लेख किया गया है, उससे बहुतसे लोग अनुमान करते हैं कि जावामें रोमनोंने उपनिवेश स्थापन किया था। परन्तु सविस्तारपूर्वक देखनेसे अनुमान मिथ्या प्रतीत होता है। जैकबस साहबने सिद्ध किया है कि उक्त रूम शब्दसे पञ्जाबके दक्षिण देशस्थ लवणस्तम्भोंका बोध होता है।*

गुजराती लोग जावा आ कर जनकार्य हुए हैं यह सुन कर बहुतसे लोग ईसाकी ७वीं शताब्दीमें जावा गये थे। इन लोग भी सम्भवतः भारतसे निर्वासित हो कर जावा पहुंचे थे। ८५० ई०में सुलेमान और ९१६ ई०में मासुदी नामक अरबके भ्रमणकारियोंने जावाके हिन्दुओंके विषयमें निम्नलिखित विवरण लिखा है— "आग्नेयगिरिके आसपास रहनेवाले मनुष्योंका रंग सफेद, कान छिदे हुए और मस्तक मुंडा हुआ होता है। वे हिन्दू एवं बौद्धधर्मके उपासक हैं और वैद्यकीमतों औषधी का रोजगार करते हैं।" §

भिन्नभिन्न यूरोपीय प्रत्नतत्त्वविदोंने गवेषणापूर्वक भारतके साथ जावाका सम्बन्ध स्थिर किया है। बहुत दिन पहले डुर्मिनियरने एक लिखित ओथामें दो तत्सामयिक नगरी 'श्रीविजय' और 'कटाह' नामक दो देशोंका उल्लेख पाया था। परन्तु उस समय वे उक्त देशोंसे परिचित न थे। पीछे १८९० ई०में M. L. Finot को सम्भव उपसनाकी एक लिपिमें तथा १८९९ ई०में ओलन्दाजके प्रत्नतात्त्विक H. Kern को मन्दकाओवको एक लिपिमें उक्त दोनों देशोंके नाम मिले थे। इधर दाक्षिणात्यके चोल सम्राट् राजेन्द्रचोलकी शिलालिपिमें (१०१२—१०४२ ई०) लिखा है कि उन्होंने समुद्रके उस पार कटाह और श्रीविजय पर जय प्राप्त कर गर्व किया था। इससे जिस समय इस लिपिको पहले पहल प्रकाशित किया था, उस समय वे उक्त देशोंको भारतवर्षके ही अन्तर्गत समझते थे। परन्तु वेङ्कय महाशयने लिखा है कि सामुद्रिक अभियानका उल्लेख होनेके कारण अनुमान होता है कि उक्त दोनों देश इन्द्रचीनके किसी प्रदेशमें होंगे। भिन्नभिन्न फरासीसी विद्वान् M. G. Coedesने चीनके इतिहासके साथ उल्लिखित घटनाओंकी तुलना कर सिद्ध किया है कि मलय-उपद्वीपके वर्तमान केड़ा बन्दरका ही प्राचीन नाम कटाह था और सुमात्राके पैलेमबैङ्ग का प्राचीन नाम श्रीविजय। इससे मालूम

* Bombay Gazetteer, Vol. I, p. I.

§ Renaudot's Relation, etc.

होता है कि चोलवंशियोंको जावासे सम्बन्ध था। श्रोल न्दाज प्रत्नतात्त्विकोंके प्रयत्नसे जावाके साथ भारतके सम्बन्धके विषयमें बहुतसे शिलालेख प्रकाशित हुए हैं। इस विषयमें महामति फूसेने १८२२ ई०में लिखा है कि "अब लिपियोंके द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि बङ्गोपसागरके उस पारसे भारतका सम्बन्ध था। आशा है, इस विषयमें और भी प्रमाण मिलेंगे।"

जावाके इतिहासके विषयमें ईसाकी ८वीं शताब्दीसे पहलेकी घटनाएं हम बहुत कम ही जान सकते हैं। ऐतिहासिकगण परवर्ती कालमें लिखे गये जावाके स्थानीय इतिहासमें वर्णित प्राचीन घटनाओं पर विश्वास नहीं करते। जावाके शिलालेखों और ताम्रलिपियोंसे वहांके प्राचीन इतिहासका कुछ विवरण प्राप्त हुआ है।

किदोईसे प्राप्त ७३२ ई०के शिलालेखमें राजा सन्नके पुत्र सञ्जयको विजयवार्ता वर्णित है। इससे मालूम होता है कि ८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जावाके मध्यभागमें हिन्दू राजत्व स्थापित था। उनको राजनैतिक क्षमता भी कम न थी। पम्बनमके आस पास इसके बादकी कुछ बौद्ध लिपियां प्राप्त हुई हैं, जो नाना प्रकार धर्म प्रतिष्ठानके उपलक्षमें नागरी अक्षरोंमें लिखी गई थीं। 'दाइङ्ग' नामक स्थानमें ईसाकी ८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें कुछ शिलालेख और हिन्दू मन्दिर आविष्कृत हुए हैं। पम्बानमके मन्दिर सम्भवतः १०वीं शताब्दीमें निर्मित हुए थे। इन मन्दिरोंसे यही प्रमाणित होता है कि ईसाकी ८वींसे १०वीं शताब्दीके भीतर जावा एक समृद्ध राज्य था। तथा मातारम्, कदोइ और डियेयङ् भी उसीमें शामिल था। अरबियोंके भूगोल सम्बन्धी ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि जावा ८वीं शताब्दीमें अत्यन्त क्षमताशाली था और उसने कोमामर (सम्भवतः कम्बोज) जय किया था। अरबके भौगोलिकोंका कहना है कि उस समय जावाकी राजधानी एक नदीके मुहाने पर थी और वह नदी सम्भवतः 'सोलो' वा 'ब्रैण्टास' होगी।

जिस समय भारतीयगण जावा-वासियोंको अपनी सभ्यतामें दीक्षित कर रहे थे, उस समय भी संस्कृतभाषा आदिम जावा-भाषाका अस्तित्व नहीं मिटा सकी थी। वर्तमानमें भी जावाके लोग खेती बारीके सम्बन्धमें जिन शब्दोंका व्यवहार करते हैं, वे आदिम जावा भाषासे ही लिये हुए हैं। हिन्दू सभ्यताके प्रभावके युगमें भी जावाकी आदिम भाषामें कविता और धर्मग्रन्थ रचे गये थे। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू-सभ्यताको उन्होंने खूब ही अपनाया था। जावाकी भाषा, साहित्य, धर्म और शासन-प्रणालीमें हिन्दू सभ्यताका प्रभाव स्पष्टरूपसे लक्षित होता है। सर चार्लस इलियटने अपने १८२१ ई०में प्रकाशित Hinduism and Buddhism नामक ग्रन्थमें प्रकट किया है कि जावामें जितने भी हिन्दू राजाओंने राज्य किया था, वे सब स्थानीय सम्भ्रान्त व्यक्ति थे तथा उन्होंने जावाको ही हिन्दू सभ्यताको अपनाया था।

ईसाकी १०वीं शताब्दीसे जावाके इतिहासने सुस्पष्ट आकार धारण किया है। ताम्रलिपियां ८०० ई०से मातारमका उल्लेख करती हैं। ८१८ ई०में म्पोइ-सिण्डोक नामक एक वजीर जावाका शासन करते थे; किन्तु उसके १० वर्ष बाद पूर्व-जावामें एक स्वाधीन राजाको राज्य करते हुए पाया जाता है। इन्होंने और भी २५ वर्ष राज्य किया था तथा पाशोरियन, सेरामाशा और केदिरी उनके राज्यान्तर्गत था। इनके प्रपौत्र एर-लङ्ग जावाके इतिहासमें एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं; इनका बाल्यजीवन युद्धकार्यमें व्यतीत हुआ था। परन्तु १०३२ ई०में इन्होंने अपनेको समग्र जावाका अधीश्वर घोषित किया था।

जावाके जातीय वीरोंमें जजवाजा वा जयवाय एक प्रसिद्ध व्यक्ति सम्भवतः १२वीं शताब्दीमें हो गये हैं। कहा जाता है कि इन्होंने केदिरीमें 'डाहा' राज्य स्थापित किया था। परन्तु इनकी लिपिमें सिर्फ इतना ही परिचय मिलता है कि ये विष्णुपूजक थे। इस समय पूर्व जावामें कला और साहित्य सम्बन्धी यथेष्ट उन्नति थी।

पश्चिम-जावाको 'जिजिती' नदीके किनारे १०३० ई०के एक शिलालेख मिला है। इसमें एक राजाका उल्लेख है। जिन्होंने पृथिवी जय की थी।

१२२२ ई०से हमें पुनः जावाका इतिहास मिलता है, क्योंकि उस वर्षसे पारारतन नामक जावाके राजा-

चीन इतिहासमें बहुतसी घटनाओंका विवरण पाया जाता है। उस ग्रन्थके प्रारम्भमें जो 'टाबारपतन' और 'सिंगासरि' राज्यके पतनका वर्णन है। इसमें पांच राजाओंके नामों का उल्लेख है, जिनमेंसे राजा विष्णुवर्द्धन 'जाण्डिजागो'के सुप्रसिद्ध मन्दिरमें समाहित हुए थे और वहां बुद्धके समान पूजे जाते थे। उनके बाद राजा ओोत्रमनागर हुए, जिन्हें कवि प्रपञ्चने 'महरवोद' बतलाया है। ये वडकोतन्दो नामक राजाके हाथसे निहत हुए थे और उनके साथ साथ 'सिंगसारि'का राज्य ध्वंस हुआ था। यूवन नामक चीनके इतिहासमें भी यह विषय विशेषरूपसे वर्णित है, अतः इसमें सन्देह करना व्यर्थ है। इन्होंने सबसे पहले "सिङ्गासरी" उपाधि ग्रहण की थी। इनकी मृत्युके बाद 'दाहा' प्रदेशने जावाके ऊपर प्राधान्य लाभ तो किया था, परन्तु वह प्राधान्य अधिक दिन तक रह न सका, शीघ्र ही मदजापितके लोगोंने उनकी लक्ष्मी छीन ली। इसी समय चीनने जावा पर आक्रमण किया था। इस विषयका विस्तृत विवरण 'यूयान' नामक चीना इतिहासमें पाया जाता है।

इन दोनों वृत्तान्तों को पढ़ कर समझ सकते हैं कि कुबलाईखांने चीन देश जय करनेके बाद निकटवर्ती राज्योंमें कर वसूल करनेके लिये दूत भेजे थे। जावाके लोग साधारणतः चीनदेशके दूतोंका सम्मान करते थे किन्तु अबकी बार राजा जयकातोङ्गने उन्हें अपमानित दशा दे कर लौटा दिया। इससे कुबलाई खां अत्यन्त क्रुद्ध हुए और १२८२ ई०में जावावासियोंको उपयुक्त शिक्षा देनेके अभिप्रायसे विराट् सेना भेज दी। इस समय वीरतामानके जामाता राडेनविजय ने जयकातोङ्गकी अधीनता स्वीकार न की थी। ये मदजापितके दुर्गमें स्वाधीनतापूर्वक रहते थे। इन्होंने जयकातोङ्गसे बदला लेनेके लिये चीनको सेनाका जावा में स्वागत किया। हमारे देशके कलङ्कस्वरूप मीर जाफरने जिस तरह क्लाइवके साथ मिल कर भारतका अहित या अङ्गरेजोंके राज्य स्थापनमें सुभीता कर दिया था, उसी तरह राडेनविजयने भी जावामें चीनका अधिकार दृढ़ करनेकी कोशिश की थी। दो महीने तक जावावासियोंके साथ चीनकी सेनाका घोरतर युद्ध हुआ। अन्तमें चीनने दाहा प्रदेश पर कब्जा कर ही लिया। जयकातोङ्ग भी इसी युद्धमें मारे गये। जिस तरह राजा संग्रामसिंह पानीपतके युद्धके बाद मुगलों को अपसारित कर स्वयं राज्यशासन करना चाहता था, उसी तरह राडेनविजयको भी चीनों को भगा कर राज्यशासन करनेकी इच्छा हुई। इसके लिये उन्होंने कुछ सेनाको गुप्तभावसे मरवा डाला और कुछको सम्मुख समरमें मारनेको ठानी। परन्तु मुगल सेना इस बातको जानती थी कि विदेशमें सहायहीन हो कर युद्ध करनेसे जय लाभ नहीं कर सकेंगे। इसलिये उसने कुबलाईखांके पास जा कर कहा कि दाहा प्रदेश पर अधिकार हो गया और उस देशके राजाको मार कर अपमानका बदला भी ले लिया गया।

इस समय मदजपित ही जावाका प्रधान राज्य समझा गया। पारारतनमें लिखा है कि इस राज्यमें इसके बाद भी राजा और दो रानियोंने यहांका राज्य किया था। १४७८ ई० तक इस राज्यका प्रभाव अक्षुण्ण रहा था। ग्रोनवेल्ट साहबके लिखे 'चीनदेशीय लिट्' इतिहास और अन्यान्य विवरणोंके पढ़नेसे मालूम होता है * कि इस समय इस राज्यके साथ चीनदेशका वाणिज्य सम्बन्ध बहुत ही घनिष्ट था और दूतादि भी परस्पर भेजे जाते थे। 'पासिमबाङ्' राज्यने उस समय जावाकी अधीनता स्वीकार की थी। इन सब घटनाओंसे मालूम होता है कि जावा उस समय सर्वोच्चशाली था। किन्तु पारारतनके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि मदजपित राज्य धर्मविप्लवसे ध्वस्त हुआ था। बड़ी कठिनाईसे उसमें शान्ति और शृङ्खला स्थापित हुई थी। जावाके पूर्व और पश्चिम भाग ई० १४०१ में असमान लड़ाई छिड़ी थी। १५वीं शताब्दीमें मदजपित राज्य दो बारके लिए राजासे वञ्चित हुआ था। उस समय वंश और शासन दोनों विलुप्त न होने पर भी क्रमशः हीन अवस्थाको प्राप्त होते थे। धीरे धीरे विद्रोहके सभी स्थानों पर प्रकाश पड़ने लगा। १४७८ ई०की घटनाका उल्लेख करते हुए पारारतनमें लिखा है कि राजा १४ पाण्डान

* Groeneveldt, p 34–35.

झालने राजप्रासाद त्याग कर दिया था। इसीसे मालूम होता है कि जावामें उस समय घोरतर विप्लव उपस्थित हुआ था।

जावामें हिन्दूराजाका ध्वंस किस तरह हुआ, इस विषयमें वहांके लोगोंमें जो प्रवाद प्रचलित है, उनका सङ्कलन सर चार्लस् राफलस् साहब एक सौ वर्ष पहले अपने जावाके इतिहासमें कह चुके हैं *। परन्तु आधुनिक ऐतिहासिकगण उक्त प्रवादों पर विश्वास नहीं करते; उनका कहना है कि हिन्दू-राजत्व मुसलमानोंके लगातार आक्रमण होते रहनेसे विलुप्त हो गया था।

हिन्दू राजत्वके शेष समयमें मुसलमान धर्मका प्रभाव क्रमशः बढ़ता हो गया था। अन्तमें अवस्था ऐसी हो गई कि हिन्दू नाममात्रके लिए राजा होते थे, किन्तु कार्यतः मुसलमान ही राज्यशासन करते थे। चानदेशीय इतिहासमें उल्लेख है कि ईसाकी ७वीं शताब्दीमें ही जावामें अरबके लोग पहुंच गये थे। १४१६ ई०में चानदेशमें यिन शाय शेंगलो नामक जो भौगोलिक ग्रन्थ रचा गया था उसमें जावाके ग्रासे, सोदरावजा और मदजाफित नामक तीन प्रधान नगरोंका उल्लेख है तथा जावाके अधिवासियोंको तीन श्रेणीमें विभक्त किया गया है। जैसे— १ मुसलमान—ये पश्चिमसे आये थे और इनका खाना पीना तथा पोशाक साफ सुथरी होती थी। २ चीन-देशीय—ये भी साफ सुथरे रहते थे और अधिकांश मुसलमान थे। ३ देशीय वा जावाके अधिवासिगण—ये देखनेमें कुत्सित और अत्याचार व्यवहारमें गन्दे होते थे तथा प्रेतोंकी उपासना और जघन्य खाद्य भक्षण करते थे। चीन देशीय ऐतिहासिकगण साधारणतः जावाके हिन्दुओंको घृणाकी दृष्टिसे देखते आये हैं। किन्तु अब इस प्रकारके वर्णनसे मालूम होता है कि ईसाकी १५वीं शताब्दीके मध्यभागमें वहांके उच्चश्रेणीके लोगोंने सम्भवतः मुसलमान धर्म अवलम्बन किया था; हिन्दूधर्म सम्भवतः अत्यन्त नीचश्रेणीके लोगोंमें ही प्रचलित था, इसीलिए उन्होंने उक्त प्रकारका विवरण लिखा है। जिस तरह अरबके लोग अन्य देशोंमें सिर्फ राज्य विस्तार करके ही शान्त नहीं हुए, बल्कि धर्म-विस्तारके लिए भी काफी प्रयत्न करते रहे हैं, उसी प्रकार जावामें भी उन्होंने अपने धर्मप्रचारके लिए यथेष्ट चेष्टा न की हो, यह सम्भव नहीं, सम्भव है इसके लिए उन्होंने छल, बल और कौशल से भी काम लिया हो। जावामें हिन्दूधर्मके प्रभावका स्पष्ट प्रमाण इसीसे मिल सकता है कि इतना हानि पर भी वहांकी उच्चश्रेणीकी जनताने हिन्दूधर्मको नहीं छोड़ा था

जावामें हिन्दुओंके राज्य और शासनप्रणालीका विवरण पढ़ते पढ़ते हमारे हृदयमें यही भाव उत्पन्न होता है कि, उस सुदूर अतीतकालमें हिन्दूगण गृह-कोणमें आवद्ध रह सिर्फ धर्मकामके अनुष्ठानादिमें ही व्यापृत न रहते थे; किन्तु वे वीरोंकी भांति अज्ञात समुद्रोंमें जहाज चला कर नये नये देशोंका आविष्कार एवं अधिकार करते थे और वहां हिन्दूधर्मका प्रभाव फैलाते थे। जिस समयसे हिन्दूजातिमें वैसे साहस और वीरत्वकी हीनताका प्रारम्भ हुआ है, तभीसे हिन्दूजातिकी अवनतिका सूत्रपात हुआ है।

जावामें मुसलमान धर्म प्रचारके लिए अरबियोंने पहले अपना स्थानीय पत्नी और क्रीतदासको मुसलमान बनाया था। पीछे 'अम्पेल' नामक नगरमें मुसलमानोंने अपना प्रधान केन्द्र स्थापित किया। वहांके शासनकर्त्ताओंमें मालिक, इब्राहिम और राहेन रहमत् इन दोनोंका नाम पाया जाता है। मदजाफितके चतुष्पार्श्ववर्ती स्थानोंमें जो हिन्दू राजा थे, उन्होंने क्रमशः मुसलमानधर्म ग्रहण कर लिया और अन्तमें हिन्दू राजत्वका ध्वंस हो गया।

जावामें मुसलमानोंका अधिकार वा शासन ईसाकी १२वीं शताब्दीसे ही प्रारम्भ हो गया था। पहले उन्होंने कुछ छोटे छोटे स्थानोंमें उपनिवेश स्थापन किया। जिस समय हिन्दू राजा आपसमें विवाद खड़ा करके दुर्बल हो रहे थे, उस समय मुसलमानगण जावामें अपना अधिकार जमानेके लिए कोशिश कर रहे थे। आखिर १४७८ ई०में बहुसंख्यक मुसलमानोंके इकट्ठे हो जानेके कारण जावाका तत्कालीन प्रधान नगर 'मजपहित'का पतन हो गया। जो नगर शताब्दियोंसे हिन्दूओंकी समृद्धि और सभ्यताका केन्द्र होता था

* Raffles, Chapter X.

रखा था, जब मुसलमानोंके सोदय आक्रमणसे ध्वंसो न्मूल हो गया। वर्त्तमान समयमें उक्त नगरका ध्वंसाव शेष कई कोसोंमें फैला हुआ है।

'मजपहित'के ध्वंसके बाद मुसलमानोंने डामक नामक स्थानमें जावाकी राजधानी स्थापित की। मुसल मानोंने १४८२ ई०से १७वीं शताब्दीके मध्यभाग पर्यन्त अप्रतिहतभावसे जावाका शासन किया था। धीरे धीरे मुसलमान राज्य नाना भागोंमें विभक्त हो गया था, जिनमें डामक, चेरिवन, बण्टम, जाकता और पजङ्ग प्रधान हैं। इन विभागोंके शासनकर्त्ताओंमें प्राय: पर स्पर गृहविवाद होता रहता था। इनके राजत्वकालमें जावाकी किसी विषयमें भी उन्नति नहीं हुई थी। नाना प्रकारके जातीय और धार्मिक विवादोंकी गड़बड़ीमें सुलतान लोग दुर्बल हो गये थे और विलासितामें समय बिताते थे। इसी समय लोगोंके साथ सुलतानोंका युद्ध भी छिड़ गया था।

१६२० ई०में जावामें युरोपियोंका विशेषतः ओलन्दा जोंके आधिपत्यका सूत्रपात हुआ। युरोपियोंमें सबसे पहले जावाका विवरण शायद सुप्रसिद्ध पर्यटक मार्कों पोलोने ही लिखा है। उन्होंने १२९२ ई० में सुमात्रामें पदार्पण किया था। जावाके विषयमें वे लिखते हैं कि जावामें आठ राजा आठ विभागोंका शासन करते थे और सभीके लोग मूर्त्तिके उपासक थे। इसके बाद ओडोरिक डि पोरडेनोन नामक एक ईसाई भिक्षु १३१० ई०के कुछ पीछे जावा आये थे। इसके एक सौ वर्ष बाद निकलस डेकोण्ट पर्यटक निकोलो कोण्टि जावा पहुँचे। ये वहाँ दो महीने रहे थे। उनके बाद चतुर्थ लोडोविको पुरेथा के फ्डिमिको डि वार्थेमा जावा परि दर्शनके लिए आये थे। इसी बीचमें पोर्त्तगीजोंने भी भारतमें आना शुरू कर दिया था किन्तु यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि पोर्त्तगीज जैसी व्यवसायबुद्धि सम्पन्न जातिने, जावासे परिचित होने पर भी वहाँ उप निवेश स्थापन नहीं किया। १५१० ई०में पोर्त्तगीजके शासनकर्त्ता अलफन्सू डि अलबुकर्क सुमात्रा आये थे और १५११ ई०में मलकाका अधिकार किया था। इसी समय उन्होंने अपने मध्यवर्त्ती तीन जहाजोंके

साथ जावा परिदर्शनके लिए भेजा था। इसी समय जावाके साथ पोर्त्तगालका वाणिज्य सम्बन्ध स्थापित हुआ था। ओलन्दाजोंको १५९२ ई० में पहले पहल जावामें रहनेके लिए अनुमति मिली थी। यहाँ १६ वर्ष वाणिज्य कर चुकनेके बाद उन लोगोंने बाताविया का कर कोठी और मकानात बनवाये। इससे जाकित्राके सुलतान नाराज हो गये और उन्हें भगानेके लिए कोशिश करने लगी। परिणाम स्वरूप तीन युद्ध हुए और उनमें ओलन्दाजोंकी जीत हुई। पर उनकी संख्या यथेष्ट न थी। इसी समयमें ओलन्दाजोंने जावाके शासन- काय और सुलतानके युद्धमें प्रमुख करना शुरू कर दिया। १६२८ ई०में सुलतानके साथ उन लोगोंकी सन्धि हो गई। तभीसे ओलन्दाजगण एक राजाको अन्य राजाके विरुद्ध सहायता दे कर अपनी क्षमताकी वृद्धि करने लगे। ईसाकी १६वीं शताब्दीके शेषभागमें अङ्गरेजोंने भी जावामें उपनिवेश स्थापन किया था; किन्तु एक शताब्दी बाद उसे उठा लिया। १७०५ ई०में मातारमके सुलतानके साथ सन्धि करके ओलन्दाज दक्षिणीय कम्पनीने प्रियाङ्गार नामक स्थान पर अधिकार कर लिया। १७४६ ई० में यह अधिकार समस्त उत्तर उपकूलमें—चेरिवनसे बेनिवाङ्गी तक व्याप्त हो गया। १७५५ ई० में जब मातारमका राज्य दो भागोंमें विभक्त हो गया था, तब ओलन्दाज ही यथार्थमें जावाके शासन कर्त्ता हुए। १८०८ ई०में उन लोगोंने बाण्टम राज्य पर कब्जा कर लिया।

इसके बाद १८११ ई० में जब कि युरोपमें फ्रान्सके सम्राट् नेपोलियन बोनापार्टके साथ अङ्गरेजोंका युद्ध चल रहा था, उस समय जावा ओलन्दाजोंके हाथसे निकल गया था। अङ्गरेजोंने यहाँ ७ वर्ष राज्य किया था। उस समय सुलतान-वंशीय कोई एक व्यक्ति नाम मात्रके लिए सिंहासन पर बिठा दिया जाता था। अंगरेज ही यथाक्रमसे शासनकार्य चलाते थे। १८११ ई०में जावाके शासनकर्ता सर टाम्फोर्ड-राफल्स् नियुक्त हुए। इन्होंने पाँच वर्ष तक शासनदण्ड परिचालित कर जावा की हर तरहसे उन्नति की थी। इन्होंने उक्त द्वीपका पहले पहल इतिहास लिखा था। इनका इतिहास

पथप्रदर्शक होने पर भी, वह प्रवादोंकी निर्भरता पर लिखा गया है। राफलस् साहबने जावाकी स्वाधीन वाणिज्य-नीति अवलम्बन कर समस्त जातियोंको वहां व्यवसायके लिए आह्वान किया था, जिससे जावाको बहुत श्रीवृद्धि हुई थी। जावाके अधिवासी उनकी स्मृतियोंकी सादर वा सभक्ति पूजा करते हैं। आखिर १८१६ ई०में यूरोपमें सन्धिस्थापन होनेके उपरान्त अङ्गरेजोंने १८ अगस्तको जावा ओलन्दाजोंको सौंप दिया; तबसे वह उन्हींके हाथमें है। किन्तु १८२५से १८३० ई० तक देशीय स्वाधीनताके उद्धारके लिए दीपनागर (सुलतान वंशीय) का ओलन्दाजोंसे जो युद्ध हुआ था, वह बहुत विस्मयकर था। दीपनागर जावाके अन्तिम सुलतान थे। उन्होंने स्वदेश प्रेमके महामन्त्रसे प्रणोदित हो जो असा-नक काम किया था, वह स्वदेश-प्रेमिकके लिए अनुशीलन करने योग्य है। इस युद्धमें ओलन्दाजोंकी १५००० सेना निहत हुई तथा करोड़ों रुपये खर्च हुए थे। दीपनागरने १८५५ ई० तक स्वाधीनता संस्थापनके लिए जो-जानसे कोशिश की थी। वे १८वीं शताब्दीके सभ्यसमाजमें स्वदेशवत्सल वीरपुरुष जैसे यशस्वी हुए हैं।* १८५५ ई०में निर्वासित अवस्थामें दीपनागर माकासरद्वीपमें परलोक सिधारे, किन्तु अब भी जावावासी उनकी मृत्यु नहीं स्वीकार करते। वे मुक्तकण्ठसे निर्भीकतापूर्वक कहते हैं कि दीपनागर अब भी मरे नहीं हैं, वे हमारी दृष्टिके अन्तरालमें रहते हैं और अचानक आविर्भूत हो वैदेशिक शासनके दासत्वरूप बेड़ीको तोड़ कर भारत महासागरके पानीमें डाल देंगे और फिर सुनान लोग जावाके सिंहासन पर बैठेंगे। मध्य-जावामें दीपनागरके नाम पर बहुत दफे बलवा हुआ था। १८६५, १८७० और १८८८ ई०में दीपनागरके नाम पर वहां विद्रोह उपस्थित हुआ था।

इस समय ओलन्दाज-शासनकर्ता पाश्चात्य शिक्षा सभ्यताका प्रचार कर जावावासियोंकी जातीयता लूटनेके लिए कोशिश कर रहे हैं; किन्तु जावावासी सभ्य हिन्दूके समान देशीय भावको नहीं छोड़ते। १८६६ ई०में ओलन्दाज गवर्नर जनरल Dr. Sloet van le Beele-ने जावाके शासनका बहुत कुछ संस्कार किया था। प्राथमिक शिक्षाके लिए सब स्थानोंमें विद्यालय खुल गये हैं; रेलवे, टेलिग्राफ, ट्रामगाड़ी, ष्टीमर आदि सर्व प्रकार सभ्यताकी यन्त्रावलियोंका भी प्रचलन हो गया है। परन्तु अभी तक वे पाश्चात्यभावमें नहीं डूबे हैं, कल्कि अवतारकी तरह वे सर्वदा यही सोचते रहते हैं कि दीपनागर आ कर श्वेतकाय मनुष्योंको खण्ड खण्ड करें।

इस समय ओलन्दाजगण शस्यश्यामल स्वर्णप्रसू यवद्वीपकी लक्ष्मीके अनन्तभाण्डारसे धनरत्न आहरण कर इङ्गलैण्डको वाणिज्य-गौरवसे भूषित कर रहे हैं। खनिज पदार्थोंके लिये जमीन खोद रहे हैं। जङ्गलोंसे लाखों रुपयेकी लकड़ी देश ले जा रहे हैं—विविध पण्य परिपूर्ण वाणिज्य तरियां लक्ष्मीका भाण्डार ले कर हजारोंकी संख्यामें यूरोपकी ओर दौड़ी जा रही हैं, ओलन्दाज धनी वणिक्‌गण एलालतालिङ्गितचन्दनकुञ्जमें—द्वीपान्तरानीत लवङ्गपुष्पमें चित्तविनोद कर रहे हैं।

पहले ओलन्दाजगण यहां बन्दर नहीं बना सके थे; किन्तु १८८५ ई०में इञ्जिनियरोंने ८ वर्ष तक अटूट परिश्रम करनेके बाद बाताविग्राके निकट एक बड़ा भारी बन्दर बन गया। इसके सिवा मिट्टीके तेलकी बड़ी भारी खनि आविष्कृत हुई तथा १८८० ई०के भीतर ११०६ मील तक रेलवे और ४१४ मील तक ट्रामकी लाइन बन गई। फिलहाल ष्टेट-रेलवेके सिवा अन्यान्य कम्पनियां भी रेल चलाती हैं; सर्वत्र जाने आनेका सुभीता हो गया है और ओलन्दाज ष्टीमर कम्पनीके असंख्य ष्टीमर वा जहाज प्रति दिन सागरद्वीपोंके चारों ओर चला करते हैं।

राज्य-शासनके लिए यहां एक ओलन्दाज गवर्नर जनरल रहते हैं, जो हलैण्ड राज्यके द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इसके अलावा समस्त यवद्वीप और मदूरा २२ भागोंमें विभक्त हैं, यथा—वण्टाम, बाताविया, क्रवङ्ग, प्रेङ्गार, चेरिवन, टेगल, पेकालङ्गान, वन्युमस, वजेलेन, योग्यकर्त्ता, सुरकर्त्ता, केदू, समरङ्ग, जापरा, रम्बङ्ग, मदिवान, केदिरी, सुराभय, पशुरुआ, प्रभुलिङ्ग, मदूरा और

* Encyclopædia Britannica, 10th Ed.

जासकते। प्रत्येक विभागमें एक एक रेसिडेण्ट (स्थानीय शासनकर्त्ता) नियुक्त हैं। प्रत्येक विभाग ५।० जिलोंमें विभक्त है और उन जिलोंमें एक एक सहकारी रेसिडेण्ट नियुक्त है।

स्थानीय या देशीय लोग सुशिक्षित होने पर सहकारी रेसिडेण्टके निम्नतम 'रिजेण्ट' या अध्यक्षका पद पा सकते हैं, किन्तु जो प्राचीन राजवंशोद्भव नहीं हैं, उनको यह पद नहीं मिलता।

रेसिडेण्ट स्थानीय शासनकर्त्ता हैं। राजस्वसंग्रह और शासनकी व्यवस्था करना उनका कार्य है। अर्थात् विचार और शासन इन दोनों ही विभागोंके वे कर्त्ता-धर्त्ता हैं।

इसके सिवा २१ करद राज्य भी हैं, किन्तु उन्हें ओलन्दाज गवर्नमेण्टके हाथकी कठपुतली समझना चाहिए। बाताविया नगरमें एक सुप्रिमकोर्ट (बड़ी अदालत) है, जिसमें ओलन्दाज उपनिवेशके समस्त-द्वीपोंके मुकदमोंकी अपीलोंका विचार होता है। इसके अलावा शासनादि कार्यके लिये अनेक कर्मचारी नियुक्त हैं। अधिवासियोंकी स्वाधीनताका प्रभाव क्रमशः घटता ही जाता है। ओलन्दाजोंकी शासनशृङ्खला क्रमशः दृढ़तर होती जाती है।

प्राचीन धर्म—जावाके लिपितत्त्व, प्रवाद, साहित्य और चीन परिव्राजकोंके भ्रमण-वृत्तान्तसे यहांके धर्मका विवरण मिल सकता है। ४१८ ई०में जब फा-हियान जावामें पर्यटन करने गये थे उस समय उन्होंने यहां ब्राह्मण्यधर्मका प्रबल प्रताप देखा था। इसकी सत्यता इसी महाराज पूर्णवर्माके शिलालेखसे मालूम हो सकती है। यदि उस समय यहां बौद्धधर्मका बहुत प्रचार होता, तो फा-हियान अवश्य ही उसका उल्लेख करते। इससे अनुमान किया जाता है कि उस समय जावामें बौद्धधर्मका विशेष प्रचार न था। 'नाञ्जियो' की तालिकामें लिखा है कि फा-हियानके कुछ समय पीछे अर्थात् ४२० ई०में गुणवर्माने जावामें (जिन्पो नामसे उल्लिखित हुआ है) बौद्धधर्मका प्रचार किया था। गुणवर्मा काश्मीरसे गये थे, इसलिये विद्वानोंका अनुमान है कि वे सर्वास्तिवादी थे। उनके बाद और भी अनेक बौद्ध-भिक्षु धर्म प्रचारार्थ जावा गये थे*।

तिब्बतके लामा ऐतिहासिक तारानाथका कहना है कि वसुबन्धुके शिष्यने पूर्वदेशमें बौद्धधर्मका प्रचार किया था। इससे मालूम होता है कि इत्सिङ्गने भी यहां उन्हींके द्वारा प्रचारित बौद्धधर्म देखा था। ईसाकी ६ठी और ७वीं शताब्दीमें बौद्ध परिव्राजकगण चीन और भारतवर्षके मध्य यातायात करते थे और उनमेंसे बहुतसे यवद्वीपमें उतरते थे। चीनमें उस समय बौद्धधर्मका बहुत प्रचार था। पहले लिख चुके हैं कि ईसाकी ६ठी और ७वीं शताब्दीमें गुजरातसे मनुष्योंका एक दल लाया गया था। सर चार्ल्स इलियटका अनुमान है कि वे भी बौद्धधर्मावलम्बी थे†।

इस द्वीपमें जावाका बौद्धधर्म किस प्रकृतिका था इस विषयकी कुछ आलोचना की जाती है। ईत्सिङ्-का कहना है कि जावाके बौद्धगण हीनयानमतावलम्बी और मूलसर्वास्तिवादी थे। सम्भवतः गुणवर्माने यहां हीनयान मत प्रवर्तित किया था। किन्तु परवर्ती कालमें भारतवर्षसे अन्यान्य मत भी यहां प्रचारित हुए थे। क्योंकि ७७९ ई०को कालासन नामक स्थानमें जो मन्दिर बना था, वह तारादेवीके नाम पर उत्सर्ग हुआ है और उस मन्दिरमें महायान मतका आभास पाया जाता है। प्राप्त शिलासे मालूम होता है कि परवर्तीकालका बौद्धधर्म भी महायानवादी ही था। बरबदरके मन्दिरमें पांच बड़ी बड़ी बौद्ध मूर्तियां तथा बहुतसी बोधिसत्त्वकी मूर्तियां स्थापित हैं। इससे मालूम होता है कि यहांका बौद्धधर्म महायानवादी ही था। परन्तु अन्य पक्षमें यह भी कहा जा सकता है कि शाक्यमुनिका व्यक्तित्व यहां अधिकतासे परिस्फुटित किया गया है, उनकी जीवनी और पूर्वजन्मके वृत्तान्तके आधार पर बहुतसी मूर्तियां निर्मित की गई हैं। उस मन्दिरमें मैत्रेयदेव भी अत्यन्त सम्मानके साथ पूजे जाते हैं। सुमात्रामें भी प्रायः उसी प्रकार बौद्धधर्म प्रचलित हुआ था। हां! इतना फर्क है कि यहां पांच की जगह चार बुद्ध मूर्तियां पूजी जाती थीं।

* Nanjio Catalogue Nos 137, 138

† Hinduism and Buddhism, Vol. III, p. 176

जावा और कम्बोजमें जो महायानवाद प्रचलित था उसके साथ हिन्दूधर्मका यथेष्ट संमिश्रण था। बहुत जगह तो यह भी घोषित हो गया था कि बुद्धदेव ही शिव हैं अथवा यों कहिये कि बुद्ध और शिव एक ही मूल कारणके विभिन्न प्रकार विकाशमात्र हैं। धर्मशास्त्रोंमें उभय धर्मके उक्त प्रकारसे मिश्रणका परिचय मिलने पर भी बरबदरके मन्दिरादिमें उसका कोई प्रभाव देखनेमें नहीं आता। सम्भव है, उस समय एक ही स्थानमें हिन्दू और बौद्धधर्म प्रचलित रहने पर भी दोनोंमें संमिश्रण न हुआ हो। उस समयके इलोराके चित्र-शिल्पके देखनेसे यही प्रतीत होता है कि इसीकी ९वीं शताब्दीमें पश्चिम भारतके धर्मकी दशा भी प्रायः वैसी ही थी।

जावाके यथार्थ इतिहासके विषयमें हमें इतना कम तथ्य मालूम हुआ है कि, उससे इस बातका निर्णय नहीं किया जा सकता कि हिन्दू और बौद्ध इन दो धर्मोंमें किसकी शक्ति कितनी वा कैसी थी।

जावामें जैनधर्म भी प्रवर्तित हुआ था। पुरातत्त्वविदोंका अनुमान है कि जावामें ईसाकी १०वीं और ११वीं शताब्दीमें जैनधर्म प्रचारित हुआ था। इसका प्रमाण यह है कि खुजुराहोमें बहुतसे मन्दिरोंमें जैनधर्मके उपासकगण पूजादिके लिए जाते थे। उक्त स्थानमें शिव और विष्णुमन्दिर भी पाये जाते हैं।

जावाके हिन्दूधर्मका प्रथम परिचय हमें पूर्णवर्माके शिलालिपिसे मिलता है। उसके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि जावामें ५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें विष्णु-उपासकोंका ही प्राबल्य था। पीछे ८वीं और ९वीं शताब्दीमें वहां शैव-धर्मका प्रचार हुआ था। पमवानम् और डियेङ् इन दोनों ही स्थानोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी मूर्तियां पूजी जाती हैं। किन्तु गणेश, दुर्गा, नन्दी सह शिव ही प्रधान समझे जाते हैं। पमबानमके एक मन्दिरमें महागुरु शिवरूपमें पूजे जा रहे हैं। उनको प्रौढ़वयस्क श्मश्रुयुक्त व्यक्तिके रूपमें अङ्कित किया गया है, शरीर पर बहुमूल्य वस्त्रालङ्कार भी दिये गये हैं। बहुतसे समझते हैं कि उक्त मूर्तिके निर्माण-चातुर्य और वेशमें चीनदेशका प्रभाव लक्षित होता है। चीनका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है कि उस देशके सम्राट्गण प्रायः जावाके राजाओंको देवमूर्ति उपहारमें दिया करते थे। ईसाकी १०वीं शताब्दीके मध्यभाग पर्यन्त शिवका प्रभाव अक्षुण्ण था। पीछे ११५० ई०में जब पनतारनका मन्दिर बना था, तब शैवधर्मके साथ वैष्णवधर्मका कुछ संमिश्रण हुआ था। हेतु यह है कि वहांके मन्दिरोंमें यत्र तत्र रामायण और वैष्णवपुराणके आख्यानोंके आधार पर चित्र निर्मित किये गये हैं*। इसके बाद १३वीं शताब्दीमें जावाका बौद्धधर्म पुनः श्रीसम्पन्न हुआ था। इस समय कम्बोज और चम्पामें बौद्धधर्मका स्रोत प्रबलवेगसे चल रहा था। मदजापितके एक राजाने चम्पाकी राजकन्याके साथ विवाह किया था। इससे अनुमान किया जाता है कि इस युगमें चम्पासे बौद्धधर्म आया था। तारानाथका कहना है कि मुसलमानोंके आक्रमण और अत्याचारके भयसे बहुतसे बौद्ध भारतसे भाग गये थे; सम्भव है उन्होंमेंसे कुछ जावा पहुंच गये हों। ईसाकी १३वीं शताब्दीमें जावामें बौद्धधर्मका प्रभाव बढ़ अवश्य गया था किन्तु ब्राह्मणधर्मके साथ उसका सङ्घर्ष उपस्थित नहीं हुआ था। बुद्ध और शिव एक ही तत्त्व हैं, यही घोषित किया गया था। साधारण लोग हिन्दू देवदेवियोंकी ही उपासना करते थे। इतना होने पर भी वे अपनेको बौद्ध बतलाते थे। अब भी वहांके अधिवासियोंको इस बातका गर्व है कि वे बुद्धागमके धर्मका अनुसरण कर रहे हैं। जावाके साहित्यमें भी बौद्ध ग्रन्थोंकी संख्या अधिक पाई जाती है। जावामें रामायण, भारतयुद्ध आदि हिन्दू ग्रन्थोंका भी अस्तित्व था, किन्तु यहांके लोग उन्हें काव्यकी दृष्टिसे देखते थे। इसके विपरीत बौद्धोंके "कमहायानिकान" और "कुञ्जरकर्ण" आदि ग्रन्थोंको वे यथार्थ धर्मशास्त्र मानते थे। सुतरां मदजापितमें जिस बौद्धधर्मका अनुसरण होता था, उसे उदार प्रकृतिका कहा जा सकता है।

फिलहाल जावाके प्रायः सभी लोग मुसलमान लिखे वा समझे जाते हैं। परन्तु इन मुसलमानोंके धर्ममतकी यदि धीर भावसे पर्यालोचना की जाय, तो उनमें

* Recherches preparatoires Concernant Krishna et les bas reliefs des temples de Java by Knebel in Tijdschrift LI p 97 174.

हिन्दू और बौद्धधर्मका प्रभाव परिलक्षित होगा। उस समय के समय बरबदूर और प्रम्बाननमें सैकड़ों पुजारी लोग पुण्यार्थ लिया करते हैं। ये लोग हिन्दूओंके पुराणोंमें वर्णित गणम भूत, विद्याधर आदि पर विश्वास करते हैं। बहरमें कहर मुसलमान भी सम्प्राप्य को पातामें अन्त्येष्टियोंको पूजा किया करते हैं। जावा के लोगोंमें हिन्दूधर्मके अन्तर्निहित संख्यावकाश और धर्मपालना भी पाई जाती है। कुछ भी हो किन्तु जावामें हिन्दूधर्मका मामला विलीन हो गया है। किन्तु बालिद्वीपमें अब भी उसका प्रभाव विद्यमान है।

जावाके भवनादर्श—सम्प्रति पुरातत्त्वविद् विद्वान मध्य मत प्रमाणसे सिद्ध किया है कि जावाको चित्रकला और भास्कर्य भारतीय पद्धतिके अनुसार वा आदर्श पर अङ्कित हुआ था।* १८७६ ई०में मि० फर्गुसनने अपने Indian and Eastern Architecture नामक ग्रन्थमें लिखा है कि जावा वासियोंने सब कलाविद्या चालुक्य दक्षोयोंसे सीखी थी। किन्तु डिलक्षाव J. W. Fjzerman कहते हैं कि मि० फर्गुसनने मि० शायनम् द्वारा प्रदत्त शिलालेखका आधार ले कर भूल की है। उनका कहना है कि जावामें एकमात्र चण्डीविमाके सिवा अन्यान्य सभी मन्दिर द्राविड़ी प्रथाके आदर्श पर बने हैं।

प्राचीन भास्कर्यके भ भावशेषको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—एक तो मातारमराज्य और उसके निकटवर्ती स्थानोंका और दूसरा सिराबाजासे दक्षिण प्रदेशका। पश्चिम जावामें कुछ शिलालेखोंके सिवा कारुकार्यमण्डित ध्वंसका अन्य कोई चिह्न देखनेमें नहीं आता।

जावाकी प्राचीन कीर्तियोंमें शान्दिवानानका बौद्धमन्दिर देखने सन् ७७८को वैमवाननमें बना था। इस समयके पहले अन्य किसी भी मन्दिरके निर्माणका निश्चित समय नहीं मिलता। यह मन्दिर तारादेवीके नाम पर उत्सर्ग किया गया है। इसके पास ही महायान मतावलम्बी बौद्धोंके रहनेके लिए एक दुम जला सङ्घाराम और शान्दिमीपूजा मन्दिर है। यह मन्दिर देखनेमें प्रायः मन्दाकाके पागोडाका (Pagoda) सीलिका है। इसके भीतर २८० पूजा मन्दिर हैं जिनमें प्रत्येकमें) एक एक ध्यानी बुद्धको मूर्ति रहती थी। इसी प्रदेशके 'शान्दि मिन्दुत नामक मन्दिरमें सुखवत् आसन पर उपविष्ट बुद्धदेव मञ्जुश्री और अवलोकितको मूर्ति विद्यमान है। उल्लिखित अवलोकित मूर्तिके समान सुन्दरमूर्ति आज तक कोई भी बौद्धशिल्पी बना नहीं सका है ऐसा लोगों का अनुमान है। मर फाबस् इलियट भी इसका समर्थन करते हैं।

मिन्दुतसे कुछ दूरी पर प्रविज्ञोंके अध्ययन भागेंजन्य बरबदूरका मन्दिर है। साधारणतः अनुमान किया जाता है कि यह मन्दिर ८५० ई०में बना था। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इसके बनानेमें समय बहुत लगा होगा। मन्दिरके कारुकार्य पर लक्ष्य देनेसे ऐसा अनु मान होता है कि मन्दिर बनाते बनाते शिल्पियोंके मनमें भी परिवर्तन हो गया था। जिस धर्मात्मा राजाने यह मन्दिर बनवाया था वे अवश्य ही अतुल क्षमता शाली और महाविस्मय थे। आधुनिक ऐतिहासिकोंका मत है कि इस स्तूप पर किसी प्रकारका ब्राह्मण्य प्रभाव नहीं है।†

बौद्ध उपासकगण इस विराट् मन्दिरकी प्रदक्षिणा देते थे। परिक्रमा देते समय उन्हें प्रायः दो हजार मूर्तियोंके दर्शन होते थे। इन मूर्तियोंके द्वारा शाक्य मुनिके पूर्वजन्मका वृत्तान्त, उनकी सिद्धिप्राप्ति और महायानमतवादके निगूढ़ रहस्योंकी व्याख्या की गई है। बुद्धदेवके जीवनकी घटनाएं 'ललित विस्तर'से ग्रहण कर अङ्कित की गई हैं। जातकके चित्र 'दिव्या वदान'से लिये गये हैं परन्तु किसी भी चित्रमें शाक्य मुनिको निर्वाण अवस्था अङ्कित नहीं है। बोधिसत्व, अवलोकित, मञ्जुश्री आदिको मूर्तियां भी इस स्थानमें स्थापित हैं। स्वर्गीय दृश्य दिखलाने हुए स्त्री और पुरुष दोनों प्रकारके बोधिसत्वोंको मूर्तियां अङ्कित की गई हैं, किन्तु उनमें किसी प्रकारका तान्त्रिक प्रभाव नहीं पड़ा ऐसा विद्वानों का अभिमत है।

इस मन्दिरको भित्तिशिला समुद्रतटसे ८०० फुटकी ऊंचाई पर प्रतिष्ठित है। यह मन्दिर समचतुरस्राकार

* Dr. Iakweeh commemoration Volume—Oriental III

† Hinduism and Buddhism Vol. III 1921, p. 16
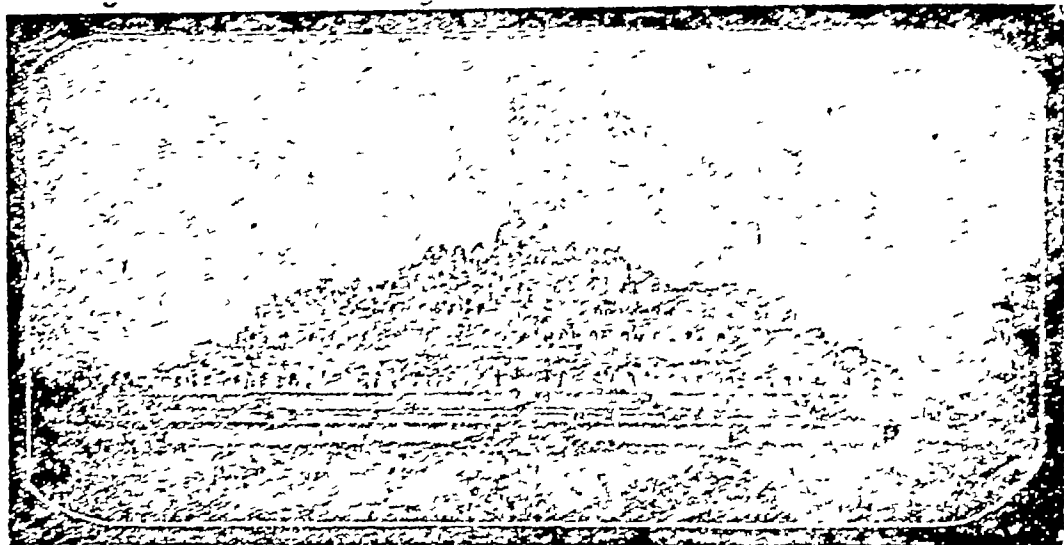
बरबदरका सप्ततल मन्दिर।

और सात खण्डोंमें विभक्त है। १८८३ ई०के अग्न्युत्पातसे इसका कुछ अंश टूट गया है और मन्दिरके भीतर बहुतसे भस्मादिके ढेर लगे हुए हैं। भूमितलकी भित्तिशिलाकी लम्बाई-चौडाई ६२० फुट है। पहले खण्डका प्रत्येक पार्श्व ४८७ फुट लम्बा है और दूसरे खण्डका ३६५ फुट। इसी तरह क्रमशः घटता गया है। सातवें खण्डके ऊपर एक विराट् गुम्बज वा शिखर है, जिसका व्यास ५२ फुट है। इसके चारों तरफ अपेक्षाकृत छोटी गुमटियां हैं, जो शिल्पसौन्दर्यकी वृद्धि कर रही हैं। मन्दिरमें प्रवेश करनेके लिए चारों तरफ चार विराट् सिंहद्वार हैं और अपूर्व कारुकार्य-मण्डित ४ सोपानमालाएं हैं। प्रत्येक सिंहद्वारके दोनों ओर विराट्काय दो सिंह मानो प्रहरीका कार्य कर रहे हैं। भूमितलमें एक द्वारके पास बड़ी भारी ब्रह्माकी मूर्ति थी; अब वह भग्नावस्थामें कुछ दूरी पर पड़ी है।

इस सप्ततल विराट् मन्दिरमें बाहर और भीतर हजारों देवमूर्त्तियां हैं। बाहर प्रथम और द्वितीय सोपान-मञ्च (Gallery) पर प्रायः ५०० बुद्धमूर्तियां भित्तिसे ईषदुन्नत (Bas relief) हैं, जिनमेंसे ४३३ मूर्तियां उपविष्ट (प्रत्येककी ऊंचाई ३ फुट) हैं और ईषदुन्नत सोपानके ऊपर कुछ बुद्धमूर्तियां महाबलीपुरके सदृश निर्मित हैं। मि० फर्गूसनका कहना है कि पहले यह मन्दिर ८ खण्डोंमें विभक्त था। अब भी उक्त मन्दिरमें ७२ डेहगोप विद्यमान हैं, जिनकी ऊंचाई तीन खण्डके बराबर है। सप्ततलके समस्त प्राचीरोंमें जितनी मूर्तियां हैं, उनको यदि ऐ शीघ्र रखा जाय तो वे ३ मीलसे भी अधिक स्थान घेरेंगी। इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि मन्दिरमें कितनी मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां अपूर्व शिल्पनैपुण्य-मण्डित हैं। सौभाग्यकी बात है कि यहां महमूद वा काला-पहाड़का अभ्युदय नहीं हुआ। मनुष्योंका उपद्रव न होने पर भी यहां बहुत बार विषम भूविप्लव और अग्निशैलका अग्न्युद्गम हो गया है। परन्तु इतना होने पर भी यह मन्दिर अपना मस्तक ऊँचा किये हिन्दू-सभ्यताके अपूर्व गौरवकी घोषणा कर रहा है।

मन्दिरका बहिर्भाग स्थापत्यालङ्कारसे विभूषित है; किन्तु यहां कोई विशेष ज्ञातव्य ऐतिहासिक रहस्य नहीं है। पांच प्रसिद्ध सोपानमञ्चोंमें २य सोपानमञ्च ही ऐतिहासिक रहस्यका अक्षय भण्डार है। इसका भीतरी भाग बुद्धदेवका लीलाचित्र है। गान्धारसे अमरावती पर्यन्त समस्त भूभागमें जितनी बौद्ध-मूर्तियां हैं, २य सोपानमञ्चमें उससे सौगुनी अधिक हैं, जिनमें १२० मूर्तियां तो विशेषतः उल्लेखयोग्य हैं। इनमेंसे २० दृश्योंमें बुद्धदेवके जन्मसे पहले तुषितस्वर्गका विवरण है

और २५ दृश्योंमें मायादेवीके स्वप्नका उत्कृष्ट निदर्शन है। उसके बाद बुद्धकी बाल्यलीला विवाह, दाम्पत्य जीवन, गृहत्याग, संन्यास धारण जीवन, बाराणसीके मृगदाव उद्यानमें धर्मचक्र प्रवर्त्तन, अद्भुत ललित-विस्तरकी समस्त घटनाएं अत्युज्ज्वल शिल्पमें पुरुष-भाव अङ्कित हैं।

उक्त बरबदर मन्दिरके प्रायः तीन मील उत्तरपूर्वमें शिल्पने पुष्प-भूषित दूसरा मन्दिर है। देखनेमें बड़ा न होने पर भी यह शिल्पकौशलकी अपूर्व कीर्ति है। यह मन्दिर एक नदीके कासतट पर अवस्थित है। १८३४ ई०में हार्टमैन द्वारा यह लोक समाजमें प्रकाशित हुआ था। इसका नाम है मान्दात (साम्बात)। यह मैनापि पार्श्ववर्तिके धातुनिर्म्माण और समाराधि से समाच्छन्न था। इसकी लम्बाई चौड़ाई ७० फुट है और वर्त्तमान उच्चता ११ फुट। इसके भीतर गुम्बजके नीचे विशालकाय ३ देवमूर्तियां हैं जिनमें शिव, और विष्णुकी मूर्ति आसानीसे पहचानी जा सकती हैं। जो मूर्ति बुद्धकी निर्मित की गई है उसका मस्तक कुञ्चित केशजालसे शोभित है किसी किसीका कहना है कि यह बुद्धमूर्ति नहीं, बल्कि किसी अन्य देवकी मूर्ति है।

विष्णुमूर्तिके पास ही पद्मासनासना अष्टभुजा मूर्ति सुशोभित है और उसके चारों और देव कन्याएं कमलदलसे उन्हें व्यजन कर रही हैं। अपर एक पुष्पकमलदल पर एक चतुर्भुज मूर्ति विराजमान है। उस कमलासनके मृणालदण्डको नागवंश मण्डित कपीन्द्र थामे हुए हैं (गायन कालीयदमनका चित्र होगा)। पास ही समीपस्थ उसके नीचे वैष्णवस्वरूप मूर्ति सुशोभित है, और एक मूर्ति अर्द्धमग्न है, यह सम्भवतः गरुड़ या समानका होगा। कलाकुशल बड़ी निपुणताके साथ अङ्कित किया गया है, समग्र भारतवर्षमें उसकी जोड़की पाषाणप्रतिमूर्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। फर्गुसनसाहबने दुर्भिक्षभावमें इसको हिन्दूकीर्ति बतलाया है।

अस्तव्यस्त। पुरुमय मनोभावका चित्रकल्पनाका विषय हो जाने पर भी, यवद्वीपके प्रम्बनमें उस प्राचीन गौरवकी विराट कीर्ति अब भी विद्यमान है। अब भी प्रम्बन में प्रस्तर खोदित दीर्घश्मश्रु शोभित सिसोभिन्नमिश्र शत शत ध्यानमग्न तपस्वियोंकी पवित्र प्रतिमूर्तियां तत्र दर्शकोंको पुरुषनिश्चित-स्मृतिकी सजीव बनाते हुए हैं।

फर्गुसन साहबका कहना है कि प्रम्बन ही हिन्दू कीर्तिका प्राचीनतम निदर्शन है। यह ईसाकी ५वीं शताब्दीमें बना था। इस समय भी १० वर्गमील स्थानमें हिन्दुओंकी विशाल स्थापत्यकीर्ति विराजित है। १८१२ ई०में भारतवर्षके 'सर्वेयर जेनरल' कर्नल मेकेञ्जीने प्रम्बनकी खोज मात्र कर उस स्थानके समस्त तत्त्वोंको मीमांसा की है*।

प्रम्बन यग्यकर्ता और सुरकर्ता प्रदेशके बीचमें है। यहां इतनी मूर्तियां रहती हैं कि जिसकी कोई शुमार नहीं। ध्यानमग्न तपस्वियोंकी मूर्तियोंको देख कर पाश्चात्य विद्वानोंने पहले तो निश्चय किया कि ये बुद्धकी हैं, किन्तु पीछे सिद्धान्त हुआ कि ये ऋषियोंकी मूर्तियां हैं। पाश्चात्य विद्वान इस स्थानको यवद्वीपकी वाराणसी कहते हैं—"Which has been styled the Benares of central Java" यहां ६५०० फुट ऊंचे पर्वत पर असंख्य हिन्दू देवदेवियोंकी मूर्तियां हैं, जिनमें अधिकांश ही प्रस्तरमय हैं और कुछ धातुमय। इस पर चढ़नेके लिए ४३०० सोपान मण्डित एक पाषाणमयी अधिरोहणी है। अधिकांश मन्दिर प्रतिमूर्त्ति शून्य हैं—अब यहां सिर्फ, शार्दूलोंका वास है। बहुतसे मन्दिरोंमें सुन्दर प्रतिमूर्तियां सुशोभित हैं। परन्तु अब वे मन्दिर पेड़ोंसे ढक गये हैं।

प्रम्बनके मन्दिर और देवमूर्तियां नाना श्रेणियोंमें विभक्त हैं जिनमेंसे दो चारका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

१। चण्डीलोरजङ्गम्—यह मन्दिर तथा इसकी अधिकांश प्रस्तरमूर्तियां भग्न हैं। मन्दिरकी ऊंचाई २० हाथ इसकी भित्तिकी विस्तृति ८ हाथ और प्रवेश द्वारका उच्छ्राय भी ८ हाथ है। यहां शिव और दुर्गाकी प्रस्तरमूर्तियां देखनेमें आती हैं। सिंहद्वार पर दो

* Transactions of The Batavia Society Vol III देखो

विराट्काय द्वारपालकी मूर्तियां हैं। इस मन्दिरके पास एक स्थान है, जो 'वन्दारण' (वृन्दारण्य ?) कहलाता है। नरसिंह अवतार सदृश मूर्तियां भी यहां हैं और उनके गलेमें पद्मकी माला शोभित है। कुछ दूरी पर हनूमान् आदि ७ वानरोंकी मूर्तियां हैं। इसके सिवा जङ्गलमें सैकड़ों समाधिस्थ तपस्वियोंकी प्रतिमूर्तियां विद्यमान हैं। निम्नभागके सामने अपूर्व कारुकार्य मण्डित गणेश मूर्ति विराजमान है।

२। लोरोजङ्गम् वा दुर्गा-मन्दिर—इस जगह प्रधानतः छ मन्दिर देखनेमें आते हैं, और सब टूट गये हैं। देवकुसुमके समयमें भारतीय भास्करोंने इन मन्दिरोंको बनाया था। पहले यहां २० बड़े बड़े मन्दिर थे; प्रत्येककी उंचाई १०० फुट थी। राफल साहबका कहना है कि उनके ब्राह्मण भृत्यने दुर्गाकी मूर्तिके दर्शन करके 'देवी भवानी जगदम्बा महामाया' आदि पढ़कर उनका स्तव किया था और भक्तिवश साष्टाङ्ग प्रणाम किया था।

दुर्गादेवीकी मूर्ति प्रायः बङ्गदेशीय महिषमर्दिनीकी भांति है। यहां देवीके दोनों पैर महिषके ऊपर हैं; बायें हाथमें महिषासुरके केशोंका गुच्छा और दहिने हाथमें महिषका लाङ्गूल है। इसके सिवा पौराणिक ध्यानके साथ यहांकी महिषमर्दिनीका सादृश्य पाया जाता है।

सामने गणेश-मूर्ति है—इसका निर्माण-नैपुण्य देखनेसे विस्मित होना पड़ता है। गणेश-मूर्तिके आठ नरमुण्ड तथा उनके अलङ्कारोंमें १२।१४ नरमुण्ड ग्रथित हैं। एक भीषण सर्प उनके शरीरको वेष्टित किये हुए है।

जावामें अब भी दुर्गा और गणेशकी कुछ कुछ फूल और चन्दन मिल जाया करता है। यहां गणेशको राजदेमाङ्ग, सिंहजय वा गणसिंह कहते हैं। इस स्थानके निकट एक २० हाथका शिवलिङ्ग भग्नावस्थामें पड़ा है। मन्दिरोंके सभी सिंहद्वार पूर्वमुखी हैं। मन्दिरके छज्जों पर असंख्य देव मूर्तियां हैं, जिनमें ब्रह्माकी मूर्ति बड़ी रहस्यपूर्ण है। वे चतुर्मुख, अष्टभुज, हाथमें कमण्डलु लिए, और पैरों तले विपरीत दिशामें मस्तक रक्खे हुए मदनमत्त दम्पतीके वक्षःस्थल पर पैर रक्खे खड़े हैं—दहिने पैरके नीचे स्त्री हैं और बाएं पैरके नीचे पुरुष। प्रजापतिकी ऐसी मूर्ति सचमुच ही रहस्यजनक है, अन्यान्य बहुत स्थानोंमें ब्रह्ममूर्तिके नीचे ऐसा नरमिथुन नहीं है। किसी किसी स्थानमें ब्रह्मा चतुर्मुख, द्विभुज और अक्षसूत्रकमण्डलु हाथमें लिए हुए हैं। बहुत जगह शिवलिङ्गके सिवा शिवकी मूर्ति है। किसी जगह वे वृषभवाहन पर हैं, किसी जगह योगिवेशमें हैं और किसी जगह सर्पाभरणभूषित, नागयज्ञोपवीती एवं नूपुराङ्गदमण्डित हैं। उनके दक्षिण करमें रुद्राक्षमाला है और वाम करमें कमण्डलु, पार्श्वमें त्रिशूल गड़ा हुआ है। इसी प्रकार कहीं वे कैलास शिखरके अतुल कारुकार्य-मण्डित सिंहासन पर बैठे हुए हैं हाथमें फुल्लकोकनद है और पास ही शायित पुङ्गव हैं। यहांका दृश्य देखनेसे काशीकी याद आ जाती है।

३। चण्डीशिव वा सहस्र-मन्दिर—अतीत मूर्तिशिल्पका यह विराट् निदर्शन है। धर्मप्राण भारतवासियोंके लिए देखनेकी वस्तु है। स्थापत्यकीर्तिमें बरबदरमन्दिरके बाद ही सहस्र मन्दिरको स्थान दिया जा सकता है। राफल साहब भारतवर्ष और मिसरके पिरामिड आदि देख कर, फिर जावा गये थे, किन्तु तो भी उन्हें सहस्र-मन्दिर देख कर यह लिखना ही पड़ा कि—'मैंने पृथिवीके किसी भी अंशमें ऐसे मनुष्यका शिल्प-सौन्दर्य-मण्डित भुवनमोहन विराट् कीर्तिस्तम्भ नहीं देखा। जावाको यदि हिन्दुओंकी राजधानी कहा जाय, तो भी अत्युक्ति नहीं।"

दुर्गा-मन्दिरसे १३४५ गजकी दूरी पर वृन्दारण्यके पाससे सहस्रमन्दिर प्रारम्भ हुआ है; अधिकांश स्थान निविड़ जङ्गलाकीर्ण है, २८६ मन्दिर अब भी अविकृत रूपमें पड़े पड़े हिन्दूधर्मकी भूतकीर्तिको प्रगट कर रहे हैं। प्रायः सभी मन्दिर एक ही आदर्श पर निर्मित और विचित्र शिल्पसुषमासे शोभित हैं। इन मन्दिरोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी मूर्तियां विराजमान हैं। प्रत्येक मन्दिर २० हाथ ऊंचा है। इसके अतिरिक्त सर्वत्र असंख्य समाधिमग्न योगी, ऋषि और बुद्धोंकी मूर्तियां खोदित हैं। मन्दिरका प्राङ्गण ५४० फुट लम्बा और

११० फुट चौड़ा है। इसके बीचमें एक प्रकाण्ड मन्दिर है जिसकी ऊंचाई ८० फुट है। तात्पर्य यह है कि हिन्दूपुराणोंके देवचरित सभी इस यहां अपूर्व कौशलसे खोदे गये हैं, जिसका वर्णन सौ पृष्ठोंमें भी पूरा नहीं हो सकता।

४। प्रवस मन्दिरके पास ही 'दिनाङ्गन' नामक स्थानमें अनेक देवदेवियोंकी मूर्तियां और भग्न मन्दिरका निदर्शन है। जावाके लोग इस मन्दिरकी देवमूर्तियोंको "वैमसिन्दा" कहते हैं।

५। उक्त मन्दिरके पास ही चण्डीकालीसारि वा कालासारी मन्दिरमाला है। यहां हिन्दू-राजधानीका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। मन्दिरका बहिर्भाग अतीव सुन्दर और अपूर्व कारुकार्य विशिष्ट है। वर्तमान मन्दिर ३० फुट लम्बा और २० फुट चौड़ा है। यहां भी अनेक प्रतिमूर्तियां पाई जाती हैं, जिनमें शिव, दुर्गा, गणेश और विष्णुमूर्ति ही उल्लेखयोग्य हैं। विष्णुके निकट एक प्रकाण्ड गरुड़मूर्ति है।

६। इसके बाद ही चण्डीकालो सेविन्दूका मन्दिर है। इसका नाम मेंडुत्स भी पड़ा है। इसकी लम्बाई चौड़ाई दोनों ओर ७२ फुट है और १०की ऊंचाई पर छत है। मन्दिरके भीतर एक जगह सीतादेवी वा लक्ष्मीकी एक उल्लेखयोग्य मूर्ति है। इनके सिंहासनके नीचे १२ पुतलियां हैं, जो उसे थामे हुए हैं और चारों ओर मधुमक्षमण्डल है। यहांका हाल देख कर राफ्ल साहबका [illegible] और भक्तिमें डूब गया था। बहुत जगह तो यह रोने लगा था। मन्दिरके द्वार पर ८ हाथ ऊंचा एक विराट् द्वारपालकी मूर्ति मानो प्रहरीका काम करता रहे है। कालीसारीमें पहले हिन्दू-राजधानी थी, अब भी राजप्रासादका ध्वंसावशेष विद्यमान है। यह प्रासाद २१ विशाल प्रस्तरस्तम्भों पर अवस्थित है। यहां एक प्राचीन स्नानागार है जिसको पुष्करिणी देख कर विलायती इञ्जिनियरोंको भी चकित होना पड़ता है। यह पुष्करिणी जिस समय बनी थी, इसका पानी तब निकाला नहीं गया, क्योंकि ईंटोंके बीचमें बाल बराबर भी अन्तर नहीं है—मालूम होता है मानो किसीने मोम गला कर सांचे जमाई गई है।

मघराम, प्राणराम कनिष्क तिष्य आदि जिले प्राचीन कीर्तियोंके ध्वंसावशेषसे भरे हुए हैं। इन स्थानोंमें मार्गोंके ऊपर बहुत जगह लिपियां खुदी हुई हैं। कार्तगसमें भी बहुतसे शिलालेख मिले हैं।

७। सिंहसारीके निकट ही एक अपूर्व ब्रह्म मूर्ति है। परन्तु मन्दिरका अधिकांश ही भग्नावशेष है। मलङ्ग जिलेसे मालङ्ग जिलेमें जानेके रास्तेमें सिंहसारीकी मंदिरमाला पड़ती है। मन्दिरमें महाप्राचीन हिन्दू देवमूर्तियां हैं जिनमें अधिकांश शिव और दुर्गाकी हैं। इस मन्दिरमें बहुत जगह शिलालेख खुदे हुए हैं। शिव मन्दिरके सामनेमें महाकाय वृषभ शयान है किन्तु उसका एक सींग टूट गया है। पास ही अनन्त पुष्पा सरना गौरी हैं—मानो वे महादेवकी पूजा करनेके लिए पुष्पाञ्जलि ले कर अग्रसर हो रही हैं, लतागृहद्वार पर नन्दी हेम वेत्र हाथमें लिये खड़े हैं, महादेव समाधिमग्न हैं उनमें त्रिशूल गड़ा हुआ है, देखने ही कुमार सम्भवमें वर्णित महादेवकी इस तपस्याका स्मरण हो आता है—'लतागृहद्वारगतोऽथ नन्दी, वामप्रकोष्ठार्पितहेमवेत्र !' मतलब यह है कि यहां सूर्यदेव सप्ताश्वसंयोजित एकचक्र रथ पर चढ़ कर अनन्त आकाशको अतिक्रम कर रहे हैं। घोड़ोंके मस्तक टूट गये हैं—मानो वे मुख उठा कर भीमवेगसे दौड़ रहे हैं। इसके १०० फुटकी दूरी पर एक प्रकाण्ड प्रस्तर वेदिकामें विशाल गणेश-मूर्ति विराजमान है। सिंहासन और गणेशके सर्वाङ्गमें बहुतसे नरमुण्ड हैं। सिंहद्वार पर दो भीषण सिंह द्वारका कर रहे हैं दूसरे पासमें दो भीषणकाय द्वार पाल कंधे पर गदा लिए खड़े हैं।

८। केदाल नामक स्थानमें २० हाथ ऊंचा एक मन्दिर मानो शिल्प सौन्दर्यकी पराकाष्ठा दिखला रहा है। इस मन्दिरके नीचे दो बड़ी बड़ी सुरङ्गें हैं। बहुतोंका विश्वास है कि उन सुरङ्गोंके नीचे दो [illegible] पाये जाते हैं। परन्तु कोई भी उतरनेका साहस नहीं करता। मन्दिरकी दीवारों पर भिन्न भिन्न रूपादिक चित्र तथा बहुतसे अक्षर भिन्न खुदे हुए हैं। एक जगह दीवार पर राम रावणके युद्धका चित्र अङ्कित है। इस मन्दिरमालामें देवतत्त्व सिवा अनेक ऐतिहासिक चित्र तथा कालीय

चित्रादि भी अपूर्व निपुणताके साथ खोदे गये हैं। किसी जगह भयङ्कर युद्धका चित्र है, तो किसी जगह आनंदका उच्छ्वास दिखलाया गया है, कहीं सैकड़ों प्रकारके युद्धास्त्र (महाभारतमें वर्णित) हैं, तो कहीं रङ्गभूमि पर मानो दृश्यकाव्यका अभिनय हो रहा है। इसके सिवा सैकड़ों वाद्ययन्त्र भी अङ्कित हैं, जिनमें मुरज, मुरली, रवाब और वीणा इनके नाम तो समझमें आते हैं औरोंके नाम अद्भुत हैं। ऐसे वाद्ययन्त्र सौसे भी अधिक होंगे कम नहीं। इस स्थानमें एक माणिक्यको शिव मूर्ति है।

८। सुकूकी मन्दिरमाला—यहां भी बड़े बड़े मन्दिर विद्यमान हैं। किसी जगह मिसरके पिरामिड और ओबेलिस्क वा स्मृतिस्तम्भकी भांतिके सैकड़ों प्रस्तरनिर्मित प्रासाद हैं। एक अट्टालिकाकी छत १५७ फुट लम्बी, १३० फुट चौड़ी और ८० फुट ऊंची है। द्वारोंके ऊपर सिंहोंके आकृति खिचित है। कहीं स्फिंक्स् (Sphinx) वा विराट् नरमुण्ड हैं। किसी जगह एक राक्षस मुंह फाड़ कर मनुष्यको लील रहा है। किसी जगह एक भीषणकाय गरुड़पक्षी सर्प भक्षण कर रहा है। ये प्रतिमूर्तियां मिसरीय पुराणोंके आधार पर खोदित हैं। राक्षसके बगलमें एक कुत्ता है, जिसे देख कर टाइफन, यानुबिस् और साइबिलके उज्ज्वल चित्रकी याद आती है। मिसर देखो। इसके सिवा श्येनपक्षी, कबूतर, छत्रपत्र इत्यादिके चित्रिताक्षर आदि अनेक गूढ़तत्त्वोंका निर्देश कर रहे हैं। इस चित्रावलीके पास एक जगह व्याघ्र और गाय खुदी हुई है, उसके बाद एक दल अश्वारोही है, फिर कुछ हाथियोंकी प्रतिमूर्तियां हैं।

ये पिरामिड सोपानमालाओंमें शोभित है। उक्त प्रदेशमें एक आश्चर्यजनक जलोत्तोलनयन्त्र है, जिसके दो नल भीषण सर्पकी आकृतिके हैं। पिरामिडके भीतर प्रकोष्ठ है या नहीं, इसका निर्णय अभी तक नहीं हुआ। पिरामिडके नीचे दो देव-मन्दिर हैं। उसके पास एक जलधारा है और वह ऐसे ढंगसे बनाई गई है कि उसका पानी कभी सूखता नहीं—उसमेंसे सर्वदा पानी गिरता रहता है। एक जगह अर्जुन गाण्डीव लिए हुए वानरध्वज रथ पर चढ़ कर कुरुक्षेत्रमें भीषण युद्ध कर रहे हैं और देवदत्त शङ्ख बजा रहे हैं। कपिध्वजके पास एक मूर्ति है, जिसका उत्तमाङ्ग मनुष्य-सदृश और निम्नाङ्ग पक्षीकी भांतिका है। सबके शरीर पर संस्कृत शिलालिपि खुदी हुई है। कहीं सीतावतार और कुर्मावतारकी दृश्यावली है, तो कहीं सुंदर राशिचक्र है, जिसमें चन्द्र और सूर्य अतीव निपुणताके साथ अङ्कित हैं। एक जगह विश्वकर्माकी कर्मशाला बनी है, जिसमें नाना प्रकारके यन्त्र और अस्त्रशस्त्र बन रहे हैं।

यहांसे कुछ दूरी पर एक ४० हाथ ऊंचा इष्टकालय है। वे परवर्ती कालमें बने थे, एकमें शकसं० १३६१ खुदा हुआ है।

इसके अतिरिक्त चेरबन और अङ्गरङ्ग पर्वत पर इतना प्रत्नतत्त्व है कि उसका यदि सिर्फ नामोल्लेख भी किया जाय तो एक ग्रन्थ बन जाय। एक मन्दिरमें १२ सूर्यरथों पर द्वादश आदित्य विद्यमान हैं।

वान्युवङ्गी नामक स्थानमें हिन्दू-कीर्तिका विराट् निदर्शन देखनेमें आता है। अभ्रभेदी मन्दिरमाला और विराटकाय देवमूर्तियोंको देख कर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है।

मजपहित राज्यके ध्वंसचिह्नमें भी प्रत्नकीर्तिकी अपूर्वता दिखलाई देती है। एक ध्वंसप्राय पुष्करिणीके चिह्नसे इस हिन्दू-साम्राज्यके अतीत गौरवका अनुमान कर सकते हैं। एक ईंटकी बनी हुई पक्की दीर्घिका अब भी विद्यमान है। दुर्भेद्य इष्टक-प्राचीर अब भी उसे वेष्टन किए हुए हैं। इसकी लम्बाई १२०० फुट, चौड़ाई ३०० फुट और ऊंचाई १२ फुट है। इस समय उसका अभ्यन्तर शस्यश्यामल धान्यक्षेत्र बन गया है। अब भी मजपहितका ध्वंसावशेष गोहनगरसे १६ गुना स्थान अधिकार किये हुए पूर्व-गौरवकी साक्षी दे रहा है। यहांकी अधिकांश देव-मूर्तियां मुसलमानों द्वारा विध्वस्त हो गई हैं। मि० एञ्जेल हार्ड (Mr. Engel Hard) उस समय समरङ्गके शासनकर्त्ता थे; उन्होंने कुछ मूर्तियें मजपहितके ध्वंसावशेषसे संग्रह की थी, जिनमें शिव, दुर्गा और गणेश मूर्ति ही उल्लेखयोग्य है।

इसके अलावा बहुत जगहमें धातुमयी प्रतिमूर्तियां संग्रहीत हुई हैं। राफ्ल् साहब एकसौ धातुमयी

मूर्तियां पायी थी जिनमेंसे बहुतसी उनकी मुद्राओंमें चित्रित हैं। इन मूर्तियोंमें पीतल और तांबेका अंश ही अधिक है। कुछ रौप्य प्रतिमा भी मिली हैं। स्वर्ण प्रतिमा भी बहुत थीं, किन्तु वे सब चोरी हो गई। एक बड़ी स्वर्ण प्रतिमा मिली थी जिसको ओलन्दाजोंने गला कर सोना बना लिया। 'कालिबाकर' नामक ग्राम के लोगोंने स्वर्ण प्रतिमाओंको गला कर इतना सोना इकट्ठा किया था कि उन्नीसवीं शताब्दी तक वे अजस्र स्वर्णपात्रादि और स्वर्णमुद्रा अधिकन्तु पदार्थोंकी तरह व्यवहार करते आये थे।

धातुमयी प्रतिमूर्तियोंमें पद्मयोनि ब्रह्माकी मूर्ति ही सर्वापेक्षा है—अष्टभुज, चतुर्मुख, कमल कमण्डलु हाथमें लिए हुए नरसिंहमूर्ति ऊपर खड़े हैं। चारों ओर कमलदल और हंस सुशोभित है। इसके सिवा दुर्गा और गणेशकी भी धातुमयी मूर्तियां मिली हैं।

प्रत्नतत्त्वमें इन मूर्तियोंके सिवा नाना प्रकारके धातुमय पात्र, ताम्रकुण्ड अथवा अर्घपात्र, पञ्चप्रदीप घण्ट, सुवर्णादि नाना स्थानोंमें दृष्टिगोचर होते हैं।

भाषा और साहित्य यवद्वीपमें बोली जानेवाली भाषा साधारणतः दो भागोंमें विभक्त है—एक उच्च भाषा और दूसरी यव भाषा। उच्च भाषा सिर्फ मेडुरा, बाण्टाम पेरिङ्गन और अन्यान्य इन रेसिडेन्सियोंमें ही प्रचलित है। अन्यान्य सभी स्थानोंमें यव-भाषा बोली जाती है। इन दोनों भाषाओंमें अधिक विभिन्नता नहीं है। बहुतसे शब्द साधारण हैं। १२५ वर्ष पहले उच्च और नीचे जो भाषामें जैसा पार्थक्य था, उच्च और यव भाषामें भी उतनाही पार्थक्य देखनेमें आता है। उच्चश्रेणीकी यव भाषाका नाम "क्रम" भाषा है। शिक्षित सम्प्रदाय इसी भाषाका व्यवहार करता है। कविभाषाके साथ इसका बहुत कुछ सादृश्य है। जावाकी लिपिमाला संस्कृत वर्णमालाका रूपान्तर मात्र है। इस भाषामें संस्कृत शब्दोंका व्यवहार अधिकतासे होता है। अरबी अक्षर भी प्रचलित है। अरबी अक्षरोंमें लिखित यव-भाषाका नाम 'पगन' है। यहांकी वर्णमालामें २० व्यञ्जन और ६ स्वरवर्ण हैं। परन्तु लिखते समय स्वर वर्णका व्यवहार नहीं होता। यहांकी संस्कृत वर्णमालामें १४ अक्षरोंका अस्तित्व ही नहीं है। 'व' और 'म' का कोई चिह्न नहीं है। युक्ताक्षरकी कठिनाइयां इसमें बहुत कम हैं। व्याकरणके नियम भी विशेष कठिन नहीं हैं। लिङ्ग और वचनके अनुसार विशेषणमें भी प्रायः परिवर्तन नहीं होता। विशेष्य और विशेष्यका लिङ्ग वचनके अनुसार नहीं होता। क्रियाकी रीति नाना भावोंमें विभक्त नहीं है। कर्तृवाच्यकी अपेक्षा कर्मवाच्यका प्रयोग ही अधिक होता है।

यवद्वीपकी प्राचीन भाषा कविभाषासे मिलती जुलती है। इसके अलावा बहुतसी हस्तलिखित विदर संस्कृत पोथियां यहांसे इधर उधर चली गई हैं। इन पोथियों में ताड़पत्र पर लिखित पोथियोंकी संख्या ही अधिक है इसके सिवा बहुतसी भारतीय प्राचीन कागज पर लिखी हुई पुस्तकें भी मिली हैं।

ईसाकी ११वीं शताब्दीसे हिन्दू राज्यके अवसान काल पर्यन्त जावामें बहुतसे साहित्यग्रन्थ रचे गये थे। परन्तु उन देशके लोगोंमें "नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा"-का अभाव है। जावाका साहित्य हिन्दू साहित्यके अनुकरणसे रचा गया है। किन्तु उस अनुकरणके भीतर यथेष्ट स्वाधीन चिन्ताका भी विकाश देखनेमें आता है।

जावाके प्राचीन ग्रन्थों में 'तान्तु-पद्दे-लारन' नामक प्रकृतितत्त्वविषयक ग्रन्थ ही प्राचीनतम है। यह सम्भवतः १००० ई०में रचा गया था। मद्दनिगपतको प्रतिष्ठाके पहले भी जावाके लोग हिन्दू और बौद्धशास्त्रोंसे परिचित थे, यह बात बरबदर आदिके मन्दिरोंमें अङ्कित चित्र और मूर्तियोंसे मालूम होती है। एरलङ्गके समय में "अर्जुन विवाह" नामसे महाभारतका कुछ अंश जावा-भाषामें लिखा गया था।

"भारत-युद्ध" नामक काव्यका उपजीव्य ग्रन्थ महाभारत होने पर भी, उसमें स्वाधीनभावका यथेष्ट समावेश है। इसे म्पोप सेदा नामक कविने केदिरीके राजा जायाभायाके आदेशसे ११५७ ई०में लिखा गया था। किन्तु उससे पहले भी यवद्वीपकी भाषामें महाभारतका उपाख्यान लिखा गया था ऐसा विद्वानों का अभिमत है।

डाक्टर कार्न साहबका कहना है कि १२०० ई०में जावामें

"कवि रामायण" रचा गया था। परन्तु इसके रचयिता संस्कृत नहीं जानते थे, उन्होंने रामायणका उपाख्यान लोगोंके मुंहसे सुना था। वे शिवके उपासक थे। साहित्यका विशेष विवरण वालिद्वीप और कविभाषा शब्दमें देखो।

जावाके स्थानीय साहित्यमें "मणिकमय" नामक प्रकाण्ड गद्यग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध है। इसमें सृष्टितत्त्वका विषय बड़ी विदग्धताके साथ वर्णित है। वर्तमान यवद्वीपवासियोंके लिए यही प्रधान लौकिक साहित्य है। इस पुस्तकका साधारण ज्ञान न होनेसे, यवद्वीपमें कोई भी शिक्षित नहीं कहला सकता। यही ग्रन्थ यवद्वीपका आदिपुराण है, साधारण भाषामें इसे "पेपाकम्" कहते हैं।

"सूर्यकेतु" नामक ग्रन्थमें कुरुवंशीय एक राजाकी कहानी है। "नीतिशास्त्र कवि" नामक ग्रन्थमें नीतिगर्भित १२३ श्लोक हैं। इस तरहकी सुललित नीतिकविता सभी भाषाओंके लिए अलङ्कार स्वरूप है।

आगम, आदिगम, पूर्वादिगम, सूर्य-कान्तार वा मानवशास्त्र (मनुसंहिता), देवागम, माहेश्वरी, तत्त्वविद्या, सात्मागम आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थोंका आविष्कार हुआ है। इनमें मानवशास्त्रका कुछ अंश अङ्गरेजीमें अनुवादित हुआ है। यह मानवशास्त्र वा मनुसंहिता १६० भागोंमें विभक्त है।

प्राचीन साहित्यमें उपरोक्त ग्रन्थ ही उल्लेखयोग्य हैं; इनके अलावा अन्यान्य ग्रन्थोंके नाम वालिद्वीप शब्दमें देखना चाहिए।

वर्तमान लौकिक साहित्यमें उपन्यास और नाटक आदिका अस्तित्व ही अधिक है।

'अङ्गाण वा अङ्गराणी"—इतिहासमूलक जयालङ्कारके राजत्वकालसे इसका प्रारम्भ है।

"पञ्जीमर्दनिङ्ग कुङ्ग"—यह पञ्जीके जीवनका, अद्भुत घटनावलीपूर्ण इतिहास है। पञ्जीमगटकुङ्ग, पञ्जी अङ्गर कुङ्ग, पञ्जीप्रियम्वदा, पञ्जी जयकुसुम, पञ्जी चेकेलवणिपति, पञ्जी नरवंश इत्यादि ग्रन्थोंमें पञ्जीका जीवनवृत्तान्त लिखा है। कहा जाता है ये ग्रन्थ १५वीं शताब्दीसे पहले रचे गये थे।

उबाहकी रचनाएं 'पेपाकम्' वा 'बबद' नामसे प्रसिद्ध हैं।

"श्रुति" ग्रन्थ नीतिशास्त्रके अनुरूप है; इसमें बहुतसी उपदेशपूर्ण कविताएं हैं। "नीतिप्रज्ञा" ग्रन्थमें राजधर्म और "अष्टप्रज्ञा" ग्रन्थमें राजनीतिका वर्णन है। 'शिवक" ग्रन्थमें उच्च कोटिके व्यक्तियोंके साथ व्यवहारकी नीति लिखी है। "नागरक्रम"में नागरिक शासन-व्यवस्थाका उपदेश है। "युद्धनागर"में देशीय लोगोंके आचार व्यवहारका वर्णन है। "कामन्दक" नीतिशास्त्रविषयक ग्रन्थ है। "चन्द्रसङ्काल" ग्रन्थ शक सं० १३४० का रचा हुआ है। "जयालङ्कार" ग्रन्थमें विचारकार्य सम्बन्धी सर्वोत्तम विधि-व्यवस्थादिका वर्णन है। "युगलमुद"में मन्त्रियोंके कर्तव्याकर्त्तव्यका विचार किया गया है। इसके रचयिता काण्डिआचनके राजमन्त्री युगलमुद हैं।

"गजमर्द"(—मन्त्री गजमर्द-विरचित) मन्त्रिचर्या विषयक ग्रन्थ। "कापकाप"—विचारव्यवहार विषयक ग्रन्थ। "सूर्य आलम"—(राजनपात वा आदिलिम्बुन रचित, ये मुसलमानोंमें सबसे पहले राजा हुए थे) राजनीति-मूलक ग्रन्थ। "जयालङ्कार" उपन्यास—(ममहानन आम्पेलके समयमें रचित) उच्चनीतिमूलक रूपक ग्रन्थ। "जवर मानिकम्"—वर्तमान समयका सर्वोत्कृष्ट उपन्यास। इस ग्रन्थकी प्रथम पंक्ति इस प्रकार है—"यथार्थ प्रेम चित्तको सर्वदा उद्विग्न रखता है" जैसाकि सेक्सपीयरने कहा है—"Where love is great the slighest doubts are fear" "जवरमानिकम्" (नायिकाका नाम)का चरित्र हर एक भाषा वा साहित्यके लिए उपादेय है।

४०० वर्ष तक राजत्व करते रहने पर भी मुसलमान जावामें अपने साहित्यका प्रचार नहीं कर सके। सिर्फ धर्म-विषयक कुछ ग्रन्थोंके सिवा साहित्यके अन्य विभागोंमें अरबी भाषाका प्रभाव बिलकुल भी दृष्टिगोचर नहीं होता। हां, वर्तमान समयमें इसकी संख्या अवश्य बढ़ रही है। प्रायः पौने दो सौ वर्ष पहले प्राणगग नामक एक अरबी विद्वानने जावा भाषामें कुरानका अनुवाद किया था। निम्नलिखित अरबी किताबें उल्लेखयोग्य हैं,—

और निष्क्रामणके समान क्रियाएं होती हैं तथा सातवें महीने अतीव समारोहके साथ अन्नप्राशन उत्सव होता है।

यवद्वीपकी मनुसंहितामें लिखा है कि यदि पति वाणिज्यके लिए समुद्रयात्रा करे, तो स्त्री १० वर्ष तक बाट देख कर द्वितीय पति ग्रहण कर सकती है। यदि अन्य किसी राज्यमें कार्यके लिए देशान्तर गया हो तो ४ वर्ष बाद, यदि धर्मोपदेश सुननेके लिए विदेश गया हो तो ६ वर्ष बाद तथा निरुद्दिष्ट हो तो चार वर्ष बाद दूसरा पति ग्रहण कर सकती है।

यवद्वीपके व्यवहारशास्त्रोंके पढ़नेसे स्वतः ही अनुमान होता है कि अब भी वहां हिन्दू-सभ्यताका सजीव निदर्शन विद्यमान है।

वर्तमानमें जावाके लोग गाने बजानेमें बड़े मशगुल रहते हैं। ये नाचने और गाने बजानेके लिए मशहूर हैं। नत किर्योंकी संख्या अधिक नहीं है, पुरुष भी नाना प्रकारके नृत्य करते हैं। ये शेर गैंडा सांढ़ बुल बुल मुर्गा आदिके लड़ाईमें बड़ा आनंद मानते हैं। कभी कभी इटलीके कनिष्ठियमसिवकी तरह अम्बको डाका अभिनय होता है। इस उत्सवमें मृत्युदण्डके अपराधी तलवार हाथमें ले कर भीषण व्याघ्रके साथ युद्ध करते हैं; जो युद्धमें जीत जाता है, वह निरपराधी समझ कर छोड़ दिया जाता है।

यहां चौपड़ (चतुरङ्ग), ताश आदि खेल प्रचलित हैं। यहांके सम्भ्रान्त स्त्री पुरुष भी कपड़ेके साथ सर्वदा किरीच रखते हैं। आनंदोत्सवके समय ये शरीर पर हलदी पोता करते हैं।

वर्तमान सुलतान वंशीयगण हिंदू राजाओंसे ही अपनी उत्पत्ति मानते हैं। इसीलिए वे भारत युद्ध, रामायण और महाभारतका अभिनय कर अपनेको गौरवान्वित समझते हैं।

जाविदी (हिं० स्त्री०) जायफलके ऊपरका छिलका। यह बहुत सुगन्धित होती और औषधके काममें आती है। यह हलका, चरपरा, स्वादिष्ट, गरम, रुचिकारक और कफ खांसी, वमन, श्वास, तृषा, कृमि तथा विषनाशक है।

जाप्य (सं० क्ली०) जम्यति मुद्यति मद्यपादिकं जम-ण्व्‌ न्, पृषोदरादित्वात्‌ मस्य पत्वं। कालीयक, पीला चन्दन।

जाष्कमद (सं० पु०-स्त्री०) पक्षिविशेष, एक प्रकारकी चिड़िया।

जासू (हिं० पु०) अफीममें मिलानेके लिये काटा हुआ पान जिससे मदक बनता है।

जासूस (अ० पु०) वह जो गुप्त रूपसे किसी बातका विशेषतः अपराध आदिका पता लगाता हो, भेदिया, मुखबिर।

जासूसी (हिं० स्त्री०) जासूसका काम।

जास्पति (सं० पु०) जायते जन-ड जायाः दुहितुः पतिः वेदे निपा०। जामाता, जँवाई, दामाद।

जास्पत्य (सं० क्ली०) जायाच पतिय जायापती तयोर्भावः कर्म वा पृषोदरादित्वात्‌ पत्र्। जायापतीका कार्य, स्वामी स्त्रीका काम।

जाह—तद्धित प्रत्यय। अक्षि, ओष्ठ, कर्ण, केश, गुल्फ, दन्त, नख, पाद, पृष्ठ, भ्रू, मुख, शृङ्ग, इन शब्दोंके उत्तरमें जाह प्रत्यय लगता है। यथा—केशजाह प्रभृति।

जाहक (सं० पु०) दह-ण्वुल्, पृषोदरादित्वात्‌ साधुः। १ घोंघ, घोंघा। इसके पर्याय—गात्रसङ्कोची, मण्डली, बहुरूपक, कामरूपी, विरूपी और बिलावास है। घोंघ देखो। २ जलौका, जोंक। ३ बिस्तर, बिछौना। ४ गिरगिट। ५ गोनाससर्प। ६ बिडाल।

जाहिर (अ० वि०) प्रकट, प्रकाशित, जो छिपा न हो।

जाहिरदारी (अ० स्त्री०) वह काम जिसमें सिर्फ ऊपरी बनावट हो।

जाहिरा (अ० क्रि०-वि०) प्रत्यक्षमें, देखनेमें।

जाहिल (अ० वि०) अज्ञान, मूर्ख, अनाड़ी।

जाही (हिं० स्त्री०) १ चमेलीकी जातिका एक प्रकारका सुगन्धित फूल। २ एक प्रकारकी अतिशबाजी।

जाहुष (सं० पु०) राजभेद, एक राजाका नाम।

जाह्नव—जनपदविशेष, एक देशका नाम।

जाह्नवी (सं० स्त्री०) जह्नोरपत्यं स्त्री जह्नु-अण्-ङीप्। जह्नुतनया, गङ्गा। पहले जह्नु मुनिने कुपित हो कर गङ्गाको पी गये थे, बाद भगीरथके स्तवसे संतुष्ट हो जाने पर इन्होंने अपने जानु (घुटने)से गङ्गाको बाहर निकाल

दिया, इसीलिये इनका नाम जाह्नवी पड़ा है। इनमें स्नान करनेसे सब प्रकारके पाप नाश होते हैं। गङ्गा देखो।

जाह्नवी—उत्तर पश्चिम प्रदेशस्थ गढ़वाल राज्यकी एक नदी और गङ्गाकी शाखा। यह अक्षा० ३० ५५´ उ० और देशा० ७८० १८´ पू०से उत्पन्न हो कर पहले उत्तर और फिर पश्चिमकी ओर १० मील बह कर भैरवघाटीके गङ्गामें मिल गई है।

जि (सं० त्रि०) जयति जि बाहुलकात् डि। १ जेता, जीतनेवाला। २ पिशाच।

जिंक (अं० स्त्री०) जस्तेका क्षार। इसका रंग उजला होता है। यह रंग रोगन और दवाके काममें आता है। क्लोराइड आफ जिंक या सलफेट आफ जिंक को सोडियम, बेरियम या कलसियम सलफाइडमें घोलनेसे यह तैयार की जाती है। सलफाइडके नीचे तलछट बैठ जानेसे यह निकाल कर सुखाई जाती और तब आग आंचमें तपा कर ठंढे पानीमें बुझा दी जाती है। इसके बाद यह खरलमें पीस कर बाजारोंमें बिकती है। गुलाब जलमें इसे घोल कर आंखों पर लगानेसे आंखकी जलन और दर्द दूर हो जाती है।

जिंद (अ० पु०) भूत, प्रेत, मुसलमान भूत।

जिंदगानी (फा० स्त्री०) जीवन, जिंदगी।

जिंदगी (फा० स्त्री०) १ जीवन। २ जीवनकाल, आयु।

जिंदा (फा० वि०) जीवित जीता हुआ।

जिंदादिल (फा० वि०) विनोदप्रिय, रसीक।

जिंस (फा० स्त्री०) १ प्रकार, किस्म। २ वस्तु द्रव्य। ३ सामग्री सामान। ४ अनाज, गल्ला, रसद।

जिंसवार (फा० पु०) पटवारियोंका एक कागज। इसमें पटवारी अपने हल्केके प्रत्येक खेतमें बोए हुए अन्नका नाम बोने वाले समय लिखते हैं।

जिउकिया (हि० पु०) १ रोजगारी, जीविका करनेवाला। २ पहाड़ी लोग। ये दुर्गम जङ्गलों और पर्वतोंसे भांति भांतिकी व्यापारकी वस्तुएं ले आ कर नगरोंमें बेचते हैं। इनकी व्यापारकी वस्तुएं विशेषतः चंवर, कस्तूरी शिलाजीत, मिर्च बचे तथा जड़ी बूटी हैं।

जिउतिया (हि० स्त्री०) आश्विन मासकी अष्टमीके दिन होनेवाला एक व्रत। पुत्रवती स्त्रियां इस व्रतको करती हैं। इसमें अनन्तकी तरह धागेमें गांठें दे कर गलेमें पहनती हैं। कहीं कहीं यह व्रत आश्विन शुक्ला इसीके दिन किया जाता है। जितवती देखो।

जिकन (सं० पु०) एक प्राचीन स्मृतिकार। इन्होंने अन्त्येष्टिविधि अनुमरणविवेक प्रभृति ग्रन्थ लिखे हैं।

जिक्र (अ० पु०) प्रसङ्ग, चर्चा बातचीत।

जिगत्नु (सं० पु०) १ वक्तृत्व। २ प्राणवायु।

जिगत्नु (सं० पु०) गच्छति गम-क्नु : गमकृ। गमेः सन् च। उण् ३।३१ अनुदात्तोपदेशे इत्यादिना मलोपः। १ प्राण। (त्रि०) २ गमनशील, जानेवाला।

जिगनी—मध्य भारतके बुन्देलखण्ड एजेन्सीका सनदप्राप्त छोटा राज्य। इसका क्षेत्रफल २२ वर्गमील और लोकसंख्या कोई ३८३८ है। इसके चारों और हमीरपुर और झांसी जिला है। जागीरदार बुन्देला राजपूत हैं। मराठा आक्रमणके समय इसका रकबा बहुत घट गया था। अंगरेजोंके अधिकारके समय सब गांव जब्त हुए, परन्तु १८१० ई०में ६ ग्राम एक सनदके साथ दिये गये। आय प्रायः (१३०००) रु० है। प्रधान नगर जिगनी अक्षा० २५ ४५ उ० और देशा० ७९ २५´ पू०में धसान नदीके बाम तटमें बेतवाके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १०७ है। यहांके राजाको दत्तक पुत्र ग्रहण करनेका अधिकार है।

जिगमिषा (सं० स्त्री०) गन्तुमिच्छा गम-सन् अ टाप्। गमनेच्छा जानेकी इच्छा।

जिगमिषु (सं० त्रि०) गम सन् उ। गमनेच्छु, जानेके लिये तैयार।

जिगर (फा० पु०) १ कलेजा। २ चित्त, मन जीव। ३ साहस हिम्मत। ४ सार, सत्त गूदा। ५ मध्य, सार भाग। ६ पुत्र, लड़का।

जिगरकीड़ा (फा० पु०) भेड़ों का एक रोग। इस रोगके होनेसे इनके कलेजेमें कीड़े पड़ जाते हैं।

जिगरा (हि० पु०) साहस, हिम्मत।

जिगरी (फा० वि०) १ भीतरी, दिली। २ अत्यन्त घनिष्ट।

जिगर्त्ति (सं० पु०) ग बाहुलकात्-ति द्वित्वञ्च। पाचक, खानेवाला।

जिगिन (हिं० स्त्री०) एक बहुत बड़ा जंगली पेड़। जिंगिनी देखो।

जिगीषा (सं० स्त्री०) जेतुमिच्छा जि-सन् भावे अ। १ जयेच्छा, विजय प्राप्त करनेकी कामना। २ प्रकर्ष, उत्तमता। ३ उद्यम, उद्योग।

जिगीषु (सं० त्रि०) जि-सन् तत उ। १ जयेच्छु, जो जीतनेकी इच्छा करता हो। २ उत्कर्ष लाभेच्छु, जो श्रेष्ठता या उत्तमता चाहता हो। ३ उद्यमशील, परिश्रमी, मेहनती।

जिगुरन (हिं० पु०) हिमालयमें गढ़वालसे हजारा तक मिलनेवाला एक प्रकारका चोटीदार चकोर। यह जखो, सिंगमोनाल और जेवर नामसे भी पुकारा जाता है। इसकी मादा बोदल कहलाती है।

जिग्यु (सं० त्रि०) जयशील, जीतनेवाला, फतहयाब।

जिघत्नु (सं० पु०) हन्‌ पृषोदरादित्वात् साधुः। जिघांसा, मारनेकी इच्छा।

जिघत्सा (सं० स्त्री०) अत्तुमिच्छा अद्-सन घसादेशः भावे अ। भक्षणेच्छा, क्षुधा, भूख।

जिघांसक (सं० त्रि०) प्रतिहिंसक, मारनेवाला, कतल करनेवाला।

जिघांसा (सं० स्त्री०) १ हनन करनेकी इच्छा, कतल करनेका मन। २ प्रतिहिंसा, वध, कतल।

जिघांसी (सं० त्रि०) जिघांसाकारी, वध करनेवाला।

जिघांसु (सं० त्रि०) हन्तुमिच्छुः हन-सन्-तत उ। हननेच्छु, मारनेवाला।

जिघृक्षा (सं० स्त्री०) ग्रहीतुमिच्छा, ग्रह-सन्-भावे अ। ग्रहणेच्छा, पानेकी इच्छा।

जिघृक्षु (सं० त्रि०) ग्रह-सन् तत उ। ग्रहणेच्छु, पानेवाला।

जिघ्र (सं० त्रि०) जिघ्रति घ्रा कर्त्तरि श। १ घ्राणकर्त्ता, सूँघनेवाला। २ प्रत्ययविशेष, लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्‌में घ्रा धातुके स्थानमें जिघ्र आदेश होता है।

"स्वामी निरक्षितेऽप्यसूयति मनोजिघ्रः सपत्नीजनः।"

(साहित्यद० ७।४५)

जिङ्गि (सं० स्त्री०) मञ्जिष्टा, मजीठ।

जिङ्गिनी (सं० स्त्री०) जिगि गतौ णिनि। शाल्मली जातिके एक वृक्षका नाम। जिगिनका पेड़। इसके पत्ते महुएके पत्तोंसे मिलते जुलते हैं। यह पहाड़ों और तराईके जंगलोंमें पाया जाता है। इसमें सफेद फूल लगते हैं। इसके फल बेरके बराबर होते हैं। इसके पर्याय—झिङ्गिनी, झिङ्गी. सुनिर्य्यासा और प्रमोदिनी हैं। इसके गुण—मधुर, उष्ण, कषाय, योनिविशोधन, कटु, व्रण, हृद्रोग, वात और अतीसारनाशक है।

(भावप्रकाश)

जिङ्गी (सं० स्त्री०) जिगि गतौ अच् गौरा० ङीष्। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

जिजहोती (जझौति)—बुंदेलखण्डका एक प्राचीन नाम। इसका प्रकृत नाम जेजाकभुक्ति है। अबु रिहन और युएनचुयाङ्गके ग्रन्थोंमें जझौति प्रदेश और उसकी राजधानी खजुराहुका उल्लेख है।

जिजिया (फा० पु०) १ कर, महसूल। २ मुसलमान अधिकारियों द्वारा प्रवर्तित अधीनस्थ मुसलमानोंके सिवा अन्य धर्मावलम्बी व्यक्तिमात्र पर लगनेवाला एक कर, मुण्ड कर।

आइन-ए-अकबरीमें लिखा है कि, खलिफ ओमरने मुसलमानोंके सिवा अन्य समस्त जातियों पर एक कर लगाया था। यह कर उच्चश्रेणीके व्यक्तियों पर ४८ दर्हाम, मध्यवित्त व्यक्तियों पर २४ दर्हाम और उससे हीन व्यक्तियों पर १२ दर्हाम था।

भारतवर्षमें यह कर कबसे प्रवर्तित हुआ है, इसका कोई यथार्थ प्रमाण नहीं मिला। टाड साहबका अनुमान है कि, भारतवर्षमें पहले पहल बादशाह बाबरशाहने तमगा-करके बदले इसे लगाया था। किन्तु इससे भी बहुत पहले अलाउद्-दोनके समयमें इसका नामोल्लेख मिलता है। जोया-उद्-दीन बरनी और फिरिस्ता द्वारा लिखित पुस्तकोंमें अला उद्-दीन और उनके काजी मुग्निस उद्-दोनके कथोपकथनमें इस प्रकार लिखा है—अलाउद्दोनने कहा, "किस तरह हिन्दुओंसे वश्यता और कर वसूल करना धर्मसङ्गत है?" तुच्छहृदय काजीने उत्तर दिया "इमाम हानिफने कहा है कि, काफिरोंको मृत्युके बदले, मृत्युके सदृश भारी जिजिया करके भारसे प्रपीड़ित करना ही धर्मसङ्गत है। यह जिजिया

कर उसका खून चूस कर जहां तक हो कठोरतापूर्वक वसूल करना होगा, क्योंकि यह दण्ड जिसमें मृत्युदण्डके समान हो, इसकी विविध चेष्टा करनी होगी।"

कुछ भी हो, उस समय शायद ब्राह्मणोंके सिवा अन्य सभी जातियों पर यह कर लगाया गया होगा। ब्राह्मण इसके बाद भी फिरोजशाहके समय तक इस करसे मुक्त थे। शामसी सिराज द्वारा लिखित पुस्तकमें इसका प्रमाण मिलता है। उसमें लिखा है—सम्राट फिरोजशाहने निम्नलिखित भांति यह कर ब्राह्मणों पर सबसे पहले जिज़िया स्थापन किया। उन्होंने कहा था—"उपवीत-धारी ब्राह्मण अब तक जिज़ियासे मुक्त हैं। पहलेके मुसल-मान बादशाहोंने इनको घोर दुष्ट गुरुओंकी उपेक्षा की है। किन्तु ये ब्राह्मण ही अविश्वासियोंमें प्रधान हैं इसलिए सबसे पहले जिज़िया इन्होंसे वसूल करना चाहिये।" इससे प्रमाणित होता है कि, फिरोजशाहने ही पहले ब्राह्मणों पर जिज़िया कर लगाया था। जो हो ब्राह्मणोंको यह मालूम पड़ते ही वे राजप्रासादमें उप-स्थित हुए और उन्होंने यह धमकी दिखाई कि, "यदि जिज़ियासे छुटकारा न मिलेगा, तो हम लोग यहीं अग्नि में जल कर भस्म हो जायंगे।" आखिरको दिल्लीके धनाढ्य हिन्दुओंने आ कर ब्राह्मणोंके करका भार अपने ऊपर लेना स्वीकार किया और ब्राह्मणों को जिज़ियासे छुटकारा दिया। उस समय सर्वोच्चश्रेणीके हिन्दुओंको आदमी पीछे ४०) रुपया जिज़िया कर देना पड़ता था। मध्यमश्रेणीके लिए २०) और तृतीय श्रेणीके व्यक्तियोंके लिए १०) रुपया स्थिर था। ब्राह्मणों को उक्त रुपयेके पीछे सवाये कम देना पड़ता था।

अकबरने अपने राज्यके ९वें वर्षमें यह कर उठा दिया था। किन्तु निष्ठधर्मद्वेषी और पक्षपाती औरङ्ग-जेबने अकबरकी इस उदार नीतिका अनुसरण न कर अपने राज्यके २२वें वर्षमें यह कर पुनः जारी कर दिया। ये सिर्फ जिज़िया स्थापन करके ही शान्त न हुए, बल्कि उन्होंने इस बातकी भी बहुत कोशिश की थी कि, जिससे कर देनेवाले लाञ्छित और अपमानित हों। तुमदात-उल्-अखबारातमें एक जगह लिखा है—औरङ्ग-जेबने जिज़िया वसूल करनेके लिए निम्नलिखित इन्तजाम किया था। कर देनेवाला खुद पैदल आ कर गुमाश्तेके पास खड़ा होता था। गुमाश्ता बैठा रहता था और करदाताके हाथसे कर उठा लेता था। नौकरोंके हाथ भेजनेसे नहीं लिया जाता था, खुद आ कर दे जाना पड़ता था। धनी व्यक्तिको सम्पूर्ण कर एक मुश्त देना पड़ता था। मध्यम श्रेणीके लोगोंसे दो बारमें और उससे हीन व्यक्तियोंसे चार बारमें भी लिया जाता था। मुसल-मान धर्मको मानने या कबूल होने पर इस करसे छुट-कारा मिलता था। इस समयसे जिज़िया बदस्तूर अदा होने लगा था।

बादशाह फर्रुखसियारके समयमें भूतपूर्व औरङ्गजेबके पारिषद मोहम्मद इनायत-उल्ला राजस्व-सचिव थे, इस लिए यह कर बड़ी उत्पीड़न और अत्याचारके साथ वसूल होने लगा। पीछे रफी-उद्-दराजतके समयमें सैयदोंने इस करको बन्द कर दिया। रतनचन्द नामक एक हिन्दूके राजस्व-सचिव होने पर हिन्दुओंको बहुतसे अधिकार पुनः प्राप्त हुए थे। रतनचन्दको नष्ट के बाद फिर एकबार यह कर लगाया गया था। बादमें मुहम्मदशाहने महाराज जयसिंह और गिरिधर बहादुरके अनुरोधसे जिज़िया कर उठा दिया। मुहम्मदके बाद फिर किसी बादशाहने जिज़िया कर लगानेका साहस नहीं किया।

और भी मालूम हुआ है कि, बहलोल और सिकन्दर लोदीके समयमें यह कर बहुत ही कठोरतापूर्वक वसूल किया जाता था और इसीलिए मुसलमान पठानोंके शासनमें आसानीसे राज्य जमानेमें असमर्थ हुए थे। पहले अकबरने मुसलमानधर्मके प्रति यथासाध्य पक्षपात दिखा कर जनसाधारणका अनुराग आकर्षण करनेका प्रयत्न करते थे और वे इस विषयमें कुछ कुछ कृतकार्य भी हुए थे। किन्तु किसी किसीने इस नीतिके गूढ़ मर्मको न समझ कर उसके विरुद्ध आचरण किया है। जब तक वे बादशाह तेजस्वी और मजबूत थे तब तक उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सका था—यह ठीक है, परन्तु उनकी शक्ति क्षीण होते ही, जिज़िया कर ही इस देशमें मुसलमान राज्य विलोपका कारण हो गया है।

जिज्ञासा (सं० स्त्री०) ज्ञातुमिच्छा ज्ञा-सन्-तत अ। १ ज्ञान प्राप्त करनेकी कामना, जाननेकी इच्छा। २ प्रश्न, तहकीकात।

जिज्ञासित (सं० त्रि०) जिज्ञास-क्त। जिसे जिज्ञासा की गई हो, जिसको पूछा गया हो।

जिज्ञासु (सं० त्रि०) ज्ञातुमिच्छुः ज्ञा सन्-उ। ज्ञान प्राप्त करनेके लिये इच्छुक, जाननेकी इच्छा रखनेवाला, खोजी।

जिज्ञासि (सं० स्त्री०) अस्य जिज्ञासा शब्दस्यादित्वात् परनिपातः साधोपश्च। भक्तिजिज्ञासा।

जिज्ञास्य (सं० त्रि०) जिज्ञासार्थे, ज्ञा सन्-कर्मणि यत्। जिज्ञासनीय जिसको जिज्ञासा की जाय, जिसे जानना हो।

जिज्ञास्यमान (सं० त्रि०) जिज्ञास-शानच्। जो विषय पूछा जा रहा हो।

जिज्ञु (सं० त्रि०) जिज्ञासु, जाननेकी इच्छा रखनेवाला।

जिञ्जिराम—आसामकी एक नदी। यह ग्वालपाड़ा जिलेके उत्तर सीमासे निकल १२० मील बहती हुई मानिकर चरके दक्षिण ब्रह्मपुत्रमें जा गिरी है। ग्वालपाड़ाके दक्षिण भाग तथा गारो पर्वतमें इसकी राह व्यापार होता है।

जिञ्जोरा—बम्बई प्रदेशका एक देशी राज्य।

जञ्जीरा देखो।

जिठानी (हिं० स्त्री०) पतिके बड़े भाईकी स्त्री।

जेठानी देखो।

जित् (सं० त्रि०) जि क्विप्। जीता जीतनेवाला।

जित (सं० त्रि०) जि कर्मणि-क्त। पराजित, जीता हुआ। (क्ली०) भावे क्त। २ जय, जीत।

जितक—हिन्दीके एक कवि। रागसागरोद्भवमें इनके पद पाये जाते हैं।

जितकर्ण—चौहान-वंशीय पृथ्वीराजके वंशके एक राजा। अर्णोराजदेव द्वारा प्रतिष्ठित गुमरानके पासके पञ्चग्राम (वर्तमान निहालो, उमरवान)-के शिलालेखमें इनका नामोल्लेख मिलता है।

जितकाशि (सं० पु०) जितेन जयोद्यमेन काशते प्रकाशते, काश-अच्, वा जिता अभ्यास-पटुतया इस्तक' काशि।

दुरिर्क्षेन। इन्द्रियजोड़ भेद, वह जोड़ा जिसमें मुठ्ठीसे पकड़नेकी सामर्थ्य हो।

जितकामी (सं० त्रि०) जितेन जयेन काशते काश णिनि। जययुक्त। "अनिरुद्ध रणे वाणो जितकाशी महाबलः।"

(हरि० १७६।१२१)

जितक्रोध (सं० त्रि०) जितः क्रोधो येन, बहुव्री०। १ क्रोधशून्य, जिसे गुस्सा न हो। (पु०) २ विष्णु।

"मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः।" (विष्णुसह०)

जितना (हिं० वि०) जिस मात्राका, जिस परिमाणका।

जितनेमि (सं० पु०) जिता नेमिर्येन बहुव्री०। १ अश्वत्थ निर्मित दण्ड। २ विष्णु। (त्रि०) १ क्रोधशून्य, जिसे गुस्सा न हो।

जितपाल—तोमर वंशके ग्वालियर मालवके एक राजा। विक्रमादित्यके वंशधर परमार (पंवार) वंशीय शिव राजा जयचन्दकी मृत्युके बाद ये मालवके सिंहासन पर बैठे थे। इनके वंशजोंने १८२ वर्ष राज्य किया था।

जितल—मुसलमान राजाओंके समयकी प्रचलित मुद्रा। इसका मूल्य १०० रत्ती था।

जितलोक (सं० त्रि०) जित आयत्तीकृत कर्मादि द्वारा लोक स्वर्गादिर्येन। १ जिसने पुण्य कर्मसे स्वर्गादि लोक प्राप्त किया हो। (त्रि०) २ अभिभूत लोक।

जितवत् (सं० त्रि०) जि-क्त मतुप् मस्य वः। जितजय, जीता हुआ।

जितवती (सं० स्त्री०) जितवत्-स्त्रियां ङीप्। राजा उशीनरकी लड़कीका नाम। यह नरदेवात्मजाओंकी प्रियतमा थी। (भारत १।११ अ०)

जितवाना (हिं० क्रि०) जीतनेमें समर्थ करना, जीतने देना।

जितव्रत (सं० त्रि०) जित आयत्तीकृत व्रत येन। १ आयत्तीकृत व्रत जिसने व्रतको वशीभूत किया हो। (पु०) २ पृथु वंशके हविर्धान राजाके पुत्र।

(भागवत ४।२४।८)

जितशत्रु (सं० पु०) जितः शत्रुर्येन, बहुव्री०। विजयी वह जिसने शत्रुको पराजय किया हो।

जिताक्षर (सं० त्रि०) जितानि अक्षराणि येन अभ्यास पाठ्नादिर्येन, बहुव्री०। उत्तम पाठक, जो अक्षर देखते ही पढ़ सकता हो।

जितात्मा (सं० त्रि०) जितः वशीकृत आत्मा इन्द्रियं मनो वा येन। १ जितेन्द्रिय। (पु०) २ आद्यभागार्ह देवभेद, एक देवता जिसे आद्यमें भाग दिया जाता है।

जिताना (हिं० क्रि०) जीतनेमें उद्यत करना।

जितामित्र (सं० त्रि०) जिता अमित्रो रागद्वेषादयो वाह्यावरणादयश्च येन, बहुव्री०। १ शत्रुपराजयकर्त्ता, दुश्मनको जीतनेवाला। २ कामादि रिपुजेता, कामादि शत्रुओंको जीतनेवाला। (पु०) ३ विष्णु।
(भारत १३।१४९।६९)

जितामित्रमल्ल—नेपालके ठाकुरीवंशीय एक राजा। ये जगत्प्रकाशमल्लके पुत्र थे। इन्होंने १६८२ ई०में हरिशङ्करदेवका एक मन्दिर और १६८३ ई०में एक धर्मशाला बनवायी थी। इसके अतिरिक्त और भी इन्होंने बहुतसे मन्दिर आदि बनवाये थे।

जितारि (सं० पु०) जिता अरयो आभ्यन्तरा रागादयो वाह्याश्च रिपवो येन, बहुव्री०। १ बुद्धदेवका नाम। २ हृत्तार्हत्‌पिता। ३ अविक्षत राजाके पुत्रका नाम। (त्रि०) ४ शत्रुजित्, दुश्मनको जीतनेवाला। ५ कामादि रिपुजेता, कामादि शत्रुओंको जीतनेवाला।

जिताष्टमी (सं० स्त्री०) जिता पुत्रसौभाग्यदानेन सर्वोत्कर्षेण स्थिता या अष्टमी, कर्मधा०। गौणाश्विन कृष्णाष्टमी, इसका दूसरा नाम जीमूताष्टमी है। इस व्रतमें स्त्रियां पुत्र-सौभाग्यकी कामना कर आंगनमें पुष्करिणी बना कर प्रदोषके समय शालिवाहनराजपुत्र जीमूतवाहनकी पूजा करती हैं। अष्टमी जिस दिन प्रदोषव्यापिनी होती है, उस दिन ही यह व्रत किया जाता है। यदि दो दिन प्रदोषव्यापिनी रहे, तो दूसरे दिन करना विधेय है। यदि कोई दिन प्रदोष न हो, तो जिस दिन उदय हो अर्थात् जिस दिनकी तिथिमें सूर्य उदित हो, उस दिन करना चाहिये। जो स्त्री इस जिताष्टमी तिथिमें अन्न खाती है, वह निश्चयसे मृतवत्सा होती है और उसे वैधव्य भोगना पड़ता है। (भविष्योत्तर) और जो इस अष्टमीके दिन ग्रामकी जीमूतवाहनकी पूजा करती हैं, उन्हें हर तरहका सौभाग्य लाभ होता है। कभी भी मृतवत्सा दोष नहीं होता और न वे वैधव्यदुःख ही भोगती हैं।

जिताहव (सं० पु०) जितः शत्रुराहवे येन, बहुव्री०। विजयी, वह जिसने लड़ाई जीती हो।

जिताहार (सं० पु०) जितः आहारः येन, बहुव्री०। आहारजेता, वह जिसने आहार जीत लिया हो, समाधिसे जिसे भूख न लगती हो।

जिति (सं० स्त्री०) जि-क्तिन्। १ जय जीत। २ लाभ।

जितुम (सं० पु०) मिथुनराशि।

जितेन्द्रिय (सं० त्रि०) जितानि वशीकृतानीन्द्रियाणि श्रोत्रादीनि येन, बहुव्री०। १ इन्द्रियजयकारी, जिसने इन्द्रियोंको जीत लिया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये विषय जिनको विमोहित न कर सकें, वे ही जितेन्द्रिय हैं। (मनु १० अ०)

पातञ्जलमें इन्द्रियजयका विषय इस प्रकार लिखा है—आत्मामें विशुद्धता होने पर सत्त्वगुण प्रकाशित होता है, उस समय आत्मा विशुद्ध है अर्थात् सत्त्वगुणाक्रान्त होनेसे उसमें फिर रज और तमोगुण नहीं आ सकते। कारणके सिवाय कार्य असम्भव है, इस न्यायसे चित्तशुद्धिके कारण रजः और तमः सत्त्वगुणाक्रान्त होने पर तमः और रजः चित्तचाञ्चल्य आदि अपने धर्मोंका प्रकट नहीं कर सकते, वास्तवमें सत्त्वगुणको ही सहायता करते हैं। उस समय सर्वदा मनमें प्रीतिका अनुभव होता है। कभी भी किसी तरहका खेद नहीं होता। नियत विषयमें चित्तकी एकाग्रता होती है अर्थात् अन्तःकरण (बुद्धि, अहङ्कार और मन) सर्वदा विषयोंमें अनुरक्त रहता है। कभी भी विषयान्तरमें चित्तका अनुराग नहीं होता। उस समय इन्द्रियें पराजित हो जाती हैं, इस जितेन्द्रिय अवस्थाके होने पर आत्मदर्शनकी शक्ति आ जाती है। इस प्रकारकी अवस्था ही यथार्थमें जितेन्द्रिय पदवाच्य है। (पात० सू० ।४१) २ शान्त, समवृत्तिवाला। (पु०) ३ कामवृद्धिवृक्ष। (हेम०)

जितेन्द्रियता (सं० स्त्री०) जितेन्द्रियस्य भावः जितेन्द्रियतल्-टाप्। इन्द्रियजयका कार्य।

जितेन्द्रियाह्व (सं० पु०) जितेन्द्रियं आह्वयते स्पर्द्धते आह्वे-क। कामवृद्धिवृक्ष, एक बड़ा झाड़। कर्णाटक देशमें इसे 'कामज' कहते हैं।

जित्तम (सं॰ पु॰) जित् तमप्। १ जितुम, मिथुन राशि।

जित्य (सं॰ पु॰) हलहल, बड़ा हल।

जित्या (सं॰ स्त्री॰) जि क्यप् टाप्। १ हलहल बड़ा हल। २ हिंगुल, हींग।

जित्वन् (सं॰ त्रि॰) जि क्वनिप्। जयशील, जीतनेवाला पर्याय ६।

जित्वर (सं॰ त्रि॰) जयति जि-क्वरप्। जेता, जीतने वाला।

जित्वरी (सं॰ स्त्री॰) जयति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते जि क्वरप् ङीप्। काशी।

जिद (अ॰ स्त्री॰) १ विरुद्ध बात, उलटी बात। २ दुराग्रह हठ, अड़।

जिद्दा—लोहित सागरके उपकूलस्थ अरब देशका एक नगर। यह अक्षा॰ २१ ३० उ॰ और देशा॰ ३९ १० पू॰में अवस्थित है। मुसलमान लोग अपने प्रधान तीर्थ मक्का जाते समय पहले यहीं उतरते हैं इसीलिए इसकी प्रसिद्धि है। यहांसे मक्का ६६ मील दूर है। समुद्रके किनारे ढालीजमीन पर यह नगर है। इसके चारो ओर दुर्ग और उत्तर भागमें कारागारादि हैं। नगरके तीनों तरफ तोरणद्वार हैं। पहले द्वारका नाम मदीना तोरण है जो उत्तरकी ओर है। पूर्वकी ओर मक्कातोरण है और दक्षिणकी तरफ यमन तोरण। मक्कातोरणके सामने बाजार है। मदीना तोरणके पास ही जिद्दाका पवित्रतीर्थ ईभकी कब्र है।

यह कब्र २०० हाथ लम्बी और १५ फुट चौड़ी है। लोग कहते हैं कि इसकी शरीरका आकार इतना ही बड़ा था। यदि सो ईभका नहीं मर गये हैं, किन्तु काले पत्थरके सिवा और कोई चीज उतनी पुरानी नहीं जंचती।

समुद्रके किनारे कुछ चट्टानोंके रहनेसे नगरकी सीमा बढ़ गई है। परन्तु सड़कें टेढ़ी मेढ़ी और चौड़ी हैं। यहां दो बड़ी बड़ी मसजिदें हैं। बाजारमें मक्खियोंकी कमी नहीं है। यहां पानीका बन्दोबस्त उतना अच्छा नहीं है जितना कि चाहिए।

कहा जाता है कि पोर्टोगीजोंके समयमें फारसके अधिवासियोंने इस नगरकी प्रतिष्ठा की थी। ईसाकी १५वीं शताब्दीमें इसकी उन्नति शुरू हुई है। १८१५ ई॰ तक सुरतके जहाज जिद्दा आते थे और फिर भारतीय जहाजों पर माल लाद कर अन्यत्र भेजा जाता था। उन्नीसवीं शताब्दीमें ही यहां यात्रियोंकी संख्या बढ़ी यहां प्रति वर्ष मक्केके दर्शनके लिए औसत ७० हजार यात्री आया करते हैं। वाणिज्यके लिए जिद्दाके बन्दरमें बहुतसे जहाज आते हैं और काम चलाते हैं। गत महासमरके समय जिद्दाके अधिकारके विषयमें गड़बड़ी हुई थी। किन्तु फिलहाल यह तुर्कियोंके ही अधिकारमें है।

जिद्दी (फा॰ वि॰) १ हठी, जिद करनेवाला। २ दुराग्रही, जो दूसरेकी बात न मानता हो।

जिधर (हि॰ क्रि॰ वि॰) १ जहां, जिस ओर। सम्बन्धके इसके साथ 'उधर' प्रयुक्त होता है। जैसे—'जिधर देखो उधर' ही तुम्हारे कारनामे हो रहे हैं।

जिन (सं॰ पु॰) जि नक्। १ जिनेन्द्र। ये अर्हत्, तीर्थंकर, सर्वज्ञ जिनेश्वर, वीतराग, आप्त आदि नामसे प्रसिद्ध हैं। तीर्थंकर देखो। २ बुद्ध। ३ विष्णु। ४ सूर्य। (त्रि॰) ५ जित्वर जीतनेवाला।

जिन (अ॰ पु॰) मुसलमान भूत विशेषको।

जिन (हि॰ वि॰) 'जिस' का बहुवचन।

जिनकीर्त्ति—सोमसुन्दरके एक शिष्य। इन्होंने चम्पकश्रेष्ठीकथानक, १४९० सम्वत्में धन्यशालिचरित्र, दानकल्पद्रुम तथा श्रीपालोपाख्यान आदि कई एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थोंकी रचना की थी। इसके अतिरिक्त १४९० सम्वत्में ये अपने ही द्वारा रचित नमस्कारस्तवकी टीका लिख गये हैं।

जिनकुशल—एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थकार। इन्होंने जिनवल्लभ, जिनदत्त और जिनचन्द्रके वंशमें तथा खरतरगच्छमें (सं॰ १३३०) जन्म लिया था। १३८९ सम्वत्में इनका देहान्त हुआ है। इन्होंने तरुणप्रभको आचार्य पद दिया था। चैत्यवन्दनकुलवृत्ति नामका एक ग्रन्थ मिलता है, जो इनका बनाया हुआ है।

जिनचन्द्र—१ एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता। इन्होंने विक्रम सम्वत् ११००में धर्मसंग्रहश्रावकाचार और सिद्धान्तसार (प्राकृ) ये दो ग्रन्थ रचे थे।

२ उक्त सम्प्रदायके अन्य एक ग्रन्थकर्त्ता। विक्रम सम्वत् १४१में ये विद्यमान थे।

३ श्वेताम्बर, जैन खरतरगच्छ सम्प्रदायभुक्त जिनेश्वर के शिष्य, कोई इन्हें बुद्धिसागरका शिष्य बताते हैं। इन्हों-ने सम्वेगरङ्गशाला नामके एक ग्रन्थकी रचना की है।

४ खरतरगच्छ, जिनदत्तके शिष्य, इनका जन्म-सम्वत् ११८७ और मृत्यु सम्वत् १२२३ है। इन्होंने सं० १२०३ में दीक्षा और सं० १२११में आचार्यपद पाया था।

५ नेमिचन्द्रके शिष्य, आम्रदेवके गुरु।

६ खरतरगच्छ, जिनप्रबोधके शिष्य। जन्म सं० १३२६ मृत्यु सं० १३६७, दीक्षा सं० १३३२ और पदमहोत्सव सं० १३४१ है। इन्होंने चारराजाओंको जैन धर्मकी दीक्षा दी थी। इनका विरुद कलिकाल-केवलिन् है। इन्होंने तरुणप्रभको भी दीक्षित किया था।

जिनचन्द्रगणि—उकेशगच्छभुक्त कक्कसूरिके शिष्य और नवपदप्रकरण नामक श्वेताम्बर-जैन-ग्रन्थके प्रणेता। ये पीछे देवगुप्त सूरिके नामसे परिचित हुए हैं, इस नामसे १०१३ सम्वत्में इन्होंने अपने नवपदकी श्रावकानन्द नामकी एक टीका रची है। बादमें इन्होंने अपना नाम कुलचन्द्र भी रक्खा था।

जिनचन्द्र सूरि (५म)—खरतरगच्छसम्प्रदायके एक प्रसिद्ध श्वेताम्बर जैनाचार्य। इन्होंने शास्त्रविचारमें सबको परास्त कर दिया था। इनकी ख्याति सुन कर एकदिन बादशाह अकबरने इनसे भेंट की और इनके सद्गुणोंसे मोहित हो कर इन्हें ७ 'सत्तमयोयुगप्रधान' यह उपाधि दी। इनकी प्रार्थनाके अनुसार अकबरने आषाढ़ मासमें ८ दिन तक प्राणिहत्या और काम्बे उपसागरमें (स्तम्भतीर्थ समुद्रमें) मछली पकड़ना बन्द करवा दिया। अकबरके आदेशसे ये १६५२ सम्वत्में माघकी शुक्ला द्वादशीको योगबलसे पञ्चनद पार हुए थे तथा इन्होंने ५ पीरोंको आविर्भूत किया था। जिनसिंह सूरि नामके इनके एक शिष्य थे। उन्हींके परामर्शसे अणहिलवाड़-पत्तनमें वाड़ीपुर पार्श्वनाथका मन्दिर बनाया गया था।

जिनत्-उन्-निसा बेगम—१ बादशाह आलमगीरकी कन्या। १७१० ई०में इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने दिल्लीके अन्तर्गत शाहजहानाबादके दरीयागञ्ज नामक स्थानमें जिनत् उल्-मसजिद निर्माण कराई थी। वहीं जगह इनकी कब्र है।

२ बङ्गालके नवाब मुर्शिदकुलिखाँकी एकमात्र कन्या। मुर्शिदकुलिखाँ जब हैद्राबादके दीवान थे, तब शुजाखाँके साथ जिनत् उन् निसाका व्याह हुआ था। शुजा दाक्षिणात्यके अन्तर्गत बुरहानपुरके रहनेवाले थे। मुर्शिद-कुलिने उन्हें उड़ीसाका सहकारी सूबेदार बना दिया, किन्तु थोड़े दिन बाद ससुर जमाईमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

शुजाने जब विलासिताके नशेमें तर हो कर दुर्नीति-का आश्रय लिया, तब जिनत उन-निसाने स्वामीके उद्धार के लिए काफी कोशिश की, किन्तु वे सफलता न पा सकी। आखिर वे स्वामीसे सम्बन्ध तोड़ कर अपने पुत्र सरफराजके साथ मुर्शिदाबाद चली आईं।

मुर्शिदकुलिखाँकी मृत्युके बाद शुजाने दिल्लीसे सनद ले कर ससैन्य मुर्शिदाबादमें प्रवेश करनेकी कोशिश की। यह संवाद पा कर सरफराज उन्हें बाधा देनेके लिए तैयार हुए, किन्तु माताके कहनेसे रुक गये और पिताको अभ्य-र्थना पूर्वक घर ले आये। शुजाने जिनत-उन निसासे क्षमा मांगी। स्वामी स्त्रीमें पुनः मेल हो गया।

शुजाखाँकी मृत्युके बाद सरफराज नवाब हुए, किन्तु शीघ्र ही अलीवर्दीखाँने मुर्शिदाबाद अधिकार कर लिया। अलीवर्दीखाँ बड़े शिष्ट थे, वे स्वयं जिनत्-उन्-निसाके पास गये और सिर झुका कर कहने लगे—"जब तक आप जीवित हैं तब तक मेरा सिर आपके सामने झुका ही रहेगा।" अलीवर्दीखाँके जमाई नवाजिस मह-म्मदने नवाब हो कर जिनत-उन-निसाको धर्म-माता कहा और अपने प्रासादमें रक्खा। घसीटी बेगम सर्वदा उन्हें सुखी रखनेकी कोशिशमें रहती थीं। ये और कितने दिनों तक जीवित रहीं थी, इसका कहीं उल्लेख नहीं है।

जिनतूर—हैदराबाद राज्यके परभानी जिलेका उत्तर तालुक। इसका क्षेत्रफल ८५२ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८७७८७ है। इसमें २८७ गांव बसते हैं। जिनतूर सदरकी आबादी कोई ३६८८ है। मालगुजारी लग-भग ३ लाख २० हजार रुपया देनी पड़ती है। उत्तरमें पूरन और दक्षिणमें दूटन नदी है।

जिनदत्त—एक महत्मदस्थ और धर्मनिष्ठ महापुरुष। ये वसन्तपुराके और जैनधर्मावलम्बी थे। अचिर जैना चार्य सुमधसूक्तामीने अपने "जिनदत्तचरित" नामक काव्यग्रन्थमें इनकी वृत्तान्त विस्तृतरूपसे लिखा है।

ब्रह्मास्वामि ये कुबेरतुल्य सम्पत्ति छोड़ कर मुनि हो गये थे। हजारीबाग जिलेके अन्तर्गत श्रीसम्मेद शिखर पर्वत पर इनकी मन-चीला समाप्त हुई। इनका जीवात्मा स्वर्गमें जा कर देव हुआ। ये महावीरस्वामी के पीछे हुए हैं।

जिनदत्त सूरि—१ खरतरगच्छके एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थकार। जिनवल्लभ खरतरगच्छके परवर्ती गुरु। इनका मूल नाम सोमचन्द्र था। ये ११३२ सम्वत्में जन्मे थे और ११४१में इन्होंने दीक्षा ली थी। इनका दीक्षाका नाम प्रबोधचन्द्रगणि था। ११६८ सम्वत्में इन्हें चित्रकूटमें देवभद्राचार्यके निकट सूरिपद प्राप्त हुआ था। पीछे इन्होंने नाना स्थानोंमें घूम कर जैनधर्मका प्रचार किया था। इसके सिवा इन्होंने सन्देहदोलावली आदि कई एक पुस्तकें भी रची थीं। १२११ सम्वत्में अजमेरमें इनकी मृत्यु हो गई।

२ श्रीविमलनाथचरित प्रणेता अमरचन्द्रके गुरु। आपने विवेकविलास नामका एक जैनतत्त्व ग्रन्थ प्रणयन किया है। १२७७ सम्वत्में मह(?)पालकी तीर्थयात्राके समय जिनदत्तसूरि वायडगच्छमें उपस्थित थे।

जिनदास गणित महत्तर—अनुयोगचूर्णिके रचयिता और निशीथकल्पसूत्रमाष्यमहावादिचूर्णिकार अध्यात्मा गमतके शिष्य।

जिनदास पाण्डेय—एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता। ये सं० १६४२में विद्यमान थे। इन्होंने हिन्दी भाषामें जम्बू चरित्र छन्दोबद्ध, ज्ञानसूर्योदयनाटक छन्दोबद्ध सुगुरु शतक आदि कई एक जैन-ग्रन्थोंकी रचना की है।

जिनदास ब्रह्मचारी—एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता विक्रम सम्वत् १५१०में ये विद्यमान थे। इन्होंने बहुतसे ग्रन्थों की हिन्दी टीकाएं लिखी हैं तथा धर्मपञ्चासिका, गुरु विरदावलीपूजा अनन्तव्रतोद्यापन, चतुर्विंशति उद्यापन अनन्तव्रतपूजा, जम्बूद्वीपपूजा रात्रिभोजनकथा श्रेणी चरित्र आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

जिनदेवकवि—दिगम्बर श्रेणी के एक संस्कृत ग्रन्थकर्ता इन्होंने ज्ञानसूर्यकलिका और मदनपराजय नाटक ये दो ग्रन्थ रचे हैं। ये श्रीठक्कुर माईदेवके पुत्र थे।

जिनधर्म (सं० पु०) १ जैनधर्म जैनधर्म देखो। २ दिग म्बर जैन सम्प्रदायके एक कर्णाटक कवि। इन्होंने कर्णाटक भाषामें अनन्तनाथपुराण लिखा है।

जिनपति—जिनचन्द्रके शिष्य जिनेश्वर खरतरगच्छके गुरु और जिनेश्वर प्रणीत पञ्चलिङ्गप्रकरण नामक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थके टीकाकार। इनका जन्म सं० १२१०, दीक्षा स० १२१८ और मृत्यु स० १२७७ है। १२२३ सम्वत् में जयदेव सूरि द्वारा इन्हें सूरिपद मिला था। ये समाचारपत्र और तीर्थमाला प्रणेता हैं। इन्होंने पटियतकप्रणेता नेमिचन्द्रको जैनधर्मको दीक्षा दी थी।

जिनपुत्र—श्वेताम्बर जैन यति और योगाचार्य, भूमिमान कारिका नामक ग्रन्थके प्रणेता।

जिनप्रबोध—खरतरगच्छीय जिनेश्वरके शिष्य। इनका जन्म स० १२८५, दीक्षा स० ११८६, पदस्थापन स० १३३१ और मृत्यु स० १३४१ है। इनका दीक्षानाम प्रबोधमूर्ति था। इन्होंने त्रिलोचनदासकृत कातन्त्रवृत्ति विवरणपञ्जिकाकी पञ्जिका दुर्गपदप्रबोध नामक एक टीका रची है।

जिनप्रबोध सूरि—इनका पूर्वनाम पर्वत था। ये श्रीचन्द्र के पुत्र और जिनेश्वरके शिष्य थे। इनका जन्म स० १३२८ और मृत्यु स० १३८० है।

जिनप्रभ—लघुखरतरगच्छके एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थकार। १४०० सम्वत्में इनका जन्म हुआ था। ये सम्मतिसूत्र निर्वाटीकाप्रणेता महतिलकके विद्यागुरु थे। इन्होंने दिल्लीके बादशाह महम्मद तुगलकको जैनधर्मका उप देश दिया था।

जिनप्रभ सूरि—जिनसिंह सूरिके शिष्य और न्यायकन्दली पञ्जिका प्रणेता राजशेखरके गुरु। १३६५ सम्वत्में इन्होंने साकेतपुरमें रहते समय भयहरस्तोत्र और नन्दिषेण प्रणीत अजितशान्तिस्तवकी टीका बनायी है। इन्होंने सूरिमन्त्रप्रदेशविवरण तीर्थकल्प और पञ्चपरमेष्ठिस्तोत्र आदि ग्रन्थों की रचना की है।

जिनभक्ति सूरि—इनका जन्म १७७० में, दीक्षा १७७९ में

सूरिपद १७८० में और मृत्यु १८०४ सम्वत्में हुई थी। इनका दीक्षाका नाम भक्तिक्षेम था। ये जिनसौख्य सूरिके शिष्य और खरतरगच्छीय जिनलाभ सूरिके गुरु थे।

जिनभद्र—१ खरतरगच्छीय जिनेश्वरके शिष्य, सुरसुन्दरी काव्यके रचयिता। इनका मूल नाम ध्यानेश्वर मुनि था।
२ जिनदत्त खरतरगच्छके शिष्य, इनका जन्म जिनचन्द्रके वंशमें हुआ था।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण—इन्होंने महाव्रतमें संक्षिप्त जिनकल्प तथा इत्यादि संग्रहियो नामका एक ग्रन्थ लिखा है। ६४५ सम्वत्में इनकी मृत्यु हुई।

जिनभद्र मुनीन्द्र—१ शालिभद्रके शिष्य। इन्होंने सं० १२०४ में अर्द्धमागधी भाषामें 'माला परगणकथा' नामक एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थ लिखा है। इनकी मुनीन्द्र उपाधि थी।

जिनभद्रसूरि—जिनराज सूरिके शिष्य, इनका सूर पद था।

जिनमुनि—एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकार। इन्होंने प्राकृत भाषामें त्रिभङ्गी नामका एक ग्रन्थ रचा है। संस्कृतकी नागकुमारषट्पदी, जिसकी कान्यकुब्ज भाषामें टीका है—वह भी इन्हींकी बनाई हुई है।

जिनयोनि (सं० पु०) मृग, हरिण।

जिनरङ्ग सूरि—सौभाग्यपञ्चीसी नामक जैन ग्रन्थके रचयिता।

जिनरत्न सूरि—एक श्वेताम्बर जैन आचार्य। जिनराज-सूरिके शिष्य और जैनचन्द्र सूरि खरतरगच्छके गुरु। १६९९ सम्वत्में इन्होंने सूरिपद पाया था। १७१२ सम्वत्में इनका देहान्त हुआ। इनका पहलेका नाम रूप-चन्द्र था, इनकी माताने भी इनके साथ दीक्षाली थी।

जिनराज सूरि—१ श्वेताम्बर जैनोंके एक आचार्य। १६४७ सम्वत्में जन्म और १६९९ सम्वत्में पटना नगर में इनकी मृत्यु हुई। दीक्षाके समय राजसमुद्र नाम हुआ। ये जिनसिंहके शिष्य और जिनरत्नके गुरु थे। १६७५ सम्वत्में इन्होंने शत्रुञ्जयपर्वतमें ५०१ ऋषभ और अन्यान्य जिनोंकी मूर्तियां स्थापित की थीं। इन्होंने जैनराजी नामकी नैषधकाव्यकी एक वृत्ति तथा और भी कई ग्रन्थ लिखे हैं।

२ जिनवर्द्धनके गुरु, सप्तपदार्थी टीकाके प्रणेता। १४७५ सम्वत्में इनकी मृत्यु हुई।

जिनरूपताक्रिया—जैनोंकी त्रेपन क्रियाओंमेंसे चौबीस-वीं क्रिया। यह क्रिया दीक्षाद्यक्रियाके बाद और मौना-ध्ययनक्रियासे पहले होती है। इसमें नग्न हो कर मुनिका रूप धारण किया जाता है।

"त्यक्तचेलादि संगस्य जैनीं दीक्षामुपेयुषः।
धारणं जातरूपस्य यत्तत्स्याज्जिनरूपता॥"

अर्थात्—वस्त्र आदि सम्पूर्ण परिग्रहको त्याग कर मुनि-दीक्षा धारणपूर्वक यथाजात (जिस रूपमें जन्म लिया था, नग्न) रूपको धारण करना ही जिनरूपता-क्रिया है।

जिनलाभ—एक श्वेताम्बर जैनाचार्य। १७८४ सम्वत्में जन्म, १७९६में दीक्षा, १८०४में पदस्थापन और १८३४ सम्वत्में इनकी मृत्यु हुई थी। इनका पहलेका नाम लालचन्द्र था और दीक्षासमयका लक्ष्मीलाभ। इनका जन्म बीकानेरमें हुआ था।

१८३३ सम्वत्में इन्होंने श्रीमनिराम्बविन्दिरमें आत्म-बोध नामक ग्रन्थ लिखा है। ये १८१८ सम्वत्में ७१ यतियोंके साथ गौड़ी पार्श्वनाथके मन्दिरमें तथा १८२१ में ८५ साधुओंके साथ अर्बुद तीर्थमें उपस्थित हुए थे।

जिनवर्द्धन सूरि—जिनराज सूरिके शिष्य। इन्होंने भाग-वतालङ्कार टीका और सप्तपदार्थी टीकाकी रचना की है।

जिनवल्लभ—अभयदेव सूरिके शिष्य और जिनदत्त सूरि (खरतरगच्छ)-के गुरु। इनके बनाये हुए बहुतसे ग्रन्थ हैं, जिनमेंसे पिण्डविशुद्धिप्रकरण, षडशीति, कर्मग्रन्थ, कर्मादिविचारसार और वर्द्धमानस्तव—ये प्रधान हैं। ११६७ सम्वत्में देवभद्राचार्य द्वारा इन्हें सूरिपद प्राप्त हुआ था। परन्तु इसके ६ माह बादही इनका शरीरान्त हो गया। इनके शिष्य रामदेव अपने (११७३ सम्वत्में) बनाये हुए षडशीतिकचूर्णिमें लिखा है कि, जिनवल्लभने चित्रकूटके वीरचैत्यके प्रस्तर पर अपने चित्र-काव्य अङ्कित किये हैं तथा उस चैत्यके दरवाजों पर दोनों और धर्मशिक्षा और सङ्घपट्टक लिखे हैं। इनमें जिनवल्लभप्रशस्ति अथवा अष्टसप्ततिका भी खुदी हुई है।

इससे प्रमाणित होता है कि वीरसेनके शिष्य स्वामी जिनसेन हरिवंशकार जिनसेनसे पूर्व प्रसिद्ध हो चुके थे। इस सम्बन्ध नाथूराम प्रेमीने विद्वद्रत्नमाला ग्रन्थमें सविस्तर आलोचना की है, इसलिये हम यहां अधिक नहीं लिखते। श्रीयुक्त पं० लालाराम जैनने भी अपने द्वारा प्रकाशित आदिपुराणकी प्रस्तावनामें हरिवंशकार और पार्श्वाभ्युदयके रचयिता जिनसेनको भिन्न भिन्न व्यक्ति स्वीकार किया है। उनके मतमें पार्श्वाभ्युदयकर्त्ता जिनसेनने ही ७५८ शकाब्दमें सिद्धान्तशास्त्रको जयधवला नामक टीका रची है और उसके बाद उन्होंने आदिपुराण रचना प्रारम्भ किया था, परन्तु वे उसे अधूरा ही छोड़ कर स्वर्गवासी हो गये ; इसलिये उसे उनके शिष्य गुणभद्राचार्यने पूर्ण किया। गुणभद्राचार्य देखो। अतः उनका यह भी मत है कि "उसके रचयिता जिनसेन शकसं० ७७० तक जीवित थे ; क्योंकि कीर्त्तिषेणके शिष्य जिनसेनने शकसं० ७०५में हरिवंशको रच कर पूरा किया था और अपने ग्रन्थके प्रारम्भमें आदिपुराणकार स्वामी जिनसेनका उल्लेख विशेष सम्मानके साथ किया है, तथा शकसं० ७५८में उन्होंने जयधवल नामक टीका रची है। इस तरह आदिपुराण-कार स्वामी जिनसेन, हरिवंशकार जिनसेनकी अपेक्षा अवश्य ही वयोवृद्ध थे। इसलिये यदि कमसे कम २० वर्ष भी वयोवृद्ध हों तो अनुमानसे आदिपुराणकार जिनसेनका जन्म ६७५ शकमें हुआ होगा। इस तरह उन्होंने ८५ वर्षकी अवस्थामें आदिपुराणकी रचना की होगी, ऐसा मालूम होता है।" परन्तु आदिपुराणको पढ़नेसे मालूम होता है कि इस तरहकी रचना इतनी बड़ी उम्रमें की होगी, यह बात सम्भव नहीं। तो भी पूर्वोक्त पुराणविद्गण और जैन पण्डितद्वय वीरसेनके शिष्य जिनसेनके इतनी बड़ी उमरके बतलानेमें प्रधान कारण हैं। उन्होंने जो जयधवला टीकाका समाप्तिज्ञापक ७५८ शकाब्द अपने प्रमाणमें दिया है उसे हम नीचे उद्धृत कर कुछ विचार करते हैं।

"एकान्नषष्टिसमधिकसप्तशताब्देषु शकनरेन्द्रस्य।
समतीतेषु समाप्ता जयधवला प्राभृतव्याख्या॥
गाथासूत्राणि सूत्राणि चूर्णिसूत्रं तु वार्तिकम्।
टीका श्रीवीरसेनीयाऽशेषापद्धतिपंचिका॥
श्रीवीरप्रभुभाषितार्थघटना निर्लोडितान्यागमम्
याया श्रीजिनसेनसन्मुनिवरैरादेशितार्थस्थितिः।
टीका श्रीजयचिह्नितोरुधवला सूत्रार्थसम्बोधिनी
स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलतमा श्रीपालसम्पादिता॥"

इन श्लोकोंसे जाना जाता है कि श्रीपाल नामक किसी जैनाचार्यने शकसं० ७५८में कषायप्राभृत ग्रन्थकी व्याख्यास्वरूप यह जयधवला नामकी टीका समाप्त की है। यह गाथासूत्र, सूत्र, चूर्णिसूत्र, वार्तिक और वीरसेनीया टीका इस तरह पञ्चाङ्गीय टीका है। इसमें वीर भगवान् द्वारा उपदिष्ट आगमका विषय, मुनिवर जिनसेनका उपदेश और अन्यान्य मुनियोंकी रचना प्रभृति है तथा सूत्रार्थ ज्ञानके लिये इस जयधवला नामक टीकाकी रचना की गई है अर्थात् इससे किसी तरह भी सिद्ध नहीं होता कि शक सं० ७५८में जिनसेन विद्यमान थे ; क्योंकि उद्धृत श्लोकोंमें जो संवत् बतलाया है, वह श्रीपाल मुनिके ग्रंथ सम्पादनका समय है। वास्तवमें जिनसेनके गुरु वीरसेनने किस समय वीरसेनीय टीका रची और जिनसेनने वह विस्तृत टीका कब समाप्त की, इसका कोई भी उपयुक्त साधन अब तक देखनेमें नहीं आया है। ऐसी दशामें हम उनके विषयमें उपरोक्त श्लोकोंके आधारसे इतना ही कह सकते हैं कि वे पुन्नाटगणीय जिनसेनसे पहिले इस संसारमें विद्यमान थे एवं शकसं० ७०५से पहले उन्होंने अपनी रचना की थी।

आदिपुराणकार स्वामी जिनसेनाचार्य-विरचित पार्श्वाभ्युदयकी अन्तिम प्रशस्तिसे और गुणभद्राचार्य विरचित आदिपुराण तथा उत्तरपुराणकी प्रस्तावनासे यह बात भली भांति सिद्ध होती है कि राष्ट्रकूट वंशीय अमोघवर्षने आदिपुराणकार जिनसेनाचार्यका शिष्य होना स्वीकार किया था।* बहुतसे इतिहासज्ञ अमोघवर्षको शकसं० ७३६में सिंहासनारूढ़ हुआ बतलाते हैं। परन्तु हमारी समझसे ये अमोघवर्ष वे नहीं

* "इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्टय मेघं बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यं। मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशांकं, भुवनमवतु देवः सर्वदाऽमोघवर्षः॥" ४।७०॥

वंशने ४० वर्ष, पुष्पमित्रने ३० वर्ष, वसुमित्र, अग्निमित्र-ने ६० वर्ष, रासभ (गर्दभिल्ल)-वंशने १०० वर्ष, नरवाहनने ४० वर्ष, भट्टबाणने २४२ वर्ष, गुप्तवंशने २२१ वर्ष और कल्किराजने ४२ वर्ष तक राज्य किया था।

उसके बाद जिनसेनाचार्य फिर लिखते हैं—

"वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पंचाग्रां मासपंचकं।
मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत्॥"

इस श्लोकसे जाना जाता है कि शक संवत्से ६०५ पहिले (५२७ ई०से पूर्व) महावीरस्वामीने मोक्ष लाभ किया था, तथा भिन्न भिन्न राजवंशकी कालगणनासे मालूम होता है कि वीरनिर्वाणके (६०×१५५×४०) =२५५ वर्ष बाद और (६०५–२५५=)–३५० वर्ष शकके पहिले पुष्पमित्रका अभ्युदय हुआ था। इधर श्वेताम्बर सम्प्रदायके "तित्थुगुलिय पयण्ण" और "तीर्थोद्धारप्रकीर्ण" ग्रन्थोंके* देखनेसे मालूम होता है कि जिस रात्रिको महावीर स्वामी मोक्ष पधारे थे, उसी रात्रिको पालक राजा अवन्तिके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए थे। पालकवंशने ६० वर्ष, नन्दवंशने १५५ वर्ष, मौर्यवंशने १०८ वर्ष, पुष्पमित्रने ३० वर्ष, बलमित्र और भानुमित्रने ६० वर्ष, नरसेन वा नरवाहनने ४० वर्ष, गर्दभिल्लवंशने १३ वर्ष और शकराजने ४ वर्ष राज्य किया था, अर्थात् महावीर स्वामीके निर्वाणकालसे शकराजके अभ्युदय पर्यन्त ४७० वर्ष होते हैं। इधर सरस्वतीगच्छकी प्राचीन पट्टावलीमें लिखा है कि विक्रमने उक्त शकराजको पराजित तो किया, परन्तु वे १८ वर्ष पर्यन्त राज्याभिषिक्त नहीं हुये। उस सरस्वती गच्छकी गाथामें स्पष्ट लिखा है कि "वीरात् ४८२ विक्रम जन्मान्तवर्ष २२ राज्यान्त-वर्ष ४"† अर्थात् विक्रमाभिषेकाब्दसे (विक्रमसंवत्से) ४८८ वर्ष पहिले (४८८–५७=४३१ या खृष्टाब्दसे ४३१ वर्ष पहिले) महावीर स्वामीको मोक्ष हुई थी।

जिनसेनने जो शकाब्दसे ६०५ वर्ष पहिले वीर मोक्ष लिखा है, उसके अनुसार दिगम्बर संप्रदायी आजतक भी वीर मोक्षाब्दकी गणना करते आते हैं। परन्तु भविष्य राजवंशप्रसंगमें जिनसेनने जो गणना बतलाई है वह दूसरे किसी भी जैनग्रंथ, वा भारतीय अन्य साम्प्रदायिक ग्रन्थके साथ नहीं मिलती। 'तित्थुगुलियपयण्ण' और 'तीर्थोद्धारप्रकीर्ण'के मतके साथ आधुनिक ऐतिहासिक सिद्धान्तका अधिक मतभेद नहीं है। ऐसी अवस्थामें जिनसेन जो भविष्यराजवंशका कालनिर्णय लिख गये हैं, वह उनका समसामयिक प्रवादमात्र है। उसे ऐतिहासिक रूपसे ग्रहण नहीं कर सकते।

२ जैन महापुराण वा आदिपुराणकर्त्ता प्रसिद्ध दिग-म्बर जैनाचार्य और गुणभद्राचार्यके गुरु। जिनसेन स्वामी देखो।

जिनसेन स्वामी—जैन आदिपुराण कर्त्ता प्रसिद्ध दिगम्बर जैनाचार्य। ये भगवज्जिनसेनाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। 'जिनसेन आचार्य' शब्दमें हम सिद्ध कर चुके हैं कि आदिपुराण-कार जिनसेन हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेनसे सम्पूर्ण पृथक् हैं। ये वीरसेन स्वामीके शिष्य और गुणभद्राचार्यके गुरु थे। गुणभद्र आचार्य देखो।

जैनाचार्य प्रायः अपने वंशका परिचय न दे कर गुरु-परम्परासे परिचय दिया करते हैं। अतः यह नहीं जाना जा सकता कि ये किस वंशमें आविर्भूत हुए थे वा इनके पिता आदिका नाम क्या था। अनुमानसे इतना कहा जा सकता है कि या तो ये भट्ट अकलङ्क-देवके समान राजाश्रित किसी उच्च ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए होंगे अथवा जैन-ब्राह्मण (उपाध्याय) आदि जातियोंमेंसे किसी एकमें जन्म लिया होगा, कारण जिस प्रान्तमें इनका वास रहा है, वहां इन्हीं जातियोंमें जैन धर्म पाया जाता है।

स्वामी जिनसेनके गृहस्थावस्थाके वंशका परिचय भले ही न मिले, किन्तु उनके मुनिवंशका परिचय उनके ग्रन्थों एवं दूसरे उल्लेखोंसे मिल जाता है। महावीरस्वामीके निर्वाणके उपरान्त जब कि श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्ति नहीं हुई थी और जब आर्हत, जैन, अनेकान्त, स्याद्वाद आदि नामोंसे जैनधर्मकी प्रसिद्धि थी, तब जैनधर्म सम्प्रभेदसे रहित था। पीछे वि० सं० १३६में जब श्वेताम्बरसम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई, तब मूल सम्प्रदाय (जो कि 'दिगम्बर' नामसे प्रसिद्ध है) मूलसङ्घके नामसे प्रसिद्ध

---

* इस विषयका मूल प्रमाण 'हिंदीविश्वकोष' द्वितीय भाग २५० पृष्ठमें लिखा है।

† Indian Antiquary, Vol. XX. p 347.

हुआ। अनन्तर मूलसङ्घमें भो अर्हद्बलि आचार्यके समयमें (जो कि महावीरस्वामीसे लगभग ७०० वर्ष बाद हुए हैं) चार भेद हुए—नन्दिसङ्घ देवसङ्घ सेनसङ्घ और सिंहसङ्घ। इनमेंसे सेनसङ्घ नामक मुनिवंशमें जिनसेनस्वामीने दीक्षा ली थी। जैन कवि हस्तिमल्लने अपने 'विक्रान्तकौरवीय नाटक'में जो प्रशस्ति लिखी है उससे जाना जाता है कि 'समन्तभद्रस्वामी'के रचयिता स्वामी समन्तभद्राचार्यके वंश (गुरुपरम्परा) में ही जिनसेनस्वामी और गुणभद्राचार्य हुए हैं। प्रमाणस्वरूप शिलालेखोंसे मयीवनापुर्वक यह सिद्ध किया है कि जिनसेन स्वामी शकसं० ७१८ तक इस धराधाममें विद्यमान थे।

जिनसेन स्वामी द्वारा रचित आदिपुराण और पार्श्वाभ्युदय ये दो ग्रन्थ प्राप्त एवं प्रसिद्ध हैं। जयधवला टीका भी श्रवणबेलगोलाके प्राचीन ग्रन्थागारमें विद्यमान है किन्तु वह मुद्रित नहीं हुई। कुछ दिन हुए सहारनपुर निवासी स्वर्गीय लाला जम्बूप्रसादने इसकी एक प्रतिलिपि लिपिबद्ध कराई थी, जो उनके द्वारा प्रतिष्ठित जैन मन्दिरमें विद्यमान है। हर्षका विषय है कि शोलापुर-वासी भाई हीराचन्द रामचन्द इसे प्रकाशित करानेके लिए उद्योग कर रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ जैन-साहित्यमें अद्वितीय और बहुमूल्य होगा। इनके सिवा इनके बनाये हुए वर्द्धमानपुराण और पार्श्वस्तुति नामक दो ग्रन्थोंका हरिवंशपुराणमें उल्लेख है, किन्तु आज तक उनका कुछ पता नहीं लगा।

आदिपुराण—इसका यथार्थ नाम महापुराण है; किन्तु वे इस महाग्रन्थको अपने जन्ममें पूर्ण न कर सके। अनन्तर इनके शिष्य स्वामी गुणभद्रजीने इसे पूर्ण किया और प्रथम खण्डका आदिपुराण तथा द्वितीय खण्डका उत्तरपुराण नाम रख दिया। आदिपुराणमें मुख्यतः प्रथम तीर्थङ्कर श्रीऋषभदेव और प्रथम चक्रवर्ती भरतका चरित्र है और उत्तरपुराणमें शेष तेईस तीर्थङ्करोंकी जीवनियां हैं। सम्पूर्ण महापुराणमें चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण नौ प्रतिनारायण और नौ बलभद्र, इन ६३ महात्मा पुरुषोंका चरित्र है। यह दिगम्बर जैनसम्प्रदायमें प्रथमानुयोगका सबसे बड़ा ग्रन्थ है। महापुराणकी श्लोकसंख्या २०००० है जिसमें १२००० श्लोक आदिपुराणमें हैं और ८००० उत्तरपुराणमें। आदिपुराणमें कुल ४७ पर्व या अध्याय हैं, जिनमेंसे ४२ पर्व पूरे और ४३वें पर्वके ३ श्लोक जिनसेनस्वामीके बनाए हुए हैं और शेष भाग गुणभद्रने पूर्ण किया है।

आदिपुराण जैन साहित्यका एक सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसकी कविता सरलता, मनोहरता अर्थगौरव पद लालित्य आदि गुणोंसे परिपूर्ण है। जिनसेन स्वामीकी कविताकी प्रशंसा करते हुए एक कविने कहा है—

"यदि सकलकवीन्द्रप्रोक्तसूक्तप्रचारश्रवणसरसचेतास्तत्त्वमेवं सखे स्याः।
कविवरजिनसेनाचार्यवक्त्रारविन्दप्रणिगदितपुराणाकर्णनाभ्यर्णकर्णः॥"

अर्थात् हे मित्र! यदि तुम कवियोंकी सूक्तियोंको सुन कर सरस हृदय बनना चाहते हो, तो कविवर जिनसेनाचार्यके मुखकमलसे उदित हुए आदिपुराणके सुननेके लिए अपने कानोंको समीप लाओ।

पार्श्वाभ्युदय—यह ३६४ मन्दाक्रान्ता छन्दोंका एक खण्डकाव्य है। संस्कृत साहित्यमें यह अपने ढंगका एक ही काव्य है। इसमें महाकवि कालिदासके सुप्रसिद्ध 'मेघदूत' काव्यमें जितने श्लोक हैं और उन श्लोकोंके जितने चरण हैं वे सब एक एक या दो दो करके इसके प्रत्येक श्लोकमें प्रविष्ट कर दिये गये हैं, अर्थात् मेघदूतके प्रत्येक चरणको समस्यापूर्ति करके यह कौतुकावह ग्रन्थ रचा गया है। इसमें पार्श्व नाथ स्वामीको पूर्व जन्मसे ले कर मोक्षप्राप्ति तक विस्तृत जीवनी वर्णित है। मेघदूत और पार्श्वचरित्रके कथानकमें आकाश-पातालका पार्थक्य है, तथापि मेघदूतके चरणोंको ले कर पार्श्वनाथका चरित्र लिखना कितना कठिन है, इसका अनुमान काव्यरचनाके मर्मज्ञ ही कर सकते हैं। ऐसी रचनाओंमें क्लिष्टता और नीरसताका होना स्वाभाविक है किन्तु 'पार्श्वाभ्युदय' इन दोनों दोषोंसे साफ बच गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इसकी रचना कविकुलगुरु कालिदासकी कविताके जोड़की है। अध्यापक के० बी० पाठकका कहना है—" -- The first place among Indian poets is alloted to Kalidas by consent of all Jinasena, however claims to be considered a higher genius than the auther of cloud Messenger (Meghaduta)" अर्थात् 'यद्यपि सब भारत

रणकी सम्मतिसे भारतीय कवियोंमें कालिदासको पहला स्थान दिया गया है, तथापि जिनसेन मेघदूतके कर्त्ताको अपेक्षा अधिकतर योग्य समझे जानेके अधिकारी हैं।"

जिनसौख्य सूरि—एक प्रधान श्वेताम्बर जैनाचार्य। ये जिनचन्द्रके शिष्य और जिनभक्तिके गुरु थे। जन्म सं० १७३८में, दीक्षा १७५१में, सूरिपद १७६३में और १७८० सम्वत्‌में इनकी मृत्यु हुई। चोपड़ गोत्रके पारिषमामोदासने इनके पद-महोत्सवमें ११०००) रुपये व्यय किये थे।

जिनस्तपन—अरहन्त-मूर्तिके अभिषेकको विधिविशेष। जैन सागारधर्मामृतकारका मत है कि मध्याह्न क्रियाके लिए श्रावकको पहले जिनस्तपन वा अभिषेक करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। तदनन्तर रत्न, जल, कुश और अग्निके द्वारा तर्पण आदिकी विधि करके, अभिषेक करनेकी भूमिको शुद्ध करें। फिर वहां स्तपनपीठ (अभिषेक करनेका सिंहासन) स्थापन करें। स्तपनपीठके चार कोनोंमें चार जलपूर्ण कलश एवं कुश स्थापन करें और घिसे हुए चन्दनसे उस पर 'श्री' 'ह्रीं' ये दो वर्ण लिख दें। अनन्तर श्रीजिनेन्द्रदेवकी मूर्ति स्थापन कर उनका स्तपन वा अभिषेक करना उचित है। (सागारधर्मामृत ६।२२)

मतान्तरमें चन्दनके बदले रञ्जित तण्डुलसे भी 'श्री' 'ह्रीं' लिखा जा सकता है।

जिनहर्ष—१ एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकार। ये पाटनके रहनेवाले थे। इन्होंने सं० १७२४में श्रेणिकचरित्र छन्दोबद्ध नामका एक हिन्दी पद्यग्रन्थ रचा है। २ एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थकर्ता। इन्होंने आठपंचाशिकाकी बालाबोध नामको एक टीका लिखी है।

ज़िना (अ० पु०) व्यभिचार, छिनाला।

जिनाधार (सं० पु०) एक बोधिसत्व।

जिनिस (अ० स्त्री०) जिंस देखो।

जिनिसवार (अ० पु०) जिंसवार देखो।

जिनेन्द्र (सं० पु०) जिनानामिन्द्रः जिनं इन्द्र वा। १ बुद्ध। २ तीर्थङ्कर।

जिनेन्द्रबुद्धि—काशिकावृत्तिविवरणपञ्जिका वा काशिकावृत्तिन्यास नामक ग्रन्थके रचयिता। ये काश्मीरके वराहमूल (वर्त्तमान बारमूल) नामक स्थानके रहनेवाले थे।

जिनेन्द्रभक्त—जैन-पुराण ग्रन्थोंमें इनको अचल भक्तिको खूब प्रशंसा की है। ये ताम्रलिप्त नगरमें रहते थे और बहुत धनाढ्य सेठ थे। आराधना कथाकोष नामक जैन ग्रन्थमें लिखा है—

पाटलीपुत्र नगरमें यशोध्वज नामक राजा राज्य करते थे जो बड़े धर्मात्मा और उदारचेता थे। किन्तु उनका पुत्र सुवीर बड़ा दुराचारी और चोरोंका सरदार था। एकदिन सुवीरको मालूम हुआ कि, ताम्रलिप्त नगरमें एक जिनेन्द्रभक्त नामक सेठ हैं और उनके मकानके सातवें मंजल पर जिन-चैत्यालयमें एक रत्नमयी जिनप्रतिमा है। सुवीर अपने लोभको न सम्हाल सका, उसने अपनी मण्डलीके लोगोंको बुला कर सब हाल कहा। उनमेंसे सूर्य नामक एक चोर बोल उठा—"मैं उस रत्न मूर्तिको ला सकता हूं।" सुवीरने उसे ताम्रलिप्त जानेको आज्ञा दे दी। सूर्यने ब्रह्मचारीका भेष धारण किया और ताम्रलिप्त जा कर ढोंग फैलाना शुरू कर दिया। सबके मुखसे इनकी प्रशंसा सुन कर जिनेन्द्रभक्त भी अपनी मित्रमण्डलीके साथ ब्रह्मचारीके दर्शनार्थ गये और छद्मवेशधारी सूर्यको मन्दिरकी वन्दनाके लिए अपने घर ले गये।

कुछ दिन बाद जिनेन्द्रभक्त विदेश जानेको तैयारियां करने लगे। उन्होंने उक्त छद्मवेशी ब्रह्मचारी पर चैत्यालयके पूजापाठ और रखवालीका भार अर्पण किया। सूर्यने अपने उद्देश्यकी पूर्ति होते देख उक्त प्रस्तावको मंजूर कर लिया।

एक दिन वह मौका पा कर आधी रातको रत्नमूर्ति ले कर वहांसे निकल पड़ा। मार्गमें थानेदारने चमचमाती हुई चीज ले जाते देख उसका पीछा किया। सूर्य चोर बहुत भागा, भागते भागते थक गया, पर थानेदारने उसका पीछा न छोड़ा। अन्तमें वह उन्हीं सेठके पास पहुंच कर "बचाओ! बचाओ!!" कह चिल्लाने लगा। जिनेन्द्रभक्तको उसकी दशा देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे विचारने लगे, 'यदि मैं सत्य बात कहे देता हूं, तो धर्मकी बड़ी निन्दा होगी और मेरा सम्यग्दर्शन भी दूषित होगा।' उन्होंने थानेदारसे कहा—'भाई! ये चोर नहीं हैं, मैंने ही इनसे प्रतिमाजी मंगवाई

थीं।" इस पर चामेदारने उसे छोड़ दिया। इसके बाद इन्होंने उसे धर्मोपदेश दे कर विदा किया।

(आराधनाकथाकोष)

जिनेश्वर (स० पु०) जिनानां ईश्वरः, ६ तत्। बुद्ध।

जिनेश्वर—१ मुनिरत्न सूरि (पूर्णिमागच्छ)के सहकारी गुरु। मुनिरत्न सूरि द्वारा १२५२ सम्वत्में ये सुधर्मके पट्टके लिए चुने गये थे।

२ जिनपतिके शिष्य और जिनप्रबोधके गुरु। जन्म १२४५में, दीक्षा १२५५में, सूरिपद १२७८में और १३३१ सम्वत्में इनकी मृत्यु हुई। दीक्षानाम वीरप्रभ था। ये लघु खरतर शाखाके प्रधान व्यक्ति और चन्द्रप्रभस्वामि चरितके कर्त्ता थे। इनके शिष्य जिनसिंहसूरिने उस शाखाकी (१३३१ सम्वत्में) स्थापना की थी।

जिनेश्वरदास—दिगम्बर जैन सम्प्रदायके एक विद्वान् और कवि। पटा जिलाके अन्तर्गत उस्मानगढ़ नामक स्थानमें वि० सं० १८११के पौष मासमें इनका जन्म हुआ था। इनकी जाति पद्मावतीपुरवाल थी और पिताका नाम उल्फतदास था। ये बड़े धर्मात्मा सदाचारी और परोपकारी व्यक्ति थे। आपने सुल्तानगढ़, कुचामन आदि मारवाड़के नगरोंमें जैन धर्मका प्रचार और हजारों भूले भटके जैनोंका उद्धार किया था। कुचामनमें इनके नामका एक विद्यालय स्थापित है। इन्होंने 'जैनधर्म प्रचारिणी सभा'की स्थापना की थी, जो अब भी अपना कार्य कर रही है। आप एक हिन्दी भाषाके कवि भी थे। इनके बनाये हुए हजारों धार्मिक भजन, पद और गीत अब भी मारवाड़में प्रचलित हैं। इन्होंने कई एक पद्य-ग्रन्थ भी बनाये हैं जैसे—नन्दीश्वरद्वीप-पूजा, सम्मेदशिखरपूजा-पाठ, दशलक्षण पूजा, रत्नत्रयपूजा, चतुर्विंशतिपूजा, बारह भावना नाटक, चेतनचरित्रनाटक, जिनेश्वरविलास (इसमें हजारों आध्यात्मिक भजन, दोहा इत्यादि हैं), जिनेश्वरपदसंग्रह आदि। वि० सं० १८०७में अषाढ़ कृष्णा ११मीको कुचामनमें इनकी मृत्यु हुई।

जिनेश्वर सूरि—१ चान्द्रकुलके वर्द्धमानके शिष्य तथा जिनचन्द्र, अभयदेव और जिनभद्रके गुरु। बुद्धिसागर इनके मित्र थे। खरतर-शाखा इन्होंसे उद्भूत हुई थी। १०८० सम्वत्में इन्होंने जावालपुरमें रहते समय अष्टकवृत्तिकी रचना की थी। ये चैत्यवासियोंके शास्त्रार्थ करनेके लिए बुद्धिसागरके साथ गुर्जर देशको गये थे। उस सम्वत्में अणहिलपुरके दुर्लभराजकी सभामें सरस्वती भाण्डागारसे जो दशवैकालिकसूत्र लाया गया था उसमेंसे साध्वाचार सम्बन्धी कई एक श्लोकोंके पढ़ने पर चैत्यवासियोंके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ; जिसमें जय लाभ करके इन्होंने राजासे खरतर विरुद लाभ किया था। इन्होंने उस गुजरात राजके राजसभामें पञ्चलिङ्गिप्रकरण तथा १०८२ सम्वत्में (आशापल्लीमें) लीलावतीकथा, डिण्डिवानक ग्राममें कथानककोष और वीरचरित नामके श्वेताम्बर जैनग्रन्थ रचे थे। ये ब्राह्मण सोमके पुत्र थे। इनका आदि नाम श्रीधर था।

२ अभयदेव सूरिके शिष्य और अजितसेन सूरि राजगच्छ मध्यमा कोटिकगणके गुरु। ये माणिक्यचन्द्रसे सात पीढ़ी पहलेके और राजा मुञ्जके समसामयिक (१०५० ई०के) हैं। मि० क्लाटका कहना है, जिनेश्वर सूरि तथा अजितसिंह सूरिके गुरु मुञ्जराजकी सभाके ध्यानेश्वर सूरि दोनों एक ही व्यक्ति हैं।

जिनोत्तम (सं० पु०) जिनानां उत्तमः ६ तत्। बुद्ध।

जिन्द—हिन्दीके एक कवि।

जिन्दपीर—एक मुसलमान फकीर। सिन्धुप्रदेशमें बाखर नगरसे कुछ उत्तरमें नदी मध्यस्थ एक द्वीपमें इनको कब्र है। सिन्धु-प्रदेशके क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी इस पीरकी पूजा करते हैं। इनके पुजकोंने बहुव्यय करके कब्रके ऊपर एक बड़ा मठ बनवा दिया है। उस मठमें हिन्दू मुसलमान दोनों तरहके बहुत यात्री आया करते हैं।

जिन्दुक—शङ्करके समसामयिक एक मीमांसक।

जिन्नर—गूजर राजपूतोंकी एक शाखा।

जिब्राल्टर (Gibraltar)—भूमध्य सागर पश्चिमभागके प्रवेश पथ पर अवस्थित ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत एक उपनिवेश और दुर्ग। समग्र भूखण्ड लम्बाईमें ३ मीलसे भी कम और चौड़ाईमें ३ मीलसे ३ मील तक है। तारीक-बेन-जैद' नामक किसी विजयीने प्रथम पदार्पण किया था 'जेबेल तारीक' कहा गया था, उसीसे 'जिब्राल्टर' नामकी उत्पत्ति

किन्तु सफलता न हुई। १७७८-१७८२ ई०में जब अमेरिकाके उपनिवेशोंमें इङ्गलैण्डसे विद्रोह कर स्वाधीनता की घोषणा की, तब मौका पा कर स्पेनने पुनः जिब्राल्टर अधिकार करनेकी कोशिश की। स्पेनने करीब चार वर्ष तक जिब्राल्टरमें भीषण अवरोध जारी रक्खा जिससे जिब्राल्टरके अधिवासियोंके नाकोंदम आ गई। आखिर १७८३ ई० के ११ मार्चको अवरोधका अन्त हुआ। तबसे अब तक जिब्राल्टर ब्रिटिश गवर्मेण्टके अधिकार में है। अंग्रेजोंने यहांकी उन्नतिके लिए हर तरहसे कोशिश की है और कर रहे हैं।

जिमनास्टिक (अं० पु०) एक प्रकारकी कसरत, अङ्गरेजी कसरत।

जिमाना (हिं० क्रि०) भोजन कराना, खाना खिलाना।

जिमींदार (हिं० पु०) जमींदार देखो।

जिम्भ (सं० स्त्री०) जीभका फूलना।

जिम्भमोचन (सं० पु०) भेक, मेंढक, बेंग।

जम्भमम्भ (सं० पु०) खदिर, खैर, कत्था।

जिम्भा (सं० स्त्री०) जृम्भिका जंभाई।

जिम्मा (अ० पु०) १ उत्तरदायित्वपूर्ण प्रतिज्ञा, जवाबदेही। २ संरक्षा, सुपुर्दगी, देख रेख।

जिम्मादार (अ० पु०) जिम्मावार देखो।

जिम्मादारी (अ० स्त्री०) जिम्मावारी देखो।

जिम्मावार (फा० पु०) उत्तरदाता, जवाबदेह।

जिम्मावारी (फा० पु०) १ उत्तरदायित्व, जवाबदेही। २ संरक्षा, सुपुर्दगी।

जिम्मेदार (फा० पु०) जिम्मावार देखो।

जिम्मेदारी (फा० पु०) जिम्मावारी देखो।

जिम्मेवार (फा० पु०) जिम्मावार देखो।

जिम्मेवारी (फा० पु०) जिम्मावारी देखो।

जिम्नु—अयोध्या प्रदेशमें प्रवाहित राप्ती नदीकी एक शाखाका नाम।

जियगञ्ज—बङ्गालके मुर्शिदाबाद जिलेमें लालबाग उपविभागका एक गांव। यह अक्षा० २४ १५´ उ० और देशा० ८८ १६ पू०में भागीरथीके वाम तट पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८०११ है। यहां एक [illegible] चावल, दाल, रेशम, शक्कर और कुछ रुई रफ्तनी की जाती है। जमींदारोंके बड़े बड़े मकान हैं। इसके सामने नदीके उस पार आजीमगंजमें ईष्ट इण्डियन रेलवेका ष्टेशन है।

जियादती (फा० स्त्री०) ज्यादती देखो।

जियादा (फा० वि०) ज्यादा देखो।

जियाभरैली—आसामके दरङ्ग जिलेकी एक नदी। यह ब्रह्मपुत्र नदीकी उपनदी है। बारहों महीने इसमें नाव आ जा सकती है।

जियान (अ० पु०) क्षति, नुकसान, घाटा।

जियापोता (हिं० पु०) पुत्रजीव वृक्ष, पतजियाका पेड़।

ज़ियाफत (अ० स्त्री०) १ आतिथ्य, मेहमानदारी। २ भोज, दावत।

ज़ियारत (अ० स्त्री०) १ दर्शन। २ तीर्थदर्शन।

ज़ियारतगाह (फा० पु०) १ तीर्थ, पवित्रस्थान। २ दरबार, दरगाह। ३ दर्शकोंकी भीड़।

ज़ियारती (फा० वि०) १ दर्शक। २ तीर्थयात्री।

जिरगा (फा० पु०) १ समूह, झुंड। २ मण्डली, जत्था।

जिरङ्ग—१ आसामके खासी पर्वतका एक छोटा राज्य। जनसंख्या प्रायः ७२१ है। यहां चावल, लाल मिर्च, रवर वाली मिर्च, कपास आदि उपजते हैं।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके रेवाकांठा जिलेके मध्यवर्ती एक छोटा राज्य। यहांके अधिकारी म खेरा मेहवा हैं।

जिरञ्जगढ़—शृङ्गारगढ़का प्राचीन नाम।

जिरणकामवोम्नो—बम्बईके रेवाकांठा जिलेकी एक छोटी रियासत।

जिरह (हिं० पु०) १ हुज्जत, चुनुर। २ बातोंकी सत्यताकी जांच करनेकी पूछ ताछ। ३ वह भूसकी जो बैलमें ऊपर नीचे मथने गांठनेके लिए लगी रहती है।

ज़िरह (फा० स्त्री०) वर्म, कवच, बकतर।

ज़िरही (हिं० वि०) कवचधारी।

ज़िराअत (अ० स्त्री०) कृषिकर्म खेती।

जिराफा—[illegible] देखो।

जिरिया (हिं० पु०) जीरेकी तरह पतला और लम्बा एक प्रकारका धान।

ज़िलादार (फा० पु०) १ सजावल, सरबराहकार। २ जमींदारसे नियुक्त किये जानेवाला लगान वसूल करनेका अफसर। ३ नहर, अफीम आदि सम्बन्धी किसी हलकेमें काम करनेवाला छोटा अफसर।

ज़िलादारी (फा० स्त्री०) जिलेदारका काम।

जिलाना (हिं० क्रि०) १ जीवित करना, जीवन देना। २ प्राण रक्षा करना, मरने न देना। ३ मूर्छित धातुको पुनः जीवित करना।

जिलासाज़ (फा० पु०) वह जो हथियारों पर ओप चढ़ाता हो, सिकलीगर।

जिलिङ्ग सिरिङ्—छोटा नागपुरका एक शहर। यह लोहारडागा नगरसे ७१ मील दक्षिण-पूर्वमें अक्षा० २३´ ११´ उ० और देशा० ८५´ ६१´ पू०के मध्य अवस्थित है।

जिलिङ्गा—छोटा नागपुरके अन्तर्गत हजारीबाग़ जिलेका एक पहाड। इसकी ऊंचाई समुद्रपृष्ठसे ३०५७ फुट और आस-पासकी भूमिसे १०५० फुट है। इसके दाहनी तरफ उपत्यका है, जिसमें चायकी खेती होती है।

जिलेबी (हिं० स्त्री०) जलेबी देखो।

जिल्लोपत्तन—राजपूतानाके अन्तर्गत जयपुर राज्यके तोरवती जिलेका एक शहर।

जिल्का—अहमदाबाद जिलेकी एक छोटी नदी। इसके किनारे प्राचीन भीमनाथ महादेव तथा बहुतसे प्राचीन मन्दिरादि हैं।

जिल्द (अ० स्त्री०) १ चमड़ा, खाल, खलड़ी। २ त्वचा, ऊपरका चमड़ा। ३ पुस्तककी एक प्रति। ४ भाग किसी पुस्तकका पृथक् सिला हुआ खण्ड। ५ वह पट्ठा या दफ़्ती जो किसी किताबकी सिलाई जुजबंदी आदि करके उसके ऊपर उसकी रक्षाके लिए लगाई जाती है।

जिल्दगर (फा० पु०) जिल्दबंद।

जिल्दबंद (फा० पु०) जिल्द बांधनेवाला।

जिल्दबंदी (फा० स्त्री०) पुस्तकोंको जिल्द बांधनेका काम, जिल्दबंधाई।

जिल्दसाज़ (फा० पु०) जिल्दबंद।

जिल्दसाज़ी (फा० स्त्री०) किताबों पर जिल्द बांधनेका काम, जिल्दबंदी।

जिल्दी (अ० वि०) त्वक् सम्बन्धी, चमड़ेसे सम्बन्ध रखनेवाला।

जिल्पी अमनेर—बरार प्रदेशके अन्तर्गत अमरावती जिलेके मोरसी तालुकका एक ग्राम। यह गाँव जाम और वर्धा नदीके सङ्गमस्थान पर जलालखेड़ शहरके दूसरे पारमें अवस्थित है। इसको अमनेर भी कहते हैं।

जिल्लत (अ० स्त्री०) १ अनादर, तिरस्कार, बेइज्जती। २ दुर्दशा, दुर्गति, हीन दशा।

जिल्लिक (सं० पु०) दक्षिणस्थित देशभेद, दक्षिणमें एक देशका नाम। (भारत ६।९ अ०)

जिल्ली (हिं० पु०) आसाममें होनेवाला एक प्रकारका बाँस। यह घरकी छाजन आदिके काममें आता है।

जिल्लेल—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत कडापा जिलेके प्रोद्दातुर तालुकका एक ग्राम। यहां खाडीके किनारे एक प्राचीन अस्पष्ट शिलालेख है।

जिल्लेश—दक्षिणदेशके एक प्राचीन राजा। मन्द्राज प्रदेशके रावूतुपल्ली, पामुलपाड़ु आदि स्थानोंमें इनके खोदित दानपत्र मिलते हैं।

जिल्लमुड्डी (जिलामुड्डी)—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत नेल्लूर जिलेके कन्दुकुड़ तालुकका एक ग्राम। गाँवके उत्तर एक जनार्दनदेव और दूसरा आञ्जनेयदेवके प्राचीन मन्दिर हैं।

जिल्हीर (हिं० पु०) अगहनमें काटा जानेवाला एक प्रकारका धान।

जिवाजिव (सं० पु०) चकोरपक्षी।

जिष्णु (सं० पु०) जयति जिष्-ग्स्नु। ग्लाजिस्थश्चग्स्नुः। पा ३।२।१३९। १ विष्णु। २ इन्द्र। (भारत ५।७०।१३) ३ अर्जुन, युद्धस्थलमें साहस पूर्वक कोई अर्जुनके सामने नहीं आ सकते तथा वे अत्यन्त दुर्धर्ष शत्रुको जय करते थे इसीलिये अर्जुनका नाम जिष्णु हुआ हो। ४ सूर्य। ५ वसु। ६ भौत्य मनुके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ७।८८) (त्रि०) ७ जयशील, जीतनेवाला, फतेहमंद।

जिष्णुगुप्त—नेपालके एक राजा। ये सम्भवतः अंशुवर्माके वंशधर और उनके बादके राजा हैं। इनके समयमें खोदित शिलालेख भी मिलते हैं। उनके पढ़नेसे मालूम होता है कि, जिष्णुगुप्त नेपालके स्वाधीन राजा नहीं थे। इन्होंने लिच्छविवंशीय मानगृहाधिपति ध्रुवदेव-

को अपना प्रभु स्वीकार किया है। बहुतों का अनुमान है कि, इसी समय नेपाल राज्य दो भागोंमें विभक्त हुआ था। एक ओर निच्छविक गोत्र राजवंश और दूसरी ओर अंशुवर्मा और जिष्णुगुप्त आदि उनके अधीन राज्य करते थे।

जिस (हिं० वि०) 'जो'का वह रूप जो उसे विभक्ति युक्त विशेष्यके साथ आनेसे प्राप्त होता है।

जिसिम (अ० पु०) जिस्म देखो।

जिस्ता (हिं० पु०) जस्ता देखो।

जिस्म (फा० पु०) शरीर, देह।

जिह (फा० स्त्री०) ज्या, धनुषकी डोरी।

जिहन (अ० पु०) बुद्धि धारणा समझ।

जिहाद (जहाद) (अ० पु०) वह युद्ध जो इस्लाम धर्मके विस्तारके लिए किया जाता है। मुसलमान शास्त्रके अनुसार जिस जातिके साथ धर्मयुद्धमें प्रवृत्त होना हो, पहले उस जातिको सत्यधर्ममें (मुसलमान धर्ममें) दीक्षित होनेके लिए आदेश देना कर्तव्य है। इस पर यदि वे मुसलमान धर्ममें दीक्षित होने वा जिजिया कर देना स्वीकार न करें, तो मुसलमान उन पर आक्रमण कर उनका सर्वस्व ले सकते हैं। पराजित अधिवासी लोगोंके प्राण तक विजेता मुसलमानोंके इच्छाधीन हैं। वे चाहें तो धर्मानुसार विधर्मियोंके प्राण तक ले सकते हैं। इस धर्मयुद्धमें कोई मुसलमान मरे, तो उसको अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

किस जगह जिहादकी घोषणा करनी चाहिये इस विषयमें मतभेद पाया जाता है। सुन्नियोंका मत है कि, विधर्मी लोग यदि मुसलमान होना या जिजिया देना अस्वीकार करें और शत्रुको पराजित करनेके लायक उनके पास सेना रहे तथा यदि उनके साथ दूसरी कोई सन्धि न हो तो शत्रुके साथ जिहाद करना चाहिये। किन्तु शियाओंका यह कहना है कि, उन सबके रहने पर भी यदि इमाम या उनके नियोजित कोई व्यक्ति उपस्थित न हो, तो जिहादकी घोषणा नहीं की जा सकती। वे इस समय अदृश्य हैं, इसलिए वर्तमान कालमें जिहाद असम्भव है। इमामोंने मुसलमान सेनाके साथ एक कालमें यावित अधि कि कर बाहुबलसे मुसलमान धर्म का प्रचार किया था। इस तरहका मत पूर्वक धर्म विस्तार, दूसरे किसी भी धर्ममें नहीं पाया जाता।

मुसलमान लोग समस्त पृथिवीको दो भागोंमें विभक्त करते हैं। मुसलमानों द्वारा अधिकृत भूमि दर-उल्-इस्लाम और बाकीकी समस्त भूमि दर-उल्-हार्ब कहलाती है। जो पृथिवी किसी समय दर-उल्-इस्लाम थी और अब वह विधर्मी राजाके हस्तगत है, तो उसके विरुद्ध जिहादकी घोषणा नहीं की जा सकती।

भारत गवर्मेण्टके साथ अरब, पारस्य अफगानिस्तान आदि मुसलमान राज्यका परस्पर सन्धिबन्धन रहनेके कारण भारतमें मुसलमान राजाओंके लिए जिहादकी घोषणा करना निषिद्ध है। इसलिए जिहादके नियमानुसार समग्र मुसलमान जाति उसमें योगदान करनेको बाध्य नहीं। यह कहना फिजूल है कि, भारतवर्षीय मुसलमान अपने राज्यमें सुरक्षित हो कर वास कर रहे हैं। ऐसी दशामें यदि वे जिहाद घोषणा करें, तो राजद्रोही समझे जायंगे।

जिहाल (अ० वि०) गमनीय, जाने योग्य।

जिहालक (अ० पु०) अज्ञानके कारण विनाश अवस्था।

जिहालत (अ० स्त्री०) मूर्खता अज्ञानता।

जिहासा (सं० स्त्री०) हा सन्-भावे अ। त्याग करनेकी इच्छा।

जिहासु (अ० वि०) हातुमिच्छुः। हा-सन्-उ। त्याग करनेकी इच्छा करनेवाला।

जिहीर्षा (स० स्त्री०) हर्तुमिच्छा सन् भावे अ। हर लेनेकी इच्छा, छीननेकी इच्छा।

जिहीर्षु (स० वि०) हर्तुमिच्छुः, सन् भावे उ। हरण करनेकी इच्छा करनेवाला।

जिहोनिया—एक राजचक्रवर्ती, जनियसके पुत्र। ये कुजुलकर कदफिस राजाके अधीन थे। पञ्जाबके रावलपिण्डीके निकटस्थ माणिक्यैल नामक स्थानके ताम्रपत्र पर जिहोनियाके नामके सिक्के मिले हैं।

जिहोवा—बाईबिल वा इञ्जीलमें कहे गये इसराइलके भगवान्। जिहोवा शब्दका अर्थ ज्यय है। यह शब्द Job (अर्थात् आत्मा) और Havah (अर्थात् विद्यमान

रहना) इन दो शब्दोंके संयोगसे उत्पन्न हुआ है। इस का अर्थ सर्वदा जो मौजूद है अर्थात् सनातन है। इसीलिए इसके वर्णकालमें (Rev. 1: 4; 11: 17) कहा गया है कि 'He who is, and who was and who is to come" अर्थात् जो है, जो थे और जो भविष्यत्में आ कर विद्यमान रहेंगे।

कहा जाता है, कि १५१८ ई०में पेट्रस गलाटिनसने पहले पहल इस शब्दका व्यवहार किया था। परन्तु यह बात विश्वासयोग्य नहीं क्योंकि १४वीं शताब्दीके पहले भागकी पोथियोंमें इस नामका उल्लेख दृष्टिगत होता है। टिन्डेलने जो १५३० ई०में Pentateuch का अङ्गरेजी अनुवाद प्रकाशित किया था, उसमें जिहोवा शब्द स्पष्टत: व्यवहृत हुआ है। आधुनिक विद्वानोंका कहना है कि जिहोवाका प्रकृत उच्चारण 'इयाह्' है।

'ओल्ड टेष्टामेण्ट' में भगवान्‌का एकमात्र नाम 'जिहोवा' लिखा गया है विद्वानोंने गिन कर देखा है कि यह नाम 'बाइबिल'में छह हजार बार व्यवहृत हुआ है।

जिहोवा शब्दसे भगवान्‌की सत्ता मालूम होती है, किन्तु दार्शनिक प्रणालीसे सिर्फ वर्तमान सत्ताका और ऐतिहासिक प्रणालीसे सामयिक विकाशमात्रका बोध होता है। विद्वानोंमें इस विषयका मतभेद पाया जाता है। 'प्रोटेष्टण्ट'-मतावलम्बी लेखकोंका कहना है कि जिहोवा नामको ऐतिहासिक रीतिसे ग्रहण करना चाहिए। इस विषयमें वे निम्नलिखित युक्तियोंसे काम लेते हैं। (क) प्राचीनकालके लोगोंमें दार्शनिक सत्ताकी गूढ़ रहस्यको समझनेकी शक्ति नहीं थी। किन्तु हमें मिसरके इतिहासके पढ़नेसे मालूम हो सकता है कि अतिप्राचीनकालमें भी भगवान्‌के विषयमें मिसरके लोगोंकी उच्च धारणा थी। सम्भवतः मुसाके समयमें यह नाम दार्शनिक रूपमें व्यवहृत नहीं हुआ, बादमें गृष्टीय धर्म तत्त्वविदोंने उसकी सूक्ष्म व्याख्या की थी। (ख) हिब्रूका क्रियापद Havah या Hayah गतिवाचक है, स्थिरत्व या सनातनत्ववाचक नहीं है। किन्तु इस युक्तिके उत्तरमें हिब्रू भाषाके विशेषज्ञ कहते हैं कि उससे स्थायिभावत्व भी समझा जा सकता है। सुतरां मध्ययुगके यूरोपीय नैयायिकगण जिहोवाके विषयमें जो युक्ति तर्ककी अवतारणा करते हैं, वह समीचीन नहीं मालूम होती। उन लोगोंका कहना है कि असीम जीव ही गुणोंके द्वारा सीमावद्ध है; किन्तु भगवान् सिर्फ उसकी सत्तासे ही प्रकट हो सकते हैं। वे पवित्र और सरल है—वे ही आदि और अन्त हैं। 'Alpha and omega, the begining and the end......Who is, and who was, and who is to come, the Almighty" (Apoc. 1, 8)

नामकी उत्पत्ति—Von Bohlen, von der, Alm आदि विद्वानोंका कहना है कि यहूदियोंने जिहोवा नाम कनानाइट जातिसे ग्रहण किया था। किन्तु Kuenen और Baudissin आदि मनीषियोंने इसका प्रतिवाद किया है। 'ओल्ड टेष्टामेण्ट'के देखनेसे तो यही मालूम होता है कि जिहोवा सर्वदासे कनानाइट जातिके विरुद्ध आचरण करते आये हैं—उक्त जातिके शत्रु होते हुए भी वे उनके देवता थे यह बात कयासमें नहीं आती। एक श्रेणीके विद्वानोंका अभिमत है कि मिसर देशमें ही जिहोवा नामकी उत्पत्ति हुई है। मुसाने मिसरमें ही शिक्षा पाई थी; इसलिए यह मत यथार्थ भी हो सकता है। किन्तु इस विषयमें अधिक प्रमाण नहीं मिलते। पण्डितप्रवर 'रोथ'का कहना है कि जिहोवा नाम प्राचीन चन्द्रके देवता 'इओ'से उत्पन्न हुआ है। अन्य श्रेणीके विद्वानोंका सिद्धान्त है कि 'जाह' नामक बबिलनके देवतासे 'जिहोवा'की उत्पत्ति हुई है। किन्तु यह मत समीचीन नहीं समझा जाता।

आधुनिक सामान्य मत यह है कि उक्त पवित्र नाम किसी प्रकार रूपान्तरित आकारमें मुसाके पहले यहूदियोंमें प्रचलित था। होरेब पर्वतके ऊपर भगवान्‌ने मुसाके समक्ष उपस्थित हो कर अपना यथार्थ नाम 'जाहेब' या 'जिहोवा' प्रकट किया था। बाइबिलके सबसे पुराना अंशमें जिहोवाका १५६ बार उल्लेख है। मुसाकी माताका नाम जोचावेद था; इसके प्रथम अंशमें जिहोवाका माहात्म्य है। भगवान्‌ने पहले पहल मुसाको ही अपना नाम बतलाया था, इसमें सन्देह हो सकता

जिह्वल (सं॰ त्रि॰) जिह्वेन जिह्वाया लाति गृह्णाति परद्रव्याणीति जिह्व-ला-क। भोजनलोलुप, चट्टू, चटोरा।

जिह्वा (सं॰ स्त्री॰) जयति वसमनया जि-वन्। शेवयह्वजिह्वाग्रीवाप्वामीराः। उण् ११५४। वन् प्रत्ययेन हुगागमे निपातनात् साधुः। रसग्रहणेन्द्रिय अर्थात् वह इन्द्रिय जिसके द्वारा कटु, अम्ल, तिक्त, कषाय, मधुर आदि रसोंका आस्वादन हो। साधारण भाषामें इसको जीभ या जबान कहते हैं। इसके संस्कृत पर्याय—रसज्ञा, रसना, रसाल, मधुस्रवा, रसिका, रसाह्वा, रसन, जिह्म, रसालोला, रसाला, रसला और ललना। इसका अधिष्ठाता देवता प्रचेता है। अग्निकी जिह्वा सात प्रकारकी होती है, जैसे—काली कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और विश्वरूपी। (मुण्डकोपनि॰)

अधिकांश प्राणियोंको पांच प्रधान इन्द्रियां हैं; भिन्न भिन्न इन्द्रियों द्वारा भिन्न भिन्न कार्य होता है। इन पांच इन्द्रियोंमें जिह्वा भी एक है; इसके द्वारा रसका स्वाद ग्रहण किया जाता है। मनुष्यको जिह्वा मांसमय और मुख-विवरके बीचमें होती है, जिसको मनुष्य इच्छानुसार इधर उधर हिला डुला सकता है। किसी पदार्थके खाते समय अथवा मुंहमें किसी खाद्य पदार्थके रहने पर तथा बात कहते समय जिह्वा नाना दिशाओंमें चलती रहती है।

जिह्वाका काम अन्यान्य इन्द्रियोंसे कुछ जटिल है; इससे दो कार्य सम्पन्न होते हैं। इसके द्वारा हम आस्वाद ग्रहण, शब्दोंका उच्चारण और द्रव्य स्पर्श कर सकते हैं। जिह्वाका ऊपरी हिस्सा एक सूक्ष्म त्वक्से ढका है। इस स्थानसे किसी द्रव्यके आस्वाद ग्रहण अथवा स्पर्शन द्वारा उसके गुण अवगुण समझनेको शक्ति उत्पन्न होती है तथा जिह्वाके मांसपिण्डके अभ्यन्तर प्रदेशसे इसकी चालना-शक्तिकी उत्पत्ति होती है।

चक्षु द्वारा देख कर जिह्वाकी वाह्य आकृति प्रकृतिकी परीक्षा की जा सकती है। जिह्वाके प्रायः समस्त अंग अत्यन्त सूक्ष्म मांस पेशी द्वारा बने हैं। ये मांसपेशिया विभिन्न दिशाओंमें संस्थापित और सम और समान मापसे तरतीबवार सजी हुई है। जिह्वा-अधिकांश मांस पेशीके द्वारा शरीरके अन्यान्य अंशोंसे जा मिली है। इसका ऊपरी हिस्सा पृथक् चमड़ेसे और नीचेका हिस्सा मुख और गालोंके चमड़ेसे ढका है। यह एक बहुत ही सूक्ष्म झिल्लीसे ढकी है, यह झिल्ली रसनासे निकली हुई लारसे सर्वदा भोगी रहती है। नीचेको झिल्ली बहुत ही पतली, चिकनी और स्वच्छ है। मध्यस्थानसे जिह्वाके अग्रभाग तक एक ऊंची नस है। जिह्वाके ऊपरको ओर आसपासकी चमड़ी मोटी तथा नीचेकी अपेक्षा अधिक छिद्रयुक्त या कोषमय है। इसी चमड़ी पर जोभके उभार या कांटे रहते हैं और इसी अंशसे हमको समस्त द्रव्योंका स्वाद मालूम पड़ता है। जिह्वाका निम्नभाग कुछ मांसपेशियों द्वारा अन्यान्य अंगके साथ संयुक्त होनेके कारण यह नियमित रूपसे हिल डोल सकती है और इच्छानुसार विभिन्न आकृतियोंमें परिणत की जा सकती है। मांसपेशियोंके विभिन्न स्तरोंमें यथेष्ट परिमाणमें चर्बीयुक्त अंश और श्वेत पोतवर्णकी पेशियां हैं, जो कुछ शिरा, स्नायु और धमनीके साथ संयुक्त हैं।

जिह्वाके शेषभागकी ओर जितने अग्रसर होते हैं, उतने ही कांटे कम दिखलाई देते हैं तथा अग्रभाग और आसपासमें कांटे बिल्कुल नहीं दीखते। यह कांटे तीन प्रकारके हैं। एक तरहके कांटे ऐसे हैं, जो साधारणतः ७ या ८ दिखलाई देते और २०से ज्यादा वा ३से कम नहीं होते। ये कोणाकोणी दो श्रेणियोंमें सिलसिलेवार होते हैं। झिल्ली पर ये जहां जहां होते हैं, वहां वहां झिल्ली कुछ नीची होती है। इस प्रकारके कांटोंको अंग्रेज विद्वान् मगनी (Magnee) कहते हैं।

द्वितीय प्रकारके कांटोंकी संख्या पहलेसे अधिक है, जो उनसे छोटे हैं। इन कांटोंकी आकृति एक प्रकारकी नहीं होती—कोई अर्द्धचन्द्राकार, कोई नलके आकारके और कोई बहुत बारीक नुकीले होते हैं। यह कुछ चिपटे होते हैं, अंग्रेजीमें इनको लेण्टिकुलर (Lenticular) कहते हैं। जिह्वाके और सब कांटोंको कोनिकल (Conical) अर्थात् शिखाकार कहते हैं।

जिह्वाके कुछ भिन्न भिन्न पेशियों और सूक्ष्म पेशी सूत्रोंके सिवा कुछ पेशीगुच्छ हैं। इन पर मांसपेशीको क्रिया होनेसे जिह्वाके मूलदेशको अस्थियां चलती हैं। जिह्वा भिन्न भिन्न तीन जोड़ी स्नायुओंके साथ जुड़ी हुई है।

१म कैङ्क स्नायु—ये जिह्वाकी मांसपेशियों पर सब जगह फैले हैं। इनके द्वारा सञ्चालनशक्ति उत्पन्न होती है। इन स्नायुओंके सङ्कुचित अथवा विच्छिन्न हो जाने पर जीभ हिलाई नहीं जा सकती किन्तु उसकी इन्द्रिय शक्ति नष्ट नहीं होती।

२य ग्रैव-शाखा स्नायु (इसको कभी इसको स्पर्श स्नायु भी कहते हैं)—इन स्नायुओंसे शीत उष्णताका ज्ञान और स्पर्शज्ञान होता है। ये जिह्वाके अग्रभागके पास ज्यादा हैं और इस अंशका इन्द्रिय-ज्ञान भी अन्यान्य अंशोंसे अधिक है।

३य आस्वाद स्नायु—इसके कुछ अंश जीभके साथ मिले हैं। इन स्नायुसे जीभमें आस्वाद-शक्ति आती है।

द्रव्यके किस गुणसे आस्वादका ज्ञान होता है उसका अभी तक निश्चय नहीं हुआ। घ्राणेन्द्रियके साथ आस्वादेन्द्रियका कुछ मेल है। उत्तेजक द्रव्यके होने पर इन्द्रिय शक्ति बढ़ती है। ज्यादा स्वाद पानेके अभिप्रायसे मनुष्य चीजोंके साथ जीभको दाबता और एक प्रकारका शब्द करता है। दो तरहकी दो चीजोंके खानेसे, अन्तमें जो खायी जाय उसका स्वाद ज्यादा मालूम होता है। हमारे आँखोंकी बातें भी इसी तरहकी है। पहले एक रङ्गको देख कर पीछे यदि दूसरा एक रङ्ग देखा जाय, तो अन्तमें देखा हुआ रङ्ग ही आँखोंमें ज्यादा असर डालेगा।

जिह्वाके ऊपर, आसपास और नीचेके पूर्ववर्ती अंश अन्य किसी अंशके साथ संयुक्त नहीं हैं परन्तु अन्यान्य अंश श्लेष्मिक झिल्लियों द्वारा निकटवर्ती पेशियोंके साथ संयुक्त हैं। जो जो स्थान उन झिल्लियोंके द्वारा सुसम्बन्धित अन्यान्य स्थानोंके साथ जुड़े हैं उन उन स्थानोंमें कई एक तह हैं। इन तहोंमें सूक्ष्म पेशीसूत्र हैं जो जीभको अन्य स्थानके साथ संयुक्त करनेके लिए बन्धनस्वरूप हैं। प्रधान पर्दे या तहको जीभकी लगाम (Frolinum brelle) कहते हैं। इसके रहनेसे ही जीभका आगेका हिस्सा मुंहके भीतर पीछेकी ओर ज्यादा फिराया नहीं जा सकता। किसी किसीका यह बन्धनसूत्र (डोरा) जीभके अग्रभाग तक विस्तृत होता है। जिन लड़कोंके ऐसा होता है, वह बात नहीं कह सकता और दाँतसे चबाना भी उसके लिए दुष्कर है। यह डोरा या जीभकी लगामको काट देनेसे बालकको जिह्वा स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त होती है। अन्यान्य परत उपजिह्वा तक विस्तृत है। उपजिह्वा एक कोमल सूत्रास्थिमय पत्र है। यह श्वासनालीका द्वार स्वरूप है तथा श्वास लेते समय कुछ हटती और फिर अपनी जगह पर आ जाती है। इसके बन्धनोंमें दो तह हैं जिनको गलोदारका स्तम्भ कहते हैं, इस जगह सु अविधार कुछ अप्रशस्त है। जिह्वापृष्ठके पीछेकी तरफ निम्नप्रदेशमें कई एक बड़ी बड़ी ग्रैन्थिक वर्तिका हैं, जो लम्बी और समस्त नली तक विस्तृत हैं। इस स्थानसे रस निकल कर जीभको हर वक्त भिगोये रखती है। नीचेकी तरफ जीभके अग्रभागसे लगा कर लगाम तक जो एक लम्बी लकीर भी है, वह ऊपरकी अपेक्षा कुछ गहरी है; इसके दोनों बगल कुछ नसें हैं और जीभके अग्रभागके नीचे ही एक ग्रैन्थिक ग्रन्थि-गुच्छ है। यूरोपमें यह ग्रन्थि गुच्छ नाक गुच्छ कहलाता है क्योंकि १६८० ई०में नाक (Nuck) साहबने इसका आविष्कार किया था। जीभके पीछेकी तरफका आकार चिपटा और बगलमें मूलाकृतिके पास कुछ विस्तृत है। जीभकी पेशियाँ दो तरहकी हैं। एक तो बाह्यपेशी, जिनके द्वारा जीभका अन्य स्थानके साथ सम्बन्ध है, और यह उन उन स्थान पर आ सकती है तथा दूसरी अभ्यन्तर पेशी सुव्यन-इसीसे जीभ बनी है और इसीके द्वारा जीभका एक अंश दूसरे अंश पर आ सकता है।

मनुष्योंकी जिह्वाके साथ पशुओंकी जिह्वाका कुछ सादृश्य है। जो पशु पागुर (रोमन्थ) करके खाते हैं, उनकी जीभकी आकृति [illegible] भाँति है। कुत्ता और पिपीलिकाभक्षोंकी जीभ बहुत लम्बी होती है। कुत्तोंकी जीभ उनके खाद्य-पदार्थ चाटनेके लिए एक प्रधान और विशिष्ट उपाय है। पिपीलिका भक्षियोंकी जीभ बहुत लसीली होती है, ये पीपिलिका स्तूपके भीतर जीभ घुसेड़ देते हैं जिससे पिपीलिकाएँ उनकी जीभमें सट कर मुखमें चली जाती हैं।

मार्जार जातीय पशुओंकी जीभमें शिखाकार कांटे लगे होते; उनके कांटे टेढ़े, कड़े और बड़े होते हैं।

इसके द्वारा उक्त जातीय पशु शरीरके लोमोंको साफ और हड्डियोंको तोड़ सकते हैं। स्तन्यपायी जीवोंके सिवा अन्य प्राणियोंकी जिह्वा स्वादेन्द्रिय नहीं है।

शम्बूक जातीय प्राणियोंमें एक प्रकारका क्षुद्र स्थूल शम्बूक है, जिसकी जिह्वा एक पतले, लम्बे और अग्रग्रस्त चमड़ेसे बनी है इसका पूर्ववर्त्ती अग्रभाग नलकी भाँतिका है। इस चमड़ेके ऊपर छोटे छोटे दाँतोंकी तरह उभार देखनेमें आते हैं, जो भिन्न भिन्न वर्गोंके जीवोंके भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं।

जिह्वाके द्वारा स्वादग्रहण, घर्षण, भक्ष्यद्रव्यके साथ लाला मिश्रण, गलाधःकरण और वाक्यकथन आदि कार्य होते हैं। मनुष्य और वानरोंके सिवा अन्यान्य प्राणी जीभसे द्रव्यादि धारण करते, चूसते और ग्रास ग्रहण करते हैं। स्थलके शम्बूक जीभसे भक्षद्रव्यको चूर्ण करते हैं।

जीभमें प्रदाह नामका एक रोग उत्पन्न हो सकता है। इस रोगके होने पर जीभ फूल जाती है। जीभमें किसी द्रव्यका छू जाना अत्यन्त असह्य मालूम होता है तथा बात करते और कुछ खाते समय बड़ा कष्ट होता है। पहले किसी रोगके बिना हुए यह रोग हठात् नहीं होता। जिह्वा-प्रदाह रोग होने पर लार बहुत निकलता है। थोड़े खानेसे तथा अत्यन्त विरेचक और कुल्ली करनेकी औषध सेवन करनेसे यह रोग दब जाता है, जीभको चिरवा कर रक्त-मोक्षण करानेसे भी कभी कभी फायदा होता है। कभी कभी प्रदाहका कोई उपसर्ग न रहने पर भी जीभ बहुत ज्यादा फूल जाती है। इतनी फूलती है कि जिससे श्वासरोध होनेकी भी सम्भावना रहती है। कभी कभी जिह्वा-प्रदाह रोग पूरी तरह आरोग्य न होने पर उससे जिह्वा-विवृद्धि रोगकी उत्पत्ति होती है, परन्तु ज्यादातर यह रोग बच्चोंको जन्मकालमें होता है। किसी किसीको प्रथम २।१ वर्षके भीतर इस रोगको किसी प्रकारकी सूचना नहीं मालूम पड़ती। एक प्रसिद्ध विद्वान्ने एक शिशुके विषयमें कहा है कि, जन्मकालमें ही एक बच्चेको जीभ मुँहसे कुछ बाहर निकली हुई थी, उस बच्चेकी उम्र ज्यों ज्यों बढ़ने लगी जीभ भी उतनी ही बाहर लटकने लगी। आखिर यह जीभ गोवत्सके हृत्पिण्डके समान बड़ी हो गई। साधारणतः निम्नलिखित कारणोंसे जिह्वामें हानि हुआ करती है। १ एक पुराने दाँतके साथ किंवा असमान स्थानको उत्तेजना होने पर, २ उपदंश होने पर, ३ पाकयन्त्रका विशृङ्खला होने पर। पहला दशामें दाँत उखाड़ देनेसे, दूसरी दशामें सारसापारिलाके साथ पोटासियाम् आइओडाइड (Iodide of Potassium) मिला कर सेवन करनेसे तथा तीसरी अवस्थामें नियमित परिमाण और नियमित समयमें आहार करनेसे तथा रोगी समय सुस्थिर रहनेसे इस रोगकी यन्त्रणासे छुटकारा मिल सकता है। सारसापारिलाके क्वाथके साथ मुसब्बरका क्वाथ मिला कर दिनमें ३ बार सेवन करनेसे तथा रातको ४ रत्ती हायसायमस (Hyoscyamus)के सेवनसे फायदा पहुँचता है। जीभके कड़े अथवा बाहरकी झिल्ली पर छाले पड़ते हैं। लोगोंका यह विश्वास था कि, टूटे हुए दाँतको उखड़े जानेसे और मुखमें धूम्रपान किये जानेसे इस रोगकी वृद्धि होती है; परन्तु यह बिल्कुल झूठी बात है। उक्त प्रकारकी प्रक्रिया द्वारा जिह्वाके जिस स्थान पर घाव हुआ हो, उस स्थानका निर्णय किया जा सकता है। १८४० ई०में ६८ वर्षको उम्रमें अध्यापक रीड साहब (Prof. Reid of St. Andrews) इस रोगमें आक्रान्त हुए थे। १८८१में जुलाई मासमें उनकी जीभ फूल कर ५ शिलिंगके एक सिक्केके समान हो गई। क्षत अंशके काट देनेसे अध्यापकको आराम हो गया, परन्तु एक महीनेके भीतर फिर उस रोगने आक्रान्त हो कर वे कालकवलमें कवलित हुए। इस रोगके प्रारम्भमें ही यदि क्षतस्थानको पूरी तरह काट दिया जाय, तो उपशमकी आशा की जा सकती है।

जिह्वरोग देखो।

शारीरस्थानमें जिह्वाको तीन भागोंमें विभक्त किया गया है—(१) मूलप्रदेश, (२) मध्यप्रदेश, (३) अन्त्यप्रदेश। मुखविवरके अन्दर अग्रभागको अन्त्यप्रदेश कहते हैं। यह मुखमध्यस्थ किसी भी स्थानसे जुड़ी हुई नहीं है। मूलप्रदेश और अन्त्यप्रदेशके मध्यवर्ती अंशको मध्यप्रदेश कहते हैं। यह अंग मोटा और चौड़ा है। मुखविवरके भीतर पीछेके अंशको मूलप्रदेश कहते

जिस जीभसे धर्मविषयक चर्चा न हो कर परनिन्दा और धर्मविगर्हित बात निकलती है, वह जबान मांसका पिण्ड मात्र है।

गोह आदिकी जीभ दूसरी ही भांतिकी होती है, जो दो भागोंमें विभक्त है। इसकी जीभ लम्बी है जिसे यह बार बार निकालता रहता है। जीभसे इसको स्पर्शज्ञान होता है। इसकी जीभ बहुत ही पतली है और उसका अग्रभाग दो नलियोंमें विभक्त है।

कफादि दोषोंसे दूषित जिह्वाका लक्षण इस प्रकार है—जिह्वा वायुदूषित होने पर शाकपत्रकी तरह प्रभा विशिष्ट और रूक्ष हो जाती है, पित्तदूषित होने पर लाल और काली हो जाती है, कफदूषित होने पर सफेद, भीगी और चिकनी (पिच्छिल) होती है तथा त्रिदोषान्वित होने पर खरखरी, काली और परिदग्ध हो जाती है। (भावप्रकाश)

जिह्वाकी उत्पत्तिका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—उदरमें पच्यमान कफ-शोणित मांसके आधानके लिए रक्तसारवत् सारभाग ही जिह्वा रूपमें परिणत हुआ है। (सुश्रुत शा० ४ अ०)

जैनमतानुसार—जीवकी पाँच इन्द्रियोंमेंसे दूसरी इन्द्रिय। इसके दो भेद हैं, एक भाव-जिह्वा-इन्द्रिय और दूसरी द्रव्य-जिह्वाइन्द्रिय। हम लोगोंकी जो दीखती है, वह द्रव्य-इन्द्रिय है और उसमें व्याप्त आत्मप्रदेशोंसे बनी हुई इन्द्रिय जो देखनेमें नहीं आती है, वह भाव-इन्द्रिय है। स्वाद स्पर्श आदिका ज्ञान द्रव्य-इन्द्रियकी सहायतासे उस भाव इन्द्रियसे ही होता है। इसी लिए आत्माके निकल जाने पर फिर उसके द्वारा स्वाद आदिका ज्ञान नहीं होता। यह जिह्वा-इन्द्रिय पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति (उद्भिद्) इन पांचके सिवा अन्य संसारके समस्त प्राणियों वा जीवोंके होती है। (तत्त्वार्थसूत्र २ अ०)

जिह्वाग्र (सं० क्ली०) जिह्वायाः अग्रं, ६-तत्। जिह्वाका अग्रभाग, जीभकी नोक, टूँड।

जिह्वाजप (सं० पु०) जिह्वया जपः, ३-तत्। तन्त्रसारोक्त जपभेद, तन्त्रसारमें कहा हुआ एक प्रकारका जप। इसमें केवल जिह्वा ही हिलनेका विधान है।

"जिह्वाजपः सविज्ञेयः केवलं जिह्वया बुधैः।" (तन्त्रसार)

जप देखो।

जिह्वातल (सं० क्ली०) जिह्वायाः तलं, ६-तत्। जिह्वाका पृष्ठभाग।

जिह्वानिर्लेखन (सं० क्ली०) जिह्वा निर्लिख्यतेऽनेन जिह्वाया निर्लेखनं संस्कारं निर-लिख-ल्युट्। जिह्वामार्जन, जीभी। सुवर्ण, रजत, ताम्र अथवा लौह निर्मित दशाङ्गुल परिमित सूक्ष्म तथा कोमल मार्जनीसे जीभ साफ करनी चाहिए। जीभ साफ करनेसे मुखकी विरसता तथा जिह्वा और दन्ताश्रित क्लेद दूर हो कर आरोग्य, रुचि, और मुखकी विशुद्धता सम्पादित होती है।

जिह्वाप (सं० पु०) जिह्वया पिबति पा-क। १ कुक्कुर, कुत्ता। २ व्याघ्र, बाघ। ३ बिडाल, बिल्ली। ४ भल्लूक, भालू। ५ चित्रकव्याघ्र, चिता बाघ।

जिह्वापरीक्षा (सं० स्त्री०) जिह्वायाः परीक्षा, ६-तत्। जिह्वा यदि पतली, रेतीकी तरह पैनी और स्फोटकयुक्त हो, तो वायुज रोग; जीभसे रक्तस्राव हो, तो पित्तज तथा उसका रङ्ग सफेद, आस्वाद खट्टा और पानी निकलता हो, तो उसे श्लेष्मज रोग समझना चाहिये। कुछ काली हो कर उपजिह्वा (हलकका कौवा)-की ओर झुकनेसे सान्निपातिक समझना चाहिये। उस अवस्थामें जीभ यदि मुखसे बाहर निकल कर उलट जाय तो रोगीकी मृत्यु निकट समझनी चाहिये।

(सार० कौ०)

जिह्वाप्रबन्ध (सं० पु०) जिह्वामूल, जीभकी जड़।

जिह्वामल (सं० क्ली०) जिह्वायाः मलं, ६-तत्। जिह्वास्थित मल, जीभ परका मैल।

जिह्वामूल (सं० पु०) जीभकी जड़।

जिह्वामूलीय (सं० पु०) जिह्वामूले भवः जिह्वामूल-छ। जिह्वमूलांगुलेश्छः। पा ४।३।६२। १ वह वर्ण जिसका उच्चारण जिह्वाके मूलसे होता हो, वज्राकृतिवर्ण, अयोगवाहान्तर्गत वर्णभेद। क, ख, परे रहने पर विसर्गके स्थानमें जिह्वामूलीय हो जाता है। जिह्वामूलीयका चिह्न इस प्रकार है जैसे—हरिः काम्यः हरि + काम्यः। इसका उच्चारण विसर्गके समान है। (पाणिनि०)

क, ख ग, घ ङ, इनका उच्चारणस्थान जिह्वामूल है, इसलिए इनको जिह्वामूलीय कहते हैं।

(सुपद्मव्याकरण)

(त्रि०) २ जो जिह्वाके मूलमें सम्बन्ध रखता हो।

जिह्वारद (सं० पु०) जिह्वा एव रदो दन्त यस्य। पक्षी।

जिह्वारोग (सं० पु०) जिह्वाया रोगः, ६ तत्। मुखरोगके अन्तर्गत रसना सम्बन्धी व्याधि, जीभका रोग। सुश्रुतके मतसे जिह्वागत रोग पांच प्रकारका होता है—त्रिदोष जन्य तीन प्रकारका कण्टक रोग तथा चौथा अलास और पांचवां उपजिह्विका। वायुज जिह्वारोगमें जीभ फट जाती है रसज्ञानका अभाव और शाकपत्रके समान उसका रङ्ग हो जाता है। पित्तज रोगमें जीभका रङ्ग पीला हो जाता है दाह होता है और जीभ लाल कांटों से वेष्टित हो जाती है। कफजन्य रोगमें जीभ भारी मालूम पड़ती है उसका मांस ऊंचा हो जाता है और जीभ पर बहुतसे कांटे उभर आते हैं। अलास रोगमें जीभके नीचेका भाग सूज जाता है। यह कफरक्तसे उत्पन्न होता है। यह सूजन बढ़ती बढ़ती इतनी बढ़ जाती है कि, फिर जीभ हिलाई डुलाई भी नहीं जा सकती साथ ही जिह्वामूल पक जाता है। जिह्वाका अग्रभाग फूल कर ऊंचा हो जाता है और उससे लार टपका करती है, खुजली और जलन होती है। जीभकी ऐसी अवस्था होने पर उपजिह्विका रोग समझना चाहिये।

(सुश्रुत०) जिह्वा देखो।

जिह्वारोगोंमें अलास रोग असाध्य है। (भावप्रकाश) इस रोगमें बृहत्खदिरवटिका एक अच्छी औषध है। इस वटिकाको मुंहमें रखनेसे गला, ओठ, जीभ दांत और तालु सम्बन्धी रोग नष्ट हो कर मुख सुरस और सुगन्धित हो जाता है तथा दांत मजबूत हो जाते हैं। इस वटिकासे जीभकी जड़ता दूर होती और भोजनमें रुचि बढ़ती है। जिह्वारोगमें दातुवन खाना, खटाई, मत्स्य दही, दूध गुड़ सोंठ, कच्चा अन्न, कठिन भोजन, पर्युषित शयन, भारी और कफकारक द्रव्य तथा दिनमें सोना यह सब छोड़ देना चाहिये। मुखरोग देखो।

जिह्वागत रोगमें इस औषध करना हो सकते हैं इस उपाय है। गुलञ्च, पिप्पली, निम्ब और कुटकीके गरम गरम क्वाथसे कुल्ला करनेसे जिह्वारोग दूर हो जाता है। पित्तज जिह्वारोगमें पत्र द्वारा जीभ घिस कर दूषित रक्त निकाल देना चाहिये। काकोल्यादिगणकृत प्रतिसारण गण्डूष नस्य और मधुर द्रव्यका प्रयोग करना उचित है। कफज जिह्वारोगमें जीभको मण्डलाग्रादि शस्त्रों द्वारा निर्लेखन कर रक्तमोक्षण करना चाहिये। बादमें पञ्चकोलद्वारा मधुसंयुक्त प्रियङ्ग्वादिगण चूर्ण घिसना चाहिये। उपजिह्वारोगमें जीभ पर मण्डलाग्र पत्र घिस कर यवक्षारसे प्रतिसारण करना चाहिये। नस्य गण्डूष और धूम प्रयोगसे भी उपजिह्वारोग उपशमित होता है। त्रिकटु, यवक्षार, हर्रे और चीता, इनके चूर्णको बराबर बराबर मिला कर बीटमेंसे पकाकर इनके छिलकोंको चौगुने पानीमें तेलके साथ पाक करके प्रयोग करनेसे उपजिह्वा रोग आराम होता है।

जिह्वालिह (सं० पु०) जिह्वया लेढ़ि जिह्वा लिह क्विप्। कुक्कुर, कुत्ता।

जिह्वालौल्य (सं० स्त्री०) पेटूपना, मुक्खड़पना।

जिह्वावत् (सं० पु०) १ यजुर्वेदीय वंशके अन्तर्गत एक ऋषिका नाम। (त्रि०) २ जिह्वायुक्त।

जिह्वाशल्य (सं० पु०) जिह्वाया शल्यमिव। खदिरवृक्ष, खैर, कत्था।

जिह्वास्वाद (सं० पु०) जिह्वया स्वाद, ३ तत्। लेहन चाट।

जिह्विका (सं० स्त्री०) जिह्वा जीभी।

जिह्वोल्लेखन (सं० स्त्री०) जीभ छील कर साफ करनेका काम।

जिह्वोल्लेखनिका (सं० स्त्री०) वह जिससे जीभ छील कर साफ की जाती है जीभी।

जी (हि० पु०) १ चित्त मन, तबीयत दिल। जैसे—अब तो किसीसे किसीमें जी उचटना गया, अब तो जी नहीं लगता। २ हौसला हिम्मत जीवट, दम। जैसे—उसका जो दो दिनका है, जो मारा जायगा, जो बहादुर हिये लड़कोंको इनाम दिया जाता है। ३ संकल्प, इच्छा चाह। जैसे—ज्यादा जी मत चलाओ, जो करे यार उसे किससे हो उस पर पैरा जा सकता है।

(अव्यय) (सं० जित्, प्रा० जिव=विजयो अथवा सं० (श्री) युत, प्रा० जुक, हिं० जू) ४ एक सम्मानसूचक शब्द, यह किसी व्यक्तिके नामके पीछे लगाया जाता है। जैसे—धनपतरायजी, पण्डितजी इत्यादि। इसके सिवा यह शब्द किसी बड़ेके प्रश्न, कथन वा सम्बोधन करने पर उसके उत्तर रूपमें व्यवहृत होता है। यह संक्षिप्त प्रतिसम्बोधन कहलाता है। उदाहरण (१) प्रश्न—तुम आज बाजार गये थे या नहीं? उत्तर—जी नहीं। (२) कथन-अहू र तो मीठे निकले। उत्तर-जी हां, निकले तो मीठे हैं। ३) सम्बोधन—भगवान्‌दास। उत्तर—जो हां कहिये, अथवा जी।

हामी भरने या स्वीकारता देनेमें भी इस शब्दका प्रयोग किया जाता है। जैसे—तुम आज जाओगे? उत्तर-जी! (अर्थात् हां जाऊंगा)

जीउ (हिं० पु०) जीव देखो।

जीग़ा (तु० पु०) सिरपेच, कलगी, तुर्रा।

जीजा (हिं० पु०) बड़ी बहिनका पति, बड़ा बहनोई।

जीजी (हिं० स्त्री०) बड़ी बहिन।

जीजीबाई—प्रसिद्ध महाराष्ट्र वीर शिवजीकी माता। इनके स्वामी शाहजीके मुगलोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त होने पर इन्हें एक दुर्गसे दूसरे दुर्गमें आश्रय लेना पड़ा था। इसी समय १६२७ ई०में जूनाके पास शिवनके दुर्गमें शिवजीका जन्म हुआ था। एक बार ये मुगलों द्वारा पकड़ ली गई थीं, किन्तु पीछे मुक्त हो कर ये सिंहगढ आ गई थीं। शिवजी देखो।

शाहजीके दाक्षिणात्य चले जाने पर जीजीबाई पुत्रको ले कर पूनामें रहने लगीं। दादाजी कोण्डदेव नामक एक ब्राह्मण कर्मचारीने उनके रहनेके लिए वहां रङ्गमहल नामका एक उत्तम प्रासाद बनवा दिया था।

जीजीबेगम—अकबरकी धात्री और मिर्जा-अजीज कोकाकी गर्भधारिणी। अकबरने कोकाको खाँआजिमको उपाधि दे कर उन्हें उच्च पद पर नियुक्त किया था। १५९८ ई०में जीजीबेगमकी मृत्यु हुई। अकबरने इन्हें अपने कन्धे पर रख कर कबरिस्तानको ले गये थे। और पुत्रको तरह उन्होंने अपना मस्तक और दाढ़ी-मूछें मुड़ाईं थीं।

जीजुराना (हिं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़ियाका नाम।

जिझ्नौ—ग्वालियर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २६° ३३´ उ० और देशा० ७८° १०´ पू०के मध्य कुमारी नदीके किनारे ग्वालियरसे २४ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है।

जीत (हिं० स्त्री०) १ जय, विजय, फतह। २ लाभ, फायदा। ३ जिसमें दो या उससे अधिक विरुद्ध पक्ष हों ऐसे किसी कार्यमें सफलता। ४ जहाजमें पालका कुलाम। (लश०) ५ जीति देखो।

जीतना (हिं० क्रि०) १ विजय प्राप्त करना, शत्रुको हराना। २ ऐसे किसी कार्यमें सफलता पाना जिसमें दो या उससे अधिक विरुद्ध पक्ष हों।

जीतल—एक प्रकारको प्राचीन ताम्रमुद्रा। जितल देखो।

जीतसिंह—विनयामृत नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता

जीता (हिं० वि०) १ जीवित, जिंदा। २ तौल या मापमें कुछ अधिक।

जीतालू (हिं० पु०) अरारोट।

जीतालोहा (हिं० पु०) चुम्बक, मेकनातीस।

जीति (सं० स्त्री०) जि-क्तिन् वेदे दोर्घः। १ जय, जीत, फतह। २ हानि, नुकसान।

जीति (हिं० स्त्री०) जमुनाके किनारेसे नेपाल तक तथा अवध, विहार और छोटा नागपुरमें होनेवाली एक प्रकारकी लता। इसके मजबूत रेशेसे रस्सी इत्यादि बनाई जाती है। रेशेको टोगुस कहते हैं। रेशेसे धनुषकी डोरी भी बनती है।

जीन (सं० वि०) ज्या-क्त सम्प्रसारणञ्च दीर्घः। १ जीर्ण, पुराना। २ वृद्ध, बुड्ढा।

जीन (फा० पु०) १ वह गद्दी जो घोड़ेकी पीठ पर रखी जाती है, चारजामा, काठी। २ पलान, कजावा। ३ एक प्रकारका मोटी सूती कपड़ा।

जीनगर—जीन बनानेवाले। बंबई प्रदेशके अन्तर्गत पूना, बेलगाँव, बीजापुर आदि जिलोंमें रहनेवाली एक जाति। ये जीन अर्थात् घोड़ेकी पीठ पर कसनेकी काठी या पलान बनाते हैं, इसलिए फारसीमें इनका नाम जीनगर पड़ गया है। ये लोग अपनेको भावे

और सोमवंशीय क्षत्रिय बतलाते हैं। जीनगरोंका कहना है कि ब्रह्माण्डपुराणमें इनकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—पुराकालमें एक दिन देव और ऋषियोंने हरद्वारक्षेत्रमें एक यज्ञ प्रारम्भ किया। वृत्रासुरका पौत्र, दुर्दान्त भस्मकासुर नामका दानव ब्रह्माके पाससे अमरत्व और अजेयत्वका वर प्राप्त कर उस यज्ञको बिगाड़नेके लिए वहां आया। देव और ऋषियोंने भयभीत हो महादेवका स्मरण किया। दानवके इस अत्याचारको देख कर महादेवको क्रोध आ गया और उनके ललाटसे पसीनाकी एक बूंद टपक कर उनके त्रिशूलमें आ पड़ी। उस बूंदसे मौलिक वा मुक्तादेव नामका एक वीर उत्पन्न हुआ। मुक्तादेवने जब भस्मकासुरको युद्धमें पराजित कर देव और ऋषियोंको अभयदान दिया तब उन लोगोंने खुश हो कर मुक्तादेवको उस स्थानका राजा बना दिया। दुर्वासाकी कन्या प्रभावतीके साथ मुक्तादेवका विवाह हो गया। प्रभावतीके गर्भसे मुक्तादेवके ८० पुत्र हुए। उनके वयःप्राप्त होने पर मुक्तादेवने उन्हें राज्य दे कर पत्नीके साथ वानप्रस्थ अवलम्बन किया। किन्तु पुत्रोंने गौरवमदमें मत्त हो कर एक दिन लोमहर्षण ऋषिका अपमान कर डाला। ऋषिने क्रोधमें आ कर यह अभिसम्पात दिया—"तुम लोगोंने राज्यमदमें मत्त हो कर ब्राह्मणका अपमान किया है, इस अपराधसे तुम लोग राज्यभ्रष्ट और वेदविवर्जित हो कर सदा कष्टसे दिन बिताते रहोगे।" मुक्तादेवने पुत्रों पर इस दारुण ब्रह्मशापको पड़ते देख अत्यन्त दुःखित हो कर ऋषिसे सब वृत्तान्त कहा। ऋषिने कहा, ब्रह्मशाप अव्यर्थ है। हां, मैं कहता हूं कि, तुम्हारे पुत्र शिव कर वेदविधिका अनुष्ठान करेंगे तथा 'आर्य'शब्दकी उपाधि त्याग कर चित्रकार, स्वर्णकार, शिल्पकार, पटकार (तन्तुवाय), पैमन्टर, जुहार मृत्तिकाकार और धातुमूर्तिकाकार, इन आठ नामोंसे प्रसिद्ध होंगे और इन्हीं वृत्तियोंका अवलम्बन कर जीविका निर्वाह करेंगे।

इनमें श्रेणीविभाग नहीं है। सबमें परस्पर रोटी बेटी चलती है। इनकी प्रधान प्रधान उपाधि अथवा पेड़ी ये हैं—यादव, मनोन्वार, कामली, ममसोर, पोवार आदि हैं। इनमें आङ्गीरस भारद्वाज, गौतम कश्यप, कौण्डिन्य वशिष्ठ आदि आठ गोत्र हैं। पुरुषोंका शरीर मझोला और रंग काला है। स्त्रियां सुन्दरी, गोरी और देखनेमें खूबसूरत हैं। पुरुष सिर पर चोटी रखते हैं तथा समयमें एकबार मस्तक मुड़ाते और ललाट पर चन्दन पोतते हैं। स्त्रियां ललाट पर सिन्दूर लगातीं और मस्तकके पीछेकी तरफ चोटी बांधती हैं। ललनाएं नकली बालों या फूलोंसे मस्तक नहीं सजाया करतीं, यह सब तो वेश्या और नाचनेवालियोंके ही साधन हैं।

इनकी भाषा मराठी है, पर कनाड़ी भी बोलते हैं। ये लोग परिश्रमी, बुद्धिमान्, सुदक्ष, न्यायतत्पर, शान्त-प्रकृति, आतिथेय और मिष्ट हैं। पेशवाओंने इनमेंसे बहुतोंको शिल्पकार्यके पुरस्कार स्वरूप भूमि और मकान आदि दिये हैं, जीन, घोड़ाके असबाब साज इत्यादि बनाना ही इनकी पैतृक उपजीविका है। इस समय अधिकांश लोग सुतार, स्वर्णकार, लोहकार, चित्रकार आदिका कार्य करते हैं। बहुतसे खिलौने और चिकोने बनाते हैं। कोई कोई घड़ी मरम्मत करने आदिका काम भी करते हैं। ये घरमें गाय भैंस, घोड़े आदि पालते हैं। बकरा, भैंसा आदिके मांस खानेमें इनको कोई उज्र नहीं किया करते, शराब भी पीते हैं।

ये लोग दाक्षिणात्यके ब्राह्मणोंके समान धोती, चद्दर, कुर्ता, पगड़ी और जूता इत्यादि पहनते हैं। पुरुष दूकानोंमें बैठ कर अपना अपना काम करते हैं और स्त्रियां घरका काम पूरा कर कभी कभी उनको सहायता पहुंचाती हैं। इनके लड़के ११।१२ वर्षकी उमरमें बापके कार्यमें निपुण होते हैं और १५।१८ वर्षकी अवस्थामें वे पक्के कारीगर बन जाते हैं। ये वैष्णवधर्मको मानते हैं किन्तु घरमें गणपति, विठोबा भवानी आदिकी मूर्ति भी रखते हैं। ब्राह्मण पुरोहित इनकी याजकता करते हैं। इनके क्रियाकलाप तथा व्रत उपासनादि हिन्दूमतानुसार होते हैं। सन्तान उत्पन्न होने पर षष्ठीपूजा होती है। बालकका ११ मासमें नाम कर २ वर्षके भीतर चूड़ाकरण तथा ५वें, ७वें वा ८वें वर्षमें उपनयन होता है। ये लोग पुत्रको २० वर्ष तक अविवाहित रख सकते हैं, किन्तु कन्याका विवाह १२ वर्षके पहले ही कर देते हैं।

ये मुर्दोंको जलाते हैं। अग्निसत्कारके समय इनको तण्डुलका भोज्य उत्सर्ग करना पड़ता है। सामाजिक किसी विषयकी मीमांसा करनी हो, तो प्रधान प्रधान व्यक्ति एकत्र सभा करके उस कार्यको करते हैं। ये लोग अपनेको सोमवंशीय क्षत्रिय कहते हैं और उच्चश्रेणीके हिन्दुओंके समान आचारादि अनुष्ठान करते हैं। सब साफ-सुथरे रहते हैं, किन्तु हिन्दू समाजमें ये निम्नस्थानीय हैं। उच्चश्रेणीमें इनसे हिन्दू घृणा करते हैं। एक बार पूनाके नाइयोंने अपवित्र जाति कह कर इनकी हजामत बनानेके लिए मनाई कर दी। इस पर इन लोगोंने नाइयोंके नाम इस अपवादके लिए अभियोग किया। यह कहना फिजूल है कि इनका आवेदन अग्राह्य हुआ था। पूना वासियोंका कहना है कि, जीनगर लोग चमड़ेसे घोड़ेका साज बनाते हैं, इसलिए वे अपवित्र हैं। और बहुतसे ऐसा भी कहते हैं कि, किसी लाभजनक वृत्तिके मिलने पर ये अपनी वृत्तिको छोड़नेमें नहीं हिचकते, इसीलिए इन लोगोंसे सब घृणा करते हैं।

ये लोग अपने लड़कोंको पढ़ानेके लिए पाठशालाओंमें भेजते जरूर हैं, पर शिक्षाकी तरफ इनका लक्ष्य कम है। साधारणतः ये लोग ११।१२ वर्षकी उम्र होते ही लड़कों को अपने अपने काममें लगा लेते हैं। इनका वासस्थान साफ-सुथरा और नाना प्रकारकी गृह सामग्रियोंसे परिपूर्ण रहता है।

जिनगरोंका और एक नाम पाँचचाल भी है। बहुतोंका यह कहना है कि, ये पाँच प्रकारको चाल अर्थात् कार्य द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं, इसलिए इनका नाम पाँचचाल पड़ा है। बहुतसे यह भी कहते हैं कि, पाँचचाल लोग पहले बौद्ध थे और अब भी छिप कर बौद्धकी उपासना करते हैं। यदि ऐसा ही है, तो यह अनुमान किया जा सकता है कि, पाँचचाल शब्द बौद्धोंकी प्राचीन उपाधि पञ्चशील अर्थात् पञ्च धर्मनीतिज्ञ से उत्पन्न हुआ है।

जीनत (फा० स्त्री०) १ शोभा, छवि, खूबसूरती। २ शृङ्गार, सजावट।

जीनपोश (फा० पु०) वह कपड़ा जो जीनके ऊपर ढका रहता है।

जीनसवारी (हिं० स्त्री०) घोड़े पर जीन रख कर चढ़नेका कार्य।

जीना (हिं० क्रि०) १ जीवित रहना, जिन्दा रहना। २ जीवनके दिन बिताना, जिन्दगी काटना। ३ प्रसन्न होना, प्रफुल्लित होना।

जीभ (हिं० स्त्री०) जिह्वा देखो।

जीभा (हिं० पु०) १ जीभके आकारकी कोई वस्तु। २ मवेशियोंकी जीभका एक बीमारी, अधार। ३ बैलोंका आँखकी एक बीमारी। इसमें उसकी आँखका मांस नैठ कर लटक जाता है।

जीभी (हिं० पु०) १ यह वस्तु जिससे जीभ छील कर साफ की जाती है। यह किसी एक धातुकी पतली लचीली और धनुषाकारमें बनी रहती है। २ मैल साफ करनेके लिये जीभ छीलनेकी क्रिया। ३ निब, लेखनीकी चद्दरकी बनी हुई चोंच। ४ गलशुण्डी, छोटी जीभ। ५ मवेशियोंका एक रोग। ६ लगामका एक भाग।

जीभीचाभा (हिं० पु०) चौपायोंका एक रोग।

जीमट (हिं० पु०) पेड़ों और पौधोंके धड़, शाखा और टहनी आदिके भीतरका गूदा।

जीमना (हिं० क्रि०) आहार करना, भोजन करना, खाना।

जीमूत (सं० पु०) जयति आकाशमिति जि-क्त। १ पर्वत, पहाड़। २ मेघ, बादल। ३ मुस्ता, मोथा। ४ देवताड़ वृक्ष। ५ इन्द्र। ६ भृतिकर, पोषण करनेवाला, रोजी देनेवाला। ७ घोषालता, कड़ए तोरई। ८ सूर्य। ९ ऋषिविशेष, एक ऋषिका नाम जिनका उल्लेख महाभारतमें है। १० मल्लविशेष, एक मल्लका नाम। ये विराट्की सभामें रहते थे। ये वल्लभवेशी भीमके हाथसे लड़ाईमें मारे गये थे। ११ हरिवंशके अनुसार स्वनामख्यात दशार्हके पौत्रका नाम। १२ वपुष्मत्के पुत्रका नाम। ये शाल्मली द्वीपके राजा थे। इनके सात पुत्र थे।

"शाल्मलस्येश्वराः सप्त सुतास्ते तु वपुष्मतः।"

(ब्रह्माण्डपु० ३६)

१३ शाल्मलीद्वीपका एक वर्ष। १४ छन्दोविशेष,

एक प्रकारका छन्द। १४ दण्डकभेद, एक प्रकारका दण्डक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें दो नगण और ग्यारह रगण होते हैं। यह अर्णवके अन्तर्गत है।

जीमूतक (सं॰ पु॰) जीमूत स्वार्थे-कन्। जीमूत देखो।

जीमूतक तैल (सं॰ क्लो॰) जीमातकीतैल, मरोड़ीका तेल।

जीमूतकूट (सं॰ पु॰) जीमूत मेघः कूटे शिखरे यस्य। पर्वत, छोटा पहाड़, पहाड़ी।

जीमूतकेतु (सं॰ पु॰) हिमालयस्थित विद्याधर राजाका नाम। ये जीमूतवाहनके पिता थे। जीमूतवाहन देखो।

जीमूतमुक्ता (सं॰ स्त्री॰) जीमूत अर्थात् मेघसे उत्पन्न मुक्ता या मोती। प्राचीन रत्नशास्त्रादिमें इस अद्भुत मुक्ता का वर्णन मिलता है, पर मेघसे किस तरह मोती पैदा होता है, यह समझमें नहीं आता। क्या प्राचीन शास्त्र कारोंने मेघके मेघान्तरगत तड़िल्लताको अथवा सूर्यकी किरणोंसे विभासित आकाशकी दीप्तिमान् विमानस्थ जलबिन्दु या करकाखण्डोंको देख कर मेघमुक्ताके अस्तित्वका अनुमान किया था? या यह कविकी कल्पना मात्र है? अथवा मेघमुक्ता वास्तवमें कोई पदार्थ है, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि, पृथिवी पर यह मोती मिलता नहीं। जिन्होंने मेघमुक्ताका वर्णन किया है वे खुद ही कहते हैं कि, मेघसे मुक्ता उत्पन्न होते ही देवगण उसे ले जाते हैं। ऐसी दशामें इसका होना न होना बराबर है।

कुछ भी हो, प्राचीन शास्त्रकारोंने शुक्ति गज, सर्प आदिकी भाँति मेघमुक्ताका भी निर्देश किया है। जैसे—

(क) "मत्स्य सर्प, शङ्ख, वराह, वंश, मेघ और शुक्तिसे मोती उत्पन्न होते हैं, जिनमेंसे शुक्तिजात मुक्ता ही उत्तम और ज्यादा हैं।

(ख) हस्ती, सर्प शुक्ति, शङ्ख, मेघ, बाँस तिमि मत्स्य और शूकरसे मुक्ताकी उत्पत्ति होती है, जिसमें शुक्तिज मुक्ता ही उत्तम और प्रचुर है। (बृहत्संहिता)

इसके अतिरिक्त गरुड़पुराण, अग्निपुराण, युक्तिकल्पतरु आदि ग्रन्थोंमें मेघ मुक्ताका वर्णन है। शास्त्रकारोंने इसके आकार और गुण-अवगुणके विषयका भी वर्णन किया है। बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है कि, मेघमें जिस प्रकार वर्षोपल अर्थात् ओले उत्पन्न होते हैं, उसी तरह मोती भी उत्पन्न होते हैं। ओले जिस प्रकार मेघसे गिरते हैं यह मोती भी उसी तरह सप्तम वायुके स्कन्धसे छूट हो कर गिरते हैं। परन्तु ये जमीन पर नहीं गिरते देवता लोग इन्हें बीचहीमें उड़ा ले जाते हैं।

दूसरे ग्रन्थमें लिखा है कि, जलबिन्दुके विकार विशेषसे मेघ और मुक्ताकी उत्पत्ति है, जो मनुष्यके लिए दुर्लभ है। देव इन्हें आकाशसे ही हरण कर लेते हैं। मेघसे उत्पन्न मणि मुरगीके अण्डेकी भाँति गोल, ठोस वजनमें भारी और सूर्य किरणकी भाँति दीप्तिशाली होती है। यह देवताओंके लिए भोग्य और मनुष्यको अलभ्य है।

गरुड़पुराणमें लिखा है कि मेघसे उत्पन्न मुक्ता या मोती पृथिवी पर नहीं गिरता आकाशसे ही देवता उन्हें ले जाते हैं। इस मोतीके तेज और प्रभासे दिशाएं प्रकाशित हो जाती हैं। यह आदित्यकी तरह दुर्निरीक्ष्य है। इसकी ज्योति हुताशन, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह और ताराओंके तेजको भी मन्द कर देती है। यह मोती क्या दिन और क्या रात, सब समय समान दीप्तिकर है। इसके मूल्यके विषयमें उक्त पुराणकर्ता ऐसे लिखते हैं—हमारा विश्वास है कि, सकलादियुक्त सुवर्ण पूर्ण इस चतुःसमुद्र समग्र पृथिवीका भी मूल्य मेघमुक्ताके समान होगा या नहीं, इसमें सन्देह है।

इन्होंने और भी लिखा है कि—'नीच व्यक्तिको भी यदि कभी पुण्यबलसे यह मिल जाय तो वह भी शत्रु हीन हो कर समग्र पृथिवीका राजा हो सकता है। यह सिर्फ राजाओंके लिए ही चमत्कारी हो ऐसा नहीं, यह प्रजाकी भी सौभाग्यका कारण है। यह मोती चारों ओर सौ योजन स्थान तक अनिष्टका निवारण करता है। जल, ज्योति' और वायुसे मेघोंकी उत्पत्ति है इसलिए मेघ मुक्ताके भी तीन भेद हैं। जलाधिक मेघजात होनेसे वह अत्यन्त स्वच्छ और अतिशय कान्तियुक्त होता है। ज्योतिःप्रधान मेघसे उत्पन्न मोती गोल अच्छी कान्ति युक्त और सूर्य-किरणकी तरह किरणशाली होता है इसलिए दुर्निरीक्ष्य है। वायुप्रधान मेघसे उत्पन्न मोती सबसे निम्न और हलका होता है।

जीमूतमूल (सं॰ क्लो॰) जीमूतस्य मुस्ताया मूलमिव मूलमस्य। शटी, कपूर कचूरी।

जीमूतवाहन (सं॰ पु॰) जीमूतो मेघो वाहनमस्य। १ मेघवाहन, इन्द्र। २ शालिवाहनके पुत्र। गौण आश्विन कृष्णा अष्टमीको स्त्रियां जीमूतवाहनकी पूजा करती हैं। जिताष्टमी देखो। ३ विद्याधरराज जीमूतकेतुके पुत्र, प्रसिद्ध नागानन्दके नायक। जीमूतवाहनने यौवराज्य पद पर अभिषिक्त हो कर पिताकी अनुमतिसे राज्यकी सारी प्रजा और याचकोंको दारिद्रशून्य कर दिया तथा इनके आत्मीयोंके राज्यलोलुपी होने पर इन्होंने विना युद्धके उनको राज्य दे दिया। पीछे ये पितामाताके साथ मलय पर्वतके पास सिद्धाश्रममें जा कर रहने लगे।

कुछ दिन बाद मलयपर्वतवासी सिद्धराज विश्वावसुके पुत्र मित्रावसुके साथ इनकी मित्रता हो गई। एकदिन इन्होंने मित्रावसुकी बहन मलयवतीको देख कर उन्हें अपनी पहले जन्मकी स्त्री जान पहिचान लिया और वे उनके प्रति प्रणयसे आसक्त हो गये। इसके उपरान्त एक दिन मित्रावसुने प्रस्ताव किया कि—"सखे! मैं अपनी बहन मलयवतीको तुम्हें अर्पण करना चाहता हूं।" जीमूतवाहनने कहा—"सखे! मैं पहले जन्ममें व्योमचारी विद्याधर था। एकदिन भ्रमण करते करते मैं हिमालयकी चोटी पर पहुंचा, वहां क्रीडारत हरगौरीने मुझे देख कर शाप दिया, उसी शापसे मैं मनुष्यजन्म धारण कर वलभी नगरवासी एक धनी वणिक्का पुत्र हो वसुदत्त नामसे प्रसिद्ध हुआ। एकदिन मेरे वाणिज्यार्थ बाहर जाने पर डकैतोंके एक झुण्डने मुझ पर आक्रमण कर मुझे बांध लिया और वे मुझे चण्डीके मन्दिरमें बलि देनेके लिए ले गये। चण्डाल-राज पूजा कर रहे थे, उन्होंने मुझे देख कर मेरे बन्धन खोल दिये और मेरे बदले वे अपना शरीर बलि देनेको उतारू हो गये। इसी समय देववाणी हुई—'तुम शान्त होओ, मैं प्रसन्न हुई हूं, वर मांगो।' शबरराजने यह वर मांगा—'मैं जन्मान्तरमें इस वणिक्पुत्रका मित्र होऊं।' कुछ दिन बाद डकैतोंके अपराधसे राजाने चण्डालराजको प्राणदण्डकी आज्ञा दी। मैंने राजासे मेरे प्रति उनके उपकारकी सब बातें कहीं और उनके प्राणोंकी भिक्षा मांगी। वे बहुत दिनों तक मेरे घर थे, पीछे अपनी स्त्रीको मेरे घर छोड़ कर वे अपने देश चले गये।

एकदिन उन्होंने मृगकी खोजमें घूमते हुए सिंह पर सवार एक लड़की देखी, कन्याको मेरे अनुरूप समझ कर मेरे साथ उनके विवाहका प्रस्ताव किया। कुमारीने मुझे देखना चाहा, तदनुसार वे मुझे ले गये। कुमारीने मुझे देख कर विवाह करना स्वीकार किया। फिर हम लोग सिंह पर सवार हो घर आये, मेरी भावीपत्नी मित्रको भाई कहने लगीं। शुभदिनमें मेरा विवाह हो गया। उस समय सिंहने अपना शरीर छोड़ कर मनुष्य-शरीर धारण कर लिया और कहा - मैं चित्राङ्गद नामका विद्याधर हूं, यह मेरी कन्या है, मनोवती इसका नाम है। मैं इसको गोदमें ले कर जंगलमें घूमता था। एकदिन मैं इसे ले कर भागीरथी के ऊपरसे जा रहा था कि, इतनेमें मेरे मस्तककी माला पानीमें गिर गई। दैववश उस पानीमें देवर्षि नारद स्नान कर रहे थे। माला उनके मस्तक पर लगते ही उन्होंने शाप दिया। मुझे सिंहके रूपमें परिवर्तित कर दिया। मैं तभीसे इस कन्याको ले कर इस रूपमें था। मेरे शापकी सीमा यहीं तक थी। अब तुम लोग सुखसे रहो।" इतना कह कर वे अन्तर्हित हो गये। कालान्तरमें मेरे एक पुत्र हुआ जिसका नाम हिरण्यदत्त रक्खा गया। उस पुत्र पर सब भार दे कर मित्र और पत्नीके साथ मैं कालञ्जर पर्वतको चल दिया। वहां विद्याधरत्व प्राप्त होने पर मनुष्यदेह त्यागनेके समय मैंने महादेवसे प्रार्थना की कि, पीछे जिससे इनको बन्धुरूपमें और मनोवतीको पत्नीरूपमें प्राप्त कर सकूं। फिर ऊंचे स्थानसे गिर कर उस शरीरको त्याग दिया। सखे! तुम वही मित्र हो और तुम्हारी यह बहन मेरी पूर्वजन्मकी सहचरी है, इसलिए इनके साथ विवाह करनेमें मुझे क्या आपत्ति है?" इसके उपरान्त दोनोंका विवाह हो गया।

एकदिन ये मित्रके साथ भ्रमण कर रहे थे कि, इतनेमें कोई व्यक्ति एक युवकको बहुत ऊंची शिला पर रख कर चला गया। युवक भयसे रोने लगा। यह देख वे उसके पास गये और दयासे इन्होंने उनका परि-

के उपकूल प्रदेशसे यह बहुत आया है। इस जीरेका रंग धूसर और स्वाद उत्तम, पर सौंफ जैसा नहीं बल्कि कुछ तीव्र है। यूरोपमें तथा सिसिली और माल्टा द्वीपमें इसकी फसल हुआ करती है। शतद्रु नदीके निकटवर्त्ती प्रदेशमें जीरा बहुत उत्पन्न होता है। जीरासे एक प्रकारका तैल (अर्क) बनता है जो रोग उपशमकारी होता है। यह तैल कुछ पीला और साफ होता है; पर इसका स्वाद कड़ुआ, कषाय-गुणयुक्त और यह घ्राणके लिए विरक्तिजनक होता है।

जीरा साधारणतः वातघ्न, वायुनाशक, सुगन्धयुक्त और उत्तेजक है। उदरामय और अजीर्ण रोगमें इसका व्यवहार किया जा सकता है, यह मद्दोचक भी है। भारतवर्षमें प्रत्येक स्थानके बाजारमें जीरा मिलता है, यह मसालेकी तरह खाया जाता है। इसका तैल वायुनाशक है। जीरा और उसके तैलमें धनियांकी भांति वायुनाशक गुण है, पर औषधके लिए भारतवर्षीय वैद्य इसको जितना काममें लाते हैं, यूरोपीय उतना नहीं लाते। इसमें शैत्यगुण अधिक है, इसलिए मेहरोगमें इसका प्रयोग होता है। इसको बांट कर पुल्टिस लगानेसे उपदाह और यन्त्रणा दूर हो जाती है। यहूदी लोग त्वक्छेदनके समय जीरेकी पुल्टिस लगाते हैं। मुसलमान लोग जीरेकी खूब तारीफ करते हैं और इसको पिष्टकमें डाल कर खाते हैं। अरब और पारस्यदेशीय ग्रन्थोंमें ४ प्रकारके जीरेका उल्लेख है, जैसे—फरसी, नवती, किरमानी (स्याह जीरा) और शान् अर्थात् सिरीय जीरा।

वैद्यकके अनुसार बिच्छूके काटने पर मधु, नमक, और घीके साथ जीरा मिला कर प्रलेप लगानेसे यन्त्रणा दूर हो जाती है। डाक्टर रैटनका कहना है कि, गर्भवतीको पित्ताधिक्यके कारण वमन होने पर निम्बूके रसमें जीरा मिला कर उसका सेवन करनेसे कै बन्द हो जाती है। बच्चा पैदा होनेके उपरान्त प्रसूतिको दूध बढ़ानेके लिए स्याहजीरा खिलाया जाता है। थोड़ा घी मिला कर नलीमें सजा कर जीरेका धुआं पीनेसे हिचकी बन्द होती है। जीराके द्वारा बहुतसी रासायनिक प्रक्रियाएं हुआ करती हैं। मि० डाइमक द्वारा रचित चिकित्सातत्त्वमें इसका विशेष विवरण है।

इसका आकार सौंफसे मिलता जुलता है। पर यह सौंफसे कुछ बड़ा और फीका होता है। पहले अंग्रेज लोग जीरा मसालेकी तरह खाते थे, पर अब वे सौंफ खाते हैं। भारतमें यह दाल, तरकारी आदिमें मसालेकी तरह खानेके काममें आता है इससे अचार भी बनता है।

जीरा बहुत पूर्वकालसे प्रचलित है। बहुत प्राचीन पुस्तकोंमें इसका उल्लेख मिलता है। मध्ययुगमें यूरोपके लोग इस मसालाको बहुत पसन्द करते थे। १३वीं शताब्दीमें इंगलैण्डमें इसका मामूली तौरसे व्यवहार होता था। अब यूरोपमें सौंफ ज्यादा काममें आने लगा है। माल्टा, सिसिली और मरक्कोसे जीरा इंगलैण्ड को जाता है और कुछ कुछ भारतसे भी जाता रहता है। १८७१ ई०में भारतसे जीरेकी रफ्तनी उठा दी गई। इस समय पारस्य, तुर्किस्तान आदि देशोंसे जीरा भारतमें आता है और भारतसे भी जीरेकी इंगलैण्ड, फ्रान्स आदि देशोंकी रफ्तनी होती रहती है।

भारतमें जीरेका प्रादेशिक वाणिज्य वैदेशिक वाणिज्य से कहीं ४ गुना अधिक है, पर किस प्रदेशमें कितना जीरा खर्च होता है, इसका अभी तक निर्णय नहीं हुआ। जीरा युक्तप्रदेश और पञ्जाबमें ज्यादा उत्पन्न होता है। बम्बई प्रदेशमें जीरा जबलपुर, गुजरात, रतलाम और सम्कटसे आता है। पहले लोगोंका विश्वास था कि, जीरेका धुआं पीनेसे मुख विवर्ण हो जाता है। कृष्णजीरक देखो।

इस देशके वैद्यक मतसे—तीनों प्रकारका जीरा रूक्ष, कटु, उष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक, हलका, धारक, पित्तवर्द्धक, मेधाजनक, गर्भाशयशोधक, ज्वरनाशक, पाचक, बलकारक, शुक्रवर्द्धक, रुचिजनक, कफनाशक, चक्षुके लिए हितकारक तथा वायु, उदराध्मान, गुल्म, वमन और अतीसार नाशक है। (भावप्र०) इससे जो तैल बनता है, वह बहुत सुगन्धित, वायुनाशक और उष्णकारक है।

जीरकद्वय (सं० क्ली०) शुक्लपीत जीरक, सफेद रङ्ग लिये पीला जीरा।

जीरका (सं० स्त्री०) शालिधान्य, कार्त्तिक और अगहनमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

क्षीरकादिमोदक (सं० पु०) क्षीरक आदिर्यस्य स तादृश मोदकः, कर्मधा०। वैद्यकोक्त मोदक औषधविशेष, एक दवाका नाम। इसके बनानेका तरीका इस प्रकार है—भृष्ट चूर्णित जीरा ८ पल घृतमर्दित और स्वच्छपूत सिद्धिबीजचूर्ण ४ पल और सर्व अभ्र, सौंफ, सालीसपत्र, अजवायन, कायफल, धनिया, त्रिफला, गुड़त्वक, तेजपत्र, इलायची, नागकेसर, लवङ्ग श्वेतक (कसीसा) श्वेतचन्दन, लाल चन्दन, जटामांसी, द्राक्षा, शठी (कचूर) सुहागा कुन्दरगोंटी यष्टीमधु वंशलोचन, काकोली काला (मरिच मिर्च), मोरखी, त्रिकटु जातकीपुष्प, बिल्वपेशी मधूरत्वक, रसुका, देवदारु, कर्पूर, प्रियङ्ग जीरक सोहरप, कटुकी, पद्मकाष्ठ अनिका इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण १ तोला; यह सब मिला कर जितना हो, उससे दूनी चीनी मिला कर पाक करना चाहिये। पाक हो जाने पर घी और मधु मिला कर मोदक बना लेना चाहिये। फिर इसको १ तोलेकी खुराक बना कर खाना चाहिये। इसके सेवनसे सब तरहकी ग्रहणी और अम्लपित्तादि नाना रोग नष्ट हो जाते हैं।

(भैषज्यरत्नावली ग्रहण्यधिकार)

और भी एक प्रकारका क्षीरकादिमोदक है, जिसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है—जीरक, त्रिफला, मुस्त शुङ्, पीलक, पद्म, नागकेसरपत्र, नागकेसरत्वक्, इला यची, लवङ्ग, वेणुपर्पटी, इनका प्रत्येकका चूर्ण १ कर्ष (या २ तोला), इन सबसे दूनी चीनी मिला कर पाक करना चाहिये। पाक हो जाने पर थोड़ा घी और मधु डाल कर मोदक बनाना चाहिये। इसको १ तोला सवेरे खा कर, पीछे ठण्ढा पानी पीना चाहिये। यह मोदक जीर्णज्वर, विषमज्वर, शोथ, अग्निमान्द्य, कामला और पाण्डु रोगको नष्ट करता है। इस मोदकको स्वयं महादेवने बनाया था।

(चिकित्सासारसं० ज्वराधिकार)

क्षीरकाद्यचूर्ण (सं० क्लो०) जीरकाद्य चूर्ण, कर्मधा०। वैद्यकोक्त एक औषध। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—जीरा, सुहागा मोथा पाठा (निसुआ) बेलसोंठ धनिया, काला, धनपुष्पा (धाया) दाड़िमका छिलका कुटजकी छाल, समङ्गा (वराहक्रान्ता) वातकी का वल्कल चूर्ण, त्रिकटु गुड़त्वक तेजपत्र, इलायची, सोहरस, कलिङ्ग (इन्द्रयव) अभ्र भस्म, तथा पारद इनमेंसे प्रत्येकका समान चूर्ण और इन सबसे दूना कायफलका चूर्ण, इन सबको एक साथ मिला कर अच्छी तरह घोंटना चाहिये। इस चूर्णके सेवनसे ग्रहणी अतीसार आदि अनेक प्रकारके रोग नष्ट होते हैं।

(भैषज्यरत्नावली ग्रहण्यधिकार)

क्षीरकाद्यमोदक (सं० पु०) जीरकाद्य मोदकः, कर्मधा०। वैद्यकोक्त मोदक औषधविशेष, एक दवाका नाम। प्रस्तुत प्रणाली—जीरा ८ पल, सोंठ १ पल धनिया १ पल मधुरा पञ्चमाषक प्याज जीरा प्रत्येकका १ पल, दूध ८ सेर, चीनी ऽ॥ सेर, घी ८ पल, ऊपरसे डालनेके लिए त्रिकटु गुड़त्वक, तेजपत्र, इलायची विडङ्ग, चव चोतेकी जड़, मोथा लवङ्ग प्रत्येकका १ निष्क।

इसके सेवनसे सूतिका और ग्रहणीरोग नष्ट होता है। यह अत्यन्त अग्निवर्द्धक है। (भै०रत्ना०)

जीरण (सं० पु०) जीरक पृषोदरादित्वात् कस्य णः। जीरक जीरा।

जीरदानु (सं० पु०) जीरं क्षिप्रं कर्मफलं वा ददाति। जीर-दा नु। १ शीघ्र दान। २ क्षिप्रगति अश्वको देनेवाला।

जीरा (हिं० पु०) जीरक देखो।

जीरा—१ आसामके अन्तर्गत ग्वालपाड़ा जिलेका एक ग्राम। यहां प्रति सप्ताह एक हाट लगती है। हाटमें गारोगोम लाइ आदि पर्वतसे उत्पन्न द्रव्योंके बदले कपडे, नमक, चावल और सूखी मछली दी जाती है। इस ग्राम के नामानुसार जीराहार नामक एक विस्तीर्ण भूभाग है जहां बहुत अच्छी अच्छी धानकी लकड़ी पाई जाती है।

२ गुजरातका एक शहर। यह अक्षा० २१ १६ उ० और देशा० ७१ ५ पू०के मध्य राजकोटसे दक्षिण पूर्व ७१ मील दूर तथा भड़ोचसे दक्षिण-पश्चिम १४२ मील दूरमें अवस्थित है।

३ रेवा राज्यके अन्तर्गत दक्षिणखण्डका एक शहर। यह भरियामसे १२८ मील दक्षिण-पश्चिम, अक्षा० २१ ५० उ० और देशा० ८२ २० पू०में पड़ता है।

४ पञ्जाबके अन्तर्गत फिरोजपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०° ५२' से ३१° ८' उ० और देशा० ७४° ४७' से ७५° २६' पू०में अवस्थित है इसका क्षेत्रफल ४८५ वर्गमील है। इसके उत्तरमें शतद्रु नदी है, जिसने लाहोर और अमृतसर जिलेसे इसे अलग कर रक्खा है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः १७६४६२ है। इस तहसीलके भूमि सर्वत्र समान है। यह एक विस्तीर्ण प्रान्तर है, कहीं भी पर्वत आदि नहीं हैं। बाढ़का पानी खाडीमें आ कर गिरता है इसीसे यहां उपज अच्छी होती है। यहांके उत्पन्न द्रव्य धान, कपास, गेहूँ चना, जुआरी, तमाकू, साग और फलमूलादि हैं। इस तहसीलमें जीरा मखु और धरमकोट नामके शहर तथा ३४२ गांव लगते हैं। एक तहसीलदार और एक मुन्सिफ, एक दीवानी और दो फौजदारी अदालतमें विचारकार्य करते हैं। यहां पांच थाना है।

५ पञ्जाबके फिरोजपुर जिलेकी जीरा तहसीलका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० ३०° ५८' उ० और देशा० ७४° ५८' पू०में फिरोजपुर शहरसे २६ मील दूर फिरोजपुरसे लुधियाना जानेके रास्ते पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ४००१ है। यह शहर छोटा होने पर भी इसके चारों ओर अच्छे अच्छे बगीचे लगे हैं। इसके पास हो कर एक खाडी गई है। यहां तहसीलदारकी कचहरी, थाना, विद्यालय, अस्पताल, मिउनिसिपल सराय, डाकबङ्गला आदि हैं।

जीरागुड़ (सं० क्ली०) जीरायुक्तं गुडं, मध्यपदलो०। वैद्यकोक्त एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली सेतपर्पटी, गुडूची और वासक (अडूसा)-का क्वाथ या त्रिफलाका रस, जीरा, गुड, मधु इनको सेफाली-पत्रके रसके साथ मिलानेसे जीरागुड़ बनता है। इस औषधिके खानेसे श्लेष्मा युक्त विषमज्वर और साधारण विषमज्वर वा सब तरहका बुखार जाता रहता है। यह अग्निवृद्धिकर और सर्व-प्रकार वातरोगनाशक है। (चिकित्सासारसं०, ज्वरा०)

और एक प्रकारका जीरागुड है जो जीरा, गुड और मरिचके मिलानेसे बनता है। यह जीरागुड ऐकाहिक ज्वर (इकतरा) में जल्दी फायदा पहुंचाता है। (चिकित्सारत्न)

जीराध्वर (वै० त्रि०) विघ्न या विपद्-रहित, जिसे किसी प्रकारका विपद न हो।

जीराश्व (वै० त्रि०) क्षिप्रगति अश्वयुक्त, जिसके तेज घोड़ा हो।

जीरि (सं० पु०) जीर्यति जृ-बाहुलकात् क्रिन्। १ मनुष्य। (त्रि०) २ जारक। ३ अभिभावक, रचक सरपरस्त।

जीरिका (सं० स्त्री०) जीर्यति जृ क्रिक् ईयान्तादेशः ततः स्वार्थे कन्। वंशपत्रीतृण, वंशपत्री नामकी घास।

जीरी (हिं० पु०) अगहनमें तैयार होनेवाला एक प्रकारका धान। यह पञ्जाबके करनाल जिलेमें अधिक उपजता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रखने पर भी किसी तरहका नुकसान नहीं होता है। इसके दो भेद हैं—एक रमाली और दूसरा रामजमानी।

जीरीपटन (हिं० पु०) पुष्पविशेष, एक प्रकारका फूल।

जीर्ण (सं० त्रि०) जृ-क्त तस्य निष्ठा नत्वं। गत्यर्थाकर्मकश्लिषेति पा ।३।४।७२१ वयःप्रकारभेद, जिसको बुढ़ापा आ गया हो, वृद्ध, जरायुक्त, बूढ़ा। २ पुरातन, पुराना। (गीता)

(पु०) ३ जीरक, जीरा। ४ शैलज, छरीला। (राजनि०)

(त्रि०) ५ उदराग्निके द्वारा जिसका परिपाक हुआ हो, परिपक्व, पका हुआ। (चाणक्य)

किस किस द्रव्यके साथ किस किस द्रव्यके मिलने पर जीर्ण होता है, इसका वर्णन जीर्णमञ्जरीमें इस प्रकार लिखा है—नारियलके साथ चावल, खीरके साथ आम्र जम्बीरोत्थ रस और मोचकफलके साथ घी, गेंहूके साथ ककडी, मांसके साथ काञ्जिक, नारङ्गके साथ गुड़, पिण्डारकसे कोदो, पिष्टान्नसे सलिल, चिरौंजीसे हर्रे, क्षीरभवसे खांड और मठा, कोलम्बजसे ईषदुष्ण जल, तथा मत्स्यसे आम्रफल शीघ्र जीर्ण होता है। जल पीनेके बाद मधु, पौष्करजसे तैल, कटहरसे केला, केलासे घी घीसे जम्बूरस, नारियलके फल और ताड़के बीजसे चावल, दाडिम, आंवला, ताड, तेंदू, बिजौरा नीबू और हरफरी बकुलफलके साथ, मधुक, मालूर, तृणादन, परूष, खजूर और कपित्थ (कैथ) नीमके बीजके साथ, घीके साथ मठा, मातुलपत्रकके साथ गेंहू, माष (उडद),

चना, मटर और मूंग; सिंघाड़ा और मिरचोंके साथ गोया, मांस और कटहरके साथ गोलमरिच सैन्धवके साथ कागर (तिल और चावल), मस्तिष्क दग्ध पिप्पली और पिप्पलीके साथ पिपिट, कर्पूर, सुपारी, नागवल्ली, काञ्जी (गनिवारी), तालफल, जीतिकोम कस्तूरिका; सिंघाड़ा और नारिकेलका पानी समुद्रफेनके साथ मसामाथ, गोवार (तिलो), कुम्हड़, पत्ती, चिवडा और कुम्हड़ी तिल के तेलके साथ; करील, महाड़, पनास और खजूरका नागरके साथ; मक्खन या ईषदुष्ण जलके साथ घी, कांजिक के साथ तिलका तैल कटहर और आंवला मर्ममज्जाके साथ, मक्खन और मांस मद्यके साथ तथा पक्षिपक्व मांसके साथ मद्य जीर्ण होता है। कपोत पारावत, गोवत्सक और कपिञ्जलका मांस जो कर कामके मूलको उष्ण करके जानेसे जीर्ण होता है। महदूषके साथ खमारि, गारी, घृत, दधि और दुग्ध जीर्ण होता है। मूंगके जपके साथ चावलको और तथा बैंगन, वंशांकुर, मूली और, लौकी, और परवल मैनफलके साथ जीर्ण होता है। तिलके चावलके साथ सब तरहके मांस जीर्ण होते हैं। पत्तूक सिताईक (सफेद सरसों) और वास्तुक (बथुआ का साग गावविसारके क्वाथके साथ प्रायः जीर्ण होता है। धमनमें मृगमांस, सुरतावसानमें सुनिद्रा, अतिव्यवाय में ताम्बूल और तिलका तैल सर्व रोगमें हितकर है।

जीर्णक (सं० त्रि०) जीर्णप्रकार स्थूलादित्वात् कन्। जीर्णप्रकार।

जीर्णज्वर (सं० पु०) जीर्णः पुरातनो ज्वरः कर्मधा०। पुरातन ज्वर, पुराना बुखार। १२ दिनसे अधिक होने पर ज्वर जीर्ण अर्थात् पुराना हो जाता है। इस ज्वरका वेग मन्दगामी है। किसीके मतानुसार प्रत्येक ज्वर अपने आरम्भके दिनसे ७ दिनों तक तरुण, १४ दिनों तक मध्यम और २१ दिनोंके पीछे जब रोगीका शरीर दुर्बल और रूखा हो जाय और उसे भूख न लगे तथा उसका पेट सदा भारी रहे 'जीर्ण' कहलाता है। पुरातन ज्वरमें उपवास करना अहितकर है। उपवाससे शरीर दुर्बल हो जाता और शरीरके दुर्बल होनेसे ज्वरका तेज बढ़ जाता है। ज्वर देखो।

जीर्णज्वराङ्कुशरस (सं० पु०) जीर्णज्वरे अङ्कुश-इव यो रसः कर्मधा०। वैद्यकोक्त एक औषध। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है—रस रससे दूना गन्धक और सुहागा, रस के बराबर विष, विषसे पंचगुनी कालीमिर्च, कालीमिर्चके बराबर कटफल और दन्तीबीजको मिला कर यह औषध बनाना चाहिये। जीर्णज्वरमें यह औषध बहुत फाय देमन्द है। यह जीर्णज्वराङ्कुशरस त्रिदोषज सब तरहके ज्वर उत्कट ज्वर, विषमज्वर, ज्वर आदि सब तरहके ज्वर को शीघ्र नष्ट करता है। (भिषज्यरत्नावली०, रसचि०)

जीर्णता (सं० स्त्री०) जीर्णस्य भाव जीर्ण तल्-टाप्। १ जीर्णत्व, पुरानापन। २ हलके बुढ़ापा, बुढ़ाई।

जीर्णदारु (सं० पु०) जीर्णमिव दारुर्यस्य। वृद्धदारक वृक्ष, विधाराका पेड़। इसके पर्याय—जीर्णफञ्जी, सुपुष्पिका, अजरा और सूक्ष्मपत्रा है। इसके गुण—शीत्य, पिच्छिल कफनाशक और वातदोषनाशक तथा रम्य है।

जीर्णदेह (सं० पु०) जीर्णः देहः यस्य, बहुव्री०। जीर्ण-कलेवर, वृद्धशरीर, जिसका शरीर पुराना हो गया हो।

जीर्णपत्र (सं० पु०) जीर्णं पत्रमस्य, बहुव्री०। १ पट्टिका लोध्र पठानी लोध। (त्रि०) २ जीर्णपत्रयुक्त जिसके पत्ते पुराने हो गये हों।

जीर्णपत्रिका (सं० स्त्री०) जीर्णानि पत्राण्यस्याः, बहुव्री०, कप् ततष्टाप अत इत्वं। वंशपत्रीतृण।

जीर्णपर्ण (सं० पु०) जीर्णानि पर्णानि यस्य बहुव्री०। १ कदम्बका पेड़। (क्ली०) जीर्णं पर्णं, कर्मधा०। २ पुरातन पत्र, पुराना पत्र।

"पर्णमूले मवेत् व्याधिः पर्णाग्र पापसम्भवः।
जीर्णपर्णं हरेदायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी॥" (वैद्यक)

ताम्बूलका अग्रभाग पृथक कर भक्षण करना चाहिये। ३ पट्टिकालोध्र, पठानी लोध।

जीर्णफञ्जी (सं० स्त्री०) जीर्णा फञ्जी कर्मधा०। वृद्धदारकवृक्ष, विधाराका पेड़।

जीर्णबुध्न (सं० पु०) जीर्णोऽस्त्री बुध्नमूलमस्य, बहुव्री०। पट्टिकालोध्र पठानी लोध।

जीर्णबुध्नक (सं० पु०) जीर्णो बुध्नो मूलं यस्य, बहुव्री०, ततो कप्। १ पट्टिकालोध्र। २ पिप्पलि, छोटी पीपल।

जीर्णवस्त्र (सं० क्ली०) जीर्णं पुरातनं वस्त्रं चीरकमिव। वैक्रान्तमणि।

जीर्णवस्त्र (सं० क्ली०) जीर्णं वस्त्रं, कर्मधा०। पुरातन वस्त्र, पुराना कपड़ा। इसके पर्याय—पटच्चर।

जीर्णसंस्कार (सं० पु०) जीर्णस्य संस्कारः, ६ तत्। पुरानी वस्तुकी सुधारना, मरम्मत।

जीर्णसंस्कृत (सं० त्रि०) जीर्णस्य संस्कृतः, ६-तत्। जो मरम्मत को गई हो।

जीर्णसीतापुर—मन्द्राज प्रदेशका एक प्राचीन नगर। किसी एक जैन राजाने यह नगर स्थापन किया है। वर्त्तमान वेलगांव और शाहपुर जिस स्थान पर अवस्थित है उसी स्थान पर यह नगर भी अवस्थित था। आज भी इसके दुर्ग प्राचीर और सरोवर आदिका भग्नावशेष विद्यमान है।

जीर्णा (सं० स्त्री०) जृ क्त-टाप्। स्थूल जीरा, काली जीरी। (त्रि०) २ प्राचीना, वृद्धा, बुढ़िया।

जीर्णास्थिमृत्तिका (सं० स्त्री०) एक तरहकी बनावटी मिट्टी, जो हड्डियोंको सड़ा गला कर बनायी जाती है। कृत्रिम मृत्तिकाका विषय शब्दार्थचिन्तामणिमें इस प्रकार लिखा है। जहांसे शिलाजीत निकलता हो, ऐसे स्थान पर एक गहरा गड्ढा खोदना चाहिये। उस गड्ढेको द्विपद और चतुष्पद जन्तुओंकी हड्डियोंसे भर देना चाहिये। इसके बाद सर्जिक्षार, महाक्षार, मृत्क्षार, नमक, गन्धक, और गरम पानी छोड़ना चाहिये। इस प्रकार छह महीने तक जारी रख कर उसके बाद पाषाणमृत्तिका डालनी चाहिये। इस तरह तीन वर्षके भीतर सब पदार्थ एकत्र हो कर प्रस्तर सदृश हो जाते हैं। पीछे उसको गड्ढेसे निकाल कर चूर्ण करना चाहिये। इस चूर्णका पात्र बनता है, जो बहुत अच्छा होता है। इस पात्रमें दूषित भोजनकी परीक्षा हो जाती है। भोजनमें यदि महाविष मिला हो, तो वह पात्र टूट जाता है। भोजनमें यदि दूषित विषादिका संयोग हो, तो उक्त पात्रमें दाग पड़ जाते हैं और क्षुद्र विष हो तो पात्र काला पड़ जाता है।

जीर्णि (सं० त्रि०) जृ-क्तिन्। जीर्णता, पुरानापन।

जीर्णोद्धार (सं० पु०) जीर्णस्य पूर्वप्रतिष्ठापितलिङ्गादेरुद्धारः, ६-तत्। १ पूर्व-प्रतिष्ठापित देवमूर्ति लिङ्गादिका उद्धार, टूटे फूटे मन्दिर आदिका पुनःसंस्कार, जो वस्तु जीर्ण हो कर अकर्मण्य हो गई है, मरम्मत करा कर उसको पूर्ववत् बनाना। पूर्वप्रतिष्ठापित लिङ्गादिके जीर्णोद्धारके विषयमें अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—मूर्ति अचल होने पर उसको घरमें रखें, अति जीर्ण होने पर परित्याग करें और भग्न वा विकलाङ्ग होने पर संहारविधिसे परित्याग करें। नारसिंहमन्त्रसे सहस्र होम कर गुरु उसकी रक्षा कर सकते हैं। लिङ्गादि काष्ठनिर्मित हों, तो उन्हें अग्निमें जला देना चाहिये। प्रस्तरनिर्मित होने पर पानीमें निक्षेप करना चाहिये और धातु वा रत्नज हो, तो समुद्रमें निक्षेप करना उचित है। जितनी बड़ी मूर्तिका परित्याग किया जाता है, उतनी ही बड़ी मूर्ति शुभ दिनमें स्थापित की जाती है। कूप, वापी और तड़ागादिका जीर्णोद्धार महाफलजनक है। कूप, वापी और तड़ागादिका जीर्णोद्धार महाफल जनक है।

अनादि सिद्धप्रतिष्ठित लिङ्गादिके (अर्थात् जिस लिङ्गको किसीने प्रतिष्ठा नहीं की हो) टूट जाने पर प्रतिष्ठादि जीर्णोद्धार करनेकी आवश्यकता नहीं; किन्तु उस मूर्तिका महाभिषेक करें। "जीर्णोद्धारं करिष्ये" ऐसा संकल्प करें। "ॐ व्यापकेश्वरशिरसे स्वाहा" इस मन्त्रसे षडङ्गन्यास कर शत अघोर मन्त्र जप करना पड़ता है। पीछे अग्नि स्थापित कर घृत, सर्षप द्वारा सहस्र होम करें। फिर इन्द्रादि देवोंको बलि प्रदान करें। जीर्णदेवको प्रणव द्वारा पूजा करके ब्रह्मादि देवताओंका होम करें। इसके बाद कृताञ्जलि हो कर यह मन्त्र पढ़ कर प्रार्थना करनी पड़ती है—

"जीर्णभग्नमिदं चैव सर्वदोषावहं नृणाम्।
अस्योद्धारे कृते शान्तिः शास्त्रेऽस्मिन् कथिता त्वया॥
जीर्णोद्धारविधानंच नृपराष्ट्रहितावहम्।
तदधिष्ठिततया देव प्रहरामि तवाज्ञया॥"

होम आदि सम्पूर्ण कार्यांको समाप्त कर फिर इस मन्त्रसे प्रार्थना करें—

"लिंगरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितम्।
यायास्त्वं वस्मितं स्थानं सन्त्यस्यैव, शिवाज्ञया॥

१० जैन वा अनेकान्तवादियोंका पारिभाषिक जीवास्तिकाय पदार्थभेद। यह दो प्रकारका है—एक मुक्त और दूसरा बद्ध अर्थात् संसारी। जो कर्म-आवरणोंसे विमुक्त हैं जिनको जन्म जरा मृत्युका दुःख नहीं और जिनके आस्रव बन्धके कारणरूप मन वचन कायको क्रिया नष्ट हो गई है, ऐसे त्रैकालिक वा केवलज्ञानके धारक परम सिद्धोंको मुक्त जीव कहते हैं। और जो सर्वदा मोह आदि आवरणोंसे दूषित हो कर निरन्तर जन्म-जरा मृत्युके दुःखसे दुःखित हैं तथा जिनके सर्वदा कर्मोंका आस्रव, बन्ध आदि होता रहता है, उनको बद्ध अर्थात् संसारी जीव कहते हैं। जीवात्मा देखो।

११ उपाधिप्रविष्ट ब्रह्म अर्थात् वाक्-मन-अन्तःकरण समूहके मध्य अनुप्रविष्ट ब्रह्मके वाक्मन अन्तःकरणआदिके भीतर सूक्ष्मभावसे प्रविष्ट होने पर वह जीवपदवाच्य होता है।

१२ घटावच्छिन्न आकाशको भाँतिका शरीरवयावच्छिन्न चैतन्य। भूत मातृपितृज और लिङ्ग इन तीनोंका नाम जीव है। आकाशशरीर बहुत बड़ा है, पर घटावच्छिन्न घटप्रविष्ट होने पर वह घटके बराबर हो जाता है, इसी तरह ब्रह्म शरीरत्रयमें रहते समय जीव कहलाते हैं। जिस प्रकार घटके टूट जानेसे घटाकाश महाकाशमें विलीन हो जाता है, उसी तरह इस शरीरत्रयके नष्ट होने पर जीव भी ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

१३ दर्पणस्थित मुखके प्रतिबिम्बकी भाँति बुद्धिस्थित चैतन्य-प्रतिबिम्ब बुद्धि और चैतन्य जब प्रतिबिम्बित होता है, तभी वह जीवके नामसे पुकारा जाता है।

१४ प्राणादि कालका धारयिता। जितने दिन प्राण रहे उतने दिन उसको जीव कहा जा सकता है। (भागवत)

१५ लिङ्गदेह। (भागवत) पञ्चतन्मात्र—शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध, गुण—सत्त्व, रज, तम, षोडश विकृति—एकादश इन्द्रिय और पञ्चभूत इन चौबीस तत्त्वोंके साथ युक्त होने पर जीवपदवाच्य होता है। इस जीवका परिमाण केशाग्रके सहस्र भागका एक भाग है।

१६ विष्णु। (भा०त०३।१५।१।६८) १७ अश्लेषा नक्षत्र। (ज्योति०) १८ सप्तानिम्बवृक्ष, बकायनका पेड़। (मातप्र० पूर्व०)

जीव—हिन्दीके एक कवि। ये लगभग १७५० सम्वत्में विद्यमान थे।

जीवक (सं० पु०) जीवयति आरोग्यं करोति जीव-णिच्-ण्वुल्। १ जीववृक्ष, अष्टवर्गान्तर्गत औषधविशेष एक जड़ी या पौधा। इसके संस्कृत पर्याय—कूर्चशीर्ष, मधुरक, शृङ्ग, ह्रस्वाङ्ग, जीवन, दीर्घायु, प्राणद, जीव्य, भृङ्गाह्व, प्रिय, चिरञ्जीवी, मधुर, मङ्गल्य, कूर्चशीर्षक, वृद्धिद, आयुष्मान्, जीवद और बलद। इसके गुण—यह मधुर, शीतल तथा रक्तपित्त, वायुरोग, क्षय, दाह और ज्वरनाशक (राजनि०) बलकारक, शुक्रता और वात नाशक है। इसके सेवनसे जीवनकी वृद्धि होती है, इसलिए इसको जीवक कहते हैं। जीवक कन्द या कूर्चशीर्षको जातिका ऋषभकसे छोटा है और इसके मस्तकसे कूर्चाकार शीर्ष (जैसा कि नारियल आदिके पेडकी चोटी पर निकला हुआ रहता है) निकलता है। जीवक और ऋषभ दोनों हो एक जातिके तथा दोनोंका हो कन्द आस्रको भाँतिका होता है। इनके पत्ते बहुत बारीक होते हैं पर जीवकका शीर्ष कूर्चाकार (कूंचीके आकारका) और ऋषभकका शीर्ष बैलके सींगके समान होता है। इससे मालूम होता है कि, Ciplatus नामक एक प्रकारका कंटीला सींगकी आकृतिका वृक्ष है जो देखनेमें गोल उंगली जैसा लगता है, इसमें पत्तियाँ नहीं होतीं। इसके चारों तरफ लम्बी लम्बी धारियाँ होती हैं।

२ पीत मालवृक्ष। (भावप्र०) ३ क्षपणक, दिगम्बर (जैन) मुनि। ४ अहितुण्डिक, संपेड़ा। ५ वृद्धिजीवी, व्याज ले कर जीविका निर्वाह करनेवाला, सूदखोर। ६ सेवक। ७ प्राणधारक, प्राणोंको धारण करनेवाला जैन-राजा सत्यन्धरके पुत्र। जीवन्धरस्वामी देखो।

जीवग्रभ (वै० पु०) जीवन्त अवस्थामें ग्रहण, जीतेजीमें पकड़ना।

जीवगोस्वामी—गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके छह गोस्वामियोंमेंसे एक। वैष्णवदिग्दर्शनीमें इनके जन्म आदिका समय इस प्रकार लिखा है—

उन्होंने भक्तिरसामृतके समाप्त होनेके विषयमें पूछा। श्रीरूपने उत्तर दिया—"जीवके चले जानेसे देर हो रही है, वह रहता तो अब तक समाप्त हो जाता, उससे बड़ी सहायता मिलती थी।" सनातनने जीवका सब हाल पूछा। श्रीरूपने सब हाल कह सुनाया। इस पर सनातनने कहा—"आते समय मुझे वनसे एक बालक दिखाई दिया था, शायद वही जीव होगा। जाओ, उसे क्षमा कर दो, बहुत शिक्षा मिल चुकी, अब उसे ले आओ।"

सनातन श्रीरूपके गुरु थे; गुरुके आदेशानुसार उन्होंने जीवको क्षमा प्रदान की। गुरु-शिष्यका पुनर्मिलन हुआ।

जीवगोस्वामीकी वंशावली।

जगद्गुरु (कर्णाटके राजा १२०२ शक)
|
अनिरुद्ध (१२३८ शकमें राजा हुए)
|
रूपेश्वर — हरिहर
|
पद्मनाभ (१३०८ शकमें जन्म)
|
पुरुषोत्तम, जगन्नाथ, नारायण, मुरारि, मुकुन्द
|
मुकुन्द → कुमार
|
दोनोंका नाम मालूम नहीं, सनातन, रूप, वल्लभ
|
वल्लभ → जीवगोस्वामी
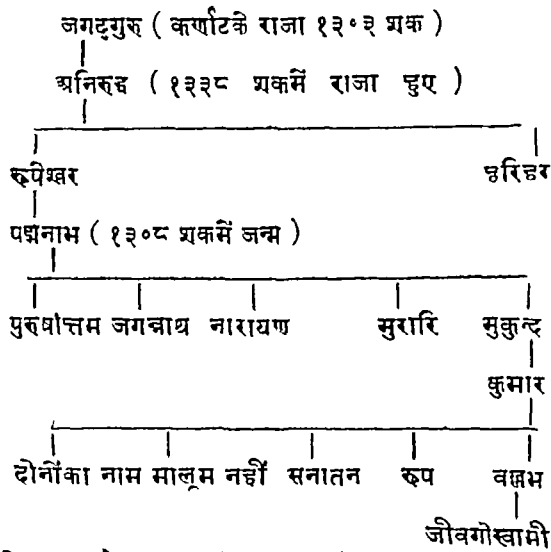
जीवग्रह (वै० पु०) नवीन सोमपूर्ण।

जीवग्राह (सं० पु०) बन्दी, कैदी।

जीवघन (सं० पु०) जीव एव घनो मूर्त्तिरस्य, बहुव्री०। हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा।

"स एतस्माज्जीवघनात् परात्परम्।" (प्रश्नोपनि०)

जीवघोषस्वामी—एक संस्कृत वैयाकरणका नाम।

जीवज (सं० त्रि०) जीवजात, जिसने जीवन ग्रहण किया हो।

जीवञ्जीव (सं० पु०) जीवेन भक्ष्य क्षुद्रकीटादिना जीवयति जीव अच यद्वा जीवञ्जीव पृषोदरादित्वात् साधुः। जीवञ्जीव पक्षी, चकोर पक्षी।

जीवञ्जीवक (सं० पु०) जीवञ्जीवः स्वार्थे कन्। चकोर पक्षी। "हत्वा रक्तानि मांसानि जायते जीवजीवकः।" (मनु १२।६६)

जीवञ्जीव (सं० पु०-स्त्री०) जीवं जीवयति विषदोषं नाशयति, बाहुलकात् खच्। १ चकोर पक्षी। २ एक दूसरे प्रकारका पक्षी। ३ वृक्षविशेष एक पेड़का नाम।

जीवट (हिं० स्त्री०) साहस, हिम्मत, मरदानगी।

जीवतत्त्व (सं० क्ली०) जीवस्य तत्त्वं यत्र, बहुव्री०। वह शास्त्र जिसमें प्राणियोंकी जाति, स्वभाव, क्रिया तथा चरित्र आदि वर्णित हैं।

जीवत्तोका (सं० स्त्री०) जीवत् तोकं अपत्यं यस्याः, बहुव्री०। जीवत्पुत्रिका, वह स्त्री जिसकी सन्तति जीती हो।

जीवत्पति (सं० स्त्री०) जीवन् पतिर्यस्याः, बहुव्री०। सौभाग्यवती स्त्री, सधवा स्त्री, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।

जीवत्पिता (सं० त्रि०) जिसका पिता जीवित हो।

जीवत्पितृक (सं० पु०) जीवन् पिता यस्य बहुव्री०। वह जिसका पिता जीवित हो। पिताके जीवित रहने पर अमास्नान, गयाश्राद्ध और दक्षिणकी ओर मुंह कर भोजन नहीं करना चाहिये, जो अमास्नानादि करता है वह पितृहन्ता होता है। (तिथितत्त्व)

जीवत्पितृक यदि साग्निक ब्राह्मण हो, तो उसको श्राद्धविशेषमें अधिकार है, न कि निरग्नि होने पर। (निर्णयसिन्धु) पितामहके जीवित होने पर भी श्राद्ध आदि कर सकता है, किन्तु प्रपितामह यदि जीवित हों, तो नहीं कर सकता।

प्रयोगपारिजात आदि स्मृतिनिबन्धकारोंके मतसे—साग्निक जीवत्पितृक ही श्राद्ध आदि पितृकार्य कर सकता है, निरग्निक नहीं। परन्तु यह मत विशुद्ध नहीं है। निरग्नि जीवत्पितृक होने पर भी वृद्धिश्राद्ध कर सकता है, पर अन्य श्राद्ध नहीं कर सकता। (हारीत)

और भी बहुतसे प्रमाण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि जीवत्पितृक निरग्निक होने पर भी वृद्धिश्राद्ध कर सकता है और साग्निक जीवत्पितृक सब श्राद्ध कर सकता है,

जिनमेंसे हविर्यादके बिना अन्य याग नहीं कर सकती।

जीवत्पिता (सं० स्त्री०) जीवन् पुमो यस्या, बहुव्री० जीवत्पुत्रे न्यायें कप् टाप् इत्वम्। जिसका पुत्र जीवित हो।

जीवत्व (सं० क्ली०) जीवस्य भावः। जीवका भाव।

जीवथ (सं० पु०) जीवस्तमिन् जीव अथ। १ प्राण। २ कूर्म, कच्छप कछुआ। ३ मयूर, मोर। ४ मेघ, बादल। (त्रि०) ५ धार्मिक पुण्यात्मा। ६ दीर्घायु, चिरजीवी।

जीवद (सं० पु०) जीवं जीवनं ददाति औषधादिप्रयोगेन, जीव दा-क। १ वैद्य। २ जीवक द्रुम। ३ जीवन्ती द्रुम। जीव दो क। ४ शत्रु, दुश्मन। (त्रि०) ५ जीवनदाता।

जीवदा (सं० स्त्री०) जीवद टाप्। १ जीवन्तीद्रुम। २ ऋद्धि।

जीवन्दाद (सं० त्रि०) जीव जीवनं ददाति दा-क्वप्। जीवनदायी, जीवन देनेवाला।

जीवदात्री (सं० स्त्री०) जीव दात्र ङीप्। १ ऋद्धि नामक औषध। २ जीवन्ती द्रुम।

जीवदान (सं० क्ली०) जीवस्य दान, ६ तत्। प्राणदान प्राणरक्षा।

जीवदातृ (सं० त्रि०) जीवं ददाति दा-तृच् न्यायात् तृ। जो जीवको धारण करते हों।

जीवदान आहिक्षीपति—एक कविका नाम। इन्होंने पद्मावली नामक एक संस्कृत कविता ग्रन्थ रचा है।

जीवदेव—आपदेवके पुत्रका नाम। इनका बनाई हुई निम्नलिखित पुस्तकें पाई जाती हैं—भक्तिनिर्णय, जीवन्मुक्तिनिर्णय और संस्कारकौस्तुभके ऊपर भाट्टभास्करी।

जीवद्दा (सं० स्त्री०) जीवाय जीवनाय हृद्दा। जीवन्ती द्रुम।

जीवद्या (सं० स्त्री०) ६ तत्। जीवदान।

जीवधन (सं० क्ली०) जीव एव धन कर्मधारय। १ जीवरूपधन, वह सम्पत्ति जो जीवों या पशुओंके रूपमें हो। जैसे गाय, भैंस भेड़ बकरी, ऊंट आदि। २ जीवन धन प्राणप्रिय प्यारा।

जीवधानी (सं० स्त्री०) जीवा धीयन्ते अस्यां अधिकरणे का-स्युट् ङीप्। सब जीवोंको आधारस्वरूपा पृथिवी।
"इदम् मां तम सुश्रुषामे वा जीवधानी इदमगर्भवत।" (भागवत ५।१।१९)

जीवधारी (सं० पु०) प्राणी चेतन, जन्तु जानवर।

जीवन (सं० क्ली०) जीव भावे ल्युट्। १ स्थिति, जीविका। २ प्राणधारण। ३ जल पानी। जलके बिना प्राणकी रक्षा नहीं होती, इसलिये जल जीवन कहा अभिहित है। 'जलमयं हि सौम्य ! मनः आपोमयः प्राण।" (छान्दोग्य) जल तीन भागोंमें विभक्त है, उसको स्थूल भाग मूत्र रूपमें, मध्यम भाग रक्त रूपमें और अणुभाग प्राण रूपमें परिणत होता है। "आप पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं भवति योऽणिष्ठः स प्राणः।" "पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति स प्राणो भवति" "षोडशकलः सौम्य ! पुरुषः पञ्चदशाहानि माऽशीः काममपः पिबापोमयः प्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यते" (छान्दोग्य उ०) ४ जीवनसाधन। ५ सद्यःप्रसूत घी, ताजा घी। श्रुतिमें लिखा है, "आयुर्वै घृतं" घृत ही आयु है, घृत भोजन ही आयुष्कर है, इसलिये घृतको जीवन कहा गया है। ६ मज्जा। (पु०) ७ वात, वायु। ८ जीवकौषध जीवक नामको औषध। ९ क्षुद्र फलवृक्ष। १० पुत्र, बेटा। जीवयति जीव णिच् कर्त्तरि ल्यु। ११ परमेश्वर। "कर्त्ता प्रजा प्राणदेन जीवनम् जीवनः।" (भारत) १२ मज्जा। "जीवन जीवनदाता मम जैसा जगन्मयी।" (काशीख० २१।६१) १३ जीवनदाता।

जीवन—१ एक हिन्दीके कवि। इन्होंने १६११ ई०में जन्म ग्रहण किया था।

२ हिन्दीके एक कवि। ये मुहम्मद अलीखानके यहां रहते थे। १७३६ ई०में इनका जन्म हुआ था।

जीवनक (सं० क्ली०) जीव्यतेऽनेन जीव करणे ल्युट्, ततः स्वार्थे कन्। १ अन्न अनाज। २ हरीतकी, हड़।

जीवनचरित (सं० पु०) १ जीवनका वृत्तान्त जिन्दगीका हाल। २ जीवनवृत्तान्तयुक्त ग्रन्थ, वह पुस्तक जिसमें किसीके जीवन भरका वृत्तान्त हो।

जीवनधन (सं० पु०) १ जीवनका सर्वस्व। २ प्राणाधार, प्राणप्रिय, प्यारा।

जीवनदास—'ककहरा' नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता।

जीवननाथ—१ एक हिन्दी कवि। अयोध्याके अन्तर्गत नवलगंजमें १८१५ ई०को अयोध्याके दीवान बालकृष्णके वंशमें इनका जन्म हुआ था। इन्होंने 'वसन्तपचीसी' नामक हिन्दीकी एक बहुत अच्छी पुस्तक लिखी है।

२ अलङ्कारशेखरके रचयिता। ३ कई एक चिकित्सा ग्रन्थके प्रणेता। ४ तत्त्वोदयप्रणेता।

जीवन बाजार—दिनाजपुर जिलेका एक बन्दर। इसका दूसरा नाम गोराघाट है। यह करतोया नदीके ऊपर अवस्थित है। इस बन्दरसे दिनाजपुरका चावल दूसरे दूसरे स्थानोंमें भेजा जाता है।

जीवनबूटी (हिं० स्त्री०) सञ्जीवनी नामका पौधा।

जीवन मस्तानि—हिन्दीके एक कवि। ये प्राणनाथके शिष्य थे। इन्होंने १७०० ई०में पंचकटहाई नामक हिन्दी ग्रन्थ लिखा था।

जीवनमुल्ला—इनका असली नाम शेख अहमद था। ये बादशाह औरङ्गजेबके शिक्षक थे। इन्होंने तफसीरअहमदी नामको कुरानकी एक टीका बनाई है। ११३० हिजिरा (१७१८ ई०) में इनकी मृत्यु हुई। इनको मुल्लाजीवन जौनपुरी भी कहते थे।

जीवनमूरि (हिं० स्त्री०) १ सञ्जीवनी नामको जड़ी। २ अत्यन्त प्रिय वस्तु, प्राणप्रिया, प्यारो।

जीवनयोनि (सं० स्त्री०) जीवनस्य योनि: कारणं, ६ तत्। न्यायोक्त देहमें प्राणसञ्चारकारण यत्न। यही यत्न अतीन्द्रिय है।

"यत्नो जीवनयोनिस्तु सर्वदातीन्द्रियो भवेत्।
शरीरे प्राणसञ्चारकारणं परिकीर्तितम्॥" (भाषाप०)

जीवनराम भाट—खजुरहरा (जिला हरदोई) निवासी एक हिन्दीके कवि। इन्होंने जगन्नाथ पण्डितराज कृत गङ्गालहरीका भाषा पद्यानुवाद किया था। करीब १४ वर्ष हुए इनका देहान्त हो गया है। इनकी कविताका एक उदाहरण दिया जाता है—

"देखी मैं बरात रामलीलाकी इटौंजा
मध्य शोभा रूपधाम राजा रामको विवाह है।
पौलैं चोपदार भूम धौंसाकी धुकार सुनि
चित्त नर नारिनके चौगुनो उछाह है।
भारी भीर भूधर गयन्दनकी सीस घटा
साजे गजराज पै विराजै सीता-नाह है।
जीवन सुकवि प्रेम अन्तर विचारि कहै
आपु महाराज सीस कीन्हे छत्र छांह है॥"

जीवनलाल नागर—हिन्दीके एक कवि। ये बूंदीके रहनेवाले और संस्कृत, फारसी और हिन्दीके अच्छे ज्ञाता थे। १८१२ ई०में इनका जन्म हुआ था। १८४१ ई०में ये बुंदी राज्यके प्रधान नियुक्त हुए थे। १८५७ ई०के गदरमें इन्होंने बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। १८६२ ई०में आगरेके दरबारमें इनको G C S I की उपाधि मिली थी। दस्तकारीमें भी इनकी अच्छी योग्यता थी। इनकी कविता सरस और प्रशंसनीय होती थी। उदाहरण—

"बदन मयंक पै चकोर ह्वै रहत नित,
पंकज नयन देखि भौंर लौं गयो फिरै।
अधर सुधारसके चखिबेको सुमनस,
पूतरी ह्वै नैननके तारन फयो फिरै॥
अंग अंग गहन अंगनको सुभट होत,
मानि गान सुनि ठगे मृग लौं ठयो फिरै।
तेरे रूप भूप आगे पियको अनूप मन,
धरि बहु रूप बहुरूप सो भयो फिरै॥"

जीवनवृत्त (सं० पु०) जीवनचरित, जीवनी।

जीवनवृत्तान्त (सं० पु०) जीवनचरित, जिंदगी भरका हाल, जीवनी।

जीवनवृत्ति (सं० स्त्री०) जीविका, रोजी।

जीवनशर्मा—गोकुलोत्सवके पुत्र और बालकृष्ण चम्पूके प्रणेता।

जीवनसाधन (सं० क्ली०) जीवनस्य साधनं, ६-तत्। जीवनका साधन, जीविका, रोजी।

जीवनसिंह—हिन्दीके एक कवि। लगभग १८१८ ई०में ये करौली राज्यके दरबारमें रहते थे।

जीवनस्पृहा (वै० स्त्री०) जीवनकी इच्छा, जीनेकी अभिलाषा।

जीवनहेतु (सं० पु०) जीवनस्य हेतु उपायः, ६-तत्। जीवन-साधन, जीविका, रोज़ी। गरुड़पुराणमें विद्या, शिल्प, भृति, सेवा, गोरक्षा, विपणि, कृषि, वृत्ति, भिक्षा

और सुश्रुतमें दस प्रकारके जीवनके उपाय बतलाये गये हैं।

"विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः ।
वृत्तिर्भैक्ष्यं कुसीदञ्च दश जीवनहेतवः ॥"

(मनु० १० अ०)

जीवना (सं० स्त्री०) जीवयति जीव णिच् युच् वा ल्यु, ततष्टाप्। १ महौषध। २ जीवन्तीक्षुप। ३ सिंहपिप्पली। ४ मेदा।

जीवनाघात (सं० क्ली०) जीवनं आहन्यतेऽनेन करणे आ-हन घञ् वा जीवनस्याघातो यस्मात्। विष जहर।

जीवनाथ—१ एक हिन्दीके कवि। इन्होंने अयोध्याके अन्तर्गत नवाबगञ्जमें १७५८ ई०को अयोध्याके दीवान शानप्रथमके समयमें जन्मग्रहण किया था। इन्होंने वसन्त-पचीसी नामक एक उत्कृष्ट हिन्दी पुस्तकका प्रणयन किया है। २ अमरुशतकटीकाके रचयिता। ३ एक चिकित्सा ग्रन्थके रचयिता। ४ रसोदयके रचयिता।

जीवनाई (सं० स्त्री०) १ दुग्ध, दूध। २ वाष्प, भाप।

जीवनावास (सं० पु०) आवसत्यस्मिन् आ-वस घञ् जीवनं जलं आवासोऽस्य वा। १ वरुण। (त्रि०) २ जलवासी जलमें रहनेवाला। (पु०) ३ जीवनाश्रय मन, देह, शरीर।

जीवनि (हिं० स्त्री०) १ सञ्जीवनी बूटी। २ प्राणाधार। ३ अत्यन्त प्रिय वस्तु।

जीवनिका (सं० स्त्री०) जीवन-कन् टाप् वा जीवनी स्वार्थे कन् ह्रस्वश्च। १ हरीतकी वृक्ष। हरीतकी देखो। २ काकोली। ३ जीवन्ती।

जीवनी (सं० स्त्री०) जीवत्यनेन जीव करणे ल्युट् ङीप्। १ काकोली एक प्रकारकी औषध। २ डोडी तिक्त जीवन्ती। ३ महामेदा। ४ मेदा। ५ जुही जूही। ६ जीवन्ती। इसके पर्याय—जीवा, जीवनीया मधुस्रवा, मङ्गल्या शाकश्रेष्ठा और पयस्विनी है। (स्त्री०) ७ जीवनचरित, जिन्दगीका हाल।

जीवनीय (सं० क्ली०) जीव्यतेऽनेन जीव करणे अनीयर् वा जीव अनीयर्। १ जल पानी। (क्ली०) २ दुग्ध। कर्मणि अनीयर्। ३ उपजीव्य आश्रय, सहारा। (त्रि०) भावे अनीयर्। ४ वर्त्तनीय जीविका करने योग्य। ५ जीवनप्रद।

जीवनीयगण (सं० पु०) जीवनीयानां जीवनीनां गण, ६ तत्। बलकारक औषधविशेष ताकतवर दवा, बहुतसे औषध द्रव्योंका समूह। अष्टवर्ग पर्णिनी जीवन्ती, मधुक और जीवन ये जीवनीयगण कहलाते हैं; कोई कोई इसे मधुकगण भी कहते हैं। जीवन्ती काकोली, मेद मुद्ग माषपर्णी ऋषभक जीवक और मधुक ये भी जीवनीयगण माने गये हैं।

(वाग्भट सूत्रस्थान १५ अ०)

इसके गुण—शुक्रकारक, वृष्य, शीतल, गुरु, गर्भप्रद, स्तनदुग्धदायक, कफवर्धक पित्त और रक्तशोधक, तृष्णा, शोष ज्वर, दाह और रक्तपित्तनाशक है।

जीवनीया (सं० स्त्री०) जीव अनीयर् स्त्रियां टाप्। जीवन्तीक्षुप। जीवन्ती देखो।

जीवनेत्री (सं० स्त्री०) जीवं नयति जीव नी तृच् ङीप्। सिंहलीक्षुप, सैंहलीका पेड़।

जीवनोपाय (सं० पु०) जीवनस्य उपाय ६ तत्। जीविका रोजी।

जीवनौषध (सं० क्ली०) जीवनस्य, म्रियमाणप्राणस्य रक्षणार्थं औषधं, ६ तत्। १ औषधविशेष, वह औषध जिससे मरता हुआ भी जी जाय। २ मद्य।

जीवन्त (सं० पु०) जीवयति जीव्यतेऽनेन वा जीव-झच्। १ औषध दवा। २ प्राण। ३ जीवशाक। (त्रि०) ४ आयुर्विशिष्ट जीता जागता।

जीवन्तिक (सं० पु०) जीवान्तक पृषोदरादित्वात् साधु। जीवान्तक।

जीवन्तिका (सं० स्त्री०) जीवयति जीव झच् कन् टाप्। अत इत्वं। १ वन्दा। २ वृक्षोपरि जात वृक्ष वह पौधा जो दूसरे पेड़के ऊपर उत्पन्न होता और उसीके आकारसे बढ़ता है। ३ गुडूची गुरच। ४ जीवाख्य शाक, जीव शाक। ५ जीवन्ती। ६ हरीतकी, एक प्रकारका हड़ जो पीले रङ्गकी होती है। ७ शमी।

जीवन्ती (सं० स्त्री०) जीव झच् गौरादित्वात् ङीप्। १ लताविशेष, एक लता जिसके पत्ते दवाके काममें आते हैं। इसके पर्याय—जीवनी जीवनीया जीवा, मधु जीवना मधुस्रवा, स्रवा, पयस्विनी जीव्या, जीवदा, जीवदात्री, शाकश्रेष्ठा जीवभद्रा, भद्रा, मङ्गल्या, क्षुद्रजीवा, यशस्या,

यथेच्छाचरणकी प्रवृत्ति होती है, वह जीवन्मुक्त नहीं, उसको आत्मज्ञ कह सकते हैं। जीवन्मुक्तिके समय अनभिमानित्व आदि ज्ञानसाधक गुण और अद्वेष्टृत्वादि शोभन गुण अलङ्कारकी भांति उस जीवन्मुक्त पुरुषमें अनुवर्त्तित होते हैं। अद्वैत-तत्त्वज्ञानी पुरुषके असाधनरूप अद्वेष्टृत्वादि सद्गुण अयत्नसुलभसे अनुवर्त्तित होते हैं। यह जीवन्मुक्त पुरुष देहयात्रा निर्वाहके लिए इच्छा, अनिच्छा, परेच्छा इन तीन प्रकारसे आरब्ध कर्मजनित सुख और दुःखोंको भोगता हुआ साक्षिचैतन्यस्वरूप विद्यावृत्तिका अवभासक हो कर प्रारब्धकर्मके अवसानके उपरान्त आनन्दस्वरूप परब्रह्ममें लीन हो जाता है; पीछे अज्ञान और तत्कार्यरूप संस्कारोंका नाश होता है। इसके पश्चात् परमकैवल्यरूप परमानन्द, अद्वैत अखण्ड ब्रह्मस्वरूपमें अवस्थित हो कर कैवल्यानन्द भोगता है। देहावसान होने पर जीवन्मुक्त पुरुषके प्राण लोकान्तरको न जा कर परब्रह्ममें लीन होता और संसारबन्धनसे मुक्त हो कर परमब्रह्ममें कैवल्यसुखमें लीन हो जाया करता है। (वेदान्तदर्शन)

सांख्यपातञ्जलके मतसे—प्रकृतिपुरुषको विवेकज्ञान होने पर जीवन्मुक्ति होती है। "इय प्रकृतिः जड़ा परिणामिनी त्रिगुणमयी" यह प्रकृति जड़ और परिणमनशील है, सत्त्व रजस्तमोगुणमयी, अर्थात् सुख दुःख मोहमयी है, मैं निर्जर और चैतन्यस्वरूप हूं—यह ज्ञान जब होता है, तब पुरुष जीवन्मुक्त होता है। निरन्तर दुःख भोगते भोगते पुरुषके लिए ऐसा समय आ उपस्थित होता है, तब वह उस दुःखको निवृत्तिके लिए कुछ उपाय सोचने लगता है; पीछे उसको शास्त्रज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। फिर वह विवेकशास्त्रोंके अनुसार योग आदिका अवलम्बन कर संसारबन्धनसे मुक्त होता है, उस समय प्रकृति इसको छोड़ देती है। प्रकृति पुरुषके अपवर्गको साधित करके ही निवृत्त हो जाती है, फिर उसके साथ नहीं मिलती।

प्रकृतिसे बढ़कर सुकुमारतर और कुछ भी नहीं है, पुरुषके द्वारा एक बार देखी जाने पर फिर वह दिखलाई नहीं देती। जब पुरुष अपने स्वरूपको समझ लेता है और उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है, तब वह सुख दुःख-मोहको पार कर जीवन्मुक्त हो जाता है। जीवात्मा देखो।

जीवन्मुक्ति (सं० स्त्री०) जीवतो मुक्तिः, ६-तत्। तत्त्वज्ञान होने पर जीवदशामें ही संसार बन्धनसे परित्राण। कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अखिलाभिमानका त्याग होने पर त्रिविध दुःखोंसे छुटकारा मिलता है और न पुनः जन्म-मृत्यु आदिका क्लेश भी नहीं सहना पड़ता। जीवन्मुक्तिका उपाय, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, योग आदि। (तन्त्रसार) जीवनमुक्ति देखो।

जीवन्मृत (सं० त्रि०) जीवन्नेव मृतः मृततुल्यः। जीवित अवस्थामें मृतकल्प, जो जीवित दशामें ही मरेके समान हो, जिसका जीना और मरना दोनों बराबर हो। जो कर्त्तव्य कार्यसे पराङ्मुख हो कर सर्वदा दुःखोंका अनुभव करते रहते हैं, वे भी जीवन्मृत हैं। जो आत्माभिमानी है और बड़ी कठिनतासे आत्माका पोषण करते हैं तथा जो वैश्वदेव अतिथि आदिका यथोचित सत्कार नहीं कर सकते हैं, हिन्दूधर्मशास्त्रानुसार वे भी जीवन्मृतके समान वास करते हैं। (दक्ष)

जीवन्यास (सं० पु०) जीवस्य न्यास, ६-तत्। मूर्तियोंकी प्राणप्रतिष्ठाका मन्त्र।

जीवपति (सं० स्त्री०) जीवः जीवन्पतिरस्याः, बहुव्री०। १ सधवा स्त्री, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। (पु०) २ धर्मराज।

जीवपत्नी (सं० स्त्री०) जीवः जीवन् पतिर्यस्याः बहुव्री०। जीवत् पतिका, सुहागिनी स्त्री, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।

जीवपत्र प्रचायिका (सं० स्त्री०) जीवस्य जीवपुत्रकस्य पत्राणि प्रचीयन्तेऽस्यां। जीव-प्रचि भावे ण्वुल्। क्रीड़ा विशेष, एक प्रकारका खेल।

जीवपत्नी (सं० स्त्री०) जीवन्ती। जीवन्ती देखो।

जीवपुत्र (सं० पु०) जीवः जीवकः पुत्र इव हर्षहेतुत्वात्। इङ्गुदी वृक्ष, हिंगोटाका पेड़।

जीवपुत्रक (सं० पु०) जीवपुत्रः इवार्थे कन्। १ इङ्गुदी वृक्ष, हिंगोटाका पेड़। २ पुत्रजीव वृक्ष।

जीवपुत्रा (सं० स्त्री०) जीवः जीवन् पुत्रो यस्याः, बहुव्री०। वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो।

जीवपुष्प (सं० क्ली०) जीवः जन्तुः पुष्पमिव रूपक-

कर्मधा० । जन्तुरूप पुष्प, एक प्रकारका फूल ।

जीवपुष्पा (स० स्त्री०) जीवयति जीव णिच्-अच्, जीव जीवक पुष्पं यस्याः । दुरघीवल्ली बड़ी जीवन्ती ।

जीवप्रिया (सं० स्त्री०) जीवानां प्राणिनां प्रिया हित कारित्वात् जीव प्रीणाति प्रीणं टाप् । १ हरीतकी, हड़ । २ जीवप्रभा प्राणप्यारी ।

जीवबन्धु (स० पु०) बन्धुजीव, गुलदुपहरिया, बन्धूक ।

जीवभद्रा (स० स्त्री०) जीवानां प्राणिनां भद्रं मङ्गलं यस्याः, बहुव्री० । १ जीवन्ती लता । (क्ली०) २ जीवका कुशल मावका कल्याण । ३ जीवशाक, सहना । ४ जीवधविशेष एक प्रकारकी दवा ।

जीवमन्दिर (स० क्ली० जीवस्य पात्मनो मन्दिर ६-तत् । शरीर, देह ।

जीवमातृका (स० स्त्री०) जीवस्य मातृका ६-तत् । कुमारी, धनदा नन्दा, विमला, मङ्गला, बला और पद्मा ये जो सात जीवमातृका हैं । 'कुमारी धनदा नन्दा विमला मंगला बला । पद्मा चैति च विख्याताः सप्तैताः जीव मातृकाः ॥" (शिवपारिजात) ये सात देवियाँ माताके समान जीवोंका पालन और कल्याण करती हैं, इसलिये ये जीवमातृका कहलाती हैं ।

जीवयाज (स० पु०) जीवैः पशुभि याज्यं याजनं यत्र णिच् भावे घञ् । पशु द्वारा याजन, पशुओंके किया जाने वाला यज्ञ ।

जीवयोनि (स० स्त्री०) जीवा जीवनवती योनि कर्मधा० । सजीव जन्तु, जानवर ।

जीवरक्त (स० क्ली०) जीवोत्पादकं रक्तं शाकत० । स्त्रियोंके मासिक-शोणित या रजको जो गर्भधारणके उपयुक्त हुआ हो, उसको जीवरक्त कह सकते हैं । गर्भके पहले वीर्यस्थके हेतु पश्चात् शोत उष्ण दोनों गुणोंके रहनेके कारण स्त्रियोंका रज आर्तव है । जीवरक्त पाञ्चभौतिक है अर्थात् जिन पञ्चभूतसे शरीर उत्पन्न होता है वह उसमें विद्यमान है । सोमगन्धविशिष्ट तरल, लाल, स्पर्शयीन और लघु, शोणितके इन गुणोंको वो पञ्च-भूतोंके गुण कह सकते हैं । (सुश्रुत १४ अ०)

जीवरत (स० क्ली०) पुष्पराग, एक मणि ।

जीवराज दीक्षित—एक सङ्गीतशास्त्रकार । रावणके मत रीतके इन्होंने रागमाला नामक एक सङ्गीत विषयक पुस्तककी रचना की है ।

जीवराज—१ मनुविद्यालङ्कारके प्रणेता । २ सेतुबन्धरस-तरङ्गिणीके टीकाकार । ३ एक कवि । इनके पिताका नाम भवराज और पितामहका नाम कामरूपसुरि था । इन्होंने गोपालचम्पू टीका तथा तर्ककारिका और उसकी तर्कमञ्जरी नामकी एक टीका प्रणयन की है । ४ परमात्मप्रकाश वचनिका नामक जैन ग्रन्थके कर्त्ता । ये बड़नगर (मालवा)-के रहनेवाले, खण्डेलवाल जातिके और १७६२ सम्वत्‌में विद्यमान थे ।

जीवराम—१ भामधीवादके प्रणेता । २ सन्धिवाचन-पद्धतिके प्रणेता ।

जीवला (स० स्त्री०) जीव उदरस्थ कृमिं लाति अपहाति नाशयति आ-ल । आतोऽनुपसर्गे क । पा ३।२।३ । १ सैंहली । २ सिंहपिप्पली ।

जीवलोक (स० पु०) जीवानां लोकः लोकशायन ६-तत् । १ प्राण और चेतनविशिष्ट पदार्थोंका वासस्थान, मर्त्य लोक भूलोक ।

"विनामवृषभस्तः कङ्क जीवलोक ।" (रघुवंश)
"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।" (गीता)

२ जीवरूप मनुष्य ।

"तदा वीरो भवति जीवलोके ।" (भारत वन १४ अ०)

जीववती (स० स्त्री०) १ चोरपुष्पी, एक प्रकारकी जड़ी ।

जीववत्सा (स० त्रि०) जिसके बच्चे जीते हों ।

जीववर्ग (स० पु०) जीवानां वर्गः समूहः, ६-तत् । जीवसमूह ।

जीववर्द्धिनी (स० स्त्री०) ऋद्धि ।

जीववल्ली (सं० स्त्री०) जीवयतीति जीवा प्राणदात्री सा चासौ वल्ली चेति, कर्मधा० । १ चोरकाकोली, एक प्रकारकी जड़ी । २ काकोली ।

जीवविचार (स० पु०) जैनोंके एक ग्रन्थका नाम ।

जीवविचारप्रकरण (स० पु०) शान्तिसूरि रचित जैन ग्रन्थ ।

जीवविधुत—ब्रह्मानन्द नाटकके प्रणेता ।

जीवहस्ति (स० स्त्री०) जीव एव हस्ति, कर्मधा० ।

१ पशुपालनेका व्यवसाय। २ जीवका गुण या व्यापार।

जीवगन्ध (सं० पु०) कृमिगंध।

जीवशंस (सं० पु०) जीवैः प्राणिभिः शंसनीयः शसुस्तुतौ कर्मणि घञ्। जीव कर्त्तृक कामना।

जीवशर्मा—एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्।

जीवशाक (सं० पु०) जीवो हितकरः शाकः, कर्मधा०। मालवदेशीय प्रसिद्ध शाकविशेष, मालवदेशमें होनेवाला एक प्रकारका शाक, सुमना। इसके संस्कृत पर्याय—जीवन्त, रक्तनाल, ताम्रपर्ण, प्रवाल, शाकवीर, सुमधुर और सेपक है। इसके गुण—सुमधुर, वृंहण. वह्निशोधन, दीपन, पाचन, वल्य, वृष्य और पित्तापहारक है।

जीवशुक्ला (सं० स्त्री०) जीवा हितकारी शुक्ला शुभ्रवर्णा लता। जीवयति जीव णिच्-अच्। क्षीरकाकोली, एक प्रकारकी जड़ी।

जीवशून्य (सं० क्लो०) जीवैः शून्यं, ३-तत्। जीवरहित, वह जिसके प्राण न हो।

जीवशेष (सं० पु० स्त्री०) मुमुर्षु, वह जिसकी मृत्यु निकट आ गई हो, वह जो मरने पर हो।

जीवशोणित (सं० क्लो०) जीवोत्पादकं शोणितं, शाकत०। स्त्रियोंका आर्त्तव शोणित। यह गर्भधारणका उपयुक्त होनेके कारण जीवशोणित नामसे अभिहित हुआ है।

जीवश्रेष्ठा (सं० स्त्री०) जीवाय जीवनाय श्रेष्ठा, ४ तत्। ऋद्धि नामकी ओषध।

जीवसंक्रमण (सं० क्लो०) जीवाना संक्रमणं, ६-तत्। देहान्तरप्राप्ति जीवका एक शरीरसे दूसरे शरीरमें गमन।

जीवसंज्ञ (सं० पु०) जीव इति संज्ञा यस्य, बहुव्री०। कामवृद्धि वृक्ष।

जीवसाधन (सं० क्लो०) जीवस्य जीवनस्य साधनं, ६-तत्। धान्य, धान।

जीवसुन्दराय—ज्ञानसूर्योदय नाटक और वैराग्यशतक नामक जैन पद्यग्रन्थके रचयिता।

जीवसुता (सं० स्त्री०) जीवः सुतः यस्याः, बहुव्री०। जीवपुत्रा, वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो।

जीवसू (सं० स्त्री०) जीवं प्राणिनं सूते सू-क्विप्। जीव तोका वह स्त्री जिसकी सन्तति जीती हो।

जीवस्थान (सं० क्लो०) जीवस्य जीवनस्य स्थानं, ६-तत्। मर्म, शरीरका वह स्थान जहां जीव रहता है, हृदय।

जीवात्मा देखो।

जीवहत्या (सं० स्त्री०) १ प्राणियोंका वध। २ प्राणियोंके वधका दोष।

जीवहिंसा (सं० स्त्री०) १ जीवोंका वध, प्राणियोंकी हत्या। २ जैनमतानुसार पांच पापोंमेंसे पहला पाप।

जीवा (सं० स्त्री०) जीवयते जीव-णिच् अच् वा टाप् ज्या-क्विप्, संप्रसारणे दीर्घः सा अस्त्यस्य व। १ ज्या, धनुषकी डोरी। २ जीवन्तिका नामको ओषध। ३ वचा, बाल वच। ४ शिञ्जित। ५ भूमि। ६ जीवनोपाय, जीविका। ७ जीव-भावे अ-टाप्। ८ जीवन, प्राण। ९ ऋद्धि। १० जीवक। ११ हरीतकी।

जीवागार (सं० क्लो०) मर्मस्थान।

जीवातु (सं० पु० क्लो०) जीवत्यनेन जीव-आतु। जीवे-रातु। उण् ११८०। १ भक्त, अन्न, अनाज। २ जीवनौषध।

'रे हस्त दक्षिण! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।" (उत्तर चरित ३ अंक)

जीवातुमत् (सं० पु०) जीवातु मतुप्। आयुष्कामयज्ञके देवताविशेष, आयुष्कामयज्ञके एक देवता। इनसे आयुकी प्रार्थना की जाती है।

जीवात्मा (सं० पु०) जीवस्य जीवनस्य आत्मा अधिष्ठाता, ६-तत् वा जीवश्चासौ आत्मा चेति, कर्मधा०। देही, आत्मा, चैतन्यस्वरूप एक पदार्थ। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—पुनर्भवी, जीव, असुमान्, सत्त्व, देहभृत्, जन्तु, जन्यु, प्राणी और चेतन। जिसके चैतन्य है, वही आत्मापदवाच्य है। आत्मा समस्त इन्द्रियों और शरीरका अधिष्ठाता है। आत्माके बिना किसी भी इन्द्रियसे कोई भी कार्य नहीं होता। जिस प्रकार रथके चलने पर सारथिका अनुमान किया जाता है, उसी प्रकार जड़ात्मक देहकी चेष्टा आदिके देखनेसे आत्माका भी अनुमान किया जा सकता है। शरीर आदिमें चैतन्यशक्तिका होना सम्भव नहीं, क्योंकि यदि वह शक्ति शरीर और इन्द्रिय आदिमें होती, तो मृत व्यक्तिके शरीरमें भी वह निःसन्देह पायी जाती। हमारा शरीर क्षीण हुआ है, आंखें विकृत हुई हैं, हम सुखी और दुःखी हुए हैं जब

इस प्रकारकी प्रतीति सभी लोगोंको हो रही है, तब यह स्पष्ट ही मालूम हो रहा है कि, शरीर और इन्द्रियोंसे आत्मा भिन्न है। (भाषाप० १०) आत्माके दो भेद हैं— एक जीवात्मा और दूसरा परमात्मा। मनुष्य, कीट, पतङ्ग आदि जितने भी प्राणी देखनेमें आते हैं वे सब ही जीवात्मा हैं। परमात्मा एकमात्र परमेश्वर हैं। जो सुख दुःख आदिका अनुभव करते हैं, वे ही जीवात्मा कहलाते हैं इस जीवात्माके गुण १४ हैं—बुद्धि, सुख दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, संख्या, परिमिति, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, चिन्ता धर्म और अधर्म।

(भाषाप० १२)

जीवात्मामें जो जो गुण हैं परमात्मामें भी प्रायः वे गुण मौजूद हैं। केवल द्वेष सुख दुःख, चिन्ता, धर्म और अधर्म नहीं हैं। परमात्माके ज्ञान, इच्छा यत्न आदि कई एक गुण नित्य हैं।

जीवात्माके अतिरिक्त एक परमेश्वर भी हैं इस विषयमें शास्त्रकारोंने बहुत प्रमाण दिये हैं। यहां कुछ प्रमाण लिखे जाते हैं।

इस जगत्में जितने भी पदार्थ देखनेमें आते हैं, उनके एक न एक कर्त्ता हैं। कर्त्ताके बिना कोई काम नहीं होता, जैसे—घटको देखते ही समझना होगा कि इसका कर्त्ता एक कुम्भकार है। अगम्य पर्वत समुद्रादि भी कार्य हैं, उनका भी कर्त्ता है। परन्तु उस विषयमें हमारा कर्तृत्व नहीं मालूम होता, क्योंकि वहां हम लोगोंका ज्ञान नहीं होता। इसलिए वहांके स्थावर आदिके कर्त्ता एक असाधारण शक्तिसम्पन्न परमेश्वर हैं, इसमें सन्देह नहीं हो सकता। (कुसुमाञ्जलि)

परमेश्वरके भोगसाधन शरीरमें सुख दुःख और द्वेष आदि कुछ भी नहीं है, किन्तु नित्यज्ञान इच्छा और यत्न आदि कई एक गुण हैं। जीवात्मा बहुत हैं, अर्थात् एक एक शरीरमें अधिष्ठातास्वरूप एक एक जीवात्मा है। यदि सबको आत्मा एक होती तो एक व्यक्तिके सुख या दुःखसे सारा जगत् सुखी या दुःखी होता। जब कि सुख दुःख आदि आत्माके धर्म हैं, तब एक व्यक्तिकी आत्मामें सुख वा दुःखका सञ्चार होने पर सब की आत्माओंमें सुख और दुःखका सञ्चार नहीं होता। श्रवण आदि स्वरूप इन्द्रियोंको आत्मा कहना नितान्त भ्रम है। क्योंकि यदि चक्षु आदि इन्द्रिय स्वरूप ही आत्मा होती, तो 'मैं चक्षु हूं' इत्यादिका व्यवहार होता और चक्षु आदि इन्द्रियोंके नष्ट होनेसे आत्मा भी नाश हो जाता। जिस तरह दूसरे आदमीकी देखी हुई चीजका दूसरा आदमी स्मरण नहीं कर सकता, उसी तरह चक्षुके नष्ट हो जाने पर पहलेके देखे हुए पदार्थों का किसीको भी स्मरण नहीं रहता।

मैं गोरा हूं, मैं काला हूं मैं मोटा हूं मैं दुबला हूं इत्यादि व्यवहार हो रहा है, इसलिए शरीरको 'मैं आत्मा हूं' कहना अल्पदर्शिताका कार्य समझना चाहिये। कारण यह है कि, यदि शरीर ही आत्मा होता तो कोई भी व्यक्ति धर्म और अधर्मका फलस्वरूप स्वर्ग और नरक नहीं भोगता क्योंकि शरीरके विनष्ट होते ही आत्माका भी नाश हो जाता, फिर स्वर्ग और नरक भोगता ही कौन? स्वर्ग वा नरक आदिको बेबुनियाद ही कैसे कहा जा सकता है? क्योंकि यदि ऐसा ही होता तो कोई भी व्यक्ति शारीरिक क्लेश और अर्थव्यय करके यज्ञादि रूप धर्मकर्म नहीं करता और न परदार आदि निषिद्ध कर्मोंसे निवृत्त ही होता बल्कि ऐहिक सुखकी अभिलाषासे प्रवृत्त होनेकी ही सम्भावना थी। और भी जरा विचार कर देखिये यदि शरीर ही आत्मा होता, तो सद्यप्रसूत बालकको हर्ष, शोक, भय आदि वा स्तन्यपानादिमें प्रवृत्ति नहीं होती। क्यों कि उस समय उस बालकको हर्ष विषादादिका कुछ कारण नहीं और न उसे यह ही मालूम है कि स्तनोंके पीनेसे क्षुधाकी निवृत्ति हो जायगी। उसको किसीने उपदेश भी नहीं दिया, फिर कैसे वह स्तनोंको पीने लगता है? अतएव स्वीकार करना पड़ेगा कि, इहलोक और परलोकगामी सुखदुःख आदि भोक्ता भिन्न एक अतिरिक्त आत्मा है, क्यों कि उस बालकको पूर्वजन्मानुभूत हर्षादि कारणकी स्मृतिसे ही हर्षविषाद होता है और पूर्वानुभूत स्तन्यपानके संस्कारसे ही उस समय स्तन्यपानमें प्रवृत्त होता है। 'मैं गोरा हूं काला हूं' इत्यादि व्यवहार जो शरीरभेदके अनुसार हुआ करता है वह भ्रमके सिवा और कुछ नहीं है।

नास्तिक चार्वाक शरीरके अतिरिक्त आत्माको स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि, पुरुष जितने दिनों तक जीवित रहे, उतने दिनों तक सुखके लिए ही कोशिश करे। जब सब ही व्यक्ति कालग्रासमें पतित हो रहे हैं और मृत्युके बाद जब बान्धवगण शवदेहको जला कर भस्म ही कर देते हैं, फिर उसमें कुछ बच नहीं रहता, तो जिससे सुखसे जीवन व्यतीत हो, उसकी कोशिश करना ही विधेय है। पारलौकिक सुखकी आशामें धर्मोपार्जन कर आत्माको कष्ट देना नितान्त मूढ़ताका कार्य है; क्यों कि भस्म हुई देहका पुनर्जन्म होना किसी हालतमें सम्भव नहीं। ये पञ्चभूतको नहीं मानते। इनके मतसे–क्षिति अप् तेज: और वायु इन चार भूतोंसे ही देहकी उत्पत्ति होती है। अचेतनसे चेतनका उत्पन्न होना किस तरह सम्भव हो सकता है? इसके उत्तरमें वे यह कहते हैं कि, यद्यपि भूत अचेतन हैं तथापि वे मिल कर जब शरीररूपमें परिणत होते हैं, तब उसमें चैतन्य उत्पन्न हो जाता है। जिस प्रकार हल्दी और चूनाके मिलने पर लाल रंगकी उत्पत्ति हो जाती है तथा गुड़ और चावल आदि प्रत्येक द्रव्य मादक न होने पर भी, मिल जानेसे उसमें मादकताशक्ति आ जाती है, उसी प्रकार अचेतन पदार्थोंसे उत्पन्न होने पर भी इस देहमें चैतन्य स्वरूप व्यवहारिक आत्माकी उत्पत्ति होना सम्भव नहीं। मैं मोटा हूं, दुबला हूं, गोरा हूं, काला हूं इत्यादि लौकिक व्यवहारमें भी आत्माको ही स्थूल कृश आदि समझा जाता है, परन्तु स्थूलत्वादि धर्म अचेतन भौतिक देहमें ही पाया जाता है। इसलिए यह विलक्षणतासे प्रमाणित होता है कि, सचेतन देह ही आत्मा है, उसके सिवा दूसरा कोई पृथक् आत्मा नहीं है। वे और भी एक प्रमाण देते हैं कि, जिस तरह लोहा और चुम्बक इन दोनोंके अचेतन पदार्थ होने पर भी पारस्परिक आकर्षणसे दोनोंमें क्रियाशक्ति उत्पन्न होती है, उसी तरह परस्पर भूतसमूह एकत्र होने पर उसमें चैतन्यस्वरूप एक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। चार्वाक देखो।

बौद्धमतमें प्रथम क्षणमें उत्पत्ति दूसरे क्षणमें विनाश इस तरह सभी वस्तुओंको क्षणिक माना है, इसलिए आत्मा भी क्षणिक है, ज्ञानस्वरूप क्षणिक है, ज्ञानके सिवा स्थिरतर आत्मा नहीं है। बौद्ध देखो।

बौद्धोंके माध्यमिक मतावलम्बी क्षणिक विज्ञानरूप आत्मा भी नहीं मानते; वे कहते हैं—कुछ भी नहीं है, सब कुछ शून्य है, क्योंकि जो वस्तुएँ स्वप्नमें दीखती हैं, वे जाग्रत अवस्थामें नहीं दीखतीं और जो जाग्रदशामें दीखती हैं, वे स्वप्नावस्थामें नहीं दीखतीं। इससे विलक्षण प्रतिपन्न होता है कि, यथार्थमें कोई भी वस्तु सत्य नहीं है, सत्य होनेसे अवश्य ही वह समस्त अवस्थाओंमें दिखलाई देती। योगाचार मतावलम्बी क्षणिक विज्ञानरूप आत्माको स्वीकार करते हैं। यह विज्ञान दो प्रकारका है—एक प्रवृत्तिविज्ञान और दूसरा आलयविज्ञान। जाग्रत और सुप्त अवस्थामें जो ज्ञान होता है, उसको प्रवृत्तिविज्ञान और सुषुप्ति अवस्थामें जो ज्ञान होता है, उसको आलयविज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान केवल आत्माके ही अवलम्बनसे हुआ करता है।

प्रत्यभिज्ञादर्शनके मतसे—जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं अर्थात् जीवात्मा ही परमात्मा और परमात्मा ही जीवात्मा है। जीवात्मा और परमात्मामें जो भेदज्ञान हुआ करता है, वह भ्रममात्र है। यह अनुमान सिद्ध है कि जीवात्मा और परमात्मामें कोई भेद नहीं है। अनुमान प्रणाली इस प्रकार है—जिसमें ज्ञान और क्रियाशक्ति है, वही परमेश्वर है तथा जिसमें उक्त दो शक्तियां नहीं हैं, वह परमेश्वर नहीं है; जैसे—गृह आदि। जब जीवात्मामें यह शक्ति पायी जाती है, तब जीवात्मा परमेश्वर और परमात्मासे अभिन्न है, इसमें सन्देह ही क्या? इस स्थान पर कोई कोई आपत्ति करते हैं कि, यदि जीवात्मामें ही ईश्वरता हो, तो ईश्वरतास्वरूप आत्मप्रत्यभिज्ञताको क्या आवश्यकता है? जैसे जलका संयोग होने पर मिट्टीमें पड़ा हुआ वीज-ज्ञात हो वा अज्ञात-अङ्कुर उत्पन्न करता है और जैसे विषको—जान कर या बिना जाने—खानेसे ही मृत्यु होती है, उसी तरह जीवात्मा भी ईश्वरकी भांति जगन्निर्माणादि कार्य क्यों नहीं कर सकता? इस तरहकी आपत्तियां की जा सकती हैं, किन्तु वे कुछ कामकी नहीं। किसी किसी स्थान पर कारण होनेसे ही कार्य होता है और कहीं कहीं कारण

ज्ञात होने पर भी कार्य होता है जब तक उसका ज्ञान नहीं होता, तब तक उस कारणसे कार्य नहीं होता। जिस प्रकार इस घरमें भूत है—ऐसा जब तक मालूम नहीं होता, तब तक उस घरके भूतसे डरनेवाले व्यक्तियोंको भी भय नहीं होता पर मालूम होने हो भय होता है; उसी प्रकार आत्मामें परमात्मत्व रहने पर भी जब तक उसका ज्ञान नहीं होता, तब तक परमात्माकी भांति जीवात्मामें भी शक्ति नहीं होती। जैसे—अपरिमित धन रहते हुए भी यदि वह अज्ञात है तो प्रीति नहीं होती, किन्तु मेरे पास अपरिमित धन है—ऐसा ज्ञान होने पर असीम आनन्द होता है। इसी तरह मैं ही ईश्वर अर्थात् परमात्मा हूं-इस प्रकारका जीवात्मा को परमात्माका ज्ञान होने पर एक असाधारण प्रीति उत्पन्न होती है। इसलिए आत्मप्रत्यभिज्ञा अवश्य करनी चाहिये।

उक्त दर्शनके मतसे परमात्मा स्वतःप्रकाशमान अर्थात् अपने आप ही प्रकाशमान है। जिस तरह आलोकका संयोग न होने पर अवस्थित वस्तु घट, पट आदिका प्रकाश नहीं होता, परमात्माके प्रकाशमें उस तरहका किसी कारणकी अपेक्षा नहीं है क्योंकि वे सर्वत्र सर्वदा प्रकाशमान हैं। यहां कोई यह आपत्ति करते हैं कि, जीवात्मा और परमात्मामें परस्पर अभेद है और परमात्मा सर्वदा परमात्माके रूपमें सर्वत्र प्रकाशमान हैं ऐसा स्वीकार करने पर यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जीवात्मा भी परमात्मरूपमें सर्वदा प्रकाशमान है अथवा कभी कभी जीवात्मा और परमात्मामें परस्पर अभिन्नता नहीं हो सकती। कारण ऐसा नियम है कि, जो वस्तु जिस वस्तुसे अभिन्न है, उस वस्तुके प्रकाश कालमें उस (दूसरी) वस्तुका भी अवश्य प्रकाश होता है। परन्तु परमात्म-रूपमें जीवात्माका जो प्रकाश हो रहा है यह माना नहीं जा सकता, क्योंकि ऐसा होनेसे जीवात्माको उस प्रकारके प्रकाशके लिए आत्मप्रत्यभिज्ञाकी क्या आवश्यकता थी? जीवात्माका उस प्रकारका प्रकाश तो सिद्ध ही था, सिद्ध विषयके साधनार्थ किसी भी बुद्धिमान् व्यक्तिकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इस प्रकारकी आपत्ति करने पर यह उत्तर दिया जा सकता है—किसी कामातुर कामिनीको यह उपदेश मिलने पर कि उस मकानमें एक सुप्रसिद्ध नायक है जिसका स्वर अति मधुर रूपमाधुर्य अनुपम और बदन हास्यपूर्ण है, जब तक वह वहां जा कर उसके गुण नहीं देख लेती, तब तक वह जिस प्रकार आह्लादित नहीं होती, उसी तरह परमात्मरूपमें जीवात्मामें प्रकाश रहने पर भी जब तक उसे यह नहीं मालूम होता कि, मेरे ही अन्दर परमात्मा आदि गुण हैं, तब तक जीवात्मा और परमात्माका एकभाव अर्थात् पूर्ण भाव नहीं होता। किन्तु जब गुरुवाक्यका श्रवण, मनन और निदिध्यासन किया जाता है, तब जीवात्माके सर्वज्ञ तादिरूप परमात्माका धर्म मुझमें ही है—ऐसे ज्ञानका उदय होता है। उस समय पूर्णभाव हो कर जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाते हैं। (प्रत्यभिज्ञादर्शन)

सांख्यदर्शनके मतसे आत्मा (पुरुष) भिन्न है। सांख्यवादी आत्माको पुरुष कहते हैं। लिङ्गशरीरमें अवस्थान करनेके कारण आत्माका नाम पुरुष है। आत्मा में सत्त्व रजः और तम ये तीन गुण नहीं हैं आत्माको चितस्वरूप मानो कूटस्थ, द्रष्टा विवेकी, सुखदुःखादि शून्य, मध्यस्थ और उदासीन कह सकते हैं। आत्मा अकर्त्ता अर्थात् कोई भी कार्य नहीं करती, प्रकृति ही सब काम करती है। मैं करता हूं मैं सुखी वा दुःखी हूं इत्यादि जो प्रतीति है, वह भ्रममात्र है। वास्तव में सुख दुःख वा कर्त्तृत्व आदि आत्मामें नहीं हैं, वे बुद्धिके धर्म हैं। कभी परम सुखजनक सामग्रीके मिलने पर भी सुख नहीं होता और कभी अति सामान्य विषय में ही परम सुख होती है, किसी किसीको राज्यलाभ वा अर्थैश्वर्यमें भी सुख नहीं होता और कोई भीख मांगता हुआ भी [illegible] सो कर अपनेको परम सुखी मानता है। इसलिए यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि, सुखकर वा दुःखकर नामका कोई वस्तुगत नहीं है। जब जिस वस्तुको सुखकर वा दुःखकर समझा जाता है तभी उसके द्वारा यथाक्रमसे सुख और दुःख भोगना पड़ता है। इसलिए सुख-दुःखादिको बुद्धिका धर्म समझना चाहिये।

न्याय और वैशेषिक दर्शनके मतसे—सुख दुःख

भोक्तृत्व आदि जीवात्माके धर्म हैं अर्थात् जीवात्मा ही सुख दुःखादिको भोगता है। सांख्य, पातञ्जल और वेदान्त दर्शनके साथ इस विषयमें मतभेद है। वेदान्त, सांख्य और पातञ्जलके मतसे—ये बुद्धिके धर्म हैं, बुद्धि ही सुख दुःखादिको भोगती है, आत्मा बुद्धिप्रतिबिम्बित होने पर जो 'मैं सुखी हूं' 'मैं दुःखी हूं' इत्यादि अनुभव करती है, वह भ्रममात्र अर्थात् स्वप्नमें देखे हुए पदार्थकी भांति बेबुनियाद है।

आत्मा माया नामक प्रकृतिकी उपाधिसे बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख आदि प्रतिबिम्बरूपमें अपना अनुभव करती है। (सांख्यभाष्य)

वास्तवमें यह आत्माका स्वरूप नहीं है। इस प्रकारकी अनेक युक्तियां प्रदर्शित की गई हैं। आत्मा अहङ्कारसे विमूढ हो कर अपनेको प्रकृतिसम्भूत गुणोंके द्वारा होते हुए कार्योंका कर्त्ता मान लेती है। वास्तवमें आत्माका ऐसा स्वरूप नहीं है। (सांख्यभाष्य)

आत्मा निर्वाणमय ज्ञानमय और असल है। प्रकृतिके धर्म दुःखमय और अज्ञानमय हैं, जो आत्माके नहीं हैं। परन्तु न्याय और वैशेषिक मतसे जीवात्माको यदि प्रकृतिस्थानीय किया जाय, तो दोनों मतोंमें अच्छी तरह सामञ्जस्य हो सकता है। सांख्यमतमें प्रकृतिको संसारका आदि कारण कहा गया है।

प्रकृतिका परिमाण दो प्रकारका है—एक स्वरूप-परिणाम और दूसरा विरूप-परिणाम। स्वरूप-परिणाममें प्रकृतिकी विकृति नहीं होती। जब विरूप-परिणाम होता है, तब पहले प्रकृतिकी ७ विकृति होती है। १६ विकार पदार्थ हैं, इनसे किसी प्रकारका विकार नहीं होता। पुरुष इनसे अतीत है। पुरुष वा आत्मा न तो प्रकृति है और न विकृति प्रकृति ही आत्माको नाना प्रकारसे विमोहित करती है। आत्मा प्रकृतिकी मायामें अपना स्वरूप नहीं जान सकती, प्रकृति ही समस्त सुख दुःखादिका अनुभव करती है। इससे मालूम होता है कि, प्रकृतिका धर्म और जीवात्माका धर्म एक ही है। प्रकृति देखो। न्याय और वैशेषिक मतसे जीवात्मा तथा सांख्यादि मतसे प्रकृति दोनों एक ही वस्तु हैं।

आत्मा शरीरभेदसे नाना है, अर्थात् एक शरीरके अधिष्ठाता आत्मस्वरूप एक पुरुष हैं। यदि सब शरीरोंका एक ही अधिष्ठाता होता, तो एकके जन्म वा मरणसे सबका जन्म वा मरण होता और एकके सुख वा दुःखसे जगन्मण्डल सुखी वा दुःखी होता। जब सुख-दुःखका ऐसा नियम है, तब अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि, पुरुष वा आत्मा नाना है और जो जिस प्रकारके कार्य करता है- उसे उसी प्रकारके फल भोगने पड़ते हैं। यद्यपि आत्मामें सुख दुःखादि कुछ भी नहीं है। यह पहले ही कहा जा चुका है, 'आत्मा अनेक हैं, यह साबित होने पर एकके सुखसे जगत् सुखी क्यों नहीं होता?' इस प्रकारकी आपत्ति हो ही नहीं सकती, परन्तु तो भी जिस तरह जवाकुसुमके पास अति शुभ्र स्फटिक भी लाल मालूम होने लगता है, उस तरह आत्मा अपनी बुद्धिमें स्थित सुख दुखादिको आत्मगत मान कर मैं, सुखी हूं-मैं दुःखी हूं इस प्रकार समझती है। समस्त व्यक्तियोंके ऐकात्मपक्षसे एक व्यक्तिको वैसा होने पर सबहीको क्यों नहीं होता, इस प्रकारकी आपत्तिका खण्डन नहीं होता। मैं भोजन और शयन कर रहा हूं, इत्यादि जो व्यवहार होते हैं, उनका शरीरकी क्रियाके आधारसे ही समर्थन करना होगा, क्यों कि आत्मामें क्रिया वा कर्तृत्व कुछ भी नहीं है। आत्मामें जब कुछ भी नहीं है, तब बन्ध, मोक्षका होना भी असम्भव है, किन्तु ऐसा होनेसे प्रत्यक्षके साथ विरोध होता है। प्रत्येक शरीरका अधिष्ठाता जब एक एक आत्मा है, तब उसके बन्ध मोक्ष क्यों नहीं होंगे? किन्तु इसमें जरा विचार कर देखनेसे मालूम हो जायगा कि, यह आत्माके नहीं हैं।

आत्मा न तो बद्ध ही होती है और न मुक्त, प्रकृति ही नानारूप धारण कर बद्ध और मुक्त हुआ करती है। जितने दिनों तक प्रकृति-पुरुषका साक्षात्कार (अर्थात् प्रकृति और पुरुषका विवेकज्ञान) नहीं होता, तब तक पुरुष विरत नहीं होता। (सांख्यतत्त्वकौ० ६२ सू०)

नर्त्तकी जिस तरह नृत्य दिखा कर दर्शकोंको सन्तुष्ट कर नृत्यसे निवर्त्तित होती है, उसी तरह प्रकृति भी आत्माको प्रकाशित कर निवर्त्तित होती है अर्थात् फिर आत्मा मुक्त हो जाती है। आत्मा जिस शरीरका अब

समय कर सुख वा दुःखको प्रतिबिम्बरूपसे भोगता है।

यह शरीर दो प्रकारका है—स्थूल और सूक्ष्म। स्थूल शरीर माता और पिताके द्वारा उत्पन्न होता है। माताके लोम, शोणित और मांस तथा पितासे स्नायु, अस्थि और मज्जा उत्पन्न होते हैं। इन ६ वस्तुओंसे बने हुए शरीरको षाट्कौशिक वा उक्त रीतिके अनुसार माता पिताके द्वारा सम्पादित होनेके कारण इसको माता पितृज भी कहा जा सकता है। इस शरीरकी उत्पत्ति तथा नाश होता है, यह भुक्त द्रव्यका परिणाममात्र है। जो वस्तु खायी जाती है, उसका सारभाग रस हो जाता है और असार भाग मल और मूत्ररूपसे निकल जाता है। रससे शोणित, शोणितसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा, मज्जासे शुक्र और शुक्रसे गर्भकी उत्पत्ति होती है। यह षाट्कौशिक शरीर ही अन्तमें मिट्टी या भस्म अथवा शृगाल-कुक्कुरादिके पुरीष रूपमें परिणत होता। कोई भी—कितने ही यत्न क्यों न करे—इस शरीरको अजर अमर नहीं बना सकता। सब ही कोई किसीके लिए है अन्तमें दूसरा कोई मार्ग नहीं है। पृथिवीस्थके लिए जो गति है शरीरके लिए भी वही गति है। इस स्थूल शरीरके सिवा दूसरा जो एक शरीर है वही सूक्ष्म शरीर है।

बुद्धि, अहङ्कार, पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय, मन और पञ्च तन्मात्रा, इन अठारह तत्त्वोंका समष्टिरूप जो सूक्ष्म शरीर है, वह नित्य अर्थात् महाप्रलय तक स्थायी और असाधारण अर्थात् अप्रतिहत गतियुक्त है। सूक्ष्म शरीर शिलाके भीतर, अग्निके भीतर तथा ब्रह्मलोक और पर लोकमें जा सकता है। यह सूक्ष्म शरीर कभी नर पशु पक्षी, सिंह और व्याघ्रादि भाँति भाँतिका स्थूल शरीर धारण करता है तथा कभी स्वर्गीय कभी नारकीय और कभी पुनः मनुष्य आदिका स्थूल शरीर ग्रहण करता है। इस शरीरको सुख दुःख भोगना पड़ता है। जीवात्मा मृत्युके बाद अर्थात् षाट्कौशिक देहके छोड़नेके उपरान्त अठारह तत्त्वोंका समष्टिरूप लिङ्गशरीरको ले कर स्वर्ग और नरक आदिको भोगता है, पीछे पाप वा पुण्यके क्षय होने पर फिर वह अपने कर्मोंके अनुसार जन्म परिग्रह करता है। श्रुति आदिमें सूक्ष्मशरीरका परिमाण अङ्गुष्ठ मात्र बतलाया गया है। (सां॰त॰कौ॰ ३९)

जीवात्माका परिमाण अङ्गुष्ठ-परिमित है इस विषय में सांख्यदर्शनके भाष्यकार विज्ञान भिक्षुने लिखा है—'अङ्गुष्ठमात्रत्वेन सूक्ष्मत्वमुपलक्षयति।' (सांख्य॰ भा॰) जीवात्माका परिमाण अङ्गुष्ठमात्र होना असम्भव है। 'अङ्गुष्ठमात्र' यह कहनेसे सूक्ष्म प्रतिपन्न होता है। किसीके मतसे केशाग्रका शतभाग करने पर जितना सूक्ष्म होता है उसका परिमाण उतना सूक्ष्म है। प्रकृतिने सृष्टिके आदिमें एक एक पुरुषका एक एक सूक्ष्म शरीर बनाया है, सूक्ष्म शरीर इस समय उत्पन्न नहीं होता। यह ही पुरुष जीवात्मा है। सांख्यमतमें जीवात्माके अतिरिक्त परम पुरुष जो परमात्मा है, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मालूम होता। किन्तु कपिलदेवका अभिप्राय क्या है, इसका निर्णय करना दुरूह है। कपिलदेवने 'ईश्वरासिद्धेः' (सांख्य॰ १।९२) इस सूत्रके द्वारा निरीश्वर वाद ग्रहण किया है, इस विषयमें षड्दर्शनटीकाकार वाचस्पतिमिश्रने तत्त्वकौमुदी ग्रन्थमें अनेक युक्तियां दी हैं और परमात्मसमर्थक युक्तियोंका खण्डन किया है। सर्वदर्शनसंग्रहकार माधवाचार्यने भी बहुत सी बातें लिखी हैं। परन्तु सांख्यभाष्यकार विज्ञानभिक्षुका कहना है—कपिलदेवके मतमें भी परमात्मा वा ईश्वर हैं उनका "ईश्वरासिद्धेः" यह सूत्र वादीको जीतनेके लिए प्रौढ़िवाद मात्र है। इसीलिए 'ईश्वराभावात्' ऐसा सूत्र न बना कर 'ईश्वरासिद्धेः' ऐसा सूत्र बनाया है। इसका तात्पर्य इस प्रकार है—

कपिलदेव वादीको कहते हैं—इतना ही न कि तुम युक्तियों द्वारा ईश्वरसिद्धि नहीं कर सके अतएव ईश्वर है। परमात्मा वा ईश्वर नहीं है, यह कपिलदेवका अभिमत नहीं है। घट पट आदि जड़ात्मक वस्तुएं किसी चेतन पदार्थके अधिष्ठानके बिना स्वकार्यानुष्ठानमें प्रवृत्त और समर्थ नहीं होतीं किन्तु जब सचेतन द्रव्य अधिष्ठाता हो कर उनका चालन आदि करता है, तब भी उस घट पट आदि स्वकार्य करनेमें प्रवृत्त और समर्थ होते हैं। इसी तरह प्रकृति भी जड़ है उसका किसी सचेतन अधिष्ठाताके बिना वह किस तरह कार्य करनेमें प्रवृत्त वा समर्थ हो सकती है? अतएव स्वीकार करना

ध्यायवत् अनादि है। जब तक पुरुषको आत्मख्याति न होगी, तब तक प्रकृति विरत नहीं होगी। इस आत्मख्यातिके लिए तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता है। तत्त्वज्ञान होनेसे ही मुक्ति होती है। 'ज्ञानान्मुक्तिः' (सांख्यद०) इस ज्ञानके लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन आवश्यक है। श्रवण आदि साधित होने पर जीवात्माको मुक्ति होती है। जब तक वासनाओं (संस्कारों) का अन्त नहीं होता, तब तक जीवात्माके उद्धारका कोई उपाय नहीं। (कर्म द०) जीवात्माके विषयमें पातञ्जल-दर्शन और सांख्यदर्शन दोनोंका एक मत है।

योगसूत्रकार जीवात्माके अतिरिक्त परमात्माको स्वीकार करते हैं। उनके मतसे—अविद्या, अस्मिता, द्वेष, अभिनिवेशादि आदि पञ्चविध क्लेश तथा धर्म और कर्मफलके विपाककी वासनाएं अछूत रह गई हों उस पुरुष विशेषको परमात्मा या ईश्वर कहा जा सकता है अर्थात् जिस अनिर्वचनीय पुरुषको किसी तरहका क्लेश नहीं जो सर्वदा परमानन्द स्वरूप सर्वत्र विद्यमान हैं जो किसी प्रकारका विहित या अविहित कार्य नहीं करते, जिनको किसी तरहकी वासना नहीं है और इसी तरह जो भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालोंमें सर्व विषयोंसे पृथक् हैं ऐसे अलौकिक शक्तिसम्पन्न परम पुरुष ही ईश्वर या परमात्मा हैं। वे परमात्मा सर्वप्रकारके पुरुषोंसे विशिष्ट गुणवाले हैं, इनके समान दूसरा न है नहीं है। वे इच्छामात्रसे सृष्टि, स्थिति और प्रलय कर सकते हैं। पातञ्जलके मतसे—परमात्माका अस्तित्व युक्तियां ऐसी हो हैं। समस्त वस्तुएं सातिशय अर्थात् तारतम्यरूपमें अवस्थित हैं। वस्तुओंकी शेष सीमा है, जैसे अल्पत्व और अधिकत्व परिमाणकी शेष सीमा यथाक्रमसे परमाणु और आकाश है। अतएव जब किसीको व्याकरणशास्त्रमें किसीको अलङ्कारमें और किसीको न्याय शास्त्र और दर्शनशास्त्रमें अभिज्ञ देख कर स्पष्ट मालूम होता है कि, ज्ञानादि भी सातिशय पदार्थ हैं। तब अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि, ज्ञानादि भी कहीं पर शेष सीमा लाभ कर निरतिशयता प्राप्त की है। जो पदार्थ वाह्य गुणोंके सद्भाव और अभावमें यथाक्रमसे उत्कृष्ट और अपकृष्ट रूपसे परिगणित होते हैं, उन पदार्थोंको सर्वसीमाके तादृश गुणवत्तारूप चरम उत्कृष्टताको निरतिशयता कहते हैं। अणुको परमाणुता, सूक्ष्मको परम सूक्ष्मता, मूर्खको अत्यन्त मूर्खता और विद्वान्‌को विद्वत्ताको ही चरम उत्कृष्टता कहना होगा अन्यथा उनके विपरीत स्थूलत्वादि अणु प्रभृतिको उत्कृष्टता नहीं हो सकती। ज्ञानकी उत्कृष्टता और अपकृष्टता पर विचार किया जाय तो अधिक विषयता और अल्पविषयता ही देखनेमें आती है इसीलिए किञ्चिन्मात्र शास्त्रज्ञानीको अपकृष्ट ज्ञानी और अधिक शास्त्रज्ञानीको उत्कृष्ट ज्ञानी कहा जाता है। इस प्रकारसे जब अधिक विषयता ही ज्ञानको उत्कृष्टता सिद्ध हुई, तब अपरिच्छिन्न ब्रह्माण्डस्थ गोचर अगोचर और हमारे नयनोंके अगोचर सर्ववस्तु विषयता ही ज्ञानकी चरमोत्कृष्टता रूप निरतिशयता है इसमें सन्देह ही क्या? यह नित्य निरतिशयज्ञानस्वरूप सर्वज्ञता जीवात्माके लिए सम्भव नहीं, क्योंकि बुद्धिवृत्ति, रजोगुण और तमोगुणसे कलुषित होनेके कारण उसकी ज्ञानशक्ति परिच्छिन्न है इस ज्ञानशक्तिके द्वारा सर्वगोचरज्ञानका होना कदापि सम्भव नहीं। इसलिये यह निःसन्देह स्वीकार करना पड़ेगा कि अपरिच्छिन्न इच्छाशक्तिमान ही तादृश सर्वज्ञताका एकमात्र आश्रय है। ऐसे अपरिच्छिन्न इच्छाशक्तिमान् जो हैं वे ही योगसूत्रकारके मतसे परमात्मा हैं। इस प्रकारसे जब परमात्माकी सत्ता सिद्ध हुई, तब 'परमात्मा या परमेश्वर नहीं हैं' यह कहना सिर्फ वागाडम्बर या अज्ञानका विजृम्भ प्रलापमात्र है। ये ही परमात्मा जगन्निर्माणार्थ स्वेच्छानुसार शरीरकारणभूत संसारप्रवर्तक संसारानलमें सन्तप्यमान व्यक्तियोंके अनुग्राहक अलौकिकशक्तिमान और अनन्त सत्त्वरूपसे सर्वत्र देदीप्यमान हैं, इन्हीं की कृपासे इस प्रकृति और पुरुषका संयोग होता है। योगसूत्रके अनुसार जीवात्मा और परमात्माके सिवा संसारको सम्पूर्ण वस्तुएं परिणामी हैं।

"परिणामस्वभावा हि गुणाः न परिणम्य क्षणमप्यवतिष्ठन्ते।"
(तत्त्वकौ०)

गुण परिणामस्वभाव हैं क्षण भर भी परिणत बिना हुए नहीं रह सकते। संसारके किसी भी पदार्थको कभी न देखें प्रतिक्षण ही उनका परिणाम हो रहा है, अपरिणामी सिर्फ आत्मा ही है।

सम्भावना कैसी ? इस दोषके परिहारार्थ यदि आत्मामें आनन्दरूपताकी प्रतीति स्वीकार की जाय तो परमस्वरूप पूर्णानन्दके रहते हुये कौन जीव ऐसा है जो तुच्छ विषयानन्द पानेको सम्भोग चन्दन आदिके उपभोगमें प्रवृत्त होगा ? क्या सिद्ध वस्तुके लिए लोगोंकी प्रवृत्ति होती है ? अतएव आत्मामें आनन्दरूपताकी प्रतीति या अप्रतीति दोनों ही सदोष हैं, किन्तु यह आपत्ति तबतक हो सकती है जब आत्मामें आनन्दरूपताकी सम्पूर्ण प्रतीति या सम्पूर्ण अप्रतीति स्वीकार की जाती। वास्तवमें देखा जाय तो आत्माकी आनन्दरूपता अज्ञान स्वरूप अविद्याकी प्रतिबध्य है, इसलिए प्रतीति हो कर भी अप्रतीति होती जैसा है, किन्तु विशेषतः प्रतीति नहीं होती। इसका प्रकृष्ट दृष्टान्त है—अध्ययनघोष द्वारा सम्मिलित वेद नामक व्यक्तिका अध्ययन शब्द यहां अस्पष्ट वायुकी अध्ययनरूप प्रतिबन्धकतावशत: 'यह वेदका अध्ययन शब्द है' ऐसा विशेष ज्ञान नहीं होता, किन्तु ऐसा मालूम होता है कि, इसमें वेदका अध्ययन शब्द है। परमात्माके प्रतिबिम्बयुक्त सत्व, रज: और तमोगुणात्मक तथा सत् वा असत्‌रूप अनिर्णेय पदार्थ-विशेषको अज्ञान कहते हैं। यह अज्ञान संसारका कारण है, इसलिये इसको प्रकृति भी कहा जा सकता है। इस अज्ञानमें आवरण और विक्षेपके भेदसे दो शक्तियां हैं। जैसे मेघ परिमाणमें थोड़ा होने पर भी दर्शकोंके नयन आच्छन्न कर बहु योजन विस्तृत सूर्यमण्डलको भी आच्छादित करता है उसी तरह अज्ञानसे परिच्छिन्न होने पर भी शक्तिके द्वारा दर्शकोंकी बुद्धि वृत्तिको आच्छादित कर मानो अपरिच्छिन्न आत्माको ही तिरोहित कर रखा है। इस शक्तिको आवरणशक्ति कहते हैं। यह अज्ञान यथार्थमें एक होने पर भी अवस्थाके भेदसे दो प्रकारका है—माया और अविद्या। विशुद्ध अर्थात् रजो वा तमोगुण द्वारा अनभिभूत अज्ञानको माया और मलिन अर्थात् रजो वा तमोगुण द्वारा अभिभूत सत्वगुणप्रधानको अविद्या कहते हैं। इस मायामें परमात्माका जो प्रतिबिम्ब होता है, वही प्रतिबिम्ब उस मायाको अपने अधीन कर जगत्‌की सृष्टि करता है। इसलिए वह प्रतिबिम्ब ही सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् और अन्तर्यामिस्वरूप ईश्वर कहलाता है। और अविद्यामें जो परब्रह्मका प्रतिबिम्ब पड़ता है वह प्रतिबिम्ब उस अविद्याके वशीभूत हो कर मनुष्यादि समस्त जीव-पद वाच्य होता है। अविद्या अनेक हैं इसलिए उसमें पतित प्रतिबिम्ब भी अनेक हैं और इसीलिए जीव भी अनेक हैं। न्याय और वैशेषिक मतसे जीवात्मा, सांख्य और पातञ्जलके मतसे प्रकृति तथा वेदान्तके मतसे अविद्या वा माया ये सब भाव एक ही पदार्थ हैं किन्तु परस्पर इस विषयमें विशेष मतभेद और तर्क उठाया गया है। क्योंकि न्याय और वैशेषिक मतसे जीवात्मा जगत्‌का कारण है, सांख्य और पातञ्जलके मतसे प्रकृति जगत्‌का कारण है और वेदान्तके मतसे अविद्या वा माया जगत् का कारण है। इसलिए ये तीनों पदार्थोंको एक मानना असङ्गत नहीं। परन्तु प्रत्येक दर्शनकारने अन्यान्य मतको खण्डन कर अपना मत संस्थापित किया है।

वास्तविक परमात्मा (ब्रह्म)-के सिवा सब मिथ्या है। इस जगत्‌में जो कुछ दिखनेमें आता है वह सब रज्जुमें सर्प समान असत् कल्पनामात्र है। जीवात्मा ही परमात्मा है और परमात्मा ही जीवात्मा है। अतएव इस जगत्‌के सृष्टिक्रम तथा जीवात्मा और परमात्माका विभाग करना वन्ध्यापुत्रके नाम रखनेके समान उपहासास्पद है।

यदि परमात्मा (ब्रह्म)-के साथ जीवका वास्तविक भेद नहीं है और जीव ही परमात्मा स्वरूप है तो जीव को अनर्थ निवृत्ति तथा ब्रह्मभावप्राप्तिरूप परम मुक्ति स्वत: सिद्ध ही है, उसके लिए फिर तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता नहीं। सिद्धवस्तुको पानेके लिए कौन प्रयत्न करता है ? परन्तु यह आपत्ति वा प्रश्न सिर्फ जिज्ञासा और स्वल्पज्ञता आदि दोषोंका कार्य है, ऐसा कहना चाहिये। क्योंकि सिद्ध वस्तुका भी अनिश्चय होता है और उस भ्रमके निराकरणार्थ उपायान्तरका अवलम्बन करना पड़ेगा। दृष्टान्त दिया जाता है—दस आदमी, जो कि मूढ़ थे, नदी पार हो कर सबने अपनेको छोड़ कर गिना तो ९ निकले, तब उन्हें बड़ी चिन्ता हुई कि, एकको ग्राह मगर नोच ले गया है। परन्तु जब उन्हें बुद्धिमान् व्यक्ति द्वारा "दसवें तुम" जो ऐसा उपदेश

मिला, तब उन्होंने अपनेको शामिल कर गिना तो १० निकले, जिससे वे अलब्ध वस्तुके लाभसे परम आनन्दित हुए। ऐसा प्रायः हुआ करता है, लोग अपने कन्धे पर अंगोछा रख कर इधर उधर खोजा करते हैं। अतएव जीव परमात्माका स्वरूप होने पर भी यदि अज्ञान निवृत्तिके लिए उपाय अवलम्बन करता है, तो उसमें हानि क्या? वरन् उपर्युक्त युक्तिके अनुसार आवश्यक कर्त्तव्य ही प्रतीत होता है।

बुद्धि ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक सहित विज्ञानमयकोष, मन कर्मेन्द्रिय सहित मनोमयकोष और कर्मेन्द्रिय सहित प्राण प्राणमयकोष गिना जाता है। इन तीनों कोषोंमें विज्ञानमयकोष ज्ञानशक्तिमान् और कर्त्तृत्व शक्तिसम्पन्न है, मनोमयकोष इच्छाशक्तिशील और करणस्वरूप है तथा प्राणमयकोष क्रियाशक्तिशाली और कार्यस्वरूप है। पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, बुद्धि और मन, इन सबहके मिलने पर सूक्ष्म शरीर होता है, जिस को कि लिङ्गशरीर कहते हैं। यह लिङ्गशरीर इहलोक और परलोकगामी तथा मुक्ति पर्यन्त स्थायी है। इस लिङ्ग शरीरका जब स्थूलशरीर परित्याग करनेका समय उपस्थित होता है, उस समय जैसे जलौका एक तृण अवलम्बन किये बिना पूर्वाश्रित तृणादि नहीं त्याग सकती, वैसे ही आत्मा (अर्थात् लिङ्गशरीर) की मृत्युके अव्यवहित पहले एक भावनामय शरीर होता है। उस शरीरके होने पर यावज्जीवनव्यापी कर्मराशि आ कर उपस्थित होती है, फिर कर्मके अनुसार कोई भी मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट आदिके एक आश्रय लेने पर आत्मा लिङ्गशरीरके साथ उस देहका आश्रय ले कर पूर्व देह परित्याग करती है। अस्म देखो। प्राण निकलते समय नव द्वारोंसे निकलते हैं।

जैनदर्शनके मतसे—प्रति शरीरमें एक एक आत्मा है। यदि सबको आत्मा पृथक् पृथक् न हो कर एक ही होती, तो प्रत्येक प्राणीको एक समान सुख दुःख होता और परस्पर द्वेषादिकी प्रवृत्ति नहीं होती। आत्मा अनादिसे है और अनन्त काल तक विद्यमान रहेगी तथा इसकी संख्या भी अनन्त है। जब तक यह ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि अष्टकर्मोंके वशीभूत है, तब तक संसारी (अर्थात् जीवात्मा) है और जिस समय इसके उक्त आठों कर्म पृथक् हो जायंगे उसी समय यह शुद्ध-चिद्रूप वा परमात्मा रूपमें परिणत हो जायगी। आत्मा चैतन्यस्वरूप है और कर्म जड़ हैं। इन दोनोंका सम्बन्ध अनादिकालसे चला आ रहा है। जीवात्माको मुक्ति वा मोक्षके बाद फिर संसारमें परिभ्रमण नहीं करना पड़ता। ईश्वर वा परमात्मा अरूपी हैं। वे अरूपी हो कर रूपी पदार्थकी सृष्टि नहीं कर सकते। परमात्मा संसारके झंझटोंसे बिलकुल अलग हैं और वे अपने अस्तित्व चैतन्य, अनन्तसुख, सम्यक्दर्शन, सर्वज्ञता, आत्मनिष्ठा आदि गुणोंमें ही तल्लीन हैं। जगत्का कोई भी कर्त्ता नहीं; जगत् अनादिकालसे ऐसा ही है और अनन्तकाल तक रहेगा। मन, वचन और कायकी चञ्चलतासे ही पाप वा पुण्य कर्मोंका बन्ध होता है। ईश्वर वा परमात्मा मन-वचन काय इन तीनोंसे शून्य हैं, वे अपने त्रैकालिक ज्ञानमें तन्मय हैं। इसलिए उनका सृष्टि-कर्त्ता होना असम्भव है। जीवात्मा या संसारी आत्मा कर्मयुक्त रूपी है। इसके तैजस और कार्मण दो शरीर सर्वदा रहते हैं। आयुकर्मकी अवधिके अनुसार जन्ममृत्यु होती रहती है। किसी व्यक्ति वा पशु पक्षी आदिकी मृत्यु होते ही उसकी आत्मा तैजस और कार्मण शरीर सहित तीन समय (एक समय बहुत छोटा होता है, एक सेकेण्डके अन्दर असंख्य समय बीत जाते हैं) भीतर अन्य शरीर धारण कर लेती है। आत्मा अमर है। जब तक यह कर्मयुक्त है, तब तक सुख-दुःखादि भोगती है, कर्ममुक्त होते ही परमात्म पद पा कर अनन्त-सुखका अनुभव करती है। आत्मन् देखो।

जीवादान (सं० क्ली०) जीवाना आदानं, ६-तत्। वैद्य और रोगीकी अज्ञतासे वमन और विरेचनमें पन्द्रह प्रकारके व्यापद् होते हैं, उनमेंसे एकका नाम जीवादान है। सुश्रुतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है विरेचनके अतियोगसे पहले श्लेष्मसह जल, पीछे मांसधौतके समान जल फिर जीवशोणित, पीछे गुदस्थान तक निकल आता है तथा कँपकँपी और के होती है। ऐसी दशामें अधोभागमें गुदके निकल आने पर वो चुपड़े और स्वेदप्रयाग कर उसे भीतर प्रविष्ट करा दें अथवा क्षुद्ररोगकी प्रणाली

जीवेन्धन (सं० क्लो०) जीवरूपं इन्धनं रूपक कर्मधा० जीवरूप काठ।

जीवेश (सं० पु०) परमात्मा, ईश्वर।

जीवेष्टि (सं० स्त्रो०) जीवोद्देशिका इष्टिः। बृहस्पतिसव, वह यज्ञ जो बृहस्पतिके लिए किया जाता है।

जीवोत्पत्तिवाद (सं० पु०) जीवस्य सङ्कर्षणाभिधस्य उत्पत्तौ उत्पत्तिविषये वादः प्रतिवादः ६-तत्। जीवको उत्पत्तिके विषयका प्रतिवाद। पञ्चरात्र आदि वैष्णव ग्रन्थोंमें जीवकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है। भगवद्भक्तोंका कहना है कि, भगवान् वासुदेव एक ही हैं, वे निरञ्जन और ज्ञानवपु: हैं तथा वे ही परमार्थतत्त्व हैं। वे अपनेको चार प्रकारोंमें विभक्त कर विराजमान हैं और इन चार प्रकारोंमें विभक्त करके ही जीवोंकी उत्पत्ति की है।

वासुदेवव्यूह, सङ्कर्षणव्यूह, प्रद्युम्नव्यूह और अनिरुद्धव्यूह ये चार प्रकारके व्युह उन्हींके स्वरूप हैं।

वासुदेवका दूसरा नाम परमात्मा सङ्कर्षणका दूसरा नाम जीव, प्रद्युम्नका दूसरा नाम मन और अनिरुद्धका अन्य नाम अहङ्कार है। इन चार प्रकारके व्यूहोंमें वासुदेवव्यूह ही पराप्रकृति अर्थात् मूलकारण है, वासुदेवव्यूहसे समस्त जीवोंकी उत्पत्ति हुई है; उनसे सङ्कर्षण आदि उत्पन्न हुए हैं। इसलिए वह उस पराप्रकृतिका कार्य है। जीव दीर्घकाल पर्यन्त अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योगसाधनमें* रत रहे तो निष्पाप होता है, पीछे पापरहित हो कर पराप्रकृति भगवान् वासुदेवको प्राप्त होता है। "वासुदेव नामक परमात्मासे सङ्कर्षण संज्ञक जीवकी उत्पत्ति है"—भागवतोंका यह मत शारीरिक-सूत्रभाष्यसे खण्डित हुआ है। भगवद्भक्तोंका यह कहना है कि नारायण प्रकृतिके बाद, परमात्मा नामसे प्रसिद्ध हैं और सर्वात्मा हैं, श्रुतिविरुद्ध नहीं और यह भी श्रुतिविरुद्ध नहीं कि, वे स्वयं अनेक प्रकारसे वा व्यूह (समूह) रूपसे विराजित हैं। अतएव भागवतमतावलम्बियोंका यह मत निराकरणीय नहीं है। क्योंकि परमात्मा एक प्रकार और बहु प्रकार होते हैं। "स एकधा वा त्रिधा भवति" (श्रुति) इत्यादि श्रुतिमें परमात्माको बहुभावसे अवस्थित कहा गया है। निरन्तर अनन्यचित्त हो कर अभिगमनादिरूप आराधनामें तत्पर होना चाहिये। इनके मतसे यह अंश भी निषिद्ध नहीं है। क्योंकि, श्रुति और स्मृति दोनों शास्त्रोंमें ईश्वरप्रणिधानका विधान है। इसलिए पञ्चरात्रमत अविरुद्ध है, न कि श्रुतिविरुद्ध।

उन लोगोंका कहना है कि, वासुदेवसे सङ्कर्षणको, सङ्कर्षणसे प्रद्युम्नकी और प्रद्युम्नसे अनिरुद्धको उत्पत्ति होती है। इस अंशके निराकरणके लिये शारीरकभाष्यकारने वक्ष्यमाण प्रमाणको अवतारणा की है। जीव यदि उत्पत्तिमान हो हो, तो उसमें अनित्यत्व आदि दोष भी रहेंगे, क्योंकि संसारमें जितने भी पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब ही अनित्य हैं। उत्पत्तिशील पदार्थ अनित्यके सिवा नित्य नहीं हो सकते। जीव अनित्य अर्थात् नश्वरस्वभावी होने पर उसको भगवत्-प्राप्तिरूप मोक्ष होना सम्भव नहीं, क्योंकि कारणके विनाशसे कार्यका विनाश अवश्यभावी है।

आत्मा आकाश आदिको तरह उत्पन्न पदार्थ नहीं है। क्योंकि श्रुतिके उत्पत्ति-प्रकरणमें आत्माकी उत्पत्ति निर्णीत नहीं हुई है। वरन् अज जन्मरहित इत्यादि वाक्योंसे उसकी नित्यता हो वर्णित हुई है। इन्द्रिययुक्त शरीरमें अध्यक्ष और कर्मफलभोक्ता जीव नामक आत्मा है। वह आकाशादिकी तरह ब्रह्मसे उत्पन्न है या ब्रह्मकी भांति नित्य है, ऐसा संशय हो सकता है। किसी किसी श्रुतिने अग्निस्फुलिङ्गका दृष्टान्त दे कर कहा है कि, जोवात्मा परब्रह्मसे उत्पन्न होता है और किसी किसी श्रुतिमें यह लिखा है कि, अविकृत परब्रह्म ही स्वसृष्ट शरीरमें प्रविष्ट हो कर जीवको भांति विराजित हैं। संशय होने पर उसमें पूर्वपक्ष मिलता है, जीव भी उत्पन्न होता है; इस पक्षका पोषक प्रमाण श्रुत्युक्त प्रमाणका बाधक नहीं है*।

* अभिगमन अर्थात् तद्गतभाव और मनवचन कायसे भगवद्गृहमें जाना आदि उपादान अर्थात् पूजाकी सामग्रीका आहरण वा आयोजन। इज्या अर्थात् पूजा यज्ञ आदि। स्वाध्याय अर्थात् अष्टाक्षरादि मन्त्रोंका जप। योग अर्थात् ध्यान आदि।

* अर्थात् श्रुतिने एक विज्ञानसे सर्वविज्ञानकी प्रतिज्ञा की है, एकके जाननेसे सबको जाना जा सकता है। जीव - दि ब्रह्म-

अविकृत परमात्मा ही शरीरमें जीवकी भांति विराजित है यह कैसे जाना गया ? यह सहजमें नहीं जाना जा सकता। क्योंकि परमात्मा और जीवात्मा समलक्षण नहीं हैं। परमात्मा ही जीव है, यह तत्त्व दुर्विज्ञेय है। परमात्मा निष्पाप, निधर्मक और निष्क्रिय है, जीव इससे सम्पूर्ण विपरीत है। जीवात्मा देखो। विभाग होने पर भी जीवका विकारत्व (जन्ममरण) मालूम होता है। आकाशादि जितने भी विभक्त पदार्थ हैं, सभी विकार हैं। जीव भी पुण्यपापकारी सुखदुःखभागी और प्रतिशरीरमें विभक्त है। इसलिए जीवको भी जगदुत्पत्तिके समय उत्पत्ति हुई हो, यह बात सङ्गत है। और भी देखा जाता है कि, जिस प्रकार अग्निसे क्षुद्र विस्फुलिङ्ग निकलते हैं, उसी प्रकार परमात्मासे समस्त प्राणी जन्म लेते हैं। श्रुतिने इस प्रकार जीवसमेत प्राणादिकी सृष्टिका उपदेश दिया है—"ये सब आत्माएं उससे व्युच्चारित होती हैं।" श्रुतिमें इस उक्तिसे जीवात्माओंकी सृष्टि उपदिष्ट हुई है। जैसे प्रदीप्त पावकमेंसे उसके रूपी हजारों स्फुलिङ्ग निकलते हैं, उसी तरह इस अक्षर ब्रह्ममेंसे अक्षर समानरूपी विविध पदार्थ उत्पन्न होते और उसीमें लय हो जाते हैं। श्रुतिमें समानरूपों इस शब्दसे जीवात्माका उत्पत्ति विनाश होता है ऐसा समझना होगा। स्फुलिङ्ग और अग्नि समानरूपी हैं। जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही चेतन हैं, इसलिए समानरूपी हैं। एक श्रुतिमें उत्पत्ति श्रवण नहीं है, इसलिए अन्य श्रुत्युक्त उत्पत्तिका निषेध होगा यह नहीं कहा जा सकता। अन्य श्रुतिका अतिरिक्त पदार्थ सर्वत्र संग्रहीत होता है। परमात्मा स्वकृत शरीरमें अनुप्रविष्ट हुए हैं इत्यादि श्रुतिमें अनुप्रवेश शब्दका विकार अर्थ ग्रहण करना ही उचित है। अभिप्राय यह है कि, शरीरमें अविकृत ब्रह्मका प्रवेश नहीं, किन्तु वह ब्रह्मका विकार है। यह सबत्र प्रसिद्ध है कि विकार और उत्पत्ति समानार्थक है। पूर्वपक्षका उपसंहार यह है—उल्लिखित युक्तिसे जीव भी ब्रह्मसे आकाशादिकी तरह

उत्पन्न होता है। किन्तु आत्मा अर्थात् जीव उत्पन्न नहीं होता। कारण यह है कि, श्रुत्युक्त उत्पत्ति प्रकरणमें बहुत जगह जीवकी उत्पत्ति अश्रुत है। एक जगह अश्रवण होने पर उससे श्रुत्यन्तरकथित उत्पत्ति निवारित नहीं होती—यह ठीक है, पर जीवकी उत्पत्ति असम्भव है। क्योंकि जीव नित्य है। श्रुतिके अजत्वादि शब्दसे जीवकी नित्यता प्रतीत होती है। अजत्व है, अविकारित्व है, इसलिए अविकृत ब्रह्मका ही जीवरूपमें रहना और जीवका ब्रह्मत्व श्रुति द्वारा विनिश्चित होता है। आत्मनित्यत्वादी श्रुतिविषय यह है— "जीव मरते नहीं" "वे ही ये हैं वे महान् जन्मरहित हैं, आत्मा अजर, अमर, अभय और ब्रह्मविपश्चित् है अर्थात् आत्मा न जन्मती और न मरती ही है यह आत्मा अज नित्य, शाश्वत और पुरातन है, वे यदि घर उसमें अनुप्रविष्ट हैं" 'जीव नामक आत्मा हो कर अनुप्रवेशपूर्वक नामरूप व्यक्त करूंगा' "वे परमात्मा इस शरीरमें नखाग्र तक आविष्ट हैं" ये सब श्रुतियां जीवके नित्यत्वकी वाचक हैं। जीवको विभक्त कहा था, वह भी नहीं कह सकते। जीव विभक्त है, विभक्त होनेसे विकार (जन्मविशिष्ट) है, विकारत्वके कारण उत्पत्तिशील है, यह बात भी सङ्गत नहीं है क्योंकि जीवोंमें सत्ता प्रविभाग (पार्थक्य) नहीं है।

वह सर्वव्यापी एक ही देव सर्वभूतकी गुहामें अवस्थित है। इसलिए वे समुदय भूतकी अन्तरात्मा हैं यह श्रुति ही उसका प्रमाण है। जिस तरह आकाश घटादि सम्बन्धके कारण विभक्तरूपसे प्रतिभात होता है, उसी तरह परमात्मा भी बुद्ध्यादि उपाधि सम्बन्ध द्वारा विभक्तकी भांति प्रतिभात होते हैं।

इस विषयमें शास्त्रप्रमाण है—"वही ब्रह्म आत्मा विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय चक्षुर्मय और श्रोत्रमय है" इत्यादि। इस शास्त्रद्वारा एक ही ब्रह्ममें बहुत्व और बुद्ध्यादिमयत्व कहा गया है। जीवका जो यथार्थ रूप है, उसका विस्पष्ट या विज्ञानगोचर न होना बुद्ध्यादिके साथ एकीभाव प्राप्तिके कारण तद्भावापत्ति होती है। जैसे—स्त्रीमय इत्यादि। किसी किसी श्रुतिमें जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयके विषयमें जो लिखा है, वह भी

उत्पन्न न हो कर पुनः [illegible] हो [illegible] का जीवका ज्ञान नहीं होगा। इसलिए सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा भंग हो जायगी।

मायासे होती है। जीवात्मा देखो।

जीवोर्णा (सं० स्त्री०) जीवस्य ऊर्णा, ६-तत्। जीवित मेषादिके रोम, जीते भेड़ोंके बाल।

जीव्या (सं० स्त्री०) जीवाय जीवनाय हिताय, जीव-यत्। १ हरीतकी, हड़। २ जीवन्ती। ३ गोरचदुग्ध, गायरू चुपका दूध। (त्रि०) ४ जीवनोपाय, जीविका।

जीह (हिं० स्त्री०) जीभ देखो।

जुंई (हिं० स्त्री०) जुईं देखो।

जुंदर (पु०) बन्दरका बच्चा।

जुंबली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी पहाड़ी भेड़।

जुंबिश (फा० स्त्री०) चाल, गती, हिलना डोलना।

जुआ (हिं० पु०) १ द्यूत, हार जीतका खेल। यह खेल कौड़ी पैसे ताश आदि कई वस्तुओंसे खेला जाता है, किन्तु आजकल यह खेल कौड़ीसे भी खेला जाता है। इसमें चित्ती कौड़ियां फेंकी जाती हैं और चित्त पड़ी हुई कौड़ियोंकी संख्याके अनुसार दावोंकी हार जीत होती है। सोलह चित्ती कौड़ियोंके खेलको सोलही कहते हैं। २ वह लकड़ी जो गाडी, छकड़ा, हल आदिमें बैलोंके कंधों पर रहती है। ३ जांते या चक्कीकी मूँठ।

जुआचोर (हिं० पु०) १ अपना दांव जीत कर खिसक जानेवाला जुआरी। २ वञ्चक, ठग, धोखेबाज।

जुआचोरी (हिं० स्त्री०) वञ्चकता, ठगी, धोखेबाजी।

जुआठा (हिं० पु०) हलमें बैलोंके कंधों परकी लकड़ीका ढांचा।

जुआर (हिं० स्त्री०) ज्वार देखो।

जुआरदासी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा जिसमें सुगन्धित फूल लगते हैं।

जुआरा (हिं० पु०) एक जोड़ी बैलसे एक दिनमें जोती जानेवाली धरती।

जुआरी (हिं० पु०) जुआ खेलनेवाला।

जुई (हिं० स्त्री०) १ छोटी जुआं। २ मटर, सेम इत्यादि फलियोंमें होनेवाला एक प्रकारका छोटा कीड़ा।

जुई (हिं० पु०) एक प्रकारका पात्र जिससे हवनमें घी छोड़ा जाता है। यह काठका बना हुआ बरछीके आकारका होता है।

जुकाम (हिं० पु०) सरदी लगनेसे होनेवाली बीमारी। इसमें शरीरके अन्दर कफ उत्पन्न हो कर नाक और मुंहसे निकलने लगता है।

जुग (हिं० पु०) १ युग देखो। २ जोड़ा, द्वन्द्व, गोल। ३ चौसर खेलकी दो गोटियोंका एक ही कोठेमें इकट्ठा होना। ४ कपड़े बुननेके अवयवोंमेंसे एक प्रकारका डोरा। ५ पीढ़ी, पुश्त।

जुगजुगाना (हिं० क्रि०) १ मन्द ज्योतिसे चमकना, टिमटिमाना। २ उन्नति दशामें प्राप्त होना।

जुगजुगी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया, इसका दूसरा नाम शकरखोरा भी है।

जुगत (हिं० स्त्री०) १ युक्ति, उपाय, तदबीर। २ व्यवहारकुशलता, चतुराई। ३ चमत्कारपूर्ण उक्ति, चुटकुला।

जुगनी (हिं० स्त्री०) १ जुगनू देखो। २ पंजाबमें गाये जानेका एक प्रकारका गाना।

जुगनू (हिं० पु०) १ ज्योतिरिङ्गण, खद्योत, ज्योतिःशाली क्षुद्र कीटविशेष, एक उड़नेवाला छोटा कीड़ा जिसका पीछेका भाग आगकी चिनगारीकी तरह चमकता है (Lampyris noctiluca)। यह लम्बाईमें करीब आधे इञ्चका होता है। इसका मस्तक और गला छोटा और रंग कालेपनको लिए भूरा होता है। पंखों पर लोहित और कृष्णमिश्रित चिह्न होते हैं। स्त्री-जुगनूकी अपेक्षा पुं जुगनूकी आँखें बड़ी होती हैं। यह वृक्ष, लता, गुल्म, पुष्करिणी और नदीके किनारे रहता है। अंधेरी रातमें इनके झुण्डके झुण्ड छोटी छोटी दीपमालाओंकी तरह दीखते हैं। इनका यह प्रकाश वस्तिदेशके छोरसे निकलता है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि, वह प्रकाश दीपकसम्भूत है। जुगनूकी पूँछमें दीपक (Phosphorus) विद्यमान है, यह इच्छानुसार प्रकाशको घटा बढ़ा सकता है। इसीसे देखनेमें आता है कि, यह एक बारगी खूब चमकने लगता है और फिर उसी समय प्रायः बुझ-सा जाता है। उस चमकनेवाले हिस्सेको अलग कर लेने पर भी वह बहुत देर तक प्रकाश देता है। बुझ जाने पर यदि उसको पानी दे कर कोमल किया जाय, तो फिर उसमेंसे प्रकाश निकलता है। गरम पानीमें छोड़ देने पर भी इस कीड़ेसे

प्रकाश निकलता है पर ठंडे पानीमें छोड़नेसे बुझ जाता है।

पु० जुगनूकी अपेक्षा स्त्री जुगनू को अधिक उज्ज्वल है। स्त्री-जुगनूके पर नहीं होते, इसलिए वह उड़ नहीं सकती, एक जगह बैठी हुई जरा जरा प्रकाश करती है। इस प्रकाशको देख कर पु० जुगनू उसका पता लगा लेता है। सिंहलमें ऐसे कीड़े हैं जिनकी स्त्री-जातिको लम्बाई ३ इञ्च की है। वैज्ञानिकोंने परीक्षा की है—यह वायुशून्य स्थानमें और वाष्पके भीतर बहुत देर तक जीवन धारण कर सकता है। आक्सीजन वाष्पके भीतर रखनेसे कभी कभी शब्द करके फट जाता है।

तितली, गुबरैले, रेशमके कीड़े आदिकी तरह ये भी पहले ढोलेके रूपमें उत्पन्न होते हैं। ढोलेकी अवस्था में ये मिट्टीके घरमें रहते हैं और उसमेंसे दस दिनके उपरान्त रूपान्तरित हो कर छोटे छोटे कृमिके आकारमें निकलते हैं और बड़े होने पर चमकने या प्रकाश फेंकने लगते हैं, परन्तु इनका प्रकाश पूर्णावस्था जुगनूकी तरह उज्ज्वल नहीं होता। सबसे ज्यादा चमकीले जुगनू दक्षिण अमेरिकामें होते हैं। इनसे कहीं कहीं लोग घरमें दीपकका काम लेते हैं। इन्हें सामने रख कर लोग सूक्ष्मसे सूक्ष्म अक्षरोंकी पुस्तकें पढ़ सकते हैं।

२ पानके आकारका एक गहना जिसे स्त्रियां गलेमें पहनती हैं, रामनौमी।

जुगराज—हिन्दीके एक कवि।

जुगराजदास—एक हिन्दीके कवि। इनकी कविता साधारणतः अच्छी होती थी। उदाहरण—

"ऊंचा महमाती कोके या प जुनये अधीर पुलक उड़ाय।
नारी भाव भाव हारी देव देव भकहि कंठ लपटाय।
परजन बरजन रैन पुनि रे बाये रहो सखी कथ।
एक रूप धूप मत घूम घूम मिलमन बैठ जुगराज सुगाय।"

जुगल (हिं० वि०) युग्म देखो।

जुगल सखी—हिन्दीके एक कवि। इनकी कविता उत्कृष्ट होती थी। एक कविता नीचे उद्धृत की जाती है—

'कामीरी अति राजत जकडें।
मैं जुग मधुक मनोरथ मुख पर गोरखरूम अलिसी छबि छकें।
तरल अलक एरे बचरन पर राजि हिलत हिये हिय हरकें।
सुखद दसी रखे प्रभु दी मिलनको मिलत रहत हिए निध कर्क।
अतिप्रद अमल वनक कुंडलकी रवि शशि मीन कपोलन रहें।
देखत अवत वरन नहीं आवत तन मन हरत परत नहिं थके।'

जुगलकिशोर—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने जुगल-चालिस नामका एक ग्रन्थ रचा है।

जुगलकिशोर भट्ट—हिन्दीके एक कवि। ये कैथलके (जिला करनाल) रहनेवाले और १७४६ ई०में विद्यमान थे। इन्होंने अलङ्कारनिधि और किशोरसंग्रह नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें पहला ग्रन्थ बड़े महत्वका है—उसमें अलङ्कारोंके विषयमें विशदरीतिसे लिखा गया है। ये महम्मदशाहके दरबारमें रहते थे। महम्मदशाहने उन्हें 'राजा' उपाधि प्रदान की थी।

जुगलदास—एक हिन्दीके कवि।

जुगलिया (हिं० पु०) जैन मतानुसार भगवान् ऋषभदेवसे पहलेके प्राचीन (भोगभूमिके मनुष्य। ये माताके गर्भसे स्त्री पुरुष एकसाथ दम्पतीरूपमें जन्मग्रहण करते थे। इसीलिये इनको जुगलिया कहा जाता है। सन्तान उत्पन्न होने पर ये दोनों ही मर जाते थे और इनकी सन्तान भी युगल या दम्पतीरूपमें जन्मग्रहण करती थी। इनको भोगभूमिया भी कहते हैं।

जुगवना (हिं० क्रि०) १ सञ्चित रखना एकत्र करना। २ सुरक्षित रखना, हिफाजतसे रखना।

जुगादरी (हिं० वि०) जीर्ण बहुत पुराना।

जुगालना (हिं० क्रि०) पागुर करना।

जुगाली (हिं० स्त्री०) पागुर, रोमन्थ।

जुगुत (हिं० स्त्री०) युक्ति देखो।

जुगुप्सु (स० त्रि०) गोपितुमिच्छु। गुप-सन्-उ। १ निन्दुक निन्दा करनेवाला। २ छुपा कर रखनेवाला यत्नपूर्वक रखनेवाला।

जुगुप्सक (सं० त्रि०) गुप-सन् भावे ण्वुल्। जो दूसरेकी निन्दा करनेवाला।

जुगुप्सन (सं० क्ली०) गुप सन् भावे ल्युट्। १ निन्दन, निन्दा करना दूसरेकी बुराई करना। (त्रि०) कर्त्तरि ल्यु। २ निन्दाशील, निन्दक निन्दा करनेवाला। ३ दोष प्रभृति अनुसन्धान कर जो निन्दा की जाती है।

जुगुप्सा (सं० स्त्री०) गुप सन् भावे अ-टाप् १ निन्दा, गर्हणा, बुराई।

जुगुप्सा (सं० स्त्री०) गुप-सन् भावे अ-टाप्। १ निन्दा। (अमर) वीभत्सरसका स्थायिभाव, शान्तरसका व्यभिचार भाव। (साहित्यद० ३।२३६) वीभत्सरस देखो।

देह जुगुप्साका विषय पातञ्जलदर्शनमें इस प्रकार लिखा है—

"शौचात् स्वाङ्गे जुगुप्सा परैरसंसर्गः।" (पात० २।४०)

जिसने शौचको साध लिया है, कारणस्वरूप उसको अपने अङ्गप्रत्यङ्गोंसे भी घृणा हो जाती है। आत्माको शुचि होने पर शरीरको अशुचि समझ इसमें आग्रह वा ममत्व नहीं रहता और अपने शरीरके प्रति जुगुप्सा (घृणा) हो जाती है; इसलिए अन्यान्य शरीरियोंसे मिलनेकी भी इच्छा नहीं होती। जिसको अपनी देहसे घृणा हो गई हो, उसे अन्य शरीरसे द्वेष हो, ऐसा संभव नहीं; आत्मशौचवान् व्यक्ति दूसरोंके साथ पार्श्व तक नहीं रखता। इसीलिए प्रायः साधुयोगियोंके लोकालयमें दर्शन नहीं मिलते। देहसे सर्वदा जुगुप्सा रखनी चाहिये। शरीरसे जुगुप्सा होने पर वैराग्य आता है। वास्तवमें यह शरीर अनित्य है, यह रसान्त भस्मान्त वा विष्ठान्त हो जायगा। यह मातापितृज पाञ्चभौतिक शरीर भुक्त द्रव्यका परिणाम मात्र है, इसलिए इसमें विश्वास करना सङ्गत नहीं। इसके निमित्तसे सर्वदा जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और दुःखके दोषोंका अनुसन्धान करना चाहिये।

३ जैनमतानुसार चारित्रमोहनीय कर्मोंके भेदोंमेंसे एक। इसके उदयसे आत्मामें ग्लानि उत्पन्न होती है।

जुगुप्सित (सं० त्रि०) १ निन्दित घृणित। (क्ली०) २ श्वेत लहसुन, सफेद लहसुन।

जुगुप्सु (सं० त्रि०) निन्दुक, बुराई करनेवाला।

जुगुर्वणि (सं० त्रि०) गृ-स्तुतौ गृणाति यङ् लुगन्तात् क्विप् छान्दसो रूपसिद्धिः। स्तोत्रका संविभक्त, जो स्तवकारियोंको विभाग करता है।

जुगुल—एक कविका नाम। १६८८ ई० में इनका जन्म हुआ था। इनकी कविता साधारण श्रेणीकी होती थी।

जुगुलपरसाद चौबे—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने 'दोहावली' नामक एक पुस्तक रची है।

जुगुलानन्यशरण महन्त—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। ये जातिके ब्राह्मण थे। इन्होंने सीतारामसनेहवाटिका, रामनामसाहात्म्य, विनोद-विलास, प्रेमप्रकाश, हृदयहुलासिनी, मधुरमञ्जुमाला, रूपरहस्य पदावली, प्रेमपरत्वप्रभा (दोहावली) आदि प्रायः ३०-४० ग्रन्थोंकी रचना की है। १८७६ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनकी कविता उत्कृष्ट होती थी—उनसे कविकी विद्वत्ता प्रगट होती है। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है—

"ललित कंठ कमनीय लाल, मन मोह लेन बिन दामें।
अरुन पीत सित असित माल, मनि नूतन नवल ललामें॥
कहा तारीफ करीफ कीजिए रहिए मेरि हरामें।
जुगुलानन्य नवीन नील, पिक कोकिल सुनत कलामें॥"

जुग्ध (सं० पु० क्ली०) यवनाल।

जुङ्ग (सं० पु०) जुंग घञ्। वृद्धदारक, विधाराका पेड़।

जुङ्गा (सं० स्त्री०) जुंग देखो।

जुङ्गित (सं० त्रि०) जुङ्ग-क्त। १ परित्यक्त, छोड़ा हुआ। २ क्षतिग्रस्त, नुकसान किया हुआ।

जुङ्गी—निकृष्ट जातिविशेष, एक नीच जाति।

जुज़ (फा० पु०) एक फारम, कागजके ८ या १६ पृष्ठोंका समूह।

जुजबन्दी (फा० स्त्री०) किताबकी सिलाई। इसमें आठ आठ पन्ने एक साथ सिए जाते हैं।

जुजवी (फा० वि०) १ बहुतोंमें कोई एक। २ बहुत छोटे अंशका।

जुझाऊ (हिं० वि०) १ युद्धका, लड़ाईमें काम आनेवाला। २ युद्धके लिये उत्साहित करनेवाला।

जुट (हिं० स्त्री०) १ दो वस्तुओंका समूह, जोड़ी, जुग। २ एकके साथ लगी हुई वस्तुओंका समूह, थोक। ३ दल, जत्था, मण्डली। ४ एक जोड़का आदमी या वस्तु।

जुटक (सं० क्ली०) जुट सङ्घाते जुट-क। इगुपधेति। पा ३।१।१३५। ततः संज्ञायां कन्। जटा, सिरके उलझे हुए बाल।

जुटना (हिं० क्रि०) १ संश्लिष्ट होना, जुड़ना। २ सटना, लगा रहना। ३ लिपटना, चिमटना। ४ सम्भोग करना,

समाप्त करना। ५ एकत्र होना, जमा होना। ६ किसी कार्यमें मदद देनेके लिये तैयार होना। ७ प्रवृत्त होना, तत्पर होना। ८ अभिसन्धि करना, सहमत होना।

जुटली (हिं॰ वि॰) लम्बे लम्बे बालोंकी लट रखनेवाला, जूड़ेवाला।

जुटाना (हिं॰ क्रि॰) १ दो या अधिक वस्तुओंको एक दूसरेके साथ दृढ़तापूर्वक लगा देना, जोड़ना। २ सटाना, भिड़ाना। एकत्र करना, इकट्ठा करना, जमा करना।

जुटिका (सं॰ स्त्री॰) जुटक स्वार्थे कन् अत इत्व। १ शिखा, चोटी, चुटैया। शिखाको बाँधे बिना कोई धर्मकार्य करना निषिद्ध है।

"जुटिकाञ्च ततो बध्वा ततः कर्म्मसमाचरेत्।" (आह्निकतत्त्व)

२ गुच्छा, लट, जूड़ी, जुट्टी। ३ कर्पूरविशेष एक प्रकारका कपूर।

जुट्टी (हिं॰ स्त्री॰) घास पूला आदिका बँधा हुआ मुट्ठा, पुलिया। २ सूरन आदिके नये कल्ले। ३ एक ही आकारकी ऐसी वस्तुओंका ढेर जो तले ऊपर रखी हो, गड्डी, थाक। (वि॰) ४ संयुक्त, मिली हुई।

जुठारना (हिं॰ क्रि॰) १ उच्छिष्ट करना किसी खाने पीनेकी वस्तुको कुछ खा कर छोड़ देना। २ किसी वस्तुमें काम ला कर उसे दूसरेके व्यवहारके अयोग्य कर देना।

जुठिहारा (हिं॰ पु॰) जो जूठा खाता हो, जुठखोर।

जुड़ना (हिं॰ क्रि॰) १ संश्लिष्ट होना संयुक्त होना। २ सम्भोग करना प्रसङ्ग करना। ३ एकत्र होना, इकट्ठा होना। ४ किसी काममें सहायता देनेके लिये तैयार हो जाना। ५ उपलब्ध होना, मिलना, शामिल होना। ६ जुतना।

जुड़पित्ती (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका रोग जो शीत और पित्तसे उत्पन्न होता है। इसके होनेसे शरीरमें खुजली उठती है और बड़े बड़े चकत्ते पड़ जाते हैं।

जुड़वाँ (हिं॰ वि॰) गर्भकालसे दो एकमें सटे हुए। यमज।

जुड़वाई (हिं॰ स्त्री॰) जोड़ाई देखो।

जुड़ाई (हिं॰ स्त्री॰) जोड़ाई देखो।

जुड़ाना (हिं॰ क्रि॰) १ शीतल होना, ठण्ढा होना। २ शम करना, शान्त करना।

जुड़ौवाँ (हिं॰ वि॰) जुड़वाँ देखो।

जुडीयल (अं॰ वि॰) न्यायसम्बन्धी।

जुतना (हिं॰ क्रि॰) रस्सी या किसी दूसरी वस्तुके द्वारा बैल, घोड़े आदिका उस वस्तुके साथ बाँधना जिसे उन्हें खींच कर ले जाना हो, नधना। २ किसी कार्यमें परिश्रमपूर्वक लगना। ३ कार्यमें लगना गुथना, जुटना। ४ हल द्वारा जमीनको मुलायम करना।

जुतवाना (हिं॰ क्रि॰) १ दूसरेसे हल चलवाना। २ गाड़ी हल आदिके खींचनेके लिये उसमें बैलोंको लगवाना।

जुताई (हिं॰ स्त्री॰) जोताई देखो।

जुताना (हिं॰ क्रि॰) जोतना देखो।

जुतियाना (हिं॰ क्रि॰) १ जूतोंसे मारना। २ अपमानित करना, तिरस्कार करना, अपदस्थ करना।

जुतियौवल (हिं॰ स्त्री॰) परस्पर जूतोंकी मार।

जुतोघ—पञ्जाबके शिमला जिलेकी एक पहाड़ी छावनी। यह अक्षा॰ ३१ ० उ॰ और देशा॰ ७७ ० पू॰में शिमला शहरसे कोई १ मील दूर पड़ता है। १८४३ ई॰में पटियालासे जमीन ली गयी थी। लोकसंख्या प्रायः १०५ है।

जुगोली (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी छोटी चिड़िया। इसकी छाती और गरदनका कुछ अंश सफेद और शेष अंश भूरा होता है।

जुदा (फा॰ वि॰) १ पृथक् अलग। २ निराला, भिन्न।

जुदाई (फा॰ स्त्री॰) वियोग, बिछोह।

जुदो (हिं॰ वि॰) जुदा देखो।

जुनार (जुन्नर) १ बम्बई विभागके अन्तर्गत पूना जिलेका एक तालुक। यह अक्षा॰ १८ १८ से १८ २४´ उ॰ और देशा॰ ७३ १८ से ७४ १८ पू॰में अवस्थित है। इसकी लोकसंख्या प्रायः ११००२१ और भूपरिमाण ४८१ वर्गमील है। इसमें जुनार नामका एक शहर और ११८ ग्राम लगते हैं। जुनार शहरसे ११ मील दक्षिण-पश्चिम कोणमें शिवनेरी नामका एक दुर्ग है। इस दुर्गके नामानुसार प्राचीनकालमें जुनार "शिवनेरी" नामसे विख्यात था। पूनाके कलक्टरोंके अधीन बहुतसे तालुक हैं, जिनमेंसे जुनार तालुक सबसे उत्तरी सीमामें

प्रवस्थित है। यहां हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि भिन्न भिन्न जातियां वास करती हैं। हिन्दुकी संख्या ही सबसे अधिक है। इस उपविभागमें एक दीवानी और दो फौजदारी अदालत तथा एक थाना है।

यहां बहुतसी नदियां पर्वतसे निकल कर 'घोड़में' गिरी हैं। यह घोड़ टेखनेमें काटेके सदृश है। इसका अग्रभाग सूक्ष्म और तीनों ओर विस्तृत है। सबसे दक्षिणमें जो नदी प्रवाहित है, उसका नाम है मीना। प्रतिवर्ष इस नदीका जल बढ कर १० मीलके मध्यवर्ती खेतोंका बहुत अनिष्ट करता है। इस स्थानकी मट्टी बहुत नरम है। जलका प्रवाह रोकनेका कोई उपाय नहीं है। अधिवासिगण नदी तथा मट्टीकी प्रकृति अच्छी तरह जानते हैं, किन्तु वे स्थान परिवर्त करनेकी जरा भी इच्छा नहीं रखते। माधोजी सिन्धियाके एक कर्मचारी हिन्दुस्तान लूटनेके समय सङ्गतिपन्न हो गये थे। इन्होंने (कुलकर्णी वंशीय) निर्गुंडी ग्राममें एक सुन्दर मन्दिर बनवाया था। कई वर्ष हुये, मीना नदी उस ओर बढ़ती तर मन्दिरको नष्ट करने लगी है।

१६५७ ई०में शिवाजीने जिस जगह नदी पार हो जुनार दुर्ग पर आक्रमण किया था, वह प्रदेश मन्दिरके समीप ही है। निर्गुंडीसे दो मील नीचेकी ओर ए॰ प्रसिद्ध मुगलबांध है। पहले इस स्थानसे शिवनेरा दुर्गके 'बागनहोर' उद्यान तक एक खाड़ी प्रवाहित थी। अब वहां उसका चिह्न भी नहीं है। पूना और नासिकको सड़कके निकट नारायणग्राम अवस्थित है। यहां एक प्राचीनकालका बांध है। फिलहाल गवर्मेण्टने इसका जीर्णसंस्कार किया है। इस बांधके रहनेसे ८००० एकड़ भूमि बहुत आसानीसे सींची जाती हैं। नारायण ग्रामके समीप मीना नदीके ऊपर एक पुल बना हुआ है और यह नदी पिम्पलेवाके निकट घोड़में गिरी है। इसके बाईं ओर नारायणगढ है।

कुकरी नदी कानीपसिके निकटसे निकल नाना घाटोंकी उपत्यका तक प्रवाहित हुई है। यह स्थान कोङ्कण और दक्षिण प्रदेशकी प्राकृतिक सीमा स्वरूप है। कहा जाता है कि पहले घाटगढ और कोङ्कणके अधिवासियोंमें इस स्थानके लिये बहुत विवाद हुआ था। किसी समय दोनों पक्ष मिल कर सीमा स्थिर करनेके लिये बहुत वादानुवाद करने लगे। अन्तमें घाटगढके सीमान्त-रक्षक महारने कहा कि नीचे कूदनेसे वे जहां निश्चल अवस्थामें रहेंगे वही स्थान दोनों ग्रामोंकी सीमा मानी जायगी। दोनों पक्षोंने इसे स्वीकार कर लिया और जिस पहाड़के ऊपर दोनों पक्ष सम्मिलित हुये थे, वहींसे वे नीचे कूद पड़े। जिस स्थान पर उनकी देह चकना चूर हुई, वही स्थान घाटगढ़ और कोङ्कणकी सीमा ठहराई गई। पहले जुनारमें सात दुर्ग थे। वे इस तरह बने थे कि वे आकाशके सप्त नक्षत्र पुञ्जकी आकृतिके सदृश मालूम पडते थे।

उक्त सात दुर्गोंके नाम ये हैं—चावन्द, शिवनेरी, नारायणगढ, हरिचन्द्रगढ़, जोवधन, नीमगढ़, और हर्षगढ़।

जुनारमें बौद्धोंकी बनाई हुई बहुतसी गुहाएं देखी जाती हैं, किन्तु अन्यान्य स्थानकी बौद्ध-गुहाकी भांति जुनारकी गुहाएं खोदी हुई मूर्त्तियोंसे सुशोभित नहीं हैं। गुहानिर्माण होनेके बहुत समय बाद यहां बुद्धदेवकी प्रतिमूर्त्ति तथा और दूसरी दूसरी बौद्धमूर्त्तियां स्थापित हुई हैं। जुनारकी गुहाओंका निर्माण कौशल अत्यन्त विस्मयजनक है। इन गुहाओंमें जगह जगह शिलालेख पाये जाते हैं। वे लेख एक समयके नहीं हैं। इनमें बहुतसे महाराज अशोकके समयसे भी पहलेके हैं।

किसी किसी विद्वान्‌ने स्थिर किया है, कि प्राचीन तगर अब जुनारके नामसे मशहूर हो गया है। प्राचीन तगरके शिल्पकार तीन भागोंमें विभक्त हो भिन्न भिन्न स्थानोंमें फैल गये थे। पहले तगरपुरवराधीश्वर उपाधि विशेष प्रचलित थी।

इस प्रदेशमें मुसलमानोंके प्रथम आधिपत्यके समय उनकी राजधानी जुनारमें थी और कोङ्कणका कुछ भाग जुनार राज्यके अन्तर्गत था। जुनारसे नारायणग्राम तक जो रास्ता गया है, उसके कुछ दक्षिणमें मुसलमानोंका बनाया हुआ एक दुर्ग विद्यमान है।

२ बम्बई प्रदेशके पूना जिलेके अन्तर्गत इसी नामके तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १९° १२' उ० और देशा० ७३° ५३' पू०के मध्य पूना शहरसे ५६ मील

और पश्चिमघाटसे लगभग १६ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। इस शहरके उत्तरमें एक नदी और दक्षिणमें शिवनेरी दुर्ग है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः ८६०१ है। जुनार उपविभागके राजकीय सभी कार्य इसी नगरमें होते हैं। यहां एक म्युनिसपालिटी, एक सबजज अदालत, एक डाकघर और एक दातव्य औषधालय है। मुसलमानोंके समयसे ही जुनर नगरका आयतन कम हो गया है तथा महाराष्ट्रगण प्रबल हो कर जब पेशवार और शासनाश्रयको पूना उठा लाये थे, तभीसे जुनारकी ख्याति बहुत न्यून हो गई है। कुछ भी हो अभी भी जुनारकी प्रतिभा कम नहीं है—नाना घाटोंसे जो अनाज और वाणिज्य द्रव्यादि कोङ्कणसे लिया जाता है वह पहले जुनारमें ही जमा होता है। पूर्व समयमें यहांका कागज बहुत प्रसिद्ध था किन्तु आजकल यूरोपीय कागजकी प्रतिद्वन्द्वितासे जुनारका कागज दिनों दिन विलुप्त होता जा रहा है। अब यहां बहुत थोड़ा कागज तैयार होता है।

महाराष्ट्र इतिहासके पढ़नेसे मालूम होता है कि १४२६ ई०में मलिक-उल्-तिजारने जुनारदुर्ग बनाया था। १६६० ई०में शिवाजीने यह दुर्ग लूटा था। १५६८ ई०में शिवाजीके पितामहने शिवनेर दुर्ग अधिकार किया और उसी दुर्गमें १६२७ ई०में शिवाजीका जन्म हुआ। महाराष्ट्रीय युद्धकालमें यह दुर्ग कई एक शत्रुओंके हाथ लगा था। यहां बहुतसे झरने हैं। औरङ्गजेबके शासनके समय यहां मुगल सैन्योंकी छावनी थी और समय समय राजप्रतिनिधि आ कर रहते थे।

पहले इस शहरका नाम जुन्नानगर था, उसका अपभ्रंश हो कर जुनार नामकी उत्पत्ति हुई है। जुनारके चारों ओर बहुतसी गुफाएं हैं जो बौद्धोंके समय बनी थीं। इनमेंसे गणेशगुफा सबसे प्रसिद्ध है। जिस पहाड़ पर यह गुफा निर्मित है उसका नाम गणेश पहाड़ और आस पासकी समतल भूमिका नाम गणेश मल है। जुनारमें गणेशदेव ही अधिक देखे जाते हैं। गणेशलेना और तुलजालेना गुफाओंकी निर्माण प्रणाली अन्यान्य गुफाओंकी निर्माण प्रणालीसे स्वतन्त्र है। बारा कोठरीमें १२ गुफाएं हैं। जुनारके पूर्व मानमोरी पहाड़ पर भी बहुतसी गुफा देखी जाती है। कहा जाता है कि भीमशङ्करगुफा भीमसे बनाई गई है।

मानमोरी पहाड़के ऊपर फकीरकी मसजिदके समीप जो जलाशय निर्माण किया गया था, वह कभी नहीं सूखता है। जुनारके पहाड़ पर भी बहुतसी गुफाएं हैं। इस गुफामें बाज चील कबूतर, मधुमक्खी आदि रहती हैं। इस पहाड़के दक्षिणकी ओर ८ द्वार हैं जो परस्पर एक दूसरेसे मिले हुये हैं। पहाड़के ऊपर जितने घर हैं उनमें पीरजादाके जलाशय निमित्त ईदगाह और एक कब्र ये दो ही प्रधान हैं। इसके कुछ नीचे जलाशयके समीप जो मसजिद है उसकी निर्माण प्रणाली विस्मयजनक है। मसजिद बादशाहोंके अरदासे बनाई गई थी। जुनार शहरमें मुसलमानोंके पूर्वकालीन कोठ अमलकी कई चिह्न विद्यमान हैं। आठ भिन्न भिन्न स्थानोंसे इस नगरका जल संग्रहीत होता था। कहा जाता है कि इन आठ स्थानोंसे किसी भी स्थानसे जुनारके दुर्गको खाई जलसे परिपूर्ण की जा सकती थी और किसी दूसरे स्थानसे सड़कके नीचेसे दुर्गमें जल प्रविष्ट कराया जाता था। जुनार शहरके दर्शनीय जुम्मामसजिद और बावनचोरी विशेष उल्लेखयोग्य है। बावनचोरीके नामसे एक अधिष्ठानपाताका सौरमार्ग उत्कीर्ण शिलालेख पाया जाता है।

जुनार पहले अच्छे नगरोंमें गिना जाता था। अभी यद्यपि दो एक मालोक मकान और सुन्दर उद्यान दिखे जाते हैं सही किन्तु इस शहरकी अवस्था शोचनीय और दरिद्र भावापन्न है। १८५७ ई०के गदरके बाद जुनार फिर अपने पूर्व सौन्दर्यसे भूषित नहीं हो सका।

यहांके मुसलमान अधिवासियोंमें सैयद पीरजादा और शेख ये दो तीनों श्रेणी प्रधान हैं, मुहर्रमके समय यह अत्यन्त उन्मत्त हो उठते थे। कागजी नामक मुसलमान सम्प्रदाय इस शहरमें कागज तैयार करता है।

जुनारके मुसलमान अत्यन्त कलहप्रिय और दुर्दान्त हैं। यहां मोपा और सुन्नी श्रेणीके मुसलमान वास करते हैं। दक्षिण प्रदेशमें जुनार इसलामधर्मका केन्द्रस्थल कह कर लिया जाता है। यहांके मुसलमान जो मत प्रचलित

करते हैं सभी मुसलमान उस मतको सादरसे ग्रहण करते हैं।

जुनारमें प्राचीन सिंहवंशके राजाओंको अनेक मुद्रा पाई गई है।

यहां १४० पर्वतगुहा हैं जो ६ विभागमें बटी हैं।

शहरसे दो क्रोश पूर्व आफिजाबाग नामक उद्यान है। यूरोपीय पण्डितोंका कथन है, कि हवसीसे आफिज नामकी उत्पत्ति हुई है। जुनार थोड़े समय तक अहमद-नगर राज्यकी राजधानी था, किन्तु असुविधा होनेके कारण अन्तमें अहमदनगरमें हो राजधानी स्थापित की गई।

जुनिद खाँ—बादशाह अकबरके राजत्वकालमें वङ्ग-देश दायुदखाँ नामक एक पठान-वंशीय नरपतिके शासनाधीन था। इनके विद्रोही होने पर बादशाहने इनको दमन करनेके लिए मुनीमखाँके अधीन एकदल सेना भेजी। दायुद खाँ कई एक बार युद्ध करनेके बाद रिन-केसरी नामक स्थानको भाग गये। सम्राट्के सेनापति राजा टोडरमलने उनका पीछा किया। कुछ दूर अग्रसर हो कर सुना कि, दायुदखाँ युद्धके लिए तैयार हुए हैं और जुनिदखाँ* बहुतसे अनुचरोंको ले कर दायुदकी सहायताके लिए अग्रसर हो रहे हैं।

मुनीमखाँके पास इस सम्वादके पहुंचते ही उन्होंने टोडरमलके सहायतार्थ एकदल सेना भेजी। राजा टोडरमलने आबुलकासिमके अधीन एक छोटी सेना जुनिदखाँकी गति रोकनेके लिए भेज दी। जुनिदखाँ बड़े साहसी और वीरपुरुष थे। सामान्य युद्धके बाद ही सम्राट्की सेना तितर बितर हो कर भाग गई। राजा टोडरमल अपने अधीनस्थ सारी सेनाको ले कर जुनिद खाँके विरुद्ध अग्रसर हुए। जुनिदके अधीनस्थ पठानोंने टोडरमलकी बहुतसी सेनाको देख भयभीत हो जङ्गलमें प्रवेश किया और दूसरे दिन जुनिदके साथ दायुदखाँके पास पहुंच गये। परन्तु दायुदखाँ कई एक युद्धोंमें परा-जित हो जानेसे डर गये और अन्तमें उन्होंने सम्राट्की वश्यता स्वीकार कर ली।

* टेलर-प्रमुख इतिहास-लेखकोंका कहना है कि, जुनिदखाँ दायुदखांके पुत्र थे, और ष्टुयर्ट साहबने अपने बंगालके इति-हासमें जुनिदखाको दायुदखांका भाई लिखा है।

मुनीमखाँकी मृत्युके बाद बादशाहने हुसैनकुलिखाँको बङ्गालका शासनकर्त्ता नियुक्त किया। इधर दायुदखाँ फिर विद्रोही हो गये।

राजमहलके पास जो युद्ध हुआ, उसमें दायुदखाँ कररानी बन्दी हुए। इस युद्धमें जुनिदखाँने विशेष साहसिकताका परिचय दिया था। किन्तु मुगल-सैन्यके द्वारा निक्षिप्त एक गोलके आघातसे इन्हें बड़ी भारी चोट लगी और उसीसे उनका १५७६ ई०में प्राणवियोग हुआ।

जुनून (फा० पु०) १ पागलपन।

जुन्हरी (हिं० स्त्री०) शस्यविशेष, ज्वार नामका एक अन्न। इसका वैज्ञानिक नाम Zea Mays है, अंग्रेजोमें इसको मेज वा इण्डियन कर्न (Maze, Indian Corn) तथा बङ्गालमें जनार, भुट्टा और जोनार (छोटानागपुर) कहते हैं। हिन्दीमें भी इसके कई नाम है, जैसे—मका, मकई, ज्वार, भुट्टा, बड़ी जुआर और कुकरी। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—यवनाल, योनाल, जूर्णाह्वय, देव-धान्य, जोन्ताला और बीजपुष्पिका। (हेम०)

जुन्हरीका पेड़ करीब ६।७ हाथ लम्बा होता है। इसकी पत्तियां लम्बी और करीब १½ इञ्च चौड़ी होती हैं। इसदण्ड ईखकी तरह ग्रन्थियुक्त होता है। इसके मध्यस्थलसे लगा कर अग्रभाग तक कुछ ग्रन्थियों पर फल लगा करते हैं। फल प्रायः आध हाथ लम्बे और सफेद होते हैं जिन पर सब्ज रंगका बारीक आवरण रहता है। फलका मूलदेश प्रायः १½ इञ्च मोटा और अग्रभाग पतला रहता है। आवरणको उठानेसे श्वेत वा पीताभ दाने दीख पड़ते हैं, जिन्हें लोग खाते हैं।

पृथिवी पर प्रायः सर्वत्र जुन्हरीकी खेती होती है। डि कण्डोल नामक एक उद्भिदतत्त्वविद्ने स्थिर किया है कि, जुन्हरी सबसे पहले अमेरिका महादेशके निउ ग्रानेडा नामक देशमें उत्पन्न हुई थी। किस समय वह भारतमें लाई गई, इसका निर्णय करना बहुत कठिन है। किसी किसी यूरोपीयके मतसे, १६वीं शताब्दीमें पोर्त्तगोज लाल मिर्च, गोल मिर्च, अनन्नास आदिके साथ जुन्हरी भी लाये थे। परन्तु सुश्रुतमें यवनाल शब्दका उल्लेख रहनेके कारण इस तरहका अनुमान

अमकूल मालूम पड़ता है। भारतवर्षमें जुन्हरीको बाहुल्यरूपसे होती आई है। क्या शीतप्रधान और क्या ग्रीष्मप्रधान सभी देशोंमें जुन्हरीकी खेती हुआ करती है। परन्तु ऋतु और स्थानके भेदसे उसके पेड़की लम्बाई और पत्ते आदिके परिमाणमें कुछ न्यूनाधिक्य हो जाता है। चीन, जापान आदि देशोंमें भी ईसाकी १६वीं शताब्दीके अन्तमें और यूरोपमें उससे कुछ पहले इसकी खेती शुरू हुई थी। जुन्हरी प्रधानतः दो प्रकारकी होती है—एक तो वह जो कच्ची खाई जाती है और दूसरी वह जिसे पका कर खाते हैं। यों तो भारतवर्षमें प्रायः सब जगह ज्वार पैदा होती है पर युक्तप्रान्त और पञ्जाबकी तरफ तो यह अधिक होती है। वहांके लोगोंका यही प्रधान खाद्य है।

जो जुन्हरी कच्ची खाई जाती है, उसको आगमें पहले आग पर रख कर जरा भूनना लेते हैं। जुन्हरीसे भात, आटा, लप्सी आदि बहुतसी चीजें बनती हैं। इससे दक्षिण अमेरिकामें चिचा नामक और पश्चिम अफ्रीकामें पिटो नामक एक प्रकारका मद्य बनता है। जुन्हरीके कच्चे पेड़ घोड़े आदिके खानेके काममें आते हैं। पके पेड़ोंके सूख जाने पर उनसे कई मकानोंकी छत छायी जाती है।

अमेरिकाके युक्त राज्यमें जुन्हरीका तेल बनता है और उस तेलसे एक तरहका साबुन भी बनाया जाता है।

चिकित्सा कार्यमें भी जुन्हरीका व्यवहार हुआ करता है। मुसलमान हकीमोंके मतसे यह प्रदाहनिवारक, मदावक और पुष्टिकर है। यूरोपीय चिकित्सकोंके मतानुसार जुन्हरीसे बना हुआ पोलेण्टा (Polenta) अर्थात् जुन्हरीकी लप्सी और मैज़ेना (Maizena) अर्थात् जुन्हरीका आटा बालकों और कमजोरोंके लिए बलकारक खाद्यरूपमें व्यवहृत हो सकता है। स्फोटक मूत्रामयके प्रदाह आदिमें इससे बहुत फायदा पहुंचता है।

पटाश नाइट्रेट नामक एक तरहका लवण भी जुन्हरीसे बनता है। अमरीका आदि देशोंमें जुन्हरीके सत्से आरोट व इसीके तरहका सुन्दर खाद्य बनता है।

जुन्हाई (हि० स्त्री०) १ चन्द्रिका, चांदनी। २ चन्द्रमा।

जुब्बल—पञ्जाब प्रान्तके सिमला जिलेका एक पहाड़ी राज्य। यह अक्षा० ३०° ४६´ तथा ३१° ८´ उ० और देशा० ७७° ३० एवं ७७° ४०´ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २११०२ है। पहले जुब्बल सिरमूरको कर देता था, परन्तु गोरखा युद्धके बाद स्वाधीन हो गया। राजा राज्यका प्रबन्ध ठीक तौर पर न चला सके, इसलिए १८३२ ई०में वृटिश गवर्मेण्टने उन्हें सिंहासनसे उतार दिया। राजाके अनुरोध करने पर १८४० ई०में उन्हें राज्य लौटा दिया गया। उनके पौत्र पद्मचन्द्रने बड़ी योग्यताके साथ १८७० ई०से १८९८ ई० तक राज्यका परिचालन किया था। १८९८ ई०में इनकी मृत्युके बाद ज्ञानचन्द राजगद्दी पर बैठे। राजा राठोर राजपूत हैं। इसमें चौरासी गांव लगते हैं। आय प्रायः १२२०००) रु० है।

जुबली (अ० स्त्री० Jubilee) धार्मिक उत्सव, महा जलसा।

जुबान (हि० स्त्री०) जबान देखो।

जुबानी (हि० वि०) जबानी देखो।

जुयो—सिन्धु प्रान्तके खैरपुर राज्यका नगर। यह अक्षा० २६° २२´ उ० और देशा० ६८° ३४´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १८२४ है। लोग प्रधानतः भेड़ बकरियोंका व्यवसाय करते हैं और मोटे कामीन का गलीचा बुनते हैं। यहां भूतपूर्व मीरका बनाया हुआ एक दुर्गका भग्नावशेष विद्यमान है।

जुमखा—बम्बई प्रदेशमें गुजरातके अन्तर्गत एक छोटा करद राज्य। इसका क्षेत्रफल एक वर्गमील है। यहांकी आय लगभग ११०० रु० है। बड़ोदाके गायकवाड़को कर देना पड़ता है।

जुमना (हि० पु०) चीनमें पाए जानेवाला एक तरोका। इसमें कटी हुई भाजियां और पेड़ पौधोंको सिरकेमें डाल कर बनाया जाता है और बहो ईंट राग मोतीमें मिला दी जाती है।

जुमरनन्दी—शब्दशास्त्रके एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने संक्षिप्तसारका परिष्कार तथा आशुसाधन नामका एक व्याकरण-ग्रन्थ रचा है।

जुमला (अ० वि०) १ सब कुल। (पु०) २ पूरा वाक्य

जुमा (फा० पु०) शुक्रवार ।

जुमामसजिद (अ० स्त्री०) १ मुसलमानोंको वह मसजिद जिसमें शुक्रवारके दिन दोपहरको नमाज पढ़ते हैं । २ दिल्ली शहरमें स्थित मुसलमानोंका एक प्रसिद्ध उपासनागृह । भारतवर्षमें मुसलमानोंको जितनी मसजिदें हैं, उन सबसे यह देखनेमें सुन्दर और बड़ी है । बादशाह शाहजहान्ने यह मसजिद दश लाख रुपये खर्च करके ६ वर्षमें बनवाई थी । इस मसजिदके सामने और तीनों तरफ ऊंचो प्रशस्त और सुदृश्य पत्थरसे बनी हुई तीन सोपानश्रेणियां हैं । इन तीनों सोपानश्रेणियों द्वारा मसजिदकी सुवृहत् प्राङ्गणमें पहुंच सकते हैं । प्राङ्गणके ठीक बीचमें एक पानीका हौज भी है । इसके पानीसे सब हाथ पैर धो कर मसजिदमें जाते हैं । प्राङ्गणसे पश्चिमको तरफ उपासनागृह (मसजिद) है और बाकी की तीनों दिशाएं सुदृश्य प्रकोष्ठमालासे अलंकृत हैं । उपासनागृह तीन प्रकाण्ड गुम्बजों और बहुतसे सुन्दर प्राकारोंसे सुशोभित है । इनमेंसे दो प्राकार तो बहुत बड़े और मनोहर हैं । इस स्थानसे उपासनाके लिए सबको बुलाया जाता है । मसजिदका भीतरी भाग बहुत बड़ा है, पर्वके दिन वा किसी उत्सवके दिन यहां असंख्य मुसलमान इकट्ठे होते हैं ।

३ विजयपुर नगरको एक मसजिद । दाक्षिणात्य भरमें यह मसजिद सबसे बड़ी है । कहा जाता है कि, १५३७ ई०में पहले अली आदिलशाहने इसे बनवाना शुरू किया था । परन्तु इनके परवर्त्ती राजा भी इसकी शिखर और अन्यान्य अंश नहीं बनवा सके । यह मसजिद चारों ओर ३० फुट ऊंची प्राचीर द्वारा वेष्टित और नगरने पूर्वकी तरफ अवस्थित है । इसका प्रधान तोरण द्वार पूर्व दिशामें है, किन्तु उत्तरका द्वार ही अधिक व्यवहृत होता है । १६८६ ई०में सम्राट् औरङ्गजेबने विजयनगरको जीत कर इसका कुछ अंश बनवाया था । इस मसजिदमें एक शिलालेख भी है, जिसके पढ़नेसे मालूम होता है कि, १६३६ ई०में सुलतान महम्मद आदिलशाहने इसके कुछ अंशमें नकासीका काम कराया था । इसके भीतर चार हजार आदमी बैठ सकते हैं ।

४ पूना नगरको एक प्रसिद्ध मसजिद, यह आदितवारो पेंठमें (१८३९ ई०में) प्रायः १५०००रु०का चन्दा इकट्ठा कर बनाई गई है । पीछे इसके अनेक अंश बढ़ाये भी गये हैं । इस मसजिदका उपासनागृह ६० फुट लंबा और तीस फुट चौड़ा है । पूनाके मुसलमानोंकी धार्मिक वा सामाजिक सभायें इसी मसजिदमें होती हैं ।

जुमिया मग—बङ्गालके अन्तर्गत चट्टग्रामके पर्वतों पर रहनेवाली मग जाति । इनको थिंशा वा थंशा कहते हैं । इनका और भी एक नाम थियोङ्गथा (अर्थात् नदीतनय) है । यह जाति पन्द्रह सम्प्रदायोंमें विभक्त है, उन विभागोंके अधिकांश नाम इनके वासस्थानके पासकी नदियोंके नामानुसार हुए हैं ।

ये सभी छोटे छोटे गांवोंमें रोजा अर्थात् ग्राममण्डलके अधीन रहते हैं । वह रोजा राजस्व आदि वसूल करता है । कर्णफूली नदीके दक्षिणस्थ जुमिया सङ्गौरवर्ती बन्दारवन निवासी बोह-मंग नामक एक सर्दारके अधीन हैं । उस नदीके उत्तरकी तरफ रहनेवाले मंगराजाको अपना अधिपति मानते हैं । नियमित राजस्वके अलावा वही उनके जुमिया सर्दारके आदेशानुसार वर्षमें तीन दिन बिना वेतन लिए उनका काम कर देते हैं । इसके सिवा सर्दारको खेतमें उत्पन्न सबसे पहले फल वा अनाज आदिकी भेंट दी जाती है । रोजागण सिर्फ कर वसूल करते हों, ऐसा नहीं, जुमिया समाजमें उनकी विशेष प्रतिष्ठा भी है ।

इनकी शारीरिक आकृति रखेंग (रसाङ्ग) मगोंके सदृश है । दोनोंमें ही मोङ्गलीय आकृतिका आभास पाया जाता है । इनकी गठन खर्व, मुखमण्डल प्रशस्त और चपटा, गण्डास्थि ऊँची, नासिका चपटी और आखें कुछ टेढ़ी हैं । इनकी दाढ़ी या मूँछें कुछ भी नहीं हैं ।

इनकी पोशाक आडम्बररहित है । पुरुष अपने अपने घरकी बुनी हुई धोती और एक कुर्ता पहनते हैं । धनी लोग रेशमी या बढ़िया सूती कपड़े पहनते हैं । ये सिर पर पगड़ी बांधते और जूता कम पहनते हैं । स्त्रियां छाती पर एक विलस्त चौड़ा कपड़ा बांधती और ऊपरसे एक अंगरखा पहनती हैं । स्त्री-पुरुष दोनों ही सोने-चांदीकी बालियां, खड़ुएं और चूड़ियां पहनते हैं । इसके सिवा स्त्रियां धतूरेके फूलकी आकृतिका कर्णफूल

पहनती है, जिसमें फूल लगाये रहती है। मूंगेका हार इनको विशेष आदरणीय वस्तु है।

कोई कोई कहते हैं, जुमियाओंमें दाम्पत्य प्रेम बहुत बढ़ा चढ़ा है। विवाहके बादसे स्वामी स्त्रीका कभी विच्छेद नहीं होता, फिर भी प्रेम और आग्रह ज्योंका त्यों रहता है।

ये मरे हुएका अग्निसंस्कार करते हैं। किसीके मरने पर आत्मीय व्यक्ति सब एकत्र हो कर कोई अन्त्येष्टिक्रियाका मन्त्र पढ़ते हैं और काष्ठादि ढोके या अरथी बनाते हैं। इन सब कार्योंमें प्रायः २४ घण्टे बीत जाते हैं। पीछे आत्मीय लोग शवको श्मशानमें ले जाते हैं। आगे आगे याजक और अन्यान्य व्यक्ति जाते हैं तथा पीछे आत्मीय लोग मद्य और नूतन वस्त्रादि ले चलते हैं। मृत व्यक्ति धनाढ्य हो तो उसकी अरथी गाड़ी पर जाती है। पुरुषोंको चिता तिहरी और स्त्रियों को चोहरी चिता लगाई जाती है। ये शवदाह होनेके बाद उसकी भस्मको इकट्ठी करके गाड़ देते हैं और उस जगह बांस गाड़ कर उसमें पताका लगा देते हैं।

इनकी बोलनेकी भाषा आराकानी है और लिखने के अक्षर ब्रह्मवासियोंके समान हैं।

ये हिन्दुओंकी दृष्टिमें बड़े नीच गिने जाते हैं। इन के खान पानका कोई ठीक नहीं—गाय, सूअर, मुरगी, हर एक तरहकी मछली, चूहे गिरगिट सांप अनेक प्रकारके कीड़े, इनमेंसे कोई छूटा नहीं—सब खाते हैं। स्त्री पुरुष दोनों ही शराब पीते हैं। इनमें भी जाति विभाग है, ये किसी मगधीतर या मामूली लोगके हुक्को छूते तक नहीं। ये लोग उच्च श्रेणीके हिन्दुओंको पवित्र मानते हैं और उनके घरका पानी पीते हैं।

जुमिया लोग प्रधानतः खेती-बारी कर जीविका निर्वाह करते हैं। इनका कृषिकार्य बहुत ही विलक्षण और पार्वत्यप्रदेशके योग्य है। (झूम देखो।) खेती बारीके सिवा इन्हें जङ्गली केले और अन्यान्य बहुत प्रकारके फल मूल मिल जाते हैं। ये लोग मसालेके सिवाय तमाकू को पीते भी खाते हैं। इनके सिवा प्रत्येक जुमिया जङ्गलोंसे लकड़ी ला कर भी कुछ पैदावारी कर लेते हैं। इनकी दशा साधारणतः अच्छी है। जङ्गलमें हिंस्र

को भयकष्ट नहीं होता क्योंकि इनमें हिम्मतिका नहीं है। बहुतसी व्यापारोपयोग इनके पास ला कर पण्य विनिमय करती हैं। जेपोंगका शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

जुमिन (फा॰ पु॰) एक प्रकारका घोड़ा।

जुरिका (फा॰ पु॰) कपड़े बुननेको लपेटनको बाईं ओरका पूरा। इसमें लपेटन लगी रहती है।

जुमेरात (अ॰ स्त्री॰) बृहस्पति गुरुवार, वीफै।

जुयाङ—(पतुआ) सिंहभूमके दक्षिणस्थ उड़ीसाके केंउझर और ढेंकानलवासी एक असभ्य वन्यजाति। इनकी भाषासे अनुमान होता है कि यह जाति कोलजातिकी ही कोई शाखा होगी। इनकी भाषा आर्यापोंकी भाषासे बहुत कुछ मिलती जुलती है पर इसमें बहुतसे उड़िया और अन्यान्य शब्दोंका प्रवेश हो गया।

इनका शरीरायतन और लोगोंकी तरह छोटा है। पुरुष अमूमन ५ फुट और स्त्रियां ४ फुट ८ इंचसे ज्यादा ऊंची नहीं हैं। इनका मुख चपटा, गण्डास्थि ऊंची, ललाट कम चौड़ा, नीचा और नासिकामें ऊंचा नासिकाके छिद्र बड़े मुखविवर बड़ा, ओठ स्थूल, चिबुक (ठोढ़ी) और नीचेकी दन्तपंक्ति छोटी है। इनके बाल घुंघराले और साधारणतः कपिशवर्ण (मटमैले) हैं, शरीरका रंग उड़ियाके कृषकों जैसा है। सिंहभूम वासी जो रमणियां जुयाङ रमणियोंकी अपेक्षा बहुत बड़ी हैं। वो जातिके पुरुष भी जुयाङ पुरुषकी अपेक्षा बड़े हैं। जुयाङोंके खर्व होनेका कारण यह हो सकता है कि वे बहुत पीढ़ियोंसे बोझ ढोनेका कार्य करते आये हैं। जो लोग भार ढोना नहीं चाहते।

जुयाङ रमणियां मुण्डा और लरिकोंकी तरह ललाट और नासिका पर तीन तीन गोदना गुदाती हैं। ये लरियाओंकी भांति कच्छप (टोमस'के कैमीट)-को देवता मानते हैं। इससे अनुमान होता है कि जुयाङ लोग लरिया मुण्डा आदिके समजातीय होंगे। परन्तु इनकी उत्पत्तिके विषयमें अभी तक कुछ मालूम नहीं हुआ।

जुयाङोंका कहना है कि केंउझर ही उनका आदिम वासस्थान था। एक दिन स्वर्गके देवोंने गुनगुना नामक स्थान पर उतर रहता मानव कुमारियोंके साथ विहार

इत्यादिका नैवेद्य प्रदान करते हैं।

ये मरे हुएका अग्नि संस्कार करते हैं। शवको दक्षिण सिरहानेसे चिता पर सुलाते हैं। चिताको भस्म नदीमें डाल आते हैं। कार्तिक मासमें पितृपुरुषोंको पिण्ड देते हैं।

इनके नाचमें कुछ जातीय विशेषता पायी जाती है। यह नाच कुछ कुछ संथाल और कोल जातिसे मिलता जुलता है। इनकी औरतें कबूतर, कुत्ते, बिल्ली, शकुनि, भालू आदि जानवरोंका अनुकरण कर अनेक प्रकारकी अङ्ग-भङ्गिसहित नाचती हैं। इस तरहका नाच अत्यन्त कौतुकजनक होता है, किन्तु कई एक दृश्य अश्लील भी होते हैं।

भुँइया लोग जुयाङ्गोंसे घृणा करते हैं। ये भुँइ-याओंके घरकी कच्ची वा पक्की रसोई खाते हैं, पर भुँइया इनका छुआ पानी तक नहीं पीते। फिलहाल ये हिन्दू देव-देवियोंकी पूजा करने लगे हैं, सम्भव है कुछ ही दिनोंमें ये जनसमाजमें अपेक्षाकृत ऊँचा स्थान पाने लगेंगे।

जुरअत (फा० स्त्री०) साहस, हिम्मत, जवहा।

जुरमाना (फा० पु०) अर्थदण्ड, धनदण्ड, वह दण्ड जिसके अनुसार अपराधीको कुछ धन देना पड़े।

जुराफा (अरबी)—रोमन्थक (राउँथ वा जुगाली करनेवाले) पशुओंमें साधारणतः २ श्रेणियाँ पाई जाती हैं। एक श्रेणी शृङ्गयुक्त और दूसरी श्रेणी शृङ्गहीन। जुराफा प्रथम श्रेणीका है। इस पशुके सींग केशाच्छादित चर्मसे आवृत और उनके अग्रभाग केशगुच्छमण्डित है। अफरीकामें यह बहुतायतसे देखनेमें आता है। इसको अरबी भाषामें जुर्राफा, जुर्राफ, जिराफ या जिरा-फत कहते हैं। इसके अवयव ऊँटके समान और रंग व्याघ्रके सदृश है। इसलिए कोई कोई यूरोपीय विद्वान् इसको कमेलोपार्ड (Camelopard) अर्थात् उष्ट्र-व्याघ्र कहा करते हैं।

भूमण्डल पर जितने प्रकारके पशु हैं, उनमें जुराफा ही सबसे ऊँचा है। इसका ऊपरका ओष्ठ नीचा नहीं होता, किन्तु केशोंसे आवृत और नासारन्ध्रके सामने कुछ उभरा हुआ रहता है। इसकी जीभ बड़ी विलक्षण होती है, यह जब चाहे उसे फैला और सकुचा सकता है। इसकी गर्दन ऊँटकी-सी लम्बी, शरीर छोटा पीछे-की टाँगे छोटी, पूँछ लम्बी तथा उसके छोर पर गायकी पूँछकी तरह बालोंका गुच्छा रहता है।

इस पशुके अवयव-संस्थान अन्यान्य पशुओंके समान नहीं होते। इसकी गर्दन बहुत ही लम्बी है। गर्दनके ऊपर शरीरसे बहुत ऊँचाई पर इसका मस्तक है। इसके ग्रीवादेशका सन्धिस्थल गलदेशसे बहुत ऊँचा है। अन्य अङ्गप्रत्यङ्ग पतले और लम्बे हैं। इसके मस्तकको खोपड़ी बहुत पतली है। इसके सींगोंकी बनावट बड़ी आश्चर्यजनक है। कुछ भिन्न भिन्न अस्थियोंसे गठित है। एक करोटी (खोपड़ीकी हड्डी) द्वारा ये हड्डियां कपालके बगलकी हड्डियोंसे संयुक्त है। क्या नर और क्या मादा दोनों प्रकारके जुराफाओंमें, ललाटकी हड्डी-के साथ उपर्युक्त प्रकारका एक अतिरिक्त अस्थि सम्बन्ध है। इस हड्डीको जड़में एक नया सींगकी तरह दीखता है। इसके मस्तक पर बहुतसी परते हैं, इसीलिए इसके मस्तकका पिछला हिस्सा कुछ ऊँचा होता है। यह मस्तकको पीछेकी ओर घुमा सकता है और ग्रीवाके साथ एक रेखामें भी रख सकता है। इसके मेरुदण्डकी त्रिकोण अस्थिके पास एक हड्डी है, जो पीछेसे मेरुदण्ड के साथ मिल कर ग्रीवादेशके मेरुदण्डसे जा मिली है। यह मस्तकके पिछले हिस्से तक विस्तृत है।

जीभके द्वारा यह दो काम करता है एक तो उससे आस्वाद लेता है और दूसरे हाथी सूंडसे जो काम करता है, उस कामको यह जीभसे करता है। इसकी जीभ काँटे उभरनेसे पहले खूब चिकनी रहती है। यह एक प्रकारके चमड़ेकी तहसे ढकी रहती है। इसलिए धूपमें इसकी जीभ पर किसी तरहके फफोले या छाले नहीं पड़ते। फैलानेसे इनकी जीभ १७ इञ्च तक बढ़ती है। कोई कोई कहते हैं कि, इसकी जीभके पास एक आधार या थैली है, जिसमें इसकी इच्छानुसार रक्त सञ्चित होता रहता है और इसीलिए यह बलप्रयोग करने पर जीभको सङ्कुचित या प्रसारित कर सकता है। किसी किसीका यह कहना है कि, इसकी जिह्वा एक रेखाके द्वारा लम्बाईकी ओर दो भागोंमें विभक्त है। बीचमें कुछ

थैलियाँ हैं, जिनमें वसन्तकी रसपूर्ण घासोंसे रस संचित होने पर जिराफका पाकतन्त्र प्रसारित होता है। रसाधारोंके भरे रहने पर जुराफाओंको जीभ उनकी इच्छानुसार बढ़ सकती है परन्तु उनके रिक्त हो जाने पर फिर सङ्कुचित हो जाती है। यह जीभसे नासारन्ध्रोंको साफ करता है। इसकी जीभ इतनी महीन हो जाती है कि, वह एक छोटे छिद्रमें आसानीसे घुस सकती है।

ऊंट आदि पशुओंके पाकस्थलोंमें जिस प्रकार जलाधार होता है, जुराफाके पाकस्थलोंमें वैसा कोई जलाधार नहीं होता। इसकी नाड़ी बकरी और मृग आदिकी नाड़ीकी तरह पेचीली होती है। और एक नाड़ी २ फुट २ इञ्च लम्बी है। इसका मूत्राशय गोल नहीं है। इसके नथनोंमें एक प्रकारका चमड़ा है जिससे यह इच्छानुसार नासारन्ध्रोंको बन्द कर सकता है। यह मरुप्रदेशमें रहता है। यहां आंधीके समय बालू उड़ती रहती है, उस समय इसके नासारन्ध्रोंमें जिससे बालू न घुस पावे, इसी लिए शायद जगदीश्वरने उस चर्मावरणको सृष्टि कर इसको नासारन्ध्र ढकनेकी शक्ति दी है। जुराफाकी आंखें बड़ी और इस तरह उभरी हुई होती हैं कि, जिससे वह अपने चारों तरफ क्या हो रहा है, यह जान सकता है। और क्या; यह माथेको बिना फेरे ही पीछेकी चीजोंको देख सकता है। बहुत सावधानीसे इसके पास जाना चाहिये; क्योंकि अकस्मात् इस पर आक्रमण होने या किसीके अनुसरण करने पर यह बड़ी जोरसे लातकी चोट मार कर अपनी रक्षा करता है। इसके खुर चिरे हुए हैं तथा रोमन्थक पशुओंके पैरोंके अग्रभागमें जो छोटी छोटी दो अङ्गुलियाँ जैसी गुठली रहती है, वह नहीं है।

तुर्कीभाषामें इसको जुरनापा, जुरनेवा अथवा जुरनापा कहते हैं।

पहले अफरीकाके सिवा और कहीं भी जुराफा नहीं मिलता था। जुलियस सीजरके शासनकालके पहले यह पशु इटली प्रदेशमें नहीं मिलता था।

काहारखाराज द्वारा बैरिन दूत जिस समय पारस्यके राजसभामें जा रहा था, उस समय बेबिलनमें जुम लाबक दूतके साथ उसकी मुलाकात हुई, उसके साथ एक जुराफा था। यूरोपीय दूतने उस जुराफाके विषयमें इस प्रकार वर्णन किया है—इसका शरीर घोड़ाका सा गर्दन खूब लम्बी और सामनेको टांगे पीछेकी टांगोंसे ऊंची हैं। इसके खुर मवेशीकी भांति होते हैं। इसकी ऊंचाई सामनेके पैरोंके खुरसे ले कर गर्दन तक १८ हाथ और गर्दनसे मस्तक तक १८ हाथ है। इसकी गर्दन मृगके समान पतली है। इसके सामने और पीछेके पैरोंकी उच्चतामें इतना अधिक तारतम्य है कि, अकस्मात् देख कर यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि यह बैठा है या खड़ा। इसके नितम्ब क्रमशः नीचे हैं। इस सोनेका सा और शरीर पर बड़ी बड़ी सफेद धारियाँ हैं। इसके जुनका नीचेका हिस्सा हिरनके समान। ललाट दीर्घ ऊंचा, मुख बड़ा और गोल तथा कान घोड़ेके समान होते हैं। इसकी नीमका अधिकांश वेगयुक्त होता है। गर्दन इतनी ऊंची होती है कि, यह बड़ी आसानीसे बड़े बड़े वृक्षोंकी ऊंची शाखाओंकी पत्तियों को खा सकता है। अन्यान्य पशु जिन जङ्गलों और मरुप्रदेशोंमें नहीं जाते, जुराफा उन स्थानोंमें छिप कर रहते हैं। आदमी देखते ही वे जोरसे भागते हैं।

शिकारी लोग इसे छोटी उम्रमें पकड़ सकते हैं, किन्तु बड़े होने पर इसका पकड़ना अत्यन्त दुष्कर है।

जुराफा बहुत ऊंचा होता है। कोई कोई तो इतना ऊंचा होता है कि एक आदमी घोड़े पर सवार हो कर उसके पेटके नीचेसे निकल सकता है। जुराफाके सींग हिरनके सींगोंके समान कठिन पदार्थ हैं, पर गठन एकसी नहीं है। बड़े जुराफाके ललाटके बीचमें एक गांठ होती है, जिसको देख कर ऐसा अनुमान होता है कि, शायद सींग निकलेगा।

यह पशु दौड़नेके समय लंगड़ा लंगड़ा कर नहीं चलता; बल्कि इतनी तेजीसे दौड़ता है कि, बहुत तेज घोड़ा भी हर समय इसका अनुसरण नहीं कर सकता। दौड़ते समय यह कभी साधारण गतिसे चलता और कभी कूद कूद कर चौकड़ी भरते हुए भागता है सामने के पैरोंको उठाते समय प्रत्येक बार गर्दनको पीछे ही और फेरता रहता है। जमीनसे घास खाते समय यह घोड़ेकी तरह एक घुटनेको कुछ टेढ़ा करता है और

छोटे छोटे पेड़ोंको डालियोंसे पत्तियां खाते समय सामनेके पैरको प्रायः २६ फुट पीछेको टांगोंकी ओर ले जाता है। अफ्रीकाके हटेनटट लोग इसके चमड़ेको खूब पसन्द करते हैं और इसीलिए वे ज़हरीले तीरोंसे इसका शिकार करते हैं। वे जुराफाके चमड़ेसे पानी वगैरह तरल पदार्थ रखनेका पात्र बनाते हैं।

प्रसिद्ध प्राणतत्त्ववित् ले भैलेन्ट (Le Vaillant) कहते हैं—जुराफाके वास्तविक सींग नहीं होते, इनके दोनों कानोंके बीच मस्तकके ऊर्द्ध भागमें दो मांसपेशियां क्रमशः बढ़ती हुई ७।८ इञ्च लम्बी हो जाती हैं। ये दोनों पेशियाँ परस्पर मिलती नहीं, उनका अग्रभाग कुछ गोल और बालोंसे आवृत होता है। लोग इन्हींको साधारणतः सींग कहते हैं। मादा जुराफा नरकी बराबर ऊंची नहीं होती। उक्त प्राणितत्त्वविद्का कहना है कि, नर जुराफा साधारणतः १५।१६ फुट और मादा जुराफा १३।१४ फुट ऊंचे होते हैं। कोई कोई भ्रमणकारी कहते हैं कि, नर और मादा जुराफा देखनेसे ही पहिचाने जा सकते हैं। नरका शरीर धूसरवर्ण और उस पर पिङ्गलवर्णकी धारियां होती हैं तथा मादाका शरीर धूसरवर्ण और ऊपर ताम्रवर्णकी धारियां रहती हैं। जुराफाके बच्चोंका रंग पहले पहल माताके समान और पीछे अवस्थाके अनुसार पिङ्गलवर्ण होता जाता है। पूर्वोक्त फरासीसी भ्रमणकारीका कहना है कि, जुराफा साधारणतः पेड़की पत्तियाँ खा कर जीवन धारण करते हैं; वे तुलसी जातीय वृक्षोंके पत्ते खूब पसन्दसे खाते हैं और जिस जगह उक्त प्रकारके पेड़ ज्यादा उपजते हैं, उसी प्रदेशमें रहते हैं। यह जानवर घास भी खाता है। यह रोमन्थन करते और सोते समय लेट जाता है, इसलिए इसकी छातीकी हड्डियां मजबूत तथा घुटनोंका चमड़ा कड़ा है। यह बहुत ही शान्त और भीत होता है। यह बहुत तेजीसे दौड़ता और लातकी चोटसे सिंहको भी परास्त कर सकता है। मि० पेन्नण्टा (M. Pennanta) कहते हैं—दूरसे देख कर इसको पहिचाना नहीं जा सकता। यह इस तरह खड़ा होता है कि, दूरसे एक पुराना वृक्ष जैसा दीखता है। शिकारी लोग दूरसे इसे पहिचान नहीं पाते, इसीलिए यह बहुत समय मनुष्योंके कवलसे बच जाते हैं।

मि० ओगिलवि (Mr. Ogilby)-ने रोमन्थक पशुओंको पांच भागोंमें विभक्त किया है। जैसे १-कमेलिडि (Camelidoe), २—करभिडि (Cervidoe), ३—मोसिडि (Moshidoe), ४—कप्रिडि (Capridæ) और ५—बोभिडि (Bovidae) उनका कहना है कि, ऊपर कहे हुए २य विभागसे कमिलोपार्ड (जुराफा) की उत्पत्ति है। इस जातिके पशुओंमें नर और मादा दोनोंके सींग होते हैं जो सीधे तथा चमड़ेसे ढके हुए, और दो भागोंमें विभक्त है।

सबसे पहले जुलियस सीजरके समय रोम देशमें जुराफा लाया गया था। इसके बहुत शताब्दी बाद डमस्कसके राजाने सम्राट् (२य) फ्रेडारिककी एक जुराफा भेजा था। १५वीं शताब्दीके अन्तमें यह पशु इंग्लैण्ड और फ्रांसमें पहिले पहल पहुंचा।

१८३६ ई०में लण्डनकी प्राणितत्त्व-समितिने ४ जुराफा खरीदे थे। इन जुराफाओंको मि० एम० थिबो (M. Thibaut) पकड़ कर लाये थे।

एम० थिबो अगस्त मासमें डंगोलामें जा कर अरबियोंके साथ जुराफाकी शिकार करनेको निकले। पहले दिन कर्डफनमें जा कर बहुत खोज करनेके बाद उन्होंने दो जुराफा देखे, पर उन्हें पकड़ न सके। अरबियोंने तेजीके साथ पीछा किया और वे मादा जुराफाको मार कर ले आये। दूसरे दिन सवेरे वे फिर शिकारको गये और उन्होंने एक जुराफाको बांध लिया। वे उसको पोस मनानेके लिए वहां ३।४ दिन तक ठहरे। इस समय एक अरबी आदमी जुराफाकी गर्दनमें रस्सी बांध कर उसे ले कर घूमा करता था। धीरे धीरे उसने पोस मान लिया और वह अपने आप आदमीके पास आने लगा। कभी कभी थिबो इसके मुंहमें उंगली डालते थे, इन लोगोंने और भी ४ जुराफा पकड़े थे, किन्तु १८३४ ई० के डिसेम्बर मासमें जाड़ेके मारे ५ मेंसे ४ जुराफा मर गये। सिर्फ एक ही बचा। इससे सन्तोष न होनेके कारण थिबोने बहुत परिश्रम और कष्ट सह कर और भी

जुराफा।

रमके समय ये बाल नहीं बनवाते और न आमिष भोजन ही करते हैं। उस मासमें ५वें, ६ठे और ७वें दिनके सिवा अन्य समस्त दिन इमामोंके स्मृति चिह्नका स्मरण किया करते हैं। पहले जुलाहे अन्य मुसलमानों की तरह काबिन अर्थात् काजीके सामने विवाहकी रेजिष्टरी न करते थे ; किन्तु अब कर निकले हैं। इनकी उपाधियाँ कारीगर, मण्डल और शिकदार हैं। प्रधान व्यक्तिको मातब्बर कहते हैं।

बिहार प्रान्तमें मुहर्रमके समय जुलाहोंकी स्त्रियाँ पान नहीं खातीं, बाल नहीं सम्हालतीं और न ललाट पर सिन्दूर वा बेंदी ही लगाती हैं। और तो क्या, वे इस समय पतिसहवास छोड़ कर विधवाओंकी तरह रहती हैं और मुहर्रमके ८वें दिन नीली साड़ी पहन बाल बखेर कर हुसेनके लिये विलाप करती हैं।

साधारण लोगोंका विश्वास है कि, जुलाहे बड़े मूढ़ वा निर्बोध होते हैं। बिहार आदि प्रदेशोंमें इनकी अक्ल बकरेकी अक्लके साथ तौली जाती है। वहांके रहनेवाले इनकी निर्बुद्धिताके विषयमें सैकड़ों किस्से कहा करते हैं। वे कहते हैं कि, ये चन्द्रालोकमें विभासित नीलपुष्पशोभित अमिना-चेतमें जलके भ्रमसे तैरा करते हैं। एक दिन एक जुलाहा मुल्लाके पास कुरान सुनते सुनते रो उठा। इस पर मुल्लाने खुश हो कर पूछा कि, "कौनसी बात तेरे हृदयमें लगी है ?" जुलाहेने उत्तर दिया—"कोई भी नहीं, आपकी हिलती हुई टाटीको देख कर मुझे अपनी मरी हुई प्यारी बकरीकी याद आ गई, इससे आंखोंमें आंसू भर आये।" बारह आदमियोंके साथ एक जुलाहा रहने पर, वह प्रत्येक बार गिननेमें अपनेको भूल कर अपनी मृत्यु हो गई, ऐसा समझता है। हलकी एक कील पाने पर जुलाहा सोचता है कि, खेती करनेका सामान तो करीब करीब इकट्ठा हो गया, अब खेती करनी चाहिये। एकदिन रातको एक जुलाहेने लंगर बिना उठाये ही नाव खेना शुरू कर दिया। सुबह उसने देखा तो नावको उसी स्थान पर पाया। इस पर उसने मीमांसा कर ली कि, जन्मभूमि उसको छोड़ न सकनेके कारण सेहवश उसके साथ चली आई है। आठ जुलाहे हों और नौ हुक्के हों, तो वे उस बचे हुए एक हुक्केके लिये मार पीट मचा देंगे। "आठ जुलाहे नौ हुक्का, उसी पर हुक्कमहुक्का।" किसी समय एक कौआ जुलाहेके लड़केके हाथसे रोटी छीन कर उसके छप्पर पर जा बैठा। जुलाहेने लड़केके हाथमें फिरसे रोटी देते समय पहले छप्परसे नसैनी हटा दी, जिससे कौआ छप्परसे उतरने न पावे ! ये अपनी बेवकूफीके कारण बहुत समय वृथा मार खाया करते हैं। किसी समय एक जुलाहा भेड़ोंकी लड़ाई देखनेको गया तो वहां उसीने एक चोट खाई।

"करघा छोड़ तमाशा जाय
नाहक चोट जुलाहा खाय" *

और भी एक किस्सा है—एक दैवज्ञने एक जुलाहेसे कह दिया—तेरे अदृष्टमें लिखा है कि, कुल्हाड़ीसे तेरी नाक कट जायगी। जुलाहा इस बातको सहजमें क्यों मानने चला ? वह कुल्हाड़ीको हाथमें ले कर कहने लगा—"यों करूंगा तो पैर कटेगा, यों करूंगा तो हाथ कटेगा और (नाक पर कुल्हाड़ी रख कर) यों करूंगा तो नहीं तब ना ‥ ‥" बात पूरी कहने भी न पाया कि, उसकी नाक कट गई।

एक प्रवचन है कि 'जुलाहा क्या जानें जौ काटना ?" इसका एक किस्सा भी है एक जुलाहा अपना कर्ज न चुका सका, इसलिये उसने महाजनकी जमीन जोत कर कर्ज चुकानेकी ठानी। महाजनने उसे जौ काटनेको खेतमें भेजा, पर वह मूर्ख जौ न काट कर उसको नुकाने लगा। और भी इनकी बेवकूफीको जाहिर करनेवाले बहुतसी कहावतें हैं। जैसे—१ "कौआ जाय बासकौं, जुलाहा जाय घासको।" २ "जुलाहेकी जूती सिपाहीकी जोय (स्त्री), धरी धरी पुरानी होय।" ३ "जुलाहा चुरावे नली नली, खुदा चुरावे एक बेरो।"

कहीं कहीं हिन्दू जुलाहे भी देखनेमें आते हैं, जिनको कोरी या कोली कहते हैं। परन्तु इनकी संख्या बहुत ही कम है। जुलाहा कहनेसे मुसलमान तांतीका ही बोध होता है।

२ निर्बोध, मूर्ख। ३ एक कीड़ा जो पानी पर तैरता है। ४ एक बरसाती कीड़ा।

* Behar Peasants' Life

कुनू—दक्षिण अफ्रीकाकी काफिरजातिकी एक शाखा। यह जाति नेटाल और उसके उत्तर-पूर्व प्रदेशमें रहती है। इनके मुखकी श्री निग्रो और यूरोपीय जातिके बीचकी है। इनके बाल निग्रो लोगोंके समान हैं, किन्तु अनति उच्च मुख और सामान्य श्मश्रु ओठापर कुछ कुछ यूरोपियोंके सदृश है।

इनकी प्रकृति अति भीषण है दलपतिके आदेश पाने पर ये नरहत्या, चोरी, लूट आदि किसी भी नृशंस कार्य करनेमें आगा पीछा नहीं करते। इतने पर भी ये काफ्रिजातिकी अन्यान्य शाखाओंसे शान्तिप्रिय हैं और खेतीबारी करना पसन्द करते हैं। साधारणतः कुनू लोग शान्त, अमायिक, सरल और प्रफुल्लचित्त होते हैं। ये कुछ कुछ आतिथेय और न्यायपर तो हैं पर साथ ही अत्यन्त लोभी और कृपण भी हैं।

ये प्रधानतः ४ शाखाओंमें विभक्त हैं,—आमाकुनू, आमाहूट, आमाम्याको और आमाटेम्बु। इनके बहुतसे छोटे छोटे दल उत्तर और दक्षिणकी ओर जा बसे हैं।

कुलूदेश—दक्षिण अफ्रिकाके नेटाल उपनिवेशके उत्तर पूर्वका एक प्रदेश। इस प्रदेशमें स्वाधीन कुलुओंका वास है। इसके पूर्व अर्थात् उपकूल विभागमें निम्नप्रान्तर और पश्चिममें प्रायः ४।० हजार फुट ऊंची मालभूमि है। अतो इन दो भागोंमें एक पर्वतश्रेणी विस्तृत है। उपकूलमें कहीं भी जङ्गल नहीं है, इसके चारों तरफ घास दीख पड़ती है। पोष्गलसिया नदी और डेलगोआ खाड़ीके मध्यका भूभाग समतल दलदल और अस्वास्थ्यकर है। इसके सिवा उपकूल विभागका अधिकांश नेटालकी नाईं स्वास्थ्यकर और उर्वरा है। ईख कपास, तथा गर्म देशोंके समस्त उत्पन्न फल मूलादि यहां उत्पन्न होते हैं। हाथी के दांत और गैंडाके सींग चमड़े आदि प्रधान वाणिज्य द्रव्य हैं। डेलगोआ खाड़ीमें जो नदियां गिरी हैं, उनमें वाणिज्यकी नाव बहुत दूर तक जाती आती हैं।

ईसाई मिसनरी इस देशमें बहुत दिनोंसे रहते आये हैं। इन्होंने यहांके कुलुओंको सभ्य हो गये हैं।

१८३५ ई०में बहुतसे ओलन्दाज कृषक इस देशमें आ कर बस गये थे। कुलुके राजाने धोखा दे कर बहुतोंको मार डाला। अन्तमें ओलन्दाजोंकी जीत हुई। वे अभी इस देशके कई स्थानोंमें बस गये हैं।

कुनूम (हि॰ पु॰) कुम्म देखो।

कुल्फ़ (फा॰ स्त्री॰) घुटनोंके सिरके बाद जो पीछेको ओर गिरे और बराबर कटे होते हैं कुल्फे।

कुल्फिकार अली—मस्त नामसे परिचित एक मुसलमान कवि। इन्होंने रयाजुल्-हमान् नामक एक तज़किरा लिखी है। इस पुस्तकमें कलकत्ते और बनारसके जितने कवि फारसी भाषामें कविता लिखते थे, उनकी जीवनी लिखी है। १८१४ ई०में बनारसमें इस पुस्तकका लिखना समाप्त हुआ था। इन्होंने और भी कई एक पुस्तकें लिखी हैं।

कुल्फिकार अलीखाँ—बन्दा प्रदेशके नवाब। ये बुन्देल खण्डके शासनकर्ता अली बहादुरके पुत्र थे। ये १८२० ई०में १० अगस्तको अपने भाई शमशेर बहादुरके सिंहासन पर बैठे थे। इनके बाद अली बहादुर खाँ नवाब हुए थे।

कुल्फिकारखाँ (अमीर उल्-उमरा)—१ आसदखाँके पुत्र। १६५७ ई०में (हिजरा १०६७) इनका जन्म हुआ था। इनका पूर्व नाम था "नसरतजङ्ग और उपाधि इतकाद खाँ। बादशाह आलमगीरके राज्य-कालमें ये भिन्न भिन्न पदों पर नियुक्त हुए थे। राजारामने जब तञ्जोरका जिञ्जी दुर्ग पर अधिकार कर लिया था, उस समय बादशाहने इनको (१६९१ ई०में) उक्त दुर्गको अवरोध करनेके लिए भेजा था। परन्तु ये पराजित हो कर भाग छोड़ आये। सम्राट औरङ्गजेबने अन्यान्य सेनापतिकी सहायतासे उक्त दुर्गको अधिकार करनेमें समर्थ हो कर पुन इनको वहां भेजा। इस बार इन्होंने दुर्ग अधिकार कर लिया; राजाराम परिवार सहित (१६९८ ई०में) भाग गये। १६९८ ई०में कुल्फिकारने राजा रामको परास्त कर सतारा-दुर्ग अधिकार कर लिया और वे इनका तक उनका पीछा किया। कुमार कामबक्स, दाउदखाँ पन्नी आदि सेनापति बहुत दिनों तक बन्धिकोंसे दुर्गको घेरे रहने पर भी कम पर कब्जा न कर सके थे किन्तु कुल्फिकार खाँने उसे जीत कर अपनी वीरताका परिचय दिया था। बादशाह औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद

जूंदन (हिं० पु०) बन्दर। मदारी लोग इस शब्दका व्यवहार करते हैं।

जूंदनी (हिं० स्त्री०) जूंदनका स्त्रीलिङ्ग।

जूंमुहाँ (हिं० वि०) जो देखनेमें भोला या सीधा-सादा किन्तु वास्तवमें बड़ा चालाक हो, ऊपरसे भोलापन दिखानेवाला शठ।

जूआ (हिं० पु०) इसको प्राकृत भाषामें जूय और पालि भाषामें जूतम् या जूतो कहते हैं। १ द्यूतक्रीड़ा। शर्त या बाजी लगा कर खेला जानेवाला खेल। कहा है—'जूआ बड़ा ख्वार जो इसमें हार न होती।"

जूआ खेल कर दाम उठाना अनिश्चित है, किन्तु इससे कोटिपति भी कोई दिनमें रास्तेके भिखारी हो जाते हैं—यह निश्चित है। इसमें ऐसी मोहिनी शक्ति है कि, जो एक बार इसमें फंस जाता है उसके प्रलोभनसे उसका निकलना ही मुश्किल हो जाता है। इसमें हार जाने पर भी लोग जीत होनेकी आशासे बार बार फंसते रहते हैं, और इसी तरह अपना सर्वनाश कर डालते हैं। इसके जरिये लोग नियमित और न्यायसङ्गत उपार्जनसे मुख मोड़ते तथा समाजमें तरह तरहकी विशृङ्खलाएं फैलाते हैं। इन सब कारणोंसे अंग्रेज सरकारने अंग्रेजी राज्यमें कानूनके जरिये सब तरहके जूआ खेलनेका निषेध कर दिया है। २ एक प्रकारका लम्बा और चिकना काठ। यह रथ या गाड़ीके आगेके भागमें बंधा रहता है और बैल इसमें बंधे रहकर गाड़ी खींचते हैं। ३ चक्की फिरानेकी, उसमें लगी हुई लकड़ी।

जूक (अंग्र० Juke पु०) तुलाराशि।

जूकल—हैदराबाद राज्यके अन्तर्गत विदर जिलाका एक तालुक। यह निजामाबाद जिलेके दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। क्षेत्रफल ८० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १६०५८ है। इसमें २२ गांव बसे हैं। मालगुजारी कोई ४६००० रु० है।

जूजू (हिं० पु०) एक कल्पित भयङ्कर जीव। लोग लड़कोंको डरानेके लिये इसका नाम लेते हैं, हौवा।

जूझ (हिं० स्त्री०) युद्ध लड़ाई झगड़ा।

जूझना (हिं० क्रि०) १ लड़ना। २ रणक्षेत्रमें प्राणत्याग करना, लड़ कर मर जाना।

जूट (सं० पु०) जूट संहतौ घञ् निपातनात् उत्वार्थमें साधु। १ जटास कतिपय जटाकी गांठ, जूड़ा। २ जटा लट। ३ शिवजटा। "भूतेशस्य भुजंगवल्लि वलय-स्रङ्नद्धजूटाजटा।" (मालतीमा०) ४ पटसनका बना कपड़ा। ५ पटसन, पाट।

जूटक (सं० क्ली०) जूट स्वार्थे कन्। केशबन्ध जटा, लट।

जूटिका (सं० स्त्री०) कर्पूरविशेष, एक कपूर।

जूठन (हिं० स्त्री०) १ उच्छिष्ट भोजन, वह भोजन जिसमेंसे कुछ अंश किसीने मुख लगा कर खाया हो। २ भुक्तपदार्थ, वह पदार्थ जिसका व्यवहार किसीने एक दो बार कर लिया हो।

जूठा (हिं० वि०) १ उच्छिष्ट, जिसमेंसे किसीने खाया हो। २ जो मुख अथवा किसी जूठे पदार्थसे छुआ गया हो। ३ शुद्ध, भोग करके अपवित्र किया हुआ पदार्थ। (पु०) ४ उच्छिष्ट भोजन, किसीके खानेका बचा हुआ भोजन।

जूठो (हिं० वि०) जूठा देखो।

जूड़ा (हिं० पु०) १ सिरके बालोंकी गांठ। २ चोटी, कलगी। ३ मुञ्ज आदिका पूला, मुठ्ठा। ४ पगड़ीके पीछेका भाग। ५ घास आदिको लपेट कर बनाई हुई मंडरी जिस पर पानीके घड़े रखे जाते हैं। ६ छोटे बच्चोंका एक रोग। इसमें गरदनके आसपास गांठ निकल आती है और सांस लेते समय कौआ दबा पड़ जाता है।

जूड़ी (हिं० स्त्री०) जाड़ा दे कर आनेवाला एक प्रकारका ज्वर। इस ज्वरके कई भेद हैं। कोई रोज रोज आता है, कोई दूसरे दिन, कोई तीसरे दिन और कोई चौथे दिन आता है। जो ज्वर रोज रोज आता है उसको जूड़ी, दूसरे दिनवालेको अंतरा, तीसरे दिनवालेको तिजरा और चौथे दिनवालेको चौथिया कहते हैं। मलेरियासे यह रोग पैदा होता है। २ जूड़ी।

जूत (सं० त्रि०) जू-क्त। १ गत, गया हुआ बीता हुआ। २ आक्रष्ट, खींचा हुआ। ३ दत्त दिया हुआ।

जूत (हिं० पु०) १ जूता। २ बड़ा जूता।

जूता (हिं० पु०) १ पादत्राण उपानह पनही, जोड़ा। पादुका देखो।

जूताखोर (हिं० वि०) १ जो जूता खाया करे। २ निर्लज्ज, वेहया।

जूति (सं० स्त्री०) जू-वेगे-क्तिन्। ऊतियूति जूतीति। पा ३।३।९७ इति निपातनात् दीर्घत्वं। १ वेग, तेजी। २ चित्तके दुःखिताभाव।

जूतिका (सं० स्त्री०) जूत्या कायति कै-क, ततष्टाप्। कर्पूरभेद, एक प्रकारका कपूर।

जूती (हिं० स्त्री०) १ स्त्रियोंका जूता। २ जूता।

जूतीकारी (हिं० स्त्री०) जूतोंकी मार।

जूतीखोर (हिं० वि०) १ जूतोंकी मार खानेवाला। २ निर्लज्ज, मार और गालीको परवाह न करनेवाला।

जूतीछुपाई (हिं० स्त्री०) विवाहमें एक रसम। इसमें जब वर कोहबरसे चलता है तो स्त्रियां वरका जूता छिपा देती हैं और जब तक जूतेके लिये वर कुछ नेग नहीं देता तब तक वे उसे नहीं देती हैं। जो नातेमें वधूकी बहिन होती हैं वे ही इस कार्यको करती हैं। २ जूतेको छिपाईमें दिये जानेका नेग।

जूतीपैजार (हिं० स्त्री०) १ जूतोंकी मार पोट, धौल धप्पड़। २ कलह, झगड़ा, लड़ाई दंगा।

जून (June)—यूरोपीय एक मासका नाम, अङ्गरेजी वर्षका ६ठा महीना जो ज्येष्ठ मासके लगभग पड़ता है। यह प्राचीन रोमका चौथा मास है। कोई कोई कहते हैं कि, लाटिन जुनियरिस् (Junioris) अर्थात् युवक शब्दसे इस नामकी उत्पत्ति है। और किसी किसीका यह कहना है कि, स्वर्गकी ईश्वरी जूनोदेवी हैं, उनके नामका रूपान्तर लाटिनमें जुनियास है और इस शब्दसे इस नामकी उत्पत्ति हुई है। यह मास ३० दिनमें खतम होता है। इस महीनेमें सूर्य कर्कट-राशिमें संक्रमित होते हैं। ज्येष्ठ मासके अन्त और आषाढ़ मासके प्रारम्भको ले कर जून मास चलता है।

जून—सिन्धु और शतद्रु नदीके मध्यवर्ती करक्षेत्रमें रहनेवाली एक जाति। उक्त प्रदेशमें भट्टी, शियाल, करल और काठि जातिका भी वास है। काठियावाड़के काठि और ये जून दोनों ही देखनेमें दीर्घाकृति और सुन्दर तथा लम्बी चोटी रखते हैं। ये ऊंट और गाय भैंस आदि बहुत पालते है।

जूनखेड़ा—राजपूतानेके अन्तर्गत माड़वार राज्यका एक प्राचीन नगर। यह नदोलासे कुछ पूर्व एक ऊंचे स्थानमें अवस्थित है। बहुत दूर तक फैले हुए भग्न ईंटेके स्तूप देखनेसे मालूम पड़ता है कि यह प्राचीनकालमें एक समृद्धिशाली नगर था। अभी भी बहुतसे मन्दिरोंका भग्नावशेष पड़ा है जिनमेंसे ४ प्रधान हैं। जूनखेड़ाका अर्थ जीर्णनगर है। कहा जाता है कि नदोला नगरके पहले यह नगर स्थापित हुआ था और वहांके अधिवासियोंने गिरस नदोला स्थापन किया। यहांके साधारण लोगोंका विश्वास है कि इससे पहले यहांके अधिवासी किसी एक योगीके कोपसे नष्ट हो गये और उन्हींके शापसे यह नगर भग्न अवस्थामें परिणत हो गया है।

जूना (हिं० पु०) १ बोझ आदि बांधनेकी रस्सी। २ उसकन।

जूनाखाँ तुगलक - तुगलकवंशीय एक बादशाह। महम्मदशाह तुगलक प्रथम देखो।

जूनागढ़ - १ बम्बई विभागमें गुजरातके अन्तर्गत काठियावाड़ पोलिटकल एजेन्सीका एक देशीय करद राज्य। यह अक्षा० २०° ४४´ से २१° ५३´ उ० और देशा० ७०° से ७२° पू० में अवस्थित है। यहां वृटिश गवर्मेण्टका एक उच्च कर्मचारी (Political agent) रहते हैं। इसका क्षेत्रफल ३२८४ वर्गमील है। इसके उत्तरमें बर्द और हालार, पूर्वमें गोहेलवाड़ और पश्चिम तथा दक्षिणमें अरब समुद्र है। भादर और सरस्वती नामका दो नदियां प्रधान है। यहां हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, पारसी, यहूदी आदि जातियां वास करती हैं। जूनागढ़में गिरनर नामकी एक ऊंची पर्वतश्रेणी है। जिसकी ऊंची चोटीका नाम गोरखनाथ है। यह चोटी समुद्रपृष्ठसे ३६६६ फुट ऊंची है। इस राज्यमें 'गिर' नामका एक विस्तीर्ण भूभाग है जिसका अधिकांश घने जङ्गलसे परिपूर्ण है। किसी किसी जगह छोटे छोटे पहाड़ हैं। फिर कोई कोई जगह इतनी नीची है कि वर्षाकालमें वह जलमग्न हो जाती है। इस राज्यकी मट्टी काली होती है; किन्तु कहीं कहीं दूसरे रङ्गकी भी पाई जाती है। यहां गृहस्थ लोग खेतके निकट तक खाड़ी काट कर जल जमा रखते हैं और समय आने पर आवश्यकतानुसार उसी जलसे

अथवा कुएँके जलसे मशक भर खेत सींचते हैं।

यहांकी आबहवा स्वास्थ्यजनक है; किन्तु गिरनार पहाड़के आसपासको छोड़ कर और सब जगह चैत्रमासके मध्यकालसे श्रावण मास तक बहुत गरमी पड़ती है।

इस राज्यमें बुखार और पेटका रोग अत्यन्त प्रबल है। यहां अनेक पत्थर पाये जाते और यहांके रहनेवाले प्रायः इन्हीं पत्थरोंसे अपना मकान आदि बनाते हैं।

इस राज्यमें रुई, घी और ईख बहुत उपजती है। वेरावल बन्दरसे रुई बम्बई भेजी जाती है। यहां चिकन और मोटा कपड़ा तैयार होता है।

देशीय वाणिज्यके लिये उपयुक्त विभागमें बहुतसे बन्दर हैं। जब पानी नहीं पड़ता तब इन बन्दरोंमें नाव आदि निरापदसे रखी जाती हैं। यहां जितने बन्दर हैं उनमेंसे वेरावल, नवबन्दर और सूत्रापाड़ा ये ही तीनों प्रधान हैं।

राज्यमें बहुतसी बड़ी बड़ी सड़कें हैं। जूनागढ़से जेतपुर, धोराजी तथा वेरावलको ओर जो सड़कें गई हैं, वे ही बड़ी और प्रधान हैं। शेष सड़कें उतनी बड़ी और प्रधान नहीं हैं। क्योंकि समयके सिवा और दूसरे समयमें जिस सड़कसे गाड़ी घोड़ा जाता है उस सड़क हो कर सामान्य सामान्य वाणिज्य पदार्थोंसे लदी हुई गाड़ी जाती है। जूनागढ़में १४ विद्यालय हैं।

जूनागढ़ बहुत प्राचीन स्थान है। यहां बहुतसी प्राचीन कीर्त्तियां पड़ी हैं। गिरनार पहाड़के ऊपर बहुतसे जैन मन्दिर हैं। वेरावल बन्दर और सोमनाथ तीर्थका भग्नमन्दिर विशेष विख्यात है।

काठियावाड़में बहुतसे छोटे छोटे देशी राज्य हैं जिनमेंसे जूनागढ़ ही प्रधान है। १८०७ ई०में जूनागढ़के शासनकर्त्ता और अङ्गरेजोंमें पहले पहल सन्धि हुई। यहांके राजा मुसलमान हैं, उनकी उपाधि 'नवाब' है। इनके सम्मानके लिये सरकारकी तरफसे ११ तोपें दागी जाती हैं।

१८८२ ई०में बहादुर खांजी जूनागढ़के सिंहासन पर बैठे। इनके ऊपरकी नवमीं पीढ़ीके शेरखां बाबी इस वंशके आदिपुरुष हैं। जूनागढ़के नवाब ब्रिटिश गवर्मेण्ट और बरोदाके गायकवाड़को वार्षिक (११६०१) रु० कर देते हैं। नवाबकी ११८२ सैन्य है। नवाबके मरने पर उनके बड़े लड़के ही राज्य पाते हैं। दत्तकपुत्र ग्रहण करनेका इन्हें अधिकार है। प्रजाका जीवन और मरण नवाबकी इच्छा पर निर्भर है। ये अङ्गरेज गवर्मेण्टके साथ सन्धिमें आबद्ध हैं, शर्त्त इस तरह है, कि उनके राज्यमें सतीदाहकी प्रथा न रहे और वर्षाकाल अथवा दूसरे किसी प्रकारकी विपत्तिके लिये जितने जहाज उनके बन्दरमें आवें उनके लिये किसी प्रकारका कर न लिया जाय।

मुसलमानोंके प्रभुत्वका पूर्व-निदर्शन अभी भी इस राज्यमें वर्त्तमान है। यद्यपि जूनागढ़के नवाब बरोदाके गायकवाड़ और ब्रिटिश गवर्मेण्टके अधीन हैं, तथापि वे काठियावाड़के छोटे छोटे राज्योंके शासनकर्त्ताओंसे जोर तलबी पाते हैं। यह जोर तलबी वे अपने कर्मचारियोंसे वसूल नहीं कराते हैं वरन् काठियावाड़स्थित बड़े लाटके अङ्गरेज प्रतिनिधि अपने कर्मचारियोंसे वसूल करा कर नवाबके पास भेज देते हैं।

पूर्वकालमें जूनागढ़ सुराष्ट्र या आनर्त्तके हिन्दुओंके अधीन था। चूड़ासमावंशके राजपूतोंने बहुत दिन तक इस प्रदेश पर राज्य किया था। १४७६ ई०में अहमदाबादके सुलतान महमूद बेगड़ाने इस प्रदेशको अधिकार किया। पश्चात् अकबरके राजत्व कालमें उनके गुजरातके प्रतिनिधिने इस राज्यको दिल्ली साम्राज्यके अन्तर्भुक्त कर लिया। खाँ आजम सम्राट् अकबरके गुजरातके शासनकर्त्ता नियुक्त होने पर जूनागढ़को अपने अधिकारमें लानेके लिये इच्छुक हुये। जूनागढ़का दुर्ग अत्यन्त प्रसिद्ध था। पहले कोई भी इस पर आक्रमण करनेका साहस नहीं करता था। खाँ आजमने इस पर आक्रमण किया सही, किन्तु दुर्गमें बहुतसा खाद्यद्रव्य जमा था, उन लोगोंको विश्वास था कि, दुर्ग अजेय है इसीसे दुर्गके रक्षकोंने पहले आक्रमणकारियोंकी अधीनता स्वीकार न की। उस समय दुर्गमें १०० तोपें थीं। प्रतिदिन अनेक बार वे गोला वर्षण करने लगीं। खाँ आजमने कोई दूसरा उपाय न देख कर एक ऊंचे स्थान पर बहुतसी तोपें भेजीं और वहींसे गोला वर्षण करनेकी आज्ञा दी। लगातार गोलाके बरसनेसे दुर्ग

वासियोंको बहुत डर हो गया। तब उन्होंने आत्मसमर्पण किया। उसी समयसे जूनागढ़ मुगलोंके अधिकारमें है।

१७३५ ई०के प्रारम्भमें गुजरातके मुगल-सम्राट्के प्रतिनिधि अपना अधिकार खोने लगे। इस समय उनके अधीनस्थ कई एक विश्वासघातक मन्त्रीने ममताशाली हो कर गुजरातसे इन्हें भगा दिया और वहां अपना अधिकार जमाया। उन्हींके उत्तराधिकारो "नवाब"की उपाधि धारण कर जूनागढ़में राज्य कर रहे हैं।

प्रवाद है कि पहले जब जूनागढ़में हिन्दूराज्य था उस समय गिरनारके उग्रसेनको कन्या और अरिष्टनेमिकी स्त्री राजीमतीका वासगृह दुर्गके निकट था। नेमिनाथने एक दिन अपने ज्ञातिभ्राता कृष्णका अत्यन्त प्रकाण्ड शंख बजाया था। कृष्णने उसके सामर्थ्यसे डर कर उसका शारीरिक बल हरण करनेके लिए नेमिनाथको १०० गोपियोंके साथ विवाह करने कहा और राजमतीके साथ नेमिनाथका विवाह सम्बन्ध स्थिर कर दिया। कहा जाता है कि 'आन' वंशीयगण पहले जूनागढ़में राज्य करते थे। इस वंशके रामराज निःसन्तान थे। नगरठटारके राजाके साथ इनकी बहिनका विवाह हुआ था, वह राजा सम्मा-वंशके थे। रामराजाने अपने भानजे रागारियाको अपना राज्य प्रदान किया। रागारियो जूनागढ़के चूड़ासमा वंशके राजाओंके आदिपुरुष थे।

रागारियोकी मृत्युके बाद दो राजाओंने जूनागढमें राज्य किया। बाद रायद्यास सिंहासन पर अभिषिक्त हुये। इस समय पट्टनके राजाने एक बार जूनागढ़ पर अधिकार किया। पट्टनकी राजकुमारी जब एक दिन सोमनाथके दर्शनके लिये आ रही थी। रायद्यासने उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो कर बलपूर्वक उससे विवाह करनेकी चेष्टा की। पट्टन राजने यह समाचार पा कर जूनागढ़के राजाको दमन करनेके लिये सेनाका एक दल भेजा।

रायद्यासने गिरनार दुर्गमें आश्रय लिया। पट्टनराजने बहुत दिन तक इस दुर्गको घेर रखा था सही किन्तु इसे अधिकारमें ला न सका। बाद भग्नमनोरथ हो कर वह अपनी राजधानीको लौट जानेका प्रयत्न करने लगा। इतनेमें विजल नामक एक चारण आ कर उसके साथ षड़यन्त्रमें शामिल हो गया। विजल पारितोषिकके लोभसे रायद्यासका मस्तक काट कर पट्टन राजको ला देनेके लिये राजी हुआ। वह चारण जानता था कि रायद्यास कर्णके समान दाता हैं। वास्तवमें प्रार्थना करते ही वे अपना सिर उसे अर्पण कर सकते थे। जिस दिन चारणने राजाके पास प्रस्थान किया उसके एक रात पहले सोरठको रानीने स्वप्नमें देखा कि एक मस्तकहीन मनुष्य उसके सामने खड़ा है। इसका शुभाशुभ पूछने पर ज्योतिषियोंने कहा कि शीघ्र ही उसका स्वामी अपना मस्तक काट कर किसीको उपहार देगा। रानीने भयभीत हो कर राजाको छिपा रखा। परन्तु उस विश्वासघातक विजलने राजाके गुप्त वासस्थानका पता लगा कर उनके निकट आया और कुछ गान करने लगा। राजाने रस्सी और लाठीके सहारे उसे अपने पास बुलाया। उस पापाशयने राजासे मस्तकके लिये प्रार्थना की और वे भी उसी समय उसे देनेके लिये राजी हो गये। सोरठ-रानीने उस पापी चारणका मत बदलनेके लिये बहुत अनुरोध किया किन्तु निष्फल हुआ। राजा भी अपनी प्रतिज्ञासे विचलित न हुए। उन्होंने अपना सिर काट कर उस चारणको देनेका आदेश किया। राजाको मृत्युके बाद पट्टनराजने सहजहीमें जूनागढ़ राज्य अपने अधिकारमें कर लिया और थानदारको वहांका प्रतिनिधि बना कर स्वराज्यको प्रस्थान किया।

राजा द्यासकी पहली स्त्री अपने स्वामीके साथ सती हो गईं। उनकी दूसरी स्त्री राजबाई अपने पुत्र नोघणके साथ वास्थली नामक स्थानमें रहती थीं। उन्होंने अपने पुत्रको देवैतबोदर नामक अलिदर-बोड़ीधरके किसी अहोरके घरमें छिपा रखा। देवैतके भाईसे यह रहस्य जान लेने पर थानदारने देवैतको बुला भेजा और नोघणको दे देनेके लिये कहा। इस पर देवैतने जवाब दिया, "मैं इस विषयमें कुछ भी नहीं जानता, अगर वह मेरे घरमें होगा तो मैं उसे (नोघण) आपके पास भेज देनेको लिख सकता हूँ।" देवैतका पत्र पा कर चारों ओरसे अहीरगण जुट कर युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हो गये। इधर नोघणको प्राणसे विलम्ब देख थानदार

बहुतसी सेना और देवैतबोदरको साथ ले अनहिल वोड़ियरमें आ पहुंचा। देवैतने देखा कि अबको इसे रोकनेसे कोई फल नहीं होगा। उन्होंने कोई दूसरा उपाय न देख अपने पुत्र उगको ला कर नायकदारके सामने उपस्थित किया। उग और नौघाण दोनों समान उम्रके थे। नरपिशाच नायकदारने उगको उसी समय मार गिराया। देवतुल्य उदारहृदयवाले बोदरने एक बिन्दु भी अश्रुपात न किया, वरन वे राजकुमार नौघाणको सुरक्षित समझ कर प्रफुल्ल हो गये। उन्होंने अपने जमाई अहीरोंको बुला कर सब बात कह सुनाई और जूनागढ़के सिंहासन पर नौघाणको अभिषिक्त करनेका परामर्श किया। बोदरकी कन्याके विवाह-उपलक्षमें नायकदारको निमन्त्रण दिया गया। उस रक्तपिपासु नरकुल कलङ्क नायकदारके आने पर गुप्तस्थानसे अहीरोंने निकल कर सैन्य सहित उसे मार डाला और इस तरह उन्होंने पापका उपयुक्त प्रतिफल प्रदान किया। ८७४ सम्वत्में नौघाण जूनागढ़के सिंहासन पर बैठे। जूनागढ़में राव चूड़ाचन्द नामके एक राजा थे। उन्हींके समय इस वंशके राजागण "चूड़ासमा" नामसे कहे जा रहे हैं। पूर्वोक्त रावगारि भी चूड़ासम वंशके दूसरे राजा थे।

चूड़ासमावंशके राजा समय समय पर आसपासके देशोंको जय करते थे सही, किन्तु साधारणतः जूनागढ़के अतिरिक्त और किसी दूसरे स्थानमें इनका अधिकार कायम न था।

जीर्णगढ़ (जूनागढ़) पुरन्दर (कानोला) आदि स्थानोंमें संस्कृत भाषामें लिखे हुए बहुतसे शिलालेख पाये जाते हैं।

मण्डोट-इतिहासमें इस स्थानको यवनदुर्ग (यवन-गढ़) बतलाया है। कहा जाता है कि कुमार यवनने कृष्णकी आज्ञासे गिरनारके समीप एक दुर्ग निर्माण किया था। वही दुर्ग उनके नामानुसार यवनगढ़ नामसे विख्यात हुआ। इस स्थानसे २० मील पश्चिममें प्राचीन वल्लभीपुरका ध्वंसावशेष पड़ा है। जूनागढ़की राजैनगढ़ गुहामें प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक हुएनसुयाङ्ग आये थे। उस समय यहां बौद्धोंके ३० मठ थे। जिनमें प्रायः १००० श्रमण रहते थे।

२ बम्बई विभागमें काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीके अन्तर्गत जूनागढ़ नामक करद राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २१ ३१´ उ० और देशा० ७०´ ३६ पू०में राजकोटसे ६० मील दक्षिण-पूर्व कोणमें अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः ३४२५१ है।

जूनागढ़ गिरनार और दातार पर्वतके नीचे अवस्थित है। यह भारतवर्षमें एक परम रमणीय नगर गिना जाता है। यहां दूसरे दूसरे स्थानोंकी अपेक्षा अधिक परिमाणमें पुरातत्त्व और ऐतिहासिक रहस्य आविष्कृत होता है।

उपरकोट अर्थात् प्राचीन दुर्गके अनेक स्थानोंमें बौद्धोंकी खोदी हुई कृत्रिम कन्दरायें देखी जाती हैं और दुर्गके चारों ओर सब स्थानोंमें भी बहुतसी कन्दरायें हैं। खोदी हुई गुहासे यह स्थान मधुचक्रमें परिणत हो गया है। जगह जगह प्राचीन गुहाका ध्वंसावशेष प्राचीन गौरवका परिचय देता है। राज्यका कुल आय २६ लाख रुपया है। १८ लाख मालगुजारी आती है। जूनागढ़ अपनी टकसालमें अपना ही रुपया ढालता है। १८ मुनिसपालिटियां हैं। खापराकोडियाकी गुहा अत्यन्त रमणीय है। देखनेहीसे मालूम पड़ता है कि यहां पहले दुतल्ला या तितल्ला एक मठ था। सम्पूर्ण रूपसे पहाड़ काट कर यह गुहा बनाई गई है, जो दुर्गकी रक्षाके लिये बहुत उपकारी है। पूर्व कालमें जब चूड़ासमा-वंशके राजा यहां राज्य करते थे, तब एक राजाकी कन्याकी दासियोंने उपरकोट पर दो सरोवर खोदे थे। यहां सुलतान महमूद बेगड़ाने एक मसजिद निर्माण की है। इस मसजिदके निकट १७ फुट लम्बी एक तोप रखी हुई है।

शत्रुओंने उपरकोटको कई बार घेरा और कई बार इसे अपने अधिकारमें किया था। उस विपत्तिके समय राजा इस स्थानको छोड़ कर गिरनारके ऊपरके दुर्गमें जा कर आश्रय लेते थे। गिरनार दुर्ग अत्यन्त दुरारोह है। इसीसे शत्रु भय इसे सहजहीमें जीत न सकते।

अभी यहां अस्पताल कालेज, पुस्तकालय, हाईस्कूल तथा राज्यकार्यके लिए बहुतसे मकान बने हैं।

अनेक गण्यमान्य प्रधान व्यक्तिके अच्छे अच्छे घर नगरकी शोभाको बढ़ा रहे हैं।

नबावके वास-भवनके सामने बहुतसी दूकानें हैं जिन्हें लोग महावतचक्र कहते हैं। यहां एक बड़ा मन्दिर है जिसके ऊपर एक घड़ी लगी हुई है।

प्राचीन जूनागढ़ अभी उपरकोट नामसे मशहूर है। इस नगरको गुजरातके सुलतान महमूदने स्थापन किया था। वर्तमान शहरका प्रकृत नाम मुस्तफाबाद है।

जूनागढ़से प्रायः एक मीलकी पूर्वकी ओर दामोदर कुण्ड नामक एक पवित्र तीर्थ है। एक छोटी निर्झरिणी के जलसे यह कुण्ड सदा भरा रहता है। इस कुण्डके उत्तर और दक्षिणकी ओर बहुतसी घाटें हैं। उत्तर घाटके समीप सम्भ्रान्त नागर ब्राह्मणोंका श्मशान-मन्दिर और दक्षिण घाटके समीप दामोदरजीका मन्दिर विद्यमान है। यह मन्दिर बहुत पुराना होने पर भी नयासा दीख पड़ता है। कहा जाता है कि वज्रनाभने इस मन्दिरको बनाया था। उन्होंने कृष्णके तीन पुरुषके बाद जन्मग्रहण किया था। इस मन्दिरको ओर जो प्रान्तर है उसकी लम्बाई १०८ फुट और चौड़ाई १२५ फुट है। यहां धर्मशाला और बलदेवजीका एक मन्दिर है। उस मन्दिरके ऊपरमें बहुतसी मूर्तियां खोदी हुई हैं। दामोदरजीके मन्दिरका प्राङ्गण रैवतीकुण्ड तक विस्तृत है। यहां दो प्राचीन शिलालेख और बहुतसी मूर्तियां देखी जाती हैं। इस स्थानमें प्यारावावा मठके समीप ८ कृत्रिम पर्वतगुहा हैं। ये कन्दरायें अभी घाससे ढकी हैं। इसके सिवा इस पर्वतके दक्षिणकी ओर सात कन्दरायें हैं। यहांकी जुमामसजिद, आदि चड़ी-बाव और नोघाणकूप विशेष प्रसिद्ध हैं। इस गुहाके ऊपरका मंजला ३७ फुट लम्बा और ३ फुट चौड़ा है। इसमें ६ खम्भे लगे हैं। और खम्भेके ऊपरमें बहुतसी मूर्तियां खोदी हुई हैं। इसके नीचेके मंजलेकी लम्बाई चौड़ाई ४४ फुट है। यह गुहा २८ फुट गहरी हैं। इसके ऊपरमें एक छेद है, उस छेदसे प्रकाश भीतर प्रविष्ट होता है। अहमद खांजीको मुकर्वा मुसलमान रीतिके अनुसार तरह तरहके भास्करकार्योंसे सुशोभित है। किन्तु इसका भास्करकार्य बहादुरखांजी और लाडली बीबीकी मुकर्वाके गठनसे भिन्न है।

मृगीकुण्ड या भवनाथ सरोवर तथा उसीके किनारे भवनाथका पुराना मन्दिर विद्यमान है। इस मन्दिरके चौकठमें एक प्राचीन लेख है। गिरनार पहाड़के नीचे वीरदेवीका मन्दिर भी विख्यात है।

जूनागढ़में ६ मील पश्चिममें गेड्रारबाव हैं। इसके नीचेका भाग दुर्गके का-सा है। अभी यह बाव नष्ट हो गया है।

जूनागढ़ और दामोदरकुण्डके मध्यवर्ती पहाड़ पर अशोक, स्कन्दगुप्त और रुद्रदामाके तीन प्राचीन शिलालेख उत्कीर्ण हैं। जूनागढ़के उत्तर माइवघेची नामक स्थानमें दातार नामकी एक छोटी गुहा है, जिसके समीप ३८ फुट लम्बी एक मसजिद है। इसके द्वारके भास्कर-कार्य तथा खम्भेकी आकृतिकी ओर दृष्टि डालनेसे मालूम पड़ता है कि पहले यहां महादेवका एक मन्दिर था। माइघेची स्थानके निकट खांप्रा कोडियाकी पांच गुहाएं हैं जो दूसरी दूसरी गुहासे मिली हुई हैं। खांप्रा कोडिया गुहाके विषयमें पहले ही लिखा जा चुका है। इस गुहामें ५८ स्तम्भ लगे हैं और स्तम्भोंके सामने सिंह प्रभृति पशुओंकी मूर्तियां खोदी हुई हैं। तीसरी गुहाकी दीवार पर फारसीका शिलालेख है।

वामनस्थली या वान्थलीमें सूर्यकुण्ड है। जूनागढ़ तथा इसके आसपासके अधिवासी हर एक पर्वको इस सूर्यकुण्डमें स्नान करने आते हैं। कुण्डको लम्बाई और चौड़ाई ३२ फुट है।

ऊपरमें जिस जुमामसजिदके विषयमें लिखा गया है, वह पहले हिन्दुओंका एक मन्दिर था और कहा जाता है कि यह राजा बलिका सभाभवन था। इसका अधिकांश मुसलमानोंने छिन्न भिन्न कर इसे मसजिदमें परिणत कर लिया है। इस मसजिदके दक्षिण भागमें एक अन्धकारमय कक्ष है। उस कक्षके एक स्तम्भमें १४०८ सम्वत्का खुदा हुआ एक संस्कृत शिलालेख है।

जूनागढ़के मान्ग्रोल नामक नगरमें भी एक जुमा मसजिद है। यह मकान पहले पहल १२०८ सम्वत्में जेठवाके राजाओंने बनवाया था। बाद १३६४ ई०में समसखांने उसे मसजिदमें परिणत किया। यहांके एक

प्राचीन देवमन्दिरने भी जामकी मसजिद नाम धारण किया है। इस मसजिदमें १४१२ सम्वत्का एक उत्कीर्ण शिलालेख है। देवपाड़ और जगाके समीप गुप्तप्रयाग, ब्रह्मगया, रुद्रगया और विष्णुगया प्रभृति कई एक तीर्थ हैं।

तुलसीश्यामसे दो मील पूर्व भीमचास नामकी एक खाई है। १२फुट ऊँचे स्थानसे जमीरो नदीका जल इस खाईमें गिरता है। कहा जाता है कि एक दिन भीमकी माता कुन्तीदेवीने प्याससे व्याकुल हो कर भीम से जल लानेको कहा। भीमने इसके जमीन छेद कर यथेष्ट जल बाहर निकाला। इसी कारण इस खाईका नाम भीमचास पड़ा है। इसके निकट कुम्भीर नामक एक मन्दिर विद्यमान है। भूतापाड़ा ग्रामके भरपूर कुण्डमें अनेक यात्री पर्वके उपलक्षमें स्नान करनेको आते हैं। इस कुण्डसे थोड़ी दूर पर एक सूर्यका मन्दिर है। इस मन्दिरके द्वार पर एक उत्कीर्ण शिलालेख है।

चक्रतीर्थ (विष्णुगया)में एक प्रस्तर लिपि पाई जाती है। यह लिपि बालबोध अक्षरमें लिखी है। जूनागढ़के पासका गिरनार पर्वत पहले उज्जयन्त नामसे विख्यात था। उज्जयन्त देखो। गिरनार पहाड़के ३०००फुट ऊँचे स्थान पर बहुतसे प्राचीन जैनमन्दिर हैं।

गिरनारके भवनाथ महादेवके निकट दो छोटी नदियां प्रवाहित हैं, जिनमेंसे एकका नाम सोनारेखा है। इस स्थानके निकट एक प्राचीन बांधकी रेखा देखी जाती है। यह बांध दामोदरकुण्डके समीप मुसलमान फकीर जमालकी मसजिदके ठीक विपरीत और पड़ता है। रुद्रदामाका जो उत्कीर्ण शिलालेख पाया गया है उसमें लिखा है, कि यह बांध राजा रुद्रदामाके राजत्व कालके ७२वें वर्ष टूट फूट गया था। किन्तु कोई कोई प्रत्नतत्त्ववित् रुद्रदामाके राजत्वकालमें यह बांध था इसके विषयमें सन्देह प्रगट करते हैं। उनका कहना है, कि यह बांध रुद्रदामाके बाद बनाया गया है और उत्कीर्ण शिलालेखमें जो समय वर्णित है, वह चष्टन मुद्राका प्रचारकाल है।

पुष्पगुप्तने गिरनार पहाड़के नीचे सुदर्शन नामका एक सरोवर खुदवाया था। एकदिन अकस्मात् वृष्टि के आनेसे इसका जल इतना बढ़ गया था कि उसकी धारसे एक बांधका बहुत भाग टूट फूट गया था। जूनागढ़में सुदर्शन कुण्डका नाम अभी विलुप्त हो गया है।

जनापाडर—बम्बई प्रान्तकी काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक क्षुद्र राज्य।

जुनियर (अं० वि०=Junior) वयःक्रममें पिछला, छोटा जो पीछेका हो।

जुन्निर—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत पूना और नासिक नगरके बीचका एक नगर। इसके समीप बहुतसे बौद्ध मठ और गुफायें हैं जो देखनेमें बहुत अच्छा है।

जूनोना—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत चान्दा जिलेका एक प्राचीन ग्राम। यह अक्षा० १९.५५ उ० और देशा० ७९. २१ पू०में बल्लालपुरसे ६ मील उत्तरमें अवस्थित है। मालूम होता है जब बल्लालपुरमें चान्दाके गोंड़की राजधानी थी तब इसकी भाग्य जूनोना सहुन था। इस ग्राममें एक पुराने तालाबके किनारे प्राचीन प्रासादका भग्नावशेष पड़ा है। इसके बगलहीमें ४ मील लम्बा एक प्राचीरका भग्नावशेष है। किसी समय इस तालाबमें बहुतसे कम के नाले जमीनके भीतरसे मिले थे।

जूप (हिं० पु०) १ द्यूत, जूआ। २ विवाहमें होनेवाली एक रीति। इसमें वर और वधू परस्पर जूआ खेलते हैं। इसको पासा भी कहते हैं।

जूभा—मध्यप्रदेशके छोटानागपुर विभागमें सरगुजा राज्यके अन्तर्गत एक परित्यक्त दुर्ग। यह अक्षा० २१ ३१ उ० और देशा० ८३ २६ पू०में मानपुरा ग्रामसे लग भग २ मील दक्षिण-पूर्व एक पहाड़के ऊपर अवस्थित है। दुर्गके नीचे एक गहरी खाई है। यहांके जङ्गल में जगह जगह पुराने मन्दिरोंका भग्नावशेष देखनेमें आता है। खंडहरोंके ऊपर बहुतसे वृक्ष लगे हैं। मन्दिरमें अनेक प्रकारकी खोदी हुई मूर्तियां और लिङ्ग प्रतिष्ठित थे।

जूम—बङ्गालके अन्तर्गत चट्टग्रामके पार्वत्य प्रदेशका एक कृषिकार्य। त्रिपुरा भी पार्वत्य जाति प्रधानतः इस प्रकारका कृषिकार्य करती हैं उन सबको 'जूमिया' कहते हैं तथा मध्यप्रदेश और छोटानागपुर आदि स्थानों

में 'पोड़ा' और 'दाहन' वगैरह कहते हैं। पार्वत्य प्रदेशोंमें प्रायः सभी जाति इसी प्रणालीसे खेती करते हैं।

ग्रीष्मके प्रारम्भमें पर्वतके पासका कोई एक जङ्गल चुन लिया जाता है। फिर उसे काट कर कुछ दिन सुखाया जाता है। सूख जाने पर उसमें आग लगा दी जाती है, जिससे बड़े बड़े पेड़ोंके सिवा सब कुछ जल कर भस्म हो जाता है और तो क्या, जमीन भी ३।४ अङ्गुल नीचे तक जल जाती है। भस्मादि वहीं पड़ी रहती है। ऐसा करनेसे उस दग्ध भूमिकी उर्वरता बहुत बढ़ जाती है, तिस पर भी यदि बाँसका जङ्गल हो तो कहना ही क्या है। कभी कभी इस आगसे ग्राम आदि भी जल जाते हैं।

जङ्गल जल चुकने पर अवशिष्ट अर्द्धदग्ध काष्ठादिको हटाकर उससे विराम लगाया जाता है। इसके बाद किसान(वा जुमिया) लोग गाँवमें जाकर वर्षाकी बाट देखते रहते हैं और जब आकाशमें घने बादल दिखलाई देते हैं तब स्त्री पुरुषोंके साथ खेतमें हाजिर होते हैं। हर एकके हाथमें एक एक खुरपी या दाँ[illegible] तथा कमरसे धान, बाजरा, कपास, लौकिया, कुम्हड़ा, तरबूज आदिके बीज बंधे रहते हैं, जमीनमें हल जातनेकी जरूरत नहीं और न कुदाली चलानेकी। खुरपासे ६।७ अंगुल गहरे गड़हे करके उनमें बीज डाल कर मट्टी ढक देनेसे ही काम चल जाता है। इसके बाद ही यदि एक बार वर्षा हो जाय, तो बहुत ही जल्द पेड़ उपज आते हैं। यह कहना फिजूल है कि यदि अच्छी तरह फसल हो तो औरोंसे वे दूना तिगुना लाभ उठाते हैं।

बीजोंके अङ्कुरित होते ही जुमिया लोग घर छोड़ खेतोंके पास झोंपड़ी बना कर रहते हैं और जंगली जानवरोंके उपद्रवोंसे खेतकी रक्षा करते हैं। सबसे पहले श्रावणमासमें बाजरा काटा जाता है। इसके बाद तरह तरहकी शस्य पैदा होती है और अन्तमें धान तथा और और अनाज पकते हैं। कार्तिक मासमें कपास होती है। इस खेतीसे १२ बीघा जमीनमें ४५ मन धान, १२ मन कपास, तथा बाजरा, तरकारी आदिकी पैदावार होती है। जूम खेत साधारणतः बहुतसे मिले हुए रहते हैं। फिलहाल गवर्णमेण्टका ध्यान जङ्गलोंकी उन्नतिकी तरफ गया है, इसलिए यह प्रथा अब प्रायः उठ गई है।

जूरगढ़—बरारप्रदेशके अन्तर्गत बुलडाना जिलेका एक प्राचीन ग्राम। यह चिकनीके निकट अवस्थित है। यहां एक हेमाड़पन्थी मन्दिर विद्यमान है।

जूरा (हिं॰ पु॰) जूड़ा देखो।

जूरी (हिं॰ स्त्री॰) १ घास, पत्तों या टहनियोंका एकमें बंधा हुआ छोटा पूला, जुट्टी। २ एक प्रकारका पकवान। यह पोधीके नये बंधे हुए कल्लोंको गोले बेसनमें लपेट घीमें तल कर बनाया जाता है। ३ गुजरात कराची आदिके खारे दलदलमें होनेवाला एक तरहका झाड़ वा पौधा। इससे खार बनता है। ४ सूरन वगैरहके नये कल्ले जो बंधे होते हैं।

जूरी - (अंग्रेजी Jury, लाटिन 'जुरेटा' Jurata, अर्थात् शपथ शब्दसे जूरीकी शब्दकी उत्पत्ति हुई है।) वह पंच जो अदालतमें जजके साथ बैठ कर मुकदमा फैसलेमें सहायता करते हैं। जूरी कहनेसे, अभियोग सम्बन्धी किसी विषयकी सत्यताकी खोज करने अथवा किसी विषयकी मीमांसा करनेकी जिनकी सामर्थ्य है और जिन्होंने अपने कर्तव्यको न्यायपूर्वक पालनेकी प्रतिज्ञा (शपथ) की है, ऐसे निर्दिष्ट संख्यक कुछ व्यक्तियोंका बोध होता है।

विचारकार्यमें जूरी (सभ्य) विचारकके सहायक स्वरूप हैं। विचारक सम्पूर्ण विषयकी खोज न कर सकनेके कारण सम्भव है अन्यान्य फैसला कर दे। वादी प्रतिवादीकी पूरी बात पर लक्ष्य न रख सकनेके कारण मुमकिन है कि मुकदमाके सम्पूर्ण विषयकी आलोचना न कर सकें; सम्भव है कभी कभी विशेष कारणवशतः इच्छापूर्वक अन्याय विचार कर दें। इसलिए जिससे ये सब दोष न होने पावें और विचारक बारीकीसे विचार कर सकें, जूरी उनकी सहायता करते हैं।

इंगलैण्डमें पहिले पहल किस समय जूरी-प्रथा प्रवर्त्तित हुई, इसका पता लगाना दुःसाध्य है। कोई कोई कहते हैं—आंग्लो-साक्सनोंके (Anglo-saxon) समयसे यह प्रथा प्रारम्भ हुई है। और किसी

जिनोंका यह कहना है कि नर्मनोंने इंगलैण्डमें इस विचार-प्रथाकी सृष्टि की थी। कुछ भी हो दूसरे हेनरीके शासनकालसे पहले इंगलैण्डमें जूरी विचारप्रथा सम्पूर्णरूपसे और सर्वाङ्गीनरूपसे प्रचलित नहीं हुई। शुरूमें जूरीके विचारके जरिये प्रधान अभियोगका तथ्य निर्धारित होता था और सातवें हेनरीके शासनकाल तक जूरीका विचार साक्षी (गवाही) के विचारका नामान्तरस्वरूप था।

अभियोग सुननेसे पहले जूरियोंको शपथ या प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। सातवें हेनरीके समय तक जूरी सत्यवचन कहनेकी शपथ करते थे किन्तु साक्षीके अनुसार उचित अभिमत (Verdict) प्रकट करेंगे, ऐसे किसी शासनका उल्लेख नहीं पाते थे। विचारालयमें जूरी प्रथा प्रवर्त्तित होनेके बहुत पहलेसे ही राज्यकार्य सम्बन्धी किसी विशेष अनुसन्धानके लिए जूरी प्रथा प्रचलित थी। आजकल दीवानी और फौजदारी दोनों तरहके मुकदमोंमें जूरी बैठाई जाती है। प्रत्येक जूरीमें १२ सभ्य चुने जाते हैं और सभीको साक्षीके अनुसार मुकदमाके तथ्य और मर्मको प्रकट करेंगे, ऐसी शपथ उठानी पड़ती है। साधारण विचारालयमें तीन प्रकारकी जूरी बैठती है जैसे—ग्राण्ड (Grand) अर्थात् प्रधान जूरी, पिटी (Petty) अर्थात् छोटी जूरी (इसको Co m non अर्थात् साधारण जूरी भी कहते हैं) और स्पेशल (Special) अर्थात् खास जूरी। साधारणतः फौजदारी मुकदमाके पेशकामें प्रधान जूरी संगठित की जाती है। २१ वर्षसे कम उमरका कोई भी व्यक्ति जूरीके आसन पर नहीं बैठ सकता और ६० वर्षसे ज्यादा उमरवालेको भी साधारणतः जूरीमें नहीं बैठाया जाता।

इंग्लैण्डमें जिसकी वार्षिक १०) रु० आयकी कोई सम्पत्ति हो अथवा जिसके पास २०) रु० आयकी किसी सम्पत्तिके अधिकारका २१ वर्ष या उससे अधिक समय तकके लिए पट्टा लिया हो, अथवा जिसका रहनेका मकान १५ या उससे अधिक जानालाविशिष्ट (खिड़कीदार) हो वे ही जूरीके सभ्य रूपमें चुने जा सकते हैं। लन्दन नगरमें मकान दूकान और व्यवसाय सम्बन्धी व्यवसायिकारी और जिसकी वार्षिक आय १०००) रु० हो ऐसा कोई भी व्यक्ति जूरीका सभ्य हो सकता है। विचारक पादरी, रोमन कैथलिक सम्प्रदायके याजक वकील, औषधविक्रेता नौसेनानी, स्थल सेनाके कर्मचारी और पुलिसके सिपाही (कानष्टेबिल) आदि जूरीके सभ्य नहीं चुने जा सकते।

प्रत्येक गिर्जाके अध्यक्ष उस जिलाके अन्तर्भुक्त जूरी होनेके योग्य व्यक्तियोंके नामोंकी एक एक सूची बना कर उसे सेप्टेम्बर (भाद्र-आश्विन) मासके प्रथम तीन रविवारको अपने अपने गिर्जाके दरवाजों पर लटका देते हैं। इस सूचीमें किसीको कुछ आपत्ति होने पर शान्ति रक्षक विचारपति (Justice of peace) उसकी मीमांसा करके सूची पर अपने हस्ताक्षर कर देते हैं। सेप्टेम्बर मासके शेष सप्ताहमें यह कार्य समाप्त हो जाया करता है।

सूची पर हस्ताक्षर हो जानेके बाद कर्मचारियों द्वारा उसके जरिये शरीफ (Sheriff) के कर्मचारीके पास भेजते हैं और निर्दिष्ट पुस्तकमें लिखे जाने बाद वह शरीफके पास पहुंचती है। निर्दिष्ट पुस्तकमें जिन के नाम लिखे जाते हैं, दूसरे वर्षसे वे ही जूरी नियुक्त होते हैं। १ली जनवरीसे इसी सूचीके अनुसार कार्य होता है।

जो उच्चपदस्थ व्यक्ति और सम्भ्रान्त व्यवसायी हैं उनके नाम एक दूसरी सूचीमें लिखे जाते हैं। शरीफ इस सूचीसे छांट छांट कर खास जूरी (Special Jury) की तालिका बनाते हैं। जब जूरीकी आवश्यकता होती है, तब विचारक शरीफको खबर देते हैं, शरीफ जूरियों को उपस्थित होनेके लिए संवाद देते हैं। शरीफ प्रत्येक जूरीके पास अपनी मुहर सहित पत्र लिख कर डाकके जरिये (जूरी-बुकमें जो पता लिखा रहता है, उस पतेसे) भेजते हैं। मुकदमेके पेश होनेसे ७ दिन पहले शरीफके कार्यालयमें जा कर जूरियोंकी सूची देखी जा सकती है और जिनके नाम उसमें दिये गये हैं किसी कारणसे वादी प्रतिवादी उनसे सम्मत न हों तो कर सकते हैं। यदि उपयुक्त कारण हो तो जिन जूरियोंके लिए उनकी सम्मति नहीं है, उनके नाम काट कर

दूसरे नाम चुने जा सकते हैं। जब मुकदमेका विचार प्रारम्भ होता है, उस समय शरीफ जूरियोंकी सूची विचारकके पास भेज देते हैं। प्रायः साधारण जूरियोंकी सूची ही बना करती है, परन्तु वादी या प्रतिवादी खास जूरीके लिए प्रार्थना कर सकते हैं। विचारक यदि उस मुकदमेमें खास-जूरीकी आवश्यकता है, ऐसा कोई मन्तव्य प्रकट न करें, तो जो खास जूरीके लिए प्रार्थना करते हैं, उन्हें ही उसका अतिरिक्त व्यय झेलना पड़ता है।

खास जूरीको आह्वान करते समय खास-जूरीको तालिकासे ४८ नाम चुने जाते हैं। इनमेंसे किसीके भी १२ नाम वादी प्रतिवादीकी इच्छाके अनुसार काटे जाते हैं। बाकीके २४ नाम एक एक टिकटों पर लिख कर एक बकस अथवा कांचके पात्रविशेषमें रखे जाते हैं। पीछे उनमेंसे १२ टिकटें निकाली जाती हैं, उन टिकटोंमें जिनके नाम होते हैं, उन्हींको चुन कर आह्वान किया जाता है। इनमेंसे किसीके अनुपस्थित होने पर अथवा किसी कारणसे जूरी होनेके अनुपयुक्त होने पर उनकी जगह दूसरे व्यक्तिको चुन लिया जाता है।

मनोनीत जूरीकी तालिकामें दो प्रकारकी आपत्ति हो सकती है। एक तो यह कि मनोनीत समस्त जूरियों के प्रति आपत्ति करना और दूसरी यह कि उपस्थित जूरियोंमेंसे एक वा कई जनोंके लिए उज्र करना। अंग्रेजी भाषामें पहलीको Challenge to the array और दूसरीको Challenge to the polls कहते हैं।

शरीफ अथवा उनके नीचेके कर्मचारीके दोषसे पहली आपत्ति हो सकती है। दूसरी आपत्ति ४ प्रकारसे हो सकती है—१म, किसीका उपयुक्त सम्मान करनेके लिए पार्लियामेण्टके किसी लार्डको सभ्य चुननेसे; २य, जूरी होनेके उपयुक्त न होनेसे; ३य, पक्षपात होनेकी आशङ्का होनेसे और ४र्थ, चरित्र-सम्बन्धी दोषके कारण चुने हुए जूरीको बदनामी और उनकी न्यायपरता पर विश्वास न होनेसे। जूरी श्रेणीसे नाम निकल जानेसे या अन्य किसी कारणसे यदि विचारके समय उपयुक्त संख्यक जूरी उपस्थित न हों, तो संख्या पूर्तिके लिए दोनों पक्षकी सम्मतिके अनुसार पहलेकी बनी हुई सूचीमें किसी भी व्यक्तिको आह्वान किया जा सकता है। नियमित संख्याकी पूर्तिके लिए न्यायालयमें उपस्थित किसी भी व्यक्तिको आह्वान किया जा सकता है. यदि वे जूरीके आसन पर बैठे अथवा बुलाये जाने पर वे न्यायालयसे बिना अनुमतिके चले जाय, तो न्यायकर्ता इच्छानुसार उन्हें अर्थदण्डसे दण्डित कर सकते हैं। जूरी होनेके लिए किसीको आह्वानलिपि (Summons) भेजी जाने पर यदि वे उस पर ध्यान न दे कर उपस्थित न हों, तो उन पर अर्थदण्ड हो सकता है।

जूरियोंके उपस्थित होने पर उनको मुकदमेका तथ्य प्रकट करने और साक्षाके अनुसार उचित सम्मति देनेके लिए पृथक् रीत्या शपथ उठानी पड़ती है। इसके बाद वादीकी तरफका वकील जूरियोंके पास मुकदमा पेश करता है; आवश्यकता होने पर पहले जिसकी विस्तृत भावसे आलोचना हो चुकी है, जूरियोंके पास फिर उसका संक्षेपसे वर्णन करता है। इसके बाद प्रतिवादीका वकील अपने पक्षका समर्थन करता है। प्रतिवादीके वकीलकी वक्तृता समाप्त होने पर वादीका वकील उसका उत्तर देता है। पीछे न्यायाध्यक्ष मुकदमेका मर्म जूरियोंसे कहते हैं और साक्षाके प्रति लक्ष्य रख कर अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं। फिर सब जूरी मिल कर एक निर्दिष्ट मन्त्र भवनमें जाते हैं और परस्पर तर्क-वितर्क करके उपस्थित विषयका एक सिद्धान्त निश्चित करते हैं। पीछे वे अपनी सम्मतिको प्रकट करनेके लिए फिर न्यायालयमें आ कर अपना अपना आसन ग्रहण करते हैं। जिससे वे शीघ्र ही सिद्धान्त स्थिर कर लें, इसलिए मन्त्रभवनमें वे कुछ खा-पी नहीं सकते। जिस समय जूरीगण अपना मन्तव्य प्रकट करेंगे, उस समय वादीकी उपस्थिति होनी आवश्यक है। जूरियोंमें एक प्रधान (Grand) रहते हैं, जो उनके मन्तव्यको प्रकट करते हैं। उनका मत विचारालयकी पुस्तकमें लिखे जाने पर वे अपने अपने आसनोंको छोड़ देते हैं।

दीवानी मुकदमेके फैसलेके लिए जूरी-प्रथाके जैसे नियम हैं, फौजदारी मुकदमेके लिए भी वैसे ही नियम

है। कई भारी अपराधमें अपराधीके पैरवीके समय उसको कुछ ज्यादा क्षमता दी जाती है, जिसको अंग्रेजीमें Peremptory Challenge कहते हैं। अब राज सहित मुकदमेमें अपराधियोंके इच्छानुसार जूरियोंमेंसे किसी निर्दिष्ट संख्यक जूरियोंके नाम काटते समय, अपराधीने कोई कारण बतलाया या नहीं इस पर किसी तरहका लक्ष्य नहीं रखा जाता। किसी किसी विदेशीके पैरवीके समय आधे विदेशी जूरी नियत किये जाते हैं। यदि आधे न मिलें, तो जितने मिलें उतने ही चुन लिए जाते हैं। जूरी बननेकी योग्य आमदनी न होने पर भी उसका नाम नहीं काटा जा सकता; दूसरी कोई आपत्तिसे ही काटा जा सकता है।

पहले इङ्गलैण्डमें ऐसा नियम प्रचलित था कि यदि जूरियोंका विचार अन्याय हुआ तो उनको दण्डित होना होता और उनको सम्पत्ति राजकोषमें मिला ली जाती।

जूरियोंके अपराधीको अपराधी कह देने पर ही उसको दण्ड दिया जाता है अथवा छोड़ दिया जाता है।

अदालतके आज्ञानुसार यदि कोई जूरी उपस्थित न हो तो उस पर १००) रुपये तक जुर्माना हो सकता है। जुर्मानेके रुपये न देने पर १५ दिनके लिये उन्हें दीवानी जेलमें भेजा जाता है।

सेशन मुकदमोंके फैसलेमें विचारक जूरियोंकी सब बातें एक एक करके लिखा लेते हैं।

हाईकोर्ट अथवा सेशन अदालतमें यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाके विचारके लिए जूरियोंके मनोनीत होनेमें अधम हो यदि अपराधी चाहे तो यूरोपीय और अमेरिकन भिन्न जूरीके जरिये न्याय करा सकता है। उसे जूरी चुनने का हक है इसलिए भिन्न जूरीमें एक जातीय जूरी आधा या अधिक होते हैं।

यूरोपीय या अमेरिकन होने पर अभियुक्त व्यक्तिके इच्छानुसार मिश्र जूरीके द्वारा विचार हो सकता है।

स्थानीय गवर्मेण्ट तथा कभी सरकारी समाचार पत्रके जरिये भी इस बातका निश्चय कर सकती है कि कौन कौनसे मुकदमोंका विचार जूरीके द्वारा होगा और बाद में किन मुकदमोंका फैसला जूरीकी सहायतासे होना निश्चित हो गया है उस प्रस्तावको रद्द भी कर सकती है।

हाईकोर्टके तमाम सेशन मुकदमोंका फैसला जूरीकी सहायतासे होता है। हाईकोर्टके आदेशानुसार कभी कभी खास खास मुकदमोंका विचार असेसरोंकी सहायतासे किया जा सकता है।

अपराधी यदि अपराधको मञ्जूर करे, तो विचारक जूरीकी सम्मति बिना लिये भी मुकदमेका फैसला दे सकता है।

अपराधीके दोष स्वीकार करने पर भी यदि विचारकको ऐसा सन्देह हो जाय कि उसके मनके विकारसे ऐसा हुआ है, तो उस मुकदमेका फैसला जूरीकी सहायतासे होता है।

अपराधी पहले दोष अस्वीकार करके यदि पीछेसे स्वीकार भी करे, तो भी विचारक जूरीके मतके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते।

जूरी विचारककी अनुमति ले कर गवाहियोंसे प्रश्न कर सकते हैं। विचारक यदि उचित समझें कि जिस स्थान पर अभियोगका कारण उपस्थित हुआ है, उस स्थान पर या अन्य किसी स्थान पर जूरियोंका जाना आवश्यक है तो अदालत किसी एक कर्मचारीके साथ उनको वहां भेज सकती है। अदालतकी तरफसे कोई एक निर्दिष्ट व्यक्ति जूरियोंको उस स्थान दिखाता है और अदालतकी अनुमतिके बिना कोई भी जूरी किसीसे बातचीत न कर सके, इस बात पर उसे विशेष दृष्टि रखनी पड़ती है।

यदि किसी जूरीको अभियोगके विषयमें कुछ मालूम हो, तो वे उस बातको विचारकसे कहेंगे; उनसे भी गवाहियोंकी तरह प्रश्न किये जा सकते हैं।

मुकदमेका विचार स्थगित होने पर निश्चित दिनको जूरियोंको विचारालयमें उपस्थित होना पड़ता है।

वादी और प्रतिवादी दोनों पक्षोंका वादानुवाद शेष होने पर विचारक जूरियोंके अभियोगका मर्म और साक्ष्य साफ साफ प्रकट करते। हाईकोर्टके आदेशानुसार विचारके अन्त तक जूरियोंको एकत्र रहना पड़ता है।

जूरियोंके जाननेयोग्य कुछ विषय—

१। कौनसी सत्य घटना है, इस पर खयाल कर विचारकके आभासके अनुसार यथार्थ मतको प्रकट करना।

२। दस्तावेज और अन्यान्य विषयमें कानूनके विषयको छोड़ कर अन्य विषयोंमें जो जो पारिभाषिक और प्रादेशिक शब्द व्यवहृत होते हैं, उनके अर्थका निर्णय करना।

३। घटनासम्बन्धी समस्त प्रश्नोंकी मीमांसा करना।

४। घटनाके विषयमें जो साधारण बातें प्रकट हुई हैं, वे विशेष घटनामें मिलाई जा सकती है या नहीं?

विचारक उचित समझे तो जूरियोंसे घटना, अथवा घटना और कानूनसे मिले हुए किसी विषयमें अपना अभिमत कह सकते हैं।

पहले लिखा जा चुका है कि, जजके पाससे अभियोगका मर्म अवगत हो कर जूरीगण आपसमें मीमांसा करनेके लिए एक निर्दिष्ट मन्त्र-भवनमें जाते हैं। यदि उनमें सबका मत एकसा न हो, तो विचारक उन्हें पुनः परामर्श करनेके लिये भेज सकते हैं। फिर भी यदि उनका एक मत न हो, तो वे भिन्न भिन्न मत प्रकट करते हैं।

विशेष कोई कारण न होने पर जूरी समस्त अभियोगोंमें एक मत प्रकट करते हैं। विचारक जूरियोंको उनके मतके विषयमें प्रश्न कर सकते हैं। विचारकको उन प्रश्नों और उनके उत्तरोंको लिख रखना पड़ता है।

भ्रम अथवा अकस्मात् किसी कारणसे जूरियोंका मत अन्यायपूर्ण हो, तो लिखे जानेसे कुछ देर बाद वे अपने मतका संशोधन करा सकते हैं।

हाईकोर्टमें विचारके समय यदि जूरियोंमेंसे छह जूरियोंका एक मत हो और विचारक यदि अधिकांशके साथ एक मत न हो कर भिन्न मतावलम्बी हों, तो वे उसी समय उस जूरीको छोड़ सकते हैं। एक जूरीको छोड़ कर यदि विचारककी इच्छा हो तो दूसरी जूरी कायम कर उसको सहायतासे विचार कर सकते हैं। जूरियोंका मत यदि इतना अन्यायपूर्ण हो कि, जिसका सामान्य अनुधावन न करनेसे पता लग सकता है, तो सेशन जज भी उनके मतके विरुद्ध कार्य कर सकते हैं। हाईकोर्ट जूरियोंके किसी भी विचारमें हस्तक्षेप नहीं करता। सेशन-जज यदि हाईकोर्टमें उनके मतके विरुद्ध कार्य करनेमें अपना मत प्रकट कर लिखें तो हाईकोर्टके जज विचार कर कभी तो जूरियोंके साथ और कभी सेशन-जजके साथ एकमत प्रकट करते हैं।

जूरियोंकी सहायतासे विचार्य अभियोग यदि एसेसरकी सहायतासे विचारित हो और आदेश लिखे जानेसे पहले यदि उस विषयमें किसी तरहकी आपत्ति उपस्थित न हो, तो वह विचार (न्याय) अग्राह्य न होगा।

पहले भारतवर्षमें इस समयकी भाँति जूरीकी प्रथा नहीं थी। हाँ न्यायाधीशको सहायता देनेके लिए सभ्य वा एसेसर नियुक्त रहते थे। सभ्यगण प्रायः सेठ वा व्यवसायी होते थे। सभ्य देखो।

इस समय भारतवर्षमें सब तरहके मुकदमोंके फैसलाके लिये जूरी प्रथा प्रचलित नहीं है। साधारणतः सेसन (Session) मुकदमोंके विचारके लिए जूरीको बुलाया जाता है।

जूर्ण (सं० पु०) जूर क्त। तृणभेद, एक प्रकारकी घास। इसके पर्याय—उलूक और उलप है।

जूर्णाख्य (सं० पु०) जूर्ण इति आख्या यस्य, बहुव्री०। तृणविशेष, एक घास। इसके पर्याय—सूच्यग्र, स्थूलक, दर्भ और खरच्छद है।

जूर्णाह्वय (सं० पु०) जूर्ण इति आह्वयः आख्या यस्या, बहुव्री०। देवधान्य।

जूर्णि (सं० स्त्री०) ज्वर-नि। वीज्याज्वरिभ्यो निः। उण् ४।४८। ज्वरत्वरेति। पा ३।४।२०। इत्यूट् च। १ वेग, तेजी। २ स्त्रीरोग, औरतोंका एक रोग। ३ आदित्य, सूर्य। ४ देह, शरीर। ५ ब्रह्मा। जूर कोपे नि। ६ क्रोध, गुस्सा। (वि०) ७ वेगयुक्त, वेगवान्, तेज। ८ द्रवयुत, गला हुआ। ९ तापक, ताप देनेवाला। १० स्तुतिकुशल, जो स्तुति करनेमें निपुण हो।

जूर्णिन् (सं० वि०) वेगयुक्त, तेज़।

जूर्त्ति (सं० स्त्री०) ज्वर-भावे क्तिन्। ज्वरत्वरेति। पा ६।४।२०। ज्वर, बुखार।

जूर्य (सं० वि०) जूर कर्त्तरि-ण्यत्। १ जीर्ण, पुराना। २ वृद्ध, बुड्ढा।

जूष (सं॰ स्त्री॰) यूष-पृषोदरादित्वात् साधु। १ यूष झोल, कढ़ी, रसा। किसी उबाली या पकाई हुई वस्तुका पानी। २ उबाली या पकाई हुई दालका पानी

जूषण (सं॰ स्त्री॰) जूषमिव इनं कान्तिं करोति जूष-इन-कृ-ड। वृक्षविशेष धाय नामक पेड़।

जूस (हिं॰ पु॰) १ मूंग, अरहर आदिकी पकी हुई दालका पानी। यह प्रायः रोगियोंको पथ्य रूपमें दिया जाता है। २ किसी उबाली या पकाई हुई वस्तुका पानी, रसा। ३ युग्म संख्या, सम संख्या।

जूसताक (हिं॰ पु॰) छोटे छोटे लड़कोंके खेलनेका एक प्रकारका जुआ। इसमें एक लड़का अपनी मुट्ठीमें कुछ कौड़ी छिपा कर दूसरे लड़केका कौड़ियोंकी संख्या जाननेके लिये पूछता है। अगर वह ठीक ठीक कह दिया है तो उसकी जीत होती है और अगर ठीक ठीक बता न सका तो उसको उतनी ही कौड़ियां देनी पड़तीं जितनी उस लड़केकी मुट्ठीमें रहती हैं।

जूसी (हिं॰ स्त्री॰) थोड़ा ईखके रसका वह लसीला रस या उसका अवलेह। इसको गुड़के रूपमें ठोस होनेके पहले उतार कर रक्खा जाता है, चोटा, राब।

जूहर (हिं॰ पु॰) राजपूतोंकी प्राचीन प्रथा। इसके अनुसार जब स्त्रियां जानती थीं कि दुर्गमें शत्रु ओंका प्रवेश किसी हालतमें रुक नहीं सकता तो वे चिता पर बैठ कर जल जाती थीं और पुरुष दुर्गके बाहर लड़नेके लिये निकल पड़ते थे।

जूही (हिं॰ स्त्री॰) १ हिमालय पर्वतके जंगलोंमें आपसे आप होनेवाला एक प्रकारका झाड़ या पौधा। इसके फूल सुगन्धित होनेके कारण यह बगीचोंमें लगाई जाती है। इसके फूल सफेद चमेलीसे मिलते जुलते हैं पर चमेलीसे बहुत छोटे होते हैं। फूल बरसातमें लगते हैं। इसके फूल चमेलीसे मिलते हैं सही लेकिन दोनोंके पौधोंमें बहुत विभिन्नता है। इसका पौधा कुन्दसे मिलता है। एक प्रकारका अतर जूहीके फूलसे बनाया जाता है। २ एक प्रकारकी आतशबाजी। इसके छूटने पर छोटे छोटे फूलसे झड़ते दिखाई पड़ते हैं। ३ मिर्च, मटर आदिकी फलियोंमें लगनेवाला एक प्रकारका कीड़ा।

जृम्भ (सं॰ पु॰-स्त्री॰) जृभि भावे घञ्। १ मुखको वह क्रिया जो आलस्य या निद्राका आवेश होने पर अपने आप हो जो, जँभाई, अंगुराई, उबासी। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—जृम्भण, जृम्भा जृम्भिका, जम्भा जम्भका। जृम्भका लक्षण सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—मुखव्यादान सह फाड़ कर बाहरकी वायुको खींचने और फिर उसको भी उसके साथ निकाल देनेको जृम्भ या जँभाई कहते हैं। (सुश्रु॰ शा॰ ४ अ॰)

वायुके कारण भी जँभाई आती है उस वायुका नाम देवदत्त (पञ्चवायुमेंसे एक वायुको देवदत्त कहते हैं)। निद्रा देखो।

छिपकली गिरने पर, छींक और जँभाई आने पर चुटकी बजानी चाहिये। किसी स्मृतिके मतसे—जो चुटकी नहीं बजाता वह ब्रह्मघ्न होता है।

(तिथितत्त्व)

जंभाई आने पर उत्तम शय्या पर शयन अथवा कटु एव तैलको मालिश करें और स्वादिष्ट पदार्थ या ताम्बूल खावें। इससे जृम्भरोग प्रशमित होता है। (वैद्यक) २ आलस्य, आलस, सुस्ती।

जृम्भक (सं॰ त्रि॰) जृम्भ-ण्वुल्। १ जृम्भाकारक जो जँभाई या उबासी लेता हो जिसको हमेशा जँभाई आती हो, उबासी लेनेवाला। (पु॰) २ रुद्रगणभेद रुद्रगणोंमेंसे एक। (भारत॰ वन॰ २३१ अ॰)

जृम्भयति जृभि णिच् ण्वुल्। ३ अस्त्रविशेष एक हथियार। रामने जब ताड़का आदि राक्षसोंको मार डालनेके उपरान्त महर्षि विश्वामित्रने राम पर प्रसन्न हो कर उन्हें मन्त्रयुक्त यह अस्त्र दिया था। विश्वामित्रने यह अस्त्र कठोर तपस्या करके अग्निसे लिया था। इस अस्त्रके प्रयोग करनेसे सब लोग निद्रित हो जाते थे। विश्वामित्रके वरसे रामलक्ष्मण लव और कुशको भी यह अस्त्र प्राप्त हुआ था। रामचन्द्रका अश्वमेधीय अश्व लव और कुशके द्वारा पकड़े जाने पर युद्धके समय लव कुशको इस अस्त्रका प्रयोग करते देख रामचन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ था। (रामायण)

जृम्भ णिच् ण्वुल्। ४ जृम्भणकारक अस्त्रविशेष उबासी दिलानेवाला एक हथियार। इन्द्रादिक देवोंके

समय इन्द्रके वृत्र द्वारा आक्रान्त होने पर देवोंने अत्यन्त चिन्तित हो कर जृम्भिकाकी सृष्टि की, इस जृम्भिकासे वृत्रको अत्यन्त आलस्य आ गया, जिससे इन्द्रने उसका वध कर दिया। तभीसे यह जृम्भिका देवदत्त नामक जीवोंकी प्राणवायुका आश्रय ले कर अवस्थिति कर रही है। (भारत ५१९ अ०)

जृम्भण (सं० क्लो०) जृम्भि-भावे ल्युट्। १ मुखविकाश, जँभाई लेना। २ जृम्भणकारक, वह जो जँभाई लेता हो। ३ जृम्भकास्त्र। जृम्भक देखो।

जृम्भमान (सं० त्रि०) जृम्भ-शानच्। १ जँभाई लेता हुआ। २ प्रकाशमान।

जृम्भा (सं० स्त्री०) जृम्भ भावे वल् ततष्टाप्। १ जृम्भ, जँभाई। जृम्भ देखो।

२ शक्तिविशेष, एक शक्तिका नाम।

'तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा जृम्भा तन्द्रा च शक्तयः।"

(देवीभा० ३।१५।६१)

३ आलस्य वा प्रमादसे उत्पन्न जड़ता।

जृम्भिका (सं० स्त्री०) जृम्भा स्वार्थे कन् टाप् अत इत्व। १ जृम्भ जँभाई। २ निद्रावेगधारणजनित रोगविशेष, निद्राके अवरोध करनेसे उत्पन्न एक रोग। निद्राके आ जाने पर यदि उसे रोक लिया जाय तो यह रोग पैदा होता है। इसमें मनुष्य शिथिल पड़ जाता है और बार बार जँभाई लिया करता है। ३ आलस्य।

जृम्भिणी (सं० स्त्री०) जृम्भ-णिनि-ङीप्। एलापर्णी, एलापर्ण लता।

जृम्भित (सं० त्रि०) जृम्भि-क्त। १ चेष्टित, चेष्टा किया हुआ। २ प्रवृद्ध, खूब फैला हुआ। ३ स्फुटित, विकसित, खिला हुआ। (क्लो०) भावे-क्त। ४ जृम्भा, जँभाई। ५ स्फुटन, खिलना। ६ स्त्रियोंका करणभेद, स्त्रियोंकी ईहा या इच्छा।

जेँवना (हिं० क्रि०) भक्षण करना, खाना।

जेँवनार (हिं० स्त्री०) जेवनार देखो।

जेउर—अहमदनगर जिलेका एक शहर। यह अक्षा० १८° १८' उ० और देशा० ७४° ४८' पू०के मध्य अवस्थित है। अहमदनगरसे प्रायः १३ मील उत्तर-पूर्वमें पड़ता है। लोकसंख्या प्रायः ५००५ है। निकटके एक ऊँचे पहाड़के ऊपर तीन मन्दिर हैं, जिनमें १७८१ सम्वत्का ताम्रफलक है।

जेङ्गाइ—वृन्दावनके अन्तर्गत अघवनके समीप एक ग्राम। कृष्णसे अघासुर मारे जानेके बाद गोपबालकोंने इस स्थान पर कृष्णका प्रशंसा गान किया था।

(वृ० ली० २८ अध्याय)

जेजुरी—बम्बई प्रदेशमें पूना जिलेके पुरन्धर तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १८° १६' उ० और देशा० ७४° ८' पू०में पूना नगरसे ३० मील और सासवड़से १० मील दक्षिण-पूर्व पूनासे सतारा जानेके पुराने रास्ते पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २८७१ है। दूरसे इस नगरका दृश्य अत्यन्त मनोहर लगता है। गण्डशैलके चूड़ास्थित खण्डोबा देवका मन्दिर और उसके चारों ओरका प्रस्तरनिर्मित प्राचीर तथा सोपानश्रेणी दर्शकोंके प्रीतिकर हैं। यह हिन्दुओंका एक तीर्थस्थान है।

खण्डोबा या खण्डेराय देवताके मन्दिरके लिये यह शहर मशहूर है। देवताका पूरा नाम खण्डोबा मल्लारी मार्त्तण्ड-भैरव महालसाकान्त है। इन्होंने अपने हाथमें खण्ड अर्थात् खड्ग धारण किया है, इसीसे इनका नाम खण्डोबा पड़ा है। ये महाराष्ट्रोंके उपास्य हैं। वे खण्डोबाको विशेष भक्ति श्रद्धासे पूजते हैं। इनके दो मन्दिर हैं, जिनमेंसे पहला बहुत बड़ा है और ग्रामसे २५० फुट ऊँचे पहाड़ पर बना हुआ है। पुराना मन्दिर प्रायः २ मील दूरमें ४०० फुट ऊँची मालभूमि पर अवस्थित है। कर्ड़ पाथर नामक पहाड़की चोटी पर यह मन्दिर निर्मित है। इसके सिवा चोटी पर बहुतसे देवमन्दिर और १२।१३ घर पुरोहितके वास हैं। यहां भी अनेक यात्री आते हैं।

अभी जिस स्थान पर नूतन मन्दिर है पहले प्राचीन जेजुरी ग्राम उसी स्थान पर था। वर्त्तमान शहर-मन्दिरके उत्तरमें अवस्थित है। पुराने ग्रामके निकट पेशवा बाजीरावका बनाया हुआ एक बड़ा सरोवर है। उसके जलसे बहुत शस्यक्षेत्र सींचे जाते हैं। सरोवरमें स्नान करनेके वास्ते बहुतसे पत्थरके बने हुए कुण्ड या हौज हैं और गणपतिदेवकी एक मूर्त्ति है। इससे कुछ नीचे सरोवरसे निकली हुई एक झरना है जिसे लोग मलहर-

तीर्थ कहते हैं। मूतन गढ़रके उत्तर-पश्चिम एक ऊँचे स्थान पर तुकोजी होलकरका खुदवाया हुआ एक सरोवर है। म्युनिसपालिटोने मट्टीके नीचेसे नल द्वारा इस का जल ला कर गढ़रके काममें लाया है। इस पुष्करिणी और गढ़रके मध्यभागमें मलहरराव होलकरके स्मरणार्थ एक शिवालय स्थापित है। मन्दिरमें लिङ्गके पीछे मलहरराव तथा उनकी तीन स्त्रियां बनाबाई, द्वारकाबाई और गौतमबाईकी जयपुरके मर्मर पत्थरकी बनी हुई प्रतिमूर्त्तियां हैं।

पुराने और नये मन्दिरके मध्य बहुतसे छोटे छोटे मन्दिर और पवित्र स्थान हैं। एक जगह पर्वतके ऊपर एक गड्ढेको देख कर लोग कहते हैं कि यह खण्डोबाके घोड़ेके खुरका चिह्न है।

खण्डोबाके मन्दिर पर जानेके लिये पूर्व पश्चिम और उत्तरकी ओर तीन सीढ़ियां हैं। पूर्व और पश्चिम ओर की सीढ़ी अधिक काममें नहीं आती है। उत्तरकी सीढ़ी सबसे चौड़ी और सुन्दर है। इसके ऊपर जगह जगह छत और चँदवा है। सीढ़ीके नीचे और ऊपर खण्डोबा की दो स्त्रियां बनाई और महालसाकी प्रतिमूर्त्तियां हैं। प्राचीरमें एक समय मधु था प्रवाद है कि मुसलमानोंने जब इस मन्दिरको तोड़ डाला तब उस गर्त्त से बहुतसे भौंरे निकले थे। इस पर वे भयभीत हो कर भाग चले। और मस्जिदने देवताके सम्मानार्थ एक लाख रुपयेका गौरव प्रदान किया था। यह गौरव मन्दिरमें हो था बाद १८१०-११ ई०में मन्दिरके सेवकोंने इसे चुरा लिया।

मन्दिरके नाना स्थानोंमें निर्माणकर्त्ताका नाम और निर्माणकालज्ञापक बहुतसे शिलालेख हैं। जिनके पढ़नेसे मालूम होता है कि मलहरराव तुकोजी होलकरने १७१८ ई०से १८११ ई०के बीच मन्दिरके चारों ओर दरदालान और दूसरे दूसरे गृह निर्माण किये। चामगड़के बीठलराव देवने १८५१ ई०में यहां पद्मलिङ्ग मन्दिर बनाया है। खण्डोबा पूर्व किङ्कलिका मन्दिर अहमदाबादके गोसाईं शिवाजी देवजी चीवरोने निर्माण किया गया है। १८७० ई०में तुकोजी मलहरराव होलकरने दरदालान पूरा किया।

खण्डोबा कल्याणी अष्टधातुमूर्त्ति है। मन्दिरमें इनकी और महालसाकी तीन युगलमूर्त्ति हैं। एक युगलमूर्त्ति सोनेकी बनी है। इसे पूनाके अंगोय राजाओं ने प्रदान किया है। दूसरी युगलमूर्त्ति चांदोकी है। जिसे किसी एक पेशवाने दिया है। शेष मूर्त्ति पत्थर की है और यह सबोंसे प्राचीन कही जाती है। विग्रह सेवाके लिये यहां बहुतसे हाथी घोड़े और रथ हैं।

प्रतिदिन देवदेवो गङ्गाजलसे स्नान, चन्दन अतर, आदि सुगन्ध द्रव्यसे लेपी जाती और मणिरत्नसे भूषित की जाती हैं। मन्दिरका वार्षिक व्यय प्रायः १० हजार रुपये हैं। इसकी आय विशेष कर यात्रियोंको दान की और मानसिकसे होती है। इसके सिवा अधिक शिवा बाम् महीने देवकेलाके बहुतसो जमीन चढ़ा दी है। मन्दिरमें दो सौसे अधिक 'मुरली' कुमारी वास करती हैं। ये ग्रामवासी कुमारोके माता-पिता खण्डोबाके साथ इनका यथाशास्त्रविवाह कर देते और कन्याको सेवामें उन्हें समर्पण करते हैं। ये फिर दूसरा विवाह कर नहीं सकतीं। जो कुछ हो मन्दिरमें इनसे भी उन कुमारियोंके द्वारा यथेष्ट आय होती है। ये और वाघिया अर्थात् खण्डोबाके दासगण एकत्र हो कर खण्डोबा की महिमा और माहात्म्य गीत गा कर अर्थ उपार्जन करते हैं। इसके अतिरिक्त मन्दिरमें पुरोहित और अनेक भिक्षुक ब्राह्मणादि रहते हैं।

खण्डोबा देवकी उत्पत्तिके विषयमें प्रवाद है कि एक दिन जेजुरीके निकटस्थ ब्राह्मणोंने मणिमालमल्ल या महासुर नामक एक दैत्यसे पीड़ित हो कर महादेव की स्तुति की। महादेवने खण्डोबाकी मूर्त्तिमें आविर्भूत हो कर उस दैत्यका वध किया। उन्होंने उसके दैत्यसे शिवप्राण प्राप्त किया था। इसी कारण अभी भी खण्डोबाके मन्दिरके प्राङ्गणमें स्थित प्रस्तरनिर्मित मल्लमूर्त्तिकी पूजा होती है। हल्दी और चम्पेका फूल खण्डोबाका प्रिय है।

यहां वर्षमें चार उत्सव होते हैं। पहला उत्सव इनको शुक्ल-चतुर्थीसे शुक्ल सप्तमी तक और शेष तीन पौष, माघ और चैत्रकी शुक्ल द्वादशीसे पूर्णिमा तक हुआ करता है। इस उत्सवमें खान्देश बरार, बाइक

आदि दूर देशोंसे भी यात्री आते हैं। चैत मासके मेले- में कभी कभी लाखसे अधिक यात्री जुटते हैं।

इसके सिवा सोमवती अमावस्या तथा विजयादशमी- के दिन उससे छोटा मेला लगता है। इस समय केवल आस पासके ग्रामोंसे ही यात्री आते हैं। सोमवती अमा- वस्याके दिन जेजुरीके पुजारी मूर्त्तिको पालकीमें बैठा कर दो मील उत्तर-पूर्व तीरवर्ती ग्रामके धालेवाड़ीके देवमन्दिरमें ले जाते हैं और वहां नदीमें स्नानादि करा कर फिर लौट आते हैं। विजया दशमीके दिन वे दल बांध कर ठाकुरकी पालकीमें बाहर ले जाते हैं; ठीक उसी समय कड़े-पाथर मन्दिरसे और दूसरा ठाकुर सज- धजके साथ बाहर निकलते हैं। दोनों दल दो तरफसे आ कर रास्तेमें मिल जाते और वहां कुछ काल परस्पर अभिवादनके बाद अपने अपने मन्दिरको प्रत्यावर्तन करते हैं।

पहले अगहन महीनेके उत्सवमें एक भक्त वाघिया अपने जंघेको तलवारसे छेद कर नगरमें घूमता था। उस समय इसके सिवा और भी दूसरा दूसरा कठिन व्रत प्रचलित था। अभी देवताके उद्देश्यसे मन्दिरका सोपान- निर्माण, ब्राह्मण-भोजन, अर्घदान, मेषबलि और कोई कोई अपनी सन्तानको आजीवन खण्डोबाकी सेवामें नियुक्त करते हैं। उसीका पुत्र वाघिया और कन्या मुरली नामसे पुकारी जाती है। भेड़ोंका बलिदान यहां इतना अधिक होता है, कि किसी किसी वर्ष २०।३० हजार तक भी हो जाया करता है।

खण्डोबाके पण्डा गुरव हैं। यात्रिगण आ कर शहरमें पण्डाके घरमें टिकते हैं। यहां प्रायः दो दिन ठहर कर वे यथारीति समस्त पूजादि सम्पन्न करते हैं। दूसरे दिन मानत अर्घदान किया जाता है। ब्राह्मण भोजनका मानत रहनेसे वे पुरोहितके घरमें उन्हें खिला देते हैं। भेड़की बलि देनेसे उसका आधा मुण्ड काटने- वालेको और आधा म्युनिसपालिटीको मिलता है। बलि का मांस यात्री लोग अपने डेरे पर ला कर खाते हैं। इस समय उनके साथ २।४ वाघिया और मुरली रहती हैं। दूसरे दिन रातको वे मसाल बाल कर मन्दिर प्रदक्षिण करते हैं।

इसके बाद वे प्राङ्गणस्थ पीतलके प्रकाण्ड कूर्मपृष्ठ पर खड़ा हो कर नारियल, धान और हल्दी वितरण करते हैं और कुछ प्रसाद अपने पास भी रख लेते हैं। सब काम समाप्त होने पर जिसका गान मन्नत रहता है, वह कई एक वाघिया और मुरली कुमारीको अपने डेरे पर ले जा कर गान कराता है। इन्हें सवा रुपया एक दलको देना पड़ता है।

मन्दिरमें प्रवेश करते समय प्रत्येक यात्रीको दो पैसेके हिसाबसे म्युनिसपालिटीको कर देना पड़ता है। यह कर अगहनसे चैत तक लिया जाता है। दूसरे समय यात्री बिना कर दिये मन्दिरमें प्रवेश कर सकते हैं। म्युनिसपालिटी यह अर्थ यात्रियोंकी सुविधाके लिये नगर और अन्यान्य स्थानोंके परिष्कार और स्वास्थ्यकर रखनेमें खर्च करती है।

मन्दिरकी और सारी आमदनी पुरोहित गुरवगण और मन्दिरके तत्त्वावधारकगण पाते हैं। उसमें कुछ कुछ गायक तथा मन्दिरके दूसरे दूसरे सेवकको मिलता है।

जो यात्री धनी होते हैं वे अपनी इच्छासे दो एक दिन और ठहर कर कड़ा-पाथरके पुराने मन्दिर तथा मलहर या मल्लार तीर्थ देखने जाते हैं। यात्रियोंका खाद्य और देवसेवाका उपकरण छोड़ कर मेलेमें जितना चीजें बिकनेको आती हैं, उनमें कम्बल प्रधान है। दूसरे दूसरे द्रव्योंमें पीतलका बरतन और तरह तरहके रंगीन वस्त्र, छोटे छोटे लड़कोंका पोशाक, अनेक प्रकारके खिलौने, तसवीर आदि बिकनेको आती हैं। यात्रिगण स्त्री पुत्र कन्यादिके लिए साध्य और स्वेच्छामत दो चार अच्छी अच्छी चीजें और राहका खाद्यपदार्थ खरीद कर अपने अपने घर लौट आते हैं।

मेलेके समय नगरकी सुव्यवस्थाके लिये १८६८ ई०को जेजुरीमें एक म्युनिसपालिटी स्थापित हुई है। मेला समाप्त होने पर उसके कर्मचारी यात्रियोंकी संख्या और दूकानोंकी बिक्रीके अनुसार शहरके प्रत्येक घरसे टैक्स वसूल करते हैं। यह टैक्स १), ॥), ।) और ८) आने तक होता है।

जेट (हिं० स्त्री०) १ समूह, यथ, ढेर। २ रोटियोंकी

नहीं। ४ एक दूसरेके ऊपर रखा हुआ मट्टीके बरतनों का समूह। ५ कोढ़ कोप।

जेटी (अ० स्त्री०) जहाजों परसे माल चढ़ाने या उतारने का एक बड़ा चबूतरा जो नदी या समुद्रके किनारे बना रहता है।

जेरो—१ एक हिन्दू जाति। ये वंशपरम्पराके मजदूर तथा घूम घूम कर चिकित्सा करके जीविका निर्वाह करते हैं। तञ्जोरमें तामिल सभ्यताके अन्दर रहते हुए भी ये हिन्दू भाषामें बातचीत करते हैं। इनके व्यतीत है—ये अन्यान्य जातियों को अपेक्षा अपने को ऊंचा समझते हैं और इसीलिए नीच कार्य करना स्वीकार नहीं करते। तञ्जोरके राजा जब स्वाधीन थे, तब ये उनके यहां धन रक्षकका काम करते थे। फिलहाल इनमेंसे बहुतसे मद्रास में रहने लगे हैं।

कहा जाता है कि किसी समय महिसुरके जेरो लोग जातकका कार्य करते थे।*

टोपू सुलतानके समयमें जेरियोंने अद्भुत दक्षता और से पुरुष भाव जनरल म्याथूको हत्या की थी।†

जेरो लोग अब भी मल्लस्थानमें जोड़ लगानेमें समर्थ हैं या लगाया करते हैं। एलफिन यात्रका कहना है कि इनके जोड़को मजबूत जाति पृथिवीमें दूसरी नहीं। जिम स्करीने अपनी "The Captivity, Sufferings and escape of James Scurry" नामक ग्रन्थमें इनके युद्ध कौशलका वर्णन किया है।

महिसुरके जेरियोंका कहीं कहीं 'मूटिगा नामसे भी उल्लेख किया जाता है। इनमें बहुतसे लोग 'मलयाया' नामक एक प्रकार अपभ्रंश भाषाका व्यवहार करते हैं।

२ कमराई जातिको एक शाखाका नाम

जेठ (हिं० पु०) १ वैशाख और आषाढ़के बीचमें पड़ने वाला एक चान्द्रमास। इस मासकी पूर्णिमाके दिन चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्रमें रहता है; इसीसे इसे ज्येष्ठ या जेठ कहते हैं। ज्येष्ठ देखा। २ पतिका बड़ा भाई, भसुर। (वि०) ३ अग्रज बड़ा।

जेठवा (हिं० पु०) ज्येष्ठ मासमें होनेवाली एक प्रकार की कपास।

जेठवा—एक प्राचीन राजपूतवंश। पहले ये सोराष्ट्र (वर्त्तमान काठियावाड़) के उपकूलभागमें रहते थे। अति प्राचीनकालमें जेठवाओंने सिन्धनी और नामीके बीचका स्थान अधिकृत किया था। पीछे मुसलमानों द्वारा ये लोग वहांसे विताड़ित तो हुए थे, किन्तु शीघ्र ही इन लोगोंने उस स्थानका अधिकांश अधिकार कर लिया। बहुत पहले ये भावपुरके पार्श्वस्थप्रदेशमें रहते थे। मोचि इन लोगोंको एक प्राचीन राजधानी थी। पहले काठियावाड़में जेठवा, चूड़ासमा, सोलङ्की और वाला इन चार राजपूत जातियोंका प्राधान्य था। परन्तु झाला, जाड़ेजा आदिके आक्रमण और प्रभुत्वसे उक्त चारों जातियोंकी क्षमता क्रमशः घट गई है। जेठवाओंने अपने पूर्व अधिकृत काठियावाड़के पश्चिम और उत्तर भागसे विताड़ित होने पर युद्धके पार्श्वस्थप्रदेशमें अधिकार जमाया है। पुरन्दरके राजा पुरन्दरिय जेठवा कहलाते हैं। जेठवाओंके इतिहासमें लिखा है—जेठवा साहजीने अनहिलवाड़पत्तनके राजा कर्णजीको युद्धमें पराजित कर कैद कर लिया। सिरोही और अन्यान्य प्रदेशके राजाओंके अनुरोधसे कर्णजीके राणा उपाधिका त्यागना स्वीकार करने पर साहजीने उनको छोड़ दिया। तभीसे पुरन्दरके राजाओंने 'राणा'की उपाधि धारण करना छोड़ दिया है।

जेठपुर खाचर—सोराष्ट्रके अन्तर्गत आनन्दपुरके एक राजा। चोटिलाकी काठिजातिके खाचरवंशमें इनका जन्म हुआ था। बादशाह अहमद तुगलकके अत्याचार और गुजरातके सुलतानोंके आक्रमणसे किसी समय आनन्दपुर जनशून्य अरण्य हो गया था। उस समय कुछ नामका एक ग्रामवासी भैंस खोजते खोजते वहां पहुंचा। इसने आनन्दपुरको देख कर काठि सर्दार जेठपुर खाचर और सियाजम खाचरको खबर दी। इस पर इन लोगोंने कट्ठा पर्वतसे आ कर शून्य नगर आनन्दपुर पर कब्जा कर लिया। इस जगह इन लोगोंने २० वर्ष राज्य किया। इसके बाद राजमातुलक स्थाला सुम नामा

* Rice—Mysore and Coorg Gazetteer

† "General Matthews had his head wrung from his body by a tiger fangs of the Jetties a set of slaves trained up to gratify their master with their infernal pieces of dexterity."

आदि दूर देशोंसे भी यात्री आते हैं। चैत मासमें मेले-में कभी कभी लाखसे अधिक यात्री जुटते हैं।

इसके सिवा सोमवती अमावस्या तथा विजयादशमी-के दिन उसमें छोटा मेला लगता है। इस समय केवल आस पासके ग्रामोंसे ही यात्री आते हैं। सोमवती अमा-वस्याके दिन जेजुरीके पुजारी मूर्त्तिको पालकीमें बैठा कर दो कोस उत्तर-कड़ा-तीरवर्त्ती ग्रामके धालेवाड़ीके देवमन्दिरमें ले जाते हैं और वहां नदीमें स्नानादि करा कर फिर लौट आते हैं। विजया दशमीके दिन वे दल बांध कर ठाकुरकी पालकीसे बाहर ले जाते हैं। ठीक उसी समय कड़े-पाथर मन्दिरसे और दूसरा ठाकुर सज धजके साथ बाहर निकलते हैं। दोनों दल दो तरफसे आ कर रास्तेमें मिल जाते और वहां कुछ काल परस्पर अभिवादनके बाद अपने अपने मन्दिरको प्रत्यावर्त्तन करते हैं।

पहले अगहन महीनेके उत्सवमें एक भक्त वाघिया अपने जंघेको तलवारसे छेद कर नगरमें घूमता था। उस समय इसके सिवा और भी दूसरा दूसरा कठिन व्रत प्रचलित था। अभी देवताके उद्देश्यसे मन्दिरका सोपान-निर्माण, ब्राह्मण-भोजन, अर्थदान, मेषबलि और कोई कोई अपनी सन्तानको आजीवन खण्डोबाकी सेवामें नियुक्त करते हैं। उसीका पुत्र वाघिया और कन्या मुरली नामसे पुकारी जाती है। भेड़ोंका बलिदान यहां इतना अधिक होता है, कि किसी किसी वर्ष २०।३० हजार तक भी हो जाया करता है।

खण्डोबाके पण्डा गुरव हैं। यात्रिगण आ कर शहरमें पण्डाके घरमें टिकते हैं। यहां प्रायः दो दिन ठहर कर वे यथारीति समस्त पूजादि सम्पन्न करते हैं। दूसरे दिन मानत अर्थदान किया जाता है। ब्राह्मण भोजनका मानत रहनेसे वे पुरोहितके घरमें उन्हें खिला देते हैं। भेड़की बलि देनेसे उसका आधा मुण्ड काटने-वालेको और आधा म्युनिसपालिटीको मिलता है। बलिका मांस यात्री लोग अपने डेरे पर ला कर खाते हैं। इस समय उनके साथ २।४ वाघिया और मुरली रहती हैं। दूसरे दिन रातको वे मसाल बाल कर मन्दिर प्रदक्षिण करते हैं।

इसके बाद वे प्राङ्गणस्थ पीतलके प्रकाण्ड [illegible] पर खड़ा हो कर नारियल, धान और हल्दी [illegible] करते हैं और कुछ प्रसाद अपने पास भी रख लेते हैं। सब काम समाप्त होने पर जिसका गान सबसे रुचता है वह कोई एक वाघिया और मुरली दुमालाको अपने डेरे पर ले जा कर गान कराता है। इन्हें सवा रुपया एक दलको देना पड़ता है।

मन्दिरमें प्रवेश करते समय प्रत्येक यात्रीको दो पैसेके हिसाबसे म्युनिसपालिटीको कर देना पड़ता है। यह कर अगहनसे चैत तक लिया जाता है। दूसरे समय यात्री विना कर दिये मन्दिरमें प्रवेश कर सकते हैं। म्युनिसपालिटी यह अर्थ यात्रियोंकी सुविधाके लिये नगर और अन्यान्य स्थानोंके परिष्कार और सुस्वच्छ रखनेमें खर्च करती है।

मन्दिरकी और सारी आमदनी पुरोहित गुरवगण और मन्दिरके तत्त्वावधारकगण पाते हैं। उसमें कुछ कुछ गायक तथा मन्दिरके दूसरे दूसरे सेवकको मिलता है।

जो यात्री धनी होते हैं वे अपनी इच्छासे दो एक दिन और ठहर कर कड़ा-पाथरके पुराने मन्दिर तथा मलहरगड़ा मयार तीर्थ देखने जाते हैं। यात्रियोंका खाद्य और देवसेवाका उपकरण छोड़ कर मेलेमें जितनी चीजें बिकनेको आती हैं, उनमें कम्बल प्रधान है। दूसरे दूसरे द्रव्योंमें पीतलका बरतन और तरह तरहके रंगीन वस्त्र, छोटे छोटे लड़कोंका पोशाक, अनेक प्रकारके खिलौने, तसवीर आदि बिकनेको आती है। यात्रिगण स्त्री पुत्र कन्यादिके लिए साध्य और स्वेच्छामत दो चार अच्छी अच्छी चीजें और राहका खाद्यपदार्थ खरीद कर अपने अपने घर लौट आते हैं।

मेलेके समय नगरकी सुव्यवस्थाके लिये १८६८ ई०को जेजुरीमें एक म्युनिसपालिटी स्थापित हुई है। मेला समाप्त होने पर उसके कर्मचारी यात्रियोंकी संख्या और दूकानोंकी बिक्रीके अनुसार शहरके प्रत्येक घरसे टैक्स वसूल करते हैं। यह टैक्स १),॥) ।) और =) आने तक होता है।

जेट (हिं० स्त्री०) १ समूह, यथ, ढेर। २ रोटियोंकी

नदी। १ एक दूसरेके ऊपर रक्खा हुआ मड़ोंके बरतनों-का समूह। ४ कोर कोरा।

जेटी (अ० स्त्री०) जहाजों परसे माल चढ़ाने या उतार लेनेका एक बड़ा चबूतरा जो नदी या समुद्रके किनारे बना रहता है।

जेट्टी—१ एक तेलगू जाति। ये वंशपरम्परासे मल्लयुद्ध तथा घूम घूम कर चिकित्सा करके लोगोंका निर्वाह करते हैं। तञ्जोरमें तामिल सभ्यताके अन्दर रहते हुए भी ये तेलगू भाषामें बातचीत करते हैं। इनके उपवीत है—ये अन्यान्य जातियों की अपेक्षा अपने को उच्च समझते हैं और इसीलिए नीच कार्य करना स्वीकार नहीं करते। तञ्जोरके राजा जब स्वाधीन थे तब ये उनके यहां मल्लयुद्धका काम करते थे। फिलहाल इनमेंसे बहुतसे महिसुरमें रहने लगे हैं।

कहा जाता है कि किसी समय महिसुरके जेट्टी लोग जल्लादका कार्य करते थे।*

टीपू सुलतानके समयमें जेट्टियोंने अद्भुत कुशलता और नैपुण्यके साथ जनरल म्याथूकी हत्या की थी।†

जेट्टी लोग अब भी मल्लस्थानमें जोड़ कसरतोंमें समर्थ हैं या लगाया करते हैं। कर्नल विल्क्स साहबका कहना है कि इनके जोड़की मल्लजाति शायद पृथिवीमें दूसरी नहीं। जेम्स स्कूरीने अपने "The Captivity, Sufferings and escape of James Scurry" नामक ग्रन्थमें इनके युद्ध कौशलका वर्णन किया है।

महिसुरके जेट्टियोंका कहीं कहीं 'मूष्टिग' नामसे भी उल्लेख किया जाता है। इनमें बहुतसे लोग 'मल्लभाषा' नामक एक प्रकार अपभ्रंश भाषाका व्यवहार करते हैं।

२ कमराई जातिकी एक शाखाका नाम।

जेठ (हि० पु०) १ बैशाख और आषाढ़के बीचमें पड़ने वाला एक चान्द्रमास। इस मासकी पूर्णिमाके दिन चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्रमें रहता है; इसीसे इसे ज्येष्ठ या जेठ कहते हैं। ज्येष्ठ देखो। २ पतिका बड़ा भाई, भसुर। (वि०) १ अग्रज बड़ा।

जेठवा (हि० पु०) ज्येष्ठ मासमें होनेवाली एक प्रकारकी कपास।

जेठवा—एक प्राचीन राजपूतवंश। पहले ये सौराष्ट्र (वर्त्तमान काठियावाड़) के उपकूलभागमें रहते थे। अति प्राचीनकालमें जेठवाओंने सियालों और नागोंके बीचका स्थान अधिकृत किया था। पीछे मुसलमानों द्वारा ये लोग वहांसे वितारित तो हुए थे, किन्तु शीघ्र ही इन लोगोंने उस स्थानका यथोचित अधिकार कर लिया। बहुत पहले ये घायपुरके पार्श्वस्थप्रदेशमें रहते थे। मोर्वि इन लोगोंकी एक प्राचीन राजधानी थी। पहले काठियावाड़में जेठवा, चूड़ासमा, सोलङ्की और बाला इन चार राजपूत जातियोंका प्राधान्य था। परन्तु अभी काठी आदिके आधिक्य और प्रभुत्वसे उक्त चारों जातियोंकी सत्ता प्रायः घट गई है। जेठवाओंने अपने पूर्व अधिकृत काठियावाड़के पश्चिम और उत्तर भागसे वितारित होने पर पुरबन्दरके पार्श्वस्थप्रदेशमें अधिकार जमाया है। पुरबन्दरके राजा पुरुषेरिय जेठवा कहलाते हैं। जेठवाओंके इतिहासमें लिखा है—जेठवा सङ्गजीने अनहिलवाड़पत्तनके राजा कर्णजीको युद्धमें पराजित कर कैद कर लिया। सिरोही और अन्यान्य प्रदेशके राजाओंके अनुरोधसे कर्णजीके राजा उपाधिका स्वामित्व स्वीकार करने पर सङ्गजीने उनको छोड़ दिया। तभीसे पुरबन्दरके राजाओंने 'राजा'की उपाधि धारण करना छोड़ दिया है।

जेठसूर खाचर—सौराष्ट्रके अन्तर्गत आनन्दपुरके एक राजा। खोटियाकी काठिजातिके खाचरवंशमें इनका जन्म हुआ था। बादशाह महम्मद तुगलकके अत्याचार और गुजरातके सुलतानोंके आक्रमणसे किसी समय आनन्दपुर जनशून्य अरण्य हो गया था। उस समय सुख नामका एक ग्रामवासी भैंस खोजते खोजते वहां पहुंचा था, उसने आनन्दपुरको देख कर काठि सर्दार जेठसूर खाचर और सियाजन खाचरको खबर दी। इस पर इन लोगोंने ऊंचा पर्वतसे आ कर शून्य नगर आनन्दपुर पर कब्जा कर लिया। उस समय इन लोगोंने २० वर्ष राज्य किया। इसके बाद राजमातुलके भ्राता सुख नामा

* Rice—Mysore and Coorg Gazetteer

† General Matthews had his head wrung from his body by a tiger fangs of the Jetties a set of slaves trained up to gratify their master with their infernal species of dexterity.

जन खाचर द्वारा दोनों विताड़ित किये गये। अब भी अनियालि आदि स्थानोंमें इनके वंशज रहते हैं।

मुल् नागा जन खाचर बीच बीचमें आनन्दपुर आ कर २०।२५ दिन रहा करते थे। नगरके तोरणद्वारका एक पत्थर जरा खसक गया था, इसलिए उसके गिरने के भयसे जेठसूर और मियाजन द्वार पार होते समय घोड़े को तेजीसे ले जाते थे। मुल् नागा जनने इनको प्राणभयसे भीत देख कर इनको कायर समझ लिया। एक दिन उन्होंने पांच सौ अश्वारोहियोंके साथ नगर पर आक्रमण किया। जेठसूर और मियाजन दोनों जब अपनी अपनी सम्पत्ति ले कर रातको भाग गये, तब खाचरमूल् और उसके भाई लाखोने (१६८१ सम्वत्‌की पौष शुक्ला २या रविवारको) आनन्दपुर अधिकार कर लिया।

जेठा (हिं० वि०) १ अग्रज, बड़ा। २ सबसे उत्तम, सबसे बढ़ियां।

जेठामल—नारदचरित्र नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता। ये संवत् १८४२के लगभग विद्यमान थे।

जेठाई (हिं० स्त्री०) जेठापन, बड़ाई।

जेठानी (हिं० स्त्री०) पतिके बड़े भाईकी पत्नी, जेठकी स्त्री।

जेठियान—विहार प्रदेशमें गया जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। इसका प्रकृत नाम यष्टिवन है। निकटस्थ पहाड़के ऊपर बांसका जंगल है। उसे अभी भी जखटो वन कहते हैं। यहांके मनुष्य बांसको काट कर गयामें जा बेचते हैं।

ग्रामसे १४ मील दूर तपोवन नामक स्थानमें दो गरम सोते निकले हैं। चीनपर्यटक युएनचुयाङ्ग इस ग्रामको तथा इसके निकटस्थ पहाड़के ऊपर बांसके वनको देख गये हैं। उन्होंने यहांके गरम सोतेका हाल भी लिखा है। उन्होंने इसे बुद्ध वनसे ५ मील पूर्वमें अवस्थित बतलाया है।

जेठी (हिं० वि०) जो जेठ महीनेमें होता हो, जेठ सम्बन्धी। (पु०) २ नदियोंके किनारे पर होनेवाला एक प्रकारका धान। यह चैत्रमें बोया और ज्येष्ठमें काटा जाता है। इसे बोरोधान भी कहते हैं।

(स्त्री०) ३ जेठसे पकने और फूटनेवाली एक प्रकारकी कपास। काठियावाड़में इसे मंगरो कहते हैं और बरारमें जूड़ी या टिकड़ी।

जेठीमधु (हिं० स्त्री०) यष्टिमधु, मुलेठी।

जेठीमल्ल मोड़—मोढ़ ब्राह्मणोंकी एक शाखा। मोढ़ ब्राह्मणोंमें इनका पद गिरा हुआ है। कहा जाता है कि चतुर्वेदी मोढ़ोंमेंसे ३० ब्राह्मण हनूमानकी खोजमें गये थे, जो मार्गमें रह जानेके कारण आचारभ्रष्ट हो गये और कालान्तरमें वे जेठीमल्लमोढ़ कहलाने लगे। जेठीमल्लमोड़ नीच जातियोंको दक्षिणा ग्रहण करते हैं।

जेठौत (हिं० पु०) पतिके बड़े भाईका पुत्र, जेठका लड़का।

जैतपुर (देवली)—बम्बई प्रान्तके काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २२° २८' तथा २२° ४८' उ० और देशा० ७०° ३५ एवं ७०° ५१ पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ८४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ११५६८ है। ३१ गांव बसे हैं। आय कोई १२५०००) रु० है। यह राज्य २० ताल्लुकदारोंके अधीन है।

जैतपुर (वडिया)—बम्बई प्रान्तके काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २१° ४० उ० और देशा० ७१° ५७ पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ७२ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८१३० है। आय कोई १७००००) रु० होती है। इसमें १७ गांव हैं।

जैतपुर (मुल् सुराग)-बम्बई प्रान्तमें काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २१° ३६ तथा २१° ४८' उ० और देशा० ७०° ३६' एवं ७०° ५०' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल २५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६७२८ है। १७ गावोंमें लोग रहते हैं। आय प्रायः ६००००) रु० है।

जैतपुर (नाजकाल या विलाव)—बम्बई प्रान्तके काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २१ एवं २१° २३' उ० और देशा० ७०° ३५' तथा ७०° ५७ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ७२ वर्गमील और लोकसंख्या १०३६६ है। २४ गांव बसे हुए हैं। आय कोई १५०५०००) रु० है।

जैतपुर—बम्बईकी काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीमें

जेतपुर राज्यका सुरक्षित नगर। यह अक्षा० २१ ४५ उ० और देशा० ७० ४८ पू०में भादर नदीके वाम तट पर अवस्थित है। जनसंख्या प्राय १५८१८ है। भाव नगर गोंडाल जूनागढ़ पोरबन्दर रेलवे इस नगरमें लगी है। सरकारी इमारतें खूब हैं। नगरसे १ मील उत्तर भादर नदी पर एक पक्का पुल है।

जैतपुर—१ बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। इस राज्यमें १५० ग्राम लगते हैं। भूपरिमाण १६५ वर्गमील है। राजाके ४० अश्वारोही और १०० पदातिक सैन्य हैं। १८१२ ई०में वृटिश गवर्मेण्टने बुन्देलखण्डके स्वाधीनता संस्थापक छत्रसालके प्रपौत्र केशरीसिंहको यह राज्य प्रदान किया। १८४२ ई०में राजा विद्रोही हो कर अंगरेजी राज्य पर लूटमार करने लगे। इसीसे अंगरेजोंने उन्हें पदच्युत कर छत्रसालके दूसरे प्रपौत्र खेतसिंहको राज्यके शासन पर अभिषिक्त किया। १८४९ ई०में खेतसिंहकी मृत्यु होने पर यह राज्य अंगरेजी साम्राज्यमें मिला लिया गया।

२ जैतपुर राज्यका एक प्रधान शहर। यह कालपीसे ७२ मील दक्षिण और अलाहाबादसे १८० मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां एक बाजार है। मिरगाम जयपि उनके आदेशसे यहां एक तालाब खोदा गया था।

जैतमल—राजा जयमल्लके पुत्र। पिता पुत्र दोनों तुरकवानसे शत्रुओं द्वारा विताड़ित हो कर दांता भाग आये थे। यहां तक शत्रुओंने उनका पीछा न छोड़ा तो उन्होंने माताजीके मन्दिरमें आश्रय लिया। कुछ दिन बाद राजा जयमल्लकी मृत्यु हो गई। राजाकी मृत्युके बाद जैतमल्ल माताजीके मन्दिरमें धन्ना दे कर बैठ गये। बहुत दिन बीत गये, पर उन्हें माताजीने कुछ भी सुनाई न दिया। दूसरा उपाय न देख उन्होंने अपनी आंखें निकाल कर माताजीकी पूजा करनेको उद्यत हुए। उसी समय माताजीने उनको बांह पकड़ कर कहा—'वत्स! शान्त होओ तुम अभी अपने घोड़े पर सवार हो कर शत्रुओंके विरुद्ध चलो मैं तुम्हारी सहायता करूंगी। आज सूर्यास्तके पहले पहल जिन जिन राज्यके भीतरसे तुम घोड़े पर सवार हो कर निकल जाओगे, वे सब राज्य तुम्हारे हस्तगत हो जायेंगे और जिस जगह तुम घोड़ेसे उतरोगे, वही स्थान तुम्हारे राज्यकी सीमा निर्दिष्ट हो जायगी।"

इस बातको सुन कर जैतमल्ल घोड़े पर सवार हो कुछ अनुचरोंके साथ उसी समय निकल पड़े। वे पहले ही शत्रुओंके पास पहुंचे। उन लोगोंको दूरसे मालूम हुआ कि बहुत से अश्वारोहियोंकी सेना उनकी ओर अग्रसर हो रही है। इस भयसे वे शीघ्र ही वहांसे भाग गये। इसके बाद जैतमल्ल सेना यादवोंके पास पहुंचे। माताजीकी क्षमतासे यहां यादवोंको पर्वतको हर एक चोटीमें एक एक घुड़सवार दीखने लगा। वे भी तुरन्त वहांसे भाग गये। सिपाही दम्पतिको अचानक बन्दी कर उनको हत्या की गई। पीछे जैतमल्लने बढ़ते हुए तुरकवान छोड़ा और दुश्मनोंको दूरीभूत किया। समाप्ती पा कर जैतमल्ल बहुत थक गये और घोड़ेसे उतरनेको तैयारी करने लगे। पर देव अनुचरोंने उनको उतरनेके लिए मना किया परन्तु उन्होंने उत्तर दिया—"मैं इतना थक गया हूं कि अब किसी हालतमें मुझसे घोड़े पर बैठा नहीं रहा जाता।" इस लिए वे वहीं उतर पड़े और वहीं तक उनके राज्यको सीमा निर्धारित हो गई। जैतमल्लने 'राणा'की उपाधि धारण की, दांतानगरमें उनकी राजधानी स्थापित हुई। कुछ दिन पीछे ये दो पुत्रों को छोड़ कर स्वर्ग सिधारे। इनके ज्येष्ठपुत्रका नाम राजसिंह था और कनिष्ठका पुञ्ज। जैतमल्ल दांताके एक सर्दार सुनासि बाघेलाकी कन्यासे विवाह किया था।

जैतमलपुर—दिनाजपुर जिलेके ईमरा परगनेका एक प्रधान पल्लीग्राम। यह कांकड़ा और ढोरी नदीके सङ्गम स्थान पर रङ्गपुर राजपथके समीप अवस्थित है। यहां एक बाजार है जिसमें तरह तरहके अन्न बिकते हैं।

जैतवन—प्राचीन अयोध्याके अन्तर्गत श्रावस्तीका एक उपवन। यहां बौद्धों का एक विहार था। बौद्ध ग्रन्थोंमें यह स्थान अत्यन्त प्रसिद्ध है। यहां बुद्धदेव बहुत समय तक रह कर अपने शिष्यों को अवदान प्रभृति शास्त्रादि का उपदेश देते थे।

जेतव्य (सं० त्रि०) जि-कर्मणि तव्य। जेय, जो जीता जा सके।

जैताराम (सं० पु०) जैतवन देखो।

जैतालपुर—अहमदाबादसे १० मील दक्षिणमें अवस्थित एक ग्राम। यहां रानीका वर नामका एक प्रासाद है।

जेतृ (सं० वि०) जि-तृच्। १ जयशील, जीतनेवाला। २ विष्णु। "अनघो विजयो जेता" (विष्णु स०)

जेतव्य (सं० वि०) जि-तव्य। जेतव्य, जीतने योग्य, फतह लायक।

जेदचेरल—हैदराबाद राज्यके महबूबनगर जिलेका पहला तालुक। इसकी लोकसंख्या प्रायः ८६८८६ और क्षेत्रफल ८४६ वर्गमील था। १८०५ ई०को यह दूसरे तालुकोंमें जोड़ दिया गया।

जेनेभा—सुइजरलैण्डका एक नगर और क्याण्टन वा राजनैतिक विभाग। यह जेनेभा ह्रदके दक्षिण-पश्चिम कोणमें अवस्थित है। इसका रकबा १०८.८ वर्गमील है, जिसमें ८८.५ वर्गमीलके भीतर नाना प्रकार द्रव्य उत्पन्न होते हैं। इसके चारों ओर फरासीसी राज्य है। इसके बीचमें पूर्वसे पश्चिमको 'रोन' नदी बहती है। यहां अनेक प्रकारके पशु पक्षी देखनेमें आते हैं।

जेनेभा-काण्टनमें तीन राजनैतिक शासनविभाग हैं। १८१५से १८४२ ई० तक नगर और काण्टन एक ही प्रथासे शासित होता था। किन्तु १८४२ ई०में नगर स्वाधीन हो गया और तबसे शासन परिषद्के ४१ सभ्योंके मतानुसार उसका शासन होने लगा। यहांके शासन कार्यमें Referendum और Initiative नामक दो गणतन्त्रों द्वारा अनुमोदित प्रथा व्यवहृत होती है, जिससे यहांके लोकमतके विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

यहां प्रोटेष्टाण्ट और कायलिक दोनों सम्प्रदायोंके धर्ममन्दिरादि हैं। फिलहाल बहुतोंने कायलिक धर्म ग्रहण किया है और कर रहे हैं। जेनेभा प्राचीनकालसे ही नाना प्रकार व्यवसायका केन्द्रस्थान है। ईसाकी १५वीं शताब्दीके मध्य भागमें इसके उत्कर्षकी सीमा न थी। वर्तमानमें जेनेभा घड़ीके लिए प्रसिद्ध है—यहांकी घडीका सर्वत्र आदर होता है।

जेनेभा आकारमें छोटा होने पर भी यहां बहुतसे प्रसिद्ध व्यक्तियोंने जन्मग्रहण और वास किया है। १६वीं शताब्दीमें कालभिन और थनिभार्डने धर्म जगत्में महा विप्लव उपस्थित किया था। उस समय आइजक कासाउबनकी विद्याकी ख्याति युरोपमें सुप्रतिष्ठित थी। १८वीं शताब्दीमें जे० जे० रूसो इस स्थानमें वास करके इसका गौरव बढ़ा गये हैं। इन्हीं रूसोकी लेखनीसे निकले हुए ज्वालामयी सन्दर्भको पढ़ कर फरासीसियोंने विप्लव में साथ दिया था। इसके सिवा मालसूर, काण्डोल, कौसियर, फैरे और नेकर आदि बहुतसे विद्वानोंने यहां जन्म लिया था। टपफार नामक एक विद्वान्ने सुइजरलैण्डके युवकोंमें पुंसैयुनका माहात्म्य प्रगट किया था।

जेनेभामें मध्ययुगके बहुतसे प्राचीन गिर्जा हैं, जिनकी खूबसूरती तारीफके लायक है।

इतिहास—ईसाकी ७वीं शताब्दीमें इस स्थानका नाम था जेनुया वा जेनाभा। खृ० पू० प्रथम शताब्दीमें जूलियस सीजरने पहले पहल इसका उल्लेख किया था। पांचवीं शताब्दीमें यह बर्गण्डियनोंके हाथ लगा। उन लोगोंने यहां राजधानी स्थापित की थी। १०३२ ई०में अन्यान्य देशोंके साथ यह भी जर्मन सम्राट् २य कनरडके हाथ लगा। कनरडने जेनेभाके बिशपको उक्त स्थानका शासनभार अर्पण किया था। ३०० वर्षसे भी अधिक समय तक जेनेभा बिशपोंके शासनाधीन था। उस समय इसके भीतर और बाहरके शत्रुओंसे आत्मरक्षा करनेके लिए बिशपोंको बड़ी परेशानी उठानी पड़ी थी।

१५२५ ई०में जेनेभामें प्रोटेष्टाण्ट-धर्मका प्रचार हुआ, तभीसे इसके नवयुगकी सूचना हुई। इसी समय कालभिनने जेनेभा आ कर एकछत्र शासन किया था। धर्ममतके लिए उन्होंने स्वाधीनताकी घोषणा कर दी थी, किन्तु वे स्वयं वहां स्वेच्छाचारीकी तरह व्यवहार करते थे। १६३० ई०में जेनेभा साभयके हाथसे सम्पूर्ण मुक्त हो गया।

खृष्टीय १७वीं और १८वीं शताब्दीमें अन्यान्य सुइस-काण्टनोंने जेनेभाको अपने दलमें शामिल करना स्वीकार नहीं किया। जेनेभामें भी नाना प्रकारका अन्तर्विप्लव हुआ था। १७९८ ई०में फरासी-विप्लवके समय जेनेभा फरासीसियोंके हाथमें गया। १८१३ ई०में नेपोलियनका पतन होने पर जेनेभाने स्वाधीनता प्राप्त की। १५३५ से १७९८ ई० तक रोमनिष्ट प्रथाकी उपासना बन्द कर दी गई थी, किन्तु १८०३ ई०से सेण्ट जर्मनके

गिर्जा रोमनिष्ट सम्प्रदायको समर्पण कर दिये गये।

१८४२ ई०में जेनेवामें जो शासनप्रणाली स्थापित हुई थी, वही अब तक चालू है। १८०७ ई०में जेनेवाके गिर्जा और राज्यको पृथक् कर दिया गया था।

जेनेवामें कार्नेगीने एक बड़ा भारी शान्ति मन्दिर बनवा दिया है, जिसमें बैठ कर संसारके श्रेष्ठ राष्ट्र नित्य सब दुनियाके शान्तिके विषयमें आलोचना करते हैं। हमारे देशके श्रीनिवास शास्त्री और लार्ड सिंह भी एक बार उस शान्ति-बैठकमें बुलाए गये थे।

जेनोआ—इटलीका एक प्रदेश और प्रधान बन्दर। समुद्र के कोनसे जेनोआ नगर बड़ा खूबसूरत लगता है। यहां मध्ययुगकी बहुतसी सुन्दर अट्टालिकाएं हैं।

इस बन्दरकी अवस्थानको देख कर अनुमान होता है कि जिस समयसे टिर्हेनियन समुद्रमें गमनागमन आरम्भ हुआ था, उसी समयसे जनसाधारण इससे परिचित हैं। ग्रीकोंने इसके विषयमें कुछ उल्लेख नहीं किया किन्तु ख० पू० चतुर्थ शताब्दीकी एक समाधि यहां मिली है जिससे अनुमान होता है कि ग्रीकोंसे भी यह बिलकुल छिपा नहीं था। जेनु या जानुकी तरहका आकार होनेसे इसका नाम जेनोआ पड़ा है।

ईसासे २१८ वर्ष पहले यहां रोमन लोग आये थे और उसके ७ वर्ष बाद कार्थेजवासियोंने इसका ध्वंस किया था। परन्तु कुछ दिन बाद रोमने पुनः इसकी प्रतिष्ठा की। ष्ट्राबोका कहना है, कि प्राचीनकालसे ही जेनोआसे लकड़ी, चमड़ा, शहद आदिकी रफ्तनी तथा अफिम तेल और शराबकी आमदनी होती थी। रोमन साम्राज्यके ध्वंसके बाद इसकी अवस्था अन्यान्य देशोंकी भांति शोचनीय हो गई थी। कभी लम्बार्ड और कभी कारोलिंजियनोंके आक्रमणसे यह ध्वस्त होता था। जिस समय अरबकी नवजाग्रत शक्तिने यूरोप अधिकार करना प्रारम्भ किया, उस समय जेनोआके देश-निवासिगण उसमें बाधा पहुंचानेके लिए उद्यत हुए। ११वीं शताब्दीमें पीसाके साथ संयुक्त हो कर जेनोआने सार्डिनियासे मुसलमान-शक्तिको विताड़ित करना चाहा। सार्डिनिया पर कब्जा भी हो गया। किन्तु वह किसके अधीन रहे, इस बात पर दोनोंमें झगड़ा हो गया। उस समय भी भिनिसका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था—जेनोआ ही पाश्चात्य जगत्का सर्वश्रेष्ठ वाणिज्यकेन्द्र था। जेनोआने यूफ्रेटिस नदीके किनारे बहुतसे मजबूत बन्दर बनवाए थे। पीछे जब भिनिसका अभ्युदय हुआ तब वह ईर्षासे जेनोआकी शक्ति ह्रास करनेमें प्रवृत्त हुआ।

मध्ययुगमें जेनोआके साधारण लोगोंमें सम्भ्रान्त-वंशीयोंका झगड़ा हुआ करता था, जिससे दोनों ही एक विदेशी सेनापतिको मध्यस्थ बनानेके लिए बाध्य होते थे। और उन विदेशियों पर नगरका शासनभार अर्पण करते थे। परन्तु आश्चर्य इस बातका है कि इतना विवाद विसम्वाद होने पर भी उसकी वाणिज्यशक्तिका ह्रास नहीं हुआ था।

१३८० ई०में गिमोयाके युद्धमें भिनिसके लोगोंने जेनोआको इस तरह पछाड़ा था कि फिर इटलीमें प्राधान्य लाभ न कर सका। १५वीं शताब्दीके अन्त और १६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जेनोआके साहसी नाविक कोलम्बसकी प्रतिभासे अमेरिका आविष्कृत हुआ था। १५२८ ई०में आन्द्रिया डोरियाने जेनोआमें जो शासन प्रणाली प्रवर्तित की थी, वह फरासीसी विप्लवके समय तक अव्याहत थी।

१७४६ ई०में पियासेञ्जायमें पराजयके बाद जेनोआने अष्ट्रियाको आत्मसमर्पण किया। नेपोलियनने जेनोआमें 'लिगुरिया गणतन्त्र' नामसे एक नवराज्यकी प्रतिष्ठा की। किन्तु १८०० ई०के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहा। १८१४ ई०में लार्ड विलियम बेण्टिङ्कको सरोवनामें पा कर जेनोआने फरासीसियोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। जोसेफ माट्सिनीका जन्म जेनोआमें हुआ था, जो कि इटलीके नवयुगके राष्ट्रीय एकताके प्रतिष्ठाता थे। उन्हींकी कोशिशसे जेनोआ इटली राज्यके अन्तर्भुक्त हुआ है।

जेन्ताक (सं० पु०) स्वेदविशेष या रोगीके शरीरका दूषित रक्त आदिको निकालनेके लिए उसके शरीरमें पसीना लानेकी एक क्रिया। इसको साधारणतः भपारा कहते हैं। इसका विषय चरकसंहितामें इस तरह लिखा है—

रोगीको शरीरमें जेन्ताक स्वेद लानेके लिए, पहले

भूमिको परीक्षा करना उचित है। पूर्व वा उत्तरदिशामें विशुद्ध कृष्णवर्ण मृत्तिकाविशिष्ट प्रशस्त भूमिभाग ग्रहण करना जरूरी है और वह भूभाग नदी, दीर्घिका वा पुष्करिणी आदि जलाशयोंके दक्षिण वा पश्चिम उपकूल पर स्थित तथा समान भागमें विभक्त होना चाहिये। यह स्थान नदी आदिसे ७।८ हाथ दूर हो, उसके उत्तरमें पूर्वद्वारी अथवा उत्तर द्वारी एक घर बनवावें। उस घरकी उच्चता और विस्तार १६ हाथ हो तथा उसके भीतर चारों ओर एक हाथ विस्तृत उत्सेधसम्पन्न और एक हाथ उच्च वेदी बनावें। बीचमें ४ हाथ प्रशस्त और ७ हाथ ऊँचा कन्दू (पावरोटी बनानेकी भट्टी जैसे चुल्हो) बनावें, उसमें कुछ छेद कर दे और उसकी एक ढकनी भी बना लें। पीछे उस चुल्हीमें खदिर वा पीपरकी लकड़ी जलावें। जब उस गृहका मध्यभाग स्वेदयोग्य उष्णतासे परिपूर्ण हो जाय, तब रोगीके शरीरसे वातघ्न तैल वा घृत लगा कर तथा उसको देहको वस्त्रसे ढक कर उसे उस घरमें ले जाय। घरमें घुसते समय रोगीको सावधान करके कह देना चाहिये कि—"आरोग्यताके लिए इस घरमें घुस रहे हो, बहुत सावधानीसे उस (पूर्वोक्त) पिण्डिका पर चढ़ कर एक तरफ वा तुम्हें जैसे अच्छा लगे उस तरह सो जाओ। सावधान रहना। कहीं अत्यन्त पसेव वा मूर्च्छासे घबड़ा कर इस स्थानको छोड़ न देना। यदि छोड दोगे तो उसी समय स्वेदमूर्च्छाग्रस्त हो कर उसी समय प्राण गमा दोगे। अतएव किसी भी तरह इसको त्यागना नहीं।" इस प्रकारसे खूब सावधान कर देना चाहिये। इस तरह रोगी स्वेदगृहमें प्रवेश कर जब समुदय स्रोतविमुक्त हो कर घर्माक्रान्त हो जाय और उसके क्लेदकारी समस्त दोष निकल जाय तथा शरीर जब हलका, शून्य और वेदनारहित मालूम हो, उस समय पिण्डिकासे निकाल कर उसे द्वार पर लाना चाहिये। इसके बाद आंखोंमें—स्निग्ध हवाके लिए—शीतल जल डालना चाहिये। इस तरह रोगीकी क्लान्ति मिट जाने पर उसको गरम जलसे स्नान करा कर यथोचित आहार देना चाहिये। इस तरह पसीना निकालनेका नाम जैन्ताक है। (चरक-सूत्रस्थान) स्वेद देखो।

जैन्य (सं॰ वि॰) जि-जन-णिच् बाहु॰ डेन्य। १ जयशील, जीतनेवाला। २ उत्पाद्य, पैदा किये जानेके काबिल। ३ जेतव्य, जीतने योग्य, फतह किये जानेके काबिल।

जैन्यावसु (सं॰ त्रि॰) १ जिसके पास यथार्थमें धन हो। (पु॰) २ इन्द्र, अग्नि और अग्निन्युगलका नामान्तर।

जैप्लिन (ज॰ पु॰) जर्मनीके काउंट जेप्लिन नामक साहबका आविष्कृत एक बहुत बड़ा हवाई जहाज। इसके ऊपरका भाग सिगारके आकार का लम्बोतरा होता है और इसके खानोंमें गैससे भरी हुई बहुत बड़ी बड़ी थैलिया होती हैं। आदमीके बैठने और तोप रखनेके लिये लम्बोतरे चौखटेमें नीचेकी ओर एक या दो सन्दूक लट कते हुए लगे रहते हैं। जितने प्रकारके आकाशयान हैं उनमेंसे जेप्लिनका आकार सबसे बड़ा होता है। विमान देखो।

जेब (फा॰ पु॰) १ छोटी थैली या चकती जो पहननेके कपड़ोंमें बगल या सामने ो ओर लगी रहती है, खीसा, खलीता, पाकिट। २ सौन्दर्य, शोभा, फबन।

जेब उन्-निसा बेगम—बादशाह आलमगीरकी कन्या। १०४८ हिजरामें, तारीख १० सवालको (५ फरवरी, १६३८ ई॰को) इनका जन्म हुआ था। ये अरबी और फारसी भाषामें विज्ञ थीं। तमाम कुरान इनको कण्ठस्थ था। इन्होंने जेब-उल तफसीर नामक कुरानको एक टीका लिखी थी। इनके हस्ताक्षर बहुत ही उमदा और साफ थे। ये अच्छी कविताएं बनाती थीं, फारसीमें इन्होंने एक दीवान (काव्य) बनाया है। ये चिरकुमारी थीं। १११३ हिजरा (१७०२ ई॰)-में इनकी मृत्यु हुई। दिल्लीके काबुल दरवाजेके पास इनकी कब्र बनी थी। राजपूतानामें लोहेका दरवाजा बनते समय इनकी कब्र तुड़वा दी गई। जेब-उन् निसा बेगम मखफी नामसे ही प्रसिद्ध थीं।

जेबकट (फा॰ पु॰) गिरहकट, जेबकतरा।

जेबकतरा (हि॰ पु॰) जेबकट देखो

जेबखर्च (फा॰ पु॰) वह धन जो किसीको निजके खर्चके लिये मिलता हो और जिसका हिसाब लेनेका किसीको अधिकार न हो।

जेबघड़ी (हिं॰ स्त्री॰) जेबमें रखी जानेकी छोटी घड़ी, वाच।

जेबदार (फा॰ वि॰) शोभायुक्त, सुन्दर।

जीबो (फा॰ वि॰) १ जो जीबमें रखा जा सके। २ बहुत छोटा।

जेब्रा (Zebra)—यूरोपीय प्राणितत्त्वविदोंने जेब्राको इकुइडि (Equidae) जातिके अन्तर्गत बतलाया है। इस जातिके पशुओंको अग्रपद टांगके नीचेके भागमें तीक्ष्ण खुरसे आच्छादित व शुक्तिवत् एक पदार्थ है तथा कान और पोंछके नीचे दोनों तरफ दो छोटे छोटे अङ्गुलियोंके चिह्न हैं। इनके दांतोंकी संख्या इस प्रकार है— छेदनदन्त ६ तीक्ष्णदन्त ११ पेषणदन्त ३३—४२।

इकुइडि जातिके अन्तर्भुक्त पशु पृथिवी पर सर्वत्र नहीं मिलते। कोई कोई कहते हैं कि, इस जातिके अन्तर्गत घोड़े आदि जितने भी चौपाये जानवर वर्तमानमें दिखाई देते हैं पहले वे सब जेब्रा क्वागा आदिकी तरह किसी स्थानमें निबद्ध थे।

इकुइडि (Equidae) जाति दो श्रेणियोंमें विभक्त है, इकुयस (Equus) और असिनस (Asinus)।

असिनस श्रेणीके अन्तर्गत पशुओंकी पूंछका अग्रभाग सूक्ष्म लोम और अपेक्षाकृत दीर्घ लोमोंसे ढका रहता है। लांगुलका प्रान्तदेश गुच्छयुक्त होता है। घोड़ोंके सामनेके पैरों पर जहां उपलोम रहता है, इनके भी उस स्थान पर लोमका एक कठिन खण्ड है, किन्तु पीछेकी टांगोंमें नहीं है।

इनके शरीरका रंग सब का प्रायः एकसा है। पीठ पर लम्बी काली धारियां हैं। स्थानानुसार इस श्रेणीके जन्तुओंकी आकृति कुछ छोटी बड़ी हुआ करती है। शीतप्रधान देशके जैसा उष्णप्रधान देशके जेब्राओंके कुछ छोटे और अधिक लोमयुक्त होते हैं।

जेब्राको असिनस श्रेणीके अन्तर्गत समझना चाहिये। इसका रंग सफेद है, मस्तक शरीर और पैरोंके खुर तक सर्वत्र काली धारियां खिंची हुई हैं, नाक ललाई को लिये सफेद है पेट और पुट्ठोंके भीतरके हिस्सेमें किसी तरहकी धारियां नहीं हैं, पूंछका शेषभाग काला है। इनके खुर अप्रशस्त हैं और उनके नीचेका भाग पोला और कूर्मपृष्ठाकार है। इनके मस्तककी खोपड़ी किञ्चित् गोलाकार है। इनकी पूंछका शेषभाग दीर्घ केशविशिष्ट और घोड़ेकी टांगें अपेक्षाकृत लम्बी हैं। इनकी गरदन अर्द्धगोलाकार और गरदनके बाल खड़े होते हैं। इनकी पैरसे कंधे तककी ऊंचाई १२ हाथ है। ये मोटे नहीं होते और देखनेमें खूबसूरत लगते हैं। इनके कान लम्बे और ऐंठे हुए होते हैं। इनको गरदन और टेह पर आड़ी धारियां हैं मस्तक और पैरोंकी रेखा तिरछी आड़ी अनियमित रूपसे हैं। जेब्रा दक्षिण अफ्रिकाके पार्वत्य प्रदेशमें रहते हैं। ये छोटी छोटी टोली बना कर निर्जन स्थानमें रहना पसंद करते हैं। ये ऐसी जगह रहते हैं जहां अन्य लोगोंका आना जाना नहीं होता।

इनकी दर्शन, आघ्राण और श्रवण-शक्ति अति आश्चर्य जनक है। जरासा शब्द सुनते ही ये चौंक कर भागने लगते हैं। ये अत्यन्त डरपोक जानवर हैं भागते वक्त कान और पूंछ उठा कर अत्यन्त द्रुतवेगसे दौड़ते और पर्वतके दुरारोह स्थान पर चले जाते हैं। ये ऐसी जगह पहुंच जाते हैं, जहां शिकारी लोग जा ही नहीं सकते। ये जब टोली बांध कर फिरते हैं तब यदि कोई इन पर आक्रमण करे तो ये एक दूसरेसे सट कर खड़े हो जाते हैं, सबका मुंह एक तरफ रहता है और आक्रमणकारी पर सब मिल कर लातें फेंकते हैं। ये शत्रु पर इतने साहस और वेगसे आक्रमण करते हैं कि उन्हें पराजित हो कर तुरन्त ही वहांसे भागना पड़ता है। ये लातोंकी चोटसे सिंह और व्याघ्र तकको दूर भगा देते हैं। बचपनसे पालनेसे यह जानवर मनुष्यकी अधीनता मान तो लेता है *पर स्वाभाविक प्रवृत्तिको छोड़ कर गाय-भैंसोंकी तरह* सम्पूर्णरूपसे मनुष्यके वशमें नहीं आता। कुछ भी हो, जेब्रासे भारवाही पशुओंका काम तो निकल ही आता है। दक्षिण अफ्रिकाके लोग इसका मांस भक्षण करते हैं।

जेब्रा।

जेब्राके साथ गर्दभ और घोड़ेके संमिश्रणसे एक प्रकारके नूतन जीवकी सृष्टि होती है। जेब्राओंकी प्रकृति गर्दभके समान है, घोड़े जैसी नहीं।

घोड़ेकी पूंछसे और जेब्राकी पूंछमें कुछ अन्तर है—घोड़ेकी पूंछ पर सर्वत्र बड़े बड़े बाल होते हैं, किन्तु जेब्राकी पूंछका शेषभाग ही दीर्घ रोमावृत होता है। इसके सिवा घोड़ेके अयाल लम्बे और दोदुल्यमान होते हैं, किन्तु जेब्राके अयाल छोटे और सीधे होते हैं। इनके वर्णमें भी पार्थक्य दिखलाई देता है। घोड़ेके शरीर पर चमड़ेके साधारण रंगसे भिन्न वर्णके गोलाकार चिह्नोंका क्रम है, किन्तु जेब्राके शरीर पर सर्वदा ही धारियोंका आभास पाया जाता है।

जेब्रा समतल भूमि पर विचरण करते और घास खा कर जीते हैं।

दक्षिण अफ्रिकाकी प्रान्तरभूमि पर एक प्रकारका जेब्रा मिलता है। केपटाउन प्रदेशके लोग उस पर सवार हो कर बाजारमें बेचने लाते हैं। यहांकी जेब्रा अत्यन्त दुष्ट और चञ्चल होते हैं।

प्रसिद्ध यूरोपीय प्राणितत्त्वविद् मि० वाफनका कहना है कि, चौपाये जानवरोंमें जेब्रा सबसे अधिक सुन्दर होता है। इसका आकार घोड़ेकी तरह सुहावना, गति मृगकी तरह चिप्र और चमड़ी सार्टिनकी भांति चिकनी होती है। नर जेब्राओंके शरीरकी धारिया काली और पीली किन्तु अत्यन्त उज्ज्वल होती हैं और मादा जेब्राकी रेखाएं काली और सफेद। जेब्रा तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं। पार्वत्य प्रदेशके जेब्रा सबसे सुन्दर होते हैं और उनके तमाम शरीर पर धारिया होती हैं। ये दक्षिण अफ्रिकाके पर्वतों पर रहते हैं और अकसर करके समतल भूमि पर नहीं आते। ये जेब्रा बिलकुल जंगली और दुरारोह पर्वत पर विचरण करते हैं। ये जब दल बांध कर फिरते हैं, तब इनमेंसे एक जेब्रा किसी ऊंचे स्थान पर जा कर पहरा देता रहता है और शत्रुके आगमनका जरा भी सन्देह होते ही तुरंत एक आवाज करता है जिससे सबके सब खूब जोरसे भागने लगते हैं। फिर उन्हें कोई भी नहीं पकड़ सकता। अन्य श्रेणीके जेब्राको 'बर्चेल-जिब्रा (Burchell's Zebra) कहते हैं। ये केपटाउनके निकटवर्ती मालभूमि पर रहते हैं। इनके शरीरकी धारिया श्वेत और पिङ्गल वर्ण होती हैं। पिङ्गल वर्णको धारियोंको देखनेसे ऐसा मालूम होने लगता है, मानो दोके बीचमें एक एक धूसर वर्णकी धारियां हैं। इनके पैर सफेद होते हैं। अन्यान्य अंशोंमें यह जेब्राके समान ही होता है।

जेब्रा सूर्यास्त और सूर्योदयके मध्यवर्ती समयमें झरनेका पानी पीने जाते हैं। इसी समय सिंह झरनेके आस पास छिपे रह कर इन पर आक्रमण करता है। कहा जाता है कि, ज्योत्स्ना रात्रिको सिंह जेब्राके शिकारके लिए नहीं निकलता, क्योंकि प्रकाशमें जेब्रा सिंहको देख कर दूरसे ही भाग जाते हैं।

जेमन् (सं० वि०) जि मनिन। १ जयशील, विजयी, जीतनेवाला। (पु०) २ जेतुर्भावः। जय, जीत। ३ जय सामर्थ्य। "जेमा च महिमा च" (शुक्लयजु. १८।४)

जेमन (सं० क्लो०) जिम-भावे ल्युट्। भक्षण, जीमना, भोजन करना।

जेय (सं० वि०) जीयते इति। अचो यत्। पा ३।१।९७। जि कर्मणि यत्। जेतव्य, जीतनेयोग्य जो जीता जा सके।

जेर (हिं० पु०) १ वह झिल्ली जिसमें गर्भगत बालक रहता और पुष्ट होता है। २ सुन्दरवनमें मिलनेवाला एक पेड़। इसकी लकड़ीसे मेज, कुरसी, आलमारी इत्यादि बनती है।

जेर (फा० वि०) १ परास्त, पराजित। २ जो बहुत तङ्ग किया जाय।

जेरटखाना—सुन्दरवनका एक अंश। शाह सुजाकी संशोधित राजस्वतालिकामें मुरादखाना वा जेरटखानाके नामसे इसका उल्लेख हुआ है। यह अंश वर्तमान बाखरगंज जिलेके अन्तर्गत था। शाह सुजाके समयमें इसकी मालगुजारी ८४५४) रुपये थी।

जेरपाई (फा० स्त्री०) १ स्त्रियोंके पहननेकी जूती, स्लीपर। २ साधारण जूता।

जेरबन्द (फा० पु०) कपड़े या चमड़ेका तस्मा जो घोड़ेकी मोहरीमें लगा रहता है।

जेरबार (फा० वि०) १ जो आपत्ति या दुःखसे घिरा हो, जो आपत्तिके कारण बहुत तङ्ग और दुःखी हो गया हो। २ क्षतिग्रस्त, जिसको बहुत हानि हुई हो।

जेरबारी (फा॰ स्त्री॰) १ आपत्ति या क्षतिके कारण बहुत दुःखी होनेकी क्रिया। २ हैरानी, परेशानी।

जेरी (हिं॰ स्त्री॰) १ कँटीली झाड़ियाँ इत्यादि हटाने या दबानेके लिये चरवाहेकी लाठी। २ फर्दके पाबारका चीतोका एक औजार।

जेरुसलेम (Jerusalem)—पालेष्टाइनका प्रधान नगर और ईसाइयोंका परम पवित्र तीर्थ। यह अक्षा॰ ३१ ४० उ॰ और देशा॰ ३५ १२ पू॰के मध्य भूमध्यसागर तटसे २५०० फुटकी ऊँचाई पर एक निकटस्थ उपभूमिसे २८ मील पूर्व और मृतसागरसे मिलनेवाली जर्डन नदीके मुहानेसे २१ मील पश्चिममें अवस्थित है। यह यहूदियोंके गौरवमय युगकी प्रधान कीर्ति होनेके कारण यूरोप और अमेरिकाके यहूदी लोग अब इसे अपने अधिकारमें लाना चाहते हैं। मुसलमानोंका भी बहुत समय तक इस पर अधिकार रहा है। इस तरह तीन प्रसिद्ध धर्मोंका केन्द्र स्थल हो कर जेरुसलेम अब भी जन-समाजमें पूजित है।

मिसरमें खृष्ट-पूर्व १५वीं शताब्दीकी जो तेल-एल अमार्न लिपिमाला मिली है, उसमें जेरुसलेमका उरुसलीम (या सलीमका नगर अर्थात् शान्ति नगरी)—के नामसे उल्लेख है। इससे प्रमाणित होता है कि यह नगर 'जोशुआ'के अधीन इसराइलियोंके कानानमें प्रवेश करनेसे बहुत पहले बसा था। 'जोशुआ'के ग्रन्थमें ही सबसे पहले जेरुसलेमका नाम पाया जाता (Jos 10' 1663) है। उस जगह जेरुसलेमके अधिवासियोंको जेबुसाइट कहा गया है। रोमक सम्राट् हाड्रियनने १३५ ई॰में इस नगरीका पुनः संस्कार किया और 'कपितोलिना' नाम रख दिया। दामस्कसके गणोंकाने भी इसी नामका व्यवहार कर गये हैं क्योंकि उनके सिक्कोंमें 'एलिया' नाम पाया जाता है। ईसाकी १०वीं शताब्दी तक इसका यही नाम था इस बातका प्रमाण यूटिकियसके विवरणसे मिल सकता है। ईसाकी १०वीं शताब्दीसे लगा कर ११वीं शताब्दी तक यह मुसलमानोंको अपनी भाषामें 'बैत-उल-मुकद्दस' (अर्थात् 'पवित्र पुरी') नामसे परिचित था। इसका आधुनिक नाम एल कुद्स एस् शरीफ अर्थात् "पवित्र पुरी और सुन्दर नगरी" है। साधारणतः अब 'एल कुद्स' कहलाता है, किन्तु यहांके ईसाई और यहूदी अधिवासिगण अब भी इसे जेरुसलेम ही कहा करते हैं।

१२४४ ई॰में जेरुसलेम मुसलमानोंके अधिकारमें आया और फिर १५१७ ई॰में यह तुर्कियोंके कब्जेमें हुआ। गत महायुद्धके समय ब्रिटिश शक्तिने इस पर कब्जा करनेका निश्चय किया। तदनुसार तुर्कियोंने बाध्य हो कर १८१७ ई॰तारीख ८ दिसम्बरको इसे ब्रिटिश गवर्नमेण्टको दे दिया। जेरुसलेमकी वर्तमान जनसंख्या ६२५७८ है। इससे पाँच मील दक्षिणमें बेथेलहम है, जहां राजा डेविड् और ईसा मसीहका जन्म हुआ था। बेथेलहम पल्लीके पूर्वप्रान्तमें जो गिर्जा है वह ईसाइयोंके उपासनागृहोंमें सबसे प्राचीन है। वर्तमान जेरुसलेममें Anglo Egyption Bank की एक बड़ी शाखा स्थापित है।

दर्शनीय स्थान—यह नगर प्राचीन कालमें जहां था, अब भी वहीं है, सिर्फ प्राचीन नगरीका दक्षिणभाग रोमक सम्राट् हाड्रियनकी दीवारके बाहर पड़ गया है। किन्तु आधुनिक प्रत्नतत्त्वविदोंके प्रयत्नसे अब पुरातन नगरीका सम्पूर्ण भाग हमारे दृष्टिगोचर होता है।

(क) सियन पर्वत—इसके चारों ओर नहर खोदी गई है। इसकी ऊँचाई करीब २५०० फुट है। जेरुसलेमके पर्वतोंमें यही सबसे ऊँचा है। (ख) मोरिय पर्वत। (ग) एक्र पर्वत।

इतिहास—पृथिवी पर जेरुसलेमके समान प्राचीन नगर बहुत कम ही नजर आते हैं। हमें इसकी सभ्यताका धारावाहिक इतिहास प्रायः ४००० वर्ष तकका मिल सकता है। बहुत प्राचीनकालसे ही इसने जगत्में गौरवका आसन अधिकार कर रक्खा है।

जेरुसलेम प्रथम अवस्थामें, कानानके नगरोंकी तरह, बाबिलोनकी अधीनतामें था। पश्चात् इसने मिसरकी प्रभुता स्वीकार की थी। ईसासे पूर्वकी पन्द्रहवीं शताब्दीमें जब इसराइल स्वाधीनता प्राप्त करनेका स्वप्न देख रहे थे उस समय खाबिरी नामक एक योमिय जातिने हित्तियोंकी सहायतासे जेरुसलेम अधिकार कर लिया। उस समय मिसरके अधिपति आद

हिवाने विपद्की आशङ्कासे मिसरके सम्राट् एमीनोफिस-को सहायताके लिए तर-ऊपर छ पत्र भेजे। किन्तु मिसर उस समय अन्तर्विप्लवमें व्यस्त था—वह कुछ भी सहायता न दे सका। अतएव जेरुसलेमका भी पतन हुआ। सम्भवतः इसी समय जेरुसलेम पर जेबूसाइटों-का अधिकार हुआ था; उन्होंने इसे जेबू नामसे प्रसिद्ध किया था।

हिब्रू लोग जिस समय इस देशके निकटवर्ती हुए, उस समय जेबूके राजा एडोनिसिडेक थे। इजराइलके विरुद्ध काननके पाँच राजाओंके एक साथ अभियान करने पर वे मारे गये। किन्तु जेरुसलेमका किला इतना मजबूत था कि राजाकी मृत्युके बाद भी उसने अपनी स्वाधीनताकी रक्षा कर ली। पीछे जब इजराइलके लोगोंने इस देशका बटवारा कर लिया, तब जेरुसलेम बेञ्जामिनके वंशधरोंके हस्तगत हुआ। परन्तु वे वहां यथार्थ अधिकार न फैला सके। उन लोगोंने उक्त नगरीके निम्नभागमें बड़ा अत्याचार किया था—आग लगा कर प्रजाको जलानेकी कोशिश की थी, परन्तु किसी तरह भी वे नगर पर कब्जा न कर सके।

डेभिडने इजराइलकी बारह शाखाओं पर आधिपत्य विस्तार करके जेरुसलेम अधिकार करनेका संकल्प किया। उनकी इच्छा थी, कि जेरुसलेमको ही अपनी जातिका राष्ट्रनैतिक और धर्मसम्बन्धीय केन्द्र बनावें। हेब्रनके पास उन्होंने अपनी शक्ति एकत्र की और जेबूकी तरफ चल दिये। वहांके लोगोंने सोच रक्खा था कि 'हमारा दुर्ग अभेद्य है, इसलिए बाधा देनेकी कोई आवश्यकता नहीं।' किन्तु डेभिडने अपने अदम्य उत्साहके फलसे जेरुसलेम पर कब्जा कर लिया।* डेभिडने सियनका पर्वत अधिकार कर लिया और वहीं रहने लगे। उसका नाम रक्खा गया 'डेभिडका नगर'। (II kings v. 7. 1.) यह घटना ईसासे प्रायः १०५८ वर्ष पहले हुई थी। इसके बाद डेभिडने मोरिया पर्वत पर उपासना-मन्दिर बनवानेके लिए द्रव्यादिका संग्रह किया, किन्तु इस कार्यको वे अपने सामने पूरा न कर सके थे।

उनके पुत्र सुलेमानने अपने राज्यके चौथे वर्षमें यह काम शुरू कराया। टायरके राजा हीरमने इसके लिए कुछ सुदक्ष शिल्पियोंको भेजा था, उनकी सहायतासे यह काम पूरा हुआ। इस मन्दिरके लिए ७० हजार लकड़ी ढोनेवाले और ८० हजार पत्थर ढोनेवाले मजदूर नियुक्त हुए थे। साढ़े सात वर्षके कठोर परिश्रमके बाद यह मन्दिर बन कर तयार हुआ था। इसके बाद जेरुसलेममें इन्होंने तेरह वर्ष तक "लेबननकी वनवाटिका" और प्रासाद आदिका काम जारी रक्खा। सुलेमान मन्दिर आदि बनानेके लिए इतना अधिक कर लेते थे, कि प्रजा उसे अपने ऊपर अत्याचार समझती थी।

सुलेमानके पुत्र रावोयम जब राजगद्दी पर बैठे, (८८१—८६५ खृष्टपूर्वाब्द) तब उनके गर्वित व्यवहारसे प्रजा विरक्त हो गई और विद्रोह फैल गया। बारह शाखाओंको एकत्र कर डेभिडने राज्य स्थापन किया था, जिनमेंसे १० शाखाओंने जेरुसलेमसे अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। रोबोयम सिर्फ बेञ्जामिन और जूडा शाखाके अधिपति बन कर जेरुसलेममें रहने लगे। नव-गठित विद्रोही राज्यके राजा जेरोबोयमने अपने प्रति-द्वन्द्वीको क्षमताका ह्रास करनेके लिए मिसरके फेरोआ (राजा) शेशङ्कको निमन्त्रण दिया। शेशङ्कने जूडा जीत कर जेरुसलेम पर अधिकार कर लिया और वहांके असंख्य मन्दिरोंको लूट कर मिसर लौट गये। उसके बाद जेरुसलेमके राजा आसा (८६१--८२१ पू० खृ०) और जोसफतने (८२०—८८४ पू० खृ०) निकटवर्ती स्थानोंको जीत कर जो अर्थ संग्रह किया था, उससे मन्दिरोंकी पुनः श्रीवृद्धि की। किन्तु इसके बाद फिलिष्टाइनोंने दक्षिण प्रदेशके अरबियोंसे मिल कर पुनः मन्दिरोंका धनरत्न लूट लिया। इसके बाद रानी एटालियाने अपने पौत्रको मार कर जेरुसलेमका सिंहासन अधिकार किया। किन्तु वहांके लोगोंने छ वर्ष बाद पत्थर फेंक कर उन्हें मार डाला और जोयसको राजा बनाया। जोयसने (८८६—४१ पू० खृ०) पुनः मन्दिर बनवाये और 'बाल' नामकवि देशीय देवताकी पूजा

* Maspero—The Struggle of The Nations, P 725-727,

बन्द करा दी। बादमें इनकी बुद्धि ठिकाने न रही। इन्होंने अपने रक्षाकर्त्ता और भविष्यद्वक्ता पुत्र जाकारियाको मार डाला और खुद भी नौकरोंके हाथ मारे गये। अमेसियाके राजत्वकालमें उत्तरके इसराइलीयोंने दक्षिणके इसराइलोंको पराभूत किया और जेरुसलेमकी ४०० हाथ दीवार तोड़ दी। इसके बाद जेरुसलेमके राजा ओजियसने पुनः (८११—७५० ख्रृ॰ पू॰) दीवारका संस्कार कराया और तोरण द्वारा उसके सुरक्षित करनेकी व्यवस्था की। इनके पुत्र जोआथम (७५८—४४ ख्रृ॰ पू॰) सुशिक्षित और साधुहृदय व्यक्ति थे और उन्होंने नगरको शक्ति बढ़ानेके लिए यथासाध्य प्रयत्न भी किया था।

जिस समय सिरिया और इसराइलके राजाओंने मिल कर जेरुसलेमके विरुद्ध युद्धयात्रा की उस समय भगवान्‌ने धर्मवीर महापुरुष इसायाको राजा आकाजके (७३१ २१ ख्रृ॰ पू॰) पास भेजा। ईसायाने राजासे शत्रुओंसे सावधान होनेके लिए कहा और भविष्यद्वाणी की कि इम्मानुएल एक कुमारीके गर्भसे जन्मग्रहण करेंगे। आकाजने मन्दिरोंकी सम्पत्ति आसीरियाके राजा टिगलथ पालसिसरको घूसमें दी; इस उम्मेद से कि आसीरिया उनको सिरिया और इसराइलके आक्रमणसे रक्षा करेगा। किन्तु धर्मवीर ईसायाने उन्हें अपनी शक्ति पर भरोसा करनेके लिये कहा था। आकाज यहां तक विधर्मी हो गये कि उन्होंने जिहोवाकी पूजा बन्द करा कर बाल-मोलकको पूजा चला दी।

उसके बाद एजेकियाने (७२७-६९६ ख्रृ॰ पू॰) मूर्त्तिपूजाको बन्द करनेके लिए जोरोंका आन्दोलन शुरू किया। इसराइलके ध्वंसको देख कर ये डर गये और वहां दूसरी दीवार बनवा दी। इन्होंने मिसरके राजा और बाबिलनके मेरोदक बालादनके साथ सन्धि करके आसीरियाको कर देना बन्द कर दिया। इस पर आसीरियाके प्रबल पराक्रान्त राजा सेनाकेरिबने पालेस्टाइन पर आक्रमण किया और अपने प्रधान प्रधान सेनापतियोंको जेरुसलेम भेज दिया। ईसायाके परामर्शानुसार जेरुसलेमके राजा अन्तियाने आत्मसमर्पण करनेके लिए तैयार न हुए। इन्होंने शत्रुपक्षको जिससे पीनेके लिये पानी न मिले,

इसका भी बन्दोबस्त किया। आसीरियाको एक लिपिसे पढ़नेसे ज्ञात होता है कि सेनाकेरिबने जेरुसलेमके एजेकियाको चिड़ियाकी तरह सींकचोंमें कैद कर रखा था। इस लिपिके साथ बाइबिलमें वर्णित घटनाओंका भी समावेश है। पीछे महामारीके फैल जानेसे सेनाकेरिबकी फौज बरबाद हो गई। इस पर सेनाकेरिबने पुनः सेना भेजी और जेरुसलेमको वश किया। इसीलिये आसीरियाके शिलालेखमें एजेकियाके पुत्र मानासेसको अधीन नरपति कहा गया है। ६६६ ई॰में कुछ अरसे मानासेसने स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये कोशिश की थी, किन्तु ६६६ ई॰में असुरबनिपालके सेनापतिने जेरुसलेममें आ कर राजाको गिरफ्तार किया और उसी अवस्थामें उन्हें बाबिलन भेज दिया। पीछे मानासेस किसी तरह छुटकारा पा कर जेरुसलेम लौट आये और नगरकी दीवारको खूब मजबूत बना लिया (II Par XXX III 12—16)

इसके पुत्र जोसियसने भविष्यद्वक्ता महापुरुष जेरेमियाके उपदेशानुसार पुनः मूर्त्तिपूजाका प्रचार बन्द किया और मन्दिरका जीर्णोद्धार (६२१ ई॰में) कराया। ६०८ ई॰में जब मिसरके फारोआ २य नेचोने आसीरियाके विरुद्ध युद्धयात्रा कर रहे थे उस समय जोसियसने अपने प्रभुकी रक्षाके लिये उनको बाधा दी, किन्तु मिगिदोके युद्धमें ये मारे गये। ६०१ ई॰में बाबिलनके अधीन युवराज नेबुचदनसर जेरुसलेम आये और वहां प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियोंको बन्दी कर बाबिलन ले गये। साथ ही युवक धर्मवक्ता दानियल भी बाबिलनको पहुंचाये गये। जोयसिमने आत्मसमर्पण किया था। किन्तु बाबिलनके दूरदर्शी सम्राट् इस बातको अच्छी तरह समझ गये थे कि जेरुसलेम बहुत बन्द शक्तियांसे घेरा जाता है, उसका ध्वंस किये बिना निश्चिन्त नहीं हो सकते। इसलिए उन्होंने जेरुसलेमको तहस नहस कर डाला और दस हजार आदमियोंको कैद करके बाबिलन पहुंचा दिया। परन्तु इतना निर्यातन होने पर भी उनकी स्वाधीनताकी स्पृहा न घटी, उसने पुनः विद्रोह खड़ा किया। इस पर नेबूकादनसरके सेनापति नाबूजारदनने एक बड़ी भारी सेनाके द्वारा जेरुसलेम घेर लिया। करीब

डेढ़ वर्ष तक यह विराव जारी रहा। अन्तमें वाध्य हो कर जेरुसलेमको आत्म-समर्पण करना पड़ा। मन्दिर, प्रासाद और प्रधान प्रधान स्थानोंमें आग लगा दी गई— नगरको हर तरहसे बरबाद करनेकी कोशिश की गई। पूजाके पवित्र उपकरण और सर्व प्रकार बहुमूल्य पदार्थ वाविलन भेज दिये गये। यहूदीगण सिर्फ अपने परम पवित्र Ark of the Covenantको छिपा सके। इस पराजयसे यहूदियोंकी बड़ी दुर्दशा हुई। जेरुसलेमके प्रायः सभी लोग मारे गये, सिर्फ कुछ कृषक और दरिद्र व्यक्ति एक यहूदी शासनकर्त्ताके अधीन अपना निर्वाह करने लगे। बाइबिलमें इसी घटनाके समयका 'बाबिलनका बन्दी युग' के नामसे उल्लेख किया गया है।

ईसासे ५३६ वर्ष पहले पारस्यके राजा कायरसने यहूदी बन्दियोंको पालेष्टाइन लौट जानेका आदेश दिया था। उन लोगोंने लौटतेके साथ ही पहले भगवान्‌का मन्दिर बनवाया था। पहली बार ४२००० यहूदी जेरुसलेम लौटे थे। पीछे आर्टाजरक्सेसके समयमें (४५८ खृ० पू०) और भी १५०० यहूदियोंने आ कर इजराइलके धर्म और राष्ट्रके स्वातन्त्र्यको रक्षाके लिए तन मन अर्पण किया।

इसके बाद, दो सौ वर्षसे भी अधिक समय तक जेरुसलेमने पारस्यकी अधीनतामें शान्तिपूर्वक अवस्थान किया। पीछे ३३२ ई०में महावीर सिकन्दर शाह पारस्य साम्राज्य अधिकार करनेके बाद जेरुसलेम पर कब्जा करने पहुंचे। जेरुसलेमके पुरोहितोंने यह समझ कर कि बाधा देनेसे कोई लाभ नहीं, आत्मसमर्पण किया। सिकन्दरशाहने यहूदियोंको किसी तरहकी तकलीफ न दी थी। किन्तु इसके बाद जब उत्तराधिकारके विषयमें विवाद उपस्थित हुआ, तब फिर जेरुसलेमकी बुरी हालत हो गई। ३०५ ई०में टलेमी सोतारने कौशलसे नगरमें प्रवेश किया और कुछ यहूदियोंको कैद करके मिसर ले गये।* इससे एक सौ वर्ष बाद महावीर अन्तिओकसने इसे अपने अधिकारमें कर लिया। सलुकीद वंशके राजाओंने जेरुसलेममें ग्रीक सभ्यताका प्रचार करना चाहा था। किन्तु इसी समय वहांके पुरोहितोंमें परस्पर रक्तपात प्रारम्भ हो गया। उपद्रव दमन करनेके बहाने अन्तिओकस इपिफानिसने (१७० खृ० पू०में) नगरमें प्रवेश कर दुर्ग और प्राकार तोड़ डाला; मन्दिरके पवित्रतम उपकरणोंको हड़प कर गये; ४० हजार मनुष्योंको निहत किया और करीब ४ हजार लोगोंको कैद करके साथ लेते गये। दो वर्ष बाद उन्होंने फिर अपने सेनापतिको जेरुसलेम भेजा और आदेश दिया कि बल पूर्वक यहूदी धर्मका दमन करके किसी भी तरह ग्रीकोंके देव-धर्मका प्रचार होना चाहिये। फिर क्या था, यहूदी लोग अपने धर्मके लिए सर्वत्र निर्यातित होने लगे। भगवान्‌के पवित्र मन्दिरमें जुपितारकी मूर्त्ति स्थापित हुई।

मन्दिरके पुरोहित माथाथियस और उनके पांच पुत्रोंने इस अत्याचारके विरुद्ध खड़े होनेका संकल्प किया। जूदाने अपने पिताकी मृत्युके बाद सिरियाकी सेनाको चार बार पराजित किया और जेरुसलेममें अपना आधिपत्य विस्तार कर मन्दिरका पुनः निर्माण कराया। इन्होंने दीवार बनवाई तो सही, पर दुर्गका मध्यस्थल ये सिरियोंसे न ले सके। सिरियोंके साथ बदस्तूर लड़नेके लिए इन्होंने रोमके साथ मित्रता कर ली। इनके भाई जोनाथन भी अपूर्व वीरताके साथ युद्ध करने लगे; किन्तु अन्तमें वे विश्वासघातकके हाथसे मारे गये। इनके भाई सिमनने तीन वर्ष बाद आक्रासे सिरियोंको भगा दिया। उस दुर्गको भी जो पहाड़के ऊपर था, मिट्टीमें मिला दिया। इस विराट् कार्यके लिए जेरुसलेमके समस्त स्त्रीपुरुषोंको तीन वर्ष तक कठोर परिश्रम करना पड़ा था। द्वितीय डिमेत्रियस और उनके बाद अन्तिओकस् सिदेतिसने यहूदियोंको स्वाधीनता स्वीकार किया था।

इसके बाद कुछ समय तक यहूदी लोग जेरुसलेममें शान्तिसे रहे थे। उनके राजा अरिष्टोबुलसने सबसे पहले राजा और पुरोहित इन दोनों पदोंको एक साथ ग्रहण किया था। ईसासे ६५ वर्ष पहले रोमन वीर पम्पेने जेरुसलेम जा कर सब तरहका गड़बड़विवाद मिटा दिया। इसी समय मौका देख कर उन्होंने जेरुसलेमको रोमका करद राज्य बना लिया।

* Antiq Ind. XII, II.

इन्होंने इस नगरकी जो दीवार तोड़ डाली थी, उसे पुन बनवानेके लिए आदेश दिया। किन्तु ४८ ई० पू०में उनके अधीनस्थ एक कर्मचारीने उन्हें जानसे मार डाला और अपने दो पुत्रोंको यहांका कर्त्ता बना दिया।

ईसासे २८ वर्ष पहले प्रतिभाशाली हेरोदने फिर अधिकार कर एक बड़ा भारी दुर्ग बनवाया और रोमक सेनापति आण्टनीके सम्मानार्थ उसका नाम आण्टोनिया रख दिया। इन्होंने मल्लयुद्धके देखनेके लिए एक रंगमण्डप भी बनवाया था। हेरोद नाना कार्योंसे यहूदियोंके अत्यन्त अप्रिय हो गये। परन्तु १८ ई०पू०में उनकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए इन्होंने सोलोमनके विराट् मन्दिरका पुनर्निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। ईसासे १० वर्ष पहले नव मन्दिरका गृहप्रवेश उत्सव हुआ था। इन्होंने सियन पर्वतके उत्तर-पश्चिममें और एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया। अर्थ प्राप्तिकी आशासे इन्होंने प्राचीन राजाओंकी कब्रोंका खुदवाना शुरू कर दिया। किन्तु जब देखा कि यहूदी लोग बहुत बिगड़ रहे हैं तब उन कब्रों को उन्होंने सफेद पत्थरसे बन्द करवा दिया। हेरोदके राजत्वके शेषभागमें बेथलेहम ग्राममें ईसामसीहका जन्म हुआ। पूर्वदेशीय तीन विज्ञ व्यक्तियों के परिदर्शन और निर्दोष शिशुओंकी हत्या करनेके बाद सर्वसाधारण द्वारा दूषित हो कर एक भीषण रोगसे हेरोदकी मृत्यु (ईसासे ४ वर्ष पहले) हुई।

हेरदके पुत्रकी अक्षमताको पहले रोमने अनुभव किया। पीछे जूदिया इस देशको रोमके एक अधीन प्रदेशके रूप में परिणत कर दिया। रोमके अधीनस्थ प्रादेशिक शासनकर्ता पण्टियस पिलेटके शासनकालमें ईसामसीह पकड़े गये और क्रुशदण्डसे दण्डित हुए। ईसामसीहके पुनरुत्थान और उनके जीवनकी पवित्र घटनाओंने जेरुसलेमको पवित्रतर बना दिया। पेण्टकष्टके दूसरे दिन हजारों यहूदियोंने उत्साहके साथ नवप्रचारित ईसाई धर्म ग्रहण किया। किन्तु इससे शासकगण बड़े नाराज हुए और ईसाइयोंको नाना प्रकारसे निर्यातन करने लगे। इसके बाद रोमक सम्राट्गण कभी अपनी मौजसे और कभी यहूदियोंको सन्तुष्ट करनेके ख्यालसे ईसाइयोंको तंग करने लगे। उन लोगोंने सिण्टजेमस दो सेंटरको हत्या की। सेण्ट पीटरको भी यही दण्ड दिया जाता, किन्तु देवदूतने आ कर उनको रक्षा कर ली।

इसी समय आदियाबेनीकी रानी सलन जेरुसलेम आई थीं। इन्होंने चतुर्दशजन परिजन सहित ईसाई धर्म ग्रहण किया था—अब ये जेरुसलेममें आ कर दुर्भिक्षसे पीड़ित दीन दरिद्रोंको दान देने लगीं। इन्होंने, 'राजाओंकी समाधि" नामसे प्रसिद्ध विराट् समाधि स्थान बनवाया था। इसी समय ईसाकी माता "The Blessod Virgin"का स्वर्गवास हुआ और गेथसेमानीमें उनको समाहित किया गया। ६६ ई०में गेसियस फ्लोरसने यहूदियोंको इतना तङ्ग किया कि वे विद्रोही हो गये।

इसके बाद टाइटस बहुत दिनों तक जेरुसलेमको घेरे रहे और यहूदियोंको बहुत तङ्ग किया। इन्होंने विजयी हो कर कहा था—"मैंने कुछ नहीं की। भगवान्ने यहूदियों पर क्रुद्ध हो मुझे निमित्त बना कर उनको दण्ड दिया है।"*

टाइटसने जेरुसलेमके नगरों और मन्दिरोंको दीवार तुड़वा दी। टासीटसका कहना है कि उस अवरोधके समय ६००००० लाख यहूदी मारे गये थे। जो कुछ जीवित थे, उन्हें क्रीतदासकी तरह बेच (७० ई०) दिया गया था।

रोमकी सेनाने जेरुसलेमका सब कुछ ध्वंस कर डाला सिर्फ हेरोदके प्रासादके नगरकी तरफके तीन तोरण बच गये। उन लोगोंने सम्पत्ति पर भी अपना कब्जा कर लिया। ईसाई लोग 'आपने नामक स्थानमें (जेरुसलेमसे दो क्रोश का रास्ता है) जा कर रहने लगे। यहां ईसाका अन्तिम भोजन हुआ था यहीं गिर्जा बनाया गया। यही पृथ्वीका पहला गिर्जा है। पहले पहल जिन लोगोंने ईसाई धर्म स्वीकार किया था वे सभी पहले यहूदीधर्मके उपासक थे।

रोमनोंका अत्याचार जेरुसलेममें रोमन उपनिवेशकी स्थापना पवित्र मन्दिरमें जूपिटरकी मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा आदि होते देख यहूदियोंने १३२ ई०में पुनः विद्रोह खड़ा

* B II Jud. VIII V 2

किया। सम्राट् हाड्रियनने इस विद्रोहका दमन किया। किन्तु विद्रोहके कारण जेरुसलेम और उसके पार्श्ववर्ती स्थान मरुभूमिमें परिणत हो गये। जेरुसलेमके ध्वंस स्तूपके ऊपर ईलिया कापिटोलिना नामक नवीन नगरी बनाई गई। साथ ही ईसाई धर्मसम्प्रदायमें भी एक तरहका परिवर्तन देखनेमें आया। इसके बादसे जेण्टाइल लोग जेरुसलेमके धर्ममन्दिरोंके रक्षक नियुक्त हुए।

ईसाकी चौदहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें रोमन सम्राट् कनष्टान्टाइनने ईसाई धर्मको रोमन साम्राज्यका राजकीय धर्म बना डाला। यही कारण है कि ईसाई धर्मका बहुत प्रचार हो गया। धर्मके नव उत्साहके दिनोंमें लोगोंका मन जेरुसलेमकी पुण्यस्मृतिकी ओर गया और वहां पुनः मन्दिर आदि बनने लगे। जेरुसलेममें जो विशप रहते थे, वे ही खृष्टीय जगत्‌में सबसे अधिक सम्मानित होने लगे। बहुतसे तो जेरुसलेममें तीर्थयात्राके लिए उपस्थित हुए; जिससे पुरातन पवित्र स्थानोंका आविष्कार और पूजा होने लगी। ऐतिहासिक यूसिवियसका कहना है, कि ३२६ ई०में काल्वारि नामक स्थान धूल और आवर्जनासे परिपूर्ण था और उसके ऊपरमें नासका मन्दिर था।* इस स्थानको देख कर सेण्ट हेलेनाने उसका संस्कार करना चाहा। किन्तु सम्राट् कनष्टानटाइनके आदेशसे उनकी सेनाने उसे खोद डाला। खोदते समय ईसाकी पवित्र समाधि आविष्कृत हुई। कनष्टानटाइनने विशप माकाराइसको लिखा—"उस पवित्र स्थानका अच्छी तरह आविष्कार किया जाना चाहिए, उससे बढ़ कर मेरे हृदयकी कामनाकी सामग्री और दूसरी नहीं है।" उस जगह दो बड़े बड़े मन्दिर बन गये। ईसाकी ५वीं शताब्दीके मध्यभागमें जेरुसलेम ईसाइयोंके पांच प्रधान विभागोंमें अन्यतम हो गया।

सम्राट् २य थियोडिसियसकी महिषी यूडोसिया ४४४ ई०से जेरुसलेममें रहने लगीं। इन्होंने जीवनका शेषभाग धर्मकार्यमें बिताया था और जेरुसलेमकी एक दीवार तथा बहुतसे मन्दिर बनवाये थे।

६१४ ई०में जेरुसलेम पर बड़ी भारी विपत्ति आई, इस समय पारसियोंने इस पर अधिकार कर लिया। सम्राट् खुशरूके जामाताने नगर घेर लिया। कहा जाता है कि जेरुसलेमके पतनके समय ८० हजार ईसाई मारे गये थे। पाट्रिआर्क जाकरिया बन्दीरूपमें पारस्य पहुंचाये गये थे। सेन्टहेलेना पवित्र क्रम१ा जो स्मृतिचिह्न छोड़ गई थीं, उसे भी पारसी लोग ले गये। इस ध्वंसकार्यमें यहूदियोंने, ईसाइयोंके विरुद्ध हो कर पारसियोंका साथ दिया था। ६२२ ई०में रोमनवीर हेराक्लीयसने पारसियोंको परास्त किया था और ६२८ ई०में वे स्वयं तीर्थयात्राके लिए जेरुसलेम आये थे। इन्होंने कानून बना दिया था कि 'यहूदी जेरुसलेममें प्रवेश न कर सकेंगे'। इनसे पहले सम्राट् हाड्रियनने भी इस तरहका कानून बनाया था।

इसी बीचमें मुसलमान धर्मकी भी उत्पत्ति हुई। नव धर्मके नवीन उत्साहसे अरबियोंने एकके बाद दूसरा देश जीतना शुरू कर दिया। खलीफे उपदेशानुसार उन्हें ओमरसे जेरुसलेम जय करनेका आदेश मिल गया। मुसलमान लोग चार महीने तक इस नगरको घेरे रहे। आखिर पाट्रिआर्क सोफोनियसको जब कहींसे कुछ सहायता न मिली, तब वे हताश हो कर मुसलमान सेनापतिसे मुलाकात करनेको राजी हो गये। उन्होंने शर्त रखी कि मुसलमान यदि ईसाई मन्दिरोंको न तोड़ें और ईसाइयोंको मुसलमान न बनावें, तो वे नगरमें प्रवेश कर सकते हैं। खलीफा ओमर इस शर्त पर राजी हो गये और सेनापतिको पत्र लिखा। ओमर स्वयं पाट्रिआर्कके साथ धर्मालोचना करते हुए नगरमें घुसे। मुसलमानोंने पहले पहल यहांके ईसाइयों पर कम अत्याचार किया था, क्योंकि ईसाई लोग एकेश्वरवादी थे, पौत्तलिक नहीं। मुसलमानोंके मतसे मक्का और मदीनाके बाद ही जेरुसलेम उनका पूजनीय स्थान है। क्योंकि यहां किसी दिन रातको मुहम्मद स्वयं पधारे थे।*

खालिफ आबदाल-मालिकके समयमें (६८४-७०५ ई०) जेरुसलेम मुसलमानोंके तीर्थरूपमें परिणत हुआ था। उन लोगोंने यहां बहुतसे मन्दिर बनवाये थे। क्रूजेड नामक धर्मयुद्धके समय ईसाइयोंको दो

* Vita Constantini III, xxvI.

* कुरान, सूरा १७।

एक मुसलमानोंकी मसजिद देख कर उनमें यहूदियोंके मन्दिरका भ्रम हो गया था। इसलिए उसके अनुकरण पर बहुतसे गिर्जा बने थे। दामस्कसके खलीफोंके साथ ईसाइयोंका मेल था, बहुतसे ईसाई कर्मचारी उनके अधीन काम करते थे। सुप्रसिद्ध खलीफा हारुन अल रसीदने ईसाके कबरिस्तानकी ताली चार्लमन्‌डी ग्रेटको भेंट की। चार्लमनने उस समाधिके पास कई गिर्जे बनवाये थे।

परवर्तीकालमें मुसलमानगण जेरुसलेमको जितना पवित्र समझने लगे उतना ही ईसाइयोंको दूर रखने और निर्यातन करने लगे। मुसलमानोंमें भी बहुतसे वंशोंमें परस्पर राज्याधिकारके विषयमें विवाद खड़ा हुआ—सिरिया ही उनका युद्धक्षेत्र हुआ। इसके कारण भी जेरुसलेमके ईसाई लोग तंग होने लगे।

तुर्कियोंने भी ईसाइयोंके बहुतसे धर्म मन्दिर तोड़ डाले थे। सम्राट्‌ ८म कनष्टानटाइनने (१०४२—१०५४ ई०) खलीफाकी अनुमति ले कर बहुतसे मन्दिरोंका संस्कार कराया था।

१०३० ई०में इटलीके आमालफीके सभरके वणिकोंको जेरुसलेममें रह कर वाणिज्य करनेका आदेश मिल गया। १०७० ई०में सेलजुक संप्रदायके तुर्कियोंने यहाँ शासन अधिकार कर लिया। इसी समयसे जेरुसलेमके ईसाइयोंकी अवस्था शोचनीय हो उठी। तुर्कियोंने उनको उपासना करनेसे रोक दिया, गिर्जा तोड़ दिये और तीर्थयात्रियोंको बिना विचारे हत्या करने लगी। इस नृशंस अत्याचारका संवाद पा कर ईसाइयोंने क्लारमण्टकी सभामें प्रतिवाद किया और १०९५ ई०में प्रथम धर्मयुद्धके लिए यात्रा की।

इस युद्धका परिणाम यह हुआ कि जेरुसलेममें ईसाइयों द्वारा लाटिन राज्यकी स्थापना हो गई। ११८७ ई०में सालादिनने उक्त राज्यका ध्वंस कर दिया था, किन्तु पीछे सैण्ट फ्रिडरिक्‌के समयमें उसको पुनः स्थापना की। १२४४ ई० तक उक्त राज्य प्रतिष्ठित था। इन दो शताब्दियोंमें यहाँ अनेक यात्री तीर्थयात्राके लिए आये थे और बहुतसे मकान बना कर रहे थे। इस समय यूरोपकी सभी जातियोंका यहाँ वास था, जिनमें फरा-सीसियोंकी संख्या ही अधिक थी। किन्तु इटलीयगण ही सबसे अधिक बलवान्‌ थे। ईसाकी १२वीं शताब्दीके मध्यभागमें जेरुसलेम राज्य अत्यन्त विस्तृत हो गया था—उत्तरमें बेरुटसे लगा कर दक्षिणमें अरबिया तक समग्र सिरिया इसके अधीन था। दामस्कसमें मुसलमानों राजा था किन्तु ईसाई लोग उनके आगे होनता स्वीकार न करते थे। यूरोप (सामन्त-तन्त्र) की तरह यहाँ भी बड़े बड़े जमींदारोंने प्राधान्य प्राप्त कर राजकीय क्षमताका दमन कर रक्खा था। इस समय जेरुसलेमके गिर्जाकी भी समृद्धि बढ़ गई थी। इस राज्यमें व्यवसायका भी बहुत प्रचार हुआ था जिससे यहाँके वणिकोंने बहुत धन पैदा किया था।

११८७ ई०में सालादिनकी सेनाने जेरुसलेममें प्रवेश कर ईसाई राज्यका विलोप करनेका प्रयत्न किया था। सालादिनने ईसाइयोंको पवित्र समाधिमें समागमनके लिए आज्ञा तो दी थी पर उनके लिए उन्होंने कर भी बहुत ज्यादा लगाया था।

इसके बाद जेरुसलेमके उद्धारके लिए यूरोपके धर्म प्राण व्यक्तियोंने बार बार युद्धयात्रा की। एक बार यूरोपके प्रायः एक लाख बालक धर्मार्थ प्राण विसर्जन देनेके लिए जेरुसलेमकी तरफ चल दिये। किन्तु दुर्भाग्यवश उनमेंसे बहुतसे तो रास्तेमें ही मर गये और बहुतसे क्रीतदासकी भाँति मुसलमानोंके हाथ बिक गये। बार बार धर्मयुद्ध करने पर भी यूरोपके वीरगण मुसलमानोंको पवित्र स्थानसे च्युत न कर सके।

ईसाकी १६वीं शताब्दी तक सिरिया मिसरके खलीफाके अधीन था। इस बीचमें (१३वीं शताब्दीमें) मुगलोंने एक बार भीषण आक्रमण किया था। १४०० ई०में तैमूरकी अधीनतामें मुगल पुनः इस प्रदेशको ध्वंस करने आये थे।

१६वीं शताब्दीमें तुरस्कके सुलतान उसमान अलीने जिरुसलेम पर कब्जा कर लिया। १७९९ ई०में महावीर नेपोलियन बोनापार्टने सिरिया पर अधिकार किया। १८३१ ई०में इब्राहिम पाशाने मिसरकी सेनाकी सहायतासे सिरिया और जेरुसलेम दखल कर लिया। पीछे १८४० ई०में इङ्गलैण्ड और अष्ट्रियाने मिल कर कोशिश

करने पर तुरुष्क-शक्तिको पुनः जेरुसलेम प्राप्त हो गया। उन्नीसवीं सदीमें तुरुष्क शक्ति द्वारा जेरुसलेममें अनेक प्रकारका संस्कार हुआ और ईसाइयोंके साथ अच्छा व्यवहार होने लगा। गत महायुद्धके फलसे जेरुसलेम अङ्गरेजोंके अधिकारमें आ गया है।

फिलहाल यहूदियोंने जेरुसलेम अधिकार कर वहां जातीय स्वाधीनता स्थापन करनेके लिए आन्दोलन शुरू कर दिया है। उसका नाम है Zionism. १८६२ ई०में मोसेस हेसने अपने Romund Jerusalem नामक ग्रन्थमें इस आन्दोलनका सूत्रपात किया था। यहूदियों-का मत यह है, कि "जातीय जीवनकी रक्षाके लिए जेरुसलेम जा कर अपने स्वतन्त्र वैशिष्ट्यको प्रस्फुटित करना पड़ेगा"। सेमेटिक जातिका विरुद्धभाव भी इस आन्दोलनमें प्रस्फुटित हुआ है। १८१८ ई०के सेप्टेम्बर महीनेमें तुर्की लोग पालेष्टाइनसे बहिष्कृत हुए थे। ब्रिटिश-शक्तिने उस समय यहूदियोंकी नालिश और अधिकार पर विचार किया था। १८२० ई०की पार्ला-मेण्टके कच्चे चिट्ठे Mandate-में लिखा है—"यहूदियों का जो पालेष्टाइनके साथ ऐतिहासिक सम्बन्ध है, उसे स्वीकार कर उस देशमें उन्हें जातीय आवास प्रतिष्ठित करनेका आदेश दिया जाता है।"

१८२१ ई०के अप्रील मासमें औपनिवेशिक मन्त्री मिष्टर उइन्स्टन चार्चिलने सिरिया देश भ्रमण करते समय कहा था, कि ब्रिटिश-शक्ति यहूदियोंके जेरुसलेम आदि देशोंमें पुन: प्रतिष्ठा-कार्यमें सहायता पहुँचावेगी।

जेल (अं० पु०) कैदखाना, कारागार, बन्दीगृह। अति प्राचीन समयमें भारतमें इस समयकी भांति जेलकी प्रथा नहीं थी। रणजित्‌सिंहका राज्य अङ्गरेजोंके हस्तगत होते ही वहां जेल बनवानेकी जिक्र चली। भारतमें मुसलमानोंके राजत्वकालमें एक प्रकारके जेलखाने थे जरूर, किन्तु वे भी आधुनिक जेलखानोंके समान नहीं थे। एक समयमें कुछ अपराधियोंको कारागारमें रखने-की प्रथा उस समय भी इस समयकी तरह प्रचलित न थी। महाभारतमें महाराज जरासन्धके जिस कारागा-रका उल्लेख है, वह साधारण अपराधियोंके लिए व्यव-हृत नहीं होता था। वर्तमान जेल-प्रथा यूरोपीय है।

अपराधियोंके दोषोंको सुधारनेके लिए ही उनको दण्ड दिया जाता है और इसीलिए उनको जेलखानेमें रक्खा जाता है। पहले यूरोपमें बहुतसे अपराधियोंको निर्वासन दण्ड दिया जाता था; परन्तु अब निर्वासित और स्थानान्तरित करनेके बदले कारादण्डसे दण्डित किया जाता है। प्राचीन समयमें अपराधीके दोष संशोधित हों वा नहीं हों उसके प्रति किसी तरहकी दृष्टि नहीं रख कर उसे भारीसे भारी दण्ड दिया जाता था; दण्ड देनेके लिए किसी तरहके नियम नहीं थे। कारागारप्रथा प्रच-लित होनेके बाद भी यूरोपमें कैदियों पर विशेष अत्या-चार किया जाता था। यूरोपके जेलखाने मानो एक एक नरक हो थे। कैदियोंकी पीड़ाका वर्णन करना लेखनीकी शक्तिसे बाहर है। विख्यात प्रेमिक जन हाउ-यार्डके अदम्य उत्साह और असीम क्लेशसहिष्णुतासे ही वीभत्स नरकोंका संस्कार हुआ है। उक्त महात्माके अटल प्रयत्नसे १७७३ ई०में कारागारके सुधारके विषय-का एक कानून बना। इसी समयसे कारागारमें अति रिक्त दण्ड देनेकी प्रथा रद्द हो गई। पहले सब तरह-के कैदी एक साथ रक्खे जाते थे और जेलके अध्यक्ष (जेलर) अर्थलोभसे जेलखानेमें हर एक तरहके वीभत्स कार्य करनेका प्रश्रय (सहारा) देते थे, जिससे अप-राधियोंके दोष दूर न हो कर बल्कि बद्धमूल होते थे।

जेलखानोंमें वायुसञ्चालनके लिये प्रशस्त मार्गोंके न होनेसे तथा हर एक तरहकी अपरिच्छन्नता रहनेके कारण एक प्रकारके ज्वरकी उत्पत्ति होती थी, उस ज्वरसे बहुत समय कैदियोंकी अपमृत्यु भी होती रहती थी। धीरे धीरे ये सब कारण दूर होने लगे। अनेक महात्माओंने कैदखानोंके इन दोषोंको दूर करनेके लिये जी-जानसे कोशिशें की हैं, किन्तु अब तक भी सम्पूर्णरूपसे दोष दूर नहीं हुए हैं।

स्त्री और पुरुष कैदियोंको अलग अलग रक्खा जाता है। वे परस्पर मिल-जुल नहीं सकते और न बात चीत ही कर सकते है।

प्रत्येक कैदीका जिससे स्वास्थ्य ठीक रहे और उसे शक्तिसे ज्यादा परिश्रम न करना पड़े, इस पर जेलर

दृष्टि रखेंगे। प्रत्येक जेलखानेमें एक एक चिकित्सक नियुक्त हैं।

गुरुतर अपराधियों को कभी कभी निर्जन कारागारमें रखा जाता है। इस समय ये किसीके साथ बातचीत नहीं कर सकते और किसीके पास जा भी नहीं सकते। निर्जन कारागारके नियम-भङ्ग करने पर कैदियों को शारीरिक दण्ड दिया जाता था और कानूनके अनुसार इस दण्डके विरुद्ध किसी तरहका आवेदन नहीं सुना जाता था।

कैदियोंसे नाना प्रकारके कार्य लिए जाते हैं—कोल्हू चलाना, ईंटें तोड़ना, रस्सी बटना इत्यादि। इनसे गवर्नमेण्टको बहुत आमदनी होती है।

भारतवर्षमें यूरोपीय कैदियोंके लिए पृथक् नियम हैं। उनको जिन बातोंकी सुविधा दी जाती है, हिन्दुस्थानियोंको उनमेंसे आधी भी नहीं दी जाती। जेलखानोंमें यूरोपीय कैदियोंको नीतिशिक्षा देनेके लिये शिक्षक नियुक्त हैं परन्तु हिन्दुस्थानियोंके लिये ऐसा कोई इन्तजाम नहीं है।

छोटे उम्रवालोंके लिए दूसरी तरहका बन्दोबस्त है। जिन बालक या बालिकाओंको कानूनके खिलाफ काम करनेके अपराधसे जेलमें रखा गया है, उनसे किसी प्रकारका कठिन परिश्रम नहीं कराया जाता। उनके लिए निर्धारित जेलको संशोधनागार (Reformatory Jail) कहते हैं।

उनको शिक्षा देनेके लिए जेलखानोंमें शिक्षक नियुक्त रहते हैं। संशोधनागारके बगीचेमें फलोंके पेड़ लगानेके लिए मिट्टी बनाने और उन पेड़ोंकी जड़में पानी देने इत्यादि कार्योंके लिए उन बालक अपराधियोंको ही नियुक्त किया जाता है।

परन्तु अन्यान्य कैदियोंके लिए जैसे कानून बने हुए हैं, उनका प्रायः अपव्यवहार होता है। कैदियोंको जितना भोजन देनेका नियम है, वास्तवमें उतना उन्हें दिया नहीं जाता। इस देशमें विशेष एक कुत्सित नियम यह प्रचलित है कि, रातको उन्हें मलत्यागके लिए बाहर नहीं निकाला जाता—रातको वे उसी कोठरीमें मलत्याग करते हैं और सुबह उनको अपने हाथसे साफ करते हैं।

जिस उद्देश्यसे अपराधियोंको जेलमें रखा जाता है, वह सिद्ध नहीं होता। आज कल प्रायः देखा जाता है कि, जेलखानेसे छूटने पर दण्डित व्यक्ति शीघ्र ही कुकार्यमें प्रवृत्त होते हैं।

भारतीय जेलखानोंमें स्वास्थ्यरक्षाके नियम अच्छी तरह नहीं पाले जाते। कैदियोंकी स्वास्थ्यरक्षाके लिए जितना चाहिये उतना प्रबन्ध नहीं किया जाता। यहांके जेलखानोंमें करीब करीब फी सदी ७५ कैदी रोगोंसे पीड़ित रहते हैं। अंगरेजी राज्यमें प्रत्येक विभाग और उपविभागोंमें एक एक जेलखाने बने हैं। उपविभागोंके जेलखानोंकी अपेक्षा विभागीय जेलोंमें ज्यादा कैदी रखे जाते हैं। भारतवर्षमें कानपुर, अलीगढ़, कलकत्ता, बम्बई, मन्द्राज, इलाहाबाद, नागपुर, जबलपुर इत्यादि स्थानोंमें जेलखाने बड़े हैं।

जेल (फा॰ पु॰) अजाब, हैरानी या परेशानीका काम।

जेलखाना (फा॰ पु॰) कारागार।

जेलर (अ॰ पु॰) कारागारका अध्यक्ष, जेलका अफसर।

जेलाटीन (अ॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी बहुत साफ और बढ़िया सरेस। यह जानवरोंके विशेषतः कई प्रकारकी मछलियोंके मांस, हड्डी, खाल आदिको उबाल कर प्रस्तुत की जाती है। इसका व्यवहार फोटोग्राफी और चिट्ठियों आदिकी नकल करनेके लिये पैड बनानेमें होता है।

जेली (हिं॰ स्त्री॰) वह औजार जिससे घास या भूसा जमा किया जाता है।

जेलेप ला—हिमालयमें स्थित पर्वत-श्रेणीकी घाटी। यह अक्षा॰ २७ २१ उ॰ और देशा॰ ८८ ५१ पू॰में सिक्किम राज्यसे तिब्बतको चुम्बी उपत्यकाको गयी है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई १४३९० फुट है। इसी राह तिब्बतके साथ भारतका कारबार चलता है।

जेवड़ी (हिं॰ स्त्री॰) जेवरी देखो।

जेवना (हिं॰ क्रि॰) जीमना देखो।

जेवनार (हिं॰ स्त्री॰) १ भोज, दावत, जीमनवार। २ भोजन, रसोई।

जेवर (फा॰ पु॰) आभूषण, अलङ्कार, गहना।

जेवर (हिं॰ पु॰) हिमालयमें मिलनेवाला एक प्रकारका महौषधि। इसका दूसरा नाम जखी या सिंहमोनाथ है।

जेवर—युक्तप्रदेशके बुलन्दशहर जिलेको खुर्जा तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २८° ७' उ० और देशा० ७७° ३४' पू०में बसा है। लोकसंख्या प्रायः ७७१८ है। ई० ११वीं शताब्दीमें ब्राह्मणों के बुलाने पर भरतपुरके यादव राजपूत यहां आ कर रहे और मेवोंको उन्होंने निकाल बाहर किया। १८२६ ई०में जेवर गवर्नमेण्टके हाथ लगा। १८८१ ई०को बाजार फिर बनाया गया। १८५६ ई०को २०वीं धाराके अनुसार इसका प्रबन्ध होता है। कालीन और सूती नमदा कुछ कुछ बनता है। सप्ताहमें एक बार बाजार लगता है।

जेवर—मिथिलाके तिरहुत ब्राह्मणोंकी एक शाखा वा ५वां भेद।

जेवरा (हिं० पु०) ज्योरा देखो।

जेशलपोर—कच्छ प्रदेशका एक प्रसिद्ध दस्यु। इस व्यक्तिने शेष अवस्थामें तुरी नामक एक काठि रमणी द्वारा उपदेश पाने पर दस्युवृत्ति छोड़ दी थी। भुज नगरके २२ मील दक्षिणपूर्ववर्ती अञ्जार नगरमें जेशलपोरके स्मरणार्थ एक मन्दिर स्थापित है।

जेष्ठ (हिं० पु०) १ जेठ मास। २ पतिका बड़ा भाई, जेठ। (वि०) ३ अग्रज, जेठा, बड़ा।

जेष्ठा (हिं० स्त्री०) ज्येष्ठा देखो।

जेसर—कच्छ प्रदेशको धङ्गजाति। इनका प्रधानतः नाविनाल और वेराजके चारों तरफ वास है।

जेसाई—बङ्गालके दिनाजपुर जिलेके अन्तगत देवश परगनेका एक ग्राम। यहां एक हाट लगती है।

जेह (फा० स्त्री०) १ कमानकी डोरीका मध्यका स्थान। यह स्थान आंखके पास लगाया जाता और इसीको सीधमें निशान रहता है।

२ दीवार पर नीचेकी तरफ दो तीन हाथकी ऊंचाई तक पलस्तर वा मट्टी वगैरहका लेप। यह दीवारके शेष भागके पलस्तर या लेपसे कुछ ज्यादा मोटा होता है और कुछ उभरा हुआ रहता है।

जेहड़ (हिं० स्त्री०) पानीसे भरे हुए बहुतसे घड़े जो एक पर एक रखे रहते हैं।

जेहन (अ० पु०) धारणाशक्ति, बुद्धि।

जेहुला—विहारप्रदेशके चम्पारन जिलेका एक शहर।—

जैगीषव्य (सं० पु०) जिगीषोरपत्यं गर्गादित्वात् यञ्। योगविद्मुनिविशेष, योगशास्त्रके वेत्ता एक मुनि। "असितो देवलोऽयाह; जैगीषव्यश्च तत्त्ववित्।"

(भारत शा० ११ अ०)

महाभारतके शल्यपर्वमें लिखा है—पूर्वकालमें असित देवल नामक एक तपोधन गार्हस्थ्यधर्मका अवलम्बन कर आदित्यतीर्थमें रहते थे। कुछ दिन पीछे जैगीषव्य नामक एक महर्षि उस तीर्थमें आ कर देवलके आश्रममें रहने लगे और थोड़े ही दिनोंमें इन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। महात्मा देवलने महर्षि जैगीषव्यको सिद्धि होते देखो, किन्तु स्वयं सिद्धिप्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हुए। इस तरह कुछ दिन बीतने पर एक दिन महामति देवलने होम आदिके समयमें जैगीषव्यको नहीं देखा।

कुछ देर पीछे भिक्षाके समय जैगीषव्य भिक्षुकके रूपमें देवलके पास उपस्थित हुए। देवल उनको सामने उपस्थित देख परम आदरसे उनकी पूजा करने लगे। इसी तरह बहुत समय बीतने पर एक दिन देवल महर्षि जैगीषव्यको देख कर मन ही मन सोचने लगे—"मैं इतने दिनोंसे इनकी सेवा कर रहा हूं, पर वे इतने आलसी हैं कि इतने दिन हो गये एक दिन भी वे मुझसे बोले नहीं।" देवल इस तरहकी चिन्ता करते हुए स्नान करनेकी इच्छासे कलश ले कर सूनो सड़कसे समुद्रकी तरफ चल दिये। वहां जा कर देखा तो जैगीषव्य स्नान कर रहे हैं। यह देख कर देवल विस्मित हुए और स्नानाह्निक समाप्त कर चुकने पर इन्हें स्नान करते हुए देख आकाशमार्गसे आश्रमकी तरफ चल दिये। आश्रममें पहुंचे तो वहां भी इन्हें स्थाणुवत् तिष्ठते हुए देखा, इससे देवलका आश्चर्य और भी बढ़ गया। इसके बाद इसका वृत्तान्त जाननेके लिए वे अन्तरीक्षमें उपस्थित हुए, वहां देखा तो अन्तरीक्षचारी सभी सिद्ध एकत्र हो कर जैगीषव्यकी पूजा कर रहे हैं। यह देख कर वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। कुछ देर बाद उन्होंने जैगीषव्यको पितृलोकमें जाते देखा। इसके अनन्तर इन्हें यमलोकसे सोमलोक, सोमलोकसे अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास (अमावस्या, पूर्णिमा), पशुयज्ञ, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, अग्निष्टुभ, वाजपेय, राजसूय, बहुसुवर्णक, पुण्डरीक, अश्व

मान थे। ये कुछ काल तक अकबर बादशाहके दरबारमें रहे थे। इन्होंने शान्तिरसकी अनेक कविताएं बनाई हैं।

जैतपुर—बुन्देलखण्डके अन्तर्गत कुलपहाड़के निकटवर्ती एक प्राचीन नगर। यहां बहुतसे आधुनिक मन्दिर और एक प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष है, जिसे देखनेसे अनुमान किया जाता है कि यह स्थान बहुत प्राचीन कालका है। नगरके निकटस्थ बड़े सरोवरके पश्चिम किनारे हो कर एक छोटी पर्वतश्रेणी गई है। इसके ऊपर एक चहार-दीवारी बनी है। मालूम पड़ता है कि यह स्थान पहले चन्देल राजाओंका दुर्ग था। प्रासादकी गठन-प्रणाली देखनेसे यह महाराष्ट्रोंका पूर्वस्थान प्रमाणित होता है। अंगरेज और महाराष्ट्रके युद्धमें यह दुर्ग शायद टूट फूट गया होगा।

जैतराम—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने १७३८ ई०में सदाचारप्रकाश नामक एक हिन्दीग्रन्थ रचा था।

जैतश्री (हिं० स्त्री०) एक रागिणी।

जैतसखी—एक हिन्दी कवि। इनकी कविता साधारणतः अच्छी होती थी। एक उदाहरण दिया जाता है—

'दाऊ कृष्ण यशोदा मैया हरषित गोद खिलावे।
नाना भांति खिलौना ले दे गोविन्द लाड लडावे॥
ब्रह्म जाको पार न पावे शिव सनकादिक ध्यावे।
ताकों यशमति मेरो मेरो पलना मांहि झुलावे॥
* * *
जैतसखी रंग मोही मोहन बार बार बलजाई॥"

जैतसिंह—बीकानेरके प्रतिष्ठाता राजा बीकाके पौत्र और लूनकरणके पुत्र। १५१२ ई०में लूनकरणकी मृत्यु हुई। उनके बाद जैतसिंह राजगद्दी पर बैठे। जैतसिंहके बड़े भाईने जो कि सिंहासनके प्रकृत अधिकारी थे, स्वेच्छापूर्वक सिंहासन त्याग दिया था—वे कुछ जागीर ले कर ही सन्तुष्ट थे। जैतसिंह बड़े वीर थे; इन्होंने नारनोड़ प्रदेशके राजाको युद्धमें परास्त किया था। १५४६ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

जैतापुर—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत अहमदाबाद जिलेका समुद्रकूलस्थित एक बन्दर और दुर्ग। यह राजपुर खाड़ीके किनारे मुहानेसे २ मील दूरमें अवस्थित है। राजपुर जानेमें यह राजपुर खाड़ीका प्रवेशपथ है।

जैती (हिं० स्त्री०) रबीके खेतोंमें आपसे आप होनेवाली एक घास।

जैतुगि—प्राचीन देवगिरिके यादववंशीय एक राजा। शकसं० ११७१में खुदे हुये मल्हार राजाके ताम्रलेखमें इनका नाम पहले पहल आया है।

जैतून (अ० पु०) अरब, श्याम आदिसे ले कर युरोपके दक्षिणी भागों तकमें होनेवाला एक प्रकारका सदा बहार पेड़। यह ४० फुट तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते नरकटके पत्तोंसे मिलते जुलते हैं, लेकिन आकारमें उनसे कुछ छोटे होते हैं। इसके फूल गुच्छोंमें लगते हैं। पश्चिमकी प्राचीन जातियां इसे पवित्र मानती हैं। पूर्व समय रोमन और यूनानी विजेता इसकी पत्तियोंकी माला सिरमें पहनते थे। मुसलमान लोग आजकल भी इसकी लकड़ीकी माला बनाते हैं। पकने पर फलका रंग नीला और कुछ काला होता है। मुरब्बा और अचार इसके कच्चे फलोंसे बनाया जाता है। बीजोंसे एक प्रकारका तेल निकलता है।

जैतो—पञ्जाब प्रान्तके नाभा राज्यकी फूल निजामतका नगर। यह अक्षा० ३०° २९' उ० और देशा० ७४° ५६' पू०में नर्थ वेष्टन रेलवेकी फीरोजपुर भटिण्डा शाखा पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६८१५ है। यहां अनाजकी बड़ी मण्डी है। प्रति वर्ष फरवरी मासमें सर्वशियोंका एक मेला लगता है।

जैत्र (सं० त्रि०) जेतृ जेतृ-प्रज्ञादित्वात् अण्। १ जेता, जीतनेवाला। (पु०) २ ओषधविशेष, एक दवा। ३ पारद, पारा।

जैत्ररथ (सं० त्रि०) जैत्रो जयशीलो रथो यस्य, बहुव्री०। जयशील, जीतनेवाला, फतहमन्द।

जैत्री (सं० स्त्री०) जयति रोगादिनाशकतया सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते जेतृ-स्वार्थे-अण् स्त्रियां ङीप्। १ जयन्ती वृक्ष, जैतका पेड़। २ जातीकोष, जावित्री।

जैन (सं० पु०) जिन-अण्। १ जिनोपासक, जैनमतावलम्बी, जैनधर्मका अनुयायी, भारतवर्षका एक विख्यात धर्मसम्प्रदाय। यह दिगम्बर और श्वेताम्बर इन दो प्रधान

न्दे क्रियोंमें विभक्त है। वर्तमानमें भारतके प्रायः सभी नगरोंमें इनका वास पाया जाता है।

२ जैनधर्म, धर्मकान्तमत। विस्तृत विवरण जाननेके लिए 'जैनधर्म' शब्द देखो।

जैन उजियाल—बङ्गालके अन्तर्गत वीरभूम जिलेका एक परगना। इसका क्षेत्रफल ६८०२१ वर्गमील है। इस-का अधिकांश अनुर्वर तथा कृषिके अयोग्य है। उत्तर पश्चिमका भाग अरण्य और कङ्करमय है। दक्षिण और पूर्व भागमें उत्तम कृषिकार्य होता है। यहां धान, गेहूं, ईख, सरसों, मसूर आदि उत्पन्न होते हैं। अगहन महीनेमें बड़े बड़े सरोवरोंके जलमें हो धान होती है। बक्रेश्वर और शाल नदी इस परगनेमें प्रवाहित हैं। दुब-राजपुरमें सब-जजकी अदालत है।

जैन-चन्द्र दीन अचमद—एक हिन्दीके कवि। ये १६०८ ई०के लगभग विद्यमान थे।

जैनधर्म (सं० पु०) भारतवर्षका एक विख्यात और सुप्रा-चीन धर्म। वर्तमानमें भारतवर्षके सर्वत्र ही प्रधान प्रधान नगरोंमें इस सम्प्रदायके लोगोंका वास है।

यह धर्म कबसे प्रचलित हुआ इस विषयका निर्णय करना कठिन ही नहीं किन्तु दुःसाध्य है। विख्यात विद्वान् उइलसन साहब फरमाते हैं कि, ईसाकी ८वीं शताब्दीमें जैनधर्मका प्रचार हुआ (१)। फिर ये ही दूसरी जगह लिखते हैं कि, ईसाकी १२वीं शताब्दीमें ही जैनधर्म दाक्षिणात्यमें दृष्टिगोचर हुआ था (२)। प्रसिद्ध वेनफाई साहबका कहना है कि, ईसाकी १०वीं शताब्दीमें ब्राह्मण और बौद्धधर्मके संघर्षसे जैनधर्मकी उत्पत्ति हुई (३)। डा० जोन आर्थ मुइमरका कहना है कि बौद्धधर्मावलम्बी ज्ञाता भी जैनियोंके तीर्थङ्कर सम्बन्धी कथनको पुष्टि करते हैं (४)। प्रसिद्ध विद्वान् कोलब्रुकका मत है कि, शेष तीर्थङ्कर महावीर बौद्धधर्म प्रचारकके गुरु थे (५)। जनरल जी० आर० फारलङ्गका मत है—ईसासे पूर्वके १५०० से ८०० वर्ष तक बल्कि अज्ञात समयसे पश्चिमीय और उत्तरीय भारतमें तूरानियोंका, जो आवश्यकतानुसार द्राविड़ कहलाते थे और जो वृक्ष सर्प और लिङ्गकी पूजा करते थे, शासन रहा था। उस ही समयमें सर्वोपरि भारतमें एक प्राचीन सभ्य दार्शनिक और विशेषतासे नैतिक सदाचार एवं कठिन तपस्यावाला धर्म अर्थात् जैनधर्म भी विद्यमान था, जिसमेंसे स्पष्टतया ब्राह्मण और बौद्धधर्मके प्रारम्भिक संन्यास भावोंकी उत्पत्ति हुई। * * * आर्योंके गङ्गा या सरस्वती तक पहुंचनेसे भी बहुत समय पूर्व जैन अपने २२ बौद्ध सन्तों अथवा तीर्थङ्करों द्वारा, जो ईसासे पूर्वकी ८वीं या ९वीं शताब्दीके ऐतिहासिक २३वें तीर्थङ्कर श्रीपार्श्वनाथसे पहले हुए थे शिक्षा पा चुके थे और श्रीपार्श्व अपने पूर्वके सब तीर्थङ्करोंको, जो दीर्घ दीर्घ कालान्तरसे हुए थे जानकारी रखते थे। उनको बहुतसे ग्रन्थ जो उस समयमें भी 'पूर्वी' या पुराने अर्थात् प्राचीनताके तौर पर प्रसिद्ध थे और जो युगान्तरोंसे विख्यात एवं मान्यवरों द्वारा कण्ठस्थ चले आते थे, मालूम थे। यह विशेषतया एक श्रमण-सम्प्रदाय था जिसको उसके समस्त बौद्ध और विशेष कर ईसाके पूर्वकी ६ठी शताब्दीके २४वें तीर्थङ्कर महावीरने जो सन् ५९८-५२६ ईसाके पूर्व हुए हैं नियमबद्ध रक्खा था। यह तपस्वियों (साधुओं) का मत दूरस्थ बाक्ट्रिया (Baktria) और डेसिया (Dacia)के ब्राह्मण और बौद्धधर्मोंमें जारी रहा, जैसा कि हम अपनी Study नं० १ और Sacred Books of the East, Vol. XXII और XLV में बता चुके हैं (६)।

इसको जहां तक प्रमाण मिले हैं, उनसे हम जैन धर्मको आधुनिक नहीं कह सकते। विष्णुपुराण आदि कई एक पुराणोंमें जैनधर्मका उल्लेख है। जैनोंके बहुतसे ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम हुआ है कि, शकराजके ६०५ वर्ष पहले (अर्थात् ईसासे ५२७ वर्ष पहले)

(१) Wilson's Mackenzie Collection

(२) Wilson's Sanskrit Dictionary 1st ed p. XXXIV

(३) Alles Indien, p. 160

(४) The Jains p. 22 23

(५) Miscellaneous Essays, Vol I, p. 280

(६) Short Studies in the Science of Comparative religions p. 43-244.

अन्तिम तीर्थङ्कर श्रीमहावीरस्वामी वा वर्द्धमानको निर्वाणको प्राप्ति हुई थी (७)।

हमारे विवेचनमें यही आता है कि, जिस समय शाक्य बुद्धने जन्म भी नहीं लिया था, उसमें भी बहुत पहले जैनधर्म प्रचलित था। प्राचीनतम जैनग्रन्थमें बौद्ध वा बुद्धदेवका प्रसङ्ग नहीं है, किन्तु ललितविस्तर आदि प्राचीनतम बौद्धग्रन्थोंमें 'निर्ग्रन्थ' नामसे जैनोंका उल्लेख मिलता है।

बौद्ध और जैनधर्मके किसी किसी विषयमें सौसादृश्य होनेके कारण जैनधर्मको परवर्ती नहीं कहा जा सकता। सादृश्य रहनेसे ही यदि परवर्ती हो, तो इस युक्तिसे बौद्धधर्म भी परवर्ती सिद्ध होता है। अतएव उपर्युक्त प्रमाणोंसे यही प्रमाणित होता है कि जैनधर्म बौद्धधर्मसे पहलेका है।

जैनमतानुसार जैनधर्मका इतिहास—जैन ग्रन्थोंमें प्रायः इस बातका वर्णन देखनेमें आता है कि, जैनधर्म अनादि है और उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालके चतुर्थ कालोंमें २४ तीर्थङ्करोंका आविर्भाव हो कर धर्मका प्रकाश हुआ करता है। जैनधर्मका मत है कि, सृष्टि अनादि है इसका कोई हर्त्ता-कर्त्ता नहीं है। सृष्टिमें जो परिवर्तन हुआ करते हैं, वह स्वतः कालद्रव्यके प्रभावसे हुआ करते हैं। जैनमतानुसार जम्बूद्वीपके मध्य भरतक्षेत्र और ऐरावतक्षेत्रमें उन्नति और अवनतिरूप कालपरिवर्तन हुआ करता है। ऐरावतक्षेत्रकी बात जाने दीजिये क्योंकि उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐरावतक्षेत्रमें भरतक्षेत्रके समान ही तीर्थङ्कर आदिका आविर्भाव हुआ करता है, अन्यान्य सभी विषय भरतक्षेत्रके समान हैं। उन्नतिरूप कालको उत्सर्पिणी और अवनतिरूप कालको अवसर्पिणी कहते हैं। इन दोनों कालोंकी स्थिति १०।१० कोड़ाकोड़ी सागर* परिमित है। २० कोड़ाकोड़ी सागर परिमितकालको कल्प कहते हैं। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल ६।६ भागोंमें विभक्त है, यथा—(१) सुःषमासुषमा (२) सुःषमा, (३) सुःषमादुःषमा, (४) दुःषमासुषमा, (५) दुःषमा और (६) दुःषमादुःषमा। वर्तमानमें अवसर्पिणी कालका ५वां विभाग दुःषमा चल रहा है। इसी तरह यह कालचक्र अनादि कालसे चलता आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा अर्थात् सृष्टिका कभी भी नाश न होगा। जैनमतानुसार सिर्फ अवनतिकी सीमा शेष होने पर अर्थात् छठे काल (दुःषमादुःषमा) के बाद खण्डप्रलयमात्र होती है। १म सुःषमासुःषमा कालका समय ४ कोड़ाकोड़ी सागरका थी। इस समय मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु ३ पल्यकी और शरीरकी ऊँचाई २४००० हाथकी होती थी। २य सुःषमाकालकी स्थिति ३ कोड़ाकोड़ी सागरकी थी। इसमें मनुष्योंकी आयु २ पल्यकी और शरीरकी ऊँचाई १६००० हाथकी थी। ३य सुःषमादुःषमाकालकी स्थिति २ कोड़ाकोड़ी सागर, आयु १ पल्य और शरीरकी ऊँचाई एक कोश (४००० गज)-की होती थी। इन तीन विभागोंका विशेष कुछ इतिहास नहीं है, क्योंकि उस समय यहां भोगभूमि थी अर्थात् उस समय सब सुखसे रहते थे, कोई किसीका स्वामी वा सेवक न था, राजा आदि भी न थे, किसीका शासन न था और न जीविका निर्वाहके लिए असि मसि कृषि आदि किसी प्रकारका कार्य ही करना पड़ता था—कल्पवृक्षोंसे सबकी आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती थीं। उस समय विवाह आदिका कोई भी नियम प्रचलित नहीं था। माताके गर्भसे स्त्री पुरुष युगल ही उत्पन्न हुआ करते थे और उनके युगल सन्तान होते ही दोनोंकी मृत्यु हो जाया करती थी। तात्पर्य यह है कि, उस समयके लोग स्वर्गके देवोंके समान बड़े आनन्दसे जीवन बिताते थे और मर कर स्वर्गमें ही जन्म लिया करते थे। उसके बाद चतुर्थ कालसे पहले और

(७) जैनग्रन्थ त्रिलोकसारमें लिखा है—

"पणछ० सयवस्स पणमासजुदं गमिय वीरनि० बुद्दो सगराजो।"

इस विषयमें अन्यान्य ग्रन्थोंका मत जानना हो तो Indian Antiquary, Vol XII p 216 देखना चाहिए।

* ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००० ०००००००००००० वर्षका एक पल्य होता है; पल्यकी संख्याको एक पद्म (१००००००००००००००००)-से गुणा करनेसे एक सागरकी संख्या होती है और एक करोड़का वर्ग एक कोड़ाकोड़ी कहलाता है।

तीसरे कालके अन्तमें (तीसरा काल पूर्ण होनेमें जब १ पल्यका आठवाँ हिस्सा बाकी रहा तब) आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमाके दिन सायंकालको सूर्यका अस्त होना और चन्द्रका उदय होना दिखाई दिया। (यद्यपि चन्द्र और सूर्य अनादि कालसे बराबर उदय अस्त होते रहे थे किन्तु ज्योतिराङ्ग जातिके कल्पवृक्षोंके प्रचण्ड प्रकाशसे लोगोंको सूर्य और चन्द्र दिखलाई नहीं देते थे।) लोग इनको देख कर डर गये और सृष्टि परिवर्तनके नियमोंके ज्ञाता प्रथम कुलकर (या मनु) प्रतिश्रुतके पास पहुँचे। प्रतिश्रुतने सबको समझा दिया—सूर्य चन्द्रसे डरनेका कोई कारण नहीं है, अब धीरे धीरे कल्पवृक्षोंका नाश हो जायगा और सबको कर्म करके निर्वाह करना पड़ेगा। बस, यहींसे कर्मभूमिका प्रारम्भ होता है और यहींसे जैनधर्मके इतिहासका प्रारम्भ होता है।
(महापुराणान्तर्गत आदिपुराण)

प्रथम कुलकर प्रतिश्रुतके असंख्य करोड़ों वर्ष बाद सन्मति नामक २य कुलकर हुए। इनके समय ज्योतिराङ्ग नामक कल्पतरुओंका प्रकाश इतना क्षीण हो गया कि, आकाशमें तारे और नक्षत्र भी दिखाई देने लगे। लोग आश्चर्यान्वित हो कर सन्मति कुलकर (मनु)-के पास पहुँचे। उन्होंने ज्योतिश्चक्र (सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदिका समूह)-का एवं रात्रि दिन, सूर्यग्रहण चन्द्रग्रहण, सूर्यका उत्तरायण और दक्षिणायन होने आदिका सम्पूर्ण वृत्तान्त कह कर ज्योतिष विद्याकी प्रवृत्ति की। इनके असंख्य करोड़ों वर्ष बाद ३य कुलकर क्षेमङ्कर हुए। सिंह व्याघ्र आदि क्रूर जन्तु जो अब तक शान्त थे उन्होंने क्रूरता धारण की। इस पर ३य कुलकर क्षेमङ्करने इन जन्तुओंको मनुष्यावाससे पृथक् कर देने और उनका विश्वास न करनेकी आज्ञा देकर जनसमूहको भयरहित किया। इनके बाद ४र्थ कुलकर (या मनु) क्षेमन्धर हुए। इनके समयमें उन क्रूर जन्तुओंने और भी ज्यादा क्रूरता धारण की। इस पर इन्होंने लोगोंको लाठी आदि रखनेका उपदेश दिया। इनके असंख्य करोड़ों वर्ष बाद ५म कुलकर सीमङ्करका आविर्भाव हुआ। इनके समयमें कल्पवृक्ष घट गये और कम फल देने लगे, जिससे लोगोंमें परस्पर विवाद होने लगा। इन्होंने अपनी बुद्धिसे कल्पवृक्षोंकी हद बाँध दी। लोग अपनी हदके अनुसार उनका उपभोग करने लगे। इनके असंख्य करोड़ वर्ष बाद ६ठे मनु सीमन्धर हुए। इनके समयमें कल्पवृक्षोंके लिए विवाद और भी बढ़ गया। इन्होंने पुनः उनको नई रीतिसे हद बाँध दी। इनके असंख्य करोड़ वर्ष बाद ७वें कुलकर विमलवाहनका आविर्भाव हुआ। इन्होंने हाथी घोड़ा ऊँट आदि पर सवार होनेकी रीतिका प्रचार किया। इनके असंख्य करोड़ वर्ष बाद ८वें कुलकर चक्षुष्मान् आविर्भूत हुए। पहले सन्तान (पुत्र पुत्री युगल) उत्पन्न होनेके साथ ही पितामाताकी मृत्यु हो जाती थी, किन्तु इनके समय पितामाता क्षण भर ठहर कर मरने लगे। इन्होंने लोगोंको समझाया कि, सन्तान क्या होती है? इनके असंख्य करोड़ वर्ष बाद ९वें कुलकर यशस्वान् हुए। इन्होंने सन्तानको आशीर्वादादि देनेकी विधि बतलाई। इनके समयमें पिता माता कुछ ज्यादा समय तक जीवित रहने लगे। सन्तानोंका नामकरण भी इनके समयसे प्रचलित हुआ। इनके असंख्य करोड़ वर्ष पश्चात् १०वें मनु अभिचन्द्र हुए। इनके समयमें प्रजा अपनी सन्तानके साथ क्रीड़ा करने लगी और सन्तान पालनकी विधि प्रचलित हुई। इनके सैकड़ों वर्ष बाद ११वें कुलकर चन्द्राभका आविर्भाव हुआ। इनके समयमें सन्तानके साथ प्रजा और भी कुछ ज्यादा समय तक जीने लगी। इनके कुछ समय पश्चात् १२वें कुलकर मरुदेव हुए। इन्होंने जल मार्गसे गमन करनेके लिए छोटी बड़ी नाव चलानेका उपाय बताया। इन्हींके समयमें उपसमुद्र और छोटी बड़ी कई नदियाँ उत्पन्न हुई थीं तथा मेघ भी थोड़ा बहुत वर्षा करने लगे थे। इनके समय तक स्त्री और पुरुष दोनों युगल उत्पन्न होते थे। इनके कुछ समय पश्चात् १३वें कुलकर प्रसेनजित् हुए। इनके समयमें सन्तान जरायुसे ढकी उत्पन्न होने लगी। इन्होंने उसके फाड़नेका उपाय बताया। प्रसेनजित् कुलकर अकेले ही उत्पन्न हुए थे इनके पिताने इनका विवाह कर विवाहकी रीति प्रचलित की थी। इसके बाद अन्तिम (१४वें) कुलकर या मनु नाभिराज आविर्भूत हुए जो आदि तीर्थङ्कर श्रीऋषभदेवके पिता थे। इनके समयमें बड़ा फेर फिर हो गया अर्थात् भोगभूमिका

सर्वथा नाश हो कर कर्मभूमिका प्रारम्भ हुआ।

चौदहवें कुलकार नाभिराजके समयमें समस्त कल्पवृक्ष नष्ट हो गये थे। क्योंकि इन्हींके समयमें कर्मभूमिका प्रारम्भ था। भोगभूमिमें तो बिना किसी व्यापारके भोगोपभोगकी सामग्रियां स्वतः (कल्पतरुओं द्वारा) प्राप्त हो जाया करती थीं, किन्तु अब जीविकाके लिए व्यापारादि कार्य करनेकी आवश्यकता हुई। यह समय युगके परिवर्तनका था। कल्पवृक्षोंके नष्ट होनेके साथ ही जल, अग्नि, वायु, आकाश, पृथिवी आदिके संयोगसे धान्योंके वृक्षोंके अङ्कुर स्वयं उत्पन्न हुए और बढ़ कर फलयुक्त हो गये। किन्तु उस समयके मनुष्य इन वृक्षोंका उपयोग करना नहीं जानते थे। प्रजा बड़ी व्याकुल हो गई और महाराज नाभिके पास पहुंची। महाराज नाभिने उपयोगमें आनेवाले धान्य वृक्ष और फल वृक्षोंके धान्य और फलोंसे अपना निर्वाह करना सिखलाया। और हानिकर वृक्षोंसे दूर रहनेके लिए भी आज्ञा दी। बरतन आदि बनानेकी तरकीब भी सिखाई। इनके समयमें बालककी नाभिमें नाल दिखाई दी। इन्होंने नाल काटनेकी विधि प्रचलित की।

इन कुलकरोंमेंसे किसीको अवधिज्ञान * और किसीको जातिस्मरण † होता था। इनमेंसे प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमङ्कर, क्षेमन्धर और सीमन्धर इन पांच कुलकरोंने अपराधी मनुष्योंको पश्चात्तापरूप "हा" शब्द कह देने मात्रका दण्ड दिया था। सीमन्धर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान्, और अभिचन्द्र इन पांच कुलकरोंने "हा, मा" इन दो शब्दोंका प्रयोग कर अपराधियोंको दण्डित किया था तथा अन्तके चार कुलकरोंने "हा, मा, धिक्" इन तीन शब्दों द्वारा दण्डका विधान किया था। (महापुराणान्तर्गत आदिपुराण) नाभिराजकी पत्नीका नाम था महारानी मरुदेवी। इनके गर्भसे युगादि पुरुष १म तीर्थङ्कर आदिनाथका जन्म हुआ। इन्होंने लोगोंको गणितशास्त्र, छन्दःशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, चित्रकला तथा लिखन प्रणालीका अभ्यास कराया। मनोरञ्जनके लिए गायनविद्या, नाटक और नृत्यकला आदिका भी कुछ कुछ प्रचलन हुआ। कच्छ और महाकच्छ नामक राजाओंकी कन्या यशस्वती और सुनन्दासे इनका विवाह हुआ था। यशस्वतीके गर्भसे भरत चक्रवर्ती, वृषभसेन, अनन्तविजय, महासेन, अनन्तवीर्य, अच्युत, वीर, वरवीर, श्रीषेण, गुणसेन, जयसेन आदि १०० पुत्र और ब्राह्मीसुन्दरी नामकी एक कन्या हुई। दूसरी रानी सुनन्दादेवीके गर्भसे बाहुबली नामक एक पुत्र और सुन्दरीदेवी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई।

शिक्षाका प्रारम्भ—एक दिन भगवान् ऋषभदेवने अपनी दोनों कन्याओंको गोदमें बिठाया और अ आ इ ई आदि पढ़ाने लगे। इसके बाद उन्हें व्याकरण, छन्द, न्याय, काव्य गणित आदिकी भी शिक्षा दी। बस यहींसे शिक्षाका प्रचलन हुआ। इस समय भगवान्ने "स्वयंभुव" नामक व्याकरणकी रचना की थी तथा और भी छन्द, अलङ्कार आदि शास्त्र बनाये थे। पुत्रियोंके बाद पुत्रोंको पढ़ाया। यद्यपि शिक्षा सबको समान मिली थी, तथापि भरतने नीतिशास्त्रमें, वृषभसेनने सङ्गीत और वादनशास्त्रमें अनन्तविजयने चित्रकारी, नाट्यकला और वास्तुशास्त्रमें तथा बाहुबलीने कामशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, धनुर्वेदविद्या, पशुओंके लक्षणोंको जाननेकी विद्या और रत्नपरीक्षाकी विद्यामें समधिक व्युत्पत्ति लाभ की थी। नाभिराजके समयमें जो धान्य और फलादि स्वयं उत्पन्न हुए थे, उनमें भी रस आदि कम होने लगा। प्रजाके हितके लिए श्रीऋषभदेवने कुछ आज्ञाएं दीं; तदनुसार इन्होंने जिनमन्दिरोंकी तथा देश * उपप्रदेश, नगर

---

* परिमित देश, क्षेत्र, काल और भाव सम्बन्धी तीनों कालका जिससे ज्ञान होता है, उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

† जातिस्मरण भी एक प्रकारका ज्ञान होता है जिससे पूर्व जन्म वा भूतकालका स्मरण हो आता है।

* निम्नलिखित ५२ देशोंकी रचना की थी, यथा—सुकोशल, अवन्ती, पुंड्र, उड्र, अश्मक, रम्यक्, कुरु, काशी, कलिंग, अंग (विहार), वंग (बंगाल), सुह्म, (सुम्न), समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास,

आदिकी रचना की और खेती आदिका प्रचार किया। तदनन्तर भगवान् ऋषभने प्रत्येक देशके भिन्न भिन्न राजा नियुक्त किये। कई देश छोटे छोटे टुकड़ों के साथ भी पड़ गये थे। नगर और गांवों की सीमा बांध दी गई। किसान और शूद्रोंके सौ सौ घरों का गांव छोटा गांव और ५०० घरों का बड़ा गांव कहलाता। छोटे गांवों की सीमा एक कोसकी और बड़े गांवों की सीमा दो कोस की रक्खी गई। गांवों को बसाना, उनका उपयोग करना गांवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना गांवके अधिवासियोंके लिए नियम बनाना इत्यादि कार्य राज्यके अधीन रक्खे गये। जिन स्थानों पर बड़ी हवेलियां बनाई गई थीं, उनमें प्रसिद्ध पुरुष बसाये गये और उनका नाम नगर पड़ा। नदियों और पर्वतोंसे घिरे हुए स्थानों का 'खेट' नाम पड़ा। चारों ओर पर्वतोंसे घिरे हुए स्थान 'कर्वट', समुद्रके पास पासके स्थान 'पत्तन', नदीके निकट वर्ती ग्राम 'द्रोणमुख' और जिन ग्रामके आस पास ५०० घर थे, वे 'मंडम्ब' कहलाते। राजधानियोंके अधीन ८०० गांव द्रोणमुख ग्रामोंके अधीन ४०० और कर्वटोंके अधीन २०० ग्राम रक्खे गये। इसके सिवा भगवान् ऋषभदेवने प्रजाको शस्त्रधारण करना सिखाया और खेती, लेखन व्यापार, विद्या और शिल्पकर्म आदिका ज्ञान कराया। (महापुराणान्तर्गत आदिपुराण)

वर्ण-स्थापना— जिन्होंने शस्त्र धारण किये, वे क्षत्रिय कहलाये। जिन्होंने खेती, व्यापार और पशु पालनका कार्य लिया वे वैश्य कहलाये। और इन दोनों वर्णोंकी सेवा करनेवाले शूद्र कहलाये। इस प्रकार श्रीऋषभदेवने तीन वर्णोंकी स्थापना की। इसके पहले वर्ण-व्यवहार नहीं था। यहींसे वर्णव्यवहार चला और इसको अपनाना मनुष्योंकी आजीविकाके कार्योंसे की गई। इसके बाद भगवान्ने शूद्रोंके दो भेद किये—एक कारु और दूसरा अकारु। धोबी नाई आदि कारु कहलाये और इनसे भिन्न अकारु। कारु शूद्रों को भी दो भागोंमें विभक्त किया—स्पृश्य और अस्पृश्य। इसके बाद भगवान्ने सम्राट् पदसे विभूषित हो क्षत्रियों को युद्ध करने और वैश्योंको परदेश जानेकी शिक्षा दी। साथ ही जलयात्रा और स्थलयात्रा या समुद्रयात्राका प्रचार किया। (आदिपुराण।)

विवाह आदि सम्बन्ध भगवान्की आज्ञाके अनुसार किये जाते थे। इन्होंने विवाहके नियम इस प्रकार बनाये थे। शूद्र शूद्रकी कन्यासे विवाह करे, वैश्य वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे एवं क्षत्रिय क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे। उनके समयमें वर्णोचित जीविकाके सिवा कोई भी अन्य जीविका नहीं कर सकता था। अनन्तर श्रीऋषभदेवने एक हजार राजाओंके ऊपर हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभ इन चार महामण्डलेश्वर राजाओंकी नियुक्ति की। इन चारों राजाओंसे चार वंशोंकी उत्पत्ति हुई, यथा-हरिसे हरिवंश, अकम्पनसे नाथवंश, काश्यपसे उग्रवंश और सोमप्रभसे कुरुवंश वा चन्द्रवंश। इसके बाद महाराजाधिराज श्रीऋषभदेवने प्रजा पर उसको न अखरनेवाला बहुत कर लगा कर करग्रहणकी प्रथा चलाई। (आदिपुराण)

इसके बाद एक दिन राजसभामें नीलाञ्जना अप्सरा को नृत्य करते करते मर जाते देख उनको वैराग्य हो गया। इन्होंने भरतको राज्याभिषिक्त किया और बाहुबलिको युवराज पद दे कर जिनदीक्षा ले ली। इनके साथ बहुतसे राजाओंने अभिप्राय बिना समझे ही दीक्षा ले ली थी जो पीछेसे भ्रष्ट हो गये और विपरीत मतोंका प्रचार करने लगे। भगवान्ने छ महीने तक मौन धारणपूर्वक कठोर तप किया और आहार ग्रहणार्थ नगरमें आये। किन्तु कोई भी आहार देनेकी विधि नहीं जानता था। लोग अभिप्राय न समझ कर उन्हें सुवर्ण रत्न आदि बहुमूल्य पदार्थ देने लगे, किन्तु उन्हें उनसे क्या मतलब था। इससे उन्हें आहार न मिला और वनमें लौट जाना पड़ा। अन्तमें राजा सोमप्रभके कनिष्ठ भ्राता श्रेयांसने जातिस्मरण हो जानेसे भगवान् को विधिपूर्वक इक्षुरसका आहार दिया। एक हजार वर्ष महातप करनेके बाद पुरिमताल नगरके निकटवर्ती शकट नामक वनमें भगवान्को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

काश्मीर, कर्णाट कौशल, चोल, केरल लाट, कमिलार, सौवीर सुराष्ट्र, अपरान्त विदर्भ सिन्धु गांधार यवन, चेदि, पल्लव काम्बोज, आरट्ट, वाह्लीक तुरुष्क, शक और केकय। इनके सिवा और भी अनेक देशोंका विभाग किया था।

केवलज्ञान होते ही इन्द्रादि देवों द्वारा समवशरणकी रचना की गई। विशेष विवरणके लिए 'तीर्थंकर' शब्द देखो।

भगवान्‌के समवशरणमें भरतचक्रवर्त्तीने अनेक प्रश्न किये थे। इसी सभा (समवशरण) में भगवान्‌ने आत्माके स्वाभाविक धर्म वा सार्वधर्मका प्रकाश किया। यहींसे जैनधर्मका—इस अवसर्पिणीकालमें—प्रथम विकाश हुआ इसके बाद, परवर्ती २३ तीर्थङ्करोंने इस धर्मका प्रकाश किया, जिसका आज तक भी इस भारतवर्षके सर्वत्र प्रचार है। अनन्तर ऋषभदेवके पुत्र वृषभसेन, सोमप्रभ आदिने दीक्षा ले कर मुनिधर्मका तथा भगवान्‌की पुत्री ब्राह्मीदेवी और सुन्दरीदेवीने दीक्षा ग्रहण कर आर्यिका-धर्मका प्रसार किया। १म तीर्थङ्कर ऋषभदेवके समयसे लगा कर अन्तिम तीर्थङ्कर श्रीमहावीरस्वामीके समय तक जैनधर्मका प्रकाश इसी तरह फैला रहा, जिसका संक्षिप्त विवरण आगे चल कर "जैनशास्त्र वा श्रुत" नामक शीर्षकमें लिखेंगे।

ब्राह्मणवर्णकी उत्पत्ति—इस अवसर्पिणीकालके प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराजने, जिनके नामसे यह देश भारतवर्ष कहलाया, दिग्विजय-यात्रा करके अनेक सेना सहित दिग्विजयकी प्रथा प्रचलित की। ये भरतक्षेत्रके छहों खण्डोंके* अधिपति थे। इन्होंने अपनी लक्ष्मीका दान करनेके छलसे एक दिन समस्त प्रजाको निमन्त्रण दिया और राजप्रासादके मार्गमें घास आदि बो दी। इसका अभिप्राय यह था कि, जो व्यक्ति दयालु और उदाराशय होंगे, वे जीवहिंसासे बचनेके लिए इस मार्गमे न आ कर अवश्य ही अन्य मार्गका अवलम्बन करेंगे और वे ही वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण होनेके योग्य होंगे। अनन्तर जो लोग उस मार्गसे न आये, उन्हें यज्ञोपवीत दिया गया और दान, स्वाध्यायादि ब्राह्मण्य कर्मका उपदेश दिया गया। साथ ही यह भी कहा कि "यद्यपि जातिनाम-कर्मके उदयसे मनुष्य जाति एक ही है, तथापि जीविकाके पार्थक्यसे वह भिन्न भिन्न चार वर्णोंमें विभक्त हुई है। अतएव द्विज जातिका संस्कार तप और शास्त्रज्ञानसे ही कहा गया है। तप और ज्ञानसे जिसका संस्कार नहीं हुआ वह सिर्फ जातिसे ही द्विज है। एक बार गर्भसे और दूसरी बार क्रियाओंसे, इस प्रकार दो जन्मोंसे जिस-की उत्पत्ति हुई हो, वह द्विज है एवं जो क्रिया और मन्त्ररहित है, वह केवल नामधारण करनेवाला द्विज है, वास्तविक नहीं।" चक्रवर्ती द्वारा संस्कार किये जाने पर प्रजा भी इस वर्णका खूब आदर करने लगी। इस वर्णके मनुष्य प्रायः गृहस्थाचार्य होते थे और शेष जीवनमें अधिकांश मुनिधर्म अवलम्बनपूर्वक अपनी यथार्थ आत्मोन्नति किया करते थे। (आदिपुराण)

इसके कुछ दिन बाद भरतचक्रवर्ती भगवान् ऋषभ-देवके समवशरणमें गये और अपने स्वप्न तथा ब्राह्मण-वर्णकी स्थापनाका वृत्तान्त कहा। भगवान्‌की दिव्यध्वनि द्वारा इस प्रकार उत्तर मिला—"यद्यपि इस समय ब्राह्मणोंकी आवश्यकता थी, किन्तु भविष्यमें १०वें तीर्थङ्कर श्रीशीतलनाथके समयसे वे धर्मद्रोही और हिंसक हो जायगे तथा यज्ञादिमें पशुहिंसा करेंगे।" स्वप्नोंका फल भरतचक्रवर्ती शब्दमें देखो। इस पर भरतचक्रवर्तीको बड़ा पश्चात्ताप हुआ, किन्तु क्या करते? जो होना था सो हो गया, यह सोच कर सन्तोष धारण किया और संसारसे उदासीन हो कर राज्य करने लगे। भरतका वैराग्य गृहस्थावस्थामें ही इतना बढ़ गया था कि, दीक्षा ग्रहण करते ही उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया था और हजारों वर्ष तक सर्वज्ञावस्थामें संसारके जीवोंको धर्मोपदेश दे कर अन्तमें निर्वाण-प्राप्त हुए थे। भरत चक्रवर्ती देखो।

इनके बाद महावीरस्वामीके समय तक अनन्त केवलज्ञानके धारक हुए और उनके द्वारा जैनधर्मका प्रसार होता रहा। (आदिपुराण)

जैनशास्त्र वा श्रुत—तीर्थङ्कर जब सर्वज्ञ हो जाते हैं, तब उनके मुखसे जो वाणी वा उपदेश निःसृत होता है, उसको श्रुत वा शास्त्र कहते हैं। चतुर्थकालके प्रारम्भिक समयमें श्रीऋषभदेवके मोक्ष गये बाद पचास लाख कोटि सागर* वर्ष तक सम्पूर्ण श्रुतज्ञान अविच्छिन्न रूपमे

* जैनमतानुसार वर्तमानके जितने भी महाद्वीप हैं, वे सब एक ही आर्यखण्डमें शामिल हैं। ५ म्लेच्छखण्ड इनसे भिन्न हैं।

* जैन-ग्रन्थोक्त समय वा कालका एक प्रमाण।

दो हजार कोश गहरे और दो हजार कोश चौड़े गोल गड्डेमें, कैंचीसे जिसका दूसरा भाग न हो सके ऐसे भेड़के बालों-को भरना; जितने बाल उसमें समावें, उनमेंसे एक एक बालको

जिनमाला।

१ नाम-तीर्थंकर	२ तीर्थंकरोंका अन्तरकाल	३ पितृनाम	४ मातृनाम	५ वंश	६ च्यवन-स्वर्ग	७ च्यवनतिथि	८ जन्म तिथि	९ जन्म नगरी	१० शरीरका वर्ण	११ चिह्न
१। ऋषभदेव(१)	५० लाख कोड़िसागर	नाभिराय	मरुदेवी	इक्ष्वाकु	सर्वार्थसिद्धि	आषा कृ २	चै कृ ८	साकेत(२)	सुवर्णसम	वृषभ
२। अजितनाथ	३० " "	जितशत्रु	विजयसेना	"	विजयविमान	ज्ये कृ ३०	मा शु १०	"	"	गज
३। सम्भवनाथ	१० " "	दृढरथराय	सुसेनादेवी	"	ग्रैवेयकविमान	फा शु ८	का शु १५	श्रावस्ती(२)	"	अश्व
४। अभिनन्दननाथ	९ " "	संवरराय	सिद्धार्थादेवी	"	विजयविमान	वै शु ८	मा शु १२	विनीता(२)	"	कपि
५। सुमतिनाथ	९० हजार कोड़िसा.	मेघरथ	सुमङ्गलादेवी	"	वैजयन्तविमान	श्रा शु २	चै शु ११	साकेत(२)	"	चातक
६। पद्मप्रभ	" "	धरणराय	सुसीमादेवी	"	ग्रैवेयकविमान	मा कृ ६	का कृ १३	कौशाम्बी(३)	अरुणवर्ण	पद्म
७। सुपार्श्वनाथ	" "	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वीदेवी	"	"	भा शु ६	ज्ये शु १२	वाराणसी	हरितवर्ण	स्वस्तिक
८। चन्द्रप्रभ	" "	महासेन	सुलक्षणादेवी	"	वैजयन्तविमान	चै कृ ५	पौ कृ ११	चन्द्रपुरी(४)	शुक्लवर्ण	चन्द्र
९। पुष्पदन्त(५)	९ कोड़िसागर	सुग्रीवराय	रामादेवी	"	आरणस्वर्ग	फा कृ ९	अग शु १	काकन्दी	"	मकर
१०। शीतलनाथ	१००सा ६६ला.२०६ व.कम१को सा	दृढरथ	सुनन्दादेवी	"	अच्युतस्वर्ग	चै कृ ८	मा कृ १२	भद्रिकापुरी	सुवर्णसम	श्रीवत्स
११। श्रेयांसनाथ	५४ सागर	विष्णुराय	विष्णुश्री	"	"	ज्ये कृ ८	फा कृ ११	सिंहपुरी(४)	"	गैंडा
१२। वासुपूज्य	३० "	वसुपूज्य	विजयावती	"	महाशुक्रस्वर्ग	आषा कृ ६	फा कृ १४	चम्पापुर	अरुणवर्ण	महिष
१३। विमलनाथ	९ "	कृतवर्मा	श्यामादेवी	"	सहस्रारस्वर्ग	ज्ये कृ १०	मा शु ४	कांपिल्य	सुवर्णसम	वराह
१४। अनन्तनाथ	४ "	सिंहसेन	सर्वयशा	"	अच्युतस्वर्ग	का कृ १	ज्ये कृ १२	अयोध्या	"	सेही
१५। धर्मनाथ	३¾ पल्य कम ३ सागर	भानुराय	सुव्रतादेवी	चन्द्रवंश	सर्वार्थसिद्धि	वै शु ८	मा शु ३	रत्नपुरी(२)	"	वज्र
१६। शान्तिनाथ	½ पल्य	विश्वसेन	ऐरादेवी	"	"	भा कृ ७	ज्ये कृ १४	हस्तिनापुर	"	मृग
१७। कुन्थुनाथ	१ह.कोटवर्ष कम ¼पल्य	सूर्यप्रभ	श्रीमतीदेवी	"	"	श्रा कृ १०	वै शु १	"	"	छाग
१८। अरनाथ	१ करोड़ वर्ष	सुदर्शन	सुमित्रादेवी	"	अपराजितवि०	फा शु ३	मग शु १४	"	"	मत्स्य
१९। मल्लिनाथ	५४ लाख वर्ष	कुम्भराय	रक्षितादेवी	इक्ष्वाकु	"	चै शु १	मग शु ११	मिथिलापुरी	"	कलश
२०। मुनिसुव्रतनाथ	६ "	सुमित्रनाथ	पद्मावती	हरिवंश	प्राणतस्वर्ग	श्रा कृ २	वै कृ १०	राजगृह	श्यामवर्ण	कच्छप
२१। नमिनाथ	५ "	विजयरथ	वप्रादेवी	इक्ष्वाकु	अपराजितवि०	आश्वि कृ २	आषा कृ १०	मिथिलापुरी	सुवर्णसम	नीलकमल
२२। नेमिनाथ	८३७५० वर्ष	समुद्रविजय	शिवदेवी	हरिवंश	"	का शु ६	श्रा शु ६	शौरिपुरी	श्यामवर्ण	शंख
२३। पार्श्वनाथ	२५० वर्ष	अश्वसेन	वामादेवी	इक्ष्वाकु	प्राणतस्वर्ग	वै कृ २	पौ कृ ११	वाराणसी	हरितवर्ण	सर्प
२४। महावीरस्वामी(६)	......	सिद्धार्थ	त्रिशलादेवी	"	अच्युतस्वर्ग	आषा शु ६	चै शु १३	कुण्डपुर	सुवर्णसम	सिंह

(१) द्वितीय नाम ऋषभनाथ वा आदिनाथ। (२) अयोध्याके अन्तर्गत। (३) प्रयागके अन्तर्गत। (४) वाराणसी वा काशीके अन्तर्गत। (५) द्वितीय नाम सुविधिनाथ। (६) नामान्तर—वर्द्धमान, सन्मति, वीर और अतिवीर।

२४ पारण स्थान	२५ तपश्चरण	२६ केवलज्ञान	२७ गणधरसं०	२८ मुख्यगणधर	२९ केवली	३० १४श पूर्वी	३१ मुनि	३२ आर्यिका	३३ व्रतीश्रावक	३४ व्रती श्राविका	३५ समवशरण-काल	३६ मोक्षतिथि	३७ मोक्षस्थान
१ श्रेयांस गृह	१००० वर्ष	फा.क्र११	८४	वृषभसेन	२००००	४७५०	८४०००	३५००००	३लाख	५ लाख	१ह.व.कम १लापूर्व	मा क्र १४	कैलाश
२ ब्रह्मदत्त गृह	१२ ,,	पौ.शु ४	९०	सिंहसेन	२००००	३७५०	१ लाख	,,	,,	,,	१पूर्वा १२व. कम ,,	चै.शु.५	सम्मेदाचल
३ सुरेन्द्रदत्त गृह	१४ ,,	का क्र४	१०५	चारुषेण	१५०००	२१५०	२ लाख	३३००००	,,	,,	४पूर्वा १४व कम ,,	चै शु६	,,
४ इन्द्रदत्त-गृह	१८ ,,	पौ शु१४	१०३	वज्रनाभि	१६०००	२५००	३ला.१४ह	३३०६००	,,	,,	१२पूर्वा २०व कम ,,	वै शु६	,,
५ पद्मराय-गृह	२० ,,	चै शु११	११६	चमर	१३०००	२४००	३ला. २ह.	३३००००	,,	,,	१६पूर्वा६मा कम ,,	चै शु११	,,
६ सोमदत्त गृह	६ ,,	चैं पूर्णि०	१११	वज्रवली	१२०००	२३००	,,	४२००००	,,	,,	२०पूर्वा ८व काम ,,	फा क्र४	,,
७ महादत्त-गृह	९ ,,	फा क्र६	९५	चमरवली	११०००	२०३०	३ लाख	३३००००	,,	,,	२४पूर्वा ३मा कम ,,	फा क्र७	,,
८ सोमदेव गृह	३ ,,	फा क्र७	९३	दत्तक	१००००	२०००	२½लाख	३८००००	,,	,,	२८पूर्वा ४मा कम ,,	फा शु७	,,
९ पुष्पक-गृह	४ ,,	का शु२	८८	विदर्भ	७५००	१५००	२ ,,	३८००००	२लाख	४लाख	३मा कम ५०ह पूर्व	भा शु८	,,
१० पुनर्वसु गृह	२ ,,	पौ शु१४	८१	अनागार	७०००	१४००	१ ,,	३८००००	,,	,,	२व कम २५ ,,	आश्वि शु८	,,
११ सुनन्दराय-गृह	२ ,,	मा क्र३०	७७	कुन्थु	६५००	१३००	८४ ह.	१२००००	,,	,,	२व कम २१ लाख वर्ष	श्रा.पूर्णिमा	,,
१२ नन्दभूप-गृह	१ ,,	मा शु२	६६	सुधर्म	६०००	१२००	७२ ,,	१०६०००	,,	,,	१ ,, १८ ,,	भा शु१४	चम्पापुरी
१३ विशाखदत्त-गृह	३ ,,	मा शु६	५५	नन्दिराय	५५००	११००	६८ ,,	१०३०००	,,	,,	३ ,, १५ ,,	आषा क्र६	सम्मेदाचल
१४ धर्मसिंह गृह	२ ,,	चै क्र३०	५०	जयमुनि	५०००	१०००	६६ ,,	१०८०००	,,	,,	२ ,, ७½ ,,	चै क्र४	,,
१५ धन्यसेन-गृह	१ ,,	पौ पूर्णिमा	४३	अरिष्ट	४५००	९००	६४ ,,	६२४००	,,	,,	१ ,, २½ ,,	ज्ये शु४	,,
१६ धर्ममित्र गृह	१ ,,	पौ शु११	३६	चक्रायुध	४०००	८००	६२ ,,	६०३००	,,	,,	१ व कम २५ह वर्ष	ज्ये क्र१४	,,
१७ अपराजित-गृह	१६ ,,	चै शु३	३५	स्वयम्भू	३२००	७००	६० ,,	६०३५०	१ला	३ला	२३७३४ वर्ष	वै शु१	,,
१८ नन्दसेन-गृह	११ ,,	का शु१२	३०	कुम्भार्य	२८००	६१०	५० ,,	६० हजा	,,	,,	२०९८९ ,,	चै शु११	,,
१९ ऋषभदत्त गृह	१६ ,,	पौ क्र२	२८	विशाखदत्त	२२००	५५०	४० ,,	५५ ,,	,,	,,	१८९८४ ,,	फा शु५	,,
२० राजदत्त गृह	११ ,,	वै क्र ९	१८	मल्लि	१८००	५००	३० ,,	५० ,,	,,	,,	२४९८ ,,	फा क्र१२	,,
२१ सुनयदत्त गृह	९ मास	मा शु ११	१७	सोमनाथ	१६००	४५०	२० ,,	४५ ,,	,,	,,	९मा कम २५०० ,,	वै क्र१४	,,
२२ वरदत्त गृह	५६दिन	आश्विशु१	११	वरदत्त	१५००	४००	१८ ,,	४० ,,	,,	,,	५६ दि कम ७०० ,,	आषा० शु७	गिरनार
२३ धनदत्त-गृह	४ मास	चै क्र ४	१०	स्वयम्भू	१०००	३५०	१६ ,,	३८ ,,	,,	,,	४मा कम ७० वर्ष	श्रा० शु७	सम्मेदाचल
२४ नकुलराय-गृह	१२ वर्ष	वै शु१०	११	इन्द्रभूति	७००	३००	१४ ,,	३५ ,,	,,	,,	३० वर्ष	का० अमा	पावापुर

पू=पूर्व । पूर्वा=पूर्वांग । ला=लाख । ह=हजार । व=वर्ष । मा=मास । दि=दिन ।

ग्यारह हुये, यथा—विशाखदत्त*, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजयसेन, बुद्धिमान, गङ्गदेव और धर्मसेन वा धर्मदत्त। इतनेमें १८३ वर्ष बीत गये।

अनन्तर २२० वर्षके भीतर भीतर नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, द्रुमसेन (ध्रुवसेन) और कंसाचार्य ये पांच ग्यारह अङ्गके ज्ञाता हुए। इनके बाद ११८ वर्षके भीतर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु† और लोहाचार्य ये चार मुनि आचाराङ्ग शास्त्रके परम विद्वान् हुए। इनके समय तक (अर्थात् वीरनिर्वाणके ६८३ वर्ष बाद तक) अङ्ग-ज्ञानकी प्रवृत्ति रही। बस, इनके बाद कालदोषसे उसकी प्रवृत्ति विलुप्त हो गई।

लोहाचार्यके बाद विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हद्दत्त ये चार आरातीय मुनि अङ्गपूर्वज्ञानके कुछ भागके ज्ञाता हुए। इनके बाद पूर्वदेशके पौण्ड्रवर्द्धनपुरमें श्रीअर्हद्बलि महामुनि अवतीर्ण हुए जो अङ्गपूर्व ज्ञानके कुछ अंशोंके ज्ञाता थे। ये महामुनि प्रसारणा, धारणा विशुद्धि आदि श्रेष्ठ क्रियाओंमें निरन्तर तत्पर अष्टाङ्ग निमित्त-ज्ञानके ज्ञाता और मुनि सङ्घके शासक थे। अर्हद्बलि आचार्यने एक दिन युगप्रतिक्रमणके समय मुनियोंसे पूछा—"सब मुनि आ गये?" मुनियोंने उत्तर दिया—"भगवन्! हम सब अपने अपने सङ्घ सहित आ गये।" इस वाक्यसे अपने सङ्घमें मुनियोंकी भिन्नत्वबुद्धि प्रकट हुई। जिससे आचार्यवरने निश्चय कर लिया कि इस कलिकालमें जैनधर्म भिन्न भिन्न गणोंके पक्षपातसे ठहर सकेगा, उदासीन भावसे नहीं। ऐसा विचार कर उन्होंने गुफासे आये हुए मुनियोंमेंसे किसीको नन्दि और किसीको वीर संज्ञा रक्खी। अशोकवाटिकासे आये हुए मुनियोंमेंसे किसीकी संज्ञा अपराजित और किसीकी देव। पञ्चस्तूपोंसे आये हुए मुनियोंमेंसे किसीकी संज्ञा सेन और किसीकी भद्र; महाशाल्मलीवृक्षोंके नीचेसे आये हुए मुनियोंमेंसे किसीकी गुणधर और किसीकी गुप्त तथा खण्डकेसर वृक्षोंके नीचेसे आये हुए मुनियोंमेंसे किसीकी सिंह और किसीकी चन्द्र संज्ञा रक्खी।

इस प्रकार उक्त समस्त मुनि सङ्घोंका प्रवर्त्तन करनेवाले श्रीअर्हद्बलि आचार्यके शिष्य हो गये। इनके पश्चात् श्रीमाघनन्दि मुनि अवतीर्ण हुए। इन्होंने भी अङ्गपूर्व ज्ञानका भली भांति प्रकाश किया। तत्पश्चात् सौराष्ट्रदेशके गिरिनगरके निकट ऊर्जयन्तगिरि वा गिरनार पर्वतकी चन्द्रगुफामें निवास करनेवाले श्रीधर सेन आचार्य हुए। इनको अग्रायणीपूर्वके अन्तर्भूत पञ्चम वस्तुके चतुर्थ महाकर्मप्राभृतका ज्ञान था। इन्हें मालूम हो गया था कि, 'अब हम अल्पकालमें मुझसे अधिक शास्त्रज्ञ और कोई भी न होगा।" इन्होंने यह विचार कर कि यदि कोई प्रयत्न न किया गया तो श्रुतका विच्छेद होगा एक ब्रह्मचारी द्वारा देशेन्द्र देशके वेणातटाकपुरके निवासी महामहिमाशाली मुनियोंके निकट एक पत्र भेजा। पत्रानुसार दो तीक्ष्ण बुद्धि मुनि श्रीधरसेनाचार्यके पास आये। आचार्यने भी उन्हें योग्य समझ कर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्त्तमें शास्त्रका व्याख्यान करना प्रारम्भ कर दिया। मुनिद्वय भी आलस्य त्याग कर अध्ययन करने लगे। कुछ दिन बाद आषाढ़ शुक्ला ११शीको विधिपूर्वक अध्ययन समाप्त हुआ। देवोंने प्रसन्न हो कर दोनों मुनियोंका पुष्पदन्त और भूतबलि नाम रख दिया। दूसरे दिन श्रीधरसेनाचार्यने अपनी मृत्यु निकटवर्ती जान उन दोनों शिष्योंको कुरीश्वर भेज दिया।

कुछ दिन पीछे वे दोनों मुनि करहाट नगरमें पहुंचे। वहां श्रीपुष्पदन्त मुनिने अपने भानजे जिनपालितको देखा। जिनपालितने जिनदीक्षा ले ली। जिनपालितको साथ ले श्रीपुष्पदन्त वनवास देशमें पहुंचे। उधर भूतबलि द्राविड़ देशके मथुरा नगरमें पहुंचे, दोनों का साथ छूट गया। अनन्तर भूतबलिने पांच खण्डोंमें पूर्वसूत्रों सहित छह हजार श्लोकविशिष्ट द्रव्यप्ररूपणाधिकारकी रचना की और फिर महाबन्ध नामक छठे खण्डको तीस हजार सूत्रोंमें समाप्त किया। पहले पांच खण्डोंके नाम ये हैं—जीवस्थान, क्षुद्रकबन्ध, बन्धस्वामित्व, भाववेदना

* इनको किसी किसीने विशाखाचार्य भी लिखा है।

† श्रुतावतारकी टीकामें जयबाहुके स्थानमें यशोधर और भद्रबाहुके स्थानमें महायश लिखा है। सम्भवतः ये इनके नामान्तर होंगे।

पट्ट	नाम आचार्य	पट्ट पर बैठनेका संवत और तिथि	गृहस्थावस्थामें	दीक्षावस्थामें	कितने वर्ष पट्ट पर रहे?			विरह दिन	सर्वायु: वर्ष			मन्तव्य
					व	मा	दि		व	मा	दि	
३३	अनन्तकीर्ति	७६५।आ शु१०	११ व	१३ व	१८	८	२५	५	४३	१०	०	
३४	धर्मनन्दी	७८५ आ पूर्णि	१३ १८०	१८ व	२२	८	२५	५	५३	१०	०	(पाठान्तर धर्मादिनन्दी)
३५	वीरचन्द्र	८०८।ज्ये पूर्णि	१४ व	२५ व	३२	०	४	८	७०	०	१२	(पाठान्तर विद्यानन्दी)
३६	रामचन्द्र	८४०।आषा कृ१२	८ व	११ व	१६	१०	०	६	४५	१०	६	(पाठान्तर वीरचन्द्र)
३७	रामकीर्ति	८५७।वै शु३	१३ व	१६ व	२१	४	२६	११	५१	५	७	
३८	अभयचन्द्र	८७८।आ शु१०	१८ व	१० व	१७	०	२७	४	४५	१	१	(पाठान्तर अभयेन्द्र)
३९	नरनन्दी	८९७।का शु७	१५ वर्ष	२१ वर्ष	१८	८	०	८	५४	८	८	(मतान्तरमें शु३ा ११ गो, नाम नरचन्द्र
४०	नागचन्द्र	९१६।भा कृ५	२१ „	१३ „	२३	०	३	१०	५७	०	१३	
४१	नयननन्दी	९३९।भा शु३	८ „	१० „	८	८	११	८	२६	८	२०	पाठान्तर-नयनन्दी, हरिनन्दी
४२	हरिचन्द्र	९४८।आषा कृ८	८व ४म	१४व८मा	२६	१	८	८	४८	१	१६	
४३	महीचन्द्र १म	९७४।आ शु९	१४ वर्ष	१० ११	१६	६	०	५	४१	५	५	(मतान्तरमें सं० ९७२)
४४	माघचन्द्र १म	९९०।मा शु१४	१३ "	२०व	३२	२	२४	८	६५	३	३	(पाठान्तर माघवेन्द्र) यहां तक उज्जयिनीमें
४५	लक्ष्मीचन्द्र	१०२३।ज्ये कृ२	११ "	२५व	१४	४	३	११	५०	४	१४	चन्देरीमें पट्ट
४६	गुणनन्दी २य	१०३७।आश्वि शु१	१० "	२२व	१०	१०	२८	१४	४८	११	१३	(पाठान्तर गुणकीर्ति)
४७	गुणचन्द्र	१०४८।भा शु१४	१० "	२२व	१७	८	७	१०	४९	८	१७	(४६ और ४८वेंके बीचमें वासवेन्द्र)
४८	लोकचन्द्र २य	१०६६।ज्ये शु१	१५ "	३०व	१३	३	३	४	५८	३	७	यहां तक चन्देरीमें पट्ट
४९	श्रुतकीर्ति	१०७९।भा शु८	१३ "	३२व	१५	६	६	६	६०	६	१२	भेलसामें पट्ट।
५०	भावचन्द्र	१०९४।चै कृ५	१२ "	२५व	२०	११	२५	५	५८	०	०	"
५१	महीचन्द्र २य	१११५।चै कृ५	१० "	२६व	२५	५	१९	५	६१	५	१५	"
५२	माघचन्द्र २य	११४०।भा शु५	१४ "	१३व	४	३	१७	७	३१	३	२४	बारानगरमें पट्ट।
५३	वृषभनन्दी	११४४।पौ कृ१४	७ "	३७व	३	४	१	४	४७	४	५	(पाठान्तर ब्रह्मनन्दी)
५४	शिवनन्दी	११४८।वै शु४	८ "	३८व	७	६	१७	१४	५५	७	१	
५५	वसुचन्द्र	११५५।अग्र शु५	११ "	४०व	०	७	२८	३	५१	८	१	(पाठान्तर विश्वचन्द्र)
५६	सिंहनन्दी	११५६।आ शु६	७ "	३२व	४	०	२४	५	४३	०	२९	(पाठान्तर हरिनन्दी)
५७	भावनन्दी	११६०।भा शु१	११ "	३०व	७	२	०	३	४८	२	३	
५८	देवनन्दी २य	११६७।का शु८	११ "	३०व	३	३	२	१०	४४	३	१२	(पाठान्तर शूरकीर्ति)
५९	विद्याचन्द्र	११७०।फा कृ५	१४ "	३८व	५	५	५	१४	५७	५	१९	
६०	शूरचन्द्र	११७६।आ शु९	१० "	३५व	८	१	२९	२	५३	२	१	
६१	माघनन्दी २य	११८४।आश्वि शु१०	१४व ३मा	३२व१मा	४	१	१६	५	५०	६	२१	
६२	ज्ञानकीर्ति	११८८।अग्र शु१	१० वर्ष	३४व	२१	०	३	७	५५	०	१०	(पाठान्तर ज्ञाननन्दी)
६३	गङ्गाकीर्ति	११९९।अग्र शु११	१३ "	३३व	७	२	८	१०	५३	२	१८	यहां तक बारानगरमें पट्ट
६४	सिंहकीर्ति	१२०६।फा कृ१४	८ "	३७व	२	२	१५	१६	४७	३	१	ग्वालियरमें पट्ट।
६५	हेमकीर्ति	१२०९।ज्ये कृ१२	१३ "	२४व	७	३	२७	६	४४	४	३	चित्तौर (मेवाड़)में—

व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्ग, ज्ञातृधर्मकथाङ्ग, उपासकाध्ययनाङ्ग, अन्तःकृद्दशाङ्ग, अनुत्तरौपपादिकदशाङ्ग, प्रश्नव्याकरणाङ्ग, विपाकसूत्राङ्ग और दृष्टिप्रवादाङ्ग। इनमें प्रथम आचाराङ्गमें साधु वा मुनिओंके सम्पूर्ण आचरणका निरूपण है, इसके अठारह पद* हैं। २य सूत्रकृताङ्गमें ज्ञानकी विनय आदि और धर्मक्रियामें स्वपरमतकी क्रियाका विशेष निरूपण है, इसमें छत्तीस हजार पद हैं। ३य स्थानाङ्गमें जीव (आत्मा), पुद्गल (अजीव) आदि द्रव्योंका एक आदि स्थानोंका निरूपण है। जैसे—जीव द्रव्य चैतन्यसामान्यकी अपेक्षा एक प्रकार है, सिद्ध और संसारीके भेदसे दो प्रकार है तथा संसारी जीव स्थावर विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रियके भेदसे तीन प्रकार है इत्यादि। इस प्रकार इसमें स्थान आदिका वर्णन है और इसके बियालीस हजार पद हैं। ४थ समवायाङ्गमें द्रव्य, क्षेत्र, काल भावको अपेक्षा समानताका वर्णन है; इसके एक लाख चौंसठ हजार पद हैं। ५म व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्गमें जीवके अस्तिनास्ति इत्यादि साठ हजार प्रश्न जो गणधर देवने तीर्थङ्करके निकट किये थे, उनका वर्णन है; इसके दो लाख अट्ठाईस हजार पद हैं। ६ष्ठ ज्ञातृधर्मकथाङ्गमें तीर्थङ्करोंके धर्मोंकी कथा, जीवादि पदार्थोंका स्वभाव और गणधर द्वारा किये गये प्रश्नोंके उत्तरोंका वर्णन है। इसको धर्मकथाङ्ग भी कहते हैं, इसके पाँच लाख छप्पन हजार पद हैं। ७म उपासकाध्ययनाङ्गमें ग्यारह प्रतिमा आदि श्रावकों (जैन गृहस्थों) के व्रत, शील, आचार, क्रिया, मन्त्र, उपदेश आदिका वर्णन है; इसके ग्यारह लाख सत्तर हजार पद हैं। ८म अन्तःकृद्दशाङ्गमें एक एक तीर्थङ्करके बाद दश दश महामुनियोंके उपसर्ग जीत कर संसार परिभ्रमणके अन्त करनेका वर्णन है। इसके तेईस लाख अट्ठाईस हजार पद हैं। ९म अनुत्तरौपपादिकदशाङ्गमें एक एक तीर्थङ्करके बाद दश दश महामुनि जो घोर उपसर्ग सह कर विजय आदि पाँच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न हुए हैं, उनका वर्णन है। इसके बानवे लाख चवालीस हजार पद हैं। १०म प्रश्नव्याकरण अङ्गमें भूत और भविष्यकाल सम्बन्धी लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन, मरण, आदि शुभाशुभके प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर देनेके उपायों तथा आक्षेपिणी (चार अनुयोग, लोकका आकार, यति और श्रावकके धर्मका जिसमें वर्णन हो), विक्षेपिणी (प्रमाणका स्वरूप, परमतनिराकरण जिसमें हो), संवेदिनी (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप धर्म तीर्थङ्करोंके प्रभाव, तेज, वीर्य, ज्ञान, सुखादिका जिसमें कथन हो) निर्वेदिनी (जिसमें वैराग्य बढ़ानेवाली कथाओंका वर्णन हो) इन चार प्रकारकी कथाओंका वर्णन है। इसके तिरानवे लाख सोलह हजार पद हैं। ११श अङ्ग विपाकसूत्रमें कर्मों (पाप-पुण्य आदि) के बन्ध, उदय, सत्ता और तीव्र, मन्द, अनुभागका द्रव्य क्षेत्र-काल-भावको अपेक्षा वर्णन है। इसके एक करोड़ चौरासी लाख पद हैं।

१२ दृष्टिवादाङ्गके एक सौ आठ करोड़ अरसठ लाख छप्पन हजार पाँच पद हैं। इसके पाच भेद हैं, यथा—(१) पञ्चप्रकार परिकर्म, (२) सूत्र नाम, (३) प्रथमानुयोग, (४) चतुर्दशपूर्वगत और (५) पञ्चप्रकार चूलिका। इनमें परिकर्मका पहला भेद चन्द्रप्रज्ञप्ति है, जिसमें चन्द्रका गमन आदि तथा उसके परिवार, आयु और कालको हानिवृद्धि एवं देवी, विभव आदि ग्रहणादिका वर्णन है। इसके छत्तीस लाख पचास हजार पद हैं। दूसरा भेद सूर्यप्रज्ञप्ति है, जिसमें सूर्यकी ऋद्धि, विभव, देवी, परिवार आदिका वर्णन है। इसके पाँच लाख तीन हजार पद हैं। ३रा भेद जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति है, जिसमें जम्बूद्वीप सम्बन्धी मेरु, गिरि, नदी, द्रह, क्षेत्र, कुलाचल आदिका वर्णन है। इसके तीन लाख पचीस हजार पद हैं। ४था भेद द्वीपसागर-

* सोलहसौ चौंतीस कोटि तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी (१६३४८३०७८८८) अक्षरका १ एक पद होता है। इस पदके तीन भेद हैं, १ अर्थपद, २ प्रमाणपद, ३ मध्यमपद। इनमेंसे "सफेद गौको रस्सीसे बांधो" 'अग्निको लाओ' इत्यादि अनियत अक्षरोंके समूहरूप किसी अर्थ विशेषके बोधक वाक्यको अर्थपद कहते हैं। आठ आदिक अक्षरोंके समूहको प्रमाणपद कहते हैं, जैसे श्लोकके एक पादमें आठ अक्षर होते हैं। इसी प्रकार दूसरे छन्दोंके पदोंमें भी अक्षरोंका न्यूनाधिक प्रमाण होता है, परन्तु कहे हुए पदके अक्षरोंका प्रमाण सर्वदाके लिये निश्चित है, इसीको मध्यम कहते हैं। (गोम्मटसार जी० का०)

प्रज्ञप्ति है जिसमें द्वीप और समुद्रोंका स्वरूप तथा भवनवासी, ज्योतिष्क और व्यन्तर देवोंके आवासों तथा जिनमन्दिरोंका वर्णन है। इसकी बावन लाख छत्तीस हजार पद हैं। ५वां भेद है व्याख्याप्रज्ञप्ति, इसमें जीव, अजीव पदार्थोंके प्रमाणोंका वर्णन है। इसके चौरासी लाख छत्तीस हजार पद हैं। १२वें अङ्गका दूसरा भेद सूत्र है जिसमें मिथ्यादर्शन (विपरीत ज्ञान वा सर्वज्ञ प्रणीत तत्त्वोंमें सन्देह)-सम्बन्धी ३६३ कुवादोंका * वर्णन है; अर्थात् जीव स्वप्रकाशक ही है, परप्रकाशक ही है, अस्तिरूप ही है, नास्तिरूप ही है इत्यादि एकान्तके पक्षपातको दूर कर यथार्थ स्वरूपका वर्णन है। सूत्रके अनेक भेद हैं। उनमें प्रथम भेदमें धर्मके अभावका वर्णन है, दूसरेमें श्रुति (केवलज्ञानीकी दिव्य-ध्वनि) स्मृति (गणधरोंकी वाणी) और पुराण (आचार्यों के वचन)-के धर्मका प्रतिपादन है तीसरेमें नियतिको कहा है तथा चौथेमें अनुलोम भेदोंके लिए स्वसमय और परसमयोंका विवरण है। (अप्रकाशित) इसके अठासी लाख पद हैं। १२वें अङ्गका तीसरा भेद प्रथमानुयोग है, इसमें चतुर्विंशति तीर्थङ्कर द्वादश चक्रवर्ती नव नारायण नव प्रतिनारायण और नव बलभद्र इन त्रेसठ शलाकापुरुषोंका वर्णन है। इसके ५००० पद हैं।

इस दृष्टिवादाङ्गका चौथा भेद है पूर्वगत। इसके भी उत्पाद आदि चौदह भेद हैं जो 'चौदहपूर्व'के नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रथम उत्पादपूर्वमें दस वस्तु † और एक करोड़ पद हैं। इसमें जीव, पुद्गल, काल आदि द्रव्योंके उत्पाद व्यय और ध्रौव्य स्वभावोंका विस्तारसे वर्णन है। २रे अग्रायणीय पूर्वमें १४ वस्तु ‡ और ९६ लाख पद हैं। इसमें सप्ततत्त्व नव पदार्थ षट् द्रव्य और सुनय दुर्नयोंका वर्णन है। ३रे वीर्यानुवादपूर्वमें ८ वस्तु और ७० लाख पद हैं। इसमें आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, क्षेत्रवीर्य कालवीर्य भाववीर्य, तपोवीर्य और इन्द्रिय आदि ऋद्धि तथा नरेन्द्र, चक्रधर, बलदेव आदि अतिशय धरा ऊंचे बड़े बड़े मनुष्योंके वीर्य, ज्ञान, सम्पत्ति आदिका वर्णन है। ४थे अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वमें १८ वस्तु और साठ लाख पद हैं। इसमें स्वद्रव्य आदि चतुष्टयकी अपेक्षा जीवादि पदार्थ अस्तिस्वरूप हैं और परद्रव्य आदिकी अपेक्षा नास्तिस्वरूप हैं, इत्यादि वर्णन है। ५वें ज्ञानप्रवादपूर्वमें १२ वस्तु और एक कम एक करोड़ पद हैं इसमें मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय और केवल इन पांच पांच ज्ञानोंका तथा कुमति, कुश्रुत और विभङ्ग (कुअवधि)के स्वरूप, विषय, संख्या फल आदिका वर्णन है। ६ठे सत्यप्रवादपूर्वकी पदसंख्या १,००,००,००६ और वस्तुसंख्या १२ है। इसमें बारह प्रकार वचनों* तथा दश प्रकार सत्यों† अथवा वचनगुप्ति और उसके संस्कारोंके कारण द्वादश प्रकार भाषा तथा वक्ताके भेद असत्यके भेद और दश प्रकार सत्यके प्ररूपणका वर्णन है। ७वें आत्मप्रवादपूर्वकी वस्तुसंख्या १६ और पद संख्या २६,००,००,००० है। इसमें आत्माके धर्म, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, नित्यत्व और अनित्यत्व आदिका तथा उनके भेद प्रभेदोंका युक्तिपूर्वक सविस्तर वर्णन है।

८वें कर्मप्रवादपूर्वकी पदसंख्या १,८०,००,००० और वस्तुसंख्या २० है। इसमें ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंकी मूलप्रकृति, उत्तरप्रकृति और उत्तरोत्तरप्रकृतिके भेद सहित बन्ध, सत्ता, उदय उदीरणा, उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उपशम निधत्ति निकाचित आदि

---

* ये ३६३ वादियोंके विशेष भेद हैं किन्तु मूल भेद ४ ही हैं, यथा—क्रियावादी अक्रियावादी अज्ञानवादी और विनयवादी। इनमें क्रियावादी १८० प्रकार, अक्रियावादी ८४ प्रकार, अज्ञानवादी ६७ प्रकार और विनयवादी ३२ प्रकार हैं।

(जैन हरिवंशपु० १० सर्ग, ४७—४८)

† वस्तुअधिकारको कहते हैं।

‡ चौदह वस्तु, यथा—पूर्वान्त, अपरान्त ध्रुव अध्रुव, अच्यवनलब्धि, अध्रुवसंप्रणिधि अर्थ भौमावय, सर्वार्थ कल्पनीय, अतीतानागत सिद्ध और उपाध्याय।

* बारह प्रकारके वचन यथा—अभ्याख्यानवचन २ कलहवचन ३ पैशुन्यवचन, ४ असम्बद्धप्रलापवचन, ५ रत्युत्पादकवचन, ६ अरत्युत्पादकवचन, ७ उपधिवचन, ८ निकृतिवचन ९ अप्रणतिवचन, १० मोषवचन, ११ सम्यग्दर्शनवचन और १२ मिथ्यादर्शनवचन।

† दश सत्य प्रकार हैं यथा—१ नामसत्य, २ रूपसत्य, ३ स्थापनासत्य, ४ प्रतीत्यसत्य ५ संवृतिसत्य, ६ संयोजनासत्य ७ जनपदसत्य, ८ देशसत्य, ९ भावसत्य और १० समयसत्य।

अवस्थाओंका तथा चित्त आदि अवस्था ईर्यापथ आदि क्रिया, तपस्या, अधःकर्म आदिका वर्णन है। ८वें प्रत्याख्यानपूर्वमें ३० वस्तु और ८४,००,००० पद हैं। इसमें नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको आश्रय कर पुरुषको संहनन, बल आदिके अनुसार प्रमाणीक काल पर्यन्त वा अप्रमाणीक काल पर्यन्त त्याग करना तथा सावद्य वस्तुका त्याग, उपवास-विधि, उसको भावना, पांच समिति और तीन गुप्तिका वर्णन है। यह पूर्व मुनि धर्मका बढ़ानेवाला है। १०वें विद्यानुवादपूर्वमें १५ वस्तु और १,१०,००००० पद हैं। इसमें अङ्ग ४, प्रसेन आदि ७०० लघुविद्या और रोहिणी, ५०० महाविद्याओंके स्वरूप-सामर्थ्य साधनभूत मन्त्र यन्त्र आदिका, सिद्ध हुई विद्याओंके फलका तथा अष्टाङ्गनिमित्तज्ञानका वर्णन है। ११वें कल्याणवादपूर्वकी वस्तुसंख्या १० और पदसंख्या २६,०० ००,००० है। इसमें तीर्थङ्कर, चक्रधर, बलदेव, वासुदेव आदिके गर्भावतारणादि कल्याणकोंके महोत्सव और उनके कारण तीर्थङ्करत्व आदि पुण्यविशेषके हेतु षोड़शकारणभावना आदि तपश्चरण प्रभृतिका तथा सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह नक्षत्रादिके गमन, ग्रहण, शकुन आदिके फलका वर्णन है। १२वें प्राणवादपूर्वकी वस्तुसंख्या १० और पदसंख्या १३,००,००,००० है। इसमें काय-चिकित्सा आदि आठ प्रकारके आयुर्वेदका, भूत आदिकी व्याधि दूर करनेके कारण मन्त्र तन्त्रादि वा विष दूर करनेवाली गारुड़ आदि विद्याओंका तथा उस प्राणीके उपकारक अपकारक द्रव्योंका गतियोंके अनुसारसे वर्णन है। १३वें क्रियाविशालपूर्वकी वस्तुसंख्या १० और पदसंख्या ८,००,००,००० है। इसमें सङ्गीतशास्त्र, छन्द अलङ्कार, पुरुषोंकी ७२ कला, स्त्रियोंके ६४ गुण, शिल्पादि विज्ञान, गर्भाधान आदि ८४ क्रिया, सम्यग्दर्शनादि १०८ क्रिया या देववन्दना आदि २५ क्रिया और नित्यनैमित्तिक क्रिया आदिका वर्णन है। १४वें त्रिलोकबिन्दुसारपूर्वकी वस्तुसंख्या १० और पदसंख्या १२,५०,००,००० है। इसमें तीन लोकका स्वरूप, ३६ परिकर्म, आठ व्यवहार, चार बीज आदि गणित तथा मोक्षका स्वरूप, उसके गमनका कारण, क्रिया और मोक्षके सुखका स्वरूप वर्णित है। (गोम्मटसार सटीक जीवकाण्ड)

बारहवें अङ्गका ५वां भेद चूलिका है जिसके ५ भेद हैं, यथा—१ जलगता, २ स्थलगता, ३ मायागता, ४ रूपगता और ५ आकाशगता। १म जलगता चूलिकामें जलका स्तम्भन, जलके ऊपरसे गमन, अग्निका स्तम्भन, अग्निमें प्रवेश करना, अग्निका भक्षण करना इत्यादिके कारणरूप मन्त्र, तन्त्र, तपश्चर्या आदिका निरूपण है। इसके २,०८,८८,२०० पद हैं। २य स्थलगता चूलिकामें मेरु, कुलाचल, भूमि आदिमें प्रवेश, शीघ्र गमन इत्यादि क्रियाके कारणभूत मन्त्रतन्त्रादिका वर्णन है; इसके भी २,०८,८८,२०० पद हैं। ३य माया-गताचूलिकामें इन्द्रजाल सम्बन्धी मन्त्र, तन्त्र, आचरणादिका निरूपण है। इसकी भी पदसंख्या २०८८८२०० है। ४र्थ रूपगताचूलिकामें सिंह, हस्ति, घोड़ा, बैल, हरिण आदि रूपके पलटनेके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र, तपश्चरणादिका प्ररूपण तथा चित्राम, काष्टलेपन और धातु, रस, रसायनका वर्णन है। पदसंख्या पूर्ववत् है। ५म आकाशगता चूलिकामें आकाश-गमनके कारणभूत मन्त्र तन्त्रादिका वर्णन है; इसकी पदसंख्या २०८८८२०० है। यह तो हुआ अङ्गप्रविष्ट श्रुतका विषय, अब अङ्गबाह्य श्रुतका विवरण लिखते हैं।

अङ्गबाह्यश्रुतके चौदह भेद हैं,—१ सामायिक, २ चतुर्विंशस्तव, ३ वन्दना, ४ प्रतिक्रमण, ५ वैनयिक, ६ कृतिकर्म, ७ दशवैकालिक, ८ उत्तराध्ययन ९, कल्पव्यवहार, १० कल्पाकल्प, ११ महाकल्प, १२ पुण्डरीक, १३ महापुण्डरीक और १४ निषिद्धिका। इनको चतुर्दश प्रकीर्णक भी कहते हैं। इनके पदोंका प्रमाण मध्यमपदसे न ले कर प्रमाणपदसे लेना चाहिये। समस्त अङ्गबाह्य श्रुतको अक्षरसंख्या ८,०१,०८,१७५, पदसंख्या १,००,१३-५२१ और श्लोकसंख्या २५,०३,३८० और १५ अक्षर है। सामायिक नामक १म प्रकीर्णकमें शत्रु, मित्र, सुख, दुःख आदिमें राग द्वेषकी निवृत्तिपूर्वक समभावका वर्णन है। २य चतुर्विंशस्तव वा जिनस्तवमें तीर्थङ्करोंके चौंतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य, परम औदारिक दिव्यदेह, समवसरण, धर्मोपदेश आदि माहात्म्य प्रकट करनेवाले स्तवनका वर्णन है। ३य वन्दना प्रकीर्णकमें पञ्चपरमेष्ठी, भगवानकी प्रतिमा, मन्दिर, तीर्थ और शास्त्रोंका

प्रतिपादन तथा वन्दना और वन्दनाकी विधिका वर्णन है। ४र्थ प्रतिक्रमण प्रकीर्णकमें द्रव्य, क्षेत्र, काल आदिमें किये गए पापोंका शोधन या प्रायश्चित्त आदिका वर्णन है। ५म वैनयिक प्रकीर्णकमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और उपचार, इन पांच प्रकार विनयोंका वर्णन है। ६ष्ठ कृतिकर्म प्रकीर्णकमें जिनप्रतिमादिकी क्रियाओंके करनेके विधानोंका अथवा अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय सर्वसाधु जिनधर्म, जिनप्रतिमा, जिनवचन (या शास्त्र) और जिनमन्दिर, इन नौ देवताओंको वन्दनाके लिए तीन प्रदक्षिणा, तीन अवनति, चार शिरोनति (या मस्तक नवाना), बारह आवर्त्त इत्यादि तथा नित्य नैमित्तिक क्रियाओंका प्ररूपण है। ७म दशवैकालिक प्रकीर्णकमें मुनियोंके आचारके गोचर शुद्धिका वर्णन है। ८म उत्तराध्ययन प्रकीर्णकमें चार प्रकार उपसर्ग और बाईस प्रकार परीषह सहनेका विधान तथा उनके फलका वर्णन है। ९म कल्पव्यवहार प्रकीर्णकमें मुनि या साधुओंके योग्य आचरणका विधान और अयोग्य आचरण होने पर उनके प्रायश्चित्तका वर्णन है। १०म कल्प्याकल्प्य प्रकीर्णकमें विषय, कषाय आदि हेय और वैराग्य आदि उपादेयोंका वर्णन है। ११म महाकल्प प्रकीर्णकमें उत्कृष्ट संहनन आदि सहित जिनकल्पी मुनियोंके द्रव्य क्षेत्र, काल और भावके योग्य त्रिकाल योगादिक आचरणका तथा स्थविरकल्पी मुनियोंको दीक्षा शिक्षा, गणपोषण आत्मसंस्कार सल्लेखना, उत्तमार्थस्थानगत उत्कृष्ट आराधनाओंका वर्णन है। १२म पुण्डरीक प्रकीर्णकमें चार प्रकारके देवोंकी* उत्पत्तिके कारणभूत दान पूजा, तपश्चरण अकामनिर्जरा†, सम्यक्त्व, संयम आदि और देवोंके उत्पादस्थानके विभवका वर्णन है। १३म महापुण्डरीक प्रकीर्णकमें इन्द्र, प्रतीन्द्र आदिकी उत्पत्तिके कारणभूत तपश्चरणादिका वर्णन है। १४म निषिद्धिका प्रकीर्णकमें प्रमादजनित दोषोंके दूर करनेके लिए दश प्रकार प्रायश्चित्त* आदिका वर्णन है। (गोम्मटसार जीवकाण्ड)

ऊपर श्रुतका संक्षिप्त विवरण लिखा गया है। ये द्वादश अङ्ग और चतुर्दश प्रकीर्णककी अवतरण कथा दिगम्बर जैन शास्त्रोंके अनुसार लिखी गई है और वे इस समय लुप्त हो गये हैं जो कुछ भी जैन वाङ्मय इस समय उपलब्ध है वह उन अङ्गोंका संक्षिप्त सार मात्र है। श्वेताम्बर जैन इन को नामोंके अंग मानते हैं और उनमेंसे कुछ मुद्रित भी हुये हैं परन्तु उनकी पद-संख्या बहुत ही कम है।

श्रुतका ज्ञान परोक्ष प्रमाण है। वचनरूप शब्दात्मक श्रुतको द्रव्यश्रुत कहते हैं जो भाव श्रुतका कारण है। सम्पूर्ण श्रुतके द्वारा द्रव्य, गुण और पर्यायके विशेष सहित पदार्थोंका—केवलज्ञानकी भांति—सर्वांश ज्ञान होता है। जैसा केवलज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, उसी प्रकार श्रुतज्ञान द्वारा परोक्ष ज्ञान होता है।

आगमोंमें वर्णित श्रुत-ज्ञानके अतिरिक्त शास्त्र आदि समस्त श्रुत द्रव्यश्रुत कहलाता है। द्रव्यश्रुत अथवा आगमके चार भेद भी हैं, यथा—१म प्रथमानुयोग २य करणानुयोग ३य चरणानुयोग और ४र्थ द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगोंको जैनियोंके चार वेद समझना चाहिये। १म प्रथमानुयोगमें त्रिषष्टिशलाकापुरुषोंका चरित्र रहता है। जितने भी जैन पुराण और पौराणिक कथाग्रन्थ हैं वे सब प्रथमानुयोगमें गर्भित हैं। मुख्यतः पुराण चौबीस† और सामान्यतः बहुत हो सकते हैं। जैन-पुराणों और कथाग्रन्थोंमें कुछ ये हैं—आदिपुराण, उत्तरपुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, पाण्डवपुराण श्रीपालचरित्र प्रद्युम्नचरित्र, यशस्तिलकचम्पू, पार्श्वाभ्युदय, इत्यादि। २य करणानुयोगमें ऊर्ध्वलोक मध्यलोक और अधोलोक सम्बन्धी अर्थात् ऊर्ध्वलोकके विमानादि मध्यलोकके क्षेत्र, पर्वत, समुद्र आदिकी लम्बाई परिमाण आदि तथा अधो

* चार प्रकारके देव ये हैं—१ भवनवासी २ कल्पवासी, ३ ४ ज्योतिष्क और व्यन्तर।

† अवस्थित तप अर्थात् दशोंका यथार्थ ज्ञान किया हुए ही जो कठिन तपस्या की जाती है उसे अकामनिर्जरा कहते हैं। इससे लौकिक सुख ही प्राप्त हो सकता है, मोक्ष सुख नहीं।

* प्रायश्चित्तके ९ भेद इस प्रकार हैं—

१ आलोचन, २ प्रतिक्रमण, ३ आलोचनप्रतिक्रमण, ४ विवेक, ५ व्युत्सर्ग ६ तप, ७ छेद ८ परिहार और ९ उपस्थापन।

† चौबीस तीर्थंकरोंके नामसे; जैसे—आदिपुराण, अजित पुराण नेमिपुराण, पार्श्वपुराण, महावीरपुराण आदि।

लोकके विस्तार आदिका विस्तृत विवरण रहता है। इस विषयको वर्णन करनेवाले त्रिलोकसार सूर्यप्रज्ञप्ति चंद्रप्रज्ञप्ति आदि जितने भी ग्रंथ हैं, वे सब करणानुयोगमें गर्भित हैं। ३य चरणानुयोगमें मुनि और गृहस्थोंके आचारका वर्णन रहता है। जितने भी आचार ग्रंथ हैं, वे सब चरणानुयोगमें गर्भित हैं, जैसे—रत्नकरण्डश्रावकाचार, मूलाचार, अमितगतिश्रावकाचार, क्रियाकोष, आचारसार. वसुनन्दिश्रावकाचार, सागारधर्मामृत, अनगारधर्मामृत इत्यादि। ४र्थ द्रव्यानुयोगमें जीव (आत्मा), अजीव (जड), आस्रव (कर्मोंका आगमन), बन्ध (कर्मोंका आत्माके साथ मिश्रण), संवर (कर्मोंका निरोध होना), निर्जरा (कर्मोंका क्षय) और मोक्ष (मुक्ति वा कर्मोंका सर्वथा नाश) इन सात तत्त्वोंका तथा अन्य आकाश आदि द्रव्योंका वर्णन रहता है। इस विषयको वर्णन करनेवाले सम्पूर्ण शास्त्र द्रव्यानुयोगमें गर्भित है। द्रव्यानुयोगके शास्त्र सबसे अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। कुछ प्रधान शास्त्रोंके नाम ये हैं—गन्धहस्तिमहाभाष्य, जयधवल, महाधवल, गोम्मटसार, तत्त्वार्थश्लोकवार्त्तिक*, तत्त्वार्थराजवार्त्तिक†, द्रव्यसंग्रह, सर्वार्थसिद्धि‡, तत्त्वार्थसूत्र§, प्रवचनसार, समयसार पञ्चास्तिकाय इत्यादि इत्यादि।

उपरोक्त आगमोंके सिवा जैनोंमें और भी हजारों सूत्र प्राकृत और संस्कृतग्रंथ तथा उनके भाष्य और टीकायें आदि हैं।

तीर्थङ्करोंको कैवलज्ञान (सर्वज्ञता) प्राप्त होने पर ही वे उपदेश दिया करते हैं और वह उपदेश मेघकी गर्जनवत् अनक्षरात्मक अर्थात् कण्ठ, तालु आदि अंगोंकी सहायताके विना ही प्रकट होती है। उस ध्वनिको अर्धमागध नामक देवगण अर्धमागधी भाषा रूपमें परिणत कर देते हैं। जिससे उसका अर्थ देव, मनुष्य और तिर्यञ्च (पशु आदि) समस्त प्राणी अपनी अपनी भाषामें समझ लेते हैं। किन्तु समझ कर वे उसको धारण नहीं कर सकते, क्योंकि वह ध्वनि अनर्गल होती रहती है*। अतएव मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञानके धारक गणधर उसको विशेष व्याख्या करते हैं। समवसरणमें आये हुए यदि किसी भव्यको किसी विषयमें प्रश्न हो वा और कोई नई बात पूछनी हो, तो वे गणधरसे प्रश्न करते हैं। गणधर भी उनके प्रश्नोंका विस्तार पूर्वक उत्तर दे कर उनके चित्तको निर्मल करते हैं।

तीर्थङ्कर भगवान् अपनी इच्छासे दिव्यध्वनि नहीं करते, वल्कि वह ध्वनि उन जीवोंके पुण्यप्रतापसे स्वयं उद्भूत होती है। गणधर दिव्यध्वनिकी व्याख्या करते हैं और उसीके अनुसार आचार्यगण शास्त्रोंकी रचना करते हैं।

जैनसिद्धान्त इसके बहुत समय पश्चात् लिपिबद्ध होने पर भी, इसमें सन्देह नहीं कि उनके मूल अङ्ग बहुत ही प्राचीन हैं। पाश्चात्य पुराविदोंका कहना है कि, ईसाकी १ली शताब्दीसे ले कर ३री शताब्दी तक ग्रीकोंके फलित और गणित ज्योतिष भारतमें प्रचारित हुआ था, किन्तु जैनोंके मूल अङ्गमें ग्रीक ज्योतिषका कुछ भी आभास नहीं पाया जाता (१)। ऐसी दशामें उक्त अङ्गोंको प्राचीनतामें सन्देह नहीं रह जाता। बौद्धोंके प्राचीनतम ग्रंथरचनासे भी पहले उक्त अङ्गोंकी सृष्टि हुई थी, इसमें सन्देह नहीं। बौद्ध देखो।

तीर्थंकर वा परमात्मा—ब्राह्मणोंके भागवतमें जैसे २४ अवतारोंका उल्लेख है, उसी तरह जैन ग्रंथोंमें २४ तीर्थङ्करोंका वर्णन मिलता है। किन्तु जिस प्रकार ब्राह्मणोंके ईश्वर बार बार अवतार लेते हैं, वैसे तीर्थङ्कर बार बार जन्मग्रहण नहीं करते। तीर्थङ्कर अन्तिम बार जन्म ले कर मुक्त (अर्थात् जन्म-मरणसे मुक्त) हो जाते हैं, फिर ये जन्मग्रहण नहीं करते। जो आत्मा या जीव दर्शन विशुद्धि आदि षोडश भावनाओंकी आराधना कर उसमें

* इसमें कुछ करणानुयोगका भी वर्णन है।

† इसके ३य और ४र्थ अध्यायमें करणानुयोगका भी वर्णन है।

‡ इसमें थोडासा करणानुयोगका भी वर्णन है।

§ करणानुयोगका वर्णन इसमें भी किंचित् है। इसके १० अध्याय हैं, यह सूत्रमन्थ है। इसकी बहुतसी छोटी और बड़ी टीकाएं और भाष्य हैं।

* अनर्गलका अर्थ यह नहीं कि, रात दिन वह ध्वनि होती रहती है। दिव्यध्वनि तीन समय होती है और उन तीन समयोंमें अनर्गल होती रहती है।

(१) Weber's Indische Studien, Vol. XVI. p. 236

पूर्व उन्नति कर सके हैं, वे ही जन्मान्तरमें तीर्थङ्कर होते हैं। इन सोलह भावनाओंका नियमानुसार पालन करना अत्यन्त कठिन कार्य है; संसारमें विरले ही मनुष्य ऐसे हैं जो उनका पालन कर जन्मान्तरमें तीर्थङ्कर होते हैं। वे तीर्थङ्कर केवल चतुर्थकालमें ही होते हैं। वे ही २४ तीर्थङ्कर जैनोंके इष्टदेव हैं। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीसमन्तभद्रस्वामीका वचन है—

"आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥ १॥"
(रत्नकरण्डश्रावकाचार)

नियमसे राग-द्वेष आदि दोषरहित वीतराग, सर्वज्ञ (भूतभविष्यत्‌का ज्ञाता) और आगमका ईश (सब प्राणियोंको हितका उपदेश देनेवाले) ही आप्त अर्थात् सच्चा देव है और किसी प्रकार आप्तपन (देवत्व) नहीं हो सकता।

ऋषभदेव* आदि चौबीस तीर्थङ्करोंमें उक्त गुण होते हैं। उनके सिवा अन्य सम्पूर्ण कर्मक्षयवाले भी परमात्मा हैं। अन्यत्र मुद्रित "परमात्मा" और "तीर्थङ्कर" शब्द देखो।

जैन लोग उक्त २४ तीर्थङ्करोंकी पूजादि करते हैं। इनमें अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर तथा पार्श्वनाथका उत्सव बड़े धूमधामसे होता है।

जैनमतानुसार परमात्मा अनन्त हैं और वे लोकके अन्तमें (सबसे ऊपर) निराकार शुद्ध चिद्रूप स्वरूप विराजित हैं। परमात्माओंके अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य और अनन्तसुख होता है। परमात्माके विषयमें विशेष जानना हो तो समयसार, परमात्मप्रकाशादि ग्रन्थ देखना चाहिये।

जैन तत्त्व।

जैनधर्ममें आत्मा—सामान्यतः, जिसमें चेतनागुण पाया जाय, उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा अनन्तानन्त हैं और वे समस्त लोकाकाश (अथवा त्रिभुवन)-में भरे हुए हैं। आत्मा एक स्वतन्त्र पदार्थ है, वह नाना पर्याय वा शरीर धारण करते हुए भी अपने स्वरूप जीवन गुणको कभी नहीं छोड़ता। 'मनुष्य मरा' 'अमुक उत्पन्न हुआ' इत्यादि कथन पर्यायकी अपेक्षासे है आत्मा न तो कभी मरती है और न कभी उत्पन्न होती है। किन्तु कर्मानुसार नरकादि पर्यायोंको छोड़ कर मनुष्यादि पर्यायोंको मनुष्य पर्यायको छोड़ कर नरकपर्यायको अथवा उस पर्यायको छोड़ कर देवादि पर्यायोंको धारण करती है। पहले कह चुके हैं कि, आत्माकी पहचान चेतनासे होती है क्योंकि चेतना आत्माका गुण है। ज्ञानदर्शनात्मक गुणका नाम चेतना है। जिस प्रकार एक मकानमें सर्वाङ्गमें रूप, रस गन्ध और स्पर्श विद्यमान है—ईंट, चूना आदि वा मकान उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है, उसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चारित्र अस्तित्व वस्तुत्व, प्रदेशत्व आदि गुणोंका पिण्ड आत्मा है—ज्ञान, दर्शन सुखादिके सिवा आत्माका निजरूप कुछ भी नहीं है। आत्माकी भिन्न भिन्न नाना शक्तियोंका विकाश होता है। कभी कोई शक्ति प्रकट होती है, कभी कोई शक्ति अप्रकट रहती है। जो शक्ति अप्रकट है उसे नष्ट हुई नहीं कह सकते किन्तु कर्मावरणसे आच्छादित मात्र कह सकते हैं, क्योंकि गुणके नाशसे गुणीका भी नाश माना गया है। जैसे मेघसे आकाशमें सूर्य आच्छादित मात्र हो जाता है, वह और उसका प्रकाश विनष्ट नहीं होता उसी प्रकार आत्माके ज्ञान, सुख आदि गुण मुक्तावस्था (मोक्षावस्था) में भी नष्ट नहीं होते और न संसारावस्थामें ही विनष्ट होते हैं, किन्तु कर्मानुसार हीनाधिक रूपमें उनका आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है।

आत्माके जो बन्ध होनेके कारण हैं, वे अनादिकालसे ही उसके साथ हैं। आत्माकी अशुद्धावस्थाका नाम ही संसार है। संसारका नाम संसरण वा परिभ्रमणका है; जिस पर्यायको पा कर आत्मा अपने सुखदुःखरूप कर्मोंके फलको भोगता है, उसको संसार कहते हैं। जिन आत्माओंके कर्म वा पापपुण्य नष्ट हो गये हैं उनका संसार भी नष्ट हो गया है—वे मुक्त हो गये हैं। जगत्‌में सभी आत्मा वा जीव गुणकी अपेक्षा समान हैं। जिस प्रकार ज्ञान, दर्शन सुख और स्वभावज्ञान परमात्मामें सर्वथा पाई जाती है उसी प्रकार संसारी जीवोंमें भी उक्त गुण पाये जाते हैं। वृक्ष वनस्पति आदिके जीव भी परमात्माके समान गुणयुक्त हैं। सिर्फ अन्तर इतना ही है कि परमात्माके शुभ कर्मों (वा पाप

* श्रीमद्भागवतके मतसे ये ही विष्णुके प्रथम अवतार हैं।

पुण्य)-के नष्ट हो जानेसे व्यक्त हो चुके हैं और संसारी आत्माके वे गुण आच्छादित हैं। मुक्त आत्माने तो परम शुद्धता और पूर्ण ज्ञानको प्राप्त कर लिया है, इसलिए उनके विषयमें ज्यादा कुछ कहना नहीं है। अब संसारी आत्मा (जिसको कि जीवात्मा कहते हैं)-का वर्णन करते हैं।

संसारी आत्माओंमें जो भेद दृष्टिगोचर होता है वह भी उन्हीं पुण्यपाप वा कर्मोंका परिपाक मात्र है। कर्म जड है और आत्मा चैतन्य स्वरूप है। अब इस विषयका विवेचन करना है कि जड पदार्थका चैतन्य पर इतना प्रभाव कैसे पडा? जड़ पदार्थोंका प्रभाव आत्मा पर पडता है, यह बात युक्ति द्वारा सिद्ध है। सङ्गीत, गायन आदि जड़ पदार्थोंका हम लोगों पर कैसा असर पडता है, इसमें सन्देह नहीं। रणभेरी बजते ही सेनाको युद्ध करनेका उत्साह हो जाता है, इसका कारण क्या है? एक औषध खानेसे भीषणसे भीषण कष्ट भी जाता रहता है और उसी प्रकार एक विषके टुकडेको खानेसे आत्माको शरीरसे निकल जाना पड़ता है। यदि आत्मा पर जड़ पदार्थोंका प्रभाव न पडता तो शरीरमें नाना प्रकारकी पीड़ाओंके होते रहने पर भी हम सुखसे रह सकते थे। अतएव यह निर्विवाद सिद्ध है कि आत्मा पर जड़ पदार्थोंका प्रभाव पडता है। इसी ग्रन्थमें कर्म-सिद्धान्त शीर्षक विवरण देखो।

यह प्रभाव स्थूल एवं बाह्य सम्बन्धी पदार्थोंका है। इसके सिवा अत्यन्त सूक्ष्म ऐसी भी पुद्गल वर्गणाएँ हैं, जिनसे आत्माके ज्ञानादि गुणोंका साक्षात् सम्बन्ध है। उन्हींका नाम कर्म है। जिस समय आत्मा वा जीव मनसे बुरा या भला कोई विचार करता है, वचनसे कटु या मीठा बोलता है अथवा शरीरसे किसीको मारता या बचाता है, उस समय वह परमाणुओंको आकर्षण करता है। ये परमाणु ही कर्म हैं। मन, वचन और काय इन तीनोंके द्वारा जो क्रिया होती है, उसे वियोग कहते हैं। इन तीनोंकी जैसी (शुभ वा अशुभ) क्रिया होती है, उसीके अनुसार कर्मोंका आकर्षण होता है। साथही पहलेके उपार्जित कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुये क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय वा आत्माके विकार भी काम करते हैं। आत्मा जिस समय जैसा भाव धारण करती है, उस समय उन आकर्षित कर्मों पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। यदि कोई किसी प्राणीको मारना चाहता है तो उस समय उसकी आत्मा क्रोधसे संतप्त हो जाती है और बुरा फल देनेवाले कर्मोंका आकर्षण होता है। जिस प्रकार अग्निसे तपे हुये लोहेको पानीमें डालनेसे यह चारों तरफके पानीको खींचता है, उसी प्रकार क्रोध लोभ आदि कषायोंसे संतप्त आत्मा संसारमें भरे हुये जल रूप पुद्गल परमाणुओंको आकर्षित कर लेती है। इस प्रकार पहलेके कर्मोंके उदयसे (अर्थात् फल देनेसे) नवीन भावोंकी उत्पत्ति होती है और उन विकार वा कषाय-भावोंसे कर्मोंका नवीन बन्धन होता है। आत्माके साथ इन कर्मोंका सम्बन्ध अनादिकाल-से चला आ रहा है और जब तक मोक्ष न प्राप्त होगी, तब तक बना भी रहेगा। हां, इतना जरूर होता है कि जिन कर्मोंका फल आत्मा भोग चुकी है, उन्हें वह छोड़ती जाती है और वे कर्म उस पर्यायको छोड़ कर पुद्गल वर्गणा रूपसे अवस्थान करते हैं।

यहां ऐसी शंका हो सकती है कि कर्म जब जड़ है, तो उसमें क्रिया कैसे होती है? इसके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि, जैसे मेघ अपने आप बरसते हैं, जलके स्रोतसे पत्थर अपने आप गोल हो जाते हैं, बिजली अपने आप चमकती और नाना प्रकारकी क्रियायें करती है, उसी प्रकार कर्मोंमें भी अपने आप क्रिया उत्पन्न होती है। जिन कर्मोंका आत्मासे सम्बन्ध होता है, वे पांच प्रकार हैं। यथा—(१) आहारवर्गणा, (२) तैजसवर्गणा, (३) मनोवर्गणा, (४) भाषावर्गणा (५) कार्माण वर्गणा। इस आहारवर्गणासे मनुष्य, पशु, देव और नारकियोंके शरीरोंकी रचना होती है। यह शरीरभी कर्मका कार्य है और वह कर्म बाहरी सम्बन्ध रखनेवाला है। आत्मा जिस समय एक शरीरको छोड़ कर अन्य शरीर धारण करती है, उसी समय वह माता-के गर्भमें या जिस प्रकार उसे जन्म लेना होता है, वहा-के आहारवर्गणारूप पुद्गल परमाणुओंको ग्रहण कर लेती है जिससे उसका शरीर बनता है। इसके बाद जल वायु और भोजनादि पदार्थोंके मिलनेसे शरीरको

प्राप्ति होती है, इसलिये ये पदार्थ भी आहारवर्गणामें शामिल हैं। ४थ तैजसवर्गणा औदारिक और वैक्रियिक शरीरोंमें कान्ति उत्पन्न करती है। किन्तु उन शरीरोंसे आत्मा निकल जानेसे वह आत्माके साथ ही निकल जाती है, अतः निर्जीव शरीरमें तैजस-वर्गणा नहीं रहती। ५म मनोवर्गणासे द्रव्य-मन बनता है। इन्द्रिय दो प्रकारकी होती है—भाव इन्द्रिय और द्रव्य-इन्द्रिय। भावेन्द्रिय तो जीवात्माके ज्ञानका क्षयोपशमविशेष है, अर्थात् जीवके ज्ञान गुणके अंशकी अभिव्यक्ति ही भावेन्द्रिय है और वह अभिव्यक्ति शरीरके जिस अंश अथवा उपाङ्गमें होती है वह अङ्ग द्रव्येन्द्रिय है। इसी प्रकार आत्माकी विचार करनेकी रूप शक्तिको भाव मन कहते हैं और वह विचार द्रव्य मन या हृदयमें होता है, अन्यत्र नहीं। हृदयस्थानमें मनोवर्गणाका रूप पुद्गलका कमलाकार एक द्रव्य मन है और उसीमें विचार शक्ति उत्पन्न होती है। ६ष्ठ भाषावर्गणासे शब्दोंकी रचना होती है। किन्तु सभी शब्द भाषावर्गणासे उत्पन्न होते हों ऐसा नहीं, क्योंकि शब्द तो किसी पदार्थके गिरने या आघातादि करनेसे भी होता है। भाषावर्गणाका शब्द वही है जिसको आत्मा या जीव ग्रहण करता है। ७म कार्माणवर्गणासे आठ प्रकारके कर्म बनते हैं जो आत्माको सांसारिक सुख दुःख देते हैं। ये कर्म ही इस आत्माको मुक्त नहीं होने देते अर्थात् ये ही पापपुण्य रूप आठ कर्म आत्माको परमात्मा नहीं होने देते। आठ कर्म ये हैं—(१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु, (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय। इनका विशेष वर्णन हम आगे चल कर "कर्मसिद्धान्त" शीर्षकमें करेंगे।

ज्ञानावरणकर्म आत्माके ज्ञानगुणका घात करता है। आत्मा इसी कर्मके कारण पूर्णज्ञानको प्राप्त नहीं कर सकती और इसी लिए सर्वज्ञ या परमात्मा भी नहीं हो सकती। दर्शनावरण आत्माके दर्शनगुणका घात करता है और वेदनीय आत्माको सांसारिक सुख दुःख पहुंचाता है। इसी प्रकार आत्माके साथ एक कर्म ऐसा भी लग रहा है जो उसे वास्तविक पदार्थ-स्वरूपका बोध नहीं होने देता प्रत्युत विपरीत बोध कराता है। इस कर्मका नाम है मोहनीयकर्म। यही कर्म आत्मामें उत्कृष्ट चारित्र प्रकट नहीं होने देता, प्रत्युत मिथ्या चारित्र अथवा कुत्सित आचरण कराता है। ५वां आयु कर्म आत्माको मनुष्य, तिर्यंच, देव और नरक इनमेंसे किसी गतिमें ले जा कर उसे वहां किसी नियत काल तक रोक रखता है। हम लोगोंकी आत्मा इस शरीरमें तभी तक ठहर सकती है, जब तक हमारा आयुकर्म ठहरावे अथवा जितनी उसकी स्थिति हो। आयुकर्मकी स्थितिके पूर्ण होते ही हमें यह शरीर छोड़ देना पड़ेगा और इस शरीरसे बांधे हुए आयुकर्म अनुसार अन्य शरीरमें रहना पड़ेगा। ६ठे नामकर्मसे आत्मा अच्छे या बुरे शरीरको धारण करती है और यश, कीर्ति आदि प्राप्त करती है। इसी प्रकार गोत्र कर्मके अनुसार आत्मा उच्च या नीच कुलमें जन्मग्रहण करती है। ८वां अन्तराय कर्म आत्माके कार्योंमें सिर्फ बाधा पहुंचाता रहता है। बस, इन्हीं अष्टकर्मोंको नाश कर देनेसे ही आत्मा परमात्मा या सर्वज्ञ हो जाती है और सर्वज्ञ या परमात्माको ही जैनसिद्धान्तमें ईश्वर माना है। किन्तु इन अष्टकर्मोंका नाश करना सहज काम नहीं है, इसके लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी आवश्यकता है जो करोड़ों या परार्धोंमें एकको भी बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है।

जैनसिद्धान्तमें अनादि एक परमात्मा नहीं माना है किन्तु ऐसा माना है कि संसारको (या अष्ट कर्मोंको) नष्ट करके मुक्त हुए जीवात्मा ही परमात्मा बने हैं और वे रागद्वेषवर्जित सर्वज्ञ हैं। इसलिए उन्हें सर्वोपरि उपास्य मान कर जैनमत उनकी पूजा करते हैं उनके वीतरागादि गुणोंका स्मरण करते हैं और पाषाण मूर्तिमें उनकी स्थापना करते हैं। परन्तु परमात्मा इच्छा, राग, द्वेष और शरीरादिसे रहित होनेके कारण कुछ कर नहीं सकते वे सिर्फ समस्तके द्रष्टा एवं ज्ञाता हैं और संसार दुःखसे सर्वदा मुक्त हो चुके हैं। यह शक्ति प्रत्येक संसारी आत्मा (जीवात्मा) में विद्यमान है इसलिए उसी परमात्मशक्तिको प्राप्तिके लिए उनकी (परमात्माकी) पूजा की जाती है।

मनुष्य देव, नारकी और तिर्यंच पशुपक्षी आदिके

सिवा संसारमें ऐसे भी जीव मौजूद हैं जिन पर कर्म-भार बहुत ज्यादा और तीव्र है। ऐसे जीवोंकी ज्ञान-मात्रा अत्यन्त मन्द है। इन जीवोंने ज्ञानकी अभिव्यक्ति भी नहीं पाई है और न उनका द्रव्य शरीर वा इन्द्रिया ही पूर्णताको प्राप्त हुई हैं। इन जीवोंको 'निगोदिया' कहते हैं। वनस्पतिकाय, पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्नि-काय और वायुकायके जीव केवल स्पर्श का बोध करते हैं और वह भी अव्यक्त रूपसे। वनस्पतिकायका जीव जल-वायुका आकर्षणमात्र करता है; इसके सिवा वह न तो बोल सकता है, न सूंघ सकता है, न देख सकता है, न सुन सकता है और न विचार ही सकता है। इसी प्रकार जलकाय, अग्निकाय आदि जीवोंके विषयमें समझना चाहिये। इनकी अपेक्षा जिन आत्माओं पर कुछ कम कर्मभार है, उन जीवोंने ज्ञानविकाश अथवा आत्मिक गुणविकाशकी कुछ अधिक योग्यता पाई है। जैसे—शङ्ख अथवा चावलमें उत्पन्न होनेवाले लट आदि द्वीन्द्रिय जीव स्पर्श कर सकते हैं और बोल सकते हैं; पिपीलिका आदि त्रीन्द्रिय जीव स्पर्श कर सकते हैं बोल सकते हैं और सूंघ सकते हैं; भ्रमर, मक्षिका आदि चतुरिन्द्रिय जीव स्पर्श कर सकते हैं, बोल सकते हैं, सूंघ सकते हैं और देख सकते हैं। इसी प्रकार क्रमशः जितनी जितनी कर्मोंकी न्यूनता होती गई है, उतनी ही आत्माके ज्ञानादि गुणोंमें वृद्धि हुई है। कुछ ऐसे भी जीव हैं जिनका कर्मभार कुछ हलका है और इसी लिए वे पांचों इन्द्रियोंका विकाश पा चुके हैं; किन्तु मनकी योग्यता न होनेसे विचार करनेमें असमर्थ हैं। ये जीव 'असैनी' वा असंज्ञी (मन-रहित)के नामसे प्रसिद्ध हैं। इस जीवोंके पञ्चेन्द्रियोंसे उद्भूत ज्ञान भी मन्द रहता है। जिनका कर्मभार इनसे भी कुछ हलका है, उन्हें पांच इन्द्रियोंके सिवा मन भी प्राप्त है; जैसे हाथी, घोडा, बैल आदि। इनकी अपेक्षा मनुष्यों-को मनका विषय अर्थात् श्रुतज्ञान बहुत कुछ अधिक प्राप्त होता है। मनुष्योंमें भी किसीका ज्ञान मन्द और किसीकी बुद्धि तीक्ष्ण होती है। इन सबमें कारण कर्म ही है, कर्मोंकी न्यूनाधिकतासे ज्ञानमें पार्थक्य होता है। इसी तरह आत्मा क्रमशः उन्नति करती हुई अपने ध्येय मोक्षसुखको प्राप्त करती है। गुणस्थान देखो।

यह आत्मा विभिन्न कर्मोदयसे चार गतियोंमें परि-भ्रमण करती है। १म मनुष्यगति है जिसमें हम लोग हैं। २य देवगति है जिसमें संसार-सुखकी पराकाष्ठा है, किन्तु आत्म-सुखकी नहीं। ३य नारकगति है जिसमें दुःखकी पराकाष्ठा है और ४र्थ तिर्यग्गति है जहां अज्ञा-नता और कष्ट ही कष्ट है।

आत्मा यद्यपि अमूर्तिक पदार्थ है, तथापि इसे कर्मोंकी परतन्त्रता वश मूर्तिक शरीरमें रहना पडता है। आत्मा असंख्य प्रदेशी है अर्थात् यदि यह फैलना चाहे तो असंख्य प्रदेशयुक्त आकाशमें (अर्थात् लोका-काशमें) व्याप्त हो सकती है। परन्तु कर्मोंकी परतन्त्रताके कारण इसे जैसा शरीर मिलता है, उसीमें रहना पडता है। जैसे—दीपकके प्रकाशके प्रदेश एक बड़े मकानमें भी फैल सकते हैं और यदि एक घड़ेमें दीपक रखा जाय तो उस घड़ेमें भी समा सकते हैं, किन्तु घड़ेमें न तो उसके प्रदेश घटते और न मकानमें बढ़ते ही हैं। यह दृष्टान्त मूर्तिक पदार्थके हैं, इसलिए इस सङ्कोच-विस्तारको अंशमात्रमें घटित करना चाहिये, न कि हीना-धिकतामें। इसी प्रकार चींटीकी आत्मा यदि हाथीके शरीर धारण करनेका कर्मबन्ध करे, तो इसके प्रदेश उतने बडे शरीरमें फैल जायगे और हाथीकी आत्मा यदि चींटीके शरीर धारण करनेका कर्मबन्ध करे, तो इसके प्रदेश उतने छोटे शरीरमें समा जायगे। यह सङ्कोच-विस्तारमात्र है, इसमें प्रदेश घटते वा बढ़ते नहीं।

ऊपर जो इन्द्रिय और मनकी प्राप्ति और उसके अव-लम्बनसे सोपयुक्त क्रमभावी ज्ञानका विकाश बतलाया है वह संसारी जीवोंके ही होता है। संसारी आत्मा ज्यादासे ज्यादा तीन समय* तक शरीर और इन्द्रियोंसे शून्य रह सकती है, इससे अधिक नहीं। जिस समय आत्मा एक शरीरको त्याग कर दूसरे शरीरको धारण करती है, उसी समय उसके दूसरे शरीरमें ले जानेवाले उन कर्मोंका उदय प्रारम्भ हो जाता है जिनको उसने

* कालके सबसे छोटे हिस्सेको १ समय कहते हैं; समयसे छोटा काल नहीं होता। अर्थात् समयका टुकड़ा नहीं किया जा सकता।

नयसे मूर्तिक भी माना गया है। संसारी-जीव द्रव्य कर्म आदिका और चैतन्यरूप राग आदि भाव-कर्मोंका कर्त्ता है तथा सुखदुःखरूप पौद्गलिक कर्मोंके फलोंका भोक्ता है। हम जितने भी जीवों वा प्राणियोंको देखते हैं, वे समस्त संसारी जीव हैं। संसारी जीवोंके साधारणतः दो भेद हैं—१ संज्ञी और २ असंज्ञी अथवा १ त्रसजीव और २ स्थावर जीव। संज्ञी—मन-सहित जीवको संज्ञी कहते हैं। संज्ञी जीव पञ्चेन्द्रिय ही होता है। असंज्ञी—मन-रहित जीवको असंज्ञी कहते हैं।

त्रसजीव—जो त्रस नामकर्मके उदयसे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रियोंमें जन्म लेते हैं, उन्हें त्रसजीव कहते हैं। हम जितने भी प्राणियोंको देखते हैं, उनमेंसे पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति (वृक्षादि) इन पांच प्रकारके स्थावर जीवोंके सिवा बाकीके समस्त जीव त्रस हैं। त्रस जीवके कमसे कम स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रिया तो होती ही हैं।

स्थावरजीव—स्थावर नामकर्मके उदयसे पृथिवी अप, तेज, वायु और वनस्पतियोंमें जन्म लेनेवाले जीवोंको स्थावर जीव कहते हैं। स्थावर जीव पांच ही प्रकारके होते हैं।

मुक्तजीव—मुक्त-जीव उन्हें कहते हैं जो संसारमें जन्म-मरण नहीं करते अर्थात् जिनको संसारसे मुक्ति हो गई है। मुक्त-जीव कर्म-रहित है और सर्वदा अपने शुद्ध चिद्रूपमें लीन रहते हैं, उनके ज्ञानका पूर्ण विकाश हो चुका है,अर्थात् वे केवलज्ञान द्वारा विश्वके त्रिकालवर्त्ती समस्त पदार्थोंको युगपत् जानते हैं। मुक्त-जीव कभी भी संसारमें लौटते नहीं, वे परमात्मा हैं और सिद्ध कहलाते हैं। ये मुक्त-जीव संसार पूर्वक ही होते हैं, इसलिए संसारी जीवका उल्लेख पहले किया गया और मुक्त-जीवका पीछे।

(२) अजीवतत्त्व—जिसमें जीवके लक्षण न पाये जाय अर्थात् जो अचेतन अर्थात् प्राणरहित जड़ हो, उसे अजीव कहते हैं। अजीवद्रव्यके प्रधानतः पांच भेद हैं—१ पुद्गलद्रव्य, २ धर्मद्रव्य, ३ अधर्मद्रव्य, ४ आकाशद्रव्य और ५ कालद्रव्य। इन पांच द्रव्योंमें जीवको शामिल करनेसे द्रव्यके छ भेद होते हैं। इनमें जीव और पुद्गलद्रव्य क्रिया सहित है और शेष चार द्रव्य क्रिया-रहित हैं। जीव और पुद्गलके स्वभावपर्याय और विभावपर्याय दोनों होती हैं; किन्तु शेष चार द्रव्योंके केवल स्वभावपर्याय ही होती है। जीव-द्रव्यका विवरण पहले कहा जा चुका है; अब पुद्गल आदिका वर्णन करेंगे।

पुद्गलद्रव्य—जैन शास्त्रोंमें पुद्गलद्रव्यका लक्षण इस प्रकार लिखा है, "स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः" अर्थात् जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये चार गुण विद्यमान हों, वही पुद्गल है। यों तो पुद्गलद्रव्य अनन्त गुणोंका समुदाय है, किन्तु ऊपर कहे हुए चार गुण ऐसे हैं जो समस्त पुद्गलोंमें सर्वदा पाये जाते हैं एवं पुद्गलके सिवा और किसी भी द्रव्यमें नहीं पाये जाते। इसीलिये ये चारों गुण पुद्गलद्रव्यके आत्मभूतलक्षणमें गर्भित हैं। यद्यपि समस्त पुद्गलोंमें उक्त चार गुण नित्य पाये जाते हैं, तथापि वे सदा एक समान नहीं रहते। स्पर्श गुणका कदाचित् कोमल, कदाचित् कठिन, शीत, उष्ण, लघु, गुरु, स्निग्ध और रूक्षमें परिणमन होता है। ये स्पर्श-गुणकी अर्थ-पर्यायें हैं। इसी प्रकार तिक्त, कटु, अम्ल, मधुर और कषाय ये रसके मूल भेद हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध ये दो गन्धके भेद हैं तथा नील, पीत, श्वेत, श्याम और लाल ये पांच वर्ण गुणके भेद हैं। इस प्रकार उक्त चार गुणोंके मूल भेद बीस और उत्तर-भेद यथा सम्भव संख्यात, असंख्यात और अनन्त हैं। पुद्गलद्रव्यकी अनन्त पर्यायें हैं, जिनमें दश पर्यायें मुख्य हैं। यथा—१ शब्द, २ बन्ध, ३ सौक्ष्म्य, ४ स्थौल्य, ५ संस्थान, ६ भेद, ७ तम, ८ छाया, ९ आतप और १० उद्योत। शब्द-शब्दके दो भेद हैं, एक भाषात्मक और दूसरा अभाषात्मक। भाषात्मक शब्द भी दो प्रकारका है, एक अक्षरात्मक और दूसरा अनक्षरात्मक। अक्षरात्मकके संस्कृत, प्राकृत, देशभाषा आदि अनेक भेद हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदिकी भाषा तथा केवलज्ञानके धारक अरहन्तदेवकी दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक होती है। दिव्यध्वनि पहले अरहन्तके सर्वाङ्ग-से निकलती है और पीछे अक्षररूप होती है, इसलिए वह अनक्षरात्मक है। अभाषात्मक शब्दके दो भेद हैं,

१ स्वाभाविक और २ प्रायोगिक। मेघ आदिसे जो उत्पन्न हो, उसे स्वाभाविक और दूसरेके प्रयोगसे हो उसे, प्रायोगिक कहते हैं। प्रायोगिकके चार भेद हैं, १ तत, २ वितत, ३ घन और ४ सौषिर। चमड़े से मढ़े हुये नगाड़ा, मृदङ्ग आदिसे उत्पन्न हुए शब्दको तत कहते हैं, सितार, तम्बूरा आदिसे उत्पन्न हुए शब्दको वितत कहते हैं, घण्टा आदिसे उत्पन्न हुए शब्दको घन कहते हैं और शङ्ख, बांसुरी आदिसे उत्पन्न हुए शब्दको सौषिर कहते हैं। जैन विद्वान् शब्दके मूर्तिक होनेमें ग्रामोफोनके पड़े आदिका दृष्टान्त देते हैं। और भी अनेक प्रमाणों द्वारा उन्होंने शब्दको रूपी सिद्ध किया है।

पुद्गलकी दूसरी पर्याय बन्ध है। अनेक चीजोंमें एकपनेका ज्ञान करानेवाले सम्बन्धविशेषको बन्ध कहते हैं। बन्धके भी दो भेद हैं, १ स्वाभाविक और २ प्रायोगिक। स्वाभाविक बन्ध दो प्रकारका है, एक आदि और दूसरा अनादि। स्निग्ध रुक्षके निमित्तसे बिजली मेघ, इन्द्रधनु आदिको आदि-स्वाभाविक बन्ध कहते हैं। अनादि-स्वाभाविक बन्ध (धर्म अधर्म और आकाशद्रव्यमें एक एक करके तीन तीन भेद होनेसे) ९ प्रकारका है—१ धर्मास्तिकायबन्ध, २ धर्मास्तिकाय देशबन्ध ३ धर्मास्तिकायप्रदेशबन्ध ४ अधर्मास्तिकायबन्ध, ५ अधर्मास्तिकाय देशबन्ध, ६ अधर्मास्तिकाय प्रदेशबन्ध, ७ आकाशास्तिकाय बन्ध, ८ आकाशास्तिकाय देशबन्ध, और ९ आकाशास्तिकाय प्रदेशबन्ध। जहां सम्पूर्ण धर्मास्तिकायकी विवक्षा (विवेचनकी इच्छा) हो, वहां उसका नाम है धर्मास्तिकाय बन्ध तथा आधेको देश और चौथाईको प्रदेश कहते हैं। इसी प्रकार अधर्म, और आकाशके लिए समझना चाहिए। पुद्गल द्रव्योंमें भी महास्कन्ध आदिके सामान्यकी अपेक्षासे अनादिबन्ध है। इस प्रकार यद्यपि समस्त द्रव्योंमें बन्ध है, तथापि यहां प्रकरण वशात् पुद्गलका बन्ध ग्रहण किया गया है।

जो दूसरेके प्रयोगसे हो, उसे प्रायोगिक बन्ध कहते हैं। यह दो प्रकारका है, १ पुद्गल-विषयिक और २ जीव पुद्गल-विषयिक। पुद्गल विषयिक बन्ध लाखा काठ आदि समझना चाहिये। जीव पुद्गलविषयिकके दो भेद हैं—कर्मबन्ध और नोकर्मबन्ध। इनका वर्णन 'कर्मसिद्धान्त' शीर्षकमें किया गया है।

सौक्ष्म्य—सूक्ष्मत्व दो प्रकारका है एक आन्त्य और दूसरा आपेक्षिक। जो सूक्ष्मत्व परमाणुओंमें होता है उसे आन्त्य सूक्ष्मत्व कहते हैं। और जो सूक्ष्मत्व नारियल, आम, बेर आदिमें (उत्तरोत्तर) पाया जाता है उसे आपेक्षिक सूक्ष्मत्व कहते हैं।

स्थौल्य—सौक्ष्म्यकी भांति स्थौल्यके भी दो भेद हैं, १ आन्त्य और आपेक्षिक। जगद्व्यापी महास्कन्धमें जो स्थूलता है, उसे आन्त्य स्थौल्य और बेर, आम, नारियल कटहर आदिमें जो उत्तरोत्तर स्थूलता पाई जाती है उसे आपेक्षिक स्थौल्य कहते हैं। संस्थान—आकार या आकृतिको संस्थान कहते हैं। यह दो प्रकारका है, १ इत्थंलक्षण और २ अनित्थंलक्षण। गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण आदिको इत्थंलक्षण कहते हैं। और जहां 'यह आकार ऐसा है' इस प्रकार निरूपण न हो सके, ऐसे जो मेघ आदिके अनेक आकार हैं उनको अनित्थंलक्षण कहते हैं। भेद—यह ६ प्रकारका है १ उत्कर, २ चूर्ण, ३ खण्ड, ४ चूर्णिका, ५ प्रतर और ६ अणु चटन। काष्ठ आदिके आरोंसे चिरे गये टुकड़ोंको उत्कर कहते हैं। गेहूं, जौ आदिके आटे या सत्तू आदिको चूर्ण कहते हैं तथा घटके ठिकरे आदिको खण्ड; उड़द, मूंग आदिकी दालको चूर्णिका, मेघ पटलादिको प्रतर और गरम लोहेको घनसे चोट मारते वक्त जो स्फुलिंग निकलते हैं, उन्हें अणु चटन कहते हैं। तम—दृष्टि रोकनेवाले अन्धकारको तम कहते हैं। छाया—जो प्रकाशके आवरण करनेमें कारण हो उसे छाया कहते हैं। छाया दो प्रकारकी है, १ तद्वर्णादिविकारवती और २ प्रतिबिम्बमात्रग्राहिका। दर्पण आदि स्वच्छ द्रव्यमें मुखादिकी वर्ण सहित परिणत छायाको तद्वर्णादिविकारवती कहते हैं और जिसमें वर्णादिकी परिणति न हो कर सिर्फ प्रतिबिम्ब मात्र हो, उसे प्रतिबिम्बमात्र ग्राहिका कहते हैं। ताप—उष्ण प्रकाशयुक्त सूर्यकी धूपको आतप कहते हैं। उद्योत—चन्द्रमा, चन्द्रकान्तमणि, अग्नि, खद्योत आदिके प्रकाशको उद्योत कहते हैं। ये सब पुद्गलकी पर्यायें हैं।

पुद्गल मुख्यतः दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है एक अणु और दूसरा स्कन्ध। अणु—एक प्रदेशमात्र

में स्पर्शादि गुणोंसे निरन्तर परिणमन होने वालेको अणु कहते हैं और अणुका ही अपर नाम परमाणु है। प्रत्येक परमाणु षट्कोण आकारयुक्त, एक प्रदेशावगाही स्पर्शादि गुण युक्त और अखण्ड (जिसका खण्ड न हो सके) द्रव्य है। यह अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे आत्मा, आत्ममध्य और आत्मान्त है, तथा इन्द्रियोंसे अगोचर और अविभागी है। स्कन्ध—जो स्थूलताके कारण ग्रहण निक्षेपण आदि व्यापारको प्राप्त हो, उसे स्कन्ध कहते हैं। यद्यपि द्वयणुक आदि स्कन्धोंमें ग्रहण निक्षेपण आदि व्यापार नहीं हो सकता, तथापि रूढ़िवशात् जैसे गमनक्रियारहित (बैठी हुई) गायको "गो" कहते हैं, उसी प्रकार द्वयणुक आदि स्कन्ध ग्रहण निक्षेपणादि व्यापारवान् न होने पर भी स्कन्ध कहलाते हैं। शब्द, बन्ध, सौक्ष्म्य आदि पर्यायें स्कन्धोंकी ही होती हैं, न कि अणुकी। पुद्गल शब्दकी निरुक्ति जैनाचार्योंने इस प्रकार की है—"पूरयन्ति गलयन्तीति पुद्गलाः" अर्थात् जो पूरे और गले, उसको पुद्गल कहते हैं। यह अर्थ पुद्गलके अणु और स्कन्ध इन दोनों भेदोंमें व्यापक है। अर्थात् परमाणु स्कन्धोंसे मिलते और जुदे होते हैं, इसलिए इनमें पूरण और गलन दोनों धर्म मौजूद हैं। स्कन्ध अनेक पुद्गलोंका एक समूह है, अतः पुद्गलोंसे अभिन्न होनेसे उनमें भी पुद्गल शब्दका व्यवहार होता है।

धर्म और अधर्मद्रव्य—धर्म और अधर्म शब्दसे यहां पाप और पुण्य नहीं समझना चाहिये। परन्तु यहां धर्म और अधर्म शब्द द्रव्यवाचक हैं न कि गुणवाचक। पुण्य और पाप आत्माके परिणाम विशेष हैं, अथवा "जो जीवोंको संसार दुःखसे मुक्त करे, वह धर्म और जो इसके विपरीत कार्य करे, वह अधर्म" है ऐसा अर्थ भी यहां न लगाना चाहिये। यहां पर धर्म और अधर्म शब्द दो अचेतन द्रव्योंके वाचक हैं। ये दोनों ही द्रव्य 'तिलमें तेल'की भांति सम्पूर्ण लोक (विश्व)में व्यापक हैं। जैन ग्रन्थोंमें धर्मद्रव्यका स्वरूप इस प्रकार लिखा है—

धर्मास्तिकाय वा धर्मद्रव्यमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द नहीं हैं इसलिए वह अमूर्त्तिक है, समस्त लोकाकाशमें व्याप्त है, अखण्ड, विस्तृत और असंख्य प्रदेशयुक्त है। यह धर्मद्रव्य अपने स्वरूपसे च्युत न होनेके कारण नित्य है; गतिक्रियामें परिणत जीव एवं पुद्गलको उदासीन सहायक होनेसे कारणभूत है और किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिए अकार्य है। जिस प्रकार जल स्वयं गमन न करता हुआ तथा दूसरोंको चलानेमें प्रेरक न होता हुआ भी अपनी इच्छासे गमन करनेवाले मत्स्य आदि जलचर जीवोंके गमनमें उदासीन सहकारी कारणमात्र है, उसी प्रकार धर्मद्रव्य भी स्वयं गमन न करता हुआ और परके गमनमें प्रेरक न होता हुआ स्वयं गमन करते हुए जीव और पुद्गलोंको उदासीन अविनाभूत सहकारी मात्र है। तात्पर्य यह है कि, जीव और पुद्गलद्रव्यकी क्रियामें जो सहायक हो वह धर्मद्रव्य है।

जिस प्रकार धर्मद्रव्य जीव और पुद्गलोंकी क्रियामें सहायक है, उसी प्रकार अधर्मद्रव्य उनके अवस्थानमें सहकारी है। जैसे पृथिवी स्वयं पहलेसे ही स्थितिरूप है और परकी स्थितिमें प्रेरकरूप नहीं है किन्तु स्वयं स्थितिरूपसे परिणत हुए अश्व आदिको उदासीन अविनाभूत सहकारी कारण मात्र है, उसी प्रकार अधर्म द्रव्य भी स्वयं पहलेसे ही स्थितिरूप रहते स्थितिपरिणाममें प्रेरक न होता हुआ भी स्वयमेव स्थितिरूपसे अवस्थित जीव और पुद्गलोंको सहकारी कारणमात्र है।

यहां यह कहना आवश्यक है कि, जिस प्रकार गतिपरिणामयुक्त पवन ध्वजाके गतिपरिणामका हेतुकर्त्ता है, उस प्रकार धर्मद्रव्यमें गति-हेतुत्व न समझना चाहिये। कारण धर्मद्रव्य निष्क्रिय होनेसे गतिरूपसे परिणमन नहीं करता; और जो स्वयं गति-रहित है; वह दूसरेके गतिपरिणामका हेतुकर्त्ता नहीं हो सकता। धर्मद्रव्य सिर्फ 'मत्स्यको जलकी भांति' जीव और पुद्गलके गमनमें उदासीन सहकारी मात्र है। इसी प्रकार अधर्मद्रव्यको भी निष्क्रिय और जीव और पुद्गलोंकी स्थितिमें उदासीन कारणमात्र समझना चाहिये।

आकाशद्रव्य—जो जीव और पुद्गल आदि सम्पूर्ण पदार्थोंको युगपत् अवकाश वा स्थान देता है, उसे आकाशद्रव्य कहते हैं। यह आकाशद्रव्य सर्वव्यापी अखण्ड और एक द्रव्य है। यद्यपि समस्त ही मूर्त्तद्रव्य

परस्पर एक दूसरेको अवकाश देते हैं किन्तु आकाश द्रव्य समस्त द्रव्योंको युगपत् (एकसाथ) अवकाश देता है इसलिए इस लक्षणमें अतिव्याप्ति दोष नहीं आता। आकाशद्रव्य यद्यपि निश्चय नयकी अपेक्षासे अखण्डित एक द्रव्य है, तथापि व्यवहार-नयकी अपेक्षासे इसके दो भेद हैं। यथा—एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश। सर्वव्यापी अनन्त आकाशके बीचके कुछ भागमें जीव पुद्गल, धर्म अधर्म और काल ये पांच द्रव्य हैं। जितने आकाशमें ये पांच द्रव्य हैं उतने आकाशको लोकाकाश कहते हैं और बाकीके आकाशको अलोकाकाश। अलोकाकाश लोकाकाशके बाहर समस्त दिशाओंमें व्याप्त है। वहां आकाशद्रव्यके सिवा अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है और इसलिए उसके विषयमें विशेष कुछ कहना भी नहीं है। लोकाकाशका विशेष विवरण 'लोक रचना' शीर्षकमें किया गया है।

कालद्रव्य—जो जीवादि द्रव्योंके परिणमन (परिवर्तन)-में सहकारी हो, उसे कालद्रव्य कहते हैं। इसके दो भेद हैं निश्चयकाल और व्यवहारकाल। द्रव्योंके परिणमन करानेमें निमित्त्, कारण सहायक लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशपर रत्न-राशिवत् कालके जो भिन्न भिन्न अणु हैं उसे निश्चयकाल कहते हैं। निश्चयकालके अणु अमूर्तिक हैं। द्रव्योंकी पर्यायों (अवस्थाओं)के परिवर्तनमें कारण रूप जो घटिका, दिन सप्ताह मास वर्ष आदि हैं, वह व्यवहार काल कहलाता है।

(३) आस्रवतत्त्व—काय, वचन और मनकी क्रियाको योग कहते हैं, अर्थात् शरीर वचन और मनके द्वारा आत्माके प्रदेशोंका सकम्प होना ही योग है। यह तीन प्रकारका है, १ काययोग, २ वाग्योग और ३ मनोयोग। यह योग ही कर्मोंके आगमनका कारणरूप आस्रव है। जिस प्रकार सरोवरमें जल आनेके द्वार (मोरे) जलके आनेमें कारण होते हैं उसी प्रकार आत्माके भी मनवचनकायरूप योगोंके द्वारा जो शुभाशुभ कर्म आते हैं उनके आनेमें योग कारण है। यहां कारणमें कार्यकी सम्भावना करके योगोंको ही आस्रव कहा गया है। शुभ परिणामोंसे उत्पन्न हुआ योग पुण्य प्रकृतियोंका आस्रव करता है और अशुभ भावोंसे उत्पन्न हुआ योग पापप्रकृतियों (पापकर्मों)-का आस्रव करता है। प्राणियोंका घात करना असत्य बोलना, चोरी करना ईर्षा भाव रखना इत्यादि अशुभयोग हैं और इनसे पाप कर्मोंका आस्रव (आगमन) होता है। जीवोंकी रक्षा करना, उपकार करना, सत्य बोलना, पञ्चपरमेष्ठीकी भक्तिपूजादि करना आदि शुभयोग हैं इनसे पुण्य कर्मोंका आस्रव होता है। आस्रवके दो भेद हैं—एक साम्परायिक आस्रव और दूसरा ईर्यापथ आस्रव। कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) सहित जीवोंके साम्परायिक आस्रव, और कषाय रहित जीवोंके ईर्यापथ आस्रव होता है। अथवा यों समझिये कि संसार (जन्म-मरण)-के कारण रूप आस्रवोंको साम्परायिक आस्रव कहते हैं और स्थितिरहित कर्मोंके आस्रव होनेको ईर्यापथ आस्रव कहते हैं। ईर्यापथ आस्रव मोक्षका कारण है।

साम्परायिक आस्रव—पांच इन्द्रियें, चार कषाय, पांच अव्रत और पचीस क्रियाएं ये सब साम्परायिक आस्रवके भेद हैं अर्थात् इनके निमित्तसे साम्परायिक आस्रव होता है। पांच इन्द्रियें—१ स्पर्शन, २ रसना, ३ घ्राण, ४ चक्षु और ५ कर्ण। चार कषाय—१ क्रोध, २ मान, ३ माया और ४ लोभ। पांच अव्रत,—१ हिंसा २ असत्य (झूठ) ३ चौर्य (चोरी) ४ अब्रह्म (कुशील) और ५ परिग्रह (जड़-पदार्थोंसे ममत्व)। पचीस क्रियाएं १ सम्यक्त्वक्रिया (देव शास्त्र गुरुकी भक्ति-पूजादि करना) २ मिथ्यात्वक्रिया (अन्य कुदेव कुश्रुत और कुगुरुकी भक्ति सेवा करना) ३ प्रयोगक्रिया (शरीर वचन और मनसे गमनागमनादि रूप प्रवर्तन करना), ४ समादान क्रिया (संयमीका अविरतिके सम्मुख होना) ५ ईर्यापथ क्रिया (गमनके लिए क्रिया करना) ६ प्रादोषिकी क्रिया (क्रोधके आवेशसे की गई क्रिया) ७ कायिकी क्रिया (दुष्टताके लिए उद्यम करना) ८ आधिकरणिकी क्रिया (हिंसाके उपकरण शस्त्रादिका ग्रहण करना) ९ पारितापिकी क्रिया (अपने वा परके दुःखोत्पत्तिमें कारणरूप क्रिया) १० प्राणातिपातिकी क्रिया (आयु, इन्द्रिय बल और श्वासोच्छ्वास इन प्राणोंका वियोग करना); ११ दर्शनक्रिया (रागकी अधिकताके कारण प्रमाद

युक्त हो कर रमणीय रूपका अवलोकन करना), १२ स्पर्शनक्रिया (प्रमादवश वस्तुके स्पर्शनके लिए प्रवर्तन करना), १३ प्रात्ययिकी क्रिया (विषयभोगके नये नये कारण एकत्र करना), १४ समन्तानुपातक्रिया (स्त्रीपुरुषों या पशुओंके बैठने सोनेके स्थानमें मलमूत्रादि क्षेपण करना), १५ अनाभोगक्रिया (बिना देखो या शोधी भूमि पर बैठना या सोना), १६ स्वहस्तक्रिया (दूसरेके द्वारा होनेवाली क्रियाको स्वयं करना), १७ निसर्गक्रिया (पापोत्पादक प्रवृत्तियोंको उत्तम समझना या उसके लिए आज्ञा देना), १८ विदारणक्रिया आलस्यसे उत्कृष्ट क्रिया न करना या दूसरेके किये हुए पापाचरणको प्रकाश करना), १९ आज्ञाव्यापादिको क्रिया (चारित्रमोहके उदयसे परमागम या सर्वज्ञकथित शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार चलनेमें असमर्थ हो कर अन्यथा प्रवर्तन करना), २० अनाकांक्षाक्रिया (प्रमादसे या अज्ञानतासे परमागम या सर्वज्ञ-कथित विधिका अनादर करना), २१ प्रारम्भक्रिया (छेदन, भेदन, ताडन आदि क्रियामें तत्पर होना और अन्यके द्वारा उक्त क्रियाओंके किए जाने पर हर्षित होना), २२ पारिग्राहिकी क्रिया (परिग्रहकी रक्षाके लिए प्रवृत्ति रखना), २३ मायाक्रिया (ज्ञान, दर्शन आदिमें कपटता युक्त उपाय करना), २४ मिथ्यादर्शनक्रिया (कोई मिथ्यात्व या सर्वज्ञ-कथित विधानके विरुद्ध कार्य करना या करनेवालेको उस कार्यमें दृढ़ कर देना) और २५ अप्रत्याख्यानक्रिया (संयमका घात करनेवाले कर्मोंके उदयसे संयमरूप प्रवर्तन नहीं करना)। ये पच्चीसों क्रियाएं साम्परायिक-आस्रव होनेमें कारण हैं। इस आस्रवमें तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरण और वीर्यको विशेषतासे न्यूनाधिक्य भी होता है।

बाह्य और आभ्यन्तर कारणोंसे बढ़े हुये क्रोधादिसे जो तीव्ररूप परिणाम होते हैं, उनको तीव्रभाव कहते हैं। इसी प्रकार मन्दरूप भावोंको मन्दभाव, जीवोंके घातमें ज्ञानपूर्वक प्रवृत्तिको ज्ञातभाव और मद्यपानादिसे या इन्द्रियोंको मोहित करनेवाले मदसे असावधानतापूर्वक प्रवृत्तिको अज्ञातभाव कहते हैं। जिसके आधार पुरुषोंका प्रयोजन हो, उसे अधिकरण और द्रव्यकी शक्तिके विशेषत्वको वीर्य कहते हैं। इनको न्यूनाधिकता होनेसे आस्रवमें भी न्यूनाधिक्य होता है।

आस्रवके अधिकरण जीव और अजीव दोनों हैं। जीवाधिकरणके मुख्यतः १०८ भेद हैं, यथा—संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ इन तीनोंको मन वचन-कायरूप तीनों योगोंसे गुणा करनेसे ९, इनको कृत, कारित और अनुमोदना इन तीनोंसे गुणा करनेसे २७, इनको क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायोंसे गुणा करनेसे १०८*। हिंसा आदि करनेके लिए उद्यमरूप भावोंका होना संरम्भ कहलाता है। हिंसादि साधनोंका अभ्यास करना और उनको सामग्री मिलाना, समारम्भ है तथा हिंसादिमें प्रवृत्त हो जाना, आरम्भ कहलाता है। स्वयं करनेको कृत दूसरेसे करानेको कारित और दूसरेके किये हुए कार्यको प्रशंसा करनेको अनुमोदना कहते हैं। इनको भी प्रत्येक कषायके अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन इन चार भेदोंसे गुणा किया जाय तो ४३२ भेद होते हैं। इस प्रकार जीवोंके परिणामों या हृदयगत भावोंके भेदसे आस्रवोंके भी भेद हुआ करते हैं। अजीवाधिकरण—इसके भी चार भेद हैं, १ निर्वर्त्तनाधिकरण, २ निक्षेपाधिकरण, ३ संयोगाधिकरण और ४ निसर्गाधिकरण। रचना करने या उत्पन्न करनेको निर्वर्तनाधिकरण कहते हैं। यह दो प्रकारका है—१ देहदुःप्रयुक्तनिर्वर्तनाधिकरण (शरीरसे कुचेष्टा करना) और २ उपकरणनिर्वर्तनाधिकरण (हिंसाके उपकरण शस्त्रादिको रचना करना)। अथवा इस प्रकार भी दो भेद हैं—१ मूलगुणनिर्वर्त्तना (शरीर, मन, वचन और श्वासोच्छ्वासोंका उत्पन्न करना, और २ उत्तरगुणनिर्वर्तना। काठ, मृत्तिका पाषाणादिसे मूर्ति आदिकी रचना करना या चित्रपटादि बनाना)। निक्षेप रखनेको कहते हैं; इसके चार भेद हैं—१ सहसानिक्षेपाधिकरण (भय आदिसे अथवा दूसरा कार्य करनेके लिए शीघ्रतासे किसी भी चीजको सहसा पटक देना), २ अनाभोगनिक्षेपाधिकरण (शीघ्रता न होने पर भी यहां 'कोटादि जीव हैं या

---

* जप मालमें जो १०८ मणिया होती हैं, वे इन्हीं १०८ आरम्भ जनित पापास्रवोंको दूर करनेके लिए जपी जाती हैं।

नहीं इस भागका बिना विचार किये किसी चीजको रखना या डालना अथवा ठीक जगह न रख कर यत्र तत्र बिना देखे भाले जो पटक देना) ३ दुःप्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण (बिना झाड़ापोंछे या दुष्टतासे किसी चीजको रखना या डालना) और ४ अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण (बिना देखे ही चीजको पटक या फेंक देना)। बोझमें या मिलानेको संयोग कहते हैं। यह दो प्रकारका है—१ उपकरणसंयोजना (शीतस्पर्श युक्त वस्तुको उष्ण वस्तुसे पोंछना या शोधना) और भक्तपानसंयोजना (पान-भोजनको अन्य किसी पान-भोजनमें मिलाना आदि)। निसर्गाधिकरण तीन प्रकारका है—१ मनो निसर्गाधिकरण (दुष्ट प्रकारसे मनका प्रवर्तन करना) २ वाग्निसर्गाधिकरण (दुष्ट प्रकारसे वचनकी प्रवृत्ति करना) और ३ कायनिसर्गाधिकरण।

उपर्युक्त १०८ (अथवा ११२) प्रकारके जीवाधिकरण और ११ प्रकारके अजीवाधिकरणोंके आश्रयसे कर्मोंका आगमन या आस्रव होता है। ऊपर सामान्य आस्रवके भेद कहे गये हैं; अब ज्ञानावरण आदि विशेष आस्रवोंके कारण कहे जाते हैं।

आत्माके ज्ञान और दर्शनको आच्छादन करनेमें अर्थात् ज्ञानावरण और दर्शनावरणकर्मके आस्रव होनेमें ये छह कारण हैं, यथा—१ प्रदोष, २ निह्नव, ३ मात्सर्य ४ अन्तराय, ५ आसादन और ६ उपघात। कोई व्यक्ति मोक्षके कारणभूत तत्त्वज्ञानको यथासाध्य चर्चा कर रहा हो, परन्तु उसे सुन कर ईर्षाभावसे उसकी प्रशंसा न करना या मौन धारण करनेके भावको प्रदोष कहते हैं। जो स्वयं शास्त्रोंका ज्ञाता विद्वान् हो कर भी तत्त्वके विषयमें किसीके कुछ पूछने पर उसे न बतावे अर्थात् शास्त्रज्ञानको छिपावे, ऐसे भावको निह्नवभाव कहते हैं। इस अभिप्रायसे किसीको शास्त्रादि न पढ़ाना कि यह पढ़ कर पण्डित हो जायगा और मेरी बराबरी करेगा, ऐसे भावको मात्सर्य कहते हैं। किसीके ज्ञाना भ्यासमें विघ्न डालना अथवा पुस्तक, पाठक, पाठशाला आदिका विच्छेद कर देना इत्यादि भावोंको अन्तराय कहते हैं। अन्यके द्वारा प्रकाशित ज्ञानको रोक देना कि, अभी इस विषयको मत कहो इत्यादि भावोंको आसादन और प्रशंसनीय ज्ञानमें दोष लगानेको उपघात कहते हैं। इन्हींमें ज्ञानके विषयमें होनेसे ज्ञानावरणीय और दर्शनके विषयमें होनेसे दर्शनावरणीय कर्मोंका आस्रव होता है।

दुःख शोक, ताप (पश्चात्ताप) आक्रन्दन (रुदन) वध (प्राण घात) और परिदेवन (करुणा-जनक विलाप), इन्हें स्वयं करनेसे, अन्यको करानेसे तथा दोनोंको एक साथ होनेसे असातावेदनीयकर्मका आस्रव होता है। इनसे विपरीत भूतव्रत्यनुकम्पा (चारों गतियोंके जीवों और व्रतियोंके दुःखको देख कर उन्हें दूर करनेके भाव), दान (परोपकारके लिए धन औषध, आहारादि देना), सरागसंयम (पांच इन्द्रिय और मनको वश करने और दुष्ट कर्मोंके विनाश करनेके लिए राग सहित संयम धारण करना), योग (अनिन्द्य आचरण) क्षमा और शौच (लोभका त्याग) पालन करनेसे सातावेदनीय कर्मका आस्रव होता है। इसी प्रकार केवलीका अवर्ण वाद (केवलज्ञानयुक्त सर्वज्ञके दोष लगाना), शास्त्रका अवर्णवाद (शास्त्रमें मद्य मांस मधु आदिके सेवनका उपदेश है, वेदनाके पीड़ितके लिए मैथुन सेवन आदि कहा है, इत्यादि दोष लगाना), संघका अवर्णवाद (शरीरके ममत्व न रखनेवाले वीतराग मुनीश्वरोंके संघको निन्दा करना) धर्मका अवर्णवाद (अहिंसा मय जैनधर्मकी निन्दा करना) और देवोंका अवर्णवाद (देवोंको मांसभक्षी सुरापायी, भोजन करनेवाले तथा मनुष्योंसे कामसेवनादि करनेवाले कहना) करनेसे दर्शन मोहनीय-कर्मका आस्रव होता है। आत्मज्ञानी तपस्वि योंकी निन्दा करना, धर्मको नष्ट करना, किसीके धर्म साधनमें विघ्न डालना ब्रह्मचारियोंको ब्रह्मचर्यसे डिगाना, मद्य-मांस-मधुके त्यागीको भ्रम पैदा करना इत्यादि अन्य कार्योंसे चारित्रमोहनीय कर्मका आस्रव होता है।

बहुत आरम्भ (हिंसा जनक कार्य) करने और बहुत परिग्रह रखनेसे नरकायुका आस्रव होता है अर्थात् मरनेके पश्चात् नरकमें जन्म लेना पड़ता है। कुटिलस्वभाव अर्थात् मायाचारी (मनमें कुछ विचारना, वचनसे कुछ कहना और शरीरसे और ही प्रवृत्ति करना) करनेसे

(६) निर्जरातत्त्व—आत्मासे कर्मोंके एकदेश (किंचित्) पृथक् होने या क्षय होनेको निर्जरा कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं १ द्रव्यनिर्जरा और २ भावनिर्जरा। यथा-काल कर्मोंकी स्थिति पूरी होने पर जिस भाव (तप)से फल दे कर अथवा बिना फल दिये जो कर्म झड़ (पृथक्) जाते हैं उसे भावनिर्जरा कहते हैं तथा उन कर्मपुद्गलोंके पृथक् होनेको द्रव्यनिर्जरा कहते हैं। इसके भिन्न दो भेद इस प्रकार भी हैं—१ सविपाकनिर्जरा और २ अविपाकनिर्जरा। कर्मोंका उदयकाल आने पर रस दे कर अपने आप आत्मासे पृथक् हो जाना सविपाक निर्जरा कहलाती है। यह सविपाकनिर्जरा चारों गतियों में रहनेवाले समस्त संसारी जीवोंके हुआ करती है। कर्मोंको उदयकालके आये बिना ही तपश्चरणादि द्वारा (अनुदय अवस्थामें ही) आत्मासे पृथक् कर देनेको अविपाकनिर्जरा कहते हैं।

निर्जराके भेद प्रभेद तथा वह किस समय कैसे और क्यों होती है, इत्यादि बातोंका वर्णन आगे चल कर "मुनि आचार" शीर्षकमें करेंगे।

(७) मोक्षतत्त्व—आत्मासे आठ कर्मोंका सर्वथा पृथक् हो जाना ही मोक्ष है। मोक्षका अर्थ है मुक्ति। आत्मा कर्मबन्धनसे पराधीन है, उसका उससे मुक्त होना ही मोक्ष है। मोक्ष आत्माका अन्तिम ध्येय है। यह मोक्ष केवलज्ञानपूर्वक ही होता है इसलिये यहां केवलज्ञान-की उत्पत्तिके विषयमें कुछ कहा जाता है। ज्ञानावरण दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मोंके सर्वथा नष्ट होने जाने पर केवलज्ञानकी उत्पत्ति होती है। तब आत्मा सर्वज्ञताको प्राप्त कर परमात्मा-पद पर अधिष्ठित होती है। उसके बाद आयुकर्मकी अवधि पूर्ण होनेके साथ वेदनीय नाम और गोत्र इन अघातिया कर्मोंका सर्वथा नाश होने पर आत्मा कर्म बन्धनसे मुक्त होती है। आत्माकी इस मुक्त अवस्थाका नाम मोक्ष है। मोक्ष प्राप्त आत्मा पुनः संसारमें नहीं आती अर्थात् वह जन्म, जरा मरणादि दुःखोंसे सर्वथा मुक्त हो जाती है। मुक्त आत्मा सिद्ध कहलाती है। सिद्ध आत्मा या परमात्माके केवल सम्यक्त्व केवलज्ञान केवलदर्शन और सिद्धत्व इन चार भावोंके सिवा अन्य भावोंका अभाव हो जाता है। सम्पूर्ण कर्मके नष्ट होने पर वह मुक्त आत्मा ऊर्द्ध्वगमन करती है और लोकाकाशके अग्रपर्यन्त जा कर वहीं स्थित रहती है। कारण उसके आगे अलोकाकाश होनेसे धर्मद्रव्य का अभाव है और इसीलिए जीवका गमन भी असम्भव है। मुक्त होते समय शरीरका जैसा आसन होता था जितने प्रदेशमें स्थित होता मुक्त आत्मा भी सिद्धलोकमें जा कर उतने ही प्रदेशमें व्याप्त रहेगी।

कर्म-सिद्धान्त—हिन्दूधर्ममें जैसा पाप पुण्य और उसका फलाफल माना है उसी प्रकार जैनधर्ममें कर्म माना है। कर्म साधारणतः दो प्रकारके होते हैं, एक शुभ और दूसरे अशुभ। पुण्यको शुभ कर्म कह सकते हैं और पापको अशुभकर्म। शुभकर्मसे सांसारिक सुख मिलता है और अशुभकर्मसे दुःख प्राप्त होता है। किन्तु ये दोनों ही प्रकारके कर्म आत्माको संसारमें परिभ्रमण या जन्म मरण करानेवाले हैं। इसलिए जैनसिद्धान्त में पाप पुण्य या शुभ अशुभ दोनों ही कर्मोंको आत्माका अहितकारी माना है। क्योंकि जब तक आत्मा कर्म-रहित नहीं होती, तब तक उसको मोक्षकी (जो कि आत्माका ध्येय है) प्राप्ति नहीं होती। जैनसिद्धान्तमें कर्मका लक्षण इस प्रकार किया है—जीव या आत्माके राग द्वेष आदि परिणामों (भावों) के निमित्तसे कार्माण जगका रूप जो सूक्ष्म-स्कन्ध जीवके साथ बन्धको प्राप्त होते हैं उनको कर्म कहते हैं। अब कर्मोंका आत्माके साथ सम्बन्ध कैसे होता है, इस विषयको लिखते हैं।

जीव कषाय (क्रोध मान माया-लोभरूप आत्माके विभाव) सहित होनेके कारण जो कर्मोंके योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है उसको बन्ध कहते हैं। समस्त लोक (त्रिभुवन)में पुद्गलोंके परमाणु भरे हुए हैं। और उनमें अनन्तानन्त परमाणु ऐसे भी हैं जो कर्म होनेकी योग्यता रखते हैं। ऐसे परमाणुओंका नाम कार्माणवर्गणा है। कार्माणवर्गणा लोकमें सर्वत्र व्याप्त है; जहां आत्माके प्रदेश हैं, वहां भी इनका अस्तित्व है। जब आत्मा योग (मन-वचन-काय इन तीनोंकी क्रिया)के कारण सकम्प होती है, तब चारों ओरके आत्माके प्रदेशों में कार्माणवर्गणाओंका सम्बन्ध होता है। इस प्रकार

(१) चक्षुदर्शनावरण (२) अचक्षुदर्शनावरण, (३) अव-
धिदर्शनावरण (४) केवलदर्शनावरण, (५) निद्रा, (६)
निद्रानिद्रा, (७) प्रचला (८) प्रचलाप्रचला और (९)
स्त्यानगृद्धि। चक्षुदर्शनावरण—जिसके उदयसे आत्मा
चक्षु आदि इन्द्रियरहित एकेन्द्रिय वा विकलेन्द्रिय हो
अथवा चतुरिन्द्रियसहित पंचेन्द्रिय होने पर भी उसके नेत्रोंमें
देखनेकी शक्ति न हो अर्थात् अन्धा काना वा मन्दद्दष्टि
हो उसे चक्षुदर्शनावरण कहते हैं। अचक्षुदर्शनाव-
रण—जिसके उदयसे चक्षुके अतिरिक्त अन्य इन्द्रियोंके
दर्शन (सामान्य अवलोकन) न हो उसे अचक्षुदर्शना-
वरण कहते हैं। अवधिदर्शनावरण—अवधिदर्शन
(बिना इन्द्रियोंकी सहायताके जो दर्शन हो)-से होने
वाले सामान्य अवलोकनको आच्छादित करता है, उसे
अवधिदर्शनावरण कहते हैं। केवलदर्शनावरण—जो
केवलदर्शन द्वारा समस्त दर्शन नहीं होने देता वह
केवलदर्शनावरण है। निद्रादर्शनावरण—मद खेद और
ग्लानि दूर करनेके लिए जो नींद ली जाती है उसे
निद्रादर्शनावरण कहते हैं। इसके उदय होने पर फिर
कोई भी जग नहीं सकता। निद्रानिद्रादर्शनावरण—
निद्रा पर निद्रा आना वा जिसके उदयसे ऐसी निद्रा
आना कि जीव आँखों को उघाड़ भी न सके, उसे निद्रा
निद्रादर्शनावरण कहते हैं। प्रचलादर्शनावरण—जिसके
शोक खेद मदादिके कारण बैठे बैठे ही शरीरमें
विकार उत्पन्न हो कर आँखों व इन्द्रियोंके व्यापारका अभाव
हो जाय उसे प्रचलादर्शनावरण कहते हैं। इसके
उदयसे जीव नेत्रोंको कुछ उघाड़े हुए ही सो जाता है
अर्थात् सोता हुआ भी कुछ जानता है, बार बार मन्द
मन्द निद्रा लेता है बैठा बैठा झूमने लगता है नेत्र
और गात्र चलाया करता है। प्रचलाप्रचलादर्शनावरण—
जिसके उदयसे मुखसे लार बहने लग जाय अङ्गोपाङ्ग
चलायमान हों और सुई आदिके चुभाने पर भी चेत न
हो, उसे प्रचलाप्रचलादर्शनावरण कहते हैं। स्त्यानगृद्धि
दर्शनावरण—जिस निद्राके आने पर मनुष्य चैतन्य सा
हो कर अनेक रौद्रकर्म कर लेता है और फिर बेहोश हो
जाता है तथा नींद खुलने पर उसे मालूम नहीं रहता
कि उसने क्या क्या काम कर डाले? ऐसी कर्मप्रकृतिका
नाम स्त्यानगृद्धिदर्शनावरण है।

३य कर्म प्रकृतिका नाम है वेदनीय। यह सत् और
असत्के भेदसे दो प्रकारका है। सत्को सातावेदनीय
और असत्को असातावेदनीय कहते हैं। सातावेदनीय—
जिसके उदयसे शारीरिक और मानसिक अनेक प्रकार
सुखरूप सामग्रियोंकी प्राप्ति हो, उसे सातावेदनीय कहते
हैं। असातावेदनीय—जिसके उदयसे दुःखदायक
सामग्रियोंका समागम हो उसे असातावेदनीय कहते
हैं। अर्थात् सातावेदनीयकर्म जीवको सांसारिक सुख
देता है और असातावेदनीय दुःख।

४थ कर्म प्रकृतिका नाम है मोहनीय। इसके मुख्यतः
दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। इन-
मेंसे दर्शनमोहनीयके १ सम्यक्त्व, २ मिथ्यात्व और ३ सम्य-
ग्मिथ्यात्व (अर्थात् मिश्रमोहनीय) ये तीन तथा चारित्र
मोहनीयके १ अकषायवेदनीय और २ कषायवेदनीय ये
दो भेद हैं। अकषायवेदनीय* ९ प्रकार है—१ हास्य,
२ रति ३ अरति, ४ शोक, ५ भय, ६ जुगुप्सा ७ स्त्रीवेद,
८ पुरुषवेद और ९नपुंसकवेद। कषायवेदनीय १६प्रका-
रका है—१ अनन्तानुबन्धी क्रोध, २ अप्रत्याख्यानक्रोध ३
प्रत्याख्यानक्रोध ४ संज्वलनक्रोध ५ अनन्तानुबन्धीमान,
६ अप्रत्याख्यानमान ७ प्रत्याख्यानमान, ८ संज्वलनमान,
९ अनन्तानुबन्धी माया, १० अप्रत्याख्यान माया ११ प्रत्या-
ख्यान माया, १२ संज्वलन माया १३ अनन्तानुबन्धी
लोभ, १४ अप्रत्याख्यानलोभ, १५ प्रत्याख्यान लोभ और
१६ संज्वलन लोभ। इस प्रकार तीन नौ और सोलह
कुल मिला कर मोहनीय प्रकृतियां २८ भेद होते हैं।

दर्शनमोहनीय—(१) मिथ्यात्व—जिसके उदयसे सर्वज्ञ
भाषित मार्गसे पराङ्मुख और तत्त्वार्थके श्रद्धानमें निरु-
त्सुक तथा हिताहितका विचार करनेमें असमर्थ
होता है, उसे मिथ्यात्व कहते हैं। (२) सम्यक्त्व—
जब शुभ परिणाम (भाव)के प्रभावसे मिथ्यात्वका रस
हीन हो जाता है और वह (शक्तिके घट जानेसे) अस-
मर्थ हो कर आत्माके श्रद्धानको नहीं रोक सकता अर्थात्
सम्यक्त्वको बिगाड़ नहीं सकता तब जिसका उदय होता

* किंचित् कषायको नोकषाय वा अकषाय कहते हैं। यहां
अकषायका अर्थ कषायरहित नहीं है किन्तु किंचित् कषाय है।
जो कषायको उत्तेजित करे, उसे कषाय कहते हैं।

है, उसको सम्यक्त्व कहते हैं। (३) सम्यग्मिथ्यात्व—जिसके उदयसे तत्त्वोंके श्रद्धान रूप और अश्रद्धान-रूप दोनों प्रकारके भाव—दही गुडके मिले हुये स्वादके समान-मिले हुए होते हैं, उसे सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं। ये तीनों प्रकृतियां आत्माके सम्यक्त्व भावकी घातक हैं।

चारित्रमोहनीय (अकषायवेदनीय)—(१) हास्य—जिसके उदयसे हंसी आवे, उसको हास्य कहते हैं। (२) रति—जिसके उदयसे विषयोंके सेवन करनेमें उत्सुकता वा आसक्तता हो, वह रति कहलाती है। (३) अरति—रतिसे विपरीत वा उल्टी प्रकृतिका नाम अरति है। (४) शोक—जिसके उदयसे चिन्ता और शोकादि हो, उसे शोक कहते हैं। (५) भय—जिसके उदयसे उद्वेग हो, वह भय * है। (६) जुगुप्सा—जिसके उदयसे अपने दोषोंका आच्छादन और अन्यके कुल शीलादिमें दोष प्रकट करनेका भाव हो अथवा अवज्ञा, तिरस्कार वा ग्लानिरूप भाव उत्पन्न हों, उसे जुगुप्सा कहते हैं। (७) स्त्रीवेद—जिसके उदयसे पुरुषके साथ रमण करनेकी इच्छा हो, वह स्त्रीवेद है। (८) पुरुषवेद—जिसके उदयसे स्त्रीसे रमनेकी इच्छा हो, वह पुरुषवेद है। (९) नपुंसकवेद—जिसके उदयसे स्त्री और पुरुष दोनोंसे रमनेको भाव हो, वह नपुंसकवेद है।

चारित्रमोहनीय (कषायवेदनीय)—कषायवेदनीयके १६ भेद हैं, जिनमें क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार मुख्य हैं। (१) क्रोधकषाय—जिसके उदयसे अपने और परके घात करनेके भाव (परिणाम) हों तथा परके उपकार करनेके अभावरूप भाव वा क्रूरभाव हों, उसे क्रोध कषाय कहते हैं। (२) मानकषाय—जाति, कुल, बल ऐश्वर्य, विद्या, रूप, तप और ज्ञान आदिके गर्वसे उद्धत-रूप तथा अन्यसे नम्रीभूत न होने-रूप परिणाम वा भावको मानकषाय कहते हैं। (३) मायाकषाय—अन्यको ठगनेकी इच्छासे जो कुटिलता की जाती है, वह मायाकषाय है। (४) लोभकषाय—अपने उपकारक द्रव्योंमें जो अभिलाषा होती है, उसे लोभकषाय कहते हैं। इन चारोंमेंसे प्रत्येकके शक्तिकी अपेक्षासे तीव्रतर, तीव्र, मन्द और मन्दतर—ऐसे चार चार भेद हैं। तीव्रतर भावोंको अनन्तानुबन्धी कहते हैं और तीव्रको अप्रत्याख्यान, मन्दको प्रत्याख्यान तथा मन्दतरको संज्वलन कहते हैं†। अनन्त संसार (जन्म मरण)-का कारण जो मिथ्यात्व है, उसके साथ ही रहनेवाले परिणामों (भावों) को अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया लोभ कहते हैं। अनन्तानुबन्धी कषाय इतना तीव्र होता है कि, इसका दृष्टान्त पत्थरकी लकीरसे दिया जाता है अर्थात् जिस प्रकार पत्थर पर लकीर खींचनेसे वह सहजमें नहीं मिटती, उसी प्रकार अनन्तानुबन्धी कषायके द्वारा बंधे हुए कर्म भी सहजमें (बिना अपना फल दिये) नष्ट नहीं होते। अप्रत्याख्यानका दरजा इससे कुछ नीचा है। अप्रत्याख्यान अर्थात् थोड़े त्यागको जो आवरण करें वा रोकें, उन परिणामों (भावों)-को अप्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ कहते हैं। इसी प्रकार प्रत्याख्यान अर्थात् सर्व त्यागको जो आवरण करें वा महाव्रत नहीं होने देवें, उन परिणामोंका नाम है प्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया लोभ। और जो संयमके साथ ही प्रकाशमान रहें अर्थात् जिनके होने पर संयम प्रकाशमान् हुआ करे, ऐसे क्रोध, मान, माया, लोभरूप परिणामोंको संज्वलन क्रोध-मान माया-लोभ कहते हैं। इस तरह ४।४ भेद होनेसे कषायवेदनीयकी १६ प्रकृतियां हुईं।

दर्शन मोहकी तीन प्रकृतियां तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, और लोभ, ये ७ प्रकृतियां सम्यक्त्वका घात करती हैं, अर्थात् इनका उदय रहते हुए सम्यक्त्व नहीं होता है। और इसी प्रकार अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभके उदयसे श्रावकके व्रत नहीं होते, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभके उदयसे महाव्रत नहीं होते और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभके

* जैन मतानुसार भय सात प्रकारका है—
१ लोकभय, २ परलोकभय, ३ वेदनभय, ४ अरक्षाभय, ५ अगुप्तिभय, ६ मरणभय, ७ आकस्मिकभय, इन्हींमें समस्त प्रकारके भय गर्भित हैं।

† इन चार कषायोंके ४।४ दृष्टांत हैं। जैसे—(क्रोधके) १ पत्थरकी रेखा, २ पृथ्वीकी रेखा, ३ धूलिकी रेखा, ४ जलकी रेखा। इसी प्रकार मान, माया और लोभके भी पृथक् पृथक् ४।४ दृष्टांत हैं।

उदयसे यथाख्यातचारित्र (कषायोंके सर्वथा अभावसे प्रादुर्भूत आत्माकी शुद्धिविशेष) नहीं होता है।

५म कर्म-प्रकृतिका नाम है आयु। जिसके सद्भावसे आत्माका जीवन और अभावसे मरण हो, उसे आयुकर्म कहते हैं। यह जीवन धारण करनेमें कारण है। यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि जीवनका कारण तो अन्नपानादि है, अन्नपानादिके सद्भावसे ही जीवन धारण किया जा सकता है और उसके अभावसे मरण होता है; फिर आयु कर्म कैसे कारण बन गया? इसका उत्तर यह है कि, अन्नपानादि तो बाह्यकारण हैं। मूल उपादान कारण आयुकर्म ही है। जैसे घटके होनेमें मूल कारण तो मृत्तिका है और बाह्यकारण चाक, कुम्भकार आदि उसी प्रकार जीवनधारणका मूलकारण आयुकर्म है। यह तो प्रत्यक्ष बात है कि जिसकी आयु शेष हो गई हो, अन्नादि देने पर भी उसकी मृत्यु हो जाती है। इसके सिवा देव और नारकीगण अन्नादि बाह्य आहारके बिना ही जीवन धारण करते हैं इसलिए यह प्रश्न असङ्गत है।

इस आयुकर्मके चार भेद हैं—नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु। (१) नरकायु—जिसके सद्भावसे आत्मा नरक गतिमें जीवन धारण करे, उसे नरकायु कहते हैं। (२) तिर्यंचायु—जिसके सद्भावसे आत्मा तिर्यंच-शरीरमें जीवे वह तिर्यंचायु है। (३) मनुष्यायु—जिसके सद्भावसे आत्मा मनुष्यशरीरमें अवस्थान करे वह मनुष्यायु है। (४) देवायु—जिसके सद्भावसे आत्मा देवगतिमें जीवन धारण करे, उसे देवायु कहते हैं।

६ष्ठ कर्म प्रकृतिका नाम है नाम-कर्म। इसके प्रधानतः ४२ भेद हैं*। (१) गतिनामकर्म—जिसके उदयसे आत्मा भवान्तरके लिए गमन करे, उसे गति-नामकर्म कहते हैं। नरकगति तिर्यंचगति, मनुष्य गति और देवगतिके भेदसे यह चार प्रकारका है। जिसके उदयसे आत्मा नरकमें जावे उसे नरकगति नाम-कर्म, जिसके उदयसे तिर्यंच योनिमें जावे, उसे तिर्यंच गति नामकर्म; जिसके उदयसे मनुष्य जन्मको पावे उसे मनुष्यगति नामकर्म और जिसके उदयसे देव पर्याय पावे उसे देवगति नामकर्म कहते हैं। (२) जातिनाम कर्म—उक्त नारकादि गतियोंमें जो अविरोधी समान धर्मों से आत्माको एक रूप करता है उसे जातिनाम कर्म कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—१ एकेन्द्रिय जाति नामकर्म २ द्वीन्द्रिय जातिनामकर्म ३ त्रीन्द्रिय जाति नामकर्म, ४ चतुरिन्द्रिय जातिनामकर्म और ५ पंचेन्द्रिय जातिनामकर्म। जिसके उदयसे आत्माको एकेन्द्रिय जाति प्राप्त हो उसे एकेन्द्रिय जातिनामकर्म, जिसके उदयसे द्वीन्द्रिय-शरीर प्राप्त हो, उसे द्वीन्द्रिय जातिनाम कर्म, जिसके उदयसे त्रीन्द्रिय जाति प्राप्त हो, उसे त्रीन्द्रिय जातिनामकर्म, जिसके उदयसे चतुरिन्द्रिय जाति प्राप्त हो, उसे चतुरिन्द्रिय जातिनामकर्म और जिसके उदयसे पंचेन्द्रिय शरीर प्राप्त हो, उसे पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म कहते हैं।

(३) शरीर नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरकी रचना हो वह शरीर-नामकर्म है। औदारिक शरीर वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कार्माण शरीरके भेदसे शरीरनामकर्म भी पांच प्रकार का है*। जिसके उदयसे औदारिकशरीरकी रचना होती है, उसे औदारिकशरीर नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार अन्य चार भेदोंके लक्षण समझने चाहिये।

(४) अङ्गोपाङ्ग नामकर्म—जिसके उदयसे अङ्ग और उपाङ्गोंका भेद प्रकट हो उसे अङ्गोपाङ्ग नामकर्म कहते

* ये सब प्रधानतर भेद हैं। आगे भी इसी प्रकार भेद बतावेंगे, इन सबकी संख्या ५१ है। इनको मिलानेसे नामकर्मके कुल भेद ९३ होते हैं।

* १—जो शरीर इन्द्रियों द्वारा देखनेमें आवे तथा स्थूल हो उसे औदारिक शरीर कहते हैं। २—जिस शरीरमें अनेक प्रकारके स्थूल सूक्ष्म रूप हो, नाना रूप विकार होनेकी योग्यता हो उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं। ३—सूक्ष्म पदार्थके निर्णयके लिए अथवा संयमके पालनेके अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती मुनिके जो शरीर प्रगट होता है उसे आहारक शरीर कहते हैं। ४—जिससे शरीर तेज, कान्ति होवे उसे तैजस शरीर कहते हैं। ५—ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके समूहको कार्माण शरीर कहते हैं। ये पांचों ही शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं।

हैं। मस्तक, हृदय, उदर, पीठ, बाहु, जङ्घा और पैर ये अङ्ग कहलाते हैं तथा ललाट, नासिका, कर्ण आदि शरीरके अन्य भागोंको उपाङ्ग कहते हैं। अङ्गोपाङ्ग-नामकर्म तीन प्रकारका है—१ औदारिकशरीराङ्गोपाङ्ग नामकर्म, २ वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्ग-नामकर्म और ३ आहारकशरीराङ्गोपाङ्ग-नामकर्म।

(५) निर्माण नामकर्म—जिसके उदयसे अङ्ग और उपाङ्गोंकी उत्पत्ति हो, उसे निर्माण नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं—१ स्थान-निर्माण और २ प्रमाण-निर्माण। जाति-नामकर्मके उदयसे जो नासिका, कर्ण आदिको यथास्थानमें निर्माण करना, उसे स्थाननिर्माण और जो उन्हें उपयुक्त लम्बाई चौड़ाई आदिका परिमाण लिए रचता है उसे प्रमाणनिर्माण कहते हैं। (६) बन्धन नामकर्म—जिसके उदयसे शरीर-नामकर्मके वशसे ग्रहण किए हुए आहारवर्गणाके पुद्गलस्कन्धोंके प्रदेशोंका मिलना हो, उसे बन्धन नामकर्म कहते हैं। यह पांच प्रकारका है—१ औदारिक-बन्धननामकर्म, २ वैक्रियिक बन्धननामकर्म, ३ आहारकबन्धननामकर्म, ४ तैजस-बन्धननामकर्म और ५ कार्मणबन्धननामकर्म। जिसके उदयसे औदारिकबन्ध हो, उसे औदारिकबन्धननामकर्म, जिसके उदयसे वैक्रियिकबन्ध हो, उसे वैक्रियिकबन्धन-नामकर्म, जिसके उदयसे आहारकबन्ध हो, उसे आहारकबन्धननामकर्म, जिसके उदयसे तैजसबन्ध हो उसे तैजसबन्धननामकर्म और जिसके उदयसे कार्मणबन्ध हो, उसे कार्मणबन्धननामकर्म कहते हैं।

(७) सङ्घातनामकर्म—जिसके उदयसे औदारिक आदि शरीरोंका छिद्ररहित अन्योऽन्यप्रदेशानुप्रदेश-रूप एकता वा सङ्घटन हो, उसे सङ्घात नामकर्म कहते हैं। इसके भी औदारिक आदि पांच भेद हैं। जिसके उदयसे औदारिक शरीरमें छिद्र रहित सन्धियां (जोड़) हों, उसे औदारिक सङ्घात नामकर्म कहते हैं। जिसके उदयसे वैक्रियिक शरीरमें सङ्घात हो, वह वैक्रियिकसङ्घात नामकर्म कहलाता है। जिसके उदयसे आहारकशरीरमें सङ्घात हो, उसका नाम आहारक सङ्घात नामकर्म है। जिसके उदयसे तैजस शरीरमें सङ्घात हो, वह तैजस-संघात नामकर्म है, और जिसके उदयसे कार्माण शरीरमें सङ्घात हो उसे कार्मणसङ्घात नामकर्म कहते हैं।

(८) संस्थान-नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरकी आकृति वा आकार उत्पन्न हो, उसे संस्थान-नामकर्म कहते हैं। इसके छः भेद हैं—१ समचतुरस्रसंस्थान-नामकर्म, २ न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान नामकर्म, ३ स्वातिसंस्थान-नामकर्म, ४ कुब्जकसंस्थान नामकर्म, ५ वामनसंस्थान-नामकर्म और ६ हुण्डकसंस्थान नामकर्म। जिसके उदयसे ऊपर, नीचे और मध्यमें समान विभागसे शरीरकी आकृति उत्पन्न हो, उसे समचतुरस्र संस्थान-नामकर्म कहते हैं। जिसके उदयसे शरीरका नाभिसे नीचेका भाग वटवृक्ष सदृश पतला हो और ऊपरका भाग मोटा हो, उसे न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान-नामकर्म कहते हैं। स्वातिसंस्थान नामकर्म उसे कहते हैं, जिसके उदयसे शरीरका नीचेका भाग स्थूल हो और ऊपरका भाग पतला। कुब्जकसंस्थान-नामकर्म उसे कहते हैं, जिसके उदयसे पीठ पर बहुतसा मांस हो वा कुबड़ा शरीर हो। वामन नामकर्म उसे कहते हैं, जिसके उदयसे शरीर बहुत छोटा हो। और जिसके उदयसे शरीरके अङ्ग उपाङ्ग कहीं कहीं, छोटे बड़े वा संस्थान कम ज्यादा हों, उसे हुण्डकसंस्थान नामकर्म कहते हैं।

(९) संहनन नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरके हाड़, पिञ्जर आदिके बन्धनोंकी विशेषता हो, उसको संहनन नामकर्म कहते हैं। इसके छः भेद हैं—१ वज्रवृषभनाराचसंहनन नामकर्म, २ वज्रनाराचसंहनन नामकर्म, ३ नाराचसंहनन नामकर्म, ४ अर्द्धनाराचसंहनन-नामकर्म, ५ कीलकसंहनन-नामकर्म और ६ असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन-नामकर्म*। वज्रवृषभनाराचसंहनन नामकर्म उसे कहते हैं, जिसके उदयसे शरीरस्थ वृषभ (वेष्टन), नाराच (कील) और संहनन (अस्थिपञ्जर) ये तीनों ही वज्रके समान अभेद्य हों। जिस कर्मके उदयसे नाराच और संहनन वज्रमय हों और वृषभ सामान्य हो, उसे वज्रनाराचसंहनन नामकर्म कहते हैं। जिसके उदयसे हड्डियों और सन्धियोंमें कीलें तो

* नसोंसे हड्डियोंके बांधनेका नाम ऋषभ वा वृषभ है। नाराच कीलनेको कहते हैं और संहनन हाड़ोंके समूहको कहते हैं।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। इनमें भी ज्ञानावरणकी पांच, दर्शनावरणकी नव, अन्तरायकी पांच और असातावेदनीयकी एक इन तीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है। और साता-वेदनीयकी एक प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थिति पंद्रह कोड़ा-कोड़ी सागरकी है।

मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर परिमित है। इस उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध मिथ्यादृष्टि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके होता है। जीवोंके भेदसे इसमें तारतम्य होता है। यथा—एकेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थिति एक सागर द्वीन्द्रियके २५ सागर त्रीन्द्रियके ५० सागर और चतुरिन्द्रियके मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति १०० सागर परिमित होती है। असंज्ञी पर्याप्तक असंज्ञि पञ्चेन्द्रियके मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति एक हजार सागरकी होती है।

नामकर्म और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागर परिमित है। यह स्थिति संज्ञी पञ्चे-न्द्रिय पर्याप्तकके लिए है। एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरके $\frac{2}{7}$ भाग है। द्वीन्द्रिय आदिमें भी इसी प्रकारका पार्थक्य है। मोहनीयकर्मकी स्थिति सबसे अधिक और इसीसे अन्य कर्मोंकी उत्पत्ति होनेके कारण इस कर्मको राजा कहते हैं।

आयुःकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर परिमित है। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरकी है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके लिए उत्कृष्ट स्थिति पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय आदिमें तारतम्य है।

इसी प्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय अंत-राय और आयु, इन पांच कर्मोंकी जघन्यस्थिति अन्तर्मु-हूर्त* है। वेदनीयकर्मकी जघन्यस्थिति बारह मुहूर्तकी† है। नामकर्म और गोत्रकर्मकी जघन्यस्थिति आठ मुहूर्त परिमित है।

अनुभागबन्ध—तीव्र और मन्द कषायरूप जिस प्रकारके भावोंसे कर्मोंका आस्रव हुआ है, उनके अनुसार कर्मोंकी फल-दायक शक्तिकी तीव्रता और मन्दता होने-को अनुभागबन्ध कहते हैं। कर्मप्रकृतियोंके नामानुसार ही उनका अनुभव होता है अर्थात् उनकी फलदायक शक्ति कर्म-प्रकृतियोंके नामानुसार होती है। अब इस बातका निर्णय करते हैं कि, जो कर्म उदयमें आ कर तीव्र वा मन्द रस देते हैं, उन कर्मोंका आवरण जीवके साथ लगा रहता है या सार रहित हो कर आत्मासे पृथक् हो जाता है?

अनुभागबन्धके पश्चात् निर्जरा ही होती है; अर्थात् जो कर्मबन्ध हुआ, वह उदयके समय आत्माको सुख-दुःख दे कर आत्मासे पृथक् हो जाता है। यह निर्जरा दो प्रकार-की है—१ सविपाक निर्जरा और २ अविपाक निर्जरा।

प्रदेशबन्ध—ज्ञानावरणादि कर्मोंको प्रकृतियोंके कारणभूत और समस्त भावोंमें (वा समयोंमें) मन वचन कायके क्रियारूप योगोंसे आत्माके समस्त प्रदेशोंमें सूक्ष्म तथा एक क्षेत्रावगाहरूप स्थित जो अनन्तानन्त कर्मपुद्गलोंके प्रदेश हैं, उनको प्रदेशबन्ध कहते हैं। एक आत्माके असंख्य प्रदेश हैं। उनमेंसे प्रत्येक प्रदेशमें अनन्तानन्त पुद्गल-स्कन्धोंका (एक एक समयमें) बन्ध होता रहता है, उस बन्धको प्रदेशबन्ध कहते हैं। वे पुद्गलस्कन्ध ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति, उत्तरप्रकृति एवं उत्तरोत्तरप्रकृतिरूप होनेमें कारण हैं और मन-वचन-कायके हलनचलन (वा योग)से उनका आगमन होता है।

उपर्युक्त कर्म-प्रकृतियां पुण्य और पापके भेदसे दो प्रकारकी हैं। सातावेदनीयकर्म, शुभआयुकर्म, शुभ नामकर्म और शुभगोत्रकर्म ये चार प्रकृतियां पुण्यरूप हैं। आठ कर्मप्रकृतियोंमेंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार प्रकृतियां तो आत्माके अनुजीवी गुणोंकी घातक हैं; इसलिए पापरूप ही समझी जाती हैं। बाकीकी चार प्रकृतियोंमें दो भेद हैं, जैसा कि कह चुके हैं।

मोक्षमार्ग—संसारमें हर एक प्राणी सुखकी इच्छा रखता है। किन्तु उसे अनेक प्रयत्न करने पर भी दुःखके

* एक मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनटके भीतर भीतरके समयको अन्तर्मुहूर्त कहते हैं।

† दो घड़ी अर्थात् ४८ मिनटका एक मुहूर्त होता है।

मिला कुछ हाथ नहीं आता। अज्ञानसे अज्ञान् व्यक्ति संसारमें सहज सुखका अनुभव नहीं करता, प्रत्युत नई नई आकांक्षाओंकी पूर्ति न होनेसे दुःखी ही होता है। जैनधर्मका सिद्धान्त है कि सुख निवृत्तिसे ही मिल सकता है प्रवृत्तिसे नहीं। इसी लिए जैनाचार्योंने मुक्त आत्माको परम सुखी कहा है। किन्तु वह मोक्ष सुख हर एकको प्राप्त नहीं हो सकता। संसारमें यदि कोई कठिन कार्य है तो वह यही है कि अपनी आत्माको कर्मों या पाप पुण्यसे पृथक् कर मुक्त करना। यही कारण है कि चारों पुरुषार्थोंमें मोक्ष पुरुषार्थको परम पुरुषार्थ माना है। इस मोक्षका कारण जैनाचार्योंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंका होना ही मोक्षका मार्ग या मोक्षकी प्राप्तिका उपाय कहा है।

सम्यग्दर्शन—जो पदार्थ यथार्थमें जैसा है, उसको वैसा ही मानना अर्थात् 'यह ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है' इस प्रकार दृढ़ विश्वास (श्रद्धान)-रूप जीवके परिणाम (भाव)-विशेषको सम्यग्दर्शन कहते हैं। विपरीताभिनिवेशरहित जीवादि तत्त्वोंका श्रद्धान (दृढ़ विश्वास) ही सम्यग्दर्शन है। अभिनिवेश अभिप्रायको कहते हैं। जैसा तत्त्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है, वैसा अभिप्राय न हो कर अन्यथा अभिप्रायका होना विपरीताभिनिवेश कहलाता है। तत्त्वार्थश्रद्धानका प्रयोजन सिर्फ इतना ही नहीं है कि उन तत्त्वोंका निश्चयमात्र कर लेना। उसका अभिप्राय इस प्रकार है—जीव और अजीवको भली भांति पहचान कर अपनेको और परको यथार्थ (ज्योंका त्यों) पहचान लेना, आस्रवको पहचान कर उसे हेय समझना, बन्धको जान कर उसे अहितकर मानना, संवरको पहचान कर उसे उपादेय समझना, निर्जराको पहचान कर उसे हितका कारण मानना और मोक्षका स्वरूप समझ उसे परम हितकर समझना। ऐसे अभिप्रायको सम्यग्दर्शन कहते हैं। इससे विपरीत अभिप्रायको विपरीताभिनिवेश समझना चाहिये। सम्यग्दर्शन होनेके बाद विपरीताभिनिवेशका अभाव हो जाता है; इसीलिए तत्त्वार्थश्रद्धान या सम्यग्दर्शनको विपरीताभिनिवेश-रहित कहा गया है।

जीव और अजीव आदिका नामादि मालूम हो चाहे न हो उनके स्वरूपको यथार्थ पहचान कर श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन सामान्यतः तत्त्वोंका स्वरूप जान कर उनका श्रद्धान करनेसे भी होता है और विशेषरूपसे तत्त्वोंको पहचान कर उनका श्रद्धान करनेसे भी। जैसे तुच्छज्ञानी पशु भी सम्यग्दृष्टि हैं, किन्तु उन्हें जीवादि तत्त्वोंके नाम नहीं मालूम। सामान्यतः स्वरूप पहचान कर श्रद्धान करते हैं अर्थात् वे अपनी आत्माको और शरीरादि जड़ पदार्थोंको भिन्न भिन्न समझते हैं और यही उनका सम्यग्दर्शन है। इसी प्रकार, जो बहुत विद्वान् है समस्त आगमको जानता है और जीवादि पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको जान कर उनमें श्रद्धा करता है, उसके भी सम्यग्दर्शन है। परन्तु जो समस्त शास्त्रादिमें पारङ्गत हो कर भी तत्त्वस्वरूपको यथार्थरूपसे पहचान कर उनमें श्रद्धा नहीं करते, उनके सम्यग्दर्शन नहीं होता अर्थात् वे मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं।

जिसको प्रकृत अपनी या आत्माका श्रद्धान (विश्वास) होगा, उसको समस्त तत्त्वका भी श्रद्धान अवश्य होगा। इसी तरह जिसको यथार्थ रूपसे समस्त तत्त्वोंका श्रद्धान होगा उसे अपनी या आत्माका भी श्रद्धान अवश्य होगा। ऐसा परस्पर अविनाभावी सम्बन्ध होनेके कारण स्वपरके अथवा आत्माके यथार्थ श्रद्धानको भी सम्यग्दर्शन कह सकते हैं। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि सामान्यतः आत्माका ज्ञान होनेसे ही सम्यग्दर्शन हो जायगा प्रत्युत ऐसा समझना चाहिये कि स्वपरका श्रद्धान होते ही आत्मासे भिन्न कर्मोंका ज्ञान होगा और कर्मोंके सम्बन्धसे उनके आनेके द्वारस्वरूप आस्रवादिका ज्ञान होगा एवं उनके बाद निर्जराका भी ज्ञान होगा और उनके सम्बन्धसे मोक्षका भी श्रद्धान होगा। इस तरह सातों तत्त्वोंका एक दूसरेके साथ सम्बन्ध है इस लिए आत्माका यथार्थ श्रद्धान होनेसे सबका श्रद्धान हो जाता है।

सम्यग्दर्शनयुक्त व्यक्तिका श्रद्धान निम्न प्रकार होता है—

धर्म—जो जीवोंको संसारके दुःखोंसे छुड़ा कर उत्तम अविनश्वर सुखको देता है वही धर्म है। वह

धर्म सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र-रूप है। देव—रागद्वेषरहित वीतराग, सर्वज्ञ (भूत, भविष्य और वर्तमानका ज्ञाता) और आगमका ईश्वर (सबको हितका उपदेश देनेवाला) ही यथार्थ देव है वही आप्त है, वही ईश्वर है, वही परमात्मा है। देव वही है जिसके क्षुधा, तृषा, बुढ़ापा, रोग जन्म, मरण, भय, गर्व, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता मद अरति, खेद, स्वेद, निद्रा और आश्चर्य न हो। देव वही है जो उत्कृष्ट ज्योतियुक्त (केवलज्ञानयुक्त) हो, रागरहित हो, कर्म-मल (चार घातिया-कर्म) रहित हो कृतकृत्य हो, सर्वज्ञ हो, आदि-मध्य-अनन्त रहित हो और समस्त जीवोंका हितकारी हो। आगम वा शास्त्र—शास्त्र वही है जो सर्वज्ञ, वीतराग और हितोपदेशी आप्तद्वारा कहा गया हो, प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणोंसे विरोध रहित हो, वस्तु स्वरूपका उपदेश करनेवाला हो सब जीवोंका हितकारक हो, मिथ्यामार्गका खण्डन करनेवाला हो और वादी प्रतिवादी द्वारा जिसका कभी भी खण्डन न हो सके। गुरु—गुरु वही है जो विषयोंकी आशाके वशीभूत न हो, आरम्भ (हिंसाजनित कार्य)-रहित हो चौबीस प्रकारके परिग्रहोंका त्यागी हो और ज्ञान ध्यान एवं तपमें लीन हो।

इस सम्यग्दर्शनके आठ अङ्ग हैं—(१) निःशङ्कित, (२) निःकांक्षित, (३) निर्विचिकित्सित, (४) अमूढ़-दृष्टित्व, (५) उपबृंहण, (६) स्थितिकरण, (७) वात्सल्य और (८) प्रभावना। जिस प्रकार मनुष्यशरीरके हस्त पादादि अङ्ग हैं, उसी प्रकार ये सम्यग्दर्शनके अङ्ग हैं। जिस प्रकार मनुष्यके शरीरमें किसी अङ्गका अभाव हो, तो भी वह मनुष्यशरीर ही कहलाता है, उसी प्रकार यदि किसी सम्यग्दर्शन-युक्त आत्माके सम्यक्त्वके किसी अङ्गकी कमी हो, तो भी वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है। किन्तु उस अङ्गके बिना वह शरीर असुन्दर और अप्रशंसनीय अवश्य होता है। इसी प्रकार सम्यक्त्वमें भी समझना चाहिये। इसलिए अष्टाङ्गविशिष्ट सम्यग्दर्शन ही प्रशस्त है और पूर्ण सम्यक्त्व कहलाता है अर्थात् आठ अङ्गोंके बिना सम्यग्दर्शन अपूर्ण होता है।

१म निःशङ्कित अङ्ग—वस्तुका स्वरूप यही है, इस प्रकार ही है, अन्य प्रकार नहीं है, इस प्रकार जैन मार्गमें खड्गके पानी (तलवारकी आब)के समान निश्चल श्रद्धाको निःशङ्कितांग कहते हैं। इस अङ्गके होनेसे सर्वज्ञकथित श्रुतमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहता। जैनशास्त्रोंमें इस अङ्गको पूर्ण रीतिसे पालनेवाले अञ्जनचोरका नाम प्रसिद्ध है।

२य निःकांक्षित अङ्ग—जो कर्मके वश है, अन्त सहित है, जिसका उदय दुःखोंसे युक्त है और जो पापका बीजभूत है, ऐसे सांसारिक सुखमें अनित्यरूप श्रद्धा रखना अर्थात् सांसारिक सुखकी वाञ्छा नहीं करना ही निःकांक्षित नामक अङ्ग है। जैनशास्त्रोंमें इस अङ्गको पूर्णतया पालनेवाली अनन्तमतीका उल्लेख मिलता है। ३य निर्विचिकित्सित-अङ्ग—धर्मात्माओंके स्वभावसे अपवित्र किन्तु रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र)-से पवित्र शरीरमें ग्लानि न कर उनके गुणोंमें प्रीति करनेको निर्विचिकित्सितअङ्ग कहते हैं। इस अङ्गका पालक उद्दायन राजा प्रसिद्ध हुआ है। ४र्थ अमूढ़-दृष्टिअङ्ग—दुःखोंके मार्गरूप कुमार्ग वा मिथ्यामतमें एवं उसके अनुयायी मिथ्यादृष्टियोंमें मनसे सहमत नहीं होना वचनसे उनकी प्रशंसा नहीं करना और शरीरसे उनकी सहायता नहीं करना, यह अमूढ़ दृष्टिअङ्गका कार्य है। इस अङ्गके पालनेमें रेवती रानीने प्रसिद्धि पाई है। ५म उपगूहन अङ्ग—जो अपने आप ही पवित्र है, ऐसे जैनधर्मकी अज्ञानी एवं असमर्थ व्यक्तियोंके आश्रयसे उत्पन्न हुई निन्दाको दूर करनेका नाम है उपगूहनाङ्ग। इस अङ्गके पालनेमें जिनेन्द्रभक्त सेठने प्रसिद्ध पाई है। ६ष्ठ स्थितिकरण अङ्ग—सम्यग्दर्शनसे वा सम्यक्चारित्रसे डिगते हुए व्यक्तिको धर्ममें स्थिर कर देना, स्थितिकरणअङ्ग कहलाता है। इसके पालनेमें श्रेणिकराजाके पुत्र वारिषेणने ख्याति लाभ की है। ७म वात्सल्य अङ्ग—अपने सहधर्मी व्यक्तियोंसे सद्भाव रखना, निष्कपटताका व्यवहार करना और यथायोग्य उनका आदरसत्कार करना, वात्सल्याङ्ग कहलाता है। इस अङ्गके पालक विष्णुकुमार मुनि प्रसिद्ध हुए हैं। ८म प्रभावना अङ्ग—संसारमें चारों ओर अज्ञान अन्धकार फैला हुआ है; लोग नहीं जानते कि सुमार्ग

हीनता है और कुशास्त्रमें हीनता है। वस्तुके यथार्थ स्वरूपसे वे सर्वथा अपरिचित हैं। इस प्रकारका विचार करके जिस प्रकारसे बने उस प्रकारसे अज्ञानान्धकारको दूर करनेके अभिप्रायसे जिनमार्गका माहात्म्य या प्रभाव समस्त मतावलम्बियोंमें प्रगट कर देना, इसको प्रभावना अङ्ग कहते हैं। इसके पालनेमें भी उपर्युक्त विष्णुकुमार मुनिने प्रसिद्धि प्राप्त की है।

जैसे अक्षरहीन मन्त्र विषकी वेदनाको नष्ट नहीं करता उसी प्रकार अङ्गरहित सम्यग्दर्शन भी संसारके जन्मजनित दुःखोंको दूर नहीं कर सकता। इसलिए अष्टाङ्गयुक्त सम्यग्दर्शन ही प्रशस्त है।

जैनशास्त्रोंमें सम्यग्दर्शनयुक्त व्यक्तिको उपर्युक्त आठ अङ्गोंका पालन करते हुए निम्नलिखित तीन मूढ़ता और आठ मदोंका भी सर्वथा परित्याग कर देनेका विधान है। तीन मूढ़ता—१ लोकमूढ़ता—धर्म समझ कर गङ्गा, यमुना आदि नदियोंमें तथा समुद्रमें स्नान करना, बालू और पत्थरोंका ढेर करना, पर्वतसे गिरना और अग्निमें जलना (जैसे अग्निके योगसे सती होना आदि), यह सब लोकमूढ़ता है (१)। २ देवमूढ़ता—आशावान् हो कर वरकी इच्छासे रागद्वेषयुक्त मलिन देवताओंकी जो उपासना की जाती है, उसे देवमूढ़ता कहते हैं। ३ पाखण्डि मूढ़ता—परिग्रह, आरम्भ और हिंसायुक्त संसारमें भ्रमण करनेवाले पाखण्डी साधु या तपस्वियोंका आदर सत्कार और भक्ति पूजादि करना, पाखण्डि मूढ़ता वा गुरुमूढ़ता कहलाती है।

आठ मद—१ विद्याका मद, २ प्रतिष्ठाका मद, ३ कुलका मद, ४ जातिका मद, ५ शक्तिका मद, ६ सम्पत्तिका मद, ७ तपका मद और शरीरका मद। सम्यग्दृष्टि इन आठ मदोंका परित्याग करता है। इसके सिवा जो शुद्ध सम्यग्दृष्टि होते हैं, वे भय, आशा, प्रीति और लोभसे कुदेव, कुशास्त्र और कुलिङ्गियों (पाखण्डी साधुओं) को प्रणाम और विनय भी नहीं करते हैं (२)।

इस सम्यग्दर्शनके बिना हुए सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं होता। सम्यग्दर्शनके बिना जो ज्ञान होता है वह मिथ्याज्ञान कहलाता है और व्रतादि कुचारित्र कहलाते हैं। जैनशास्त्रोंमें सम्यग्दर्शनकी बहुत प्रशंसा की गई है, किन्तु बाहुल्य भयसे हम यहां उल्लेख नहीं करते।

(२) सम्यग्ज्ञान—जो ज्ञान वस्तुके स्वरूपको न्यूनता-रहित अधिकतारहित और विपरीततारहित जैसाका तैसा सन्देहरहित जानता है, उसको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। सम्यग्ज्ञानयुक्त व्यक्ति प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार प्रकारके श्रुतको भली भांति जानता है। यह सम्यग्दर्शनपूर्वक ही होता है। सम्यग्दर्शनपूर्वक जैन-श्रुतका ज्ञान होना ही सम्यग्ज्ञान है। इसके भेद प्रभेद आदि पहले श्रुतके वर्णनमें कह चुके हैं। और भी आगे चल कर "प्रमाण और नय" शीर्षकमें कुछ कहा जायगा

(३) सम्यक्चारित्र—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान-पूर्वक जो हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पांचों पापप्रणालियोंसे विरक्त होना, सम्यक्चारित्र कहलाता है। इसके साधारणतः दो भेद हैं, १ सकलचारित्र और २ विकलचारित्र। समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे विरक्त मुनियोंके चारित्रको सकलचारित्र और गृह आदि परिग्रह सहित गृहस्थोंके अणुव्रतादि पालन करनेको विकलचारित्र कहते हैं। (जैनाचार देखो)

जैनन्याय।

प्रमाण नय और निक्षेप।—जिससे पदार्थके सर्वदेश (समस्त)का ज्ञान हो अथवा जो ज्ञान सच्चा हो वह प्रमाण कहलाता है। जिससे पदार्थके एकदेश (एकांश) का ज्ञान हो, उसे नय कहते हैं और युक्तिसे संयुक्त मार्गमें होते हुए कार्यके वशसे नाम स्थापना, द्रव्य और भावमें पदार्थके स्थापनको निक्षेप कहते हैं। इनसे जीवादि पदार्थोंका ज्ञान होता है। अब यथाक्रमसे इनका वर्णन किया जाता है।

पदार्थोंका निश्चय जब उनकी परीक्षा प्रमाण द्वारा की जाती है। जैन सिद्धान्तानुसार प्रमाणकी व्यवस्था इस प्रकार है—

सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं यथार्थ ज्ञानका नाम ही प्रमाण

---

(१) "आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥" (र० श्रा०)

(२) "भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥" ३० ॥ (र० श्रा०)

है। वस्तुका निर्णय करनेवाला ज्ञान है, विना ज्ञानके जगत्‌में किसी पदार्थका कभी किसी शक्ति द्वारा निर्णय नहीं किया जा सका कारण कि जड़ पदार्थोंमें तो स्वयं निर्णायक शक्ति नहीं है, वे सभी जानने योग्य हैं, वे दूसरोंका परिज्ञान करानेकी योग्यता नहीं रखते, इसी लिये वे ज्ञेय अथवा प्रकाश्य मात्र कहे जाते हैं, इसके विपरीत ज्ञानमें ज्ञायकता है अर्थात् वह पदार्थोंका बोध कराता है, ज्ञानका कार्य ही यही है कि वह ज्ञेय-पदार्थोंको जाने। एक बात यह भी है कि बिना वस्तुका स्वरूप समझे उससे कोई हानि लाभका बोध नहीं कर सका। विना हानि लाभका बोध किये छोड़ने योग्य पदार्थोंको छोड़ा भी नहीं जा सका एवं ग्राह्य पदार्थोंको ग्रहण भी नहीं किया जा सका, पदार्थगत गुण दोषोंका परिज्ञान होने पर ही उसे ग्रहण किया जा सका है एवं छोड़ा जा सका है इसलिये पदार्थ एवं तद्गत गुणदोषोंका बोध करा कर उसमें हेय उपादेय रूप बुद्धि करानेवाला ज्ञान ही प्रमाण हो सका है। अन्य दर्शनकारोंने इंद्रिय एवं सन्निकर्ष आदिको ही प्रमाण माना है। जैन उन्हें प्रमाण माननेमें यह आपत्ति देते हैं कि सन्निकर्ष - इन्द्रिय पदार्थका सम्बन्ध हो यदि प्रमाण माना जायगा तो घट पटादि पदार्थ भी प्रमाणकोटिमें आने चाहिये, जिस प्रकार घट पटादि जड़ होनेसे प्रमाण नहीं कहे जा सके, उसी प्रकार इन्द्रिय पदार्थ सम्बन्ध रूप सन्निकर्ष भी जड होनेसे प्रमाण नहीं कहा जा सका। क्योंकि सम्बन्ध स्वयं बोध रूप नहीं है किन्तु बोध संबंधका उत्तर काय है, इसलिए वही प्रमाण है। दूसरे इन्द्रिय पदार्थ सम्बन्ध होने पर भी सीपमें चांदीका भान तथा पीतलमें सोनेका भान आदि होता है, सन्निकर्ष तो वहां उपस्थित नहीं है इसलिये इन मिथ्या ज्ञानों को भी प्रमाण मानना पड़ेगा। तीसरे ईश्वरके इन्द्रियोंका तो अभाव है इसलिये उसके सन्निकर्ष कैसे बनेगा विना उसके हुए उसका ज्ञान प्रमाण रूप नहीं कहा जा सका, यदि वहां भी सन्निकर्ष माना जायगा तो ईश्वरीय बोध सर्वज्ञ न हो कर छद्मस्थ ठहरेगा। इत्यादि अनेक कारणोंसे जैन मतानुसार ज्ञानको ही प्रमाण माना गया है।

ज्ञानको प्रमाण मानता हुआ भी जैन दर्शन सामान्य ज्ञानको प्रमाण नहीं मानता, किन्तु, सम्यग्ज्ञान सत्य-ज्ञानको ही प्रमाण मानता है, यदि ज्ञानमात्रको प्रमाण माना जाय तो संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय इन मिथ्या ज्ञानोंमें भी प्रमाणता आ सकी है। उपर्युक्त तीनों ही ज्ञान पदार्थोंका ठीक ठीक बोध नहीं कराते इसलिये इन्हें मिथ्याज्ञान कहा जाता है। संशयज्ञान वहां होता है जहां दो कोटियोंमें समान ज्ञान उत्पन्न होता है, जैसे रात्रिमें न तो पुरुषके हाथ पैर नाक मुंह आदिका ही स्पष्ट ज्ञान होता है और न वृक्षकी शाखा गुच्छे आदिका ही होता है, वैसी अवस्थामें एक लम्बाय-मान स्थाणु - वृक्षके ठूंठको देख कर किसी पथिकको यह बोध होना कि यह वृक्ष है या पुरुष है, संशय ज्ञान कहा जाता है। इस संशयज्ञानमें न तो पुरुषका ही निश्चय हो सका और न वृक्षका ही हुआ, दोनों ज्ञान समान रूपसे हुए हैं, इसलिये पदार्थोंका निर्णय न होनेसे यह संशयज्ञान मिथ्या है। विपर्ययज्ञानमें एक विपरीत कोटिका निश्चय हो जाता है। जैसे सीपमें किसी पुरुषको चांदीका निश्चय हो जाना, सीपमें चांदीका निश्चय एक कोटि ज्ञान है परन्तु वह विपरीत है इस-लिये वह भी मिथ्याज्ञान है। अनध्यवसायमें भी पदार्थ-का निर्णय नहीं होता, किन्तु अव्यक्त सदृश अनिश्च-यात्मक बोध होता है। जैसे मार्गमें गमन करते हुए किसी पुरुषके किसी वस्तुका स्पर्श होने पर उसे उसका निर्णय नहीं होता किन्तु कुछ लगा है ऐसा मलिन बोध होता है, ये ही अनध्यवसाय ज्ञान कहा जाता है। यह भी पदार्थ निर्णायक न होनेसे मिथ्याज्ञान है। इन तीनों ज्ञानोंका समावेश प्रमाणज्ञानमें नहीं होता। इसीलिये प्रमाणज्ञान सम्यग्ज्ञान कहा गया है। ज्ञानमें विना सम्यक् विशेषण दिये मिथ्याज्ञानोंका परिहार नहीं हो सका। कुछ लोग ज्ञानको पर निश्चायक मानते हैं उसे स्वनिश्चायक नहीं मानते हैं। परन्तु यह बात प्रसिद्ध है कि जो स्वनिश्चायक नहीं होता है वह पर-निश्चायक भी नहीं होता है। जैसे घट पटादिक अपना प्रकाश नहीं करते हैं इसलिये वे परका भी प्रकाश करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। सूर्य एवं दीपक अपना

प्रकाश करते हैं इसलिये वे परका भी प्रकाश करती हैं। इसी प्रकार ज्ञान भी अपना प्रकाश करता हुआ ही दूसरे पदार्थोंका प्रकाश करता है। इस प्रकार अपना और परका प्रकाश करनेवाला निश्चयात्मक ज्ञान ही प्रमाण है। इसीसे वस्तुओंका निर्णय एवं परीक्षा होती है, इसीसे हेयपदार्थका त्याग एवं उपादेयका ग्रहण होता है।

प्रमाण वस्तुको सर्वांश रूपसे जानता है। अर्थात् जितने धर्म अथवा गुण वस्तुमें पाये जाते हैं उन सबोंको एक साथ प्रमाणज्ञान जान लेता है, इसीलिए प्रमाणका दूसरा लक्षण गुणगुणिनिरूपणकी दृष्टिसे इस प्रकार है—

"एक गुणमुखेनाशेषवस्तु प्रतिपादकं प्रमाणम्।" एक गुणके द्वारा समस्त वस्तुका निरूपण करना प्रमाणका विषय है। जैसे जीव कहनेसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सुख वीर्य, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, आदि समस्त गुणोंके अखण्ड पिण्ड रूप जीवपदार्थका बोध हो जाता है। यद्यपि जीव कहनेसे केवल जीवन या जीवत्व गुणका ही बोध होना चाहिये। परन्तु जीव कहनेसे अनन्तगुणगामी जीवात्माका पूर्ण बोध हो जाता है। इसका कारण यह है कि एक पदार्थके जितने भी गुण होते हैं वे सब तादात्म्य रूप सम्बन्धसे अभिन्न रूप रहते हैं, जैसे एक घड़ेमें जहां रूप है वहां रस भी है गन्ध भी है, स्पर्श भी है तथा घड़ेमें सर्वत्र ही रूप रस गन्ध स्पर्श है, ऐसा नहीं हो सकता कि कभी घड़ेका कोई रंग तो न हो और रस गन्ध स्पर्श उसमें पाया जाय, अथवा रंग गन्ध रस तो हो परन्तु स्पर्श उसमें न पाया जाय, इससे यह बात भली भांति सिद्ध है कि वस्तु अनन्तगुणोंका अखण्ड पिण्ड है और वे गुण परस्पर सभी अभिन्न हैं। इसी अनन्त गुणोंकी अभिन्नताको तादात्म्यसम्बन्ध कहा जाता है। तादात्म्य सम्बन्ध होनेसे जहां एक गुणका कथन अथवा ग्रहण होता है वहां उससे अविनाभावी समस्त गुणोंका ग्रहण या कथन हो जाता है। इसीलिये जीवको जीव शब्दसे भी कहा जाता है, उसे द्रष्टा शब्दसे चेतन शब्दसे ज्ञाता शब्दसे आदि अनेक शब्दोंसे कहा जाता है यद्यपि द्रष्टा कहनेसे केवल दर्शनशक्ति विशिष्ट-का ही ग्रहण होना चाहिये, परन्तु द्रष्टा कहनेसे समस्त गुणधारी जीवका ग्रहण हो जाता है। इस कथनसे सिद्ध होता है कि प्रमाणवस्तुके सर्वांशोंको विषय करता है।

प्रमाण दो कोटियोंमें बंटा हुआ है (१) प्रत्यक्ष (२) परोक्ष। अर्थात् वस्तुका परिज्ञान दो रीतिसे होता है एक तो प्रत्यक्ष प्रमाण—साक्षात् ज्ञान द्वारा दूसरे परोक्ष प्रमाण—दूसरेकी सहायता द्वारा।

जो ज्ञान बिना किसीकी सहायताके साक्षात् आत्मासे पदार्थोंको जानता है वह प्रत्यक्षज्ञान कहा जाता है। ऐसा ज्ञान एक तो केवलज्ञानी सर्वज्ञ भगवान्‌के होता है, जो कि समस्त आवरणकर्मोंके दूर हो जाने पर समस्त लोकालोकवर्ती पदार्थोंको एक साथ एक समयमें साक्षात् जाननेवाला होता है। यह ज्ञान केवलज्ञानके नामसे प्रख्यात है। दूसरा उन कषाय वासनाविरहित निष्परिग्रही (छठे गुणस्थानवर्ती) नग्न दिगम्बर मुनियोंके होता है जो कि दूसरेके मनमें ठहरी हुई बातको प्रत्यक्ष रूपसे साक्षात् जान लेते हैं। हम लोग दूसरेके मनकी बातको अनुमान आदिसे किसी संकेतसे अथवा अभिप्राय विशेषके मालूम करनेसे जान जाते हैं यह जानना उस बातका प्रत्यक्ष नहीं कहा जा सकता, परन्तु मुनिगण उस सूक्ष्म बातका प्रत्यक्ष कर लेते हैं उसे मनःपर्यय-ज्ञानके नामसे कहा जाता है। तीसरा उसी प्रत्यक्षका भेद अवधिज्ञानके नामसे लोकमें प्रगट है, यह ज्ञान योगियोंके सिवा एक सम्यग्ज्ञानधारी पुरुष, देव, नारकी और तिर्यञ्चके भी होता है। तिर्यंच पुरुषोंमें सबोंके नहीं होता किन्तु विशेष काल एवं विशेष क्षेत्र वर्ती किन्हीं किन्हीं पुरुष तिर्यंचोंके होता है। यह ज्ञान पुद्गलके ही स्थूल सूक्ष्म भेदोंको योग्यतानुसार जानता है।

जो दूसरेकी सहायतासे ज्ञान होता है वह परोक्ष कहा जाता है, लोकमें इन्द्रियोंसे होनेवाले ज्ञानको प्रत्यक्ष रूपमें व्यवहृत किया जाता है। जैसे मैंने अपनी आंखोंसे साक्षात् देखा है, मैंने अपने कानोंसे साक्षात् सुना है, मैंने छू कर देखा है आदि इन्द्रियोंसे साक्षात् देखनेको लोकमें प्रत्यक्ष माना जाता है इसी लिये इसे व्यवहार दृष्टिसे सव्यवहार प्रत्यक्षके नामसे शास्त्रकार बतलाते हैं। वास्तवमें इन्द्रियजनित ज्ञान

बैठा हुआ बालक श्याम वर्ण होना चाहिये क्योंकि वह मैत्रका पुत्र है, जो जो मैत्रपुत्र होते हैं वे सब श्यामवर्ण होते हैं जैसे कि उपस्थित ४ पुत्र, जो मैत्रपुत्र नहीं होते वे श्यामवर्ण भी नहीं होते जैसे रैवतकपुत्र। रैवतक पुत्र सभी गौरवर्ण देख कर और मैत्रपुत्र सभी श्यामवर्ण देख कर वैतने अन्वय व्यतिरेक व्याप्ति द्वारा गर्भस्थ मैत्रपुत्रको श्यामवर्ण सिद्ध करनेके लिये मैत्रपुत्रत्व हेतुका प्रयोग किया है, यह मैत्रपुत्रत्वहेतु गर्भस्थ बालक रूप पक्षमें रहता ही है, सपक्ष जो परिदृष्ट मैत्रके बालक हैं उनमें भी मैत्रपुत्रत्व हेतु रहता है, विपक्ष रैवतिकके पुत्रोंमें मैत्रपुत्रत्व हेतु नहीं रहता है इस लिये यह हेतु पक्षवृत्ति सपक्षवृत्ति और विपक्षव्यावृत्ति स्वरूप होने पर भी सद्धेतु नहीं है, कारण कि गर्भस्थ बालक "श्यामवर्ण ही होगा" यह बात निश्चयपूर्वक सिद्ध नहीं की जा सकती, सम्भव है वह बालक गौर वर्ण होय, इसलिए सदेहास्पद होनेसे अनैकान्तिक हेत्वाभास है। फिर भी इसे नैयायिक आदि सिद्धान्तकारोंने किस प्रकार सद्धेतु मान लिया है सो कुछ समझमें नहीं आता है।

एक बात यह भी स्मरण रखने योग्य है कि जैन दर्शनकार अनुमान हेतु द्वारा साध्यके निश्चयरूप ज्ञान हो जानेको कहते हैं इसके विपरीत अन्य दर्शनकार 'यह पर्वत अग्नि वाला होना चाहिए क्योंकि यहां धूम है' यह प्रतिज्ञारूप वाक्यप्रयोगको ही अनुमान बतलाते हैं, परन्तु वास्तवमें इस वाक्यप्रयोगको अनुमान प्रमाण मानना युक्तियुक्त नहीं सिद्ध होता, कारण कि प्रमाण ज्ञानरूप हो हो सका है तभी उसके द्वारा वस्तु सिद्ध हो सकती है। वाक्यप्रयोग जड़ स्वरूप है उससे वस्तु सिद्धि नहीं हो सकी, हां! वाक्यप्रयोग ज्ञानरूप अनुमान प्रयोगमें साधक अवश्य है।

यह साध्यविज्ञानस्वरूपअनुमान दो कोटियोंमें विभक्त है एक स्वार्थानुमान दूसरा परार्थानुमान। जहां स्वयं निश्चित अविनाभावी साधनसे साध्यका ज्ञान कर लिया जाता है वहां स्वार्थानुमान कहलाता है, और जहां दूसरे पुरुषकी प्रतिज्ञा और हेतुका प्रयोग कर साधनसे साध्यका बोध कराया जाता है वहां परार्थानुमान कहलाता है। कारणहेतु, कार्यहेतु, पूर्वचरहेतु, उत्तरचरहेतु, सहचरहेतु आदि अविनाभावी हेतुओंके भेदसे अनुमानके अनेक भेद हैं। जो न्यायदीपिका, प्रमेयरत्नमाला, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री आदि जैनग्रन्थोंसे विदित होते हैं।

जैनियोंके यहां पांचवां परोक्ष प्रमाण आगमप्रमाण है। आगमका लक्षण वे लोग इस प्रकार कहते हैं—"आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः" ३९ (परीक्षामुख:) अर्थात् जिसमें आप्त वचन कारण हों ऐसा पदार्थ ज्ञान आगम कहा जाता है। जैनियोंने ज्ञानको आगम माना है वचन और शास्त्रोंको जो आगमता है वह उनके यहां उपचरित है, वचन और शास्त्र उस समीचीनज्ञानमें कारण पड़ते हैं इसलिए उपचारसे उन्हें भी आगम कहा जाता है। वास्तवमें तो वचनजनित बोध होता है उसीका नाम आगम है। आगम प्रत्येक व्यक्तिके वचनसे होनेवाले ज्ञानको नहीं कहते हैं किन्तु सत्यवक्ताके वचनोंसे होनेवाले ज्ञानको ही आगम कहते हैं। क्योंकि आगमके लक्षणमें आप्त वचनको कारण माना गया है, आप्त सत्यवक्ताका नाम है। इसलिए सत्यवक्ताके वचनोंको सुन कर जो बोध होता है वही आगम है। सर्वश्रेष्ठ सत्यवक्ता जैनियोंके यहां अर्हन्त हैं, अर्हन्त उन्हें कहा जाता है जो आत्मासे—आत्मगुणोंको घात करने वाले कर्मोंको सर्वथा नष्ट कर चुके हों, सर्वथा राग द्वेषका नाश कर वीतराग बन चुके हों, एवं जगत्के समस्त चर-अचर पदार्थोंको साक्षात् एक समयमें प्रत्यक्ष रूपसे देखते और जानते हों, वे अर्हन्त जैनियोंके यहां जीवन्मुक्त एवं सकल परमात्माके नामसे कहे जाते हैं, उनकी जो दिव्यवाणी खिरती है वह बिना इच्छाके जीवोंके पुण्योदयसे सुतरां खिरती है, अर्हन्त सर्वथा शुद्ध हो चुके हैं, इसलिये उनके इच्छा भी नष्ट हो चुकी है, वह दिव्यवाणी सत्य इसलिये कही जाती है कि एक तो समस्त पदार्थोंके ज्ञानसे उत्पन्न होती है, दूसरे—उसमें रागद्वेष कारण नहीं है। रागद्वेष अल्पज्ञता ये दो ही कारण झूठ बोलनेमें हो सकते हैं, अर्हन्तके दोनों बातोंका अभाव है इसलिये उनका वचन सत्य रूप है उससे जो बोध होता है वही आगम है। पश्चात्

अब यदि व्याख्यानुरूप जो गणधर आचार्य आदिके वचन हैं उनके होनेवाला बोध भी आगममें परिगणित है। जैनाचार्योंके बनाये हुए शास्त्र भी आगम हैं कारण कि उनमें भी उन्हीं अर्हन्तदेवका परम्परा कथन है।

जैनसिद्धान्त आगमको प्रमाणतामें यह हेतु देता है कि वह पूर्वापर अविरुद्ध है, उसके कथनमें आगे पीछे कहीं भी विरोध नहीं है। विरोध नहीं होनेका कारण भी यह है कि उसका कथन युक्ति और शास्त्रसे अविरोधी है, कोई भी प्रबल युक्ति एवं प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण उस आगममें बाधित नहीं होते। बाधित न होनेका भी प्रमाण यह है, कि जो कुछ भी पदार्थ व्यवस्था जैनशास्त्र बतलाता है—जीव कर्म सम्बन्ध जीवों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का विवेचन द्रव्यनिरूपण स्याद्वादसिद्धान्त, पुद्गलद्रव्य आदि द्रव्योंका परिणाम आदि सभी विवेचनाएं जैसी आगममें प्रतिपादित की गई हैं वे युक्तिसे प्रमाणसे, एवं स्वानुभवसे उसी प्रकार पायी जाती हैं। इसीलिए जैनागम प्रमाण है। जब जैनागममें प्रमाणता सिद्ध हो जाती है तब जैनागम कथित समस्त पदार्थोंमें भी प्रमाणता सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार परोक्ष प्रमाणके पांच भेद जो ऊपर सिद्ध कर दिये गये हैं, उन्हींमें उपमान, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, शब्द, प्रतिपत्ति अभाव आदि प्रमाण गर्भित हो जाते हैं। उपमान प्रमाण जैनियोंके यहां प्रत्यभिज्ञानमें गर्भित है। ऐतिह्य स्मृतिमें गर्भित है अर्थापत्ति अनुमानमें गर्भित है, शब्द आगम और अनुमानमें गर्भित है, प्रतिपत्ति ज्ञानात्मक होनेसे प्रमाणमें सुतरां अन्तर्भूत है। जैनियोंमें अभाव प्रमाण इसलिये नहीं माना है कि वे किसी पदार्थका नाश नहीं मानते, पदार्थ सभी सदासे सत्स्वरूप हैं केवल एक पर्याय अवस्थाको छोड़ कर दूसरी अवस्था धारण करते रहते हैं। उनके यहां पूर्व पर्यायका नाश उत्तर पर्याय रूप है। जैसे घटका नाश कपालस्वरूप एवं लकड़ीका जलना अग्नि तथा भस्मस्वरूप है। इसलिये जैनसिद्धान्तमें अभावको स्वतन्त्र प्रमाण स्वीकार नहीं किया है।

स्मृति प्रत्यभिज्ञान, तर्क और स्वार्थानुमान ये चारों मतिज्ञानके अन्तर्गत हैं, परार्थानुमान और आगम श्रुतज्ञानमें गर्भित हैं। इसीलिये मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण कहे जाते हैं, अवधि मनःपर्यय और केवल ये तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं इसलिए उपर्युक्त पांचों ही ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष इन दो भेदोंमें बंटे हुए हैं एवं पांचों ही सम्यग्ज्ञान होनेसे प्रमाण हैं अब इनके भेद प्रभेदोंका वर्णन किया जाता है—

प्रमाण—प्रमाणके साधारणतः दो भेद हैं, १ प्रत्यक्ष और २ परोक्ष। आत्मा जिस ज्ञानके द्वारा इन्द्रिय आदि अन्य पदार्थोंकी सहायताके बिना ही पदार्थको अत्यन्त निर्मल (स्पष्ट) जान ले उसे प्रत्यक्षप्रमाण कहते हैं। जो चक्षु आदि इन्द्रियों तथा प्रकाशादिसे पदार्थको एक देश (अस्पष्ट) निर्मल जाने उसे परोक्षप्रमाण* कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण भी सांव्यवहारिक और पारमार्थिकके भेदसे दो प्रकारका है। जो इन्द्रिय और मनकी सहायतासे पदार्थको एकदेश जाने उसे सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष और जो बिना किसीको सहायताके पदार्थको स्पष्ट जाने उसे पारमार्थिकप्रत्यक्ष कहते हैं। पारमार्थिकप्रत्यक्षके दो भेद हैं एक विकल पारमार्थिकप्रत्यक्ष और दूसरा सकलपारमार्थिकप्रत्यक्ष। जो रूपी पदार्थोंको बिना किसी इन्द्रियकी सहायताके स्पष्ट जाने उसे विकलपारमार्थिकप्रत्यक्ष और जो भूत भविष्यत्-वर्तमानके रूपी एवं अमूर्तिक लोकालोकके सम्पूर्ण पदार्थोंको स्पष्ट जाने, उसे सकलपारमार्थिकप्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रमाण पांच हैं १ मति, २ श्रुत ३ अवधि मनःपर्यय और केवल। इनमेंसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञानको परोक्षप्रमाण अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानको विकल पारमार्थिक प्रत्यक्षप्रमाण और केवलज्ञानको सकलपारमार्थिकप्रत्यक्षप्रमाण कहते हैं।

१म मतिज्ञान-जो ज्ञान पांच इन्द्रियों और मनकी सहायतासे हो उसे मतिज्ञान कहते हैं। १ स्मृति, प्रत्यभिज्ञान (संज्ञा) तर्क (चिन्ता) और अनुमान (अभिनिबोध) इसीके अन्तर्गत हैं जैसा कि ऊपर कहा है। इसके चार भेद हैं। १ अवग्रह २ ईहा, ३ अवाय ४ धारणा। इन्द्रिय और पदार्थके योग्य स्थानमें (वर्तमान स्थानमें)

* इसीके एक भागको अनुमान प्रमाण भी कहते हैं।

होने पर सामान्य प्रतिभासरूप दर्शनके पीछे जो अवांतर सत्ता रहित विशेष वस्तुका ज्ञान होता है, उसे अवग्रह कहते हैं। अर्थात् किसी वस्तुकी सत्तामात्रको देखने वा जाननेको दर्शन वा दर्शनोपयोग कहते हैं और दर्शनके पश्चात् जो श्वेतकृष्णादि रूप विशेष जाननेको अवग्रह-मतिज्ञान कहते हैं। इसके बाद अर्थात् अवग्रहमति-ज्ञानके पश्चात् 'यह श्वेत वा कृष्ण क्या पदार्थ है?' इसको विशेष जाननेकी इच्छा होनेको ईहामतिज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान इतना कमजोर है कि किसी पदार्थमें ईहा हो कर छूट जाय, तो उसके विषयमें कालान्तरमें भी संशय और विस्मरण हो जाता है। ईहासे जाने हुए पदार्थमें 'यह वही है, अन्य नहीं' ऐसे दृढ़ ज्ञानको अवायमतिज्ञान कहते हैं। अवायसे जाने हुए पदार्थमें संशय नहीं होता, किन्तु विस्मरण हो जाता है। और जिस ज्ञानसे जाने हुए पदार्थको काला-न्तरमें नहीं भूले अर्थात् कालान्तरमें भी उस पदार्थमें संशय और विस्मरण न हो, उसे धारणामतिज्ञान कहते हैं।

मतिज्ञानके विषयभूत पदार्थोंके दो भेद हैं व्यक्त और अव्यक्त। व्यक्त पदार्थको अवग्रहादि चारों ही ज्ञानसे जाना जा सकता है, किन्तु अव्यक्त पदार्थका सिर्फ अवग्रहसे ही बोध होता है। व्यक्त पदार्थोंके अवग्रहको अर्थावग्रह और अव्यक्त पदार्थोंके अवग्रहको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं। अर्थावग्रह तो पांचों इन्द्रिय और मनसे होता है; किन्तु व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मनके सिवा अवशिष्ट चार इन्द्रियोंसे ही होता है। व्यक्त और अव्यक्त प्रत्येकके बारह बारह भेद हैं, यथा— बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, निःसृत, अनिःसृत, उक्त, अनुक्त, ध्रुव और अध्रुव। इन बारह प्रकारके पदार्थोंका अवग्रह ईहादिरूप ग्रहण वा ज्ञान होता है। जैसे—एक साथ बहुत अवग्रहादिरूप ग्रहण होना, बहुग्रहण है इत्यादि।

२य श्रुतज्ञान—मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थसे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थके ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे—'घट' शब्द सुननेके बाद उत्पन्न हुआ कम्बुग्रीवादि रूप घटका ज्ञान। यह श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक अर्थात् मतिज्ञान होनेके बाद ही होता है; बिना मतिज्ञान हुए श्रुतज्ञान नहीं होता। इसके मुख्यतः दो भेद हैं, एक अङ्गबाह्य और दूसरा अङ्गप्रविष्ट। श्रुतका विशेष विवरण पहले "जैन शास्त्र वा श्रुत" शीर्षकमें लिखा जा चुका है, अतः यहां नहीं लिखा गया।

उपरोक्त मति और श्रुतज्ञान दोनों परोक्ष प्रमाण कहलाते हैं।

३य अवधिज्ञान—जो ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादाको लिए हुये रूपी पदार्थको बिना किसी इन्द्रियकी सहायताके स्पष्ट जानता है, उसे अवधिज्ञान कहते हैं। इसके प्रधानतः दो भेद हैं—१ भवप्रत्यय-अवधिज्ञान और २ क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान। भव (जन्म) ही है प्रत्यय अर्थात् कारण जिसमें, ऐसे अवधिज्ञानको भवप्रत्यय कहते हैं, भवप्रत्यय नामक अवधिज्ञान देव और नारकियोंके होता है। कारण उस भव (जन्म)-में यही प्रभाव है कि, वहां कोई भी जीव जनमे, उसे अवधिज्ञान नियमसे होगा। किन्तु दूसरा क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरण और वीर्यान्तरायकर्मके क्षयोपशमसे होता है और वह क्षयो-पशम व्रत, नियम, तपश्चरण आदिसे होता है। मुनिगण जब बहुत तपस्या आदि करते हैं, तब उन्हें अवधिज्ञान प्राप्त होता है इसमें भी इतना भेद है कि सम्यग्दृष्टिके जो अवधिज्ञान होता है, उसे ही अवधिज्ञान कहते हैं और जो मिथ्यादृष्टियोंके होता है, उसे विभङ्गावधि कहते हैं। क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान मनुष्य और संज्ञी पञ्चे-न्द्रिय तिर्यञ्चोंके सिवा अन्य किसीको भी नहीं होता। इसमें भी सम्यग्दर्शनादिके निमित्तसे जो क्षयोपशमनिमि-त्तक अवधिज्ञान होता है, उसे गुणप्रत्यय कहते हैं। इस क्षयोपशमनिमित्तक गुणप्रत्यय-अवधिज्ञानके छः भेद हैं। यथा—१ अनुगामी, २ अननुगामी, ३ वर्द्ध-मान, ४ हीयमान, ५ अवस्थित, और ६ अनवस्थित। अनुगामी—जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीवके साथ गमन करे, उसे अनुगामी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं, १ क्षेत्रानुगामी, २ भवानुगामी और ३ उभयानु-गामी। जिस जीवको जिस क्षेत्रमें अवधिज्ञान प्राप्त हुआ, उस जीवके अन्य क्षेत्रमें गमन करने पर भी जो 'अवधि-

प्राप्त) साथ जाता है, उसे क्षेत्रानुगामी ; जो जीवके पर भवको गमन करते समय (परलोक पर्यन्त) साथ जाता है, उसे भवानुगामी और जो अन्य क्षेत्र एवं अन्य भव, दोनोंमें साथ जाता है उसे उभयानुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। अननुगामी—जो अवधिज्ञान अपने स्वामी (जीव) के साथ गमन नहीं करता उसे अननुगामी कहते हैं। इसके भी तीन भेद हैं १ क्षेत्राननुगामी, २ भवाननुगामी और ३ उभयाननुगामी। इनका अर्थ अनुगामीके भेदोंकी तरह समझना चाहिये। वर्द्धमान—जो सम्यग्दर्शनादि गुणरूप विशुद्ध परिणामों (भावों)की वृद्धिसे आरम्भ दिनों दिन बढ़ता ही जाता है उसे वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं। हीयमान—जो सम्यग्दर्शनादि गुणोंकी हीनतासे तथा संक्लेश परिणामों (अशुद्ध वा क्लेशित भावों की वृद्धिसे घटता जाता है उसे हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं। अवस्थित—जो जितने परिमाणको लिये उत्पन्न हुआ है बराबर उतना ही रहे अर्थात् न घटे और न बढ़े उसे अवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं। अनवस्थित—अवस्थितसे विपरीत जो घटता बढ़ता है, उसे अनवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं। इनमें प्रतिपाती और अप्रतिपाती ये दो भेद शामिल करनेसे इसके आठ भेद भी होते हैं।

इसके अतिरिक्त जैनशास्त्रोंमें अवधिज्ञानके और भी कई प्रकारसे भेद किये हैं। यथा—१ देशावधि २ परमावधि और ३ सर्वावधि। इनमेंसे देशावधिके उपरोक्त छः वा आठ भेद हैं। परमावधि और सर्वावधि केवलज्ञान उत्पन्न होने पर्यन्त जीवका अनुगामी रहता है। इसके सिवा परमावधि और सर्वावधिज्ञानयुक्त पुरुष (वा मुनि) पुनः जन्मग्रहण न कर उसी जन्ममें केवलज्ञान पूर्वक मोक्ष प्राप्त करता है इसलिए भवान्तर वा क्षेत्रान्तरके अभाव की अपेक्षासे इन दोनों प्रकारके अवधिज्ञानोंको अननुगामी भी कहा जा सकता है। ये दोनों ज्ञान अप्रतिपाती ही हैं, क्योंकि केवलज्ञान उत्पन्न होने तक छूटते नहीं। परमावधि वर्द्धमानस्वरूप है, हीयमान नहीं। परमावधि और सर्वावधि ये दोनों ज्ञान चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामी संयमी मुनियोंके ही होता है, अन्य तीर्थङ्करादि गृहस्थ मनुष्य,* तिर्यञ्च देव और नारकियोंके नहीं होता। देशावधिज्ञान गुणप्रत्यय और भव प्रत्यय दोनों प्रकार होता है।

(४) मनःपर्ययज्ञान—जो ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादा लिये हुये दूसरेके मनमें अवस्थित रूपी पदार्थको स्पष्ट जान लेता है उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। यह दो प्रकारका है—१ ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान और २ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान। ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान—जो ज्ञान मन-वचनकायकी सरलता लिए हुए दूसरेके मनमें स्थित रूपी पदार्थ अर्थात् हृदयगत भावोंको जानता है, उसका नाम है ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान। जिसकी मति ऋजु अर्थात् सरल है वह ऋजुमति है। ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानके तीन भेद हैं, १ ऋजु मनस्कृतार्थज्ञ (सरल मन द्वारा किये गये अर्थका ज्ञायक), २ ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ (सरल वचन द्वारा किये गये अर्थका ज्ञायक) और ३ ऋजुकाय कृतार्थज्ञ (सरल काय द्वारा किये गये अर्थका ज्ञायक)। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—किसी मनुष्यने मनसे स्पष्टरूप पदार्थकी चिन्ता की धार्मिक वा लौकिक वचनोंका भी भिन्न भिन्न रूपसे उच्चारण किया एवं कायकी भी अनेक चेष्टाएं कीं और थोड़े ही दिन बाद वह सब भूल गया। किन्तु ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान युक्त मुनिसे पूछने पर वे सब वृत्तान्त खुलासा बता देंगे इसीका नाम ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है। विपुलमति-मनःपर्ययज्ञान—जो ज्ञान दूसरेके मनमें स्थित मन वचन-कायके द्वारा किये गये सरल और कुटिल (वक्र) दोनों प्रकारके रूपी पदार्थ (हृदयगत भावों वा विचारों) को जानता है, उसे विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान कहते हैं। जिसकी मति विपुल अर्थात् सरल और कुटिल दोनों प्रकारकी है वह विपुलमति है। ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ, ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ, ऋजुकायकृतार्थज्ञ वक्रमनस्कृतार्थज्ञ, (कुटिल वा वक्र मन द्वारा किये गये अर्थका ज्ञायक) वक्रवाक्कृतार्थज्ञ (वक्र वचन द्वारा किये गये अर्थका ज्ञायक) और वक्र कायकृतार्थज्ञके भेदसे विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान छः

* इनके देशावधिज्ञानकी ही सीमा है अर्थात् गृहस्थ मनुष्य, तिर्यञ्च देव और नारकियोंका अवधिज्ञान देशावधि कहलाता है।

प्रकारका है। इस ज्ञानसे दूसरेके हृदयगत वक्र वा सरल सम्पूर्ण प्रकारके विचारोंका ज्ञान हो जाता है तथा अपने और परके जीवन, मरण, सुख, दुःख, लाभ, अलाभ आदिका भी ज्ञान होता है। इसके सिवा जिस पदार्थको व्यक्त मन द्वारा वा अव्यक्त मन द्वारा चिन्ता की गई है अथवा भविष्यमें चिन्ता की जायगी इत्यादि समस्त विषय इस ज्ञानसे मालूम हो जाते हैं। यह द्रव्य और भावकी अपेक्षासे विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानके विषयका निरूपण किया गया है। कालकी अपेक्षा विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी जघन्यरूपसे ७।८ भवों (जन्मों) के गमनागमनको जानता है और उत्कृष्ट रूपसे असंख्य भवोंके गमनागमनको जानता है तथा क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य रूपसे तीन योजनसे आठ योजन तकके पदार्थोंको जानता है और उत्कृष्ट रूपसे मनुषोत्तर पर्वत (जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्द्ध द्वीप तक) के भीतरके पदार्थोंको जानता है।

परिणामोंकी विशुद्धता एवं अप्रतिपात (केवलज्ञान उत्पन्न होने तक न छुटना)-के कारण इन दोनोंमें विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान श्रेष्ठ और पूज्य है। सर्वावधिज्ञानके सूक्ष्म विषय (एक परमाणु तकका प्रत्यक्षज्ञान)से भी अनन्तवें भाग सूक्ष्म द्रव्यको मनःपर्ययज्ञान जान सकता है।

(५) केवलज्ञान—जिस ज्ञानके द्वारा त्रिकालवर्त्ती सम्पूर्ण पदार्थों एवं उनकी अनन्त पर्यायोंका स्पष्ट ज्ञान हो, उसे केवलज्ञान कहते हैं। अथवा यों समझिये कि सर्वज्ञ वा ईश्वरके ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं। आत्माके ज्ञानका पूर्ण विकाश होना ही केवलज्ञान है; इससे बड़ा ज्ञान संसारमें और दूसरा नहीं है। यह ज्ञान विशुद्ध आत्मा वा परमात्माको ही प्राप्त होता है। इस ज्ञानके प्राप्त होने पर आत्मा सर्वज्ञ वा ईश्वर कहलाने लगता है। एक एक द्रव्यकी त्रिकालवर्त्ती अनन्त अवस्थायें हैं, छहों द्रव्योंकी समस्त अवस्थाओंको केवलज्ञानी युगपत् (एकसाथ) जानता है। इसके भेद प्रभेद कुछ भी नहीं है। इस ज्ञानके होने पर मति श्रुतादि ज्ञान नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् यह ज्ञान आत्मामें एकाकी ही रहता है।

एक आत्मामें एकसे ले कर चार ज्ञान तक हो सकते हैं, पांच नहीं। एक होने पर केवलज्ञान होगा। दो होने पर मति और श्रुत, तीन होने पर मति श्रुत और अवधि तथा चार होने पर मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान होंगे।

उपर्युक्त पांच ज्ञानोंमेंसे मति, श्रुत और अवधिज्ञान ये तीन विपरीत भी होते हैं। ऊपर कहे हुए ज्ञान सम्यग्दर्शनपूर्वक ही होते हैं, इसलिए शुभ हैं। इनसे विपरीत जो तीन ज्ञान हैं वे मिथ्यादर्शनपूर्वक होते हैं, उन्हें १ कुमति, २ कुश्रुत और ३ कुअवधिज्ञान कहते हैं। सत् और असत्‌रूप पदार्थोंके भेदका ज्ञान नहीं होनेसे स्वेच्छारूप यद्वा तद्वा जाननेके कारण उन्मत्तके ज्ञानके समान ये (कुमति, कुश्रुत और कुअवधि) तीनों ज्ञान मिथ्या हैं। मद्यसेवनसे उन्मत्त पुरुषका, भार्याको माता और माताको स्त्री कहना वा समझना, यह ज्ञान मिथ्या है। किसी समय यदि वह माताको माता और स्त्रीको स्त्री भी कहे, तो भी उसका ज्ञान सम्यक् नहीं हो सकता; क्योंकि उसे माता और भार्याके भेदाभेदका यथार्थ ज्ञान नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यादर्शनके उदयसे सत् और असत्‌का भेद नहीं समझनेके कारण कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ज्ञानयुक्त व्यक्तिका यथार्थ जानना भी मिथ्याज्ञान है। इस प्रकारसे ज्ञानके आठ भेद भी हैं।

नय—वस्तुके एकदेश (एकांश)को जाननेवाले ज्ञानका नाम 'नय' है। अर्थात् वस्तुमें अनेक धर्म (स्वभाव) होते हैं, उनमेंसे किसी एक धर्मको मुख्यता ले कर अविरोधरूप साध्य पदार्थको जाननेवाले ज्ञानको नय कहते हैं। प्रधानतः नयके दो भेद हैं, एक निश्चयनय और दूसरा व्यवहारनय। वस्तुके किसी यथार्थ अंशको ग्रहण करनेवाले ज्ञानको निश्चयनय कहते हैं। जैसे, मिट्टीके घड़ेको मिट्टीका घड़ा कहना। और किसी निमित्तवशात् एक पदार्थको दूसरे पदार्थरूप जाननेवाले ज्ञानका नाम व्यवहारनय है। जैसे मिट्टीके घड़ेको घी रहनेके कारण, घीका घड़ा कहना। इनमेंसे निश्चयनयके भी दो भेद हैं, एक द्रव्यार्थिकनय और दूसरा पर्यायार्थिकनय। जो द्रव्य अर्थात् सामान्यको

ग्रहण करे, उसे द्रव्यार्थिकनय और जो विशेष (गुण या पर्यायों)को विषय करे उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

निश्चयनयशास्त्रोंमें द्रव्यार्थिकनयके नैगम, संग्रह और व्यवहारके भेदसे तीन प्रकारका है। नैगमनय—दो पदार्थोंमेंसे एकको गौण और दूसरेको प्रधान करके भेद अथवा अभेदको विषय करनेवाले तथा पदार्थके संकल्पको ग्रहण करनेवाले ज्ञानको नैगमनय कहते हैं। संसारमें जितने भी द्रव्य हैं, वे सब अपनी त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायोंसे अन्वयरूप (जोड़रूप) हैं अर्थात् कोई किसी भी पर्यायसे कोई द्रव्य भिन्न नहीं है। इसमें भूत और भविष्यकी पर्यायों (अवस्थाओं)का वर्तमानकालमें संकल्प करनेवाले ज्ञानका नाम नैगमनय है। जैसे कोई व्यक्ति रोटी बनानेको सामग्री इकट्ठी कर रहा है, उससे किसीने पूछा कि क्या कर रहे हो? इसके उत्तरमें उसने कहा, "रोटी बना रहा हूँ।" किन्तु वह अभी उसकी सामग्री ही इकट्ठी कर रहा था रोटी नहीं बनाता था तथापि नैगमनयसे उसका कहना ठीक है। क्योंकि उसने भविष्यकी अवस्थाका वर्तमानमें संकल्प किया है। संग्रहनय—जो ज्ञान एक वस्तुको सम्पूर्ण जातिको एवं उसकी पर्यायोंको संग्रहरूप करके एकस्वरूप ग्रहण करे, उसे संग्रहनय कहते हैं। जैसे द्रव्य कहनेसे जीव अजीवादि तथा उनके भेद प्रभेद आदि सबको समझना अथवा मनुष्य कहनेसे सभी पुरुष वृद्ध बालक आदि सभीका बोध होना। व्यवहारनय—जो संग्रहनयसे ग्रहण किये पदार्थोंका विधिपूर्वक (व्यवहारके अनुकूल) व्यवहार अर्थात् भेदप्रभेद करता है, उसे व्यवहारनय कहते हैं। जैसे, द्रव्यके भेद जीव पुद्गल धर्म अधर्म, आकाश और काल तथा इनके भी पृथक् पृथक् भेद करना।

निश्चय नयका दूसरा भेद पर्यायार्थिकनय है। यह चार प्रकारका है १ ऋजुसूत्रनय २ शब्दनय ३ समभिरूढ़नय और ४ एवंभूतनय। ऋजुसूत्रनय—अतीत और अनागत दोनों अवस्थाओंको छोड़ कर जो वर्तमान अवस्थामात्रको ग्रहण करे, उसे ऋजुसूत्रनय कहते हैं। द्रव्यको अवस्था समय समयमें पलटती रहती है। एकसमयवर्ती पर्याय (अवस्था)को अर्थपर्याय कहते हैं। यह अर्थपर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है अर्थात् ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समयमात्रको पर्यायको ग्रहण करता है। शब्दनय—जो व्याकरण सम्बन्धी लिङ्ग, कारक, वचन, काल, उपसर्ग आदिके भेदसे पदार्थको भेदरूप ग्रहण करे, वह शब्दनय है। जैसे—दार, भार्या और कलत्र ये तीनों भिन्न भिन्न लिङ्गके शब्द एक ही स्त्री पदार्थके वाचक हैं किन्तु शब्दनय स्त्री-पदार्थको तीन भेदरूप ग्रहण करता है। इसी प्रकार कारकादिके भी दृष्टान्त समझने चाहिये। समभिरूढ़नय—अनेक अर्थोंको छोड़ कर जो एक ही अर्थमें रूढ़ या प्रसिद्ध वस्तुको जाने या कहे, उसे समभिरूढ़नय कहते हैं। जैसे—गो शब्दके गमन आदि अनेक अर्थ हैं तथापि मुख्यतासे जो गाय या बैलका ही ग्रहण किया जाता है, उसको चलते, बैठते, सोते सब अवस्थाओंमें गो कहना समभिरूढ़नय है। एवंभूतनय—जो जिस समय जिस क्रियाको करता हो, उसको उस समय उस ही नामसे पुकारना या जानना, एवंभूतनय है। जैसे—देवोंके पति इन्द्रको उसी समय इन्द्र कहना जब वे अपने सिंहासन पर बैठे हों, पूजन अभिषेक आदि करते समय उन्हें इन्द्र न कह कर पूजक (पुजारी) कहना, इत्यादि।

व्यवहारनय या उपनयके तीन भेद हैं, १ सद्भूतव्यवहारनय, २ असद्भूतव्यवहारनय और ३ उपचरितव्यवहारनय अथवा उपचरितासद्भूतव्यवहारनय। सद्भूतव्यवहारनय—एक अखण्डद्रव्यको भेदरूप विषय करनेवाले ज्ञानको सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे, जीवके केवलज्ञानादि या मतिज्ञानादि गुण हैं। असद्भूतव्यवहारनय—उसे कहते हैं जो मिले हुए विभिन्न पदार्थोंको अभेदरूप ग्रहण करता है। जैसे, सप्तधातुमय शरीरको जीवका शरीर कहना। उपचरितव्यवहारनय—उसे कहते हैं जो अत्यन्त भिन्न भिन्न पदार्थोंको अभेदरूप ग्रहण करता है। जैसे, हाथी, घोड़ा, मकान आदिको अपना (जीवका) समझना या कहना। नय देखो

निक्षेप।—निक्षेपका स्वरूप पहले कह चुके हैं। इसके सामान्यतः चार भेद हैं, १ नामनिक्षेप, २ स्थापनानिक्षेप, ३ द्रव्यनिक्षेप और ४ भावनिक्षेप। नामनिक्षेप—गुण, जाति, द्रव्य और क्रियाको अपेक्षा बिना ही इच्छानुसार

लोकव्यवहारके लिए किसी पदार्थकी संज्ञा रखनेको नामनिक्षेप कहते हैं। जैसे किसीने अपने पुत्रका नाम हाथी, सिंह रक्खा, किन्तु उसमें हाथी और सिंह दोनोंके ही गुण नहीं हैं। इसी प्रकार संसारमें चतुर्भुज, धनपाल, कुवेरदत्त आदि नाम रक्खे जाते हैं, किन्तु ये नाम गुण, जाति, द्रव्य और क्रियाकी अपेक्षासे नहीं, वरन् नामनिक्षेपकी अपेक्षासे रक्खे जाते हैं। स्थापना-निक्षेप—धातु, काष्ठ, पाषाण मिट्टी आदिकी मूर्ति वा चित्रादिमें तथा सतरंजकी गोटी आदिमें हाथी, घोड़ा, बादशाह प्रभृतिकी जो कल्पना की जाती है, उसे स्थापनानिक्षेप कहते हैं। तदाकार और अतदाकारके भेदसे स्थापनानिक्षेप दो प्रकारका है। जो पदार्थ जिस आकारका हो, उसको वैसे ही आकारके पाषाण, काष्ठ वा मृत्तिका आदिमें स्थापना करनेको तदाकारस्थापना कहते हैं और प्रकृत पदार्थका आकार जिसमें न हो, ऐसे किसी भी पदार्थमें किसीकी कल्पना करना अतदाकार स्थापना है। जैसे, पार्श्वनाथ भगवान्‌की वीतराग रूप जैसीकी तैसी शान्तमुद्रायुक्त धातु वा पाषाणमय मूर्तिकी प्रतिष्ठा करना, यह तदाकार स्थापना है और सतरंजकी गोटीको बादशाह मानना, यह अतदाकार स्थापना है। नामनिक्षेपमें पूज्यापूज्यबुद्धि नहीं होती, किन्तु स्थापनानिक्षेपमें होती है। द्रव्यनिक्षेप—जो पदार्थोंमें भूत वा भविष्यत् अवस्थाकी स्थापना करता है, उसे द्रव्यनिक्षेप कहते हैं। जैसे, युवराजको राजा कहना वा भूतपूर्व सचिवको वर्तमानमें सचिव कहना। भाव-निक्षेप—जिस पदार्थकी वर्तमानमें जैसी अवस्था हो, उसे उसीरूप कहना, भावनिक्षेप है। जैसे, काष्ठको काष्ठ अवस्थामें काष्ठ कहना और जल कर कोयला होने पर कोयला कहना। ये निक्षेप ज्ञेय वा पदार्थके होते हैं। और इनसे सात तत्त्वों एवं सम्यग्दर्शनादिके न्यास अर्थात् लोकव्यवहार होता है।

लोक-रचना वा जगत्‌का स्वरूप—जिसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पांच द्रव्य हों अर्थात् त्रिभुवनको लोक कहते हैं। लोकका आकार इस प्रकार है—
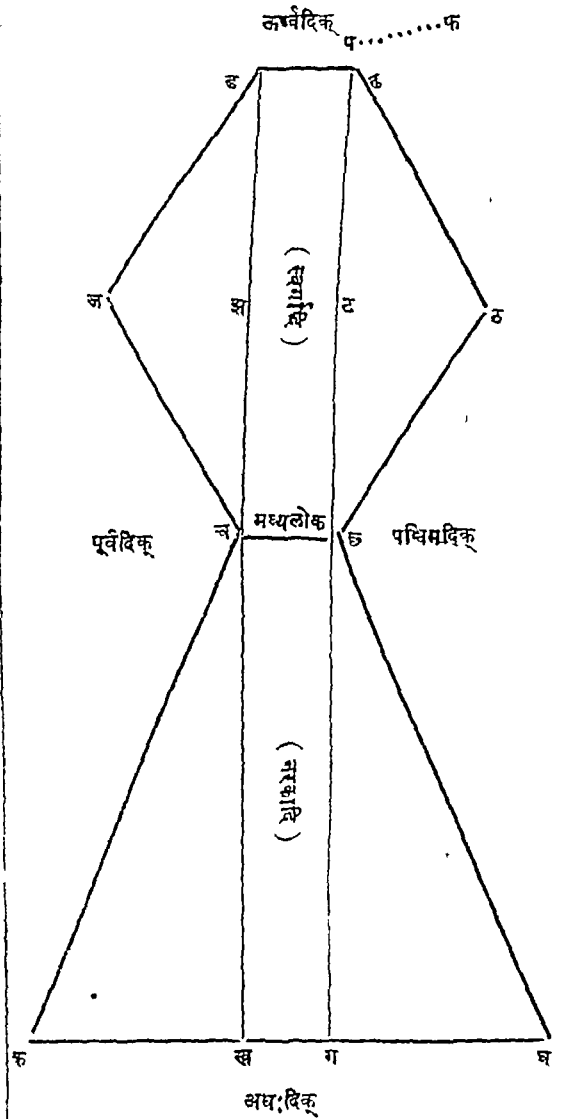
पूर्व-पश्चिमका परिमाण। यथा, क—ख=३ राजू, ख—ग=१ रा०, ग—घ=३ राजू, क—घ=७ राजू, च—छ=१ रा०, ज—झ=२ रा०, झ—ट=१ रा०, ट—ठ=२ रा०, ज—ठ=५ रा०, ड—ढ=१ रा०। ऊंचाईका परिमाण। यथा, ख—च वा ग—छ=७ राजू, च—झ वा छ—ट=३॥ रा०, झ—ड या ट—ढ=३॥ रा०, ख—ड अथवा ग—ढ=१४ राजू। दक्षिण-उत्तरका परिमाण (अथवा मोटाई)। यथा, प—फ=७ रा०। विशेष,—डसे ख और ग से ढ तक जो एक राजू चौड़ा और १४ राजू ऊंचा स्थान है, उसे 'त्रसनाडी' कहते हैं; इसीमें स्वर्ग, नरकादि हैं।

अरिष्टा नामक पांचवां नरक है। छठी पृथिवी पर मघवी नामक ६ठा नरक है और सातवीं पृथिवी पर माघवी नामक ७ वां (अन्तिम) नरक है। ये सब नरक त्रसनाडीके भीतर ही हैं; अर्थात् नारकी जीवोंकी उत्पत्ति और निवासस्थान त्रसनाडीके भीतर ही है। अब नरकोंका वर्णन किया जाता है।

रत्नप्रभा पृथिवीके तीन भाग हैं, १ खरभाग २ पङ्कभाग और ३ अब्बहुलभाग। खरभागकी मोटाई १६००० योजन, पङ्कभागकी ८४००० योजन और अब्बहुलभागकी मोटाई ८०००० योजन है। इनमेंसे खरभागमें असुरकुमारके अतिरिक्त शेष नव प्रकारके भवनवासीदेव * तथा राक्षसभेदके सिवा शेष सात प्रकारके व्यन्तरदेव † निवास करते हैं। २य पङ्कभागमें असुरकुमार और राक्षसोंका वास है। ३य अब्बहुलभागमें प्रथम नरक है।

उक्त सातों पृथिवियों पर त्रसनाड़ीके मध्य सात नरक हैं और उन सातों नरकोंमें नारकियोंके रहनेके स्थानस्वरूप तलघरोंकी भांति ४८ पटल हैं। प्रथम नरकमें १३ पटल हैं, दूसरेमें ११, तीसरेमें ८, चौथेमें ७, पाचवेंमें ५, छठेमें ३ और सातवेंमें १ पटल है। ये पटल उक्त भूमियोंके ऊपर-नीचेके एक एक हजार योजन छोड़ कर समान अन्तर पर स्थित हैं। प्रथम नरकके १ले पटलका नाम है सीमन्तक। इस सीमन्तक पटलमें १ लाख योजन व्यासयुक्त गोल इन्द्रक बिल (नरक) है। इस प्रकार प्रथम नरकमें ३० लाख बिल हैं, दूसरे नरकमें २५ लाख, तीसरे नरकमें १५ लाख, चौथे नरकमें १० लाख, पाचवें नरकमें ३ लाख, छठे नरकमें ५ कम १ लाख और सातवें नरकमें कुल पांच ही बिल (नरक) हैं। ये बिल गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण आदि आकारके हैं। इनमें कई संख्यात और कई असंख्यात योजन विस्तृत हैं। सातों नरकोंके इन्द्रक, श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक नरकोंकी संख्या ८४ लाख है। नारकी जीव इन्हींमें रहते हैं।

नारकी जीव सर्वदा अशुभतर लेश्या*-युक्त, अशुभतर परिणामयुक्त, अशुभतर शरीरके धारक, अशुभतर वेदनायुक्त और अशुभतर विक्रिया† करनेवाले होते हैं। निरन्तर अशुभ कर्मोंका उदय होते रहनेसे इनके हृदयगत भाव, विचार आदि सर्वदा अशुभ हो रहते हैं। ये परस्पर एक दूसरेको पीड़ा देते रहते हैं, अर्थात् कुत्ता बिल्लीकी तरह हमेश लड़ते भिड़ते रहते हैं। तीसरे नरक तक असुरकुमारदेव जा कर वहांके नारकियोंको मेढ़ोंकी तरह लड़ाते और तमाशा देखते हैं। इसके बाद चौथेसे सातवें नरक पर्यन्त कोई भी भिड़ाता नहीं स्वयं ही लड़ा करते हैं। नारकियोंको कुअवधिज्ञानसे पहले जन्म-जन्मान्तरोंकी शत्रुता याद आती है और उसका बदला लेनेके लिए सर्वदा व्यस्त रहते हैं। इनमेंसे पहले नरकके पहले पटलमें उत्पन्न होनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊंचाई ३ हाथकी है। द्वितीय आदि पटलोंमें क्रमशः वृद्धि हो कर पहले नरकके १३वें पटलमें सात धनुष और सवा तीन हाथकी ऊंचाई है। पहले नरकमें जो उत्कृष्ट ऊंचाई है, उससे कुछ अधिक दूसरे नरकके नारकियोंकी जघन्य (कमसे कम) ऊंचाई है। द्वितीय तृतीय आदि नरकोंमें ऊंचाई क्रमशः दूनी दूनी होती गई है और अन्तिम (७म) नरकमें उत्कृष्ट ऊंचाई ५०० धनुषकी हो गई है।

पहले नरकमें नारकियोंकी उत्कृष्ट (अधिकसे अधिक) आयु १ सागरकी है, दूसरेमें ३ सागरकी, तीसरेमें ७ सागरकी, चौथेमें १० सागरकी, पांचवेंमें १७ सागरकी, छठेमें २२ सागरकी और सातवें नरकमें उत्कृष्ट आयु ३३ सागरकी है।

ऊपर कहे हुये पहले चार नरकों तथा पांचवें नरकके तृतीयांशमें उष्णताकी तीव्र वेदना है। इसके नीचे अर्थात् पाचवेंके कुछ अंशमें तथा ६ठे और ७वें नरकमें शीतकी तीव्र वेदना है। उष्णता इतनी अधिक होती है कि वहांके नारकी यदि लवणसमुद्रका जल पी लें तो भी उनकी प्यास नहीं बुझती और शीत भी इतनी ज्यादा होती है कि, सुमेरुके समान लौह भी गल जाय तो आश्चर्य नहीं। किन्तु नारकियोंका वैक्रियिक शरीर

---

* भवनवासियोंके दश भेद हैं, यथा—असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार।

† व्यन्तरोंके आठ भेद हैं, यथा—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, और पिशाच।

* कषायोंसे अनुरंजित योग प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं।

† जिसकी वजहसे शरीरके नाना तरहके रंग, रूप, आकार बन सकें।

होनेसे उसका विना आयु पूर्ण हुए नाश नहीं होता और इसी लिए इतने कष्ट होते रहने पर भी उनकी अकालमृत्यु नहीं होती। कोई किसीको कोल्हूमें पेर रहा है, तो कोई किसीको गरम लोहेसे चुपटा रहा है और कोई किसीको प्रज्वलित अग्निमें डाल रहा है। इस प्रकार नरकोंमें घोर दुःख हैं। नारकी जीव मर कर नरक और देवगतिमें जन्मग्रहण नहीं करते किन्तु मनुष्य और तिर्यञ्च गतिमें ही उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य और तिर्यञ्च ही मर कर नरकमें उत्पन्न होते हैं। देवगतिमें मरण करके कोई भी जीव नरकमें उत्पन्न नहीं होता। असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव मर कर पहले नरक पर्यन्त ही जन्म ले सकता है, आगे नहीं। इसी प्रकार सरीसृप जातिके जीव दूसरे नरक तक, पक्षी तीसरे नरक तक, सर्प चौथे नरक तक सिंह पांचवें नरक तक, स्त्री छठे नरक तक और कर्मभूमिके मनुष्य तथा मत्स्य सातवें नरक तक जन्मग्रहण कर सकते हैं। यदि कोई जीव निरन्तर नरकमें उत्पन्न होता रहे, तो पहले नरकमें ८ बार तक दूसरेमें ७ बार तीसरेमें ६ बार, चौथेमें ५ बार, पांचवेंमें ४ बार छठेमें ३ बार और सातवें नरकमें २ बार तक जन्म ले सकता है इससे अधिक नहीं। किन्तु जो जीव सातवें नरकसे आया है उस को सातवें या किसी अन्य नरकमें जाना ही पड़ता है वा तिर्यञ्च गतिमें अवश्य उत्पन्न हो सकता है देव वा मनुष्य योनिमें जन्मग्रहण नहीं कर सकता। छठे नरकसे निकले हुए जीव मनुष्य हो कर मुनिका चारित्र धारण नहीं कर सकते; पश्चात् उनके भाव इतने उज्ज्वल नहीं होते। इसी प्रकार पांचवें नरकसे निकले हुए जीव मोक्ष नहीं जा सकते, चौथेसे निकले हुए तीर्थङ्कर नहीं हो सकते। १ले, २रे और ३रे नरकसे निकल कर जीव देवगतिमें जाता है और वहांसे फिर तीर्थङ्करकुलमें जन्मग्रहण कर सकता है। नरकसे निकले हुए जीव बलभद्र नारायण और प्रतिनारायण और चक्रवर्ती नहीं हो सकते।

२ मध्यलोक—यह लोकके ठीक मध्यस्थलमें है, इसलिए इसका नाम मध्यलोक पड़ा। अधोलोकके ऊपर मध्यलोक है जो एक राजू लम्बा, एक राजू चौड़ा और एक लाख चालीस योजन ऊंचा है। इस मध्यलोकके ठीक बीचमें गोलाकार एक लाख योजन व्यास युक्त जम्बूद्वीप है। इस जम्बूद्वीपको खाईकी भांति घेरे हुए लवणसमुद्र है जिसकी चौड़ाई सर्वत्र दो लाख योजनकी है। इस लवणसमुद्रको घेरे हुए गोलाकार (चूड़ीकी भांति) धातुकीखण्डद्वीप है जिसकी चौड़ाई सर्वत्र ४ लाख योजन है। धातुकीखण्डको घेरे हुए आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है और कालोदधि समुद्रको चारों तरफसे घेरे हुए सोलह लाख योजन चौड़ा पुष्करद्वीप है। इस प्रकारसे क्रमशः दूने दूने विस्तारयुक्त परस्पर एक दूसरेके घेरे हुए असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं। अन्तमें स्वयम्भूरमण समुद्र और उसके चारों कोनोंमें पृथिवी (भूमि) है। पुष्कर द्वीपके बीचमें (चूड़ीकी भांति) एक पर्वत है जिसका नाम है मानुषोत्तरपर्वत। इस पर्वतके रहनेसे पुष्करद्वीप दो भागोंमें विभक्त है। जम्बूद्वीप धातुकीद्वीप और पुष्करद्वीपका भीतरी भाग, ये ढाई द्वीप कहलाते हैं और इन्हींके भीतर भीतर मनुष्योंकी उत्पत्ति होती है। मानुषोत्तरपर्वतके बाद मनुष्योंका अस्तित्व नहीं है, वहां सिर्फ तिर्यञ्चोंका ही वास है। जलचर जीव लवणोदधि कालोदधि और अन्तके स्वयम्भूरमण समुद्रमें ही होते हैं अन्य समुद्रोंमें नहीं।

जम्बूद्वीपसे दूनी रचना धातुकीखण्ड और पुष्करार्द्ध द्वीपमें है। जम्बूद्वीप (जैनमतानुसार) देखो। मनुष्य लोकके भीतर अर्थात् ढाई द्वीपमें पन्द्रह कर्मभूमि और तीस भोगभूमियां हैं।

इस जम्बूद्वीपके भरत और ऐरावतक्षेत्रमें काल-परिवर्त्तन हुआ करता है। उत्सर्पिण्य और अवसर्पिण्य इस तरह कालके दो विभाग हैं। उत्सर्पिण्य कालको उत्सर्पिणी और अवसर्पिण्य कालको अवसर्पिणी कहते हैं। किन्तु अन्य क्षेत्रोंमें काल-परिवर्त्तन नहीं होता। जैसे विदेहक्षेत्रमें सदा ४थ काल रहता है। इसके बीचमें पश्चात् सुमेरुके आसपास देवकुरु और उत्तरकुरु नामक क्षेत्रोंमें सर्वदा प्रथमकालकी रचना रहती है। दूसरे कालके आदिकी रचना हरि और रम्यक क्षेत्रमें रहती है। तीसरे कालके आदिकी रचना हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रमें अवस्थित है। अन्तके आधे स्वयम्भूरमणद्वीप और समस्त स्वयम्भूरमण समुद्रमें तथा उनके

चारो कोनोंको भूमिमें सदा पञ्चमकालके आदिकी रचना रहती है। इसके अतिरिक्त मनुषोत्तर पर्वतके बाहर समस्त द्वीपोंमें तथा कुभोगभूमियोंमें तीसरे कालके आदि जैसी जघन्य भोगभूमिकी रचना होती है। लवणसमुद्र और कालोदधिसमुद्रमें ८६ अन्तर्द्वीप हैं, जिनमें कुभोग भूमिकी रचना है। भोगभूमियोंके विषयमें तो पहले कुछ कह चुके हैं, अब कुभोगभूमियोंका वर्णन किया जाता है। इन कुभोगभूमियोंमें एक पल्य आयुके धारक कुमनुष्य निवास करते हैं, जिनकी आकृति नाना प्रकार है। किसीके केवल एक जङ्घा है, किसीके पूँछ है, किसीके सींग हैं, कोई गूँगे हैं, किसीके कान बहुत लम्बे हैं जो ओढनेके काममें आते हैं, किसीका मुँह सिंह जैसा, किसीका घोडा, कुत्ता, भैंसा, वा बन्दर आदिके समान है। ये कुमनुष्य वृक्षोंके नीचे तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें रहते हैं और वहांकी मीठी मिट्टी खाते हैं। ये भोगभूमियोंके मनुष्योंकी तरह मर कर नियमसे देव होते हैं।

इसी मध्यलोकमें ज्योतिष्क देवोंका भी निवास है; अतएव अब ज्योतिषचक्रका वर्णन करते हैं। ज्योतिष्क देवोंके पांच भेद हैं—(१) सूर्य, (२) चन्द्र, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र और (५) तारका। इस चित्रा पृथिवीसे ७९० योजन* ऊहमें तारे हैं, तारोंसे १० योजन ऊपर सूर्य हैं, सूर्यसे ८० योजन ऊपर चन्द्र है और चन्द्रसे ४ योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रोंसे ४ योजन ऊपर बुधग्रह हैं, बुधोंसे ३ योजन ऊपर शुक्र हैं, शुक्रोंसे ३ योजन ऊपर गुरु हैं, गुरुओंसे ३ योजन ऊपर मङ्गल हैं और मङ्गलोंसे ३ योजन ऊहमें शनैश्चर हैं। बुधादि पाँच ग्रहोंके सिवा और भी तिरासी ग्रह हैं, जिनमेंसे राहुके विमानका ध्वजादण्ड चन्द्रके विमानसे और केतुके विमानका ध्वजादण्ड सूर्यके विमानसे चार प्रामाणाङ्गुल (परिमाणविशेष) नीचे है। अवशिष्ट ८१ ग्रहोंके रहनेकी नगरी बुध और शनिके बीचमें है। देवगतिके चार भेदोंमेंसे ज्योतिष्क जातिके देव इन विमानोंमें निवास करते हैं। इस ज्योतिष्क-पटलकी मोटाई ऊहं और अधः दिशामें ११० योजन है तथा विस्तार पूर्व पश्चिममें लोकके अन्त (घनोदधि वातवलय) पर्यन्त और उत्तर दक्षिणमें १ राजू है। किन्तु सुमेरु पर्वतके चारों तरफ ११२१ योजन तक ज्योतिष्क विमानोंका सद्भाव नहीं है। मनुष्यलोक अर्थात् ढाई द्वीप तक ज्योतिष्क विमान सर्वदा सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं। परन्तु जम्बूद्वीपमें ३६, लवणसमुद्रमें १३९, धातुकीखण्डमें १०१०, कालोदधिमें ४११२० और पुष्करार्द्धद्वीपमें ५३२३० ध्रुव-तारे हैं जो कभी चलते नहीं। मनुष्यलोकके बाहर समस्त ज्योतिष्क विमान गतिशून्य हैं। किन्तु समस्त ज्योतिष्क-विमानोंका उपरिभाग आकाशको एक ही सतहमें है। तारोंमें परस्परका अन्तर कमसे कम ⅐ कोश है और ज्यादासे ज्यादा १००० योजन। इस समस्त ज्योतिष्कविमानोका आकार आधी गोलेके समान अर्थात् ऐसा ◡ है। इन विमानोंके ऊपर ज्योतिष्कदेवोंके नगर अवस्थित हैं जो अत्यन्त रमणीय और जिन-मन्दिरोंसे शोभित हैं।

जैन शास्त्रोंमें चन्द्रको इन्द्र और सूर्यको प्रतीन्द्र माना है। प्रत्येक चन्द्रके साथ एक सूर्य अवश्य रहता है। जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र और दो सूर्य हैं। इसी प्रकार लवणसमुद्रमें ४, धातुकीखण्डमें १२, कालोदधिमें ४२ और पुष्करार्द्धद्वीपमें ७२ चन्द्र हैं: साथ ही उतने सूर्य भी हैं। मनुष्यलोकमें चन्द्र और सूर्यके गमनका अनुक्रम इस प्रकार है—प्रत्येक द्वीप वा समुद्रके समान दो दो खण्डोंमें आधे आधे ज्योतिष्क विमान गमन करते हैं अर्थात् जम्बूद्वीपके प्रत्येक भागमें एक एक, लवणसमुद्रके प्रत्येक भागमें दो दो, धातुकी खण्डद्वीपके प्रत्येक खण्डमें छ छ, कालोदधिके प्रत्येक खण्डमें इक्कीस इक्कीस और पुष्करार्द्धद्वीपके प्रत्येक खण्डमें छत्तीस छत्तीस चन्द्र हैं तथा इतने ही सूर्य हैं। अब इसका खुलासा किया जाता है। जंबूद्वीपमें एक वलय (परिधि) है, लवणसमुद्रमें दो, धातुकीखण्डमें छ, कालोदधिमें इक्कीस और पुष्करार्द्धद्वीपमें छत्तीस वलय हैं। प्रत्येक वलयमें दो दो चन्द्रमा और दो दो सूर्य हैं। पुष्करार्द्धका उत्तरार्द्ध आठ लाख योजनका है, इसलिए उसमें आठ वलय हैं। पुष्करसमुद्र ३२ योजनका है, अतः उसमें ३२ वलय हैं।

* यहां भी योजन २००० कोशका समझना चाहिये, क्योंकि जैनशास्त्रोंमें अकृत्रिम वस्तुओंके परिमाणमें योजन २००० कोशका ही माना है।

इसीप्रकार उत्तरोत्तर द्वीप वा समुद्रमें वलयोंका परिमाण द्विगुण होता गया है। मनुष्यलोकसे बाहरके द्वीप वा समुद्र जितने लाख योजन चौड़े हैं उनमें उतने ही वलय हैं। प्रत्येक वलयकी चौड़ाई चन्द्रमार्गके व्यासके समान ५६/६१ योजन है। पुष्करद्वीपके उत्तरार्द्धके प्रथम वलयमें १४४ चन्द्र हैं, द्वितीय तृतीय आदि वलयोंमें चार चार अधिक हैं। पुष्करद्वीपके उत्तरार्द्धमें सब वलयोंके चन्द्रोंकी संख्या १२६४ है। पुष्कर समुद्रके प्रथम वलयमें २८८ चन्द्र हैं। पश्चात् पुष्करद्वीपके उत्तरार्द्धके वलयमें स्थित चन्द्रोंसे दूने हैं। सूर्योंकी भी संख्या इस प्रकार है। इसी प्रकार असंख्य स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त पूर्व पूर्व द्वीप वा समुद्रके प्रथम वलयस्थित चन्द्रोंके प्रमाणसे उत्तरोत्तर द्वीप वा समुद्रके प्रथम वलयस्थित चन्द्रोंकी संख्या दूनी दूनी होती गई है और प्रथम प्रथम वलयोंके चन्द्रमार्गोंसे द्वितीयादि वलयस्थित चन्द्रमार्गोंकी संख्या क्रमशः चार चार अधिक है। जैसे—पुष्करसमुद्रमें ३२ वलय हैं जिनके समस्त चन्द्रमार्गोंकी संख्या ११२०० है, इससे अगले द्वीपमें ६४ वलय हैं जिनके सम्पूर्ण चन्द्रमार्गोंकी संख्या ४४९२८ है, इत्यादि। सूर्योंकी संख्या भी इसी प्रकार समझनी चाहिये। किन्तु ग्रहोंकी संख्या चन्द्र वा सूर्यसे ८८ गुनी अधिक है। नक्षत्रोंकी संख्या २८ गुणित है और तारोंकी संख्या चन्द्र वा सूर्यकी संख्यासे ६६९७५ कोड़ाकोड़ी गुणित है।

अब सूर्य और चन्द्रके गमनके विषयमें कुछ कहा जाता है। चन्द्र और सूर्यके गमन करनेके मार्ग (गलियों)को चार क्षेत्र कहते हैं। सम्पूर्ण गलियोंके समुदायरूप इस चार क्षेत्रकी चौड़ाई ५१०४८/६१ योजन है। जिस मार्गमें एक चन्द्र वा सूर्य गमन करता है उसीमें ठीक उसीके सामने दूसरा चन्द्र वा सूर्य गमन करता है। इस चार-क्षेत्रकी ५१०४८/६१ योजन चौड़ाईमेंसे १८० योजन तो जम्बूद्वीपमें और ३३०४८/६१ योजन लवण समुद्रमें है। चन्द्रके गमनकी १५ और सूर्यके गमनकी १८४ गलियां हैं। इन सबमें समान अन्तर है। दो दो सूर्य वा चन्द्र प्रतिदिन एक एक गलीको छोड़ कर दूसरी दूसरी गलीमें गमन करते हैं। जिस दिन सूर्य भीतरी गलीमें गमन करता है, उस दिन १८ मुहूर्तका दिन और १२ मुहूर्तकी रात्रि होती है। क्रमशः घटते घटते जब बाहरी गलीमें गमन करता है, तब १२ मुहूर्तका दिन और १८ मुहूर्तकी रात्रि होती है। एक सूर्य ६० मुहूर्तमें मेरुकी प्रदक्षिणा पूरी करता है। कल्पना कीजिये मेरुकी प्रदक्षिणारूप यातायात परिधिमें १,०९,८०० गगन खण्ड हैं। इन खण्डोंमें गमन ज्योतिष्कोंकी गति इस प्रकार है— चन्द्र एक मुहूर्तमें १७६८ खण्डोंमें गमन करता है। सूर्य एक मुहूर्तमें १८३० गगनखण्डोंको तय करता है और नक्षत्र एक मुहूर्तमें १८३५ गगनखण्डोंको तय करते हैं। चन्द्रकी गति सबसे मन्द है चन्द्रसे सूर्यकी गति तेज है। सूर्यसे ग्रहोंकी, ग्रहोंसे नक्षत्रोंकी और नक्षत्रोंसे तारोंकी गति कुछ तेज है।

विशेष जानना हो तो "त्रिलोकसार" नामक ग्रन्थ देखना चाहिये।

३। ऊर्द्ध्वलोक—मेरुके ऊर्द्ध्व लोकके अन्त तकका क्षेत्र ऊर्द्ध्वलोक कहलाता है। इस लोकके दो भेद हैं, एक कल्प और दूसरा कल्पातीत। जहां तक इन्द्र आदि की कल्पना होती है, वहां तक कल्प कहलाता है; और जहां इन्द्रादिकी कल्पना नहीं है, उसे कल्पातीत कहते हैं। कल्पमें १६ स्वर्ग हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) सौधर्म (२) ईशान (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्म, (६) ब्रह्मोत्तर, (७) लान्तव, (८) कापिष्ट (९) शुक्र, (१०) महाशुक्र, (११) शतार (१२) सहस्रार, (१३) आनत, (१४) प्राणत (१५) आरण और (१६) अच्युत। इन सोलह स्वर्गोंमेंसे दो दो स्वर्गोंमें संयुक्त राज्य है। अतएव सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार माहेन्द्र इत्यादि दो दो स्वर्गों का एक एक पटल है। ये सोलह स्वर्ग इस प्रकार अवस्थित हैं—

सौ०——————१ २——————ई०
स०——————३ ४——————मा०
ब्र०——————५, ६——————ब्रह्मो०
ला०——————७, ८——————का०
शु०——————९, १०——————म०शु०
श०——————११, १२——————सह०
आ०——————१३ १४——————प्रा०
आर०——————१५, १६——————अच्यु०

इनमेंसे आदिके दो युगलों (चार स्वर्गों)-में चार इन्द्र, मध्यके चार युगलोंमें (५वेंसे १२वें स्वर्ग पर्यन्त) चार इन्द्र और अन्तके दो युगलोंमें (१३वेंसे १६वें स्वर्ग पर्यन्त) चार इन्द्र हैं। अर्थात् १६ स्वर्गोंमें कुल १२ इन्द्र हैं। इसलिए इन्द्रोंकी अपेक्षासे स्वर्गोंके बारह भेद भी हैं। इन सोलह स्वर्गोंके ऊपर कल्पातीतमें ६ ग्रैवेयक हैं—३ अधोग्रैवेयक, ३ मध्यग्रैवेयक और ३ ऊर्द्ध्व ग्रैवेयक। इनके ऊपर ६ अनुदिश विमान हैं, यथा—१ आदित्य, २ अर्चि, ३ अर्चिमालिन्, ४ वैर, ५ वैरोचन, ६ सोम, ७ सोमरूप, ८ अङ्क और ९ स्फटिक। इनमेंसे पहलेको इन्द्रक अनुदिश, २रे, ३रे, ४थे और ५वेंको श्रेणीबद्ध तथा अन्तके चार विमानोंको प्रकीर्णक अनुदिश कहते हैं। इनके ऊपर पाँच अनुत्तर विमान हैं, यथा—१ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त ४ अपराजित और ५ सर्वार्थसिद्धि। इनमेंसे पहलेके चार विमान श्रेणीबद्ध और अन्तका सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमान है।

उपर्युक्त सोलह स्वर्गोंमें वास करनेवाले कल्पवासी वा कल्पोपपन्नदेव कहलाते हैं। इनमें इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक ये दश भेद होते हैं। (१) इन्द्र—अन्य देवोंमें नहीं पाई जाय, ऐसी अणिमा महिमा आदि अनेक ऋद्धिप्राप्त और परम ऐश्वर्यशाली देवको इन्द्र कहते हैं। इन्द्रको देवोंका राजा समझना चाहिये। (२) सामानिक—जिनके स्थान, आयु, वीर्य, परिवार, भोगादि तो इन्द्रके समान हो परन्तु आज्ञा और ऐश्वर्य इन्द्रके समान न हो तथा जिनको इन्द्र अपने पिता वा उपाध्यायके समान बड़ा माने, उन्हें सामानिक कहते हैं। (३) त्रायस्त्रिंश—मन्त्री और पुरोहितके समान शिक्षा देनेवाले, पुत्रके समान प्रियपात्र और जिनसे वार्तालाप करके इन्द्र आनन्दित होते हैं, उनको त्रायस्त्रिंश कहते हैं। (४) पारिषद—इन्द्रकी बाह्य, आभ्यन्तर [और] मध्यम इन तीनों प्रकारकी सभामें बैठने योग्य सभासद पारिषद कहलाते हैं। (५) आत्मरक्ष—इन्द्रके अङ्गरक्षक। (६) लोकपाल—कोटपालके समान जिनका कार्य हो, उन्हें लोकपाल कहते हैं। (७) अनीक—जो पियादा, हाथी, घोड़े, गन्धर्व, नर्तकी आदि रूप धारण करते हैं, वे अनीक कहलाते हैं। (८) प्रकीर्णक—जनसाधारण वा प्रजा। (९) आभियोग्य—जो सेवकोंके समान हाथी, घोडा, वाहन आदि बन कर इन्द्र की सेवा करते हैं, उन्हें आभियोग्य कहते हैं। (१०) किल्विषिक—इन्द्रादि देवोंके सन्मानादिके अनधिकारी और उनसे दूर रहनेवाले देव, किल्विषिक कहलाते हैं। वे अन्यान्य सम्पूर्ण देवोंसे पृथक् रहते हैं अर्थात् उनमें मिलने-जुलने नहीं पाते।

सोलह स्वर्गोंके ऊपर जो ग्रैवेयक आदि विमान हैं, उनमें रहनेवाले देव कल्पातीत कहलाते हैं। इनमें इन्द्र, सामानिक आदिका भेदाभेद नहीं है। सभी इन्द्र हैं और इसीलिये वे 'अहमिन्द्र' कहलाते हैं।

मेरुकी चूलिका (शिखर)से एक केश-प्रमाण अन्तर पर ऋजुविमान है। वहींसे सौधर्म स्वर्गका प्रारम्भ है। मेरु-तलसे डेढ़ राजूकी ऊँचाई पर सौधर्म-ईशान युगलका अन्त हुआ है। उसके ऊपर डेढ़ राजूमें सनत्कुमार माहेन्द्र युगल है। इससे ऊपर ½—½ राजूमें छः युगल हैं। इस प्रकारसे छः राजूमें आठ युगल अवस्थित हैं। अवशिष्ट एक राजूमें ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश, ५ अनुत्तरविमान और सिद्धशिला है।

सौधर्मस्वर्गमें ३२ लाख विमान हैं। ईशानस्वर्गमें २८ लाख, सनत्कुमारमें १२ लाख, माहेन्द्रमें ८ लाख, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगलमें ४ लाख, लान्तव-कापिष्ट युगलमें ५० हजार, शुक्र-महाशुक्र युगलमें ४० हजार, सतार सहस्रार युगलमें ६ हजार और आनत-प्राणत एवं आरण-अच्युत इन दो युगलमें ७०० विमान हैं। इसी प्रकार तीन अधोग्रैवेयकोंमें १११, तीन मध्यग्रैवेयकोंमें १०७ और तीन ऊर्द्ध्वग्रैवेयकोंमें ९१ विमान हैं। किन्तु ९ अनुदिश और ५ अनुत्तरोंमें विमानोंकी संख्या एक ही एक है अर्थात् अनुदिशोंमें ९ और अनुत्तरोंमें ५ ही विमान हैं।

ये समस्त विमान ६३ पटलोंमें अवस्थित हैं। जिन विमानोंका उपरिभाग समतलमें पाया जाता है अर्थात् एकसा होता है, वे सब एक पटलके विमान कहलाते हैं। प्रत्येक पटलके मध्यस्थित विमानको "इन्द्रक विमान" कहते हैं। चारों दिशाओंमें जो पंक्तिरूप विमान हैं,

है "श्रेणीबद्ध" कहलाते हैं और जो विदिशाओंके बीचमें जो पुटकर विमान होते हैं इन्हें "प्रकीर्णक" कहते हैं। प्रथम युगलमें ३१ पटल हैं दूसरे युगलमें ७, तीसरेमें ४, चौथेमें २ पांचवेंमें १ छठेमें १ ७वें और ८वेंमें ६, नव ग्रैवेयकमें ९, नव-अनुदिशमें १ और पञ्चानुत्तरमें १ पटल है। इन पटलोंमें असंख्यात योजनका अन्तर है और ६३ पटलोंमें ६३ ही इन्द्रक विमान हैं। नीचे पटलोंके नाम लिखे जाते हैं।

१म युगलके ३१ पटल यथा—ऋतु, विमल, चन्द्र, वल्गु, वीर, अरुण, नन्दन नलिन, कांचन, रोहित चञ्चत् मारुत, ऋद्धीश, वैडूर्य, रुचक रुचिर, अङ्क, स्फटिक तपनीय, मेघ अभ्र, हारिद्र पद्म, लोहिताक्ष वज्र, नन्द्यावर्त, प्रभङ्कर, पृष्ठक, गज मित्र और प्रभ। २य युगलके ७ पटल यथा—अञ्जन, वनमाल नाग गरुड़ लाङ्गल, बलभद्र और चक्र। ३य पटलके ४पटल यथा—अरिष्ट सुरस, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर। ४थ युगलके २ पटल, यथा—ब्रह्महृदय और लान्तव। ५म युगलका १ पटल यथा—शुक्र। ६ष्ठ युगलका १ पटल यथा—सहस्रार। ७म और ८म युगलमें ६ पटल, यथा—आनत, प्राणत, पुष्पक सातक आरण और अच्युत। अधो ग्रैवेयकके ३ पटल, यथा—सुदर्शन अमोघ और सुप्रबुद्ध। मध्य ग्रैवेयकके ३ पटल, यथा—यशोधर सुभद्र और विशाल। ऊर्द्ध ग्रैवेयकके ३ पटल यथा—सुमन सौमनस और प्रीतिङ्कर। ९ अनुदिश विमानोंका १ पटल यथा—आदित्य। और ५ अनुत्तर विमानोंका १ पटल, यथा—सर्वार्थसिद्धि। सर्वार्थसिद्धि विमान मोक्षसे १२ योजन नीचा है।

ऋतुविमान प्रथम 'इन्द्रक विमान' है। उसकी चौड़ाई ४५ लाख योजन है। द्वितीय आदि इन्द्रकवि मानोंकी चौड़ाई क्रमशः घटती हुई अन्तमें सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक-विमानकी चौड़ाई १ लाख योजनकी रह गई है। प्रथम पटलकी प्रत्येक दिशामें श्रेणीबद्ध विमानोंकी संख्या ६२ है। द्वितीय आदि पटलोंमें श्रेणी बद्ध विमानोंकी संख्यामें क्रमसे एक एक घटती गई है। ६२वें अनुदिश पटलमें एक श्रेणीबद्ध विमान है और अन्तके अनुत्तर पटलमें भी एक श्रेणीबद्ध विमान है। समस्त विमानोंकी संख्यामेंसे इन्द्रक और श्रेणी बद्ध विमानोंकी संख्या निकाल देनेसे प्रकीर्णक विमानोंकी संख्या निकल आती है।

प्रथम युगलके प्रत्येक पटलमें उत्तर दिशाके श्रेणी बद्ध तथा वायव्य और ईशान दिशाके प्रकीर्णक विमानोंमें उत्तर इन्द्र ईशानकी आज्ञा प्रवर्तित है। अवशिष्ट समस्त विमानोंमें दक्षिणेन्द्र सौधर्मकी आज्ञाका पालन होता है। जिन विमानोंमें सौधर्मेन्द्रकी आज्ञा जारी है, उनके समूहको सौधर्म स्वर्ग कहते हैं और जिनमें ईशानेन्द्रकी आज्ञा प्रवर्तित है, उनके समूहको ईशानस्वर्ग। इसी प्रकार दूसरे और अन्तके दो युगलोंमें समझना चाहिये। किन्तु मध्यके चार युगलोंमें एक एक इन्द्रकी ही आज्ञा चलती है। पटलके जहां अन्तरालमें तथा विमानोंके तिर्यक् अन्तरालमें आकाश है नरककी तरह बीचमें पृथिवी नहीं है। समस्त इन्द्रक विमान संख्यात योजन चौड़े हैं और श्रेणीबद्ध विमान असंख्यात योजन। किन्तु प्रकीर्णकोंमें कोई संख्यात और कोई असंख्यात योजन चौड़े हैं। प्रथम युगलके विमानोंकी मोटाई ११२१ योजन है। दूसरेकी १०२२ योजन, तीसरेकी ९२३ चौथेकी ८२४, पांचवेंकी ७२५, छठेकी ६२६ सातवें और आठवेंकी ५२७ तीन अधोग्रैवेयकोंकी ४२८, तीन मध्यमग्रैवेयकोंकी ३२९, तीन उपरिमग्रैवेयकोंकी २३० और नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानोंकी मोटाई १११ योजन है।

प्रथम युगलके अन्तिम पटलमें उत्तर दिशाके अठारवें श्रेणीबद्ध विमानमें सौधर्मेन्द्र निवास करते हैं और दक्षिण दिशाके अठारवें श्रेणीबद्ध विमानमें ईशानेन्द्रका वास है। द्वितीय युगलके अन्तिम पटलमें दक्षिण दिशाके १६वें विमानमें सनत्कुमारेन्द्र और उत्तर दिशाके १६वें विमानमें माहेन्द्र निवास करते हैं। तृतीय युगलके अन्तिम पटलमें दक्षिणदिशाके १४वें विमानमें ब्रह्मेन्द्र चतुर्थ युगलके अन्तिम पटलमें उत्तर दिशाके १२वें विमानमें लान्तवेन्द्र पञ्चम युगलके अन्तिम पटलमें दक्षिणदिशाके १०वें श्रेणीबद्ध विमानमें शुक्रेन्द्र, षष्ठ युगलके अन्तिम पटलमें उत्तर दिशाके ८वें श्रेणीबद्ध विमानमें सहस्रारेन्द्र तथा ७म और ८म युगलोंके अन्तिम पटलोंमें दक्षिण

दिशाके छठे विमानोंमें आनतेन्द्र और आरणेन्द्र एवं उत्तर दिशाके छठे श्रेणीबद्ध विमानोंमें प्राणत और अच्युत इन्द्र निवास करते हैं। (त्रैलोक्यसार)

देवोंके मुख्यतः चार भेद हैं—१ भवनवासी, २व्यन्तर, ३ ज्योतिष्क और ४ वैमानिक। इनमेंसे वैमानिकके सिवा भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्कदेव स्वर्गोंसे नीचे निवास करते हैं और उनमें ऊपर कहे हुए कल्पवासियों (१६ स्वर्गोंके देवों) की तरह इन्द्र, सामानिक आदि भेद हैं। किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते तथा भवनवासी और व्यन्तरदेवोंके प्रत्येक भेद (असुरकुमार, नागकुमार आदि और किन्नर, किम्पुरुष आदि)-में दो दो इन्द्र होते हैं। वैमानिक स्वर्गोंमें। वैमानिकके भी स्वर्गभेदसे दो भेद हैं—१ कल्पवासी और २ कल्पातीत।

भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्कदेवोंमें तथा सौधर्म और ईशान* इन दो स्वर्गोंमें शरीरसे मनुष्यवत् कामसेवन होता है। किन्तु शेष १४ स्वर्गोंमें ऐसा नहीं होता है। सनत्कुमार और महेन्द्र इन दो स्वर्गोंके देव और देवियोंकी कामेच्छा परस्पर स्पर्श करनेसे ही शान्त हो जाती है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ट इन चार स्वर्गोंके देवदेवियोंकी कामवासना स्वाभाविक सुन्दर और शृङ्गारयुक्त रूपको देखने मात्रसे ही दूर हो जाती है। शुक्र, महाशुक्र, सतार और सहस्रार इन चार स्वर्गोंके देवदेवियोंकी कामपीड़ा परस्पर गीत एवं प्रेमपूर्ण मधुर वचनोंके सुननेसे तथा आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार स्वर्गोंके देवदेवियोंकी वासना एक दूसरेका मनमें स्मरण करनेसे ही तृप्त हो जाती है। इसके बाद (अर्थात् १६ स्वर्गोंके ऊपर) कल्पातीत देवोंकी कामेच्छा होती ही नहीं, वहांके देव सदा धर्म चर्चामें लीन रहते हैं और बड़े पुण्यात्मा होते हैं।

ऊपरके देवोंके प्रभाव, सुख, आयु, द्युति, लेश्याकी विशुद्धता, इन्द्रिय-विषय और अवधिज्ञानका विषय क्रमशः बढ़ता ही गया है। किन्तु शरीरकी ऊंचाई, परिग्रह, गमनेच्छा और अभिमान क्रमशः घटता गया है।

* देवाङ्गनाओंकी उत्पत्ति भी इन्हीं दो स्वर्गोंमें होती है। ऊपरके स्वर्गोंके देव इन दोनों स्वर्गोंसे देवाङ्गनाएं ले जाते हैं या वे स्वयं चली जाती हैं।

५वें ब्रह्मस्वर्गके अन्तमें रहनेवाले लौकान्तिकदेव कहलाते हैं। ये ब्रह्मचारी होते हैं और तीर्थङ्करोंके वैराग्य होने पर उसकी अनुमोदना करनेके लिये मध्यलोकमें अवतरण करते हैं। लौकान्तिकदेव द्वादशाङ्गके ज्ञाता और एक ही भव धारण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। इनके आठ भेद हैं, यथा—१सारस्वत, २ आदित्य, ३वह्नि ४ अरुण, ५ गर्दतोय, ६ तुषित, ७ अव्याबाध और ८ अरिष्ट। विजय, वैजयन्त और अपराजित इन चार विमानोंके देव २ भव (जन्म) धारणपूर्वक नियमसे मोक्ष प्राप्त होते हैं तथा सर्वार्थसिद्धि नामक विमानके देव चयन कर मनुष्य होते हैं और उसी शरीर द्वारा निर्वाणलाभ करते हैं।

अब इनकी आयुको अवधि कही जाती है। भवनवासीदेवोंकी उत्कृष्ट आयु इस प्रकार है,—असुरकुमार १ सागर, नागकुमार ३ पल्य, सुपर्णकुमार २॥ पल्य, द्वीपकुमार २ पल्य और शेष छः कुमारोंकी १॥—१॥ पल्य। कल्पवासी सौधर्म और ईशानस्वर्गके देवोंकी २ सागरसे कुछ अधिक, सनत्कुमार और माहेन्द्रकी, ७ सागरसे कुछ अधिक, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें १० सागरसे कुछ अधिक, लान्तव कापिष्टमें १४ सागरसे कुछ अधिक, शुक्र महाशुक्रमें १६ सागरसे कुछ अधिक, सतार-सहस्रारमें १८ सागरसे कुछ अधिक, आनत-प्राणतमें २० सागर और आरण-अच्युतमें २२ सागरकी उत्कृष्ट आयु है। कल्पातीत—पहले ग्रैवेयकमें २३ सागर. दूसरेमें २४ सागर, तीसरेमें २५ सागर, चौथेमें २६ सागर, पांचवेंमें २७ सागर, छठेमें २८ सागर, सातवेंमें २९ सागर, आठवेंमें ३० सागर, नौवेंमें ३१ सागर, नौ अनुदिशोंमें ३२ सागर, और पांच अनुत्तरोंमें ३३ सागरकी उत्कृष्ट आयु है। पूर्वके युगलोंमें जो उत्कृष्ट आयु है, वही अगले युगलोंकी जघन्य आयु समझनी चाहिए। किन्तु सर्वार्थसिद्धि विमानकी स्थिति ३३ सागरकी ही है, उसमें जघन्य स्थिति होती नहीं। प्रथम युगलकी जघन्य आयु १ पल्यकी है। किन्तु लौकान्तिकदेवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य आयु ८ सागरकी है।

आचार

जैनशास्त्रोंमें आचार दो प्रकारका माना है, एक श्रावकाचार और दूसरा मुनि-आचार। स्त्री-

पुत्रादिके साथ घरमें रह कर अथवा सम्पूर्ण परिग्रहका त्याग न करके जो धर्माचरण (अर्थात् अहिंसा आदि व्रतों का एकदेश पालन करना) किया जाता है उसे श्रावकाचार कहते हैं। और सम्पूर्ण व्रतोंका पूर्णतया पालन करनेको पश्चात् सब प्रकारका परिग्रह त्याग कर वनमें तपश्चरण आदि करनेको मुनि आचार कहते हैं। इसमें श्रावकाचारका वर्णन किया जाता है।

श्रावकाचार वा गृहस्थधर्म-श्रावकधर्म पालन करनेके अधिकारी दो प्रकारके होते हैं। एक तो वे जो जैन वा श्रावकके घर जन्म लेनेके कारण जन्मसे ही श्रावकाचारका पालन करते हैं और दूसरे जो श्रावकके घर उत्पन्न तो नहीं हुये किन्तु जैनधर्म पर दृढ़ विश्वास होनेके कारण श्रावकाचारका पालन करते हैं। ऐसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको जैनधर्म ग्रहण करनेका अधिकार है। शास्त्रोंमें कहा जाता है, 'तपोधना विना सर्वे, तीनों वर्ण द्विज हैं। किन्तु जिनके असन वसन आदि उपकरण तथा आचरण शुद्ध हैं, ऐसा शूद्र भी जैनधर्मके सुननेके योग्य हो सकता है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार ब्राह्मण आदि उत्तम वर्णवाले पुरुष शास्त्रश्रवण आदि धर्म साधन करनेकी सामग्री मिलने पर ही श्रावकधर्म धारण कर सकते हैं उसी प्रकार शूद्र भी आचरण आदिसे शुद्ध होने पर और शास्त्र श्रवण आदि धर्मसाधन करनेकी सामग्री मिलने पर श्रावकधर्मका पालन कर सकता है। इससे यह भी समझ लेना चाहिये कि शूद्रोंको त्रिवर्णके समान केवल श्रावकधर्मके पालन करनेका तथा जैनधर्म ग्रहण करने का अधिकार दिया है। किन्तु ब्राह्मणादिके समान उनके संस्कार न होनेके कारण वे द्विजोंके साथ पंक्ति भोजन और कन्यादान आदिका व्यवहार नहीं कर सकते। धर्म आचारके लिये है उसे प्रत्येक जीव धारण कर सकता है चाहे वह ब्राह्मण हो, चाहे चाण्डाल और चाहे पशु-पक्षी हो। परन्तु कन्यादान और पंक्ति भोजन आदिका सम्बन्ध जातिके साथ है। इसलिए जिस जिस जातियोंके साथ पंक्ति-भोजन आदिका व्यवहार है, उन्हींके साथ हो सकता है, अन्यके साथ नहीं। क्योंकि वह धर्मकी तरह साधारण नहीं है और न उसका साथ धर्मका कोई सम्बन्ध है।

जैनेतरके लिए श्रावक होनेकी आवश्यकता—जिस व्यक्ति ने श्रावकके घर जन्म न ले कर अन्यधर्मावलम्बियोंके घर जन्म लिया है वह अजैन कहलाता है। अजैनको शुद्ध करनेकी ४८ क्रियाएं हैं जो दीक्षान्वय क्रियाएं कहलाती हैं। यहां सम्पूर्ण क्रियाओंका वर्णन न कर आवश्यकीय क्रियाओंका वर्णन किया जाता है।

जैन महापुराणान्तर्गत आदिपुराणके ३८वें पर्वमें लिखा है—

"तत्रावतारसंज्ञा स्यादाद्या दीक्षान्वयक्रिया।
मिथ्यात्वदूषिते भव्ये सन्मार्गग्रहणोन्मुखे ॥७॥
स तु संसृत्य योगीन्द्रं युक्ताचारं महाधियम्।
गृहस्थाचार्यमथवा पृच्छतीति विचक्षणः ॥८॥"

१ अवतार क्रिया—जो भव्य पुरुष अविधि अर्थात् मिथ्यामार्गसे दूषित है वह सन्मार्ग ग्रहण करनेकी इच्छासे पहले किसी मुनि अथवा गृहस्थाचार्यके पास जा कर प्रार्थना करे कि, "मुझे निर्दोष धर्मका स्वरूप कहिये; क्योंकि संसारदुःखकी वृद्धि करनेवाले मार्ग मुझे दूषित मालूम पड़ते हैं। इस पर आचार्य उसे देव, गुरु और धर्मका यथार्थ स्वरूप समझावें। आचार्य का उपदेश सुन कर वह भव्य कुमार्गसे बुद्धि हटा कर सच्चे मार्गमें अपना प्रेम प्रगट करे और आचार्यको धर्मरूप जन्मका दाता पिता समझे। यह 'अवतार क्रिया नामक पहली क्रिया है।

२ व्रतलाभक्रिया—पश्चात् वह शिष्य अपनी यथा शक्ति व्रत ग्रहण करे। अर्थात् तीन मकार (यथा—मद्य मांस और मधु) पांच उदुम्बर (पीपल, गूलर, पाकर, बड़ और कठूमर इन पांच वृक्षोंके फल) का एवं स्थूल रूपसे (अर्थात् जिसकी करनेसे राजदण्ड हो) हिंसा असत्य चोरी परस्त्री और परिग्रहका त्याग कर दे। इस अभ्यास की उपरान्त तीसरी क्रिया सम्पन्न करे।

३ स्थानलाभक्रिया—यह क्रिया किसी शुभ मुहूर्तमें की जाती है। जिस दिन यह क्रिया करनी हो उससे एक दिन पहले उपवास करना चाहिए। दूसरे दिन गृहस्थाचार्यको उचित है कि वे जैन मन्दिरमें खूब बारीक पीसे हुए चूनसे या चन्दनादि सुगन्ध द्रव्योंसे अष्टदलयुक्त कमल और समवसरणका मण्डल बनावें एवं

विस्तारपूर्वक श्रीअर्हन्त और सिद्ध भगवान्‌की पूजा करें। इसके अतिरिक्त पञ्चपरमेष्ठीका पाठ तथा समयानुकूल अन्य पाठ भी कर सकते हैं। पूजाके उपरान्त गृहस्थाचार्यको उचित है कि पञ्चमुष्टि विधान अथवा पञ्चगुरु मुद्रा विधान करे और शिष्यके मस्तक पर हाथ रख कर 'पूतोसि दीक्षया' यह मन्त्र कहें। अनन्तर उसके मस्तक पर अक्षत निक्षेप कर णमोकारमन्त्रका उपदेश करें और कहें "मन्त्रोऽयमखिलात् पापात् त्वा पुनीतात्।" पश्चात् शिष्यको पारणा करनेके लिए अपने घर भेज देना चाहिए। अनन्तर ४ थी क्रिया करे।

४ गणग्रहक्रिया—इस क्रियाका तात्पर्य यह है कि वह भव्य पहले जो मिथ्यात्व-अवस्थामें श्रीअर्हन्तके सिवा अन्य देवताओंकी मूर्तियोंको पूजता था, उन्हें अपने घरसे ऐसे शुभ स्थानको विदा कर दें जहा उनको बाधा न हो और न कोई उनको पूजा कर सके। जिस समय उन मूर्तियोंको अपने घरसे उठावे, उस समय यह मन्त्र कहे—

'इयन्त कालमज्ञानात् पूजिता स्वकृतादरम्।
पूज्यास्त्विदानीमस्माभिरस्मत समयदेवता ॥
ततोऽपमृषितेनालमन्यत्र स्वैरमास्यताम् ॥"

अनन्तर यह कह कर शान्तस्वरूप जिनेन्द्रकी पूजा करें—"विसृज्यार्चयतः शान्ता देवता समयोचितः।" पश्चात् अन्य क्रियाएं करनी चाहिये।

५ पूजाराध्यक्रिया—अर्थात् भव्य भगवान्‌की पूजाकर के द्वादशाङ्गका संक्षिप्त अर्थ सुने वा जिनवाणीको धारण करे।

६ पुण्ययज्ञक्रिया—अर्थात् भव्य साधर्मियोंके साथ १४ पूर्वका अर्थ सुने।

७ दृढ़चर्याक्रिया—अर्थात् भव्य अपने शास्त्रोंको जान कर अन्य शास्त्रोंको सुने वा पढे। ये सब क्रियाएं किसी शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें की जाती हैं।

८ उपयोगिताक्रिया—अर्थात् अष्टमी और चतुर्दशीके दिन उपवास करे और रात्रिको कायोत्सर्ग कर धर्मध्यानमें समय बितावे। ९ उपनीतिक्रिया—जब वह भव्य जिन-भक्ति क्रियाओंमें दृढ़ हो जाय और जैनागमके ज्ञानको प्राप्त कर ले, तब गृहस्थाचार्य उसे चिह्न धारण करावे। इस क्रियामें भव्यको वेष, वृत्त और समय इन तीनों बातोंको यथाविधि पालन करनेके लिए देवगुरुके समक्ष प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है। सफेद वस्त्र और यज्ञोपवीतका धारण करना वेष कहलाता है। यज्ञोपवीतकी विधि आगे चल कर श्रावकोंके षोडशसंस्कारोंमें लिखी जायगी। आर्योंके योग्य जो षट्कर्म (असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या) करके जीविका निर्वाह करनेका नाम वृत्त है। जैनोपासककी दीक्षाका होना ही समय है। इस समयमें उसके गोत्र, नाम जाति आदिका निर्णय किया जाता है। इसके बाद कुछ दिनों तक उसे ब्रह्मचर्यमें रहना चाहिये। अनन्तर १०वीं क्रिया करे।

१० व्रतचर्याक्रिया—अर्थात् उपासकाध्ययन पढ़नेके लिए गुरु, मुनि अथवा गृहस्थाचार्यके निकट ब्रह्मचारी हो कर रहे। ११ व्रतावतरणक्रिया—अर्थात् उपासकाध्ययन पढ चुकनेके बाद ब्रह्मचारीका वेष छोड कर अपने गृहमें आगमन करे। १२ विवाहक्रिया—अर्थात् जैनधर्म अङ्गीकार करनेके पहले जिस स्त्रीके साथ विवाह किया था, उसको गृहस्थाचार्यके निकट ले जा कर श्राविकाके व्रत दिलावे। फिर किसी शुभ दिनमें सिद्धयन्त्रकी पूजा करके उस स्त्रीको ग्रहण करे। इस प्रकारसे जैनेतर व्यक्तिमें भी श्रावकको पात्रता आ सकती है।

श्रावक-श्रेणीमें प्रवेशार्थ प्रारम्भिक श्रेणी—यज्ञोपवीत आदि* संस्कारोंसे संस्कृत गृहस्थ गृहमें रहता हुआ परम्परा मोक्षरूप सर्वोत्तम पुरुषार्थको सिद्धिके लिए धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंका यथासंभव पालन करता है। मोक्षको सिद्धि साक्षात् मुनिलिङ्गके धारण करनेसे हो हो सकती है, अन्यथा नहीं। इसलिये उस अवस्थाकी प्राप्तिकी इच्छासे गृहस्थ पहले उसके नीचेकी श्रेणियां अर्थात् श्रावकाचारका पालन करता है। श्रावककी श्रेणियां क्रमसे ग्यारह हैं, जो इन ग्यारह श्रेणियोंमें सफलता प्राप्त कर लेता है, वह मुनिधर्म सुगमतासे पाल सकता है।

पहली श्रेणीका नाम है—"दर्शनप्रतिमा।" इस प्रतिमा वा श्रेणीमें प्रविष्ट होनेके लिये तैयारी करनेवाले गृहस्थको पाक्षिक श्रावक कहते हैं। वर्तमान समयमें

*षोडशसंस्कारोंका वर्णन आगे चल कर किया जायगा।

गोंको इस प्रकार भी कहा है—मद्यका त्याग, मांसका त्याग, मधुका त्याग, रात्रिभोजनका त्याग, पांचों उदुम्बर फलोंका त्याग, त्रिसन्ध्यामें देवपूजा वा देववन्दना, प्राणियों पर दया करना और पानी छान कर काममें लाना, श्रावकोंके लिए ये आठ मूलगुण भी पालनीय हैं।

इसके सिवा अन्य कई ग्रन्थकारोंने पाक्षिक श्रावकके लिए आठ मूलगुणोंके धारण करनेके साथ साथ सप्त व्यसनोंके त्याग करनेका भी उपदेश दिया है। व्यसन शौक अथवा आदतको कहते हैं। जुआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, शिकार करना, चोरी करना, वेश्या-सेवन और परस्त्रीसेवन करना इन सात बातोंके शौक अथवा आदतका त्याग कर देना ही सप्त-व्यसन त्याग कहलाता है।

पाक्षिक-श्रावक उपर्युक्त विषयोंका त्याग तो करता है, पर वह अभ्यासरूपमें। वह उनके अतीचारोंको नहीं बचा सकता। हां, उसके लिए प्रयत्न अवश्य करता है। जीवदया पालन करनेके अभिप्रायसे पाक्षिक-श्रावक षट्कर्मका भी अभ्यास करता है। यथा—१ देवपूजा—श्रावककी प्रतिदिन मन्दिरमें जाकर अष्ट द्रव्यसे पूजा करनी चाहिये। वर्तमानमें श्रावकगण प्रति दिन मन्दिरमें जा कर भगवान्‌के दर्शन करते और स्तुति आदि पढ कर अक्षत वा फल चढ़ाते हैं, यह भी देवपूजामें शामिल है। २ गुरुपास्ति—निर्ग्रन्थ गुरु वा साधुओं-को सेवा करना और उनसे उपदेश सुनना चाहिये, किन्तु इस पञ्चमकालमें दिगम्बर गुरुकी प्राप्ति होना कठिन है, इसलिए उनके गुणोंका स्मरण करना चाहिये और उनके अभावोंमें सम्यग्दृष्टि ज्ञानवान् विद्वान् ऐलक, क्षुल्लक वा ब्रह्मचारी त्यागीकी विनय करना और उनके पास बैठ कर उपदेश सुनना चाहिये।

३ स्वाध्याय—शान्तिलाभ और अज्ञान दूर करनेके लिए जैनधर्म-सम्बन्धी शास्त्रोंका पढना स्वाध्याय कहलाता है। (४) संयम—मन तथा स्पर्शन, रसना, घ्राणचक्षु और कर्ण इन पांच इन्द्रियोंको वशीभूत करनेके लिए प्रतिदिन प्रातःकालमें नियम वा प्रतिज्ञा करनेको संयम कहते हैं। जैसे—आज मैं दो बार भोजन करूंगा, अमुकके घर या अमुककी गली तक जाऊंगा। आज पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करूंगा इत्यादि। ५ तप—क्रोध, मान, माया और लोभको दमन करनेके लिए भोग, लालसासे निवृत्त होनेके लिए, धर्ममें प्रवृत्ति बढ़ानेके लिए जो क्रिया की जाय, उसे तप कहते हैं। उस क्रियाका नाम है जप वा सामायिक। अर्थात् श्रावकों-को प्रति दिन 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' 'श्रीवीतरागाय नमः' 'अरहन्तसिद्ध' 'णमो अरहंताणं' 'णमो सिद्धाणं' वा 'णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं' इत्यादि मन्त्रोंका जप करना चाहिये। साथ ही अपने किये हुए पापोंको आलोचना करनी चाहिए और अपने दोषोंके लिए संसार-के जीवोंसे क्षमा मांगनी चाहिए। इससे आत्मा शुद्ध होती है अर्थात् आत्मा पर क्रोध, मान, माया आदिका प्रभाव कम पड़ता है। ६ दान—अभयदान, आहार-दान, विद्यादान और औषधदान, ये चार प्रकारके दान हैं। मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि पात्रोंको भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये। यदि इनकी प्राप्ति न हो सके, तो किसी धर्मनिष्ठ श्रावकको आदरपूर्वक (प्रत्युपकारकी आशा न रख कर) भोजन कराना चाहिये। गरीबोंको करुणा करके खानेको अन्न वा ओढनेको वस्त्र देना चाहिये। पशु-पक्षियोंको खिलाना चाहिये। इसी प्रकार रोगियोंको औषध देना और भयभीत व्यक्तियोंका भय दूर करना चाहिये। विद्यार्थियोंको शास्त्र देना वा पढ़ाना चाहिये। इन चार प्रकारके दानोंमेंसे कुछ न कुछ प्रति दिन दान करना श्रावकोंका दानकर्म है।

जैनग्रन्थोंमें पाक्षिक-श्रावकोंको दिनचर्याके विषयमें इस प्रकार लिखा है:—

प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले उठे और शय्या पर ही बैठ कर नौ बार "णमोकार मन्त्र"का जाप करे। इसके बाद शौचादिसे निवृत्त हो पवित्र वस्त्र पहन कर जिनेन्द्र भगवान्‌के दर्शनके लिए मन्दिरमें जावे। मन्दिरमें प्रवेश करते समय "जय जय जय निःसहि निःसहि निःसहि" यह मन्त्र उच्चारण करना चाहिए। इस मन्त्रके उच्चारण करनेसे, यदि कोई देव आदि दर्शन करते हों तो वे सामनेसे हट जाते हैं। अनन्तर वीतराग श्रीजिनेन्द्र-

देवकी मूर्त्तिको, जो कि स्याद्वादधर्मकी चरम मीमांसा दृष्टान्त है, भी मस्तक टेके और षष्टाङ्ग नमस्कार करे। पश्चात् अक्षत फल वा नैवेद्य अर्पण करे और साथ ही उसका मन्त्रोच्चारण करे। अनन्तर हाथ जोड़ कर भगवान्‌की वेदीके चारों तरफ तीन बार प्रदक्षिणा दे। इसके बाद भगवत्-मूर्त्तिके सामने खड़े हो कर संस्कृत या हिन्दीका स्तवपाठ करे। अनन्तर नमस्कार करके मस्तक और नेत्रमें गन्धोदक (भगवान्‌का चरणामृत) लगावे। गन्धोदक लगानेका मन्त्र—

"निर्मलं निर्मलीकरणं पावनं पापनाशनं।
जिनगन्धोदकं वन्दे कर्माष्टकनिवारकम्॥"

तदनन्तर मन्दिरके शास्त्र-भण्डारमें जा कर धर्मशास्त्र का मनन करे और फिर जपमाला ले कर 'णमोकार' आदि मन्त्रोंका जप करे। पश्चात् घरमें आ कर उन कपड़ोंको उतार देवें और गरीबोंको शक्तिके अनुसार कुछ भोजन देवें। अनन्तर पवित्रताका ध्यान रखते हुए भोजनादि करके अपना कार्य (रोजगार) करे। फिर शामको (सूर्यास्तसे पहले) भोजन करके मन्दिर जावे और दर्शन, स्वाध्याय आरती आदि करे। इसके बाद अपने आवश्यकीय कार्योंको सम्पन्न करे और फिर पञ्च परमेष्ठीका ध्यान करके शयन करे।

यद्यपि यह पाक्षिक श्रावक बहु-आरम्भी होता है तथापि अपने धर्मका पूरा पूरा पक्षपाती होता है और यही चाहता है कि "किसी तरह मेरे धार्मिक-चारित्रको उन्नति होवे।" इसको अपने धर्मका पक्ष है, इसीलिये यह पाक्षिक श्रावक कहलाता है।

श्रावकके प्रधानतः तीन भेद हैं—(१) पाक्षिक (२) नैष्ठिक और (३) साधक। पाक्षिकश्रावकका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। नैष्ठिक श्रावक ग्यारह श्रेणियोंमें विभक्त हैं, जिनका उल्लेख हम पहले कर आये हैं। अब उन्हीं श्रेणियोंका पृथक् पृथक् वर्णन किया जाता है।

१म दर्शन प्रतिमा—यह नैष्ठिक-श्रावकको पहली श्रेणी है। पाक्षिक श्रावक जब अपनी अभ्यास अवस्था में परिपक्व हो जाता है, तो अपने आचरणकी दृढ़ताके प्रयोजनसे दर्शन प्रतिमाके नियमोंको पालन करने लगता है और उसकी नैष्ठिक संज्ञा हो जाती है। इस श्रेणीमें उसे अपने श्रद्धानको निम्नलिखित २५ दोषोंसे बचाना चाहिए। (१) शङ्का—जैनधर्म और उसके तत्त्वादिमें शङ्का करना, (२) कांक्षा—सांसारिक सुखोंमें रुचि रखना (३) विचिकित्सा—धर्मात्माओंके मलिन शरीरको देख कर ग्लानि करना (४) मूढ़दृष्टि—अन्यमत किसी चमत्कारको देख कर कुदेव, कुगुरु और कुधर्ममें श्रद्धा करना (५) अनुपगूहन—धर्मात्माओंके दोषोंको इस इच्छासे प्रगट कर दिखाना, जिससे उनकी निन्दा हो, (६) अस्थितिकरण—धर्म-मार्गसे गिरते हुएको स्थिर न करना, (७) अवात्सल्य—सहधर्मियोंसे प्रीति न करना, (८) अप्रभावना—धर्मको प्रभावना न चाहना, (९) जातिमद—अपनी उच्च जातिका अभिमान करना, (१०) कुल-मद—अपने कुल की उच्चताका घमण्ड करना (११) ऐश्वर्य मद, (१२) रूप-मद (१३) बल-मद, (१४) विद्या मद, (१५) अधिकार-मद (१६) तप मद (१७) देव-मूढ़ता—वीतराग देवके सिवा लोगोंकी देखादेखी अन्य रागद्वेषयुक्त देवों का सम्मान करना, (१८) गुरु-मूढ़ता, (१९) लोक मूढ़ता, (२०) कुदेव-अनायतन—जहां धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती ऐसे देवोंके स्थानोंको सङ्गति करना, (२१) कुगुरु आयतन सङ्गति, (२२) कुधर्म-आयतन-सङ्गति, (२३) कुदेवपूजक आयतन-सङ्गति (२४) कुगुरुपूजक आयतन सङ्गति और (२५) कुधर्मपूजक-आयतन-सङ्गति। इन पचीस दोषोंसे बच कर संवेग आदि आठ गुणोंको धारण करना चाहिये और अपने सम्यक्त्वको दृढ़ रखना चाहिए। सम्यक्त्वका विवरण हम पहले लिख चुके हैं, अतः बाहुल्य भयसे यहां नहीं लिखा गया।

दर्शनिक (दर्शनप्रतिमाका धारक) श्रावकको चमड़ेके पात्रमें रक्खा हुआ घी, तेल, हींग अथवा ऐसी कोई चीज जिसमें चर्मकी दुर्गन्ध हो आय, मक्खन, कांजी बड़ा, अचार, घुना हुआ अनाज, कन्दमूल और शाक (पत्तियां) न खाना चाहिए। इसके सिवा दर्शनिक श्रावकको निम्नलिखित अतीचारोंसे सर्वथा बचना चाहिए अर्थात् अतीचाररहित आचरण करना चाहिए। (१) मांस त्यागके अतीचार—चर्मके पात्रमें रक्खी हुई कोई भी वस्तु न खाना। (२) मद्यत्यागके अतीचार—आठ पहरसे ज्यादा समयका अचार, मुरब्बा, दही, छाछ

खाना, शराब पीनेवालेके साथ खाना, बसी हुई चीज खाना। (३) मधुत्यागके अतीचार—जिन फूलोंसे त्रस-जीव पृथक् न हो सकें (जैसे गोभी) उनको खाना, सुरमा आदिमें मधु डालना। (४) उदुम्बरत्यागके अतीचार—बिना जाने हुए किसी फलको खाना, बिना फोड़े हुए (भीतर कोई जीव है या नहीं, इस बातको बिना जांच किये) फलादिका खाना, ऐसे फलोंको खाना जिनमें जीव होनेकी सम्भावना हो (५) द्यूतत्यागके अतीचार—जूआका खेल देखना, मनोविनोदके लिए ताश आदिके खेलमें हार-जीत मनाना। (६) वेश्यात्यागके अतीचार—वेश्याओंके गीत, नाच आदि सुनना वा देखना, उनके स्थानोंमें घूमना, वेश्यासक्तोंकी सङ्गति करना। (७) अचौर्यके अतीचार—किसीके न्यायसिद्ध भाग वा हिस्सेको छिपाना। (८) शिकारत्यागके अतीचार—शिकारियोंके साथ जाना वा उनकी सङ्गति करना। (९) परस्त्रीत्यागके अतीचार—अपनी इच्छासे किसी स्त्रीके साथ गन्धर्व-विवाह करना, कुमारी कन्याओंके साथ विषयसेवनकी इच्छा रखना। (१०) रात्रिभोजनत्यागके अतीचार—रात्रिका बना हुआ भोजन दिनमें खाना, इत्यादि।

दर्शनिक श्रावकको पाक्षिक श्रावकके सम्पूर्ण आचरणोंका पालन तो करना ही पड़ता है; उसके सिवा निम्नलिखित आचरण भी उसके लिए पालनीय है। दर्शनिक श्रावकको मद्य, मांस, मधु और चमड़ेका व्यवसाय न करना चाहिए। मद्य, मांस खानेवाले स्त्री-पुरुषोंके साथ शयन और भोजन न करना चाहिए। किसी तरहका नशा न करना चाहिए। अपने अधीन स्त्रीपुत्रोंको धर्म-मार्गमें दृढ़ करनेका पूर्ण उद्यम करना चाहिए।

ज्ञानानन्द श्रावकाचारमें लिखा है कि, दर्शनप्रतिमावालेको बाईस अभक्ष्य न खाना चाहिए।

२य व्रतप्रतिमा—जो माया, मिथ्या और निदान इन तीनों शल्योंको छोड़ कर पांच अणुव्रतोंका अतीचाररहित पालन करता है तथा सात प्रकारके शीलव्रतोंको भी धारण करता है, वह 'व्रतप्रतिमा'का धारक 'व्रती' श्रावक कहलाता है। मनके कांटेको शल्य कहते हैं। शल्य तीन प्रकारकी है-१ मायाशल्य, २ मिथ्याशल्य और ३ निदानशल्य। मायाशल्य—अपने भावोंकी विशुद्धताके लिए व्रत धारण करके किसी अन्तरङ्ग लज्जा भावसे वा किसी सांसारिक प्रयोजनसे अथवा अपनी कीर्ति फैलानेके अभिप्रायसे व्रत धारण करनेको मायाशल्य कहते हैं। मिथ्याशल्य—व्रतोंका पालन करते हुए भी चित्तमें पूरा श्रद्धान न होना अर्थात् उन व्रतोंसे आत्माका कल्याण होगा या नहीं, ऐसी शङ्का रखना मिथ्याशल्य कहलाती है। निदानशल्य—इस प्रकारकी इच्छासे व्रतोंका पालन करना कि, 'परलोकमें नरक, निगोद और पशुगतिसे बच कर मेरा स्वर्ग आदिमें जन्म हो।' इन शल्योंको हृदयसे निकाल कर निम्नलिखित पांच अणुव्रतोंका पालन करना चाहिए।

(१) अहिंसाणुव्रत—अभिप्राय पूर्वक नियम करनेको व्रत कहते हैं। गृहस्थोंके समस्त पापोंका त्याग होना असम्भव है, इसलिए वे अणुव्रत अर्थात् स्थूलरूपसे व्रतोंका पालन करते हैं। समन्तभद्राचार्यने अहिंसाणुव्रतका लक्षण इस प्रकार किया है—

"सङ्कल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः॥"

अर्थात् सङ्कल्प (इरादा) करके मन वचन-काय एवं कृत-कारित अनुमोदनासे त्रसजीवोंकी हिंसा (वध) नहीं करना, अहिंसाणुव्रत कहलाता है। इस व्रतमें भोजन वा औषधके उपचार एवं पूजाके लिए किसी भी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवका घात करनेका इरादा नहीं करना चाहिए और न हिंसक कार्योंकी प्रशंसा ही करनी चाहिए। स्थूल शब्दसे मतलब यहां निरपराधियोंकी सङ्कल्प करके हिंसा करनेसे है; क्योंकि पुराणोंमें लिखा है कि अपराध करनेवालोंको चक्रवर्ती आदि यथायोग्य दण्ड दिया करते थे जो अणुव्रतके धारक थे। इससे ज्ञात होता है कि दण्डादि देनेमें न्यायपूर्वक जो प्रवृत्ति होती है, उसका विरोध अणुव्रत धारकके लिए नहीं है। श्रीअमितगति-आचार्य अपने "सुभाषितरत्नसन्दोह"में लिखते हैं—

"भेषजातिथिमंत्रादिनिमित्तेनापि नांगिनः।
प्रथमाणुव्रताशक्तैर्हिंसनीयाः कदाचन॥" ७६७॥

अर्थात् प्रथम अहिंसाणुव्रतके पालन करनेवालेको उचित है कि वह योग्य अतिथिसत्कार और मन्त्र आदिके लिए भी त्रस प्राणियोंका घात कभी न करे। तात्पर्य यह है कि अहिंसाणुव्रतीके हृदयमें करुणा बुद्धि ऐसी होना चाहिए कि वह स्थावर (एकेंद्रिय) और त्रस (द्वींद्रियादि) जीवोंकी रक्षा का करना चाहे तथा प्रवृत्तिमें खान-पान आदि व्यवहारके लिए आवश्यकताके अनुसार ही स्थावरकायोंकी विराधना (हिंसा) करे। अनावश्यक रूपसे पृथिवी जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक जीवोंकी हिंसा न करे। इस अहिंसाणुव्रतको निर्दोष पालनेके लिए इसके पांच अतीचारोंको भी त्याग देना चाहिए। अहिंसाणुव्रतके पांच अतीचार ये हैं—१ बन्ध, २ वध, ३ छेद, ४ अतिभारारोपण और ५ अन्नपाननिरोध। बन्ध—पशु आदि कोई भी जीव जो अपनी इच्छानुसार किसी स्थानको जाना चाहता हो, उसे रोकनेके लिए खूँटा, रस्सी, पींजरा आदि द्वारा बांधकर रखना बन्धातीचार कहलाता है। वध—डण्डे कोड़े, बेंत आदिसे जीवोंको मारना वधातिचार है। छेदन—कान नाक आदि अवयवोंको काटना, छेदातिचार है। अतिभारारोपण—बैल घोड़ा आदि प्राणी अपनी शक्तिके अनुसार जितना बोझ ले जा सकें उससे ज्यादा बोझ लादना, अतिभारारोपण कहलाता है। अन्नपाननिरोध—किसी भी कारणसे उन बैल घोड़ा आदि जानवरोंको भूखा या प्यासा रखना, अन्नपाननिरोधातीचार है।

(२) सत्याणुव्रत—स्थूल झूठ और दूसरेके कष्ट देनेवाले असत्य भाषण किया जाता है उस असत्यके त्याग करनेमें आदर रखने या सत्य बोलनेको सत्याणुव्रत कहते हैं। तात्पर्य यह है कि अणुव्रतीको ऐसे हित मित वचन कहने चाहिये जिससे अपना और दूसरेका अहित न हो या किसीको कष्ट न पहुँचे। इसके भी पांच अतीचार हैं। (१) मिथ्योपदेश—अभ्युदय और मोक्ष सिद्ध करने वाली विविध क्रियाओंमें किसी भी अन्य पुरुषको विपरीतरूप प्रवृत्ति कराना या विपरीत अभिप्राय बतलाना, मिथ्योपदेश है। (२) रहोभ्याख्यान—स्त्री पुरुषों द्वारा एकान्तमें की हुई विविध क्रियाओंको प्रगट कर देना रहोभ्याख्यान कहलाता है। (३) कूटलेखक्रिया—जो बात किसी दूसरेने नहीं कही हो उसी बातको किसीकी प्रेरणासे 'उसने यह बात कही है या उसने अमुक काम किया है' इस प्रकार ठगनेके लिए झूठे लेख लिखना, कूटलेखक्रिया है। (४) न्यासापहार—कोई व्यक्ति सोना, चांदी आदि द्रव्य किसीके पास धरोहर रख गया हो और फिर वह अपनी रक्खी हुई चीजोंकी संख्या भूल कर कम मांगने लगे तो उस समय धरोहर रखनेवालेका ऐसा कहना कि 'अच्छा ठीक है, इतना ही ले जाओ' अथवा वह न मांगे या मांगे भी तो न देना न्यासापहार है। (५) साकारमन्त्रभेद—किसी अंग के प्रकरण अथवा अङ्गोंके विकारसे दूसरेका अभिप्राय जान कर ईर्षा और डाहके कारण उस अभिप्रायको प्रगट कर देना साकारमन्त्रभेद अतीचार है। सत्याणुव्रतके पालकके लिए ये पांच अतीचार त्याज्य हैं। कारण इन पांच अतीचारोंके होनेसे सत्याणुव्रतका पूर्णतया पालन नहीं होता।

(३) अचौर्याणुव्रत—दूसरेकी गिरी हुई पड़ी हुई रक्खी हुई या भूली हुई वस्तु (धन आदि) स्वयं ग्रहण न कर या दूसरेको उठा कर न देना अचौर्याणुव्रत है। इसके पांच अतीचार हैं, १ स्तेनप्रयोग (दूसरेको चोरीका उपाय बताना), २ तदाहृतादान (चोरीका माल खरीदना), ३ विरुद्धराज्यातिक्रम (राज्यकी आज्ञाके विरुद्ध लेन देन करना), ४ हीनाधिकमानोन्मान (नाप तोलमें कमती देना या बढ़ती लेना अथवा गज, फुट आदि कमती बढ़ती रखना) और ५ प्रतिरूपकव्यवहार (अधिक मूल्य की वस्तुमें अल्पमूल्यकी वस्तु मिला कर बेच देना)। ये पांच अचौर्याणुव्रतके अतीचार त्याग देने योग्य हैं। क्योंकि इनके बिना दूर हुए अचौर्याणुव्रतमें उत्तमता नहीं आती।

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत—उपात्त (विवाहित) और अनुपात्त (अविवाहित) परस्त्रियों या परपुरुषोंके समागममें विरक्त रहना, अर्थात् परस्त्री या परपुरुषसे रमण न करके स्वस्त्री या स्वपतिमें सन्तोष रखनेका नाम ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इस व्रतका अतीचार रहित पालन करना ही प्रशस्त है। ब्रह्मचर्याणुव्रतके पांच अतीचार हैं। (१) परविवाह-

का, हल चलानेका पृथिवी खोदने आदिका उपदेश देना पापोपदेश कहलाता है। (२) हिंसादान—तलवार, फरसा, कुदाली, बन्दूक, छुरा, विष आदि पदार्थोंका जिनसे अन्य प्राणियोंका वध हो सकता है, दान करना, हिंसादान है। इसलिए ऐसी चीजें किसीको भी नहीं देनी चाहिए। (३) अपध्यान—अन्य जीवोंके दोष ग्रहण करनेके भाव, अन्यके धन आदिकी इच्छा, परस्त्रीको देखनेकी आकांक्षा, मनुष्य वा तिर्यंचोंके लड़ाई देखनेकी इच्छा, अन्यकी स्त्री, पुत्र, धन आजीविका आदिके नष्ट करनेकी चिन्ता, परका अपवाद अयश वा अपमान चाहना आदि भावोंका निरन्तर हृदयमें उदय होना अपध्यान कहलाता है। (४) दुःश्रुति अनर्थदण्ड—जिन कथाओं वा पुराणादि शास्त्रोंके सुनने वा पढ़नेसे मन कलुषित हो ऐसे आरम्भपरिग्रह बढ़ानेवाले पापकर्ममें साहस देनेवाले तथा मिथ्याभाव, राग द्वेष अभिमान अथवा कामको प्रकट करनेवाले शास्त्र एवं कथाओंका पढ़ना वा सुनना दुःश्रुति अनर्थदण्ड कहलाता है। जैसे कामोत्पादक उपन्यास नाटक आदिका पढ़ना वा अश्लील किस्साका सुनना आदि। (५) प्रमादचर्या—बेमतलब पानी गिराना, जमीन खोदना, आग जलाना, वनस्पति छेदना आदि प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड है। इन पांच प्रकारके अनर्थदण्डोंके त्याग कर देनेका नाम अनर्थदण्डत्यागव्रत है। इसके पांच अतीचार हैं, यथा—१ कन्दर्प (लोगोंको तरह २ के मसखरोंमें अशोभनपूर्ण वचन बोलना), २ कौत्कुच्य (अश्लील वचन बोलनेके साथ साथ शरीरसे भी कुचेष्टा करना), ३ मौखर्य (निरर्थक बहुत प्रलाप वा बकवाद करना), ४ असमीक्ष्याधिकरण (बिना प्रयोजन बहुतसे सामान, हाथी, घोड़ा, गाड़ी आदि एकत्र करना) और ५ भोगोपभोगानर्थक्य (भोग और उपभोगकी वस्तुओंको अधिक परिमाणमें ले कर पीछे उन्हें फेंक देना जैसे थालीमें बहुतसा खाना ले कर पीछे उसे छोड़ देना वा फेंक देना इत्यादि) इन अतीचारोंका ध्यान रखते हुए अनर्थदण्डत्यागव्रत का पालन करना उचित है। अब चार शिक्षा व्रतोंका वर्णन किया जाता है—

(४) सामायिकव्रत—तीनों सन्ध्याओंके समय समस्त पापयोग क्रियाओंसे विरक्त हो मनसे राग-द्वेष छोड़ साम्यभाव धारण कर शुद्ध आत्मस्वरूपमें लीन होनेकी क्रियाको सामायिकव्रत कहते हैं। सामायिक नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे छः प्रकार है। यथा, (१) नामसामायिक—सामायिकमें कोई नामके ध्यानमें अच्छे या बुरे नाम आ जाय तो उनसे राग-द्वेष न कर समभाव रखना वा निश्चयनयकी अपेक्षा उन्हें हेय समझना। (२) स्थापना सामायिक—सुन्दर वा असुन्दर स्त्री पुरुष आदिकी मूर्ति वा चित्रका स्मरण होने पर उनसे राग-द्वेष न कर सबको पुद्गलमय समझना। (३) द्रव्य सामायिक—इष्ट वा अनिष्ट, चेतन वा अचेतन आदि द्रव्योंमें राग-द्वेष न कर अपने स्वरूपमें उपयोग रखना। (४) क्षेत्रसामायिक—सुहावने वा असुहावने ग्राम, नगर, वन, मकान आदि किसी स्थानका स्मरण होने पर उसमें राग-द्वेष न कर, सब क्षेत्रोंको एकरूप जान कर आत्मामें तन्मय होना। (५) काल सामायिक—अच्छी या बुरी ऋतु, शुक्ल वा कृष्णपक्ष शुभ वा अशुभ दिन, नक्षत्र आदिका ख्याल आने पर किसीमें राग वा द्वेष न कर सर्व कालको एक व्यवहारकालरूप मान अपने स्वरूपमें स्थिर रहना। (६) भावसामायिक—विषय कषाय आदि विभाव भावोंको पुद्गलकर्म जनित विकार मान कर उनसे मोह वा द्वेष न करना और अपने भावको निजानन्द समतामें उपयुक्त रखना।

सामायिक करनेवालेको सात प्रकारकी शुद्धि वा योग्यता रखनी चाहिए। यथा—(१) क्षेत्रशुद्धि—सामायिक करनेके लिए उपद्रव रहित वन चैत्यालय धर्मशाला वा अपने मकानके किसी निर्जन स्थानमें बैठना चाहिए। स्थान स्वच्छ और पवित्र होना चाहिए। (२) कालशुद्धि—सामायिक करनेके उपयुक्त काल तीन हैं प्रातःकाल, सायंकाल और मध्याह्नकाल। ये तीन काल शुद्ध वा पवित्र हैं, इन कालोंमें सामायिक करना कालशुद्धि कहलाती है। (३) आसनशुद्धि—सामायिक करनेके लिए जहां बैठे वा खड़े होवें, वहां कोई दर्भासन वा चटाई अथवा धोती [illegible] वा काठ आसन बिछा लेना चाहिए। उस पर कायोत्सर्ग, यथा खड़े वा पर्यङ्कासनसे पद्मासनपूर्वक सामायिक करना

चाहिये। (४) मनःशुद्धि—मनमें आर्तध्यान वा रौद्रध्यान न कर मुक्तिकी रुचिसे धर्मध्यानमें आसक्त रहना चाहिए। (५) वचनशुद्धि—सामायिक करते समय परम आवश्यकीय कार्य होने पर भी किसीसे वार्तालाप नहीं करना चाहिए; केवल पाठ पढ़ने और शुद्ध मन्त्रोच्चारण करनेमें ही वचनका उपयोग करना चाहिये। (६) कायशुद्धि—शरीरमें मलमूत्रकी वाधा न रखनी चाहिए और न स्त्री-संसर्ग किये हुए शरीरसे सामायिक ही करना चाहिए। (७) विनयशुद्धि—सामायिक करते समय देव, गुरु, धर्म और शास्त्रको विनय रख कर उनके गुणोंमें भक्ति करनी चाहिए; अपनेमें ध्यान और तप आदिका अहङ्कार न आने देना चाहिए।

जैनशास्त्रोंमें सामायिक करनेकी विधि इस प्रकार लिखी है—सामायिक करनेवाले श्रावकोंको उचित है कि, उपर्युक्त सातों शुद्धियोंका विचार रखते हुए सामायिक प्रारम्भ करनेके पहले कालका परिमाण और समयका नियम कर लें। अन्तर्मुहूर्त काल तक धर्मध्यान करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। सामायिकके कालकी मर्यादा करनेके बाद इस बातका भी प्रमाण कर लेना उचित है कि "इतने समय तक मैं इस स्थानके चारों ओर १ गज वा २ गज क्षेत्र तक जाऊंगा, अधिक नहीं अथवा मेरे साथ जो परिग्रह है, उसके सिवा मैंने इतने काल पर्यन्त सर्व परिग्रहका त्याग किया" इत्यादि, अनन्तर खड़े हो कर नौ नौ वार णमोकार-मन्त्र पढ़ते हुए चारों दिशाओंमें तीन आवर्त पूर्वक साष्टाग नमस्कार करें फिर सामायिक करनेके लिए बैठ जावें। सामायिक प्रातः, मध्याह्न सायाह्न तीनों संध्याओंमें करना चाहिए।

इस सामायिक-शिक्षाव्रतको शुद्धताके लिए निम्नलिखित पांच अतीचारोंको दूर करना चाहिए। (१) मनःदुःप्रणिधान—मनको विषय कषाय आदि पापबन्धके कार्योंमें चञ्चल करना। (२) वाग्दुःप्रणिधान—वचनको चञ्चल करना अर्थात् सामायिक करते समय किसीसे वार्तालाप करना आदि। (३) कायदुःप्रणिधान—शरीरको हिलाना। (४) अनादर—उत्साहरहित अनादरसे सामायिक करना। (५) स्मृत्यनुपस्थान—सामायिकमें एकाग्रता धारण न कर चित्तकी व्यग्रताके कारण पाठ, क्रिया वा मन्त्रादि भूल जाना। इन अतीचारोंको न होने देना चाहिए।

(५) प्रोषधोपवासव्रत—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीके दिन समस्त आरम्भ (सांसारिक कार्य) एवं विषय कषाय और चार प्रकारके आहारोंका त्याग कर धर्म-कथा श्रवण करते हुए सोलह प्रहर व्यतीत करनेको प्रोषधोपवासव्रत कहते हैं। पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको त्याग कर सर्व इन्द्रियोंको उपवासमें स्थिर रखना चाहिए। उपवासके दिन चारों प्रकारका आहार (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय) तथा उबटन करना, सिर मल कर नहाना, गन्ध सूंघना, माला पहनना आदि त्याग देना चाहिए। केवल पूजाके लिए धारा स्नानमात्र किया जा सकता है। व्रती श्रावक इसे अभ्यासरूपसे पालते हैं, किन्तु ४र्थ प्रोषधोपवासप्रतिमाके धारक इसका नियमरूपसे पालन करते हैं। अतएव इसके अतीचार आदि प्रोषधोपवासप्रतिमाके विवरणमें लिखेंगे।

(६) भोगोपभोगपरिमाणव्रत—कुछ भोग उपभोगकी सामग्रीको रख कर बाकीका यमनियमरूप * त्याग कर देना भोगोपभोगपरिमाण कहलाता है। बहुतसे पदार्थ ऐसे हैं; जिनसे लाभ तो थोड़ा होता है और पाप अधिक, उनको जन्म भरके लिए छोड़ देना चाहिए। इस व्रतके पालनेवालेको प्रतिदिन निम्नलिखित विषयोंका नियम करना उचित है। यथा—आज मैं इतनी वार भोजन करूंगा, आज मैं दूध, दही, घी, तेल, नमक और मीठा इन छ रसोंमेंसे अमुक रस छोड़ता हूं, आज भोजनके सिवा इतनी वार पानी पीऊंगा, आज ब्रह्मचर्य पालूंगा, आज नाटक न देखूंगा इत्यादि। इस व्रतके पांच अतीचार हैं, यथा—१ सचित्ताहार (जीवसहित पुष्पफलादिका आहार करना), २ सचित्तसम्बन्धाहार (सचित्त अर्थात् जीवसहित वस्तुसे स्पर्श किये हुए पदार्थोंको भक्षण करना), ३ सचित्तसंमिश्राहार (सचित्त पदार्थसे मिले हुए पदार्थोंका भोजन करना), ४ अभिषव (पुष्टिकर पदार्थोंका आहार

* यावज्जीव त्याग करनेको यम और किसी नियत समय तकके लिए त्याग करनेको नियम कहते हैं।

करना) और दुःपक्वाहार (भले प्रकार नहीं पके हुए पदार्थ या जो पदार्थ खानेमें या देरमें हजम हों ऐसे पदार्थोंका भोजन करना)। ये अतीचार सर्वथा त्याज्य हैं।

(७) अतिथिसंविभागव्रत—अतिथि पुरुषोंको अर्थात् जो मोक्षके लिए उद्यमी, संयमी और अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्गमें शुद्ध हैं, ऐसे व्रती पुरुषोंको शुद्ध मनसे आहार, औषध, उपकरण तथा वसतिकाका दान करना, अतिथि संविभाग कहलाता है। अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके धारक गृहरहित तपस्वीको विधिके अनुसार धर्मके लिए अन्य प्रकारकी इच्छा न रख कर जो दान दिया जाता है, वह अतिथिसंविभाग या वैयावृत्य है। इस पात्रदानके लिए (१) विधि, (२) द्रव्य (३) दाता और (४) पात्र इन चार विषयोंका ज्ञान होना आवश्यक है। इन चारों विषयोंकी जितनी उत्तमता होगी उतना ही फल होगा।

(१) विधिनिर्णय—अतिथिसंविभाग या पात्र दान देनेवालेके लिए नव प्रकारकी विधि बतलाई गई है।

१म संग्रहविधि-पहले मुनिराजको 'पड़गाहना' करें। अर्थात् शुद्ध वस्त्र पहन कर एवं प्रासुक शुद्ध जलका कलश ले कर अपने द्वार पर णमोकार मन्त्र जपता हुआ पात्र (मुनि) की बाटमें खड़ा रहे। उस समय घरमें भोजन तैयार रखना चाहिए और चक्की चलाना, उखलीमें कूटना, बुहारी देना, चूल्हा जलाना आदि आरम्भ न करना चाहिए। क्योंकि आरम्भ होते देख मुनि लौट जाते हैं। बाट देखते हुए जब मुनिके दर्शन हों, तब नमोस्तु कह कर उन्हें नमस्कार करे और कहे—"आहार जल शुद्ध वर्तते, अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ।"

२री विधिका नाम है—उच्चस्थान। अर्थात् मुनिको घरके भीतर ले जा कर किसी ऊँचे स्थान पर या काष्ठकी चौकी आदि पर विनयभक्तिसे विराजमान करना चाहिए।

३री पादोदक विधि है इसमें शुद्ध प्रासुक जलसे पाद प्रक्षालन किया जाता है। ४थी विधि अर्चन करना है अर्थात् अष्ट द्रव्यसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए। परन्तु इस पूजनमें ५।७ मिनटसे अधिक समय न लगाना चाहिए; क्योंकि आहारका समय निकल जानेसे वे बिना भोजन किये ही वनको चल देते हैं। ५वीं विधि प्रणाम करना है अर्थात् भक्तिभावसे नमस्कार करना चाहिए। ६ठी विधिका नाम वाक्शुद्धि है। मुनिके पड़गाहनेके बादसे उनके गमन पर्यन्त स्वयं एवं घरके अन्य मनुष्योंको ऐसे वचन कहने चाहिए जो अत्यन्त आवश्यकीय हों और जिनमें शान्तिभङ्ग न हो। ७वीं विधि कायशुद्धि है। दान देनेवालेका शरीर शुद्ध होना चाहिए। मलमूत्रकी बाधा, किसी प्रकारकी व्याधि, फोड़ा, कुष्ठ आदि न होना चाहिए। हाथोंसे कमरके नीचेका भाग न छूना चाहिए। अपने हाथ मुनिके हाथोंसे ऊँचे रखने चाहिए। यदि मुनिके हाथसे छू गये, तो वे आहार न लेंगे। अतएव खूब सावधानी रखना उचित है। घरके अन्य पुरुष, स्त्री या बालकको मुनिके सामने शुद्ध वस्त्र पहन कर ही आना चाहिए। ८वीं विधिका नाम है मनःशुद्धि। पात्रदान देते समय मनमें क्रोध, कपट, लोभ, ईर्ष्या आदि न आने देना चाहिए। प्रफुल्ल शुभ विचारोंको स्थान देना उचित है। ९वीं विधि एषणाशुद्धि है अर्थात् भोजनकी पूर्ण शुद्धि रखनी चाहिए। कारण, पवित्र भोजन ही मुनियोंके लिए भक्ष्य है। एषणाशुद्धि चार प्रकारकी है। यथा—
(१) द्रव्यशुद्ध—जो अन्न, दूध, मीठा आदि रस और जल रसोईके काममें लिया जाय वह शुद्ध मर्यादाका हो और सड़ा, घुना या कीटरहित हो तथा जो रसोई बनावे उसका भी शरीर पवित्र होना आवश्यकीय है। (२) क्षेत्रशुद्धि—रसोई बनानेका स्थान शुद्ध होना चाहिए अर्थात् वह चौका कोमल झाड़ूसे साफ किया हुआ, शुद्ध पानीसे धोया हुआ और केवल मिट्टीसे पुता हुआ होना चाहिए; गोबर आदिसे नहीं। चौकेमें अशुद्ध वस्त्रादि पहने हुए या बालकोंका प्रवेश न होना चाहिए तथा शुद्ध जलसे पैर धो कर उसमें प्रवेश करना चाहिए। श्रावकको पवित्र जल ही व्यवहार करना उचित है, क्योंकि मुनि अपवित्रका व्यवहार देख कर भोजन नहीं करते। (३) कालशुद्धि—ठीक समय पर भोजन तैयार कर रखना और ठीक समय पर ही अर्थात् ११ बजेसे पहले ही मुनिको दान करना चाहिए।

(४) भावशुद्धि—दाताको खास मुनिके लिए रसोई न बनानी चाहिए ; बल्कि अपनी ही रसोईमेंसे दान करना उचित है। कारण मुनि उद्दिष्ट भोजनके त्यागी हैं, उन्हें यदि यह बात मालूम हो जाय तो वे भोजन नहीं करते।

(२) द्रव्यविशेष—भोजन ऐसा होना चाहिए जो मुनिके राग, द्वेष, असंयम, मद, दुःख, भय, रोग आदि उत्पन्न न करे और शीघ्र पचनेवाला हो। मुनिको प्रसन्न करके अभिप्रायसे व्यञ्जन, मिष्टान्न या गरिष्ट भोजन दान करनेसे मुनिकी तपश्चर्यामें बाधा होती है। अतएव ऐसा भोजन उन्हें कदापि न देना चाहिए। इसमें पुण्य नहीं होता, बल्कि पापबन्ध होता है।

(३) दातृविशेष—दान देनेवाला बहुत विचारवान् होना चाहिए। छोटे बालक वा नादान स्त्री अथवा निर्बल रोगी मनुष्यको दानके लिए नहीं उठना चाहिए। ऐसे व्यक्तियोंको केवल दानको देख कर उसकी अनुमोदना करनी चाहिए, इसीसे उनको दानका फल मिलता है। दातामें मुख्यतः ७ गुण होने चाहिए। जैनाचार्य श्रीअमृतचन्द्रस्वामी कहते हैं—

"ऐहिकफलानपेक्षा क्षान्तिर्निष्कपटतानसूयत्वम्।
अविषादित्वमुदित्वे निरहंकारित्वमिति हि दातृगुणाः॥१६९॥"

(पुरुषार्थसिद्ध्युपायः)

१ ऐहिकफलानपेक्षा—दाता ऐहिक इसलोक सम्बन्धी फलकी इच्छा न करे। २ क्षान्तिः—क्षमाभाव धारण करे। ३ निष्कपटता-कपट वा छलभाव न करे और न छलसे अशुद्ध वस्तुका दान करे। ४ अनसूयत्व—दान करते हुए अन्य दाताओंसे ईर्षा न करे कि, 'मेरा दान अमुकसे उत्तम हो'। ५ अविषादित्व—दानके समय किसी प्रकारका दुःख वा शोक न करे। ६ मुदित्व—दानके समय हर्षचित्त रहे। ७ दाताको यह अभिमान न करना चाहिए कि, मैं दानी हूं, पात्रदान देता हूं अतः पुण्यात्मा हूं।' दाताको शास्त्रका ज्ञाता भी होना चाहिए।

४। पात्रविशेष—जो दान लेनेके उपयुक्त हों अर्थात् जो मोक्षमार्गके साधन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि गुणोंसे विशिष्ट हों, उन्हें पात्र कहते हैं। पात्र तीन प्रकारके हैं, उत्तम, मध्यम और जघन्य। सर्व परिग्रहके त्यागी महाव्रतधारक मुनि उत्तम-पात्र हैं अणुव्रत-धारक सम्यग्दृष्टि श्रावक मध्यम-पात्र और व्रतरहित पर श्रद्धासहित जैन जघन्य-पात्र है।

इस वैयावृत्य शिक्षाव्रतमें श्रीअर्हन्तदेवकी पूजा भी गर्भित है। व्रती श्रावकको उचित है कि अष्टद्रव्यसे शुद्धमनसे नित्य भगवान्‌की पूजा करे। इसप्रकार इन द्वादश व्रतोंका व्रतप्रतिमा नामक नैष्टिक श्रावकको २य श्रेणीमें पालन करना चाहिए। व्रती श्रावक १२ व्रतोंमें-से ५ अणुव्रतोंके अतीचारोंको नहीं होने देता, किन्तु ७ शीलव्रतोंके दोषोंको शक्तिके अनुसार ही बचाता है। यदि पांच अणुव्रतोंमें कोई दोष वा अतीचार लग जाय, तो उसका दण्ड वा प्रायश्चित्त लेना पड़ता है, किन्तु शीलव्रतोंके लिए ऐसा नियम नहीं।

सागरधर्मामृतकार पण्डित आशाधरजी लिखते हैं—अहिंसाव्रतकी रक्षा और मूलव्रतको उज्ज्वलताके लिए धीरपुरुष रात्रिको चारों ही प्रकारका भोजन त्याग दे। व्रती श्रावकको उचित है कि, भोजन करते समय मुखसे कुछ न कहे और न किसी अङ्गसे कुछ इशारा ही करे क्योंकि इष्ट भोज्य वस्तुके मांगनेसे भोजनमें गृद्धता बढ़ती है। किन्तु यदि कोई थालीमें कुछ देता हो और उसकी आवश्यकता न हो, तो इशारेसे उसे मना कर सकते हैं। भोजन करते समय यदि गीला चमड़ा, गीली हड्डी, शराब, मांस, लोहू, पीव आदि दिखाई दे वा छू जाय, रजस्वला स्त्री, कुत्ता, बिल्ली, चाण्डाल आदिका स्पर्श हो जाय, कठोर (जैसे, अमुकको काट डालो, अमुकके घर आग जल गई इत्यादि) शब्द सुनाई पड़े तथा त्यक्त पदार्थ खानेमें आ जाय, थालीमें कोई कीट पतङ्गादि पड़ कर वह मर जाय, तो भोजन छोड़ देना चाहिए।

३य सामायिक प्रतिमा—व्रतप्रतिमाके नियमोंका अभ्यास करके अधिक ध्यान करनेके अभिप्रायसे तीसरी श्रेणी (सामायिक प्रतिमा) में आ कर पूर्वोक्त * विधिके अनुसार दिनमें तीन बार सामायिकको क्रियाका पालन करना चाहिए। इस अभ्यासमें सामायिकका काल अन्तर्मुहूर्त (४८ मिनट) हैं, अर्थात् १ समयसे ले कर ४८

* विधि हम सामायिक व्रतके प्रकरणमें कह चुके हैं।

मिनट वा २ घड़ी तक सामायिक कर सकते हैं। श्रीमद् समन्तभद्राचार्य कहते हैं—

"चतुरावर्तत्रितयश्चतुःप्रणामस्थितो यथाजातः ।
सामायिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥"

जो चारों दिशाओंमें तीन तीन बार आवर्त और चार चार बार प्रणाम करता है जो कायोत्सर्गमें स्थित रहता है जो बाह्य और अभ्यन्तर, परिग्रहकी चिन्तासे पृथक् है, जो पद्मासन और खड्गासन इन दो आसनोंमें से किसी एक आसनको धारण करता और त्रिकाल वन्दना करता है वह सामायिक प्रतिमाका धारक "सामायिकी श्रावक" है।

सामायिकव्रतका वर्णन ऊपर व्रतप्रतिमाके प्रकरणमें कर चुके हैं। व्रती श्रावक और सामायिकी श्रावक इन दोनोंके सामायिक-व्रतमें क्या अन्तर है, इस विषयमें आशाधरजीका यह मत है—दूसरी प्रतिमावालेको अष्टमी और चतुर्दशीके दिन सामायिक करनी ही चाहिए। किन्तु अन्य दिनके लिए वह बाध्य नहीं है। परन्तु सामायिकी श्रावक प्रत्येक दिन त्रिकाल सामायिक करनेके लिए बाध्य है।

इसके अतीचार आदि व्रतप्रतिमान्तर्गत सामायिक व्रतके जैसे ही समझने चाहिए।

४र्थ प्रोषधोपवासप्रतिमा—जो प्रत्येक मासके चार पर्वोंमें, अर्थात् दो अष्टमी और दो चतुर्दशीमें अपनी शक्तिको न छिपा कर शुभ ध्यानमें तत्पर रहता हुआ प्रोषधके नियमका पालन करता है, वह प्रोषधोपवास प्रतिमाका धारक "प्रोषधी श्रावक" कहलाता है।

प्रोषधोपवास करनेका नियम जैन शास्त्रोंमें इस प्रकार लिखा है—७मी और १३शीके दिन (दोपहर को) एक समय भोजन करना चाहिए फिर ८मी और १४शीको निर्जल उपवास करके ९मी और पूर्णिमा या अमावस्याको एक समय भोजन करना चाहिए; अर्थात् ४८ घण्टा तक निराहार रहना प्रोषधोपवास है। किन्तु वह समय धर्मध्यानमें ही बिताना चाहिए। उपवासके दिन अन्य सांसारिक कार्य का आरम्भ करनेसे उपवास-का फल नहीं होता। जो इस प्रकार प्रोषधोपवासका यावज्जीव पालन करता है वही यथार्थमें "प्रोषधी श्रावक" है। अतीचार आदि पहले कह चुके हैं।

५म सचित्तत्याग प्रतिमा—जो कच्चे अप्रासुक या अपक्व फल मूल शाक शाखा गांठ, कन्द फल और बीज नहीं खाता वह दयावान् "सचित्तत्यागी श्रावक" कहलाता है। इस श्रेणीका श्रावक सचित्त या जीव सहित कोई भी चीज मुखमें नहीं देता। कच्चा पानी नहीं पीता अन्न आदिको पकाकर मुंहमें दे तोड़ता नहीं। प्रासुक या अचित्त वस्तुओंका ही व्यवहार करता है। योनिभूत अन्न (जिसमें अंकुर उत्पन्न हो सके हों) आदि वह सूखा भी हो नहीं खाता। सचित्तत्यागी श्रावक पत्र (पान, गोभी, सरसों आदिके पत्ते), फल (कोरा, कच्चे कुष्माण्ड, नीबू अनार, कच्चे आम, कच्चे केले आदि), शाख (हल्दी अदरख), मूल (अदरख आदि तथा नीम आदि वृक्षों की जड़) किसलय (छोटे पत्ते), बीज (कच्चे और भीगे चने, मूंग तिल, बाजरा मसूर, जौरा गेहूं, जौ धान आदि) इन पदार्थोंको नहीं खाता।

जो वस्तु अग्निसे तप्त अर्थात् खूब गरम कर ली जाय, पक जाय सूर्यमें या अग्निमें पक जाय, सूख जाय और जिसमें नमक खटाई आदि कषाय पदार्थ मिला दिये जाय वह वस्तु 'प्रासुक' हो जाती है। जैसे-जल गरम करनेसे या लवङ्ग आदि द्वारा उसके स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णको बदल देनेसे अन्न पकानेसे और फल सुखाने या छिन्न भिन्न करनेसे प्रासुक होता है।

६ष्ठ दिवामैथुनत्याग प्रतिमा—अमितगति आचार्य का मत है कि जो मन्दरागी कर्मोंका दिनमें सेवन नहीं करता (या उसका त्याग करता है); उस दिन मैथुनत्याग प्रतिमाके धारकको "दिवामैथुनत्यागी श्रावक" कहते हैं। किन्तु आचार्यप्रवर श्रीसमन्तभद्र स्वामीने इस प्रतिमाका नाम "रात्रिभुक्तित्यागप्रतिमा" बतलाया है; जिसका स्वरूप इस प्रकार है—

जो रात्रिको दयार्द्रचित्त हो अन्न (चावल, गेहूं आदि) पान (दूध, जल आदि), खाद्य (बरफी पेड़ा आदि) और लेह्य (रबड़ी चटनी आदि) इन चारों प्रकारके पदार्थोंको नहीं खाता, वह रात्रिभुक्ति-त्यागी श्रावक है।

७म ब्रह्मचर्य प्रतिमा—इसमें पहले स्त्रीका त्याग

नहीं था, किन्तु इस श्रेणीमें श्रावकको स्वस्त्री भी त्याज्य है। रत्नकरण्डश्रावकाचारमें लिखा है—

"मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतगन्धि बीभत्सं।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥"

मलके बीजभूत, मलको उत्पन्न करनेवाले मलप्रवाही दुर्गन्धयुक्त और लज्जास्पद वा ग्लानियुक्त अङ्गको समझ कर जो कामसेवनसे सर्वथा विरक्त होता है, वह ब्रह्मचर्य नामक ७म प्रतिमाका धारक ब्रह्मचारी श्रावक है। श्रीकार्तिकेयस्वामी कहते हैं—जो ज्ञानी मन, वचन और कायसे समस्त स्त्रियोंकी अभिलाषाका त्याग कर देता है तथा जो कृत, कारित, अनुमोदना और मन, वचन, कायसे नव प्रकार मैथुनको छोड़ देता है एवं ब्रह्मचर्यकी दीक्षामें आरूढ़ होता है, वह ही ब्रह्मव्रती वा ब्रह्मचारी श्रावक है।

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा नामक जैनग्रन्थकी संस्कृत टीकामें लिखा है—"अष्टादशसहस्रप्रकारेण शीलं पालयति।" अर्थात् ब्रह्मचारी श्रावक १८ हजार भेदों सहित शीलव्रतका पालन करता है। यहां शीलव्रतसे तात्पर्य ब्रह्मचर्यव्रतका है।

जैन-ग्रन्थोंमें शील वा ब्रह्मचर्यके अठारह हजार भेदोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है—४ प्रकारकी स्त्रियां होती हैं जैसे देवी, मानुषी, तिरची (पशु) और अचेतन (काष्टचित्रादि निर्मित), इन चारों प्रकारकी स्त्रियोंका मन, वचन, कायसे गुणा करनेसे १२ भेद हुए। इनको कृत, कारित और अनुमोदना इन तीनोंसे गुणा करने पर ३६ भेद हुये। ३६को पांचों इन्द्रियोंसे गुणा करने पर १८० भेद हुए। इनको १० प्रकारके संस्कारोंसे गुणा करने पर १८०० भेद हुए। और १८००को १० प्रकारकी काम-चेष्टाओंसे गुणा करने पर १८००० भेद हुए। मैथुनके कारण पांचों इन्द्रियोंमें चञ्चलता होती है, इसलिए पाँच इन्द्रियें शामिल की गईं। शरीरसंस्कार, शृङ्गारसंस्कार, हास्यक्रीड़ा, संसर्गवाञ्छा, विषयसंकल्प, शरीर निरीक्षण, शरीरमण्डन (देहको आभूषणादिसे सुसज्जित करना) दान (स्नेहकी वृद्धिके लिये स्त्रीको प्रिय वस्तु देना), पूर्वरतानुस्मरण (-पहलेके किये हुए कामसेवनको याद करना) और मनश्चिन्ता (मनमें मैथुनकी चिन्ता करना) ये दश संस्कार कामोत्पादक हैं, इसलिये इन्हें भी शामिल किया। इन सबके वशीभूत होनेके कारण कामीकी १० तरहकी चेष्टाएं हो जाती हैं। यथा—चिन्ता (स्त्रीकी फिकर), दर्शनेच्छा (स्त्रीके देखनेकी चाह), दीर्घोच्छ्वास (आह करना), शरीरपीड़ा, शरीरदाह, मन्दाग्नि, मूर्च्छा, मदोन्मत्तता, प्राणसन्देह और शुक्रमोचन।

ब्रह्मचर्यव्रतकी रक्षाके लिये निम्नलिखित ८ विषयोंको छोड़ देना चाहिये। यथा—१ स्त्रियोंके स्थानमें रहना, २ रुचि और प्रेमसे स्त्रियोंको देखना, ३ मीठे वचनोंसे परस्पर भाषण करना, ४ पूर्वभोगोंका चिंतवन करना, ५ गरिष्टभोजन जी भरके खाना, ६ शरीरको साफ सुथरा रख कर शृङ्गार करना, ७ स्त्रीके पलङ्ग वा आसन पर सोना, ८ कामवासनाकी कथाएं कहना वा सुनना और ९ भर पेट भोजन करना। इन नौ बातोंको सर्वथा छोड़ देना ही उचित है।

इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारी श्रावकका यह भी कर्त्तव्यकर्म है कि, वह उदासीनता-सूचक वस्त्र पहने। स्त्री सहित अवस्थामें जिन कपड़ोंको पहनता था, उन्हें न पहने। जिन वस्त्रोंके पहननेसे अपनेको तथा दूसरोंको वैराग्य उत्पन्न हो, ऐसे सफेद वा गैरिक सूती वस्त्र पहने। सिर पर कनटोप वा छोटा दुपट्टा बांधे जिसको देखते ही अन्य लोग समझ जांय कि वह स्त्रीका त्यागी वा ब्रह्मचारी है। इसी प्रकार आभूषण आदि भी न पहने। यदि घरमें ही रहे तो किसी एकान्त कमरेमें अथवा मन्दिरके निकट धर्मशाला आदिमें शयन करे जहां स्त्रियोंकी पहुंच न हो। घरमें सिर्फ भोजन करने जावे और व्यापार करता हो तो व्यापार कर चुकनेके बाद अवशिष्ट समय धर्मस्थानमें बितावे। अपना कार्य पुत्रादिको सौंपता जावे और स्वयं निराकुल हो ब्रह्मचर्यका पालन करे।

ब्रह्मचारी श्रावक अपने निर्वाहके लिए प्रयोजनके अनुसार कुछ रुपये भी रख सकता है। स्वयं वा अन्यसे रसोई बनवा सकता है एवं किसीके आदरपूर्वक निमन्त्रण करने पर शुद्ध आहारको ग्रहण कर सकता है।

धरकुण्डको अग्निकी संज्ञा आह्वनीय और शेषकेवली-कुण्डकी अग्निको संज्ञा दक्षिणाग्नि है।

बड़ी वेदीके चारों कोनों पर चार खंभ खड़े करके ऊपर चंदोवा बांधें तथा खंभोंको दूब और फटलो द्रुमोंसे सुशोभित कर दें। इसके सिवा चमर, दर्पण धूप, घट, पंखा, ध्वजा, कलश आदि द्रव्य भी यथास्थान रक्खें।

यदि संक्षेपमें होम करना हो, तो तीन कुण्ड न बना कर सिर्फ एक चतुष्कोण (तीर्थङ्कर) कुण्ड बना लेनेसे ही काम चल सकता है। उसीमें सब आहुतियां की जा सकती हैं।

जिस पात्रसे अग्निमें होम द्रव्य डालते हैं, उसे स्रुवा कहते हैं और जिससे घी डालते हैं उसे स्रुक्। स्रुवा चन्दनका बनाना चाहिए और स्रुक क्षीरवृक्ष (वरगद) का। यदि चन्दन और क्षीरवृक्षकी लकड़ी न मिले, तो पीपलकी लकड़ी काममें लाई जा सकती है। स्रुवा नासिकाके समान चौड़े मुखका और स्रुक् गायकी पूंछकी भांति लम्बी मुंहका बनाना चाहिए। दोनोंकी लम्बाई एक एक अरत्नि होनी चाहिए। होमकुण्डमें जलनेवाली लकड़ीका नाम समिधा है। शमी, पीपल, पलाश और वरगदकी लकड़ी समिधा बनानेके उपयुक्त है। समिधाकी प्रत्येक लकड़ी सीधी एवं १० वा १२ अङ्गुल लंबी होनी चाहिए।

होताको उचित है कि कुण्डोंके पूर्व, कुशासन पर पद्मासन लगा कर, प्रतिमाकी ओर (पश्चिमकी तरफ) मुख कर बैठे और होमकी समाप्ति पर्यन्त मौन धारण पूर्वक परमात्माका ध्यान करते हुए श्रीजिनेन्द्रदेवको अर्घ्य एवं तर्पण* प्रदान कर बीचके तीर्थङ्करकुण्डमें सुगन्धिद्रव्यसे अग्निमण्डल अङ्कित करे। अग्निमण्डलका आकार इस प्रकार है—
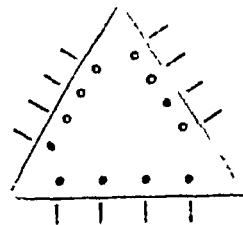
इसके बाद मन्त्र पढ़ते हुए एक दर्भ-पूलकमें जरासा लाल कपड़ा लपेट कर अग्नि जलावें और साथ ही घी डालता रहे। पश्चात् आचमन, प्राणायाम और स्तुति करके अग्निका आह्वान करें एवं अर्घ्य प्रदान करें। फिर तीर्थङ्करकुण्डमेंसे थोड़ीसी अग्नि ले कर गोल-कुण्डमें तथा गोलकुण्डमेंसे थोड़ीसी अग्नि ले कर गणधरकुण्डमें अग्नि जलावें।

जैन गृहस्थगण जिन मन्दिर-प्रतिष्ठा, वेदी-प्रतिष्ठा, बिम्ब प्रतिष्ठा, नूतनगृहनिर्माण, ग्रहपीड़ा और महा-रोगादिके लिए तथा षोडश संस्कारोंमें होम करते हैं।

होमके तीन भेद हैं—(१) जलहोम, (२) वायुका होम और (३) कुण्डहोम। जलहोम—इसके लिए मिट्टी या तांबेके गोल कुण्डको—जो चन्दन, अक्षत, माला आदिसे शोभित उत्तम जलसे परिपूर्ण एवं धोये हुए तण्डुलोंके पुञ्ज पर स्थापित हो—आवश्यकता है। इस कुण्डमें तिल, धान्य और यव इन तीन धान्योंसे नवग्रहोंको तथा गेहूं, मूंग, चना, उड़द, तिल, धान्य और यव इन सप्त धान्योंसे दिक्पालोंको आहुति देनी चाहिए। अन्तमें नारिकेल द्वारा पूर्णाहुति देनी चाहिए।

होमके मन्त्रादि—होताको उचित है कि होमशालामें पहुंचते ही पहले "ओं ह्रीं क्ष्वीं भूः स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ कर भूमि पर पुष्प निक्षेप करे। अनन्तर "ओं ह्रीं अत्रस्थ क्षेत्रपालाय स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ कर क्षेत्रपालको नैवेद्य प्रदान करें। इसके बाद "ओं ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्न-विनाशाय महीं पूतां कुरु कुरु हूं फट स्वाहा" यह कहते हुए दर्भपूल (कुशकी गड्डी) से भूमिको साफ करें। फिर दर्भपूलसे भूमि पर जल सेचन करें। मन्त्र इस प्रकार

* पुष्प, अक्षत (तंडुल), चन्दन और शुद्ध वा प्राशुक जलसे तर्पण किया जाता है।

न्ताम् । तिथिकरणमुहूर्त्तलग्नदेवता इह चान्यग्रामादिष्वपि वास्तु देवताः सर्वे गुरुभक्ता अक्षीण कोशकाष्ठागारा भवेयुः । ध्यान-तपोवीर्यधर्मानुष्ठानादिमेवास्तु मातृपितृभ्रातृसुतपुत्रकलत्रस्वजनसम्बन्धिबन्धुवर्गसहितानां धनधान्यैश्वर्यद्युतिबलयशो वृद्धिरस्तु सामोदप्रमोदोस्तु शान्तिर्भवतु कांतिर्भवतु तुष्टिर्भवतु पुष्टिर्भवतु सिद्धिर्भवतु काममांगल्योत्सवाः सन्तु शाम्यन्तु घोराणि पुण्यं वर्द्धतां कुलं गोत्रं चाभिवर्द्धतां स्वस्तिभद्रं चास्तु वः हतास्ते परिपन्थिनः शत्रुर्निघनं यातु निः प्रतीपमस्तु शिवमतुलमस्तु सिद्धा सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः स्वाहा ।'

अनन्तर "ओं ह्रीं स्वस्तये मंगल कुम्भं स्थापयामि स्वाहा" इस मन्त्रका उच्चारण कर मङ्गल-कलश स्थापन करें और उसके निकट स्थालीपात्र*, प्रेक्षणपात्र† एवं पूजा और होमकी सामग्री रक्खें । फिर "ओं ह्रीं परमेष्ठिभ्यो: नमो नमः" कह कर परमात्माका ध्यान करें और "ओं ह्रीं णमो अरहन्ताणं ध्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा" कह कर परमात्माको अर्घ्य प्रदान करें । पश्चात् "ओं ह्रीं नीरजसे नमः, ओं दर्पमथनाय नमः" इस मन्त्रको कुण्डमें लिखें और जल, दर्भ, गन्ध, अक्षत आदिसे कुण्डकी पूजा करें ।

इसके बाद पूर्वकथित नियमानुसार कार्य करना चाहिये । यहां सिर्फ उनके मन्त्र लिखे जाते हैं । अग्नि स्थापन करनेका मन्त्र—"ओं ओं ओं ओं रं रं रं रं अग्निं स्थापयामि स्वाहा ।" अग्नि जलानेका मन्त्र—"ओं ओं ओं ओं रं रं रं रं दर्भं निक्षिप्य अग्नि सन्धुक्षणं करोमि स्वाहा ।" आचमन करनेका मन्त्र—"ओं ह्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रां हं सः स्वाहा ।" प्राणायाम करनेका मन्त्र—"ओं भूर्भुवः स्वः अ सि आ उ सा अर्हं प्राणायामं करोमि स्वाहा ।" होमकुण्डकी परिधिबन्धन‡ करनेका मन्त्र—"ओं नमोऽर्हते भगवते सत्यवचनसन्दर्भाय केवलज्ञानदर्शन प्रज्वलनाय पूर्वोत्तराग्रं दर्भपरिस्तरणमुदग्रसमित्परिस्तरणं च करोमि स्वाहा ।" अग्निकुमार देवको आह्वान करनेका मन्त्र—"ओं ओं ओं ओं रं रं रं रं अग्निकुमार देव आगच्छागच्छ ।"

अनन्तर कुण्डकी प्रथम मेखला पर १५ तिथि देवताओंको आह्वान कर उनको अर्घ्य प्रदान करें । मन्त्र—'ओं ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णसर्वलक्षण-सम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिह्न-सपरिवाराः पंचदशतिथिदेवताः आगच्छत आगच्छत इदं अर्घ्यं गृह्णीत गृह्णीत स्वाहा ।' इसके बाद २य मेखला पर ग्रह देवताओंका आह्वान करें और अर्घ्य चढ़ावें । मन्त्र पूर्ववत् ही है, सिर्फ "पंचदशतिथिदेवताः" के स्थान पर "नव ग्रहदेवता" पढ़ें । पश्चात् ऊपरकी मेखला पर बत्तीस इन्द्रोंका आह्वान और पूजन करें । मन्त्र पूर्ववत् ही है, सिर्फ "नवग्रहदेवता" के स्थान पर "चतुर्णिकायेन्द्रदेवता" पढ़ें । तत्पश्चात् छोटी वेदी पर दश दिक्पालोंका आह्वान करें ।

अनन्तर "ओं ह्रीं स्थालीपाकमुपहरामि स्वाहा" कह कर स्थालीपाकको फूल और तण्डुलसे भर कर अपने पास रक्खें । फिर "ओं ह्रीं होमद्रव्यमादधामि स्वाहा" कह कर होम द्रव्य और "ओं ह्रीं आज्यपात्रमुपस्थापयामि स्वाहा" कह कर घृतपात्र अपने पास रक्खें । पश्चात् "ओं ह्रीं स्रुचमुपस्करोमि स्वाहा, स्रुवस्तापनं मार्जनं जलसेचनं पुनस्तापनमग्रे निधापनं च" यह मन्त्र पढ कर स्रुचाका संस्कार करें अर्थात् पहले उसे अग्निमें तपा कर धोवें और जलसिञ्चन कर फिर तपावें और अपने पास रक्खें । "ओं ह्रीं स्रुवमुपस्करोमि स्वाहा" कह कर स्रुचाकी तरह स्रुवाका संस्कार करें । इसी प्रकार "ओं ह्रीं आज्यमुद्वासयामि स्वाहा" कह कर दर्भ-मूलकसे घीका उद्वासन करें, 'ओं ह्रीं पवित्रतरजलेन द्रव्यशुद्धिं करोमि स्वाहा" कह कर होम द्रव्यको पवित्र जलसे छींट कर शुद्ध करें, "ओं ह्रीं कुशमाददामि स्वाहा" कह कर दर्भमूलकसे होम-द्रव्यका स्पर्श करें, 'ओं ह्रीं परमपवित्राय स्वाहा" कह कर दहिने हाथकी अनामिकामें पवित्री (डाभकी अंगूठी) पहनें 'ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राय स्वाहा" कह कर यज्ञोपवीत पहनें वा बदलें, "ओं ह्रीं अग्निकुमाराय परिषेचनं करोमि स्वाहा" कह कर अग्निकुण्डके चारों ओर थोडा थोड़ा जल छिड़कें । तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर १८ बार घृतकी आहुति देवें । मन्त्र—

---

* पंचपात्र अर्थात् गन्ध, अक्षत, पुष्प, फल आदिसे सुशोभित तांबेके छोटे छोटे पात्र विलाव ।

† प्रेक्षण करनेके उपयुक्त रकाबी ।

‡ पांच पांच दर्भ मिला कर तथा उनमें थोडी ऐंठ दे कर कुण्डके चारों तरफ रखना चाहिये ।

सौम्याः स्वाध्यग्निदेवताः प्रसन्ना भवन्तु। शेषाः सर्वेऽपि देवा एतं राजानं विराजयन्तु। दातारं तर्पयन्तु। सङ्घं श्रावयन्तु। वृष्टिं वर्षयन्तु। विघ्नं विघातयन्तु। मारीं निवारयन्तु। ओं ह्रीं नमोऽर्हते भगवते पूर्णज्ञानित-ध्यानाय सम्पूर्णफलार्घ्यां पूर्णाहुतिं विदध्महे।'

पूर्णाहुतिके बाद "ओं दर्पणोद्योत ज्ञानप्रज्वलितसर्व-लोकप्रकाशक भगवन्नर्हन् श्रद्धां मेधां प्रज्ञां बुद्धिं श्रियं बलं आयुष्यं तेजः आरोग्यं सर्वशान्तिं विधेहि स्वाहा।" यह मंत्र पढ़ कर भगवान्का स्तोत्र (प्रार्थना) पढ़ें। फिर शान्तिधारा* दे कर भगवान्के चरणारविन्दमें पुष्पाञ्जलि प्रदान करें एवं होमकुण्डकी भस्म अपने तथा उपस्थित व्यक्तियोंके मस्तकमें लगावें।

इस प्रकार होम समाप्त करके होमकी वेदी पर विराजमान जिन-प्रतिमा और सिद्ध-यंत्रको यथास्थान पहुंचा दें और देवोंको विसर्जन करें।

अनन्तर घरमें स्त्रियोंको सत्यदेवता (अर्हत् आदि पञ्च परमेष्ठी), क्रियादेवता (छत्र, चक्र, अग्नि), कुल देवता (चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि) और गृहदेवता (विश्वेश्वरी, धरणेन्द्र, श्रीदेवी, कुवेर)-की पूजा करनी चाहिए।

१म गर्भाधान संस्कार—विवाहके उपरान्त स्त्रीके ऋतुमती होने पर, चतुर्थ दिवसमें गर्भाधान-संस्कार सम्पन्न होता है। इसमें गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि इन तीनों अग्नियोंकी पूजा करनेके लिए होम किया जाता है। वेदी कुण्डादिके बन चुकने पर सौभाग्यवती वृद्ध स्त्रियां मिल कर स्नान किये हुए पति एवं स्त्रीको वस्त्राभूषणोंसे अलङ्कृत कर घरसे वेदीके समीप लावें। आते समय स्नाता स्त्रीके दोनों हाथोंमें अथवा मस्तक पर माला, वस्त्र सूत्र, नारिकेल और पांच पल्लवोंसे सुशोभित एक मङ्गल-कलश रख देना चाहिए। वेदीके समीप आने पर गृहस्थाचार्यको उचित है कि बैठनेकी दोनों वेदियों और कुण्डोंके बीचकी भूमि पर हल्दी और चावलोंसे स्वस्तिक बना कर, उस पर कलश रख दें। फिर बैठनेकी वेदी पर स्त्रीको दाहिनी ओर और पुरुषको बाईं ओर बिठा देवें।

इसके बाद पूर्वविधिके अनुसार होम करना प्रारम्भ कर दें। होम समाप्त हो जाने पर गृहस्थाचार्य कलश-को हाथमें उठा लें और पूर्व-कथित पुण्याहवचन पढ़ते हुए उस कलशमेंसे जल ले कर दम्पती पर सेचन करें। अनन्तर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए दम्पती पर पुष्प (केशर-रञ्जित तण्डुल) निक्षेप करें। मन्त्र—"सज्जाति-भागी भव। सद्गृहभागी भव। मुनीन्द्रभागी भव। सुरेन्द्र-भागी भव। परमराज्यभागी भव। आर्हन्त्यभागी भव। परमनिर्वाणभागी भव।"

तदनन्तर स्त्री और पुरुष दोनों अग्निकी तीन प्रद-क्षिणा दे कर अपने अपने स्थान पर बैठ जांय और सौभाग्यवती स्त्रियां कुंकुम निक्षेप कर दोनोंकी आरती करें और आशीर्वाद देवें। अनन्तर अपने जातीय स्त्री-पुरुषोंको भोजन, ताम्बूल आदि द्वारा सम्मान करें।

(महापुराणान्तर्गत जैन-आदिपुराण, ३८।७०-७९)

२य प्रीति-संस्कार—यह संस्कार गर्भाधानके दिनसे तीसरे महीनेमें किया जाता है। प्रथम ही गर्भिणी स्त्रीको तैल आदि सुगन्धित द्रव्योंसे नहला कर वस्त्रा-भूषणोंसे अलङ्कृत करें और शरीर पर चन्दनादि लगावें। फिर गर्भाधान क्रियाके नियमानुसार दम्पतिको होमकुण्डके पास बिठावें और होम करना प्रारम्भ कर दें। होमके मन्त्रादि "होमविधि"में लिख चुके हैं। होम समाप्त होने पर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर आहुति देवें। अनन्तर पतिको पत्नी पर एवं पत्नीको पति पर पुष्प क्षेपण करना चाहिए। मन्त्र—"त्रैलोक्यनाथो भव। त्रैका-लज्ञानी भव। त्रिरत्नस्वामी भव।" इसके बाद शान्तिपाठ पढ़ कर देवोंको विसर्जन करें। इसी समय "ओं कं ठं हं पः अ सि आ उ सा गर्भार्भकं प्रमोदेन परिरक्षत स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ कर पति अपनी गर्भिणी स्त्रीका उदर सेचन कर स्पर्श करे। पश्चात् स्त्री अपने पेट पर गन्धोदक लगावे और उदरस्थ शिशुकी रक्षाके लिए "कलिकुण्ड-यन्त्र" गले-में धारण करे। अनन्तर सौभाग्यवती स्त्रियोंको भोज-नादिसे सन्तुष्ट करना चाहिए।

इस उत्सवमें द्वार पर तोरण अवश्य लगाना चाहिए-

* शान्तिधाराका मन्त्र प्रसिद्ध है, इसलिए यहां नहीं लिखा गया। "नित्यनियमपूजा" से जान लेना चाहिए।

जानी चाहिए। इसका दूसरा नाम मोद या प्रमोद क्रिया है। (जैन आदिपुराण ३८।७७-७९)

३य सुप्रीति-संस्कार—प्रीतिक्रियाके २ महीने बाद सुप्रीति संस्कार होता है। इसमें भी पूर्ववत् होम पूजा आदि किया जाता है। होम सम्पन्न होनेके बाद निम्न लिखित मन्त्र पढ़ कर आहुति देवें और पुष्पक्षेपण करें। मन्त्र—"अवतार कल्याणभागी भव। मन्दरेन्द्राभिषेक कल्याणभागी भव। निष्क्रान्तिकल्याणभागी भव। आर्हन्त्यकल्याणभागी भव। परमनिर्वाणकल्याणभागी भव।"

अनन्तर पति स्त्रीके हाथमें ताम्बूल (लगा हुआ पान) देवे तथा स्त्रीके चतुर्थ पुष्प, पत्ते और दाभसे बनी हुई माला पहनावें। मन्त्र—"ओं ह्रीं ... स्वाहा।"

अनन्तर मिट्टीके तीन छोटे छोटे घड़ोंमें घोर, दूसरे भात और तीसरेमें पानी भर कर मन्त्र पाठपूर्वक उन्हें स्त्रीके सामने रख दे। मन्त्र—"ओं ... स्वाहा।" फिर किसी ना समझ छोटी लड़कीसे उनमेंसे किसी एक कलशका स्पर्श करावें। लड़की यदि घीके घड़े छूए तो समझना चाहिए कि पुत्र होगा। यदि दही भातका कलश छूए तो कन्या और पानीवाला कलश छूए तो नपुंसक सन्तानकी या मृतकका अनुमान करना चाहिए। अनन्तर शान्ति पाठ और विसर्जन करके कार्य समाप्त करे।

(जैन-आदिपुराण, ३८।८०—८१)

४र्थ धृति-संस्कार—इसका द्वितीय नाम सीमन्तोन्नयन या सीमन्तविधि है। यह संस्कार सातवें महीनेमें शुभ दिन, शुभनक्षत्र और शुभयोग आदिमें करना चाहिए। इसकी प्रारम्भिक कार्य प्रीति या सुप्रीतिक्रियाके समान है। होम भी पूर्ववत् विधिके अनुसार करना चाहिए। होम समाप्तिके बाद सजातीय और सकुटुम्बी सधवा सौभाग्यवती (पुत्रकी माता) स्त्रियाँ द्वारा गर्भिणीके ... गर्भिणीके केशोंमें तेल मांग भरानी चाहिए। स्त्रियोंको भी तेल और सिन्दूरसे शुभो भिगा आवश्यक है। इसके बाद पतिको चाहिये कि अपने हाथसे स्त्रीके उदर और मस्तक पर उदम्बरपूर्ण निक्षेप करे। मन्त्र—"ओं ह्रीं ... स्वाहा।" अनन्तर आचार्यको स्त्रीके गलेमें उदम्बरफलकी माला पहनानी चाहिए मन्त्र—"ओं नमोऽर्हते भगवते ... स्वाहा।"

अन्तमें आचार्यको उचित है कि मङ्गलकलश हाथमें ले कर पूर्वोक्त पुण्याह वचनोंका पाठ करते हुए स्त्री पर गर्भके छींटे देवें तथा निम्नलिखित मन्त्रोच्चारणपूर्वक पुष्प (रञ्जित तण्डुल) निक्षेप करे। मंत्र -"सज्जाति दातृभागी भव। सद्गृहिदातृभागी भव। मुनीन्द्रदातृभागी भव। सुरेन्द्रदातृभागी भव। परमराज्यदातृभागी भव। आर्हन्त्य दातृभागी भव। परमनिर्वाणदातृभागी भव।" अनन्तर गृहस्वामीका कर्तव्य है कि आगत व्यक्तियोंको ताम्बूल आदिसे सत्कार कर विदा करे।

(जैन आदिपुराण ३८।८२—८३)

५म मोद संस्कार—यह संस्कार प्रायः प्रीतिक्रियाके समान है। प्रभेद इतना ही है कि प्रतिसंस्कार तीसरे महीनेमें होता है और यह नौवें महीनेमें।

(जैन-आदिपुराण ३८।८३—८४)

६ष्ठ जातकर्म या जन्म-संस्कार—यह संस्कार पुत्र या पुत्रीके जन्मके दिन होता है। जन्मक्रिया देखो।

७म नामकरण संस्कार—यह संस्कार पुत्रोत्पत्तिके १२वें, १६वें २०वें अथवा ३२वें दिन किया जाता है। यदि कदाचित् इस अवधिके भीतर नामकरण न हो सके तो जन्मदिनसे एक वर्ष तक किसी भी शुभ दिनमें किया जा सकता है। पूर्वोक्त विधिके अनुसार होमकुण्ड आदि निर्माण कर कुण्डोंके पूर्वकी तरफ पुत्रसहित दम्पतीको बिठाना चाहिए। यथाविधि होम समाप्त होनेके बाद घरमें तथा जिन मन्दिरमें बाद्यध्वनि कराना चाहिए। इसी समय आचार्यको मङ्गलकलश हाथमें ले कर पुण्याहवचन उच्चारण करते हुए दम्पती और पुत्र पर सिञ्चन करना चाहिए। पश्चात् पिता एक थालीमें तण्डुल बिछा कर उस पर पहले अपना नाम फिर पुत्रका नाम जो (रक्खा गया हो) लिखे। फिर घी और दूधमें रक्खे हुए आम्रपत्तोंको निकाल कर बच्चेको पहनावें और उस घी-दूधको दाभसे बच्चेके मस्तक

कण्ठ, वक्षस्थल और भुजाओंसे लगावे। इसके बाद एक हजार आठ नामोंसे युक्त श्रीजिनेन्द्रभगवान्‌से नाम याचना करे और निम्नलिखित मंत्रोच्चारणपूर्वक उच्चस्वरसे पुत्रका नाम प्रकट कर दे। मंत्र—"ओं ह्रीं श्रीं क्लीं अर्ह बालकस्य नामकरणं करोमि नाम्ना आयुरारोग्यैश्वर्यवान् भव भव अष्टोत्तरसहस्राभिधानार्हो भव भव क्ष्रौं क्ष्रीं अ सि आ उ सा स्वाहा।" अनन्तर आचार्य बालकको आशीर्वाद कर कार्य समाप्त करें, मंत्र—'दिव्याष्टसहस्रनामभागी भव। विजयनामाष्टसहस्रभागी भव। परमनामाष्टसहस्रभागी भव।"

इसी दिन संध्याके समय कर्णवेध करना चाहिए, मंत्र—"ओं ह्रीं श्रीं अर्ह बालकस्य ह्रः कर्णवेधनं (बालिका हो तो 'कर्णनासावेधनं') करोमि अ सि आ उ सा स्वाहा।"

८म बहिर्यान संस्कार—यह संस्कार २य, ३य अथवा ४र्थ मासमें किया जाता है। यह संस्कार शुक्लपक्ष एवं शुभमुहूर्तमें ही किया जाता है। प्रथम ही बालकको स्नान करावें और पुण्याहवचन पढ़ कर सिंचन करें। फिर वस्त्राभूषणसे सुसज्जित कर, पिता वा माता उसे गोदमें ले कर गाजे बाजेके साथ जिन-मन्दिर जावें। वह वेदीकी तीन प्रदक्षिणा दे कर साष्टाङ्ग नमस्कार और पूजा आदि करें। अनन्तर "ओं नमोऽर्हते भगवते जिनभास्कराय तव मुखं बालकं दर्शयामि दीर्घायुष्यं कुरु कुरु स्वाहा" इस मंत्रको पढ़ कर बालकको श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शन करावें। इसके बाद आगत सज्जनोंका पूर्वोक्त प्रकारसे सत्कार कर कार्य समाप्त करें। (जैन आदिपु० ३८।९०-९२)

९म निषद्य संस्कार—यह संस्कार पांचवें महीनेमें होता है। इसमें बालकको उपवेशन (बैठना) कराया जाता है। होम पूजनादिके बाद वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान इन पाचकुमार तीर्थङ्करोंकी पूजा करें। फिर चावल, तिल, गेहूं, मूंग, उड़द और जवसे रङ्गावली बनावें और उस पर एक वस्त्र बिछा कर बालकको (पूर्वमुख) पद्मासनसे बिठा दें। बिठानेका [illegible]त्र—"ओं ह्रीं अर्ह अ सि आ उ सा बालकमुपवे[illegible]मि स्वाहा।" उपरान्त बालककी आरती उतारे और [illegible]शीर्वाद दे कर कार्य समाप्त करें।

(जैन-आदिपुराण ३८।९३—९४)

१०म अन्नप्राशनसंस्कार—यह संस्कार ७वें महीनेमें, अथवा ८वें वा ९वें महीनेमें भी हो सकता है। जिनेन्द्रकी पूजा और होम समाप्त होने पर बालकोंका पिता पुत्रको बाईं गोदमें ले कर पूर्वको ओर मुंह करके बैठे। बच्चेका मुंह दक्षिणकी तरफ होना चाहिये। पश्चात् एक कटोरीमें दूध भात घी मिश्री और दूसरीमें दही भात ले कर, पहले दूध-भात बालकके मुंहमें देवे और फिर दही भात खिलावे। मन्त्र इस प्रकार है—"ओं नमोऽर्हते भगवते भुक्तिशक्तिप्रदायकाय बालकं भोजयामि पुष्टिस्तुष्टिश्चारोग्यं भवतु भवतु झ्वीं क्ष्वीं स्वाहा।' अनन्तर आचार्य "दिव्यामृतभागी भव। विजयामृतभागी भव।" कह कर बालकको आशीर्वाद देवें। इस दिन समागत बन्धुवर्गको भोजन कराना चाहिए। (जैन-आदिपु० प०३८)

११श व्युष्टि-संस्कार—जिस दिन बालक पूरा एक वर्षका होता है, उस दिन यह संस्कार किया जाता है। इसमें कोई विशेष क्रिया नहीं होती। केवल पूर्ववत् होम किया जाता है और मन्त्र पढ़ कर आशीर्वाद दिया जाता है। मन्त्र—"उपनयनजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव। वैवाहनिष्टवर्षवर्द्धनभागी भव। मुनीन्द्रवर्षवर्द्धनभागी भव। सुरेन्द्रवर्षवर्द्धनभागी भव। मन्दराभिषेकवर्द्धनभागी भव। यौवराज्यवर्द्धनभागी भव। महाराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव। परमराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव। आर्हन्त्यराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव।" (जैन-आदि पुराण ३८।९६—९७)

१२श चौलकर्म वा केशवाय संस्कार—यह संस्कार १म, ३य, ५म अथवा ६ष्ठ वर्षमें सम्पन्न होता है।

चौलक्रिया देखो।

१३श लिपिसंख्यान संस्कार—यह संस्कार ५वें वा ७वें वर्ष किया जाता है। इसमें शुभमुहूर्तका होना अत्यन्त आवश्यक है। मुहूर्तके दिन, पहले तो जिनेन्द्रकी पूजा करें, फिर गुरु और शास्त्रका पूजा करके पूर्वनियमानुसार होम करें। पश्चात् बालकको स्नानादि करा कर और वस्त्राभूषण पहना कर विद्यालय ले जावें। वहां बालकके द्वारा जयादि पञ्चदेवताओंको नमस्कारपूर्वक अर्घ्य प्रदान करावें। अनन्तर बालक शिक्षक वा गुरु महाशयको व[illegible] आदि भेंट दे कर प्रणाम [illegible]ध्याय वा[illegible] चाहिए कि एक

मौञ्जोका त्याग कर दे और गुरुको साक्षी पूर्वक वस्त्र पहन कर ताम्बूल खावे और शय्या पर शयन करे। अनन्तर वैश्य होवे तो वाणिज्यकार्यमें लग जाय और क्षत्रिय होवे तो शस्त्रधारण करे।

१६श विवाह संस्कार—यह संस्कार १६वें वर्षसे २५ वर्षकी उम्र तक किया जा सकता है, किन्तु कन्याके लिए १२वें वा १३वें वर्षका हो नियम है। साधारणतः विवाहके पांच अङ्ग हैं—वाग्दान, प्रदान, वरण, पाणिपीडन और सप्तपदी। जैनविवाहविधि देखो।

जैन-आदिपुराण, क्रियाकोष, षोडशसंस्कार, त्रिवर्णाचार आदि जैनग्रन्थोंमें उपर्युक्त सोलह संस्कारोंका वर्णन विशदरूपसे पाया जाता है। किन्तु वर्तमान जैनजातिमें उक्त संस्कारोंका अभाव नहीं तो शिथिलता अवश्य आ गई है। हां, दाक्षिणात्यके जैनोंमें अब भी प्रायः सब संस्कार प्रचलित हैं। यज्ञोपवीत संस्कार दाक्षिणात्यके सिवा अन्यान्य प्रदेशोंके जैनोंमें कम देखनेमें आता है। किन्तु आजकल जातीय सभा और सुशिक्षितोंके उद्योगसे संस्कार विषयकी उन्नति हो रही है।

शौचाशौच—जन्म वा मृत्यु होने पर वंश वा कुटुम्बके सभी लोगोंको अशौच होता है। जन्म सम्बन्धी सूतक वा अशौच तीन प्रकारका है, यथा—स्राव-सम्बन्धी, पात-सम्बन्धी और जन्म-सम्बन्धी। गर्भस्रावका अशौच माताको—३रे मासमें हो तो तीन दिनका * और चौथे मासमें हो तो ४ दिनका होता है। पिता और कुनबाके लोग सिर्फ स्नानमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं। इसी तरह गर्भपातका अशौच भी माताको ५ वा ६ दिनका होता है। पुत्र उत्पन्न होने पर कुटुम्बके लोगोंको १० दिनका अशौच होता है। इन दश दिनमें कोई प्रसूतिका मुख नहीं देखते। इसके बाद प्रसूतिको और भी २० दिनका अनधिकार-अशौच होता है, किन्तु कन्या होने पर यह अशौच ३० दिन तक रहता है। अनिरीक्षण अशौचमें यदि बालकका पिता प्रसूतिके निकट बैठे-उठे वा स्पर्श करे तो उसे १० दिनका अनिरीक्षण अशौच पालन करना पड़ता है।

मृत्यु सम्बन्धी अशौच साधारणतः १० दिनका होता है। किन्तु छोटे बच्चोंके लिए यह नियम लागू नहीं है। नाल काटनेके बाद बालककी मृत्यु होने पर केवल १० दिनका जन्माशौच ही माना जाता है। बालकके दशवें दिन मरने पर मातापिताको दो दिनका अशौच होता है और ग्यारहवें दिन मरने पर तीन दिनका। दांत निकलनेके बाद बालककी मृत्यु होने पर मातापिता और भाईयोंको १० दिनका, सत्यासव (४ पीढ़ी तक) कुटुम्बियोंको एक दिनका अशौच होता है। एक अशौच होने पर दूसरा अशौच (एकही अशौचका होनेसे) उसीमें गर्भित हो जाता है, किन्तु जन्मसम्बन्धी अशौच और मरण सम्बन्धी अशौचका भिन्न भिन्न पालन किया जाता है।

शवदाह—किसी व्यक्तिके मरने पर उसे विमानमें सुला कर ऊपरसे नया वस्त्र ढक दिया जाता है। अनन्तर शवका ग्रामकी तरफ मुंह करके स्वजातीय चार आदमी उसे श्मशानमें ले जाते हैं, शवदाहके लिए साथमें अग्नि भी ले ली जाती है। किन्तु ब्रह्मचारी वा व्रती पुरुषकी मृत्यु होने पर, उसके लिए होमकी अग्निकी आवश्यकता होती है। आधा मार्ग अतिक्रम करनेके बाद विमानको उतार कर शवका मस्तक पलट लिया जाता है। यहांसे जातिके लोग शवके आगे और अन्यान्य मनुष्य पीछे पीछे चलते हैं। अनन्तर श्मशानमें पहुंचनेके बाद "ओं ह्रीं ह्रः काष्ठसञ्चयं करोमि स्वाहा" यह मन्त्र उच्चारण पूर्वक चिता सजाई जाती है। पश्चात् "ओं ह्रीं ह्रौ अ सि आ उ सा काष्ठे शवं स्थापयामि स्वाहा" कह कर शवको चिता पर रखते हैं। इसके बाद तीन प्रदक्षिणा दे कर अग्नि-संस्कार करते हैं। मंत्र "ओं ओं ओं ओं रं रं रं रं अग्नि सन्धुक्षणं करोमि स्वाहा।" शवदाह हो चुकने पर जातिके लोग चिताकी प्रदक्षिणा दे कर गङ्गा अथवा किसी जलाशयके किनारे उपस्थित होते हैं और यथायोग्य सब क्षौरकर्म कराते हैं। जैनोंमें

* जहां ब्राह्मणोंके लिए ३ दिनके अशौचका विधान हो, वहां क्षत्रियोंके लिए ४ दिनका, वैश्योंके लिए ५ दिनका और शूद्रोंके लिए ८ दिनका समझना चाहिए, ऐसा भगवज्जिनसेनाचार्यका मत है। इसी तरह अन्य अशौचोंमें भी दिनों का हिसाब लगा लेना उचित है।

साधारणतः माता पिता, पितृव्य, मामा, ज्येष्ठभ्राता श्वशुर, आचार्य, काको ताई, मामो मातृष्व स्वसृ आचार्योंनी, फूफी, मौसी और बड़ो बहन इनके मरने पर क्षौरकर्म करनेको प्रथा है। इनमेंसे यदि किसीका देशान्तरमें मरण हो तो सवा आठ पहर बाद क्षौरकर्म कराया जाता है। किन्तु यदि एक मास बाद संवाद मिले तो क्षौरकर्म कराने की आवश्यकता नहीं।

अनागारधर्म वा जैन मुनियोंका आचार—जैन मुनियों का क्या आचार है—क्या धर्म है, इसका विवेचन करने से पहले धर्म शब्दकी दो शब्दोंमें व्याख्या कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

धर्म शब्दकी व्याख्या आचार्यगणानुसार जैनाचार्योंने इस प्रकार की है—जो संसारस्थ जीवोंको उससे निकाल कर उत्तम सुखमें—जहां कभी दुःखका लेश भी न हो—अर्थात् मोक्ष सुखमें ले जाय, उसे धर्म कहते हैं। यह धर्म शब्द 'धृञ्' (अर्थात् 'धारण करना') इस धातुसे बना है। यह तो धर्म शब्दका व्यापक व्युत्पत्ति-सिद्ध अर्थ है, इसका लक्षण एवं स्वरूप निरूपण यह है कि, जो वस्तुका स्वभाव हो वही धर्म कहलाता है। "वत्थु सहावो धम्मो" इस लक्षणसे प्रत्येक वस्तु धर्मवाली सिद्ध होती है जिसका जो स्वभाव है वही उसका धर्म है। घटका घटत्व (जलधारण, जलानयन आदि) धर्म है, वस्त्रका वस्त्रत्व (शीतवारण पदार्थाच्छादन आदि) धर्म है छत्रका छत्रत्व (आतप वारण वर्षानिवारण आदि) धर्म है, इसी प्रकार जीव का जानना, आचरण करना—तप संयम, ध्यान आदि द्वारा आत्माको विशुद्ध चारित्रधारी बनाना—धर्म है। यहां प्रत्येक जड़ वस्तुके धर्मसे प्रयोजनसिद्धि नहीं है इस लिये उसका कुछ भी निरूपण न करके जीवके धर्मका ही निरूपण किया जाता है—

जब वस्तु-स्वभाव ही धर्मका लक्षण है और जीवको शम एवं सदाचरण द्वारा परम उन्नत बनाना ही धर्म का व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ है तब जीवका वस्तुस्वभाव मुख्यतया चारित्र ही पड़ता है। कारण यह कि जीवको चारित्र ही संसार दुःखोंसे विमुक्त कर सुखी बनाता है। इसलिये ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अस्तित्व आदि अनेक धर्मोंके रहते हुए भी, धर्म विवेचनामें भी यहां धर्म चारित्र ही लिया गया है। जैसा कि जैनाचार्योंने प्रगट किया है—"चारित्तं खलु धम्मो"। यही धर्म शब्दकी व्याख्या एवं उसका लक्षण है।

चारित्र दो कोटियोंमें बंटा हुआ है—(१) श्रावकोंका चारित्र, (२) मुनियोंका चारित्र। श्रावकोंके चारित्रको विकलचारित्र वा एकदेश चारित्र भी कहते हैं और मुनियोंके चारित्रको सकलचारित्र वा सर्वदेशचारित्र। जिस चारित्रके पालते हुए भी आत्मा केवल त्रस हिंसासे ही अपनेको बचा सके (स्थावर-हिंसासे न बचा सके) वह चारित्र एकदेश चारित्रकी कोटिमें आता है, और जिस चारित्रके पालते हुए जीव अपनेको त्रस तथा स्थावर दोनों प्रकारकी हिंसाओंसे सर्वथा बचा लेवे, वह चारित्र सकलचारित्र अथवा सर्वदेश-चारित्र कहलाता है। जब तक संसारी जीवके प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय रहता है, तब तक उसके सर्वदेश चारित्र नहीं हो पाता; अर्थात् उस चारित्रको धारण कर आत्मा कर्मका नाश कर सके ऐसी अवस्था भी उसे किसी तीव्र पुण्योदयसे ही मिलती है। यदि बिना तीव्र पुण्यके ही उत्तम अवस्था प्राप्त कर ली जाय, तो वहीं रही सर्वसाधारणको सन्मार्गकी ओर विचार, सुध्यान सामग्री, सद्ध्यान साधन, योग्यता आदि कारण कलाप मिलते। इसलिए आत्मा तभी कर्मोंके क्षीण करनेमें समर्थ होती है जब किन्हीं कषायों पर बहुत अंशों में विजय पा लेती है—अब कुटुम्ब स्त्री पुत्र आदि सर्व सम्पत्तिसे विरक्त बन जाती है। बिना ऐसा हुए मुनिधर्म की ओर आत्माको प्रवृत्ति ही नहीं झुकती। प्रवृत्ति दूर रही वैसा उच्च विचार भी नहीं उत्पन्न होता और न भिन्न पदार्थोंसे मोह ही छूटता है। इस प्रकारका मोह करानेवाला कषाय है। उसीके अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्याना-वरण, प्रत्याख्यानावरण आदि नाम हैं, जिनका वर्णन हम 'कर्मसिद्धान्त' शीर्षकमें कर चुके हैं।

जिस समय आत्मा सकलचारित्रके धारण करनेमें बाधा पहुंचानेवाले कषायोंका उपशम वा क्षय करके उन पर विजय पा लेती है, तभी वह मुनिधर्ममें पदार्पण करती है उससे पहले वह श्रावकाचार ही पालती है। श्रावकाचारमें भी क्रमसे उन्नति करती है

प्रथम मदिरा, मांस, मधु, पांच उदुम्बर फल, रात्रिभोजन, बिना छना जल, आदि जीवघातक वस्तुओंका सेवन छोड़ देता है। इन सबके छोड़नेसे आत्मा अष्ट मूलगुण-युक्त बन जाती है और आगे चल कर सप्तव्यसन महापापोंको छोड़ देता है, फिर स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, कुशीलसेवन और तृष्णाधिक्य वा परिग्रहाधिक्य इन सबको छोड़ता है, यहीं पर वह दिशाओंमें एवं देशोंमें गमनागमन करनेका नियम करता है। उसका उद्देश्य यही है कि जितनी मर्यादा की हो, उसीके भीतर आरंभ करना, बाहर नहीं। बाहर आरम्भ न होनेसे, वहां होनेवाली बहुत कुछ हिंसा एवं हिंसोत्पादक परिणाम रुक जाते हैं। इसी अवस्थामें बिना प्रयोजन (व्यर्थ) होनेवाली हिंसासे भी (जैसे रागद्वेषोत्पादक कथाओंका सुनना, बिना कारण पृथ्वीको खोदना, जलमें पत्थर फेंकना, वृक्षोंका तोड़ना, दूसरोंका बुरा विचारना आदि) छुटकारा मिल जाता है। इस अवस्थामें पहुंचने वाला श्रावक कुछ काल, तीनों समय सामायिक भी करता है, अर्थात् पर पदार्थसे चित्तवृत्ति हटा कर स्वयं आत्मस्वरूपमें तल्लीन हो जाता है, पर्वोंमें उपवास भी करता है, अतिथियोंको आहार दान भी देता है तथा व्रती संयमियोंकी सेवा भी करता है।

परस्त्री-त्यागी तो पहले हो ही जाता है, सातवीं श्रेणीमें पहुंच कर स्वस्त्रीका भी त्यागी बन कर मन-वचन कायसे कामवासनाका सर्वथा त्याग कर पक्का ब्रह्मचारी बन जाता है। उससे ऊपर यदि और भी चित्तवृत्ति वैराग्यकोटिमें झुकती है, तब वह आरम्भको भी छोड़ देता है। पश्चात् शरीर सम्बन्धी, वस्त्रके सिवा, बाकी सब धन, धान्य, मकान, आभूषण आदि सर्व प्रकारका बाह्य परिग्रह छोड़ देता है, इससे भी आगे बढ़ने पर किसीको संसारवर्धक व्यापार, गृह प्रबन्ध आदि सांसारिक कार्योंमें सम्मति भी नहीं देता है, केवल पारमार्थिक विचार ही करता है। यहां तक श्रावकोंका ही पद है। इससे ऊपर त्याग करनेवालेके लिए एक कोटि अभी और है, वह यह कि घरसे निकल कर जङ्गलमें, किसी मठ वा मन्दिरमें जा कर किसी विशेष ज्ञानी एवं तपस्वी गुरुके निकट क्षुल्लक अथवा ऐलकके व्रत धारण कर लेते हैं। क्षुल्लक अवस्थामें लंगोटीके सिवा एक खंडवस्त्र भी रक्खा जाता है; यह वस्त्र यदि सिरसे ओढ़ा जाय तो पैर खुल जाते हैं और पैरोंको ढका जाय तो सिर खुल जाता है, इसीलिए उसका नाम खण्डवस्त्र है। इस वस्त्रसे वह पूर्णतया शीतवारण आदि नहीं कर सकते और न पूर्णतया शीतवारण करने आदिकी उनके अभिलाषाएँ ही जाग्रत हैं। यदि ऐसा होता तो खण्डवस्त्र ही वह क्यों धारण करते, पूर्ण वस्त्र ले कर उससे पहले पदोंमें रह जाते। क्षुल्लक किसीके घर निमन्त्रण पूर्वक नहीं जीमते, किन्तु भिक्षावृत्तिसे किसीके घर शुद्ध एवं निरन्तराय भोजन मिलने पर जीम लेते हैं। जिस अवस्थामें खण्डवस्त्रका भी त्याग कर दिया जाता है—केवल एक लंगोटी मात्र रक्खी जाती है, वह ऐलकका पद है, इस पदमें रहनेवाले श्रावक खड़े हो कर आहार लेते हैं, मुनियोंके समान गमनागमन क्रियाएं करते हैं, परन्तु मुनिधर्मका बाधक प्रत्याख्यानावरण कषायके रहनेसे मुनिपद धारण करनेमें असमर्थ रहते हैं। अर्थात् वे अभी तक इतने प्रबल कषाय-विजयी नहीं बन पाये हैं कि नग्न रह कर बिना किसी प्रकारकी लज्जाके, नाना परीषहोंको सहते हुए बालकके समान निर्विकार बन सकें। बस, यहीं तक श्रावकोंका आचार है। श्रावकोंका अन्तिम दरजा मुनिके समान है, परन्तु लंगोटी मात्र परिग्रह विशेष है, बाकी पीछिका और कमण्डलु भी ऐलकके होता है। श्रावक-धर्ममें रह कर यहां तक उन्नति की जा सकती है। इसके आगे मुनिधर्म है। मुनिधर्मका श्रावकधर्मसे घनिष्ट संबन्ध है, श्रावकधर्म मुनिपदके लिये कारण है। बिना श्रावक पदकी चरम सीमाकी उन्नतिका अभ्यास किये, मुनिपदका धारण करना अशक्य है। क्योंकि जैसे यह बात निश्चित है कि जो पहले प्रवेशिका, पंडित एवं शास्त्रिपरीक्षा दे कर उत्तीर्ण हो जायगा अथवा उस जातिकी योग्यता अपनेमें बना लेगा, वही आचार्य परीक्षामें बैठ सकता है, अन्यथा जो प्रवेशिका तककी योग्यता रखता है, वह आचार्य तो दूर रहो, शास्त्रि परीक्षामें भी नहीं बैठ सकता, उसी प्रकार यह भी निश्चित है कि श्रावकधर्मको पूर्ण

तथा बिना पाले मुनिपद धारण नहीं कर सकते अथवा न नियमोंका पालन नहीं हो सकता।

जैनशास्त्रोंमें परिग्रहके २४ भेद किये गये हैं उनमें १४ भेद आभ्यन्तर परिग्रहके हैं और दस भेद बाह्य परिग्रहके। आभ्यन्तर परिग्रहमें आत्माके जितने भी कर्मजनित वैभाविक भाव हैं वे सभी ग्रहण किये जाते हैं। जैसे—मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीकषाय, अप्रत्याख्यानावरणकषाय, प्रत्याख्यानावरणकषाय, संज्वलनकषाय, हास्यभाव, रतिभाव, अरतिभाव, शोकपरिणाम, भयपरिणाम, जुगुप्साभाव, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद। इन चौदहों अन्तरंग विकारभावोंको छोड़ते हुए मुनि अपने परिणामोंको रागद्वेषसे रहित—वीतराग बनाते हैं।

बाह्यपरिग्रहके १० भेद इस प्रकार हैं—खेत, मकान, सोना, चांदी, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र, और बर्तन। इन दस भेदोंमें संसारका समस्त परिग्रह गर्भित हो जाता है। खेत-मकानमें समस्त जमीन, जमींदारोंका परिग्रह आ जाता है। सोना-चांदीमें सब धातुएँ और रुपया पैसा, जवाहरात आदि आ जाते हैं। धनमें गौ, भैंस आदि पशु और पक्षी आ जाते हैं। धान्यमें गेहूं चावल जौ आदि सभी धान्य आ जाते हैं। दासी दासमें सब कर्मचारी नौकर, स्त्री पुत्रादि कुटुम्ब आ जाता है। वस्त्र और बर्तनमें सब प्रकारके वस्त्र और पात्र आ जाते हैं। ऐसा कोई भी बाह्यपदार्थ नहीं बचता जो इन दस भेदोंमें गर्भित न होता हो। दासीदास और धनधान्यको पृथक् कर ये चार परिग्रह सचित्त (सजीव) परिग्रहमें गिना जाता है और निर्जीव परिग्रह अचित्त परिग्रहमें।

इन दस प्रकारके बाह्यपरिग्रहोंका सर्वथा त्याग करनेवाले महात्मा ही मुनिपद धारण करनेके पात्र हैं। किन्तु इन परिग्रहोंमेंसे कोई भी एक परिग्रह अवशिष्ट रखता है वे मुनि कहलानेके पात्र नहीं हो सकते। कारण मुनिपदमें वीतरागताकी मुख्यता है। वीतरागता परिग्रहका त्याग बिना किये कभी आ नहीं सकती। जितने अंशोंमें परिग्रहका सम्बन्ध है उतने ही अंशोंमें आत्मा मूर्छित या मोहित-परिणाम है। यदि मोहित परिणामयुक्त नहीं है, तो परिग्रहका सम्बन्ध भी असम्भव है। क्योंकि 'यह मेरा है' यह ममत्वभाव किसी वस्तुमें, चाहे वह सजीव हो चाहे निर्जीव, तभी तक हो सकता है, जब उसके प्रति कुछ रागभाव है। कोई रागभावके बिना किसी भी आत्म-भिन्न पदार्थमें आत्माका ममत्व भाव नहीं हो सकता। जहां तिल तुषमात्र भी परिग्रह है, वहां रागप्रवृत्ति नियमसे माननी पड़ेगी। बिना रागभावके किसी वस्तुका ग्रहण, अर्जन आदि कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिये मुनिधर्म वही वीतराग महापुरुष धारण करता है जो समस्त बाह्य परिग्रहसे सम्बन्ध एवं ममत्वभाव छोड़ देता है। समस्त बाह्यपरिग्रहका सर्वथा त्याग बिना किये मुनिधर्मका मार्ग ही नहीं प्राप्त हो सकता। एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि बाह्यपरिग्रहके त्यागसे इतना ही प्रयोजन नहीं है, कि केवल उसका सम्बन्ध न रक्खा जाय किन्तु अन्तरंगमें उसकी वासना भी जागृत न रहे वहां तक उसके त्यागसे प्रयोजन है। अन्यथा जो किसी कारण वश जङ्गलमें या वनमें कहीं नग्न रहते हों, किन्तु उनमें सम्पत्तिमें एवं कुटुम्बमें जिनकी वासना लग रही हो, ऐसे लोग भी मुनिकोटिमें लगाये जा सकते हैं और वैसी दशामें मोक्षमार्ग प्रत्येक साधारण पुरुषके लिये भी सुगम हो जायगा अथवा नग्न रहनेवाला बालक भी मुनि समझा जा सकता है। परन्तु उनके रागद्वेष है, अन्तरंगमें मोह है। इसलिये वह मुनिकोटिमें किसी प्रकार भी नहीं लगाया जा सकता। अतएव मुनियोंकी पंक्तिमें वही लगानेके योग्य हैं, जिनका परिग्रहसे सम्बन्ध छूटनेके साथ ही अन्तरंगमें उससे ममत्वभाव भी छूट चुका हो।

यदि मुनियोंके लंगोटी मात्र परिग्रह भी मान लिया जाय, तो उस लंगोटसे ममत्वभावका रखना, उसके लिए श्रावकोंसे याचना करना, उस लंगोटके फट जाने पर उसे सी कर सुधारनेके लिये दूसरे लंगोटका होना तथा उसको चोरोंसे रक्षा करना, धोनेका आरम्भ करना आदि सब बातें मुनिधर्मके एवं वीतरागतापूर्ण निवृत्ति मार्गके सर्वथा प्रतिकूल हैं। इसलिए मुनिपद सर्वथा परिग्रह-रहित नग्न अवस्थामें ही होता है। अन्यथा मार्गोल्लंघन समझना चाहिये।

मुनियोंका स्थूल स्वरूप अट्ठाईस मूलगुणोंका धारण करना है। अट्ठाईस मूलगुण ही मुनियोंका स्थूल आचार है, यथा – पांच समिति, पांच महाव्रत, पांच इन्द्रियनिरोध, छह आवश्यक, भूमिशयन, खड़े हो कर ही भोजन करना, एक बार भोजन करना, दन्तधावन नहीं करना, स्नान नहीं करना, केशलुञ्चन करना, नग्न ही रहना। ये मुनियोंके अट्ठाईस मूलगुण हैं। मूलगुण उसे कहते हैं, जिसके बिना वह पद ही न समझा जाय। अब उक्त अट्ठाईस मूलगुणोंका स्वरूप कहा जाता है।

१म ईर्यासमिति—चैत्यवन्दना, साधु आचार्य उपाध्यायके पास पठन पाठन, स्वाध्याय आदि तथा वाधा धारण एवं भिक्षावृत्तिके लिये गमन करते समय आगेकी चार चार हाथ प्रमाण पृथ्वीको भले प्रकार देख कर ही चलना, जिससे पृथ्वी पर रहनेवाले छोटे-बड़े जन्तुओंका किसी प्रकार व्याघात न हो। मुनिका गमन रात्रिमें सर्वथा वर्जित है। दिनमें भी किसी पृथ्वीस्थलको जन्तुबाधायुक्त देख कर वे बैठ जाते हैं। इस प्रकार निरीक्षणपूर्वक गमन करनेको ईर्यासमिति कहते हैं।

२य भाषासमिति—मुनि ऐसे वचन नहीं बोलते जिससे सुननेवालेको आत्मामें आघात पहुंचे और न असत्य ही बोलते हैं। सन्तापकारी वचन (जैसे तू मूर्ख है, बैल है आदि) मर्मभेदनेवाले वचन (जैसे तू अनेक दोषोंसे भरा हुआ है, दुष्ट है आदि), उद्वेग उत्पन्न करनेवाले वचन (जैसे तू अधर्मी है, जातिहीन है आदि), निठुर वचन (जैसे तुझे मार डालूंगा आदि), परकोपकारक वचन (जैसे तू निर्लज्ज है, तेरा तप हास्यजनक है आदि), छेद करनेवाले वचन (जैसे तू कायर है, पापी है आदि), अत्यन्त कठोर वचन (जो शरीरको सुखा डाले), अतिशय अहङ्कार प्रगट करनेवाले वचन (जिसमें दूसरेकी निन्दा वा अपनी प्रशंसा हो), परस्पर कलह पैदा करनेवाले वचन, प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले वचन इत्यादि प्रकारके मिथ्या भाषणोंको मुनि कदापि नहीं बोलते। वे हितरूप, मितरूप, एवं सत्यरूप ही वचन बोलते हैं और ऐसे वचनोंको ही भाषा-समिति कहते हैं।

३य एषणा-समिति—इस समितिमें मुनियोंका समस्त आहारशुद्धि आ जाती है। मुनियोंको आहारको लालसा नहीं होती, किन्तु यथाशक्ति अनेक उपवास करके जब देखते हैं कि बिना भोजनके अब शरीरमें तप एवं ध्यान साधनका सामर्थ्य नहीं रहा, तब वे प्रातःकालीन सामायिक, ध्यान, स्वाध्यायादिसे निवृत्त हो कर दिनके करीब १० बजे भोजनके लिये निकलते हैं। भिक्षावृत्तिके लिये गमन करनेसे पूर्व ही वे स्वगत प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि, आज पांच घर वा चार घर वा दो घरोंमेंसे किसी एक घरमें शुद्ध निरन्तराय भोजन मिलेगा तो ग्रहण करेंगे अन्यथा वनको लौट जांयगे। यदि उनको प्रतिज्ञानुसार किसी घरमें शुद्धभोजनकी निरन्तराय योग्यता मिल जाती है, तो वे भोजन कर आते हैं, अन्यथा बिना किसी प्रकारका खेद माने फिर जङ्गलमें आकर ध्यान लगाते हैं—अनेक उपवास करने पर भी, भोजनकी अप्राप्तिसे फिर उन्हें रञ्चमात्र भी खेद नहीं होता; किन्तु वे अपने विपक्ष कर्मोदयको बलवान् समझ कर उसे निर्जरित करनेके लिए विशेष ध्यान लगाते हैं। भोजनके लिए श्रावकोंके दरवाजे तक जाते हैं; वहां यदि भोजन देनेके लिये मुनियोंको प्रतीक्षा करनेवाला दाता पड़गाहन* (प्रतिग्रहण) करने लगे, तब तो उसके पीछे पीछे वे घरके भीतर चले जाते हैं, वहां श्रावक उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक आहार दान देता है। नवधा भक्ति ये हैं—(१) प्रतिग्रहण वा पड़गाहन, (२) उच्चस्थान देना (३) उनके चरणोंको धोना, (४) उनका अष्टद्रव्यसे पूजन करना, (५) उन्हें नमस्कार करना, (६) वचनशुद्धि, (७) कायशुद्धि, (८) मनशुद्धि, और (९) आहारशुद्धि रखना। इस प्रकार

* प्रतिग्रहण शब्दका अपभ्रंश पड़गाहन है, यही वर्तमानमें प्रचलित है। मुनियोंके भोजनार्थ आगमनका समय १० से ११ बजे तक है—इस समयमें शुद्धभोजन अपने लिये तयार करा कर उसीमेंसे कुछ अंश तपस्वियोंके तपःपोषणार्थ आहार दान करनेके लिये भक्तिपरायण दाता दरवाजे पर खड़ा हो कर मुनियोंकी प्रतीक्षा करता है। उनके आते ही वह कहता है "अन्न जल शुद्ध है, पधारिये महाराज"। ऐसा कहने पर, कोई अन्तरायविशेष दृष्टिगोचर न हो तो मुनि उस श्रावकके पीछे पीछे उसके घरके भीतर चले जाते हैं। इस क्रियाको प्रतिग्रहण अथवा पड़गाहन कहते हैं।

आहार लेनेके बाद वे जङ्गलमें या मठ आदि एकान्त स्थानमें जा कर ध्यान लगाते हैं। मुनि रुचिपूर्वक आहार नहीं करते किन्तु शरीरका धर्मसाधनके लिए स्वस्थ रख कर ही भोजन करते हैं। यदि भोजनार्थ जाते समय मार्गमें ही कोई सांसारिक या कोई हिंसक जीव सामने आ जाय अथवा शारीरिक अन्तरायोंमेंसे कोई अन्तराय उपस्थित हो जाय, तो फिर वे तत्काल लौट जाते हैं। मुनि याचनावृत्ति नहीं करते, किन्तु श्रावकको अपना शरीर दिखाते हैं। यदि उसी समय उसने उन्हें प्रतिग्रहण किया तब तो ठीक है अन्यथा वे आगे बढ़ जाते हैं। यदि भोजनको मनमें भी याचना रक्खें तो उनकी स्वतता या भोजनमें इच्छा समझी जावेगी जो मुनिमार्गसे बाहर है।

यदि मुनियोंको यह विदित हो जाय कि श्रावकने उन्हींके लिये भोजन बनाया है, तो वे उसे ग्रहण नहीं करेंगे कारण वह उद्दिष्ट-भोजनके भागी हैं। भोजन बनानेमें जो आरम्भजनित हिंसा होती है उसके भागी मुनियोंको भी बनना पड़ेगा। यदि वे उद्दिष्ट भोजन करें, तो यह सब भोजन-विधि एषणासमितिमें आ जाती है जिसे मुनिगण बड़ी सावधानीसे नियमपूर्वक पालते हैं। खूब अच्छे अच्छे पदार्थ खाना, पुष्टिकर खाना, आकर्षक वस्त्र या घर स्थानमें खाना ये सब बातें मुनिपदसे सब था विरुद्ध हैं।

४थी आदाननिक्षेपण समिति—मुनियोंके पास कोई परिग्रह तो होता ही नहीं, जन्तुओंको रक्षा करनेके लिए एक मयूरके अपरिस कोमल पुच्छकी पिच्छिका होती है उससे वे कोई मकोड़ीको धीरेसे झाड़कर बैठते हैं और झाड़ कर ही कमण्डलु एवं शास्त्र रखते हैं। मयूरपुच्छकी पिच्छिकासे जीवको किसी प्रकार बाधा नहीं पहुंचती, न सड़ती या गलती ही है और न यह कोमलती ढग है जिसे चोर ले जाय। यह मुनियोंका उपकरण श्रावकों-द्वारा दिया हुआ केवल जन्तुरक्षाके लिए है, इसलिए म धम को साधनोंमें शामिल है, परिग्रहमें नहीं। दूसरा संयमोपकरण काठका कमण्डलु उनके पास रहता है जिसमें भोजनके समय श्रावक गरम जल भर देते हैं, उस जलसे वे शौच-निवृत्ति आदि शुद्धि करते हैं। उस जलको वे पीनेके काममें तो ले ही नहीं सकते, कारण वे भोजन ग्रहण करते समय ही जल पीते हैं, बिना एषणाशुद्धिके—भोजनग्रहणविधिके वे कभी कोई खाद्य पदार्थ नहीं खाते। यह कमण्डलु भी संयमका ही उपकरण है, बिना शुद्धिके अन्य कोई खाद्य उससे नहीं लिया जाता, इसलिए उसे भी परिग्रहमें ग्रहण नहीं किया जाता। ज्ञानवृद्धिके लिए शास्त्र भी मुनिगण रखते हैं। इस प्रकार पीछा, कमण्डलु और शास्त्र ये तीन पदार्थ ही उनके पास रहते हैं, जो ज्ञान तथा संयमके कारण हैं। अन्य कोई परिग्रह उनके पास नहीं रहता। यदि अन्य कोई वस्तु—वस्त्र पात्र दण्ड आदि कुछ भी हो तो उन्हें मुनिपदसे च्युत समझना चाहिये।

उपर्युक्त तीनों वस्तुओंको रखते समय देख कर ही रखना, उठाते समय देख कर ही उठाना (जिससे किसी जीवका वध न हो जाय) इसीका नाम आदाननिक्षेपण समिति है।

५म व्युत्सर्ग-समिति—जन्तुओंको देख कर, निर्जीव स्थानमें लघुशङ्का (पेशाब) या दीर्घशङ्का—शौचनिवृत्ति करनेका नाम व्युत्सर्ग समिति है। मुनियोंमें दयाभावकी मुख्यता है उनके द्वारा प्रमादवश भी किसी जीवका वध नहीं होना चाहिये। यदि किसी प्रकार दृष्टिदोषसे या प्रमादसे जीव वध हो जायगा, तो वे शास्त्रविहित प्रायश्चित्त ले कर शुद्धि करेंगे। इस प्रकार उपर्युक्त पञ्च समितियां मुनियोंके लिये आवश्यक या पालनीय नियत हैं।

पञ्च महाव्रत—मुनि त्रस और स्थावर हिंसाके सर्वथा त्यागी होते हैं इसलिये उनके जो अहिंसाव्रत है, वह सर्वदेशरूप है अर्थात् वे समस्त जीवोंको पूर्णतया हिंसा नहीं करते, यही उनका अहिंसा महाव्रत है।

मुनि किसी प्रकार कभी झूठ नहीं बोलते, यही उनका सत्यमहाव्रत है।

वे कभी किसी प्रकारकी चोरीके भाव नहीं रखते, इसलिये उनके पूर्ण अचौर्यमहाव्रत है। शीलके जितने भी (१८०००) भेद हैं उन्हें पूर्णरूपसे पालते हैं, इसलिये उनके पूर्ण ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

तृष्णा, मोह एवं बाह्यपरिग्रहसे उनका किञ्चिन्मात्र भी संसर्ग नहीं है, इसलिये वे परिग्रहत्याग महाव्रती हैं। इन पांच महाव्रतोंको मुनि मन-वचन-कायसे निरतिचार पालते हैं।

पञ्च इन्द्रियनिरोध—स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्र इन्द्रिय इन पांचों इन्द्रियोंके जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द ये पांच विषय हैं, उनमें थोड़ा भी राग नहीं करना, पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको सर्वथा छोड़ देना इसीका नाम पञ्च इन्द्रियनिरोध है। कानसे शास्त्रका सुनना, चक्षुसे श्रीजिनेन्द्र प्रतिमा या शास्त्रका देखना आदि शब्द एवं रूप आदिमें शामिल न होनेसे उन्हें इन्द्रियोंके विषयमें नहीं समझना चाहिये। विषय उसीका नाम है, जिससे सामारिक वासना पुष्ट होती हो अथवा रति अरतिरूप परिणाम होता हो। जहां निष्कषाय विरक्त-बुद्धिसे पदार्थ ग्रहण है, वहां विषय सेवन नहीं कहा जा सकता। मुनि पांचों इन्द्रियोंके सेवनसे सर्वथा विरक्त हो चुके हैं।

छह आवश्यक—(१) मुनि साम्यभाव धारण करते हैं अर्थात् किसी पदार्थमें रागद्वेष नहीं करते—तृण और काञ्चन, शत्रु और मित्रको समान समझते हैं, (२) शुद्धात्माकी त्रिकाल वंदना करते हैं—निर्विकार निष्कषाय रागद्वेषरहित वीतराग सर्वज्ञात्मा (परमात्मा)का त्रिकाल स्तवन करते हैं, (३) उनके गुणोंकी (आत्मीय गुणोंकी) समता मान कर कर्मोंकी व्याधिको हटानेका प्रयत्न करते हैं, (४) प्रमादवश होनेवाले अपने दोषोंका पश्चात्ताप करते हैं—एवं उन्हें उच्चारण कर तज्जनित पापोंकी निवृत्ति चाहते हैं, (५) स्वाध्यायमें उपयोग लगाते हैं और (६) चित्तको सब पदार्थोंसे हटा कर ध्यानमें निमग्न होते हैं - ये छः आवश्यक कार्य हैं, जो प्रतिदिन मुनियों द्वारा पाले जाते हैं।

५ समिति, ५ महाव्रत, ५ इन्द्रियनिरोध, और ६ आवश्यक इस प्रकार इक्कीस मूलगुण तो ये हैं। इनके सिवा मुनि पृथ्वीमें ही सोते हैं। भोजन भिक्षावृत्ति द्वारा खड़े हो कर ही करते हैं, दिनमें एकबार ही भोजन करते हैं। वे दांतीन नहीं करते, क्योंकि सात्विक पदार्थोंका, स्वल्पाहार एवं उपवासादि करनेसे तथा तपोबलकी विशेष सामर्थ्य होनेसे उनके दांतोंमें किसी प्रकार मल संचय नहीं हो पाता। स्नान भी नहीं करते, स्नान करनेके लिये जलकी आवश्यकता होगी उसके लिये श्रावकोंसे याचना करनी पड़ेगी। इसके सिवा स्नान करनेका आरम्भ करनेसे नाना जीवोंकी हिंसा होना निश्चित है। मुनियोंके हिंसाका सर्वथा परित्याग है, इसलिये वे स्नान नहीं करते। स्नान श्रावकोंके लिये ही आवश्यक है। उन्हींके शरीरमें गार्हस्थ्य जीवनमें अशुद्धताओंका समावेश होता रहता है, मलिन पदार्थोंका संसर्ग होता रहता है, मुनियोंके न कोई अशुद्ध संसर्ग है और न मलिनता ही है, प्रत्युत उनका शरीर तपोबलसे काञ्चनवत् सुनरां तेजोमय एवं दिव्य बन जाता है। इसीलिये उनका स्नान न करना, मूलगुणमें शामिल है। केशलोच भी एक आवश्यक गुण है। चार मासमें एकबार वे अपने हाथोंसे शिरके तथा दाढ़ी-मूछके बाल झट झट उपाड़ डालते हैं, शरीरसे ममत्व छोड़ देनेके कारण वे उन केशोंके उपाड़नेसे किञ्चिन्मात्र भी पीड़ा नहीं मानते। वास्तवमें यह बात अनुभवसिद्ध है कि शारीरिक पीड़ाका अनुभव तभी होता है, जब शरीरसे ममत्व होता है। यदि मुनिगण केशलोचमें स्वातन्त्र्य नहीं रक्खें और छुरिका आदिके लिये श्रावकोंसे याचना करें, तो उनका जीवन पराश्रित हो जाय। समस्त विभूतिको छोड़ कर जंगलमें ध्यान लगानेवाले महापुरुष किसी वस्तुके लिये भी परतन्त्र जीवन नहीं बनाना चाहते। इसके सिवा उस छुरिकाकी सम्हाल, रखवाली आदि करनेमें ममत्व परिणामका प्रादुर्भाव अवश्य होगा। अतएव स्वावलम्बन-पूर्वक केशलुञ्चन गुण ही मुनिवृत्तिके सर्वथा उचित है। यदि छुरिकासे भी केशोंको नहीं काटें और हाथसे भी नहीं लोंचें, तो केशोंकी वृद्धि होगी, उनकी अधिक वृद्धिमें जीवोंका सञ्चार एवं मलका समावेश होगा; इसलिए केश लुञ्चन गुण भी ग्राह्य है।

नग्नत्व भी मुनियोंका मुख्य गुण है। इस गुणके विना तो उनकी स्वरूप-प्राप्ति ही अशक्य है। इसी नग्नत्व गुणसे उनकी बाह्य पहचान होती है जिसप्रकार छोटा बालक विना किसी विकारभावके नांगा रहता

वृत्तिपरिसंख्यान—भोजनमें मर्यादा करना, घरोंकी संख्याका नियम करना, जैसे—चार घर घूमने पर भी यदि निरन्तराय भोजन मिलनेकी योग्यता नहीं मिली तो फिर उस दिन भोजन नहीं करेंगे, अथवा मार्गमें यदि 'अमुक सूचक चिह्न होंगे तो भोजन लेंगे अन्यथा नहीं', इस प्रकार जो मुनिगण कठिन प्रतिज्ञा करते हैं वह वृत्तिपरिसंख्यान तप कहलाता है।

अन्तरङ्ग तपके छ भेद ये हैं—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान।

प्रायश्चित्त तप—किसी व्रतमें दूषण आने पर शास्त्रानुसार एवं आचार्य द्वारा दिये गये दण्ड विधानसे पुनः व्रतको शुद्ध कर लेनेका नाम प्रायश्चित्त है। जिस समय आत्मा कषायकी तीव्र परतन्त्रतावश किसी अनुपादेय मार्गका अनुसरण कर लेती है, उस समय फिर उसी पूर्व आदृ मार्ग पर नियोजित एवं दृढ़ करनेके लिये प्रायश्चित्त मूलसाधक है, विना प्रायश्चित्तके आत्मामें होनेवाली भूलका मार्जन किसी प्रकार हो नहीं सकता। प्रायश्चित्तशास्त्रोंके ज्ञाता आचार्य शुद्ध एवं सरल परिणामोंसे—केवल धर्मरक्षाकी बुद्धिसे—प्रमादवश वा अज्ञानवश होनेवाले दोषोंके लिए मुनियोंको उनके दोषानुसार दण्ड देते हैं। दण्ड लेनेवाले मुनि भी अपनी भूल समझ लेते हैं और उस दण्डको सुधार मार्ग समझ कर सरल परिणामोंसे ग्रहण करते हैं। फिर पूर्ववत् विशुद्धता एवं समुन्नति प्राप्त कर लेते हैं।

किसी लघुदोषको आचार्यके समीप निवेदन करनेको आलोचन प्रायश्चित्त कहते हैं। गुरुकी आज्ञानुसार अपने दोषोंकी आलोचना करना अर्थात् मेरे सभी अपराध मिथ्या हो जाय, इस प्रकार अपने दोषोंका जो पश्चात्ताप किया जाता है वह प्रतिक्रमण-प्रायश्चित्त है। कोई दोष आलोचनसे दूर होता है, कोई प्रतिक्रमणसे दूर होता है और कोई दोनोंके करनेसे दूर होता है। जो दोनोंसे दूर होता है, उसे तदुभय-प्रायश्चित्त कहते हैं।

संसक्त अन्न पान एवं उपकरणोंके विभाग कर देनेको विवेक-प्रायश्चित्त कहते हैं।

शरीरसे ममत्व छोड़ कर ध्यान करनेको कायोत्सर्ग और प्रायश्चित्तरूपसे ध्यान करनेको व्युत्सर्ग-प्रायश्चित्त कहते हैं। अनशनादि तपोंको धारण करना तप-प्रायश्चित्त है। कुछ नियत दिनोंके लिये दीक्षाका छेद करना छेद प्रायश्चित्त है। दोष करनेवालेको कुछ कालके लिये संघसे बाहर कर देना परिहार-प्रायश्चित्त है। किसी बड़े दोष पर दीक्षाका सर्वथा छेद कर पुनः नवीनरूपसे दीक्षा देना उपस्थापना-प्रायश्चित्त है। जैसे जैसे दोष होते जाते हैं, उन्हींके अनुसार आचार्य मुनियोंको प्रायश्चित्त देते हैं। कषायोंकी तीव्रता एवं कभी कभी निमित्तकी प्रबलतासे मुनियों द्वारा भी उनके आचरित आचार एवं गमनक्रिया आदिमें, भावोंकी मलिनता आदिसे कभी कभी कुछ दोष होनेके कारण भावशुद्धिमें अंतर आ जाता है, उसीके परिहारार्थ यह प्रायश्चित्त विधान है।

विनय तप—सम्यग्ज्ञानमें बड़े ऐसे गुरुओं, उपाध्यायों और विशेष तपस्वियोंकी विनय करना एवं सम्यग्दर्शनकी दृढ़ता रखते हुए सम्यग्ज्ञान और चारित्रकी विशेष प्राप्तिके लिये उद्योगशील रहना विनयतप है।

वैयावृत्यतप—आचार्य, उपाध्याय एवं विशेष तपस्वी तथा वृद्ध मुनियोंकी सेवा-शुश्रूषा वा परिचर्या करना वैयावृत्यतप है।

जहां पर कषाय पूर्वक शरीरको पीड़ा पहुंचायी जाती है अथवा जहां शारीरिक पीड़ासे आत्मा पीड़ित एवं क्षुब्ध होती है, वहीं कर्मबंध होता है। वैसा शारीरिक क्लेश यहां सर्वथा वर्जित है। कारण शास्त्रकारोंने बतलाया है कि विना शरीरसे ममत्व छोड़े एवं विना कषायोंका दमन किये कर्मोंकी निर्जरा अशक्य है। पर्वत, नदीतट, वृक्षतल आदि स्थानोंमें जो तप किया जाता है वह आत्मशुद्धिके लिये ही किया जाता है। आत्मशुद्धि विना तप किये होती नहीं, तपकी सिद्धि विना शरीरसे ममत्व छोड़े वा कायक्लेश विना किये नहीं होती, और जहां शरीरसे ममत्वका त्याग है एवं वीतराग निष्प्रमाद परिणाम हैं, वहां कषायभाव कभी जाग्रत नहीं होते, ऐसी स्थितिमें वह कायक्लेश विशुद्धिका ही कारण होता है। यदि मुनियोंका कायक्लेश दुःखकारण हो, तो विना किसीकी प्रेरणाके एकांत जंगलमें रहनेवाले मुनि उसे करते ही क्यों? परन्तु उनकी प्रवृत्ति केवल संसारमोचन वा शुद्धिप्राप्तिके लिये ही है। इस महान् उच्च उद्देश्यको रखनेवाले मुनि, उस क्लेशसे कभी खिन्न नहीं होते। इतना अवश्य है, कि जहां तक सामर्थ्य है, वहीं तक तप करते हैं।

मुनि-अवस्थामें नंगे पैर ज्येष्ठकी गरमीसे उत्तप्त बालूमें चलते हैं। कंकड़ोंके चुभने पर जिनके पैरोंसे रक्त निकलता जाता है, फिर भी कोई प्रतीकारका उपाय न स्वयं करते हैं, न कराते हैं और न उस चर्यासे पीड़ा ही मानते हैं। इसीका नाम चर्या-परीषह है।

नग्न—वस्त्रोंमें हिंसा, रक्षण, याचन आदि दोष होनेसे उन्हें छोड़नेमें किसी प्रकार ग्लानि न माननेवाले, किसी प्रकार इन्द्रिय-विकार न लानेवाले मुनि नाग्न्य-परीषहमें विजयी होते हैं।

अरति—जो इन्द्रियोंको वश कर चुके हैं, स्त्रियोंके गायन आदि शब्दसे शून्य एकान्त गुहा, खंडहर, मठ, जङ्गल, श्मशान आदिमें ध्यान लगाते हैं, पहले भोगे हुए भोगोंका कभी चित्तमें स्मरण भी नहीं करते और न कभी परिणामोंमें दुःख ही करते हैं; वे मुनि अरति-विजयी होते हैं।

निषद्या—प्रतिज्ञा करके जो एक दिन, दो दिन चार दिन यथाशक्ति बैठ कर ध्यान लगाते हैं, जो नियत किये हुए आसनसे ही बैठे रहते हैं, कितनी ही पीड़ा या उद्वेग होने पर भी जो रंचमात्र भी शरीरसे सकम्प एवं चलायमान नहीं होते, वे मुनिराज निषद्या परीषह विजयी कहलाते हैं।

शय्या—मुनि दिनमें सोते नहीं, रात्रिको आत्म-चिन्तन और ध्यानमें अर्धरात्रि बिताते हैं। जिस समय जगत् भोग-विलास एवं निद्रामें आसक्त रहता है, उस समय मुनि ध्यानद्वारा आत्मस्वरूपका साक्षात् अवलोकन करते हैं, वह उनके जागरणका समय है। रात्रिके तीसरे पहर केवल दो घंटेके लिये, एक ही करवट और एक ही आसनसे पथरीली एवं कँटीली जगहमें ही लेट जाते हैं, दो ही घंटेमें शरीरजनित प्रमादको वशकृत करके चौथे पहर पुनः सामायिकमें बैठ जाते हैं ऐसे साधु शय्याविजयी कहलाते हैं।

आक्रोश—मार्गमें गमन करते देख अज्ञानीपुरुष उन्हें गालियां भी देते हैं, निर्लज्ज, तू नंगा क्यों फिरता है' आदि दुष्ट वचन बोलते हैं, उनकी भर्त्सना करते हैं, कभी कभी महाक्रूर पापी लोग उन्हें मारते भी हैं, परन्तु शांतरसका स्वाद लेनेवाले वे यतीश्वर प्राण-घातक निमित्त मिलने पर भी कभी क्रोध नहीं करते। उस समय वे यही सोचते हैं कि कटु शब्द मेरी क्या हानि करेगा, यदि मुझे कोई मारता है तो मेरे क्षणिक शरीर पर ही उसका कुछ प्रभाव भले ही पड़े, परन्तु मेरी नित्य आत्मा पर उसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस प्रकारके तत्त्वविचारसे मुनिगण आक्रोश-परीषह विजय करते हैं।

वध—इसी प्रकारके विचारोंसे वे वधपरीषह भी जीतते हैं।

याचना—कितने ही उपवास क्यों न कर चुके हों, शरीर कितना ही शिथिल क्यों न हो गया हो, फिर भी यदि भोजनकी प्राप्ति निरन्तराय विधिमार्गसे नहीं हो सकी तो मुनि श्रावकके द्वार पर याचनावृत्ति अथवा भावों-द्वारा या शरीरद्वारा ऐसी क्रिया नहीं करते जिससे उनकी इच्छाएँ भोजनके लिये लालायित हों, वे सदैव याचना-विजयी रहते हैं।

अलाभ—इसी प्रकार बहुत दिन भिक्षाके लिए घूमने पर भी यदि भोजनकी सुविधा (निरन्तराय शुद्ध आहार-की योग्यता) नहीं हुई, तो वे उसे भोजनका अलाभ नहीं मानते और उसीमें कर्मोंका संवर समझते हैं।

रोग—यदि उन्हें पूर्वकर्मके उदयसे कोई रोग हो जाय, फोड़ा हो जाय या अन्य बाधा हो जाय तो उसके आराम करनेके लिये न तो भावना ही करते हैं, न किसीसे उसके प्रतीकारार्थ कुछ कराते हैं, और न स्वयं ही उस-का कोई प्रतीकार करते हैं। किन्तु यही विचारते हैं कि 'पूर्व-सञ्चित कर्मका ही यह फल है; अच्छा है, कर्म-भार हलका हो रहा है।' यही रोग-परीषहका विजय है।

तृणस्पर्श—मार्गमें चलते हुए कांटे या कांच आदिसे चरण विद्ध एवं क्षत विक्षत क्यों न हो जांय पर मुनि उसे भी वीतराग भावसे सहन करते हैं—उस को दूर करनेका कोई भी प्रतीकार नहीं करते।

मल—शरीर पर धूल उड़ कर पड़ जाती है, पानी बरस जाता है, फिर धूल पड जाती है, शरीर मल-सहित हो जाता है, परन्तु ब्रह्मचर्यमें परम तपस्वी मुनि उससे जरा भी ग्लानि नहीं करते,किन्तु मलको शरीरका

कहते हैं, परन्तु कुशील शब्दका उक्त अर्थ यहां पर नहीं लिया जाता, और न वैसा अर्थ परम तपस्वी, परम वीतरागी आत्मनिष्ठ मुनियोंके प्रकरणमें लिया हो जा सकता है। यहां पर कुशील शब्द रूढि सिद्ध है, रूढि सिद्ध शब्दोंका अर्थ नियत वा पारिभाषिक ही लिया जाता है। प्रकृतमें कुशील शब्द मुनियोंके भेदोंमें नियत है इस लिये उसका अर्थ मुनिपद-निर्दिष्ट चारित्र विशेष रूप लिया जाता है।

जो मुनि पूर्ण एवं अखण्ड महाव्रत धारण करते हों, समस्त मूलगुण धारण करते हों, अट्ठाईस मूल गुणोंमें कभी विराधना नहीं आने देते हों, ऐसे परम तपस्वी साधुओंकी कुशील संज्ञा है।

कुशील मुनियोंके दो भेद हैं, एक प्रतिसेवना कुशील दूसरा कषायकुशील, जिन्होंने ममत्वभाव सर्वथा नहीं छोड़ा है, गुरु आदिसे ममत्व रखते हैं, संघ नहीं छोड़ना चाहते, जो मूलगुण और उत्तरगुण दोनोंको पालते हैं, परन्तु कभी कभी उत्तरगुणोंमें त्रुटि करते जाते हैं। वे प्रतिसेवना-कुशील साधु कहलाते हैं। गर्मियोंमें अधिक गर्मीके संतापसे जो कभी कभी दिनमें पादप्रक्षालन कर डालते हैं, बस इतने मात्र ही उनके उत्तरगुणोंकी विराधना वा त्रुटि है।

कषायकुशील उन्हें कहते हैं, जो समस्त कषायोंको जीत चुके हों, केवल संज्वलन कषायको जीतनेमें असमर्थ हों।

जिस प्रकार पानीमें लकडीकी रेखा खींचते खींचते ही नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार जिनके कर्मोंका उदय नहीं हुआ हो और एक मुहूर्त बाद जिनके केवलदर्शन और केवलज्ञान प्रगट होनेवाला हो, उन मुनियोंको निर्ग्रन्थ कहते हैं। यद्यपि निर्ग्रन्थ मुनि सभी परिग्रह रहित मुनियोंको कहते हैं, ग्रन्थ नाम परिग्रहका है उससे रहित निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं, इसीलिये मुनिमात्र ही निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं, तथापि यहां पर पांच मुनियोंके भेदोंमें जो निर्ग्रन्थ भेद है वह सामान्य मुनियोंमें गृहीत नहीं होता उपशान्त कषाय एवं क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती ही निर्ग्रन्थ मुनि कहलाते हैं। उन्हींके अन्तर्मुहूर्त पीछे केवलज्ञान होनेकी योग्यता है।

जिन साधुओंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, और मोहनीय, ये चारों ही घाति-कर्म नष्ट हो चुके हों, जो अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख एवं अनन्तवीर्य इन शक्तियोंके पूर्ण विकाशको प्राप्त कर चुके हों, वे ही तेरहवें गुणस्थानवर्ती श्रीअर्हन्त केवली स्नातक कहलाते हैं। मुनियोंकी चरम-अवस्थामें प्राप्त होनेवाली चरम आत्मोन्नति को 'स्नातक' संज्ञा है।

यद्यपि पांचों मुनियोंके चारित्रमें कषायोंकी हीनाधिकता एवं अभावसे विचित्रता है, उनके चारित्र जघन्य, मध्यम, उत्तमभेदोंमें परिगणित किये जाते हैं, तथापि पांचों ही मुनि मुनिपदकी श्रेणीमें हैं। इतना चारित्र किसी पदमें नहीं गिरता अथवा इतनी कषायोंकी प्रबलता किसी पदमें नहीं है, जिससे वे मुनिपदकी श्रेणीसे पतित समझे जाय। इसलिये पांचों ही मुनि निर्ग्रन्थ-लिंगके धारक, अट्ठाईस मूलगुणोंके पालक, परम तपस्वी होते हैं। जिस प्रकार कोई सौ टंचका सोना होता है। कोई कुछ कम दर्जेका होता है परन्तु स्वर्णत्व सबमें रहनेसे सभी सोनेके भेदोंमें आ जाते हैं, उसी प्रकार यहां भी समझ लेना चाहिये। निर्ग्रन्थ लिङ्ग, सम्यग्दर्शन, और वीतरागता सामान्य रूपसे सभी मुनियोंमें पायी जाती है।

उपर्युक्त पाचों प्रकारके मुनि सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात इन पाचों प्रकारके चारित्रका पालन करते हैं।

जिस चारित्रमें हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील एवं परिग्रह इन पञ्चपापोंका त्याग क्रमसे नहीं किया जाता, किन्तु मुनियोंकी एकाग्र-ध्यानावस्थामें समस्त पापोंका स्वयमेव सर्वथा त्याग हो जाता है, तथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग इन पाचों महाव्रतोंका पूर्णतः पालन भी स्वतः हो जाता है उस चारित्रको 'सामायिक चारित्र' कहते हैं।

जिस चारित्रमें, मुनियोंसे किसी प्रमादजनित अपराधके होने पर उन्हें प्रायश्चित्त प्रदान किया जाता है, वह 'छेदोपस्थापना-चारित्र' कहलाता है।

जिस चारित्रमें जीवोंकी रक्षाका पूर्ण प्रयत्न एवं शुद्धि विशेष धारण की जाती है, वह 'परिहारविशुद्धि-चारित्र' कहलाता है।

यद्यपि स्थूल सूक्ष्म समस्त जीवों की रक्षाका पूर्ण ध्यान समस्त मुनियों को रखना है, जीवों की रक्षाका ध्यान रखना मुनि मात्रका प्रथम कर्तव्य है, तथापि 'परिहार विशुद्धि-चारित्र' वाले मुनियों का निवास केवली अथवा श्रुत केवलीके पादमूलमें अधिकतर होता है—वहीं वे दीक्षा लेते हैं। उनमें अहिंसा लोभ एवं धर्मको ही निवृत्ति मार्ग का सेवन करते हैं इसलिये उनके भावोंमें प्रथमसे ही विशेष विशुद्धि रहती है।

सूक्ष्मसाम्पराय चारित्रधारी मुनियोंकी समस्त कषायें शान्त एवं नष्ट हो जाती हैं, केवल संज्वलन-कषायका अत्यन्त भेद सूक्ष्मलोभ कषाय अवशिष्ट उदित रहता है। यहां पर मुनियोंके दसवां गुणस्थान हो जाता है। इसी गुणस्थानका चारित्र 'सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र' कहलाता है।

जिस चारित्रमें कोई भी कषाय अवशिष्ट न रहे, समस्त कषायें सर्वथा उपशमित या क्षीण हो जांय, उस चारित्रको यथाख्यात चारित्र कहते हैं। यह चारित्र ग्यारहवें गुणस्थानसे प्रारम्भ होता है। कारण दसवें गुणस्थान तक तो कषायोंका सद्भाव है उससे आगे नहीं। इसीलिये मुनियोंके ११वें गुणस्थानसे परमविशुद्ध वीतराग यथाख्यातचारित्र हो जाता है। यह चारित्र परम निर्मल होता है। यही चारित्र अयोगकेवली भगवान्‌के, योगोंके अभावमें परमावगाढ़ रूप धारण करता है यही सम्यक् चारित्रकी पूर्णता है और इसीके उत्तर क्षणमें आत्माका निर्वाण या मोक्ष है। इस प्रकार पांचों प्रकारके मुनि उपर्युक्त पांच प्रकारका चारित्र यथाशक्ति क्रमसे धारण करते हैं। इस चारित्रके बलसे अनन्त कर्मोंकी निर्जरा एवं अनन्त गुण विशुद्धि बढ़ती जाती है।

उपर्युक्त कथनसे जैन मुनियोंके आचार, व्रत, समिति आदिका वर्णन किया गया है। अब यहां पर संक्षेपमें उनके भावोंकी विशुद्धता एवं कर्मोंकी निर्जरा का क्रमविकास जैन शास्त्रीय दृष्टिसे कहा जाता है।

जैन मुनियोंके जैनशास्त्रानुसार छठा गुणस्थान माना गया है। गुणस्थान नाम उन परिणामों (भावों) का है जो कर्मोंके उदय उपशम क्षय एवं क्षयोपशमसे जीवोंके भिन्न भिन्न रूपमें पाये जाते हैं। गुणस्थान १४ चौदह होते हैं, यद्यपि जीवोंके, कषाय वासनाके मन्द, मन्दतर और तीव्र, तीव्रतर उदयसे अनन्त परिणाम होते रहते हैं। किन्तु उन सबका विवेचन अशक्य है केवल सर्वदर्शी परमात्मा ही उनका साक्षात् प्रत्यक्ष करते हैं उन भावोंकी (सूक्ष्मताको छोड़ कर) स्थूलरूपसे १४ कोटियां हैं। स्थूलतासे जीवोंके समस्त प्रकारके परिणाम या भाव इन चौदह कोटियोंमें विभक्त हो जाते हैं।

जो जीव मिथ्यात्व सेवन करते हैं जिनके विचार विपरीत या संशययुक्त हैं, अनध्यवसाय रूप हैं, जिनका आचरण धर्म विपरीत है मुनिपद धारण करके भी जो तृष्णा एवं कषाय वासनासे शामिल हैं अधिक परिग्रह रखते हैं सवारी आदि काममें लेते हैं, ओढ़ने बिछानेके वस्त्र रखते हैं, सोने-चांदीके सिंहासनों पर बैठते हैं, चौमरछत्र रखते हैं, शरीरमें भस्म लगाते हैं, घर घरसे रोटी मांग कर अपने स्थान पर खाते हैं वे मुनिपदसे विरुद्ध आचरण करते हैं। ये सब क्रियाएं मुनि धर्मके विपरीत हैं, इसलिये ये भाव एवं क्रियाएं १ले मिथ्यात्व गुणस्थानमें मानी गई हैं। वस्तुको एकान्त रूपसे सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य एवं सर्वथा एक या सर्वथा अनेकरूपमें मानना वीतराग सर्वज्ञके भी इच्छा एवं अल्पज्ञता मानना, शिवसाधाके नामसे जीवोंका वध किया जाना ये समस्त भाव भी १ले मिथ्यात्व गुणस्थानमें शामिल किये गये हैं। यह १ला गुणस्थान (अथवा जीवोंके मिथ्यात्वरूप परिणाम) मिथ्यात्व नामक कर्मके उदयसे होता है जोकि जीवोंने ही स्वकर्तव्यसे पूर्वमें संचित किया है।

जिस समय अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान माया लोभमेंसे किसी एक कषायका उदय होता है, उस समय आत्मा अपने शुद्ध सम्यक्त्व-भावसे च्युत हो जाती है। उस समय जीवके जो परिणाम होते हैं वे सासादन नामक २रे गुणस्थानमें शामिल किये गये हैं। इस गुणस्थानके भाव यहां तक तीव्र होते हैं कि जो जीव उनके वश होता है वह स्वयं उपशान्त या कोई अन्य तक दूसरे जीवसे बैर बांध लेता है, मानो समय तक बद उप कषायजनित वासनाको साथ ले जाता है और दुःख निगोदमें

उसका प्रयोग करता फिरता है। इस प्रकारके परिणामों को द्वितीय सासादन गुणस्थानके नामसे कहते हैं। यह भाव जीवके अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्टयके उदयसे होता है।

जीवका एक भाव ऐसा भी होता है, जिसमें न तो उसके समीचीन परिणाम ही रहते हैं, और न मिथ्यात्व रूप विपरीत ही, किन्तु मिश्र होते हैं। ऐसे परिणामों को धारणकरनेवाला जीव भी वस्तुके यथार्थ विचार एवं समीचीन क्रियाकाण्डसे विरुद्ध ही रहता है। जिस प्रकार दधि और गुड़के मिलनेसे न केवल दही का ही स्वाद आता है, और न केवल गुड़का ही; किन्तु खट्टा मीठा मिल कर एक तीसरा ही 'खट्टा-मीठा' स्वाद आता है (जो शिखरिणीके नामसे प्रसिद्ध है,) उसी प्रकार सम्यक्-परिणाम तथा मिथ्या-परिणाम, दोनोंके संमिश्रणसे एक विचित्र (जीवका) परिणाम होता है। यह परिणाम मोहनीयकर्मके भेदस्वरूप सम्यक्मिथ्यात्वकर्मके उदयसे होता है। यह ३य गुणस्थानका भाव है। यहां तकके जीव-भाव संसारके ही कारण हैं क्योंकि कषायोंकी तीव्रता उनके विचारों को समीचीन नहीं होने देती, इसलिये उन्हें उलटा ही मार्ग अच्छा प्रतीत होता है।

जिस समय किसी तीव्र पुण्यका उदय एवं काल-लब्धिका निमित्त इस जीवको मिलता है, उस समय मोह कर्मका भार कुछ हलका होता है। उस अवस्थामें जीवकी छिपी हुई सम्यग्दर्शन नामा शक्ति प्रगट हो जाती है। यह शक्ति आत्माका प्रधानगुण है। जब तक मोहनीय कर्मकी प्रबलतासे यह शक्ति आच्छन्न रहती है, तब तक जीव मिथ्या-भावोंमें उलझा हुआ स्वयं अपना अहित करता रहता है, दूसरोंको भी उसी मार्गमें ढकेलता है, परन्तु जब वह शक्ति प्रगट हो जाती है, तब जीवकी प्रतीति, उसका बोध समीचीन, यथार्थ एवं सन्मार्ग-प्रदर्शक बन जाता है—यहींसे यह जीव मोक्षमार्गके एक अंशको प्राप्त कर लेता है। जिस समय जीवके यह सम्यक्त्व गुण प्रगट होता है, उस समय आत्माइन्द्रिय-विषयोंकी सेवन करता हुआ भी, उन्हें हेय समझता है—सदा सांसारिक वासनाओंसे अरुचि रखता है—शरीर एवं जगत्‌से ममत्व नहीं करता। सिवा इसके जो आत्मीय निज-सुख गुण है, उसका अंश भी उसके उस सम्यक्त्व गुणके साथ प्रकट हो जाता है। यह सुख अलौकिक है, दिव्य है, अविनश्वर है, दु:खसे सर्वथा रहित है, एवं कर्मबन्ध-विहीन है। इसके विपरीत इन्द्रियजनित सुख दु:खपूर्ण है, नश्वर है, संसारवर्द्धक एवं कर्मबन्ध-रत है; अतएव त्याज्य है। यह सम्यक्त्वगुणका विकाश ही चतुर्थ गुणस्थानके नामसे प्रख्यात है। जिस प्रकार ज्ञानका 'जानना' कार्य है उसी प्रकार इस गुणका कार्य आत्मामें तथा इतर पदार्थोंमें यथार्थ प्रतीति करना है। जिस जीवको एक बार भी सम्यक्त्व हो जाता है, वह जीव उसी भव (जन्म से अथवा ३।४।६ वा संख्यात आदि अर्धपुद्गल-परावर्तन कालमें* (नियमित कालमें) नियमसे मोक्ष चला जाता है, अर्थात् सम्यक्त्व-गुणके प्रगट होने पर अनन्त संसारकी अवधि अतिनिकट हो जाती है। जिस गुणसे आत्माकी साक्षात् प्रतीति होने लगे एवं बाह्य जीव अजीव पदार्थोंका यथार्थ श्रद्धान हो जाय, उसीको सम्यक्त्व-गुण कहते हैं। इस गुणस्थानसे ही सम्यक्चारित्र प्रारम्भ होता है। इससे पहले जितना भी आचरण है वह सब मिथ्या-चारित्र है। चौथे गुणस्थानमें सम्यक्चारित्रका प्रारम्भ तो हो जाता है, पर कषायोंकी तीव्रतासे उसमें प्रवृत्ति नहीं हो पाती। इसका भी कारण यह है कि वहां अप्रत्याख्यानावरण कषाय जो चारित्रकी बाधक है, उदयमें आ रही है। परन्तु प्रतीति-श्रद्धा इस गुणस्थानमें सम्यक् है। जिस समय उक्त कषाय उपशमित हो जाती है, उस समय जीव सम्यक्चारित्रके पालनेमें तत्पर हो जाता है।

५वें गुणस्थानमें कषायें कुछ तो शान्त हो जाती हैं जिससे जीव चारित्र पालनेमें प्रवृत्त हो जाता है, कुछ प्रबल भी रहती हैं जिससे वह मुनिधर्म धारण करनेमें असमर्थ बना रहता है। इस गुणस्थानमें रहने वाला जीव स्थूल हिंसा अर्थात् त्रसजीवोंकी संकल्पी हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल चोरी, स्थूल कुशील, और परिग्रह इनका परित्याग करता है। वह बिना किसी विरोध

*१. औदारिक वैक्रियिक आहारक शरीर और छह पर्याप्तियोंके योग्य अनंतवार गृहीत अगृहीत तथा मिश्र पुद्गल परमाणु ग्रहण और निर्जीर्ण कर पहिले जैसे स्निग्ध रूक्षादि भावोंसे युक्त पुद्गल परमाणु ग्रहण किये थे वैसे ही ग्रहण करना यह पुद्गल परिवर्तन है।

द्वारा बंधी हुई थीं अघातिकर्मप्रकृतियों और शरीरको भी छोड़ कर तत्काल स्वभावसिद्ध ऊर्ध्वगमनक्रियासे सीधे ऊर्ध्वलोक (लोकशिखरके अन्तमें स्थित सिद्धलोकमें) चले जाते हैं। फिर उनको अर्हन्त न कह कर सिद्ध नाम हो जाता है। इस अवस्थामें वे आत्मीय परम निराकुल अविनाशी अनन्त सुखका अनुभव करते हुए लोक अलोकको देखते व जानते रहते हैं और वहांसे फिर वे कभी भी संसारमें लौट कर नहीं आते।

जैनमतानुसार सिद्ध और ईश्वरमें कोई अन्तर नहीं है। वे कहते हैं—सिद्धपरमात्माके न इच्छा है, न राग है, न द्वेष है, न शरीर है और न कोई परतन्त्रता है ऐसी अवस्थामें परमात्मा जगत्का निर्माण भी नहीं कर सकता है। जगत्के निर्माण करनेमें इच्छा, शरीर एवं रागद्वेष आदि सभी बातोंकी अनिवार्य आवश्यकता है। बिना उक्त कारणोंके कभी कोई किसी प्रकारकी रचना करनेमें समर्थ हुआ हो, ऐसा उदाहरण भी असम्भव है। यदि उक्त कारणोंका सद्भाव ईश्वरके स्वीकार किया जाय तो फिर उसमें संसारियोंसे कोई विशेषता भी नहीं रह जाती। इसलिए जगत्का निर्माण परमात्मा नहीं कर सकता जगत् अनादि निधन है, न उसे कोई बनाता है और न बिगाड़ता ही है। जो वस्तुओंकी रचनाएं देखी जाती हैं वे अपने कारणोंसे होती रहती हैं। वह कारण चेतन ही होना चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है, किन्तु जड़ कारणोंसे भी स्वयं प्रकृतिजन्य प्राकृतिक पदार्थोंकी रचना और विघटन होता रहता है। जैसे जङ्गलमें बांसोंकी रगड़से अग्निका उत्पन्न हो जाना इत्यादि। जैनसिद्धान्तानुसार परमात्मा या ईश्वर सृष्टिके रचयिता नहीं हैं।

यहां अति संक्षेपसे यह जैनमुनियोंके आचारका दिग्दर्शन कराया गया है। विस्तृत स्वरूप जाननेके लिये मूलाचार भगवती आराधनासार, अनगारधर्मामृत आदि जैन ग्रन्थ देखने चाहिये।

ईश्वरत्व—कुछ लोग जैनोंको नास्तिक भी कह दिया करते हैं किन्तु यह उनका भ्रम है। वास्तवमें जैन नास्तिक नहीं हैं वे ईश्वर स्वीकार करते हैं। हां, वे हिन्दुदार्शनिकोंकी तरह ईश्वरको सृष्टिकर्ता नहीं मानते और ईश्वरकी जगत्कर्ता होनेमें इस प्रकार दोष दिये जाते हैं—

यदि तमाम जगत् परमात्मा या ईश्वरका स्वरूप होता तो ज्ञानी अज्ञानी, सुखी, दुःखी आदिका प्रभेद न होता—सम्पूर्ण जगत् एकरस एकस्वभाव और अभेद भावको प्राप्त करता।

यदि यह कहा जाय कि ब्रह्म एक ही है और माया उससे भिन्न है या ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप है और जग आदि सब मायाजन्य है तो इस कथनमें दोष आता है। माया और ब्रह्ममें प्रभेद क्या है? यदि जड़ चेतनात्मक हो तो फिर वह नित्य है या अनित्य? यदि अनित्य है तो वह विनश्वर और कार्य रूप समझा जायगा। यदि कार्य स्वरूप हो, तो उसका कारण भी जरूर होगा। सुतरां मायाका उपादानकारण क्या है? यदि कहो कि माया ही उपादानकारण है, तो अनवस्थादोष घटता है। यदि ब्रह्मको उपादानकारण कहते हो तो ब्रह्म ही स्वयं सब कार्य करते हैं यह कहना पड़ेगा। इसमें भी पूर्वोक्त दोष आता है। यदि मायाको नित्य और चैतन्य माना जाय, तो फिर अद्वैतवाद नहीं रहता। यदि कहो, कि ब्रह्म और माया एक ही है, तो फिर दोनोंके भिन्न नाम देनेकी आवश्यकता ही क्या है? एक ब्रह्मके कहनेसे ही प्रयोजन सिद्ध हो जाता।

वास्तवमें ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं है। सभी पदार्थोंमें अनन्तशक्ति मौजूद है उस शक्ति द्वारा ही पदार्थ अपना अपना कार्य करते हैं। जगत्में जो कुछ भी काम होते हैं, उन सबमें काल स्वभाव, नियति, कर्म और उद्यम ये पांच निमित्त ही कारण हैं। इनके सिवा और निमित्त नहीं हैं। इन पांच निमित्तोंसे ही सब कुछ उत्पन्न होता है यह बात प्रत्यक्ष द्वारा सिद्ध हो सकती है। यथा—जब बीज बोया जाता है तब कालका अनुकूल होना जरूरी है अन्यथा बीजाङ्कुर उत्पन्न नहीं हो सकता। इसके सिवा बीज, जल पृथिवी आदिमें भी स्वभावका होना अनिवार्य है। जिस जिस पदार्थमें जो जो स्वभाव है, उसके परिणामको नियति कहा जा सकता है। यह भी एक कारण है। इसी प्रकार जीव का उद्यम या पुरुषकार भी एक कारण है। यह पांचों

जो वस्तुएँ अनादि हैं इनको किसीने भी सृष्टि नहीं की। वस्तुओंके जितने भी स्वभाव हैं, वे सभी अनादि-से हैं। जिन वस्तुओंमें स्व-स्व स्वभाव नहीं हैं, उनकी सत्ता नहीं रह सकती। पृथिवी, आकाश, सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ जो प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं, तद्द्वारा ही अनादिरूप सिद्ध होता है। पृथिवी पर जो कुछ भी रचना दीख रही है, वह सब पहलेसे ही (अनादिसे) प्रवाह-क्रमसे इसी प्रकार चली आई है। जगत्‌के जो कुछ भी नियम हैं, वे उक्त पांच निमित्तोंके बिना सिद्ध नहीं हो सकते। इसी लिए कहा जाता है, कि सभी पदार्थ स्व-स्व नियमानुसार होते हैं, यदि द्रव्यकी शक्तिको ईश्वर कहते हो तो कोई आपत्ति नहीं। द्रव्यकी अनादि शक्तिको भी ईश्वर कहा जा सकता है। यदि कहो, कि जड़में कुछ भी शक्ति नहीं है, तो हम बातको हम स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि जगत्‌में बहुतसे जड़पदार्थ पूर्वोक्त पांच निमित्तोंसे अपने आप मिला करते हैं। जैसे सूर्यकी किरण वर्षाके मेघ पर पड़ कर इन्द्रधनु उत्पन्न करती है, आकाशमें पवनकी सहायतासे जल और अग्नि उत्पन्न होती है, इसी तरह पूर्वोक्त पांच निमित्तोंसे तृण, गुल्म, कीट, पतङ्गादि बहुतर प्राणी उत्पन्न हुआ करते हैं। द्रव्यार्थिक नयके अनुसार पृथिवी, आकाश, चन्द्र, सूर्य इत्यादि अनादि हैं और जो अनादि हैं, वे किसीके द्वारा सृष्ट नहीं हो सकते। वास्तवमें ईश्वर जगत्स्रष्टा नहीं हैं और न वे जीवोंके शुभाशुभका विधान ही करते हैं*। जीवोंका जो शुभाशुभ होता है, वह कर्मफल मात्र है कर्मफल भोगनेमें जीव परवश है।

यदि ईश्वर सृष्टिकर्त्ता नहीं, यदि ईश्वर जीवके शुभाशुभ कर्मविधायक नहीं, तो फिर उनका स्वरूप क्या है? प्रधान प्रधान जैनाचार्योंने निम्न श्लोक प्रकट कर ईश्वर-का स्वरूप व्यक्त किया है –

"त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनंगकेतुम्।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः॥"

अर्थात्—हे भगवन्! तुम अव्यय (तुम्हारा कभी अपव्यय नहीं है) अर्थात् तीन कालमें एकस्वरूप हो, विभु अर्थात् समस्त पदार्थोंके ज्ञाता होनेसे ज्ञान द्वारा सर्वव्यापी हो, अचिन्त्य अर्थात् अध्यात्म ज्ञानिगण भी तुम्हारी चिन्ता करनेमें समर्थ नहीं हैं, असंख्य अर्थात् तुम्हारे गुणोंकी कोई संख्या नहीं कर सकता। आद्य अर्थात् (यह आदिनाथ भगवान्‌की स्तुति है और वे प्रथम तीर्थङ्कर हैं) स्वतीर्थके आदिकारक हो, ब्रह्म अर्थात् अनन्त आनन्दस्वरूप हो, सर्वापेक्षा अधिक ऐश्वर्यशाली हो, अनन्तज्ञान दर्शनयोगसे भी तुम्हारा अन्त नहीं मिलता, अनङ्गकेतु अर्थात् औदारिक वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण इन पञ्चशरीररूपी चिह्न भी तुममें नहीं है। योगीश्वर अर्थात् चार ज्ञानके धारक योगियों-के भी ईश्वर हो, विदितयोग अर्थात् कर्मसंयोगको तुमने आत्मासे सम्पूर्ण पृथक् कर दिया है, अनेक अर्थात् गुणपर्यायकी अपेक्षा अनेक हो, एक अर्थात् अद्वितीय वा सर्वोत्कृष्ट हो, ज्ञानस्वरूप अर्थात् केवल-ज्ञान तुम्हारा स्वरूप है। अमल अर्थात् अष्टादश दोषरूप मल तुममें नहीं है।

जिनप्रतिष्ठाविधि—पहले वास्तुशास्त्रके अनुसार जिन-मन्दिरका उत्तम स्थान निर्णीत करें, और फिर शुभदिनमें खोदी हुई नींवकी पूजा करके उसकी शुद्धि करें। जिन-मन्दिरके निश्चित चारों द्वारोंके सामने पांच रंगके चूर्णसे चतुष्कोण मण्डल बनावें और अष्टदल कमलके आकार ताँबेके पात्रमें लोकोत्तम शरणरूप जिन आदिकी (अनादि सिद्ध मन्त्र द्वारा) पूजा करें। अनन्तर चार दिशाओंके चार पत्रों पर जया आदि देवियोंकी, चार विदिशाओंके चार पत्रों पर जम्भा आदि देवियोंकी, तथा उसके बाहर चार लोकपालों और नवग्रहोंकी उन्हींके मन्त्रोंसे पूजा करनी चाहिए। फिर उत्कृष्ट सिंहासन पर जिन-प्रतिमाको विराजमान कर उनकी पूजा करें। पीछे जल चन्दन अक्षतादि अष्टद्रव्य ले कर सब विघ्नोंकी शान्तिके

* सृष्टिकर्तृत्वका खण्डन और जैनमतानुसार ईश्वरतत्त्वका विस्तृत स्वरूप जानना हो तो निम्नलिखित ग्रन्थ देखें—आप्त परीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, आप्तमीमांसा, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, प्रमाणमीमांसा, प्रमाणसमुच्चय, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिकालंकार, गंधहस्तिमहाभाष्य आदि।

लिए विभिन्न मन्त्रोंसे पूजन करे। इस प्रकार भी वक्को पूजा सम्पन्न करके मन्दिर निर्माण करावे।

अनन्तर शक्रयान्ति नामक एक चतुष्कोण मण्डल बनाया जाता है, जिसकी विधि आशाधरकृत 'प्रतिष्ठासारोद्धार' वा एकसन्धिकृत 'जिनसंहिता से जानना चाहिए। उक्त मण्डलके मध्यस्थित अष्टदल कमलके बीच अथवा सिद्धिकोंको स्थापन करके अनादिसिद्ध मन्त्र* द्वारा उनको पूजा करे। फिर आठ कमलपत्रों पर स्थित जया, अजया, विजया, मोहा, अजिता, स्तम्भा, अपराजिता और स्तम्भिनी इन आठ देवियोंको अर्घ्य प्रदान करे। इसके बाद रोहिणी आदि १६ विद्यादेवियों और चक्रेश्वरी आदि २४ शासनदेवताओं तथा १२ यक्षोंको साक्षी पूर्वक जिनप्रतिमाका अभिषेक और पूजन करें। इसके बाद प्रतिष्ठाशास्त्रानुसार छोटे छोटे अनुष्ठानोंको सम्पन्न करके वेदो निर्माण करावें।

उसके बाद जब मन्दिर बन कर तैयार हो गया हो वा हो रहा हो, तब शुभानुष्ठान करके उत्तम प्रतिमा बनानेवाले शिल्पोके साथ ही (शुभलग्न एवं शुभशकुन में) प्रतिमाके लिए शिला लेनेको जाना चाहिए। शिला पवित्रस्थानकी मोटी बड़ी चिकनी, शीतल, सुन्दर, सुगन्ध समन्वित ठोस उत्कृष्ट वर्णविशिष्ट पवित्र जम होनी, तथा बिन्दु रेखा आदि दोषोंसे रहित होनी चाहिए। शिला मिलने पर 'ॐ ह्रः फट् स्वाहा' इस शापश-मन्त्रको पढ़ कर उसे निकालना चाहिए और घर पर ला कर यथाविधि मन्त्रोच्चारणपूर्वक मूर्ति बनवानी प्रारम्भ करना चाहिए। धातुको प्रतिमाके लिये भी ऐसा ही नियम है। अष्टधातुकी ही बनती है। मूर्ति शान्त, प्रसन्न, मध्यस्थ, नासाग्रस्थित अविकारी दृष्टिवाली वीत रागताको द्योतक शुभ लक्षणोंसे युक्त, रौद्र आदि दोषोंसे रहित होनी चाहिये। मूर्ति प्रस्तुत हो जाने पर उस को विधि अनुसार सिंहासन पर स्थापित करे। उसके बाद तीन छत्र, दो चमर, अशोक वृक्ष, दुन्दुभि बाजा सिंहासन, भामण्डल, दिव्यभाषा पुष्पवर्षा इन आठ प्राति-

* "ओं ह्रां णमोऽर्हद्भ्यः स्वाहा, ओं ह्रीं णमः सिद्धेभ्यः स्वाहा, ओं ह्रूं णमः सूरिभ्यः स्वाहा, ओं ह्रौं णमः पाठकेभ्यः स्वाहा, ओं ह्रः णमः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा।"

हार्योंसे शोभित करे। प्रतिमा जिन तीर्थंकरकी हो उनका चिह्न उसमें अवश्य अंकित करे। यह मूर्ति स्वयं चैत्यालयमें स्थापित करनी हो तब तो एक बित्ता वा उससे छोटो होनी चाहिए और इससे अधिक जिन मन्दिरमें विराजमान करनी उचित है। इसके बाद प्रतिष्ठा शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार तीर्थंकर प्रभुने जैसे लोकिताग्रस्थामें गर्भ, जन्म दीक्षा, ज्ञान और निर्वाणकी समय पांच कल्याण हुये थे उनकी अवतारणा करनी चाहिये। यथा जिनेन्द्र भगवान्‌के गर्भमें आनेके समय कुबेरकृत रत्नों की वर्षा, देवियोंकृत जिनमाताकी सेवा श्री आदि ५६ कुमारिकाओंसे की गई कर्म शोधना माताके देखनेके बाद उनका पतिसे फल पूछना, होने वाले तीर्थंकरका गर्भमें आना और इन्द्र द्वारा की गई जिन माता पिताकी पूजा इतनी विधि होती है, यह सब दिखानी चाहिये। जन्मके समय जन्मभूमि आनन्द होना, तीर्थंकरका जन्म होना, निर्वृद्धता आदि उनके दश अतिशय विजया आदि देवियोंकृत जिनमाताकी सेवा, जातकर्म संस्कार, देवोंका आना, इन्द्राणी द्वारा भगवान् बालकको इन्द्रकी गोदमें सौंपना, सुमेरु पर ले जाना, प्रभुकी स्तुति करना नृत्य करना, नगरोंमें लाना, राजमहलमें उत्सव होना इन्द्रका नृत्य करना, और स्वर्ग जाना इतनी बातें होती हैं, उन सबको दिखाना चाहिये। दीक्षा लेते समय वैराग्यकी उत्पत्ति, लौकान्तिक देवों द्वारा स्तुति, दीक्षा ग्रहण, केशलुञ्चन करना इन्द्र कृत केशोंका क्षीरसमुद्रमें क्षेपण भगवान्‌को मन पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति आदि होते हैं उनको दिखाना चाहिये। चौथे कैवल्यज्ञानको उत्पत्ति, समवसरण निर्माण, दिव्यध्वनिको उत्पत्ति आदि विशेषतायें दिखानी चाहिये। पांचवें निर्वाण होनेके समय आठ कर्मोंसे आठ गुणोंको लिख कर पूजना चाहिये।

इस प्रकार पांच क्रियाओंके हो जानेके बाद जिन प्रतिबिम्ब प्रतिष्ठित समझा जाता है और पूजने योग्य होता है।

जिन मूर्तिकी पूजा कई तरहसे होती है एक तो अभिषेक पूर्वक जल चंदन अक्षत (चावल) पुष्प नैवेद्य (पकवान) दीप धूप और फल इन आठ द्रव्योंसे और

अभिषेक बिना किये किसी एक द्रव्यसे। द्रव्यके अभावमें अपने भाव-परिणामोंमें उक्त द्रव्योंकी कल्पना कर भी पूजन हो सकता है और इसे भावपूजन कहते हैं। इसको मुनिगण प्रायः करते हैं। चार वर्णोंमेंसे शूद्रके सिवा अन्य सभी अभिषेकपूर्वक पूजन कर सकते हैं। शूद्रोंमें स्पर्श्य शूद्र तो वेदिगृहके सिवा अन्यत्र मन्दिरमें प्रवेश कर किसी एक या अनेक द्रव्यको भेंटमें रख दर्शन कर सकते हैं और अस्पृश्य शूद्र मन्दिरमें भीतर जा नहीं सकते, इसलिए मंदिरकी शिखरमें चार दिशाओंमें जो चार जिनविंब रहते हैं उनका दर्शन करते हैं। इसके सिवा सूतक पातक और पतित अवस्थामें ब्राह्मणादि तीन वर्ण भी जिनविंबस्पर्शनके अधिकारी नहीं हैं और न उनको द्रव्य चढ़ा कर पूजन करनेका ही विधान है।

जैन लोग स्नानादिसे पवित्र हो प्रति दिन जिनदर्शन करना अपना कर्तव्य समझते हैं इसलिये समस्त स्त्री पुरुष और बालक जिनमन्दिर जा अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हैं। मन्दिरमें प्रवेश करते समय वे 'निःसहि' तीन बार उच्चारण कर गद्यपद्यमय स्तुति बोलते हैं, जिसमें जिनेन्द्र भगवानके गुण और अपनी हीन अवस्था का उल्लेख रहता है। नमस्कार, प्रदक्षिणा और स्तोत्र पाठ कर चुकनेके बाद शास्त्र पाठ करते हैं। जिनबिंबाभिषेकका जल अपने उत्तमांगमें लगाते हैं और फिर अपने घर वापिस आते हैं। जैन लोग अपने ईश्वरसे कोटि धन धान्यादि संपत्तिकी याचना नहीं करते और न ईश्वरको इन वस्तुओंका दाता ही मानते हैं। जिनेन्द्रदेवने अपने उद्यमसे कर्मबंधनको छोड़ कर शुद्ध परमोत्कृष्ट अवस्था पायी है इसलिये उनका आदर्श स्थापित कर उनके तुल्य हो जानेकी ही भावना भाते हैं। जलचंदन आदि आठ द्रव्योंको चढ़ाते समय जो मन्त्र बोले जाते हैं उनका अभिप्राय भी यही है कि भक्त पुरुष मुक्ति प्राप्त करनेकी योग्यता प्राप्त करने। ऐहिक सुखकी लालसासे जिनपूजन करनेका जैन शास्त्र खुले तौरसे विरोध करते हैं। उनकी मूर्ति वीतराग सब प्रकारके परिग्रहसे रहित होती है उसका अभिप्राय यही है कि परिणामोंमें किसी भी तरहका रागभाव पैदा न हो और अपना आदर्श वीतरागता ही समझें। विशेष जाननेके लिये जैनपूजा ग्रंथ देखने चाहिये। जैनसम्प्रदाय देखो।

जैनबद्री (जैनकाशी)—जैनोंका एक प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र। यह मन्द्राजके अन्तर्गत हासन जिलेके श्रवणबेलगोला ग्रामके सन्निकट है। यहां एक बड़ा तालाब है और उसके दोनों ओर दो छोटे छोटे पहाड़ हैं। इन पहाड़ोंको वहांके लोग विन्ध्यगिरि कहते हैं। पहाड़के नीचे रास्तेके किनारे एक जैन मन्दिर है। एक पहाड़के ऊपर कोट बना हुआ है, जिसके भीतर एक बहुत बड़ा और दो छोटे छोटे जैन मन्दिर हैं तथा एक मानस्तम्भ (जिसको देख कर अभिमानियोंका मान दूर हो जाता है, उसे मानस्तम्भ कहते हैं।) एक कुण्ड है, जिसमें पानी भरा रहता है। पहाड़ पर चढ़नेके लिए सीढ़ियां बनी हुई हैं। यहांसे कुछ ऊपर चढ़ने पर और एक कोट मिलता है। इसके पास दो देहली और मनोज्ञ जैन मूर्ति विराजित हैं। इसके बाद और एक कोट है। यहां एक प्राचीन जैन-धर्मशाला, तीन जैनमन्दिर एक मानस्तम्भ और परिक्रमा बनी हुई है।

सबसे ऊपर चौथा कोट है। यहां ७० फुट ऊंची श्रीबाहुबलि स्वामीकी एक खड्गासन प्राचीन जैनप्रतिमा है। इसके आस-पास और भी अनेक जैन-मूर्तियां अवस्थित हैं। यहां बाहुबलिस्वामीके दर्शनार्थ भारतवर्षके नाना प्रदेशोंसे यात्रिगण आया करते हैं।

श्रवणबेलगोला देखो।

जैनविवाहविधि—जैनशास्त्रोक्त विवाहकी पद्धति। विवाहसे, कमसे कम तीन दिन पहले कन्याका पिता अपने बन्धु बान्धव और ज्ञातिय लोगोंको निमन्त्रण दे कर बुला लेता है। फिर कन्याको वस्त्राभूषण और पुष्पमाला आदिसे सुशोभित कर सौभाग्यवती स्त्रियोंकी साथ ले गाजे बाजेके साथ सब जिनमन्दिर पहुंचते हैं। मन्दिरमें आचार्य वा व्रतवर (पण्डित)के मुखसे 'सहस्रनाम'का पाठ सुने और अष्टद्रव्यसे जिनेन्द्रकी पूजा करावें। पश्चात् अर्हन्त और सिद्धोंकी पूजा करके अनादि निधन "विनायकयन्त्र" वा "सिद्धयन्त्र"का अभिषेक* और पूजन† करें तथा णमोकार मन्त्रका (सुवर्णमय

* मन्त्र—"ओं भूर्भुवः स्वरिह एतत् विघ्नैकघातके यन्त्रे अर्हं परिषिञ्चयामि।"

† पूजाविधि और उसके मंत्रादि "जैनविवाहविधि" नामक पुस्तकसे जानना चाहिए।

पुष्पों या लवङ्गोंकी मालासे) १०८ बार जप करें।

अनन्तर कन्या उस यन्त्रको गाजे-बाजेके साथ भक्ति पूर्वक अपने चैत्यालय या घर में लावे और उसे एक पवित्र स्थान पर विराजमान कर दे और जब तक विसर्जन हो, तब तक प्रतिदिन उसका अभिषेक करे। उस दिन कन्याको रात्रिजागरणपूर्वक पञ्चमङ्गल आदि का पाठ करना चाहिए।

इसी प्रकार वरको भी विनायकयन्त्रका अभिषेक पूजनादि करना चाहिए।

विवाहसे पांच दिन अथवा तीन दिन पहले कङ्कण बन्धनादिविधि सम्पन्न करना चाहिए। गृहस्थाचार्यको अपने हाथसे कङ्कण बांधना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है—

"जिनेन्द्रगुरुपूजनं श्रुतवचःसदाधारणं,
स्वशीलयमरक्षणं दशतपांसि सन्मानं।
इति प्रथितषट्क्रियानिरतिचारमास्तां यथे
। त्यस्य प्रथमकर्मणे विहितरक्षिकाबन्धनम् ॥"

इसके बाद शास्त्रानुसार छोटे छोटे विधानोंको सम्पन्न करके विवाह मण्डप और वेदीकी रचना करनी चाहिए। मण्डपके चार कोनोंमें चार काठके स्तम्भ, लाल कपड़े और कच्चे सूत (कोरी)से वेष्टित करे। इसके ठीक मध्यभागमें चार हाथ लम्बी चौड़ी एक वेदी (चौतरी) बनावें। उसके चार कोनोंमें चार किस्मके छोटे छोटे पेड़ व हरके पेड़ रोपण करे। उस वेदीके ऊपर कन्याके हाथसे एक एक हाथ ऊंची तीन कटनी पूर्व दिशाकी तरफ बनावे उस वेदीके पीछे ठीक मध्य भागमें कटनीके पहले चारों खम्भोंके ऊपर कलशमें १।) रु० हल्दी सुपारी दूर्वा अक्षत आदि माङ्गलिक द्रव्य डाल कर एक लाल कपड़ेकी ध्वजा लगावे। इसके बाद गृहस्थाचार्य वा पण्डित सबसे ऊपर कटनी पर सिद्ध भगवान्का प्रतिबिम्ब स्थापन करे। यदि वह न हो तो विनायकयन्त्र स्थापित करे। उसके नीचेकी (बीचकी) कटनी पर शास्त्र जी (जैन शास्त्रों)को विराजमान करे और नीचेकी तीसरी कटनी पर अष्टम मङ्गल द्रव्योंकी स्थापना करे और शुभ पूजाके लिए उसी कटनी पर केसर अथवा रंगीसे अथवा कागजमें लिख कर चौसठ साथिये स्थापित करे। इसके आगे एक तीर्थंकर कुण्ड बनावे; उसके दक्षिण भागमें भी धर्मचक्रको और बाईं तरफ तीन छत्र या एक छत्र को स्थापन करे।

विवाहके समय कन्याका पिता वरका पिता कन्या और वरके मामा, दोनोंकी माताये और एक गृहस्थाचार्य ये सात व्यक्ति अवश्य उपस्थित रहने चाहिए। विवाह मुहूर्तसे पहले वर जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर घोड़े आदिकी सवारी पर चढ़ कर श्वशुरके घर आवे। कन्याकी माता उसके पैर धोवे आरती उतारे और मुद्रिका आदि आभूषण प्रदान करे। वरका पिता कन्याके लिये लाये हुये वस्त्र भूषणादि पहरनेके लिए दे। इसके बाद कन्याका मामा प्रीतिपूर्वक वरका हाथ पकड़ कर मण्डपमें वेदीके दक्षिण तरफ पूर्व मुखसे खड़ा कर दे और कन्याको भी उसीके पास ले आवे। इस समय सेहरा उठा कर कन्या और वर दोनोंको परस्पर मुख देखना चाहिये। इसके बाद कन्याके मामा और माता पितादि कुटुम्बी सभीको 'तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेके लिये यह कन्या देते हैं इसे स्वीकार करो' कह कर सम्मति प्रगटी करनी चाहिये। इसके अनन्तर वर भी सिद्ध यन्त्रको नमस्कार कर उसे स्वीकार करे। इसके बाद गृहस्थाचार्य जैनविवाहपद्धतिमें कही हुई विधिके अनुसार सिद्ध पूजादि कर एक सौ बारह आहुति हवन कुण्डमें दे। अन्तमें सप्तपरमस्थानकी प्राप्तिके लिए वेदीको वर कन्याको सात प्रदक्षिणा (फेरा) दिला कर पुण्याहवाचन पढ़ें।

इस प्रकार विवाह समाप्त हो जाने पर अन्य बहुतसे आचार होते हैं उसके बाद वर वधूको साथमें ले अपने घर चला जाता है।

जैनवैद्य—एक जैन ग्रन्थलेखक। इनका असल नाम जवाहर लाल होने पर भी ये जैनवैद्यके नामसे प्रसिद्ध थे। इन्होंने कमल मोहनी भंवरसिंह (नाटक), ज्ञान प्रबोधक और ज्ञानवर्णमाला आदि कई पुस्तकें लिखी हैं। इसके सिवा इन्होंने 'उचितवक्ता' जैन आदि कई पत्रिका सम्पादनकार्य भी किया था। जयपुरमें नागरीभवनकी स्थापना भी इन्हींके द्वारा हुई थी। सन् १८९९में इनकी मृत्यु हुई।

जैनसम्प्रदाय-भारतका एक विख्यात और प्राचीन धर्मसम्प्रदाय। यह सम्प्रदाय मुख्यतः दो विभागोंमें विभक्त है, एक दिगंबर और दूसरा श्वेताम्बर। श्वेताम्बरोंका विवरण ईसाकी ५मीं शताब्दीसे मिलता है। दिगम्बर ईसासे ६०० वर्ष पहले भी विद्यमान थे। क्योंकि बौद्ध 'पालिपिटक'में निर्ग्रंथके नामसे इसका उल्लेख है। ये निर्ग्रंथ बुद्धदेवके समसामयिक थे। निर्ग्रन्थों (दिगम्बरों)का विवरण अशोकको शिलालिपिमें भी मिलता है (१)। अन्तिम तीर्थंकर महावीरस्वामीके समयमें यह सम्प्रदायभेद न था, पीछे हुआ है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके 'प्रवचनपरीक्षा' नामक ग्रन्थमें लिखा है—

"छव्वाससहस्सेहिं नवुत्तरेहिं सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
तो वोडियाण दिठ्ठी रहवीरे समुप्पण्णा॥"

अर्थात्—वीर भगवान्‌के मुक्त होनेके ६०८ वर्ष बाद बोधिकों (दिगम्बरों)के प्रवर्तक रथवीपुरमें उत्पन्न हुए। इसके अनुसार वि० सं० १३८में दिगम्बरसम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। किन्तु श्वेताम्बराचार्य* जिनेश्वर सूरिने अपने "प्रमाणलक्षण" नामक तर्कग्रन्थमें श्वेताम्बरोंको आधुनिक बतलानेवाले दिम्बराचार्यकी ओरसे उपस्थित की जानेवाली एक गाथाका उल्लेख किया है, जो उपर्युक्त गाथासे बिलकुल मिलती जुलती है। यथा—

"छब्बास सएहिं नउत्तरेहिं तइया सिद्धिगयस्स वीरस्स।
कंबलिणं दिट्ठी वलहीपुरिए समुप्पण्णा॥"

अर्थात्—महावीरस्वामीके निर्वाणके ६०८ वर्ष बाद (विक्रम-सं० १३६ में) काम्बलिकों (श्वेताम्बरों)का मत उत्पन्न हुआ। दिगम्बरोंकी उत्पत्तिके विषयमें श्वेताम्बरोंके 'प्रवचनपरीक्षा'में एक कथा लिखी है—"रथवीपुरमें शिवभूति (वा सहस्रमल्ल) नामक एक राजभृत्य रहते थे, जिनकी स्त्री सासुके साथ लड़ा करती थी। एक दिन शिवभूति किसी कारणवश माता पर क्रुद्ध हो कर रातको घरसे निकल पड़े और एक साधुओंके उपाश्रयमें जा कर उनमें शामिल हो गये। कुछ समय बाद उन साधुओंका उसी नगरमें आना हुआ, जिसमें शिवभूति रहते थे। उस समय राजाने शिवभूतिको एक रत्न-कम्बल उपहारमें दिया। किन्तु अन्य साधुओंने उसे यह कह कर कि साधुओंको कम्बल लेना उचित नहीं, छीन कर फेंक दिया। इससे शिवभूतिको बड़ा दुःख हुआ। किसी समय उस मठके आचार्य जिनकल्प साधुओंके स्वरूपका व्याख्यान कर रहे थे, कि शिवभूतिने यह जाननेकी इच्छा प्रकट की कि 'जब जिनकल्प निष्परिग्रह होता है, तो आप लोगोंने यह आडम्बर क्यों स्वीकार किया है, वास्तविक मार्ग क्यों नहीं अङ्गीकार करते हैं?' उत्तरमें गुरु महाराजने कहा—'इस विषम कलिकालमें जिनमार्ग कठिन होनेसे धारण नहीं किया जा सकता।' इस पर शिवभूतिने यह कह कर कि 'देखिये तो मैं इसे ही धारण करके बताता हूं' जिनकल्प धारण कर लिया।"

श्वेताम्बरोंके उपर्युक्त कथनसे यही प्रमाणित होता है कि पहले जिनकल्पी (दिगम्बर) दीक्षाका ही विधान था, पीछे कलिकालमें वह कठिन होनेके कारण, लोग श्वेत-अम्बर धारण करने लगे।

सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् वराहमिहिरने (जो कि महाराज विक्रमकी सभाके नवरत्नोंमेंसे एक थे,) बृहत् संहितामें एक जगह लिखा है—

"विष्णोर्भागवता मगाश्च सवितुः शंभोः सभस्मा द्विजाः।
मातॄणामिति मातृमण्डलविदः शम्भोः सभस्मा द्विजाः।
शाक्याः सर्वहिताय शान्तमनसो नग्ना जिनानां विदुः।
ये यं देवमुपाश्रिताः स्वविधिना ते तस्य कुर्युः क्रियाम्॥"

वराहमिहिर राजा विक्रमादित्यके सामने ही मौजूद थे और उन्होंने नग्न या दिगम्बरोंका उल्लेख किया है। ऐसी दशामें दिगम्बर मतकी उत्पत्ति विक्रम संवत् १३६में हुई है यह बात ऐतिहासिक दृष्टिसे विश्वासयोग्य नहीं।

श्वेताम्बरसम्प्रदायकी उत्पत्तिका विवरण देवसेन-

(१) Encyclopaedia Britannica, 11th Ed Vol XV. p 127

* जिनेश्वरसूरि ग्यारहवीं शताब्दीमें हुए हैं।

† इस बातको दिगम्बराचार्य भी स्वीकार करते हैं, कि दिगम्बरी दीक्षा न पाल सकनेके कारण श्वेताम्बरी दीक्षाका प्रचलन हुआ। यथा—

"संयमो जिनकल्पस्य दुःसाध्योऽयं ततोऽधुना।
मलस्वविरकल्पस्य तस्मादस्माभिराश्रितम्।"
दुर्द्धरो मूलमार्गोऽयं न धर्तुं शक्यते तत।"

सकतो । जिनके ज्ञानमें त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ युगपत् दीख पड़ते हैं, उन्हें भूख लगे और वे भक्ष्य अभक्ष्य पदार्थोंको अपने ज्ञानगोचर होते हुये भी अन्तराय न मान खा डालें ।

इसके सिवा कथाग्रन्थोंमें भी बहुत कुछ अन्तर है। जैसे—श्वेतांबर लोग कहते हैं, कि महावीरस्वामी पहिले एक ब्राह्मणीके गर्भमें आये और फिर इन्द्रने उन्हें राजा सिद्धार्थकी पत्नीके गर्भमें रख दिया इत्यादि । परन्तु दिगंबर इसका विरोध करते हैं और उनका अवतरण राजा सिद्धार्थकी महिषीके उदरमें ही मानते हैं ।

प्राचीन दिगंबर और श्वेतांबर मूर्तियोंके देखनेसे मालूम होता है कि पहिले परस्पर बहुत कम अन्तर था। श्वेतांबर मूर्तियोंके सिर्फ लंगोटीका चिन्ह ही रहता था, परन्तु आजकल कुण्डल, केयूर, अङ्गद, मुकुट आदि सभी शृङ्गारकी सामग्रियां पहना दी जाती हैं। पहिले परस्पर इन दोनों शाखाओंमें अनैक्य भी अधिक न था । दोनों ही हिल-मिल कर अपना धर्म साधन करते थे ।

दिगंबर साधु आजकल अतिविरल हैं,—परन्तु श्वेतांबर साधु बहुत दीख पड़ते हैं । इसका कारण दोनों सम्प्रदायोंके दुर्गम सुगम नियम हैं।

मूर्तिपूजामें भी परस्पर भेद है । दिगंबर पूजनेसे पहिले जलसे अभिषेक करते हैं और फिर जल चन्दन अक्षत आदि अष्ट द्रव्योंसे पूजन करते हैं । परन्तु श्वेतांबर पञ्चामृतसे अभिषेक कर पूजन करते हैं।

श्वेतांबर सम्प्रदायमें स्थानकवासी तेरहपंथी आदि अनेक भेद हैं, जिसमें स्थानकवासी मूर्तिको नहीं पूजते और इनके कुछ शास्त्र भी पृथक्-पृथक् रचे हुए हैं । श्वेताम्बरमतानुसार श्रीमहावीरस्वामीके पीछे जो आचार्य पट्ट पर बैठे, उनका विवरण निम्नलिखित तालिकासे जानना चाहिये । (तालिका आगेके पृष्ठमें देखो)

दिगंबर-सम्प्रदाय ।

दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो मुख्य संप्रदाय हैं इन दोनों ही संप्रदायमें सङ्घ वा गच्छभेद पाया जाता है। दिगम्बराचार्य अमितगतिने स्वरचित 'धर्मपरीक्षा' नामक ग्रन्थमें चार सङ्घोंका उल्लेख किया है; यथा—१ मूल सङ्घ, २ काष्ठासङ्घ, ३ माथुरसङ्घ और ४ गोप्यसङ्घ इनमेंसे मूलसङ्घ पहलेसे ही था और द्राविडसङ्घ, काष्ठासङ्घ और माथुरसङ्घ आदि पीछेसे हुए। दर्शनसार नामक ग्रंथमें संग्रहकर्ता देवसेनसूरिने इनकी उत्पत्तिका जो समय और कारण लिखा है उसे यहां उद्धृत करना उचित समझते हैं।

द्राविडसंघ—श्रीपूज्यपाद अपर नाम देवनन्दि आचार्यके शिष्य वज्रनन्दि अप्रासुक अथवा सचित्त चनोंको खाना उचित समझते थे। अन्य आचार्योंने इस बातसे उन्हें रोका तो उन्होंने विपरीत प्रायश्चित्त शास्त्रोंको रचनाकर अपनी बातकी पुष्टि की । उन्होंने लिखा है कि—बीजोंमें जीव नहीं है, मुनियोंको खड़े होकर भोजन न करना चाहिये, कोई वस्तु प्रासुक नहीं हैं आदि उस वज्रनन्दिने कछार खेत वसतिका और वाणिज्य आदि कराके जीवननिर्वाह और शीतल जलमें स्नान करने आदिमें मुनियोंको दोष नहीं बतलाया । विक्रम-संवत् ५२६ में दक्षिण मथुरा (मदुरा) नगरमें इस मतकी उत्पत्ति हुई और द्राविडसङ्घ नाम पड़ा ।*

काष्ठासङ्घ—नन्दीतट नगरमें विनयसेन मुनिसे दीक्षित कुमारसेन मुनि सन्यास मरणसे भ्रष्ट हो फिर दीक्षित नहीं हुये। उन्होंने मयूरपिच्छको त्यागकर चमरी गायके बालोंकी पिच्छी ग्रहणकर द्राविड़ देशमें उन्मार्गका प्रचार किया। उनके मतानुसार, क्षुल्लकोंको वीरचर्या करना, मुनियोंको कड़े बालोंकी पिच्छी रखना उचित है। इसी प्रकार अन्य शास्त्र पुराण और प्रायश्चित्त ग्रन्थोंमें भी कुछ मिलावट कर दी। विक्रम संवत् ७५३ में इस सङ्घकी उत्पत्ति हुई§।

---

* सिरि पुज्जपादसीसो दाविडसंघस्स कारगो दुट्ठो ।
णामेण वज्जणंदी पाहुडवेदी महासत्तो ॥ ५४ ॥
पंचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ।
दक्खिणमहुराजादो दाविडसंघो महामोहो ॥ २८ ॥

§ सत्तसए तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ।
णंदियडे वरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो ॥ ३८ ॥

धर्मसागरने यह भी कहा है, कि दुर्लभराजकी सभामें सं० १०२४को चैत्यवासीके पराजित होने पर जिनेश्वरने खरतर विरुद प्राप्त किया, जो यह कथा प्रचलित है, वह अमूलक है कारण, दुर्लभराज उसके बहुत समय पीछे, अर्थात् सं० १०६६को सिंहासन पर बैठे थे। विशेषतः १५८२ संवत्में लिखित श्लोकानुवन्धी खरतर गच्छकी पट्टावलीमें लिखा है, कि सं० १०२४ में जिनहंस सूरि पट्टधर थे; दर्शन सप्ततिकावृत्ति, अभयदेवकृत ऋषभचरित, और उनके शिष्य वर्द्धमानकृत प्राकृत गाथा एवं प्रभाविक चरित्रमें खरतरके विषयमें कुछ भी उल्लेख नहीं है। सुमतिगणिके ग्रन्थके पढ़नेसे मालूम होता है, कि जिनवल्लभने जिनदत्तको देखा ही नहीं था। धर्मसागरने अपने ग्रन्थमें जो पट्टावली उद्धृत की है, उससे भी यह मालूम नहीं होता कि जिनवल्लभ अभयदेवके शिष्य थे। धर्मसागरने लिखा है कि प्राचीन गाथाके अनुसार १२०४ संवत्में ही जिनदत्त सूरि द्वारा खरतर शाखा प्रवर्त्तित हुई थी। जिनदत्त अत्यन्त खरप्रकृतिके थे, इसीलिए साधारण लोग उन्हें खरतर कहा करते थे; जिनदत्तने भी आदरके साथ उस नामको ग्रहण किया था। इन्हीं जिनदत्तकी शिष्यपरम्परा खरतरगच्छ नामसे प्रसिद्ध हुई।

धर्मसागरके मतसे जिनशेखरसे रुद्रपल्लीका गच्छ प्रसिद्ध नहीं हुआ, उनके बाद ४र्थ पट्टधर अभयदेवसे ही रुद्रपल्लीय गच्छका सूत्रपात है।

आञ्चलिकोत्पत्ति—१२१३ संवत्में आञ्चलिक शाखाकी उत्पत्ति हुई। पौर्णमीयक पक्षमें नरसिंह नामक एक व्यक्ति वास करते थे, जो एकाक्ष और वहुभाषी थे। पौर्णमीयकोंने उन्हें जातिच्युत कर दिया। विद्रना नामक एक ग्राममें वास करते समय एक नाथि नामकी धन्य रमणी उनकी वन्दनाके लिए आई, पर वह अपनी मुखाच्छादनी लाना भूल गई। जैनशास्त्रमें किसी प्रकारका विधान न होने पर भी नरसिंहने उसे आंचलसे मुंह ढकनेके लिए कहा, जिससे यतियोंमें बड़ी अशान्ति फैल गई। नाथिके अर्थकी कमी नहीं थी, उस अर्थकी सहायतासे नरसिंहने आञ्चलिक पन्थका प्रचार किया। नाथिके अनुरोधसे नाटप्रदीप चैत्यवासीने नरसिंहको सूरिपद प्रदान किया। तबसे नरसिंहका नाम आर्यरक्षित पड़ गया। इन्होंने मुखाच्छादन और रजोहरण परित्याग कर साधारण जैनों द्वारा अनुष्ठित प्रतिक्रमण भी उठा दिया। इस शाखाके अनुयायीगण आञ्चलिक नामसे प्रसिद्ध हुए। आञ्चलिकगण आत्मागम, अनन्तरागम और परम्परागम इन तीन प्रकारके आगमोंको स्वीकार करते हैं।

सार्द्धपौर्णमीकोत्पत्ति—सं १२३६ ई०में इस शाखाकी उत्पत्ति हुई। इसकी उत्पत्तिके विषयमें धर्मसागर गणि लिखते हैं,—

एक दिन राजा कुमारपालने प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्रसे पौर्णमीयक मतके विषयमें पूछा। हेमचन्द्रके मुखसे विस्तृत विवरण सुन कर कुमारपालने अपने राज्यसे पौर्णमीयकोंको निकाल देनेका निश्चय किया। एक दिन उन्होंने पौर्णमीयके आचार्यसे पूछा—'आप लोगोंके मतका परिपोषक कोई आगम वा पूर्ववाद है या नहीं?' पौर्णमीयकने इसका अवज्ञासूचक उत्तर दिया, जिससे समस्त पौर्णमीयकोंको कुमारपालके अधिकार १८ जनपदोंसे निकल जाना पड़ा। कुमारपाल और हेमचन्द्रकी मृत्युके बाद आचार्य सुमतिसिंह नामक एक पौर्णमीयक छद्मवेशसे पत्तननगरमें आये। परिचय पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया "मैं सार्द्धपौर्णमीयक हूं।" सुमतिसिंहके कोई कोई शिष्य इस सम्प्रदायको 'साधुपौर्णमीयक' भी कहते हैं।

आगमिकोत्पत्ति—शीलगण और देवभद्र पौर्णमीयकके पक्षको छोड़ कर पहले तो आञ्चलिक हुए; पीछे शत्रुञ्जय तीर्थमें सात साधुओंके साथ मिल कर उन्होंने शास्त्रोक्त क्षेत्रदेवता की पूजाके परिहाररूप नवीन मतका प्रचार किया। यही मत आगमिक और त्रिस्तुतिक नामसे विख्यात हुआ। १२५० सं०में यह मत प्रचलित हुआ।

लुम्पकोत्पत्ति—गुजरातके अन्तर्गत अहमदाबाद नगरमें दशा श्रीमाल जातिके एक लङ्का वा लुम्पक नामके एक लेखक (प्रतिलिपिकर) रहते थे। ये ज्ञानयतिके उपाश्रयमें पोथी लिखनेका काम करते थे। पोथी

विचरते समय सिद्धान्तके बहुतसे पाठापाठ और वह ग्रन्थ छोड़ जाते थे। इस कारण एक दिन उपाश्रयके लोगोंने उन्हें मार पीट कर भगा दिया इससे लुम्पक बड़े क्रुद्ध हुए और लिम्बड़ी नामक ग्राममें जाकर लखमसी नामक एक बणिककी सहायतासे उन्होंने इस प्रकारका मत प्रचारित किया—"जिनप्रतिमा जब जीवित नहीं है, तब उनकी उपासना नहीं बन सकती। आवश्यक सूत्रके बहुतसे स्थान नष्ट हो गये हैं और व्यवहारसूत्र भी यथार्थ नहीं मालूम पड़ता।" धर्मसागरने प्रवचन परीक्षाके अष्टम अध्यायमें विस्तृत रूपसे लुम्पक मतका प्रतिवाद किया है। उनके मतसे सं० १५०८में इस मतकी उत्पत्ति हुई।

लुम्पककी एक शाखाका नाम है वेषधर। किसीके मतसे संवत् १५३१ और किसी किसीके मतसे १५३३ संवत्में इस शाखाकी उत्पत्ति हुई। मारवाड़जाति और शिवपुरीके निकटवर्ती अरघट्टपाटकनिवासी भाणक नामके कोई व्यक्ति इस शाखाके प्रवर्तक हैं। धर्म सागरने लिखा है, कि भाणक नागपुरीय वेषधरोंमें प्रथम हैं किन्तु भाणकके अवस्थान पहपुरुष वा गुरु रातो वेषधरोंमें प्रधान समझे जाते हैं*। यद्यपि नागपुर में आगमन द्वारा दीक्षित हुए थे।

कटुकोत्पत्ति—कटुक नामक एक विचक्षण जैनसे किसी आगमिकके साथ साक्षात् होने पर उनसे प्रकृत धर्मतत्त्व पूछा। आगमिकने उत्तरमें कहा, 'इस समयमें सच साधुका आविर्भाव नहीं होगा; यदि आप प्रकृत तत्त्व जाननेकी इच्छा रखते हैं तो आगमिक मतका उपदेश ग्रहण करें।' तदनुसार कटुक दीक्षित हुए। १५६२ सं०में इन्हीं कटुकके द्वारा एक पृथक् शाखा प्रवर्तित हुई।

बीजमतोत्पत्ति—बीजक नामक एक लुम्पक वेषधर के बीज नामक एक मूर्ख शिष्य थे। ये मेदपाट नामक स्थानमें जा कर गुरुतर तपमें नियुक्त हो गये। मेदपाटमें पहले कभी भी जैनसाधुका समागम न हुआ था; सुतरां बीजको देख कर सभी उनको विशेष भक्ति श्रद्धा करने लगी। बीज सबको पूर्णिमापाक्षिक पक्खी, पर्युषण, और आगमिक मतानुसार धर्मोपदेश देने लगे। इस तरह सं० १५७०में बीजमत प्रवर्तित हुआ।

पाशचन्द्रोत्पत्ति—नागपुरमें पाशचन्द्र नामक एक तपागच्छीय उपाध्याय वास करते थे। गुरुके साथ विवाद हो जानेसे उन्होंने अपने नामसे एक अभिनव सम्प्रदाय प्रचलन करना चाहा। उन्होंने तपागच्छ और लुम्पक-मतसे कुछ धर्मोपदेश ग्रहण कर विधिवाद, चारित्रानुवाद और यथास्थितवाद नामक क्रियानुरूपी एक मत प्रचारित किया। वे निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और छेदग्रन्थको प्रामाणिक नहीं मानते थे। सं० १५७२में यह मत प्रवर्तित हुआ। इस शाखाके लोग पाशचन्द्रीय नामसे प्रसिद्ध हैं।

इसके सिवा श्वेताम्बरोंमें और भी अनेक गच्छ हैं; यथा—उपकेश गच्छ, नागेन्द्रगच्छ, चन्द्रगच्छ, कारण्टर्षि गच्छ (सं० ११८१ में उत्पन्न हुआ), लघुखरतरगच्छ (सं० १३३१ में उत्पन्न हुआ) वृहत् खरतरगच्छ (इस को पट्टावली पूर्व खण्डमें प्रकाशित है), नायकगच्छ वृहत् गच्छ अञ्चलगच्छ पार्श्वचन्द्रगच्छ, विधिपक्षगच्छ, इत्यादि। प्रत्येक गच्छके एक एक स्वतन्त्र पट्टधर और उनको पट्टावली लिपिबद्ध है। यहां कुछ उद्धृत की जाती है,—

तपागच्छ

नं	नाम	विवरण
३५	उद्योतन	
३६	सर्वदेव (१म)	
३७	देव	—
३८	सर्वदेव (२य)	—
३९	यशोभद्र और नेमिचन्द्र	
४०	मुनिचन्द्र	(हेमचन्द्रके समसामयिक)
४१	अजितदेव	(संवत् ११३८ – १२२०)
४२	विजयसिंह	(विवेकमञ्जरी-प्रणेता)
४३	सोमप्रभ और मणिरत्न	(विजयसिंहके शिष्य)
४४	जगच्चन्द्र	(सं० १२८५में विद्यमान थे)
४५	देवेन्द्रसूरि	(मृत्यु सं० १३२७)
४६	धर्मघोष	(मृ० सं० १३५७)

* धर्मसागरने नागपुरीय वेषधरोंका क्रम इस प्रकार लिखा है- १ भाणक, २य भादर, ३य भीम, ४र्थ हम, ५म जगमाल और १३ वर्षों।

पट्ट	नाम	विशेष विवरण
४७	सोमप्रभ (२य)	(सं० १३१०—१३७३)
४८	सोमतिलक	(सं० १३५५—१४२४)
४९	देवसुन्दर	(जन्म सं० १३९२)
५०	सोमसुन्दर	(सं० १४३०—१४९९)
५१	मुनिसुन्दर	(सं० १४३६—१५०३)
५२	रत्नशेखर	(सं० १४५७-१५१७)
५३	लक्ष्मीसागर	(जन्मसं० १४५४)
५४	सुमतिसाधु	...
५२	रत्नशेखर	(सं० १४५७—१५१७)
५३	लक्ष्मीसागर	(जन्मसं० १४५४)
५४	सुमतिसाधु	
५५	हेमविमल	(इनके समयमें कडुया पन्थ चला)
५६	आनन्दविमल	(सं० १५४३—१५९३)
५७	विजयदान	(सं० १५५३-१६२२)
५८	हीरविजय	(सं० १५८३-१६५२)
५९	विजयसेन	(सं० १६०४-१६७१)
६०	विजयदेव	(सं० १६३४-१६८१)
६१	विजयसिंह	(सं० १६४४-१७०८)
६२	विजयप्रभ	(सं० १६९५-१७४९)
		(इनके समयमें ढूंढियापन्थ चला)
६३	विजयरत्नसूरि	
६४	विजयक्षेमसूरि	
६५	विजयदयासूरि	
६६	विजयधर्मसूरि	
६७	विजयजिनेन्द्र सूरि	
६८	विजयदेवेन्द्र सूरि	
६९	विजयधर्म सूरि (२य)	

तपागच्छ—विजयशाखा ।

(१ से ५९ तक तपागच्छके समान ।)

६० विजयदेव सूरि	६६ उत्तम विजय
६१ विजयसिंह सूरि	६७ पद्मविजय
६२ सत्यविजय सूरि	६८ रूपविजय गणि
६३ कपूरविजय गणि	६९ कीर्ति विजय
६४ क्षमाविजय	७० कस्तूरविजय
६५ जिन विजय	७१ मणि विजय
७२ बुद्धिविजय	७४ कमल विजय
७३ आनन्दविजय सूरि	आचार्य (वर्तमान)

अञ्चलगच्छ ।

१ आर्यरक्षित (संवत् १२०२—१२३६)
२ जयसिंह (सं० १२३६—१२५८)
३ धर्मघोष (सं० १२५८—१२६८)
४ महेन्द्रसिंह (सं० १२६९—१३०९)
५ सिंहप्रभु (सं० १३०९—१३१३)
६ अजितसिंह (सं० १३१४—१३३९)
७ देवेन्द्रसिंह (सं० १३३९—१३७१)
८ धर्मप्रभ (सं० १३९१—१३९२)
९ सिंहतिलक (सं० १३९३—१३९५)
१० महेन्द्र (सं० १३९५—१४४४)
११ मेरुतुङ्ग (सं० १४४६—१४७१)
१२ जयकीर्ति (सं० १४७३—१५००)
१३ जयकेशरी (सं० १५०१—१५४२)
१४ सिद्धान्तसागर (सं० १५४२—१५६०)
१५ भावसागर (सं० १५६०—१५८३)
१६ गुणनिधान (सं० १५८४—१६०२)
१७ धर्ममूर्ति (सं० १६०२—१६७३)
१८ कल्याणसागर (सं० १६७३—१७१८)
१९ अमरसागर (सं० १७१८—१७६२)
२० विद्यासागर (सं० १७६२—१७०५)
२१ उदयसागर (सं० १७९७—१८२६)
२२ कीर्तिसागर (सं० १८२६—१८४३)
२३ पुण्यसागर (सं० १८४३—१८६०)
२४ मुक्तिसागर (सं० १८६०—१८९३)
२५ राजेन्द्रसागर (सं० १८९२—१९१४)
२६ रत्नसागर (सं० १९१४—१९२८)
२७ विवेकसागर (सं० १९२८)

पाशचन्द्रगच्छ ।

१ पार्श्वचन्द्र सूरि (सं० १५६५, मृत्यु १६१२)
२ समरचन्द्र (सं० १६२६)
३ रायचन्द्र (सं० १६६९)
४ विमलचन्द्र (सं० १६७४)
५ जयचन्द्र (सं० १६९८)

नन्दि और पूज्यपाद स्वामी दोनों एक ही व्यक्ति और दिगम्बर जैनाचार्य हैं तथा इन्होंने जैनेन्द्र व्याकरणकी रचना की है। विशेष प्रमाण यह है कि, इनके बनाये हुए सर्वार्थसिद्धि इष्टोपदेश, समाधिशतक आदि ग्रन्थ और भी प्राप्त हैं जो दिगम्बर सम्प्रदायके हैं।

१२०५ ई०में सोमदेवाचार्यने शब्दार्णवचन्द्रिका नामक एक भाष्य बनाया है। उन्होंने पहले ही तीर्थंकर और पूज्यपाद गुणनन्दिदेवको नमस्कार कर ग्रन्थरचना लिखी है। जैनेन्द्र व्याकरणकी प्रक्रियाके कर्त्ता देवनन्दिके प्रशिष्य गुणनन्दि हैं इन्होंने अपनी प्रक्रियाका नाम जैनेन्द्रप्रक्रिया रक्खा है। यह ग्रन्थ वर्तमानके समस्त जैनविद्यालयोंमें पढ़ाया जाता है, तथा कलकत्ताके संस्कृत विश्वविद्यालयके परीक्षालयमें भी प्रविष्ट है।

जैनेन्द्रभूषण—चंद्रप्रभपुराण—छन्दोबद्धके रचयिता जैन कवि। २ एक जैन भट्टारक। वि० सं० १०३७में ये विद्यमान थे। इन्होंने जिनेन्द्रमाहात्म्य, सम्मेदशिखरमाहात्म्य, करकण्डुचरित्र आदि (संस्कृत और प्राकृत भाषामें) ग्रन्थ लिखे हैं।

जैन्य (सं० वि०) जैन स्वार्थे यत्। जैनसम्बन्धीय।

जैपाल (सं० पु०) जयपाल पृषोदरादित्वात् साधुः। जयपालवृक्ष, जमालगोटाका पेड़। जयपालका बीज, जमालगोटाका बीज। जमालगोटा देखो।

जैपत्र (हिं० पु०) जयपत्र देखो।

जैमङ्गल (हिं० पु०) १ एक प्रकारका वृक्ष। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और मेज कुरसी इत्यादि बनानेके काममें आती है। २ वह हाथी जो सिर्फ राजाकी सवारीका हो।

जैमाल (हिं० स्त्री०) जयमाल देखो।

जैमिनि (सं० पु०) मुनिभेद। ये कृष्णद्वैपायनके शिष्य थे। इन्होंने व्यासदेवके पास सामवेद और महाभारत की शिक्षा पाई थी। इनकी बनाई हुई भारतसंहिता नामक पुस्तक जैमिनिभारतके नामसे प्रसिद्ध है। जैमिनिने एक दर्शनकी रचना की है जिसका नाम जैमिनिदर्शन वा पूर्वमीमांसा है। यह पूर्वमीमांसा षड्दर्शनमेंसे एक है। जैमिनिको धर्मशास्त्रकारोंमें गिनती है।

इन्होंने द्रोणपुत्रोंसे मार्कण्डेयपुराण सुना था, इनके पुत्रका नाम सुमन्तु और पौत्रका नाम सुत्वान् है। इन तीनोंने वेदकी एक एक संहिता बनाई है। हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि और अवन्त्य नामके तीन शिष्योंने उन संहिताओंका अध्ययन किया था।

जैमिनिदर्शन (सं० क्लो०) जैमिनिकृतं दर्शनं। कर्मधा०। मीमांसा वा पूर्वमीमांसा। यह बारह अध्यायों में विभक्त है, उसमें वेदकी मीमांसा और श्रुतिस्मृतिका विरोधभञ्जन है। यह शास्त्रज्ञानका द्वारस्वरूप है। इसमें न्यायशास्त्रका पथ अवलम्बन कर वेदके विषय और प्राधान्यकी मीमांसा की गई है। मीमांसा देखो।

जैमिनिभारत—महर्षि जैमिनिप्रसिद्ध भारतसंहिता। इसका सिर्फ अश्वमेध पर्व ही मिलता है। बहुतोंका कहना है कि, इसके अन्यान्य पर्व इस समय हैं नहीं। परन्तु थे या नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। अश्वमेध पर्व जो मिलता है, वह महाभारतीय अश्वमेधपर्वकी अपेक्षा विस्तृत है और उसमें अनेक नवीन घटनाओंका वर्णन मिलता है।

जैमिनीय (सं० वि०) १ जैमिनि सम्बन्धीय। (पु०) २ सामवेदकी एक शाखा।

जैमूत (सं० वि०) जीमूत सम्बन्धीय।

जैयट (सं० पु०) प्रसिद्ध महाभाष्यटीकाकार कैयटके पिता।

जैयद (अ० वि०) १ बहुत बड़ा, घोर, बड़ा भारी। २ बहुत धनी।

जैल (अ० पु०) १ दामन, अंगे, कोट, कुर्ते, इत्यादिका नीचेका भाग। २ निम्न भाग, नीचेका स्थान। ३ पंक्ति, समूह, मक। ४ इलाका, हलका।

जैलदार (अ० पु०) सरकारी कर्मचारी जिसके अधिकारमें कई गावोंका प्रबन्ध हो।

जैव (सं० वि०) जीवस्येदं जीव-अण्। १ जीवन सम्बन्धीय। २ बृहस्पति सम्बन्धीय। (पु०) ३ बृहस्पतिके क्षेत्रमें धनु और मीन राशि। ४ पुष्यानक्षत्र। ५ पुष्यानक्षत्रपात।

"कृताद्रिचन्द्राः जैवस्य त्रिखांकाश्च भृगोस्तथा।" (सूर्य्यसि॰)

जैवन्तायन (सं० पु० स्त्री०) जीवन्तस्य गोत्रापत्यं वा

असगर्दा—अत्यन्त रोमयुक्त, वृहत् पार्श्वयुक्त और काले मुंहवाली होती है। इन्द्रायुधा-इन्द्रधनुषकी भांति ऊर्ध्व रोमराजि द्वारा विचित्र होती है। गोचन्दना—गोवृषके सींगोंकी तरह दो भागोंमें विभक्त और छोटे मस्तक वाली होती है। कर्वुरा—वाइन (?) मछलीकी तरह लम्बी, कुक्षिदेश छिद्र और उन्नत होता है। सामुद्रिक—कृष्ण और कुछ पीतवर्ण और विचित्र पुष्पाकृति होती है। मनुष्यके शरीर पर इन विषाक्त जोंकोंके काटनेसे दष्ट स्थान फूल जाता है, खुजली मचती है, मूर्च्छा, ज्वर, दाह, वमन, मनमें विकृति भाव और शरीरमें अवसन्नता आ जाती है।

छ प्रकार निर्विष जोंकोंमें कपिलाके दोनों पार्श्वका वर्ण मनःशिलारञ्जित जैसा है, पीठ मूंग जैसे रंगकी और चिकनी होती है। पिङ्गलाका शरीर गोलाकार रंग कुछ ललाईको लिए पिङ्गल और गति शीघ्र होती है। शङ्कुमुखीका रंग यकृत जैसा और आकार दीर्घ है तथा मुंह तीक्ष्ण होनेके कारण बहुत जल्दी शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है और थोड़े समयमें बहुत ज्यादा खून पीता है। मूषिकाका आकार और रङ्ग चूहे जैसा तथा इसका शरीर दुर्गन्धिविशिष्ट होता है। पुण्डरीकमुखीका रंग मूंग जैसा और मुंह पद्मके समान है। सावरिकाका शरीर चिकना, रंग पद्मपत्रकी भांति और लम्बाई १८ अङ्गुल है।

सुश्रुतका कहना है कि, विषाक्त मत्स्य, कीट, भेक, मूत्र और पुरीषके सड़ने पर उस गन्दे पानीमें जोंक पैदा होती है, वह सविष है तथा जो पद्म, उत्पल, नलिन कुमुद, श्वेतपद्म, कुवलय, पुण्डरीक और शैवालके सड़ने पर उस निर्मल जलमें पैदा होती है, वह निर्विष है। इनमें जो बलवान् है, शीघ्र रक्त पान करती और अधिक भोजन करती हैं तथा शरीर भी जिनका बड़ा है, उन्हें निर्विष समझना चाहिये। यवन, पाण्ड्य, सह्य, पौरव, आदि क्षेत्र इनके वासस्थान हैं। ये सैवों और सुगन्धित जलमें विचरण किया करती हैं। सङ्कीर्ण स्थानमें चरती नहीं और न पङ्कमें सोती हैं। (सुश्रुत सूत्रस्थान)

इस भूमण्डल पर सभी देशोंमें जोंक देखनेमें आती है। भिन्न भिन्न देशोंमें इसके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। अरब देशमें इसको साधारणतः आलुक कहते हैं और पारस्य देशमें जेलू। इङ्गलैण्डमें इसे लिच (Leech) कहते हैं। जोंके नानाप्रकारकी हैं और इनमें आकृतिसम्बन्धी वैषम्य इतना अधिक है कि इनके सहसा देखनेसे यही निश्चय होता है कि ये भिन्न जातीय हैं, किन्तु प्रकृतिगत सादृश्यके कारण इनको एक जातिके अन्तर्भुक्त किया जा सकता है। युरोपीय प्राणितत्त्वविदोंने साधारणतः आनेलिडा (Annelida) नामसे इनका उल्लेख किया है। परन्तु वैरन कुवियर नामक किसी विद्वान्ने आनेलिडा और साधारण जोंकको विभिन्न श्रेणीका बतलाया है। आनेलिडा जातिकी पैदाइश अण्डेसे है, परन्तु साधारण जोंक किसी दूसरी जोंकके निकाले हुए त्वक्गत बीजकोषसे पैदा होती है। कुछ भी हो, 'आनेलिडा' नाना श्रेणियोंमें विभक्त है और उस जातिके अन्तर्भुक्त हिरुडिनाइडि (Hirudinidae) श्रेणीसे डेल्ला (Bdella), हिमाडिप्सा (Haemadipsa), सांगुइसिउगा (Sanguisuga) आदि जोंकें उत्पन्न होती हैं, जो भिन्न भिन्न स्थानोंमें—कुछ साफ पानीमें, कुछ नुनखरे पानीमें और कुछ जल स्थल दोनों जगह वास करती हैं। वैद्य लोग विशेष विशेष व्याधियोंको शान्त करनेके लिए समय समय पर जिन जोंकोंका प्रयोग करते हैं, वे सब इसी हिरुडिनाइडि श्रेणीके अन्तर्गत हैं। इस जातिकी जोंक भारतवर्षके नाना स्थानोंमें रुद्ध-प्रवाह पङ्कपूर्ण जलाशयोंमें पायी जाती हैं।

चीनदेशमें सेभिगनि नामक एक प्रकारकी जोंक है जिसकी चमड़ी कई रंगोंसे रञ्जित है। चीनदेशके अन्तःपाती सान्टङ्ग प्रदेशमें एक प्रकारकी जोंक देखनेमें आती है, जिसकी लम्बाई १ फुट है। मलवार उपकूलमें समुद्रसे करीब ५००० फुट ऊंचे स्थान तक जोंकें दृष्टिगोचर होती हैं। वर्षाऋतुमें जोंकें ज्यादा दीख पड़ती हैं। इस समय किसी वन्यप्रदेशमें भ्रमण करनेसे जोंकोंके मारे नाकोंदम आ जाती है। बहुत पहलेसे ही हिन्दूगण जोंक और उसके गुणोंसे परिचित थे। अरबी ग्रन्थोंमें भी जोंकका वर्णन देखनेमें आता है। कुछ जोंकें तो अत्यन्त जहरीली और कुछ मनुष्योंका अपकार पहुंचानेवाली हैं।

सामुद्रिक जौंक रक्तवर्ण और शोणितप्रिय है, इसलिए ग्राम्य क अथवा अन्य किसी प्राणी पर आक्रमण न कर सर्वदा मछलीका खून पीनेके लिए कोशिश करती रहती है। इन्हें जितना खून मिले, उतना ही पी सकती है। आश्चर्यकी बात है कि जोंकके काफी खून पीने पर भी मछलियां दुर्बल नहीं होतीं, सिर्फ भूख बढ जाती है और कभी कभी उससे मछलियां परिपुष्ट होती हैं। ये जौंकें मछलियोंके शारीरिक यन्त्रोंको छिन्न नहीं करतीं, इसलिए उनके जीवनमें कुछ क्षति नहीं पहुंचती।

अलविओन् जौंककी पैदाइश अण्डेके बीजकोषमें है। एक एक जौंक एकमें लगातार पचास तक अण्डे देती है। इन अण्डोंके बीजकोष वर्तुलाकार होते हैं, जिनका व्यास एक इञ्चका पञ्चमांश होता है। इन वर्तुलोंका बहिरावरण अत्यन्त सूक्ष्म और अण्डेका रङ्ग सफेद होता है। अण्डेके फटनेका समय जितना ही नजदीक आता जाता है उतना ही इसका वर्ण विह्वल होता जाता है। अन्य जलाशयोंकी जौंकोंके अण्डे पर किसी तरहका आवरण नहीं होता। सामुद्रिक जौंक अण्डेके ऊपरी हिस्सेको फाड़कर बाहर निकलती है, किन्तु अन्य प्रकारकी जौंकके निकलते समय अण्डेके दोनों अंश अपने आप फट जाते हैं।

मुसलमान लोग व्याधि निवारणार्थ ज्यादातर जौंकका प्रयोग करते हैं, उन लोगोंने इसका व्यवहार हिन्दुओंसे सीखा था।

किसी किसी जगह जलौकाको मधुके साथ उत्तप्त करके जिह्वामूलीय ग्रन्थोंमें प्रयुक्त किया जाता है तथा जलौकाको सुखाकर नुसब्बरके साथ उसका चूर्ण बनाकर व्यवहार करनेसे रक्तार्श (Hamosrhoids) शान्त होता है। जलौकाको उबालकर उसका चूर्ण मस्तक पर लगानेसे केश उत्पन्न हो सकते हैं।

आर्यचिकित्सकगण वातपित्त वा कफसे रक्त दूषित होने पर जौंक द्वारा रक्तमोचण ही हितकर बतलाते थे। इसलिए जलौकाकी जाति और रक्षणप्रणाली आदिका वृत्तान्त इस देशके लोगोंको बहुत पहलेसे ही मालूम था। यही कारण है कि सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें, कैसे जौंक पैदा की जाती है, कैसे उन्हें पाला जाता है आदि विषय वर्णित हैं।

सुश्रुतके मतसे—भीगे चमड़े वा अन्य किसी चीजसे जौंक पकड़ी जाती है। फिर सरोवर अथवा बहुत पुष्करणीके पानी और पङ्कसे एक नये घटको भरकर उसमें जौंक छोड़ दी जाती है। शैवाल, शुष्कमांस और जलज मूलको चूर्ण करके उन्हें खिलाना चाहिये। सोनेके लिए तृण वा जलजात पत्ते देने चाहिये। दो तीन दिन बाद जल और भक्ष्य द्रव्योंको बदल देना चाहिये। सप्ताह सप्ताह घटपरिवर्तन करना चाहिये।

जिन जौंकोंका मध्यभाग स्थूल हो, जो अति क्षीण अथवा स्थूलताके कारण धीरगामी, अल्पपायी, विषाक्त और शीघ्र पीड़ित स्थानको पकड़ती नहीं, ऐसी जौंकें रक्तमोचणके लिये प्रशस्त नहीं है। विषाक्त जौंकके काटने पर महागद नामकी औषध पीनी चाहिये।

सावरिका नामकी जौंक हाथी, घोड़ा आदिके रक्त मोचणके लिये प्रशस्त है। जो निर्विष जौंक शीघ्र रक्त शोषण कर सकती है, उसी जौंकके द्वारा मनुष्यादिका रक्तमोचण करना चाहिये।

रक्त मोचण करानेसे पहिले पीड़ित व्यक्तिको लेटना वा बैठ जाना चाहिये। पीड़ित स्थान यदि वेदनारहित हो, तो उस स्थानपर सूखा गोबर और मिट्टीका चूरा रगड़ देना चाहिये। बादमें जौंक लाकर सरसों और हलदीका शिलापिष्ट कल्क पानीमें मिलाकर उसके शरीर पर पोत देना चाहिये। अनन्तर क्षण भरके लिये उसे एक जलपात्रमें रखकर पीड़ित स्थान पर लगाना चाहिये। लगाते समय बारीक सफेद और भीगे हुए उमदा कपड़े वा रूईसे उस जौंकको ढक रखना चाहिये और सिर्फ मुंहको खोल देना चाहिये। यदि जौंक चिपटे नहीं, तो उसे एक विन्दु दुग्ध वा रक्त पिलाना चाहिये अथवा अस्त्रद्वारा छोडना चाहिये; इस पर भी यदि न चिपटे तो दूसरी जौंक लगानी चाहिये। घोड़ेके खुरके समान मुख और स्कन्ध ऊंचा करके भीतर मुख प्रविष्ट होनेपर समझना चाहिये कि उसने पकड़ लिया। जिस समय पकड़े रहे, उस समय भीगे कपड़ेसे उसको ढककर बीच बीचमें उसपर पानी छोड़ते रहना चाहिये। रक्त पीते समय दष्ट स्थानमें पीड़ा वा खुजली होनेपर समझें कि अब विशुद्ध रक्त पी

रहती है। उसी समय जोंकको शरीरसे अलग कर देना चाहिये। यदि न छोड़े, तो उसके मुंहपर सेन्धव लवण डालना चाहिये। बायें हाथके अङ्गुष्ठ और तर्जनी द्वारा पकड़कर दाहिने हाथके अङ्गुष्ठ और तर्जनी द्वारा धीरे धीरे पूंछसे लगाकर मुंहकी तरफ मृतकर वमन कराना चाहिये। जबतक सब वमन न कर दे, तबतक ऐसा करते रहना चाहिये। अच्छी तरह वमन हो जानेपर पानीमें क्षुधातुर हो तड़पती रहती है, नहीं तो चुपचाप पड़ी रहती है। वमन न करानेसे जोंकको 'इन्द्रमद' नामक एक प्रकार असाध्य व्याधि हो जाती है। सम्पूर्ण वमन करने पर उसे पुनः उस घटमें छोड़ देना चाहिए।

दष्ट स्थानमें दूषित रक्त और भी है या नहीं, इसकी परीक्षा करके उस स्थान पर मधु लेपन और शीतल जल छिड़क देना चाहिये अथवा उस क्षतके ऊपर कषाय मधुर रस और घृतयुक्त शीतल आलेपनका प्रलेप बांध देना चाहिये।

२ जोंकी माफ करनेका कलना जो लैवारसे बनाया जाता है। ३ वह आदमी जो बिना अपना काम निकाले पिण्ड न छोड़े, वह जो अपना मतलब या काम निकाले लेने लिए बेतरह पीछे पड़ जाय।

जोंकी (हि॰ स्त्री॰) १ पतपकि पेटको जलन। यह पानीके साथ जोंक उतर जानेके कारण होती है। २ दो तख्तोंको हढ़तासे जोड़नेका लोहेका एक प्रकारका कांटा। ३ पानीमें रहनेवाला एक प्रकारका लाल कीड़ा। ४ जोंक देखो।

जोंदरी (हि॰ स्त्री॰) जोंधरी देखो।

जोंधरी (हि॰ स्त्री॰) १ छोटी ज्वार। २ बाजरा।

जोंधैया (हि॰ स्त्री॰) चन्द्रिका, चांदनी।

जो (हि॰ सर्व॰) १ एक सम्बन्ध वाचक सर्वनाम। इसके द्वारा कही हुई संज्ञा या सर्वनामके वर्णनमें कुछ और वर्णनको योजना की जाती है। (अव्य॰) २ यदि अगर।

जोइ (हि॰ स्त्री॰) जोरू देखो।

जोखना (हि॰ क्रि॰) तौलना वजन करना।

जोखा (हि॰ पु॰) लेखा, हिसाब।

जोखिम (हि॰ स्त्री॰) १ विपत्तिकी आशङ्का। २ वह पदार्थ जिसके कारण मनुष्य विपत्ति आनेकी सम्भावना हो।

जोग कर (हि॰ पु॰) मत्र के पकाए हुए अन्नसे अपना बचाव करनेकी एक युक्ति। योरामचन्द्रजीने विश्वा मित्रसे यह युक्ति सीखा थी।

जोग (हि॰ पु॰) योग देखो।

जोग—तिरहुतवासी मैथिल ब्राह्मणोंका तृतीय भेद, जो योनियोंके साथ सम्बन्ध करके नीच श्रेणीके हो गये हैं उन्हें जोग कहते हैं।

जोगड़ा (हि॰ पु॰) पाखण्डी बना हुआ योगी।

जोगराय भ व्यासी—हिन्दीके एक कवि। ये बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे। १८२९ संवत्‌में इन्होंने जोगरामायण नामक एक हिन्दी ग्रन्थ रचा था।

जोगवना (हि॰ क्रि॰) १ रक्षित रखना, हिफाजतसे रखना। २ सञ्चित करना एकत्र करना बटोरना। ३ आदर करना लिहाज रखना। ४ जाने देना, कुछ परवाह न करना। ५ पूर्ण करना, पूरा करना।

जोगसाधन (हि॰ पु॰) योगसाधन देखो।

जोगा (हि॰ पु॰) अफीमका गूदड़, अफीमका छाना हुआ मैल।

जोगानल (हि॰ स्त्री॰) योगानल, योगसे उत्पन्न आग।

जोगिन (हि॰ स्त्री॰) १ जोगीकी स्त्री। २ साधुनी, विरक्त औरत। ३ पिशाचिनी। ४ रणदेवी। यह लड़ाईमें कटे मरे मनुष्योंके रुण्ड मुण्डको देख कर आनन्दित होती है और मुण्डोंको गेंद बना कर खेलती है। ५ नीले रङ्गका फूल देनेवाला एक प्रकारका झाड़ीदार पौधा। ६ योगिनी देखो।

जोगिनिया (हि॰ स्त्री॰) १ लाल रङ्गकी एक प्रकारकी ज्वार। २ आमका एक भेद। ३ अगहनमें होनेवाला एक प्रकारका धान। इसका चावल कई वर्ष ठहर सकता है।

जोगिनी (हि॰ स्त्री॰) १ योगिनी देखो।

जोगिया (हि॰ वि॰) १ जोगी सम्बन्धी, जोगीका। २ गेरिक मिट्टीके रंगमें रंगा हुआ। ३ जो गेरूके रंगका हो।

जोगो (हिं० पु०) १ योगो, वह जो योग करता हो। २ एक प्रकारके भिक्षुक। ये सारंगो ले कर भर्तृहरिके गीत गाते और भोख मांगते हैं। ये गेरुआ वस्त्र पहने रहते हैं।

जोगोगोफा—आसाम प्रान्तके ग्वालपाड़ा जिलाका एक गाव। यह अक्षा० २६° १४´ उ० और देशा० ९०° ३४´ पू०में ब्रह्मपुत्रके उत्तर तटस्थ मानसके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ७३४ है। ग्वालपाड़ेसे जहाज आता जाता है। आसाम अंगरेजी राज्यभुक्त होनेसे पहले बङ्गाल सीमाकी यहां एक चौको थी। बहुतसे युरोपियन भी रहते थे। जोगोगोफामें बिजनी राज्यको एक तहसील है।

जोगीड़ा (हिं० पु०) १ वसन्त ऋतुमें गाये जानेका एक प्रकारका चलता गाना। २ गायकोंका एक समाज। इसमें एक गानेवाला और दो सारंगो बजानेवाले रहते हैं। गानेवाला लड़का योगीसा आकार बनाये रहता है। ३ इस समाजका कोई मनुष्य।

जोगोश्वर (हिं० पु०) योगीश्वर देखो।

जोगू (सं० वि०) स्तोता, स्तुति करनेवाला।

जोगेरू—दाक्षिणात्यवासी एक प्रकारके भिक्षुक। ये अपनेको योगो कहते हैं। इस श्रेणीके भिक्षुक धारावार जिलेमें प्राय: सर्वत्र देखनेमें आते हैं। वागलकोट, वल्लुत्ति, हुब्बुगो आदि स्थानोंमें हो इनको अधिकता है। ये बहुत प्राचीन अधिवासो हैं। वागलकोट आदि स्थानों-के जोगेरूओंमें साधारणत: पुरुषोंको उपाधि नाथ है।

यह जोगेरू जाति दश कुलोंमें विभक्त है—बावनो, भण्डारो, चुनाड़ी, हिङ्गमरो, करफटरो, कांमार, मटरकर, पर्वलकर, सालो और वतकर। इनके विवाह आदि उत्सवोंमें उक्त दश श्रेणियोंमेंसे प्रत्येक श्रेणीके एक एक प्रतिनिधि उपस्थित होते हैं। इन दश श्रेणियोंके प्रत्येक व्यक्ति गोरखनाथके बारह शिष्य जिन्होंने बारह भागोंकी स्थापना की थो, उनमेंसे किसी एकके अन्तर्भुक्त हैं।

जोगेरूगण भैरव और सिद्धेश्वर इन दो गृहदेवताओं-की पूजा करते हैं; रत्नगिरिके पास भैरवमन्दिर विद्यमान है। ये अशुद्ध कनाड़ो और मराठी दोनों भाषाओं-में बात-चीत करते हैं। ये चार विभागोंमें विभक्त हैं—भैरवी योगी, किन्ड्रो योगी, गमन योगी, और नवर-योगी। भैरवी वा भैर और किन्ड्री-योगियोंमें परस्पर विवाह आदि सम्बन्ध होते हैं। इन योगियोंको आकृति बुढ बुढकियोंके सदृश है। ये अपरिष्कृत और अपरिच्छन्न कुटीरोंमें रहते हैं तथा कुत्ते, भेड़, मुरगो, सांढ आदि पालते हैं। ये खानेमें बड़े उस्ताद हैं, पर रांधना अच्छी तरह नहीं जानते। ज्वारको रोटो और शाक भाजी वगैरह इनका साधारण खाद्य है। ये विशेष विशेष उत्सवोंमें गेंहुको पिष्टक मोटो चीनी और शाक खाते हैं। शाक, मेष, कुक्कुट, मत्स्य, हरिण, कर्कट आदि भक्षण करते हैं, परन्तु गो अथवा शूकरका मांस नहीं खाते। कभी कभी ये शराब भी पीते हैं, पहननेके कपड़े किसीसे मांग लेते हैं पुरुष एक जाकिट और धोती पहना करते हैं तथा सिर पर एक छोटा कपड़ा लपेट लेते हैं। स्त्रियां अंगिया पहनती हैं

जोगेरू लोग शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंमें कुण्डल, अंगूठी, हार, कांचकी चूड़ी और पीतलकी माला पहनते हैं। भोख हो इनको प्रधान उपजीविका है। ये जगह जगह घूमा-फिरा करते हैं और मौका पाते हो जो कुछ हाथ पड़ता है, चुरा कर भाग जाते हैं। वागलकोट आदि स्थानोंके योगी सुई और कंघी बेचनेके लिए नाना स्थानोंमें घूमते हैं और जोतिबाके साधकोंसे कपड़े आदि मांग लेते हैं। रत्नगिरिके जोतिबा इनके प्रधान देवता हैं। जब ये भोख मांगनेके लिए निकलते हैं, उस समय कानमें मुद्रा नामके चांदोके कुण्डल पहनते तथा जोतिबका त्रिशूल और अलाबुनिर्मित पात्र साथ रखते हैं।

ये छोटा ढोल और तुरई बजाते हैं। जहां जहां जोतिब हैं, वहां पहुंचने पर ये "बालसन्तोष" ये शब्द उच्चारण करते हैं। ये बिलकुल अशिक्षित हैं, पर बड़े शान्त हैं।

जोगेरू कहते हैं कि, वे जड़ी-बूटी आदि बहुत पहिचानते हैं, उनसे अनेक प्रकारके रोगोंको आराम कर सकते हैं। ये कभी कभी गड़गके पहाड़से पत्थर ले आते हैं और उससे पथरी आदि बना कर बेचा करते हैं।

आश्विन मासमें दशहरा और कार्त्तिक मासमें दिवाली, ये दो ही इनके प्रधान उत्सव हैं।

ये ब्राह्मणोंको पूज्य मानते हैं। इनके विवाहादि कार्य ब्राह्मण द्वारा होते हैं और अन्य दैहिक कार्य[illegible] लोग करते हैं। किसी किसी जोगुरका विवाह कार्य ब्राह्मण द्वारा और अन्यान्य कार्य कानफट वैरागी द्वारा होते हैं। ये तीर्थ भ्रमण नहीं करते आश्विन मासके प्रारम्भमें पांच दिन तक प्रत्येक परिवारका एक व्यक्ति उपवास करता है। इनकी प्रत्येक श्रेणिमें एक एक धर्मोपदेशक हैं वे कभी भी विवाह नहीं करते। शिष्यगण उनके लिए आहार संग्रह करते हैं। यह व्यक्ति अपनी मृत्युके पहले अपने किसी भी प्रिय शिष्यको अपने पद पर मनोनीत कर सकता है।

साधारण जोगिन्दोंके गुरु धर्मोपदेशका नाम है भैरवनाथ, वे रत्नगिरिके पास बड़गनाथ पहाड़ पर रहते हैं। ये दयमव और दुर्गव नामके आम्यदेवताओंकी पूजते और जादूविद्या, डाकिनीविद्या इत्यादि पर विश्वास करते हैं। किसी किसी विषयोंमें जोगिन्द भविष्यत्कथनविद्या और फलित ज्योतिष पर विश्वास करते हैं किन्तु डाकिनी विद्या पर विश्वास नहीं करते। श्मशान और अन्यान्य स्थानोंमें भूतोंके आवास यह है, ऐसा इनको दृढ़ विश्वास है। सन्तानप्रसव होने पर ये प्रसूति और सन्तान दोनों को नहला देते हैं। पांचवें दिन सद्यप्रसूत सन्तानकी आयुवृद्धिके लिए षष्ठीदेवीकी पूजा करते हैं और सातवें दिन बच्चेका नाम रखते हैं। कुनबुधि आदिके जोगिन्द बच्चा होने पर १२ दिन तक प्रसूतिको घी और भात खिलाते हैं पीछे प्रसूति घरका काम काज करने लग जाती है। बारहवें दिन अपने जातिके लोगोंको निमन्त्रण कर पांच प्रकारके खाद्य-द्रव्य खिलाते और बच्चेका नाम रखते हैं। छोटी उमरमें लड़कियोंका विवाह कर दिया जाता है, किन्तु विवाहका कोई समय नियत नहीं है। विवाह-सम्बन्ध ठीक करनेके समय किसी तरहका उपहार नहीं दिया जाता। सिर्फ कन्याका पिता कुछ स्वजातियोंके सामने अपनी कन्याका विवाह प्रस्तावित वरके साथ करेगा, इतना मञ्जूर करता है। ४ दिन तक विवाहका उत्सव रहता है। पहले दिन वर कन्याके घर जाता है; वहीं दोनों पर तेल चढ़ाया जाता है। दूसरे दिन वरका पिता सबको निमन्त्रित कर जिमाता है; तीसरे दिन कन्याका पिता निमन्त्रण देता है और इसी दिन विवाह कार्य सम्पन्न होता है। वर कन्या दोनों नये कपड़े पहन कर अनाजसे भरे हुये दो डलियोंमें आमने सामने मुंह कर खड़े होते हैं। दोनोंके बीचमें एक ब्राह्मण पुरोहित स्वस्तिके रंगा हुआ एक कपड़ा पकड़े रहता है और विवाहका मन्त्र उच्चारण करता हुआ दम्पतीके मस्तक पर चावल निक्षेप करता है। इस समय चार सुहागिन स्त्रियां आकर वर कन्याके चारों ओर खड़ी हो जाती हैं। ये दाहिने हाथको कंगनोंसे एक डोरीको पांच फिर दे कर बांधती हैं और मन्त्र-पाठ समाप्त होने पर उसके दो टुकड़े कर एक टुकड़ा वरके हाथमें और दूसरा टुकड़ा कन्याके हाथमें बांध देती हैं। चौथे दिन वरवधू दोनों ग्रामस्थ मारुति-मन्दिरमें जा कर एक नारियल तोड़ते हैं। पीछे दोनों मिल कर घरको चले आते हैं। ये शव जलाते वा गाड़ते हैं। पांचवें दिन उस मृत व्यक्तिके लिए भोजन बना कर दिया जाता है। बारहवें दिन बन्धु-बान्धव और ग्रामीणोंको भोज दिया जाता है। प्रथम मासमें वे मृत व्यक्तिका आकार बना कर उसकी आत्माकी उपासना करते हैं और प्रति वर्ष एक भोज देते हैं।

इनमें विधवा-विवाह और पुरुषोंका बहु विवाह प्रचलित है।

जोगिन्दोंमें जातीय एकता अत्यन्त प्रबल है। नाना जिस विवाद विसम्वादोंका विचार समाजके प्रधान व्यक्ति करते हैं। जो उनके विचारानुसार नहीं चलते, उनको समाजसे निकाल दिया जाता है।

ये अपनी सन्तानको विद्यालयमें नहीं पढ़ाते और न उन्हें जीविकानिर्वाहके लिए कोई नया उपाय ही सिखाते हैं।

बङ्गालमें शायद यह सम्प्रदाय जोगी नामसे प्रसिद्ध था। जोगी देखो।

जोगिश्वर (स° पु°) योगेश्वर देखो।

जोगेश्वरी—बम्बई प्रान्तके थाना जिलेमें सालसेट तालुक की एक गुफा। यह अक्षा° १८° १३' उ° और देशा°

७२° ५६' पू०में बम्बे-बडोदा-सेण्ट्रल-इण्डिया रेलवेके गोरे-गांव ष्टेशनसे २॥ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यह भारतकी ब्राह्मण-गुहाओंमें तृतीय स्थानीय है। लम्बाई २४० फुट और चौडाई २०० फुट पड़ती है। गुहामन्दिर ई० ७वीं शताब्दीमें निर्मित हुआ। इसमें पत्थर काट करके राहें निकाली गयी हैं। बीचमें एक बड़ा दालान है।

जोङ्ग (सं० क्ली०) जुङ्गयति वर्ज्जयति, जुगि वर्जने कम णिच्-अप्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कालीयक गन्धद्रव्य भेद, किसी किस्मका खुशबूदार पीला सुगन्ध। २ अगुरु, अगर। ३ काकमाची।

जोङ्गक (सं० क्ली०) जुङ्गति त्यजति महत्त्वं जुगि-ण्वुल्, पृषोदरादित्वात् साधुः। अगुरुचन्दन, अगर।

जोङ्गट (सं० पु०) जुङ्गति अरोचकत्वं परित्यजत्यनेन बाहुलकात् जुङ्ग-अटन्। गर्भिणीकी अभिलाष।

जोटिङ्ग (सं० पु०) जुटेन इङ्गति प्रकाशते इति अच्, पृषोदरादित्वात् साधुः वा जुट-इन् जोटिं गच्छति गम-ड डिच्च। १ महादेव। २ महाव्रती।

जोड (सं० पु०) जुड बन्धने घञ्। १ बन्धन। २ लौह-विशेष, एक प्रकारका लोहा। ३ युग्म। ४ मिथुन। ५ तुल्य, समधर्मी।

जोड़ (हिं० पु०) १ गणितमें कई संख्याओंका योग, जोड़नेकी क्रिया। २ योगफल, वह संख्या जो कई संख्याओंको जोड़नेसे निकले, मीजान, टोटल। ३ किसी चीजमें जोड़ देनेका टुकड़ा। ४ वह सन्धिस्थान जहां शरीरके दो अवयव आ कर मिले हों। ५ मेल, मिलन। ६ समानता, बराबरी। ७ एक ही तरहकी दो चीजें, जोड़ा। ८ समान धर्म या गुण आदिवाला। ९ पहननेके कुल कपड़े, पूरी पोशाक। १० जोड़नेकी क्रिया या भाव। ११ छल दांव। १२ वह स्थान जहां दो या उनसे अधिक टुकड़े जुड़े वा मिले हों। १३ दो वस्तुओंके एकमें मिलनेके कारण सन्धिस्थान पर पड़ा हुआ चिह्न। १४ किसी चीज या काममें प्रयुक्त होनेवाली सब आवश्यकीय सामग्री।

जोडनी (हिं० स्त्री०) कई संख्याओंका योग, जोड़।

जोड़न (हिं० पु०) जामन, वह पदार्थ जो दही जमानेके लिए दूधमें डाला जाता है।

जोड़ना (हिं० क्रि०) १ दो चीजोंको दृढ़तासे एक करना। २ किसी टूटे हुए पदार्थके टुकड़ोंको मिला कर एक करना। ३ संबन्ध करना। ४ प्रज्वलित करना, जलाना। ५ वर्णन प्रस्तुत करना, वाक्यों या पदों आदिकी योजना करना। ६ कई संख्याओंका योगफल निकालना। ७ किसी सामग्री वा चीजको सिलसिलेवार रखना वा लगाना। ८ एकत्र करना, संग्रह करना, इकट्ठा करना। ९ सम्बन्ध स्थापित करना। जैसे नाता जोड़ना, दोस्ती जोड़ना।

जोडवाई (हिं० पु०) १ जोडवानेकी क्रिया। २ जोडनेका भाव। ३ जोडवानेकी मजदूरी।

जोड़वाना (हिं० क्रि०) दूसरेसे जोड़नेका काम कराना।

जोड़ा (हिं० पु०) १ एक ही तरहके दो पदार्थ। २ दोनों पैरोंके जूते। ३ पहननेकी कुल पोशाक। ४ स्त्री और पुरुष। ५ नर और मादा। ६ वह जो एक आकारका हो। ७ एक साथ पहने जानेवाले दो कपड़े। जैसे—धोती दुपट्टा वा कोट पतलूनका जोड़ा।

८ जोड़ देखो।

जोड़ाई (हिं० स्त्री०) १ दो वा दोसे अधिक वस्तुओंको जोड़नेको क्रिया। २ जोड़नेकी मजदूरी। ३ दीवार आदिके बनानेमें ईंटों या पत्थरोंके टुकड़ोंके जोड़नेकी क्रिया

जोड़ामन्देस (हिं० पु०) छेनेसे बनाई जानेवाली एक प्रकारकी मिठाई।

जोड़ी (हिं० स्त्री०) १ एक ही तरहके दो पदार्थ। २ एक साथ पहननेकी समस्त पोशाक। ३ दम्पती, स्त्री और पुरुष। ४ नर और मादा। ५ वह गाड़ी जो दो घोड़े या दो बैलोंसे खींची जाती है। ६ मँजीरा, ताल। ७ वह जो समान धर्मका वा समान गुणका हो, वह जो बराबरीका हो, जोड़। ८ दोनों मुगदर जिनसे कसरत करते हैं।

जोड़ीकी बैठक (हिं० स्त्री०) मुगदरोंको जोड़ी पर हाथ टेक कर किये जानेकी कसरत।

जोड़ू (हिं० स्त्री०) जोरू देखो।

जोत (हिं० स्त्री०) १ घोड़े बैल आदि जोते जानेवाले जानवरोंके गलेकी रस्सी। इसका एक सिरा जानवरके

मध्यमें और दूसरा उस ओरमें बन्धा रहता है जिसमें जानवर जोता जाता है। २ तराजूके पल्लेमें लगी हुई रस्सी। ३ उतनी भूमि जितनी एक असामीको जोतने बोने आदिके लिये मिली हो।

जोतमोपाल्लि—मद्रासके मालदह विभागमें कोतवाली पर गनेका एक बड़ा ग्राम।

जोतवरिभ—मद्रासके मालदह विभागमें कोवाली परगने का एक बड़ा ग्राम।

जोतदार—१ वह असामी जो जोत या किसी विस्तृत खेती करनेकी जमीनके जोतनेका अधिकार रखता हो अथवा जिसे जोतने बोनेके लिए कुछ जमीन (जोत) मिली हो।

२ उड़ीसाके अन्तर्गत कटकके दक्षिण पूर्व ओरमें बहनेवाली एक छोटी नदी, जो मगानदीकी शाखोंमें जा मिली है। यह अक्षा० २० ११ उ० और देशा० ८६ १४ पू० में समुद्रमें जा मिली है।

जोतनरसि ह—मद्रासके मालदह विभागमें कोतवाली पर गनेका एक बड़ा ग्राम।

जोतना (हिं० क्रि० १ रथ, गाड़ी इत्यादिको चलानेके लिये उसमें बैल घोड़े आदिको बांधना। २ हल चलाना, हल चला कर खेतोंकी मिट्टी खोदना। ३ किसीको जबरदस्ती किसी काममें लगाना। ४ गाड़ी आदिमें बैल या घोड़ा आदि जोत कर उसे चलनेके लिए तैयार करना।

जोतमवायमनाम—हिन्दीके एक ग्रन्थकर्ता। ये जातिके कायस्थ थे।

जोतात (हिं० स्त्री०) खेतकी मट्टीकी ऊपरी तह।

जोता (हिं० पु०) १ बैलोंकी गरदनमें पड़नेवाले जुआमें बंधी हुई पतली रस्सी। २ करघेकी बरोंकी बंधी हुई सूतकी डोरी। ३ एक हो पंक्तिमें लगी हुई कई खंभों पर रखी जानेकी बहुत बड़ी धरन या शह-तीर। ४ वह जो हल जोतता हो खेती करनेवाला। ५ जुलाहोंकी परिभाषामें करघे पर फैलाए हुए तानेके आखिरी सिरे पर उसके सूतोंको ठीक रखनेवाली कमो-चोके दोनों सिरों पर बंधी हुई दो डोरियां।

जोताई (हिं० स्त्री०) १ जोतनेका काम। २ जोतनेका भाव। ३ जोतनेकी मजदूरी।

जोतात (हिं० स्त्री०) जोतात देखो।

जोताल—बम्बईके अन्तर्गत महीकांठा जिलेको एक छोटी रियासत।

जोति (हिं० स्त्री०) १ देवताओं आदिके आगे जलाये जानेका घीका दीया। २ ज्योति देखो।

जोतिब पर्वत (वाड़ी रत्नगिरि)—बंबईके कोल्हापुर राज्यका पर्वत। यह अक्षा० १६ ४८ उ० और देशा० ७४ १२ पू०में कोल्हापुर नगरसे कोई ८ मील उत्तर पश्चिम पड़ता है समतल भूमिसे इसकी ऊंचाई १००० फुट है। इसी जहकी चोटी पर जोतिबा पुरोहितोंका एक गांव बसा है। अति प्राचीन कालसे यह पर्वत तीर्थस्थान माना जाता है। गांवके बीचमें कई मन्दिर हैं। कहते हैं कि रत्नगिरि सतायी जाने पर कोल्हापुरकी अम्बादेवी हिमालयके केदारनाथ पर पहुंचीं और वहां उनके निमित्त इन्होंने कठोर तपश्चर्या किया। उनकी भक्तिसे प्रसन्न हो केदारेश्वर यहां आये। प्रवाद है उनका मन्दिर नावजी सय नामक व्यक्तिने बनाया था। इसी जगह १७३० ई०में रानोजी संधियाने वर्त्तमान मन्दिर बनाया था। १८०८ ई०में दौलतराव संधियाने केदा रेश्वरका द्वितीय मन्दिर निर्माण किया। १८८० ई०-में मालजी निकम पनहालकरने रामलिङ्गमन्दिर बनाया। केदारेश्वर मन्दिरके सामने एक छोटे मन्दिर में काले पत्थरके २ नन्दी हैं। इन्हीं मन्दिरोंके निकट १७८० ई०में प्रीतिराव हिम्मत बहादुरने चोपदई का पवित्र मन्दिर निर्माण किया था। गांवसे कुछ गज दूर रानोजी संधियाका बनाया हुआ यमई मन्दिर है। इसीके सामने दो पवित्र कुण्ड हैं। इनमें एक कोई १७४३ ई०को जिजाबाई नाइकने और दूसरा कामदम्यातीर्थ रानोजी संधियाने बनाया। मन्दिरोंका कारुकार्य हिन्दुओं द्वारा किया हुआ और बहुत अच्छा है। कई एक मूर्तियों पर ताम्र तथा रौप्य फलक चढ़े हैं। जोतिबा प्रधान देवता हैं। चैत्रकी पूर्णिमाको बड़ा मेला लगता है। छोटे मोटे मेले प्रत्येक रविवार पौर्णमासी और आषाढ़की पष्ठीको होते हैं। इसके दिन कि शामपर जोतिबकी मूर्तिका अनूप निक लता है।

जोतिलिङ्ग (हिं० पु०) ज्योतिर्लिङ्ग देखो।

जोती (हिं० स्त्री०) १ ज्योति, जोति। ज्योति देखो। २ घोड़ेकी लगाम, घोड़ेकी रास। ३ तराजूकी जोत, तराजूके पल्लोंकी रस्सी जो डाँड़ीसे बंधी रहती है।

जोदिया (जोधिया)—काठियावाडके नवानगर राज्यका शहर और बड़ा बन्दर। यह अक्षा० ५२' ४०' उ० और देशा० ७०' २६' पू०में कच्छोपसागरके दक्षिणपूर्व उपकूलमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७३५१ है। नगर प्राचीर-वेष्टित है। भीतर एक छोटा किला बना हुआ है।

जोधन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी रस्सी जिससे बैलके जुएकी ऊपर नीचेकी लकड़िया बंधी रहती है।

जोधपुर—मारवाड़के राजपूतानेका सबसे बड़ा राज्य। यह अक्षा० २४ ३७ और २७ ४२' उ० तथा देशा० ७०' ६' और ७५ २२' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ३४९६३ वर्ग मील है। इसके उत्तरमें बीकानेर, उत्तर पश्चिममें जैसलमेर, पश्चिममें सिन्धु, दक्षिण पश्चिममें रान, दक्षिणमें पालनपुर तथा सिरोही, दक्षिण-पूर्वमें उदयपुर, पूर्वमें अजमेर तथा किसनगढ़ और उत्तर पूर्वमें जयपुर अवस्थित है। यहांकी जमीन अनुर्वरा है, किन्तु आरवल्ली पहाड़के पूर्व तथा उत्तर पूर्वकी जमीन कुछ कुछ उर्वरा है। इसके उत्तरमें थल नामक मरुभूमि बहुत दूर तक विस्तृत है। आरवल्ली पहाड़ राज्यके पूर्वमें पड़ता है। नदियोंमें लूनी बड़ी है। इसकी प्रधान शाखाएँ लिलरी रायपुर, लूनी, गुहिया, बांदी, सुकरी, जवाई और जोजरी है। यहां साम्भर नामकी एक खारी झील है। पूर्वीय और दक्षिणीय भागका जङ्गल ३४५६ वर्गमील तक विस्तृत है। यहांके जङ्गलमें तरह तरहके पेड़ पाये जाते हैं जिनमें देवदारु, बबूल, महुआ तथा खैर प्रधान हैं। जङ्गली जानवरोंमें सिंह, काला भालू, चीता और काला हिरण अधिक मिलता है, बाघकी संख्या बहुत कम है। जलवायु शुष्क और स्वास्थ्यकर है और गर्मी बहुत पड़ती है।

इतिहास—जोधपुरके महाराज राठोर राजपूतोंके सरदार हैं। ये अपने वंशका उद्भव अयोध्याके राजा श्रीरामचन्द्रजीसे बतलाते हैं। इस वंशका प्राचीन नाम राष्ट्र वा राष्ट्रिक है। अशोकके कुछ अनुशासनोंमें लिखा है कि राठोर दाक्षिणात्यमें राजत्व करते थे। पांचवीं या छठी शताब्दीमें इस वंशके सबसे प्राचीन राजा अभिमन्यु, सिंहासन पर बैठे थे। ९७३ ई० तक दाक्षिणात्यमें कोई १९ राष्ट्रकूट राजाओंने राज्य किया, किन्तु पीछे चालुक्योंने इन्हें वहांसे निकाल भगाया। बाद इन्होंने कन्नौज जा कर आश्रय लिया और ९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें वहां अपना उपनिवेश स्थापित किया। इस अवस्थामें पचीस वर्ष रहनेके बाद इन्होंने अपने ज्ञातिवर्गको निकाल बाहर किया और गहड़वाल नामक एक नया वंश स्थापित किया। इस वंशके सात राजाओंने राज्य किया जिनमेंसे प्रथम राजा यशोविग्रह थे और अन्तिम जयचंद। जयचन्द ११९४ ई०में इटावाकी लड़ाईमें मुहम्मद गोरीसे मार डाले गये। जयचन्दके भतीजे सिवाजीने अपनी जन्मभूमि परित्याग कर मल्लानीके अन्तर्गत खेर तथा गोहिल राजपूतोंसे अधिकृत देशोंको जीतते हुए १२१० ई०में मारवाड़में भावी राठोर राज्य स्थापित किया इनके मरनेके बाद रावअस्थनजी राजसिंहासनके अधिकारी हुए। इन्होंने ईडर भील लोगोंसे जीत कर अपने भाई सोनिङ्गको अर्पण किया। सोनिङ्गके बाद राव चन्दजीने राठोर-शक्ति दृढ़ करनेके लिये १२८१ ई०में पड़िहारोंसे मन्दिर छीन लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया। बाद राव रिरमलजी राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। मारवाड़में जो तौल आजकल चल रही है, वह इन्हींकी चलाई हुई है। इन्होंने अपने जीवनका अधिकांश मारवाड़ राज्योन्नतिमें बिताया। नाबालिग राना कुम्भको सिंहासन च्युत करनेके षड़यन्त्रमें ये मार डाले गये थे। बाद इनके बड़े लड़के राव जोधजी जोधपुरके सिंहासन पर बैठे। ये बड़े ओजस्वी और योग्य राजा निकले। प्राचीन राजधानीसे सन्तुष्ट न हो कर इन्होंने जोधपुरमें अपने नामानुसार एक नई राजधानी स्थापित की। १४८९ ई०में इनका देहान्त हुआ। इनके चौदह लड़के थे, जिनमेंसे छठेंबीक बिकानेर राज्यके स्थापयिता हुए। जयमल नामक इनके एक परपोतेने १५६७ ई०में अकबरके विरुद्ध चित्तौरकी रक्षा की थी। बाद थोड़े समयके लिये राव गङ्गाजी जोधपुरके तख्त

वर्ष १०८०००) रु० करस्वरूप दिया करेंगे और जब कभी प्रयोजन पड़ेगा, तब इन्हें १५०० सवार देने पड़ेंगे। १८४३ ई०में मानसिंहका देहान्त हुआ। बाद उनके पोष्यपुत्र तख्तसिंह जो अहमदनगरके प्रधान थे, जोधपुरके महाराज कायम किये गये। इन्होंने सिपाही विद्रोहके समय ब्रटिश गवर्नमेण्टको खूब सहायता की थी, बहुतसे यूरोपियोंको जोधपुरके किलेमें आश्रय देकर उनका प्राण बचाया था। १८७३ ई०में तख्तसिंह पञ्चत्वको प्राप्त हुए। बाद उनके बड़े लड़के द्वितीय यशोवन्तसिंह राज्याधिकारी हुए। ये बड़े ओजस्वी राजा थे। डकैती आदि दुष्कर्मोंको इन्होंने निर्मूल कर डाला; चारों ओर शान्ति विराजने लगी। खालसा जमीनका प्रबन्ध इन्होंके समयमें हुआ। रेलवे खोली गई, स्कूल और कालेज निर्माण किये गये, अस्पताल खोला गया तथा और भी कई एक हितकर कार्य किये गये। १८७५ ई०में उन्हें जी० सी० एस० आई० को उपाधि दी गई तथा १९ सम्मान-सूचक तोपोंको बढ़ाकर २१ कर दी गई। १८९५ ई०में अपने सुयोग्य पुत्र सरदारसिंहके हाथ राज्यभार सौंप आप इस लोकसे चल बसे।

सरदारसिंहका जन्म १८८० ई० में हुआ था। जब तक ये नाबालिग रहे, तबतक इनके चाचा महाराज प्रतापसिंहने सुचारु रूपसे राजकार्य चलाया। राठोर वंशमें सबसे पहले ये ही विलायत जाकर सम्राट्को भेंट दे आये हैं। इनके समयमें रेलवे सिन्धसे हैदराबाद तक निकाली गई। भीषण दुर्भिक्ष भी १९०० ई०में इन्हींके समयमें पड़ा था। मृत्युके बाद इनके लड़के सुमेरसिंह जोधपुरके राज-सिंहासनपर सुशोभित हुए। फ्रांसकी लड़ाईमें इन्होंने अङ्गरेजोंकी ओरसे अपनी खूब वीरता दिखलाई थी। इसी कारण इन्हें के० बी० ई० की उपाधि मिली थी। इनके उत्तराधिकारी सर उमेदसिंहजी हुए और यही वर्त्तमान महाराज हैं। इनका जन्म १९०३ ई०में हुआ था। अपने भाई सुमेरसिंहके मरनेपर ये १९१८ ई०में राजगद्दी पर बैठे। अजमेरके मेयो कालेजमें इन्होंने विद्याध्ययन किया है। ये K. C. V. O. (Knight Commandar of the Royal Victorian order) उपाधिसे भूषित हैं।

जोधपुर-राजाओंकी तालिका।

१	राव शिवाजी १२१२ ई०
२	राव अस्थानजी
३	रा० दुहरजी
४	राव रायपालजी १२६६ ई०
५	राव कनपालजी
६	राव जलनसीजी
७	राव चन्दजी
८	राव थीडजी १२८५ ई०
९	राव मलखाजी १३०७ ई०
१०	राव विरामदेवजी १३७४ ई०
११	राव चोंदजी १३८५ ई०
१२	राव कन्हाजी १४०८ ई०
१३	सत्तजी १४१३ ई०
१४	राव रिमलजी १४२० ई०
१५	राव जोधजी १४४८ ई०
१६	राव सतलजी १४८८ ई०
१७	राव सुजाजी १४९१ ई०
१८	राव गङ्गाजी १५६१ ई०
१९	राव मालदेवजी १५३२ ई०
२०	राव चन्द्रसेनजी १५६२ ई०
२१	राव उदयसिंहजी १५८१ ई०
२२	सवाई राजा सूरसिंहजी १५९५ ई०
२३	सवाई राजा गजसिंहजी १६२० ई०
२४	महाराज यशोवन्त सिंहजी १६३८ ई०
२५	महाराज अजितसिंहजी १६७७ ई०

२६ महाराज अभयसिंहजी १७२४ ई०
|
२७ महाराज रामसिंहजी १७५० ई०
|
२८ महाराज बख्तसिंह १७५१ ई०
|
२९ महाराज विजयसिंहजी १७५२ ई०
|
३० महाराज भीमसिंहजी १७९३ ई०
|
३१ महाराज मानसिंहजी १८०३ ई०
|
३२ महाराज तख्तसिंहजी १८४३ ई०
|
३३ महाराज यशोवन्तसिंहजी (द्वितीय) १८७३ ई०
|
३४ महाराज सरदार सिंहजी १८९५ ई०
|
३५ महाराज सुमेरसिंहजी १९११ ई०
|
३६ महाराज उमेदसिंहजी १९१८ ई०

(वर्त्तमान महाराज)

जोधपुर राज्यमें २६ शहर और ४०६० ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः २०५७११९ है। जाटोंकी संख्या अधिक है। यहांकी प्रधान उपज बाजरा ज्वार तिल मकई और रुई है। यहांसे नमक मवेशी चमड़े, रुई, ऊन, तेलहन आदिकी रफ्तनी और दूसरे दूसरे देशोंसे गेहूं बाजरा चना चावल, तेल चीनी अफीम, सूती कपड़ा, धातु, टीन, तमाखू, देवदारु आदिकी आमदनी होती है। राजपूताना मालवा रेलवे राज्यके दक्षिण पूर्व होकर गई है। ४० मील पक्की और १०८ मील कच्ची सड़क गई है। महाराज महकमा खासकी मददसे रियासतका इन्तजाम करते हैं। किन्तु उनके कहीं जाने आनेपर रेसिडेंट राज्यकी देखभाल रखती है। राज्यकी वार्षिक आय ५३।५६ लाख रुपया है—पहले यहां विजयशाही और इकतीसन्द रुपया चलता था। १८९९ ई०में अंग्रेजोंका सिक्का चलने लगा है। पहले मालगुजारीमें खेतमें पैदा होने वाली चीजें जाती थीं। कहीं कहीं अब भी वही प्रथा प्रचलित है। १८९४ और १८९६ ई०से माल गुजारी नकद पैसेमें वसूल की जाने लगी। राज्यकी रक्षाके लिए दो पलटन रहती है। इसकी संख्या साधारणतः १२१० है। इस फौजका दूसरा नाम सरदार रिसाला है। यों तो राज्यमें अनेक स्कूल हैं, मगर चाट (स्कूल), हाई स्कूल और संस्कृत स्कूल ही उल्लेखयोग्य हैं। स्कूलके अलावा १४ अस्पताल और ८ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २६° १८′ उ० और देशा० ७३° १′ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७९१०९ है। १४५९ ई०में राव जोधाने अपने नाम पर यह नगर बसाया था। वर्त्तमान नगरसे दक्षिण पश्चिममें पुरानी दीवार है जिसमें चार फाटक लगे हुए हैं। यहां जमीन सर्वत्र ढालू है। पहाड़ पर किला खड़ा है। किलेके चारों ओर सम्भवतः १८वीं शताब्दीका बना हुआ २४६०० फुट लम्बा ३से ८ फुट तक चौड़ा और १५से ३० फुट तक ऊंचा प्राचीर है। इसमें दरवाजे लगी हैं। दरवाजों पर लोहेके पैने किले इसलिए जड़ दिये गये हैं जिसमें हाथी टक्कर मार कर उनको तोड़ न सकें। इन दरवाजोंमें पांच तो सामने सामने शहरके नामसे पुकारे जाते हैं अर्थात् नागोर मेड़ता नागोर सिवाना तथा सोजत और छठेका नाम चांदपोल है, क्योंकि इसकी सम्मुखस्थ दिशामें चन्द्र दर्शन होता है। नागोर दरवाजेसे दोनों ओर बुर्जों पर तोपके गोलेके लगनेका चिह्न है। १८०७ ई०में अमीर खां डाकूकी सहायतासे जयपुर तथा बिकानेर सैन्यने जोधपुरके किले पर आक्रमण किया था। किन्तु अमीर खांने धौंकलसिंहको छोड़ महाराज मान सिंहका पक्ष ग्रहण करने पर विद्रोहियोंको बहुत क्षति ग्रस्त हो पीछे हटना पड़ा। ऐसा राजपूतानेमें दूसरा दुर्ग नहीं है। यह शहरको पश्चिमी तरफ रक्षा करता और जमीनसे ४८० फुट ऊंचा पड़ता है। लोग दूरसे इसका उच्च शिखर देख सकते हैं। दीवार २०से १२० फुट ऊंची और १२से ७० फुट तक मोटी है। भीतरमें १०० गज लम्बा और २५० गज चौड़ा स्थान है। दो दरवाजे सड़कको ओर लगी हैं। उत्तर पूर्व कोणमें जयपोल और दक्षिण पश्चिममें फतेहपोल है। इनके बीच बहुतसे दूसरे फाटक और बचावके लिये मोटी दीवार हैं। १७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें राजा सूर्यसिंहका बनाया हुआ मोती महल इमारतोंमें सबसे अच्छा है। इसके १०० वर्ष बाद

महाराज अजितसिंहने फतेह-महल निर्माण किया। यह जोधपुर नगरमें मुगलफौजके लौटनेका स्मारक है। इन इमारतोंमें उमदा कटावके किवाड़े लगे हैं और सर्व पत्थरकी झांझरी दार पर्दे खिंचे हुए हैं। शहरमें भी बहुत से अच्छे अच्छे घर हैं। इनमें १० राजप्रासाद ठाकुरोंके कुछ नगर, भवन और ११ देवमन्दिर देखने योग्य हैं। बालकिशनजीका मन्दिर यशोवन्त अस्पतालके समीप है। उसमें श्रीकृष्णको मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। घनश्यामजीके मन्दिरमें भी श्रीकृष्णको मूर्त्ति विद्यमान है। रामगढ़ा जोने इस मन्दिरको बनवाया था। कुछ कालतक मुसलमानोंने इसे मसजिदमें परिणत रखा, किन्तु जब महाराज अजितसिंहजी राजसिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने मन्दिरका पुनरुद्धार किया। कुञ्जबिहारीका मन्दिर सबसे अधिक कारुकार्यविशिष्ट है और ठीक बाजारमें पड़ता है। पासवन गुलाबरायने इसे अठारहवीं शताब्दीमें बनवाया था। महामन्दिर शहरके पूर्वमें अवस्थित है। महाराज मानसिंहजीने अपने गुरु देवनाथजीके रहनेके लिये १८१२ ई०में इस मन्दिरका निर्माण किया था। यह और सब मन्दिरोंसे कहीं सुन्दर है।

शहरमें चार तालाब हैं,—पहला राव गङ्गाकी रानी पद्मावतीका बनाया हुआ पद्मसागर; दूसरा, बैजोका तालाब जिसे महाराज श्रीमानसिंहकी लड़कीने बनाया, तीसरा गुलाबसागर जिसे गुलाबराय पासवानने १८४३ सम्वत्‌में बनाया और चौथा भीमसिंहजीका बनाया हुआ फतेहसागर। शहरके उत्तर महाराज सूरसिंहका बनाया हुआ सूरसागर है। इसके सिवा बालसमन्द नामक एक कृत्रिम ह्रद है जो शहर और मन्दोरके बीचमें पड़ता है।

जोधपुर नगर व्यवसायका केन्द्र है। यहां मोटा सूती और ऊनी कपड़ा बुना जाता है। सूती कपड़ेकी रङ्गाई और छपाई मशहूर है। पगड़ियां बहुत उम्दा तैयार होती हैं। लोह पीतलके बरतन, हाथी दांतकी चीजें, सङ्गमरमरके खिलौने और घोड़े तथा ऊंटकी सवारीका साज सामान भी अच्छे बनते हैं। बड़ी सड़कों पर फर्शबन्दी है। ष्टेशनसे शहरतक बैलों-की छोटी ट्राम चलती जो १८८६ ई०में तैयार हुई है। घोड़ों और भैंसोंसे ट्राम गाड़ीमें खींचा जाता है। ट्रामवेकी कुल लम्बाई १० मील है। शहरमें एक हाई स्कूल, एक गर्ल्स स्कूल तथा और भी बहुतसे छोटे छोटे स्कूल हैं। संस्कृत शिक्षाका भी प्रबन्ध है। रायका बागमें महाराजका राजप्रासाद विद्यमान है। रतनाड़ महलमें बिजलीकी रोशनी होती है। बुन्दीके महाराव राजाकी लड़की रानी हदीजीके बनवाये हुए रानीसागर और चिड़ियानाथके झरनेसे शहरमें जलका इन्तजाम है।

जोधराज—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। इन्होंने नीमरागढ़के राजा चन्द्रभानुके आदेशानुसार हम्मीररासो नामक एक उत्कृष्ट ग्रन्थ रचा था। इस ग्रन्थके रचनाकालके विषयमें कुछ सन्देह पड़ गया है। कवि लिखते हैं—

"चन्द्र नाग वसु पंचगिनि, संवत माधव मास।
शुक्ल सु तृतिया जीव युत, ता दिन ग्रन्थ प्रकास॥"

इससे १८८५ संवत् निश्चित होता है किन्तु ऐतिहासिकोंका कहना है कि यह ग्रन्थ १८८५ संवत्‌में रचा गया है। हां, यदि नग शब्दसे सातका अर्थ लिया जाय तो १८७५ संवत् ही ठहरता है।

जोधराजने ग्रन्थके प्रारम्भमें अपनेको गौड़ ब्राह्मण और बालकृष्णका पुत्र बतलाया है। आपकी रचना कुछ कुछ चन्द बरदाईके ढंगकी है। इनके हम्मीर-काव्यमें कहीं कहीं गद्य भी है, जिसका व्रजभाषा है। नीचे एक कविता उद्धृत की जाती है—

"पुण्डरीक सुत सुता तासु पदकमल मनाऊं।
विसद बरन घर बसन विसद भूषन हिय ध्याऊं॥
विसद जंत्र सुर सुद्ध तंत्र तुम्बर जुत सोहै।
विसद ताल इक भुजा दुतिय पुस्तक मन मोहै।
गतिराज हंस हंसह चढ़ी रटी सुरन कीरति विमल।
जैमातु सदा वरदायिनी देहु सदा वरदान फल॥"

जोधराज गोदीका—सांगानेर निवासी एक दिगम्बर जैन कवि। इन्होंने वि० सं० १७२१में प्रीतङ्करचरित्र, १७२२में कथाकोश, १७२४ में सम्यक्त्वकौमुदी और १७२६में प्रवचनसार नामक जैन-ग्रन्थोंकी हिन्दी-पद्य-

अब टीका लिखी है। भावदीपिका वचनिका और और ज्ञानसमुद्रकी रचना भी इन्हींके द्वारा हुई है।

जोधराव—जोधपुराधिपति राजा रणमल (रिड़मल) के पुत्र। ये कन्नौजके राजाके राठोर-कुलतिलक जयचन्द्रके पौत्र और सिवाजीके वंशधर थे। १४५८ ई०में (कोई कोई १४५९ई० भी बतलाते हैं) इन्होंने जोधपुर नगरकी प्रतिष्ठा की थी और मन्दोरसे यहां राजपाट उठा ले गये थे। नगर स्थापन करनेके बाद इन्होंने तीस वर्ष राज्य किया था इनके चौदह पुत्रोंमें पिताके जीते जी अपने अपने भुजबलसे राज्य विस्तार किया था। जोधाजी देखो।

जोधा (चारण)—मारवाड़के एक कवि।

जोधाजी—जोधपुर नगरके स्थापनकर्त्ता इनका द्वितीय नाम जोधराव भी था। इनके पिता और पितामह मन्दोरके दुर्गमें १४ बार राज्यशासन करते थे। पीछे किसी योगीके आदेशानुसार इन्होंने जोधपुर स्थापन किया। जिस समय चूड़ाजीने मन्दोर पर दखल किया था उस समय ये जङ्गलमें जा छिपे थे। बादमें मौके पर इन्होंने पुनः मन्दोर पर कब्जा कर लिया। १४२० ई०में, मेवाड़के अन्तर्गत धानला ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इनके चौदह पुत्र थे। जोधराव देखो।

जोधाबाई—१ जोधपुरके राजा मालदेवकी पुत्री और राजा उदयसिंहकी भगिनी। उदयसिंहने (१५६८ ई०में) मुगल बादशाह अकबरशाहके साथ अपनी बहन जोधाबाईका विवाह कर अपनेको कृतार्थ समझा था। जोधाबाईके विवाहके बाद बादशाहके अनुग्रहसे राजा उदयसिंहका विशेष सम्मान हुआ था। इन्हीं जोधाबाईके गर्भसे सम्राट् जहांगीर (सलीम)का जन्म हुआ था। जोधाबाई अकबर बादशाहको हिन्दुओंके साथ अच्छा बर्ताव करनेका परामर्श दिया करती थीं।

२ जोधपुराधिपति राजा उदयसिंहकी कन्या और मालदेवकी पोती। उदयसिंहने मुगलसम्राट् अकबरकी तथा मानके आग्रहसे पुत्र अपनी कन्या मांजी सलीम (जहांगीर)को ब्याह दी। यह विवाह १५८५ ई०में हुआ था। इनका दूसरा नाम जगत् गुसाँइनी वा बालमती था। जोधपुरराजकी कन्या होनेके कारण मुगल दरबारमें इनका भी नाम जोधाबाई पड़ गया। इनके गर्भसे (१५९२ ई०में) सम्राट शाहजहांका जन्म हुआ था। १६१८ ई०को आगरेमें इनकी मृत्यु होने पर सुहागपुरके प्रासादके पासवाली समाधिमन्दिरमें ये समाधिस्थ हुई थीं। अब भी वह उक्त प्रासाद और समाधि मन्दिरका ध्वंसावशेष पड़ा है।

३ मुगल सम्राट् जहांगीरकी राजपूत पत्नी। ये बीकानेरके राजा रायसिंहकी कन्या थीं। बेगम-महलमें इनका नाम जोधाबाई प्रसिद्ध था।

जोनराज—राजतरङ्गिणी या काश्मीरके इतिहासके द्वितीय लेखक। इनकी बनाई हुई राजतरङ्गिणी दूसरी राजतरङ्गिणी कहलाती है। इनसे २०० वर्ष पहले कल्हण पण्डितने राजतरङ्गिणी लिखना प्रारम्भ किया और उन्होंने जयसिंह राजाके शासन तकका इतिहास लिखा है। उनके परवर्त्तीकालसे जोनराजने अपने समय तकका इतिहास लिखा है। इनके पीछे और भी दो लेखकोंने राजतरङ्गिणी लिखी है।

जोनराजने पृथ्वीराजविजय नामक और एक काव्य तथा शक सं० १३७०में किरातार्जुनीय काव्यकी टीकाकी रचना की थी। अनुमानतः १४१९ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी।

जोन्स (सर विलियम)—१७४६ ई०में २८ सेप्टेम्बरको लण्डन नगरमें इनका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम विलियम जोन्स था, उनको गणितके विषयमें अच्छी व्युत्पत्ति थी। उन्होंने गणित सम्बन्धी कुछ पुस्तकें और दर्शन सम्बन्धी कई एक निबन्ध लिखे हैं।

तीन वर्षकी उमरमें जोन्सके पिताकी मृत्यु हुई, इसकी माता पर ही सब भार आ पड़ा। जोन्सको शिक्षाका भार भी उनकी माताको ग्रहण करना पड़ा। जोन्सकी माता अत्यन्त बुद्धिमती और ज्ञानवती थीं। बाल्यकालसे ही जोन्स शिक्षाविषयमें असाधारण नैपुण्यका परिचय देने लगे। सात वर्षकी उमरमें हारोके विद्यालयमें भरती हुए और जब नौ वर्षके हुए तब यद्यपि किसी आकस्मिक अशुभ घटनासे एक साल तक वे विद्यालयमें ग्रीक और लैटिन भाषा सीख न सके थे तथापि वे अपने साथ समस्त सहपाठियोंकी अपेक्षा अधिकतर

शिक्षित थे और शीघ्र ही वे उक्त स्कूलके प्रधान शिक्षक डा० थ्याकरके अत्यन्त प्रियपात्र हुए थे। डा० थ्याकर प्रायः कहा करते थे कि, जोन्सको नग्न और निराश्रय अवस्थामें सलिसबरीके छोरमें छोड़ देने पर भी वह अर्थ और यशके मार्गको पकड़ सकता है अर्थात् भविष्यमें वह अवश्य ही एक प्रधान यशस्वी और सद्गतिशाली व्यक्ति होगा। जोन्सने धीरे धीरे शिक्षामें इतनी उन्नति की कि, परवर्तीकालमें थ्याकरके स्थानापन्न डा० समनार कहा करते थे कि, जोन्स ग्रीक भाषामें उनसे भी अधिक व्युत्पन्न हैं।

हारोमें रहते समय अन्तिम दो वर्षोंमें उन्होंने अरबी और हिब्रु भाषा सीखी थी। उस समय वे समय समय पर लाटिन, ग्रीक और अंग्रेजी भाषामें निबन्ध लिखा करते थे। लिमन नामक पुस्तकमें उनके कई एक निबन्ध उद्धृत किये गये थे। विद्यालयकी लम्बी छुट्टियोंमें वे फ्रान्सीसी और इटली भाषा सीखते थे।

१७६४ ई०में जोन्स अक्सफोर्ड-विश्वविद्यालयमें प्रविष्ट हो विशेष उत्साह और परिश्रमके साथ विद्याचर्चा करने लगे। इन्होंने अरबी और फारसी भाषा सीखनेमें खूब मन लगाया। छुट्टीके समय वे इटली, स्पेन और पोर्तगलके प्रधान प्रधान ग्रन्थकारोंको ग्रन्थावली पढ़ने लगे। १७६५ ई०में इन्होंने अक्सफोर्ड छोड़ दिया और आर्लस्पेन्सर परिवारके साथ वे एकत्र रहने लगे। वहां रह कर वे लार्ड अलथर्पके शिक्षाका पर्यवेक्षण करते थे। वकालतका काम करनेके लिए १७७० ई० में इन्होंने इस पदको छोड़ दिया। उक्त आर्ल-परिवारके साथ एकत्र रहते समय जोन्स अत्यन्त परिश्रमके साथ प्राच्य भाषाका अभ्यास करते थे, इस अदम्य उत्साहके फलसे शीघ्र ही वे प्राच्य भाषाके एक प्रधान विद्वान् समझे जाने लगे।

१७६८ ई०में डेनमार्कके राजाके अनुरोधसे इन्होंने "नादिरशाह"की जीवनीका फारसीसे फ्रान्सीसी भाषामें अनुवाद किया था। १७७० ई०में इस पुस्तकके साथ हाफिजकी कुछ कविताओंका फ्रान्सीसी अनुवाद छपा था। दूसरे वर्ष इन्होंने एक फारसी भाषाका व्याकरण प्रकाशित किया। २१ वर्षकी उम्रमें जोन्सने Commentaries on Asiatic Poetry नामक एक पुस्तक लिखना प्रारम्भ किया। यह पुस्तक लाटिन भाषामें लिखी गई और १७७४ ई०में मुद्रित हुई। इस पुस्तकका नाम Poeseos Asiaticæ Commentariorum Libri Sex है, इस पुस्तकमें प्राच्य कविताके विषयमें साधारण मन्तव्य और हिब्रु, अरबी, फारसी तथा तुरकी भाषामें लिखित बहुतसी उत्तम उत्तम कविताओंका अनुवाद है। स्पेन्सरके साथ रहते समय इन्होंने फारसी भाषाका एक कोष लिखना प्रारम्भ किया था। प्रसिद्ध प्रसिद्ध फारसी ग्रन्थकारोंकी पुस्तकोंसे उद्धृत कर इस कोषकी आवश्यकीय बातोंका प्रयोग प्रदर्शित हुआ है। इस समय आंकतइ दुपेरां (Anquetil du Perron) नामके किसी व्यक्तिने अक्सफार्ड-विश्वविद्यालय और उसके कुछ अध्यापकोंमें दोष दिखलाते हुए एक विस्तृत समालोचना प्रकाशित की थी। १७७१ ई०में जोन्सने अपना नाम छिपा कर फरासीसी भाषामें उक्त समालोचनाका प्रतिवाद किया। प्रतिवादकी भाषा इतनी ओजस्विनी और मधुर हुई थी कि लोगोंने उस प्रतिवादको पारिसके किसी विद्वान् द्वारा लिखा गया है ऐसा समझा था। १७७२ ई०में जोन्सने एशियाके भिन्न भिन्न देशोंकी भाषासे अनुवाद कर एक कविता-पुस्तक प्रकाशित की।

१७७४ ई०में जोन्स वकालत करने लगे। प्राच्य भाषा पर अत्यन्त अनुराग होते हुए भी ये आइनके सिवा और कुछ न पढ़ते थे। ये नियमितरूपसे अदालतको जाते थे। इस समय जोन्सने किस प्रकारसे अध्ययन किया था, ब्लाकष्टोनके विषयकी उनकी स्तुति ही उसका यथेष्ट और स्पष्ट निदर्शन है।

१७८० ई०में जोन्सने अक्सफोर्ड विश्वविद्यालयकी तरफसे पार्लियामेण्टमें प्रवेश करनेके लिए कोशिशें कीं, किन्तु अमेरिकाके युद्धके विषयमें प्रतिकूल सम्मति देनेके कारण वे इतने अप्रिय हो गये कि, उनका पार्लियामेण्टमें प्रवेश करना असम्भव हो गया। इससे उन्होंने पार्लियामेण्टकी आशा छोड़ अन्य कार्योंमें मन लगाया। इनकी बनाई हुई कुछ पुस्तकोंसे* इनके

* पुस्तकोंके नाम ये हैं—

(१) Enquiry into the Legal mode of Suppressing Riots

राजनैतिक सिद्धान्तका परिचय मिल सकता है।

कुछ वर्ष बाद जब इन्होंने अपने रोजगारमें अच्छा नाम पाया, तब फिर इन्होंने प्राच्यभाषा और साहित्य पढ़ना प्रारम्भ कर दिया और १७८०-८१ ई०में) बाइके दिनोंमें ये अरबी साहित्यका प्रसिद्ध प्राचीन कविता ग्रन्थ मुअल्लाकतका अनुवाद करने लगे।

१७८३ ई०में लार्ड असबर्टन (Lord Ashburton) की चेष्टासे जोन्स भारतमें बङ्गदेशके सुप्रिमकोर्टके जज नियुक्त हुए और उन्हें नाइट उपाधि प्राप्त हुई।

इसके कुछ सप्ताह बाद सेण्ट आसफ (St. Asaph)के धर्मयाजककी कन्या शिप्लेके साथ इनका विवाह हो गया।

इस वर्षके शेषभागमें जोन्स कलकत्ते आ कर रहने लगे। इस समयसे उनके मृत्यु समय पर्यन्त ग्यारह वर्षोंमें ये जब फुरसत पाते थे तभी प्राच्य साहित्यका अध्ययन करते थे। इनके कलकत्ते आनेके कुछ दिन बाद ही इन्होंने प्राच्यसाहित्य प्रेमियोंको एकत्र कर एशियाके पुरातत्त्व दर्शन, विज्ञान शिल्प और इतिहास आदिके विषयमें खोज करनेके लिए एक समितिकी स्थापना की। सर विलियम इस सभाके सभापति चुने गये। इस समय यही सभा "एशियाटिक सोसाइटी" के नामसे प्रसिद्ध है। इस सभासे भारतके साहित्य और पुरातत्त्वका इतना उपकार हुआ है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अब भी इस सभा (Asiatic Society)के द्वारा प्रकाशित पुस्तकावलीको पढ़ कर यूरोपीय विद्वानोंको हिन्दुओंके साहित्य और पुरातत्त्व सम्बन्धी अनेक विषयका ज्ञान होता है। जोन्सने एशियाके पुरातत्त्व पुस्तकके प्रथम चार खण्डमें बहुतसे निबन्ध लिखे थे।

भारतमें रहते समय जोन्स प्रथम चार वर्ष तक बराबर संस्कृत पढ़ते थे। इस भाषामें यथोचित व्युत्पत्ति लाभ कर इन्होंने हिन्दू और महम्मदीय धर्मोंका सार संग्रह करनेके लिए गवर्मेण्टके पास प्रस्ताव किया। इन्होंने खुद ही अनुवाद और कार्यपर्यवेक्षणका भार बिना वेतन स्वीकार किया।

गवर्मेण्टने इनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, इन्होंने सम्पूर्ण काम पर्यन्त परिश्रम कर इस कार्यको प्रायः समाप्त कर लिया। इनकी मृत्युके बाद मि० कोलब्रुकने परिदर्शनका भार ग्रहण कर अवशिष्टांश समाप्त किया था।

१७८४ ई०में सर विलियम जोन्सने मनुसंहिताका अनुवाद प्रकाशित किया था। इस समय इन्होंने शकुन्तला और हितोपदेशका भी अनुवाद किया था। जोन्सने साहित्यसेवामें लगातार लगे रहने पर भी अपने कर्तव्य कार्य (विचारकार्य)में उदासीनता नहीं की। लार्ड टेनमाउथ (Lord Teignmouth) लिखते हैं—

'जोन्सने ऐसी कठोर कर्त्तव्यपरायणताके साथ अपना कार्य सम्पादन किया है कि जिससे वे कलकत्तामें रहनेवाले देशीय और यूरोपीय व्यक्तियोंके चिरस्मरणीय हो जायेंगे। कुछ दिन ज्वरमें पड़े रहनेके बाद १७९५ ई०में २७ अप्रेलको उन्होंने कलकत्तामें प्राणत्याग किया।"

सर विलियम जोन्सने विविध विद्याएं सीखी थीं और इनका ज्ञान भी असीम था। भाषा सीखनेकी इनकी विलक्षण क्षमता था। लाटिन और ग्रीक भाषामें यद्यपि इनका ज्ञान विशेष प्रखर न था, परन्तु किसी भी यूरोपीयने भारतमें इनसे समान अरबी फारसी और संस्कृत भाषामें व्युत्पत्ति लाभ नहीं कर पाई। ये थोड़ा बहुत तुर्की और हिब्रू भाषा भी जानते थे चीनी भाषामें भी इनका दखल था। ये कनफुसियसकी कविताओंका अनुवाद कर गये थे। इन्होंने यूरोपमें प्रचलित सभी भाषाएं अच्छी तरह सीख ली थीं और अन्यान्य भाषाओंमें भी इनकी थोड़ी बहुत गति थी। विज्ञानमें इनकी विशेष गति न थी गणित कुछ जानते थे, रसायन अच्छी भांति सीख लिया था। जीवनके शेषभागमें विशेष परिश्रमके साथ ये उद्भिद्विद्याका अभ्यास करते थे।

यद्यपि जोन्सको नाना विषयोंमें विस्तृत शिक्षा थी

(१) Speech to the Assembled Inhabitants of Middlesex &c

(२) Plan of a National defence, (३) Principles of Government

तथापि इनमें मौलिकता कुछ भी न थी। इन्होंने किसी नवीन विषयका आविष्कार नहीं किया और न किसी पुरातन विषयमें नवीन शिक्षा ही दी है। इनमें विश्ले-षण और आक्षेपणकी क्षमता न थी। भाषाके विषयमें इन्होंने किसी प्रकारकी वैज्ञानिक उन्नति नहीं की—सिर्फ दूसरोंके लिए उपादान संग्रह किया है। प्राच्य-साहित्यके विषयमें इन्होंने जितनी पुस्तकें लिखी हैं उनके पढ़नेसे मनोरञ्जनके साथ साथ अनेक विषयोंमें शिक्षा भी मिलती है, किन्तु उनमें उनकी वर्णनात्मता और चिन्ताशक्तिकी मौलिकताका परिचय नहीं मिलता। इन्होंने विद्याविषयक जैसी उन्नति की थी, उसमें ये अवश्य ही एक मान्य और गौरवके पात्र थे। इन्होंने अनेक विषयोंको सीखनेके लिए जैसा प्रयत्न और परि-श्रम किया था, थोड़ा विषय सीखनेके लिए यदि वैसा करते, तो उनके ज्ञान और विद्याकी अधिकतर स्फूर्त्ति होती, सम्भव था कि उससे ये एक अद्वितीय पुरुष हो जाते।

जोन्सका चरित्र हमेशा सम्मान पाता रहेगा।

जोन्स किसी विषयको सीखनेके लिए हरएक तर-हका परिश्रम उठानेको तयार रहते थे। पिता माता पर इनकी प्रगाढ़ भक्ति थी। इनके बन्धुगण सब समय इनका विश्वास कर निश्चिन्त रहते थे। विचारकालमें इनकी न्यायपरतासे सभी सन्तुष्ट होते थे।

पूर्वोल्लिखित पुस्तकोंके सिवा जोन्सने निम्न-लिखित पुस्तकें भी भाषान्तरित की थीं—(१) दो महम्मदीय आ-इन, (२) उत्तराधिकारके विषयमें तथा दानकर पत्र विना मरे हुए व्यक्तियोंके उत्तराधिकारत्वको आइन, (३) निजामीकृत गल्प पुस्तक, (४) प्रकृतिके लिये दो स्तोत्र; (५) वेदका उद्धृतांश।

सर विलियम जोन्सकी कब्रके ऊपर निम्नलिखित भावार्थकी एक कविता लिखी है—

"एक मानवका देहांश इस स्थान पर निहित है, वे ईश्वरसे डरते थे—मृत्युको नहीं। इन्होंने अपनी स्वाधीनताकी रक्षा की थी। ये अर्थ अन्वेषण नहीं करते थे। ये अधार्मिक और कुक्रियासक्त व्यक्तियोंके सिवा न तो किसीको अपनेसे नीचही समझते थे और न ज्ञानी और धार्मिकके सिवा किसीको अपनेसे उच्च ही मानते थे।"

जोबट—१ मध्यभारतके भोपावर एजेन्सीके अन्तर्गत एक क्षुद्र राज्य। यह अक्षा० २२° २१ से २२° ३०' उ० और देशा० ७४° २८ से ७४ ५० पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल १४० वर्गमील है। इसके उत्तरमें झाबुआ राज्य। दक्षिण और पश्चिममें अलीराजपुर तथा पूर्वमें ग्वालियर है। यहां भूमि पर्वतमय है और अधिकांश अधिवासी भील हैं। मालवमें महारा-ष्ट्रोंके उपद्रवके समय यह प्रदेश ध्वस्त था। उत्तर सीमाकी विन्ध्यपर्वतश्रेणीसे कई एक शाखा पर्वत इस राज्यमें प्रवेश हुए हैं। इन्दोरसे धार और राजपुरसे (अलीराजपुर) गुजरात तक एक सड़क इस राज्यके उत्तर पूर्व होकर गई है। जोबटके राना राठोरवंशके राजपूत हैं।

यहांकी लोकसंख्या लगभग ८४४३ है। यहांके भील खेती करके अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। यहां विशेष कर उड़द, बाजरा और ज्वार उत्पन्न होती है।

यह राज्य पांच थानामें विभक्त है, यथा—जोबट, गुढ़, हीरापुर, बयन्नो और जुआरी। यहांकी वार्षिक आय २१०००) रु०, जङ्गल विभागसे और ४००० रु० है। कहते हैं, कि ई० १५ वीं शताब्दीमें यह राज्य केसर-देवके हाथ लगा। (अलीपुरके स्थापयिता आनन्ददेवके पौत्रके पुत्र) अङ्गरेजोंका आधिपत्य होनेके समय जोब-टमें राना सबलसिंह राजत्व करते थे। इनके बाद राना रञ्जितसिंह राजगद्दी पर बैठे। और १८७४ ई०में इनका देहान्त हुआ। इन्होंने १८६४ ई०में अङ्गरेजोंको रेलवेके लिये काफी जमीन देनेको कहा। इसके बाद स्वरूपसिंह राजगद्दीपर बैठे और १८८७ ई०में इनका देहान्त हुआ। बाद इन्द्रजितसिंह राजगद्दी पर बैठे। नरेशका उपाधि राणा है।

२ मध्य भारतके भोपावर एजेन्सीके अन्तर्गत जोबट राज्यका प्रधान शहर। यह अक्षा० २२° २७' उ० और देशा० ७४° ३७' पू०में पड़ता है। इस नगरके नामा-नुसार राज्यका नाम जोबट होने पर भी यह राजधानी

जाती है राज्यकी प्रधान सड़को तीन मील दूरवर्ती जोरा थानेमें रहती है। जोरा एक सामान्य ग्राम होने पर भी इसकी जलवायु जोबटसे अच्छी है। इसी कारण जोबटको उठाकर जोरामें स्थापन करनेका प्रस्ताव हुआ था। यह शहर तीन ओर जङ्गलमय पर्वत वेष्टित एक ऊँची पर्वत चढ़ाई रानाके दुर्गके नीचे अवस्थित है। यहांके अधिवासीगण प्रायः ज्वर रोगसे पीड़ित रहते हैं। यहां डाकघर और एक ब्रीज है। जोरामें राज्यका दातव्य चिकित्सालय है। लोकसंख्या प्रायः २ ८ है।

जोबन (हिं० पु०) १ जोबन युवा होनेका भाव। २ सुन्दरता, रूप, खूबसूरती। ३ बहार टिमटुम रौनक। ४ स्तन कुच छाती। ५ एक प्रकारका फूल।

जोम (अ० पु०) १ उत्साह, उमङ्ग। २ उद्वेग आवेग। ३ अहङ्कार अभिमान घमण्ड।

जोयसी—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। ये १६११ ई०में विद्यमान थे। इनकी एक कविता उपलब्ध है जो नीचे उद्धृत की जाती है—

“यदि सोच समाय दरी सैहरी तेहिके रजु होत मनो भजु है।
अब ऐसे मैं स्याम सुझावै मह घनु आवै क्यों पंकु मनो मनु है॥
अधरानि अंधारी न मूंद धरै मनि जीवनी र्जनिको पंनु है।
अब जावैं तौ जात दुखी रंगुरी रजु राखौं तौ जात सबै रजु है॥”

जोर (फा० पु०) १ शक्ति बल, ताकत। २ प्रबलता, तेजी बढ़ती। ३ अधिकार, वश, इख्तियार। ४ आवेग, वेग, झोंक। ५ भरोसा, आसरा। ६ परिश्रम, मेहनत।

जोरई (हिं० स्त्री०) एक साथ बँधे हुए लम्बे और मजबूत दो बाँस जिनके अग्रभागमें मोटी रस्सीका एक फन्दा पड़ा रहता है और जो कोल्हूके कोई समय जाठको पीछे तथा उसे कोल्हूसे निकालते समय काममें आता है। जाठका ऊपरका हिस्सा, इसको फन्देमें फँसा देते हैं और फिर जाठका नीचेका हिस्सा दोनों बाँसोंके सहारे उठा कर कोल्हूके ऊपरी भाग पर रख देते हैं।

जोरई—एक तरहका कीड़ा जिसका रंग हरा होता है। यह फसलको पत्तियों और डालियों खा जाता है। कभी की फसलको इससे बड़ी हानि पहुंचती है।

जोरशोर (फा० पु०) प्रबलता, प्रचण्डता।

जोरदार (फा० वि०) जोरवाला जिसमें बहुत जोर हो।

जोरहाट—१ पूर्वीय बङ्गाल और आसामके शिवसागर जिलेका उपविभाग। यह अक्षा० २६ २२ से २७ ११´ उ० और देशा० ८१ ५० से ८४ ३६´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ८१८ वर्गमील है। इस उपविभागका कुछ अंश ब्रह्मपुत्रकी मुख्य धारासे उत्तरमें पड़ता है जिसे माजुली द्वीप कहते हैं। यहांकी लोकसंख्या प्रायः ११८११० है। इस उपविभागमें इसी नामका शहर और ६५१ ग्राम लगते हैं। इसके दक्षिण-पूर्व हो कर आसाम बङ्गाल रेलवे गयी है। इस उपविभागकी वार्षिक मालगुजारी १०८००० है।

२ आसाम प्रदेशके शिवसागर जिलेका एक ग्राम और शहर। यह अक्षा० २६ ४५ उ० और देशा० ८४ १३ पू० पर डिसाम नदीके दाहिने किनारे गोधिलामुखसे ६ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १९८८ है। १८वीं शताब्दीके अन्तमें यहां आहोम वंशके अन्तिम स्वाधीन राजा गौरीनाथकी राजधानी थी। चाय की बहुतसी बगीचे रहनेके कारण यह शहर धीरे धीरे विख्यात होता गया है। जैन मारवाड़ी या अङ्गरेज महाजनोंकी बहुत सी दूकानें हैं। दूसरे दूसरे देशोंसे यहां कपास चावल, नमक तेल आदिकी आमदनी होती है और यहांसे सरसों ईख तथा चमड़ेकी रफ्तनी होती है। यहां मध्यश्रेणीके उच्च विद्यालय दातव्य औषधालय आदि हैं। यहांकी चाय विलायतको भेजी जाती है।

जोरजे—यवनराज-वर्णित एक जनपद। यवनराजके मतसे यह अक्षा० १६ ४०´में पड़ता है। इसीको आजकल वर्तमान जर्जिया कहा जाता है।

जोरा—मध्यप्रदेशके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत तोंवर धार जिलेका शहर। यह अक्षा० २६ २०´ उ० और देशा० ७७ ४८´ पू०में ग्वालियर लाइट रेलवे पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग २५५१ है। साधारणतः यह स्थान जोरा-अलापुर नामसे प्रसिद्ध है। अलापुर एक ग्राम है जो जोरासे एक मील उत्तरमें पड़ता है। यहां करौलीके महाराजका बनवाया हुआ बहुत प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष, जिला सम्बन्धीय कार्यालय, स्कूल चिकित्सालय

डाकघर, सराय, बङ्गला और पुलिस ष्टेशन है।

जोरावर मल—हिन्दीके एक कवि। ये नागपुरके रहने वाले और जातिके कायस्थ थे। १७३५ ई में इनका जन्म हुआ था।

जोरावरसिंह—१ बीकानेरके एक राजा। सुजानसिंहको मृत्युके उपरान्त १७३७ ई में ये बीकानेरके सिंहासन पर बैठे थे। इनके शासनकालमें कुछ विशेष घटनाएँ हुई थीं। इन्होंने कुल १० वर्ष तक राजत्व किया था। किसी किसीका कहना है कि इन्होंने (सं० १७८७से १८०८के भीतर) 'रसिकप्रिया टीका' नामक एक ग्रन्थ रचना किया था।

२ काश्मीरके राजा गुलाबसिंहके एक सेनापति। इन्होंने लदाक् नामक स्थान काश्मीर राज्यमें लिया था

गलाबसिंह देखो।

३ जयशलमेरके प्रधान सामन्त। आपके पिताका नाम अनूपसिंह था, जिन्होंने राजकुमार रायसिंहसे मिल कर जयशलमेरके राजा रावल मूलराजको बन्दी कराया था। बादमें जोरावरसिंहने माताके आदेशानुसार रावल मूल राजको कारागारसे मुक्त कर दिया। इस पर रावल मूलराजके मन्त्री सालिमसिंहने षड़यन्त्र रच कर इन्हें राज्यसे निकलवा दिया।

कुछ दिन बाद सालिमसिंहको रास्तेमें सामन्तोंने घेर लिया। उपायान्तर न देख, दुष्टहृदय सालिमने जोरावरसिंहके पैरों पर पगड़ी रख दी। वीरहृदय जोरावरने उसे क्षमा कर दिया। परन्तु पीछे उस दुष्ट-मन्त्रीने अपने प्राणरक्षक जोरावरसिंहको जहर दे कर मार डाला।

जोरावरी (फा० स्त्री०) १ जोरावर होनेका भाव। २ जबरदस्ती, धींगा धींगी।

जोरू (हिं० स्त्री०) स्त्री, भार्या, घरवाली।

जोलाहा (हिं० पु०) जुलाहा देखो।

जोवाई—१ आसामके खासी और जयन्ती पहाड़ जिलेका सब डिविजन। यह अक्षा० २४° ५८ एवं २६° ३ उ० और देशा० ९१° ५८ तथा ९° ५१ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल २०८६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६७९२१ है। यह पहले जयन्तीराजके अधिकारमें था। १८३५ ई०को वृटिश गवर्नमेण्टने उनसे जोवाई ले लिया। अधिकांश अधिवासी सिनतेङ्ग हैं। इसमें ६४० गांव बसे हैं।

२ आसामके अन्तर्गत खासी और जयन्ती पहाड़ उपविभागका सदर ग्राम। यह अक्षा० २५°२६´ उ० और देशा० ९२°१२´ पू०में समुद्रपृष्ठसे ४४°२२´ फुट ऊंचे पर अवस्थित है। यहांसे कपास, रबर आदिकी रफतनी होती है और दूसरे दूसरे देशोंसे चावल, सूखी मछली और सूती कपड़ेकी आमदनी होती है। यहां वर्षा अधिक होती है। १८८१ ई० तक पहले पांच वर्षोंमें ३६२०९७ इञ्च वर्षा होती थी। १८६२में जो जातीय विद्रोह हुआ था, जोवाई उसका केन्द्रस्थल रहा।

जोवारी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चमकीली मैना। यह कई तरहकी मोटी मोटी बोलियां बोलती है। भिन्न भिन्न ऋतुओंमें यह भिन्न भिन्न देशोंमें जा कर रहती है। यह फलों और अनाजोंकी हानिकारक है।

इसके अंडे बिना चित्तीके और नीले रङ्गके होते हैं। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

जोश (फा० पु०) १ उफान, उबाल। २ मनोवेग, आवेग।

जोशन (फा० पु०) १ एक प्रकारका चांदी या सोनेका गहना जो भुजाओं पर पहना जाता है। इसमें ५: या आठ पहलवाले लंबोतरे पोले दानोंकी पांच या छः जोड़ियां होती हैं। दोनों रेशम या सूत आदिके डोरेमें गुथे रहते हैं। दोनों बाहों पर दो जोशन पहने जाते हैं। २ कवच, जिरह बख्तर।

जोशांदा (फा० पु०) वह जड़ या पत्तियां जो दवाके लिये पानीमें उबाली जाती हैं, क्वाथ काढ़ा।

जोशी (हिं० पु०) जोषी देखो।

जोष (सं० पु०) जुष-घञ्। १ प्रीति, प्रेम। २ सेवन, सेवा। (क्ली०) सुख, आराम।

जोष—एक कवि। इनका कविता-सम्बन्धीय नाम अह-मद हसन खाँ था। ये लखनऊके रहनेवाले थे और १८५३ ई०में विद्यमान रहे। इन्होंने 'उर्दू दीवान' नामक ग्रन्थ रचा है। इनके पिताका नाम नवाब मुकीमखाँ था, जो नवाब मुहब्बत खांके लड़के थे।

जोषक (सं० पुं०) जुष-ण्वुल्। सेवक, टहल करने वाला।

जोषण (सं० पुं०) १ जुष-ल्युट्। १ प्रीति प्रेम। २ सेवा।

जोषम् (अव्यय) जुष-अम्। १ मौन, चुपचाप, चुप, खामोश। २ सुख स्वच्छन्द। ३ सम्पूर्ण रूपसे। ४ सम्यक्, अच्छी तरह। ५ नहन। ६ प्रशंसा।

जोषवाक् (सं० पुं०) मिथ्या वाक्य, झूठा वचन आपन सी बात। अपने लिये अमोलिकर, किन्तु दूसरेको सन्तुष्ट करनेके लिये जो वाक्य प्रयोग किया जाय उसको जोषवाक् अर्थात् मिथ्यावाक्य या चाटुवाक्य कहते हैं।

जोषम (अव्य) जुष-अमु। १ तूष्णी, मौन चुप। २ सुख।

जोषा (सं० स्त्री०) जुषति उपसुष्यते, जुष-अच्, स्त्रियां टाप्। नारी स्त्री।

जोषिका (सं० स्त्री०) जुषते सेवते जुष-ण्वुल् टाप् अत इत्वं। १ कलिका तरोई। २ कलियोंका समूह।

जोषित् (सं० स्त्री०) जुषति उपसुष्यति जुष-अति। इसक हेऽमिन्न इति। उण् ३।११। पृषोदरादित्वात् षस्य च। स्त्रीमात्र, नारी।

जोषिता (सं० स्त्री०) जोषित्-टाप्। स्त्री मात्र, नारी औरत।

जोषी (ज्योतिषी शब्दका अपभ्रंश) १ दक्षिण पश्चिम भारतमें रहनेवाली एक ब्राह्मणजाति। सतारा पूना, बेलगांव आदि स्थानोंमें इनका वास है। इनका आहार व्यवहार, चाल चलन और पहनावा मराठी-कुनबियोंके समान है। जन्मपत्री देखना वा लिखना, हाथ देखना ही इनकी उपजीविका है। जोषीके हाथ में एक शुभाशुभ बतलानेके लिए वे 'हुड़ुक' डमरू बाजा ले कर द्वार द्वार पर भीख मांगा करते हैं। ये भी मराठा कुनबियोंकी तरह समस्त देव-देवियोंकी पूजा और उपवासादि किया करते हैं। इनमें भी पञ्चायत है, पर उसका बड़ी शोचनीय है।

कुछ जोषी तो सामवेदके अनुयायी हैं और कुछ यजुर्वेदके जो सामवेदके अनुयायी हैं। उनके गोत्र भरद्वाज अथरौलिया, सिकरौरिया कनौरिया कश्यप, सिकरवार या सिकौल, डोमरो और पराशर हैं। ये लोग केवल शनिवार, राहु देवता और केतुके दान ग्रहण करते हैं। लड़कीका विवाह ये लोग अपनेसे भिन्न गोत्रमें कर सकते हैं, लेकिन लड़की सदा एक गोत्रमें ही ब्याही जाती है। मरदुमशुमारीसे पता चलता है कि जोषी जाति ८५० श्रेणियोंमें विभक्त है। विस्तार हो जानेके भयसे सभीके विवरण नहीं दिये गये। एक श्रेणीका नाम मारवाड़ी जोषी है। ये सब गौड़ हैं और आदिगौड़, जयपुरी गौड़, मालवी गौड़ तथा गूजर गौड़में विभक्त हैं। इनका नाम बनारसमें अधिक है। कुमाऊं जोषीके विषयमें आटकिनसन (Atkinson) साहब लिखते हैं कि ये लोग ब्राह्मणके अन्तर्गत हैं और इनका आदान प्रदान पाँडे तिवारी आदिके साथ हुआ करता है। जन्मपत्री देखना या लिखना ही इनकी उपजीविका है। इनके कई गोत्र हैं, जैसे - मार्ग्य, अत्रिरा, कौशिक, उपमन्यु, भरद्वाज आदि।

२ पहाड़ी ब्राह्मणोंकी एक जाति। ३ महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी एक जाति। ४ गुजराती ब्राह्मणोंकी एक जाति।

जोषीमठ—युक्त प्रदेशमें गढ़वाल जिलेका एक छोटा ग्राम (यह अक्षा० ३० ११ उ० और देशा० ७८ ४५ पू०में) समुद्रतलसे ६१०० फुट ऊंचेमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ४६८ है। इस ग्राममें बहुतसे प्राचीन मन्दिर हैं और विष्णुके मन्दिरोंमेंसे नरसिंहदेवका मन्दिर प्रधान है। प्रवाद है, कि इस मूर्त्तिका एक हाथ क्रमशः पतला होता जा रहा है और जब यह हाथ गिर पड़ेगा तब विष्णुप्रयागके निकट पर्वतके गिरनेसे होकर बदरीनाथ जानेका रास्ता एक दम बन्द हो जायगा। कहा जाता है, विष्णुने स्वयं अगस्त्य मुनिके निकट बदरीनाथका पूर्वोक्त आख्यान प्रकाश किया है। बदरीनाथका मन्दिर बन्द हो जानेसे टेकगढ़ भविष्य बदरीको चले जायेंगे। भविष्य बदरीका मन्दिर जोषीमठके पूर्वकी ओर धोली नदीके वामतटपर तपोवनमें अवस्थित है। बदरीनाथ मन्दिरके आज्ञासे जो इस मन्दिरका आयोजन किया है।

शीतकालमें जब बर्फ गिरने लगता है, तब रावल अर्थात् बदरीनाथ मन्दिरके प्रधान याजक मन्दिरके ऊपर

रह नहीं सकते, इसलिये वे जोपोमठमें आकर रह जाते हैं। जोपीमठके वासुदेव, गरुड़ और भगवतीके मन्दिर भी उल्लेखयोग्य हैं। जोपोमठका दूसरा नाम ज्योतिर्धाम (ज्योतिर्लिङ्गका वसतिस्थल) है।

जोपीप—एक मुसलमान कवि इनका कविता सम्बन्धीय नाम मुहम्मद हसन वा मुहम्मद रोशन था। ये पटनाके रहनेवाले थे और सम्राट शाहआलमके समयमें विद्यमान थे।

जोष्ट्, (सं० त्रि०) जुष तृच्। सेवक।

जोष्य—जुष्य देखो।

जौहड़ (हिं० पु०) कच्चा तालाव।

जोहार (हिं० पु०) अभिवादन, वन्दन, प्रणाम।

जोहिया—शतद्रु नदीके तटपर रहनेवाली राजपूत कुलोद्भव एक जाति। जोहिया, दहिया और महलिया आदि जातियां बहुत दिनोंसे इस्लाम धर्मको मानने लगी हैं। इनकी संख्या कम है। किसी किसीके मतसे जोहिया लोग भारतवर्षीय ३६वें राजवंशके एकतम वंशोद्भव हैं और कोई कोई यह कहते हैं कि ये यदुभट्टिवंशीय हैं। कर्नल टाड साहबका कहना है—ये जाट जातिके अन्तर्भुक्त हैं। यदुका उच्च पर्वत पर इनका वास था। मौरीवंशीय चितोराधिपतिकी सहायतार्थ राजपूतोंके समावेश कालमें ये जङ्गलदेशाधिपति कहकर उल्लिखित हुए है। हरियाना, भाटनेर और नागर ये तीन प्रदेश जङ्गलदेश कहलाते थे; किन्तु अब इन प्रदेशोंमें यह जाति बहुत थोड़ी है। राठौर बीकानेरके स्थापनकर्ता राठोरवंशोय पराक्रमी बीकाकी सहायतासे जोहियाओंको पराजित और विताड़ित कर इनके ११०० ग्राम अधिकार किये थे। ईसाकी १५ वीं शताब्दीमें यह घटना हुई थी, किन्तु इस समय तक ये पूरो तरहसे भगाये न गये थे। अकबरके राजत्वकालमें भी ये गिर्मा प्रदेशमें जमींदारी करते थे। कुछ भी हो, इस घटनाके बहुत पहलेसे ही ये नीचेके दुआवमें रहते थे। बहुतोंका अनुमान है कि बाबरद्वारा उल्लिखित जिञ्जुटा और यह जोहिया ये दोनों एक ही जाति हैं।

जौंधा—बम्बई प्रान्तके माडकाना जिलेका तालुक। यह अक्षा० २६ ७ तथा २० ३० उ० और देशा० ६० ११ एवं ६७ ४० पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ७६ वर्गमोल और लोकसंख्या प्रायः ५२२१८ है। इसमें ८० गांव हैं। जोंधी सदर है। मालगुजारी और सेस कोई १ लाख ४० हजार रुपया है। पश्चिम अञ्चलमें कोरथर पर्वत है।

जौंकना (हिं० क्रि०) क्रुद्ध हो कर ऊंचे स्वरसे कुछ कहना।

जौंचो (हिं० स्त्री०) गेहूं या जौकी फसलमें होनेवाला एक प्रकारका रोग। इसमें बाल काले हो जाते हैं और दाने निकलने नहीं पाते।

जौंगभौंरा (हिं० पु०) १ किले या महलोंके भीतरका वह गहरा तहखाना जिसमें गुप्त खजाना आदि रहता है। २ दो बालकोंका जोड़ा।

जौ (हिं० पु०) १ एक प्रसिद्ध अनाज और उसका पौधा। जिसका दूसरा नाम यव है। यव देखो।

२ पञ्जाबमें होनेवाला एक पौधा जिसकी लचीली टहनियोंसे यहां झाड़ू टोकरे वगैरह बनाये जाते हैं। मध्य एशियाके प्राचीन ध्वंसावशेषोंमें इसकी टहनियां मिली हैं, जो सम्भवतः धर्मोत्सवोंमें व्यवहृत होती थीं। ३ एक तौलका नाम। यह ६ राईके बराबर होती है।

(क्रि० वि०) ४ जब। (अव्यय) ५ यदि अगर।

जौकिराई (हिं० स्त्री०) मटरमिश्रित जौ, जौका ढेर, जिसमें मटर मिला हुआ हो।

जौख (हिं० पु०) झुण्ड, जत्था फौज।

जौगड—मन्द्राज प्रान्तके गञ्जाम जिलेका टूटा फूटा किला। यह अक्षा० १८° ३३ उ० और देशा० ८४° ५० पू०में ऋषिकुल्या नदोके उत्तर तट पर अवस्थित है। पहले यहां प्राचीरवेष्टित विशाल नगर था। दुर्गके मध्य भागमें प्रस्तरफलक पर बौद्ध सम्राट् अशोकके १३ अनुशासन खोदित हैं। ऐसे अनुशासन मन्द्राज प्रान्तमें दूसरे स्थान पर देख नहीं पड़ते। किलेकी दीवारोंके भीतर मट्टीके पुराने वर्तन और ऊपरे बहुत हैं। ई० १म शताब्दीका बहुतसी मुद्राएं मिली हैं। मट्टीके नीचे दबा हुआ एक प्राचीन मन्दिर भी आवि

खड़ा हुआ है। गढ़के भीतर प्राचीन कालके दो सरोवर हैं जिनमेंसे एकका घाट बना हुआ है और उसमें पहले एक मन्दिर था। इन दोनों सरोवरका पङ्क यदि बाहर निकाला जाय तो सम्भव है कि उसमें प्राचीन कालकी मुद्रा, प्रतिमूर्ति और ताम्रफलकादि मिल सकते हैं। गढ़में दो छोटे छोटे पहाड़ हैं। एक पहाड़ पर किसी लोगोंने चारों ओरकी गिरी हुई ईंटे और पत्थरोंसे एक कुटी बनाई है। अशोकका अनुशासन पहाड़के बगलमें खुदा हुआ है। उसकी लिपि कई जगह खराब हो गई है। यहांके लोगोंका कहना है, कि किसी यूरोपियनने इस लिपिको नष्ट करनेके अभिप्रायसे पहाड़के ऊपर बनेका उठाया हुआ खम्भ गिरा दिया था। यह गल्प सत्य प्रतीत नहीं होती। गढ़के भीतकी मट्टी जौ अर्थात् 'लाह'की है। अनुमान किया जाता है, कि इसीके अनुसार इसका नाम जौगढ़ पड़ा है।

प्रवाद है—चन्द्रकुलके राजाओंमेंसे इस गढ़का निर्माण किया था। फिर कोई कहते हैं कि इसका प्राचीरादि जौ अर्थात् लाहसे बनाया गया था, इसीसे इसका नाम जौगढ़ पड़ा है। लाहसे बने रहनेके कारण शत्रुओंका गोला और तीर प्राचीरको छेद या तोड़ नहीं सकता। वरन वह उसीमें सट जाता था। इस कारण दुर्गवासी यहां निर्भय हो कर रहते थे। एक गल्प है कि यहांके राजाके साथ राजपूतोंके राजाकी अनबन थी। एक दिन उस राजाने जौगढ़में अवरोध किया। दुर्गवासी जो प्राचीरका गुण जानते थे इसलिये वे तनिक भी भयभीत न हुए। शत्रुओंने प्राचीर तोड़नेकी बहुत कुछ कोशिश की किन्तु जो गोलादि फेंके जाते थे वे उसी प्राचीरमें सट कर उसे और मजबूत बना देते थे। इसी तरह कई दिन तक वे व्यर्थ वहां बैठे रहे। एक दिन एक ग्वालिन दूध ले कर शत्रुओंके शिविरमें बेचने आई। दूध ले कर सैनिकोंने ग्वालिनको पैसा न दिये इस पर वह कहने लगी, "तुम लोग निरपराध अबलाओंके ऊपर अत्याचार कर अपना गौरव दिखा रहे हो, और यह दुर्ग जो आसानीसे अधिकृत किया जा सकता है उसे तो तुम लोग ले नहीं सकते हो।" इस पर सैनिक उस ग्वालिनको पकड़ कर राजाके पास ले गये। ग्वालिनने इस रहस्यको खोल दिया कि यह प्राचीर लाहका बना हुआ है। अतएव आग लगानेसे यह तुरन्त जल जायगा। उसी समय शत्रुओंने मालोंसे दीवारमें आग लगा दी और थोड़े समयके बाद बिलकुल दीवार जल कर गिर गई। राजाने उस विश्वासघातिनी ग्वालिनको शाप दिया कि "तुम पत्थर होगी" इतना कह कर वे हाथमें तलवार ले कर युद्धक्षेत्रमें जा पड़े और उस युद्धमें खेत रहे।

राजाके शाप देने पर जब वह ग्वालिन दुर्गको छोड़ी जा रही थी, रास्तेमें ही वह पत्थर हो गई। आज भी वह पत्थर विद्यमान है। कोई कोई अनुमान करते हैं कि यह पत्थर एक सतीस्तम्भोंके सिवा और कुछ नहीं है। उसमें स्त्रीकी मूर्ति भी स्पष्ट खुदी हुई नहीं है। यह पत्थर अभी गढ़के दक्षिणकी ओर पड़ा है। कुछ पहले किसी अंगरेज कर्मचारीने इसके नीचेका भाग खोद कर सोने चांदी और तांबेकी मुद्रा बाहर निकाली थी। इनमेंसे कुछ ताम्रमुद्रा अन्ध्रवंशीय राजाओंके समयकी है। यदि यह सत्य हो, तो इस स्थानको प्राचीन कहनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

जौमड़ा (हिं॰ पु॰) अगहनमें होनेवाला एक प्रकारका धान। इसका चावल बहुत वर्ष रखने पर भी खराब नहीं होता है।

जौमठ (स॰ पु॰) जतुमठ लाहका घर।

जौचनी (हिं॰ स्त्री॰) चना मिला हुआ जौ।

जौजा (अ॰ स्त्री॰) भार्या, पत्नी, जोरू।

जौतुक (वि॰ प्र॰) दहेज। यौतुक देखो।

जौविक (स॰ पु॰) पशुके १२ भागोंमेंसे एक।

जौनपुर—युक्तप्रदेशके बनारस विभागका एक जिला। यह कोर्ट आफ वार्ड्सके अधीन है। यह अक्षा॰ २५ २४ से २६ १८ उ॰ और देशा॰ ८२ ७ से ८३ ५ पू॰में इलाहाबाद विभागके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। क्षेत्रफल १५५१ वर्गमील है। इसका आकार बहुत कुछ त्रिभुजसा है। इसके उत्तर और उत्तर-पश्चिममें अयोध्याके अन्तर्गत प्रतापगढ़ और सुलतानपुर जिला, उत्तर-पूर्वमें आजमगढ़ पूर्वमें गाजीपुर तथा दक्षिण और दक्षिण-पश्चिममें बनारस, मिरजापुर और इलाहाबाद है। इस जिलेका

एक खण्ड प्रतापगढ़ जिलेमें पड़ता है और फिर इसी खण्डके बराबर प्रतापगढ़का एक अंश जौनपुरके मछली शहर और इसीलको सीमामें आबद्ध हैं। जौनपुर शहर ही इस जिलेका सदर है।

इस जिलेकी जमीन गङ्गातीरवर्ती अन्यान्य जिलोंकी नाईं दलदल हैं, बहुतसी नदियोंके प्रवाहित होनेसे ऊँची नीची भी है। कहीं कहीं उपवनसे सुशोभित ऊँची भूमि नजर आती है। उस ऊँची भूमि पर बहुतसी प्राचीन जातियोंके नगर, मन्दिर और प्रतिमूर्ति आदिका ध्वंसावशेष है और जगह जगह राजपूत राजाओंके दुर्गादिका भग्नावशेष देखा जाता है। इस जिलेकी भूमि उत्तर-पश्चिमसे ले कर दक्षिण-पूर्व तक ढालू है, किन्तु यह उतार बहुत कम है। कमसे कम एक माइलमें ६ इंचसे अधिक नहीं है। इस जिलेकी मट्टी प्रायः सभी जगह उर्वरा है, किन्तु कहीं कहीं ऊसर भूमि भी देखी जाती है। इस ऊसर भूमिके सिवा और सब जगह अच्छी फसल लगती है। उत्तर और मध्य भागमें आमके बहुतसे बगीचे हैं। इसके अलावा महुवा और इमलीके दरख्त भी देखे जाते हैं।

गोमती नदी इस जिलेके बीच ८० मील बह कर इसको असमान खण्डमें विभक्त करती है। जौनपुर नगर इसी गोमतीके किनारे अवस्थित है। जिलेके मध्य इस नदीको कभी पैदल पार नहीं कर सकते हैं। जौनपुर नगरके निकट इसके ऊपर मुसलमानोंका बनाया हुआ १६ गुंबजदार एक पुल है। उस पुलकी लम्बाई ७१२ फुट है। मुनिम खाँने १५६८-७३ ई०में उसे निर्माण किया था। इस पुलसे दो मील गोमती नदीके ऊपर वर्तमान रेलवेका पुल है। इसमें भी १६ गुम्बज लगे हुए हैं, किन्तु इसकी लम्बाई प्राचीन पुलसे प्रायः दूनी है। गोमती नदी बहुत गहरी है और इसके किनारे बहुतसे छोटे छोटे कंकड़ पत्थर भरे हैं, इसीसे इसका सोता परिवर्तित नहीं होता है। इस नदीमें कई बार अकस्मात् बाढ़ आ जाती है। नदीका जल प्रायः १५ फुटसे अधिक ऊपर नहीं उठता है। अन्यान्य नदियोंमेंसे, वरणापिसी और बासीही प्रधान हैं। ह्रद (झील) की संख्या बहुत है। विशेष कर उत्तर और दक्षिण भागमें ज्यादा है, मध्य स्थानमें कुछ कम है। बड़ीसे बड़ी झीलकी लम्बाई प्रायः ८ मील होगी।

पहले जिलेमें जगह जगह जंगल थे, किन्तु क्रमशः कृषिकार्यको विस्तृति और प्रजाको वृद्धि हो जानेसे सब जङ्गल काट डाले गये। अभी कड़ाकट तहसीलमें ६००० बीघेका एक धाव जङ्गल हो सबसे बड़ा है। पूर्वोक्त ऊसर भूमि छोड़ कर और दूसरी जगह कहीं परती जमीन नहीं है। ऊंची भूमिमें गोलाकार पत्थरके टुकड़े पाये जाते हैं जो सड़क बांधनेके काममें आते तथा उन्हें जला कर चूना भी तैयार किया जाता है।

जङ्गलके नहीं रहने तथा अधिवासियोंकी संख्या अधिक हो जानेसे जंगली जन्तु प्रायः नहीं देखे जाते। झील और दलदलमें बहुतसे जलचर पक्षी रहते हैं। शिकारी केवल उन्हींका शिकार करने जाते हैं। यहां विषैला गोखुरा सर्प बहुत पाया जाता है और कभी कभी गोमती और सै-तीरवर्त्ती गुफामें झुण्डका झुण्ड लकड़बग्घा देखा जाता है।

इतिहास—अत्यन्त प्राचीन कालमें जौनपुरमें भड़ (भर) सोइरियों नामक एक आदिम जातिका वासस्थान था, किन्तु अभी उन लोगोंके टोवेसामका अधिक परिचय नहीं पाया जाता है। वरणा प्रभृतिके किनारे बड़े बड़े नगरोंका ध्वंसावशेष देखा जाता है। बहुतोंका अनुमान है कि ८वीं शताब्दीको हिन्दूधर्मके अभ्युदयमें उत्तर भारतसे बौद्ध धर्मका लोप होनेके समय ये सब नगर शायद अग्निसे जला दिये गये होंगे। गोमतीके किनारे बहुतसे अत्यन्त प्राचीन मन्दिरादि विद्यमान थे।

हिन्दूकीर्त्तिलोपी और देवद्वेषी मुसलमान शासनकर्त्ताने अधिकांश मन्दिर तोड़ फोड़ दिये और वहांके उपकरण ले कर मसजिद, दुर्ग आदि निर्माण किये हैं। इसी तरह बहुतसे हिन्दू और बौद्ध-मन्दिरोंके उपकरण ले कर १३६० ई०में फिरोजगढ़ बनाया गया। पत्थरोंका भास्करकार्य देखनेसे ही मालूम पड़ता है कि यह मुसलमानोंका नहीं है। अनुमान किया जाता है कि बहुत पहले जौनपुर अयोध्या राज्यके अन्तर्गत था। फिर बहुत समयके बाद यह काशीश्वर जयचन्द्रके हाथ

लगा। अन्तमें उनके वंशधरोंको परास्त कर शाह कुतुबुद्दीनके अधीन दुर्दान्त मुसलमान वीरोंने ११९४ ई०में जौनपुर पर अधिकार किया।

इसके बाद कुछ काल जौनपुर जिलेके अन्तर्गत समस्त भूभाग मुसलमान-सम्राट्के शासनाधीन बङ्गालाधि पतिके अधीनस्थ रहा। १३६० ई०में फिरोजशाह तुग लकके बङ्गालसे लौट आते समय उन्होंने जौनपुर ग्राममें अपने चाचाकी याद और इस सुन्दर स्थानसे मोहित होकर एक नगर स्थापन करनेकी इच्छा की। फिरो जने प्राय ६ मास तक यहां रह कर कई एक हिन्दू देवालयोंको तहस नहस कर डाला। बाद महाराज जयचन्द्र प्रतिष्ठित मन्दिरको जब वे तोड़ने गये, तब अधि वासिगण पराक्रमसे मन्दिरकी रक्षाके लिये अग्रसर हुए। अन्त फिरोज शाहको निराश हो कर लौट जाना पड़ा। जो कुछ हो, अन्तमें जौनपुरके शासनकर्त्ता इब्रा हिम सुलतानसे वह मन्दिर भग्न किया गया और उसके उपकरणसे अटला मसजिद बनाई गई।

१३८८ ई०में दिल्लीश्वर महम्मद तुगलकने अपने मन्त्री ख्वाजा जहानको मालिक-उस शरककी उपाधि देकर कनौजसे लेकर समस्त पूर्व विभागका शासन कर्त्ता नियुक्त किया। ख्वाजा जहान जौनपुरमें राज धानी स्थापन कर राज्य करने लगे। १३९८ ई०में तैमुरलङ्गके आक्रमण करने पर दिल्लीपतिको व्यतिव्यस्त देख इन्होंने इस सुअवसरमें स्वयं सुलतान उश्-शर्क अर्थात् पूर्व दिक्पतिकी उपाधि धारण कर दिल्लीकी अधीनता अस्वीकार की। इनके उत्तराधिकारी स्वाधीन राजगण शर्किराज कह कर विख्यात हैं। इनके मरनेके बाद इनके दत्तक पुत्र मुबारक शाह शर्कि राजसिंहासन पर बैठे। किन्तु शीघ्र ही दिल्लीसे एक सैन्यदल भेजा गया और उस युद्धमें वे मारे गये। मुबारकको मृत्युके बाद उनके छोटे भाई इब्राहिम सिंहासन पर बैठे और इन्होंने १४०० से १४४० ई० तक ४० वर्ष बहुत दक्षताके साथ प्रजाके प्रिय होकर राज्य किया। इन्हींके समयमें अटला मसजिद बनाई गई और जौनपुरमें विद्यानुशीलन की खूब उन्नति हुई। इन्होंने काल्पी और कनौज जीतनेके लिये कई बार युद्ध किया। इनके पुत्र महमूदने १४५२ ई०में काल्पी अधिकार कर दिल्लीको अव रोध किया, किन्तु अन्तमें सम्राट् अलाउद्दीनके प्रतिनिधि बहलोल लोदीसे पराजित होकर लौट गये। बहलोलने महमूदके पुत्र शर्कियोंके अन्तिम राजा हुसेनको जौनपुरमें पराजय किया। किन्तु उन्हें फिर राज्यमें रख कर आप अपने देशको लौट गये। इसी हुसेनने विख्यात जुम्मा मसजिदका निर्माण किया। बहलोलकी ऐसी दया करने पर भी हुसेनने विद्रोही होकर प्राणत्याग किया। उक्त मुसलमान शर्किराजाओंके शासनकालमें बहुतसी मसजिद और महाविद्यालयादि बनाई गई थीं।

शर्किराजके बाद जौनपुर लोदीके अधिकारभुक्त हुआ। इनके राज्यकालमें यहां बराबर विद्रोह और शोणितपात हुआ करता था। लोदीवंशके अन्तिम सम्राट् इब्राहिमके १५२६ ई०को पानीपतकी लड़ाईमें बाबरसे पराजित होने पर जौनपुरके शासनकर्त्ता भी स्वाधीन हो गये थे किन्तु बाबरने दिल्ली और आगरा अधिकार कर अपने पुत्र हुमायूंको जौनपुर और बिहार जीतनेके लिये भेजा। इसी समयसे जौनपुर मुगल-साम्राज्यभुक्त हुआ, बीच बीचमें शेरशाह और उनके वंशीय सम्राटोंके समयको छोड़कर यह बराबर मुगलोंके अधीन था। १५७५ ई०में अकबरने इलाहाबादमें राज- धानी स्थापित की, तभीसे जौनपुर एक निजामतसे शासित होने लगा। बाद १७२२ ई०में जौनपुर, बनारस, गाजीपुर और चुनार दिल्लीके शासनसे पृथक् कर अयो ध्याके नवाब वजीरके शासनभुक्त किये गये। १७५० ई० में रोहिलाके सर्दार सैयद अहमद बङ्गशने वजीर सादत खाँको पराजित कर अपने आत्मीय अमानाको बनारस प्रदेशका शासनकर्त्ता नियुक्त किया। अमाना शीघ्र ही काशीराज चेतसिंह द्वारा जौनपुरसे भगा दिये गये। नवाब वजीरने उनके दुर्ग पर अधिकार कर लिया। अन्तमें १७७७ ई०को अङ्गरेजोंने यह दुर्ग पुनः चेतसिंहको अर्पण किया।

१७६५ ई०में बक्सरकी लड़ाईके बाद जौनपुर एक तरहसे अङ्गरेजोंके हाथ आ गया। १७७५ ई०को लख- नऊ नगरकी सन्धिमें यह सम्पूर्णरूपसे अङ्गरेजोंको सौंप दिया गया। इसके बाद सिपाही विद्रोहके समय तक

जौनपुरमें कोई विशेष घटना न हुई। १८५७ ई०को ५ जूनको जौनपुरके सिपाहियोंने बनारसमें विद्रोहका सम्वाद पाया और वे जो इण्ट मजिष्ट्रेटके साथ साथ कर्तृपक्षको विनाशकर लखनऊकी ओर चल पड़े। इसके बाद यहां और अराजकता फैलने लगी। पीछे ८ सेपटेम्बरको आजमगढ़से गोरखा सैन्यने आकर विद्रोह दमन किया। नवम्बर महीनेमें मेहदी हुसेन नामक विद्रोही-दलपतिकी कार्यदक्षतासे फिर कई स्थान अङ्गरेजोंके हाथसे जाते रहे। १८५८ ई०में विद्रोहीगण युक्त प्रदेशमें पराजित और छिन्न भिन्न हुए। अन्तमें विद्रोही मेहदी हुसेनकी पराजयके बाद विद्रोह एकदम शान्त हो गया। इसके बाद दो एक डकैतोंके उपद्रवके सिवा और किसी प्रकारकी गड़बड़ी न हुई।

जौनपुरके नगरके नामानुसार इस जिलेका नाम पड़ा है। जौनपुर जिलेके कृषिकार्यकी विस्तृति चरम सीमा तक पहुंच गई है।

जौनपुर बहुत समय तक मुसलमान राज्यभुक्त तथा मुसलमान शासनकर्त्ताकी आवासभूमि होने पर भी यहां हिन्दू धर्म ही प्रबल है।

मुसलमान अधिवासियोंकी संख्या हिन्दुओंकी दशांश मात्र है। ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ, बनिया, अहीर, चमार, कुर्मी आदि यहांके प्रधान अधिवासी हैं। मुसलमानोंमें सुन्नीकी अपेक्षा शिया सम्प्रदायकी संख्या अधिक है; क्योंकि शोर्कीवंशीय शियाराजगण बहुत समय तक यहां रहे थे। इसके अलावा ईसाई, युरोपीय आदि भी यहां रहते हैं। अधिवासियोंमें सैकड़े लगभग ७६ कृषिजीवी हैं। इस जिलेमें ७ जिला और ३१५२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या कोई १२०२९२० होगी। यह पांच तहसीलमें बंटा है, यथा—जौनपुर, मरियाहू, मछली शहर, खुटाहन और किराकट।

जौनपुर जिलेके जौनपुर मछली, शहर, बादशाहपुर और शाहगञ्ज इन चार नगरोंकी जन संख्या ५ हजारसे अधिक होगी। ये अधिकांश शस्यक्षेत्रवेष्टित छोटे छोटे ग्रामोंमें रहते हैं।

वणिक् और धनी कृषकोंकी अवस्था अन्यान्य स्थानोंसे कम नहीं है। सामान्य कृषक, मजदूर और श्रमजीवियोंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। ये अधिकांश कदर्य भोजन करते और फटे पुराने वस्त्रसे जीवन बिताते हैं। कुर्मी और काछी गृहस्थोंकी अवस्था कुछ कुछ अच्छी है। ये पोस्ता, तमाकू और अन्यान्य तरह तरहकी साक सब्जी तथा फल मूलादि उपजाते हैं। प्रायः अन्यान्य कृषकोंकी अपेक्षा ये अधिकतर परिश्रमी और अध्यवसायी होते हैं तथा ये मालगुजारी भी अधिक देते हैं। इसीसे जमींदार कुर्मी और काछी प्रजाको बहुत प्यार करते हैं।

जौनपुर जिलेकी मट्टी कीचड़ और बालुकामय है। परित्यक्त नदीगर्भ और शुष्क जलाशयके गड्ढेमें कृष्णवर्ण पङ्कमय अत्यन्त उर्वरा मट्टी दीख पड़ती है। जिलेके समस्त स्थानमें अच्छी फसल होती है। यहां धान, बाजरा, जुन्हार, ज्वार, कपास, गेहूं, जौ, मटर, उर्द, सरसों आदि तरह तरहके अनाज उपजते हैं। खेती करनेका तरीका भी सहज है। पहले गृहस्थ खेतको हलसे जोत कर उसमें बीज बो देते हैं, बाद चौकी दे कर मट्टी चौरस की जाती है। जमीन सम्पूर्ण वर्ष परती नहीं रहती है, लेकिन जिस जमीनमें ईख रोपी जाती है, वह जमीन ६ मास या एक वर्ष तक जोत कर छोड़ दी जाती है। नगरके निकटवर्त्ती जमीनमें आसन और रब्बी ये दो दोनों होती है। ईखकी खेती सबसे लाभजनक है; किन्तु उसमें बहुत खादकी आवश्यकता पड़ती है। अंगरेज अधिकारमें आनेके बादसे यहां नीलकी खेती होती है। गवर्मेंटके निरीक्षणमें कुर्मी पोसताकी खेती करते हैं। इसकी ढोंढ़ीसे जो अफीम निकलती है, उसे कृषकगण सरकारी कर्मचारीको देनेके लिये बाध्य हैं और वे प्रति सेर अफीमके पांच रुपये पाते हैं। कुर्मी और काछी पोस्ता, तमाकू, साक, सब्जी आदि उपजाते हैं; इसीसे उनकी अवस्था अन्यान्य कृषकोंसे अच्छी है।

समस्त जिलेका भूपरिमाण १५५१ वर्गमील है, जिसमेंसे १५१८ वर्गमील गवर्मेंटके तौजीभुक्त है। इसमेंसे ८६२ वर्गमीलमें खेती होती है और १०३ वर्गमील खेतीके योग्य है। शेष २५१ वर्गमील ऊसर है।

दैव विडम्बना—इस जिलेको गोमती नदीमें समय

समय पर बाढ़ या आगसे दोनों शस्य असमय हो जाती है और बहुत दूर तक पानीसे बढ़ जाती है। १७७४ ई०को बाढ़में इस जिलेकी बहुत क्षति हुई थी। १८७१ ई०को बाढ़ समयमें गोमती जिसमें नगरके प्रायः ४००० घर और अन्यान्य ग्रामोंके प्रायः ८००० घर जलमग्न हो गये थे। दूसरे दूसरे स्थानोंकी तुलनामें यहां अनावृष्टि अधिक नहीं होती है। १७७० ई०में जिस तरह इस जिलेके चारों ओर अनावृष्टि और अकाल हुआ था, उसी तरह यहां भी था। किन्तु १८०३ और १८०४ ई०को अनावृष्टिसे यहां दुर्भिक्ष नहीं हुआ। १८३७ ई०के भीषण दुर्भिक्षमें जौनपुर सभी स्थानोंसे हरा भरा था। १८६०-६१ ई०का दुर्भिक्ष दुर्भिक्षपीड़ित जौनपुर तक पहुंचा न था। १८७३ ई०को बंगालमें जो भयानक दुर्भिक्ष पड़ा था वह घर्घरा नदीके उस पारके प्रदेशमें भी व्याप्त था किन्तु जौनपुर इस दुर्घटनासे अलग ही रहा। १८७७-७८ ई०में अनावृष्टिके कारण इसी तालाबादिके नहीं होनेसे यहां दुर्भिक्ष हुआ था और १८८६ तथा १८९४ ई०में इतनी वर्षा हुई कि सारी फसल बर्बाद हो गई।

दुर्भिक्षसे पीड़ित मनुष्योंकी सहायताके लिये गवर्मेण्टने रिलीफ वर्क (Relief work) स्थापन किया था और इसमें कितना आयव्ययमें अन्न खर्च वृद्धि होता रहा। इसीसे कोई न कोई फसल उत्पन्न हो जाती थी जिससे यहांके लोगोंको अधिक कष्ट भोगना न पड़ा।

वाणिज्यादि—जौनपुर कृषिप्रधान जिला है। यहां की उपज ही प्रधान वाणिज्य द्रव्य है। बरीपोयके गिरीयरमें मेला प्रस्तुत होता है। मरियाहू नगरमें फाल्गुन मासमें और बादशाही नगरमें चैत्र मासमें मेला लगता है इस मेलेमें प्रायः २०।२५ हजार मनुष्य एकत्र होते हैं।

अयोध्या रोहिलखण्ड रेलपथ इस जिलेमें ३१ मील तक गया है। जफराबाद, जौनपुर सदर, जौनपुर नगर, मेहरावन खेतसराय शाहगञ्ज और कोनगांई ये सब ष्टेशन इस जिलेमें पड़ते हैं। यहां ११८ मील पक्की और ३१८ मील कच्ची सड़क है। बरसातमें गोमती नदीमें बड़ी बड़ी नावें आती जाती हैं। इन सब नावोंमें अयोध्यामें अनाज आदि लाया जाता है।

जौनपुर जिला अंगरेजी शासनके समय अयोध्या गवर्मेण्टके अधीन बनारस प्रदेशके अन्तर्गत किया गया। १८६१ ई०में यह जिला इलाहाबाद विभागमें मिला लिया गया। यहां एक मजिष्ट्रेट और कलक्टर, एक ज्वाइण्ट या असिष्टेण्ट मजिष्ट्रेट तथा और दूसरे दूसरे अधीनस्थ कर्मचारी रहते हैं। यहां २१ डाकघर हैं और प्रत्येक रेलवे ष्टेशनमें तारघर है। इस जिलेमें विद्याकी उन्नति बहुत कम है। यहां हिन्दी, फारसी और संस्कृत भाषा सिखानेके विद्यालय हैं। अंगरेजी भाषा बहुत जगह सिखाई जाती है। यह जिला पांच तहसील और १७ थानोंमें विभक्त है। केवल जौनपुर नगरमें ही म्युनिसिपालिटी है।

इस जिलेकी वायु वृष्टि होनेसे बारहो महीने ठण्डी रहती है तथा ज्वरादिका भी अधिक प्रकोप नहीं है। १८८१ ई० तक ९ वर्षका वार्षिक वृष्टिपात ४१.०१ इंच हुआ है। यहां चार अस्पताल हैं।

२ युक्तप्रदेशके अन्तर्गत जौनपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५° १० से २५° ५४ उ० और देशा० ८२° २४ से २८ १२ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ७८० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २९८१३१ है। इसमें ७११ ग्राम और दो शहर लगते हैं। तहसीलमें इसमें जौनपुर, मियानसी रारी, जाफराबाद करियात, दोस्त, बयालसी और तप्पा मरीमू नामके सात परगना हैं। अयोध्या रोहिलखण्ड रेलपथ इस तहसीलमें हो कर गया है। इसके सिवा सड़कोंकी बहुत सुविधा है। गोमती और सैनदी तथा और छोटी छोटी दूसरी नदियां इस तहसीलमें प्रवाहित हैं।

३ युक्तप्रदेशके अन्तर्गत जौनपुर जिलेका सदर और प्रधान शहर। यह अक्षा० २५° ४४´ उ० और देशा० ८२° ४१´ पू०में अयोध्यारोहिलखण्ड और बड़ाम मार्ग वेटमें रेलपथ पर अवस्थित है। यह नगर रेल द्वारा कलकत्तेसे ११५ मील और बम्बईसे ८०० मील दूर गोमती और सै नदीके सङ्गम स्थानसे ११ मील पड़ता है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः ४२०७१ है। कहते हैं, १२वीं शताब्दीको कन्नौजके

वीरचन्द्रने जिस स्थान पर मन्दिर बनाया, वहां हो वर्तमान दुर्ग खड़ा है। १३५९ ई०को फीरोजशाह तुगलकने इसकी नींव डाली। फिर वहां सूबेदार रहने लगे। ख्वाजा जहान् नामक शासकने स्वाधीनताकी घोषणा करके विहारसे सम्भल और कोयल (अलीगढ़) तक राज्य बढ़ाया था। किन्तु अकबरने जब इलाहाबादको राजधानी बनाया तो जौनपुरने अपना राजनैतिक महत्त्व गवाया। जौनपुर इल्मके लिहाजसे उस समय हिन्दुस्तानका मुकुट कहलाता था।

जौनपुर एक प्राचीन नगर है। यह १३९४ से १४९३ ई० अर्थात् १०० सौ वर्ष तक बदाऊँ और इटावासे विहार पर्यन्त एक विस्तीर्ण सुसमृद्ध स्वाधीन मुसलमान राज्यकी राजधानी था। असंख्य प्राचीन मन्दिर, अट्टालिकायें, मसजिदें और उनके भग्नावशेष अभी भी विद्यमान रहनेसे स्थपतिविद्याका यथेष्ट परिचय देते हैं। ये सब मन्दिर जौनपुरके स्वाधीन पठान शर्कि राजाओंके समयमें बनाये गये हैं। इन्होंने जिस तरह बहुतसी मसजिदें स्थापित की हैं उसी तरह इधर उधर प्राचीन हिन्दू और बौद्धोंके असंख्य मन्दिर भी नष्ट किये हैं। यह स्पष्ट है, कि उन सब हिन्दू और बौद्ध मन्दिरोंका भग्नावशेष लेकर ही उन्होंके ऊपर मसजिद आदि बनाई गई हैं।

इस नगरका प्राचीन नाम क्या है इसका पूरा पूरा पता नहीं चलता। जौनपुरवासी ब्राह्मणोंका कहना है, कि इसका प्रकृत नाम जमदग्निपुर है। अभी भी यहांके सभी हिन्दू इसे जौनपुर न कह कर जमनपुर हो कहते हैं। मुसलमानोंका कहना है, कि जब कि फिरोज शाह इस स्थानको देखने आये थे, तब इन्होंने अपने भ्रातिभ्राता सुनान (महम्मद तुगलक) के सम्मानार्थ उन्हींके नाम पर इस स्थानका नाम जौनपुर रक्खा है। इस पर हिन्दू लोग कहते कि, इसका नाम जमनपुर था, बाद फिरोजको खुश करनेके लिए, इसी नामको परिवर्तन कर जौनपुर रक्खा गया। फिर किसी दूसरे सुचतुर व्यक्तिने कहा है कि शहर जौनपुर शब्दमें ७७२ संख्या मालूम पड़ती है। ठीक उसी संख्यक हिजरा शकमें (१३७० ई०में) फिरोज शाह जौनपुर आये हुए थे। जौनपुरका नाम भले ही जो कुछ हो; परन्तु यह फिरोजशाहके बहुत पहलेसे विद्यमान था। फेरिस्तामें लिखा है, कि जौनपुर (जमनपुर) दिल्लीसे बङ्गाल जानेके रास्ते पर अवस्थित है। जुमा मसजिदके दक्षिण द्वार पर सातवीं शताब्दीके शिलालेखमें मोखरि वंशके ईश्वरवर्माका नाम लिखा है, उससे प्रमाणित होता है, कि मुसलमानोंके बहुत पहले यहां एक सुसमृद्ध नगर था।

नदीतटस्थ दुर्गके विषयमें प्रवाद है, कि यहां करार नामक एक राक्षस रहता था। श्रीरामचन्द्रजीने उसका वध किया। अभी भी वहांके लोग इस दुर्गको करारका कहते और करार वीरको पूजा करते हैं। दुर्गके उत्तरमें करार वीरका एक मन्दिर है।

जौनपुरनगरमें शर्कि राजाओंसे निर्मित बहुतसी मसजिदें विद्यमान हैं। इनमेंसे हुसेन प्रतिष्ठित जुमा मसजिद सबसे बड़ी और मनोहर है। इसकी दीवार अन्यान्य मसजिदोंकी अपेक्षा बहुत ऊँची है। मसजिदोंका पत्थर देखनेसे मालूम पड़ता है कि यह किसी हिन्दू मन्दिरका अंश था। दूसरी दूसरी मसजिदोंमेंसे अटला मसजिद इब्राहीम शाहसे प्रतिष्ठित है। ८ शिलालेखों द्वारा मालूम हुआ है, कि फिरोजशाहने १३७६ ई०में अटला देवीके मन्दिरके ऊपर इस मसजिदका बनाना आरम्भ किया और १४०८ ई०में इब्राहीमने इसे पूरा किया था।

इब्राहीम-नायब बारबककी मसजिद—यह वर्त्तमान सब मसजिदोंसे पुरानी है। शिलालेखसे जाना जाता है कि यह १३७७ ई०में फिरोजशाहके भाई इब्राहीम-नायब बारबकसे बनाई गई है। इसकी गठन प्रणाली प्राचीन बङ्गीय स्थापत्यके समान है।

मसजिद-खालिस मुखलिस—उसे दरीबा और चरंगुली भी कहते हैं। यह विजयचन्द्र और जयचन्द्रके मन्दिरके ऊपर बनाई गई है।

नगरसे उत्तर-पश्चिम कुछ दूर बेगमगञ्ज नामक स्थानमें बीबी राजीकी मसजिद या लाल दरवाजा-मसजिद है। महमूद शाहकी बीबी राजीने इसकी प्रतिष्ठा की है।

नगरसे कुछ दूर पाचकपुर नामक स्थानमें इब्रा-

चीम प्रतिष्ठित अटालाकी मसजिदका कुछ अंश विद्यमान है।

इसके सिवा जौनपुरमें और भी बहुत सी मसजिद तथा समाधिस्थान आदि विद्यमान हैं। जिनमेंसे हाकिम सुलतान महम्मदकी मसजिद नवाब मसिन खाँकी मसजिद, शाह कबीरकी मसजिद, नवाब खाँकी मसजिद और सुलेमान शाहकी कब्र उल्लेखयोग्य है।

जौनपुरके निकट गोमतीके ऊपर एक प्रसिद्ध पत्थरका पुल है। यह ७१२ फुट लम्बा है और उसमें १६ गुम्बज लगे हुए हैं। मुगल राजाओंके समयमें जौनपुरके शासनकर्त्ता मुनीमखाँने १५६८-७१ ई०में इस पुलको बनाया था। पुलको तैयार करनेमें लगभग १० लाख रुपये खर्च हुए होंगे।

आज भी जौनपुर नगरमें अधिक वाणिज्य होता है। यहांके गुलाब, जुही आदिके फूलोंका अतर प्रसिद्ध है। पहले यहां कागज प्रस्तुत होता था, अभी उसके कागजकी प्रतिद्वन्द्वितासे यह व्यवसाय लुप्त हो गया है। गोमती नदीके दाहिने किनारे पर अदालत है। यहां जज और मजिष्ट्रेट रहते हैं। मिशन, डाकबङ्गला, कारागार और पुलिसस्टेशन है। जौनपुरकी नदीके दोनों किनारे अयोध्या-रोहिलखण्ड रेलवेके दो स्टेशन हैं। जिनमेंसे एक अदालतके निकट और दूसरा शहरके निकट है। यहां म्युनिसिपैलिटी भी है।

जौनसार बावर—युक्तप्रान्तके देहरादून जिलेकी चकराता तहसीलका परगना।

जौनाल (हिं० स्त्री०) रबीका खेत।

जौमर (सं० क्ली०) जुमरेण निर्वृत्तं जुमर-अण्। १ जुमरनन्दिकृत संक्षिप्तसार व्याकरण। (त्रि०) २ संक्षिप्तसार व्याकरणाध्यायी जो संक्षिप्तसार व्याकरण पढ़ते हों।

जौरा (हिं० पु०) १ नाऊ बारी आदि शूद्रोंको उनके कामके बदलेमें दिये जानेका अनाज। २ बड़ा रस्सा।

जौनाई (हिं० स्त्री०) जुन्हाई देखो।

जौनाल (हिं० पु०) प्रति चरखा बारह पैसे, जौ चरखा तौल भाना।

जौलायनक (सं० त्रि०) जुलस्य गोत्रापत्यं इञ् यञ् स्यात् फञ्, ततो भवम्। १ जुलका गोत्रापत्यविशेष। २ वह जिला जहां जौलायन रहते हैं।

जौशन (फा० पु०) एक प्रकारका आभूषण, जो बाहु पर पहना जाता है।

जौह्व (सं० त्रि०) जुहू अण्। अवदानयोग्य हृदयादि। हृदय, जिह्वा, क्रोड़, वक्ष, बाहु सव्य सक्थि, दोनों पार्श्व प्रभृति पशु समष्टिका नाम जौह्व है।

जौहर (फा० पु०) १ रत्न, बहुमूल्य पत्थर। २ तत्त्व, सारांश सार वस्तु। ३ सूक्ष्म चिह्न या धारियां जो तलवार या और किसी लोहेके धारदार हथियार पर रहती हैं। इनसे लोहेकी उत्तमता जानी जाती है, हथियार की ओप। ४ उत्कर्ष तारीफकी बात। ५ आत्महत्या, प्राणत्याग। ६ दुर्गमें राजपूत स्त्रियोंके जलनेके लिए बनाई हुई चिता।

* प्रबल शत्रुओं द्वारा आक्रान्त होने और पराजयकी सम्भावना देखने पर राजपूत प्रमुख जातिका आमो धर्म। पहले यह प्रथा राजपूतानाके सर्वत्र प्रचलित थी। जब वे विजयकी कोई आशा नहीं देखते, तब स्त्री पुत्रादिके चिता पर रख उन्हें प्रज्वलित अग्निकुण्डमें प्राण विसर्जन करनेको कहते थे। पीछे वे स्नान करते और अङ्ग पर चन्दन कुङ्कुम आदि विलेपन करके केशरिया वस्त्र और आपसमें आलिङ्गनादिके द्वारा विदाग्रहण कर उन्मत्तकी भांति रणक्षेत्रमें प्रवेश कर युद्ध करते हुए प्राण विसर्जन करते थे। इस प्रकारके जौहर कार्यसे बहुतसे नगर एक बारगी जनशून्य हो जाया करते थे। विजयियोंको युद्धके अन्तमें भस्मावशिष्ट नगरके सिवा और कुछ प्राप्त नहीं होता था। कर्नल टाड साहबने अपने "राजस्थान"में जयसलमेर, मेवाड़ आदि स्थानोंके लोमहर्षणकारी भीषण जौहरका विषय लिखा है। जयसलमेर जब शत्रुओं द्वारा घेर लिया गया, तब मूलराज और रत्नसिंहने अन्तःपुरमें जा कर धर्म और सम्भ्रमकी रक्षाके लिए रानियोंको शेष सुहाग ग्रहण करनेके लिए कहा। रानियां सहास्यमुखसे परस्पर आलिङ्गन करती हुई कहने लगीं— आज मर्त्यलोकमें हम लोगोंकी आखिरी मुलाकात है अब फिर स्वर्गमें जा कर मिलेंगी।" दूसरे दिन सुबह हो जौहर चितानल प्रज्वलित हुआ। नगरकी तमाम स्त्रियां और बच्चे आदि प्राय २४००० प्राणी जरासी देरमें न मालूम कहां विलीन हुए। किसीके

भी वदन पर भय वा अनिच्छाके लक्षण प्रगट नहीं हुए। चिताके धुएँसे गगनमण्डल ढक गया। उत्तप्त शोणित-स्रोतसे भूतल प्लावित हो गई। इसके साथ बहुमूल्य रत्नादि विलुप्त हो गये। वीरगण इस हृदयविदारक दृश्यको चुपचाप देखते रहे, उन्हें जीवन भार मालूम पड़ने लगा। पीछे स्नान करके पवित्र देहसे ईश्वरोपासनापूर्वक तुलसी और शालग्रामको कण्ठमें धारण कर और परस्पर आलिङ्गनपूर्वक क्रोधसे आरक्त हो ३८०० वीर पुरुष जीवनकी आशा पर जलाञ्जलि दे कर युद्धकी प्रतीक्षामें खड़े हुए। राजपूतानेके इतिहासमें ऐसी घटनाएँ विरल नहीं हैं। बहुत बार एक साथ एक एक जातिका लोप हुआ है, मेवाड़के इतिवृत्तमें इसके प्रमाण मिलते हैं।

विजेताके हाथ बन्दी होनेकी आशङ्का हो राजपूतोंको ऐसी प्रवृत्तिका कारण है। उनकी रमणियां विजेताके हाथ लगेंगी, इस घृणाकर दुरपनेय कलङ्ककी अपेक्षा वे मृत्युको शतगुण सुखकर समझते थे। इसीलिए नगरकी पराजय होते ही राजपूत रमणियां मरनेके लिए तयार हो जाती थीं। उस समयकी प्रचलित प्रथाके अनुसार युद्धमें विजयलब्ध रमणियां विजेताकी न्यायसङ्गत सम्पत्ति होती थीं। विजेता उनके प्रति यथेच्छ व्यवहार कर सकते थे। उनका धर्माधर्म सब कुछ विजेताकी इच्छाधीन था। बन्दिनी रमणियोंके प्रति सौजन्य प्रकट न करनेसे कोई दूषणीय नहीं होती थी। अतएव विजित महाभिमानी राजपूत अपरिहार्य और निश्चित अपमानके भीषण आतङ्कसे इस प्रकारके उत्कट अध्यवसायमें प्रवृत्त हों, इसमें आश्चर्य नहीं। अपनी कुलबालाओंके सतीत्वकी रक्षाके लिए एतादृश यत्नपर और चिन्तान्वित होने पर भी सुसभ्य वीरप्रकृति उदारचेता राजपूत विजित शत्रु-महिलाओंके सम्मान और धर्मरक्षार्थ तादृश यत्नवान् नहीं थे। ऐसा नहीं था कि, जब यवन लोग नगर अधिकार करते थे, तभी जौहर प्रथा कायम की जाती हो, किन्तु राजपूतगण अन्तर्विद्रोहके कारण राजपूतों द्वारा पराजित होने पर भी जौहर कायम करते थे।

अलाउद्दीन आदि बहुतसे मुसलमान विजेताओंने चितौर प्रभृति नगरों पर जय प्राप्त कर केवल भस्मावशेष जनशून्य स्थान मात्र पाया था। चीनवासी तातार और किसी किसी स्थानमें मुसलमान लोग भी इस भीषण प्रथाका अवलम्बन लेते हैं। १८३८ ई०में खिलात आक्रमणके समय शाहवासी नूरमहम्मद, शत्रुओं द्वारा नगर जीते जाने पर अपनी बेगमों तथा परिवारकी अन्यान्य स्त्रियोंको मार कर युद्धको निकले थे।

जौहर—बादशाह हुमायूंके एक पार्श्वचर। ये भृङ्गाके द्वारा बादशाह हुमायूंके हाथ धुलानेके लिए पानीका इन्तजाम करते थे। सर्वदा हुमायूंके पास रह कर ये हुमायूंको प्रत्येक कार्यावलीके विवरणों सहित एक जीवनी लिख गये हैं। परन्तु उसमें हुमायूंके गभीर राजनैतिक विषयोंका उल्लेख नहीं है।

जौहरी (फा० पु०) १ रत्न-व्यवसायी, जवाहरात बेचनेवाला। २ रत्न परखनेवाला, वह जो जवाहिरातकी पहचान रखता हो। ३ वह जो किसी वस्तुके गुणदोषकी पहचान करता हो। ४ गुणग्राहक, वह जो गुणका आदर करता हो, कद्रदान।

जौहरीलाल शाह—सम्मेदशिखिर पूजा और पद्मनन्दिप्रञ्चविंशतिका वचनिका नामक जैन ग्रन्थोंके रचयिता। रचनाकाल वि० संवत् १८१५ है।

जौहार—बम्बई प्रान्तके थाना जिलेका एक राज्य। यह अक्षा० १९° ४० एवं २०° ४' उ० और देशा० ७३° २ तथा ७३° २३ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ३१० वर्गमील है। बम्बई बरोदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे पश्चिम सीमासे लगी है। पहाड़ और जङ्गलकी कमी नहीं। १२० इञ्च तक वृष्टि होती है जलवायु अच्छा नहीं।

१२९४ ई० तक वारली वंशका राज्य रहा। पहले कोली राजा जयवने चरसे भर जमीन मांगी और फिर वे उसी सूत्रसे कितने ही देशों पर अधिकार कर बैठे। १३४३ ई०को जयवके उत्तराधिकारी नीम शाहको दिल्लीसे "राजा" उपाधि मिलने पर जो संवत् चला, उसे आज भी सरकारी कागजोंमें लिखते हैं। जौहारके राजाने मुगल सेनापतियोंसे मिल करके पोर्तगीजोंको लूटा था। पीछेसे मराठोंने आक्रमण करके इस करद

राज्य बना लिया। १८८० ई०में अंगरेजोंने राजाको मोद सौंपनेकी सनद दी। यह राज्य गवर्नमेण्टको कोई कर नहीं देता। लोकसंख्या प्रायः ४०११८ है। इसमें १०८ गांव बसते हैं। जौहार गांव अक्षा० १८ ५६´ उ० और देशा० ७१ ११´ पू०में है। इसीके नाम पर राज्यका यह नामकरण हुआ है। जौहार ग्रामकी जनसंख्या प्रायः ११६० है। जलवायु अच्छा और उष्ण है। राज्यकी आय १ लाख ७० हजार है। ५००००) रु० मालगुजारी आती है। फौज बिलकुल नहीं है।

ज्ञ (स० पु०) जानातीति ज्ञा-क। इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः। पा ३।१।१३५। १ ज्ञानी, जाननेवाला। २ ब्रह्मा। ३ बुध। ४ पण्डित। जो उत्तम अधम मध्यम प्रभृति किसी कार्यमें नहीं लिपटते, कार्य समूह देख कर जो भय नहीं खाते, अर्थात् जिन पर कोई काम आक्रमण नहीं कर सकता और जो कार्यातीत हैं वे ही ज्ञ हैं। "[illegible] प्रयुज्याद न कथ्यते ज्ञः।" (प्रश्नोत्तर रत्न०) इस जगत्में ऐसी कोई वस्तु देखनेमें नहीं आती जिसका प्रयोजन न हो। प्रतिपक्ष समस्त वस्तुओंका प्रयोजन पड़ता है। सर्वदा प्रयोजन होनेके कारण 'गच्छतीति जगत्' जगत्का नाम गतिशील अर्थात् कार्यशील पड़ा है। एकमात्र पुरुष या आत्माका कार्य नहीं है। इसलिये वह निष्क्रिय और निर्विकार कहा जाता है। सांख्यके मतमें ज्ञ ही पुरुषके अर्थमें व्यवहृत हुआ है। "व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्" (सांख्यकौ०) व्यक्त जगत्। अव्यक्त प्रकृति और ज्ञ पुरुष है। पुरुष देखो। प्रकृति पुरुष ज्ञान लेने पर सब कोई दुःखसागरसे उत्तीर्ण हो जाते हैं। ५ बुधग्रह। '[illegible] दायदा" ([illegible]) ६ मङ्गलग्रह। इस शब्दका स्वतन्त्र प्रयोग नहीं है, यह उपसर्ग या शब्दान्तरके साथ मिला रहता है। यथा—शास्त्रज्ञ, प्राज्ञ प्रभृति। ज्ञा क्विप्। ७ ज्ञान। ज्ञान देखो। ८ ज और ञ के योगसे बना हुआ संयुक्त अक्षर।

ज्ञक (स० त्रि०) ज्ञ स्वार्थे कन्। ज्ञाता, जाननेवाला।

ज्ञका (स० स्त्री०) ज्ञक टाप्। ज्ञाता।

ज्ञपित (सं० त्रि०) ज्ञा-णिच्-क्त। १ ज्ञापित, जाना हुआ। २ मारित, मारा हुआ। ३ तोषित, तुष्ट किया हुआ। ४ शाणित तेज किया हुआ, चोखा किया हुआ। ५ निशामित, जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गई हो। ६ आलोचित, देखा हुआ। मारण और तोषण प्रभृति अर्थमें ज्ञा धातुके मित्संज्ञा होता है, इसीलिये इस अर्थमें ज्ञप्त भी हो सकता है। ज्ञप-क्त। ७ ज्ञान।

ज्ञप्त (स० त्रि०) ज्ञप्यते इति ज्ञप-णिच्-क्त। ज्ञापित जाना हुआ। ज्ञपित देखो।

ज्ञप्ति (स० स्त्री०) ज्ञप क्तिन्। १ बुद्धि। २ मारण। ३ तोषण तुष्टि। ४ तीक्ष्णीकरण, तेज करनेकी क्रिया। ५ स्तुति। ६ विज्ञापन। ७ ज्ञा, जानकारी। ८ जतानेकी क्रिया।

ज्ञवार (स० पु०) बुधवार, बुधका दिन।

ज्ञा (स० स्त्री०) १ जानकारी। २ वनिताकी आज्ञा।

ज्ञात (स० त्रि०) ज्ञायते इति ज्ञा कर्मणि क्त। १ विदित जाना हुआ। इसके पर्याय—ज्ञातसार, बुद्ध, बुधित, मनित, मत, प्रतीत, अवगत, मन्ति और अवसित है। भावे क्त। २ ज्ञान।

ज्ञातक (स० त्रि०) ज्ञात स्वार्थे कन्। विदित, जाना हुआ।

ज्ञातनन्दन (स० पु०) ज्ञातेन बोधेन नन्दयति प्रीणयति ज्ञात नन्द ल्यु। अर्हदेव, जैनोंके अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामीका एक नाम।

ज्ञातपुत्र (स० पु०) ज्ञातनन्दन देखो। शास्त्रों मात्रमें इनका नाम ज्ञातपुत्र है। किसी किसी जैनोंका मत है कि ज्ञातवंशमें जन्म होनेके कारण इनका यह नाम पड़ा है। मज्झिमनिकाय नामक पालिग्रन्थके मतानुसार बुद्ध जब सामगामासमें इनको उपदेश कर रहे थे उस समय पावा(पुर) नगरमें ज्ञातपुत्रको मोक्ष हुई।

ज्ञातयौवना (स० स्त्री०) मुग्धा नायिकाका एक भेद। इसके दो भेद हैं—नवोढ़ा और विश्रब्ध-नवोढ़ा।

ज्ञातव (स० त्रि०) ज्ञातं अस्ति अस्य व। ज्ञानयुक्त, जिसको ज्ञान हो।

ज्ञातेय (स० पु०-स्त्री०) ज्ञातेरपत्यं ज्ञाति-ढक्। [illegible] पा ४।१।१२२। ज्ञातिकापत्य, ज्ञातिके समज।

ज्ञातव्य (सं० वि०) ज्ञायते यत् तत्, ज्ञातव्य। ज्ञेय, वेद्य, अवगन्तव्य, बोधगम्य। जो जाना जा सके, जिसे जानना हो वा जिसको जानना उचित है, वही ज्ञातव्य है। श्रुति आदि सम्पूर्ण शास्त्रोंमें विहित है कि—आत्मा ही एकमात्र ज्ञातव्य है। "आत्मा वा अरे ज्ञातव्यः ज्ञानविदर्शनेन व्यः" अरे आर्ये ! आत्माको ज्ञानका विषय करो, जिससे आत्मा ही एकमात्र लक्ष्य हो। आत्माको जान लेनेसे समस्त पदार्थोंका ज्ञान हो जायगा, क्योंकि जगत् आत्ममय है। एक वस्तुके जाननेसे जब समस्त वस्तुओंका ज्ञान होता है, तब उस एक वस्तुको छोड़ कर पृथक् पृथक् वस्तुओंको जाननेकी क्या आवश्यकता है ? वह एक वस्तु ही आत्मा है। अतएव आत्माके सिवा और कुछ भी ज्ञातव्य नहीं है।

ज्ञातसिद्धान्त (सं० पु०) ज्ञातः विदितः सिद्धान्तो येन, बहुव्री०। शास्त्रतत्त्वज्ञ, वह जो शास्त्र अच्छी तरह जानता हो।

ज्ञातसार (सं० पु०) ज्ञातः सारः सारांशो येन, बहुव्री०। १ सारज्ञ, वह जो किसी विषयका तत्त्व (सार) जानता हो। २ ज्ञानगोचर, जानकारी।

ज्ञाता (सं० वि०) जाननेवाला, जानकार।

ज्ञातृधर्मकथा (सं० स्त्री०) जैनियोंके प्रधान अङ्गोंमेंसे एक। जैनधर्म देखो।

ज्ञाति (सं० पु०) जानाति छिद्रं दोषं कुलस्थितिञ्च ज्ञा-क्तिच्। पितृवंशीय, एक ही गोत्र या वंशका मनुष्य। भाई बन्धु, बान्धव, गोती, सपिण्डक, समानोदक आदि। इसके पर्याय—सगोत्र, बान्धव, बन्धु, स्व, स्वजन, अंशक, गन्ध, दायाद, सकुल्य और समानोदक है। ज्ञातिके चार भेद हैं—सपिण्ड, सकुल्य, समानोदक और सगोत्रज। सात पुरुष तक सपिण्ड, सातसे दश पुरुष तक सकुल्य, दशसे चौदह पुरुष तक समानोदक माना गया है। किसी किसीके मतसे पूर्व पुरुषके जन्मनामस्मरण तक भी समानोदक है। इसके बाद सगोत्रज है।

ज्ञातिहिंसा अत्यन्त पापजनक है।

"यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
ज्ञातिद्रोहस्य पापस्य कलां नार्हन्ति षोडशीं॥" (ब्रह्मवैवर्त)

ज्ञातिहिंसा करनेसे जो पाप होता है, ब्रह्महत्या, सुरापान प्रभृति महापाप भी उसके १६ भागोंमेंसे एक भाग भी नहीं है। इसीलिये शास्त्रमें ज्ञातिहिंसा विशेष रूपसे निषिद्ध माना गया है। जन्म और मरणमें ज्ञातिका अशौच ग्रहण करना पड़ता है। अशौच देखो। ज्ञातिके मध्य चचेरे भाई सहजशत्रु माने गये हैं। ज्ञायते विद्यतेऽस्मात् अपादाने ज्ञा-क्तिन्। २ पिता, बाप।

ज्ञातिकार्य (सं० पु०) ज्ञातीनां कार्यं, ६-तत्। ज्ञातियोंका कर्त्तव्य कर्म।

ज्ञातित्व (सं० क्ली०) ज्ञाति भावे त्व। ज्ञातिके धर्म कर्म वा व्यवहार, बन्धुबान्धवोंको अनिष्ट चेष्टा।

ज्ञातिपुत्र (सं० पु०) ज्ञातीनां पुत्रः, ६-तत्। १ ज्ञातिका पुत्र, गोत्रजका लड़का। २ जैनतीर्थङ्कर महावीर स्वामीका नाम।

ज्ञातिभव (सं० पु०) सम्बन्ध, रिश्ता।

ज्ञातिभेद (सं० पु०) ज्ञातीनां भेदः ६ तत्। ज्ञातिविच्छेद, आपसकी फूट।

ज्ञातिमुख (सं० वि०) ज्ञातिः एव मुखं प्रधानं यस्य, बहुव्री०। १ ज्ञाति प्रधान। २ ज्ञातिके जैसा मुख या स्वभाव।

ज्ञातिविद् (सं० वि०) ज्ञातिं वेत्ति, ज्ञाति-विद्-क्विप्। ज्ञातिमन्त, जो नाता या रिश्ता जोड़ता है।

ज्ञातृ (सं० वि०) ज्ञा-तृच्। १ ज्ञानशील, जानकार। २ ज्ञानी, वेत्ता।

ज्ञातृत्व (सं० पु०) अभिज्ञाता, जानकारी।

ज्ञातेय (सं० क्ली०) ज्ञातेर्भावः, कर्मधा० ज्ञाति-ढक्। कपिज्ञात्योर्ढक्। पा ५।१।१२७। ज्ञातित्व, बांधवके धर्म, कर्म या व्यवहार।

ज्ञात्र (सं० क्ली०) ज्ञातेर्भावः ज्ञातृ-अण्। ज्ञातृत्व, अभिज्ञाता, जानकारी।

ज्ञान (सं० क्ली०) ज्ञा-भावे ल्युट्। १ बोध, प्रतीति, जानकारी। २ विशेष और सामान्य द्वारा अवरोध, जानना। ३ बुद्धिमात्र। वैशेषिक और न्यायदर्शनमें ज्ञानका विषय इस प्रकार लिखा है। बुद्धि शब्दसे ज्ञानका बोध होता है। ज्ञान दो प्रकारका है,—प्रमा और अप्रमा (भ्रम) जिसमें जो जो गुण और दोष हैं,

उसको उन उन गुण और दोषोंसे युक्त जाननेको अयथार्थ ज्ञान या भ्रम कहते हैं। जैसे—अज्ञानी व्यक्तिको पण्डित जानना, अन्धेको अन्धा जानना, इत्यादि। जिसमें जो गुण और जो दोष नहीं है। उसमें उन गुण और दोषों का मानना, अयथार्थ ज्ञान या भ्रम है। जैसे मूर्खको विद्वान् मानना, रस्सीको सर्प समझना इत्यादि। भ्रम या भ्रमका एक प्रधान कोई कारण नहीं है। जैसे—पित्ताधिक्यरूप दोष हो जानेपर अत्यन्त शुभ्र शङ्ख भी पीला दीखता है अतिदूरताके कारण बहुत बड़ा चन्द्र मण्डल भी छोटा दीखता है और मण्डूक की चालोंमें बने हुए अमृतके मसालेसे मांस भी सब मालूम होने लगता है। इस प्रकारके दोषों द्वारा जब भ्रम या भ्रम ज्ञान हो जाता है तब सहसा यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जबतक वह दोष दूर नहीं होते, तबतक भ्रम रहता है। (मानापरिच्छेद १२७) देखो, शङ्ख अत्यन्त शुभ्र होता है, पीला नहीं होता, ऐसे हजारों उपदेशोंके सुननेपर भी अर्थात् शङ्ख श्वेत है ऐसा निश्चय ज्ञान होने पर भी जब पित्ताधिक्य होता है, तब किसी तरह भी शङ्ख पीलेके सिवा श्वेत नहीं जान पड़ता। निश्चय और संशयके भेदसे ज्ञानको दो विभागोंमें विभक्त किया जा सकता है, जैसे—एक तो यह कि इस मकानमें मनुष्य है, और दूसरा यह कि इस मकानमें मनुष्य है या नहीं? इस प्रकारके ज्ञानोंको क्रमसे निश्चय और संशय कहा जा सकता है। संशय नाना कारणोंसे हो सकता है, कभी परस्पर विरुद्ध वाक्यरूप विप्रतिपत्ति वाक्यको सुनकर संशय होता है। जैसे—किसी समय घरमें आदमी है या नहीं इसको कोई निश्चयता नहीं उस समय यदि एक आदमी यह कहे कि "इस घरमें आदमी है" और एक कहे कि "नहीं इस घरमें आदमी नहीं है" तो घरमें आदमी है या नहीं इसका कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता। सिर्फ संशयात्मक ही होना पड़ता है। यह संशय कभी साधारण और कभी असाधारण धर्म दर्शन होने पर भी हुआ करता है। देखो, जब यह देखनेमें आता है कि, किसी घरमें लेखनी और पुस्तक दोनों ही हैं, और किसी घरमें सिर्फ लेखनी ही है, पुस्तक नहीं है तब यही स्पष्ट प्रतिपन्न होता कि लेखनी रहने पर पुस्तक भी रहेगी ऐसा कोई नियम नहीं है। लेखनी रहनेसे पुस्तक रहे तो रह सकती है, इसलिये लेखनी और पुस्तक तदभावको सहचरस्थ साधारण धर्म है। साधारण धर्मरूप लेखनीको देखकर कोई व्यक्ति निश्चय कर सकता है कि, इस घरमें पुस्तक है, साथहीमें उस लेखनीके देखनेसे ऐसा संशय भी हुआ करता है कि, इस जगह पुस्तक है या नहीं? तथा सन्दिग्ध वस्तु और तदभावके साथ जिस वस्तुका सदा अवस्थान पहले नहीं देखा गया है ऐसी अवस्थामें उन वस्तुके दर्शनको असाधारण धर्म दर्शन कहते हैं। जैसे नेवला रहनेसे सर्प रहता है या नहीं? जिस व्यक्तिको एकतरफकी निश्चयता नहीं वह व्यक्ति यदि नेवला देखे, तो उसको सर्प या तदभाव किसीका भी निश्चयज्ञान नहीं होता। सर्प है या नहीं, सिर्फ ऐसा संशय ही हुआ करता है। विशेष दर्शन होने पर संशयकी निवृत्ति होती है। विशेष पदसे जिस वस्तुका संशय होता है, उसके व्याप्यका बोध होता है। जिस पदार्थके न रहनेसे जो पदार्थ नहीं रह सकता, उसका व्याप्य वही पदार्थ होता है। जैसे—वह्निके बिना धूम नहीं हो सकता, इसलिये वह्निका व्याप्य धूम है। जबतक धूम न दिखनेमें आवे, तबतक वह्निका संशय रहता है, किन्तु धूम दृष्टिगोचर होने पर वह्निका संशय मिट जाता है, फिर निश्चयात्मक ज्ञान होता है।

ज्ञानाश्रिता बुद्धि अनुभव और स्मरणके भेदसे दो प्रकारकी है। सुख और दुःख यथाक्रमसे धर्म और अधर्म द्वारा उत्पन्न होते हैं। सुख समस्त प्राणियोंका अभिप्रेत है और दुःख अनभिप्रेत। आनन्द और चमत्कार आदिके भेदसे सुख, और क्रोध आदिके भेदसे दुःख नाना प्रकार के हैं। अभिलाषको ही इच्छा कहते हैं। सुखमें और दुःखाभावमें इच्छा उन उन पदार्थोंके ज्ञानसे ही उत्पन्न हुआ करती है। सुख और दुःखनिवृत्तिके साधनसे सुख साधनता-ज्ञान और दुःखनिवर्त्तकता ज्ञान होनेसे, अर्थात् इस वस्तुसे मुझे सुख होता है, और इस वस्तुसे मेरे दुःखों की निवृत्ति होगी, ऐसा ज्ञान होने पर यथाक्रमसे सुख और दुःखकी निवृत्तिके लिए इच्छा होती है। देखो, जो

व्यक्ति यह जानता है कि स्रक्चन्दनादि मेरे लिए सुखजनक हैं और औषधपान मेरे दुःखका नाशक है, उसीको उन विषयोंमें इच्छा होती हैं और जिसको ऐसा ज्ञान नहीं है उसको उन विषयोंमें कभी भी इच्छा नहीं होती। इष्ट साधनता ज्ञानकी भाँति चिकीर्षाके और भी दो कारण हैं। जैसे—कृतिसाध्यताज्ञान और बलवदनिष्ट-साधनताज्ञानका अभाव। इस विषयको मैं कर सकता हूँ, इस प्रकारके ज्ञानका नाम है कृतिसाध्यताज्ञान और इस विषयको करनेसे मेरा बड़ा अनिष्ट होगा, इस प्रकारके ज्ञानके अभावको बलवदनिष्टसाधनता-ज्ञानका अभाव कहते हैं। देखो, योगाभ्यास करना हमारे लिए कृतिसाध्य नहीं है, इस प्रकारका जिनको स्थिरनिश्चय हो चुका है वे कभी भी योगाभ्यासमें प्रवृत्त नहीं हो सकते। किन्तु योगाभ्यास सहजहीमें हो सकता है, योगियोंको ऐसा विश्वास होने पर ही वे योगसाधनमें रत हुआ करते हैं। जो व्यक्ति यह जानता है कि, यह फल सुमधुर अवश्य है, किन्तु सर्पदष्ट होनेसे महा विषाक्त हो गया है, इसलिए अब इसके खानेसे प्राण हानि होगी इसमें सन्देह नहीं' उस व्यक्तिको कभी भी उस फलके खानेमें प्रवृत्ति नहीं होती। परन्तु जिसको ऐसा ज्ञान नहीं है, उसको उसी समय उस फलके खानेसे प्रवृति होती है। (न्यायदर्शन)

ज्ञायते अनेन, ज्ञा-करणे. ल्युट्। ३ वेद। ४ शास्त्रादि वह जिसके द्वारा जाना जा सके।

विशेष—आत्माका मनके साथ मनका इन्द्रियके साथ और इन्द्रियका विषयके साथ सम्बन्ध होने पर ज्ञान होता है। समझ लो कि, एक घट रक्खा है दर्शनेन्द्रियने घटको विषय किया अर्थात् देखा, देख कर मनसे कहा, मनने फिर आत्माको जतलाया। तब आत्माको ज्ञान हुआ, आत्माने स्थिर किया कि यह एक घट है।

ज्ञान सामान्यको त्वङ्मानसयोग ही एक मात्र कारण है, विषयके साथ इन्द्रियका, इन्द्रियके साथ मनका, मनके साथ आत्माका सम्बन्ध इतना जल्दी होता है कि, उसको कह कर खतम नहीं किया जा सकता। एक आघातसे सौ पत्तोंमें छिद्र करनेसे, जैसे प्रत्येक पत्तेका छिद्र सिलसिले वार हो जाते हैं, किन्तु समयकी सूक्ष्मताके कारण उसका अनुभव नहीं होता, उसी प्रकार विषय, इन्द्रिय, मन और आत्माका सम्बन्ध क्रमसे होने पर भी उसका निर्णय नहीं किया जा सकता। मन अत्यन्त सूक्ष्म है इसलिए उसमें दो विषयोंका धारण करनेकी शक्ति नहीं है। (मुक्तावली)

मनु + अणु अर्थात् अति सूक्ष्म है, इसलिए ज्ञानका अयोगपद्य है, अर्थात् युगपट् कोई ज्ञान नहीं होता, चक्षुःसंयोग होते ही ज्ञान होता हो ऐसा नहीं। कल्पना करो कि, मन एक विषयकी चिन्ता कर रहा है, किन्तु दर्शनेन्द्रिय (चक्षु) ने एक विषय देखा, देखते ही क्या उसका ज्ञान होगा? नहीं, ऐसा नहीं होगा। क्योंकि दर्शनेन्द्रियमें ऐसी कोई शक्ति नहीं कि, जिससे वह ज्ञान उत्पन्न कर सके। हाँ दर्शनेन्द्रिय जा कर मनको संवाद दे सकती है। मन फिर आत्मासे युक्त होता है, पीछे ज्ञान होता है। (भाषाप०)

इसके विषयमें एक लौकिक दृष्टान्त देना ही यथेष्ट है। कल्पना करो कि, एक आदमी दूसरे एक आदमीसे मिलने गया है, किन्तु उसके घर जा कर देखता है तो द्वार पर द्वारपाल निरन्तर द्वार-रक्षा कर रहे हैं, वह द्वार पर बैठ गया और द्वारपालके जरिये उसने भीतर अपने आनेका संवाद भिजवाया, द्वारपालने जा कर दीवानसे कहा, दीवानने खुद जा कर मालिकसे कहा, मालिकको तब मालूम हुआ कि फलाना आदमी मुझसे मिलने आया है, इसी तरह चक्षुने जा कर मनको और मनने आत्माको संवाद दिया, तब कहीं आत्माको ज्ञान हुआ। प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शब्द इन चार प्रकारके प्रमाणोंसे सब तरहका ज्ञान होता है।

(भाषाप०)

चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा यथार्थरूपसे वस्तुओंका जो ज्ञान होता है, उसको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। यह प्रत्यक्ष ज्ञान ६ प्रकारका है—घ्राणज, रासन, चाक्षुष, त्वाच, श्रावण और मानस। घ्राण, रसना, चक्षुः, त्वक्, श्रोत्र और मन—इन छह ज्ञानेन्द्रियों द्वारा यथाक्रमसे उपरोक्त छह प्रकारका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। गन्ध और तद्गत सुरभित्वादि और असुरभित्वादि, जातिका

घ्राणज प्रत्यक्षात्मक ज्ञान होता है। मधुर आदि रस और तद्गत मधुरत्वादि जातिसे रासन नीलपीतादि रूप और उन रूपोंसे युक्त पदार्थोंकी नीलत्व पीतत्व आदि जाति तथा उन रूपविशिष्ट पदार्थोंको चक्षुसे चाक्षुष और उष्णादि स्पर्श और तादृश स्पर्शविशिष्ट द्रव्यादिसे त्वाच, शब्द और तद्गत शब्दत्व ध्वनित्व आदि जातिसे श्रावण तथा सुख और दुःखादि आत्मवृत्ति गुणसे अथवा और सुखत्वादि जातिसे मानस प्रत्यक्षात्मक ज्ञान होता है।

व्याप्य पदार्थको देख कर व्यापक पदार्थका जो ज्ञान होता है, उसको अनुमितिज्ञान कहते हैं। जिस पदार्थके रहनेसे जिस पदार्थका अभाव नहीं रहता, उसको उसका व्यापक कहते हैं। जैसे—किसी जगह भी अग्निके बिना धूआं नहीं रह सकता इसलिए धूआं अग्निका व्याप्य है और जिस जगह धूआं नहीं होता वहां अग्निका अभाव नहीं है इसलिए अग्नि धूमका व्यापक है। अतएव लोगोंको पर्वत आदि पर धूम देख कर वह्निका अनुमानात्मक ज्ञान होता है। यह अनुमानात्मक ज्ञान तीन प्रकारका है—पूर्ववत् शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट। कारणदर्शनसे कार्यके अनुमानको पूर्ववत् अर्थात् कारणलिङ्गक ज्ञान कहते हैं। जैसे—मेघकी उन्नतिको देख कर वृष्टिका अनुमानात्मक ज्ञान। कार्यको देख कर कारणके अनुमानको शेषवत् अर्थात् कार्यलिङ्गक ज्ञान कहते हैं। जैसे—नदीको परिपूर्ण वृद्धिको देख कर वृष्टिका अनुमानात्मक ज्ञान। कारण और कार्यको छोड़ कर केवल व्याप्य वस्तुको देख कर जो अनुमानात्मक ज्ञान होता है, उसे सामान्यतोदृष्ट ज्ञान कहते हैं। जैसे—गगनमण्डलमें सम्पूर्ण चन्द्रको देख कर शुक्लपक्षका ज्ञान। क्रियाको कारण बना कर गुणका अनुमान पृथिवीत्व जातिको हेतु बना कर द्रव्यत्वजातिका ज्ञान इत्यादि। किसी किसी शब्दके किसी किसी अर्थमें शक्तिपरिच्छेदको उपमितिज्ञान कहते हैं। जैसे—किसी व्यक्तिने पहले कभी गवय नहीं देखा, किन्तु सुना है कि गो सदृश गवय है (अर्थात् जिसकी आकृति गौके समान है उसको गवय कहते हैं) वह व्यक्ति उस समय इतना जानेगा कि जो पशु गो सदृश होगा गवय शब्दसे उसीको समझना चाहिये। जिसको यह नहीं मालूम कि गवय शब्दसे गवय पशुका बोध होता है किन्तु जब उसके दृष्टिपथमें गवय आता है, तब वह उसकी आकृतिको गो सदृश देख कर तथा पूर्वश्रुत गो सदृश गवय है, इस वाक्यका स्मरण कर समझेगा कि, यही गवय है इस प्रकारके गवयशब्दके शक्तिपरिच्छेदको उपमिति-ज्ञान कहा जा सकता है।

शब्दसे जो ज्ञान होता है, उसको शाब्दज्ञान कहते हैं। जैसे—गुरुके उपदेश वाक्यको सुनकर छात्रोंको उपदिष्ट अर्थका शाब्दज्ञान होता है। यह शाब्दज्ञान दो प्रकारका है एक दृष्टार्थक और दूसरा अदृष्टार्थक। जिस शब्दका अर्थ प्रत्यक्षसिद्ध है उसको दृष्टार्थक और जिसका अर्थ अदृश्य है, उसको अदृष्टार्थक कहते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है - 'तुम मेरे हो' 'तुम्हारी पुस्तक बहुत अच्छी है' इत्यादि प्रत्यक्षसिद्धज्ञानको दृष्टार्थक शाब्दज्ञान कहते हैं, और 'यज्ञ करनेसे स्वर्ग मिलता है' 'विष्णुपूजा करनेसे विष्णुकी प्रीति होती है' इत्यादि विधिवाक्य और वेदवाक्य आदिके अदृष्टार्थक शाब्दज्ञान हैं ये सब इन ज्ञानोंके अन्तर्गत हैं। (न्याय दर्शन) प्रमाण देखो।

वेदान्तके मतसे ब्रह्म स्वयं ज्ञानस्वरूप है, यद्यपि घट ज्ञानसे पटज्ञान भिन्न है और तुम्हारा ज्ञान मेरे ज्ञानसे भिन्न है, इस प्रकारके भेद व्यवहारको देखकर ज्ञानका नानात्व ही स्पष्ट प्रतिपन्न होता है और जो ज्ञानकी ब्रह्मस्वरूपता वा समस्त ज्ञानको ऐक्यसाधक कोई युक्ति आपाततः दृष्टिगोचर नहीं होती किन्तु तो भी विवेक-बुद्धिसे देखा जाय तो मालूम होगा कि विषयस्वरूप उपाधिके नानात्व कारण ही ज्ञानके नानात्वका भ्रम होता है। वास्तवमें ज्ञान नाना नहीं, एक ही है। जिस प्रकार एक ही मुख तेलमें प्रतिबिम्बित होने पर एक प्रकारका और जलमें प्रतिबिम्बित होने पर दूसरे प्रकारका देखने लगता है, पर वास्तवमें मुखमें कुछ भेद नहीं जल और तेल ही पृथक् ज्ञानके प्रतिकारण हैं उसी प्रकार उपाधिकी विभिन्नता होनेसे ज्ञानमें विभिन्नताकी प्रतीति होती है।

ज्ञान भिन्न नहीं है। जब जिसकी अन्तःकरण-वृत्तिके द्वारा विषयका आवरणस्वरूप अज्ञान नष्ट होकर ज्ञानके द्वारा विषय प्रकाशमान होता है तब ही उसमें ज्ञान कहा जा सकता है, और जब ऐसा नहीं होता है, तब वह ज्ञान भी नहीं कहलाता। अतएव ज्ञान एक होने पर भी तुम्हारा ज्ञान 'मेरा ज्ञान' इत्यादि भेद व्यवहारमें बाधक क्या है? बल्कि ज्ञानके ऐक्यसाधक प्रमाण ही अधिक मिलते हैं। एक प्रमाण दिया जाता है। देखो, जिस वस्तुके साथ जिस वस्तुका वास्तविक भेद होता है, उसमें उपाधिके छूट जाने पर भी भेद-व्यवहार हुआ करता है। जैसे घट और पटमें वास्तविक भेद रहनेके कारण घट और पटकी उपाधि छूट जाने पर भी भेद-व्यवहारका बोध नहीं होता। अतएव यदि घटज्ञान और पटज्ञानमें पारस्परिक भेद होता, तो उस ज्ञानमें निःसन्देह यथाक्रमसे घट और पटरूप दोनों उपाधियोंके छूट जाने पर भी भेदव्यवहार होता। परन्तु जब घटज्ञान और पटज्ञानकी घटपटरूप उपाधियोंको छोड़ कर "ज्ञान ज्ञानसे भिन्न है।" इस प्रकारके भेदव्यवहारको कोई भी नहीं मानता, तब उस प्रकारके ज्ञानके वास्तविक भेद कैसे हो सकते हैं? वरन उन उन ज्ञानोंकी घटपटरूप उपाधियोंसे ही सिद्ध होता है, जब कि ज्ञानका विषय घट है और पटज्ञानका विषय पट, तब घटज्ञानसे पट-ज्ञान भिन्न है, इस प्रकारका भेदज्ञान होता है, इसलिये वैसे ज्ञानका उपाधिक भेदमात्र है, यही सिद्ध होता है। यह भिन्नज्ञानका वास्तविक परस्पर भेदसाधक कोई प्रमाण वा युक्ति नहीं है। वरन ऐक्यप्रतिपादकके श्रुति और स्मृतिमें अनेक प्रमाण मिलते हैं और भी देखा जाता है कि, जब घटज्ञान भी ज्ञान है और पट ज्ञान भी ज्ञान है, तब फिर ज्ञानमें विभिन्नताका होना किसी तरह भी सम्भव नहीं हो सकता। अतएव स्थिर हुआ कि, सर्वविषयक सर्व व्यक्तियोंका ज्ञान एक है, भिन्न नहीं। इस ज्ञानके नामान्तर चैतन्य और आत्मा है। (वेदान्त)

सांख्यमतके अनुसार बुद्धि जब अर्थाकारमें (अर्थात् वस्तुस्वरूपमें) परिणत हो कर आत्मामें प्रतिविम्बित होती है, तब ज्ञान होता है। एक पदार्थ पर चक्षुका संयोग हुआ, पीछे दर्शनेन्द्रिय (चक्षुः) ने आलोचना करके उसे मनको दिया, मनने सङ्कल्प करके अहङ्कारको दिया, अहङ्कारने अभिमान करके बुद्धिको दिया, बुद्धि अध्यवसाय करके (अर्थात् तदाकारमें परिणत हो कर) प्रतिविम्बरूपमें आत्माके पास उपस्थित हुई फिर वहीं आत्माको प्रतिविम्बरूपमें ज्ञान हुआ।

इन्द्रियका आलोचन, मनका सङ्कल्प, अहङ्कारका अभिमान, बुद्धिका अध्यवसाय ये चारों युगपत् वा एक साथ होते हैं। (तत्त्वकौमुदी० ३०)

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके स्वरूपको जाननेको वास्तवमें ज्ञान कहा जा सकता है। इस ज्ञानके होने पर मनुष्य समस्त दुःखोंसे उत्तीर्ण हो जाता है। (आत्मदर्शन)

गीतामें ज्ञानका विषय इस प्रकार लिखा है—अमानिता, अदम्भता, अहिंसा, क्षमा, सरलता, आचार्योपासना, शौच, स्थैर्य, इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह, भोग-वैराग्य अनहङ्कार, इस संसारके जन्म, मृत्यु ज्वर, व्याधि, दुःखादि दोषोंको देखना, पुत्र दारा, गृहादि विषयोंमें अनासक्ति, अनभिष्वङ्ग, इष्ट वा अनिष्ट घटनाके होने पर उसमें सर्वदा समज्ञान, जीवात्माको अभिन्न-भावसे देख कर आत्मामें (ईश्वरमें) अटल भक्ति, निर्जन देशसेवा, जनतामें विरक्ति, नित्य अध्यात्मज्ञान सेवा, नित्यानित्य वस्तुविवेक, जीवात्मा-परमात्मामें अभेद ज्ञान—ये सब ही ज्ञान हैं, और जो इससे विपरीत है उसका नाम अज्ञान है। (गीता १३ अ० ६ १३)

यह ज्ञान तीन प्रकारका है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक।

जिस ज्ञानके द्वारा विभिन्नाकार प्रतीयमान निखिल जगत्की केवलमात्र एक अद्वितीय अविभक्त और परिवर्तनीय सत्ता वा चित्स्वरूप आत्मा ही परिलक्ष होती है, और कोई पदार्थ देखनेमें नहीं आता, वह ज्ञान ही सात्त्विक ज्ञान है। इस ज्ञानके होते ही मुक्ति होती है।

(गीता १८।२०)

जिस ज्ञानके द्वारा प्रत्येक देहमें विभिन्न गुण और विभिन्नधर्मविशिष्ट पृथक् पृथक् आत्मा देखनेमें आती है। उस ज्ञानको राजस ज्ञान कहा जा सकता है।

(गीता १८।२१)

इस राजसिक ज्ञानके रहते हुए मुक्ति नहीं हो सकती तथा असम्यक् ज्ञान होता है।

जो ज्ञान अनेक देहोंको लक्ष्य करता है, आत्मा, इन्द्रिय मन आदि समस्त असत्य पदार्थोंको देह या दैहिक वस्तु समझता है जिस ज्ञानमें किसी प्रकारका हेतु या युक्ति नहीं है जो तत्त्वार्थका प्रकाशक नहीं है जो अत्यन्त तुच्छ अर्थात् किसी विषयके अभ्यन्तरप्रदेश तकको प्रकाशित न कर केवल बाहरके कुछ अंशोंको प्रकट करता है उस ज्ञानको तामसिक कहते हैं।

(गीता १८।२२)

पाश्चात्य विद्वानोंका कहना है कि, मानवका मन ज्ञान, चिन्ता और वासनामय है। कभी हम किसी विषयका ज्ञान प्राप्त करते हैं, किसी समय मानसिक वृत्तिविशेष द्वारा परिचालित होते हैं और किसी समय हम किसी वस्तु व विषयकी अभिलाषा करते हैं। किन्तु मनकी ये तीन क्रियाएं विभिन्न होने पर भी इनमें परस्पर सम्बन्ध है। जिस विषयको हम जानते नहीं, उस विषयकी हम अभिलाषा नहीं कर सकते, अथवा उस विषयमें हम किसी तरहकी चिन्ता नहीं कर सकते। और जिस विषयमें हम किसी तरहकी चिन्ता नहीं करते, उस विषयमें हमें किसी तरह ज्ञानलाभ भी नहीं होता। इच्छा न होने पर हम किसी विषयकी चिन्ता भी नहीं करते और न हमें किसी विषयका ज्ञान प्राप्त ही होता है।

वस्तुतः इन तीन प्रक्रियाओंके समन्वयसे हम ज्ञान लाभ करते हैं। इनमें एक ऐक्यकी अभिव्यक्ति है।

ज्ञानलाभकी प्रथम क्रिया किसी वस्तुके देखने या उसके विषयकी चिन्ता करने पर इन्द्रियकी प्रक्रिया के कारण हमारे मानसिक भावान्तर उपस्थित होता है। इन्द्रियकी प्रक्रियाके कारण जो विविध अनुभूति उपस्थित होती हैं उनमें कुछ विसदृश हैं। पहले हमने किसी वस्तु या व्यक्तिके विषयमें जैसा ज्ञान प्राप्त किया है उस वस्तु या व्यक्तिके साथ यदि वर्तमानमें सामञ्जस्य देखें तो हमें ये दोनों एक ही है ऐसा ज्ञान हो जाता है। एकके साथ यदि दूसरेका मेल न मिले तो दोनोंको हम भिन्न समझते हैं। एक हम विविध इन्द्रियके बोध एक तरह ओतप्रोतभावसे सम्मिलित होते हैं। अतएव स्वतः मानसिक संयोग और वियोग प्रक्रियाके द्वारा हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। परन्तु केवलमात्र संयोग और वियोग प्रक्रिया या सम्मेलन और विश्लेषण द्वारा ज्ञान लाभ नहीं होता। वास्तविक ज्ञानलाभके लिये स्मृति या संस्कारशक्तिकी आवश्यकता है। स्मृतिशक्ति द्वारा हमारे पूर्व संस्कार मनमें जाग उठते हैं। बाह्येन्द्रियके द्वारा हम जिसका ज्ञान प्राप्त करते हैं वही स्मृतिशक्ति द्वारा उसको मनमें टिका रखते हैं। बहुत दिन बाद हम किसी परिचित व्यक्तिको देख कर उसे पहचान लेते हैं। यह ज्ञान हमें किस तरह प्राप्त होता है? पहले उस व्यक्तिको देख कर हमारे मनमें एक संस्कार जमगया था जो इतने दिनों तक अचेतन था। अब उस व्यक्तिको देख कर एक प्रकारका इन्द्रियबोध हुआ। स्मृतिशक्ति द्वारा पूर्व संस्कार चेतन हो उठा। इन दोनों संस्कारोंमें सामञ्जस्य होनेसे हम पूर्व परिचित व्यक्तिको पहचान गये। यह स्मृतिशक्ति तथा साहचर्य-प्रक्रिया स्वयं कुछ भी ज्ञान नहीं है। ये सिर्फ ज्ञानलाभके उपाय हैं।

हमारी इन्द्रियां विभिन्न प्रकारसे परिचालित होती हैं विभिन्न परिचालनाएं ऐन्द्रिक संयोगके द्वारा सामञ्जस्यको प्राप्त होती हैं। इस समावस्थाके साथ ज्ञान का सम्बन्ध है। संयोगके बिना ज्ञान नहीं होता।

हमारे शरीरमें दो प्रकारके स्नायु हैं। ज्ञानोत्पादक स्नायुके द्वारा हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। ज्ञानोत्पादक स्नायुके बाह्य अंश जब किसी कारणवश उत्तेजित होते हैं, तब वह उत्तेजना मस्तिष्कमें प्रवाहित होती है और उससे हमें इन्द्रियज्ञान होता है। चक्षुपर आलोकके प्रतिफलित होनेसे चित्रपट उत्तेजित हो उठता है और उसी समयमें वह उत्तेजना मस्तिष्कमें परिचालित होकर एक प्रकारका इन्द्रियज्ञान उत्पन्न करती है। किन्तु हमें सब तरहके इन्द्रियज्ञानके लिए बाह्यशक्तिकी आवश्यकता नहीं होती। बाह्येन्द्रियजनित ज्ञानके लिए बाह्य शक्ति की आवश्यकता है। क्षुधा तृष्णा आदिका ज्ञान शरीरकी आभ्यन्तर प्रक्रिया और परिवर्तनके कारण उत्पन्न होता है।

सब समय हमको परिस्फुट इन्द्रियज्ञान नहीं होता।

कोई कोई कहते हैं, कि स्नायुके बहिरांशका अच्छी तरह उत्तेजित न होना ही इसका कारण है। और किसी किसीका यह कहना है कि, आत्माके चेतनाशमें जो नहीं जाता, वह ज्ञानही अपरिस्फुट रहता है। किसी विषयमें जो हमको इन्द्रियबोध होता है, वह अपरिस्फुटभावसे हमारे मनमें कुछ दिनोंतक विद्यमान रहता है। ऐसा न होता तो अन्य इन्द्रियज्ञानके साथ उसकी तुलना कैसे कर सकते हैं?

ज्ञानलाभका प्रधान उपाय मनोनिवेश वा उपयोग है। कोई भी विषय क्यों न हो, जबतक हमारा मन संयत न होगा, तब तक हम किसी तरह भी उस विषयमें ज्ञान लाभ नहीं कर सकते। क्योंकि मनोयोगके बिना हमारी इन्द्रियोंकी प्रक्रियाएं आश्लिष्ट वा विश्लिष्ट नहीं हो सकतीं तथा आश्लेषण और विश्लेषणके बिना ज्ञान लाभ नहीं होता। मनोयोगके बिना शारीरिक वा मानसिक क्रियाओंका स्थायित्व नहीं होता, अतः उनकी धारणा न होनेके कारण हम उनकी प्रकृतिको नहीं जान सकते। एक ज्ञानमयी महाशक्ति निखिल ब्रह्माण्डमें परिव्याप्त है। स्नायविक उत्तेजना और कम्पनके कारण जो अस्फुट इन्द्रियबोध होता है, उसके मानसिक संस्कारको साधारणतः मनोयोग कहते हैं। यह उत्तेजना बाह्य वस्तुके संश्रव वा मानसिक अनुध्यान दोनोंसे ही उत्पन्न हो सकती है। मनोनिवेशके द्वारा इन्द्रियगम्भीरताकी वृद्धि होती है, उन सबकी आलोचना करके हम विषय विशेषमें ज्ञानलाभ कर सकते हैं। हमारा ज्ञान परिणतशील है, हम क्रम क्रमसे कठिनसे कठिन विषयमें ज्ञानलाभ करते हैं। यह तीन प्रक्रियाओंके द्वारा संशोधित होता है—१ स्वाभाविक ऐन्द्रिकसंस्कार २ मानसिक चित्र और ३ चिन्ता।

१) विविध इन्द्रिय प्रक्रियाओंके आश्लिष्ट और विश्लिष्ट होने पर मनमें एक प्रकारका भाव उत्पन्न होता है। वह ही प्रथम प्रक्रिया है। जिस लड़केने कभी दूध नहीं देखा, वह अकस्मात् दूधको देखकर पहचान नहीं सकता। जब वह उसका आस्वादन स्पर्शन और दर्शन करता है, तब उसके भिन्न भिन्न प्रक्रियाएं उत्पन्न होती हैं। इसे सामञ्जस्य होनेपर वह दूधको जाननेमें समर्थ हो सकता है। यथार्थमें देखा जाय तो यही वास्तविक ज्ञानलाभकी प्रथमावस्था है।

२। इन्द्रिय बोधके परिस्फुट होनेसे हम मनमें जो इन्द्रिय गोचरीभूत विषयकी प्रतिमूर्ति कल्पना करते हैं, उसको मानसिक चित्र कहते हैं। मनोनिवेशके द्वारा जब विविध इन्द्रिय-प्रक्रियाएं मनमें दृढतासे अङ्कित हो जाती हैं, तब मानसिक चित्र गठित हो सकता है, मानसिक चित्र और इन्द्रियज्ञान ये दोनों भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। मानसिक चित्रगठनमें स्मृतिशक्तिकी कार्यकारिता देखी जाती है। जिस लड़केने पहिले घंटेकी आवाज सुनी है, वह पीछे भी घंटाका शब्द सुन कर उसका अनुमान कर सकता है कि, यह घंटेका शब्द है।

३। चिन्ता। चिन्ताके द्वारा ही हम यथार्थ युक्तिसङ्गत ज्ञान लाभ करते हैं। हमारे विविध प्रकारके मानसिक चित्रोंकी तुलना करके हम इस अवस्थामें उपस्थित हो सकते हैं, इस जगह भी मनोनिवेशकी क्रिया अत्यन्त प्रबल है। विशेष मनोयोगके बिना हम एक चित्रके साथ दूसरे चित्रकी यथार्थ तुलना नहीं कर सकते और इसलिए यथार्थ ज्ञानलाभ भी नहीं कर सकते। केवलमात्र कुछ भिन्न भिन्न मानसिक चित्रोंकी कल्पना करनेसे ही ज्ञानलाभ नहीं होता।

अतएव देखा जाता है कि, इन्द्रिय परिचालनाके कारण जो मानसिक भावान्तर उपस्थित होता है, वह ज्ञान नहीं है। इस भावान्तरोंका आश्लेषण और विश्लेषण होनेसे कुछ ज्ञान प्राप्त होता है, कारण यह है कि तब कोई वस्तु व्यक्ति वा भाव, यथार्थमें इन्द्रियके गोचरीभूत होते हैं। इन्द्रियको उत्तेजना वा परिचालनाके कारण हमारे मनमें जो भावान्तर होता है अथवा मनमें हम जिन गुणों या भावोंका अनुमान करते हैं, उसी समय हम उन गुणों वा भावोंके अस्तित्वको भी अन्य वस्तुमें कल्पना कर लेते हैं। हम किसी घंटेकी आवाज सुन कर मनमें उस शब्दका अनुमान करते हैं और यह समझते हैं कि, उसी समय वह शब्द घंटेसे उत्पन्न हो रहा है। इसी तरह हम उस शब्दको गोचरीभूत करते हैं। कोई कोई कहते हैं कि, वस्तुके साथ इन्द्रियबोध संबद्ध होने पर भी शीघ्र ज्ञान नहीं होता। यह बहु-

इन्द्रिय और मिथ्याका फल तो है ही, कुछ कुछ संस्कार जात भी है। इस प्रकारके व्यक्तिगत बहुदर्शिताके द्वारा परिपक्व और व्याप्त होने पर हम ओतप्रोत भावसे ऐन्द्रियिक प्रक्रियाओंको इन्द्रियविषयीभूत कर सकते हैं।

व्यक्तिगत अभिज्ञताके सिवा कल्पना वा अनुमानकी सहायतासे भी हम अनेक विषयोंमें ज्ञान लाभ करते हैं। हम दूसरेकी बातको सुन कर एक प्रकारके मानसिक चित्रकी कल्पना करते हैं। विविध चित्रोंका समावेश होने पर उनको आदिष्ट और निर्दिष्ट कर हम एक प्रकारके नवीन चित्रकी कल्पना कर सकते हैं। इस तरहसे हम नवीन ज्ञानलाभ किया करते हैं। जिसमें उद्भावनी शक्ति जितनी अधिक है उसका ज्ञान भी उतना ही अधिक है। उद्भावनी शक्तिके साथ कल्पनाशक्ति संसृष्ट है। यथार्थमें बुद्धिप्रसूत चिन्ताशक्तिके न होनेसे परिष्कार ज्ञानलाभ नहीं होता। किन्तु उद्भावनी शक्ति यदि अत्यधिक प्रयोजित हो तो वह यथार्थ ज्ञानलाभका उपाय नहीं होती बल्कि ज्ञानका अन्तराय स्वरूप हो जाती है।

ज्ञानके साथ विश्वासका कुछ सम्बन्ध है, किन्तु ज्ञान अधिकतर निश्चित होता है। साधारण विश्वास न्यायसङ्गत विचारके द्वारा ज्ञानरूपमें परिणत होता है। मनुष्योंके मनके भाव वा मानसचित्र एकसे नहीं होते सबके भावोंको महत और सूक्ष्मरूपसे तुलना कर हम ऐसा ज्ञान लाभ कर सकते हैं। परन्तु ज्ञान जितना विस्तृत हो सकता है विश्वास उतना व्यापक नहीं है। ज्ञान कहनेसे विश्वास और उसके साथ साथ और भी कुछ समझा जाता है, विश्वासकी अपेक्षा ज्ञान अधिकतर निश्चित है। जो विश्वास न्यायानुगत विचारके द्वारा बद्धमूल हुआ है उस विश्वासको ज्ञान कहा जा सकता है। यथार्थमें इन्द्रिय परिचालना और चिन्ता वा बुद्धिके द्वारा ज्ञानलाभ होता है। प्रथम उपायलब्धज्ञान विशेष विशेष विषयोंका अस्तित्व वा नास्तित्व प्रकट करता है, २य उपायके द्वारा अपरिवर्त्तनीय कारणमूलक ज्ञान परिस्फुट होता है।

परन्तु इस तरहके ज्ञानलाभकी उत्पत्तिके विषयमें अनेक मतभेद पाया जाता है। कोई कोई कहते हैं— जगदीश्वरने हमारे मनमें एक एक भाव निहित किये हैं। हम होते ही उन भावोंमें स्फूर्ति नहीं आती हमारी अभिज्ञताके साथ वे स्फुट होते रहते हैं और उन्हींके जरिये हमें ज्ञान प्राप्त होता है। और कोई कोई यह कहते हैं कि हम जन्मसे पैत्रिक संस्कार प्राप्त करते हैं वे ही संस्कार स्फूर्तिप्राप्त हो कर ज्ञान उत्पन्न करते हैं।

मि॰ काण्ट (Kant) कहते हैं कि अविच्छिन्न इन्द्रिय बोधके समवायके कारण अभिज्ञता उत्पन्न होती है। किसी इन्द्रियगोचरीभूत विषयका पुनः पुनः अनुधावन करनेसे हम उसको अच्छी तरह जान सकते हैं। इस अभिज्ञताके साथ हमारे सब तरहके ज्ञानोंका आरम्भ होता है पर सभी ज्ञान अभिज्ञतामूलक नहीं है। पहले हमें जिसकी उपलब्धि नहीं हुई, उस विषयमें हमारा ज्ञान नहीं हो सकता ऐसा नहीं। ऐन्द्रियज्ञान चिन्ताशक्तिके द्वारा अभिज्ञतामें परिणत होता है। अभिज्ञतासे हम किसी भी पदार्थकी वर्त्तमान अवस्थाको जान सकते हैं। किन्तु—कैसा होना चाहिये कैसा न होना चाहिये इसका अभिज्ञतासे निर्णय नहीं होता। जो ज्ञान अभिज्ञताका सापेक्ष नहीं है वह वस्तुतः यथार्थ है, कारणमूलक है वही ज्ञान सबका प्रमाणसिद्ध गुणविशिष्ट है। ह्विवेल्क कहते हैं कि, यह ज्ञान औरोंकी अपेक्षा भ्रमप्रमादशून्य है।

हम किसी किसी विषयमें ओतप्रोतभावसे ज्ञानलाभ करते हैं। यह ज्ञान कार्यकारणमूलक और निर्देशक मूलक विचारसिद्ध है। गणित प्राकृतविज्ञान और मनोविज्ञानके विषयमें हम उस प्रकारसे ज्ञान प्राप्त करते हैं। मि॰ काण्टका कहना है कि हमारा गणितसम्बन्धी ज्ञान विश्लेषणसिद्ध है; किन्तु गणितका किसी विषयका गुणसम्बन्धी ज्ञान हमें कार्यकारण द्वारा प्राप्त होता है।

बाह्य वस्तुका ज्ञान किस तरह उत्पन्न होता है? काण्ट कहते हैं कि किसी वस्तुओंको हम जिस तरह देखते हैं और जिसे आकारको हम मनमें धारणा करते हैं वह ठीक नहीं है तथा जैसा दीखता है, उसका

यथार्थ प्रकृतिका संस्रव भी वैसा नहीं है। यदि हम प्रमातृभावका सङ्कुचित करके अस्फुट रक्खें, तो वस्तुकी स्थिति, और कालादिके विषयका ज्ञान सब कुछ दूर हो जाता है, हमारे मनके निरपेक्षभावोंमें किसी तरहका दृश्य नहीं रह सकता। कैसे भी धर्माक्रान्त पदार्थ क्यों न हो इन्द्रियविषयीभूत न होने पर हम सभी पदार्थोंसे अपरिचित रहते हैं। अतएव बाह्य वस्तु और और कुछ नहीं-हमारे ऐन्द्रियज्ञानसम्भूत मानसिक चित्र विशेष हैं हमारे ऐन्द्रियज्ञानके उत्पन्न होनेसे मानसिक सज्ञानता उपस्थित होती है, सज्ञानता वा चैतन्य ही ज्ञानका सब प्रकार मिश्रण वा एकीकरण है। इस चैतन्यके कारण ही हम पदार्थोंके चित्रकी कल्पना करने-समर्थ होते हैं हम ऐन्द्रियज्ञानके कारण मनमें जो भिन्न भिन्न भावोंका अनुभव करते हैं उनमें अपने आप सामञ्जस्य नहीं होता, हमारी बुद्धि या चिन्ताशक्तिकी सहायतासे उनका ऐक्य साधित होता है।

सेलिंग (Schelling) कहते हैं— हमारे मानसिक चित्र और बाह्य पदार्थ इनमें परस्पर अतिनिकट सम्बन्ध है, एक दूसरेकी सूचना देते हैं। एकके कहनेसे दूसरेकी सत्ता उदित होती है। सब तरहका ज्ञान मानसिक चित्रके साथ बाह्य वस्तुके ऐक्यके कारण उत्पन्न होता है।

स्पिनोजाके मतसे इन्द्रियोंके द्वारा जबतक प्रत्यक्षसिद्ध नहीं होता, तब तक मन अपनेको नहीं जान सकता। यह प्रत्यक्षज्ञान प्रथमतः अस्फुट रहता है, मनकी आभ्यन्तरिक क्रियाके द्वारा वह स्पष्टीकृत होता है। किन्तु मनको कार्य करनेकी कोई स्वाधीनता नहीं है। पूर्ववर्ती कारणके द्वारा वह नियमित रूपसे होता रहता है। किसी एक नित्य नियमके जरिये सम्पूर्ण वस्तुओंका विकाश और परिणमन होता है।

स्पिनोजा कहते हैं कि, प्रथमतः इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष सिद्धि होती है। उसके बाद हमारे प्रत्यक्षका धारण वा स्मरणशक्तिके द्वारा श्रेणी विभाग होता है, पीछे कल्पनाशक्तिके प्रभावसे वाक्य द्वारा उन श्रेणियोंका नामकरण होता है; फिर चिन्ता वा युक्ति द्वारा वे विचारित होते हैं। अन्तमें सहजज्ञानके द्वारा हमें बाह्यघटनाका स्वरूपज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञानके प्रथम उपाय वा प्रत्यक्षके अस्पष्ट वा असम्पूर्णभावसे हमको भ्रम वा विपर्यय होता है। द्वितीय और तृतीय उपायसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वही यथार्थ ज्ञान है।

सुप्रसिद्ध फरासीसी पण्डित कोमतके मतसे—सब विषयोंके ज्ञानके उन्नतिमार्गमें क्रमसे तीन सोपान हैं पहला सोपान पौराणिक, आध्यात्मिक वा इच्छामूलक है, दूसरा दार्शनिक, काल्पनिक वा शक्तिमूलक है और तीसरा वैज्ञानिक, प्रामाणिक तथा नियमसूलक है।

लोग बाह्य वस्तुको देख कर उसका एक सचेतन इच्छाविशिष्ट कर्ता अनुमान करते हैं। इसका कारण भी देखा जाता है। हमारे सब कार्य सचेतन इच्छाविशिष्ट आत्मासे उत्पन्न होते हैं; इसीलिए किसी कार्यको देखते ही हम उसमें एक सचेतन इच्छाविशिष्ट कर्ताकी कल्पना करते हैं। धीरे धीरे ज्ञान जितना स्फूर्ति पाता है, उतनी ही लोगोंकी धारणा होती जाती है कि पहले जिसको सचेतन समझते थे, वास्तवमें उसमें चैतन्यका कोई लक्षण नहीं है। चैतन्यके बदले इसमें कोई अदृश्य कार्यसाधक शक्ति है। प्रथमावस्थामें लोग समझते हैं कि अग्नि इच्छापूर्वक वस्तुको दग्ध करती है, पीछे निश्चित होता है कि, अग्निसे किसी तरहकी निज इच्छा नहीं है, इसकी दाहिका शक्तिके प्रभावसे वस्तु दग्ध होती है। इस द्वितीय अवस्थाको दार्शनिक काल्पनिक वा शक्तिमूलक ज्ञान कहते हैं। पीछे हम बहुत कुछ देख भाल कर अभिज्ञताके फलसे जान सकते हैं कि, सब कार्योंका एक न एक नियम है, अर्थात् निर्दिष्ट पूर्वोत्तरत्व और सादृश्य सम्बन्ध है। हम लोगोंमें नियमातिरिक्त और कुछ भी जाननेकी क्षमता नहीं है ऐसा समझ कर जब हम सब कार्योंके नियम खोजते हैं, तब हम उस विषयके वैज्ञानिक सोपान पर उपस्थित होते हैं।

हम सब विषयमें ज्ञानके वैज्ञानिक सोपानका लाभ नहीं कर सकते। किसी विषयमें हमारा ज्ञान प्रथम सोपान तक ही रह गया है और किसी किसी विषयमें हम द्वितीय तृतीय सोपान तक चढ गये हैं। कोमत् कहते हैं—जिसका विषय जितना सरल है, वह उतना ही शीघ्र वैज्ञानिक-सोपान पर उपस्थित होता है। विषय

की कठिनताके कारण और प्रथम और और द्वितीय सोपान पर रह गया है। कोमत्‌का कहना है कि आन्तरिक घटनाके पर्यवेक्षण करनेकी क्षमता हममें नहीं है (किन्तु इस मतको सत्य मानकर ग्रहण नहीं किया जा सकता क्योंकि हम अपने सुख दुःखोंका अनुभव प्रति क्षणमें करते रहते हैं।)

कोमत्‌के मतसे ज्ञानकी प्रथम भित्ति पर उपस्थित होनेके तीन उपाय हैं—पर्यवेक्षण, परीक्षा और उपमा। जो नैसर्गिक व्यापार स्वतः हमारे इन्द्रियगोचर होता है उसकी पर्यालोचनाको पर्यवेक्षण कहते हैं। इच्छापूर्वक अवस्थाका परिवर्तन करके जो पर्यालोचना की जाती है उसको परीक्षा कहते हैं। अनुसन्धेय विषयको अच्छी तरह समझनेके लिए जो पर्यालोचना की जाती है उसको उपमा कहते हैं। अतएव देखा जाता है कि ज्ञानके विषयमें अनेक मतभेद हैं।

जो हम जानते हैं वही ज्ञान है। जो जाना है वह किस तरह जाना है?

कुछ विषयोंको इन्द्रियके साक्षात् संयोगसे जान सकते हैं। इस ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं। भिन्न भिन्न इन्द्रियों द्वारा भिन्न भिन्न प्रकारका प्रत्यक्ष हुआ करता है यथा—दर्शन, स्पर्शन, घ्राण इत्यादि। जिस पदार्थका प्रत्यक्ष होता है उनके विषयमें हम ज्ञान प्राप्त करते हैं और उनके अतिरिक्त विषयमें भी ज्ञान सञ्चित होता है। हम घरमें ही रहे हैं इतनेमें पाससे घण्टेकी आवाज सुनी। इससे श्रवण प्रत्यक्ष हुआ। परन्तु यह प्रत्यक्ष शब्दका हुआ न कि घण्टेका। इस ज्ञानको अनुमिति कहते हैं। किन्तु अनुमिति ज्ञान भी प्रत्यक्षमूलक है। कारण यह कि हमने जिसका पहले कभी प्रत्यक्ष नहीं किया उस विषयमें अनुमिति ज्ञानका होना सम्भव नहीं।

ज्ञानके इस तात्त्विक सम्बन्धमें यूरोपीय दार्शनिकोंमें परस्पर घोरतर विवाद है। कोई कोई कहते हैं कि हममें ऐसे बहुतसे ज्ञान हैं जिनमें मूलप्रत्यक्ष नहीं मिलता। यथा—काल, आकाश इत्यादि।

इस विषयको लेकर काण्टने लौक और ह्यूमके मतवादका प्रतिवाद किया था। उन्होंने इसके अतिरिक्त ज्ञानका मूल इस प्रकार बतलाया है—जहां इन्द्रिय द्वारा बाह्य विषयका ज्ञान होता है वहां बाह्य विषयकी प्रकृतिके विषयमें किसी तत्त्वका निश्चय हमारे ज्ञानके अतीत होने पर भी हमारी इन्द्रियोंकी प्रकृतिका निश्चय हमारे अधिकारमें है। हमारी इन्द्रियोंकी प्रकृतिके अनुसार हम बहिर्विषयक कुछ निर्दिष्ट अवस्थाका ज्ञान लेते हैं। इन्द्रियोंकी प्रकृति सब जगह एकसी है, इसलिए बहिर्विषयकी ये अवस्थाएं भी हमारे लिए सब जगह एकसी हैं। इसी लिए हम अपने काल और आकाशादिके सम्बन्धका निश्चय ज्ञान रखते हैं। यह ज्ञान हम लोगोंमें जो है इस कारण काण्टने इसको स्वतोलब्ध या आभ्यन्तरिक ज्ञान कहा है।

ष्टूआर्ट मिल कहते हैं कि हमने प्रत्यक्षके द्वारा ऐसा एक संस्कार स्थापित किया है कि जहां कारण मौजूद है, वहां उसका कार्य मौजूद रहेगा। जहां पहले क देखा है वहीं ख को देखा है। फिर यदि कहीं क को देखें तो वहां ख है ऐसा हम जान सकते हैं। यद्यपि पृथिवी पर जितनी समान्तराल रेखाएं खींची जाती हैं वे सब मिलती हैं या नहीं, इस बातको हम परीक्षा करके जांच नहीं सकते, तथापि जितनी देखी हैं उनमें तो एक भी नहीं मिलती है। अतएव समान्तरालता न मिलन विरहका नियत पूर्ववर्ती है समान्तरालता कारण है, न मिलनविरह उसका कार्य है। इस प्रकारसे हमें मालूम हुआ कि जहां दो समान्तराल रेखाएं होंगी वहीं उनका मिलाप नहीं होगा। अतएव यह ज्ञान भी प्रत्यक्षमूलक है।

कोई कोई कहते हैं साक्षात् इन्द्रियबोधसमूह जब प्रातिभासिक आकारमें परिणत होता है, तभी हमको वस्तुज्ञान उत्पन्न होता है और वस्तुज्ञानसमूह प्रातिभासिक आकार धारण कर सहज युक्तिकी उत्तम्भूमि होती है।

मानव-समाजकी उन्नतिके साथ साथ जितनी जीवनके कार्यकलापोंकी बहुलता और विभिन्नता सञ्चित होती है तथा अभिज्ञता और बहुदर्शिताकी वृद्धि प्राप्त होती है उतनी ही मनकी प्रातिभासिक शक्ति (Representativeness) का प्रसार होता है।

प्राचीन ग्रीसीय विद्वान्गण कहा करते थे कि, जो ज्ञान इन्द्रिय द्वारा प्राप्त किया जाता है, वह ज्ञान विश्वासके योग्य नहीं; उनके मतमें—तत्त्वजिज्ञासु व्यक्तियोंको चाहिये कि सम्पूर्ण इन्द्रियद्वारोंको रोक कर केवल मन ही मन वस्तुको प्रकृतिकी चिन्ता करें। इस प्रकारकी चिन्तासे जो ज्ञान होता है, वही यथार्थ ज्ञान है।

'राम' कहनेसे एक विशेष वस्तुका बोध होता है, किन्तु 'मनुष्य' यह शब्द कहनेसे साधारण एक वस्तुका बोध होता है। यह ज्ञान किस तरह उत्पन्न होता है? प्लेटोका कहना है कि, जगत्में सारी वस्तुएं साधारण वस्तु हैं। विशेष विशेष वस्तुएं साधारण वस्तुकी छायामात्र हैं। अन्ततः उनकी जो कुछ सारवत्ता है वह उनका आदर्श और साधारण गुणसे उत्पन्न है। वे कहते हैं-इहलोकमें जन्मग्रहण करनेसे पहले आत्मा उन वस्तुओंसे परिचित थी, किन्तु उस देहमें संलग्न होते ही पूर्वस्मृति भूल गई। साधारण वस्तुका प्रकृतिको जाननेके लिए हमको पूर्वस्मृति जगानी पड़ती है और उन वस्तुओंके जितने उत्कृष्ट विशेष दृष्टान्त मिलते हैं उनका पर्यवेक्षण करना ही उसका प्रधान उपाय है।

मायावाद (Idealism)के समर्थकोंका कहना है कि, भौतिक जगत् नामक भावपरम्परा हमारे मनमें उदित होती है, इन्द्रियातीत अज्ञात प्रकृति अज्ञान जड़ पदार्थ ही इसका कारण है। यह ही जड़वादी दार्शनिकोंका मत है और नास्तिक मायावादी यह कहते हैं कि, कारण कहनेसे यदि नियतपूर्ववर्ती घटनाका बोध हो, तो यह भावपरम्परा परस्परका कारण है और यदि इन्द्रियातीत किसी वस्तुका बोध हो, तो उसके अस्तित्व निरूपण करनेका कोई उपाय नहीं है। आस्तिक मायावादी कहते हैं कि, कारण अव्यय प्रकृति है, अज्ञान जड़पदार्थ नहीं हो सकता केवल ज्ञानमय आत्मामें कारणत्वका होना सम्भव है। इस भावपरम्पराका आदि कारण स्वयं परमात्मा हैं, वे ही सर्वदा हमारे पास रह कर हमारे मनमें यह भावपरम्परा उत्पन्न करते हैं। इनके मतमें जड़में किसी प्रकारके स्वतन्त्र ज्ञाननिरपेक्षका अस्तित्व नहीं है। मानवात्माके लिए जड़पदार्थका आविर्भाव और तिरोभाव अनित्य है। संक्षेपतः, इन्द्रियग्राह्य विषयसमूह हमारे ज्ञानसे निरपेक्ष हैं, मनबहिर्भूत बाह्य वस्तु नहीं, हमारे मानसोत्पन्न अवस्था परम्परामात्र है।

कोई कोई कहते हैं—ज्ञानसे शक्ति भिन्न नहीं है। हम कहते हैं, यह कहनेसे ज्ञान द्वारा होता है, ऐसा समझा जाता है। हमारे परोक्षमें जो कार्य होता है वह कभी हमारा कार्य नहीं हो सकता, अतएव ज्ञानमें शक्ति अभिन्न है। जड़जगत्में शक्ति है, यह कहनेसे जड़जगत्में ज्ञान है, ऐसा कहना होता है। कोई कोई मनोविज्ञानवित् कहते हैं कि, शरीरसञ्चालनके समय हमारी मांसपेशियोंमें जो इन्द्रियबोध होता है, उसीसे शक्तिमें ज्ञान उत्पन्न होता है। परन्तु इन्द्रियबोध (Sensation) और शक्तिबोध (Idea of Power) ये दोनों संपूर्ण भिन्न हैं।

मनुष्यका मन प्रथमतः किसी विषयमें ज्ञान प्राप्त करता है, पीछे उस ज्ञानके कारण एक भाव वा आवेग उत्पन्न होता है। उस भाव वा आवेग द्वारा परिचालित होकर मनुष्यको तद्भावानुयायी कार्य करनेकी इच्छा होती है। मानसिक शक्तिके तारतम्यानुसार विषय विशेषके ज्ञानसे उत्पन्न भाव वा आवेगका न्यूनाधिक्य हुआ करता है, तथा भावको प्रकृतिगत गतिके अनुसार इच्छा ही मनुष्यको किसी न किसी कार्यमें परिचालित करके जीवनकी गति अवधारित करती है।

किसी किसीका कहना है कि क्या शरीर और क्या आत्मा दोनोंमें सर्वत्र ही कुछ स्वाभाविक लक्षण हैं, जिनको स्वतःसंस्कार (Instinct) कहते हैं। जैसे—मातृगर्भसे निकलते ही बालक मातृस्तन्य पीता है। कारणका निर्णय नहीं कर सकते, पर सुन्दर पदार्थ हमको अत्यन्त प्रिय लगता है। यह सहज ज्ञानका कार्य है। ज्ञानका बीज मानवात्मामें निहित है।

मि० बक्ल अपने "इङ्गलैण्डीय सभ्यताका इतिहास" नामक ग्रन्थमें लिखते है—ज्ञानकी उन्नतिसे ही सभ्यताकी वास्तविक उन्नति है। जब सभ्यता क्रमशः परिवर्तित और उन्नत हो रही है, तब उसका कारण ऐसा कुछ नहीं हो सकता कि जो परिवर्तनशील वा उन्नतिशील नहीं हो।

चक्षुर्यस्य, बहुव्री०। १ वेदादि शास्त्रज्ञानरूप नयन। २ पण्डित, विद्वान्। समस्त वस्तुका जो अवलोकन ज्ञान चक्षु द्वारा करना चाहिए।

ज्ञानचन्द्र—एक जैन-ग्रन्थकार।

ज्ञानत: (अव्य०) ज्ञान-तस्। ज्ञानपूर्वक, जान बूझ कर।

ज्ञानतिलकगणि—एक जैन ग्रन्थकार और पद्मरागगणिके शिष्य। इन्होंने १६६० सम्वत्‌को गौतमकुलकवृत्ति नामक ग्रन्थ प्रणयन किया है।

ज्ञानतीर्थ—बौद्धोंका एक तीर्थस्थान। यह तीर्थ केशवती और पापनाशिनी नामक दो नदियोंके संयोगस्थलमें अवस्थित है। बौद्धोंके मतसे यहांके श्वेतशुभ्रनाग सप तीर्थयात्रियोंको सुख देते हैं।

ज्ञानद (सं० त्रि०) ज्ञानं ददाति ज्ञान-दा-क। ज्ञान दायक, ज्ञान देनेवाला।

ज्ञानदग्धदेह (सं० पु०) ज्ञानेनैव दग्ध: भस्मीभूत देहो यस्य, बहुव्री०। चतुर्थाश्रम वा भिक्षु, वह जिसने सन्यासआश्रम अवलम्बन किया है। चतुर्थाश्रमवासी भिक्षु ज्ञानके द्वारा जीवितावस्थामें देहको दग्ध करते रहते हैं, अर्थात् जिन्होंने देहादिके सुख-दु:ख आदि धर्मको दग्ध कर दिया है जो सुख दु:खादिके अतीत हो गये हैं और जो अपने इच्छानुसार इस देहको छोड़ सकते हैं, उनको ज्ञानदग्धदेह कहते हैं। इसीलिए इनके मृत शरीरको दग्ध नहीं करते और पिण्डोदकक्रिया आदिकी भी कोई जरूरत नहीं होती। (शौनक)

चतुर्थाश्रमवासी भिक्षुके शरीरको, गड्ढा खोद कर प्रणव मन्त्र उच्चारण करते हुए निक्षेप करो। इनकी मृत्यु नहीं होती। इच्छापूर्वक देहका परित्याग नहीं करनेसे देहावसान नहीं होता। ये चाहें तो युग-युगान्तर पर्यन्त देहको रक्षा कर सकते हैं।

ज्ञानदर्पण (सं० पु०) ज्ञानं दर्पण इव यस्य, बहुव्री०। पूर्वजिन, मञ्जुघोष।

ज्ञानदातृ (सं० त्रि०) ज्ञानस्य दाता, ६ तत्। ज्ञानदाता गुरु। ज्ञानदाता गुरु सबसे अधिक पूज्य हैं।

"पितुर्दश गुणा माता गौरवेणेति निश्चितम्।
मातु: शतगुण: पूज्यो ज्ञानदाता गुरु: प्रभु:॥" (तन्त्र०)

पितासे दश गुनी माता, मातासे सौ गुना गुरु पूजनीय हैं। स्त्रियां ङीप्।

ज्ञानदास—१ एक बंगाली वैष्णव कवि। ये विद्यापति और चण्डिदासकी पदावलीके छन्द और भाषाका अनुकरण कर बहुतसी पदावलियोंकी रचना कर गये हैं; इनकी कविताएं बड़ी मनोहर और प्रसादगुणभूषित हैं। बंगालके अन्तर्गत वीरभूम जिलेके कादड़ा नामक ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इनको साधारण लोग गोस्वामी कहते थे।

२ एक कवि। इन्होंने शान्तिरस और शृङ्गाररसकी बहुतसी कविताएं बनाई हैं, जिनमेंसे एक नीचे दी जाती है—

"मोहन मेरी मटकी फोरी सुनो यशोदा माई हो।
ऐसो लड़को दधिको फड़चो मांगत दूध मलाई हो॥
मटकी झटक पटक फेर झटको अब नहिं देन घराई हो।
ले कर लठिया यशोदा उठीकत तैंने धूम मचाई हो॥
भोरही मोंको देत उलहना सब ग्वालन घर आई हो।
सुनरी माई बाबा दुहाई वाकी दधि नहीं खाई हो॥
सब ग्वालिनी नट खट हो हमकों घर पकर ले आई हो॥
तनक मुरलिया टेर दईरे सबकी मत बौराई हो।
ज्ञानदास बलिहारी छबिकी मोहनकी चतुराई हो॥"

ज्ञानदीप (सं० पु०) बुद्धिका समूह, बुद्धि, अकल।

ज्ञानदुर्बल (सं० त्रि०) जिसे ज्ञान कम हो, ज्ञानहीन मूर्ख।

ज्ञानदेव—१ दाक्षिणात्यके एक प्रसिद्ध शास्त्रवेत्ता और साधु। ये विट्ठलपन्थ नामक एक यजुर्वेदी ब्राह्मणके पुत्र थे। विठ्ठलपन्थ भी एक महापुरुष थे। इन्होंने युवावस्थामें संन्यासआश्रम ग्रहण किया था; पर स्त्रीकी अनुमतिके विना इस आश्रमको ग्रहण किया था, इसलिए इनको पुन: गृहस्थाश्रम ग्रहण करना पड़ा था। संन्यासीके लिए पुन: गृहस्थी होना शास्त्रविरुद्ध है। इस कारण आलन्दीके ब्राह्मणोंने विठ्ठलपन्थको समाजसे च्युत कर दिया। १२७२ ई०में विठ्ठलपन्थके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रका नाम निवृत्ति रक्खा गया। इसके बाद १२७५ ई०में उनके और एक पुत्र पैदा हुआ। ये ज्ञानदेवके नामसे प्रसिद्ध हुए। तदनन्तर इनके एक पुत्र और फिर एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्रका नाम सोपान और कन्याका नाम मुक्ता रक्खा गया। वयोवृद्धिके अनुसार

सभी पुत्रोंमें प्रतिभाके लक्षण दिखाई दिये। हां, ज्ञानदेवमें सबमें सर्वज्ञान पाया था।

ज्येष्ठपुत्र निवृत्तिको जब आठ वर्षकी हुई, तब विट्ठलने उनका उपनयन करना चाहा। किन्तु वे तो समाजच्युत थे। किस तरह उपनयन-कार्य कर सकते हैं, इस विषयमें उन्होंने पड़ोसियोंसे सहायता मांगी पर वे कोई सदुपाय नहीं सोच सके। विट्ठल और उनकी स्त्री दोनों बड़े कष्टसे दिन बिताने लगे। पितामाताके इस दुःखको देख कर निवृत्तिको भी बड़ा कष्ट हुआ। कुछ दिन बीतने पर, उन्होंने अपने पितासे कहा—'किसी तीर्थस्थान पर जा कर एक टेकमाय करनेसे उनका मङ्गल हो सकता है।' विट्ठलने निवृत्तिकी बात मान ली। वे अपने स्त्री पुत्रोंको ले कर त्र्यम्बकको चल दिये। त्र्यम्बक अति पवित्रस्थान है। यहां त्र्यम्बकेश्वर नाम धारण कर महादेव विराज रहे हैं और पवित्रसलिला गोदावरी यहांके एक पहाड़से निकली है। विट्ठल एक ब्राह्मणके घर पर रहने लगे। वे वहां नित्य ब्रह्मगिरिकी प्रदक्षिणा करते थे। इसमें उनके तीन पुत्रोंने भी साथ दिया। इस तरह एक वर्ष बीतने पर एक दिन एक व्याघ्रने उनका पीछा किया। विट्ठल ज्ञानदेव और सोपानको गोदमें ले कर भागे। निवृत्ति पीछे पीछे भागने लगे। कुछ दूर जा कर देखा तो निवृत्तिको नहीं पाया। निवृत्ति राह भूल कर अञ्जनी पर्वत पर चढ़ गये। वहां एक गुफा देख कर वे उसके भीतर घुस गये। भीतर जा कर देखा तो एक महापुरुषको आंख मींच कर तपस्यामें निमग्न पाया। निवृत्ति वहां बैठ गये। कुछ देर पीछे जब महापुरुषने आंखें खोली तब निवृत्तिने उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। इन महापुरुषका नाम था गौरीनाथ। ये एक प्रसिद्ध योगी थे। गौरीनाथने बालकको देख कर समझ लिया कि, यह प्रतिभाशाली है। उन्होंने निवृत्तिको अपना वृत्तान्त और आनेका अभिप्राय पूछा। निवृत्तिने अपना परिचय दे कर कहा—"सदुपदेश दे कर मुझे कृतार्थ कीजिये यही मेरी प्रार्थना है।" निवृत्तिका आग्रह देख कर गौरीनाथने उनको उपदेश दिया। उपदेशका सारांश यह है—जगत् मिथ्या है केवल ईश्वर ही सत्य है और उनकी उपासना करना मनुष्यका कर्त्तव्य है। इसके बाद निवृत्ति गौरीनाथसे विदा ले कर अपने पितामाताके पास उपस्थित हुए। कुछ देर विश्राम करनेके बाद उन्होंने भाई बहन और पितामाताको सब वृत्तान्त तथा महापुरुषका उपदेश कह सुनाया। ज्ञान और उपासनापद्धतिकी शिक्षा पा कर उन्होंने अपनेको कृतार्थ समझा। ज्ञानदेवने अपनी असाधारण प्रतिभाके बलसे समधिक उन्नति की। कुछ दिनों तक उपासना करनेके बाद वे योगसाधन करने लगे। कहा जाता है—कुछ मासमें उन्होंने अष्टसिद्धिको अपने अधीन कर लिया। विट्ठलपत्नीको अपने पुत्रोंकी उन्नतिसे बड़ा आनन्द हुआ। परन्तु वे समाजसे च्युत हैं और इसी लिए निवृत्तिका उपनयन संस्कार नहीं हो सका है, इस चिन्तासे वे बड़े व्याकुल हो गये। पैठन विट्ठलके पूर्वपुरुषोंका वासस्थान था और दाक्षिणात्यमें वह शास्त्रचर्चाके लिए प्रसिद्ध था। विट्ठलने सोचा कि, वहांके पण्डितोंका व्यवस्थापत्र प्राप्त करनेसे ही कार्य सिद्ध हो जायगा। पीछे वे परिवार सहित वहां गये और अपने मामा कृष्णाजी पन्तके घर ठहरे। कृष्णाजी पन्तने सब वृत्तान्त सुन कर एक विराट् सभाका आयोजन किया। ब्राह्मणसब निमन्त्रित हो कर सभामें आये। विट्ठलपन्तको पुनः समाजमें ग्रहण करनेकी चर्चा छिड़ी। पण्डितोंने अनेक शास्त्र उलट डाले पर कहीं भी संन्यासीके गृही होनेके विषयमें कुछ विधि नहीं मिली। सभाके द्वारा सुफलका प्राप्त होना तो दूर रहा, उलटा फल सहना पड़ा; विट्ठलको परिवार सहित घरमें रखनेके अपराधसे कृष्णाजीपन्त भी समाजसे च्युत किये गये।

विट्ठलकी चिन्ताकी अब कोई सीमा नहीं रही। अब तक वे अपनी ही चिन्ता करते थे पर अब उन पर मामाकी चिन्ता भी सवार हो गई। उनकी यह दशा देख कर निवृत्ति और ज्ञानदेव उन्हें सान्त्वना देने लगे। उन लोगोंने कहा—"उपवीत धारण करना बाह्य क्रिया मात्र है। इसके साथ आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं। शास्त्रमें कहा है, जो व्यक्ति ब्रह्मको जानता है वही ब्राह्मण है।" पुत्रोंकी सान्त्वनासे विट्ठलको बहुत कुछ शान्ति हुई।

कुछ दिन बाद, कृष्णाजीपन्तके पिताके श्राद्धका दिन

आया। वे श्राद्धका आयोजन करने लगे। उन्होंने पांच ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दिया। कृष्णाजी समाजच्युत हुए थे, इसलिए ब्राह्मणोंने उनका निमन्त्रण ग्रहण नहीं किया। इस पर कृष्णाजी अत्यन्त दुःखित हो कर श्राद्धका आयोजन बन्द करनेको उद्यत हुए। इस बातको जान कर ज्ञानदेवने उनको समझाया कि, "इस कार्यको स्थगित करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। मैं खुद पुरोहित का कार्य करूंगा और जिससे पांच ब्राह्मण भोजन करें, इसकी व्यवस्था करूंगा।" ज्ञानदेवको उम्र कम होने परभी कृष्णाजी उनको ज्ञानी और विवेचक समझते थे। उनके कहनेके मुआफिक कार्य जारी रहा। ज्ञानदेवने मन्त्रादिका पाठ किया। जिन पांच ब्राह्मणोंने निमन्त्रण ग्रहण नहीं किया था, ज्ञानदेवने योगबलसे उनके परलोकगत पितृदेवोंको आह्वान किया। वे शरीर धारण पूर्वक उपस्थित हो कर अपने अपने आसन पर बैठ गये और मन्त्रोच्चारण करके भोजन करनेमें प्रवृत्त हुए। कृष्णाजीपन्यके पड़ोसियोंको यह मालूम होते ही कि, उनके घर ब्राह्मणभोजन हो रहा है उनमेंसे एक वास्तविक बातका पता लगानेके लिए भीतर चला गया। उक्त ब्राह्मणोंको देख कर उसके छक्के छूट गये, उसने उनके पुत्रोंको बुला कर दिखाया। इतनेमें परलोकगत व्यक्तिगण अन्तर्धान हो गये। इस घटनासे सभी विस्मयान्वित हुए। ज्ञानदेवको असाधारण क्षमताका परिचय चारों ओर व्याप्त हो गया और सब उनको नारायणके अवतार समझने लगे।

किसी समय कुम्भयोगके उपलक्षमें गोदावरीतीरस्थ पैठनमें अनेक लोगोंका समागम हुआ था। इस समय विट्ठल भी परिवार सहित वहां उपस्थित हुए। बहुतसे ब्राह्मण वहां इकट्ठे हुए थे। उन्होंने इनका परिचय पूछा। ज्ञानदेवका योगबल चारों ओर व्याप्त हो जानेसे ब्राह्मणगण उनसे सदालाप करने लगे। इतनेमें कोई व्यक्ति एक महिष ले कर वहां उपस्थित हुआ। महिषका नाम था "ज्ञाना"। उसने महिषको कहा कि "चल ज्ञाना" इस पर एक ब्राह्मण बोल उठे—विट्ठलके मध्यम पुत्रका नाम ज्ञान है, और इस महिषका नाम भी ज्ञान है। परन्तु दोनोंमें कितना अन्तर है। यह सुन कर ज्ञानदेवने कहा—"मुझमें और महिषमें कुछ भी अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनोंहीमें ब्रह्म विद्यमान है।" इस बातको सुन कर एक ब्राह्मण बोल उठे—"आप और यह महिष दोनों समान हैं? महिषको मारनेसे क्या आपको चोट पहुंचती है?" ज्ञानदेवने उत्तर दिया—"अवश्य ही उसको मारनेसे मुझे लगता है।" इस पर वह ब्राह्मण महिषको बड़े जोरसे बेत मारने लगा, इधर ज्ञानदेवके शरीर पर बेंतके दाग दिखाई दिये और कहीं कहींसे खून निकलने लगा। यह देख कर उस ब्राह्मणने महिषको मारना बंद कर दिया, यात्रियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु उनमेंसे एक आदमी बोल उठा—यह ज्ञानदेवका जादू है, योगका प्रभाव नहीं। यह सुन कर ज्ञानदेवने महिषको सम्बोधन करके कहा—"ज्ञाना तुम और हम सब समान हैं, इसलिए तुम इन ब्राह्मणोंको वेदवाक्य सुनाओ।" ज्ञानदेवके योगबलसे महिषदेहमें ज्ञानका प्रभाव सञ्चारित हुआ। महिष उसी समय वेदवाक्य उच्चारण करने लगा। इस घटनासे सब अवाक् हो गये। इसके बाद विट्ठलपन्थ अपने आलंदी घर लौट आये, पैठनके ब्राह्मणोंसे ज्ञानदेवको अद्भुत शक्तिका परिचय मिल चुका था। उन्होंने एक आदमें विट्ठलको शुद्धिपत्र दे दिया और अपने समाजमें मिला लिया। विट्ठलके आनन्दकी सीमा न रही। वे अपने तीनों पुत्रोंका उपनयन करानेके लिये आयोजन करने लगे। यह देख कर ज्ञानदेवने कहा—"संन्यासीके पुत्रोंको यज्ञोपवीत धारण करना उचित नहीं।" इस पर विट्ठलने आयोजन स्थगित कर दिया। कुछ दिन बाद वे परिवार सहित आलन्दी पहुंच गये। इसी समय विट्ठलके गुरुदेव रामानन्दस्वामी तीर्थदर्शनके लिए काशीधामसे निकल कर आलन्दीमें उपस्थित हुए। स्वामीजीके दर्शन पाकर विट्ठलपन्थको बड़ा आनन्द हुआ। पीछे वे गुरुदेवके आदेशानुसार सस्त्रीक बदरिकाश्रम चले गये। रामानन्दस्वामी ज्ञानदेवको सञ्जीवनीमन्त्रसे दीक्षित कर स्थानान्तरको चल दिये। निवृत्ति आदि कुछ दिन आलन्दीमें रह कर तीर्थदर्शनके लिए निकल पड़े। ये लोग पहले नेवास नामक स्थानमें पहुंचे और वहां कुछ दिन रहे। यहां ज्ञानदेवने दो अद्भुत कार्य सम्पन्न किये और भगवद्गीता-

की एक टीका लिखी। इस टीकामें इन्होंने अपनी विद्या बुद्धिका अच्छा परिचय दिया है। यह टीका दाक्षिणात्यमें "ज्ञानेश्वरीटीका" नामसे प्रसिद्ध है। * नेवाससे चल कर ये पूनताम्बे नामक स्थान पर पहुंचे। यह गोदावरी नदीके किनारे पर अवस्थित है, चाङ्गदेव नामक एक योगी यहां रहते थे, इसलिए इसने प्रसिद्धि पाई थी। कहा जाता है कि नानास्थानोंसे लोग मृत देह ले कर यहां उपस्थित होते थे। चाङ्गदेव समाधिसे उठ कर उनमें जीवन सञ्चार कर देते थे। इस स्थान पर मुक्ता बाईने ज्ञानदेवसे अलसजीवनी मन्त्र ग्रहण कर कुछ मुर्दोंमें जीवनसञ्चार किया था। चाङ्गदेव समाधिस्थ थे, इसलिए निवृत्ति आदिका उनसे भेंट न हुई। पीछे वे इस स्थानसे चल कर अन्यान्य तीर्थोंके दर्शन करते हुए आलन्दी लौट आये।

चाङ्गदेवने समाधिसे उठ कर देखा तो किसी भी मृत व्यक्तिको न पाया। इसका कारण पूछने पर शिष्योंसे उत्तर मिला कि ज्ञानदेवके दिये हुए मन्त्रबलसे उन्हींकी भगिनी मुक्ताबाईने मृतदेहमें जीवन दान दिया है। यह सुन कर चाङ्गदेवने एक पत्र लिख कर ज्ञानदेवके पास भेजा। ज्ञानदेवने इसके प्रत्युत्तरमें ६५ उपदेशपूर्ण अभङ्ग † लिख भेजा। अभङ्ग कठिन थे, इसलिये चाङ्गदेव उनका तात्पर्य न समझ सके। ज्ञानदेवके साथ मिलनेका निश्चय कर वे आलन्दी चल दिये। ज्ञानदेवने उनकी आदरसे अभ्यर्थना की। चाङ्गदेव यहां परम आनन्दसे रहने लगे। वे नित्य ज्ञानदेवसे उपदेश ग्रहण करते थे।

ज्ञानदेव ग्रन्थरचना और साधारणको उपदेश देनेमें समय बिताने लगे। बीचमें कुछ दिन पण्ढरपुरमें रहे थे। इन्होंने क्रमसे "अमृतानुभव" (वेद और उपनिषद्‌का सारसंग्रह) "पवनविजय" 'योगवाशिष्ठकी टीका", पञ्चीकरण और "हरिपाठ" नामक कई एक ग्रन्थ रच डाले। इसके सिवा 'स्वात्मानुभव' नामक एक ग्रन्थ तथा बहुतसे अभङ्ग बनाये थे। ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ कठिन होने पर भी ज्ञानदेव इसका अर्थ साधारणको विशद रूपसे समझा दिया करते थे। श्रोता लोग व्याख्या सुन कर और उनके अन्यान्य उपदेशोंको हृदयङ्गम कर बहुतसे ज्ञान सम्पन्न हो गये तथा बहुतोंने कुसङ्ग छोड़ दिया। इस विषयमें दो दृष्टान्त दिये जाते हैं—

सम्बक नामक एक ब्राह्मण आलन्दीमें रहते थे। उनकी स्त्री पार्वतीबाई नाना गुणोंसे भूषित थीं और बड़ी कुशलतासे अपने पतिकी सेवा करती थीं। किन्तु उनके स्वामी सम्बक एक ग्रह-दोषसे फंसे हुए थे, इस लिए पार्वतीबाईको मानसिक कष्ट बहुत था। ज्ञानदेवने बहुतसे अभागियोंको सुधारा है यह सुन कर पार्वतीबाई उनसे मिलनेको गयीं। उनके साथ धर्म सम्बन्धी आलोचना होने लगी। मौका पा कर उन्होंने ज्ञानदेवसे अपना दुखड़ा सुनाया। दूसरे दिन ज्ञानदेवने सम्बक और उनकी रक्षिताको बुलवा लिया फिर उनसे अनुरोध किया कि, "प्रतिदिन दोनों हमारे पास आ कर ज्ञानेश्वरीकी व्याख्या सुना करें।" सम्बकने इनका अनुरोध न माना, पर मुक्तारमणी रोज धर्मकथा सुननेको आने लगी। उसके अनुरोधसे सम्बक भी आने लगे। एक दिन ज्ञानदेवने जीवको अज्ञान-दशाके विषयमें उपदेश दिया और इस दशामें पड़ कर लोग नानाप्रकारके नीच कार्योंको करने लगते हैं यह भी विशदरूपसे समझाया। इस उपदेशने दोनोंके अन्तःकरणको छेद दिया, पिछले पापोंको याद कर दोनों ही अनुताप करने लगे। पीछे ज्ञानदेवके आदेशसे सम्बकने मुक्तारमणीको छोड़ दिया और वे सत्‌लोक धर्मोंको चर्चा करने लगे। सम्बकका नवजीवन प्राप्त करना एक आश्चर्यका विषय था। इसके द्वारा ज्ञानदेव पर लोगोंकी भक्ति और अनुराग और भी बढ़ गया। लोग झुण्डके झुण्ड उनके उपदेश सुननेको आने लगे। अधिक लोगोंके समागमसे ज्ञानदेवका घर भरने लगा। लोगोंको बैठनेकी जगह मिलना भी दुश्वार हो गया। फिर ज्ञानदेव आलन्दीसे आध कोस दूर आलमपिट नामक स्थानमें रहने लगे और वहीं वे साधारणको उपदेश देने लगे।

* यह ग्रन्थ १२९० ई०में रचा गया है।

† मराठी भाषामें भजनको अभंग कहते हैं।

आलमपिटसे कुछ दूर पारोली नामक एक स्थान है।

और उपदेशोंको सुन कर अनेक मूढ़ व्यक्तियोंने भी ज्ञान लाभ किया। अनेक संशयवादी भगवद्भक्त हुए और बहुतने कुमार्गगामियोंने सत्पथको अपनाया। ज्ञानदेवकी ख्याति चारों तरफ व्याप्त हो गई। दूर देशोंसे लोग उनके उपदेश सुननेको आने लगे। धीरे धीरे आलन्दी एक तीर्थरूपमें परिणत हो गया।

इस तरहसे कुछ वर्ष बीतने पर ज्ञानदेवने समाधि लेनेकी इच्छा प्रकट की और उसके लिये वे तयार भी होने लगे। इस संवादके चारों तरफ प्रचारित होने पर नाना स्थानोंसे साधुगण आने लगे। इस समय इन्होंने 'आलन्दी-माहात्म्य' नामक एक ग्रन्थ लिखा। कार्त्तिक मासकी एकादशी रात्रिको ज्ञानदेवने कीर्तन प्रारम्भ किया। द्वादशीको भी कीर्तन होने लगा। कीर्तन सुन कर सब मोहित हुए। त्रयोदशीको ज्ञानदेव समाधि लेनेके लिये तयार हुए। एक इमलीके नीचे समाधि-स्थान निश्चित हुआ। वहां एक गुफा बनाई गई। गुफा दो मासमें तैयार हुई। इस गुफामें प्रवेश करनेसे पहले ज्ञानदेवने आत्मीय स्वजन और साधुओंसे सदालाप किया तथा सबको अभिवादन कर उनसे विदा ग्रहण की। सभोंने उनके लिये दुःख प्रकट किया। किन्तु ईश्वरलाभ उनका उद्देश था, इसलिए किसीने भी उनके इस कार्यमें बाधा न पहुंचाई। पीछे ज्ञानदेवने सबकी अनुमति ले कर गुफामें प्रवेश किया। गुफामें कुशासन और व्याघ्राजिन बिछाया गया। ज्ञानदेव उस पर पद्मासन लगा कर बैठ गये। उनके सामने ज्ञानेश्वरी, योगवाशिष्ठ आदि कई एक ग्रन्थ रखे गये। गुफाके भीतर चार दीप जलने लगे। बादमें ज्ञानदेव इन्द्रिय द्वारोंको रोक कर ध्यानमें निमग्न हो गये। यह देख कर ज्ञानदेवके आत्मीयस्वजन गुफाके द्वार बन्द कर अपने अपने स्थानको लौट गये। संसारने जगा कर विराग् तब सब कोई "श्रीज्ञानदेवो भवति" कहने लगे।

ज्ञानदेवकी जीवनी शिक्षाप्रद है। हम इससे बहुत-से उपदेश ले सकते हैं। बहुदर्शिताके बिना केवल विद्याके द्वारा कुछ विशेष फल नहीं मिलता। ज्ञानदेवने बीच बीचमें तीर्थयात्रा और नाना स्थानोंमें रह कर बहुत कुछ अभिज्ञता प्राप्त की थी। भिन्न भिन्न स्थानोंके लोगोंके साथ सदालाप कर उनका हृदय उदार-रससे लबालब भर गया था। उन्होंने इस लोकमें जितनी ही मर्यादाको माया क्षीण की थी। इसके सिवा नये नये स्थानोंको देख कर उनका मन ईश्वरकी तरफ बढ़ता था। नाना स्थानोंके लोगोंके साथ सदालाप करनेसे उनके अन्तःकरणमें महाप्रेम अङ्कित हो गया था और इसीलिए परोपकारसाधन उनके जीवनका एक महाव्रत हो गया था। हमारे शास्त्रोंमें तीर्थदर्शनकी विधि है। उसके अनुसार कार्य करना सबका कर्त्तव्य है। इससे केवल धार्मिक उन्नति ही हो ऐसा नहीं, प्रत्युत पार्थिव विषय का भी ज्ञान होता है। जीवनका कुछ अंश योग साधनमें बिताना चाहिये यह बात ज्ञानदेवकी जीवनी से स्पष्ट प्रमाणित होती है। मनकी एकाग्रताके बिना कोई भी कार्य उत्तम रूपसे नहीं किया जा सकता और योगसाधन उसके लिये एक प्रकृष्ट उपाय है। योग-साधन कर ज्ञानदेवने अष्टसिद्धि प्राप्त की थी। इसके द्वारा वे अनेक अद्भुत कार्य करके लोगोंको चमत्कृत कर सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा किया नहीं। प्रत्युत जहां क्षमता प्रकट करना आवश्यक होता था, वहीं क्षमता प्रकट किया करते थे। बहुतसे योगी ऐसे हैं, जो अहङ्कार से फूल कर लोगोंको अपनी करामातें और जादूगरी दिखाया करते हैं। ऐसे योगी न तो स्वयं धर्मपथ पर अग्रसर हो सकते हैं और न उनसे दूसरोंका ही कुछ उपकार हो सकता है। धर्मशास्त्रकी व्याख्या करके लोगोंके मनमें धर्मभाव उद्दीपन करना और उपदेश द्वारा पथभ्रष्ट लोगोंको सुमार्ग पर लाना ज्ञानदेवके जीवनका प्रधान उद्देश्य था तथा इस उद्देश्यको संपादन कर इन्होंने अपने शेष जीवनमें ईश्वरसे ममता प्राप्त किया।

ज्ञानदेव अब महाराष्ट्रियों द्वारा पूजे जाते हैं। आलन्दीमें इनका समाधिमन्दिर है और वहां इनके स्मरणार्थ प्रति वर्ष एक मेला लगा करता है। इसमें प्रायः ५० हजार आदमी एकत्र होते हैं। दक्षिण देशमें ज्ञानदेव और तुकारामने साधुओंमें शीर्षस्थान अधिकार किया है। ज्यादा क्या कहें, वहांके भिखारी जब भीख मांगने निकलते हैं तब वे "ज्ञानोबा तुका

राम" "तुकाराम ज्ञानोबा" ये शब्द मन्त्रकी भांति उच्चारण करते हैं। तुकाराम देखो।

२ गायत्र्यर्थरहस्यके रचयिता। ३ वेदजीवन-टीकाके कर्त्ता, इनका दूसरा नाम दामोदर था।

४ शूद्र जातीय एक धार्मिक वणिक्। ये शूद्र हो कर वेदका पाठ करते थे इसलिए ग्रामके ब्राह्मणोंने रुष्ट हो कर इनको छेक दिया था। इस पर इन्होंने धर्म-शास्त्रके शास्त्रार्थमें उनको परास्त कर दिया था।

ज्ञाननिष्ठ (सं० त्रि०) ज्ञाने निष्ठा यस्य, बहुव्रो०। ज्ञान साधनयुक्त, तत्त्व जाननेवाला।

ज्ञानपति (सं० पु०) ज्ञानस्य पतिः, ६ तत्। १ ज्ञानोपदेशकगुरु। २ परमेश्वर।

ज्ञानपावन (सं० क्ली०) ज्ञानवत् पावनं, उपमित कर्मधा०। तीर्थभेद। ज्ञानपावनतीर्थ अत्यन्त पुण्यजनक है। इस ज्ञानपावनतीर्थमें स्नानदानादि करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है।

"ततो गच्छेत राजेन्द्र! ज्ञानपावनमुत्तमम्।

अग्निष्टोममवाप्नोति मुनिलोकञ्च गच्छति।" (भा० वन० ८४।१०)

ज्ञानप्रभ—एक बौद्ध तथागत। विशेषचेलो नामक राजाने इनसे कामसंवर अर्थात् शरीरसंयमन-विद्याको शिक्षा पाई थी।

ज्ञानभास्कर (सं० पु०) ज्ञानमेव भास्करः रूपक-कर्मधा०। १ ज्ञानरूपसूर्य। २ भास्कराचार्य-प्रणीत ज्योतिषग्रन्थ। ३ षड्वर्गफल नामक ज्योतिषग्रन्थके प्रणेता।

ज्ञानभूषण—एक दिगम्बर जैनग्रन्थकार। इनकी भट्टारक उपाधि थी। ये वि० सं० १५७५में विद्यमान थे। इन्होंने तत्त्वज्ञानतरङ्गिणी, पञ्चास्तिकाय-टीका, नेमि-निर्वाणकाव्य-पञ्जिकाटीका, दशलक्षणोद्यापन, परमार्थो-पदेश, भक्तामरोद्यापन आदि ग्रन्थोंकी रचना की है।

ज्ञानमद (सं० पु०) ज्ञानका अभिमान, ज्ञानी होनेका घमण्ड।

ज्ञानमय (सं० पु०) ज्ञानस्वरूपः ज्ञान-मयट्। परमेश्वर।

"निर्व्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः।" (सां०द० भाष्य)

ज्ञानमुद्रा (सं० स्त्री०) ज्ञानं नाम मुद्रा। तन्त्रसारोक्त रामपूजाङ्ग मुद्राभेद, तंत्रसारके अनुसार रामको पूजाकी एक मुद्रा। इसमें दाहिने हाथकी तर्जनी और अंगूठे-को मिला कर उसको हृदयमें रखते हैं, पीछे बायें हाथको उंगलियोंको कमल सम्पुटके आकारकी करके उस सिरसे ले कर बायें जंघे तक रखा करते हैं, इसीको ज्ञानमुद्रा कहते हैं। यह ज्ञानमुद्रा रामको अत्यन्त प्रिय है। "तर्जन्यङ्गुष्ठकौ सक्तावग्रतो हृदि विन्यसेत्।

वामहस्ताम्बुजं वामजानुमूर्द्धनि विन्यसेत्॥

ज्ञानमुद्रा भवेदेषा रामचन्द्रस्य प्रेयसी।" (तन्त्रसा०)

ज्ञानयज्ञ (सं० पु०) ज्ञानं यज्ञ इव यस्य, बहुव्रो०। तत्त्वज्ञ, ब्रह्मज्ञान। कर्मयोगीमें अग्निसे यज्ञ क्रिया करते हैं किन्तु ज्ञानयोगी ब्रह्मरूप अग्निमें अपनी आत्माको ही यज्ञ करते हैं, अर्थात् ब्रह्मको अभेद जान कर तत्स्वरूप अवलोकन करते हैं। "सोऽहं ब्रह्म" मैं ही ब्रह्म हूं, सर्वदा यही देखते हैं। "ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।" कर्मयोगी इसका अनुष्ठान भी नहीं करते हैं वरं इसको घृणादृष्टिसे देखा करते हैं।

"सदाचारवतां नॄणां ज्ञानयज्ञो न रोचते।" (कन्दर्पचि०)

ज्ञानयोग (सं० पु०) युज्यते ब्रह्मणानेन युज-कर्मणि घञ्, ज्ञानमेव योगः, रूपक-कर्मधा०। ब्रह्मप्राप्तिके लिए ज्ञानरूप निष्ठाविशेष, ब्रह्मप्राप्तिका उपाय। ज्ञानयोग ही एकमात्र भगवत्प्राप्तिका द्वार है। जीव प्रतिनियत अज्ञानताके कारण प्रकृतिकी मायाके वशीभूत हो कर निरन्तर दुःख-में डूबे रहते हैं। जीव दुःखाभिभूत हो कर जब दुःख निवृत्तिका उपाय जाननेको इच्छुक होंगे, तब पहले वस्तुतत्त्व जाननेके साथ साथ कौन कौनसी वस्तुएं दुःख-मय हैं, यह सहजमें ही समझ लेंगे। फिर सुख-दुःख आदि जिसके धर्म हैं, उससे मिलनेकी इच्छा न होगी; अपने आप यथार्थ तत्त्वोंका ज्ञान हो जायगा। पीछे ज्ञानयोगके द्वारा अभीष्ट वस्तु आसानीसे प्राप्त कर सकेंगे।

संसारमें भगवत्प्राप्तिके दो उपाय हैं—एक ज्ञानयोग और दूसरा कर्मयोग। सांख्यमतावलम्बिगण ज्ञानयोग अवलम्बन कर मुक्ति पाते हैं और दूसरे कर्मयोग द्वारा मुक्त होते हैं। परन्तु कर्मयोगके विना ज्ञानयोग हो नहीं सकता। कर्म करते करते चित्तकी शुद्धि होती है, बाद-में निर्मलचित्तमें विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न होता है। विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न होने पर ज्ञानयोगके द्वारा अनायास मुक्ति हो सकती है। योग देखो।

देवने प्रसन्न हो कर उस रुद्ररूपी ईशानसे कहा- 'हे सुव्रत ईशान ! तुम्हारे इस कार्यसे हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई है, तुमसे पहले ऐसा उत्तम कार्य और किसीने भी न किया था। अब तुम वर मांगो, आज तुम्हारे लिए कुछ भी अदेय नहीं है।" 'ईशानने कहा—"भगवन् ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो हुए हैं, तो यह वर दीजिये कि जिससे यह अनुपम तीर्थ आपके नामसे प्रसिद्ध हो" यह सुन कर भगवान् विश्वेश्वरने कहा—"त्रिभुवनमें जितने भी तीर्थ हैं, उन सबमें यह ही परम शिवतीर्थ होगा। जो शिव शब्दके अर्थ पर विचार करते हैं, वे ही शिव शब्दका अर्थ ज्ञान बतलाते हैं। वह ज्ञान ही मेरी महिमासे इस स्थान पर जलरूपमें द्रवीभूत हुआ है, इसलिए मेरा यह तीर्थ ज्ञानवापीके नामसे प्रसिद्ध होगा। इसको स्पर्श करनेसे ही सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं। ज्ञानोदकतीर्थके स्पर्श करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है और इसके जलमें आचमन करनेसे अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञका फल होता है। फल्गुतीर्थमें स्नान करके पितृलोकका तर्पण करनेसे जो फल होता है इस ज्ञानतीर्थमें श्राद्ध करनेसे भी वही फल होता है। बृहस्पतिवारको पुष्यनक्षत्रयुक्त शुक्लाष्टमीमें यदि व्यतिपात योग हो तो उस दिन इस तीर्थमें श्राद्ध करनेसे उसका गया श्राद्धकी अपेक्षा कोटिगुना फल होता है। पुष्कर तीर्थमें पितृपुरुषोंका तर्पण करके जो पुण्य प्राप्त होता है, इस तीर्थमें तिलतर्पण करने पर उससे करोड़ गुने अधिक फलको प्राप्ति होती है। काशी देखो।

ज्ञानविजय यति—मन्नवमलयाचरित्र नामक ग्रन्थके प्रणेता।

ज्ञानविमलगणि—भानुमेरुके शिष्यका नाम। इन्होंने १६५४ संवत्में शब्दप्रभेदप्रकाशटीकाकी रचना की है।

ज्ञानवृद्ध (सं० त्रि०) ज्ञानमें श्रेष्ठ, जिसकी जानकारी अधिक हो।

ज्ञानशास्त्र (सं० क्लो०) ज्ञानप्रदायकं शास्त्रं, कर्मधा०। मुक्तिशास्त्र।

ज्ञानसागर—१ श्वेतांबर-जैनसम्प्रदाय तपागच्छ भुक्त देवसुन्दरके पांच शिष्योंमेंसे एक। इन्होंने आवश्यक, ओघनिर्युक्ति, श्रीमुनिसुव्रतस्तव, घनौघनवखण्डपार्श्वनाथस्तव आदि पुस्तकोंको अवचूर्णि लिखी है।

२ रत्नसिंहके शिष्य और लब्धिसागरके गुरु।

३ परमहंसपद्धतिके रचयिता।

ज्ञानसागर ब्रह्मचारी—षोडशकारणोद्यापन और त्रैलोक्यसागरपूजाके रचयिता एक जैन-ब्रह्मचारी।

ज्ञानसाधन (सं० क्लो०) ज्ञानस्य साधन, ६ तत्। १ इन्द्रिय। २ तत्त्वज्ञानसाधन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि श्रवण मननादि ज्ञान द्वारा साधित होते हैं, इसीको ज्ञानसाधन कहते हैं।

ज्ञानसिन्धुयोगीन्द्र—विष्णुसहस्रनामभाष्यटीकाके प्रणेता।

ज्ञानहत (सं० त्रि०) ज्ञानं हतं यस्य, बहुव्री०। अज्ञान। जिसका ज्ञान भ्रष्ट हो गया हो।

ज्ञानाकर (सं० पु०) ज्ञानस्य आकरः, ६ तत्। ज्ञानका आकर, बुद्ध।

ज्ञानानन्द (सं० पु०) ज्ञानमेव आनन्दः, रूपककर्मधा०। ज्ञानरूप आनन्द। मुक्तपुरुष सर्वदा ही ज्ञानानन्द भोगते हैं। वे सर्वदा ज्ञानरूपमें स्थित रहते हैं।

ज्ञानानन्द—१ शिवगीताटीकाके प्रणेता और अम्याजी भट्टके गुरु। २ सिद्धान्तमुक्तावलीके रचयिता और प्रकाशानन्दके गुरु।

३ एक श्वेताम्बर जैन साधु। संवत् १९६६में ये विद्यमान थे। इन्होंने ज्ञानविलास, और समयतरङ्ग नामक दो हिन्दी पद्य-ग्रन्थ रचे थे। कहते हैं—ये अपने आपमें लीन रहते थे और लोगोंसे बहुत कम संबन्ध रखते थे।

४ ईशावास्योपनिषट्टीका, कौलार्णव, छान्दोग्योपनिषच्चन्द्रिका, जाबालोपनिषट्टीका, तत्त्वचन्द्रटीका, तत्त्वार्णवटीका, योगसूत्रटीका, रुद्रविधानपद्धति, वाक्यसुधाटीका, सिद्धान्तसुन्दर, सौभाग्योपनिषट्टीका इत्यादि ग्रन्थोंके रचयिता।

ज्ञानानन्द कलावरसेन—अमरुशतकटीकाके प्रणेता।

ज्ञानानन्दनाथ—राजमातङ्गीपद्धतिके प्रणेता।

ज्ञानानन्द ब्रह्मचारी—एक त्यागी पुरुष और जैन-कवि। इनका जन्म मेरठ जिलेके अन्तर्गत सलावा ग्राममें सं० १९४४ के वैशाख मासमें हुआ था। इनके गुरुका नाम श्रीगोपालदास वरैया और पिताका देवीसहाय। १४ वर्ष

भी भगवद्भजनमें प्रवृत्त रहते हैं। भगवान्ने कहा है—चार तरहके आदमी मेरी आराधना करते हैं। पीड़ित, तत्त्वज्ञानेच्छु, दरिद्र और ज्ञानी इनमेंसे ज्ञानी ही सबसे श्रेष्ठ और मेरा प्रिय है। (गीता ७ अ०) शुक, नारद आदि ज्ञानी हैं, इनको किसी विषयकी कामना नहीं है फिर भी रात दिन हरिगुणानुकीर्तन किया करते हैं। ज्ञानी व्यक्तिको भी कर्म अर्थात् वर्णाश्रमधर्मोचित कार्य करना चाहिये। ज्ञानवान् व्यक्ति बहुत जन्मोंके उपरान्त भगवान्को पाते हैं। २ जिसे ज्ञान हो, जीवयुक्तमात्र, अर्थात् सामान्य ज्ञानमात्रका जीव होनेमें ही ज्ञानी होता है।

ज्ञानीराम—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने स्फुट कविता नामक ग्रन्थकी रचना की है।

ज्ञानेन्द्र सरस्वती—वामनेन्द्र सरस्वतीके शिष्य और तत्त्वबोधिनी, सिद्धान्तकौमुदी टीका तथा प्रश्नोपनिषद् भाष्यके प्रणेता।

ज्ञानेन्द्रस्वामी—ब्रह्मसूत्रार्थप्रकाशिकाके प्रणेता।

ज्ञानोत्तम—गौड़ेश्वराचार्यकी एक उपाधि।

ज्ञानोत्तममिश्र—नैष्कर्म्यसिद्धिचन्द्रिका ग्रन्थके प्रणेता।

ज्ञानोपदेश—शङ्कराचार्य प्रणीत उपदेशग्रन्थ।

ज्ञानेन्द्रिय (सं० क्ली०) ज्ञायते बुध्यतेऽनेनेति ज्ञा करणे ल्युट् वा ज्ञानप्रकाशकं ज्ञानसाधनं वा इन्द्रियं। ज्ञानसाधन इन्द्रिय, वे इन्द्रियां जिनसे जीवोंको विषयोंका ज्ञान होता है। ज्ञानेन्द्रिया पांच हैं श्रोत्रेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, दर्शनेन्द्रिय, रसना और घ्राणेन्द्रिय।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध ये पांच ज्ञानेन्द्रियके विषय हैं। श्रोत्रका विषय शब्द, त्वक्का स्पर्श, चक्षुका रूप, जिह्वाका रस और नासिकाका विषय गन्ध है। इन पांच ज्ञानेन्द्रियोंके पांच अधिष्ठाता देवता हैं, यथा—श्रोत्रके दिक्, त्वक्के वायु, चक्षुके सूर्य, जिह्वाके वरुण, नासिकाके अश्विनीकुमारद्वय। भागवत आदिमें मनको भी ज्ञानेन्द्रिय कहा है, किन्तु मन केवल ज्ञानेन्द्रिय नहीं है। इसको ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय उभयात्मक इन्द्रिय मानना ही सङ्गत है। दार्शनिकोंने "उभयात्मक मनः" इत्यादि सूत्र द्वारा मनको उभयेन्द्रिय ही प्रमाणित किया है। इन्द्रिय देखो।

ज्ञानोत्पत्ति (सं० स्त्री०) ज्ञानस्य उत्पत्तिः, ६-तत्। ज्ञानका उदय, ज्ञान होना।

ज्ञानोदतीर्थ (सं० क्ली०) ज्ञानोद इति नाम्ना विख्यात तीर्थं, कर्मधा०। वाराणसीके अन्तर्गत एक तीर्थका नाम। यह तीर्थ ज्ञानवापी नामसे प्रसिद्ध है। ज्ञानवापी और काशी देखो।

ज्ञानोदय (सं० पु०) ज्ञानस्य उदयः, ६ तत्। ज्ञानकी उत्पत्ति, अक्लकी पैदाइश।

ज्ञानोल्का (सं० स्त्री०) समाधि भेद।

ज्ञापक (सं० त्रि०) ज्ञापि-ण्वुल्। बोधक, जतानेवाला, जिससे किसी बातका पता चले।

ज्ञापन (सं० क्ली०) ज्ञा-णिच्-ल्युट्-आवेदन, जताने या बतानेका कार्य।

ज्ञापनीय (सं० त्रि०) ज्ञा-णिच् अनीय्। निवेदनीय, जो जताने या बतानेके योग्य हो।

ज्ञापयितृ (सं० त्रि०) ज्ञा-णिच् तृन्। ज्ञापक; सूचित करनेवाला।

ज्ञापकदेव—स्मृतिसारके प्रणेता।

ज्ञापित (सं० त्रि०) ज्ञा णिच् क्त। सूचित, जताया हुआ, बताया हुआ।

ज्ञाप्ति (सं० स्त्री०) ज्ञा णिच् भावे क्तिन्। ज्ञापन सूचित करनेका कार्य।

ज्ञाप्य (सं० त्रि०) ज्ञापनयोग्य जानने योग्य।

ज्ञास (सं० पु०) ज्ञा-अवबोधने ज्ञा-असुन्। ज्ञाति, गोती, भाई बन्धु।

"ज्ञास उत वा सजातान्" (ऋक् १।१०९।१)

'ज्ञासः ज्ञातयः' (सायण)

ज्ञासा (सं० स्त्री०) ज्ञातुमिच्छा, ज्ञा सन्-अ ततष्टाप्। जाननेकी इच्छा।

ज्ञास्यमान (सं० त्रि०) ज्ञा-सन् कर्मणि सानच्। जानने का इच्छुक, जिसे कोई बात जाननेकी अभिलाषा हो।

ज्ञु (वै०) जानु घुटना।

ज्ञुबाध (सं० त्रि०) घुटने टेक कर।

ज्ञेय (सं० त्रि०) ज्ञायते इति ज्ञा-कर्मणि यत्। ज्ञानयोग्य,

ज्ञातव्य, जिसका जानना योग्य हो, जानने योग्य।

इस जगत्में एकमात्र ब्रह्म ही ज्ञेय है। इस ज्ञेय पदार्थका विषय गीतामें इस प्रकार लिखा है—"हे अर्जुन! अब तुमसे ज्ञेय विषय कहता हूं, मन लगाकर सुनो। ज्ञेय पदार्थको जान लेनेसे अमृतत्वलाभ (मोक्षलाभ) हुआ करता है। इसको जाननेसे सुख दुःखादि से अतीत हुआ जा सकता है। इसका स्वरूप इस प्रकार है। वह अनादि ब्रह्म और मैं निर्विशेष हूं, वे सत् या असत् नहीं हैं। उनके हस्त, पद चक्षु कर्ण और मुख सर्वत्र विद्यमान हैं तथा वे सर्वत्र व्याप्त हैं। वे सर्व प्रकारकी इन्द्रियोंसे विहीन हैं, किन्तु इन्द्रियां भी उनके विषयोंको प्रकाशक हैं। वे सङ्गरहित पर सबके आधार स्वरूप हैं। वे गुणहीन पर सकल गुणके भोक्ता हैं। वे साधारणतः समस्त भूतके अन्तर्में रहते हैं, वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं, इसलिये अविज्ञेय हैं। वे समस्त भूतोंमें अविभक्त रह कर भी कायभेदसे विभिन्नरूपमें अवस्थिति करते हैं। वे भूतोंके स्रष्टा, पाता और संहर्ता हैं। वे ज्योतिः पदार्थकी ज्योति और ज्ञानसे अतीत हैं।

(गीता १३।१२-१७)

जितने दिन ज्ञेय पदार्थका ज्ञान नहीं होता, उतने दिन उद्धारका कोई उपाय नहीं है। परन्तु यही ज्ञेय पदार्थ है और अत्यन्त दुर्विज्ञेय है।

जहां मन और वाक्य न पहुंच सकनेके कारण लौट आते हैं, वह ही ज्ञेय-पदार्थ है। आदि सर्वकालमें जिससे इन भूतोंकी उत्पत्ति हुई है और जिसकी कृपासे जीवित रहते हैं तथा प्रलयमें जिसमें प्रलीन होते हैं वह पदार्थ ही ज्ञेय है। ब्रह्म देखो।

ज्ञेयज्ञ (सं॰ त्रि॰) ज्ञेयं जानाति ज्ञेय-ज्ञा-क। ज्ञाता ज्ञानी, ब्रह्मविद, साधु।

ज्ञेयता (सं॰ स्त्री॰) ज्ञेयस्य भावः ज्ञेय भावे तल् टाप्। ज्ञेयत्व, बोध, जाननेका भाव।

ज्मन् (वै॰) १ अन्तरीक्ष नाम। २ पृथिवी परके वर्तमान जन्तु। "मूपर ज्मनते" (ऋक् ७।२१।६) 'ज्मना पृथिव्यां वर्तमानम्' (सायण)

ज्मया (सं॰ त्रि॰) पृथिवी पर जिसकी उत्पत्ति हो। "ज्मा अत्र वस्वः" (ऋक् ७।३९।३) 'पृथिव्या भवाः' (सायण)

ज्य (सं॰ त्रि॰) ज्योष्य। बाधा देने योग्य तकलीफ देने लायक।

ज्या (सं॰ स्त्री॰) ज्या-ड ततष्टाप्। धनुर्गुण, धनुषकी डोरी। इसके पर्याय—मौर्वी, शिञ्जिनी गुण, शिञ्जा, जीवा, पतञ्चिका, गव्या, बाणासन और द्रुणा है। २ किसी चापके एक सिरेसे दूसरे सिरे तककी रेखा। ३ किसी चापके एक सिरेसे चापके दूसरे सिरे तक गये हुए व्यास पर गिरी हुई लम्ब रेखा। ४ पृथिवी। ५ माता। ६ त्रिकोणमितिमें किसी एक कोणके विचारसे एक रेखा और त्रिज्याकी निष्पत्ति।

ज्याका (सं॰ स्त्री॰) कुत्सिता ज्या ज्यायस्थात् कुत्सायां कन्। कुत्सित ज्या, खराब धनुषकी डोरी।

ज्याघातवारण (सं॰ क्ली॰) ज्याया आघात वारयत्यनेन करणे वारि ल्युट्। धनुर्वेदोक्त हस्तविषयकचर्मविशेष, वह चमड़ा जो धनुष चलानेवाले योद्धाओंके हाथमें बंधा रहता है।

ज्याघोष (सं॰ पु॰) ज्याया घोषः, ६-तत्। ज्या शब्द, धनुषकी टङ्कार।

ज्यादती (फा॰ स्त्री॰) अधिकता अधिकाई, बहुतायत।

ज्यादा (फा॰ क्रि॰ वि॰) अधिक, बहुत।

ज्यान (सं॰ स्त्री॰) उत्पीड़न नुकसान हानि, घाटा।

ज्यानि (सं॰ स्त्री॰) ज्या-नि। ग्लाज्याहाभ्यो नि। उण् ४।४८। १ वयोहानि, उम्रकी घटती। २ तटिनी नदी। ३ जीर्ण, बुढ़ापा।

ज्यामिति (सं॰ स्त्री॰) गणितशास्त्र कई एक भागोंमें विभक्त है। भिन्न भिन्न विभागसे हम लोग भिन्न भिन्न विषयोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जिसके द्वारा हम लोग भूमि-परिमाण सम्बन्धीय विषय मालूम कर सकते, उसे साधारणतः ज्यामिति कहते हैं। ज्या = पृथिवी (भूमि) एवं मिति = परिमाण। इन दो शब्दोंसे ज्यामिति शब्द बना है। अङ्गरेजी भाषामें इसे Geometry कहते हैं। geo = earth एवं metron = measure इन दो शब्दोंसे Geometry की उत्पत्ति हुई है। ज्यामिति द्वारा विशेष विशेष स्थान या क्षेत्रके भिन्न भिन्न अंशोंका परस्पर सम्बन्ध ज्ञात जाता है। इसमें रेखा कोण, सम तल और घनपरिमाण आदिका विषय निरूपण किया

जाता है। ज्यामिति नाना भागोंमें विभक्त है, यथा—समतल और घन ज्यामिति, व्यवच्छेदक वा बैजिक ज्यामिति, चित्रज्यामिति (Descriptive Geometry) और उच्चतर ज्यामिति। समतल और घन ज्यामितिमें सरल रेखा, समतल क्षेत्र एवं उसीका घन परिमाण और वृत्तका विषय वर्णित है। उच्चतर ज्यामितिमें सूचीच्छेद, वक्ररेखा और उसीकी क्षेत्रावलीका विषय आलोचित है और चित्रज्यामितिमें परिलेखादिका नियम दिखलाया गया है। दो समतल क्षेत्रके ऊपर किसी घन क्षेत्रके तत्त्वादिका अनुशीलन करना ही ज्यामितिके एक विभागका उद्देश्य है। चित्रज्यामिति द्वारा अनेक कार्य बहुत आसानीसे सम्पन्न होता है। इसकी कार्यकारिता भी अनेक है। जब कोई समतलक्षेत्र किसी दूसरे क्षेत्रमें प्रविष्ट हो, तब दोनोंके परस्पर समतलसे द्विरावृत्त वक्ररेखा उत्पन्न होती है। गुम्बज बनानेके समय चित्रज्यामितिसे अधिक सहायता मिलती है। इसके द्वारा गुम्बजकी उपयोगी बना कर पत्थर आदि काटा जा सकता है।

बैजिक ज्यामिति डेकार्ट (Descartes)-से उद्भावित हुई है। बैजिक-ज्यामिति द्वारा ज्यामितिक क्षेत्रमें बीज गणित और सूक्ष्ममान गणितके नियमादि प्रयोग किये जाते हैं। बैजिक-ज्यामिति कभी कभी व्यवच्छेदक-ज्यामिति नामसे भी पुकारी जाती है। इसके द्वारा सम तल और वक्रक्षेत्रका हाल मालूम हो जाता है।

ज्यामितिका युक्तिके साथ अत्यन्त निकट सम्बन्ध है। पहले केवल ज्यामिति-शिक्षासे प्रकृतरूपमें चिन्ता और युक्तिका अनुशीलन होता था।

ज्यामितिकी उत्पत्तिका निर्णय करना अत्यन्त दुःसाध्य है। जो कुछ हो, इस सम्बन्धमें हम लोग निम्नलिखित बातें जानते हैं।

हिरोडोटस (Herodotus) कहते हैं, कि १४१६ १३५० खृ० पू०में सिसोसत्रिस (Sesostris)के शासनकालको मिस्र देशमें इस विद्याकी प्रथम उत्पत्ति हुई। मिस्रकी प्रजाके ऊपर कर लगानेके लिये सभीके अधिकृत भूपरिमाणका निश्चय करना आवश्यक जान पड़ा। उन लोगोंकी जमीन नापनेके लिये ज्यामितिका प्रथम सूत्रपात हुआ। किन्तु इजिप्त या काल्डीयवासियोंका इस सम्बन्धमें कोई लिखित वृत्तान्त नहीं है।

कोई कोई कहते हैं, नील नदीकी बाढ़से प्रति वर्ष इजिप्तवासियोंकी जमीनका सीमा-निदर्शन विलुप्त हो जाता था। उनको अधिकृत जमीनकी सीमा अन्ततः जिससे उन्हें सदा याद रहे, उसके लिये भूमिको सीमा-निर्णायक किसी विद्याके आविष्कार करनेमें वे बाध्य हुए थे। यही विद्या क्रमशः परिशोधित और परिस्फुट हो कर वर्त्तमान ज्यामितिमें परिणत हुई है।

दूसरे उपाख्यानसे हम लोगोंको पता लगता है कि भूमि निर्द्धारण करनेके लिये देवताओंने मनुष्योंको इस विद्याकी शिक्षा दी है।

प्रोक्लस् (Proclus) इउक्लिडकी टीकामें लिखा है, कि प्रसिद्ध ज्यामितिविद् थेल्स (Thales) ने मिस्रसे सीख कर ग्रीसमें इस विद्याका प्रचार किया। शीघ्रही ग्रीसमें इस विद्याका यथेष्ट आदर होने लगा। ग्रीकगण एकान्त आग्रहके साथ इसके अनुशीलनमें प्रवृत्त हुए। थेल्स्के अनेक शिष्य हो गये थे। पिथागोरस (Pythagoras)ने सबसे अधिक उन्नति साधन की है। ये ही सबसे पहले ज्यामितिको युक्तिमूलक वैज्ञानिक सोपानमें लाये। पिथागोरसने ज्यामितिकी बहुतसी प्रतिज्ञा आविष्कार की है। इउक्लिडके प्रथम अध्यायकी ४७वीं प्रतिज्ञा इनके अनुशीलनका फल है। पिथागोरसके बाद बहुतसे पण्डितोंने इस कार्यमें हस्तक्षेप किया था, उनमेंसे क्लाजोमेनिके आनक्सगोरस (Anaxagoras of Clazomenea) ब्रिसो (Briso), आण्टिफो (Antipho), चियसके हिपोक्रेटिस (Hippocrates of Chios), जेनोडोरस (Zenedorus), डिमोक्रिटस (Democritus), साइरिनके थियोडोरस (Theodorus of Cyrene) तथा इनोपिडिस (Enopidis) प्रधान हैं। प्लेटो (Plato) कहते थे, कि ज्यामिति सब विज्ञानका प्रधान और उच्चतर विज्ञानमें प्रवेशका सोपानस्वरूप है। आथेन्स (Athens) नगरमें उनके विद्यालयके प्रवेश-द्वार पर निम्नलिखित उत्कीर्ण शिलालेख देदीप्यमान था—'ज्यामिति-अनभिज्ञ कोई व्यक्ति इसके अभ्यन्तर प्रवेश न करे" ये ज्यामितिकी विश्लेषण प्रणाली ज्यामितिक अवस्थिति और सूचीच्छेदके आविष्कर्त्ता हैं। इस समय इसी सूचीच्छेदक

का उन्नतर ज्यामिति मानते थे। प्लेटोके अनेक शिष्योंने ज्यामितिकी बहुत उन्नति की है—बहुतोंने ज्यामितिक पुस्तक लिखी हैं किन्तु वे अभी नहीं मिलती हैं। इनके शिष्योंमेंसे दो बहुत प्रधान हैं—इउडोक्स (Eudoxus) और अरिष्टटल (Aristotle)। इउडोक्स (Eudoxus)ने इउक्लिडके पञ्चम अध्यायमें वर्णित मत्त्व-पात नियमके आविष्कारक अरिष्टटल और उनके दो शिष्य थियोफ्रास्टस (Theophrastus) एवं इउडेमसने (Eudemus) ज्यामिति सम्बन्धमें एक पुस्तक लिखी है। इउडेमसका अनुमान है कि प्रोक्लामने उनके अनेक तथ्य संग्रह किये हैं। अटोलिकस (Autolycus)ने गतियोग वक्र या इसके सम्बन्धमें एक पुस्तकको रचना की है। कहते हैं कि इउक्लिडके सिवा प्रसिद्ध अरिष्टिअस (Aristaeus)ने सूचीच्छेदका विषय और ज्यामितिक उनमें ज्ञका अवस्थिति विषय पांच अध्यायोंमें लिखा था। इस पुस्तकका एक अंश भी अभी नहीं मिलता है।

इउक्लिडने ज्यामितिक जगत्‌में एक युगान्तर उपस्थित किया है। इउक्लिडके नाम और ज्यामितिमें परस्पर सम्बन्ध है—एकके कहनेसे दूसरा आपसे आप समझ आ जाता है। अनन्त इउक्लिड को यूरोपीय ज्यामितिके व्यापक कहते हैं। उनके पूर्ववर्ती ग्रन्थकारगण अपनी पुस्तकमें अनियमित रूपसे जो समस्त तत्त्व आविष्कार कर गये हैं, इउक्लिडने उनका सार संग्रह कर सुश्रृङ्खलाभावसे ज्यामितिका पत्तन किया है। इउक्लिडने जिस तरह अभी ग्रीक रूपमें ज्यामिति शास्त्रका प्रवर्त्तन किया है, आज तक किसीने उस तरहका न्यायपुण्य और अर्थयत्नका प्रदर्शन नहीं किया है। उनके पहले ग्रीस और इजिप्टमें जो सब ज्यामितिक प्रतिज्ञा आविष्कृत हुई थी, इउक्लिडने उन्हें संग्रह कर आदर्श न्याययुक्त और शृङ्खलाके साथ भिन्न भिन्न अध्यायमें विभक्त किया है।

इउक्लिडका जन्म कहां हुआ था, यह निश्चय नहीं है। वे अलेकसेन्द्रियाके (Alexandria) एक विद्यालय स्थापन कर बहुतसे लोगोंको गणितकी शिक्षा देते थे। इस समय अलेकसेन्द्रियामें टलेमी सोटर (Ptolemy Soter, first) राज्य करते थे। इउक्लिडके अधिकांश शिष्य ग्रीकवासी है। वे ३०० ई०के पहले विद्यमान थे।

कहा जाता है, कि जो गणित पढ़ते थे उन्हें इउक्लिड मसलन सोच करते। इन्होंने कई एक पुस्तक लिखी हैं।

(१) ज्यामिति-सम्बन्धीय त्रुटि निकालनेके लिये व्यावहारके सम्बन्धका एक ग्रन्थ। यह पुस्तक अभी अप्राप्य है। (२) सूचीच्छेदके चार अध्याय। अपोलोनियसने (Apollonius) इस पुस्तकको यथेष्ट उन्नति साधन कर और भी चार अध्याय संयोजित किये हैं। किन्तु इउक्लिडने इस पुस्तककी रचना की है या नहीं इस सम्बन्धमें प्रोक्लसने कुछ भी उल्लेख नहीं किया है।

(३) विभाग सम्बन्धीय पुस्तक। इस पुस्तकमें भिन्न भिन्न प्रकारके समतलका विषय लिखा है।

(४) हैरिसमनोक (Porisms)। यह तीन अध्यायमें विभक्त है।

(५) Locorum and superficium

(६) दृष्टिविज्ञान और प्रतिबिम्बदर्शनविद्या।

(७) ज्योतिर्विज्ञानविषयक दृष्टि। इसमें सम्पूर्ण सम्बन्धीय ज्यामितिक मत आलोचित हुआ है।

(८) क्रमविभाग एवं लयप्रवेग दूसरी पुस्तकमें लिखे हुए मनका अन्य पुस्तकमें ज्यामितिके नियमानुसार प्रतिपाद किया गया है। कोईके कोई कोई कहते हैं कि यह पुस्तक इउक्लिडको लिखी नहीं है।

(९) सौक्रतसिद्धान्तमी। प्रोक्लके जितने ज्यामितिक निर्दिष्टके ग्रन्थ हैं, उनमें यही प्रधान है। प्रोक्लसके शिष्य मेरिनस (Marinus)ने इस पुस्तकको भूमिकामें सौक्रत और प्रयोजन विषयका पाठ कर निर्देश किया है।

(१०) उपक्रमणिका (ज्यामितिक)। यह ज्यामितिक उपक्रमणिका सर्वाङ्गसुन्दर नहीं है। इसमें कहीं कहीं कुछ दोष भी झलकता है। इस तरहके कई एक स्वयंसिद्ध हैं। उन्हें प्रकृतपक्षमें स्वयंसिद्ध नहीं कह सकते।

कई जगह जो प्रमाणसापेक्ष है तथा प्रमाण भी किया जा सकता है, वह स्वीकार कर लिया गया है,—जिस तरह स या निर्दिष्टमालाने लिखा है कि हरएक व्यास वृत्त क्षेत्रको समान दो भागोंमें विभक्त करता है। यह स्वयं सिद्ध द्वारा प्रमाण किया जा सकता है। कहीं कहीं

बाहुल्य दोष भो देखा जाता है। प्रथम अध्यायकी छठो प्रतिज्ञा उस स्थान पर नहीं लिखने पर भी काम चल सकता था। यही प्रतिज्ञा फिर परोक्षभावमें १८ प्रतिज्ञा रूपमें प्रमाण की गई है। इउक्लिडने कोणको जैसो संज्ञा और जिस तरह उसका व्यवहार किया है, उसमें तीसरे अध्यायको २१ प्रतिज्ञा असम्पूर्ण रह गई हैं। किन्तु उनके निर्देशानुसार चलनेसे २१वीं प्रतिज्ञा २२वींकी सहायताके विना प्रमाण नहीं की जा सकती। जो कुछ हो, इस पुस्तकमें शुद्धताका उच्च आदर्श दिखलाया गया है। यथार्थ एवं प्रयोजन-कल्पना सम्बन्धमें निश्चित एवं अल्प वर्णता, शृङ्खलाका स्वाभाविक नियम, भ्रान्तसिद्धान्तका पूर्ण अभाव तथा प्रथम शिक्षार्थियोंके उपयोगी युक्तिवद्ध प्रमाणादिके लिये यह पुस्तक सभीके निकट अत्यन्त आदरणीय हो गई है।

इउक्लिडने इस पुस्तकके १३ अध्याय लिपिवद्ध किये थे, शेष दो अध्याय अलेकजेन्द्रियाके हिपसिक्लिस (Hypsicles of Alexandria)ने संयोजित किये हैं। कोई कोई हिपसिक्लिषको २री शताब्दीमें और कोई ६ठी शताब्दीमें विद्यमान बतलाते हैं।

प्रथम अध्यायमें समतलक्षेत्रसम्बन्धोय ज्यामितिको आवश्यक संज्ञा और स्वीकार्य विषय दिये गये हैं। अन्यान्य अध्यायमें भो बहुतसी संज्ञा हैं। जिन सरलरेखा और त्रिभुजके साथ वृत्त अथवा अनुपातका कोई संस्रव नहीं है, उसका विषय इस अध्यायमें लिखा है। पिथागोरसको विख्यात प्रतिज्ञा इस अध्यायमें सन्निविष्ट है। इसके सिवा असीम सरलरेखा और निर्दिष्ट केन्द्रविशिष्ट और निर्दिष्ट स्थानव्यापक वृत्तके विषय लिखे हैं। इस अध्यायमें देखा जाता है कि, कम्पास और रूल (ruler) ज्यामितिका आनुषङ्गिक पदार्थ है।

इउक्लिडने दूसरे अध्यायमें विभक्त सरलरेखाके ऊपर अङ्कित समचतुर्भुज और आयतक्षेत्रका विषय वर्णन किया है। पाटीगणित और ज्यामितिका प्रयोग इस अध्यायमें दिखलाया गया है। असमकोण त्रिभुजके पक्षमें पिथागोरसको प्रतिज्ञा किस तरह परिवर्त्तन होती है, यह भो इस अध्यायमें देखा जाता है। इस अध्यायसे वोजगणितके अनेक नियम सोखे जा सकते हैं।

३रे अध्यायमें पहले अध्यायके द्वारा अनुमेय त्रिभुजको गुणावली वर्णन की गई है।

४र्थ अध्यायमें केवल वृत्तकी सहायतासे अङ्कित समस्त नियमित (समबाहु और समकोणविशिष्ट) पञ्चभुज, षड्भुज, पन्द्रह भुजविशिष्ट क्षेत्रका विषय वर्णित हैं।

५वें अध्यायमें आयतनका अनुपात लिखा है।

६ठे अध्यायमें इउक्लिडने ज्यामितिक चित्रमें अनुपातका प्रयोग और सदृशचित्रका विषय वर्णन किया है।

७वें अध्यायमें पाटीगणितकी संख्या आलोचित है तथा दो राशिका महत्तम समापवर्त्तक और लघुतम समापवर्त्य निकालनेको प्रणाली और मूलराशिका तत्त्व प्रमाणित हुआ है।

८वें अध्यायमें ग्रन्थकारने दो अखण्ड राशियोंमें २ पूर्ण मध्य अनुपात स्थापनकी सम्भावना दिखला कर क्रमिक और मध्य अनुपातको आलोचना की है।

९वें अध्यायमें वर्ग और घनसंख्या (plane and solid numbers) और दो या तीन पूरिताङ्कविशिष्ट संख्याका विषय वर्णित है। इस अध्यायमें क्रमिक, अनुपात और मूल राशिका उल्लेख देखा जाता है। इसमें मूल राशिकी असम्यता और पूर्णसंख्या निकालनेकी प्रणाली दिखलाई गई है।

दशवें अध्यायमें ११७ प्रतिज्ञा देखो जाती हैं। इस अध्यायमें कई एक असम गुणनीयकको आलोचना को गई है। इसमें इउक्लिडने दिखलाया है, कि वीजगणित छोड़ कर ज्यामिति द्वारा भो अनेक कार्य हो सकते हैं। किन्तु वीजगणितमें व्युत्पन्न व्यक्तिके सिवा दूसरा कोई भी पढ़नेका अधिकारी नहीं है। यह अध्याय गणितके इतिहास रूपमें पढ़ने योग्य है।

११वें अध्यायमें उन्होंने घन (Solid) ज्यामिति अर्थात् भिन्न भिन्न सरलरैखिक और घनक्षेत्रविशिष्ट (Plane and solid figures) ज्यामितिकी संज्ञा निर्देश की है। इस अध्यायमें सरलरैखिक क्षेत्रके छेद और छह सामन्तरालिक क्षेत्रवेष्टित घनक्षेत्रका विषय आलोचित हुआ है।

१२वें अध्यायके छेदित घनक्षेत्र, क्षेपणी, नलाकृति और मोचाकृति क्षेत्रका विषय जाना जा सकता है।

किसो ईसाई संन्यासोने इउक्लिडकी उपक्रमणिकाका पहले लेटिन भाषामें अनुवाद किया था। ग्रोकभाषामें इस उपक्रमणिकाको अनेक हस्तलिपि हैं।

सिमसन प्लेफियर आदि पण्डितोंने प्रथम ६अध्याय और ग्यारह तथा बारह अध्यायका अनुवाद किया है।

प्राचीन कालमें इउक्लिडके जितने अनुवाद हुए थे, उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

१। समस्त इउक्लिडका संस्करण।

यह १५०५ई०में भिनिस नगरमें बारथलमिउ ज्याम-वार्टिसे लेटिन भाषामें अनुवादित हुआ था। १७०३ ई-में डेभिड ग्रिगोरिने ओकसफोर्ड यन्त्रमें जो पुस्तकें मुद्रित कीं वही सबसे उत्कृष्ट है।

२। ग्रीक संस्करण। (क) प्रोक्लसकी टोका सहित १५३३ ई०में, (ख) पारिस संस्करण (ग) वार्लिन संस्करण।

३। लेटिन संस्करण। (१ कम्पनामका संस्करण १४८२ ई०में। (२) द्वितीय संस्करण १४८१। ३) अरबो भाषासे अनुवाद, कम्पनाम और ज्यामवार्टिका अनुवाद और टीकासहित। (४) लुकाशका संस्करण (भिनिस)। ४ यूरोपीय प्रचलित भाषाका अनुवाद।

(क) अंगरेजो संस्करण। १५७० ई० लण्डन नगर, पुन १६६१ ई०। (ख) फ्रान्सीसो-पारिस १५६५, पुनः संस्करण १६२३। (ग) जर्मन १५६२।१५५५ ई०में ७से ८ अध्याय अनूदित हुआ था।

(घ) इतालीय १५४३। (ङ) ओलन्दाज १६०६ किंवा १६०८। (च) सुइस १७५३। (छ) स्पेनीय १६७३ ई०।

साधारणतः इउक्लिडका प्रथम छह अध्याय और ग्यारह अध्याय पढ़ाये जाते हैं। बहुत दिनोंसे यह नियम चला आ रहा है। शेष अंशका अध्ययन करना हो, तो विलियमसनका अंग्रेजी अनुवाद और हर्सिलका लेटिन अनुवाद पढना उचित है। बहुतोंने इउक्लिडका संस्करण निकाला है। पर यहां सभोका नाम लिखना अनावश्यक है।

आर्किमिडिस, अपलोनियस, थियन प्रभृति पण्डितोंने ज्यामितिका उन्नतिसाधन किया है। आलेकजेन्द्रिया नगरमें ही इस विद्याकी उत्पत्ति हुई है और इसो स्थानमें इसकी उन्नति भी है। ६४० ई०में जब सारासनों ने (Saracens) उक्त नगर अधिकार किया, उस समय तक भी वह नगर ज्यामितिके गौरवसे गौरवान्वित था। गोलमिति अर्थात् जगामितिका जो अंश ज्योतिर्विद्याके साथ संसृष्ट है, उसने हिपरकस (Hipparchus), मेनेलस (Menelaus), थियोडोसियस (Theodosius) तथा टलेमि(Ptolemy) पण्डितोंसे उत्कर्ष लाभ किया है।

नोचे ग्रोसके जगामितिकारोंके नाम और उनके जीवन के मध्यभागके समय दिये जाते हैं।

थेलस—६०० ई०से पहले अमिरिस्तास, पियागोरस ५५०, अनाक्सोगोरस, इनोपाइडिस, हिपोक्रेतिस ४५०, थियोडोरस, आर्किटस लिवडेमस थिटेटस, अरिसटियस ३५०, पार्सियस प्लेटो ३१०, मेनेकमस, डिनोसत्रस, इउडकसस, नियोक्लाइडिस, लियन, अमिक्लस थियुडियस, सिजिपिनस, हारमोटिमस, फिलिपस, इउक्लिड २८५, आर्किमिडस २४०, अपलोनियस २४०, इराटोसथनिस २४०, निकोमाउस १५०, हिपारकस १५०, हिपासिक्लिस १३०, गेमिनस १००, थियाडोसियस १००, मिनेयस ई०, टलेमि १२५, पपास ३८० सिरिसन ३८०, डाइयोक्लिस, प्रोक्लस, ४४०, मेरिनस, हेसिडोरस, इउटोसियस ५४०।

सरल रेखा, वृत्त और सूचीच्छेदके पहले और दूसरे पर्यायमें वीजगणितका नियम प्रयुक्त हो सकता है तथा इस नियमसे सरलरेखा आदि विषयका तत्त्व बहुत आसानीसे आविष्कार किया जा सकता है। थोड़े समय तक उक्त नियमसे ही कार्यकलाप निर्वाहित होता था, किन्तु सब समय जगामितिको कठिन युक्तिके प्रति वैसा लक्ष्य नहीं किया जाता था। पीछे मञ्ज (Monge,)ने चित्र जगामितिका आविष्कार किया। परिप्रेक्षित विद्या और जगामितिके किसो किसी विषयमें वीजगणित निरपेक्ष भावमें रेखा, कोण और क्षेत्रफल निर्णय करनेकी आवश्यकता हुई थो। चित्रजगामितिने इस अभावको बहुत कुछ दूर कर दिया है। चित्रजगामितिको सहायतासे ऊपरके भागका चित्र और उन्नतताके परिमाण द्वारा अट्टालिकाकी आकृति तथा परिसर स्थिर किये जा सकता है। समकोणविशिष्ट दो समतल क्षेत्रके ऊपर किसी विन्दुका परिलेख रहनेसे, उस विन्दुकी अवस्थिति भी जानी

जा सकती है। सुतरां दो समतल क्षेत्रके ऊपर किसी घनको पतित नहीं मान सकनेसे किसी एक समतल क्षेत्रके ऊपर उस घनके किसी विभागके सदृश क्षेत्र अङ्कित किया जा सकता है। यदि वह विभाग बन्द हो तब असामन्त बहुतसे बिन्दुओंसे क्षेत्र अङ्कित किया जाता है। मङ्गको बनाई हुई चित्रज्यामितिमें यह विषय साफ तौरसे दिखलाया गया है।

चित्रज्यामितिके आविष्कार होनेके बाद ज्यामिति विद् पण्डितगण परिप्रेक्षके उन्नति साधनके विषयमें यत्नशील हुए। वे चित्रविद्या और सूचीफलके सायनिक नियमके विषयमें मनोयोगी हुए। सबके समयमें भी चित्रज्यामिति क्रमशः उन्नतिलाभ कर रही है। विशुद्ध (Pure) ज्यामितिको कोई विशेष उन्नति नहीं हुई।

पूर्व समयमें लोगोंकी धारणा थी कि पाटीगणित और ज्यामिति ही गणितशास्त्रकी प्रधान दो शाखा हैं। जब उन्होंने स्थान और संख्याके विषयमें ज्ञानलाभ किया था, तब वे पाटीगणित और ज्यामिति अध्ययन करनेमें समर्थ हुए थे। पहले ही कहा जा चुका है कि ज्यामिति कई एक भागोंमें विभक्त है। विशुद्ध ज्यामितिमें केवल सरलरेखा और वृत्तका विषय लिखा गया है। इसमें समतलके ऊपर अङ्कित घनक्षेत्र वृत्त, सूची और नन्याकृति क्षेत्र तथा उनकी रैखिकक्षेत्रका विषय भी आलोचित हुआ है।

इउक्लिडके जीवितकालसे आज तक बहुतसे पण्डित ज्यामिति अध्ययन कर रहे हैं, और बहुत टीका टिप्पणी, अनुमोदन आदि द्वारा इउक्लिडको ज्यामितिको नूतन आकारमें बना दी है। किसमन साहबने इउक्लिडकी ही आकार बना कर एक नूतन आकारमें ज्यामिति प्रचलन की है। किन्तु इउक्लिडको उपक्रमणिका जैसी मार्जित और सुबोध है, वैसी एक भी पुस्तक नजर नहीं आती।

इउक्लिडके बाद ही लिजेण्डर (Legendre)-की ज्यामितिका नाम सर्वथायोग्य है। लिजेण्डरकी ज्यामिति पढ़नेसे इउक्लिडकी उपक्रमणिकाकी अपेक्षा ऊँचे विषयमें ज्ञानलाभ होता है।

ज्यामिति ग्रन्थमें भिन्न भिन्न प्रकारके समतल, रेखा और घनक्षेत्रकी कल्पना की जा सकती है। किन्तु ज्यामितिको उपक्रमणिकामें सरलरेखा वृत्त अङ्कित क्षेत्र घनक्षेत्र, गण्डाकृति गोलाकृति और वर्तुलाकृति क्षेत्रका विषय वर्णित है। इसी कारण ज्यामिति दो भागोंमें विभक्त है, प्रथम भागमें समतलके ऊपर अङ्कित क्षेत्र दूसरे भागमें घनक्षेत्र अङ्कन और उसकी भिन्न भिन्न शाखाका विषय लिखा है।

पृथिवीके किस देशमें किस जातिके लोगोंसे ज्यामिति शास्त्र आविष्कृत हुआ है इसका निर्णय करना अत्यन्त दुःसाध्य है। मिसरटगण जब धर्मप्रचार करनेके लिये योनदेशमें पहले पहल आये हुए थे तब उन्होंने योन वासियोंका ध्यान सम्बन्धीय ज्ञानका सम्यक् विकाश देखा था। सम्बोध भिन्नुकका विशेष कर्म एवं परिमितका कुछ अंश उन्हें अवगत था। गविल (Ganbil) कहते हैं कि ईसाके २०६ वर्ष पहले जितनी लिखी हुई पुस्तकें पाई जाती हैं उनमेंसे केवल एक पुस्तकको ज्यामितिक पुस्तक कह सकते हैं।

इस विषयमें हिन्दुओंका उत्कर्ष देखा जाता है। जिस समय यजुर्वेदके क्रियाकाण्डका पूरा प्रादुर्भाव था, उस समय आर्यऋषियोंको परिमाणवत यज्ञवेदीके निर्माणके लिये ज्यामितिका प्रयोजन पड़ा था। उस प्राचीन आर्य-ज्यामितिका मूल सूत्र हम लोग बौधायन प्रभृति ऋषियोंके बनाये हुए शुल्वसूत्र ग्रन्थमें पाते हैं। क्षेत्र व्यवहार और शुल्वसूत्र देखो।

विख्यात ज्योतिर्विद् मद्दरदोचितने शुक्लयजुर्वेदीय शतपथब्राह्मणका एक अंश उद्धृत कर प्रमाण किया है कि शतपथका वह अंश ईसाके प्रायः १००० वर्ष पहले रचा गया है। शतपथ ब्राह्मण कात्यायनश्रौतसूत्र प्रभृति यजुर्वेदीय ग्रन्थोंमें वेदी निर्माणकी आवश्यकता लिपिबद्ध है। इस तरह ज्यामिति वा शुल्वसूत्रका मूल विषय जो प्राचीनकालमें ही आर्यऋषियोंके मनमें उदय हुआ था इसमें कुछ भी नहीं है। परन्तु योनदेशमें पहले इस शास्त्रकी जैसी उन्नति हुई थी, भारतवर्षमें उस तरहकी आज तक नहीं हुई है।

ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्यके ग्रन्थोंमें परिमितिकी अच्छी आलोचना की गई है। तीन बाहुका परिमाण

मालूम रहनेसे त्रिभुजका क्षेत्रफल निकालनेका नियम पहले ग्रन्थमें पाया जाता है। परिधि और व्यासके सूक्ष्म अनुपातसे (३.१४१६:१) भास्कराचार्य जानकार थे। ब्रह्मगुप्तने ३.१६:१ अनुपातका कल्पना की थी। यूरोपमें प्रथमोक्त सूक्ष्म अनुपात बारहवीं शताब्दीके परवर्त्ति कालमें प्रचलित हुआ था। यह अनुपात मुसलमानोंने हिन्दुओंसे सीखा था। बाद यूरोपीयगण इस विषयमें अवगत हुए। फलत भारतीय ग्रन्थोंमें बहुतसी मौलिकता देखी जाती है। यद्यपि भारतमें जयामितिके प्रथम अनुशीलनका निश्चित समय पता नहीं चलता है, तोभी वीजगणित और पाटीगणितका दूशमिक अंश जैसा भारतवर्षमें आविष्कृत हुआ है, वैसाही भारतवासियोंने जयामिति भी आविष्कार की है। वैदिक शुल्वसूत्र पढ़नेसे एक तरहका निश्चय किया जाता है, कि भारतमें ही पाश्चात्य जयामितिका एक प्रकारका सूत्रपात हुआ था।

कोई कोई कहते है, कि सबसे पहले बाबिलन देश तथा इजिप्तमें जयामितिकी उत्पत्ति हुई है। किन्तु इस कल्पनाका कोई विश्वासयोग्य प्रमाण नहीं मिलता है। यहूदियोंके ग्रन्थमें भी जयामितिका कोई उल्लेख नहीं है। ग्रीकगणने इजिप्त, भारतवर्ष अथवा दूसरे देशसे जयामितिका ज्ञान प्राप्त किया था, यह निश्चितरूपसे कहा नहीं जाता। भास्कराचार्य प्रणीत 'रेखागणित' हिन्दुओंका एक जयामिति ग्रन्थ है। जयामितिका (quadrature of the circle) विषय चीनगण ईसवी कालके बहुत पहलेसे जानते थे। यूरोपवासियोंमेंसे आर्किमिडिस सबसे पहले इस विषयकी आलोचनमें प्रवृत्त हुए थे।

ज्यायस् (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः वृद्धो वा इति प्रशस्य वृद्ध-वा ईयसुन् ज्यादेशश्च। ज्यायादीयसः। पा ६।४।१२०। १ वृद्धतम, बुढापा। इसके पर्याय—वर्षीयान्, दशमी, प्रशस्य, प्रवितवृद्ध और दशमीस्थ है। २ जीर्ण, पुराना। ३ प्रशस्त, बढ़िया, उमदा।

ज्यायिष्ठ (सं० त्रि०) ज्येष्ठ, बड़ा।

ज्यावाज (स० पु०) बलवान् धनु, मजबूत धनुष।

ज्येष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन वृद्धः प्रशस्यो वा-वृद्ध-वा प्रशस्य इष्ठन् ततो ज्यादेशः। १ अतिवृद्ध, बड़ा बूढ़ा। २ प्रशस्त उत्तम, बढ़िया। ३ अग्रज भ्राता, बड़ा जेठा। (पु०) ४ ज्येष्ठ मास, जेठका महीना। ५ परमेश्वर। "ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः।" (विष्णुस०) ६ प्राण। ७ ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्त वर्ष, वह वर्ष जिसमें वृहस्पतिका उदय ज्येष्ठा नक्षत्रमें हो। यह वर्ष कंगनी और मावांके अतिरिक्त दूसरे अन्नोंके लिये हानिकारक माना गया है। इसमें राजा पुण्यात्मा होता है। (वृहत्सं०) ८ सामगानका एक भेद।

ज्येष्ठतम (सं० त्रि०) अतिशयेन ज्येष्ठः ज्येष्ठतमः। अत्यन्त ज्येष्ठ इन्द्र। "सता ज्येष्ठतमा" (ऋक् १।१६।१) 'ज्येष्ठतमाय अतिशयेन ज्येष्ठाय इन्द्राय' (सायण)

ज्येष्ठता (सं० स्त्री०) ज्येष्ठ भावे तल्। १ ज्येष्ठत्व, श्रेष्ठता। २ ज्येष्ठ होनेका भाव, बड़ाई। गर्भमें यमज सन्तान होने पर जो पहले प्रसूत होगा, वही बड़ा कहलायगा। स्त्रियोंमें ज्येष्ठता नहीं है। "ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः" (मनु० ९।१२४)

ज्येष्ठतात (सं० पु०) तातस्य ज्येष्ठः, ६ तत्, राजदन्तादित्वात् पूर्वनिपातः। पिताके ज्येष्ठ भ्राता, बापके बड़े भाई।

ज्येष्ठताति (सं० त्रि०) ज्येष्ठ, बड़ा।

ज्येष्ठतीयाम्ल (सं० क्ली०) काञ्जिक, कांजी।

ज्येष्ठत्व (सं० क्ली०) ज्येष्ठ भावे त्व। ज्येष्ठता, जेठ होनेका भाव, बड़ाई।

ज्येष्ठपाल (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा। (राजतरंगिणी ८।१४४९)

ज्येष्ठपुष्कर (सं० क्ली०) ज्येष्ठं प्रशस्यं पुष्करं, कर्मधा०। पुष्करतीर्थ।

"पुष्करं ज्येष्ठमागम्य विश्वामित्रं ददर्श ह।" (रामा० १।६२।२)

पुष्कर देखो।

ज्येष्ठवला (सं० स्त्री०) ज्येष्ठाख्या वला, मध्यपदलोपि-कर्मधा०। महदेवी लता।

ज्येष्ठराज—अत्यन्त ज्येष्ठ, सबसे उत्तम।

ज्येष्ठवर्ण (सं० पु०) वर्णानां ज्येष्ठः वर्णेषु ज्येष्ठो वा ६।७-तत्, राजदन्तादित्वात् पूर्वनिपातः। ब्राह्मण। सब वर्णोंमें ब्राह्मण ही एकमात्र श्रेष्ठ हैं।

तरोई, केला और तुम्बी खाता हो, तुम उसीके घरमें वास करो और उसे सदा दुःख पहुंचाती रहो। इस तरह तुम कलियुगको वल्लभा हो कर सुखसे विचरण करो। इतना कह कर देवगण उन्हें विदा कर पुनः समुद्र मथने लगे। (पद्मपुराण उत्तरखंड)

लिङ्गपुराणमें लिखा है कि समुद्र मथनेके समय लक्ष्मीके पहले इनकी उत्पत्ति हुई, किन्तु जब देवासुरोंमेंसे किसीने इन्हें ग्रहण न किया तब दुःसह नामक किसी तेजस्वी ब्राह्मणने इनको अपनी पत्नी बना लिया। ये भी अलक्ष्मी पर अनुरक्त थे।

दीपान्विता लक्ष्मीपूजाके दिन इनकी पूजा करनी पड़ती है। अलक्ष्मी देखो। ७ कदलीवृक्ष, केलेका पेड़।

ज्येष्ठामलक (सं० पु०) निम्बवृक्ष, नीमका पेड।

ज्येष्ठाम्बु (सं० क्ली०) ज्येष्ठं सर्वरोगनाशित्वात् श्रेष्ठं अम्बु, कर्मधा०। चावलका धोया हुआ पानी इसकी प्रस्तुत-प्रणाली वैद्यक शास्त्रमें इस प्रकार लिखी है—एक पल चावलको चूर कर उसमें आठ गुना अधिक जल छोड दें, पीछे कुछ भावना दे कर उसे ग्रहण करना चाहिये, यह जल सब कार्योंमें ग्रहणीय तथा विशेष उपकारी है।

ज्येष्ठामूलीय (सं० पु०) ज्येष्ठा मूलं वा नक्षत्रमर्हति पौर्णमास्यां इति छ। ज्यैष्ठ मास, जेठका महीना।

ज्येष्ठाश्रम (सं० पु०) ज्येष्ठ आश्रमो यस्य, बहुव्री०। गार्हस्थ्याश्रमी, द्वितीयाश्रमी, उत्तमाश्रम, गृहस्थ। गृहस्थाश्रम सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है, इसीलिये इस आश्रमके अवलम्बी सभीसे उत्तम माने गये हैं।

ज्येष्ठाश्रमी (सं० पु०) आश्रमोऽस्त्यस्य आश्रम-इनि, ज्येष्ठः श्रेष्ठः आश्रमी, कर्मधा०। गृही, गृहस्थ।

"यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहं।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्मात् ज्येष्ठाश्रमो गृही॥" (मनु ३।७८)

ब्रह्मचारी, गृहस्थ वानप्रस्थ और भिक्षु ये ही चार आश्रम गार्हस्थ्यमूलक है। जिस तरह वायुका अवलंबन कर सब जीव जन्तु प्राण धारण करते हैं, उसी तरह इस गार्हस्थ्याश्रमका अवलंबन करके अन्य सभी आश्रमोंका पालन किया जा सकता है।

ज्येष्ठी (सं० स्त्री०) ज्येष्ठ गौरादित्वात् ङीप्। पल्लीगृह-गोधा, छिपकली। इसके संस्कृत पर्याय—मुषली, मुषली, कुड्यमत्स्या, गृहगोधिका, मुली, टकटुकी, शकुनज्ञा और गृहालिका है। (शब्दरत्नावली) अङ्गविशेषमें इसका पतनफल ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—ज्येष्ठी यदि मनुष्योंके दक्षिणाङ्ग पर गिरे, तो स्वजनों और धनका वियोग तथा वामभाग पर गिरनेसे लाभ होता है। वक्षस्थल मस्तक, पृष्ठ और कण्ठदेश पर गिरनेसे राज्यलाभ तथा पद वा हृदय पर गिरनेसे सम्पूर्ण सुखोंकी प्राप्ति होती है। (ज्योतिष)

गमन करते समय यह यदि ऊर्द्ध्वसे शब्द करे तो वित्तलाभ, पूर्वदिशामें करे तो कार्यसिद्धि, अग्निकोणमें भय, दक्षिणसे अग्निभय, नैऋतकोणमें श्रेष्ठवस्त्र और गन्धसलिल, उत्तरसे दिव्याङ्गना तथा ईशान कोणमें शब्द करे तो मरणका भय होता है। (तिथितत्त्व)

ज्यैष्ठ (सं० पु०) ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी ज्येष्ठ-अण् ङीप् च, सा अस्मिन् मासे इति पुनरण्। मासविशेष; वह महीना जिसमें ज्येष्ठा नक्षत्रमें पूर्णिमाका चन्द्रमा उदय हो। इस मासमें यदि सूर्य वृषराशिमें रहे तो उसे सौरज्यैष्ठ कहते हैं। सूर्यके वृषराशिमें रहनेसे प्रतिपदसे ले कर अमावस्या तक चान्द्रज्यैष्ठ माना गया है। इसके पर्याय—शुक्र और ज्येष्ठ है।

"विदेशवृत्तिः पुरुषः सुशीलः क्षमान्वितः स्यात् खलु दीर्घसूत्रः।
विचित्रबुद्धिर्विदुषां वरिष्ठो ज्येष्ठाभिधाने जननं हि यस्य॥"

(कोष्ठीप्रदीप)

इस मासमें मानवका जन्म होनेसे वह विदेशवासी, तीक्ष्णबुद्धिसम्पन्न, क्षमायुक्त, दीर्घसूत्री और श्रेष्ठ होता है। "ज्यैष्ठे मासि क्षितिसुतदिने जाह्नवी मर्त्यलोके।"

(तिथितत्त्व)

ज्यैष्ठ मासके मङ्गलवारको जाह्नवी मर्त्यलोक पर आती हैं।

ज्यैष्ठसाम (सं० पु०) ज्येष्ठं साम अधीते यः स इत्यण्। १ सामभेद। २ सामध्येता, सामवेदका पढनेवाला।

ज्यैष्ठिनेय (सं० पु० स्त्री०) ज्येष्ठायाः स्त्रियाः अपत्यं ठक्, इनङ् च। ज्येष्ठा स्त्रीका अपत्य, बड़ी स्त्रीको सन्तान।

ज्येष्ठी (स० स्त्री०) ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी अण्‌ ङीप्‌ च। १ ज्येष्ठ पूर्णिमा, जेठ महीनेकी पूर्णिमा। इस दिन मन्वन्तर होती है। इस मन्वन्तरमें दानादि करनेसे अक्षय फल मिलता है। मन्वन्तर देखो।

ज्येष्ठेन स्वार्थे अण्‌ ङीप्‌। २ ज्येष्ठी, छिपकली।

ज्यैष्ठ्य (सं० क्लो०) ज्येष्ठस्य भाव ज्येष्ठ ष्यञ्‌। ज्येष्ठत्व, वयोज्येष्ठत्व। ब्राह्मणोंमें जो अधिक ज्ञानी हैं, वे ही ज्येष्ठ हैं। क्षत्रियोंमें वीर्यके अनुसार, वैश्योंमें धनधान्यके अनुसार और शूद्रोंमें जन्मके अनुसार ज्येष्ठत्व होता है। (मनु० २।१५५)

ज्यों (हिं० क्रि०-वि०) १ जिस प्रकार, जैसे जिसरूपसे। २ जिस क्षण, जैसे ही।

ज्योक (स० अव्य०) ज्यो उकुन्‌। १ कालभूयस्त्व, दीर्घ काल। २ प्रश्न सवाल। ३ शीघ्रार्थ, जल्दीके लिये। ४ सम्प्रत्यर्थ अभीके लिये। ५ उज्ज्वलत्व।

ज्योति (हिं० स्त्री०) १ द्युति प्रकाश, उजाला। २ अग्नि शिखा की लपट। ३ अग्नि, आग। ४ सूर्य। ५ नक्षत्र। ६ आंखकी पुतलीका वह बिन्दु जो दर्शनका मुख्य साधन है। ७ मेथी। ८ दृष्टि। ९ अग्निष्टोमयज्ञकी एक संस्थाका नाम। १० विष्णुका एक नाम। ज्योतिस् देखो।

ज्योतिक (स० पु०) एक नागका नाम।

ज्योतिक (हिं० पु०) ज्योतिषी देखो।

ज्योतिरग्र (स० त्रि०) ज्योतिः अग्रे यस्य, बहुव्री०। आदित्य प्रमुख। (ऋक्‌ ७।३३।७)

ज्योतिरनीक (स० त्रि०) ज्योतिः अनीके यस्य, बहुव्री०। ज्योतिर्मुख, अग्नि। (कारक)

ज्योतिरात्मा (स० पु०) ज्योतिरात्मा यस्य बहुव्री०। सूर्यादि। "यत्राद्य ज्योतिरात्मा विवस्वान्‌।" (श्रुति)

ज्योतिरिङ्ग (स० पु०) ज्योतिषा इङ्गति इगि-गतौ अच्‌। खद्योत जुगनू।

ज्योतिरिङ्गण (स० पु०) ज्योतिरिव इङ्गति इग-ल्यु। कीटविशेष, जुगनू। पर्याय—खद्योत, ध्वान्तोर्मि तमोमणि, दृष्टिबन्धु, तमोज्योतिः, ज्योतिरिङ्ग, निमेषक, ज्योतिर्बीज निमेषधृक्‌।

ज्योतिरीश (स० पु०) ज्योतिषां ईशः, ६-तत्‌। १ सूर्य। २ परमेश्वर।

ज्योतिरीश्वर—एक ग्रन्थकर्त्ता। इनका दूसरा नाम कवि शेखर था। ये धीरेश्वरके पुत्र तथा रामेश्वरके पौत्र थे। इन्होंने पञ्चसायक और धूर्त्तसमागम नामक दो ग्रन्थोंकी रचना की है। धूर्त्तसमागम ग्रन्थ कर्णाटके राजा नरसिंहके आदेशसे रचा गया था।

ज्योतिर्गणेश्वर (स० पु०) ज्योतिर्गणानां ईश्वरः ६ तत्‌। परमेश्वर। सब प्रकारकी ज्योतियोंमें ये ही एकमात्र प्रधान हैं। उनकी ज्योतिसे यह संसार प्रकाशित होता है।

ज्योतिर्गन्ध (स० पु०) ज्योतिषां ग्रहनक्षत्रादीनां चक्रः, ६ तत्‌। ज्योतिश्चक्र।

ज्योतिर्ज्ञ (स० त्रि०) ज्योतिः जानाति ज्ञा क, ज्योतिः ज्ञा-क। ज्योतिर्विद्‌ ज्योतिष जाननेवाला।

ज्योतिर्धामसमषि (स० पु०) रत्नविशेष, एक तरहका जवाहर।

ज्योतिर्भासिन्‌ (स० त्रि०) प्रकाशमय चमचमाता हुआ।

ज्योतिर्मय (स० त्रि०) ज्योतिरात्मकः प्राचुर्ये वा मयट्‌। १ ज्योतिःस्वरूप, ज्योतिरात्मक। २ ज्योतिःपूर्ण, प्रकाशमय चमचमाता हुआ।

ज्योतिर्मल—नेपालके एक राजा। ये जयस्थितिमल्लके पुत्र थे।

ज्योतिर्मालिन्‌ (स० पु०) खद्योत, जुगनू।

ज्योतिर्मुख (स० पु०) रामचन्द्रजीके एक अनुचरका नाम।

ज्योतिर्लता (स० स्त्री०) ज्योतिष्मतीलता मालकांगनी।

ज्योतिर्लिङ्ग (स० क्ली०) ज्योतिर्मय लिङ्ग। १ महादेव शिव।

प्रकृति और पुरुषके सृष्टिव्यापारमें प्रवृत्त होने पर पुरुष नारायण और प्रकृति नारायणीके नामसे प्रसिद्ध हुई। उस नारायणरूप पुरुषके नाभिपद्मसे उत्पन्न होनेके बाद ब्रह्मा कि कर्त्तव्यविमूढ़ हो जलमें परिभ्रमण करने लगे। पीछे नारायणरूप पुरुषने उठ कर कहा—"तुम जगत्‌की सृष्टिके लिए मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए हो।" इसने ब्रह्माने क्रुद्ध हो कर कहा—"तुम कौन हो तुम्हारा भी कोई एक कर्त्ता है।" इस प्रकार वार्त्तालाप करते हुए दोनोंमें युद्ध होने लगा। दोनोंका विवाद मिटानेके लिए

कालाग्निसदृश ज्योतिर्लिङ्गको उत्पत्ति हुई। यह मूर्त्ति सहस्रों अग्निज्वालाओंसे व्याप्त है। इनका क्षय, वृद्धि, आदि, मध्य और अन्त नहीं है, यह अनौपम्य और अव्यक्त हैं। इस लिङ्गने नानास्थानोंमें उत्पन्न हो कर विविध आख्याएं प्राप्त की है। (शिवपु०)

वैद्यनाथ माहात्म्यमें ज्योतिर्लिङ्गोंके जो नाम हैं, नोचे उनकी सूची दी जाती है।

१ सौराष्ट्रमें सोमनाथ। २ श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन। ३ उज्जयिनीमें महाकाल। ४ नर्मदातीरमें (अमरेश्वरमें) ओङ्कार। ५ हिमालयमें केदार। ६ डाकिनीमें भीमशङ्कर ७ बनारसमें विश्वेश्वर। ८ गौमतीतीरमें त्र्यम्बक। ९ चिताभूमिमें वैद्यनाथ। १० द्वारकामें नागेश। ११ सेतुबन्धमें रामेश। १२ शिवालयमें घृष्णेश्वर।

शेषोक्त लिङ्ग सम्भवतः इलोराके शिवलिङ्ग होंगे।

ज्योतिर्लोक (सं० पु०) ज्योतिषां लोकः, ६ तत्। १ कालचक्रप्रवर्तक ध्रुवलोक। २ उस लोकके अधिपति परमेश्वर वा विष्णु। ज्योतिर्लोककी स्थिति आदिके विषयमें भागवतमें इस प्रकार लिखा है—सप्तर्षिमण्डलसे तेरह लाख योजन दूरवर्ती जो स्थान है, उसीको भगवान् श्रीविष्णुका परमपद वा ज्योतिर्लोक कहा जा सकता है। उत्तानपादके पुत्र ध्रुव कल्पान्त जीवियोंके उपजीव्य हो कर अब तक इस स्थानमें वास कर रहे हैं। अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, काश्यप और धर्म, उन्हें सम्मानपूर्वक दक्षिण-में रख कर उनको प्रदक्षिणा दे रहे हैं। भगवान् कालने निमेष शून्य अस्फुटवेगसे जिन ग्रहनक्षत्र आदि ज्योतिर्गणको भ्रमण करा रहे हैं, ध्रुव, परमेश्वरके द्वारा उनके स्तम्भस्वरूपमें नियोजित हो कर निरन्तर प्रकाशमान हो रहे हैं। जिस तरह बैल आदि पशु कोल्हमें जुत कर सवेरेसे शाम तक भ्रमण करते हैं, उसी तरह ज्योतिर्गण स्थानके अनु-सार ध्रुवके चारों ओर (मण्डलाकार) भ्रमण करते हैं। इसी तरह नक्षत्र, ग्रह और कालचक्रके अनन्तर और बहिर्भागमें संलग्न हो, ध्रुवका ही अवलम्बन कर वायु द्वारा सञ्चालित हो कल्पान्त तक भ्रमण करते हैं। ज्योतिर्गणकी गति कार्य-विनिर्मित है, जैसे कर्मसहाय मेघ और श्येनादि पक्षी वायुके वशीभूत हो नभोमण्डल-में भ्रमण करते हैं। (गिरते नहीं), उसी प्रकार ज्योति-र्गण भी इस लोकमें परमपुरुषके अनुग्रहसे आकाश-मण्डलमें विचरण करते हैं—भूमि पर भ्रष्ट नहीं होते। भगवान् वासुदेवने योगधारणाके द्वारा इस लोकमें जिन ज्योतिर्गणोंको धारण किया है, कोई कोई उनका शिशुमारके आकारमें कल्पना कर वैसा ही वर्णन करते हैं। वह शिशुमार कुण्डलीभूत और अधःशिराके आकारमें अवस्थिति करते हैं। उनके पुच्छाग्रमें ध्रुव, लाङ्गूलमें प्रजापति, इन्द्र और धर्म, लाङ्गूलके मूलमें धाता और विधाता तथा कटिदेशमें सप्तर्षि विराजित हैं। शिशुमारका शरीर दक्षिणावर्तमें कुण्डलीभूत हुआ है। उस शरीरके दक्षिण पार्श्वमें अभिजित्से ले कर पुनर्वसु पर्यन्त चौदह तथा वामपार्श्वमें पुष्यसे उत्तराषाढ़ा तक चौदह नक्षत्र सन्निवेशित हैं, उन्हींके द्वारा कुण्डलाकार-में विस्तृत शिशुमारके दोनों पार्श्वको अवयवसंस्था समान हुई है। उसके पृष्ठदेशमें अजवीथी तथा उदरमें आकाशगङ्गा प्रवाहित है।

पुनर्वसु और पुष्या यथाक्रमसे शिशुमारके दक्षिण और वाम नितम्ब पर आर्द्रा और अश्लेषा दक्षिण और वाम पादमें अभिजित् और उत्तराषाढ़ा दक्षिण और वाम नेत्रमें तथा धनिष्ठा और मूला, दक्षिण और वामकर्णमें यथाक्रमसे सन्निविष्ट है। मघासे ले कर अनुराधा पर्यन्त दक्षिणायण सम्बन्धी आठ नक्षत्र उसके वामपार्श्वको अस्थिमें तथा मृगशिरा आदि पूर्वभाद्रपद पर्यन्त उत्तरा-यण सम्बन्धी अष्टनक्षत्र उसके दक्षिण पार्श्वको अस्थिमें संयुक्त है। शतभिषा और ज्येष्ठा यथाक्रमसे दक्षिण और वामस्कन्ध पर स्थापित है, उसके उत्तर हनु पर अगस्त्य, अधर हनु पर यम, मुखमें मङ्गल, उपस्थमें शनि, पृष्ठदेश पर बृहस्पति, वक्षःस्थल पर आदित्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्र, नाभिस्थलमें शुक्र, स्तनोंमें दोनों अश्विनीकुमार, प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु, सर्वाङ्ग में केतु तथा रोमोंमें तारागण सन्निवेशित हुए हैं। यही भगवान् श्रीविष्णुका सर्वदेवमयरूप है। प्रतिदिन सन्ध्याके समय इस ज्योतिर्लोकका दर्शन कर संयतचित्त हो उपासना करनी चाहिए। मन्त्र यह है—

"नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनाय अनिमिषां पतये महापुरुषाय अभिधीमहीति।"

धनुराशि तक सूर्यकी स्थितिकाल दक्षिणायन और दक्षिणायनसे मिथुनराशि तक सूर्यका स्थिति काल उत्तरायण कहलाता है। सूर्य इस उत्तरायणसे पहले मकरराशिमें, फिर कुम्भ और मीनराशिमें जाता है। इन तीन राशियोंमें स्थितिपूर्वक अहोरात्र समान कर विषुवगति अवलम्बन करता है। उस समय क्रमशः रात्रि क्षय और दिन वर्द्धित हुआ करता है। उसके बाद मिथुनराशि भोग कर उत्तरायणकी शेष सीमामें उपस्थित होता है। पीछे कर्कट राशिमें गमन करने पर दक्षिणायन प्रारम्भ होता है। कुलालचक्रका प्रान्तवर्ती जन्तु जिस तरह तेजीसे चलता है, उसी तरह सूर्य भी दक्षिणायनमें तेजीसे चलता है। वायुके वेगसे अति द्रुत गमन करनेके कारण थोड़े ही समयमें एक स्थानसे दूसरे प्रकृष्टस्थानमें उपस्थित होता है। दक्षिणायनमें सूर्य दिनमें शीघ्रगामी हो कर बारह मुहूर्तमें ज्योतिश्चक्रके पूर्वार्धको और रात्रिमें मृदुगामी हो कर अठारह मुहूर्तमें उत्तरार्द्धको अतिक्रम कर जाता है। इसीलिये दक्षिणायनमें दिन छोटा और रात बड़ी होती है।

कुलालचक्रका मध्यस्थ जन्तु जैसे मन्द मन्द चलता है, उसी तरह सूर्य उत्तरायणमें दिनको मन्दगामी और रातको द्रुतगामी होता है। इस तरह बहुत समयमें थोड़ा स्थान और थोड़े समयमें बहुत स्थान अतिक्रम करनेके कारण दिन बड़ा और रात्रि छोटी हो जाती है। उत्तरायणके शेषभागमें ज्योतिश्चक्रके अर्द्धवृत्तको अतिक्रम करनेके लिए मन्दगामी सूर्यके जो अठारह मुहूर्त व्यतीत होते हैं, उससे दिन बड़ा होता है। सूर्य दिनमें जिस प्रकार अर्द्धवृत्त अर्थात् सार्द्धत्रयोदश नक्षत्र गमन करता है, उसी प्रकार रातको भी सार्द्ध त्रयोदश (साढ़े तेरह) नक्षत्र गमन करता है। परन्तु यह गमन उत्तरायणमें रातको बारह मुहूर्तमें और दिनमें अठारह मुहूर्तमें हुआ करता है। दक्षिणायनमें इससे उलटा अर्थात् दिनमें बारह मुहूर्त और रातको अठारह मुहूर्तमें गमन करता है। ध्रुवमण्डल कुलालचक्रके मृत्पिण्डकी भांति एक स्थानमें रहते हुए भी परिभ्रमण करता है। इस प्रकार उत्तर और दक्षिण दिशामें मण्डलसमूहके भ्रमण करते रहनेसे समयानुसार सूर्यकी दिन और रातमें शीघ्र और मन्दगति होती है। परन्तु दिन और रातमें समान पथ भ्रमण करके एक अहोरात्रमें वह सम्पूर्ण राशियोंको भोगता है। रातको कुछ राशियोंको और दिनमें अन्य कुछ राशियोंको भोगता है। इस तरह द्वादश राशिमय पथमेंसे आध दिनको और आधा रातको अतिक्रम करनेके कारण दोनोंका गन्तव्य पथ समान हो गया। दिन और रात्रिकी जो ह्रासवृद्धि होती है, यह राशियोंके प्रमाणानुसार ही हुआ करती है। क्योंकि राशिके भोगसे ही दिवारात्रिकी ह्रासवृद्धि होती है।

उत्तरायणमें रातको सूर्यको गति शीघ्र और दिनको मन्द गति होती है। दक्षिणायनमें उससे विपरीत अर्थात् दिवसमें शीघ्र गति और रात्रिको मन्द गति होती है, क्योंकि उत्तरायणमें रात्रिभोग्य राशिका परिमाण थोड़ा और दिवसभोग्य राशिका परिमाण अधिक होता है, दक्षिणायनमें इससे उलटा है।

भागवतकार कहते हैं, कि सूर्य स्वर्गमण्डल और भूमण्डलके मध्यवर्ती आकाशमें अवस्थान कर स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें किरण फैलाता है। सूर्य अपने उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवसंज्ञक मन्द, शीघ्र और समान गतिद्वारा यथासमय आरोहण, अवरोहण और समान स्थानमें आरोहणादि प्राप्त हो मकरादि राशिमें अहोरात्रको छोटा, बड़ा और समान करता है, अर्थात् रात और दिन द्रुतगतिसे छोटे, मन्दगतिसे बड़े और समान गतिसे समान होते हैं। जब सूर्य मेष और तुलाराशिमें जाता है, तब अहोरात्र अत्यन्त वैषम्यभावसे प्रायः समान होते हैं। जब वृषादि पांच राशियोंमें भ्रमण करता है, तब दिन बढ़ता है और मासमें एक एक घण्टा रात छोटी होती जाती है। और जब वृश्चिक आदि पांच राशियोंमें गमन करता है, तब अहोरात्रका विपर्यय होता है अर्थात् दिन छोटा और रात बड़ी होती है। वास्तवमें जब तक दक्षिणायन रहता है, तब तक दिन बड़ा होता है और उत्तरायण तक रात्रि बड़ी होती है।

विष्णुपुराणके मतसे—शरत् और वसन्त ऋतुमें सूर्यके तुला या मेषराशिमें गमन करने पर यथाक्रमसे तुला और मेष नामक विषुव होते हैं, जो समरात्रिन्दिव

है अर्थात् तत्कालीन रात्रि और दिनका परिमाण (अयनांश विशिष्टमें पूर्वापर ५४ मिनिटके एक दिन) समान होता है। सूर्य मेष और तुलाके प्रथम दिन (प्रथम दिनका तात्पर्य अयनांशभेदसे उन उन मासोंके पूर्वके २० दिन और उत्तरके २० दिन एवं ५४ मिनिटके कोई एक दिन है) विषुव नामक स्थानमें अवस्थित रहता है, इसलिए अहोरात्र समान होते हैं। इसी समय रात्रि और दिन पञ्चदश मुहूर्तात्मक कहलाते हैं। सूर्य जिस समय कृत्तिकाके प्रथम भागमें अर्थात् मेषके अन्तमें रहता है उस समय चन्द्र विशाखाके चतुर्थ भागके हविकारूपमें अवस्थ भी रहता तथा सूर्य जब विशाखाके तृतीय भाग अर्थात् तुलाके मध्य भागको भोगता है तब चन्द्र कृत्तिकाके प्रथम पादमें, अर्थात् मेषान्तभागमें रहता है।

भागवतमें लिखा है ज्योतिषचक्रमें केवल सूर्य ही परिभ्रमण करता हुआ, अस्तमित और उदित होता हो, ऐसा नहीं है। सूर्यके साथ अन्यान्य ग्रह और नक्षत्र भी इस ज्योतिषचक्रमें परिभ्रमण करते और उदित एवं अस्तमित होते हैं। भागवत और विष्णुपुराणमें ज्योतिश्चक्रके विषयमें जैसा लिखा है अन्यान्य पुराणोंमें भी प्रायः ऐसा ही समझना चाहिये।

ब्रह्माण्डपुराणके मतसे—सूर्य ही उदित और अस्तमित होता है। दक्षिणायन और उत्तरायणके भेदसे दिनरातकी ह्रासवृद्धिके विषयमें अन्यान्य पुराणोंके साथ इस पुराणका प्रायः एकमत पाया जाता है। हाँ, किसी किसी जगह अनैक्य भी है। सूर्य आकाशमें भ्रमण करता हुआ एक मुहूर्त्तमें पृथिवीका तीस भाग भ्रमण करता है। इस मुहूर्त्त कालमें अतिवाहित स्थानका परिमाण एक लाख इकतीस हजार योजन है। इसीको सूर्यकी मौहूर्तिकी गति कहते हैं। इस प्रकारकी गतिसे माघ मासमें सूर्य दक्षिण काष्ठामें गमन करता है और माघ मासके अन्तमें काष्ठाकी शेष सीमामें पहुँच जाता है। इस तरह सूर्य ८१४५०० योजन परिभ्रमण करता है तथा अहोरात्र भ्रमण करते करते दक्षिणकाष्ठामें प्रतिनिवृत्त हो कर विषुवत्* होता है। इसके बाद वह क्षीरसमुद्रको उत्तर दिशामें गमन करता है।

श्रावण मासमें सूर्य उत्तरदिशामें गमन करके छठे शाकद्वीपकी उत्तरवर्ती दिशाओंमें भ्रमण करता है। उत्तर दिङ्मण्डलका परिमाण १८००००१८ योजन है। उत्तरमार्गका नाम नागवीथि और दक्षिणमार्गका नाम अजवीथि है। अजवीथिमें मूला उत्तराषाढ़ा और पूर्वाषाढ़ा तथा नागवीथिमें अभिजित् पूर्वाषाढ़ा और स्वातिका उदय होता है।

दोनों काष्ठाओंमें १०११६६ योजनका अन्तर है। दोनों काष्ठाओं और दोनों रेखाओंके दक्षिण और उत्तर विभागमें जितने स्थानका व्यवधान है उसकी योजन संख्या ३१००१००१ है। उन दोनों काष्ठाओंमें बाह्य और अभ्यन्तरके भेदसे दो रेखाएं हैं। उन रेखाओंपर उत्तरायणके समय अभ्यन्तरमें और दक्षिणायनके समय बाह्यभागमें १८० मण्डल परिभ्रमण करते हैं। इन मण्डलोंका परिमाण २१२११ योजन है इसका नाम है 'मण्डलका विष्कम्भ'। समय पर ये वक्र भी होते हैं। सूर्यदेव इनमें प्रतिदिन मण्डलके क्रमानुसार परिभ्रमण करते हैं। दोनों काष्ठाओंमें मण्डलभ्रमणके समय सूर्यकी मन्द और द्रुत गतिके अनुसार रात और दिन हुआ करते हैं। उत्तरायणके समय दिनमें सूर्यकी मन्द गति और रात्रिको सूर्यकी द्रुतगति होती है। इस प्रकारकी गतिके अनुसार सूर्यदेव दिन और रात्रिको विभक्त कर सम विषम भावसे विचरण करते हैं। इसीसे दिन और रात्रिका परिमाण घटता बढ़ता रहता है।

(ज्योतिष देखो।)

ज्योतिःशास्त्र (सं॰ क्ली॰) ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रं। सूर्यादिग्रह और काल आदिका बोध करानेवाले वेदाङ्गशास्त्रका एक भेद। जिस शास्त्रके द्वारा सूर्य आदि ग्रहोंकी गति, स्थिति आदि तथा गणित फलित होरा आदिका सम्यक्ज्ञान हो, उस शास्त्रको ज्योतिःशास्त्र कहते हैं। (ज्योतिष देखो।)

वेद यज्ञकर्मात्मक है। यज्ञ करनेके लिए कालज्ञान आवश्यक है और कालके विषयमें ज्योतिष ही प्रधान उपाय है। इसलिए ज्योतिष वेदाङ्ग है।

ज्योतिष (सं॰ क्ली॰) ज्योतिः अधिकृत्य ग्रन्थ ज्योतिः-अच्।

* विषुवमण्डलका परिमाण ३०१००००१ योजन है।

१ वह विद्या वा शास्त्र जिसमें आकाशमें स्थित ग्रह, नक्षत्र आदिकी गति, परिमाण, दूरी आदिका निश्चय किया जाता है। नभोमण्डलमें स्थित ज्योतिःसम्बन्धी विविध विषयक विद्याको ज्योतिर्विद्या कहते हैं। और जिस शास्त्रमें उसका उपदेश वा वर्णन रहता है वह ज्योतिषशास्त्र कहलाता है। अन्यान्य शास्त्रोंको तरह ज्योतिषशास्त्र भी मनुष्य जातिको आदिम अवस्थामें अङ्कुरित और ज्ञानोन्नतिके साथ क्रमशः परिशोधित और परिवर्द्धित हो कर वर्त्तमान अवस्थाको प्राप्त हुआ है। सूर्य चन्द्र तथा अन्यान्य ज्योतिषोंको प्रकृति ऐसी अद्भुत और विस्मयजनक है कि, उसकी ओर सचेतन प्राणी मात्रका मन आकर्षित होता है। मनुष्यको आदिम अवस्थामें इसकी ओर सभी जातियोंको दृष्टि गई थी और अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार सभी जातियोंको इस शास्त्रका थोड़ा बहुत ज्ञान भी था। अतएव इसमें आश्चर्य नहीं कि हिन्दू, काल्दीय, मिसर, चीन, गोल, पेरुवीय, ग्रीक आदि सभी जातियां अपनेको ज्योतिषशास्त्रका प्रवर्त्तक समझती हैं।

भारतवर्षमें वैदिक ऋषि, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराह मिहिर मुञ्जल, भट्टोत्पल, श्वेतोत्पल, शतानन्द, भोज राज, भास्कर, कल्याणचन्द्र आदि, ग्रीसदेशमें थेलस, पैनेकिसगोरस, मिटियन, प्लेटो, गोवक, आरिष्टटल, थियिउस आदि ; मैसिडनमें आरिष्टिलन, इउक्लिड, आर्किमेडिस, हिपार्कस, टलेमी आदि, अरबमें अलवर्ट गल, ईरन्‌जुनियस, उलुकबेग आदि तथा फिल हाल तमाम यूरोपमें पर्वाच्, कॅपलर, गालिलियो, हरक्स, कासिनी, न्यूटन, ब्राड्‌ली, सिविली, लोली, हार्मॅल, डिलाम्बर, डॅनेम्बर्ट, इउलार, लाग्रेञ्ज, लाप्लास, इयं, टीगउल आदि प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्‌गण इस शास्त्रकी महत् उन्नति कर गये हैं।

ज्योतिषशास्त्रको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—१ गणितज्योतिष—इसके द्वारा ग्रह, नक्षत्र आदिके आकार और संस्थापनादि सम्बन्धी यथार्थ तत्त्वोंका गणितानुसारको सहायतासे, विशिष्टरूपसे निर्णय किया जा सकता है। २ प्राकृतिक ज्योतिष—इसके द्वारा ग्रह, नक्षत्रादिकी प्रकृति अर्थात् उनकी गति, वेग तथा अन्यान्य ग्रहोंसे उनका परस्पर सम्बन्ध निर्णीत हो सकता है। ३ ध्रुव ज्योतिष—इसके द्वारा ध्रुव अर्थात् गतिहीन नक्षत्रादिका विवरण मालूम होता है। इसके अतिरिक्त व्यवहारज्योतिषके नामसे और भी एक विभाग किया जा सकता है, जिसके जरिये ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी नानाप्रकार यन्त्र, ज्योतिषिक नियम और गणना की प्रक्रिया मालूम हो सकती है। प्राकृतिक ज्योतिष बिना जाने ही इन नियमादिसे परिचित हो ज्योतिर्विद्‌को तरह कार्य किया जा सकता है।

भारतवर्षीय प्राचीन विद्वानोंने ज्योतिषको साधारणतः दो भागोंमें विभक्त किया है—कि एक फलितज्योतिष और दूसरा सिद्धान्त। जिसके द्वारा ग्रहनक्षत्रादिका सञ्चारादि देख कर पृथिवीके प्राणियोंको भावी अवस्था और मङ्गलामङ्गलका निर्णय किया जाता है, उसका नाम है फलितज्योतिष तथा जिसके द्वारा स्पष्ट एवं अभ्रान्तरूपसे गणना करके ग्रहनक्षत्रादिको गति और संस्थानादिके नियम, उनको प्रकृति और तज्जन्य फलाफलोंका दृढ़रूपसे निरूपण किया जाता है, वह सिद्धान्त ज्योतिष कहलाता है। मालूम होता है, कि इसी तरह अंग्रेजोंका Astrology और Astronomy यथाक्रमसे फलित और सिद्धान्तज्योतिष है। सिद्धान्त ज्योतिषको भारतीय आर्यगण गणितज्योतिष भी कहते थे। सिद्धान्तशिरोमणिके गोलाध्यायमें लिखा है—"द्विविधगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्तरूपम्" अर्थात् गणित वा सिद्धान्त-ज्योतिष दो प्रकारका है, व्यक्त और अव्यक्त। जिसमें गणितको सहायतासे ग्रहनक्षत्रादिका आकार, संस्थान सञ्चार, वेग, ग्रहान्तरके साथ परस्पर सम्बन्ध और तज्जन्य फलाफल विशेषरूपसे व्यक्त होता है उसे व्यक्त और तदन्यतरको अव्यक्त कहते हैं।

सिद्धान्त-ज्योतिर्विदोंने फलित-ज्योतिषको निन्दा को है। सिद्धान्तशिरोमणिका मत है कि गणितशास्त्रका एकदेशमात्र जातकसंहिता है ; सम्पूर्ण जान कर भी जो व्यक्ति अनन्तयुक्तियुक्त सिद्धान्त-ज्योतिष नहीं जानते हैं, वे चित्रमय राजा अथवा काष्ठमय सिंहके समान हैं। गणेशका मत है कि जन्मकालीन ग्रहनक्षत्रादिके अवस्थानको देख कर यह जानना कि अमुक समयमें

इसमें सुख और असुख समयमें दुःख होगा कोई बड़ी बात नहीं उससे कुछ काम भी नहीं। यह विषय इतना अनावश्यकीय है कि उसके लिए हमें तनिक भी विचार करनेको अवसर नहीं। फलतः सुखदुःखके समय जाननेकी भी आवश्यकता नहीं।

ज्योतिष सम्बन्धी साधारण ज्ञान—आकाशकी ओर दृष्टि डालनेसे चारों तरफ अगणित नक्षत्रपुञ्ज दृष्टिगोचर होते हैं। ये नक्षत्रपुञ्ज घण्टे घण्टेमें अपने स्थानसे कुछ कुछ पश्चिमकी ओर हट जाते हैं, जिससे देखनेसे मालूम होता है, मानों ये नक्षत्रपुञ्ज किसी गोलकमें अवस्थित हैं और उसके हट जानेसे ये क्रमशः पश्चिमकी ओर हट कर पीछे अदृश्य हो जाते हैं और उसके अपर पार्श्वमें स्थित नक्षत्रपुञ्ज क्रमशः दृश्यमान होते हैं। इस प्रकार देखते देखते हम अनायास ही जान सकते हैं कि एक दिनके भीतर ही उसका भ्रमण समाप्त होता है। यह भ्रमणकाल ठीक हमारे दिनके बराबर होता हो ऐसा नहीं। कारण यह कि यद्यपि प्रतिदिन उदयकालमें ये नक्षत्रपुञ्ज प्रायः पूर्व पूर्व स्थानमें दीख पड़ते हैं, तथापि विशेषरूपसे निरीक्षण करनेसे मालूम होगा कि उनका उदय प्रतिदिन ठीक उन उन स्थानोंमें नहीं होता। प्रतिदिन प्रायः चार चार मिनटका अन्तर पड़ता है। अतएव हमारी दृष्टिसे प्राय १५ दिनमें (उनके एक घण्टेमें) परिभ्रमण होता है और १ वर्षमें उनका भ्रमण पूर्ण हो जाता है। फिर ये पूर्वमें जिस समय जिस स्थानमें थे, उस समय वहीं दीखने लगते हैं अर्थात् एक वर्ष बाद ये फिर अपने पूर्व स्थानोंमें आ जाते हैं।

उपर्युक्त बातसे मालूम होता है, कि सूर्यके साथ ये समस्त भूपञ्जर अपने अपने कोणकमें रहते हुए सूर्यकी अपेक्षा प्राय ४ मिनिट कम चौबीस घण्टेमें पृथिवीको परिवेष्टन कर भ्रमण करते हैं।

जिन नक्षत्रोंका अस्त नहीं होता उन्हें ध्रुवनक्षत्र कहते हैं। ये नक्षत्र वस्तुतः भ्रमण न करते हों, ऐसा नहीं किन्तु उनका भ्रमणपथ उत्तरमें पृथिवीके अक्षके समानान्तरमें और इतना दूरवर्ती है कि वहां उनके भ्रमण करने पर भी हमारी दृष्टिमें वे सतत एक स्थानमें स्थिर दीख पड़ते हैं। उक्त स्थान आकाशका उत्तरकेन्द्र कहलाता है। उस स्थानसे हमारी ओर जो सीधी रेखा की कल्पना की जाती है उस रेखाके परिवर्द्धनकी कल्पना करनेसे हमारे नीचे भी अवस्थानसे ठीक विपरीत दिशामें जो स्थान है उसे दक्षिणकेन्द्र कहा जा सकता है। ये दो स्थान उक्त कल्पित रेखाके सीमाबिन्दु मात्र हैं। नक्षत्रपञ्जर (Axis) प्रतिदिन उक्त सीमाबिन्दुके अन्तर्गत नक्षत्रमण्डल परिभ्रमण करते हैं। उक्त दोनों सीमाबिन्दु पृथिवीके केन्द्र और विषुवरेखा पर दो समकोणोंमें अवस्थित हैं और पृथिवीके प्रत्येक स्थानसे ये एक ही प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं; ग्रहादिके स्थानकी भांति इनका कुछ परिवर्तन नहीं होता।

आकाशके प्रायः उत्तर केन्द्रमें जो उज्ज्वल नक्षत्र है उसे भारतवर्षीय प्राचीन विद्वानोंने उत्तरध्रुव ध्रुवतारा या ध्रुवनक्षत्र कहा है। प्राचीन विद्वान्‌गण नक्षत्रोंके परिचयके लिए चित्र बनाते थे और टिमटिमाते हुए नक्षत्रोंकी मूर्ति मत्स्याकृति दिखलाई देनेके कारण उस मूर्तिको ध्रुवमत्स्य कहते थे। युरोपीय विद्वान्‌गण उसे भालूकी आकृतिका समझ Bear कहते थे। बाईं ओरका नक्षत्र Little bear कहलाता था और दाहिनी ओरका Great bear। छोटे भालूकी पूंछके अग्रभागमें जो (एक) तारा दिखलाई देता है, वही ध्रुवतारा है। यह सहज ही पहचाना जा सकता है। सप्तर्षिमण्डल नामके जो प्रसिद्ध सात नक्षत्र हैं, उन्हींके द्वारा इसका विशेष परिचय मिला करता है। ये सात नक्षत्र कहीं भी क्यों न रहें, यदि इनमें 'क' और 'ख' चिह्नित नक्षत्रद्वयके मध्य एक रेखाकी कल्पना की जाय और उस रेखाको परिवर्द्धित किया जाय तो वे ध्रुव नक्षत्रके अति निकटवर्ती हो जाते हैं। इसलिये उन दोनोंको प्रदर्शक कहते हैं।

ये सात नक्षत्र ग्रेटब्रिटेनमें अस्तगत हो कर अदृश्य नहीं होते। कभी ये ध्रुव और सुमेरुके मध्य और कभी ध्रुवके पूर्व या पश्चिम आकाशके उच्चतर भागमें, प्रायः शिरोबिन्दु निकट दीख पड़ते हैं।

यदि उत्तरदिशाका ज्ञान हो तो ध्रुवनक्षत्र सहज ही पहचाना जा सकता जिस नक्षत्रको हम अपने देखते

कुचक्रके कुछ ऊपर सर्वदा स्थिर देखते हैं, वही ध्रुव-नक्षत्र है। दक्षिण केन्द्रको तरफ भी ऐसे ध्रुवनक्षत्र विद्यमान है।

जिस प्रकार पृथिवीके उत्तर-दक्षिणबिन्दुको केन्द्र बना कर पृथिवीके समस्त स्थानोंका मानचित्र बनाया जाता है, उसी प्रकार उक्त दोनों केन्द्रोंको सौरजगत्‌का केन्द्र बना कर सम्पूर्ण सौरजगत् और आकाशका मानचित्र बनाया जा सकता है।
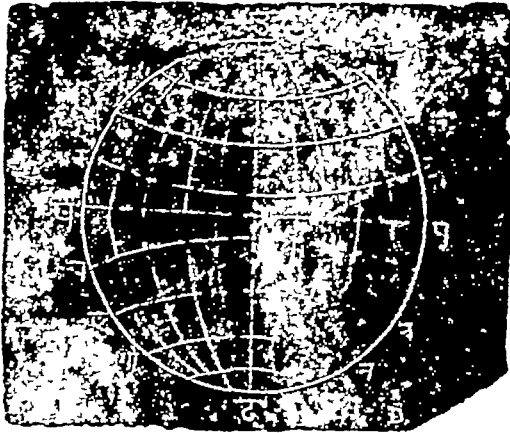
यह मानचित्र आकाशका है। इसके बीचमें पृथिवी है। पृथिवीको उत्तरदिशा और इसकी उत्तरदिशा एक ही है; इसका चिह्न है 'उ'। इसी तरह पूर्वदिशाका 'पू' दक्षिणका 'द' और पश्चिमका 'प' चिह्न है। 'उ' और 'द' इसके दो केन्द्र हैं। इन दो केन्द्रोंसे समान दूरवर्ती जो आकाशके तले वृत्त है, उसे विषुवद्वृत्त और जिस कल्पित रेखाके द्वारा वह वृत्त होता है, उसे विषुवद्रेखा या विषुवरेखा कहते हैं। सूर्यके इस स्थानसे गमन करने पर वह आकाशके ठीक बीचमें अवस्थित रहता है। सुतरां उस समय पृथिवीके सर्वत्र ही दिन और रात्रि समान होती है। पृथिवीको वार्षिक गतिके कारण वह रेखा सूर्यके वर्षमें दो बार (अंग्रेजी तारीख २० मार्च और २२ सेप्टेम्बरको) ऊपर चढ़ती है।

खगोलस्थ जितनी भी कल्पित रेखाएँ वा विषुवरेखा समान्तराल हैं, उन्हें अपम, सम वा अपमचक्र कहते हैं और जिस मण्डलाकार पथसे सूर्य परिभ्रमण करता है, उसे क्रान्तिकक्ष।

क्रान्तिकक्ष और विषुवरेखाके मिलनेसे जो कोण होता है वह २३½ अंश परिमित है। यहांसे सूर्य उत्तरायण-पथमें ६६½ अंश तक दूर चला जाता है। इसी तरह दक्षिणायन पथमें भी ६६ अंश तक गमन करता है। अतएव खगोलस्थ उत्तरकेन्द्रसे सूर्यकी गति ११३½ अंश दूर तक हुआ करती है।

२१ जूनको सूर्य उत्तरायणके सुदूर स्थानमें गमन करता है और फिर कर्कट राशिमें समसण्डलस्थ (Vertical) होता है। २१ दिसम्बरको जब सूर्य दक्षिणायनके सुदूर मार्गमें पहुंचता है, तब Capricorn समसण्डल होता है और जब विषुवरेखाके ऊपर आता है, तब विषुवरेखाके समसण्डलस्थ होती है।

क्रान्तिकक्षाके उत्तरांशसे जिस जगह जून मासमें सूर्योदय होता है, उससे कुछ दक्षिणमें एक उज्ज्वल नक्षत्र उदित होता है जिसे 'कपिल' कहते हैं। यह कपिल नक्षत्र बृहत् भल्लूकके पश्चिमांशमें, उत्तरकेन्द्रसे बहुत दूरी पर अवस्थित रहता है।

विषुवरेखासे आकाशस्थ नक्षत्रादिका दक्षिण वा उत्तर दिशामें जो दूरत्व है, उसे अपम कहा जा सकता है। उस समय सूर्य २१ जूनको २३½ अंश उत्तरपथ पर अवस्थित रहता है। अतएव आकाशमण्डलका अपम पृथिवीके अक्षांशके समान है।

जिन वृत्तोंकी कल्पना खगोलस्थ दोनों केन्द्रोंके मध्य की गई है, उनको होराचक्र (celestial meredian) कहते हैं। समसण्डल अर्थात् प्रथम होराचक्रसे ज्योतिर्मण्डलके पूर्वभागके दूरत्वको विक्षेप (Right Acension) कहा जा सकता है, विशेष भूगोलके दोर्घांश (Longitude)-के समान है। किन्तु पृथिवीको द्राघिमा जैसे पूर्व पश्चिम दोनों दिशाओंसे गिनी जाती है, विक्षेपपातका निर्णय उस तरह नहीं होता। इसकी गणना पूर्वदिशासे शुरू कर पुनः शून्य स्थानके निकटवर्ती ३६० अंशमें समाप्त होती है। जिस स्थल पर सूर्य (२० मार्चको) विषुवरेखामें गमन करता है, जो स्थल मेषराशिका प्रथम गृह समझा जाता है और जिस स्थल पर सूर्यके आगमनसे (वसन्त ऋतुमें) दिनरात्रिका परिमाण समान होता है, उस स्थानसे जो होराचक्र जाता है, उसे प्रथम होराचक्र कहा जा सकता है। पूर्वप्रदर्शित मानचित्रमें 'प'

भते हैं। कारण परवर्ती "सिद्धान्तों"की भांति ज्योतिष-शास्त्रको शिक्षा देना ज्योतिष-वेदाङ्गका उद्देश्य न था।

ज्योतिष वेदाङ्ग अत्यन्त संक्षिप्त ग्रन्थ है। ऋग्वेदीय ज्योतिष-वेदाङ्गके कुल तीन ही श्लोक हैं और यजुर्वेदीय ज्योतिष वेदाङ्गके सिर्फ ४३ श्लोक मिले हैं। इन दोनोंके कुछ श्लोक साधारण हैं और कुछ पृथक्। दोनोंको मिलाने पर हमें सिर्फ ४८ पृथक श्लोक मिलते हैं। ये श्लोक अत्यन्त संक्षिप्त हैं और विषयानुक्रमसे संयोजित भी नहीं हैं। अधिकांश ही अनुष्टुप छन्दमें रचे गये हैं।

पाश्चात्य विद्वानोंमें सबसे पहले जोन्स (Collected Works, Vol. I) कोलब्रुक (Essays, vols II & III) बेण्टली (Hindu Astronomy, part I, sections I and II, और डेभिस्ने (Asiatic Researches, vol II) वेदाङ्ग-ज्योतिष अध्ययन किया था। किन्तु इनमेंसे समग्र वेदाङ्ग-ज्योतिषका अर्थ कोई भी न समझ सके थे। प्रायः अर्द्ध शताब्दीके बाद मैक्समूलर (Rigveda samhita, vol.4 Preface), ओयेबर (Veberden vedakalendar, Namen, Jyotisham) और हुइटनिने (The Lunar zodiac, Indian Antiquary, vol 24, p. 365, etc.) इस विषयमें ध्यान दिया। ओयेबर साहबने (१८६२ ई०में) बहुतसी पाण्डुलिपि देख कर नाना प्रकार पाठान्तरोंके साथ दोनों शाखाओंके मूल श्लोक, जर्मन भाषाका अनुवाद, यजुर्वेदीय वेदाङ्ग-ज्योतिषकी (सोमकरकी) टीका और उस टीकाके आधार पर (उनकी) टिप्पणी सहित ज्योतिष-वेदाङ्गका एक संस्करण प्रकाशित किया था। यद्यपि श्लोकोंका अर्थ ये सम्यक्‌रूपसे ग्रहण नहीं कर सके हैं, तथापि नाना प्रकार पाठान्तरोंके साथ ज्योतिष-वेदाङ्गके इस संस्करणके निकालनेसे भारतवासी उनके कृतज्ञ हैं। ओयेबरके बाद डा० थिबो (J.A.S.B. 1877), शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित, लाला छोटेलाल, पं० सुधाकर द्विवेदी आदिने इस विषयकी आलोचना की है।

बेण्टलि साहबने हिन्दुओंके ज्योतिषको आधुनिक प्रमाणित करना चाहा था, किन्तु अन्तमें उन्होंने अपने शेष-ग्रन्थमें स्पष्ट स्वीकार किया है कि प्रायः २३०० वर्ष पहले भी हिन्दुओंने चन्द्रके सप्तविंशति नक्षत्रभोगका निरूपण किया था। अरबियोंको पहले पहल भारतियोंसे ज्योतिषशास्त्र मिले थे। अरबी भाषामें, न्यूनाधिक ६५० वर्ष पहले "आयन्-उल अम्बा फितन्न कालुन अत्‌बा" नामक ग्रन्थ रचा गया था। इसमें लिखा है, कि भारतवर्षीय विद्वानोंने अरबके अन्तःपाती बोगदादको राजसभामें जा कर ज्योतिष और चिकित्सादि शास्त्रोंकी शिक्षा दी थी। कर्क नामक एक पण्डित ६८४।८५ शकमें बादशाह अल मनसूरके दरबारमें गये थे। चिकित्सारसायन और ज्योतिर्विद्यामें इनकी अच्छी गति थी। इनके पास बहुतसी भारतीय पुस्तकें भी थीं, जिनमें एकका नाम "विं हत् मिन हिन्द' लिखा गया था। यह वराहमिहिरकृत बृहत् संहिताका होना निहायत असम्भव नहीं।

अब ऋक् और यजुर्वेदके आधारसे यह दिखाया जाता है कि वैदिकयुगमें हिन्दुओंका ज्योतिषविषयक ज्ञान कैसा था।

"प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सर्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा॥" ६।२।७

अर्थात् सूर्य और चन्द्रके श्रविष्ठा नक्षत्रके आदि विन्दुमें आने पर उत्तरायणका तथा सर्प (अश्लेषा) नक्षत्रके मध्यविन्दुमें आने पर उनके दक्षिणायनका प्रारंभ होता है। सूर्य यथाक्रमसे माघ एवं श्रावण मासमें इन दो विन्दुओंमें आते हैं अर्थात् सूर्यका उत्तरायण और दक्षिणायन सर्वदा माघ और श्रावणमें ही होता है।

"घर्मवृद्धिरपांप्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणे तौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्त्ययनेन तु॥" ७।२।८

उत्तरायणसे प्रतिदिन, जलके एक प्रस्थके बराबर, दिनकी वृद्धि और रात्रिका ह्रास हुआ करता है। एक अयनमें छ मुहूर्त मात्र।

"भंशाः स्युरष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि॥" २, १०।१५।

अर्थात् (युगके प्रारंभसे) पक्षसंख्या निर्णय करें। द्वादशपक्षमें ८ नक्षत्रांशका उद्गम होता है। कृष्णपक्षान्त होने पर प्रति पक्षमें चन्द्रके ११ नक्षत्रांशका उद्गम होता है, और चन्द्रपक्ष शुक्ल होने पर इसके साथ और भी अर्द्ध नक्षत्र योग करना पड़ता है।

तैत्तिरीयसंहिताके पढ़नेसे मालूम होता है कि, प्राचीन समयमें वासन्त विषुवद्दिन (कृत्तिका) कृत्तिकामें संक्रमित था। शतपथब्राह्मणमें (२।१।२।१९) लिखा है कि कृत्तिकाओंके साथ ही वैदिक वर्ष प्रारम्भ होता था। पीछे जब शारद विषुवद्दिनसे वर्ष गणना हुई, तब प्राचीन और नवीन दोनों प्रकारके वर्ष अलग-अलग लिखे जाते थे। जब वासन्त विषुवद्दिन कृत्तिकापुञ्जमें संक्रमित था तब यह नक्षत्रपुञ्ज विषुवद्दिनमें वर्षारम्भ करता था, किन्तु अयन माघ मासमें लिया जाता था। यह तैत्तिरीयसंहिता और शीन सहायतासे स्पष्टरूपसे लिखा गया है। साधारणतः यह समझ सकते हैं कि अयनके साथ माघसे प्रारम्भ होने पर विषुवद्दिन कृत्तिकामें संक्रमित होगा।

जर्मन डमंहिताके प्रचारके समय जब वासन्त विषुवद्दिन मृगशिरा-पुञ्जमें संक्रमित हुआ था इस बातको प्रमाणित करनेके लिए लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलकने निम्नलिखित युक्तियाँ दी हैं—

१। तैत्तिरीयसंहिता (७।४।८) में लिखा है कि, फाल्गुनी पूर्णिमा ही वर्षके प्रारम्भकी सूचना देती है। शतपथब्राह्मण, तैत्तिरीयब्राह्मण गोपथब्राह्मण आदि ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि फाल्गुनी पूर्णचन्द्र जिस रात्रिमें उदित होता है, वह नवीन वर्षकी प्रथम रात्रि है। इससे मालूम होता है कि फाल्गुनी पूर्णचन्द्रके उदय दिवसमें शीतकालीन अयन संघटित होता था।

२। इस स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि शीतकालीन अयन फाल्गुनी पूर्णचन्द्रोदयके दिन संघटित होनेसे वासन्त विषुवद्दिन अवश्य ही मृगशिरापुञ्जमें संक्रमित होता है। आग्रहायणी शब्द मृगशिराके पर्यायवाची रूपमें व्यवहृत हो सकता है। पाणिनिमें भी इस शब्दका उल्लेख है। मृगशिरापुञ्जके द्वारा ही वर्षकी सूचना होती थी इस बातको प्रमाणित करनेके लिए नीचे दो कारणोंका उल्लेख किया जाता है—

(क) चन्द्रद्वारा नववर्ष सूचित होता था ऐसा अनुमान करने पर अग्रहायणी शब्द व्याकरणानुसार मृगशिरापुञ्जके पर्यायवाचीरूपमें व्यवहृत नहीं हो सकता।

(ख) चन्द्रद्वारा वर्ष सूचित होने पर, वह शीतकालीन अयन या अथवा वासन्त विषुवद्दिनसे प्रारम्भ होता था, ऐसी कल्पना करनी होगी। क्योंकि प्राचीन हिन्दू इन दो वर्षारम्भपद्धतिसे परिचित थे। अयनकालसे वर्ष गणना प्रारम्भ होनेसे वासन्त विषुवद्दिन रेवतीसे २७ दिन पीछे अवस्थापित होता है किन्तु यथार्थ अवस्थिति वैसी नहीं है। इसलिए प्रथम कल्पना असिद्ध है, द्वितीय कल्पनाके अनुसार ज्योतिषिक अवस्थिति ४ से १८००० वर्ष पहले सम्भव हो सकती है, किन्तु अन्तर्वर्त्ती काल के कल्पाभिषयके प्रमाणाभावमें द्वितीय मतका समर्थन नहीं किया जा सकता।

३। यदि शीतायनमें फाल्गुनी पूर्णिमाके द्वारा ही वर्ष गणना होती थी तो शीतायन भी माघस्यकी पूर्णिमामें संघटित होता था। वास्तवमें ऐसा ही होता था, इसका यथेष्ट प्रमाण है। शीतायनको पितृयान भी कहते हैं। इस अयनके पहले मास का अयनको पितृ अयन का पितृपक्ष अथवा प्रेतायन वा प्रेतपक्ष कहते हैं। हिन्दू लोग अब भी भाद्रपदके कृष्णपक्षको प्रेतपक्ष कहते हैं।

४। जब वासन्त विषुवद्दिन मृगशिरामें संक्रमित था तब यह नक्षत्रपुञ्ज और छायापथ स्वर्ग और नरकका सीमा स्वरूप था। वैदिकग्रन्थोंमें स्वर्ग, नरक देवलोक और यमलोक शब्दसे निरक्षवृत्तका उत्तर और दक्षिण भागका अर्थ इसका बोध होता है। छायापथका इस लोकमें कुक्कुरकी अवस्थिति, इसका समाकार वारण इत्यादि प्रवाद जो वैदिककालमें प्रचलित हैं उनका अनुधावन करनेसे मालूम होता है कि, वासन्त विषुवद्दिन मृगशिरामें अवस्थित था। उस समय लोगोंको ऐसा विश्वास था और उस विश्वासके अनुसार ही उन लोगोंने इस तरहके रूपकाकार प्रवाद चलाये थे।

५। हिन्दू और ग्रीकोंके अनेक ज्योतिषिक प्रवादोंमें, और तो क्या अनेक नक्षत्रादिके नामोंमें परस्पर सादृश्य पाया जाता है। ग्रीकोंका Orion शब्द हिन्दुओंसे लिया गया है ऐसा जान पड़ता है। मूलर कहते हैं कि ग्रीकोंने यह शब्द पश्चिमवासियोंसे नहीं लिया। Orion शब्द अग्रहायण (अग्रहायण) शब्दका अपभ्रंश है अथवा Oro= होना तथा Aion=काल या वर्ष इन दो शब्दोंसे

उत्पन्न है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। Orion शब्द प्राचीनकालमें नववर्षारम्भ ऐसा अर्थ प्रकट करता था। ग्रीकोंके Orion, Canis & Ursa शब्दके साथ वेदोक्त अग्रयण, श्वन् और ऋच शब्दका सादृश्य पाया जाता है।

६। ऋग्वेदमें स्पष्ट लिखा है कि, सूर्य मृगशिरामें संक्रमित होने पर उत्तरायण प्रारम्भ होता है।

(क) "वर्ष शेष होने पर कुक्कुर सूर्यकिरण जागरित करेगा" (ऋग्वेद १।१६१।१३) इसका सरल अर्थ यह है कि, प्रथम सूर्य निरक्षवृत्तके दक्षिणांशमें रहनेसे देवोंको रात्रि होती है। सूर्य निरक्षवृत्तके उत्तरांशमें आनेसे श्वन् उसको प्रबोधित करेगा, अर्थात् वासन्त विषुवद्दिनमें मृगशिरा वर्षको सूचना देता है।

(ख) ऋग्वेदमें (१०।८६।४—५) इन्द्र सूर्यको कहते हैं—हे चमताशील वृषाकपि! जब ऊर्द्धमें उदित हो कर तुम हमारे आलयमें आओगे, तब मृग कहां रहेगा? अर्थात् सूर्य मृगशिरामें संक्रमित होने पर उक्त नक्षत्रपुञ्ज अदृश्य हो जाता है और सूर्य जब इन्द्रालयमें प्रवेश करता है (अर्थात् जब निरक्षवृत्तके उत्तरांशमें गमन करता है) तब ऐसी घटना होती है।

इसी प्रकार और भी बहुतसे वर्णन देखनेमें आते हैं, बाहुल्यके डरसे यहां उद्धृत नहीं करते।

ऊपर जो लिखा गया है, उसके द्वारा ही प्रमाणित किया जा सकता है कि ऋग्वेदके रचनाकालमें अयन फाल्गुनकी पूर्णिमासे प्रारम्भ होता था तथा वासन्त विषुवद्दिन मृगशिरापुञ्जमें संक्रमित था।

कोई कोई ऐसा समझते हैं कि, ई०से ४००० वर्ष पहले मृगशिरापुञ्ज और विषुवद्दिनकी पूर्वोक्त अवस्था थी।

वैदिकग्रन्थमें कृत्तिका और मघा, मृगशिरा और फाल्गुन तथा पुनर्वसु और चैत्रका यथाक्रमसे विषुववृत्त और अयन सम्बन्धीय वर्षसूचक कहा गया है।

१। पुनर्वसुपुञ्जके अधिष्ठाता-देवता अदितिको अर्चना कर यज्ञादि आरम्भ करना चाहिए। (तैत्ति० सं०)

२। मघके विषुवद्दिनसे चार दिन पहले अभिजित् दिन उपस्थित होता है। इससे यदि सूर्यका अभिजित् पुञ्जमें 'प्रवेश' इस अर्थका बोध हो, तो वासन्त विषुवद्दिन अवश्य ही पुनर्वसुमें संक्रमित होता है, यह अनुमान किया जा सकता है।

३। प्राचीनकालमें जब नक्षत्रादिका विषय आलोचित हुआ था, तब बृहस्पतिपुञ्ज निर्दिष्ट कुछ नक्षत्रोंके सम्बन्धमें प्रयुक्त होता था।

उपर्युक्त तीन विषय और तैत्तिरीयसंहितामें वर्णित विषयावलीका अनुशीलन करनेसे मालूम होता है कि, वासन्त विषुवद्दिनके मृगशिरामें संक्रमित होनेसे बहुत पहले हिन्दूगण ज्योतिषिक आलोचना करते थे। इन्होंने प्रथमतः वासन्त विषुवद्दिनसे और पीछे गोलायनसे नववर्षारम्भ माना है।

भारतीय साहित्यकी आलोचना करनेसे मालूम होता है कि, हिन्दू अति प्राचीनकालसे बराबर अयन-चलन लिखते आये हैं। पुनर्वसुसे मृगशिरा (ऋग्वेद), मृगशिरासे रोहिणी (ऐतब्रा०), रोहिणीसे कृत्तिका (तैत्तिस०), कृत्तिकासे भरणी (वेदाङ्गज्योतिष) तथा भरणीसे अश्विनी है। (सूर्यसिद्धान्त इत्यादि)

ज्योतिषिक नियमानुसार मामूली तौरसे गणना करनेसे मालूम होता है कि, ई०से ६००० वर्ष पहले हिन्दूओंने ज्योतिषिक पञ्जिका लिखी थी। उस समय वा उससे कुछ समय बाद अरितालिका पुनर्वसुमें संक्रमित थी। ई०सनसे ४००१ वर्ष पहले यह मृगशिरामें संक्रमित हुआ था।

प्रोफेसर जैकोबो (Jacobi) का कहना है कि ऋग्वेदमें हमें पहले ही वर्षाकालका उल्लेख देखते हैं। ऋग्वेद जहांसे (पञ्जाब) प्रकाशित हुआ था, वहांको ऋतु पर दृष्टि डालनेसे यह सहजमें ही समझ सकते हैं कि, उक्त वर्षारम्भ ग्रीष्मायनमें संघटित होता था।

भाद्रपदकी पूर्णिमा फाल्गुनीके ग्रीष्मायन-संयुक्त है। इसलिए भाद्रपद ही वर्षाकालका प्रथम मास है कारण पहले ही कहा जा चुका है कि, ग्रीष्मायन वर्षाकालके साथ प्रारम्भ होता था। गृह्यसूत्रके पढ़नेसे भी इसका आभास पाया जाता है।

गोभिलसूत्रसे प्रोष्ठपदकी पूर्णिमामें उपाकरण स्थिरीकृत हुआ है, किन्तु श्रावणकी पूर्णिमासे विद्या-

जियाका प्रारम्भकाल गिना जाता था। ऋग्वेदमें लिखा है कि, अति प्राचीनकालमें प्रोष्ठपदसे विशाखिकाकाल प्रारम्भ होता था। पीछे नक्षत्रादिकी गतिके द्वारा उन की स्थितिमें कुछ परिवर्तन हो जानेसे स्थान प्राप्तिमें भी भेद हो गया है। ऋग्वेदके परवर्ती वैदिक ग्रन्थमें नक्षत्र मण्डलोंमेंसे कृत्तिकाका नाम पहले वर्णित है। किन्तु किसी किसी ग्रन्थोंमें वैलक्षण्य देखा जाता है। कौषीतकि-ब्राह्मणमें कहा गया है कि उत्तरफल्गु द्वारा वर्षका मुख और पूर्वफल्गु द्वारा पुच्छ बनती है। तैत्तिरीयब्राह्मण की टीकामें पूर्वफल्गुनी वर्षकी अन्त्य रात्रि और उत्तरफल्गुनी प्रथम रात्रि कही गई है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि अति प्राचीनकालमें अयन उत्तरफल्गुनीको छेद कर स्थापित होता था।

वैदिक ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम होता कि वर्षगणना करनेके लिए कालक्रमसे भिन्न भिन्न नाम व्यवहृत हुए थे। तैत्तिरीय संहितामें हिमवर्षका उल्लेख मिलता है। यह वर्ष अयनवर्षके ६ मास पहले शीतायनसे प्रारम्भ होता था। ऋग्वेदमें अनेक स्थान वर्ष शब्दके बदले शरद शब्दका उल्लेख पाया जाता है। यह शारदवर्ष शारद विषुवदिन अथवा पूर्णिमा कालसे ही गिना जाता था इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। पौषायन उत्तरफल्गुनी और शीतायन पूर्वभाद्रपदमें संक्रमित होने पर शारद विषुवदिन मूलामें और वासन्त विषुवदिन मृगशिरामें अवस्थापित होता है। इस गणनाके अनुसार मूला प्रथम नक्षत्र है और इसके नामसे भी उस अर्थ व्यक्त होता है, ज्येष्ठा शेष नक्षत्र है, इसका प्राचीन नाम ज्येष्ठघ्नी (अर्थात् कि इस नक्षत्रमें वर्ष शेष होता) था।

शारदवर्षके प्रथम मासका नाम है अग्रहायण। यह मृगशिराका पर्यायवाची शब्द है, इसकी पूर्णिमा मृगशिरा नक्षत्रमें होती है। उस समय मृगशिरा कहनेसे वासन्त विषुवदिनका बोध होता था इसलिए यह निश्चित है कि शारद पूर्णिमा मूलऋक्ष नक्षत्रमें होती थी तथा प्रथम मासका नाम मार्गशिर था।

समय ऋतुका परिवर्तन हुआ था। ऋग्वेदमें जिस प्रकार छः विभाग देखनेमें आता है, पीछे वह सिर्फ ईश्वराराधनाके लिए व्यवहृत होता था। ऋग्वेदमें जैसा अयन अवधारित हुआ था परवर्ती ग्रन्थकारोंने उसका संशोधन किया था। शिक्षित हिन्दूगण कहते हैं कि, कृत्तिकासे वर्ष आरम्भ होता है। सम्भवतः परिशोधनके समय कृत्तिकाकी अवस्थिति उस प्रकारकी ही थी। [illegible] कहते हैं कि, सूर्यसिद्धान्तानुसार मि० ह्विटनी (Mr Whitney)की गणनासे मालूम होता है कि, ई०से २५०० वर्ष पहले वासन्त विषुवदिन कृत्तिका और पौषायन मघा संक्रमित था।

ई०से १४।१५ शताब्दी पहलेके ज्योतिषग्रन्थोंमें अयन निर्धारणके अनेक उल्लेख मिलते हैं। वैदिक ग्रन्थोंमें जिस प्रकारसे अयन अवधारित हुए हैं, सम्भवतः उस समय वैसे ही थे। नक्षत्रमालाके अनुसार गणना करनेसे मालूम होता है कि ऋग्वेदमें जिस प्रकारके अयनोंका उल्लेख है वे ई०से ४५०० वर्ष पहले निर्णीत हुए थे।

हिन्दू-ज्योतिषका वैशिष्ट्य—हिन्दू सभ्यताकी शैशव अवस्था से हिन्दूमात्र प्रत्येक ज्योतिष्ककी दैविक शक्ति विशिष्ट समझते थे। इसी विश्वास पर हिन्दू ज्योतिषकी भित्ति प्रतिष्ठित है। उनकी धारणा थी कि परब्रह्मने प्रत्येक ज्योतिष्कको दैविक गुणान्वित करके भेजा है, जिसके द्वारा वे विश्वके सभी कार्योंके नियन्ता बन बैठे हैं। इसलिए यदि ब्रह्मको सम्यक्‌रीतिसे समझना है, तो उनकी शक्तिका पर्यवेक्षण तथा समय और ऋतुके विभागोंकी गणना करना आवश्यक है। इस तरह प्रथम युगके हिन्दू ज्योतिषियोंका प्रधान प्रयत्न हुआ—ससीमपक्षके वैदिकोंको एक शुद्ध व्याख्या कर धर्मानुष्ठानका समय निर्धारण करना। भारतीय ज्योतिष हिन्दुओंकी निजस्व सम्पत्ति है किन्तु पाश्चात्यगण इस विद्याको उधार ली हुई बतलाते हैं। अतएव इस विषयमें यहां कुछ आलोचना की जाती है।

सूर्य-सिद्धान्तमें 'मय' नामका उल्लेख रहनेसे बहुतसे लेखकोंमें भ्रमसी फैल गई है।

वेबर साहबका कहना है कि हिन्दुओंका 'मय' ग्रीकोंके 'टलेमेउस' का (Ptolemaios) संस्कृत अनुवाद मात्र है। और इन्होंने यह भी अनुमान किया है कि हिन्दू ज्योतिष ग्रीक ज्योतिषका विशेष आभारी था। हम इस समय यह सिद्ध करेंगे कि यह धारण

बिलकुल बेजड़ है। पुराणोंमें बहुत जगह प्रसिद्ध शिल्पी 'मय'का उल्लेख पाया जाता है एवं रामायण और महाभारतके शताधिक स्थानोंमें "मायावी" 'मय'का उल्लेख आया है। इस जगह 'मायावी' शब्दसे एक प्रसिद्ध ज्योतिषीका ही बोध होता है। रामायण और तत्परवर्ती महाभारतके रचनाकालमें टलेमिका आविर्भाव भी नहीं हुआ था। इन युक्तियोंको छोड़ कर यदि तर्कके लिहाजसे यह भी मान लें कि 'हिन्दुओंका, 'मय' ग्रीकोंके टलेमिका संस्कृत अनुवाद है, तो भी हिन्दू ज्योतिषके ऋण स्वीकार वा आभार माननेका कोई कारण नहीं दीखता सूर्यसिद्धान्तमें किसी भी जगह ज्योतिषके आचार्य रूपमें मयका वर्णन नहीं किया गया है, उन्होंने सिर्फ सूर्यसे उपदेशके बहाने ज्योतिषकी शिक्षा ली है। और यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि सूर्य हिन्दुओंके देवता हैं। फलतः वेबर साहबकी बात यदि मान भी ली जाय, तो भी हम बिलकुल विपरीत सिद्धान्तमें उपनीत होते हैं। सिवा इसके फिलहाल के (Kaye) साहबने एक निबन्धमें लिखा है—(East and West, July 1919) सम्भवतः 'मय' शब्द पारसियोंके 'अहुर मज्दाका अपभ्रंश रूप है। इस विषयमें पूर्वोक्त युक्तिके सिवा यह भी कहा जा सकता है कि 'मय' और 'अहुरमजदा' इन दो शब्दमें धातुगत जरा भी मेल नहीं है। जिन्होंने फारसका ज्योतिष देखा है, वे इस बातको,अवश्य ही मानेंगे कि, वह सूर्य सिद्धान्तके ज्योतिषभागको तुलनामें बिलकुल ही ग्रहणयोग्य नहीं। वस्तुतः ऐसी धारणामें विषम भ्रान्तिमूलक मालूम पड़ती है।

हिन्दुओंके ज्योतिषिक सिद्धान्तोंमें ब्रह्म, सौर, सोम और बृहस्पति ये चार ही समधिक आदृत होते थे। अलावा इसके और भी दो सिद्धान्त रचे गये थे, जो रोमक और पौलिशके नामसे परिचित हैं। बहुतोंकी धारणा है कि ये दोनों ग्रीकोंके ज्योतिषशास्त्रका अनुवाद है और हिन्दू ज्योतिष पर उनकी छाप लग गई है। परन्तु यह तो रोमक सिद्धान्तके नामसे ही मालूम हो जाता है कि वह किसी ग्रीक वा रोमीय ज्योतिषका अनुवाद है। डा० भाऊदाजीने एक रोमकसिद्धान्तकी हस्तलिपि संग्रह की थी। उसमें स्पष्ट दीख पड़ता है कि रोमक सिद्धान्तकी विचार प्रक्रियाके साथ हिन्दुओंके सिद्धान्तोंकी विचार पद्धतिका कुछ भी सामञ्जस्य नहीं है; इसमें समय और दिन गणनाके लिये Alexandria को मध्याह्न ग्रहण किया है। संभवतः यह टलेमीके किसी ग्रन्थका सङ्कलन है और सम्पूर्ण रूपसे विदेशियोंसे ग्रहण किया गया है। हिन्दू-ज्योतिषमें इसकी विचार पद्धतिका व्यवहार होना तो दूर रहा, हिन्दुओंके सिद्धान्तोंमें उसका उल्लेख तक नहीं है। Dr Kern का कहना है, कि सम्भवतः षोड़श शताब्दीमें रोमक-सिद्धान्त रचा गया था, क्योंकि बीच बीचमें इसमें बराबर बादशाहका नामोल्लेख है। इसलिए हम निःसन्दिग्धरूपसे यह धारणा कर सकते हैं, कि रोमक सिद्धान्तका हिन्दू ज्योतिषको उन्नतिसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। किन्तु पौलिश सिद्धान्तके विषयमें यह बात नहीं कही जा सकती। इसकी विचार प्रक्रियाके साथ हिन्दुओंके प्रचलित ज्योतिष-सिद्धान्तका बहुत कुछ सामञ्जस्य है। परन्तु उसकी सौर और चन्द्रग्रहणगणना सूर्यसिद्धान्त या भास्करके सिद्धान्त-शिरोमणिकी ग्रहण-गणनाकी तरह उतनी विशुद्ध और अभ्रान्त नहीं है। यूरोपीय विद्वानोंकी धारणा है कि पौलिश-सिद्धान्त ग्रीक ज्योतिषी पलाश अलेक्जेन्ड्रिनसके ग्रन्थसे सङ्कलित किया गया है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन कालमें पुलिश नामके एक ज्योतिर्वित् ऋषि भारतवर्षमें विद्यमान थे। नामकी एकताके आधार पर एक साधारण सिद्धान्त कर लेना भी बड़ी भारी भूल है। डा० कार्नने बृहत्संहिताकी भूमिकामें लिखा है— 'पलाश अलेक्जेन्ड्रिनियस और पौलिश एकही व्यक्ति थे, यह अनुमान करनेका हमें कोई भी अधिकार नहीं है। जब कि नाम दोनों स्थलोंमें एक हैं, तब नामका ऐक्य किसी तरह भी युक्तिमें नहीं सम्हाला जा सकता।" अध्यापक योगेशचन्द्र रायने अपनी "भारतका ज्योतिष और ज्योतिषी" नामक पुस्तकमें लिखा है—"पौलिश सिद्धान्त गणित-ज्योतिषका ग्रन्थ है, किन्तु (Paulus Alexandrinus के ग्रन्थने फलित ज्योतिषके विषयमें समधिक आलोचना की है, इसलिये अब इस बातको प्रमाणित करनेके लिए प्रमाणकी जरूरत नहीं कि पौलिश ग्रन्थ भारतका निजस्व है,

किसी विदेशी ग्रन्थका अनुवाद नहीं है।"

हिन्दू ज्योतिषके द्वितीय भागमें अर्थात् सिद्धान्तके युगमें गणित ज्योतिषकी विशेष उन्नति हुई थी। उस समय ग्रीक ज्योतिषकी विचारपद्धति इसमें प्रच्छन्न और विज्ञान-सम्मत है कि इस में शामिल युगके ज्योतिर्विद् गण भी रचयिता बन कर उनको आत्मपरिचय देनेमें गौरव समझते हैं। उस समयके सिद्धान्तोंमें ब्रह्मसिद्धान्त, सूर्यसिद्धान्त और सिद्धान्त शिरोमणि ये तीन सिद्धान्त ही आधुनिक हिन्दू ज्योतिषियोंको आदरकी वस्तु हैं। इनके रचनाकालके विषयमें पाश्चात्य विद्वानोंमें मतभेद पाया जाता है।

ज्योतिष शास्त्रमें आर्यभटके आविर्भावसे हिन्दुओंके गणित ज्योतिषमें एक नये युगकी सूचना हुई है। वस्तुतः ब्रह्मगुप्त और अन्यान्य परवर्ती लेखकोंने बहुत जगह अपने मतके परिपोषणके लिये आर्यभटकी रचना उद्धृत की है। ब्रह्मगुप्तकी रचनासे मालूम होता है कि भारतमें सबसे पहले आर्यभटने ही यह स्थिर किया था कि, पृथ्वीके परिभ्रमणके द्वारा नक्षत्र और ग्रहोंका उदयास्त होता है। ब्रह्मगुप्तके टीकाकार पृथूदक स्वामी द्वारा उद्धृत निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट मालूम होता है कि आर्यभटने पृथ्वीकी गति निरूपित की थी।

"भूपञ्जरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रातिदैवसिकौ।
उदयास्तमयौ सम्पादयति नक्षत्रग्रहाणाम्॥"

नक्षत्रमण्डल स्थिर है, केवल पृथिवीकी आवृत्ति वा परिभ्रमण द्वारा ग्रहनक्षत्रका प्रात्यहिक उदयास्त होता है। पाश्चात्य भूमिखण्डमें कोपर्निकसने ही सबसे पहले पृथिवीकी गतिके विषयमें स्पष्ट भाषामें प्रकट किया था—पिथागोरसने इसका सङ्केतमात्र किया था। कोपर्निकसका आविर्भाव १५वीं शताब्दीके शेष भागमें हुआ था। किन्तु आर्यभटके 'आर्यसिद्धान्त' नामक ग्रन्थमें इसका उल्लेख है। ५०१ ई०में आर्यभट जीवित थे। वस्तुतः यही अनुमान सहज प्रतीत होता है कि हिन्दुओंका यह सिद्धान्तसम्बन्ध ग्रीक देशके अन्तःपणिक-प्रभावसे प्रभावित हो कर यूरोपमें पिगमतो ज्योतिषलीकमें परिणत हुआ है।

आर्यभटके बाद ब्रह्मगुप्तका आविर्भाव ज्योतिषशास्त्रके इतिहासमें विशेष उल्लेखयोग्य घटना है। ईसाकी ६ठी शताब्दीमें ब्रह्मगुप्त मौजूद थे। पृथिवी किसी आधार पर क्यों नहीं है और क्यों वह गोलाकार हो कर भी पृथिवीवासियोंको समतल मालूम पड़ती है, इस बातका सबसे पहले आर्यभट और उनके बाद ब्रह्मगुप्तने युक्ति द्वारा समझानेका प्रयत्न किया था। परन्तु ग्रीक ज्योतिषमें इसका कुछ भी वर्णन नहीं है। ब्रह्मगुप्तका कहना है कि "पृथिवी व्योममण्डलमें अपनी शक्तिके बलसे निराधार अवस्थित है। कारण, पृथिवीका यदि आधार होता, तो उस आधारका भी आधार होना जरूरी है, इस तरह क्रमशः अनन्त आधार हो सकता रहेगा उसका अन्त नहीं हो सकता। आखिरको यदि अन्तिम वस्तुको अवस्थित मान कर आधारके अभावकी ही कल्पना करनी है तो पहलीसे ही क्यों न की जाय? क्यों न पृथिवीको निराधार माना जाय? पृथिवी अपनी आकर्षणशक्तिकी सहायतासे निकटवर्ती वायुस्तरमें अवस्थित गुरु द्रव्योंको अपनी ओर आकर्षित करती है और इस कारण वह गिरती हुई मालूम पड़ती है। किन्तु अनन्त व्योममण्डलके मध्य वह कहां जा कर गिरेगी? शून्यमार्ग सभी दिशाओंमें समान और अनन्त है। पृथिवी यदि गिरती ही रहती तो पृथिवीसे ऊपर की ओर फेंकी हुई वस्तु (पत्थर आदि) प्रक्षेपण वेग (Projective force)-के समाप्त हो जाने पर, फिर पृथिवी पर नहीं गिरती। कारण दोनों ही नीचेकी तरफ गिर रही हैं। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वस्तुखण्डकी गति अधिक होनेसे वह पृथिवी पर गिर पड़ता है; क्योंकि पृथिवीका गुरुत्व बहुत है और इसीलिए उसकी गति भी बहुत तेज है। आर्यभटने एक स्थान पर लिखा है—

'मृद्वद् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः कुसुमैः।
तद्वद्धि सर्वसत्वैर्जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः॥"

आर्यभटने इस बातका भी निर्देश किया है कि पृथिवी क्यों समतल प्रतीत होती है। जैसे—

"समो यतः स्यात्परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा॥"

पृथिवी बहुत बड़ी है, और मनुष्य उसकी तुलनामें

यह गति निर्धारण करनेके दो नियम थे। एक नियम यद्यपि Apollonius के नीचोच्चवृत्तके समान था तथापि प्रसिद्ध भी बहुत था। दूसरा नियम सम्पूर्ण भिन्न प्रकृति-का था। पहले नियमकी विशिष्टता यह थी कि, हिन्दुओंने नीचोच्चवृत्तकी परिधिको परिवर्तनशील मान लिया था।

हिन्दू ज्योतिषकी और एक विशिष्टता है—राशिचक्र-का द्वादश राशियोंमें विभाग। Keye साहबने इस प्रसङ्ग भी बिना किसी युक्तिका दिग्दर्शन कराये, एक बारगी यह सिद्धान्त कर लिया है कि "हिन्दू ज्योति-षि दोंने यह यूनानियोंसे सीखा है। परन्तु गगनमें क्रान्तिवृत्त (Ecliptic) या सूर्यकक्षा और राशिचक्र-(Zodiac) के विभागकी विशेष आवश्यकता है। हिन्दुओंमें गणना करनेकी दो विभिन्न पद्धतियां थीं - एक चान्द्र तिथिके द्वारा होती थी और दूसरी राशियोंके सब अंशोंमें। यहां इतना समझ है कि पहली पद्धति दूसरीसे बहुत पहले आविष्कृत हुई थी। क्योंकि तारकापुञ्जमें चन्द्रके दैनिक अवस्थान या गतिका इस प्रकार पर्यवेक्षणके द्वारा निर्णय कर सकते हैं। किन्तु दैनिक गतिके द्वारा होने-वाली सूर्यको तारकापुञ्जमें नियमित अवस्थितिका निर्णय परोक्ष प्रमाण द्वारा ही हो सकता है। हेतु यह कि, सूर्यके प्रखर आलोकके कारण उसके निकटवर्ती तारकापुञ्ज भी दिखलाई नहीं दे सकते। किन्तु तो भी विविध नक्षत्र-तारापुञ्जके आवर्त्तनमें चन्द्रकी गति सूर्यकी गतिकी तरह एक सहजमें अधीन नहीं है। परन्तु हमारे दैनिक अभिज्ञताके साथ सूर्यकी गतिका निर्धारण करना बिलकुल न मिलता है। इसलिए मैंने इस तथ्यके आविष्कारके लिए राशिचक्र द्वारा ज्योतिष गणना नितान्त अनिवार्य होने लगता है, तथा पूर्वोक्त तिथिविभाग क्रमशः प्राचीन पद्धतिमें परिगणित होने लगा। हिन्दू लोग चन्द्रकी दैनिक गतिका निर्देश करने के लिए क्रान्तिवृत्तको पहले २८ भागोंमें, फिर २७ भागोंमें विभक्त करते हैं; एवं प्रत्येक विभागको सूचित करनेके लिए एक एक तारापुञ्जका निर्णय करते हैं। इनका ३.प विभाग भी अधिकतर विज्ञान-सम्मत है। क्योंकि इसमें एक एक विभागका परिमाण चन्द्रकी दैनिक गतिके प्रायः समान है, तथा एक नाक्षत्रिक आवर्त्तनके समय (mean sidereal revolution) अर्थात् चन्द्रकी गति एक तारकापुञ्जसे चला कर चन्द्रको उस तारकापुञ्जमें लौटनेमें २७⅓ दिन लगते हैं। यहां भग्नांशको बाद देनेसे २८ दिनकी जगह २७ दिन ही होते हैं। इन २७ चान्द्रविभागोंको सूचित करनेके लिए हिन्दुओंने २७ तारकापुञ्जोंका निर्णय किया था। प्रति पुञ्जके उज्ज्वलतम नक्षत्रको ही योगतारा कहते थे और समय विभागको नक्षत्र। यह योगतारा प्रति विभागके आदिप्रान्तकी सूचना करता था। इस तरह प्रत्येक विभाग विभागीय नक्षत्रोंकी तरह निर्दिष्ट स्थानको अधिकार किये रहता था और इस निर्दिष्ट विभागोंकी सहायता से चन्द्रकी दैनिक गतिका निर्णय किया जाता था। वायट साहबका कहना है कि अरबी लोगोंने ज्योतिषियोंने सियन (Si-n) के नामसे क्रान्तिवृत्तके विभाग आविष्कृत किये थे। पीछे उन्हींकी सहायतासे हिन्दुओं-के नक्षत्र और अरबियोंके मञ्जिलका आविष्कार हुआ है। परन्तु अध्यापक वेबर साहबने यह प्रमाणित कर दिया है कि चीनवासियोंका सियन और अर-बियोंकी मञ्जिल हिन्दू ज्योतिषके परवर्ती कालके विभागोंसे गृहीत हुई है। इस विभागमें उपनीत होनेसे पहले हिन्दू-ज्योतिषको विविध स्तरोंका अतिक्रम करना पड़ता है। इससे स्पष्ट कहा है, कि चन्द्रकी गति निर्णयके लिए निर्दिष्ट विभागका आविष्कार हिन्दुओंकी ही गवेषणाका फल है। बादमें अरबवासियोंने इसी के अनुकरण पर अपनी मञ्जिल आविष्कृत की है किन्तु इस विषयमें अध्यापक वेबरका यह कहना है कि बैबिलनदेशके ज्योतिषियोंने पहले पहल इस विभाग प्रणालीका आविष्कार किया था। किन्तु यह सिद्धान्त विज्ञानसम्मत नहीं है, क्योंकि बैबिलनदेशके ज्योति-विद् सूर्यकी दैनन्दिन गतिके साथ सम्बन्ध रख कर उस-का विभाग करते हैं। परन्तु हिन्दुओंका प्रथम विभाग चन्द्रकी दैनिक गति पर निर्भर है और इसके बाद हिन्दुओंके राशिचक्रका विभाग आविष्कृत हुआ था।

परवर्ती युगके ज्योतिर्विदोंकी रचनाओंसे हम जान सकते हैं, कि प्राचीन हिन्दू ज्योतिषियोंको विषुव विन्दु-

इयको अयनगति मालूम थी और विज्ञानसम्मत रूपमें हो उनके अयनांशोंको मीमांसा की गई थी। सूर्यका गतिमार्ग वृत्ताकार है और व्योममण्डलमें उसके तल-भागने निर्दिष्ट स्थान अधिकार कर लिया है, इसलिए व्योमके केन्द्रको भेद कर रविकक्षाके ऊपर जो लम्ब (Perpendicular) स्थित है, वह निश्चल है। पृथिवी का अक्ष (axis) इस लम्ब-रेखाके चारों ओर आवर्त्तित होता है और २६००० वर्षमें एक आवर्तन पूरा होता है। इस दोलनकी गणनाको अयनांश गणना कहते हैं। इस प्रकारका ध्रुवकक्ष (Polar axis) नभोमण्डल भेद कर जिस विन्दुमें जाता है, वह विन्दु क्रमशः व्योममें एक क्षुद्र वृत्त बना लेता है और उस वृत्त द्वारा चिह्नित पथमें जो जो तारे रहते हैं वे क्रमशः ध्रुव तारा नाम पाते हैं। जिस समय यह क्रिया होती है, उस समय निरक्षवृत्त और क्रान्तिवृत्तकी छेदक रेखा जो विषुवविन्दुमें अवस्थान करते समय सूर्यके केन्द्रको भेद कर जाती है, भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न नक्षत्रों-की सूचना देती है। इसे ही यदि कुछ सरलतासे कहा जाय तो यह कहना पड़ेगा, कि भिन्न भिन्न आवर्तनमें सूर्य विषुव-विन्दुमें विभिन्न नक्षत्रोंकी सूचना करता है। सूर्य-सिद्धान्तके तृतीय अध्यायमें इसकी आलोचना की गई है, यथा —

"त्रिंशत् कृत्यो युगे भाना चक्रं प्राक् परिलम्बते।
तद्गुणाद् भूरि नैर्भक्तात् द्युगणाद् यदवाप्यते॥
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशाः विज्ञेया अयनाभिधाः।
तत्संस्कृताद् ग्रहात् क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम्॥
स्फुटं दृक्तुल्यता गच्छेद् अयने विषुवद्द्वये।
प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात् करणे गते॥
अन्तरांशैरथावृत्य पश्चाच्छेषैस्तथाधिके।"

अर्थात् जिस समय सूर्य दोनों विषुवविन्दुओं और अयनविन्दुमें रहता है, उस समय यदि सूर्यका निरीक्षण किया जाय तो इस नक्षत्रपुञ्जमें अयनांशको गति दृष्टिगोचर हो सकती है। गणना द्वारा प्राप्त सूर्यका स्पष्ट स्थान छायागत अर्कस्थानसे जितने अंशोंमें न्यून होगा, नक्षत्रपुञ्ज उतना ही पूर्वकी ओर होगा तथा जितने अंशोंमें अधिक होगा उतना ही पश्चिमकी ओर होगा।

हिन्दू ज्योतिषकी और एक उल्लेखयोग्य विशिष्टता है—उसकी लम्बन-गणना (Calculation of parallax) Kaye आदि कुछ पाश्चात्य लेखकोंकी धारणा है, कि हिन्दू ज्योतिषियोंने ग्रीकोंसे उसकी शिक्षा पाई है। परन्तु यह तो मालूम होता है कि अति प्राचीनकालमें भी हिन्दुओंको ग्रहण-गणनाके सभी तत्त्व ज्ञात थे तथा उन्होंने चन्द्र और सौरग्रहणका आरम्भ, मध्य एवं समाप्तिका समय निर्णीत करनेके लिए विविध उपाय आविष्कृत किये थे। अवश्य ही उनको इतनी विशुद्धिके लिए अक्षांश और भुजांशकी लम्बन गणनाकी आवश्यकता होती थी। वस्तुतः इस बातका विश्वास होना स्वाभाविक है, कि वैदिक युगमें भी यागयज्ञके अनुष्ठानके लिए ग्रह गणनामें हिन्दू लोग सूर्यका लम्बन निर्धारण करते थे। भास्कराचार्यने अपने 'सिद्धान्तशिरोमणि' ग्रन्थमें लम्बन-गणनाके विषयमें प्राचीन ज्योतिर्विदोंकी रचनामेंसे कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं, यथा—

"पर्वान्तेऽर्के नतमुडुगतिच्छन्नमेव प्रपश्येत्
भूमध्यस्थेन तु वसुमतीपृष्ठनिष्ठस्तदानीम्।
तादृक् सूर्यादिमरविरधोऽलम्बितोऽर्के प्रदेशः।
कक्षाभेदादिह खलु नतिर्लम्बनं चोपपन्नम्॥
समकलकाले भूमा लगन्ति मृगांके यतस्तया।
म्लानं सर्वे पश्यन्ति समं समकक्षत्वाग्नलम्बनावती॥"
(सिद्धान्तशिरो० ८।२-३)

सूर्य और चन्द्र दोनोंके ही वृत्ताकार अवयव हैं। सूर्यका आकार चन्द्रको अपेक्षा बहुत बड़ा है। इसलिए जब सूर्य चन्द्रके अन्तरालमें आता है तब अतिदूरवर्ती पृथिवीके केन्द्रस्थित दर्शकोंकी दृष्टिमें सूर्यग्रहण होने पर भी, पार्श्ववर्ती स्थानके दर्शकोंको ग्रहणका कुछ भी उद्देश नहीं मालूम पड़ता। इसका कारण यह है कि उस स्थानके दर्शकोंकी दृष्टिरेखा सूर्य और चन्द्रके केन्द्र-को भेद कर नहीं जाती और इसीलिये सूर्यग्रहणमें अक्षांश और भुज अंशके लम्बन गणनाकी आवश्यकता होती है। जब सूर्य और चन्द्र पड़भ्यन्तरमें रहता है, तब पृथिवी-की छाया चन्द्रको सम्पूर्णतया आवृत कर डालती और चन्द्रग्रहण पृथिवीके सभी स्थानोंसे समान दीख पड़ता है। इसी कारण चन्द्रग्रहणमें लम्बनगणनाकी आवश्यकता नहीं रहती।

ये ही हिन्दू ज्योतिषकी विशेषताएं हैं। हिन्दू-ज्योतिष की आलोचना करनेसे यह बिना स्वीकार किये रहा नहीं जा सकता कि ज्योतिषशास्त्रमें हिन्दू ज्योतिष विशेष उच्चस्थान प्राप्त करनेकी स्पर्द्धा रखता है।

प्राचीन ज्योतिषियोंमें चीन ही अन्य किसी शास्त्रका अंशमात्र न जान कर स्वतन्त्ररूपसे ज्योतिषशास्त्रका अनुशीलन करते थे। इनकी अनुसन्धित्सा और प्रत्यक्ष पर्यवेक्षणादि के द्वारा बहुतसे तत्त्वोंका आविष्कार हुआ है।

हिन्दू चीन काल्डीय और मिसरीय सभी अपनेको ज्योतिर्विद्याके आविष्कर्त्ता समझ गौरव अनुभव करते हैं। पर इनके पास अपने पक्ष समर्थनके लिए बहुतसी युक्तियां मौजूद हैं। तदनुसार, इउटलि आदि पाश्चात्य विद्वानोंने स्थिर किया है कि हिन्दू-ज्योतिष अति प्राचीन होने पर भी हिन्दुओंने ग्रीक यवनोंसे ज्योतिष विषयक बहुत कुछ सहायता पा कर उन्नति कर पाई थी। इसी लिए हिन्दू-ज्योतिषमें आक्षोकेर लापुरी आदि ग्रीक शब्द दिखनेमें आते हैं। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् मि० बर्गेसका कहना है कि, सिर्फ शब्दोंको देख कर हिन्दू ज्योतिषको ग्रीकज्योतिषमूलक नहीं कहा जा सकता, सम्भव है ये शब्द हिन्दू-ज्योतिषशास्त्रोंसे ही ग्रीकज्योतिष शास्त्रमें प्रचलित हुए थे। आनुषङ्गिक प्रमाण द्वारा बल्कि यह कहा जा सकता है कि, भारतीय ज्योतिर्विद्गण शिक्षक थे और ग्रीकज्योतिर्विद्गण उनके छात्र। (Burgess Surya Siddhanta) कोई कोई ऐसा अनुमान करते हैं कि हिन्दुओंने बाबिलनोयोंसे नक्षत्रमण्डलका विषय जाना था। इसके उत्तरमें मि० विग्रो लिखते हैं कि बाबिलनोय पहले सिर्फ २४ नक्षत्रोंको जानते थे किन्तु भारतीय ज्योतिर्विद्गण बहुकालसे ही २७।२८ नक्षत्रोंका विषय जानते थे इसके बहुत प्रमाण मिलते हैं। अतएव हिन्दुओंको नक्षत्रमण्डलका ज्ञान बाबिलनोयोंसे नहीं हुआ। कायसरअर्पित विख्यात ज्योतिर्विद् अल मह्नके मतसे—यवनज्योतिषसे जो कि पारसी भाषामें लिखा हुआ है आर्यज्योतिषियोंने शतशः कुछ विषय स्पष्ट किया था। हमारे समझसे हिन्दू ज्योतिष शास्त्रमें जितने यवनादि मत उद्धृत किये गये हैं उनका बीज ज्योतिर्विद् नहीं माना जा सकता। सभी युगोंने भारतकी पश्चिम सीमा पर यवनोंको लिखा है। पश्चिमप्रान्तवासी अनेक ग्रीक-सम्प्रदायसे बहुत पहलेसे ही हिन्दुओं द्वारा यवन कहलाते थे; सम्भवतः पश्चिम प्रान्तवासी किसी यवनके पाससे ज्योतिषादि विषयमें हिन्दुओंने कुछ सहायता ली थी।

चीनोंका कहना है—उनकी ज्योतिर्विषयक घटनावलीकी तालिका ईसासे २८५० वर्ष पहलेकी है। किन्तु उस तालिकामें कब कब सूर्यग्रहण और धूमकेतुका उदय होगा, सिर्फ इतना ही वर्णन है ग्रहणके दिनके सिवा सूक्ष्म रूपसे समय निर्दिष्ट नहीं किया गया है। चीनके बादशाह ग्रहण समझनेके लिए दैवज्ञ नियुक्त रखते थे ग्रहण का दिन नहीं बता सकनेसे उनको फांसीका हुक्म दिया जाता था। उनमें ऐसा विश्वास था कि एक दैत्य सूर्य और चन्द्रमण्डलको ग्रास करता है इससे ग्रहण पड़ता है, इस लिए दैत्यको भय दिखा कर सूर्य और चन्द्रको ग्रास कर लेनेसे उसे विरत करनेके लिए चीन लोग ग्रहणके समय भयानक चीत्कार करते और ढोल, थाली आदि बजाते थे। चीनों द्वारा वर्णित उन ग्रहणोंमेंसे बहुतोंको आधुनिक ज्योतिर्विदोंने गणना कर मिलाया है किन्तु इनमेंसे पूर्ववर्ती सिर्फ एक ग्रहणके सिवा और कोई भी नहीं मिला है। कुछ भी हो, बहु पूर्वकालसे चीनोंको ग्रहणके १८ वर्षका कालावर्त्त मालूम था और ३६५ दिनका वे वर्ष मानते थे। ग्रीसमें ग्रहणके उस कालावर्त्तका प्रचार मि० मिटन (Meton)ने किया था तबसे वह मिटनिक कालावर्त्त कहलाता है। कहा जाता है कि, ईसासे प्रायः ११ शताब्दी पहले वे शङ्कुच्छायाके द्वारा क्रान्तिपातका निरूपण करते थे। चीनोंका कहना है कि, ईसाके २२१ वर्ष पहले सम्राट् शिह् ह्वांगने ज्योतिर्विषयक समस्त ग्रन्थोंको जला कर भस्म कर दिया जिससे प्राचीन पण्डितों द्वारा विरचित बहुतसे उत्कृष्ट ज्योतिषग्रन्थ और गणना नियमादि विलुप्त हो गये। वे ईसाकी ४र्थ शताब्दी तक अयनचलन (Precession of the equinoxes)का विषय कुछ नहीं जानते थे किन्तु बहुत पहलेसे ही ग्रहणकी गतिका विषय जानते थे।

प्राचीन काल्दीयगण प्रत्यक्ष देख कर ज्योतिर्विद्याकी आलोचना और पर्यवेक्षण करते थे तथा पूर्ववर्ती आचार्यों

द्वारा प्रणीत नियमावलीका अनुसरण कर ज्योतिष्कोंके उदयास्त और ग्रहणादिको गणना करते थे। ग्रीकोंके वाबिलन नगर अधिकार करने पर आरिष्टटल अलेकजन्दरके आदेशानुसार वहांसे १९०३ वर्षको प्रत्यक्षोक्त ग्रहणोंकी एक तालिका ग्रीसको भेजी थी। किन्तु इस वर्णनाको बहुतसे लोग अत्युक्ति बताते हैं। टलेमीने इससे ६ ग्रहणोंका विषय लिया है। सबसे प्राचीन ई०से ७२० वर्ष पहलेका है। इन ग्रन्थोंमें ग्रहण समयके घण्टामात्र निर्दिष्ट है और ग्रासादिके ग्रस्तांश के पाद पर्यन्त स्थूलरूपसे उल्लिखित हैं। इन ग्रहणोंको देख कर हेलिने चन्द्रकी गतिकी शीघ्रता प्रतिपादन की अर्थात् यह प्रमाणित किया कि, चन्द्र पहले जिस वेगसे पृथिवीके चारों तरफ आवर्त्तित होता था अब उससे और भी शीघ्रतासे भ्रमण करता है। काल्डोयोंके सूक्ष्म पर्यवेक्षणका और एक प्रमाण मिलता है। वे ६४८५१ दिनका एक कालावर्त मानते थे। इस समय २२७ चान्द्रमास हुए तथा ग्रहणकी संख्या और ग्रस्तांशके परिमाणादि प्रायः अनुरूप हुए थे। वे जल घड़ीके द्वारा समय शङ्कुच्छाया द्वारा क्रान्तिवृत्त तथा अर्द्धचन्द्राकृति सूर्य घड़ीके द्वारा गगनमण्डलमें सूर्यके अवस्थानका निर्णय करते थे। बहुतसे यूरोपीय विद्वानोंका विश्वास है कि, काल्डीयोंने ही सबसे पहले राशिचक्रका आविष्कार और दिनको बारह समान भागोंमें विभक्त किया है।

प्रवाद है कि, ग्रीकोंने मिश्ररोंसे ज्योतिर्विद्या सीखी थी। किन्तु प्राचीन मिश्ररीय ज्योतिष उच्च-कोटिका था, ऐसा प्रमाणित नहीं होता। कहा जाता है कि बुध और शुक्र ग्रह सूर्यके चारों तरफ घूमते हैं, इस बातको वे जानते थे। किन्तु उक्त वर्णनका कोई विश्वासयोग्य प्रमाण नहीं है।

इनके कई एक पिरामिड ऐसे सूक्ष्मभावसे उत्तर दक्षिणकी तरफ बने हुए हैं, जिससे बहुतोंको अनुमान होता है कि, वे ज्योतिष्कमण्डलके पर्यवेक्षणके लिए ही बनाये गये थे कुछ भी हो, किस तरह छाया माप कर पिरामिडकी उच्चताका निर्णय किया जाता है यह थेलस ने पहले इनको सिखाया था। मिश्ररीयगण इनको कहते हैं कि, सूर्य दो बार पश्चिमकी तरफ उदित हुआ था। इससे प्रमाणित होता है कि, मिश्ररीय ज्योतिष अति अकर्मण्य और हीनावस्थ था।

वास्तवमें ग्रीक ही पाश्चात्य ज्योतिर्विद्याका आविष्कर्त्ता है। ईसाके ६४० वर्ष पहले थेलस (Thales)ने ग्रीकोंमें ज्योतिर्विद्याका प्रचार किया था इन्होंने ग्रीकोंमें सबसे पहले पृथिवीका गोलत्व प्रतिपादन किया था और ग्रीकनाविकोंको ध्रुवतारा निकटवर्ती क्षुद्र भल्लुक (Ursa Minor) नक्षत्रपुञ्ज दिखा कर उत्तर दिशाका निर्णय करनेकी शिक्षा दी थी। किन्तु थेलसके बहुतसे मत असङ्गत हैं, उनमेंसे एक यह है कि, इन्होंने पृथिवीको जगत्का केन्द्र और नक्षत्रोंको प्रज्वलित अग्नि बतलाया है।

थेलसके परवर्ती ज्योतिर्विदोंके कई एक मतोंका आधुनिक मतसे सादृश्य पाया जाता है।

अनेक्सिमण्डिस (Anaximandis) अपने मेरुदण्डके ऊपर पृथिवीके आह्निक आवर्त्तनसे परिचित थे। चन्द्र सूर्यालोकसे दीप्त है यह भी उन्हें मालूम था। बहुतों का कहना है कि, वे विराट् ब्रह्माण्डमें सैकड़ों पृथिवीका अस्तित्व मानते थे और उन्हें चन्द्रमण्डलमें नदी-पर्वत-तटादि हैं, ऐसा विश्वास था। इनके परवर्ती ग्रीक ज्योतिर्विदोंमेंसे पिथागोरास प्रधान थे। इन्होंने प्रमाणित किया था कि, सूर्यमण्डल सौरजगत्के केन्द्रमें अवस्थित है और पृथिवी तथा अन्यान्य ग्रहगण इसके चारों ओर परिभ्रमण करते हैं। इन्होंने सबसे पहले सबको यह समझाया था कि, सान्ध्यतारा और शुक्रतारा यथार्थमें एक ही ग्रह है। किन्तु परवर्ती ज्योतिर्विदोंने इनके मतको नहीं माना था। आखिर कोपार्निकास (Coparnicus)-ने उक्त मतका विशदरूपसे समर्थन किया था।

पिथागोरासके प्राय दो शताब्दी बाद अलेकजन्दरके समकालवर्ती ज्योतिर्विदोंने जन्मग्रहण किया। इस समयमें जितने ज्योतिर्विद् प्रादुर्भूत हुए थे, उनमेंसे मिटन (Meton)ने (ईसासे ४३२ वर्ष पहले) स्वनाम ख्यात कालावर्त्तका प्रचार, इउडोक्ससने ग्रीसमें ३६५ दिनमें वर्ष-गणना प्रचलित तथा सिराकिउज-निवासी निसेटास (Nicetas)ने मेरुदण्ड पर पृथिवीके आह्निक आवर्त्तन स्थिर किया था।

सिकन्दरके टलेमियोंकी अध्यक्षतामें अलेकजन्द्रिया नगरमें ज्योतिर्विदोंको बहुत कुछ उन्नति हुई थी। आज तक ज्योतिर्विद्याविषयक तथ्य प्रमाणबुद्धि अरिष्टोको अवलम्बनाके उत्पन्न माना जाता था, आधुनिक दृष्टिसे विकासमानापन्न होनेसे लोग सहजमें उन पर विश्वास न करते थे। अलेकजन्द्रियाके ज्योतिर्विदोंने बहुतर पर्यवेक्षण द्वारा सौरजगत्के विषयको जाननेके लिए चेष्टा की थी।

इसी समय स्थिर नक्षत्रोंका अवस्थान, ग्रहोंकी कक्षा तथा विषुवांशमितिसूचक यन्त्र आदिकी सहायतासे नाना आदिका कौणिक दूरत्व अवधारण किया गया था। उन सिद्धान्तोंसे पृथिवीसे सूर्यमण्डलका दूरत्व और पृथिवीके परिमाण निर्णय करनेकी चेष्टा की गयी।

इन ज्योतिर्विदोंमेंसे टिमोकारिस (Timocharis) और अरिस्टाइलस (Aristyllo) की गणना कर गये हैं, उनको देख कर परवर्तीकालमें हिपार्कसने क्रान्ति पातगति (Precession of the equinoxes) का निर्णय किया था। आटोलिकस (Autolycus) प्रणीत ज्योतिर्विद्याविषयक ग्रन्थ ग्रीक भाषामें सबसे प्राचीन है।

इसके बाद पूर्वोक्त सिद्धान्तोंसे भी श्रेष्ठ ज्योतिर्विद् हिपार्कस (Hipparchus) का जन्म हुआ (ईसासे १६०-१२५ वर्ष पहले)। ये गणितमें सुदक्ष थे और युक्ति उद्भावन करने और स्वयं ज्योतिषिकी घटना देखते थे। इन्होंने प्रायः १०८० तारोंके अवस्थान निर्देशक एक तालिका बनाई। यही तालिका प्राचीनतम और विश्वासयोग्य है। हिपार्कसने अयनचलन आविष्कार और पूर्वतन ज्योतिर्विदोंसे अधिक सूक्ष्मरूपसे सूर्यकी गतिका कुछ ज्ञान वृद्धि तथा सौर वर्षका परिमाणका निरूपण किया था। इन्होंने चन्द्रकी गतिका ज्ञानवृद्धि और उसके उच्चनीच मन्दफल और कक्षापातकी वक्रता- का निर्णय किया है।

इसके बाद प्रायः दो सौ वर्ष पीछे अलेकजन्द्रिय नगरमें टलेमीने जन्मग्रहण (ईसासे १३०-१५० वर्ष पहले) किया। ये एक ज्योतिर्वेत्ता, गायक, गणितज्ञ और भौगोलिक विद्वान् थे। इनके आविष्कारोंमें चन्द्रका परिलम्बन (Libration of the Moon) प्रधान है। आलोकका वक्रीभवन इनका आविष्कार है। इन्होंने तरह तरहके ज्यामितिक हेतुवाद द्वारा पृथिवीकी गतिको अस्वीकार किया है। इनको गतिके सम्बन्धमें इनका कहना है कि, ग्रहगण एक पथमें पृथिवीके चारों ओर भ्रमण करते हैं। समस्त नक्षत्र अर्थात् २४ घण्टेमें पृथिवीके चारों तरफ एक बार प्रदक्षिण करता है। इसके सिवा उनके और भी कई एक असामञ्जस्य मतों पर उनके परवर्तिकालमें साधारण लोग विश्वास करते थे। टलेमी देखो। हिपार्कसने जिन विषयोंका उल्लेख मात्र किया है इन्होंने उन विषयोंका विस्तृतरूपसे वर्णन किया है तथा बहुत जगह सूक्ष्म रूपसे फल निकाला है और हिपार्कसका मत बदल दिया है।

टलेमीके बाद ग्रीसमें ज्योतिर्विदोंकी उन्नतिका एक प्रकारसे अन्त हो गया। उनके परवर्ती ज्योतिषी केवल ज्योतिषकी आलोचना और प्राचीन ज्योतिर्विदोंके सिद्धान्तोंकी समालोचना और सङ्कलनादि करके ही शान्त हुए।

इसके बाद अरबियोंमें दो उल्लेखयोग्य ज्योतिर्वि- दोंने जन्मग्रहण किया था। ७६२ ई०में अरबियोंने ज्योतिषकी आलोचना करनी आरम्भ की। खलिफा अल् मनसुर तथा उनके उत्तराधिकारी हरुन-अल् रसीद और अल मामूनने इस विद्याकी यथेष्ट उन्नति और आलोचना करनेमें काफी उत्साह दिया था। ये योग्य दोनों सम्रा- टोंने स्वयं ज्योतिषशास्त्रका अनुशीलन किया था। कुछ भी हो अरबियोंने इस विद्यामें विशेष कुछ उन्नति न कर पाई। यद्यपि ये ग्रीक ज्योतिषको अवलम्बन कर चलते थे तोभी इनकी गणना और ग्रह पर्यवेक्षणादि- कोंकी अपेक्षा बहुत सूक्ष्म होता था। ये क्रान्ति पातको अयनगतिको और भी सूक्ष्मरूपसे तथा सायनान्त वर्षको (Tropical year) प्रायः सेकेण्ड तक शुद्धरूपसे गणना करते थे। अल बाटानी (८८० ई०) अरबियोंके प्रधान ज्योतिर्विद् थे। इन्होंने सूर्यकी मन्दोच्च गतिका आविष्कार, क्रान्तिवृत्तकी वक्रताका निर्णय और प्राची- को गणनामें बहुत कुछ संशोधन किया था।

हिपार्कसके समयसे लगा कर आधुनिकयुगके समय

तक जितने वैदेशिक ज्योतिर्विद् हुए हैं, उनमें सर्व-प्रधान ज्योतिष्क-पर्यवेचक अलवाटानी ही थे।

इवन-युनिस (१००० ई०) नामक एक मिसरीय अङ्कशास्त्रविद् विद्वान् भी ज्योतिर्विद्के नामसे प्रसिद्ध थे। इन्होंने वृहस्पति और शनि ग्रहको वक्रता और उत्केन्द्रत्व-का निरूपण किया था। इन्होंने दिग्वलयसे किसी ताराकी उच्चताके परिमाण द्वारा ग्रहणके स्पर्श और मोचकालका निरूपण किया था। इसके सिवा इनकी अनेक गणना आदि भी हैं। उनकी देखनेसे मालूम होता है कि, उनके समयमें त्रिकोणमिति अङ्कशास्त्र उन्नत अवस्थामें था।

पारस्यके उत्तर भागमें जङ्गिसखांके उत्तराधिकारियोंने एक मान-मन्दिर बनवाया था। वहां नसीरउद्दीन-ने कुछ नक्षत्रोंको सूची बना गयी थी। समरकंदमें तैमूरके एक पौत्रने १४३३ ई०में ताराओंकी एक तालिका बनाई थी जो उस समयकी समस्त तालिकाओंकी अपेक्षा विशुद्ध थी।

इसके बाद प्राच्यदेशमें ज्योतिर्विद्याकी अवनति और पश्चिम यूरोपमें इसकी आलोचना बढ़ने लगी। १२३० ई०में जर्मनीके २य फ्रेडरिकके आदेशसे आलमेगेष्ट नामक अरबी ग्रन्थका अनुवाद हुआ। १२५२ ई०में काष्टाइलके १०म अलन्सोने अरवियों और यहूदियोंकी सहायतासे यूरोपीय भाषामें सबसे पहले ज्योतिष्क-सम्बन्धी तालिका बना कर ज्योतिर्विद्याकी आलोचनामें लोगोंका उत्साह बढ़ाया। उक्त तालिका टलेमीकी तालिकासे मिलती जुलती है।

१२२० ई०में मि० होलि-वुड (Holywood) ने टलेमिके मतको संक्षेप कर औन् दी स्फियार्स (On the spheres) नामक एक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक उस समय बहुत प्रशंसित हुई। इसके बाद जिन व्यक्तियोंने ज्योतिर्विद्याकी आलोचना की थी, उनमेंसे किसीने भी उक्त विद्याकी विशेष कोई उन्नति नहीं की। हां, त्रिकोणमिति आदि गणितशास्त्रकी उन्नति जरूर हुई थी।

इसके उपरान्त प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् कोपार्निकास आविर्भूत हुए (जन्म सं० १४७३; मृत्यु सं० १५४३ ई०)। इन्होंने प्रचलित टेलमीके मतका खण्डन कर, असम्पूर्ण होने पर भी एक विशुद्ध मतका उद्भावन किया। इस प्रकार प्रचलित मतका खण्डन करना बड़ा विपज्जनक है, इससे जनता विरोधी हो जाती है। कोपार्निकसने उसकी उपेक्षा कर अपना मत प्रचार किया। इनका मत कुछ अंशोंमें पिथागोरस द्वारा कथित मतके सदृश था। इनके मतसे सूर्यमण्डल ब्रह्माण्डके केन्द्रस्थलमें अचलभावसे अवस्थित है इसके चारों ओर ग्रहगण भिन्न भिन्न दूरत्व और अपनी अपनी कक्षामें परिभ्रमण करते हैं। तत्कालपरिचित सूर्यसे लगा कर यथ क्रमसे दूरवर्ती ग्रहोंके नाम इस प्रकार हैं—बुध, शुक्र पृथिवी मङ्गल, वृहस्पति और शनि। इस सौरजगत्से कल्पनातीत दूरत्व-में नक्षत्रमण्डल अवस्थित है। चन्द्र एक चन्द्रमा-में पृथिवीके चारों तरफ घूमता है। वास्तवमें तारोंकी गति पूर्वसे पश्चिमकी नहीं है; कक्षाके ऊपर कुछ झुके हुए अपने मेरुदण्ड पर पृथिवीके आह्निक आवर्त्तनके कारण वैसा होता है। प्रवाद है कि, कोपर्निकसको इस मतके प्रकट करनेका साहस न हुआ था, इसलिए उन्होंने उसको कल्पित कहा था। किन्तु हमवोल्ट (Humboldt) का कहना है कि, कोपर्निकसने अपनी तेजस्विनी भाषामें प्राचीन भ्रान्तमतका खण्डन कर अपने मतका प्रचार और स्वरचित On the revolution of the heavenly bodies नामक पुस्तककी छपी हुई देख कर बहुत दिन बाद प्राणत्याग किया था साधारणका विश्वास है कि छपी पुस्तक देखनेके कुछ देर पीछे उनकी मृत्यु हुई थी।

कोपर्निकसके परवर्ती रेकार्ड (Recorde) ने अंग्रेजी भाषामें पहले पहल ज्योतिर्विद्या और गोलकतत्त्व सम्बन्धी पुस्तकें लिखी थीं।

अरबियोंके समयसे ईसाकी १६वीं शताब्दीके अन्त तक जितने ज्योतिर्विद् हुए हैं उनमें टाइको ब्राहि (Tycho Brahe) सबसे अधिक परिश्रमी, अध्यवसायी और व्यवहारकुशल ज्योतिर्विद् थे। इन्होंने १५४६ ई०में जन्मग्रहण किया था और १६०१ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी।

टाइको-ब्राहिकी कोपर्निकसके मतका खण्डन करनेके

आविष्कार किया था। इसी तरह और भी अनेकानेक ज्योतिर्विदोंके अध्यवसाय गुणसे और यन्त्रादिकी सहायतासे अठारहवीं शताब्दीमें ज्योतिर्विद्याकी बहुत ज्यादा उन्नति हुई थी।

१८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें ही ४ क्षुद्र ग्रहोंका आविष्कार हुआ था। क्रमशः १८८५ ई० तक प्रायः शताधिक क्षुद्र ग्रहोंका आविष्कार हुआ है। नेपचुन (Neptune) ग्रहका आविष्कार १८वीं शताब्दीकी घटना है।

यूरेनस ग्रहकी गतिमें विशृङ्खलता देख कर बहुतोंका अनुमान है कि, यह वृहस्पति और शनिके सिवा अन्य किसी अनिर्दिष्ट ग्रहके आकर्षणसे होता है। लेभारियर (Leverrier) नामक एक नवीन फरासीसी ज्योतिर्विद्‌ने इसको देख कर १८४६ ई०को ग्रीष्मऋतुमें चुपचाप उक्त ग्रहके आकार, परिमाण और आकाशमें अवस्थान तकका निश्चय कर एक निबन्ध प्रकाशित किया। वह महीना बीतने भी न पाया था कि, बार्लिन नगरमें मि० गेल (M. Galle)ने नेपचुन ग्रहका आविष्कार कर डाला। इसके प्राय १ वर्ष पहले केम्ब्रिज नगरमें मि० एडाम्स (M. Adams)ने और भी सूक्ष्मतर गणना द्वारा नेपचुनके अस्तित्व और अवस्थानका निश्चय कर चालिस (M. Challis) को कहा। इन्होंने दो बार उस ग्रहको पहिचाना था, पर सुविधानुसार उसको प्रकट न कर सके।

१८४८ ई०में एअरी (Airy)ने शून्यमार्गमें सौरजगत्‌की गतिका निरूपण किया था।

इस समय यूरोप और अमेरिकामें प्रत्येक प्रधान प्रधान नगरों और उपनिवेशोंमें मान-मन्दिर बन गये हैं। राजकीय सहायतासे उनमें पर्यवेक्षणादिका कार्य चल रहा है। प्रायः सभी सुसभ्य देशोंमें ज्योतिर्विद्याकी आलोचनाके लिए ज्योतिर्विदोंकी समितियां गठित हुई हैं। उन समितियोंसे प्रति वर्ष बहुत वैज्ञानिकतत्त्व निकलते और ज्योतिर्विद्या विषयक अनेक पत्रिकाओंमें मुद्रित हो सञ्चित होते हैं। इसके सिवा भिन्न भिन्न ज्योतिर्विदोंकी पुस्तकें प्रकाशित हुआ करती हैं, आकाशमण्डलमें ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु, नक्षत्र आदिके प्रात्यहिक अवस्थानको सूक्ष्मरूपसे निर्देश कर उन गणनाओंको प्रकाशित किया जाता है। इससे बहुत वर्षोंका घटनाओंको वर्त्तमानकी भांति प्रत्यक्ष देख कर ज्योतिर्विद्‌गण अनेक तथ्य निकालते हैं। गगनमण्डलके सुन्दर चित्र बने हैं और उसमें भिन्न भिन्न कालमें ज्योतिष्कोंका अवस्थान, चन्द्र, सूर्य, ग्रहादिका दृश्यमान गतिपथ आदि अति विशदरूपसे दिखाये गये हैं। चन्द्र, सूर्य और तारा आदिके हूबहू चित्र बनानेके लिए फोटोग्राफ व्यवहृत हुआ करता है। कहना व्यर्थ है कि, इस समय यूरोपीय भाषामें ज्योतिःशास्त्रको इतनी ज्यादा पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं कि, हर एक आदमी उन्हें पढ़ कर ज्ञान लाभ कर सकता है। उन्नतिके साथ यह विद्या सुगम और सहजबोध्य हुई है।

ज्योतिषिक (सं० पु०) ज्योतिः ज्योतिःशास्त्रं अधीते ठक्-यादित्वात् ठक्। १ ज्योतिःशास्त्राध्ययनकारी, ज्योतिषशास्त्रका पढ़नेवाला। (त्रि०) २ ज्योतिष सम्बन्धी।

ज्योतिषिन् (सं० त्रि०) ज्योतिषं अध्येत्वेन अस्त्यस्य इनि। ज्योतिःशास्त्राभिज्ञ, जो ज्योतिष जानता हो, गणक।

ज्योतिषी (सं० स्त्री०) ज्योतिरस्त्यस्याः इति-अच् ङीप्। तारा।

ज्योतिष्क (सं० पु०) ज्योतिरिव कायति कै-क। १ मेथिका बीज, मेथी। २ चित्रकद्रुम, चीता। इसके बीजके तेलमें दूधके साथ मञ्जीमट्टी और हींग घोट कर, मलनेके बाद यदि उसका सेवन किया जाय तो उदररोग जाता रहता है। (सुश्रुत चिकि० १४ अ०) ३ गणिकारिका वृक्ष, गनियारीका पेड़। ४ मेरुका शृङ्गभेद, मेरु पर्वतके एक शृङ्गका नाम। यह शृङ्ग शिवजीका अत्यन्त प्रिय है।

"तदीशभागे तस्याद्रेः शृंगमादित्यसन्निभम्।
यत्तत् ज्योतिष्कमित्याहुः सदा पशुपतेः प्रियं॥"

५ ग्रह तारा नक्षत्र प्रभृति, ग्रह, तारा, नक्षत्र आदिका समूह।

६ जैनमतानुसार भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक इन चार प्रकार (जाति)-के देवोंमेंसे एक। इनके पांच भेद हैं; यथा—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और

ज्योतीरथ (सं० पु०) ज्योतिरिव रथोऽस्य, ज्योतिषः रथ इव वा। १ ध्रुवनक्षत्र, इसमें आश्रित ज्योतिश्चक्र है इसलिए इसका नाम ज्योतीरथ पड़ा। २ निर्विष जातीय सर्प एक तरहका साँप जिसके विष नहीं होता है।

ज्योतीरस (सं० पु०) ज्योतिश्च रसश्च, द्वन्द्व। एक प्रकारका रत्न। इसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण और वृहत्संहितामें किया गया है।

ज्योतीरूपस्वयम्भू (सं० पु०) ज्योतिः रूपं यस्य तादृशः यः स्वयम्भूः। ब्रह्मा, ब्रह्माका रूप ज्योतिर्मय है, इसी लिये इनका नाम ज्योतीरूपस्वयम्भू हुआ है।

ज्योत्स्ना (सं० स्त्री०) ज्योतिरस्त्यस्यां निपातनात् नप्रत्ययः उपधालोपश्च। ज्योत्स्नातमिस्रेति। पा ५।२।११४। १ कौमुदी, चन्द्रमाका प्रकाश, चांदनी। इसके पर्याय-चन्द्रिका, चान्द्री कामवल्लभा, चन्द्रातप, चन्द्रकान्ता, शीता और अमृततरङ्गिणी। २ ज्योत्स्नायुक्त रात्रि, चांदनी रात। ३ पटोलिका, सफेद फूलकी तोरई। इसके गुण—त्रिदोषनाशक, कषाय, मधुर, दाह और रक्तपित्तनाशक है। ४ दुर्गा। "ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपायै सुखायै सततं नमः।" (चण्डी ५ अ०) ५ प्रभातकाल, सुबह। 'ज्योत्स्ना समभवत् सापि प्राक् सन्ध्याख्याभिधीयते।" (विष्णुपु० १।५।३६) ६ सौंफ। ७ रेणुक बीज। ८ कोषातकी, कड़ुई तरोई। ९ पटोलिका, सफेद फूलकी तरोई।

ज्योत्स्नाकाली (सं० स्त्री०) सोमकी कन्या। ये वरुणके पुत्र पुष्करकी पत्नी थीं।

"रूपवान् दर्शनीयश्च सोमपुत्र्यास्तु नः पतिः।
ज्योत्स्नाकालीति यामाहुर्द्वितीयां रूपतः श्रियं॥"
(भारत ५।९७ अ०)

ज्योत्स्नादि (सं० पु०) ज्योत्स्ना, तमिस्रा, कुण्डल, कुतुप, विसर्प और विपादिक ये कई एक ज्योत्स्नादिगण हैं।

ज्योत्स्नाप्रिय (सं० पु०) ज्योत्स्नाप्रिया यस्य, बहुव्रो०। चकोर, चकवा।

ज्योत्स्नावत् (सं० त्रि०) ज्योत्स्ना अस्त्यस्य ज्योत्स्ना मतुप्। ज्योत्स्नायुक्त, जिसमें प्रकाश हो।

ज्योत्स्नावृक्ष (सं० पु०) ज्योत्स्नायाः वृक्षः इव, ६ तत्। दीपाधार, दीवट, फतीलसोज़।

ज्योत्स्निका (सं० स्त्री०) १ चांदनी रात। २ पटोलिका, सफेद फूलकी तोरई।

ज्योत्स्नी (सं० स्त्री०) ज्योत्स्ना अस्त्यस्याः इत्यण्, ङीप च। संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वात् न वृद्धिः। १ चन्द्रिकायुक्त रात्रि, चांदनी रात। २ पटोल तरोई। ३ रेणुका नामक गन्धद्रव्य।

ज्योत्स्नेश (सं० पु०) ज्योत्स्नाया ईशः, ६-तत्। ज्योत्स्नाके अधिपति सूर्य।

ज्योनार (हिं० स्त्री०) १ भोज, दावत। २ रसोई, पका हुआ भोजन।

ज्योरा (हिं० पु०) फसल तैयार होने पर गांवके नाई, धोबी चमार आदि काम करनेवालोंको दिया जानेवाला अनाज।

ज्यों (हिं० अव्य०) यदि, जो। यह शब्द प्रायः कवितामेंही व्यवहृत होता है।

ज्यौतिष (सं० क्लो०) ज्योतिष इदं अण्। ज्योतिषसम्बन्धी।

ज्यौतिषिक (सं० पु०) ज्योतिषं अधीते वेद वा उक्थादि० ठक्। ज्योतिर्विद्, वह जो ज्योतिषशास्त्र जानता हो।

ज्यौत्स्न (सं० त्रि०) ज्योत्स्नाया अन्वितः इत्यण्। दीप्त, जगमगाता हुआ।

ज्यौत्स्निका (सं० स्त्री०) ज्योत्स्ना अस्ति यस्याः इति ठक्, पूर्वपदवृद्धिष्टाप् च। ज्योत्स्नायुक्त रात्रि, चांदनी रात।

ज्यौर—बम्बई प्रान्तके अहमदनगर जिले और तालुकका शहर। यह अक्षा० १९° १८' उ० और देशा० ७४° ४८' पू०में टोका सड़क पर पड़ता है। जनसंख्या प्रायः ५००५ है। नगरकी चारों ओर एक टूटा फूटा प्राचीर है। फाटक मजबूत लगा है। दरवाजे पर फारसवन्द है। पास ही एक ऊँचे पहाड़ पर ३ मन्दिर हैं। एक मन्दिरमें १७८१ ई०की शिलालिपि अङ्कित है।

ज्वर (सं० पु०) ज्वरति जीर्णो भवत्यनेन ज्वर-करणे घञ्। ज्वरण, स्वनामप्रसिद्ध रोगभेद, ताप, बुखार। संस्कृत पर्याय—जूर्ति, ज्वरि, आतङ्क, रोगपृष्ठ, महागद, तापक और सन्ताप।

प्राणियोंके प्रति दृष्टिपात करनेसे मालूम होता है

कि प्रत्येक प्राणी किसी न किसी समय रोगाक्रान्त हुआ करता है। ज्यादातर मनुष्योंको ही अधिक रोगग्रस्त पाया जाता है किसीको बहुत और किसीको एक रोग से पीड़ित देखा जाता है। फलतः कोई भी मनुष्य सुस्थ शरीर हो कर नहीं रहने पाता इसीलिए प्राचीन पण्डितोंने कहा है—"शरीरं व्याधिमन्दिरम्।" व्याधिके दो भेद हैं—एक शारीरिक व्याधि और दूसरी मानसिक। शारीरिक व्याधि आग्नेय सौम्य और वायव्य इन तीन भागोंमें तथा मानसिक व्याधि राजस और तामस इन दो भागोंमें विभक्त है। निदान, पूर्वरूप, लिङ्ग, उपशय और सम्प्राप्ति द्वारा व्याधिका ज्ञान होता है। साधारणतः रोगके तीन कारण समझे जाते हैं—इन्द्रियार्थ कर्म और काल। इनके अतियोग, अयोग और मिथ्यायोगसे रोगकी उत्पत्ति होती है किन्तु समभावसे व्यवहार होनेसे शरीर सुस्थ (तन्दुरुस्त) रहता है। पूर्वोक्त शारीरिक और मानसिक रोगोंके सिवा और एक प्रकारका रोग है, जिसे आगन्तुक कहते हैं। शरीरदर्पसे उत्पन्न रोगों का नाम शारीरिक, भूत विष वायु, अग्नि और प्रहारादिजनित रोगका नाम आगन्तुक तथा प्रियवस्तुकी अप्राप्ति और अप्रिय वस्तुकी प्राप्तिसे उत्पन्न रोगका नाम मानसिक है।

मनुष्य ज्यादातर ज्वरसे पीड़ित होते हैं तथा अन्यान्य रोगोंसे पीड़ित होनेका भी मूल कारण ज्वर है। शरीर रोगमें पहले ज्वर होता है। ज्वर होनेके पश्चात् वह क्रमशः कठिन होता हुआ अन्यान्य रोग उत्पन्न करता है। यह शरीरमें विशेष विशेष पीड़ा उत्पन्न करता है, इसलिए इसका नाम ज्वर है। ज्वर जैसा दारुण, बहु पीड़ाजनक और दुश्चिकित्स्य है और कोई भी रोग वैसा नहीं है। ज्वर प्राणियोंका प्राणनाशक, देह इन्द्रिय और मनके लिए सन्तापोत्पादक, प्रज्ञा बल, वर्ण और उत्साहको विनष्ट करनेवाला है। ज्वरसे शरीरमें वेदना ग्लानि, अवसाद भ्रम मोह और आहारमें अरुचि हो जाती है। प्राणीगण ज्वरके साथ ही उत्पन्न होते हैं और ज्वराभिभूत हो कर ही मरते हैं। सुश्रुतमें कहा गया है कि, ज्वर सब रोगोंका राजा, रुद्रकोपसम्भूत और सर्वलोकप्रतापक है। ज्वर कालिक,

पैत्तिक आदि नामसे प्रसिद्ध है। यह प्रायः प्राणियोंके जन्म और मृत्युके समय शरीरमें प्रवेश करता है, इसलिए इसको रोगोंका राजा कहा जा सकता है। देवता और मनुष्यके सिवा इसका प्रभाव कोई भी सह नहीं सकता। मानवगण कर्मफल द्वारा देवत्व प्राप्त करते हैं और कर्मफलके क्षय हो जाने पर पुनः स्वर्गच्युत हो कर पृथिवी पर जन्म लेते हैं। देहमें देवभागके रहनेसे ही मनुष्य ज्वरके प्रतापको सह लेते हैं। अन्यान्य तिर्यग्योनिजात प्राणी ज्वरमें निरतिशय विपन्न हो जाते हैं।

हरिवंशमें ज्वरकी उत्पत्तिका वर्णन इस प्रकार किया है। महादेवने बाणराजाके लिए 'ज्वर नामक एक योद्धाकी सृष्टि की थी। वासुदेव कृष्णके पौत्र अनिरुद्ध जब बाण द्वारा अवरुद्ध हुए तो श्रीकृष्णने बलराम और प्रद्युम्नके साथ उनके उद्धारार्थ गमन किया। इस पर दानवाधिपति बाणके साथ उनका भयङ्कर युद्ध हुआ। युद्धमें दैत्यसेनाने नितान्त निपीड़ित और व्यथित हो कर मारनेकी तैयारियां की कि, इतनेमें कालान्तक सदृश भीषणमूर्त्ति ज्वर सहसा ही कर समरभूमिमें अवतीर्ण हुआ। ज्वरके तीन पैर, तीन मस्तक, छह भुजाएं और नौ आंखें थीं। इसका कण्ठस्वर मेघके सदृश घनगर्जित-के सदृश था, यह जल्दी जल्दी दीर्घनिश्वास ले रहा था, बीच बीचमें जृम्भारम्भ कर कृश्य कर रहा था इसका शरीर निद्रा और आलस्यसे भरा हुआ था, इसकी आंखें सुषमाहलको समाकुल कर रही थीं। इसकी देह रोमाञ्चित, आंखें भस्मो और चित्त चिन्ताके समान था।*
ज्वरने रणक्षेत्रमें प्रवेश कर बलरामको पराजित कर दिया और फिर वह कृष्णके सहने लगा। श्रीकृष्णसे ज्वरका भयङ्कर द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। बहुत देर तक युद्ध होते रहनेके बाद श्रीकृष्णने ज्वरको भुजा पकड़ लिया और उठा कर जमीन पर मारना चाहा, त्यों ही वह अन्तर्हित अवस्थामें श्रीकृष्णके शरीरमें घुस गया। फिर श्रीकृष्णके शरीरमें ज्वरावेश होनेके कारण रोमाञ्च, जृम्भण, श्रम प्रलाप आलस्य और निद्रावेश होने लगा। श्रीकृष्णने जब

* ज्वरके इस वर्णन नितान्त काल्पनिक नहीं है। ज्वर आनेसे रोगीके शरीरकी अवस्था प्रायः ऐसी ही हो जाती है।

समझ लिया कि उनके शरीरमें ज्वरावेश हुआ है, तब उन्होंने ज्वरके विनाशके लिए दूसरे एक ज्वरकी सृष्टि की। उस नवसृष्ट वैष्णव ज्वरने श्रीकृष्णका आदेश पाते ही उनके शरीरमें प्रवेश किया और अपने बलसे पूर्व प्रविष्ट ज्वरको पकड़ कर कृष्णके हाथ पर रख दिया। कृष्णने उसको ग्रहण कर मारना चाहा तो वह जोरसे चिल्ला कर उनके पैरों पड़ गया। उस समय ज्वरको रक्षार्थ श्रीकृष्णके लिए एक आकाशवाणी हुई। श्रीकृष्णने ज्वरको छोड़ दिया।

ज्वरने कृष्णसे जीवन पा कर एक वर मांगा। ज्वरने कहा —"हे कृष्ण! हे देवेश! आप प्रसन्न हो कर मुझे यह वर प्रदान करें कि, जगत्‌में मेरे सिवा दूसरा कोई ज्वर न हो।"

कृष्णने उत्तर दिया—"वरप्रार्थियोंको वर देना मेरा कर्त्तव्य है, विशेषतः तुम शरणागत हो। तुम जैसी प्रार्थना करते हो, वैसा ही होगा। पहलेकी भांति तुम ही एकमात्र ज्वर रहोगे, द्वितीय ज्वर जो मेरे द्वारा सृष्ट हुआ है, वह मेरे शरीरमें लीन होवे।" श्रीकृष्णने ज्वरसे यह भी कहा कि, "इस जगत्‌में स्थावर, जङ्गम और सर्वजातियोंमें तुम किस तरह विचरण करोगे, वह कहते हैं सो सुनो। तुम अपनी आत्माको तीन भागोंमें विभक्त करके एक भागसे चतुष्पदप्राणी दूसरे भागसे स्थावर और तीसरे भागसे मानवजातिकी भजना करना। तुम्हारे तृतीय भागका चतुर्थांश पक्षि-कुलमें और अवशिष्टांश मनुष्योंमें ऐकाहिक, त्र्यहिक और चतुर्थक नामसे विचरण करेगा। वृक्षवर्गोंमें कीट, पत्तोंमें सङ्कोच अथवा पाण्डु, फलोंमें आतुर्य, पद्मिनीमें हिम, पृथ्वीमें ऊषर, जलमें नीलिका, मयूरोंमें शिखो-द्भेद, पर्वतमें गैरिक, गौमें अपस्मार और खोरक नामसे प्रसिद्ध हो कर विचरण करोगे। तुमको देखने वा छूनेसे प्राणीमात्र निधनको प्राप्त होंगे; देवता और मनुष्यके सिवा दूसरा कोई तुम्हारे प्रभावको सह न सकेगा।"

ज्वरकी उत्पत्तिके विषयमें और भी एक उपाख्यान है। पहले त्रेतायुगमें जब महादेवने एक हजार वर्षका अक्रोध व्रत अवलम्बन किया था, तब असुरोंने उपद्रव करना शुरू किया। इस समय महादेवने महात्मा महर्षि-योंके तपमें विघ्न होते देख कर भी तथा उसके प्रती-कारमें समर्थ होते हुए भी उपेक्षा धारण की, क्योंकि क्रोध प्रकट करनेसे उनका व्रत भङ्ग हो जाता। इसके बाद दक्ष प्रजापतिने देवों द्वारा पुनः पुनः अनुरोध किये जाने पर भी महादेवके प्राप्य यज्ञभागको कल्पना न कर यज्ञके सिद्धिकारक वेदोक्त पाशुपत मन्त्र और शैव्य आहु-तिका परित्याग करके यज्ञ समाप्त कर दिया था। तद-नन्तर आत्मवित् प्रभु महादेवका व्रत समाप्त होने पर पूर्वोक्त प्रकारसे दक्ष द्वारा अपने अपमानको बात मालूम पड़ गई, उन्होंने रौद्रभाव अवलम्बन पूर्वक ललाट पर नयन सृष्टि कर यज्ञविघ्नकारी उपर्युक्त असुरोंको दग्ध किया और क्रोधाग्नि सन्दीपित शत्रुनाशन एक वाण छोड़ा, जिससे दक्ष प्रजापतिका यज्ञ ध्वंस हो गया तथा देव और भूत सन्तप्त हो कर इतस्ततः भ्रमण करने लगे।

इसके उपरान्त देवोंने सप्तर्षियोंके साथ मिल कर नाना प्रकारसे महादेवका स्तव करना शुरू किया। महादेवने देवोंके स्तवसे सन्तुष्ट हो कर ज्योंही शैवभाव धारण किया त्यों ही सर्वत्र मङ्गल होने लगा। जब उस क्रोधानलने महादेवको जीवोंके मङ्गलसाधनमें तत्पर पाया, तब वह हाथ जोड़ कर सामने आया और कहने लगा—"भगवन्! अब मैं आपका आदेश पालन करूंगा, आज्ञा दीजिये।" महादेवने उत्तर दिया— "तुम जीवोंके जन्म, मृत्यु और जीवित समयमें ज्वर स्वरूप होवोगे।"* इस तरह ज्वरकी सृष्टि हुई।

सन्ताप, अरुचि, तृष्णा, अङ्गपीड़ा और हृदयमें वेदना ये ज्वरको स्वाभाविक शक्तियां हैं।

समनस्क एकमात्र शरीर ही ज्वरका अधिष्ठान है। शारीरिक और मानसिक सन्ताप प्रत्येक ज्वरका प्रधान

* रुद्रके क्रोधसम्भूत निःश्वाससे उत्पन्न होनेके कारण ज्वर स्वभावतः पित्तात्मक है, क्योंकि क्रोधसे पित्त उत्पन्न होता है। अतएव सर्व प्रकारके ज्वरमें पित्तविनाशक क्रियाका प्रयोग करना उचित है। वाग्भटने भी कहा है कि, पित्तके विना उष्म्य नहीं होता और उष्म्यके विना ज्वर नहीं होता। इसलिए सब तरह-के ज्वरमें पित्तके लिए जो चीजें अहितकर हैं, उनका परित्याग करना ही उचित है।

प्रसन्न है। ज्वर चढ़ने पर किसी तरहका कष्ट न होता हो, ऐसे प्राणी संसारमें नहीं हैं।

साधारणतः ज्वरोत्पत्तिका कारण दो प्रकारका है—एक सामान्य और दूसरा प्रधान। वातपित्त आदिके प्रकोपजनक आहार विहार आदि जो सामान्य कारण हैं तथा जल, वायु हिमवात आदिका दूषण हो जाना प्रधान कारण है।

शारीरिक वातपित्तादि तथा मानसिक रज और तमः दोष ज्वरकी प्रकृति है। जैसा भी ज्वर क्यों न हो दोषके संसर्गके बिना वह कभी भी मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश नहीं कर सकता।

प्राचीन पण्डितोंने कहा है कि, यह ज्वर ही यम, पाप्मा और मृत्यु है तथा दुष्कृतिसे इसकी उत्पत्ति होती है।

सुश्रुत संहितामें लिखा है कि, ज्वर आठ प्रकारका है जो विविध कारणोंसे उत्पन्न होता है। सब दोष अपने अपने समयमें और अपने अपने प्रकोपके कारण कुपित हो कर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो कर ज्वर उत्पन्न करते हैं। दोष अपने अपने हेतु द्वारा कुपित हो कर आमाशयमें जा कर अपनी गरमीके जरिये रसधातुमें आश्रय लेते हैं। इन कुपित दोषों और रसके द्वारा स्वेद और रसवाही शिराओंके मार्गके रुक जाने पर जठराग्नि मन्द हो जाती है। दोषोंके प्रकोपकालमें जब वह अग्नि पाकस्थलीसे बाहर निकल कर समस्त शरीरमें व्याप्त होती है, तब ज्वर आता है। वह क्रमशः बढ़ता हो जाता है जिससे त्वक, मूत्र और पुरीष आदि दोषके अनुसार—विवर्ण हो जाते हैं।

मिथ्या आहार विहार वा कोई आदि क्रियाके द्वारा अभिघात वा अन्य किसी रोगोत्पत्तिके कारण वा शरीरमें फोड़े आदि पर अथवा श्रम, क्षय, अजीर्णता वा किसी तरहके विषके द्वारा, अथवा अत्यन्त आहारादिके वा ऋतुके विपर्ययके कारण तथा औषध वा पुष्पगन्धके कारण शोक नक्षत्रोंका अभिचार वा अभिशाप अथवा कास्मिक ग्रहोंके कारण तथा प्रसवका वा जीवित अवस्था स्त्रियोंके स्तन्यावतरणके समय अभितापरणके कारण वायु कुपित होती है, तथा तदुपरान्त विपथगामी वेगवान् दोषके द्वारा अभ्यन्तरस्थ जठराग्नि शिथिल हो कर सारे शरीरमें व्याप्त हो जाती है। इससे पाकस्थलीमें स्थित रसके रुक जानेसे सारा शरीर गरम हो जाता है और सर्वांगमें एक साथ पसीना छूटना बंद हो जाता है। पसीनेका रुकना, शरीर गरम हो जाना और तमाम शरीरमें जड़ता वा ऐंठना होना ये सब एक समयमें हों, तो उसको ज्वर कहा जा सकता है। वायु पित्त, कफ इनमेंसे एक एक पृथक्‌भावसे अथवा दो या तीनके एक साथ दूषित होने पर तथा आगन्तुज कारणसे ज्वर उत्पन्न होता है। ज्वर आठ प्रकारका है जैसे—वातिक, पैत्तिक श्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक वातपैत्तिक, पित्तश्लैष्मिक, सान्निपातिक और आगन्तुक।

चरकसंहितामें लिखा है, आठ प्रकारके कारणोंसे मनुष्योंको ज्वर होता है, जैसे–वायु, पित्त, कफ वातपित्त, पित्तकफ वातकफ वातपित्तकफ और आगन्तुक।

रुक्षगुणविशिष्ट वस्तु, लघु वस्तु शीतल वस्तु परिश्रम, वमन विरेचन और आस्थापन (निरूहवस्ति) आदिके अत्यन्त उपयोगसे और मलमूत्रादिके वेगको रोकनेसे तथा उपवास अभिघात, स्त्रीसंसर्ग, उद्वेग, शोक शोणित स्राव, रात्रिजागरण, विपरीत भावसे शरीर वैषम्य इनके आतिशय्यसे वायु प्रकुपित हो जाती है। पीछे उस प्रकुपित वायुके आमाशयमें प्रविष्ट होनेसे सुतरां (परिपाक होनेके कारण) मल और धातुको भ्रम होता है, फिर वह वायु रस और स्वेदवह स्रोत-समूहको आच्छादित एवं पाचकाग्निको मन्द कर पक्वाशयसे उष्माको बाहर ले आती है और शरीरमें व्याप्त होती है। इस समय वातज्वरका आविर्भाव होता है।

वातज्वर होनेसे निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं। सब अंगमें शारीरिक उष्मभावकी तथा ज्वरवेग और मल निकलते समय विषमता होती है। प्रायः आहारकी सम्पूर्ण जीर्णावस्थामें, दिनके अन्तमें और अधिकांश रूपसे वर्षाऋतुमें इस ज्वरका आगमन अथवा अभिवृद्धि हुआ करती है। इसमें विशेष प्रकारसे नख, नयन, चेहरा, मूत्र, पुरीष और चमड़ेमें अत्यन्त कठोरता और अरुणवर्णता दिखनेमें आती है।

शरीरमें नाना प्रकारके स्थिर भाव तथा नाना प्रकार

की चलाचल वेदना, पैरोंमें झनझनाहट, पिण्डिकोद्वेष्टन (अर्थात् मांस ऐंठ रहा है, ऐसा मालूम पड़ना), जानु और सन्धिस्थानका विश्लेषण, ऊरुमें अवसन्नता, कमर, बगल, पीठ, स्कन्ध, बाहु, अंस और वक्षस्थलमें क्रमसे भग्नवत्, रुग्नवत्, मृदित, मन्थनवत्, चटित, अवपीड़ित और अवतुन्नवत् वेदना होती है। हनुस्तम्भ और कानमें सनसनाहट, मस्तकमें निस्तोदनवत् पीड़ा, मुख कषायता और रसास्वादनमें अक्षम, मुख, तालू, और कण्ठशोष, पिपासा, हृदयमें वेदना, शुष्कछर्दि शुष्ककास, छींक, उद्गारनिरोध, अम्लरसयुक्त निष्ठीवन, अरुचि, अपाक, मनकी विकलता, उबासी, विनाम (एक प्रकारकी वेदना), कम्प, विना परिश्रम किये परिश्रम मालूम पड़ना, भ्रम (सब चीजें घूमती हुई दीखें),प्रलाप अनिद्रा, द्रा, लोमहर्ष, दन्तहर्ष, उष्णवस्तु अभिलाषा, निदानोक्त वस्तु द्वारा अनुपशय और उससे विपरीत वस्तु द्वारा उपशय आदि वातज्वरके लक्षण हैं ।

जो मनुष्य उष्ण, अम्ल, लवण, क्षार, कटु और गरिष्ठ पदार्थ तथा अत्यन्त तीक्ष्णरससंयुक्त पदार्थोंको अधिक खाते हैं, तथा जो अत्यन्त अग्निसन्तापसेवनकारी, परिश्रमी और क्रोधशील हैं, उनको साधारणतः पैत्तिक ज्वर होता है। उक्त प्रकारके व्यक्तियोंका शरीरस्थ पित्त जब प्रकुपित होता है, तब वह आमाशयसे उष्माको ग्रहण, रसधातुका आश्रय ले रस तथा स्वेदवहस्रोतसमूहका आच्छादन कर पित्तके द्रवत्वके कारण जठराग्निको मन्द और पक्काशयसे अग्निको बाहर विक्षिप्त करता है इस प्रकारकी शारीरिक प्रक्रिया होने पर पित्तज्वरका आविर्भाव हुआ करता है। पित्तज्वर होनेसे एक समयमें ही ज्वरका आगमन और अभिवृद्धि होती है

आहारके परिपाक समयमें, दोपहरको, आधीरातको तथा प्रायः शरत्‌ऋतुमें यह ज्वर होता है । इस ज्वरमें मुखका स्वाद कटु, रसयुक्त तथा नासिका, मुख, कण्ठ और तालूमें पक्कता मालूम पड़ती है, तृष्णा, भ्रम, मोह, मूर्छा, पित्तवमन, अतीसार, भोजनमें अप्रवृत्ति, पसीना, प्रलाप और शरीरमें एक प्रकारके कोठरोगको उत्पत्ति होती है। नाखून, आँखें, चेहरा, मूत्र, पुरीष और शरीरका चमड़ा पीला हो जाता है। शरीरमें अत्यन्त उष्णता और दाह होता है। पित्त-ज्वराक्रान्त व्यक्ति शीतल स्थानमें रहने पर भी शीतल पदार्थ खानेको अत्यन्त इच्छा प्रकट करता है। निदानोक्त पदार्थों द्वारा इसको अनुपशय और उससे विपरीत वस्तु द्वारा उपशय मालूम होता है ।

जो स्निग्ध, मधुर, गुरु, शीतल पिच्छिल, अम्ल और लवण आदि पदार्थ अधिक खाते हैं तथा जो दिवानिद्रा, हर्ष और व्यायाम आदि विषयमें अत्यन्त आसक्त होते है, उनका श्लेष्मा प्रकुपित हुआ करता है। ऐसा आदमी साधारणतः श्लैष्मिक अर्थात् कफज्वरसे पीड़ित होते देखे जाते हैं। इनका यह प्रकुपित श्लेष्मा आमाशयमें प्रवेश कर उष्माके साथ मिलता और खाये हुए पदार्थके परिपाकके लिए रसधातुको प्राप्त होता है। पीछे रस और स्वेदसमूहको आच्छादनपूर्वक पक्काशयसे उष्माको बाहर निकाल कर समस्त शरीरमें व्याप्त हो जाता है। इस प्रकारकी प्रक्रियाके कारण कफ ज्वरका आविर्भाव हुआ करता है।

एक ही समयमें कफ-ज्वरका आगमन और प्रकोप होता है। भोजनमात्रसे. दिनके प्रथम भागमें. प्रथम रात्रिमें और प्रायशः वसन्तऋतुमें इस ज्वरका आविर्भाव होता है ।

विशेषरीत्या शरीरमें भारीपन, आहारमें अप्रवृत्ति, मुख और नासिकासे कफस्राव, मुखमें मधुरता, उपस्थित वमन हृदयस्थानमें उपलेपबोध शरीरमें स्तिमितभाव (भीगे कपड़ेसे शरीर ढका है ऐसा मालूम पड़ना), छर्दि, अग्निकी मृदुता, निद्राका आधिक्य हस्तपदादिको स्तब्धता, तन्द्रा, श्वास कास नख, नयन, चेहरा. मूत्र, पुरीष और चर्ममें अत्यन्त शीतलताका अनुभव तथा शरीरमें शीतलस्पर्श पीड़का (फुन्सी)का उद्गम होता है। कफज्वराक्रान्त व्यक्तिको प्रायः उष्णताकी अभिलाषा होती है। निदानोक्त वस्तु द्वारा अनुपशयता और उससे विपरीत गुणयुक्त पदार्थसे उपशयता मालूम पड़ती है।

विषमाशन (अभ्याससे अधिक वा थोड़ा अथवा असमयमें भोजन करना), अनशन, ऋतु परिवर्तन ऋतु व्यापत्ति (ग्रीष्म, वर्षा, शीत आदि ऋतुओंमें ऋतुके अनुसार ग्रीष्मशीतादिका अभाव), अहृद्यगन्धादिका आघ्राण,

अनिच्छा आँखोंका डबडबाना और लाल होना निद्राधिक्य अरति, जँभाई, विनाम, कम्प, श्रम, भ्रम, प्रलाप, जागरण, रोमाञ्च, दन्तहर्ष, शब्द, शीत, वात और आतप आदिमें कभी अभिलाष, कभी अनभिलाष, अरुचि, अपरिपाक, शरीरमें दुर्बलता अङ्गमर्द, अङ्गोंमें अवसन्नताका आना, अल्पप्राणता (शारीरिक बलकी अल्पता), दीर्घसूत्रता, आलस्य, उपस्थित कार्यको हानि, अपने कार्यको प्रतिकूलता, गुरुजनोंके वाक्यमें अभ्यसूया, बालकके प्रति विद्वेष प्रकाश, अपने धर्ममें चिन्ताराहित्य, माल्यधारण, चन्दनादि लेपन, भोजन, क्लेशन, मधुर भक्ष्य पदार्थसे द्वेष करना तथा अम्ल, लवण और कटु द्रव्यके भक्षण करनेमें अत्यन्त आसक्ति। ज्वरकी प्रथम अवस्थामें सन्ताप, पीछे धीरे धीरे उक्त लक्षण प्रकट होते हैं।

अनति-उष्ण वा अनतिशीतल शरीर, अल्पसंज्ञा, भ्रान्तदृष्टि, स्वरभङ्ग, जिह्वा खरखरी, कण्ठ शुष्क, पुरीष, मूत्र और स्वेदका राहित्य, हृदय सरक्त (रक्तनिष्ठीवन) और निस्तेज (मानो छाती टूटी जा रही है), अन्नसे अरुचि, शरीर प्रभाहीन तथा श्वास और प्रलाप ये लक्षण अभिन्यास अथवा हतौजा नामक सान्निपातिक ज्वरमें * प्रकट होते हैं।

सान्निपातिक रोग अत्यन्त कष्टसाध्य और असाध्य है। अभिन्यास रोगमें निद्रा, क्षीणता, ओजोहानि और शरीर निष्पन्द होने पर संन्यास नामक सान्निपातिक रोग उत्पन्न होता है। पित्त और वायु-वृद्धिके लिए ओज धातुका क्षय होने पर गात्रस्तम्भ और शोनके कारण रोगी अचेतन होता है, जाग्रत होने पर भी तन्द्रा और प्रलापविशिष्ट अङ्ग रोमाञ्चित, शिथिल, अल्पताप और वेदनायुक्त होता है। यह ओजः धातुके रुक जानेसे होता है, इस दशामें सातवें, दशवें अथवा बारहवें दिनमें रोग बढ़ जाता है। इस दशामें या तो रोगीको शीघ्र आराम हो जाता है या उसकी मृत्यु हो जाती है।

दो दोषोंके वृद्धि होने पर ज्वर होता है, उसको द्वन्द्वज कहते हैं। द्वन्द्वज ज्वर तीन प्रकारका है—वात पित्त, वातश्लेष्मा और पित्तश्लेष्मा। जंभाई, पेट फूलना, मत्तता, कम्पन, सन्धिस्थानोंमें वेदना, शरीरमें कृशता और अभिताप, तृष्णा और प्रलाप ये वातपैत्तिक ज्वरके लक्षण हैं।

शूल, काश, कफ, वमन, शीत, कम्पन, पीनस, देहका भारीपन, अरुचि और विष्टम्भ—ये वातश्लेष्मा ज्वरके लक्षण हैं।

शीत, दाह, अरुचि, स्तम्भ, स्वेद, मोह, मत्तता, भ्रम, काश, अङ्गोंमें अवसन्नता, वमनेच्छा, ये पित्तश्लेष्मा ज्वरके लक्षण हैं।

ज्वरमुक्त, कृश, मिथ्या आहारविहारी व्यक्तिके अल्प अवशिष्ट दोषोंके वायु द्वारा वृद्धि होने पर पाँच कफ स्थानोंके दोषानुसार पाँच प्रकारका ज्वर उत्पन्न होता है। ये पांच प्रकारके ज्वर सर्वदा, अन्येद्युष्क, तृतीयक, चातुर्थक और प्रलेपक नामसे प्रसिद्ध हैं। †

* चरकके मतसे सान्निपातिक ज्वर १३ प्रकारका है। एक दोषके आधिक्यसे तीन प्रकारका होता है, जैसे-वातोल्वण, पित्तोल्वण और कफोल्वण। दो दोषोंके आधिक्यसे भी तीन प्रकारका होता है, जैसे—वातपित्तोल्वण, वातश्लेष्मोल्वण और पित्तश्लेष्मोल्वण। तीन दोषोंमें हीनता, मध्यता और अधिकताके भेदसे छः प्रकारका होता है यथा—अधिकवात, मध्यपित्त, हीनकफ, अधिकवात हीनपित्त और मध्यकफ, इस तरह छह प्रकारका तथा तीन दोषोंके ही समभावमेंसे उल्वण एक भेद है। तेरह प्रकारके सान्निपातिक ज्वरोंके नाम ये हैं—विस्फारक, आशुकारी, कम्पन बभ्र, शीघ्रकारी, भल्लू कूटपाकल, संमोहक, पाकल, याम्य, क्रकच, कर्कटक और वैदारक। सान्निपातिक देखो।

† आमाशय, हृदय, कण्ठ, नसें और सन्धियें ये पांच कफके स्थान हैं। दिवाभाग और रात्रिकाल ये दो ज्वरके प्रकोपके समय हैं। इनमेंसे एक प्रकोपके समयमें दोष हृदयमें लीन हो कर अन्य प्रकोपकालमें ज्वर प्रकट होता है। इसको अन्येद्युष्क ज्वर कहते हैं। यह ज्वर प्रत्येक दिन, दिनमें प्रकट हो कर अथवा रात्रि में उत्पन्न हो कर दिनमें मग्न होता है; फिर उस समय हृदयमें दोष लीन होते हैं। दोष हृदयस्थित होनेसे तीसरे दिन वह आमाशयको आच्छन्न कर ज्वर उत्पन्न करता है। इसको तृतीयक ज्वर कहते हैं। यह ज्वर एक दिन अन्तर आता है, इसको इकतरा भी कहते हैं। दोष शिरस्थित होनेसे यह दूसरे दिन कण्ठ, तीसरे दिन हृदय तथा चौथे दिन आमाशयको दूषित कर ज्वर उत्पन्न करता है। यह ज्वर दो दिन अन्तरसे आता है। इसको चातुर्थक ज्वर कहते हैं।

दिवारात्रके भीतर दोषसमूह देहके एक स्थानसे अन्य स्थानमें गमनपूर्वक पक्वामें आमाशयमें आश्रय कर ज्वर प्रकट करते हैं, प्रलेपक ज्वरमें धातु शोषित होती है। टोषादि दो, तीन वा चार कफस्थानोंको आश्रय करने पर विपर्यय नामक कष्टसाध्य विषमज्वर उत्पन्न होता है। *

कोई कोई कहते हैं कि, विषमज्वर आमायत हुआ करता है। कुछ भी हो भय, शोक, क्रोध वा आघात आदि किसी प्रकारके बाह्य कारणसे मथित दोषोंके कुपित होने पर विषमज्वरका आरम्भ होता है। तृतीयक और चातुर्थक ज्वर वायुकी अधिकतामें तथा उत्पातिक और मदमधुर ज्वर पित्तजन्य हुआ करता है।

दुग्धपान आदिसे प्रलेपक ज्वर होता है। मूलाके अपक्व होने पर जिस विषमज्वरका उदय होता है वह प्रायः दो दोषोंसे उत्पन्न होता है।

किसी किसी ज्वरको प्रथम त्वचामें वायु और श्लेष्मा द्वारा शीत प्रकट होता है, उनको शान्ति होनेसे ज्वरके अन्तमें पित्तके कारण दाह उत्पन्न होता है। किसी ज्वरमें पहले ही पित्त द्वारा दाह और अन्तमें वायु और श्लेष्माके वेगके कारण शीत होता है। ये दो प्रकारके ज्वर द्वन्द्वज से कारण उत्पन्न होते हैं। इनमेंसे दाहपूर्वक ज्वर अत्यन्त कष्टसाध्य है।

दिन-रातके भीतर जो जब दोषोंका समय कहा गया है, उन दोषोंके समयमें जो ज्वर होता है वह ज्वर सहजमें नहीं छूटता इस कारण इसको भी विषमज्वर कहते हैं। वेगकी शान्ति होने पर ज्वर छूट गया है— ऐसा मालूम पड़ता है किन्तु उस समय उसके बालान्तर में लीन रहनेके कारण सूक्ष्मताप्रयुक्त उपलब्धि नहीं होती। ज्वरमुक्त व्यक्तिके शरीरस्थ अल्पदोष अहिताचारद्वारा बढ़ कर किसी एक धातुका आश्रय ले विषमज्वर उत्पन्न करता है।

गुरूष्णीय रसवाही स्रोतद्वारा समस्त शरीरमें व्याप्त हो कर सन्ततज्वर उत्पन्न करते हैं। सन्तत ज्वर सततज्वर की तरह दीर्घकालव्यापी और रक्ताशयगत होता है। अन्येद्युष्क ज्वर मांसगत, तृतीयक ज्वर मेदगत और चातुर्थक ज्वर मज्जा और अस्थिगत है। यह ज्वर अति भयानक है। भूताभिषङ्ग जन्य ज्वरको भी कोई कोई विषमज्वर कहते हैं। सात दिन, दश दिन वा बारह दिन तक जो ज्वर रहता है उनको सन्ततज्वर कहते हैं। सततक ज्वर दिन रातमें दो बार चढ़ता है। अन्ये द्युष्क प्रतिदिन एक बार, तृतीयकज्वर प्रति तृतीय दिन में एक बार तथा चातुर्थक ज्वर प्रति चतुर्थ दिनमें प्रकट होता है। दोषवेगके उदयकालमें ज्वर प्रकट होता है और रोगकी निवृत्ति होने पर ज्वर देहमें सामान्यभावसे छिप रहता है। अथवा दोषोंका परिपाक हो जानेसे यथाकालमें ज्वर छूट जाता है। शरीरमें अभिघात आदि बाह्य कारणसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको अभि घातजन्य ज्वर कहते हैं। इसमें † प्रायः वातपित्तका प्राबल्य होता है। काम, भय और अभिचारके कारण वायु कुपित हो कर समस्त शरीरको आश्रय ले ज्वर उत्पन्न करती है। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि, किसी भी प्रकारका ज्वर क्यों न हो उसमें वात, पित्त और श्लेष्मामेंसे एक वा दो दोषके लक्षण अवश्य प्रकट होंगे।

दोषोंके हीनमध्य वा अधिक होने पर ज्वरका वेग भी यथाक्रमसे तीन दिन, सात दिन वा बारह दिन तीव्र भावसे रहता है। ये तीनों तरहके ज्वर उत्तरोत्तर कष्ट साध्य हैं।

ज्वर शारीर और मानस भेदसे, सौम्य और आग्नेय भेदसे, अन्तर्वेग और बहिर्वेग भेदसे तथा साध्य और असाध्यके भेदसे दो प्रकारका है। दोष और कालके प्रभावके अनुसार सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थक भेदसे पांच प्रकारका, रसरक्तादि धातु समूहके आश्रय भेदसे सात प्रकारका तथा वातपित्तादि और आगन्तुक कारणभेदसे आठ प्रकारका है।

* चातुर्थक ज्वरमें एक दिन ज्वर हो कर दो दिन नहीं रहता है किन्तु विपर्ययमें एक दिन बन्द रह कर दो दिन ज्वर रहता है। सततक ज्वर दिवारात्रके भीतर दो बार प्रकट होता और दो बार बन्द होता है। किन्तु सततक विपर्ययमें दिवारात्र ज्वर रहता है।

† अभिघात ज्वरमें शरीरमें व्यथा, सूजन और विवर्णता आ जाती है।

जो ज्वर पहले शरीरमें होता है, उसको शारीर और जो ज्वर पहले मनमें उत्पन्न होता है, उसको मानसज्वर कहते हैं। चित्तको विह्वलता, अरति और ग्लानिका होना मानसिक सन्तापका लक्षण है और इन्द्रियोंकी विकृति दैहिक सन्तापका लक्षण है।

वातपित्तात्मक ज्वरमें रोगीको शीतल, वातकफात्मक ज्वरमें उष्ण और उभयलक्षणाक्रान्त ज्वरमें शीत और उष्ण दोनों प्रकारकी इच्छा होती है।

अत्यन्त अन्तर्दाह, अधिक पिपासा प्रलाप, श्वास, भ्रम, सन्धिस्थान और हड्डियोंमें दर्द, पसीनेका रुकना तथा श्वास और मल निग्रह, ये सब अन्तर्वेग ज्वरके लक्षण हैं।

अत्यन्त वाह्यसन्ताप, तृष्णा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, सन्धि और अस्थिमें वेदना तथा मलनिग्रह आदिको अल्पता ये वहिर्वेग ज्वरके लक्षण हैं।

आमाशयसे ही ज्वरको उत्पत्ति होती है। अतएव ज्वरके पूर्वलक्षण अथवा लक्षणोंको देख कर शरीरके लिए हितकारक लघु आहारीय द्रव्य अथवा अपतर्पण द्वारा शरीरमें लघुता लानी चाहिये। तदनन्तर कषाय पान, अभ्यङ्ग, स्वेद, प्रदेह परिषेक, अनुलेपन, वमन, विरेचन, आस्थापन अनुवासन, उपशमन, नस्यकर्म, धूम्रपान, अञ्जन और क्षीरभोजन आदि ज्वरके प्रकार भेदसे यथायोग्य विधेय है।

ज्वरके रसस्थ होने पर शरीरमें गुरुता, दीनभाव उद्वेग, अवसाद, वमन, अरुचि, शरीरके वहिर्भागमें उत्ताप, अङ्गवेदना और जँभाई आती हैं।

रक्तस्थ ज्वरमें रक्तजनित पिडका, तृष्णा, पुनः पुनः खूनसहित थूक, दाह, शरीरमें रक्तिमा, भ्रम, मत्तता और प्रलाप उपस्थित होता है।

मांसस्थ ज्वरमें अत्यन्त अन्तर्दाह तृष्णा, मोह, ग्लानि, अतीसार, शरीरमें दुर्गन्ध और अङ्गविक्षेप होता है।

ज्वर मेदस्थ होनेसे अत्यन्त पसीना, पिपासा, प्रलाप, अरति, मुखमें दुर्गन्ध, असहिष्णुता ग्लानि और अरुचि होती है।

ज्वर अस्थिगत होने पर वमन, विरेचन, अस्थिभेद, कण्ठकूजन, अङ्गविक्षेप और श्वास उपस्थित होता है।

ज्वर मज्जागत होनेसे हिचकी, श्वास, कास, अन्धकार दर्शन, मर्मोच्छेद, शरीरके वहिर्भागमें शैत्य और अन्तर्दाह होता है।

शुक्रस्थ ज्वरमें आत्मा शुक्रक्षरण और प्राणवायुका विनाश कर अग्नि और सोमधातुके साथ गमन करती है।

ज्वर रस और रक्ताश्रित होनेसे साध्य है मांस, मेद और अस्थिगत होने पर कृच्छ्रसाध्य तथा शुक्रगत होनेसे असाध्य हो जाता है।

दोष चाहे संसृष्ट हो चाहे सान्निपातिक, कुपित और रसके अनुगत हो कर स्वस्थानसे कोष्ठस्थ अग्निका निरास पूर्वक अग्निको उष्माके द्वारा देहका बल बढ़ा कर स्रोतोंको रोक देते हैं, पीछे तमाम देहमें व्याप्त और प्रबल हो कर अत्यन्त सन्ताप उत्पन्न करते हैं। उस समय मनुष्यका सारा शरीर गरम हो जाता है।

नूतन ज्वरमें प्रायः अग्नि अपने स्थानसे स्थानान्तरित हो जाती है और उससे स्रोत बन्द हो जाते हैं। इसी लिए रोगीके शरीरसे पसीना नहीं निकलता।

अरुचि, अविपाक, उदरको गुरुता हृदयको अविशुद्धि, तन्द्रा, आलस्य, अविच्छेद भावसे सर्वदा कठिन ज्वरका भोग, दोषोंकी अप्रवृत्ति, लालास्राव हृल्लास (जी मतराना), क्षुधानाश, मुखमें विस्वाद, शरीरमें स्तब्धता, सुप्तता, गुरुता, मूत्राधिक्य, मलमें अपरिपक्वता तथा शरीरमें अक्षीणता—ये सब आमज्वरके लक्षण हैं। क्षुधा, शरीरस्थ द्रव धातुओंकी शुष्कता, शरीरमें लघुता, ज्वरको मृदुता, दोषप्रवृत्ति (मलमूत्रादिका उत्सर्ग) तथा अष्टाह भोग—ये निरामज्वरके लक्षण हैं।

नवज्वरमें दिवानिद्रा, स्नान, अभ्यङ्ग, गुरु और अधिक भोजन, मैथुन, क्रोध, प्रबल वायु वा पूर्व दिशाकी वायुका सेवन, व्यायाम और कषाययुक्त पदार्थका सेवन करना छोड़ देना चाहिये।

क्षय, निरामवायु, भय, क्रोध, काम, शोक और परिश्रम—इनके सिवा अन्य किसी कारणसे ज्वर हो तो पहले उपवास करना चाहिये। उपवास फलदायक होने पर भी, जिससे शरीर अधिक दुर्बल न हो, ऐसा उपवास करना चाहिये, क्योंकि शरीरमें बल न होनेसे चिकित्सा से किसी प्रकारका सुफल नहीं मिल सकता।

तरुण ज्वरमें उपवास छोड़ दिया यवागू आहार तथा जल और मण्डादिके साथ तिक्तरस पिलानेसे अपक्व रसका परिपाक होता है।

वातजनित कफजनित तथा वात और कफ दोनोंसे उत्पन्न नवीन ज्वरमें प्यास लगनेसे गरम पानी देना चाहिये दूसरे पित्त और मद्यपानजनित रोगोंमें तिक्त पदार्थके साथ पानी औंटा कर ठण्ढा होने पर देना चाहिये। पूर्वोक्त दोनों ही प्रकारका जल अग्निदीपक आमपाचक, ज्वरघ्न, स्रोतशोधक तथा बल और घर्मजनक है।

तरुणज्वरमें पिपासा और ज्वरकी शान्तिके लिये मोथा पित्तपर्पटी उशीर (खस), लालचन्दन, बाला और सोंठ इनका काढ़ा पिलाना चाहिये।

यदि रोगीके आमाशयस्थ दोषोंमें कफकी अधिकता मालूम पड़े और ऐसा मालूम पड़े कि वमनका उद्वेग होनेसे यह दोष अपने आप निकल जायगा तो वमनकारक औषध दे कर ज्वरके मूल दोषको निकाल देना चाहिये। अन्यथा तरुणज्वरमें रोगीको यत्नपूर्वक वमन कराना उचित नहीं है। कारण बलपूर्वक वमन करानेसे अथवा हृद्रोग श्वास, आनाह और मोह उपस्थित हो सकता है।

चिकित्सा—ज्वरके पूर्वरूप* प्रकट होने पर वायुजन्य होनेसे अच्छ घृतपान, पित्तजन्य होनेसे विरेचन और कफजन्य होनेसे मृदु-वमन कराना विधेय है। द्विदोषज ज्वरमें स्निग्ध क्रिया या वमन विरेचन करानेकी जरूरत नहीं लङ्घन† कराना चाहिये। ज्वरके लक्षण जब स्पष्ट प्रकट हों, तब लङ्घन कराना ही हितकर है। दोषोंकी आमाशयमें स्थिति होने और वमनकी इच्छा होने पर वमन कराना ही सबसे श्रेष्ठ है। जब तक जरा भी दोष रहे, तब तक उपवास कराना चाहिये। वायुजन्य और क्षयजन्य मानसिक तथा शिरशोथ ज्वरमें लङ्घन कराना उचित नहीं है। कभी सिर्फ वमन, कभी सिर्फ उपवास और कभी वमन और उपवास दोनोंके जरिये दोषोंका क्षय कर क्षुधाका उद्रेक होने पर विवेचनापूर्वक रुचिका आहार (पथ्य) देना विधेय है। प्रथमतः मण्ड, पीछे पेय फिर विलेपी देना चाहिए। जब तक ज्वरका मृदुभाव न हो अथवा जब तक ज्वरारम्भके दिनसे छह दिन बीत न जाय, तब तक यवागू आदि ही हितकर पथ्य है। मदात्यय रोगीका ज्वर, मद्यपायी व्यक्तिका ज्वर, मद्यपानजनित ज्वर ग्रीष्मकालीन ज्वर, पित्तकफाधिक्य ज्वर और ऊर्ध्वग रक्तपित्तरोगीके ज्वरके लिए यवागू हानिकारक है।

मदात्यय रोगी आदिके ज्वरमें पहले किसमिस, दाड़िम आदि ज्वरघ्न फलोंके रसके साथ लाजका लावा (धोय कर) तथा उपयुक्त मधु और शर्करा मिला कर खिलाना चाहिये। इस आहारका नाम है तर्पण। तर्पण जीर्ण होने पर साम्य और बलके अनुसार मूंगका पतला जूस अथवा मांसरसके साथ भोजन योग्यकालमें पथ्य प्रदान करते हैं।

पीछे उसका रस रोगीके मुखमें जैसा लगा रहे, उससे विपरीत रसयुक्त तथा मनोज्ञ लगनेवाले आम्लादि भक्ष्य मानसे (इ तयमसे) दन्तमार्जन और बार बार पुनः पुनः मुख प्रक्षालन (कुल्ला) करना चाहिये। इस प्रकारके दोनोंके करनेसे मुखका वैरस्य दूर होता है तथा अन्न और पानकी अभिलाषा और रसकी अभिज्ञता उत्पन्न होती है। रोगीको सातवें दिन हलका भोजन करा कर उसके दूसरे दिन पाचन या शमन-कषाय पिलाना चाहिये। कारण तरुण ज्वरमें कषायरसके सेवन करनेसे दोष स्तब्ध हो जाते हैं तथा उन दोषोंका परिपाक न होनेके कारण वे बढ़ हो कर विषमज्वर उत्पन्न करते हैं। ज्वरमें कफकी मन्दता तथा वातपित्तकी अधिकता और दोषका परिपाक होनेसे घी पीना उचित है। किन्तु दस दिन हो जाने पर भी यदि कफकी अधिकता तथा लङ्घनका अच्छा फल न दीखे तो घी नहीं पीना चाहिये। ऐसी दशामें कषायके द्वारा जब तक शरीरमें लघुता न होवे, तब तक मांस-रसके साथ पथ्य दिया जाता है। पथ्योदक

* वातज ज्वरका पूर्वरूप अधिक जृम्भण, पित्तजन्य ज्वरमें नेत्रदाह और कफजन्य ज्वरमें अन्नमें अरुचि होती है।

† जिसके करनेसे शरीर लघु (हलका) हो जाय उसको लंघन कहते हैं। अतएव केवल उपवास करना ही लंघन नहीं है। उपवास, निर्वातस्थानमें वास, वमन विरेचन आदि लंघनमें ही शामिल हैं। [illegible] इसीके लंघनमें शामिल है।

(गरम गरम पानी) होकर, कफविच्छेदक और वात पित्तके लिए अनुलोमकर है। कफवात-जन्य ज्वरमें उष्णोदक हितकर और पिपासाके लिए शान्तिकर है। इससे दोष और स्रोतसय सरल होते हैं। इस ज्वरमें ठण्डा पानी पीनेसे शैत्यके कारण ज्वर बढ़ जाता है। पित्त, मद्य वा विषजन्य ज्वर हो, तो गाडु य. नागर, उशीर, पर्पट और उदीच्य इनको रक्तचन्दनके साथ पानीमें उबाल कर ठण्डा हो जाने पर पीना चाहिये। आहारके समय पाचक द्रव्यके साथ पेया बना कर* पीना चाहिये। वायुजन्य ज्वरमें पञ्चमूलीका काढ़ा पित्तजन्य ज्वरमें शोथा कटकी और इन्द्रयवका काढ़ा तथा कफजन्य ज्वरमें पिप्पल्यादिका काढ़ा दोषों का परिपाक करता है। द्वि दोष जन्य ज्वरमें द्वि दोष-निवारक पाचन मिला कर पीलाना चाहिये। ज्वर मृदु, देह लघु और मल सरल होने पर दोषोंका परिपाक हुआ समझें, तथा इस अवस्थामें दोषके अनुसार ज्वरघ्न औषधका प्रयोग करें। ज्वरमें कोई ७ दिन पीछे और कोई १० दिन बाद औषध प्रयोग करना उचित बतलाते हैं। पित्तजन्य ज्वरमें थोड़े दिनोंमें औषधका प्रयोग किया जा सकता है तथा दोषके परिपाक होने पर भी कुछ दिन औषध दी जा सकती है। अपक्कदोषमें औषध प्रयोग करनेसे पुनः ज्वर प्रकट होता है, इस अवस्थामें शोधन और शमनीय प्रयोग करनेसे विषमज्वर हो सकता है। ज्वर-रोगीका मल निकलता रहे, तो रोकना नहीं चाहिये; हां, ज्यादा निकलने पर अतिसारकी तरह प्रतीकार कराना चाहिये। स्रोतपथका रुका हुआ मल परिपाक हो कर कोष्ठस्थानमें आ जाने पर ज्वर थोड़े दिनका होने पर भी विरेचन (दस्त) कराना उचित है। रोगी बलवान् हो तो ऐसा ज्वरमें क्रम क्रमसे वमन कराना चाहिये। पित्ताधिक्य ज्वरमें मलाशय शिथिल हो तो विरेचन, वायुजन्य यन्त्रणायुक्त और उदावर्तरोगयुक्त ज्वरमें निरूहवस्ति, तथा कटि और पृष्ठदेशमें वेदना होने पर दीप्ताग्निविशिष्ट रोगीके लिए अनुवासन विधेय है। कफाभिभूत होनेसे शिरोविरेचन कराना चाहिये. इससे मस्तकका भार और वेदना दूर होती है तथा इन्द्रियां प्रतिबोधित होती हैं। दुर्बल रोगीके उदरमें आध्मान हो कर यन्त्रणा होने पर देवदारु, वच, कुठ, शोलुफा हिङ्ग, और सैन्धवका प्रलेप दें तथा वायु ऊर्द्ध गति होने पर उन पदार्थोंको अम्लरसमें पीस कर देपदुग्ध प्रयोग करें। ऊर्द्ध और अधोदेश संशोधित होने पर भी यदि ज्वर शान्त न हो और शरीर रूखा हो तो वह अवशिष्ट दोष द्वारा समताको प्राप्त होता है, शरीर कृश होने पर अल्प-दोषशमनी प्रयोग करना चाहिये, इससे साम्य लाभ होता है। जो रोगी ज्वरमें क्षीण हो गया हो उसको वमन वा विरेचन न कर यथेष्ट दूध पिलाना अथवा निरूह द्वारा मल निःसरण कराना चाहिये। दोषोंके परिपाक हो जानेके बाद निरूह प्रयोग करनेसे शीघ्र बल और अग्निकी वृद्धि, ज्वरनाश, हर्ष तथा रुचि उत्पन्न होती है। उपवास वा श्रमजन्य वाताधिक्य ज्वर होनेसे दीप्ताग्नि व्यक्तिके लिए मांसरस और अन्न विधेय है। कफजन्य ज्वरमें मूंगकी दालका पानी (जूस) और अन्न तथा पित्त-जन्य ज्वरमें ठण्डा मूंगकी दालका जूस और अन्न शर्करा-के साथ खाना चाहिये। वातपैत्तिक ज्वरमें दाड़िम वा आंवलेके साथ मूंगकी दालका जूस, वातश्लेष्मा ज्वरमें ह्रस्व-मूलकका जूस तथा पित्तश्लेष्माज्वरमें पटोल और निम्बजूस अन्नके साथ खिलाना चाहिये। कफजन्य अरुचि होने पर विकट्के साथ मठा पीना विधेय है। कृश, अल्पदोषविशिष्ट, क्षीण और जीर्णज्वरपीड़ित रोगीके लिए तथा वातपित्तज्वरमें दोषोंके बढ़ रहनेसे वा देह रूक्ष होनेसे तथा प्यास वा दाह होनेसे दूध पीना स्वास्थ्यकर है। तरुणज्वरमें दूध पीना बिल्कुल मना है, किन्तु क्षीण शरीरवालेको वातपित्तजन्य ज्वरमें तथा अग्नि तेज होने पर दूध दिया जा सकता है।

पुराने ज्वरमें कफपित्तकी क्षीणता होनेसे, जिसका मल रूक्ष और बद्ध हो तथा अग्नि तेज हो. उसको अनुवासन दिया जाता है। जीर्णज्वर होने पर मस्तकमें भारीपन, शूल तथा इन्द्रियस्रोत बद्ध होने पर शिरोविरेचनसे अरुचि और शान्ति होनेकी सम्भावना है। जिन समुदाय जीर्णज्वरमें चर्ममात्र अवशिष्ट है तथा आगन्तुक कारण अनुबन्ध होता है, धूप और अञ्जन प्रयोग करने-

* जिससे पेया बनाई जाती है, उसको चौदह गुने जलमें पाक करना चाहिये। अधिक द्रव अवस्थामें पाक ठीक होता है।

श्वास, शिरःशूल और पार्श्वशूल जाता रहता है। पञ्चमूलके द्वारा दुग्ध उबाल कर पीनेसे ज्वर उपशमित होता है।

मलद्वारमें परिकर्तिका (कतरने जैसी पीडा) हो तो ज्वर-रोगीको दुग्धके साथ एरण्डमूलका काढ़ा अथवा दूधके साथ बेलगरी उबाल कर उस दुग्धको पीना चाहिए। इससे परिकर्तिका ज्वरसे छुटकारा मिल सकता है। गोखरू, पिठवन, कण्टकारी, गुड़ और सोंठ इनको दुग्धके साथ उबाल कर पीनेसे मलमूत्रका विबन्ध, शोथ और ज्वर नष्ट होता है। सोंठ, किसमिस और पिण्डखजूरको दूधमें उबाल कर घी, मधु और चीनीके साथ पीनेसे पिपासा और ज्वर जाता रहता है।

वायुजन्य ज्वरमें पीपल श्यामालता, द्राक्षा, शतपुष्पा (सोंय) और हरेणु, इनका क्वाथ गुड़के साथ पीना चाहिये, अथवा गुलञ्चका क्वाथ ठण्डा होने पर पीना चाहिये। बला, कुश और गोक्षुरका क्वाथ चौथाई रह जाने पर चीनी और घीके साथ पीना चाहिये। शतपुष्पा, वच, कुड, देवदारु हरेणु, धान्य, उशीर (खस खस) मोथा, इनका क्वाथ मधु और चीनीके साथ पीना चाहिये। द्राक्षा, गुलञ्च, गाम्भारी, त्रायमाणा और श्यामालता, इनका क्वाथ गुड़के साथ सेवनीय है। गुलञ्च और शतमूलीका रस गुड़के साथ सेवन करनेसे विशेष लाभ होता है। अवस्थाविशेषमें घृतमर्दन, स्वेद और आलेपन प्रयोग किया जाता है ज्वरका आमावस्थाका परिपाक होने पर यदि वायुजन्य उपद्रव हो और अन्य किसी दोषका संस्रव न हो, सिर्फ वातजन्य ज्वर हो यदि जीर्ण ज्वर वायुजन्य हो अर्थात् ज्वर सुबहसे शुरू हो कर दोपहरको मग्न हो, तो घृतमर्दन विधेय है। यदि शामसे शुरू हो कर दो प्रहरके भीतर मग्न हो, तो गायका घी पिलाना चाहिये।

पित्तजन्य ज्वरमें श्रीपर्णी गाम्भारी), रक्तचन्दन, खसको जड़ फालसा और मौलपुष्प इनका काढ़ा चीनीसे मीठा करके पीना चाहिये। अनन्तमूलका क्वाथ चीनी डाल कर पीनेसे विशेष लाभ होता है। यष्टिमधु, रक्तोत्पल, पद्मकाठ और पद्म, इनका शीतल क्वाथ चीनीसे पीने योग्य है। गुलञ्च, पद्मकाठ, लोध्र, श्यामालता और उत्पल, इनका ठण्डा काढ़ा चीनी मिला कर पीवें। द्राक्षा, अमलतास और गाम्भारी, इनका काढ़ा चीनीके साथ पीवें। मधुर और तिक्त शीतल क्वाथ शर्कराके साथ पीनेसे प्रबल दाह और तृष्णा शान्त होती है। शीतल जल मधुके साथ भर पेट पी कर वमन करनेसे तृष्णा शान्त होती है। यवाड्म्बर और चन्दनको दूधके साथ पकावें, इस क्वाथको ठण्डा करके पीनेसे अन्तर्दाह शान्त होता है। जिह्वा, तालु, गलदेश और क्लोम शुष्क होने पर पद्मकाठ, यष्टिमधु, द्राक्षा, उत्पल, रक्तोत्पल, भृङ्गयव, उशीर, मञ्जिष्ठा और गाम्भारफल इनके कल्कका मस्तक पर लेप देना चाहिये। मुखमें विरसता होनेसे बिजौरा नीबूको केशरको मधु और सैन्धव लवणके साथ अथवा चीनीके साथ दाड़िमका कल्क वा द्राक्षा और खजूरका कल्क अथवा इनका क्वाथ वा रसका गण्डूष मुखमें धारण करना पड़ता है।

कफजन्य ज्वरमें कुटक, गुलञ्च, निम्ब, पफूर्णक इनका क्वाथ मधुके साथ अथवा त्रिकटु, नागकेशर, हलदी कटकी और इन्द्रयवका काढ़े अथवा हलदी, चित्रक, निम्ब उशीर अतिविषा, वच, कुठ, इन्द्रयव, मोथा और पटोलका क्वाथ मधु और मिर्चके साथ सेवन करना चाहिये। श्यामालता, अतिविषा, कुठ, पुरा, दुरालभा, मोथा इनका काढ़ा अथवा मोथा, इन्द्रयव, त्रिफला इनका क्वाथ सेवनीय है।

वातश्लेष्मज्वरमें राजवृक्षादिवर्गका क्वाथ मधुके साथ उपयुक्त समय पर सेवन करना चाहिये; अथवा सोंठ, धान्यक, वरङ्गी, हड़, देवदारु, वच, शिग्रुबीज, मथा, चिरायता और कटफलका क्वाथ मधु और हिङ्गुके साथ उपयुक्त समय पर सेवन करनेसे ज्वर शीघ्र आरोग्य होता है। श्वास, काश, श्लेष्मानिर्गम, गलग्रह, हिक्का, कण्ठशोथ, हृदिशूल और पार्श्वशूल ये सब उपद्रव उक्त क्वाथके पीनेसे जाते रहते हैं।

पित्तश्लेष्मा ज्वरमें इलायची, परवल, त्रिफला, यष्टिमधु, वृष और वासक, इनका क्वाथ मधुके साथ अथवा कटकी, विजया, द्राक्षा, मोथा और क्षेत्रपर्पटी, इनका क्वाथ अथवा कञ्जिका सच, पपटी, धनिया, हिङ्गु, हड़, मोथा, द्राक्षा और नागरमोथा, इनका काढ़ा मधुके

है। अतएव जीर्णज्वरमें औषधके साथ उबाला हुआ दूध पीना चाहिये।*

गुलञ्च, त्रिफला, वासक, त्रायमाणा और यवास इनका क्वाथ तथा द्राक्षा, पीपल, मोथा, सोंठ, कुड और चन्दन इनका कल्क घीमें पाक करके सेवन करनेसे जीर्णज्वर जाता रहता है। काश्मरी, त्रिवृता, द्राक्षा, त्रायन्ती, नीम, गोखरू, बला, पर्पटी, मोथा, शालपर्णी और यवास इनके क्वाथमें तथा दूने दूधमें शठी, भू आंवला, कञ्जिका, मेद (अभावमें अश्वगन्धा) और कुड इनके कल्कमें घृत पाक करके सेवन करनेसे जीर्णज्वर आराम हो जाता है। जीर्णज्वर शरीरको रसादि धातुका—दौर्बल्य-वशतः शीघ्र निवृत्त न हो कर क्रमशः भोग करता रहता है। अतएव ज्वररोगीको बलकारक बृंहण द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। विषमज्वरमें ज्वररोगी-को पीनेके लिए सुरा और सुरामण्ड तथा खानेके लिए कुक्कुट, तित्तर और मयूरका मांस दिया जाता है। कइ पल घी, दूर्व, त्रिफलाका क्वाथ अथवा गुलञ्चका रस सेवन करनेसे विषमज्वर उपशान्त हो सकता है।

विडङ्ग, त्रिफला, मोथा, मञ्जिष्ठा, दाड़िम, उत्पल, प्रियङ्गु, इलायची, एलवालुक, रक्तचन्दन, देवदारु, वर्हिष्ट, कुष्ठ, हरिद्रा, पर्णिनी, श्यामालता, अनन्तमूल, हरेणु, निसोथ, दन्ती, वच, तालीश, नागकेशर और मालतीपुष्प इनका क्वाथ और घीसे दूना दूध इनके साथ घृत पाक करें। इसका नाम कल्याणघृत है। कल्याणघृत खानेसे विषम-ज्वर नष्ट होता है। विषमज्वर आनेके समय युक्तिपूर्वक स्नेह और स्वेद प्रदान करके नीलवृक्षा, निसोथ और कटको इनका काढा पीना चाहिए।

विषमज्वरमें खूब ज्यादा घी पी कर वमन करे तथा बुखार चढ़ते समय अन्नके साथ प्रचुर मद्य पी कर शयन, आस्थापन वा वमन करें। इस बुखारमें बिल्लीकी विष्ठा दूधके साथ पीवें अथवा वृषके गोमय दधिका मण्ड वा सुराके साथ सैन्धव लवण पीवें। इस बुखारमें पीपल, त्रिफला, दही, मठा, घी† और पञ्चगव्यका प्रयोग करना विधेय है। व्याघ्रकी वसा और हिङ्गु, दोनोंको बराबर बराबर ले कर सैन्धवके साथ मिला कर उससे अथवा सिंहकी वसाको पुराने घीके साथ मिला और सैन्धवके साथ नस्य ग्रहण करनेसे विषमज्वरमें फायदा पहुंचता है। सैन्धव, पीपलके दाने और मनसिलको तेल में घोंट कर उसका अञ्जन आंखमें लगानेसे विषम ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है। गुग्गुल, नीमके पत्ते, वच, कुड, हर्र, सफेद सरसों, यव और घी इन सबको धूप देनेसे विषमज्वर जाता रहता है। विषमज्वरमें भोजनसे पहले तिलके तेलके साथ लहसुनके कल्कका सेवन और साफ उपयोग्य मांस भक्षण करते हैं।

भूतविद्या और वन्ध्यावेश तथा ताडना द्वारा भूताभि-पङ्ग ज्वर, विज्ञानादिके द्वारा मानसिक ज्वर तथा घृतमर्दन और रसौदन भोजन द्वारा श्रम और क्षीणता जन्य ज्वर शान्त होता है। अभिशाप वा अभिचारजन्य ज्वर होमादिके द्वारा तथा उत्पातिक वा ग्रहपीड़ा-जन्य ज्वर दान स्वस्त्ययन और आतिथ्यक्रिया द्वारा निवृत्त होता है।

चरकसंहितामें लिखा है कि, अभिशाप अभिचार और भूताभिषङ्गजनित ज्वरमें दैवव्यपाश्रय (बलि मङ्गलादि) और युक्तिव्यपाश्रय (कषायादि) सब तरह-की औषधोंका प्रयोग किया जाता है।

अभिघातजन्य ज्वरमें उष्णक्रिया विधेय नहीं है। मधुर, स्निग्ध, कषाय अथवा दोषानुसार अन्य प्रकारकी औषधोंका प्रयोग करना ही उचित है।

घृतपान, घृताभ्यङ्ग, रक्तमोक्षण मद्यपान और सात्म्य मांसके साथ अन्नभोजनके द्वारा अभिघातजन्य ज्वर उपशम होता है।

किसी प्रकारकी औषधकी गन्धसे वा विषजन्य ज्वर

---

* बला, गोखरू, व्याकुड, अमलतास, कण्टकारी, शालपर्णी, नीम-छाल क्षेत्रपर्पटी (क्षेतपापड़ा), मोथा, बलालता और दुरालभा, इनका काढा तथा भूआंवला, शठी, किसमिस, कुड, मेद और आंवला इनका कल्क और दूध इनके द्वारा घृत पाक करके सेवन करनेसे जीर्णज्वरकी शान्ति होती है।

† पंचगव्य बराबर बराबर मिला कर उसमें त्रिफला, चित्रक, मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, नकुल, वच, वायविडंग, त्रिकटु, चव्य और देवदारु डालना चाहिये। इसके सेवन करनेसे विषमज्वर नष्ट हो जाता है। बला अथवा गुलञ्चके साथ पंचगव्यका पाक करके सेवन करनेसे जीर्णज्वर शान्त होता है।

पाचन, अन्तिम अवस्थामें ज्वरघ्न औषध तथा ज्वरमुक्त होने पर विरेचनका प्रयोग करना चाहिये। सब तरहके बुखारमें प्यास लगने पर भी पानी न पिलाना अनुचित है। तृष्णार्त्त होने पर प्राणधारणके लिए थोड़ा थोड़ा पानी पिलाते रहना चाहिए। किन्तु अवस्थाविशेषमें पिपासाको सह्य करके वायुसेवन करना चाहिए, कभी कभी धूप भी दियो जा सकती है। नवज्वराक्रान्त व्यक्तिको शीतल जल पिलाना उचित नहीं। वातश्लैष्मिक तथा कफज्वरमें गरम पानी हितकर, तृप्तिजनक, अग्निदीपक, वायु और पित्तके लिए अनुलोमकारक तथा दोष और स्रोत समूहको मृदुताको बढ़ानेवाला है।

पण्डितगण ज्वरको प्रारम्भसे ले कर सप्तरात्रिपर्यन्त तरुण ज्वरमें, द्वादशरात्रि तक मध्यज्वर, द्वादशरात्रिके उपरान्त जीर्णज्वर कहते हैं।

वातजनित ज्वरमें सातवें दिन, पित्तज ज्वरमें दशवें दिन तथा श्लैष्मिकज्वरमें बारहवें दिन औषध प्रयोग करनेकी विधि भावप्रकाशमें लिखी है।

ममतावस्थापन्न रोगीको सात दिनमें औषध देवें, सात दिनके भीतर भी यदि निरामके लक्षण दीखें, तो शमन औषधके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए। शार्ङ्गधरका कहना है कि वातज्वरमें गुलञ्च, पिप्पलीमूल और सोंठ उबाल कर बनाया हुआ पाचन अथवा इन्द्रयवक्षत पाचनका सात दिनमें प्रयोग करें। पाचन और औषध सेवनके समयके विषयमें सबका एक मत नहीं है।

रोगीका उम्र, बल अग्निदोष, देश और कालके अनुसार विवेचना करके चिकित्सकको रोगीको चिकित्सा करनी चाहिये।

आमज्वरमें दोषापहारक औषध नहीं देनी चाहिए। उपद्रवहीन आमज्वरमें पाचन देना विधेय है। सोंठ, देवदारु, रोहिष (न हो तो समको जड़) हल्दी और कण्टकारी द्वारा क्वाथ बना कर साधारणतः सब ज्वरोंमें उसका प्रयोग किया जा सकता है। श्वेतपुनर्णवा, रक्तपुनर्णवा बेलमूलकी छाल, दूध और जल एकत्र पाक करके दुग्धावशिष्ट रह जाने पर उतार कर उसका सेवन करनेसे सब तरहका ज्वर आरोग्य हो जाता है। शेषोक्त औषधको संशमनीय कषाय कहते हैं।

कृश और अल्प दोषसम्पन्न व्यक्तिको शमन औषध द्वारा चिकित्सा करें। आरग्वधादि पाचन वातज, पित्तज और कफज तीनों प्रकारके ज्वरके लिये हितकर है।

जिस व्यक्तिने जलपान वा आहार किया है, उसके लिये तथा क्षीण शरीर, उपोषित अजीर्ण रोगाक्रान्त और पिपासातुरके लिए संशोधन और संशमन औषध अप्रशस्त है। निम्बादिचूर्ण, हरितक्यादिगुटी, लाक्षादि और महालाक्षादि तैल ये सब तरहके ज्वरको नष्ट करते हैं।

छटकमञ्जरीरस सेवन करनेसे अति उग्रतर सद्योज्वर भी एक दिनमें आरोग्य होता है। पित्ताधिक्य ज्वरसे पीड़ित व्यक्तिको यह औषध दी जाय तो उसके मस्तक पर जल देते रहना चाहिये। अदरकके रसमें तीन दिन ज्वरधूमकेतु सेवन करनेसे नवज्वर; तथा दो रत्ती बराबर महाज्वरांकुश बिजौरानीबूके बीज और अदरकके रसमें सेवन करनेसे सब तरहका ज्वर नष्ट हो जाता है। ज्वरघ्नीवटिका, नवज्वरहरवटी आदि औषधियां नवज्वरनाशक हैं। श्वासकुठाररस सर्वप्रकार ज्वरघ्न है। हुताशनरस और रविसुन्दररसके सेवन करनेसे सब तरहका बुखार जाता रहता है। विशेष विवेचनापूर्वक रसपर्पटीका प्रयोग किया जा सके तो बहुत कुछ फायदा पहुंच सकता है।

चरकसंहितामें लिखा है कि, रसदोष और मलका पाक हो कर क्षुधा उद्रिक्त होने पर रोगीको अन्न देना चाहिये।

रोगीको लघु आहार देना चाहिये। भूना हुआ जीरा सैन्धवके साथ पीस कर उससे जीभ, दांत और मुंहका बीचका हिस्सा माज कर कवल ग्रहण करनेसे रोगीके मुखका मल, दुर्गन्ध और विरसता नष्ट होती तथा मनमें प्रसन्नता और आहारमें रुचि होती है।

कल्पतरुरस और त्रिपुरभैरवरसका अदरकके रसके साथ सेवन करनेसे वात और कफजन्य ज्वर नष्ट हो

और जराजीर्ण ऐसे व्यक्तिको उपवास नहीं कराना चाहिये। इनको साम ज्वरमें पाचन और निराम ज्वरमें शमन औषध देनी चाहिये तथा अरुणदत्तादिका पथ्य देना चाहिये।

तादिचूर्ण आदिके सेवन करनेसे दुष्टजलजन्य (नाना देशोंके जलसे उत्पन्न) ज्वर प्रशान्त होता है।

जिस ज्वरमें रोगी सबल हो, दोषोंकी अल्पता हो और न अन्य किसी तरहका उपद्रव हो, वह ज्वर साध्य है।

ज्वरके उपद्रव १० हैं—श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, पिपासा, अतीसार, मलरुद्धता, हिचकी, काश और दाह।

व्याधि प्रशमित होने पर उपद्रव स्वत: हो विलुप्त हो जाते हैं, किन्तु उपद्रवोंमेंसे कोई अगर ऐसा मालूम पड़े कि जिससे शीघ्र ही जीवन नष्ट होनेकी सम्भावना हो, तो सबसे पहले उसीकी चिकित्सा करनी चाहिये।

बृहती कण्टकारी, दुरालभा, ज्योत्स्नी, काकडासींगी, पद्मकाष्ठ, पुष्करमूल, कटकी, शटीका शाक और शैलमस्सोके बीज इनके क्वाथके सेवन करनेसे श्वास नष्ट होता है।

कञ्जिका, नीम, मोथा खस, गुलञ्च, चिरायता, वासक, अतिविषा, बला, उदुम्बर, कटकी, वच, त्रिकटु, शोणाकी छाल, कुटज-छाल, रास्ना, दुरालभा, परवलकी पत्ती, शठी, गोजिह्वा (पाथरी) ग्वाल ककड़ी, निसोथ, ब्राह्मीशाक, पुष्करमूल, कण्टकारी, हलदी, दारुहल्दी, आंवला, बहेड़ा और देवदारु इनका काढ़ा सेवन करनेसे श्वास, काश, हिचकी आदि रोग जाते रहते हैं।

पीपल, जायफल और काकडासींगी इनका चूर्ण मधुके साथ चाटनेसे अति उग्रतर श्वासरोगसे छुटकारा होता है। एक कटारीकी लकड़ीको आगमें गरम कर पञ्जरदेश दग्ध करनेसे श्वास निश्चयसे विलुप्त होता है।

अदरकके रसके द्वारा नस्य लेनेसे और लघु सैन्धव, मनसिल और मिर्च एकत्र पीस कर अञ्जन प्रयोग करनेसे मूर्च्छा निवृत्त होती है। आँखों पर ठण्ढ पानीके छींटे डालनेसे, सुगन्धित धूप देने और सुगन्धित पुष्पोंके सूंघनेसे कोमल ताड़पत्रसे वायुसेवन करने तथा कोमल कदलीपत्र छुआनेसे भी मूर्च्छा प्रशमित होती है।

अदरकका रस, अम्लरस और सैन्धव इनको एकत्र करके कवल करनेसे अरुचि नष्ट होती है। गुलञ्चका क्वाथ ठण्ढा करके मधु डाल कर पीनेसे अथवा काला नमक और स्वर्णमाक्षिक, रक्तचन्दन अथवा चीनीके साथ चाटनेसे वमन निश्चयसे प्रशान्त होता है।

जम्बीरी नीबू, बिजौरा नीबू, दाड़िम, बेर और पालङ्क इन सब चीजोंको मिला कर मुख पर लेपन करनेसे पिपासा और मुंहके भीतरके छाले नष्ट हो जाते हैं। मधुसंयुक्त शीतल दुग्ध कण्ठ तक पी कर उसी समय वमन करनेसे अथवा मधु-वटकी बरोह और खीलें मिला कर मुंहमें रखनेसे प्यास मिट जाती है।

बलवान् व्यक्तियोंको अतीसार होने पर उपवास कराना चाहिये। गुलञ्च, कूटज छाल, मोथा, चिरायता नीम, अतिविषा और सोंठ इनके सेवनसे अतीसार नष्ट होता है। सोंठ, गुलेचीन, कूटज और मोथा इनका क्वाथ बना कर सेवन करनेसे फायदा पहुंचता है। अकवन, गुलेचीन, क्षेत्रपर्पटी, मोथा, सोंठ, चिरायता और इन्द्रजव इनका क्वाथ सब तरहके अतीसारका नाशक है। हर्रे, अमलतास, कटकी, निसोथ और आंवलेका काढ़ा पीनेसे मलरुद्धताका नाश होता है।

सेंधा नमकको बहुत बारीक पीस कर जलके साथ नस्य लेनेसे हिचकी नष्ट होती है। पिसी हुई सोंठमें चीनी मिला कर नस्य लेनेसे अथवा हिङ्गुकी धूप देनेसे भी हिचकी जाती रहती है।

पीपल, पीपलमूल, बहेड़ा, क्षेत्रपर्पटी और सोंठ इनका चूर्ण मधुके साथ चाटनेसे अथवा वासक-पत्रका रस मधुके साथ सेवन करनेसे काश निवारित होता है। पुष्करमूल (नहीं हो तो कुठ), त्रिकटु, काकडासींगी, कायफल, दुरालभा और काला जीरा इनका चूर्ण बना कर मधुके साथ चाटनेसे काश प्रशान्त होता है।

दाहनिवारक प्रक्रिया पहिले ही लिखी जा चुकी है।

बहिर्वेगज्वर तथा प्राकृतज्वर (अर्थात् वर्षा शरत् और वसन्त ऋतुमें यथाक्रमसे वातज, पित्तज और कफ ज्वर होनेसे) सुखसाध्य है। प्राकृतज्वर विपरीत होने पर उसको वैकृत ज्वर कहते हैं।

वैकृत ज्वर कष्टसाध्य है। वातज्वर प्राकृत होने पर भी कष्टसाध्य होता है। अन्तर्वेगज्वर भी कष्टसाध्य है।

क्षीण और शोथाक्रान्त व्यक्तिका ज्वर तथा गम्भीर और दैर्घरात्रिक ज्वर असाध्य है। जिस बलवान् ज्वरके

द्वारा रोगीके मस्तकमें सहसा सोमलवत् मालूम होने लगता है वह ज्वर असाध्य है।

जिस ज्वरमें रोगीको आभ्यन्तरिक दाह, पिपासा कास, श्वास और अत्यन्त अस्वस्थता उत्पन्न होती है, उसको गम्भीर ज्वर कहते हैं।

ज्वरके पहले बीचमें अथवा अन्तमें वर्षभूममें शोथ होनेसे ज्वर यथाक्रमसे असाध्य, कष्टसाध्य और सुख-साध्य हुआ करता है।

जो ज्वर बहुत कारणोंसे उत्पन्न और बलवान् तथा बहु उपद्रवाक्रान्त होता है, वह ज्वर रोगीका जीवन नष्ट करता है। जिस ज्वरकी उत्पत्ति मात्रसे ही रोगी को चक्षु आदि इन्द्रियोंकी शक्तियां नष्ट हो जाती हैं, वह ज्वर असाध्य होता है।

जो व्यक्ति ज्वरमें हतप्राण और विगतवर्णयुक्त होता है, उत्थानशक्ति न रहनेके कारण पतितकी भांति शय्या पर सोता रहता है तथा अभ्यन्तरमें दाह और बाह्य शीत द्वारा पीड़ित होता है, उसकी मृत्यु होती है।

जिस ज्वरमें रोगीका शरीर रोमाञ्चित चक्षु रक्तवर्ण, हृदयमें कठिन वेदना और मुखसे श्वास निकलता है उसके बचनेकी आशा नहीं रहती है। जिस ज्वरमें रोगी को हिचकी, श्वास पिपासा, मूर्च्छा चक्षुका विभ्रम और व्याकुलता होती है तथा सर्वदा श्वास निकलता रहता है, वह ज्वर रोगीका प्राणनाश करता है। जिस ज्वरमें रोगी को प्रभा और इन्द्रियशक्तिकी हीनता, शरीरमें क्षीणता और अरुचि हो जाती है वह ज्वर यदि अति दुःसह नहीं हो तो भी वह रोगी मर जाता है। अजीर्णातुमान ज्वरमें शिरकी भ्रान्तता और अत्यन्त दुःखदायक होता है। यह प्राणनाशक है।

जिस व्यक्तिको प्रथम उत्पत्तिकालसे ही विषमज्वर अथवा दीर्घरात्रिक ज्वर होता है उसका सुधार असाध्य है। क्षीणकाय और रुग्ण व्यक्ति गम्भीर ज्वरसे पीड़ित होनेसे उसका प्राणवियोग होता है।

जो ज्वर प्रलाप, भ्रम श्वासयुक्त तथा तीक्ष्ण होता है वह ज्वर सातवें दसवें वा बारहवें दिन रोगीका प्राणनाश करता है।

यूरोप और अमेरिकामें चिकित्सासम्बन्धी एलोपाथि, होमियोपाथि आदि भिन्न भिन्न मत प्रचलित हैं। एलो-पाथिक मतमें ज्वरके निदान और चिकित्साका वर्णन निम्नलिखित प्रकार है—

ज्वर जिसको कहते हैं उसका स्थिर निश्चय अभी तक यूरोपियोंमें नहीं हुआ है। श्रीमद्ग्रीय विद्वान् गेलनने शारीरिक उत्ताप वृद्धिको "ज्वर" कहा है। जर्मनदेशके प्रसिद्ध डाक्टर भिरकोने (Vircho) कहा है कि स्नायु मण्डलीकी क्रियाविधिमें विप्लव होनेसे शरीरकी झिल्लियां (Tissues) क्षय हो जाती हैं और उससे शारीरिक उत्ताप-वृद्धि होती है, किन्तु बहुतसे पूर्वोक्त दोनों बात ठीक नहीं मानते। कोई कोई कहते हैं कि, शारीरिक रक्त विषाक्त होने पर शरीरकी अवस्था परिवर्तन होती है और उससे ज्वर उत्पन्न होता है। किन्तु आधुनिक चिकित्सकोंमेंसे अधिकांश चिकित्सकोंका कहना है कि, शारीरिक झिल्लियोंके नष्ट हो जानेके कारण दैहिक उत्तापकी वृद्धि होती है और उसीसे ज्वरकी उत्पत्ति होती है। अधिकन्तु शारीरिक सन्तापकी वृद्धिको ही ज्वरोत्पत्तिका लक्षण माना जा सकता है। ज्वर होनेसे शारीरिक सन्ताप बढ़नेके सिवा श्वास और नाड़ीके वेगकी भी वृद्धि होती है तथा स्नेटनिगंम और मूत्रादि रुक जाता है।

अधुना मानवशरीरमें जितने प्रकारकी पीड़ायें होती हैं उनमेंसे ज्वर रोगकी संख्या ही अधिक है। और नानाविध ज्वरयुक्त रोगीकी संख्या समष्टिमें अधिकांश लोग मलेरिया-ज्वरसे पीड़ित हैं। मलेरिया क्या चीज है इसका अभी तक कोई भी कुछ निर्णय नहीं कर पाये हैं। मलेरियाकी उत्पत्तिके विषयमें अनेक मतभेद पाया जाता है, उनमेंसे कुछ मत नीचे लिखे जाते हैं।

१। इटलीके निवासी प्रसिद्ध चिकित्सक लेनसिसि (Lancisi) कहते हैं कि उद्भिज्जादि सड़ कर मले-रिया उत्पन्न होता है।

२। डाक्टर कटक्लिफ (Cutcliff) ने निर्णय किया है कि समतलभूमि निम्नभूमि उपत्यका आदि स्थानोंकी निकटस्थ आर्द्रता यदि कपरको अधिक सड़ कर पृथिवीके

उपरिभागमें पूर्णतया आगसे इस को रोके, तो उससे मले रिया उत्पन्न होता है।

३। डा० स्मिथ (Dr Smith) कहते हैं कि मिट्टी जितनी आर्द्र होगी तथा आर्द्रता जितनी ऊपरको चढ़ेगी मलेरिया-विषका उतना ही आधिक्य होगा।

४। डा० ओल्डहम (Oldham)-का कहना है कि, शीतलताका सहसा आविर्भाव ही मलेरियाका प्रधान कारण है। जिस जगह सहसा उत्तापका ह्रास होगा, वहां निश्चयसे मलेरिया उत्पन्न होगा।

५। डा० मूर (Dr Moor) ने स्थिर किया है कि उद्भिद्विगलित जल पीनेसे मलेरिया जनित पीड़ा उत्पन्न होती है।

"मलेरिया" एक इटलीका शब्द है, जिसका अर्थ है दूषित वायु। निम्नलिखित उपायोंका अवलम्बन करनेसे इस विषके हाथसे कुछ छुटकारा मिल सकता है।

(क) रहनेके मकानके चारों तरफको मोरियां साफ रखना और जिससे तालावका पानी पत्तों आदिके सड़ते रहनेसे बिगड़ न जाय, उसका खयाल रखना चाहिये।

(ख) अग्नि और धुंएंके जरिये मलेरियाका जहर नष्ट होता है।

(ग) मकानके चारों ओर पेड़ रहनेसे उससे दूषित वायु परिशुद्ध होती है।

(घ) दिनकी अपेक्षा रातको मलेरियाका विष वायुके साथ ज्यादा मिलता है इस कारण रातको जहां तक बने कपड़ेसे नाक बन्द करके घरसे बाहर जाना चाहिये। शरद्‌ऋतुमें तीक्ष्ण धूप और हेमन्तके दुष्ट शिशिर ज्वररोगीके लिए सर्वतोभावसे परित्यज्य है।

(ङ) सुबह कहीं जाना हो तो मुंह धोनेके उपरान्त कुछ खा कर जाना चाहिये।

(च) हमारे देशमें विशेषतः बङ्गालमें वर्षाके बादसे ले कर आवि अगहन तक इस रोगका अत्यन्त अधिक प्रादुर्भाव होता है। उक्त समयमें सबको सावधानीसे रहना चाहिये तथा चिरपर्पटी, गुलञ्च आदि तिक्त पदार्थोंकी औषधकी भांति व्यवहार करना उचित है। छिलमोचिका, परवलकी पत्ती आदि तरकारीके साथ खानेसे विशेष उपकार होता है।

मलेरियासे उत्पन्न ज्वर साधारणतः दो भागोंमें विभक्त है—१ सविराम ज्वर (Intermittent fever) और २ स्वल्पविराम ज्वर (Remittent fever)

सविराम ज्वर—इसको पर्याय-ज्वर कहा जा सकता है। यह ज्वर सम्पूर्णतः विरत होता है; ज्वरकी विरामावस्थामें रोगी अपनेको सुस्थ समझता है। इस ज्वरका कारण दो प्रकारका है—एक पूर्ववर्ती और दूसरा उद्दीपक।

(क) अतिरिक्त परिश्रम, रात्रिजागरण, अधिक सुरापान, अत्यन्त स्त्रीसंसर्ग इत्यादि; (ख) रक्तकी अविशुद्धावस्था, (ग) अस्वाभाविकरूपसे शारीरिक उत्तापका ह्रास। ये ही इस पीड़ाके पूर्ववर्ती कारण हैं।

दुर्भिक्ष, अधिक अङ्गार (Carbon) वा अण्डलाल (Albumen) मिश्रित खाद्यादि भक्षण उद्भिज्जादि विगलित जलका पीना, उत्तर पूर्व दिशाकी वायुका सेवन आदि इस ज्वरके उद्दीपक कारण हैं।

लक्षण—इस ज्वरकी तीन अवस्थाएं होती हैं, जैसे-शैत्यावस्था, उत्तापावस्था और घर्मावस्था। प्रथमतः पुनः पुनः जंभाई आ कर जाड़ा मालूम पड़ता है, पीछे त्वक् आकुञ्चित हो कर कम्प उपस्थित होता है। इस समय मस्तकमें वेदना, विवमिषा वा वमन होता रहता है तथा धमनीके आकुञ्चनके कारण नाड़ी वेगवती और सूत्रवत् क्षीण हो जाती है। यह अवस्था आध घण्टेसे तीन घण्टे तक रह कर द्वितीयावस्थामें उपनीत होती है। उस समय शारीरिक शीतलता विदूरित हो कर शरीरका चमड़ा उत्तप्त, शुष्क और उष्ण मालूम पड़ने लगता है। नाड़ी स्थूल और पूर्णवेगवती हो जाती है। मस्तककी पीड़ा बढ़ कर आंखोंको लाल कर देती है और अत्यन्त पिपासा लगती तथा पेशाब थोड़ा होता है। तृतीयावस्थाके प्रारम्भ होनेसे पहले ज्वर मग्न हो जाता है, चक्षुपदादि उष्ण और उन स्थानोंमें ज्वाला उत्पन्न होती है तथा श्वास-प्रश्वास शीघ्र शीघ्र होने लगता है। इस तरह क्रमशः रोगीका शरीर स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त होता है। रोगी यदि पहलेसे ही दुर्बल हो अथवा प्राचीन हो, तो कभी कभी ज्वरके समय वेहोश हो जाता है। प्रलाप, उदरस्फीति आदि अवसादके लक्षण

भी उपस्थित होते हैं। किन्तु बुखार छूटने पर रोगी अपनेको स्वस्थ समझता है। इस पीड़ाको कुछ दिन भोगते रहनेमें प्लीहा और यकृत्‌का प्रदाह और कभी कभी बुखारके समय उदरामय होता है।

प्रकार भेद—सविराम ज्वर साधारणतः तीन प्रकार का होता है जैसे—कोटिडियान (Quotidian) टर्शियान (Tertian) और कोयार्टन (Quartan) जो ज्वर प्रतिदिन निर्दिष्ट समय पर आता है उसको ऐकाहिक (Quotidian) जो दो दिन अन्तर अर्थात् तीसरे दिन निर्दिष्ट समय पर आता है उसको तृतीयक (Tertian) और जो ज्वर तीन दिन अन्तर अर्थात् चौथे दिन निर्धारित समय पर आवे, उसको चातुर्थक (Quartan) ज्वर कहते हैं। प्रायः देखा जाता है कि उक्त तीन प्रकारके सविराम ज्वरोंमें ऐकाहिक ज्वर सबको तृतीयक टोपहरको और चातुर्थक शामको आता है। परन्तु नाना कारणोंसे इस नियमका कुछ व्यतिक्रम भी हो जाता है। ज्वर नियमित समयके बाद आवे तो उसका आरोग्यका लक्षण समझना चाहिये। कभी कभी दो पर्यायें एक दिनमें देखी जाती हैं। सवेरको ज्वर आरम्भ हो कर शामको मग्न होता है तथा फिर शामके बाद आरम्भ हो कर रात्रिमें मग्न होता है। इस प्रकारके ज्वरको डबल कोटिडियन कहते हैं। इसी तरह डबल टार्शियन और डबल कोयार्टन ज्वर भी देखनेमें आता है।

सविरामज्वरमें कभी कभी स्वल्पविरामज्वरका भ्रम हो सकता है। किन्तु तापमानयन्त्र व्यवहार करनेसे सविराम ज्वरका सहजमें निश्चय किया जा सकता है इस ज्वरका सम्पूर्ण विराम होता है, किन्तु स्वल्पविराम ज्वरमें ऐसा नहीं होता। शारीरिक तापकी सहसा वृद्धि वा ह्रास होना ही इसका विशेष लक्षण है। सविराम ज्वरमें निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं—

१। इस ज्वरमें क्रमसे शैत्यावस्था उत्तापावस्था और घर्मावस्था समभावसे उपस्थित होती हैं।

२। शैत्यावस्थामें रोगीको अत्यन्त शीत मालूम पड़ता है तथा काँप कर ज्वर आता है।

३। ऐकाहिकज्वर एक निर्दिष्ट समयमें आता और निर्दिष्ट समय पर मग्न होता है। ज्वर छूटने पर रोगी अपनेको सम्पूर्ण स्वस्थ समझता है।

४। इस ज्वरमें कभी कभी शारीरिक ताप इतना बढ़ जाता है कि, तापमानयन्त्रका पारा १०५से १०८° तक चढ़ जाता है, किन्तु इस तापका सम्पूर्ण ह्रास हो जाता है और रोगीको फिर आराम मालूम देता है।

स्वल्पविराम ज्वरके लक्षण नीचे लिखे जाते हैं—

१। इस ज्वरमें सविरामज्वरकी तीन अवस्थाएं क्रमसे और समभावसे कभी प्रकट नहीं होतीं।

२। शैत्यावस्थामें अति सामान्यरूप प्रकट होता है, कभी बिल्कुल ही प्रकट नहीं होता। शीत वा कम्प कभी नहीं होता।

३। शारीरिक उत्ताप ज्यादा देर तक रहता है सहसा नहीं बढ़ता। घर्मावस्था बिल्कुल देखनेमें नहीं आती।

४। इस ज्वरमें जितने भी लक्षण प्रकट होते हैं, समय समय पर उनका कुछ ह्रास हुआ करता है। ज्वरको सम्पूर्ण विच्छेदावस्था कभी नहीं होती।

चिकित्सा—१। यदि दूषित जलवायुके कारण ज्वर हो तो उनके संशोधनमें यत्नवान् होना चाहिये।

२। यदि किसी स्थानमें प्रदाह हो अथवा होनेकी सम्भावना हो तो उसका प्रतीकार करना विधेय है।

३। क्रिमियों (Ti ...)के ध्वंस होनेके कारण यदि वस्तु निकटवर्ती जान पड़े तो उत्तेजक औषध और बल कारक पथ्य देना आवश्यक है।

४। ज्वर उतर जानेके उपरान्त शारीरिक बल बढ़ानेके लिए कुछ दिन तक बलकारक औषध (Tonic) व्यवहार करना चाहिये।

सविराम ज्वरकी तीन अवस्थाओंकी पृथक् पृथक् चिकित्सा करनी चाहिये।

१म—शीतावस्था। जिससे शरीर शीघ्र उष्ण हो, उसकी व्यवस्था करनी चाहिए। सामान्य शीतावस्थामें रोगीको रजाई, कम्बल आदि ओढ़ा देनी चाहिये और पीनेके लिए गरम पानी गरम चाय, गरम कहवा या अंगूर मिले हुए पानीके साथ ब्रांडी देनी चाहिए। किन्तु शीतावस्था अधिक समय तक रहनेसे रोगी

अवसन्न और बेहोश हो कर क्रमशः मुमुर्षु हो सकता है, ऐसी दशामें रोगीके दोनों बगल गरम पानीसे भरी हुई दो बोतलें रख कर हाथ पैरों और वक्षःस्थलमें स्वेद देनेको व्यवस्था करनी चाहिये। पैरोंकी पिण्डलीमें और हाथों पर दो दो राई सरसोंका पलस्ता देवें तथा निम्नलिखित मिश्र (मिक्चर) सेवन करावें।

टिंचर मस्क	...	१५ बूंद।
टिंचर सिनकोना कम	.	३० "
भा० गालिसाइ	...	३० "
स्पिरिट क्लोरोफर्म	...	१५ "

कपूरका पानी मिला कर सब समेत १ औन्सकी खुराक होनी चाहिये।

रोगीको अवस्थाकी उन्नतिके अनुसार प्रत्येक खुराक १ घण्टेसे २ घण्टे अन्तर देनी चाहिए। यदि रोगीके हाथ पैरोंमें पटकन पड़े तो उक्त स्थान पर अच्छी तरह सोंठके चूर्णसे मालिश करावें और निम्नलिखित औषध मर्दनार्थ देवें।

क्लोरोफर्म	.. .	२ ड्राम।
लि० सेप् निम्	.. ...	४ "

मर्दनके लिए एकत्र मिला लेनी चाहिए। बुखार आने पर कोई कोई रोगी बेहोश हो जाते हैं तथा उसको बड़ी अस्थिरता हो जाती है। उस समय रोगीके मुंह और आंखों पर ठण्डा पानी सींचना चाहिये तथा मस्तक पर ठण्डे पानीकी पट्टी रखते रहना चाहिए। रोगीको होश आने पर और निगलनेकी शक्ति पुनः होने पर निम्नलिखित मिश्र (मिक्चर) दो घण्टे अन्तर पिलाना चाहिये।

पटाश ब्रोमाइड	...	१० ग्रेन।
टिं बेलेडोना	...	५ बूंद।

एकोया एनिसि मिला कर ४ ड्रामकी खुराक देनी चाहिये।

बालकोंके लिए—

टिंचर बेलेडोना	.. ...	३ बूंद।
पटाश ब्रोमाइड	... ...	१ ग्रेन।
मस्क कोनाइ	.. ...	२ बूंद।
सौंफका पानी	... ..	१ ड्राम।

एकत्र मिला कर एक मात्रा देनी चाहिये। उम्रके अनुसार खुराक देनी चाहिये। कँपकंपी शुरू होने पर रोगीको १५।२० बूंद लडेनम (टिं ओपियाई) पिलानेसे कँपकँपी दूर हो जाती है तथा ज्वर स्नाम और कष्ट निवारित हो जाता है। बच्चोंके लिए निम्नलिखित दवा सिकटगड पर मलनेसे उसी समय कंपकंपी और बुखार घट जाती है।

लि० सेपनिस	...	४ ड्राम।
टिंचर ओपियाई	..	" "

मर्दनार्थ एकत्र मिश्रित किया जाता है।

२य—उत्तापावस्था। ऐसी अवस्था अधिक समय तक रहनेसे यदि रोगीको अत्यन्त कष्ट हो, अथवा किसी यन्त्रमें रक्त जम जानेकी सम्भावना हो तो औषधका प्रयोग करना आवश्यक है, अन्यथा नहीं। पिपासा होने पर स्निग्ध पानीय देना चाहिये। लेमनेड भी पियाया जा सकता है*। यदि अत्यन्त गात्रदाह उपस्थित हो अथवा शरीर अत्यन्त उष्ण रहे, तो ईषदुष्ण जलमें जरासा सिनिगार (सिर्का) मिला लें तथा उसमें अंगोछा भिगो कर रोगीको देह अच्छी तरह पोंछ कर गरम कपड़ेसे शरीर ढक दें। किन्तु दुर्बल व्यक्तिके लिए यह विधेय नहीं है।

यदि रोगी मस्तकको वेदनासे अत्यन्त कातर हो और आंखें उसकी लाल हों, तो मस्तक पर शीतल जलकी पट्टी रखनी चाहिये। इससे यदि उक्त लक्षणद्वय निवारित न हों, तो पूर्वकथित पटाश् ब्रोमाइड और बेले-

* निम्नलिखित रीतिसे लेमनेड बनाना चाहिये—

कच्चे नारियलका पानी अथवा गुलाबजल		२ औन्स।
क्रिष्टाल सुगर	... ...	२ ड्राम।
सोडा बाइकार्ब	..	२ स्कु।
अयेल लेमनिस	. ..	१ बूंद।

इन चीजोंको एक पथरी वा मिट्टीके बर्तनमें घोल लेना चाहिये।

इसी तरह एक दूसरे पात्रमें २० ग्रेन टार्टारिक एसिड घोल लें, यदि न हो तो पाती या कागजी नीबूका रस थोड़ा ले लें। पीछे दोनों पात्रोंको रोगीके सामने ला कर दोनों पात्रोंकी दवा मिला कर रोगीको पिलानी चाहिये।

दिन सेवन किया जा सकता है। डा० मार्गानियरी कहते हैं—देशीय नीबूका क्वाथ (Decoction of Lemon) कुनैनकी भाँति ज्वरघ्न है। यदि ज्वर आनेका ४ घंटे पहलेसे ही इसका सेवन कराया जाय, तो ज्वर नहीं आ सकता। जिस मलेरियाग्रस्त रोगीको कुनैनके खानेसे कुछ फायदा नहीं पहुंचा, उसको इसके सेवन करनेसे लाभ हुआ है। बुखार आनेके एक या आध घंटे पहले १५।२० अथवा ३० ग्रेन रिजर्सिन (Resorcin) खानेसे फिर ज्वर नहीं आ सकता। सविरामज्वरमें साधारणतः कुनैनकी व्यवस्था की जाती है। कुनैनकी गोलीका सेवन करना हो तो उसके साथ साइट्रिक एसिड, एक्सट्राक्ट कान्स्वा, चिरायता, टरेक्सिकम कन्फेकसन् आफ रोज और अरवी गोंद इनमेंसे किसी भी एक औषधका २।१ ग्रेन मिला लेनेसे काम चल सकता है।

ज्वरकी विकृतावस्थामें चिकित्सा—ज्वर विच्छेदमें रोगीका अङ्ग ठण्डा होने लगे, तो घर्मनिवारणार्थ जो ब्राण्डी और मृगनाभि मिश्रित औषध व्यवहृत होती है, उसके साथ ५।८ ग्रेन कुनैन डाइलिउट और सालफिउरिक एसिड मिला कर सेवन करावें। इस अवस्थामें पुनः ज्वर चढ़ने पर रोगीके जीनेकी आशा नहीं की जा सकती। ऐसी दशामें पथ्यके लिए मांसका क्वाथ, दूध, वेदाना, सावू, वार्ली इत्यादि व्यवस्थेय है। यदि ज्वरविच्छेदमें पाकाशयकी उत्तेजनासे कुनैन वा भुक्त सामग्रीका वमन हो जाय, तो इस उत्तेजनाको प्रशमित करनेके लिए लेमनेड, कच्चे नारियलका पानी, वरफ इत्यादिकी व्यवस्था करें। इससे भी यदि वमन निवारित न हो, तो नाभिके ऊपर वक्षस्थलसे नीचे एक राईका पलस्ता देवें और नीचेके मिक्श्चरका सेवन करावें।

विसमथ साइट्राम	...	७ ग्रेन।
एसिड हाइड्रोसियनिक डिल	..	२ बूंद।
स्प्रीट क्लोरोफर्म	..	१० ,,
सीराप लेमन	...	१ ड्राम।
गुलाब जल	...	१ "

टपकाया हुआ (Distilled) पानी मिला कर सब समेत ४ ड्रामकी एक खुराक बनावें। इस प्रकार एक एक खुराक वमनके आतिशय्यानुसार १, २ या ३ घंटे अन्तर देनी चाहिये। इसके बाद साइट्रिक एसिडमें दो ग्रेन कुनैन मिला कर गोलियां बनावें और वह रोगीको सेवन करावें। यदि इससे भी औषध उठे, तो मलद्वारमें कुनैनको श्वेतसारमें मिला कर पिचकारी देनी चाहिये। अथवा त्वक् भेद कर 'हाइपोडार्मिक सिरिञ्ज' द्वारा निउटाल कुनैन शरीरके भीतर प्रविष्ट कराना चाहिये।

ज्वररोगीके मस्तिष्कविषयक दो प्रकारके लक्षण देखनेमें आते हैं। बहुत समय देखा जाता है कि, रोगी मृदु प्रलाप बक रहा है, उसकी आंखें मुदी जा रही हैं, नाड़ी द्रुतगामिनी तथा हाथ और जीभ स्पन्दित हो रही है। ऐसी हालतमें समझना चाहिये कि, रोगीका स्नायुमण्डल दुर्बल हो गया है। मस्तिष्कावरणमें प्रदाह होने पर रोगी ऊँचे स्वरसे प्रलाप बकता है, उसकी आंखें घोर लाल तथा नाड़ी भरी हुई और वेगवती है, तथा हाथ और जीभ उग्रकार्य करनेका भाव धारण करती है। मस्तिष्कावरणके प्रदाहमें कभी कभी ऐसा भी होता है कि, स्वाभाविक दुर्बल रोगीको भी ३।४ आदमी नहीं थाम सकते हैं। मस्तिष्कावरणमें रक्ताधिक्य होनेसे ही द्वितीय प्रकारके लक्षण प्रकट होते हैं।

प्रथम प्रकारके लक्षणोंके प्रकाशित होने पर चैतन्यसम्पादनके लिए पहले जिस गालिसाइ और कुनैनका मिक्श्चरको व्यवस्था की गई है, उसीका सेवन करावें तथा दूध, मांसका क्वाथ इत्यादि पथ्यकी व्यवस्था करें। पहले जिस ब्रोमाइड पटास संयुक्त औषधका विषय लिखा गया है, द्वितीय प्रकारका लक्षण प्रकट होने पर उसका सेवन कराना चाहिये, मस्तक मुण्डन करके शीतल जलकी पट्टी और लघु पथ्यकी व्यवस्था करनी चाहिये। इससे यदि विशेष फल न हो तो मस्तक पर राई (सरसों)-का पलस्तर देवें।

सविराम ज्वरमें, शैत्यावस्थामें रक्तसञ्चयके कारण प्लीहा और यकृत्की विवृद्धि और परिवर्तन होता है। मलेरिया ही यकृत्-विवृद्धिका मूल कारण है। प्लीहा और यकृत्से पीड़ित रोगी अत्यन्त कष्ट पाता और शीर्ण होता रहता है। प्लीहा और यकृत् शब्द देखो। सविराम ज्वरमें बहुत समय यकृत्की विशृङ्खलाके कारण पाण्डु, कामला (Jaundice) रोग उत्पन्न होता है। यकृत्के उपादानका ध्वंस

या ज्ञाम, अत्यन्त मानसिक चिन्ता आदि कारणोंसे यह रोग होता है। अतः सब देखना चाहिये।

जिन अविरामज्वराक्रान्त व्यक्तियोंको कासरोग है उनको चिकित्सा करनी हो तो उनके वक्षस्थल पर तारपीन तिसीका मोट देना चाहिये।

पुरातन ज्वर (Chronic fever)—इस ज्वरमें समय समय पर प्लीहा और यकृत् दोनों बढ़ती हैं रोगीका रक्त क्रमशः अपकृष्ट हो जाता है—पुनः पुनः ज्वर भोगनेके कारण रक्त कणिकाका ह्रास और श्वेतकणिकाकी वृद्धि होती। रोगीकी आँखें, ओठ, मसूड़े और अङ्गुलियोंके शेष भाग रक्तहीन हो कर सफेद पड़ जाते हैं। सिरो वेदना, श्वासकष्ट, नाड़ीकी द्रुतगति, अजीर्णता वमन, अनिद्रा, अरुचि, शोथ और रक्तातीसार, कास, हाथपैरोंमें सूजन उन्नी, मुख, दन्त और नासिकासे रक्तस्राव इत्यादि उपसर्ग उपस्थित होते हैं। यह व्याधि जटिल उपसर्गविशिष्ट हो कर क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होने पर दुश्चिकित्स्य हो जाती है।

चिकित्सा—रोगी यदि ज्वर भोगता हो तो निम्नलिखित मिक्श्चर विराम अथवा ह्रासावस्थामें रोज तीनबार पिलाना चाहिये। ज्वर बंद होने पर इस मिक्श्चरमें एक ग्रेन कुनैन और डाल देनी चाहिये।

कुनैन ...	३½ ग्रेन।
डा० नाइट्रिक एसिड	१ बूंद।
पटाश ब्रोमाइड ...	३ ग्रेन।
मा० नवरस	½ ड्राम।
टिंचर नक्सभमिका	१ बूंद।
उपकाया हुआ पानी (Distilled water)	३ ड्राम।

एकत्र मिला कर एक मात्रा। यदि रोगीकी देहमें रक्तहीनता दोष पड़े और रोगीको ज्वर हो, तो निम्न औषधकी व्यवस्था करें। रोगीका कोष्ठ परिष्कार न हो तो उस औषधकी प्रति मात्रामें ५ ग्रेन कबाबचीनी मिला दें—

कुनैन	२ ग्रेन।
फेरि सल्फ	½ "
एक्स जेन्सन ...	२ "
जिञ्जर	२ "

एकत्र मिला कर एक मात्रा। इस तरह तीन मात्रा प्रति दिन सेवनीय है। प्लीहा और यकृत्की वृद्धि होनेसे उस पर टिंचर आइओडिन लगावें। यदि नाक, मसूड़े आदि किसी स्थानसे रक्तस्राव होता हो तो १०।१५ बूंद टिंचर पिरिपारक्लोराइड एक औंस पानीमें मिला कर उस जगह लगा देनेसे वह उसी समय बंद हो जायगा।

मुखमें क्षत होने पर निम्नलिखित औषध अथवा कण्डिस फ्लुइड (Condy's fluid) द्वारा धोना चाहिये।

कार्बोलिक एसिड	१ ड्राम।
उपकाया हुआ पानी	१ बोतल।

एकत्र मिला कर व्यवहार करावें। इसका किसी तरह सेवन न किया जाय इस पर पूरा ध्यान रखना चाहिये। ऐसी अवस्थामें अन्य औषधके द्वारा उसका निवारण करना चाहिये। यदि उससे कोई फल न हो, तो बहुत थोड़ा कुनैनका व्यवहार करे।

उदरामय हो तो १५ बूंद टिंचर ष्टील और एक औंस इमल्सिफिउमन बबम्मा एकत्र करके १ मात्रा दिनमें २।३ बार सेवन करावें।

ज्वरके समय साबूदाने बार्लि, आरारोट आदि आहारार्थ देना चाहिये। बुखार छूट जाने पर, सुबह अथवा पुराने चावलका भात, मूंगकी दाल, जल आदि तथा रातको दूध आदि व्यवस्थेय है। उदरामय होनेसे दूध नहीं दिया जाता। रोगीको किसी तरह भी ज्यादा दूध पिलाना उचित नहीं। १०।१२ दिन बाद गरम पानीसे स्नान करावें। अधिक परिश्रम या रात्रि-जागरण इस रोगीके लिए निषिद्ध है।

स्वल्पविराम ज्वर (Remittent fever)—यह ज्वर मलेरियासे उत्पन्न होता है उष्णप्रधान देशोंमें ही इसका अधिक प्रभाव है। अविराम ज्वरकी अपेक्षा यह ज्वर गुरुतर है इसमें सन्देह नहीं। साधारणतः यह दो भागोंमें विभक्त है—सामान्य (Simple) और जटिल (Complicated)। जिस स्वल्पविराम ज्वरमें साधारण लक्षण दीखे, उसको सामान्य और जिसमें आभ्यन्तरिक यन्त्रादिकी स्वाभाविक अवस्थाका परिवर्तन हो कर कठिन पीड़ा होती है उसको जटिल कहते हैं।

साधारणतः मलेरियाको ही इस प्रकारके ज्वरका

कारण बतलाया जाता है, किन्तु समय समय पर शारीरिक और मानसिक दुर्बलताके कारण इस ज्वरको उत्पत्ति हुआ करती है। शरत्कालमें जो इस ज्वरका प्रादुर्भाव देखनेमें आता है। ग्रीष्म और वसन्तऋतुमें यह ज्वर बहुत कम होता है।

लक्षण—इस ज्वरमें जितने लक्षण प्रकाशित होते हैं, उनका वर्णन सविराम ज्वरके प्रकरणमें किया गया है। संक्षेपमें—इस ज्वरमें कभी भी सम्पूर्ण विराम (Remission) नहीं होता, अति अल्पमात्रसे कभी कभी इसका विराम होता है। साधारणतः स्वल्पविराम ज्वरका रेमिशन (विराम) प्रातःकालमें हो कर कई संख्या ४।५ घण्टा तक स्थायी होता है। इसके बाद फिर ज्वर प्रकट होता है। इस ज्वरके भोगकालको कोई स्थिरता नहीं, कभी कभी यह ज्वर २१।२२ दिन तक मौजूद रहता है। इस ज्वरमें जो समस्त लक्षण प्रकाशित होते हैं, उनमें प्रबल शिरःपीड़ा, रक्तिम मुखमण्डल, सामयिक प्रलाप, पाकाशय और यकृत्में वेदना, विवमिषा, कोष्ठ काठिन्य, स्वल्प प्रस्राव, अपरिष्कार जिह्वा, वेगवती नाड़ी, शुष्क और उष्ण घर्म, नानाविध यान्त्रिक प्रदाह और रक्तसञ्चय इत्यादि ही प्रधान हैं। यह पीड़ा गुरुतर होने पर इसका विरामकाल स्पष्ट नहीं समझा जा सकता, यत्सामान्य विराम हो कर थोड़ी देर तक स्थायी रहता है। यह ज्वर अतिशय प्रबल होने पर चर्म उष्ण, जिह्वा शुष्क और अपरिष्कृत, मल दुर्गन्धयुक्त, बलका ह्रास, नाड़ी क्षीण, दांतोंमें मैल, निद्रितावस्थामें स्वप्नदर्शन, तन्द्रा, ज्ञानवैलक्षण्य और अन्तमें अचैतन्यका लक्षण उपस्थित होता है।

उपसर्ग और आनुषङ्गिक रोग—इस ज्वरमें नाना प्रकारके उपसर्ग और आनुषङ्गिक रोग लक्षित होते हैं। उनमेंसे जो प्रधान हैं, उनका वर्णन किया जाता है—

१। मस्तिष्कका उपसर्ग। यह दो तरहसे होता है—

(क) रक्ताधिक्य (Congestion of blood)—रक्तसञ्चालनकी अत्यधिक उत्तेजनाके कारण मस्तिष्काभ्यन्तरमें रक्त सञ्चित होता है। इसमें प्रबल प्रलाप होता है और रोगी ऊंचे स्वरसे बकता रहता है। इस अवस्थामें शिरःपीड़ा, रक्तिमचक्षु, सङ्कुचित कनीनिका, रक्तिम मुखमण्डल, द्रुतगामी नाड़ी, ग्रीवा और शङ्खदेशकी धमनियोंमें प्रबल स्पन्दन तथा चित्तभ्रम आदि उपसर्ग देखनेमें आते हैं।

(ख) रक्तमोक्षण (Depletion of blood) होनेसे स्नायविक दौर्बल्यके कारण रोगी अस्पष्ट और मृदु प्रलाप बकता है। इस समयमें नाड़ी क्षीण, जिह्वा कम्पित और शुष्क, तन्द्रा, अचैतन्य आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

२। मस्तिष्कावरणप्रदाह (Meningitis)—इस प्रदाहके उत्पन्न होनेसे रोगी पागलकी तरह शय्यासे उठ कर अन्य स्थानको जानेकी कोशिश करता है तथा हाथ पैरोंकी पेशियोंमें आक्षेप उपस्थित होता है। कभी कभी तन्द्रा और चित्तभ्रम भी होता है।

३। (क) वायुनली-प्रदाह।

(ख) फेफड़ेमें रक्तसञ्चय वा प्रदाह—इसमें वक्षःस्थलमें वेदना, श्वासप्रश्वासमें कष्ट, कास आदि उपसर्ग होते हैं।

४। पाकस्थलीमें उत्तेजना—इसमें वमन, विवमिषा और हिचकी होती है।

५। यकृत्में रक्ताधिक्य वा पाण्डु।

६। प्लीहा विवृद्धि।

७। कर्णमूल प्रदाह—इसमें पारोटिड अर्थात् कर्णमूलके प्रदाहके कारण पूयोत्पत्ति होती है।

८। यकृत्, प्लीहा और पाकाशयमें रक्ताधिक्यके कारण कभी कभी एक प्रकारका उत्काश उपस्थित होता है।

९। वृक्क (Kidney) में रक्ताधिक्यके कारण आलबुमिनिउरिया होता है।

१०। स्त्रियोंकी जरायु और जननेन्द्रियमें पर्यायक्रमसे प्रदाह उपस्थित होता है।

११। रक्तकी अविशुद्धताके कारण कभी कभी वातरोग, मांसपेशीमें वाताश्रय और एक प्रकारकी स्नायवीय वेदना होती है।

१२। पाकाशय और यकृत्में रक्ताधिक्यके कारण उनके ऊपर वेदना होती है और गास्ट्रैलजिया (Gastralgia) उत्काश आदिके लक्षण प्रकट हो कर मुंहसे बहुत खून निकलता और दस्त होते हैं।

पल्भ इपिकाक	...	॥ ग्रेन।
विसमथ नाइट्रास	...	५ "
मर्फिया	...	⅛) "

एकत्र मिला कर एक मात्रा।

रक्तामाशय होनेसे निम्नलिखित औषधकी व्यवस्था करनी चाहिये—

विसमथ नाइट्रास	...	५ ग्रेन।
कुनैन	...	२ "
पल्भ इपिकाक	...	। "
——ओपियाइ	...	।⅛) "

एकत्र एक पुड़िया, दिनमें २।३ देनी चाहिये।

ज्वरकी क्षमावस्थामें रोगी क्रमशः दुर्बल हो कर यदि अवसन्न अवस्थाको प्राप्त हुआ हो, तो बलकारक औषधकी व्यवस्था करें। किन्तु रोगीके अङ्ग क्रमशः शीतल और बड़ो दुर्बल होवे, तो निम्नलिखित उत्तेजक मिश्रकी व्यवस्था करें।

स्प्रोट आमोनिएअरोमाटिकम्	...	१५ बूंद।
——नाइट्रिक ईथार	...	१५ "
साइनम् गालिसाइ	...	२ "
टिंचर मस्क	...	१५ "

कपूरके जलके साथ मिला कर एक औन्सकी खुराक। रोगीकी अवस्था विचार कर ½ या १ वा २ घण्टा अन्तर सेवन करावें। प्लीहा बढ़ने पर उस पर गरम जलका स्वेद दे कर अथवा टिंचर वा लिनिमेण्ट आइओडाइन-का प्रलेप दे कर निम्नलिखित मिश्र (ज्वरके समय) सेवन करावें—

एमन् मिउरियस	...	५ ग्रेन।
पटास ब्रोमाइड	...	५ "
पटास क्लोरास	...	७ "
डि० सिनकोना	...	१ औन्स।

एक खुराक। दिनमें ३।४ खुराक खानी चाहिए। ज्वरका वेग मन्दीभूत होने पर निम्नलिखित मिश्र प्रतिदिन तीन बार पिलाना चाहिए—

कुनैन	...	२ ग्रेन।
डा० सल्फिउरिक एसिड	...	१० बूंद।
फेरी सल्फ	...	२ ग्रेन।
म्याग्नेसिया सल्फास्	...	२ ग्रेन।
टिंचर सिनामन कम	...	½ ड्राम।
टपकाया हुआ पानी	...	१ औन्स।

एकत्र एक मात्रा। उदरामय हो तो इस मिश्रमेंसे म्याग्नेसिया सल्फास् निकाल देनी चाहिए। Syrup of lactate of Iron, Phosphate of Iron अथवा Ferri iodide का सेवन करानेसे बहुत समय प्लीहा घट जाती है और शरीरमें रक्तका अंश बढ़ता है।

यकृत्की विवृद्धि होनेमें उस पर गरम पानीका स्वेद देना चाहिए; उससे फायदा न हो तो सरसोंका पलस्तर दें तथा निम्नलिखित मिश्र ३ बार पिलावें—

एमन मिउरियस्	...	५ ग्रेन।
स्पि० टारेक्सिकम	...	२० बूंद।
डा० नाइट्रिक हाइड्रोक्लोरिक एसिड		१० "
इन० चिरायता	...	१ औन्स।

एकत्र एक मात्रा। इस ज्वरमें कासका प्रकोप हो तो भाइनम् इपिकाककी ५।१० बूंद और टिंचार क्याम्फर कम्पाउण्ड ½ ड्राम, कुनैन मिला कर अथवा ज्वरघ्नमिश्रके साथ एकत्र कर सेवन करावें।

पूर्वलिखित औषधादि सेवन करके ज्वरमुक्त होनेके बाद भी कुछ दिनों तक बलकारक औषध सेवन करना चाहिए। क्योंकि सविरामज्वरमें रक्तविकारके कारण आभ्यन्तरिक यन्त्रादि विकृत हो जाते हैं; ज्वर उपशमित होनेके साथ ही यन्त्रादि स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त नहीं होते। इस अवस्थामें औषधादि सेवनसे विरत रहनेसे, पुनः ज्वरकी उत्पत्ति हो सकती है। दूसरी बात यह है कि आरोग्यलाभके बाद कुछ दिनके लिए स्थान-परिवर्तन करना आवश्यक है, नहीं तो शरीर भलीभांति सबल नहीं होता। तीसरे कुनैन सेवन करनेसे ज्वर २।४ दिनके भीतर सम्पूर्णरूपसे दूर नहीं होता। ज्वरको पूर्णतया नष्ट करनेके लिए कुछ दिन बलकारक औषध-का सेवन करना उचित है; अन्यथा कुनैन द्वारा बद्ध ज्वरके पुनः प्रकट होनेकी सम्भावना रहती है। ज्वर बन्द होनेके बाद प्रतिदिन नियमानुसार एटकिन्स् सीराप सेवन करना चाहिये। निम्नलिखित मिश्रके (प्रतिदिन तीन बार) सेवन करनेसे भी रोगी शीघ्र हो

इसका आक्रमण भयावह है। इस ज्वरसे आक्रान्त होने पर रोगीको दो तीन दिनमें ही खाट पर पड़ना पड़ता है। इसमें ७वें दिनसे लगा कर १४वें दिनके भीतर शरीरमें कुछ उद्भेद प्रकट होते हैं। ये प्रथमतः वक्षःस्थल वा स्कन्धदेश पर, मणिवन्धके पीछे वा उदरके ऊपरि भागमें दीख पड़ते हैं पीछे क्रमशः हाथ पैरोंमें फैलता है। उद्भेदोंको दाबनेसे अदृश्य हो जाते हैं, तथा एक बार अदृश्य होने पर फिर प्रकट नहीं होते। ये साधारणतः १५वें दिनसे पूर्व दिन तक अधिक प्रस्फुट होते हैं। इनकी संख्याके अनुसार पीड़ाका गुरुत्व मालूम हो सकता है।

ये पहले लाल और पीछे क्रमशः काले हो जाते हैं। २।३ दिनके भीतर पिङ्गलवर्ण हो कर चमड़ेके साथ मिल जाते हैं। इसमें रोगीकी देह काली दीखती है और भयावह लक्षण प्रकट होते रहते हैं। नाड़ीकी द्रुतगति, दुर्बलता, प्रलाप, अचैतन्य, हाथपैरोंका कांपना, शय्यान्वेषण, पाटलवर्ण जिह्वा, पेटका फूलना काश, हिचकी आदि लक्षण सम्पूर्ण उपस्थित होने पर रोगीकी मृत्यु निकटवर्ती समझनी चाहिये, किन्तु उक्त लक्षण यदि क्रमशः घटते रहें, तो रोगीके जीनेकी आशा की जा सकती है। मस्तिष्क ज्वर आन्त्रिक ज्वरकी तरह अधिक दिन तक नहीं ठहरता। साधारणतः रोगी १४ दिनसे लगा कर २१ दिनके भीतर भीतर आरोग्यलाभ करता है या मर जाता है।

मस्तिष्क ज्वर मसूरिका और आरक्त ज्वर (Scarlet fever) की तरह विषाक्त पदार्थविशेषके द्वारा उत्पन्न और सञ्चारित होता है। किसी भी कारणसे इसकी उत्पत्ति क्यों न हो, इस रोगके प्रकट होते ही गृहस्थोंको स्वास्थ्योपयोगी नियमोंके प्रति विशेषदृष्टि रखनी चाहिये। जिससे रोगीके घरमें विशुद्ध वायु आ सके, शय्या परिष्कार रहे और घरमें लोगोंका जमाव न हो, उस विषयमें विशेष सतर्कता रखनी चाहिये। रोगीके घरमें किसी तरहकी दुर्गन्ध या अपरिष्कृत सामग्री न रखनी चाहिये। दुर्गन्ध दूर करनेके लिए हरितन (Chlorine) अथवा अन्य किसी तरहके संक्रामापह पदार्थका व्यवहार करें। रोगीके पास किसीका भी बैठना ठीक नहीं। रोगीकी शुश्रूषाके लिए विशेष नियमोंका पालन करते हुए औषध आदि सेवन करावें। रोगीके पथ्य पर विशेष दृष्टि रखना आवश्यक है। हलका और बलकारक पथ्य ही उत्तम है। अरारोट, मांस (अभावमें मसूरका क्राथ) और दूध व्यवस्थेय है। उदरामय होने पर दूध न देना चाहिये। रोगी अत्यन्त दुर्बल होनेसे मांसदाना, अरारोट वा क्राथके साथ थोड़ी १ नं० Exshaw brandy मिला पिलाना चाहिये। एक साथ ज्यादा खिलाना अच्छा नहीं। थोड़ा थोड़ा करके पुनः पुनः पथ्य देना उचित है। किसी तरहका कठिन पदार्थ न खिलाना चाहिये, क्योंकि उससे अन्त्र फट जानेकी सम्भावना है। इस रोगीके बलकी रक्षा करनेसे रहनेसे उसके जीवनकी भी आशा की जा सकती है; इसलिए रोगीको विशेषरूपसे पथ्य देना चाहिये। रोगी निद्रित होने पर भी उसको जगा कर पथ्य देवें।

मस्तिष्क ज्वर बालकोंके लिए उतना सङ्कटजनक नहीं है। डा० अलीसन् (Dr Alison)-ने इस रोगमें मृत्यु-संख्याकी तालिका निम्नलिखित रूप दी है—

उम्र	आक्रमण	मृत्यु
१५ वर्षसे कम	८७	२
१५—३०	१४८	११
३०—५०	८७	१७
५०से ऊपर	१७	७

उम्रकी अधिकताके अनुसार इस ज्वरका आक्रमण भी भीषणतर होता है। स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंके लिए इस रोगका आक्रमण अधिकतर साङ्घातिक है; किन्तु गर्भवती स्त्रियोंके इस रोगसे आक्रान्त होने पर प्रायः उनका गर्भस्राव हो जाया करता है।

मानसिक रोगाक्रान्त व्यक्ति इस रोगसे पीड़ित होने पर सहजमें मुक्त नहीं हो सकते। जो लोग सर्वदा प्रफुल्ल रहते, तमाकू पीते हैं, उनको प्रायः यह ज्वर नहीं होता। क्षयकाश रोगवालोंको भी इस बुखारसे पीड़ित नहीं होना पड़ता। जिसको एक बार यह रोग हुआ है, उसको फिर कभी नहीं होता।

मस्तिष्कज्वरकी विशेष सतर्कताके साथ चिकित्सा करनी चाहिये। औषध प्रयोगसे इस ज्वरका उतना उप-

भ्रम नहीं होता। शरीरके आभ्यन्तरिक यन्त्र जिससे नष्ट न होने पावें, उस ओर ध्यान रखें। जो लोग इस रोगमें अधिक दिन तक हैरान हो कर मरते हैं उनके हृत्पिण्ड, प्लीह और मस्तिष्कावरक चर्ममें बहुत अतसी रक्ताम्बु स्रावी एक मधु अधिक जम जाती है। किसी किसी व्यक्तिके मस्तिष्कावरणमें घात होता है। डा० क्रिसटेन भी ऐसा कहते हैं, इस बुखारमें स्नायविक संन्यासके कारण रोगी प्राणत्याग करता है।

आन्त्रिकज्वर (Typhoid fever)—यह ज्वर किसीको भी सहसा आक्रमण नहीं करता। रोगीको पहले मस्तक वेदना, हाथ पैरोंमें फटकन, अग्निमान्द्य और कुछ कुछ शीतका अनुभव होता है। इस पीड़ाकी प्रथमावस्थामें पेटकी पीड़ा होती है। धीरे धीरे रोगीकी नाड़ी चोख, शरीर उष्ण, जिह्वा शुष्क और लाल हो जाती है। दो पहरको ज्वरका प्रकोप और दूसरे दिन उसका कुछ ह्रास होते देखा जाता है। रोगी पहले रातको दो एक अस्फुट प्रलाप बकना शुरू करता है, धीरे धीरे वह दिन-रात प्रलाप बका करता है। जिह्वा क्रमशः उज्ज्वल रक्तवर्ण और फटी सी दीखती है तथा दांतोंमें काई सी जम जाती है। पीठ पर कर पूर्ण बहने लगता है। शरीरका अत्यन्त उत्ताप और अतीसार इस पीड़ाका प्रधान लक्षण है। ज्वरका वेग सन्ध्याके प्रारम्भमें और रातको बढ़ता तथा प्रातःकालको घटता है। अतीसार होने पर सामान्य पीड़ामें भी ७।८ बार दस्त होते हैं, किन्तु पीड़ा गुरुतर होनेसे २५।३० बार भी दस्त हुआ करता है। रोगीका मल तरल और पीला होता है तथा कुछ देर तक किसी पात्रमें रखनेसे वह दो भागोंमें विभक्त हो जाता है—नीचे भार और ऊपर तरलांश।

आन्त्रिक ज्वरमें नाड़ीका वेग द्रुत, शरीरमें उत्ताप, उद्वेग, कष्टसे श्वासप्रश्वास, अनिद्रा, उदर स्फीतिमें स्पर्श असहिष्णुता, अवसाद आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इस ज्वरमें मृत्यु होनेसे मध्यान्त्रस्थ अस्थि और प्लीहाकी वृद्धि विस्तृततर आदि देखनेमें आते हैं।

इस ज्वरमें जो उद्भेद होता है उसका आकार सूक्ष्म सरसोंके समान नहीं होता, बल्कि गोल होता है। दाबनेसे उद्भेद अदृश्य हो जाते हैं, पर दाब उठाने पर पुनः वे दीखने लगते हैं। ये उद्भेद ३।४ दिन तक रहते हैं। प्रथम आरम्भ होनेके बाद प्रतिदिन अथवा दो दिन अन्तर नवीन उद्भेद होते हैं। साधारणतः उदर और वक्षःकोटरमें तथा पीठ पर उद्भेद देखा जाता है। रोगके सप्तम और चतुर्दश दिनके भीतर इसकी उत्पत्ति होती है। ३।४ सप्ताह तक इस ज्वरका वेग रहता है, साधारणतः ३० दिनमें इसका विराम होते देखा जाता है। आन्त्रिक ज्वरमें नाड़ीकी श्लैष्मिक झिल्ली और क्षुद्र ग्रन्थियोंमें पीड़ा होती है।

यह ज्वर सांघातिक होने पर अन्त्र और नासिकासे रक्तस्राव, अक्षिपुत्तलिका प्रसारित और मूत्रमार्गसे उदरसे भी रक्तस्राव होता है। आरोग्योन्मुख पीड़ामें द्वितीय सप्ताहके शेषभागमें ज्वर, उदरामय इत्यादिका ह्रास हो जाता है। जिह्वा परिष्कार, क्षुधावृद्धि, शारीरिक वेदनाका उपशम तथा रातको स्वाभाविक निद्रा आने लगती है। इस रोगके बढ़ने पर तापमानयन्त्रका प्रयोग कर सर्वदा रोगीके शरीरके उत्तापकी परीक्षा करते रहना चाहिये। शारीरिक उत्ताप १०७ डिग्रीके ऊपर हो तो रोगीके जीनेकी आशा नहीं करनी चाहिये। सहसा उत्ताप बढ़नेसे भी फेफड़ेमें रक्ताधिक्य हो सकता है, उसके निवारणके लिए औषधका प्रयोग करना विधेय है। इस ज्वरमें अधिक दस्त होनेके कारण कभी कभी नाड़ी समाहमें आन्त्रोंके भीतर प्रदाह और क्षत होता है। ऐसा होने पर रोगी सान्निपातिक अवस्थामें पतित होता है, फिर उसके जीनेकी आशा नहीं की जा सकती। कभी कभी रोगीके मूत्राशय और जिह्वाकी कार्यकारिता नष्ट हो जाती है। ऐसी दशामें रोगीको पेशाब करने या बोलनेकी शक्ति नहीं रहती।

आन्त्रिक ज्वर संक्रामक होता है। ज्वर-रोगीके पुरीषमें संक्रामक बीज रहते हैं। अतएव रोगी जिस पात्रमें मलत्याग करे और जिस स्थानमें वह फेंका जाय, उस पात्र और स्थानका व्यवहार करना उचित नहीं।

इस रोगकी प्रथमावस्थामें अति मृदु-विरेचक औषध प्रयोग की जा सकती है। मस्तिष्क ज्वरमें जिस तरह सबल संग्राहक औषध व्यवहृत हुआ करती है, आन्त्रिक ज्वरमें उसका व्यवहार नहीं किया जा सकता।

स्थामें phosphorus फायट्रेमण्ट है। मस्तकमें उत्ते-जना होनेमें पलस्ता तथा camphor और arnica का व्यवहार किया जा सकता है। किसी प्रकारका क्षत होने पर, जिससे पूयोत्पत्ति हो वैसी पुल्टिस देवें, तथा किसी तरहका महा क्षत हो तो chloride, kreosote, powdered bark, turpentine आदिका प्रयोग करना उचित है। मस्तकप्रदाह और प्रलापकालमें belladona का व्यवहार करनेसे उपकार होता है।

आन्त्रिक ज्वरकी प्रथमावस्थामें रोगीके घरकी वायु जिसमें विशुद्ध और नातिशीतोष्ण होवे, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। वार्लि, साबू वा भातके मांडका पथ्य देना चाहिये। भुजनलीमें प्रदाह हो तो ईषत् घर्मोद्दी-पक पानीय प्रदान करें। किन्तु घर्म उत्पन्न करनेके लिए उष्ण वस्त्र द्वारा शरीर ढक देना उचित नहीं। स्नाय-विक अवस्थामें घरके भीतर ठण्डी हवा न आने देवे, बिस्तरको गरम रखें, किन्तु जिससे वायु दूषित न होने पावे तथा घरमें अधिक आदमियोंका जमाव न होना चाहिये। रोगीका शरीर और बिस्तर विशेष परि-ष्कार तथा उसकी जिह्वा और मुखको अच्छी तरह धो देवें। कुछ कुछ गरम जल तथा अगरोट अथवा सूप आदि खाद्य मिला कर देवें। किसी प्रकारका फल खानेको न देना चाहिये। मस्तिष्क-ज्वरमें जिससे रोगीको शारीरिक और मानसिक शक्ति पूर्वावस्थाको प्राप्त हो ऐसी औषध देवें और कथोपकथन करें।

आन्त्रिक, मस्तिष्क और स्वल्पविराम ज्वरके लक्षणका निर्णय करनेके लिए नीचे एक तालिका दी जाती है—

आन्त्रिक-ज्वर—१ उद्भिज्ज और जान्तव वस्तुएं सड़ कर वायुको दूषित करती हैं, उस दूषित वायुके सेवनसे ये रोग उत्पन्न होते हैं। प्रश्वास वायु अथवा गात्र-चर्मसे इस पीडाका विष संक्रमण द्वारा अन्य व्यक्तिके शरीरमें प्रविष्ट हो कर पीडा उत्पन्न नहीं करता।

२, मुखमण्डल उज्ज्वल गण्डस्थल आरक्त, कनीनिका प्रसारित और प्रलाप वृद्धि होता है। पीड़ा दिनकी अपेक्षा रातको प्रबल होती है।

३, पीड़ाके प्रारम्भमें ले कर अन्त तक नाकसे खून गिरता है।

४, पीड़ाके प्रारम्भसे उदरामय उपस्थित हो कर आधे उबाले गये चावलोंकी तरह मल निकलता है। मलमें दुर्गन्ध नहीं होती, किन्तु इसके साथ साथ प्रायः रक्त निकला करता है। पीड़ित व्यक्तिके शरीर और श्वास प्रश्वासमें दुर्गन्ध नहीं पायी जाती।

५, इसके उद्भेद गोलाकार वा अण्डाकार हो कर चमड़ेसे कुछ ऊंचे उभर आते हैं। ये पहले थोड़े और बादमें बहुत उदित तथा वक्षस्थलमें प्रकाशित होते हैं। परन्तु हाथ पैरोंमें कभी नहीं होते।

६, उदराध्मान इसका एक विशेष लक्षण है। रोगीके पेटमें गुड़-गुड़ शब्द होता है।

७, स्थितिकालकी निश्चयता नहीं है।

८, इस रोगसे प्रायः युवकगण ही नहीं आक्रान्त होते।

मस्तिष्क-ज्वर—१, अधिक लोगोंका एकत्र वास वा अवस्थिति तथा अपरिच्छन्नताके कारण इस ज्वरकी उत्पत्ति होती है। रोगीके श्वास-प्रश्वास और पसेवसे इस रोगका संक्रामक विष अन्य व्यक्तिके शरीरमें प्रवेश कर पीड़ा उत्पन्न करता है।

२, मुखमण्डल गम्भीर होने पर भी विवेचनाशून्य, कनीनिका सङ्कुचित और प्रलाप अविरत, किन्तु मृदु लक्षित होता है।

३, पीड़ाके प्रारम्भमें नाकसे खून नहीं गिरता।

४, साधारणतः कोष्ठबद्धता, कृष्णवर्ण और दुर्गन्ध-युक्त मल निकलता तथा रोगीके शरीरसे दुर्गन्ध छूटती है। मलके निकलते समय रक्तस्राव नहीं होता।

५, उद्भेदोंका रंग कालेपनको लिए लाल होता है। इनका कोई विशेष आकार नहीं होता और न ये चम-ड़ेसे ऊंचे हो होते हैं। मुखमण्डल, पृष्ठदेश तथा हस्तपदादिमें ये बहुत होते हैं।

६, उदराध्मान वा पेटमें गुड़ गुड़ शब्द नहीं होता।

७, स्थितिकाल तीन सप्ताह है।

स्वल्पविराम-ज्वर—१, मलेरियाके कारण यह व्याधि उत्पन्न होती है; पर यह संक्रामक नहीं होती।

२, पाण्डु होने पर रोगीका शरीर पीताभ दीखता है। विवमिषा और वमन इसका प्रधान लक्षण है।

३, कभी कभी उदराध्मान और उदरामय होता है। मलका वर्ण अधिक होता है। मल निकलते समय कष्ट नहीं मिलता।

४ शरीरमें फुन्सियां नहीं निकलतीं।

पौनःपुनिक-ज्वर (Relapsing)—यह ज्वर अल्प काल स्थायी होता है, कभी ५ दिन और कभी सात दिन तक रहता है। इसलिए अंग्रेजोंमें इसको short fever five or seven days fever अथवा ... कहते हैं। यह ज्वर लगातार ५से ७ दिन तक रह कर सम्पूर्ण रूपसे विच्छिन्न हो जाता है किन्तु चौदहवें दिन पुनः प्रकट होता है। पुनराक्रमणके उपरान्त तीसरे दिन ज्वरका विराम होता है तबसे रोगी आरोग्यलाभ करता रहता है। कोई कोई कहते हैं यह ज्वर बिल्कुल संक्रामक नहीं है तथा कोई कोई ऐसा कहते हैं—यह ज्वर यहां तक संक्रामक है कि यह रोगी कपड़ोंके द्वारा अन्य शरीरमें प्रविष्ट हो सकता है। प्रायः देखा जाता है कि, जो लोग इस रोगीके वस्त्रादि धोते हैं वे भी उक्त ज्वरसे पीड़ित होते हैं। बहुतोंका मत है कि अभाव और दरिद्रताके कारण ही इस रोगकी उत्पत्ति होती है। पौनःपुनिकज्वर Typhus fever-की तरह संक्रामक है। इस ज्वरसे एक व्यक्ति बार बार आक्रान्त होता है। यह ज्वर थोड़े ही दिन भरमें फैल जाता है। थोड़ी उम्र वालोंको ही यह ज्वर होता है।

लक्षण—इस ज्वरको पूर्वावस्थामें विशेष कोई लक्षण नहीं दीखते, सहसा एक घण्टेके अन्दर रोगी बिल्कुल निश्चेष्ट हो जाता है। परन्तु कभी कभी ज्वर आनेके पहले शीत, कम्प मस्तक और पीठमें दर्द, कानमें भन भनाहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। पौनःपुनिक ज्वरमें मुखमण्डल लाल और शरीरका चमड़ा गरम हो जाता है। ज्वर होनेके बाद तीसरे दिन कभी कभी पाकाशयमें अस्वच्छन्दता अनुभूत हो वमन होता है और प्यास बढ़ रहता है, कभी कभी अतिरिक्त कुनैन सेवन करनेसे भी उदरामय होता है। इस समय सारा शरीर पसीनेसे तर हो जाता है, किन्तु प्रबल ज्वरका ह्रास नहीं होता। चौथे दिन ज्वरकी वृद्धि होती है—शारीरिक उत्ताप १०८ डिग्री हो जाता है। पांचवें दिन नाड़ीका स्पन्दन १२०से १६० बार तक होता है। ज्वरके बढ़ते समय रोगी सिर्फ मस्तकमें वेदनाका अनुभव करता है। जिह्वा श्वेतमलावृत और उसके किनारे लाल दिखाई देते हैं। बहुतोंका शरीर विशेषतः मुखमण्डल पीला हो जाता है और बहुत पसीना निकलता है। रक्तस्राव प्रायः नहीं होता। पांचवें या सातवें दिन सहसा ज्वर उपशान्त हो जाता है किन्तु १४वें दिन उक्त लक्षणोंके साथ पुनः ज्वर आता है तीन दिनसे ज्यादा नहीं ठहरता। २१वें दिन रोगी पुनः ज्वराक्रान्त होता है। मस्तिष्क या आन्त्रिक ज्वरकी भांति इसमें भी किसी प्रकारका उद्भेद दृष्टिगोचर नहीं होता, सिर्फ शरीरका चमड़ा और पेशाब पीला हो जाता है। जिह्वा अग्रभाग मलावृत और शुष्क होने पर भी इसको गुरुतर समझना चाहिये।

उपद्रव—इस ज्वरमें अधिक उपसर्ग नहीं होते। कभी कभी निमोनिया, ब्राङ्काइटिस प्लुरिसि आदि श्वास यन्त्र सम्बन्धी रोग उपसर्ग रूपमें दिखाई देते हैं। इस रोगमें गर्भवती स्त्रियोंके गर्भपात होनेकी सम्भावना होती है। बहुतसी गर्भवती स्त्रियां इस ज्वरसे पीड़ित हो कर मृत सन्तान प्रसव करती हैं। ज्वर छूटने पर मूर्छा आती है तथा उस समय मरनेका विशेष भय रहता है।

इस ज्वरसे सौमेंसे पांच आदमी मर जाते हैं। रोगीका पेशाब पूरा उतरने न होनेके कारण उसका यवक्षारीय (urea) लवण साथ मिश्रित होता है जिससे रोगीको मूर्छा आ कर उसके प्राण ले लेती है। निमोनिया रोग उपसर्ग रूपमें मौजूद रह कर कभी कभी मृत्युका कारण हो जाता है।

चिकित्सा—साधारणतः दरिद्रता और अभाव ही पौनःपुनिक ज्वरका कारण है इसलिए सबसे पहले उसका निराकरण करना चाहिये। इस ज्वरमें औषध सेवनका विशेष प्रयोजन नहीं है। बहुत जरूरत हो तो औषध देनी चाहिये। शारीरिक सन्तापकी वृद्धि होना इस ज्वरका एक प्रधान लक्षण है। इसके निवारणार्थ मलेरिया ज्वरके लिए जिस औषधकी व्यवस्था की गई है उसीका सेवन कराना चाहिये। ज्वर छिपने न पान

पावे इसके लिए कुनैन खिलावें। मस्तक गरम होने पर शीतल जलकी पट्टी रखनी चाहिये। मूत्र अल्प विशुद्धल होनेसे लाइम जूस सेवन करावे। दौर्बल्य इस रोगका साधारण धर्म है, अतएव पहलेसे ही सुपथ्य और बलकारक पथ्यकी व्यवस्था करते रहना चाहिये। रोगीके आरोग्य लाभ करने पर कुछ दिन तक लोह और कुनैन घटित बलकारक औषधका सेवन करावें।

वातिकज्वर (Ardent fever) यह किसी तरहके विषसे उत्पन्न नहीं होता, इसलिए यह कभी भी एक शरीरसे दूसरे शरीरमें संक्रमित नहीं होता। इस ज्वरकी उत्पत्ति इन इन कारणोंसे होती है-प्रखर धूपका सेवन, अनियमित वा अपरिमित भोजन और पान, अतिरिक्त परिश्रम, अतिरिक्त पथ भ्रमण इत्यादि। दो तीन दिन रोगी लगातार ज्वरभोग करके आरोग्य लाभ करता है। शरीरके अधिक उत्तप्त होने पर, प्रलाप वा तन्द्रा होनेसे, सन्ध्याके समय ज्वरकी वृद्धि और सुबह कुछ ह्रास होनेसे, रोग बढ़ गया है ऐसा समझना चाहिए। साधारणत: इस ज्वरमें मन्दाग्नि मस्तक और देहमें दर्द तथा कभी कभी कँपकँपी आ कर रोगीका चमड़ा सूख कर गरम हो जाता है। वातिक ज्वरमें डरनेका कोई कारण नहीं है।

चिकित्सा—रोगीको प्रथमसे प्रतिसिद्धता और मृदु विरेचक औषध देनी चाहिये। शिर:पीड़ा होने पर मस्तकमें शीतल जलका प्रयोग करनेसे तथा रोगीको खूब नींद आनेसे इस ज्वरकी शान्ति होती है। ज्वर छूटनेके बाद शरीर दुर्बल हो जाय तो ब्राण्डी और पुष्टिकर आहार देना चाहिये।

नासाज्वर (Nasal polypus)—नाकके भीतर दूषित रक्त सञ्चित हो कर इस ज्वरको उत्पन्न करता है। इस ज्वरमें समस्त अङ्गोंमें विशेषत: पीठ कमर और गर्दनमें अत्यन्त वेदना होती है। यह वेदना इतनी तीक्ष्ण होती है कि, सामनेको शरीर तक नहीं झुकाया जाता। नासाज्वरमें अन्यान्य लक्षण भी प्रकट होते हैं।

नासिकाके भीतर जो रक्तवर्ण शोथ रहता है, उसको सुईके जरिये छेद कर दूषित रक्त निकाल देनेसे यह ज्वर जाता रहता है रक्तस्रावके बाद लवणाम्ल युक्त सर्षपतैल वा तुलसीपत्रके रसका नास लेनेसे फायदा पहुंचता है। दो एक दिन आहार और स्नान बन्द रखना चाहिये। जो लोग इस रोगसे पुन: पुन: पीड़ित होते हैं, वे यदि प्रतिदिन मुंह धोते समय मसूढ़ोंसे कुछ रक्त निकाल दें और नस्य लिया करें, तो इस पीड़ासे बारम्बार आक्रान्त होनेकी आशङ्का नहीं रहती।

औद्भेदिकज्वर (Eruptive fever)—शारीरिक रक्त विपाक होने तथा आभ्यन्तरिक यन्त्रमें किसी तरहका परिवर्तन होने पर यह रोग होता है। यह रोग अत्यन्त संक्रामक है। यह साधारणत: दो प्रकारका होता है—१ रोमान्ती (Measles) और २ मसूरिका। रोमान्ती और मसूरिका शब्द देखो।

पीतज्वर (Yellow fever)—अमेरिकाके पूर्व और पश्चिम उपकूलमें अफरीकाके अनेकांशमें तथा स्पेनके दक्षिण उपकूलमें इस ज्वरका प्रकोप पाया जाता है। इस ज्वरसे बहुतसे लोग मर जाते हैं, विशेषत: सेना पर इसका आक्रमण अत्यन्त भयङ्कर है। इस ज्वरमें विविध लक्षण दिखाई देते हैं। डा॰ गिलक्रेष्ट (Dr. Gillkrest)का कहना है, "इस ज्वरमें शरीर आंशिक अथवा साधारणभावसे पीतवर्ण हो जाता है तथा अन्तमें रोगी कृष्णवर्ण तरल पदार्थ वमन करके प्राण त्याग देता है।" अन्यान्य ज्वरमें जो लक्षण प्रकट होते हैं, इस ज्वरमें भी उनका अधिकांश प्रकाशित होता है।

बहुतोंका अनुमान है कि, १७९३ ई॰में सबसे पहले ग्रानाडा द्वीपमें यह रोग प्रकट हो कर सर्वत्र फैल गया है। किन्तु उक्त समयसे पहले ग्रानाडा द्वीपमें जो महामारी रोग फैलता था, वह भी पीतज्वरका ही प्रकारभेद है, इसमें सन्देह नहीं।

इस ज्वरके प्रकट होनेसे दो तीन दिन पहले मन नितान्त निस्तेज हो जाता है और कार्यसे अत्यन्त अरुचि हो जाती है। समय समय पर वमनका उद्वेग साथ ही शीत और मेरुदण्ड, पीठ, हाथ, पैर और मस्तकमें वेदना होती है। चक्षु आच्छन्न, घोर और जलभाराक्रान्त तथा दृष्टि अस्पष्ट और कभी दो प्रकारकी होती है। मानसिक विशृङ्खला, तन्द्रा अस्थिरता, क्षुधामान्द्य, अरुचि आदि लक्षण दिखाई देते हैं। शरीर सर्वदा

वमन, योनिदेशसे लगा कर उदर तकमें वेदनाका अनुभव होता है। धीरे धीरे नाड़ीका स्पन्दन उग्र, जिह्वा मैली तथा थोड़ा थोड़ा पेशाब होता है।

यह ज्वर १० ११ दिन तक रहता है, कभी कभी रोगी पहले ही दिन मर जाता है।

आन्त्रिक सूतिकाज्वर (Typhoid puerperal fever)—यह रोग अत्यन्त सांघातिक और विभिन्न प्रकारसे प्रकट होता है। इस ज्वरका सामान्य आन्त्रिक ज्वरसे सम्बन्ध है और आन्त्रिक ज्वरमें जो लक्षण प्रकट होते हैं, इसमें भी वे ही दिखाई देते हैं।

इस रोगमें औषध प्रयोगसे विशेष फल नहीं होता। रोगी कुछ घंटोंमें, तथा कभी कभी दो चार दिनके अन्दर प्राण त्याग देता है। सूतिकाज्वर देखो।

स्वेदज्वर (Sweating or miliary fever)—शारीरिक अवसादके बाद अतिरिक्त पसीना निकल कर यह ज्वर सहसा प्रकट होता है। इस ज्वरमें शरीरमें प्रियङ्गुवत् उद्भेद होते हैं। स्वेदज्वर देशव्यापक और संक्रामक है। इस ज्वरका प्रभाव सब पर एकसा नहीं पड़ता. ज्वरका आक्रमण मृदु होने पर रोगी अवसाद, क्षुधाहानि, चक्षुमें वेदना और अत्यन्त दाहका अनुभव करता है। मुंह सुपकना तथा जीभ कांटेदार और मैली हो जाती है कोष्ठबद्धता, मूत्रकी अल्पता, श्वासकष्ट, शिरःपीड़ा, नाड़ी चञ्चल और अत्यन्त द्रुत उद्भेदोंका निकलना आदि उपसर्ग होते हैं। धीरे धीरे रोगीको पीठसे लगा कर तमाम देहमें उद्भेद निकलते हैं। सर्वदा पसीनेसे शरीर भीगा रहता है और उसमेंसे सड़ी घास जैसी बदबू निकलती है। उपसर्ग १४।१५ दिनसे ज्यादा नहीं ठहरते, साधारणतः ७।८ दिनमें ही विलीन हो जाते हैं। ज्वरका आक्रमण प्रबल होने पर, ज्वर आनेके कई घंटे पहलेसे रोगी अत्यन्त अवसाद और क्षुधाहानिका अनुभव करता है। शीत, रोमाञ्च, मस्तकघूर्णन, अत्यन्त मस्तकपीड़ा, विवमिषा, श्वासकृच्छ्र, मेरुदण्ड, प्रत्यङ्ग और उदरके उपरिभागमें वेदना, अत्यधिक पसेव आदि लक्षण प्रकट होते हैं। तन्द्रा, प्रलाप और आक्षेप उपस्थित होने पर रोगी मर जाता है। श्वास यन्त्रमें प्रदाह पेटमें रक्तरोध जनित वेदना, छाती पर भार मालूम पड़ना, अत्यन्त चिन्ता, अन्त्र-प्रदाह कोष्ठबद्धता, गहरे रंगका पेशाब, पेशाबके समय यन्त्रणा इत्यादि लक्षण दिखलाई देते हैं। स्वेदज्वरका आक्रमण अत्यन्त प्रबल होने पर २४ घंटेसे लगा कर ४८ घंटे तक अथवा ३।४ दिनके अन्दर रोगी मर जाता है। ज्वर २।३ सप्ताह तक ठहरने पर रोगीके जीनेकी आशा की जा सकती है।

४३° से ६०° उत्तर अक्षांशके भीतर स्वेदज्वरका प्रताप देखा जाता है। आर्द्र और छायायुक्त स्थान, अत्यन्त उष्णता, अतिरिक्त तड़िन्मिश्रित वायु आदिसे इस रोगकी उत्पत्ति होती है।

चिकित्सा—भिन्न स्थानमें अवस्थान, सामयिक स्थान-परिवर्त्तन, स्वेदज्वराक्रान्त व्यक्तिका संस्रव परित्याग आदि उपायोंका अवलम्बन करना उचित है। इस ज्वरके मृदु आक्रमणमें औषधप्रयोग करनेकी कोई जरूरत नहीं। आक्रमण प्रबल हो, तो जिससे आभ्यन्तरिक यन्त्र आदि विकृत हो कर नुकसान न पहुंचाने पावे—ऐसी औषध देनी चाहिये। रक्तमोक्षण करनेसे ज्वरका ह्रास हो सकता है। पलस्ता, सर्षपलेप, विरेचक औषध आदिका प्रयोग करना चाहिये। उद्भेद निकलनेके बाद रक्तमोक्षण करना विधेय नहीं। कोई कोई कहते हैं कि, प्रथमावस्थामें शीतल जलसिञ्चनसे लाभ हो सकता है। आर्द्रकारक पुल्टिश देनेसे तथा उपयुक्त किसी औषधकी पिचकारीसे उदरमें प्रविष्ट करानेसे उदरवेदना और मूत्रकृच्छ्र निवारित होता है। फेंफड़ेमें रक्ताधिक्य होने पर कोई कोई अधिक रक्तमोक्षण और वाह्यप्रलेप देनेकी व्यवस्था देते हैं। किन्तु एक बारगी अधिक रक्त मोक्षण करानेसे रोगीका अंग संकुचित हो जाता है। अवस्थाविशेषमें camphor, ammonia, serpentaria आदि देना चाहिये।

पथ्य—प्रथम ४।५ दिन तक रोगीको किसी प्रकारका बलकारक खाद्य न देवें; ईषदुष्ण जल और सामान्य तरल पदार्थकी व्यवस्था करें। ६ठे, ७वें वा ८वें दिन थोड़ासा मेमने वा कुक्कुटका जूस दिया जा सकता है। क्रमशः भोजनकी तौल बढ़ाते रहना चाहिये। अन्यान्य संक्रामक रोगोंकी तरह स्वेदज्वरमें भी पथ्यके प्रति विशेष दृष्टि रखनी चाहिये।

प्रदाहिक ज्वर (Inflamatory fever)—इस ज्वरमें मस्तक पीठ और प्रत्यङ्गमें वेदना शरीर अत्यन्त गरम, नाड़ी द्रुत अत्यन्त तृष्णा लाल और थोड़ा मूत्र, कोष्ठबद्धता, वाक्य विस्वा आदि लक्षण प्रकट होते हैं। हृत्पिण्ड और धमनी वा शिरा प्रदाहित होनेसे यह ज्वर उत्पन्न होता है। प्रौढ़ अधिकमेद विशिष्ट, मोटो, अपरिमिताहारी और अत्यन्त व्यायाम शील व्यक्तियोंको यह ज्वर होता है। अत्यन्त शीतल और अत्यन्त उष्णप्रदेशमें प्रदाहिक ज्वरका प्रकोप देखा जाता है।

यह ज्वर मलेरियासे भी उत्पन्न हो सकता है। मलेरिया न रहने होनेसे प्रदाहिक ज्वर शीघ्र ही उप शान्त हो जाया करता है।

साधारणतः शारीरिक किसी यन्त्रकी विकृति, कठिन वा वैसा ही कोई उत्पात न होने पर सरल प्रदाहिक ज्वर होता है। शीत और वसन्तऋतुमें यह ज्वर दिखाई देता है। सरल अवस्थामें यह ज्वर विलकुल भी न संक्रामक वा देशव्यापक नहीं होता।

जब रोग जितना बढ़ता है, उपसर्ग भी उतने ही बढ़ते रहते हैं, जिह्वा लाल और सूख जाती है तथा नींद नहीं आती। इस रोगमें बालकोंको तन्द्रा तथा वृद्धोंको प्रलाप होता है। क्रमको उपसर्गोंका ह्रास होता है और खूब पसीना हो कर उपसर्गोंकी निवृत्ति होती है। साधारणतः यह ज्वर १४ दिनसे ज्यादा नहीं ठहरता कठिन प्रदाहिक ज्वरमें रोगी प्रायः मर जाते हैं। मृदु ज्वर २से ६ दिन तक ठहरता है। पश्चात् चौथे वा पाँचवें दिन रोगीके जीवनका अन्त हो जाता है।

चिकित्सा—सरल और कठिन दोनों ही प्रकारके प्रदाहिक ज्वरमें एक तरहकी दवा दी जाती है। प्रथमा वस्थामें सुविधाके अनुसार शिरा और धमनीसे रक्त मोक्षणकी व्यवस्था की जा सकती है। बादमें विरेचक औषध आवश्यक है। इस ज्वरमें, किसी भी हालतमें वमनकारी औषध न देनी चाहिये। Nitrate of potash, nitrate of soda और muriate of ammonia इत्यादि समय आवश्यक है। एक स्कूपल नाइटर और १२ ग्रेन सिटरिकेट आफ् आमोनिया पानीमें मिला कर उसका दिनमें ३।४ बार सेवन कराना चाहिये। धमनीकी क्रिया मन्द होने पर उत्तेजक प्रयोग करे। अत्यन्त अवसाद वा तन्द्रा होने पर मस्तक पर गमछा दिया जा सकता है—दूसरी वस्तु नहीं।

साधारणतः न्यून सन्तापोंके भिन्न भिन्न देशोंमें यह ज्वर देखा जाता है। इस ज्वरमें समुद्र जल औषध रूपमें व्यवहृत होता है। कपूरके साथ nitrate of potash और muriate of ammonia का मिश्र अथवा citrate वा tartarate of potash के व्यवहारसे यथेष्ट लाभ पहुंच सकता है। कभी कभी यह ज्वर स्वल्प विराम ज्वरके समान हो जाता है। विरामावस्थामें sulphate of quinine व्यवहार करना चाहिये।

पित्तज्वर (Bilio-gastric fever) शीत, कम्प, परिपाकका दोष और पित्तकी विकृति ये सब इस ज्वरके निदान हैं। रोग कठिन होने पर रोगीका शरीर पीला हो जाता है। उष्ण दलदल भूमि और नातिशीतोष्ण प्रदेशमें ग्रीष्म और शरत्कालमें यह रोग देश व्यापक अथवा कभी कभी अत्यन्त वर्षा और बाढ़ आनेके बाद यह संक्रामक हो जाता है पित्तप्रधान और मादक सेवी व्यक्तियोंको यह रोग होता है।

लवण और उद्भिज्ज पदार्थ सड़ कर विषाक्त द्रव्य शरीरमें प्रविष्ट होने पर तथा अत्यन्त धूप अथवा रातको शीतल वायुसेवन, अपरिमित आहार वा पान अत्यन्त परिश्रम और क्रोध प्रकट करनेसे यह ज्वर होता है। ज्वर प्रकट होनेके पहिले अवसाद, झिनझिनी, क्षुधाहानि पीठ और प्रत्यङ्गमें वेदना, अग्निमान्द्य, तिक्तास्वाद दुर्गन्ध मुख, जिह्वा पीलापन और मैलावृत मुख सुपरवना, अरुचि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। धीरे धीरे पित्तयुक्त वमन, दाह अस्थिरता अनिद्रा, उदरवेदना, वक्षः स्थलमारायुक्त मुख रक्तवर्ण श्वास लेनेमें कष्ट और नाड़ी द्रुत, अत्यन्त पिपासा, पित्तमय मलनिर्गम मूत्र थोड़ा और काला इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। इस ज्वरमें कभी कभी शरीरके अङ्गोंमें पसीना किन्तु गात्रचर्म उष्ण रहता है।

१९, २रे अथवा ४थे दिन मृदुके बाद ज्वरका

विराम होता है, किन्तु शामको उपसर्ग बढ़ने लगते हैं ७वें और ८वें दिन तक रोगकी अत्यन्त वृद्धि होती है इस समय रोगी बहुत कष्ट पाता है। कभी कभी तन्द्रा प्रलाप और नाड़ीके स्पन्दनमें क्षीणता हो जाती है। इस अवस्थामें रोगी कभी कभी मर भी जाता है।

पहलेसे ही चिकित्सा करते रहनेसे यह ज्वर ७ दिनमें ही उपशान्त हो सकता है किन्तु प्रथमावस्थामें चेष्टा हीनता करनेसे इस रोगसे प्रायः रोगीको ८ दिनमें मृत्यु हो जाती है। यह रोग कभी यकृत् स्फोटक पीड़ा और कभी स्वल्पविराम ज्वर वा अविराम ज्वरमें परिणत हो जाता है।

चिकित्सा—ज्वर प्रकट होनेसे पहले वमनकारक औषध, गरम स्वेद, विरेचक औषध, citrate of potash, nitrate of potash और muriate of ammonia व्यवहार करनेमे विशेष फल हो सकता है। प्रदाहिक और स्वल्पविराम ज्वरमें जो औषधे व्यवस्थेय हैं, पैत्तिकज्वरमें भी प्रायः उन औषधोंका प्रयोग किया जाता है।

श्लैष्मिकज्वर (Mucus fever)—इस ज्वरमें शीत, श्लेष्माका निकलना, पीठ और प्रत्यङ्गोंमें वेदना तथा समय समय पर कुछ विराम मालूम पड़ता है। अतिरिक्त परिश्रम, अवसाद, शारीरिक दुर्बलता, अत्यधिक रात्रि-जागरण, निम्न और आर्द्र स्थानमें वास धूप और आलोकका अभाव, अपरिच्छन्नता, खाद्यका अपचार, अपरिमित विरेचकादि सेवन, अल्पाहार आदि कारणोंसे इस ज्वरकी उत्पत्ति होती है। शीत और शरत्कालमें इसका प्रकोप देखा जाता है।

शरीरकी गुरुता और विषण्णता, क्षुधाहानि, वेदना, सुनिद्राका अभाव, अस्त व्यस्त, शीत आदि उपसर्ग ज्वर प्रकाशके पहले उत्पन्न होते हैं। धीरे धीरे अरुचि, कुछ पिपासा, वमन, उदरमें भारबोध, उदराध्मान, अन्त्रकी शिथिलता, जिह्वा श्लेष्मावृत, मुख विरस, निःश्वास दुर्गन्धयुक्त, इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। कभी श्लैष्मिक उदरामय, कभी कोष्ठबद्धता और कभी कभी कृमि निकलते देखा जाता है। सन्ध्याकालमें ज्वरके वेगकी वृद्धि और उसी समय शरीर अत्यन्त उष्ण हो जाता है। क्रमशः शिरःपीड़ा मानसिक विशृङ्खलता, निद्राकम्पण, पर सोनेकी असमर्थता, विषाद, चाञ्चल्य सर्वाङ्गमें वेदना, कान कानमें शब्द, बधिरता आदि उपसर्ग उपस्थित होते हैं।

यह ज्वर दो दिनसे एक सप्ताह तक ठहरता है। शरीर और नाड़ीकी परीक्षा करनेसे समय समय पर ईषत् विरामकी उपलब्धि होती है। किन्तु विराम जितना स्पष्ट होता है, रोग भी उतना ही ज्यादा दिन तक ठहरता है। आरोग्यकालमें पुनः आक्रान्त होनेकी आशङ्का रहती है। इस समय पथ्य पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिये, रोगीको आर्द्र और शीतल स्थानमें तथा बाहर हवामें जाने देना उचित नहीं। श्लैष्मिक ज्वर पुनः प्रकट होने पर अविराम वा स्वल्पविराम ज्वरमें परिणत हो सकता है।

चिकित्सा—कोई कोई कहते हैं कि, पहले वमनकारक औषध, फिर अफीम और जाइटार, उसके बाद कपूर और हाइड्रार्जिरम (Hydrargyrum cumereta), तथा अन्तमें मृदु विरेचक, बलकारक औषध और खाद्यकी व्यवस्था करनी चाहिये। जब विराम हो तब सल्फेट आफ् कुनैन सेवन करावें।

कालाज्वर (Black fever)—साधारणतः मलेरियासे इस ज्वरकी उत्पत्ति है। इस ज्वरमें समस्त शरीरका रङ्ग प्रायः काला हो जाता है। आसाममें इस ज्वरका प्रादुर्भाव अधिक होता है। इस ज्वरमें अधिकांश रोगी मर जाते हैं।

डेङ्गूज्वर (Dengue fever) अर्थात् लाल बुखार—करीब पचास वर्ष हुए होंगे, यह ज्वर भारतमें प्रचारित हुआ था। यह अमेरिकासे आया था। इस ज्वरमें समस्त शरीरमें अत्यन्त वेदना, साथ ही खांसी और सर्दी होती है। यह ज्वर ५।६ दिन तक ठहरता है, इसके बाद या तो रोगी आरोग्यलाभ करता है या मर जाता है।

इनफ्लुएञ्जा (Influenza)—यह भी यूरोपीय ज्वर है। उष्णप्रधान देशोंमें इसका उतना प्रकोप नहीं देखनेमें आता, जितना कि शीतप्रधान देशमें देखा जाता है। पहले हिन्दुस्तानमें यह ज्वर बिलकुल ही न था।

स्फोति, आंखोंके चारों ओर स्फीति, ज्वाते हो कै हो कर निकल जाना, सामान्य चिन्ता वा परिश्रमसे मुखका रक्तवर्ण हो जाना, शारीरिक बलकी अत्यन्त हानि पैरोंमें सूजन।

जेल-सिमियम—पहले शीत, फिर घर्म, दाह, स्नायविक चाञ्चल्य और मानसिक चिन्ता, भ्रमि, प्रकाश और शब्द असह्य।

इगनेसिया—सिर्फ शीतके समय पिपासा, वाह्य उत्ताप किन्तु अन्तरमें कँपकँपी बुखारके वक्त शरीर पर पीतपर्णिका।

इपिकाक—अत्यन्त शीत, अल्प उत्ताप वा अत्यन्त उत्ताप, अल्प शैत्य, उबासी आ कर ज्वरवृद्धि, मुंहमें ज्यादा लार जमना, विवमिषा और वमनप्राबल्य। ज्वरमें विस्फोटके समय पाकस्थलीगत परिवर्तन।

लाइकोपोडियम—दुपहरको ४ बजे ज्वरका आक्रमण, पाकस्थली और उदरगह्वरमें सर्वदा भार मालूम पड़ना, कोष्ठबद्धता, मूत्र रक्तवर्ण।

नक्सभमिका—रातको या सुबह ज्वरको वृद्धि, अधिक समय तक शीत, मुख शीतल और नीलाभ, हाथके नाखून नील, अत्यन्त उष्णता पित्तगत उपसर्ग, मेरुदण्डके नीचेकी हड्डीमें वेदना, ज्वरके समय सिरमें दर्द, भ्रमि, मुख रक्तवर्ण, वक्षस्थलमें वेदना और वमन।

ओपियम—तन्द्रा वा अतिरिक्त निद्रा, नासिकाध्वनि, मुंह फाड़ कर श्वासप्रश्वास लेना, निःश्वासप्रश्वासके समय नाकका बोलना, मस्तकमें रक्ताधिक्य, मुख रक्तवर्ण और स्फीत।

पल्साटिला—दुपहर और शामको ज्वरका अधिक आक्रमण, एक साथ शीत और दाह, श्लेष्मा वा पित्तवमन, जिह्वा मलावृत, प्रातःकालमें मुखकी विरसता, पेटमें जरासी पीड़ा होने पर ज्वरका पुनः आक्रमण, आंखोंमें आंसू, अग्निमान्द्य।

कुनैन-सल्फ—एक दिन बाद एक दिन शीत, तृष्णा, कंपकंपी और ओठ, नाखून नीलाभ, मुख पाण्डु, अत्यन्त दाह, पिपासा।

रसटक्स—दिनके शेषांशमें ज्वरवृद्धि, प्रत्यङ्गादिमें आक्षेप, जंभाई, शरीरका कोई अंश शीतल और कोई उष्ण, दाहके समय पीतपर्णिकाका उद्भेद, अस्थिरता, अत्यन्त कास।

सेम्ब्,कस—अत्यन्त स्वेद, शीतके कारण शरीरमें गुदगुदी होना, शुष्ककास, हाथ पैर बरफ जैसे ठण्डे, मुख अत्यन्त गरम

सिपिया—शीत, चक्षु और ललाटमें भार मालूम पड़ना, हाथ पैरोंमें शून्यता, भ्रमि पिपासाका अभाव, मूत्र पांशुवर्ण और दुर्गन्धयुक्त।

सल्फर शामको या रातको पहले पिपासा और अवसाद, फिर ज्वरका आक्रमण शैत्य, पिपासा और हाथ पैरोंमें दाह मालूम होना, तालूमें अत्यन्त दाह, दुर्बलता, प्रातःकालमें उदरामय।

भेराट्रम एल्ब—अत्यन्त शैत्य किन्तु अन्तरमें दाह, घर्मावस्थामें अत्यन्त पिपासा, अत्यन्त बलकी हानि, वमन, उदरामय।

एक कम्बलको गरम पानीमें भिंगो कर निचोड़ ले, फिर शैत्यावस्थामें रोगीको घुटनों तक उससे ढक दे और उसे गरम पानी पिलाते रहें।

दाहकालमें रोगीके शरीरसे गरम पानी सुखाते रहनेसे लाभ होता है। रातको रोगीके शरीरमें वायु प्रवेश न कर सके, इस बातका ध्यान रखना चाहिये।

२। स्वल्प-विरामज्वर।

एकोनाइट—शीत, अत्यन्त ज्वर, तृष्णा, मुख लाल, द्रुत निश्वास, जलके सिवा सब चीजोंसे अरुचि, पित्त वमन कुछ ललाईके लिये पेशाब यकृत्प्रदेशमें आक्षेप, चिन्ता और चञ्चलता।

ब्रायोनिया—मस्तकमें चक्कर आना, दुर्बलता, वमन, कपालमें भारबोध, सिरमें दर्द, ओठ शुष्क, जिह्वा श्वेत अथवा पीतमलावृत, खाद्य और पानीयमें विकृत आस्वाद, मलबद्धता, मल शुष्क और कठिन, प्रदाहसूचक भाव।

कामोमिला—रोगी अत्यन्त क्रोधी, जिह्वा सफेद वा पीले मैलेसे आवृत, अरुचि, वमन, उदरस्फोति, मल सब्ज और पनीला, कामल रोगीको भांति मुखका आकृति।

चायना—शीत, तुरन्त ही ग्रीष्म, शरीरका चर्म शीतल और नीलवर्ण, कानोंमें शब्द, भ्रमि, यकृत् और प्लीहादिमें वेदना, आकृति म्लान, पाण्डु।

कर्णोद्—सिरमें दर्द, कनीनिकामें वेदना, कमर दाह गोलस्तनाका लक्षण सुधाकान्ति, पेटमें गुड़गुड़ शब्द दुग्ध जैसा मल कृष्णवर्ण और पित्तयुक्त।

बेल मिसियाम्—प्रथमोंमें मात्रापन, यकृत्में दबाव, विकृत, भ्रमि, अन्धकार दर्शन, पैरोंमें असहन वेदना। अचल तथा धावविद्ध और अपस्मार रोगमें आक्रान्त होनेसे सिर्फ व्यवहार्य है।

इपिकाक—तीव्र मस्तकवेदना जिह्वा श्वेत या पीत मलावृत, प्रातःकालमें विकृत आस्वाद अनवरत विवमिषा, भुक्तद्रव्य और पित्त आदि वमन, उदरामय, मल हरित वा फेनायुक्त गुल्मके समान।

लेप्टान्डिक्या—ललाटके मध्य भागमें सर्वदा सिर पीड़ा जिह्वाका मध्यभाग पीतवर्ण, पित्तवमन यकृत्में तीव्र यातना, वमनवार, मल कृष्ण अथवा अलकतवर्ण, कमरोश पेटमें दर्द।

मारक्यूरियस्—मुख पाण्डु, पीत अथवा मृत्तिका वर्ण, दुर्गन्धयुक्त निश्वास ओष्ठ कपोल और मसूढ़ोंमें स्फोटक; उदर स्पर्शासहिष्णु यकृत्में यन्त्रणा, उदरामय मल कठिन मल अथवा मलवत् होना, मूत्र और रक्तवर्ण।

नक्सभमिका—रोगी क्रोधी और रातमें रहनेका अभिलाषी, प्रातःकाल सिरपीड़ा अरुचि तीव्र उद्गार, भुक्तद्रव्य अथवा दुर्गन्धयुक्त रक्त वमन पेटमें महोदरवत् वेदना, रोके रहता रातको ३ बजे बाद रोगीको निद्रामें होनता और सुबहको अवस्था अपेक्षाकृत मन्द।

पोडोफाइलम् मलको प्रबलताका भाव, जीभ पर दांत चुमनेका दाग, तीव्र आस्वाद और अरुचि पित्तवमन मूत्र लालवर्ण यावाकर्म पीतवर्ण, यकृत्में वेदना।

पलसाटिला—पतला विमर्ष प्रत्येक द्रव्यसे विरक्ति उठनेसे ही अन्धकार दर्शन और भ्रमि, बाये सिरमें दर्द और पीछे ही ऐसा मालूम पड़ता मानो सिर फटा जा रहा है। मुखमें दुर्गन्ध विवमिषा, अरुचि रात्रिको मैद, मल श्लेष्मयुक्त अथवा पित्तको तरह मल।

सल्फर—नितान्त स्फूर्तिहोनता, क्रमदेखनेका देखनेका भ्रमि मालम पड़ना, तालू सबदा गरम अरुचि सुधाकान्ति वर्दु उद्गार अनवरत शूल, प्रातःकालके समय उदरामय।

रोगीके समय रोगीको थोड़ा आहार देवें। तृष्णा और वमन निवारणके लिए शीतल जल अथवा बरफ देवें। उपशमके समय भात, मछलीका शोरवा, मक्खन आदि सेवन करावें। श्रम, धूप, शीत, हवा और तेज जल देना चाहिये। जिस घरमें अच्छी भांति वायु सञ्चालित होती हो रोगीको उसी घरमें रखना चाहिये। ईषद् उष्ण जलसे शरीरको पोंछ देना चाहिये।

२। मारिंकावर।

एकोनाइट—मस्त, प्रलाप, भारी बेचैनी, दाह, तीव्र पिपासा मरनेमें अत्यन्त चिन्ता और भय छातीके ऊपर बन्धता, सिरमें दर्द (माना सिर फटा जा रहा है ऐसा दर्द) भ्रमि।

आर्सेनिकम्—मुख और रक्तवर्ण, अचेतनावस्था मस्तकवेदना, जिह्वा मलावृत पांशुवर्ण और शुष्क, दांत शुष्क, निश्वासमें दुर्गन्ध दूषित और दुर्गन्धकारक उदरामय, वर्ण मूत्र और मल अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त।

बेलाडोना—मुख रक्तवर्ण और स्फीत, ओठोंका फटना, सूखना और पांशुवर्ण हो जाना, श्वेत या पीत वर्णका जिह्वालेप, अत्यन्त मस्तकवेदना, दिनरात प्रलाप, विविध मानसिक कल्पना, अनवरत लोगोंको देखना तथा समय समय पर चौंकना और तन्द्रा अथवा अनिद्रा, अनिच्छा मुखमें शुष्कता वमन दुग्ध जैसा पेटमें असहनीय वेदना कोष्ठकाठिन्य, मल शुष्क और कठिन।

ब्रायोनिया—मुख स्फीत और रक्तवर्ण, कनीनिका प्रसारित मस्तकमें सङ्कोचन और नाड़ियोंमें स्पन्दनशीलता, मन्द, प्रकाश और शब्दकोंसे अरुचि, प्रलाप कारने म्भूनो मारने इत्यादि विषयोंकी इच्छा होना, सोते कूदना या दौड़ना लोगोंको देखना, किन्तु निद्रामें अचलता, जिह्वा शुष्क रक्तवर्ण उदरमण्डलमें कर्णमहिष्णुता उसमें सदा मालूम पड़ना।

रसटक्स—अवसाद, मुख रक्तवर्ण और स्फीत, कठ प्रन्थियोंमें नीले दाग, ओठ शुष्क पांशु वा कृष्णवर्ण, जिह्वा शुष्क रक्तवर्ण और मसृण अथवा अग्रभागमें त्रिभुजाकार रक्तवर्ण, प्रलाप श्रवणशक्तिकी हीनता, शुष्क और कष्टप्रद कास, पाकस्थलीमें वेदना, उदरामय, अनिच्छासे मलत्याग, दस्तबन्द रात्रिको अवस्था मन्द।

आर्सेनिक—मुख पाण्डु और मृतदेहवत् शीर्ण, कपाल पर शीतल घर्म, सर्वदा ओठ चूसना, ओठोंका फटना और सूख जाना, जिह्वा शुष्क नीलाभ वा कृष्ण तथा उसके बढ़ानेका असामर्थ्य। अत्यन्त पिपासा, प्रायः सर्वदा थोड़ा थोड़ा पानी पीना, तन्द्रा, प्रलाप और प्रत्यङ्गका कांपना, अत्यन्त अवसाद और यन्त्रणा, मृत्युभय और चाञ्चल्य।

एपिसमेल—अज्ञानावस्था, प्रलाप, जिह्वा निकलनेकी असमर्थता, जिह्वाक्षत, मुख और जिह्वामें शुष्कता, खोलनेमें कष्ट, पेटमें वेदना, कोष्ठकाठिन्य अथवा सर्वदा दुर्गन्धयुक्त, सरक्त श्लैष्मिक मल, वक्ष और उदरमें प्रियङ्गुवत् उद्भेद, अत्यन्त दुर्बलता।

आर्निका—उदासीनता, जिह्वा शुष्क और मध्यस्थलमें पांशु-चिह्न, मानसिक विशृङ्खला सर्वाङ्गमें वेदना और उसके लिए पुनः पुनः करवट लेना, शय्या कठिन मालूम पड़ना, अनिच्छासे प्रस्राव।

लाइकोपोडियम—मुखश्री पीत और मृत्तिकावत्, जिह्वा शुष्क, कृष्ण और श्लेष्मावृत, प्रलाप, तन्द्रा, मुंह फाड़ कर प्रश्वास त्याग, अवसाद, गालोंका बैठ जाना; कपोलमें वृत्ताकार रक्तवर्ण, मानसिक विशृङ्खला, उदरमें गुड़ गुड़ शब्द और भारबोध, एकले रहना होगा ऐसा भय, मूत्रमें रक्तवर्ण बालुकावत् पदार्थ, बायें करवटमें सोनेकी अनिच्छा, सो कर उठनेके बाद अत्यन्त प्रदाह, शामको ४ बजेसे ८ बजे तक अवस्था मन्द।

मारकिउरियस—अत्यन्त दुर्बलता, दांतोंमें विकृत आस्वाद, मसूढ़ोंमें सूजन और क्षत, उदर और यकृत्में वेदना, घर्म, मल म्लान और पीताभ; वर्षाकालमें तथा रातको उपसर्गोंकी वृद्धि।

फस एसिड—अत्यन्त उदासीनता, बोलनेकी अनिच्छा, प्रलाप, पेटमें गुड़ गुड़ शब्द, जलवत् उदरामय, नाड़ी दुर्बल और समय समय पर स्पन्दनहीनता।

क्याल्क कार्ब—छातीमें झटकन, नाड़ीमें कम्पन चिन्ता और चाञ्चल्य नैराश्य, निद्रित होने पर कुचिन्ताके कारण जागरण, शुष्क काश, तीव्र उदरामय और मानसिक कष्ट।

कार्बो भेजिटेबिलिस—मुख पाण्डु और सङ्कुचित; चक्षु कोटरगत, ज्योतिहीन और दर्शनशक्तिका ह्रास, जिह्वा शुष्क, कृष्णवर्ण और समय समय पर कम्प, जीवनी शक्तिका सङ्कोच उदरामय, अवसाद, दाह, शरीरका शेषभाग शीतल और घर्माक्त।

ओपियम्—मुख स्फीत, तन्द्रा, प्रलाप, चक्षु उन्मीलित, नाड़ी दुर्बल, अथवा शीघ्रगतिसम्पन्न, मूत्रहीन मलत्याग।

फसफरस—तन्द्रा, ओठ तथा मुख शुष्क और कृष्णवर्ण, मानसिक वृत्तिका हीनभाव, अल्प प्रलाप, शीतल वस्तुकी अभिलाषा, पीत द्रव्य वमन, दुर्बलता पेट खाली मालूम पड़ना।

ककिउलास—स्नायविक दुर्बलता, मानसिक विशृङ्खला अस्पष्ट कथन, भ्रमि, विवमिषा, मस्तक और मुख गरम।

कलचिकम—मुख सङ्कुचित, उदरमें वेदना, उदरामय, जिह्वा नीलवर्ण, शीतल निःश्वास।

जेलसिमियम—स्नायविक उपसर्ग, मस्तकमें अत्यन्त भारबोध, जिह्वा पीताभ, श्वेत वा पाण्डु स्नायविक शैत्य, दांतोंमें दर्द, पिपासाका अभाव।

हमसेलिस—अत्यन्त रक्तस्राव, उदरगह्वर और उस देशमें वेदना, रक्तस्राव।

हाइओसियामस—मुख स्फीत और रक्ताभ, ओठ जलते, अत्यन्त प्रलाप, वाक्शक्ति और ज्ञानका नाश, अत्यन्त चाञ्चल्य, शय्यासे कूदना और अन्यत्र जानेकी चेष्टा चक्षु रक्तवर्ण और कनीनिका घूर्णायमान, अङ्ग आक्षेप।

लाकेसिस—जिह्वा शुष्क, रक्तवर्ण अथवा अग्रभाग कृष्णवर्ण, ओठ फटे और रक्ताभायुक्त अचैतन्य, प्रलाप, स्पर्शासहिष्णुता, निद्राके बाद उपसर्गका आधिक्य। रोगी समझता है कि मैं मर गया हूं और अन्त्येष्टिक्रियाका उद्योग हो रहा है।

ष्ट्रामोनियम—ज्ञानहानि, अनवरत कथन, सर्वदा उपाधानसे मस्तक उठाना, प्रलाप और अतिरिक्त जलपान, शय्यासे अन्यत्र जानेकी इच्छा, दन्तशर्करा, ओठमें क्षत, जलपानमें अनिच्छा, उदरामय, कृष्णवर्ण मल; दर्शन, श्रवण और वाक्शक्तिका ह्रास, बिना इच्छाके मूत्रत्याग।

पलसाटिला—पाकस्थलीगत विशृङ्खला, उष्णता और

५। सूतिका ज्वर।

एकोनाइट्—गर्भाशयमें अत्यन्त वेदना, अत्यन्त पिपासा, स्पर्शज्ञानका आधिक्य, प्रश्वास क्लेश, मृत्युभय।

आर्सेनिक—अत्यन्त यंत्रणा, चाञ्चल्य और मृत्युभय, शीतल पानीयकी अभिलाषा, द्विप्रहर रात्रिके बाद ज्वर वृद्धि।

बेलेडोना—आकस्मिक वेदना, उदर-गह्वरमें अत्यन्त उष्णता, कराहना, सोते समय कूदना, मस्तकमें रक्ताधिक्य, प्रलाप, आलोक और शब्दसे अरुचि।

ब्राइओनिया—विवमिषा, अचैतन्य, कोष्ठकाठिन्य।

कामोमिला—जरायुमें प्रसववेदनावत् यंत्रणा, अस्थिरता, मूत्र अतिरिक्त तथा ईषत् रञ्जित, मस्तकमें उष्ण घर्म।

हायोसियामस्—प्रत्यङ्ग, मुख और नेत्रच्छद चिड चिडाना, बड़बड़ाना और बिछौने नोचना, उघाडे रहनेकी इच्छा, सम्पूर्ण उदासीनता अथवा अतिरिक्त क्रोधन भाव।

इपिकाक—वामपार्श्वसे दक्षिणपार्श्वमें वेदनाका चलना फिरना, विवमिषा और वमन, जरायुसे गाढ़ा खून निकलना, सब्ज और सजल मल।

क्रियोसोट—पेड़ूमें दाह, कराहना, गर्भाशयकी विकृत अवस्था, जरायुधौत रक्त (पोव) का निकलना, उदरगह्वरमें शीत।

लाकेसिस—जरायुमें स्पर्शासहिष्णुता, निद्राके बाद उसकी वृद्धि, गात्रचर्म कभी शीतल कभी उष्ण।

मारकिउरियस—पाकस्थली और उदरगह्वरमें स्पर्शासहिष्णुता, जिह्वा आर्द्र, अतिशय पिपासा और अतिरिक्त घर्म।

नक्सभोमिका—कोष्ठकाठिन्य, कानमें भनभनाहट शरीरमें भारीपन।

रस्टक्स—अस्थिरता प्रत्यङ्गोंमें बलशून्यता, जिह्वा शुष्क और अग्रभाग लाल।

भेराट अल्ब—वमन, उदरामय शरीरका प्रान्तभाग शीतल, मुख मृतवत् पाण्डु, घर्मसिक्त, प्रलाप, अत्यन्त अवसाद।

रोगिणीको तोशकके ऊपर सुलाना चाहिये। यंत्रणाके स्थानमें पतली पुलटिश अथवा उष्ण स्वेद प्रयोग करें। प्रतिदिन २।३ बार गर्भाशय और योनिप्रदेशको कार्बोलिक एसिडसे धोना चाहिये। उसको निस्तब्ध रखें और उसके घरको विशुद्ध वायुसे परिपूर्ण रखें। प्रदाहिक अवस्थामें लघु मण्ड और बार्लि, फिर जूस, दूध, डिम्ब, फल इत्यादिकी व्यवस्था दें।

६। लोहित ज्वर।

एकोनाइट्—गात्र उष्ण, नाडी द्रुत अतिशय तृष्णा, अत्यन्त भय और मानसिक चिन्ता, विवमिषा और वमन।

अलानथस्—अत्यन्त मस्तकवेदना प्रियंगुवत् उद्भेद, अतिरिक्त वमन, तन्द्रा और अस्थिरता।

एपिस्मेल्—तीक्ष्ण पित्त, जिह्वा अतिशय लाल और क्षतयुक्त नासिकासे दुर्गन्धित श्लेष्मा निर्गम, गलक्षत, उदरगह्वरमें स्पर्शासहिष्णुता।

आर्सेनिक—अत्यन्त अवसाद, अत्यन्त यन्त्रणा चाञ्चल्य और मृत्युभय, अत्यधिक पिपासा, निःश्वासकालमें घर घर शब्द, दुर्गन्धित उदरामय।

वाप्टिनिया—नलो रक्तवर्ण, गोमान्तीवत् उद्भेद, निःश्वास दुर्गन्धयुक्त, जिह्वा फटो और क्षतयुक्त, ईषत् प्रलाप, दांत और ओठोंमें शर्करा।

बेलेडोना उद्भेद मसृण और गाढ रक्तवर्ण, जिह्वा श्वेतवर्ण और कण्टकयुक्त, मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य और प्रलाप, निद्राकालमें चमकित भाव और कूदना।

कालकेरिया कार्ब—गलदेश स्फोत और कठिन, मुख पाण्डु, और शोथयुक्त।

काम्फर—हताशकालमें गलेमें घर घर शब्द और गरम निःश्वास, ललाटमें उष्ण घर्म, उद्भेदोंका आकस्मिक विलीनभाव।

इपिकाक—विवमिषा, पित्तवमन, पेटमें अत्यन्त पीडा, गात्रकण्डूयन अनिद्रा, नैराश्य।

लाइकोपोडियम—तालूमें क्षत, मूत्रमें रक्तवर्ण पदार्थ, नासारोध, गलेमें घर घर शब्द।

मिउरियटिक एसिड—विस्तरे पर लोटना पोटना, नासिकासे पोव निकलना, शरीर पांशु और मुख रक्तवर्ण।

एकोनाइट्—शैत्य, चाञ्चल्य, पिपासा, स्कन्धमें अत्यन्त वेदना, मृत्युभय।

आर्निका—प्रत्यङ्गोंमें दर्द (Soreness), शरीर पर काले दाग, ग्रीवाकी पेशीमें अत्यन्त दुर्बलता।

बेलेडोना—अत्यन्त मस्तक वेदना, प्रलाप, भयङ्कर पदार्थ दर्शन, कणीनिका प्रसारित, दृष्टिभ्रम।

चायना सल्फर—अवसादके कारण चक्षु निमीलन, अत्यन्त अवसाद, मेरुदण्डमें वेदना।

सिमिसिफिउगा—मस्तकमें अत्यन्त वेदना, तालू कट कर गिरा जा रहा है ऐसा मालूम पड़ना, जिह्वा स्फीत क्षणिक सङ्कोचन।

क्रोटलास—प्रबल शिरःपीड़ा, मुख रक्तवर्ण, प्रलाप, शरीर पर सर्वत्र लाल दाग, हृदयकी द्रुत गति, आँखोंका थोड़ा खुलना।

जेलसिमियम—मस्तककी पीछेकी ओर वेदना, मत्तता मालूम होना, अक्षिपुटका सङ्कोचन, पेशिशक्तिका पूर्ण ह्रास, नाड़ी दुर्बल, श्वासकष्ट, विवमिषा, वमन।

लाइकोपोडियम—बेहोशी, प्रलाप, चैतन्यनाशक शिरःपीड़ा, नासारन्ध्रकी वीजनकी भाँति गति, नीचेके गाल सङ्कुचित, प्रत्यङ्ग अथवा सर्वशरीरमें खींचन।

ओपियम—चैतन्य विलोप, मृदु निःश्वास, मस्तकमें रक्ताधिक्य, करोटिकाके पश्चाद्भागमें अत्यन्त भारबोध, नाड़ी अति द्रुत वा अति धीर, लोटना पोटना, अङ्गसङ्कोच, घर्मकालमें अवस्था मन्दतर।

इस ज्वरकी प्रथमावस्थामें घर्मोद्रेक कराने पर लाभ हो सकता है। रोगीको जलमें सुरासार मिला कर (जब तक रोगीको पसीना न आवे तब तक) आध घण्टा अन्तर थोड़ा थोड़ा सेवन कराना चाहिये। कोई कोई उष्ण जलसे धारास्नान और कम्बलसे शरीरको ढक कर घर्मोद्रेक करानेकी व्यवस्था देते हैं। Hypodermic injections of Pilocrapine (चौथाई ग्रेन) अथवा Fl Extra Tabarandi (१०से ३० बूंद तक) का प्रयोग करने पर भी घर्मोद्रेक हो सकता है।

पथ्य—प्रथमावस्थामें लघु और बलकारक द्रव्य व्यवस्थेय है। पीछे धीरे धीरे जूस, दूध, डिम्ब आदिकी व्यवस्था करें।

८। वातरोगयुक्त ज्वर।

एकोनाइट्—एकज्वर, हृत्कम्प, वेदना, मानसिक चिन्ता।

आर्णिका—प्रत्यङ्गमें अत्यन्त वेदना, दूसरेसे मार खानेका भय, शरीरका पीड़ित अंश रक्तवर्ण, स्फीत और कठिन।

आर्सेनिक—दाह, तीव्रयन्त्रणा, घर्म, शैत्य, पिपासा।

बेलेडोना—अस्थिवेदना, सन्धिस्थानमें झड़कन और दर्द, तन्द्रा, अस्थिरता, चमकित भाव।

ब्राइओनिया—अरुचि, मुख शुष्क, पिपासा, कोष्ठ कठिन और पाशु।

कालीफ्राइलाम—कलाई और अङ्गुलिग्रन्थिमें वातिक वेदना, अत्यन्त ज्वर, स्नायविक चाञ्चल्य।

कामोमिला—यन्त्रणाके कारण अत्यन्त उत्तेजित और क्रोधभाव, गण्डस्थलके एक तरफ लाल और दूसरे तरफ पाण्डु, अविरत यन्त्रणा, रात्रिको उपसर्गका प्रभाव।

कैलिडोनियम्—शरीर स्फीत और प्रस्तरवत् कठिन, कोष्ठ मेषपुरीषवत्।

कलचिकम्—अग्निके पास भी शीत भाव, मूत्र अल्प और कृष्णवर्ण, घर्म दुर्गन्ध।

मारकिउरियस—अतिरिक्त घर्म, मल, उदरामय, पीड़ित अंश पांशुवर्ण।

सिगेलिया—ईषत् सञ्चालनके कारण श्वासकृच्छ्र, हृत्कम्प, अत्यन्त चिन्ता।

सल्फर तीव्र यन्त्रणा, तालूदेश अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त अवसाद।

वातज्वरयुक्त व्यक्तिके शरीर पर फ्लानेल व्यवहार करना चाहिये। ऐसा काम न करने देना चाहिये जिससे अधिक परिश्रम और सहसा घर्मरोध हो।

ज्वरकालमें रोगीको नरम शय्या और कम्बल पर सुलाना चाहिये, रुईसे शरीर ढक रखनेसे लाभ होता है। रोगीके घरमें जिससे अच्छी तरह वायु सञ्चालित हो सके, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये।

पथ्य—अनाजका श्वेतसार, साबू, उत्तम सुपक्व फल आदि लघुपाक द्रव्य। विशुद्ध जल, लेमनेड आदि पीनेको देना चाहिये। मादकद्रव्य निषिद्ध है।

हिन्दू ज्योतिषशास्त्रके मतसे तिथि और नक्षत्र आदिमें ज्वरोत्पत्तिका फल—अश्विनी नक्षत्रमें ज्वर होनेसे एक दिन कृत्तिकामें दो दिन, रोहिणीमें तीन दिन, मृगशिरामें पांच दिन पुनर्वसु पुष्या और हस्तामें सात दिन, अश्लेषामें नौ दिन मघामें एक मास पूर्वफल्गुनी, स्वाती और श्रवणामें दो मास, उत्तरफल्गुनी, चित्रा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा और उत्तरभाद्रपदमें एक पक्ष विशाखा उत्तराषाढ़ा और रेवतीमें बीस दिन, अनुराधा और शतभिषामें दस दिन भोग होता है। आर्द्रा, मूला और पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें ज्वर होनेसे मृत्यु होती है।

यदि अश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती मूला, पूर्वफल्गुनी पूर्वाषाढ़ा और पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें, रवि मङ्गल और शनिवारमें चतुर्थी नवमी और चतुर्दशी इन योगोंमें ज्वर हो, तथा चन्द्र और तारा यदि न हो तो उसकी निश्चयसे मृत्यु होती है।

रविवारमें ज्वर होनेसे ७ दिन, सोमवारमें ८ दिन मङ्गलवारमें १० दिन बुधवारमें ३ दिन बृहस्पतिवारमें १२ दिन, शुक्रवारमें ३ या ७ दिन और शनिवारमें १४ दिन भोग होता है।

नक्षत्र अथवा वारके दोषसे यदि ज्वर हो और उसमें यदि चन्द्र और ताराशुद्ध हो तो रोगी शीघ्र आरोग्य लाभ करता है। (ज्योतिष)

शीघ्र ज्वरसे निष्कृति पानेके लिए शान्ति करना आवश्यक है।

नक्षत्रदोषमें सर्प, वार दोषमें धान्य और तिथिदोषमें अन्य वाहन उत्सर्ग करके ब्राह्मणको दान करना चाहिये।

'आरोग्य भास्करादिच्छेत्' शास्त्रसे आरोग्यलाभ करेंगे, इस वचनके अनुसार सूर्यपूजा सूर्य स्तोत्र और सूर्यकवच आदि पाठ करें। भैषज्यरत्नावलीमें नक्षत्रदोषका विषय इस प्रकार लिखा है—कृत्तिका नक्षत्रमें ज्वर होनेसे ८ दिन, रोहिणीमें ३ दिन, मृगशिरामें ५ दिन, आर्द्रामें मृत्यु, पुनर्वसु और पुष्यामें ७ दिन, अश्लेषामें ८ दिन मघामें मृत्यु, पूर्वफल्गुनीमें २ मास उत्तराषाढ़ा उत्तरभाद्रपद और उत्तरफल्गुनीमें १५ दिन, हस्तामें ७ दिन चित्रामें १५ दिन, स्वातीमें २ मास विशाखामें २० दिन, अनुराधामें १० दिन ज्येष्ठामें १५ दिन, मूलामें मृत्यु पूर्वाषाढ़ामें १५ दिन, उत्तराषाढ़ामें २० दिन, श्रवणामें २ मास धनिष्ठामें १५ दिन, शतभिषामें १० दिन पूर्वभाद्रपदमें १८ दिन अश्विनीमें १ पक्ष रेवतीमें १० दिन, भरणीमें ? दिन और भरणी नक्षत्रमें मृत्यु होती है। (भैषज्यर॰ ज्वर शीघ्रमुक्ति)

ज्वरसे शीघ्र छुटकारा पाना हो तो ज्वरवस्ति देनी चाहिये। ज्वरवस्ति देखो।

आजकल एलोपाथी चिकित्साके अनुसार ज्वरमें Injection दिया जाता है।

ज्वरगजकेशरिरस (सं॰ पु॰) ज्वररूप गजका केशरिव य रस। ज्वरनाशक एक औषधका नाम। इसको प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—पारद विष, गन्धक ताम्र सोहागा मिर्च हरिताल, इन सब चीजोंको बराबर मिला करके निबके गोंदमें घोंट कर सम्पुटमें पाक कर ? रत्तीकी गोलियां बनानी चाहिये। इसका अनुपान मधु है। इस दवामें आठ तरहका बुखार जाता रहता है। महादेवने खुद इस औषधिको बनानेके लिए बत लाया था। (भैषज्यर॰)।

ज्वरकुञ्जरपारीन्द्ररस (सं॰ पु॰) ज्वर एव कुञ्जरस्तस्य पारीन्द्र' सिंह रस। ज्वरको दूर करनेवाला एक औषध। इसको प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है मूर्छितरस २ तोला, भस्म १ तोला, रौप्य, स्वर्णमाक्षिक रसाञ्जन सीसा ताम्र, मुक्ता मूंगा, लौह शिलाजीत, गेरू, मनःशिला, गन्धक हिंगुल (यहां सोना और किसी किसीके मतसे तूतिया) प्रत्येक ३ तोला, इन सबको एकत्र घोंट कर ब्राह्मी तुलसी पुनर्नवा, मजिष्ठा? अमोलोतला बोपालता चिरायता, पद्म, गुलैकोन बरियारी, ब्रह्माण्डको गूलपर्णी और गन्धमेदाल इनमेंसे प्रत्येकके रसमें तीन दिन तक घोंटना और ३ रत्तीकी गोलियां बनानी चाहिये। पानका रस इसका अनुपान है। यह अत्यन्त अग्निवर्धक और विषमज्वरको उत्कृष्ट औषध है। इससे कासी, श्वास प्रमेह, शोथ पाण्डु, कामला प्रदरो और सर्वसंयुक्त ज्वर भी शीघ्र प्रशमित होता है। (भैषज्यर॰)

ज्वरकुट्म्ब (सं॰ पु॰) वे उपद्रव जो ज्वरके साथ साथ होते हैं।

ज्वरकेशरी (सं० पु०) ज्वरस्य केशरी, ६ तत्। ज्वरनाशक औषधविशेष। इसकी प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार है—पारद, विष, सोंठ, पीपल, मरिच, गन्धक, हरीतकी, आँवला, बहेड़ा और जायफल, इन सबको समान परिमाणमें ले कर भृङ्गराजके रसमें मर्दन करें। पीछे १ गुञ्जा प्रमाण वटिका बनावें। बालकोंके लिए सरसोंके बराबर गोली बनानी चाहिये। अनुपान—पित्तज्वरमें चीनी, सन्निपात-ज्वरमें पीपल और जीरा।

ज्वरघ्न (सं० पु०) ज्वरं हन्ति हन-टक्। १ गुड़ूची, गुड़ूच। २ वास्तूक बथुआ। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। (त्रि०) ४ ज्वरनाशक।

ज्वरधूमकेतुरस (सं० पु०) ज्वरस्य धूमकेतुरिव यः रस। ज्वरनाशक औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पारद, समुद्रफेन, हिङ्गुल और गन्धक, इन चीजोंको समान भागमें अदरकके रसमें तीन दिन घोंट कर २ रत्तीकी गोलियां बनावें। (भैषज्यर०)

ज्वरनागमयूरचूर्ण (सं० क्ली०) ज्वर एव नाग तस्य मयूर इव यत् चूर्ण। ज्वरनाशक औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—लोह, अभ्र, सुहागा, ताम्र, हरताल, राग, पारद, गन्धक, सहिंजनके बीज, हर्र, आँवला, बहेड़ा, रक्तचन्दन, अतिविषा, वच, पाठा, हलदी दारुहल्दी, उशीर, चीताकी जड़, देवदारु, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, कालाजीरा, तालीशपत्र, वंशलोचन, कण्टकारिका फल और मूल, शठी, तेजपत्र, सोंठ, पीपल, मरिच, गुलञ्च, बच्या, कटकी, क्षेत्रपर्पटी, मोथा बला वेलगरी और यष्टिमधु प्रत्येकका १ भाग; कृष्णजीरा चूर्ण ४ भाग, तालजटाक्षार ४ भाग, चिरायतेका चूर्ण ४ भाग, भाँगका चूर्ण ४ भाग, इन सब चूर्णोंको एकत्र कर लेना चाहिये। इसको १ मासासे लगा कर २ मासा तक सेवन करना चाहिये। इसके सेवनसे नाना प्रकार-का विषमज्वर, दाहज्वर, शीतज्वर, कामला, पाण्डु, प्लीहा, शोथ, भ्रम, तृष्णा, कास, शूल, यकृत् आदि रोग प्रशमित होते हैं। इसको १ मासा वा २ मासा शीतल जलके साथ सेवन करनेसे असाध्य सन्ततादि ज्वर, चयज ज्वर, धातुस्थज्वर, कामज और शोकजज्वर भूताविष्टज्वर अतिवारजज्वर, दाहज्वर, शीतज्वर, चातुर्थिकज्वर, जीर्णज्वर, विषमज्वर, प्लीहाज्वर, उदरी, कामला, पाण्डु, शोथ, भ्रम, तृष्णा, कास, शूल, क्षय, यकृत्, गुल्मशूल, आमवात और पृष्ठ, कटी, जानु और पार्श्वस्थ वेदना का विनाश होता है। (भैषज्यर०)

ज्वरनाशन (सं० पु०) पर्पटक, क्षेतपापड़ा।

ज्वरभैरवचूर्ण (सं० क्ली०) ज्वरस्य भैरव-इव नाशकत्वात् चूर्ण। ज्वरनाशक औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—सोंठ, बला, उदुम्बर, नीमछाल, दुरालभा, हर्र, मोथा, वच, देवदारु, कण्टकारी, काकड़ासींगी, शत-मूली, क्षेत्रपर्पटी, पीपलमूल, ग्वालककड़ीकी जड़, कुड़, शठी, मूर्वामूल, पीपल, हलदी, दारुहल्दी, लोध, रक्त चन्दन, वराहपारुलि, इन्द्रजव, कुटजछाल, यष्टिमधु, चीतामूल, सहिंजनके बीज, बला, अतिविषा, कटकी, ताम्रमूली, पद्मकाठ, अलसायन, शालपर्णी, मरिच, गुलञ्च, बेलगरी, बाला, पद्मपर्पटी, तेजपत्र, गुड़त्वक्, आँवला, पिठवन, पटोलपत्र, शोधित गन्धक, पारद, लोह, अभ्र और मनःशिला इन सबका चूर्ण समभाग, उसमें समुदाय चूर्णकी समष्टिसे आधा चिरायतेका चूर्ण भलीभाँति मिश्रित करना चाहिये। दोषके बलाबलका विचार कर १ मासासे ४ मासा तक सेवन किया जा सकता है। यह चूर्ण सब तरहके यकृत्, प्लीहा, अन्त्रवृद्धि, अग्नि-मान्द्य, अरोचक, रक्तपित्त आदि रोगोंमें शीघ्र आराम पड़ता है। यह विषमज्वरको अति उत्कृष्ट औषध तथा पाण्डु आदि विविध रोगनाशक है। (भैषज्यर०)

ज्वरभैरवरस (सं० पु०) ज्वर भैरव इव यः रसः। ज्वर-नाशक एक औषध। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, सुहागेका फूल, विष, गन्धक, पारद और जाय-फल इन सबको बराबर बराबर ले कर गूमेके रसमें एक दिन घोंट कर १ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। अनुपान—पानका रस। पथ्य—मूंगकी दाल और द्राक्षा। इससे सान्निपातिकज्वर आदि रोग निवारित होते हैं।

(भैषज्यर०)

ज्वरमातङ्गकेशरिरस (सं० पु०) ज्वर एव मातङ्गः तत्र केशरीव। ज्वरको आराम करनेवाली एक दवा। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—पारद, गन्धक, हरिताल, स्वर्ण-माक्षिक, सोंठ, पीपल, मरिच, हर्र, यवक्षार, सज्जी, सेंधा

ज्वराग्नि (सं० पु०) ज्वरं अग्निरिव। ज्वररूप अग्नि। इस का पर्याय—आधिमन्यु।

ज्वराङ्कुश (सं० पु०) कुशकी जातिकी एक घास जिसमें सुगन्ध होती है। यह घास उत्तर-भारतके कुमायूं गढ़वालसे ले कर पेशावर तक उत्पन्न होती है। यह चारेके काममें उतनी नहीं आती। इसको जड़में नोबू जैसो सुगन्ध पाई जाती है। ज्वराङ्कुशकी जड़ और डंठल द्वारा एक प्रकारका सुगन्धित तेल बनता है। इसका तेल शरबत आदिमें पड़ता है। ज्वराङ्कुशरस देखो।

ज्वराङ्कुशरस (सं० पु०) ज्वरस्य अङ्कुश इव यः रसः। ज्वर नाशक एक औषध। प्रस्तुतप्रणाली—पारा, गन्धक और विष प्रत्येकका २ मासे, धतूरेके बीज ६ मासे, त्रिकटु-चूर्ण २४ मासे, इन सबको एकत्र घोट कर २।२ रत्तिकी गोलियां बनावें। अनुपान—नीबूके बीजोंकी गरी और अदरकका रस। इससे सब तरहका ज्वर नष्ट होता है।

२य प्रकार—रस १ भाग, गन्धक २ भाग, सुहागेका फूला २ भाग विष १ भाग, दन्तोबीज ५ भाग इनको एकत्र चूर्ण करें। अनुपान—१ मासा चीनी। औषध सेवन करनेके बाद कुछ पानी पीना चाहिये। यह भेदिज्वराङ्कुश नामसे प्रसिद्ध है। यह ज्वराङ्कुश त्रिदोष ज्वरनाशक है।

३य प्रकार—ताम्र १ भाग और हरिताल २ भाग इनको एकत्र बन करेलाके रसमें घोंट कर भूधरयन्त्रमें पाक करें। फिर मिलके गोदमें घोंट कर भूधरयन्त्रमें पाक करके उसको २।२ रत्तीकी गोलियां बना ले। अनुपान—अदरकका रस। इस औषधका सेवन करनेसे ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थक और शीतसंयुक्त विषमज्वर शीघ्र प्रशमित होता है।

४र्थ प्रकार—पारद २ तोला, गन्धक २ तोला, सोंठ, सुहागा हरिताल और विष १।१ तोला इनको एक साथ घोंट कर भृङ्गराजके रसमें तीन दिन तक भावना दें, चौथे दिन १।१ रत्तीकी गोलियां बनावें। अनुपान—पीपलका चूर्ण और मधु। यह विषमज्वरका नाशक है।

५म प्रकार—मरिच, सुहागा, पारद, गन्धक और विष, इनको एकत्र घोंट कर १।१ रत्तीकी गोलियां बनावें। अनुपान—पानका रस। इससे आठो प्रकारका ज्वर नष्ट होता है।

६ष्ठ प्रकार—गन्धक, रोहितमत्स्य पित्त और विष प्रत्येकका १।१ तोला; त्रिगुण हरितालके द्वारा जारित ताम्र २ तोला; इन चीजोंको एकत्र घोंटें और बिजौरा नीबूमें २१ बार भावना दे कर उसको १।१ रत्तीकी गोलियां बना लें। अनुपान—चीनी इससे भी आठ प्रकारका ज्वर नष्ट होता है। (भैषज्यर०)

ज्वराङ्गी (सं० स्त्री०) ज्वरं अङ्गति अङ्ग-अच गौरादित्वात् ङीष। भद्रदन्तिका, अंडोकी जातिका एक पेड़।

ज्वरातङ्क (सं० पु०) ज्वररोग।

ज्वरातीसार (सं० पु०) ज्वरयुक्तो अतीसारः। ज्वरयुक्त एक प्रकारका अतीसार रोग। यदि पैत्तिक ज्वरमें पित्त जन्य अतीसार अथवा अतीसाररोगमें ज्वर उपस्थित हो, तो दोष और दूष्यके साम्यभावके कारण उन मिलित रोगद्वयको ज्वरातीसार कहा जा सकता है। शुद्ध ज्वर और शुद्ध अतीसारके लिए जो औषधियां बतलाई गई हैं ज्वरातीसारमें उनको व्यवस्था न देनी चाहिये, क्योंकि परस्परवर्द्धक हैं। ज्वरघ्न औषधियोंमेंसे प्रायः सभी भेदक हैं, अतीसारको औषधियां धारक हैं, इसलिए ज्वरघ्न औषधके सेवनसे अतीसारको वृद्धि और अतीसारकी औषधके सेवनसे ज्वरकी वृद्धि होती है। ज्वरातीसारीके लिए पहले लङ्घन और पाचक औषधि व्यवस्थेय है, क्योंकि बिना रसके सम्बन्धके ज्वर वा अतीसारकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। लङ्घन और पाचन द्वारा रसका परिपाक हो कर रोगके बलका ह्रास हो जाता है।

(भैषज्यरत्नावली ज्वरातीसार) ज्वर देखो।

ज्वरान्तक (सं० पु०) ज्वरस्य अन्तक इव, ६-तत्। १ नेपालनिम्ब, चिरायता। २ आरग्वध, अमलतास।

ज्वरान्तकरस (सं० पु०) ज्वरस्य अन्तक इव यः रसः। ज्वरनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—ताम्र, गन्धक, पारद, सौराष्ट्रमृत्तिका, स्वर्णमाक्षिक, लौह, हिंगुल, अभ्र, रसाञ्जन और स्वर्ण, इन सबको बराबर बराबर ले कर चूर्ण करें, फिर भूनिम्बादिके क्वाथमें ३ दिन भावना दे कर २।२ रत्तीको गोलियां बना लें। अनुपान—मधु। इससे नाना प्रकारका ज्वर नष्ट होता है। (भैषज्यर०)

ज्वरापह (सं० स्त्री०) ज्वरं अपहन्ति नाशयति अप-

डालिया और पत्ते डाल दिये। इसके बाद बहुत दूर चलने पर उन्हें जलागम नामकी एक नदी दिखाई दी। उन्होंने राजा सुरेश्वरप्रभसे २० हाथी मांगे और उनके जरिये नदीसे पानी ला कर सरोवरमें डाला तथा मछलियोंको खाद्य प्रदान किया। पीछे उन्होंने घुटने भर पानीमें खड़े हो कर परमेश्वरकी यथा-विहित अर्चना की और ऐसा वर मांगा—"मृत्युके समय जो आपका नाम सुनें, वह त्रयस्त्रिंश स्वर्गमें जन्म ले।" नमस्तस्मै भगवते रत्नशिखिने इत्यादि मन्त्र पढ़नेके बाद उन्होंने मछलियोंको बौद्धधर्मके कुछ गूढ़मतोंकी शिक्षा दी।

मछलियां उसी रातको मर कर पूर्वोक्त स्वर्गमें चली गई। जलनान्तप्रमुख देवपुत्रगण सबसे पहले दश सहस्र मत्स्यरूपमें उक्त सरोवरमें वास कर रहे थे।

ज्वलनाश्मन् (सं० पु०) ज्वलनः अश्मा, नित्य-कर्मधा०। सूर्यकान्तमणि।

ज्वलन्त (सं० त्रि०) १ देदीप्यमान्, दीप्त, प्रकाशमान, जलता हुआ। २ अत्यन्त स्पष्ट। जैसे—ज्वलन्त दृष्टान्त आदि।

ज्वलित (सं० त्रि०) ज्वल-क्त। १ दग्ध, जला हुआ। २ उज्ज्वल, दीप्तियुक्त, चमकता हुआ।

ज्वलिनी (सं० स्त्री०) ज्वल इनि ङीप्। मूर्वालता मुर्रा, मरोड़फली।

ज्वार (हिं० स्त्री०) भारत, चीन, अरब, अफ्रीका, अमेरिका आदिमें उपजाई जानेवाली एक प्रकारकी घास। इसके बालके दाने मोटे अनाजोंमें गिने जाते हैं। सूखी जगह पर इसकी उपज अधिक है। जुन्हरी देखो।

ज्वारभाटा—प्रतिदिन समुद्रके जलकी उच्चता दो बार बढ़ती और घटती रहती है, इस प्रकारके चढ़ाव उतारको ज्वारभाटा कहते हैं। संस्कृत भाषामें ज्वारको वेला कहते हैं। समुद्रके तीरवर्ती अधिवासी प्रतिदिन इसको प्रत्यक्ष देखते हैं। बहुत प्राचीनकालसे हिन्दूगण समुद्रजलको ह्रासवृद्धिका पर्यवेक्षण करते आये हैं, उन्होंने इसका कारण चन्द्रको ही बतलाया है और तिथिविशेषमें जलकी न्यूनाधिकता भी देखी है। बहुतसे संस्कृतग्रन्थोंमें ज्वारका उल्लेख है और चन्द्रको ही उसकी उत्पत्तिका कारण कहा है। कालिदासने अपने रघुवंशमें लिखा है—

"महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनात् गुरुप्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि।"

अर्थात्—चन्द्रके देखनेसे जिस तरह समुद्रका जल अपनी मर्यादा छोड़नेकी चेष्टा करता है, उसी प्रकार पुत्रके मुखको देख कर दिलीपका आनन्द शरीरकी मर्यादामें न समाया।

पञ्चतन्त्रमें लिखा है—"पूर्णिमादिने समुद्रवेला चटति।"

और भी रामायणमें है—

"निवृत्तवेलासमय प्रसन्न इव सागरः।"

कुछ भी हो, स्थूल विषयमें और साधारण व्यवहारमें प्रयोजनीय विषयके लिए प्राचीन हिन्दुओंका यह ज्ञान पर्याप्त होने पर भी ज्वारको उत्पत्ति गति और क्रिया आदिका सूक्ष्म तत्त्वविषय प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें सम्यक् रूपसे आलोचित नहीं हुआ है।

पाश्चात्य विद्वानोंके मतसे भी चन्द्र ही ज्वारभाटाका प्रधान कारण है। चन्द्रके आकर्षणसे पृथिवीस्थ समुद्रका जल उफनता है और उसीसे ज्वारकी उत्पत्ति होती है। परन्तु किस तरह चन्द्रका आकर्षण कार्यकारी होता है, इस विषयमें अभी मतभेद है।

ज्वारके विषयमें सम्यक् पर्यालोचना करनेके लिए कल्पना कीजिए कि पृथिवी गोलाकार और समगभीर एकस्तर जल द्वारा आच्छादित है। अब चन्द्र इसके किसी भी स्थानके ऊपरी भाग पर विद्यमान क्यों न हो, चन्द्रमण्डल पृथिवीपिण्ड और उसके जलभागको युगपत् आकर्षित करेगा। परन्तु चन्द्रका आकर्षण दूरत्वके वर्गानुसार ह्रास होता है। इसलिए पृथिवीका जो अंश चन्द्रकी तरफ परिवर्तित है, उस अंशका जलभाग कठिन पृथिवीपिण्डकी अपेक्षा चन्द्रमण्डलके अधिकतर निकटवर्ती होनेके कारण पृथिवीपिण्डकी अपेक्षा अधिक बलसे चन्द्रकी तरफ आकर्षित होगा। चन्द्रके आकर्षणसे जब उस स्थानका जल ऊँचा होता है, तब पार्श्ववर्ती स्थानका जल उस स्थानकी ओर धावित होगा। फिर उस स्थानके विपरीत भागका पानी यदि पृथिवीपिण्डकी अपेक्षा दूरवर्ती हो, तो कठिन पिण्ड चन्द्रकी तरफ हट आवेगा और पानी पीछेकी तरफ गिर जायगा। इस कारण एक ही समयमें एकही आकर्षणसे पृथिवीके परस्पर दो विपरीत भागोंमें ज्वार होती है। किन्तु इन दोनों ज्वारोंकी उच्चता

अधिक नहीं है। चन्द्रके निकटवर्ती पृथिवीपृष्ठकी अपेक्षा उससे विपरीत भागमें चन्द्रका आकर्षण कम कार्यकारी है, अतएव उस प्रदेशमें ज्वारका प्राबल्य भी थोड़ासा थोड़ा होता है। पार्श्ववर्ती गोलाकार स्थानका पानी कुछ कुछ उन दोनों प्रान्तोंकी ओर दौड़ता है, इस कारण उस वलयाकृति स्थानमें भाटाकी उत्पत्ति होती है। नीचेके चित्रमें कल्पना करो कि, च अर्थात् चन्द्र ग घ पृथिवीके पिण्डको क ख जलमय आवरणकी ओर आकर्षित कर रहा है।
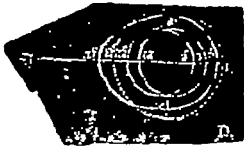
पूर्वोक्त नियमके अनुसार जलभाग क ख जैसा आकार धारण करेगा। इतनेमें कठिन पिण्ड ग घ के स्थान पर आवेगा। इसलिए एकही समयमें क और ख के स्थान पर जल पृथिवीकेन्द्रसे अधिक दूरवर्ती होगा। उन दो स्थानोंमें ज्वार तथा ङ और ज के स्थानमें भाटा होगा। दो स्थानोंमें जलकी उन्नति और उनके मध्यवर्ती चतुष्क स्थानमें जलकी अवनति होनेके कारण पृथिवी अण्डका आकार धारण करती है। इस अण्डके दोनों प्रान्त सर्वदा चन्द्रमण्डलके साथ समसूत्रपातसे ऊपर ऊपर स्थित हैं। पृथिवीकी आह्निकगतिके द्वारा विषुवरेखाके दोनों तरफका स्थान प्रायः २४ घण्टा ५० मिनटमें चन्द्रके नीचेसे लौट आता है। इसलिए उन स्थानोंमें ज्वारकी तरङ्गें १ घण्टेमें प्रायः १००० मील पूर्व दिशासे पश्चिम दिशाकी ओर जाती है। एक एक घंटा पीछे इस प्रकार तरङ्गका अवस्थान देख कर ज्वारका चित्र बनाया गया है। अब यदि विषुवमण्डलके किसी स्थान पर कोई द्वीप समुद्र जलके ऊपर उभर आवे, तो वह स्थान क्रमसे क, ङ ख और ज स्थानके प्रतिदिन घूम कर आवेगा। इस कारण उस द्वीपमें प्रतिदिन दो बार ज्वार और दो बार भाटा होता है। उसको आह्निकज्वार और क ख चिह्नित स्थानमें आनेसे जो ज्वार होगी उल्टी-ज्वार कह सकते हैं। एक आह्निक ज्वारके बाद फिर आह्निक ज्वार होनेमें प्राय २४ घण्टा ५० मिनट समय लगता है और आह्निक ज्वारके बाद प्राय १२ घण्टा २५ मिनट पीछे उल्टी ज्वार होती है। केवल चन्द्रकी आकर्षण शक्ति द्वारा समुद्रमें करीब १ फुट ऊंची ज्वार हो सकती है। ऊपर कहे हुए तरीकेसे ज्वारकी गणना अति सहज मालूम पड़ने पर भी वह अत्यन्त जटिल है। सर्वदा बहुतसी आनुषङ्गिक शक्तियां चन्द्रके द्वारा अनुकूल और प्रतिकूल आचरण कर रही हैं। इनमें प्रत्येक शक्ति अपनी अपनी प्रधान ज्वार तरङ्गें उत्पन्न करती है। दीखनेवाला ज्वार-प्रवाह उन्हीं समस्त शक्तियोंका सङ्घातफल है। इन शक्तियोंमें सूर्यकी आकर्षण-शक्ति प्रधान है।

पृथिवीसे सूर्यका दूरत्व चन्द्रके दूरत्वसे प्रायः ४०० गुणा अधिक होने पर भी सूर्यका वस्तुपरिमाण चन्द्रकी अपेक्षा प्राय २,८४ ००,०० (दो करोड़ चौरासी लाख) गुणा बड़ा है। मध्याकर्षणके नियमानुसार तथा दूरत्वके वर्गानुसार आकर्षण घट जाता है। गणितकी सहायतासे प्रमाणित किया जा सकता है कि, दूरत्वके घनके अनुसार आकर्षणकी ज्वार-उत्पादकशक्ति घट जाती है। इस तरह पृथिवी पर सूर्य और चन्द्रकी ज्वार उत्पादक-शक्तिका अनुपात ३११ : ८०० मात्र है अर्थात् सूर्यकी शक्ति चन्द्रके प्राय ⅜ अंश है, सुतरां बहुत कम नहीं है। यह विराट् शक्ति बहुत समय चन्द्रकी प्रतिकूलतामें कार्यकारी है। अमावस्या और पूर्णिमाके समय यह परस्पर अनुकूल हो कर काम करता है अर्थात् दोनों ही पृथिवीके एक अंशमें ज्वार और एक अंशमें भाटा उत्पन्न करनेकी कोशिश करती है इसी लिए अमावस्या वा पूर्णिमाके दिन ज्वारकी उच्चता दूसरे दिनोंसे अधिक होती है। सप्तमी अष्टमीमें, चन्द्र और सूर्य परस्पर सम्पूर्ण प्रतिकूलतासे कार्य करते हैं, इसलिए थोड़ी ज्वार होती है। अष्टमीसे लगा कर अमावस्या वा पूर्णिमा तक ज्वार क्रमशः बढ़ती रहती है।

पहले कहा जा चुका है कि, चारों तरफसे समुद्रद्वारा परिवेष्टित पृथिवी चन्द्रके आकर्षणसे कुछ कुछ अण्डेका

आकार धारण करती है। इसका एक शीर्ष सर्वदा चन्द्रको तरफ और दूसरा उससे ठीक विपरीत दिशामें रहता है। इस अंडेका गुरुव्यास लघुव्यासको अपेक्षा प्रायः ५८ इंच अधिक है, इसलिए सूर्य शक्तिके द्वारा उत्पन्न अण्डाकारका गुरुव्यास लघुव्यासको अपेक्षा प्रायः २५७ इंच वृहत्तर होगा।

अमावस्या और पूर्णिमाके दिन उनका प्राय: योगफल द्वारा और अष्टमीके दिन वियोगफल द्वारा वास्तविक ज्वार उत्पन्न होती है, अर्थात् पूर्णिमा और अमावस्याकी ज्वार केवल चन्द्रशक्ति द्वारा उत्पन्न ज्वारसे ⅘ गुनी तथा अष्टमीकी ज्वार चन्द्रद्वारा उत्पन्न ज्वारसे ⅗ गुनी होती है। इसलिए पूर्णिमा-ज्वार और अष्टमी ज्वारका अनुपात प्राय: १३:५ अर्थात् ढाई गुनेसे भी अधिक हुआ।

ऊपर लिखे हुए प्रमाणों द्वारा मेरुमें टगद्वयमें ज्वार असम्भव है, क्योंकि मेरुसे लगातार जलराशि विपुवमण्डल पर ज्वारके स्थानमें धावित हो रही है और क विन्दुमें ख विन्दुकी अपेक्षा चन्द्रका आकर्षण अधिक कार्यकारी होनेके कारण आह्निक-ज्वार उलटी-ज्वारकी अपेक्षा प्रबल होगी। किन्तु नाना कारणोंसे वैसा देखनेमें नहीं आता। इसके कारण क्रमशः लिखे जाते हैं।

पूर्वोक्त द्वीप यदि विपुवरेखाके दोनों प्रान्तोंमें बहुत दूर तक विस्तृत हो, तो ज्वार-तरङ्ग द्वीपकूलमें प्रतिहत हो कर उत्तर और दक्षिण दिशामें मेरु-प्रदेशको तरफ अग्रसर होती है तथा द्वीपके दोनों प्रान्तोंको घेर कर दूसरी तरफ यथाक्रमसे दक्षिण और उत्तरको ओर विपुवरेखाकी तरफ समान गतिसे अग्रसर होती है। इस तरह विपुवरेखासे बहुदूरवर्ती सागर उपसागरादिमें भी महासागरकी ज्वार-तरङ्गें व्याप्त हो जाती हैं।

अमावस्या और पूर्णिमाके दिन चन्द्र और सूर्य मिल कर ज्वारकी उत्पत्तिमें सहायता देते हैं, इसलिए ज्वार अत्यन्त प्रबल होती है। किन्तु अष्टमीके दिन उनके परस्पर प्रतिकूल कार्य करनेसे ज्वार उतनी प्रबल नहीं होती। क्रमशः अमावस्या और पूर्णिमा जितनी निकटवर्ती होती जाती हैं, उतनाही ज्वारका परिमाण बढ़ता जाता है। और भी देखा जाता है कि, पृथिवी और चन्द्रका भ्रमणपथ सम्पूर्ण वृत्ताकार न होनेसे पृथिवीमे चन्द्र और सूर्यका दूरत्व सर्वदा समान नहीं रहता। चन्द्र और सूर्यके नीचे अर्थात् पृथिवीके निकटस्थ स्थानमें रहते समय अमावस्या वा पूर्णिमाकी जो ज्वार होती है, उसकी उच्चता औरोंसे अधिक होती है। परन्तु चन्द्र सूर्यके दूरतम स्थानमें रहनेसे ज्वार अल्प उच्च होती है।

विपुवरेखासे चन्द्र आदिका दूरत्व तथा चन्द्र-सूर्यकी अवनति होती है अर्थात् विपुवमण्डलसे दूरत्वके कारण भी ज्वारभाटामें कमी वेशी हुआ करती है। ज्वार-तरङ्गद्वयके दो शीर्षस्थान परस्पर विपरीत दिशाओंमें रहते हैं। अब यदि किसी स्थानके अक्षान्तर और विपुवरेखासे चन्द्रका कौणिकदूरत्व समान और दोनों विपुवरेखाके एक पार्श्वस्थ हों, तो चन्द्रके किसी भी समय उस स्थानके मस्तकके ऊपर आनेसे उस स्थानमें ज्वारतरङ्गका एक शीर्ष होगा। यह पृथिवीकी आह्निकगतिके द्वारा उस स्थानमें प्राय: १२ घंटे बाद चन्द्र जिस देशान्तरमें अवस्थित हो, उससे ठीक विपरीत देशान्तरमें उपस्थित होगा। किन्तु उस समय ज्वारतरङ्गका अन्य शीर्ष अन्य गोलार्द्धमें पूर्वोक्त स्थानसे उसके अक्षान्तरसे दूनी दूरी पर अवस्थित होगा। इसके लिए उलटी ज्वारकी ऊँचाई उस जगह बहुत कम होगी। इस तरह चन्द्र और वह स्थान जब विपुवरेखाके दोनों पार्श्वमें आ जायगा, तब आह्निक ज्वार बहुत कम और उलटी ज्वार बहुत ऊँची होगी। विपुवरेखाके किसी स्थानमें १२ घंटा १४ मिनट अन्तर प्रायः समानभावसे ज्वार होती है।

यूरोपीय विद्वान् अनेक तरहकी परीक्षाओं द्वारा भारत महासागर और आटलाण्टिक महासागरकी ज्वारसे भलीभांति परिचित हो गये हैं। इन दो महासागरोंमें भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न स्थानों पर सर्वोच्च ज्वारका काल पर्यवेक्षण द्वारा स्थिर होता है, ज्वार-तरङ्ग अष्ट्रेलिया-द्वीपके दक्षिणस्थ महासागरमें उत्पन्न हो कर क्रमसे पश्चिमको बङ्गोपसागर और पारस्य उपसागरकी तरफ धावित होती हैं। दाक्षिणात्यके मलवार और करमण्डल दोनों उपकूलोंमें ज्वार समानतासे अग्रसर होती रहती है। इस प्रकारकी ज्वार-तरङ्ग उत्पन्न होनेके प्रायः २०।२० घंटे बाद वह गङ्गा वा सिन्धु नदीके मुहानेमें

या पहुंचती है। लोहितसागरके मुहानेसे उत्तमाशा अन्तरीप तक अफरीकाके समस्त पूर्वउपकूलमें प्रायः एक समयमें सिर्फ एक ही ज्वारतरङ्ग रहती है इसलिए उन स्थानोंमें एकही समयमें ज्वार देखनेमें आती है। उत्तमाशा अन्तरीपको पार कर ज्वारतरङ्ग आटलाण्टिक महासागरमें प्रवेश करती और अमेरिकाकी तरफ अग्रसर होती हैं। उत्तमाशा अन्तरीपमें उपस्थित होनेके प्रायः १३।१४ घंटे बाद ज्वारतरङ्ग इंग्लिश चानेलमें प्रवेश करती है। इस समय इसकी अन्य शाखा उत्तरसागरमें आ कर दक्षिणकी तरफ लौटती है, इसलिए उस स सागरमें एक साथ दोनों दिशाओंसे दो ज्वार तरङ्ग प्रवेश करती है। इस तरह ज्वार तरङ्ग उत्पन्न होनेके प्रायः ४०।५० घंटे बाद स्कॉटलेण्डकी दीपपुञ्जमें उपस्थित होती है।

इस प्रकारसे ज्वार प्रवाह नाना शाखाओंमें विभक्त हो कर एकही समयमें नाना देशान्तरोंको भिन्न भिन्न गतिसे नाना दिशाओंमें अग्रसर होता है। इस कारण प्रायः एक बन्दरमें दो भिन्न दिशाओंसे दो ज्वार-प्रवाह एकही समयमें उपस्थित होते हैं। सुतरां उन प्रवाह दोनोंके संघर्षसे प्रबल ज्वार उत्पन्न होती है। इसी स सागरके किनारे पर स्थित बहुतसे बन्दरोंमें ऐसा होता है। फण्डी उपसागरके किनारेके आसनापोलिस बन्दरमें इस तरह ज्वार जल १२० फुट ऊंचा होता। टङ्क्विनके बाटयम बन्दरमें एकही समयमें भारतमहासागर और चीनसागरसे एक ज्वार और एक भाटा होता है। इन दोनों प्रवाहोंके संमिश्रणके कारण वहां समुद्रका जल सब दा समान रहता है। इसलिए वहां ज्वार भी नहीं होती।

विस्तीर्ण समुद्रमें ज्वार जलकी उन्नति चार एक फुट से ज्यादा नहीं होती और जो कुछ होती भी है वह इतने बड़े समुद्रमें मालूम नहीं पड़ती। परन्तु किसी किसी स्थलों और खाड़ी आदिके मुहाने पर ज्वार जलकी उच्चता १०० फुटसे भी अधिक होती है। ब्रिटिश चानेलका पानी १८ फुट और मोजाम्बिकका पानी ३० फुट ऊंचा होता है। सिवरीन नदीके पास पानी प्रायः ५० फुट ऊंचा होता है और अमेरिकाके नवस्कोसिया प्रदेशमें जलकी उच्चता प्रायः ७० होती है। यह उच्चता चन्द्र सूर्यके आकर्षणसे समुद्रकी स्फीतिके कारण नहीं होती। जिस समय ज्वार तरङ्ग वेगसे प्रवाहित होती है, उस समय उपकूल द्वारा प्रतिहत होने पर पानी उछलने लगता है और पीछेकी तरङ्गोंके वेगसे और भी ऊंची हो कर बड़ी तेजीसे नदीकी तरफ धावित होती है। विस्तीर्ण ज्वार प्रवाह प्रबलवेगसे आते आते यदि क्रमशः कम चौड़े नदीके मुहाने या खाड़ीमें प्रवेश करे, तो वह बढ़ जाता है और पानी ऊंचा हो जाता है। आमेजन नदीका पानी प्रायः १२० फुट ऊंचा हो जाता है।

ज्वारका समय साधारणतः निर्दिष्ट होने पर भी वह सर्वदा ठीक नहीं रहता। एकपर एक आह्निकज्वार २४ घंटा ५० मिनट बाद होती है। किन्तु अमावस्याके दिन सूर्य यदि याम्योत्तररेखाको (Meridian) चन्द्रके पहले ही पार कर जाय तो निर्दिष्ट समयसे पहले ही ज्वार आती है और यदि पीछे पार करे तो निर्दिष्ट समयसे पीछे आती है। पूर्णिमाके दिन भी सूर्य यदि विपरीत दिशाके देशान्तरमें चन्द्रसे पहले पार कर जाय तो ज्वार शीघ्र होती है और पीछे पार होनेसे निर्दिष्ट समयसे देरसे होती है।

अकसोर बन्दरके समुद्रकूलमें आह्निक-ज्वारके १२ घंटा २८ मिनट बाद फिर ज्वार होती है। नवीन ज्वार जलका प्रायः ६ घंटा १४ मिनट बाद खूब ज्यादा भाटा होता है। दो भाटाका भी मध्यवर्ती काल १२ घंटा ५० मिनट है। किन्तु नदीके ऊपरकी तरफ भाटाका समय ज्वारोंकी अपेक्षा थोड़ा होता है अर्थात् उन स्थानोंका पानी जितनी शीघ्रतासे ऊंचा हो कर ज्वार उत्पन्न करता है उससे कहीं अधिक समय उसके धीरे धीरे घटनेमें लगता है।

इसीलिए बहुतसी नदियोंमें ज्वारका जल सहसा प्रवेश करता है और साधारणके समान ऊंचा हो कर तेजीसे स्रोतके प्रतिकूल धावित होता है। पूर्ववर्ती तरङ्ग आगे बढ़ने भी नहीं पातीं, उससे पहले ही पीछेकी तरङ्ग उसके ऊपरसे आ कर पड़ती हैं और ऊंचा हो कर तट पर पहाड़ आता है। इसको बाढ़ (या बाढ़ आना) कहते हैं।

आमेजन नदीकी बन्या (बाढ़) इस तरह प्रायः

१२।१५ फुट ऊँचो हो कर बड़ो तेजीसे धावित होतो है। इस समय नदीके किनारे नौका आदिके रहने पर टूट जातो हैं, इसलिए मल्लाह उन्हें बीचमें ले जाते हैं।

नदी वा खाड़ी आदिका मुहाना पूर्व दिशामें न हो कर यदि पश्चिम वा अन्य किसी दिशामें हो, तो भी उसमें समान ज्वार उत्पन्न नहीं होतो। कहना फिजूल है कि, इस प्रकारको पश्चिमवाहिनी समुद्रमें मिलनेवाली नदियोंमें ज्वारके समय पश्चिमसे पूर्व अर्थात् ठीक विपरीत दिशामें ज्वार हो कर प्रवाहित होतो है।

किसी स्थानमें ज्वारप्रवाह चलते चलते पानो थम जाता है और उसके बाद ही फिर भाटासे स्रोतका पानी घटता रहता है। क्रमसे पानी फिरसे थम जाता है और फिर वहां ज्वार होने लगती है। ये दो स्रोतहीन समय ही यथाक्रमसे उस स्थानके ज्वारभाटाकी चरम उन्नति और अवनति हैं। समुद्रतटके बन्दरोंके लिए यह बात सत्य होने पर भी नदीके मुहानेके लिए प्रयुज्य नहीं है। इस स्थानमें जलराशिकी चरम उन्नतिके बाद भी बहुत देर तक पानी नदीके मुंहमें प्रवेश करता है।

उपकूलसे दूरवर्ती समुद्रमें ज्वार होने पर उसकी जांच नहीं होती। भूमध्यसागरमें सबसे ऊँचो ज्वारके समय भी पानी ७ इंच मात्र ऊँचा होता है। इसका कारण ज्वार समझानेके लिए पृथिवीकी जो अण्डाकृति कल्पना की गई है भूमध्यसागर उसका एक क्षुद्रांशमात्र है। सुतरां समपरिमाण एक सम्पूर्ण वर्तुलके अंशसे अधिक भिन्न नहीं है।

समुद्रको गभीरता और आकारके ऊपर तथा द्वीप, महाद्वीपादिके व्यवधानके कारण ज्वारमें बहुत कुछ वैषम्य देखनेमें आता है।

इंग्लैण्डकी नाविकपञ्जिकामें यूरोपके प्रायः सब बन्दरोंके ज्वारभाटाका समय और उच्चताका विषय लिखा हुआ है। नाविकोंके लिए इसका जानना बहुत जरूरी है। पोताश्रय (जेटो) आदि बनानेवालोंको भी जलकी चरम उन्नति और चरम अवनति जानना जरूरी है। बहुतसी नदियोंके मुहानेमें रेतके टापू रहते हैं, ज्वारके समयको छोड़ कर अन्य समयमें वहांसे जहाज आदि नहीं जा सकते हैं। इसलिए ऐसी नदियोंमें जानेके लिए ज्वारका ज्ञान होना आवश्यक है। नदीके स्रोतकी तरफ और प्रतिकूलमें जानेके लिए ज्वार बहुत सहायता पहुंचाती है। चन्द्र और सूर्यके आकर्षणके सिवा और भी अनेक कारण ज्वारके साथ संसृष्ट है। प्रत्यक्षमें जो ज्वार उत्पन्न होती है, वह प्रधानतः निम्नलिखित कारण-समूहके सङ्घातसे हुआ करती है—

१। चन्द्र और सूर्यकी आह्निक ज्वार-तरङ्ग (Diurnal tide)

२। चन्द्र और सूर्यको उलटो ज्वार-तरङ्ग (Semi diurnal tide)

३। चन्द्रके पाक्षिक और सूर्यके पाण्मासिक अयन परिवर्तनजन्य ज्वार तरङ्ग (Semi-men-trual and semi annual)

इनके साथ और भी कुछ प्राकृतिक परिवर्तनके कारण ज्वारसे कमी बेशी होती है। यथा—

४। वायुराशिके दाबमें समय समय कमीबेशी होनेके कारण सागरजलकी स्फीति और अवनति।

५। वायुकी गतिका सहसा परिवर्तन।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे ज्वारके विषयमें थोड़ा बहुत ज्ञान हो सकता है। यह ज्वार प्रवाह एक समयमें पृथिवीमें बहुत दूर तक व्याप्त होता है। इसके प्रभावसे गभीर समुद्र भी ऊपरसे नीचे तक आलोड़ित होता है। किन्तु बहुत जोर आंधहके समय भी समुद्रका जल प्रचण्ड तरङ्गोंसे भरा हुआ और छिन्नविच्छिन्न होने पर भी कुछ फुट नीचे स्थिर रहता है।

चन्द्र ही ज्वारका प्रधान कारण है, यह पहले ही कहा जा चुका है। चन्द्र और पृथिवी दोनों परस्परके दृढ़ आकर्षणसे बद्ध हो कर एक साधारण भारकेन्द्रके चारों तरफ फिरते हुए सूर्यको प्रदक्षिणा देते हैं। समुद्रका पानी सर्वदा चन्द्रमाके नीचे और उसके ठीक विपरीत भागमें ऊँचा होता रहता है। इस प्रकार दो ज्वार-तरङ्गें सर्वदा चन्द्रके साथ समसूत्रपातसे स्थित हैं। पृथिवी आह्निक गतिके द्वारा इन ज्वारतरङ्गोंको भेद कर भ्रमण करती है। इस अविश्रान्त घर्षणके द्वारा पृथिवीकी घूर्णनशक्ति कुछ कुछ खर्च होती रहती है और उससे ताप उत्पन्न होता है। इस घर्षणके द्वारा प्रतिहित

होने पर पृथिवीकी आह्निकगति क्रमसे ज्ञात होती है, इसलिए दिन क्रमशः बढ़ता है। जितने दिनों तक पृथिवी एक चान्द्रमासमें भी कोई समयमें अपने मेरुदण्ड पर एकबार आवर्त्तन करेगी, उतने दिनों तक इसी तरह पृथिवीका आवर्त्तनकाल ज्ञात होता रहेगा।

इससे अनुमान होता है कि किसी समयमें पृथिवी का एक दिन एक एक चान्द्रमासके समान होगा। उस समय पृथिवी और चन्द्र एक दूसरेकी ओर एक पृष्ठको अनवरत दिखला कर दृढ़भावसे बद्ध कन्दूकद्वयकी भाँति परिवर्त्तन करते रहते हैं। फिर समुद्रजल पृथिवी के दो स्थानों पर ऊँचा हो कर स्थिर रहेगा, इसलिए ज्वार भाटा भी न होगा। किन्तु उस समयके आनेमें अभी लाखों वर्षकी देरी है। इस विषयसे और एक प्रश्नका निराकरण होता है।

चन्द्रमा एक पृष्ठ को सर्वदा पृथिवीकी तरफ दीखता रखता है। इसका कारण बतलानेके लिए बहुतोंने पूर्ववत् अनुमान किया है। चन्द्रमा जिस समय सम्पूर्ण वा अन्ततः ऊपरी भाग पर द्रवावस्थामें था, तब पृथिवीके आकर्षणसे उसमें निःसन्देह प्रबल ज्वार उत्पन्न होती थी। इस प्रकारके ज्वारके भीषण घर्षणसे चन्द्रकी आवर्त्तनगति ज्ञात होती हुई इतनी घट गई है कि, अब एक चान्द्रमासमें एक बार आवर्त्तन होती है।

ज्वाल (सं॰ पु॰-स्त्री॰) ज्वल-ण। १ अग्निशिखा की लपट, आँच। (त्रि॰) २ दीप्तियुक्त जिसमें प्रकाश हो, चमकता हुआ। (स्त्री॰) ३ दग्धान्न, रसोई। (पु॰) आवि वन्। ४ दीप्ति प्रकाश।

ज्वालगर्दभ (सं॰ पु॰) ज्वालगर्दभनाम यो गदः। बाल गर्दभ नामक एक प्रकारका क्षुद्ररोग। क्षुद्ररोग देखो।

ज्वालमाली (सं॰ पु॰) सूर्य।

ज्वाला (सं॰ स्त्री॰) ज्वाल-टाप्। १ दग्धान्न, रसोई। २ अग्निशिखा लपट। ३ जनमेजयमाता तक्षककी पत्नी।

"तक्षकः खलु तक्षकदुहितरमुपयेमे ज्वालां नाम।"

(भारत १।९५।२५)

ऋक्षने तक्षककी लड़की ज्वालासे विवाह किया था। इसके गर्भसे मतिनार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ४ जलन, गर्मी ताप।

ज्वालाजिह्व (सं॰ पु॰) ज्वाला जिह्वेव शिखा यस्य, बहुव्री॰। १ अग्नि। २ चित्रकवृक्षभेद, एक प्रकारका चीता।

ज्वालादेवी (सं॰ स्त्री॰) शारदापीठमें स्थित एक देवी। ये कांगड़े जिलेके अन्तर्गत देरा तहसीलमें विद्यमान हैं। तन्त्रमें लिखा है कि जब महादेव सतीको ले कर घूम रहे थे तब यहां पर सतीकी जीभ गिर पड़ी थी। यहांकी देवीका नाम अम्बिका और भैरवका नाम उन्मत्त है। यहां पहाड़के एक छिद्रसे भूगर्भस्थ अग्निके कारण एक प्रकारकी दीपकके समान प्रज्वलित भाप निकला करती है। इसीको देवीका प्रत्यक्ष मुख कहते हैं।

ज्वालामालिनी (सं॰ स्त्री॰) ज्वालानां माला अस्त्यस्य इनि ङीप्। देवीविशेष तन्त्रके अनुसार एक देवीका नाम। इनका पूजादि विवरण तन्त्रसारमें इस प्रकार लिखा है। 'ओं नम भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे षड़ङ्गन्यास करना पड़ता है। 'ओं नमः हृदयं शीघ्र भगवतीति शिर' स्वाहा। ज्वालामालिनी च शिखा गृध्र गणपरिवृते। तत सर्व्वेत्यादिभिसुर्फ काशिपुप स्वीत् तमो" इस मन्त्र द्वारा षड़ङ्गन्यास करना चाहिए। ओं नमः हरयान नम इत्यादि मन्त्र २१ दिन तक आठ हजार जप करने से जो विषय साधन किया जाता वह अवश्य सिद्ध हो जाता है और इस मन्त्रका जप करनेसे शत्रुका नाश होता है।

ज्वालामुखी (सं॰ स्त्री॰) ज्वलैव मुखं प्रधानं यस्य बहुव्री॰। पीठभेद। यहांके भैरवका नाम उन्मत्त और भैरवीका नाम अम्बिका है। पीठ देखो।

पञ्जाब प्रदेशमें कांगड़ा जिलेके अन्तर्गत देरा तहसीलका एक प्राचीन नगर और हिन्दुतीर्थ। यह अक्षा॰ ३१ ५२ उ॰ और देशा॰ ७६ २० पू॰के मध्य नादौनसे १० मील उत्तर-पश्चिममें कांगड़ासे नादौन जानेके रास्ते पर बियासा नदीके उत्तर सीमावर्ती चांगा नामक दुरारोह पर्वतश्रेणीके नीचे अवस्थित है। पहले यह नगर विशेष समृद्धिशाली था। अभी भी इसकी पूर्व कीर्त्तिका भग्नावशेष देखा जाता है। तन्त्रादिके मतसे यह एक महापीठ है। सतीकी देह विष्णुसे छिन्न होने पर इसी स्थान पर सतीकी जिह्वा गिरी थी।

पर्वतके एक स्थानसे पत्थर छेद कर सोता और एक प्रकारकी दाह्य वाष्प हमेशा निकलती रहती है। दीपके संयोगसे वाष्प जलने लगती है। इस स्थानको देवीका ज्वलन्तमुख कहते हैं; इसी कारण इस स्थानका नाम ज्वालामुखी पड़ा है। सोतेके ऊपर एक मन्दिर बनाया गया है। मन्दिरका विस्तार २० हाथ है और इसके बीचमें एक हौजसे जल और कुछ कुछ गरम वाष्प निकलती है। मन्दिरके याजकगण घृतके संयोगसे वाष्पको अधिक देर तक प्रज्वलित रखते हैं। रणजित् सिंहने मन्दिरका अभ्यन्तर भाग सोनेसे जड़ दिया है। प्रतिदिन बहुतसे यात्री इस तीर्थमें आते हैं। आश्विन मासमें यहां पर्व होता है, जिसके उपलक्षमें बहुतसे यात्रियोंका समागम होता है।

प्रवाद है, कि पूर्व समयमें एकदिन देवीने दक्षिण-देशके एक ब्राह्मणकुमारको स्वप्नमें दर्शन दिया और उत्तर देशमें आ कर इस स्थानको बाहर निकालनेका आदेश किया। उन्हींके कथनानुसार ब्राह्मणकुमारने इस स्थानको बाहर कर यहां भगवतीकी पूजा की और एक मन्दिर निर्माण किया। वर्त्तमान मन्दिर पर्वतसे निकले हुए प्रस्रवणके ऊपर निर्मित है। इसकी चूड़ा और गुम्बज स्वर्णमण्डित है। खड्गसिंहसे प्रदत्त चाँदीके किवाड़ मन्दिरमें सबसे शिल्पनैपुण्यके परिचायक हैं। लार्ड हार्डिञ्ज इस किवाड़को देख कर इतना प्रसन्न हुए थे, कि उन्होंने इसका एक आदर्श बनवाया था। मन्दिरमें एकभी देवमूर्त्ति नहीं है।

मन्दिरका अभ्यन्तर छोड़ कर और भी कई स्थानोंमें जल और कुछ कुछ गरम वाष्प निकलती है। किसी किसीके मतसे यह अग्नि जलन्धर नामक दैत्यके मुखसे निकलती है। कहते हैं, कि महादेवने उस दुर्दान्त दैत्यको परास्त कर उसे एक पर्वतसे दबा रखा था। उस दैत्यके मुखसे आज भी अग्नि बाहर निकलती है। जालन्धर देखो। जो कुछ हो, वर्त्तमान मन्दिर भगवती और इसका मध्यस्थ कुण्ड देवीका उल्कामयी मुख कह कर सर्वत्र विख्यात है।

देवीके मन्दिरके चारों ओर बहुतसे छोटे देवालय, धर्मशाला, पान्थनिवास और पटियालाराज-निर्मित एक सराय हैं। दरिद्र तीर्थयात्री उक्त स्थानमें भोजनादि पाते हैं। यहां बहुतसे ब्राह्मण, संन्यासी, अतिथि, तीर्थयात्री और गाय आदि वास करती हैं। नगरकी अवस्था उतना परिच्छन्न नहीं है, किन्तु इसका बाजार बहुत बड़ा है। यहां अनेक देवमूर्त्ति, जपमाला आदि उपासनाकी सामग्री देखी जाती है।

हिमालय पर्वत तथा इसके आसपासके समतल क्षेत्रोंका उत्पन्न द्रव्य इस नगरकी उत्पन्न द्रव्यसे बदला जाता है। कुलु नामक स्थानमें अफीमकी रफतनी अधिक होती है। नगरमें छह जगह छह गरम सोते बहते हैं। इनके जलमें लवण और पटासियम आइओडाइड मिश्रित हैं, इसी कारण यहांका जल पीनेसे अनेक तरहके रोग जाते रहते हैं। इस नगरमें एक थाना, डाकघर और विद्यालय है। लोकसंख्या प्रायः १०२१ है।

ज्वालामुखीका प्रस्रवण और उष्णवाष्प कबसे निकली है, इसका निर्णय करना कठिन है। सम्भवतः ये दोनों ईसवी शताब्दीके बहुत पहले भी विद्यमान थे। चीनपरिव्राजक युएनचुयाङ्गने भारतवर्षमें आ कर पञ्जाब प्रदेशके एक ही पर्वतके शीतल और उष्ण प्रस्रवणको कथा उल्लेख की है। शायद वही उष्णप्रस्रवण ज्वालामुखीका अग्निकुण्ड होगा। हिन्दुओंमें प्रवाद है, कि दिल्लीश्वर फिरोजशाह तुगलकने ज्वालामुखी देवीका दर्शन और उनकी पूजा कर काङ्गड़ा देश जीता था। पर मुसलमान लोग इसे स्वीकार नहीं करते हैं। मालूम पड़ता है, कि फिरोजशाह बहुत कौतूहलवश ज्वालामुखीके इस आश्चर्य व्यापारको देखने आये थे।

ज्वालावक्त्र (सं० पु०) ज्वालेव वक्त्रमस्य, बहुव्री०। शिव, महादेव।

ज्वालाहलदी (हिं० स्त्री०) रंगनेकी एक हल्दी।

ज्वालिन् (सं० पु०) ज्वाल-इनि। १ शिव, महादेव। २ दीप्ति, तेज, चमक। (त्रि०) ३ शिखायुक्त, लपट, आँच।

ज्वालेश्वर (सं० पु०) मत्स्यपुराणोक्त तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम जिसका उल्लेख मत्स्यपुराणमें किया गया है।

झंझरा (हिं० पु०) १ मिट्टीका जालीदार ढकना जो गरम दूधके बरतन पर रक्खा जाता है। (वि०) २ झीना, जिसमें बहुतसे छोटे छोटे छेद हों।

झंझरी (हिं० स्त्री०) १ जाली, वह जिसमें बहुतसे छोटे छोटे छेद हों। २ जालीदार खिड़की जो दीवारोंमें बनी हुई रहती है। ३ टम चूल्हेकी जाली या झरना जिसके छेदोंमेंसे जले हुए कोयलेकी राख नीचे गिरती है। ४ खिड़कियों या बरामदोंमें लगानेकी लोहे आदिकी कोई जालीदार चादर। ५ वह छिलनी जिससे आटा छाना जाता है। ६ आग उठानेका झरना। ७ दुपट्टे या धोती आदिके किनारेमें बनाया हुआ छोटा जाल जो सिर्फ सुन्दरता या शोभा बढ़ानेके लिये दिया जाता है।

झंझरीदार (हिं० वि०) जालीदार, जिसमें जाली हो।

झंझार (हिं० पु०) अग्निशिखा, आगकी लपट।

झंझी (हिं० स्त्री०) १ फूटी कौड़ी। २ दलालीका धन।

झंझोड़ना (हिं० क्रि०) १ झकझोरना, किसी चीजको तोड़ने या नष्ट करनेकी इच्छासे हिलाना। २ किसी जानवरका अपनेसे छोटे जानवरको मार डालनेके लिये दाँतोंसे पकड़ कर खूब झटका देना।

झंडा (हिं० पु०) १ कपड़ेका टुकड़ा जो तिकोने या चौकोरमें कटा रहता है। इसका सिरा लकड़ी आदिके डंडेमें लगा कर फहराया जाता है। इसका व्यवहार चिह्न प्रगट, संकेत करने, उत्सव आदि सूचित करने या किसी दूसरे उपलक्षमें किया जाता है। कपड़ेका रंग भिन्न भिन्न तरहका होता है। इस पर अनेक प्रकारकी रेखाएं, चिह्न आदि अंकित होते हैं।

विशेष ध्वज शब्दमें देखो।

झंडी (हिं० स्त्री०) संकेत आदि करनेके लिये छोटा झण्डा।

झण्डीदार (हिं० वि०) झण्डीवाला, जिसमें झण्डी लगी हों।

झंडूला (हिं० वि०) १ जिसका मुण्डन-संस्कार न हुआ हो, जिसके सिर पर गर्भके बाल हों। २ मुण्डन संस्कारसे पहलेका। ३ सघन, जिसमें बहुतसी पत्तियां हों। (पु०) ४ वह लड़का जिसका मुण्डन-संस्कार न हुआ हो। ५ मुण्डन-संस्कारके पहलेका बाल। ६ सघन वृक्ष, घना पत्तियोंवाला वृक्ष।

झंपना (हिं० क्रि०) १ ढाँकना, छिपना। २ कूदना, उछलना। ३ आक्रमण करना, टूट पड़ना। ४ लज्जित होना, झेंपना।

झँपड़िया (हिं० स्त्री०) वह कपड़ा जिससे पालकी ढाँकी जाती है, ओहार।

झँपान (हिं० पु०) दो लम्बे बांस बंधे हुए एक प्रकारकी खटोली। इन्हीं बांसोंको चार आदमी अपने कन्धे पर रख कर सवारी ले चलते हैं, झम्पान।

झंपोला (हिं० पु०) छाबड़ा, छोटा झाबा।

झंवराना (हिं० क्रि०) १ कुछ काला पड़ना। २ कुम्हलाना, फीका पड़ना।

झंवाना (हिं० क्रि०) १ कुछ काला पड़ जाना। २ अग्निका मन्द हो जाना। ३ न्यून होना, घट जाना। ४ कुम्हलाना, मुरझाना। ५ झांवेसे रगड़ा जाना।

झक (हिं० स्त्री०) १ धुन, सनक, लहर, मौज २ सनक, काम करनेकी धुन। ३ (वि०) चमकीला, साफ।

झकझक (हिं० स्त्री०) व्यर्थकी बकवाद, फजूल झगड़ा, किचकिच।

झकझका (हिं० वि०) चमकीला, चमकदार।

झकझकाहट (हिं० स्त्री०) चमक, तेजी, जगमगाहट।

झकझेलना (हिं० क्रि०) झकझोरना।

झकझोर (हिं० पु०) १ झटका, झोंका। (वि०) २ तेज, जिसमें खूब झोंका हो।

झकझोरना (हिं० क्रि०) झोंका देना, झटका देना।

झकझोरा (हिं० पु०) धक्का, झोंका।

झकनौद—मध्यभारतमें भोपावर एजेन्सीके अन्तर्गत झबूआ राज्यका एक नगर। यह सर्दारपुरसे १५ मीलकी दूरी पर, झबूआ नगरसे २४ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां एक ठाकुर रहते हैं।

झकाझक (हिं० वि०) उज्ज्वल, चमकीला।

झकार (सं० पु०) झ-कार। झमात्र वर्ण।

"झकार परमेशानि!" (कामधेनुतन्त्र)

झकोरना (हिं० क्रि०) हवाका झोंका मारना।

झकोरा (हिं० पु०) वायुका वेग, हवाका झोंका।

झक्क (हिं० वि०) चमकीला, जगमगाता हुआ।

झक्कड़ (हिं० पु०) तीव्र वायु, अन्धड़।

यही स्थान पुराणोक्त शाकल, बौद्धग्रन्थवर्णित सागल और ग्रीक ऐतिहासिकोंका सङ्गल है। यह पहाड़ गुजरानवालाकी सीमा पर अवस्थित है और उसके दोनों ओर दलदल भूमि है। पहले इस दलदलभूमिसे गहरी झील थी। महाभारतमें शाकल मद्रराजको राजधानी कह कर वर्णित है। आज भी इस प्रदेशको मद्रदेश कहते हैं। बौद्धोंका उपाख्यान पढ़नेसे जाना जाता है, कि सागल कुशराजको राजधानी था। रानी प्रभावती को अपहरण करनेके लिए सात राजाओंने आक्रमण किया था। महाराज कुशने हाथीकी पीठ पर चढ़ नगरके बाहरमें शत्रुओंका मुकाबिला किया था, और वहां उन्होंने ऐसी उत्कट हुङ्कारध्वनि की थी, कि स्वर्ग मर्त्य प्रतिध्वनित हो गया और आक्रमणकारी भय खा कर भाग चले। ग्रीक ऐतिहासिकोंका कथन है, कि अलेकसन्दरने सङ्गलराजाके आक्रमणसे तंग हो कर गङ्गाकुलवर्ती प्रदेशको जय करना न चाहा और उसी स्थान पर आक्रमण किया। उस समय सङ्गल अत्यन्त दुराक्रम्य था, इसके दो ओर गहरी झील और नगर ईंटोंकी चहारदीवारीसे घिरा था। ग्रीकोंने बहुत कष्टसे इसका प्राचीर छिन्न भिन्न कर नगरको अधिकार किया। चीन-परिव्राजक युएनचुयाङ्ग ६३० ई०में शाकल आये थे, उस समय उसका भग्न प्राचीर वर्तमान था और प्राचीन नगरके स्तूपाकृति ध्वंसावशेष-समूहके मध्य एक छोटा शहर था। युएनचुयाङ्गका विवरण पढ़ कर ही कनिंहम साहब शाकलका अवस्थान निर्द्धारण करनेमें समर्थ हुए। अब भी यहां एक बौद्धमठमें प्रायः एक सौ बौद्ध सन्यासी रहते हैं। यहां दो स्तूप भी हैं जिनमेंसे एक महाराज अशोकका बनाया हुआ है। चन्द्रभागाका निम्न अववाहिकास्थित शेरकोट अलेकसन्दरसे अधिकृत सम्भो नगरसा अनुमान किया जाता है। बाद युएनचुयाङ्गने इस स्थानको एक प्रदेशको राजधानी कह कर वर्णन किया है।

इस जिलेका आधुनिक इतिहास शियाल-राजवंशके विवरणमें संश्लिष्ट है। ये शियालराजगण मुलतान और शाहपुरके मध्यवर्ती एक विस्तीर्ण प्रदेश पर राज्य करते थे। ये दिल्लीके सम्राट्की अधीनता कुछ कुछ स्वीकार करते थे। अन्तमें रणजित्‌सिंहने इन्हें पूर्ण रूपसे पराजित किया। झङ्गके शियालगण राजपूत कुलोद्भव हैं, लेकिन मुसलमान धर्मका अवलम्बन करते हैं। इन लोगोंके आदिपुरुष रायशङ्कर हैं। ये ईसाकी तेरहवीं शताब्दीके प्रारम्भको जौनपुरमें रहते थे। इनके पुत्र शियाल इस नगरको छोड़ कर मुगल-प्रपीड़ित पञ्जाब देशको आये। एकदिन वे नगरस्थापनका उपयुक्त स्थान ढूंढ़ते ढूंढ़ते पाकपत्तनके विख्यात फकीर बाबा फरीदउद्-दीन शाकरगञ्जके सामने अकस्मात् आ गिरे। फकीरको वाक्पटुतासे मुग्ध हो कर शियाल मुसलमान धर्ममें दीक्षित हुए। ये कुछ काल तक शियालकोटमें रह कर अन्तमें शाहपुर जिलेके साहिवालमें चले गये और वहां विवाह कर रहने लगे। शियालके निम्न छठे पुरुष माणकने १४८० ई०में मानखेड़ नगर स्थापन किया और उनके प्रपौत्र मालखाँने १४६२ ई०में चन्द्रभागाके किनारे झङ्गशियाल निर्माण किया। इससे चार वर्षके बाद मालखाँ सम्राट्के आदेशानुसार लाहोर पहुंचे और उन्होंने सम्राट्को वार्षिक निर्दिष्ट कर दे कर झङ्ग प्रदेशको प्राप्त किया। उसी समयसे उनके वंशधर झङ्गमें राज्य करने लगे।

उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें सिखगण पराक्रान्त हो उठे। भङ्ग प्रदेशके करमसिंह दुलुने झङ्ग जिलेके चिनियोत दुर्ग पर अधिकार किया। १८०३ ई०मे रणजित्‌सिंहने उस दुर्ग पर आक्रमण कर अपना अधिकार जमाया। इसके बाद रणजित्‌सिंह जब झङ्ग पर आक्रमण करनेका उद्योग करने लगे, तब शियाल-वंशके अन्तिम राजा अहमदखांने वार्षिक ७० हजार रुपये और एक घोड़ी देनेकी प्रतिज्ञा कर छुटकारा पाया।

इससे तीन वर्ष बाद महाराज रणजित्‌सिंहने पुनः झङ्ग पर आक्रमण किया। अहमदखांने भाग कर मुलतानमें आश्रय लिया। रणजित्‌सिंह सर्दार फतेहसिंहको झङ्गका सर्दार बना कर आप स्वस्थानको लौट गए। उनके जाने पर अहमदखां पुनः कर दे कर उनके राज्यका कई अंश दखल करने लगे। १८१० ई०में रणजित्‌सिंहने मुलतान अधिकार किया और उनके शत्रु मुजफ्फरखांको अहमदखांने सहायता दी थी, इसी अपराधमें रणजित्‌सिंहने उन्हें कैद कर लिया। लाहोरमें आ कर रण-

रणजितसिंहने अहमदखांको एक जागीर दी थी। अहमदके बाद उनके पुत्र इस्मायलखाँ आधिपत्य करने लगे। उनकी मृत्युके बाद उनके भाई इस्माइलखाँ अधिकार पानेकी चेष्टा करने लगे, किन्तु मूलराजकी प्रतिद्वन्द्वितासे सफलता प्राप्त कर न सके। १८४० ई०में पञ्जाब अंगरेजके अधिकारमें आ जाने पर झङ्ग जिला गवर्मेण्टके हाथ लग गया। १८४८ ई०में इस्माइलखाँ विद्रोही राजाओंको दमन कर गवर्मेण्टको सहायता की थी तथा सिपाही विद्रोहके समय एक दल अश्वारोहीके साथ साथ अङ्गरेजका पक्ष अवलम्बन किया था, इसीसे गवर्मेण्टने उन्हें आजीवन एक जागीर और खाँ बहादुरकी उपाधि प्रदान की है।

यहांकी जनसंख्या १००२६५६ के लगभग है। यह जिला ६ तहसीलोंमें विभक्त है,—झङ्ग चिनियोत, शोरकोट, लायलपुर समुन्द्री और तोबा टेकसिंह।

अन्यान्य छोटे छोटे शहरोंमें शोरकोट और अहमदपुर प्रधान है। चिनियोत तहसील भी कुछ कुछ उर्वरा है। अधिवासी अपने अपने कूपके निकट अकेला रहनेको पसन्द करते हैं। कहीं कहीं जमादार अर्थात् चौधरीके कूपके चारों ओर उनके तथा दो चार प्रजाके घर और एक दुकान देखी जाती है। इस जिलेका भाषा पञ्जाबी और जाटकी (मुलतानी) है।

इस जिलेका रेतल , कृषिकार्यके लिए उपयोगी है। बिना पानी पड़नेसे कहीं भी अच्छी तरह फसल नहीं होती है। नदीके किनारेसे कुछ दूर तककी जमीनमें ही अधिकांश फसल उपजती है और उससे कुछ दूर की ऊँची भूमि अनुर्वर है। नदीके किनारे इमिया पड़ पड़ जानेसे अच्छी फसल होती है सही, किन्तु बाढ़के उपद्रवसे घास और सम्पत्ति नष्ट हो जाया करता है। यहां धानकी फसल नहीं होती। बसन्तकालमें गेहूं, जौ, चना मटर आदि तथा शरत् कालमें ज्वार कपास हटं, तिल सुपारी आदि उत्पन्न होती हैं।

बहुतसे मनुष्य केवल पशु चरा कर जीविका निर्वाह करते हैं। जिलेकी आधेसे अधिक भूमि चरानेको उपयोगी है। पशु चुरानेके अपराधमें दण्डकी बातें यहां प्रायः सुनी जाती है। बहुत मनुष्य घोड़े और ऊँट पालनेको पसन्द करते हैं। झङ्गका घोड़ा सर्वत्र विख्यात है। विशेषतः यहांकी घोड़ी पञ्जाबके मध्य सबसे उत्कृष्ट और प्रशंसित है।

इस जिलेके अधिकांश कृषक बिरकावी बन्दोबस्तके अनुसार खेती करते हैं। बहुतसा अपनी इच्छाके अनुसार खेती करते, इच्छा होने पर ही जमीन छोड़ भी देते हैं। अधिकांश कृषक उत्पन्न शस्यसे ही मालगुजारी चुकाते हैं। सैकड़े एक मनुष्य नकद दे कर राजस्व प्रदान करता है।

झङ्ग जिलेका वाणिज्य उतना अच्छा नहीं है। तरह तरहके द्रव्यजातका अन्तर्वाणिज्य ही प्रधान है। रावी नदीके किनारे और गुजरानवाला जिलेके वजीराबादसे यहां अनाजकी आमदनी होती है। झङ्ग और मघियाना नगरमें मोटा कपड़ा तैयार होता है। उन कपड़ोंको काबुली वणिक्गण खरीद कर ले जाते हैं। यहां सोने और चाँदीका गोटा तथा चमड़ेके द्रव्यादि तैयार होते हैं।

मुलतानसे वजीराबाद तकका रास्ता इस जिलेके शोरकोट, झङ्ग, मघियाना और चिनियोत हो कर गया है। एक दूसरा रास्ता मण्टगोमरी जिलेके लाहोर मुलतान रेलवेके चीचावतनी स्टेशनसे चाकमरेरो होते हुए डेरा इस्माइलखाँ तक गया है। चीचावतनी डेरा इस्माइलखाँ और झङ्ग नगरमें प्रतिदिन एक डाकगाड़ी आती जाती है। सिन्धु-पञ्जाब और दिल्ली रेलवेकी लाहोर और मुलतान शाखा इसी जिलेके समीप हो कर गई है। वितस्ता और चन्द्रभागा नदीके सङ्गम स्थानके कुछ नीचे एक सेतु प्रस्तुत हुआ है। जिलेके सब स्थानोंमें उन दो नदियों हो कर बड़ी वाणिज्यकी नावसे माल आती जाती है।

भूमिका राजस्व तथा अन्यान्य करके अलावा यहां चराने और चार प्रस्तुत करनेकी भूमिसे भी गवर्मेण्टको बहुत आमदनी होती है। एक डिपुटी कमिश्नर, तीन ऐक्स्ट्रा असिष्टाण्ट कमिश्नर और अन्यान्य कर्मचारी तथा पुलिस द्वारा यहांका शासनकार्य चलाया जाता है। मघियाना नगरमें जिलेकी अदालत, कारागार और गवर्मेण्ट विद्यालय आदि हैं। शासनकार्य और राजस्व वसूल

करनेकी सुविधाके लिये यह जिला ४ तहसील और २५ थानोंमें विभक्त है। झङ्ग, मघियाना, चिनियोत, शेरकोट और अहमदपुरमें म्युनिसपालिटी है।

इस जिलेकी जलवायु बहुत स्वास्थ्यकर है। व्याधिमें ज्वर और वसन्त प्रधान हैं। झङ्ग, मघियाना, चिनियोत, शेरकोट, अहमदपुर और कोट इसागाहनगरमें गवर्मेण्टके दातव्य औषधालय है।

२ पञ्जाब प्रदेशके पूर्वोक्त झङ्ग जिलेकी मध्यस्थ तहसील। यह अक्षा० ३१° ०´ से ३१° ४७´ उ० और देशा० ७१° ५८´ से ७२° ४१´ पू०में अवस्थित है। यहांका भूपरिमाण १४२१ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १८४४५४ है। इसमें झङ्ग मघियाना नामक शहर और ४४८ ग्राम लगते हैं। यहांका राजस्व प्रायः २५६०००) रु० है। इसमें जिलेकी अदालत और पांच थाने हैं।

३ पञ्जाब प्रदेशके अन्तर्गत झङ्ग जिलेका प्रधान नगर और म्युनिसपालिटी। यह अक्षा० ३१° १८´ उ० और देशा० ७२° २०´ पू० पर झङ्गसे दो मील दक्षिण जेच दोआब पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २४३८२ है जिसमेंसे १२१८८ हिन्दू और ११६४८ मुसलमान है। झङ्ग और मघियाना म्युनिसपालिटीके अन्तर्गत है और दोनों एक नगरमें गिने जा सकते हैं। चन्द्रभागा नदीके वर्तमान गर्भसे ३ मील पूर्व और वितस्ताके साथ उसके सङ्गम-स्थानसे १० और १३ मील उत्तर पश्चिममें ये दोनों नगर अवस्थित हैं। झङ्ग नगर निम्न भूमि है और वाणिज्यस्थानसे कुछ दूरमें पड़ता है। सरकारी कार्यालय आदि जबसे मघियानेमें उठा लिये गये हैं, तबसे झङ्गको अवनति हो गई है। शहरमें केवल एक बड़ी सड़क है। जिसके दोनो बगल ईंटोंके बने हुए पथ हैं। वे पथ ईंटोंके छोटे छोटे टुकड़ोंसे बंधे हैं और पानीके निकासका अच्छा प्रबन्ध भी है। नगरके बाहर विद्यालय, झरना, औषधालय और थाना है। शियालवंशके मालखांने १४६२ ई०में पुराना झङ्ग नगर निर्माण किया था। वह नगर बहुत समय तक झङ्गके मुसलमान राजाओंकी राजधानी था, बाद बहुत समय हुआ कि वह चन्द्रभागाके सोतेसे बह गया है। वर्तमान नगर १६वीं शताब्दीके प्रारम्भको औरङ्गजेब सम्राट्के शासनकालमें झङ्गके वर्तमान नायसाहबके पूर्वपुरुष लालनाथसे स्थापित हुआ है। दूरसे नगरका एक पार्श्व देखने पर केवल उस अप्रीतिकर बालुकास्तूपके सिवा और कुछ देखनेमें नहीं आता है। किन्तु दूसरी ओरसे देखने पर सुन्दर उद्यान, सरोवर, कुञ्जवन अट्टालिका आदि मनोरम दृश्य देखनेमें आता है। यहांके अधिकांश अधिवासी शियाल और चत्रिय हैं। यहां मोटे कपड़े का व्यवसाय अधिक होता है। काबुली सौदागर इसे खरीद कर अपने देशको ले जाते हैं। वजीराबाद और मियनवालिसे अनाजको आमदनी होती है।

झज्झर (हिं० पु०) एक प्रकारका पानीका बरतन। इसका मुंह चौड़ा होता है और यह पानी रखनेके काममें आता है। इसकी ऊपरी तह पर पानीको ठण्डा करनेके लिये थोड़ासा बालू लगा दिया जाता है, और सुन्दरताके लिये तरह तरहकी नकाशियां भी की जाती है। इसका व्यवहार प्रायः गरमीके दिनोंमें होता है क्योंकि उस समय मनुष्योंको ठण्डा पानी पीनेकी चाह रहती है।

झज्झर—पञ्जाब प्रदेशस्थ रोहतक जिलेकी दक्षिणकी तहसील, यह अक्षा० २८° २१´ से २८° ४१´ उ० और देशा० ७६° २०´ से ७६° ५६´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४६६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १२३२२७ है। इस तहसीलका अधिकांश बालुकामय है। नजाफगढ नामक झीलके निकटस्थ स्थान जलमय है। यहांका प्रधान उत्पन्न द्रव्य बाजरा, ज्वार, जौ, चना, गेहूं आदि है। एक सहकारी कमिश्नर, एक तहसीलदार और एक अनररी मजिष्ट्रेट विचार-कार्य सम्पादन करते हैं। इस तहसीलमें २ दीवानी, ३ फौजदारी और २ थाने हैं। रिवारी-फिरोजपुर रेलपथ इस तहसीलके प्रान्त हो कर गया है। इसमें झज्झर नामका एक शहर और १८८ ग्राम लगते हैं।

२ पञ्जाब प्रदेशस्थ रोहतक जिलेकी झज्झर तहसीलका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० २८° ३६´ उ० और देशा० ७६° ४०´ पू० पर रोहतक जिलेसे २१

नाममे प्रसिद्ध है। लोकसंख्या प्राय: ५६३८ है। दरभङ्गाके महाराजको सन्तानोंने यहाँ जन्मग्रहण किया, इसीसे झञ्झारपुर विशेष प्रख्यात है। कहा जाता है, कि पहले दरभङ्गाके महाराजगण सभी निःसन्तान अवस्थामें प्राणत्याग करते थे। महाराज प्रतापसिंहने इससे अत्यन्त भयभीत हो कर निकटवर्त्ती सुरनम् ग्रामवासी शिव रतनगिरि नामक किसी एक साधुकी शरण ली। साधु झञ्झारपुरमें आ अपने सिरसे एक बाल गिरा कर बोले कि जो मनुष्य झञ्झारपुरमें वास करेगा उसके पुत्र अवश्य होगा। प्रतापने उसी समय उस स्थान पर एक घरकी नीवँ डाली, किन्तु घर तैयार हो जानेके पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। उनके भाई मधुसिंह मकान बनवा चुकने पर कुछ दिन वहीं रहे थे। दरभङ्गाकी महारानी गर्भवती होनेसे ही इस स्थानपर भेजी जाती हैं। पहले इस स्थान पर किसी राजपूत-वंशीयका अधिकार था, पीछे महाराज छत्रसिंहने उनसे यह ग्राम खरीदा था।

इस स्थानकी रक्तमालादेवीका मन्दिर विख्यात है। देवीकी अर्चना करनेके लिये बहुत दूरसे मनुष्य आते हैं। पीतलकी चीज प्रस्तुत होनेके कारण भी यह स्थान मशहूर है। इस स्थानके घनवट्टे और गङ्गाजली अत्यन्त सुन्दर होती है। बाजारमें अनाजके बड़े बड़े कारखाने हैं। झञ्झारपुरसे हिशाघाट मधुबनी, नराया आदि स्थानोंमें सड़कें हो जानेसे व्यवसाय दिनों दिन घट रहा है। बाजारके पाससे दरभङ्गासे पुर्णिया तक एक बड़ी सड़क चली गई है।

इस ग्राममें हिन्दू और मुसलमान दोनोंका वास है। किन्तु हिन्दूकी संख्या कुछ अधिक है।

झञ्झावायु (सं० पु०) झञ्झाध्वनियुक्तो वायु, मध्यपदलो०। १ झञ्झावात, वह आँधी जिसके साथ पानी भी बरसे। २ वेगवान् वायु, प्रचंड वायु।

झट (हिं० क्रि वि०) तत्क्षण, उसी समय, तुरंत।

झटक (सं० पु०-स्त्री०) अन्त्यज वर्णविशेष।

"दपायरण्ये झटकस्य कूपे द्रोणां जल कोशविनिर्गतश्च।" (अत्रि)

झटकना (हिं० क्रि०) १ झटका देना, हलका धक्का देना। २ झटका देना, झोंका देना। ३ बलपूर्वक किसीकी चीज लेना, ऐंठना।

झटका (हिं० पु०) झटकनेकी क्रिया, झोंका। २ झटकनेका भाव। ३ पशु वधका एक प्रकार। इसमें वह अस्त्रके एकही आघातसे काट डाला जाता है। ४ आपत्ति। ५ कुश्तीका एक पेंच।

झटकारना (हिं० क्रि०) झटकना, किसी चीजके गिराने या नष्ट करनेकी इच्छासे हिलाना।

झटपट (हि० अव्य०) अतिशीघ्र, फौरन, जल्दी।

झटा (सं० स्त्री०) झट-अच्-टाप्। १ शीघ्र। २ भूम्यामलकी, भू आँवला।

झटाका (हिं० वि०) झटका देखो।

झटि (सं० पु०) झटति परस्परं संलग्नं भवतीति झटऔणादिक इन्। १ क्षुद्र वृक्ष, छोटा पेड़।

झटिति (अव्य०) झट् क्षिप् झट-इन् क्तिन्। १ द्रुत तेज। २ शीघ्र, जल्दी। इसके पर्याय—स्राक्, अञ्जसा, आह्नीय, सपदि, द्राक्, मंक्षु, सद्यः और तत्क्षण है।

"रथस्तरा नेह झटित्ति यमुना मञ्जुकुञ्जं जगाम।"

(पदाङ्कदूत)

झड़ (हिं० स्त्री०) १ तालेके भीतरका खटका जो तालीकी चोटोंसे हटता बढ़ता है। २ झड़ी देखो।

झड़न (हिं० स्त्री०) १ झड़ी हुई चीज, जो कुछ झड़ कर गिरे। २ झड़नेकी क्रिया या भाव।

झड़ना (हिं० क्रि०) १ कण या बूंदके रूपमें गिरना। २ अधिक संख्यामें गिरना। ३ वीर्यका पतन होना। ४ परिष्कार करना, झाड़ा जाना।

झड़प (हिं० स्त्री०) १ लड़ाई, टंटा। २ क्रोध, गुस्सा। ३ आवेश, जोश। ४ अग्निशिखा, लौ, लपट। ५ झड़ाका देखो।

झड़पना (हिं० क्रि०) १ आक्रमण करना, हमला करना। २ छीप लेना। ३ लड़ना, झगड़ना। ४ बलपूर्वक किसीकी कोई चीज छीन लेना।

झड़पा झड़पी (हिं० स्त्री०) गुत्थमगुत्था, हाथा-पाई।

झड़बेरी (हिं० स्त्री०) १ जङ्गली बेर। २ जङ्गली बेरका पौधा।

झड़वाना (हिं० क्रि०) झाड़नेका काम किसी दूसरेसे कराना।

झड़सातल—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत वल्लभगढ़ जागीरका

एक शहर। यह अक्षा० २८ १८ उ० और देशा० ७७ २१ पू० पर दिल्लीसे २८ मील दक्षिण मथुरा जानेके रास्ते पर अवस्थित है।

झड़ाक (हिं० क्रि वि०) झड़ाका देखो।

झड़ाका (हिं० पु०) १ दो जीवोंको परस्पर मुठभेड़। (क्रि-वि०) २ शीघ्रता पूर्वक चटपट।

झड़ाझड़ (हिं० क्रि वि०) अविरल, लगातार बराबर।

झड़िया (वा झरिया)—१ मध्यप्रदेशवासी प्राचीन जाति विशेष। शायद झाड़ अर्थात् गुल्म जङ्गलमें इनका वास झड़िया या झरिया पड़ा होगा। इनका आचार-व्यवहार प्रायः अन्य नीच जातियोंसे मिलता जुलता है। ये अनेक ग्राम्य देवताओंकी उपासना करते हैं।

२ गुजरातकी एक जाति। ये पहले जङ्गली हाथियोंको पकड़ा करते थे।

झड़ी (हिं० स्त्री) १ बूंदोंके रूपमें बराबर गिरनेकी क्रिया। २ छोटी छोटी बूंदोंकी वर्षा। ३ लगातार वर्षा, झड़ी। ४ तालेके भीतरका वह अंश जो चाभी लगनेसे हटता बढ़ता है। ५ बिना रुकावटके लगातार बहुतसी बात कहते जाना या चीजें रखते या निकलते जाना। जैसे—इन्होंने तो गालियोंकी झड़ी बांध दी।

झणझणा (सं० अव्य०) झणत्-शब्द। १ अव्यक्त शब्द विशेष। २ अव्यक्त शब्दयुक्त। झनझन शब्द।

झणझणायमान (सं० त्रि०) झणझण शब्द शालक। जो झणझण शब्दसे शब्दित होता हो, जो झनझन शब्द करता हो।

झणत्कार (सं० पु०) झणत् इत्यव्यक्तशब्दस्य कार करण यत्। झन झनका शब्द।

झण्टी (सं० स्त्री०) कुन्दवत् एक प्रकारकी घास।

झण्डासिंह—भङ्गी नामक सिक्खसम्प्रदायके एक नेता। इनके पिता हरिसिंह भङ्गी सिक्ख अर्थात् सम्प्रदायके सर्दार थे। इनकी दो स्त्रियाँ थीं। एकके गर्भसे झण्डासिंह और गण्डासिंह तथा दूसरीके गर्भसे चड़त्सिंह दीवानसिंह और ठाकुरसिंह उत्पन्न हुए थे। हरिसिंहकी मृत्युके बाद झण्डासिंह पितृपद पर अभिषिक्त हुए। इन्हींके समयमें भङ्गीसम्प्रदाय सबसे पराक्रान्त और प्रसिद्ध हुआ था। झण्डासिंह और उनके भाइयोंने बहुतसे सम्भ्रान्त सिक्ख सर्दारोंसे मित्रता कर ली।

१७६६ ई०में झण्डासिंहने मुलतान आक्रमण कर शतद्रुके किनारे मुसलमान-शासनकर्त्ता सुजाखाँ और दाऊदके पुत्रोंको परास्त कर दिया। सन्धिके अनुसार पाकपत्तन दोनों राज्योंकी मध्य सीमा निर्धारित हुआ।

इसके बाद झण्डासिंहने कसूर आक्रमण कर वहांके पठान अधिपतिको पराजित किया। पीछे इन्होंने मुलतानके नवाबसे सन्धिभङ्ग करके १७७२ ई०में दुर्ग आक्रमण किया। परन्तु कई महीने अवरोध किये रहनेके बाद दाऊदके पुत्र तथा अफगानों द्वारा परिचालित अफगान सेनाने सिक्खोंको विदूरित कर दिया।

दूसरे वर्ष झण्डासिंहने बहुतसे सिक्ख सर्दार और प्रभूत सैन्य ले कर पुनः मुलतान पर आक्रमण किया। इस समय मुलतानमें अन्तर्विवाद चल रहा था। शरीफ बेग तखन् नामके एक शासनकर्त्ताने झण्डासिंहसे सहायता मांगी। झण्डासिंहने उसी समय अपनी फौजके जरिये सुजाखाँको पराजित कर नगर अधिकार कर लिया और सिक्ख-सेना द्वारा दुर्गको सुरक्षित किया। शरीफ बेग हताश हो कर खैरपुर भाग गये। वहां उनकी मृत्यु हो गई।

मुलतानको लौटा कर झण्डासिंहने बहुत प्रदेश जीता और लूट लिया पीछे झङ्ग पर चढ़ाई कर मानकेड़ा और कालाबाग अधिकार कर लिया। मुलतानके [illegible] निर्मित सुजाबाद पर भी इन्होंने आक्रमण किया था पर कृतकार्य न हो सके।

इसके बाद इन्होंने अमृतसर जा कर वहां भङ्गी किला नामका एक ईंटका दुर्ग बनाया। इस दुर्गका ध्वंसावशेष अब भी विद्यमान है।

इसके बाद झण्डासिंहने रामनगर पर आक्रमण और वहां लोगोंको पराजित कर प्रसिद्ध भङ्गी-तोप जमजमा* पर पुनः अधिकार कर लिया। तदनन्तर ये जम्बु आक्रमण करके वहांके कन्हैया सिक्खोंके सर्दार जयसिंह और शुकरचकिया सिक्खोंके सर्दार चड़त्सिंहके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए। युद्ध

* १७६४ ई०में ११ सिक्खमण्डलोंके लाहौर पर हमला करनेसे फिरोजशाहके युद्धमें उक्त तोप अधिकृत की थी अब यह तोप लाहौरके अजायबघरके दरवाजे पर रक्खी है।

दिन तक दोनोंमें युद्ध चलता रहा, पर जयपराजयका निश्चय नहीं हुआ। आखिरकार एक दिन दैववश सर्दार चहतसिंहको बन्दूक फट गई, जिससे वे निहत हुए। इसके अनन्तर एक दिन कन्हिया पराजित होने ही वाले थे, किन्तु झण्डासिंहके एक अनुचरने उन्हें धोखा दिया, वे उसको बन्दूकको चोटसे युद्ध करते करते मारे गये। वह दुष्ट जयसिंहसे घूस ले कर इसी काममें प्रवृत्त हुआ था। झण्डासिंहको मृत्युके बाद कन्हियागण मरुजहोंमें विजयी हो गये। गण्डासिंह ज्येष्ठ भाईके पद पर अभिषिक्त हुए।

झन (हिं० स्त्री०) किसी धातु-खंड आदिका आघातमे उत्पन्न शब्द।

झनक (हिं० स्त्री०) धातु आदिके परस्पर टकरानेका शब्द।

झनकाना (हिं० क्रि०) १ झनकारका शब्द करना। २ गुस्सेमें हाथ पैर पटकना। ३ चिड़चिड़ाना। ४ झींखना देखो।

झनकमनक (हिं० स्त्री०) आभूषणों आदिका शब्द।

झनकवात (हिं० स्त्री०) घोड़ोंका एक रोग। इसमें वे अपने पैरको कुछ झटका देते रहते हैं।

झनकार (हिं० स्त्री०) झकार देखो।

झनझन (हिं० स्त्री०) झनझन शब्द, झनकार।

झनझना (हिं० पु०) १ तमाकूकी नसोंमें छेद करनेवाला एक प्रकारका कीड़ा। (वि०) २ जिसमेंसे झनझनका शब्द निकलता हो।

झनझना—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत मुजफ्फरनगर जिलेकी शामाली तहसीलका एक कृषिप्रधान शहर। यह शहर अक्षा० २८° ३० ५५´ उ० और देशा० ७७° १५ ४५´´ पू०में, मुजफ्फरनगरसे ३० मील पश्चिमकी ओर यमुना और नहरके मध्यवर्ती प्रदेशमें अवस्थित है। यहां पहले एक ईंटका बना हुआ किला है, जिसमें एक मसजिद तथा शाह अबदल रजाक और उनके चार पुत्रोंकी कब्र है। मसजिद और कब्रें सम्राट् जहांगीरके समयमें बनी थीं। इनकी गुम्बजोंमें नीले रंगके बहुतसे पुष्पादि बने हुए हैं, जो शिल्प-चातुर्यका परिचय दे रहे हैं। यहांकी दरगाह इमाम साहब नामकी अट्टालिका सबसे प्राचीन है। सहरके बगलमें एक नहर है, जिसके कारण बर-सातमें बहुत दूर तक डूब जाता है। ज्वर चेचक और हैजा ये यहांके साधारण रोग हैं। यहां एक थाना और एक डाकघर है।

झनझनाना (हिं० क्रि०) झनझन आवाज होना।

झनझनाहट (हिं० स्त्री०) १ झंकार, झनझन शब्द होनेका भाव। २ झुनझुनी।

झनझीरा (हिं० पु०) एक पेड़का नाम।

झननन (हिं० पु०) झंकार, झनझन शब्द।

झनम (हिं० पु०) चमड़ेसे मढा हुआ एक प्रकारका प्राचीन कालका बाजा।

झनाझन (हिं० स्त्री०) झंकार, झनझन शब्द।

झन्दिनुर—युक्तप्रदेशके आगरा जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २७° २२´ उ० और देशा० ७७° ४८ पू० पर आगरासे मथुरा जानेके रास्ते पर प्राय: २६ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है।

झन्नाहट (हिं० स्त्री०) झनकारका शब्द।

झन्खिवाल—अकबरके समयके एक ज्ञानी फकीर। आइन-ए-अकबरीमें इनकी २य श्रेणीमें अर्थात् अन्तदर्शी पण्डितोंमें गणना की गई है। इनका यथार्थ नाम दाउद था, लाहोरके निकटस्थ झन्निमें झखिवाल नाम प्राप्त हुआ था। इनके पूर्वपुरुषगण अरबदेशसे आ कर मुलतानके अन्तर्गत सीतापुरमें रहने लगे थे, वहीं इनका जन्म हुआ था। ९८२ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी।

झप (हिं० क्रि० वि०) शीघ्रतासे, तुरंत, झट।

झपक (हिं० स्त्री०) १ बहुत थोड़ा समय। २ पलकोंका परस्पर मिलना, पलकका गिरना। ३ हलकी नींद, झपकी। ४ लज्जा, शर्म।

झपकना (हिं० क्रि०) १ भय खाना, डरना, सहम जाना। २ ढकेलना। ३ पलक गिराना। ४ तेजीसे आगे बढ़ना। ५ लज्जित होना, शरमिंदा होना। ६ ऊँघना, झपकी लेना।

झपका (हिं० पु०) वायुकी तेजी, हवाका झोंका।

झपकाना (हिं० क्रि०) पलकोंको सदा बंद करना।

झपकी (हिं० स्त्री०) १ थोड़ी निद्रा, हलकी नींद। २ अनाज ओसानेका कपड़ा। ३ आंख झपकनेकी क्रिया।

झपट (हिं० स्त्री०) झपटनेकी क्रिया या भाव।

झपटना (हिं॰ क्रि॰) १ आक्रमण करना टूटना, धावा करना। २ बहुत शीघ्रता पूर्वक आगे बढ़ कर चीज लेना।

झपटाना (हिं॰ क्रि॰) आक्रमण करना, हमला करना, उसकाना, बढ़ावा देना।

झपताल (हिं॰ पु॰) सङ्गीतके अनुसार पांच मात्राओंका एक ताल, इसमें चार पूर्ण और दो अर्द्ध होती हैं। इसका बोल इस प्रकार है—

```
        २                       ३
+   ।   ।   ।   ।   ।   ।   ।   ।   ।
धा  गे  धा  गे  दिन्  ता  के  धा  के  दिन्
```

(संगीतशा॰)

तबलेका बोल—धिन ना धिन धिन ना, तिन ना तिन तिन ना। धा।

झपना (हिं॰ क्रि॰) १ पलकोंका बंद होना। २ झुकना। ३ लज्जित होना, शरमिन्दा होना।

झपनी (हिं॰ स्त्री॰) १ कोई चीज ढांकनेकी वस्तु ढकना। २ पिटारी।

झपवाना (हिं॰ क्रि॰) झपनेका काम किसी दूसरेसे कराना।

झपस (हिं॰ स्त्री॰) १ गुंजान होनेकी क्रिया।

झपसना (हिं॰ क्रि॰) लता या पेड़की शाखाओंका घना हो कर फैलना।

झपाका (हिं॰ पु॰) १ शीघ्रता, जल्दी। (क्रि॰ वि॰) २ शीघ्रतापूर्वक, जल्दीसे।

झपाटा (हिं॰ पु॰) आक्रमण, चपेट।

झपाना (हिं॰ क्रि॰) बन्द करना मूंदना।

झपाव (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका यन्त्र जिससे घास काटी जाती है।

झपित (हिं॰ वि॰) १ ढका हुआ मुंदा हुआ। २ लज्जित। ३ जिसमें नींद भरी हो, उनींदा झपकौंहा।

झपिया (हिं॰ स्त्री॰) १ बेंसुलीके आकारका एक प्रकारका गहना जो गलेमें पहना जाता है। यह गहना प्रायः कोल जातिकी स्त्रियां पहनती हैं। २ पच्छो, पिटारी।

झपेट (हिं॰ स्त्री॰) झपट देखो।

झपेटना (हिं॰ क्रि॰) धावा करके ले लेना।

झपोला (हिं॰ पु॰) झंपोला देखो।

झप्पड़ (हिं॰ पु॰) थप्पड़, झापड़।

झप्पान (हिं॰ पु॰) चार आदमियोंसे उठानेकी एक प्रकारकी पहाड़ी सवारी।

झप्पानी (हिं॰ पु॰) वह कहार या मजदूर जो झप्पान उठाता है।

झबझबी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका गहना जो कान में पहना जाता है।

झबड़ा (हिं॰ वि॰) झबरा देखो।

झबधरी (हिं॰ स्त्री॰) शिव फसलको हानि पहुंचाने वाली एक प्रकारकी घास।

झबरहीरा—युक्तप्रदेशमें साहरानपुर जिलेकी रुड़की तहसीलका एक नगर। यह साहरानपुरसे १ मील दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। यहां साहरानपुर जिलेके पूर्ववर्त्ती एक शासनकर्त्ता नवाब हाकिम खांकी बनाई हुई एक मस्जिद और एक कूआं है।

झबरा (हिं॰ वि॰) जिसके बहुत लंबे लंबे बिखरे हुए बाल हों।

झबरीला (हिं॰ वि॰) झबरा देखो।

झबार (हिं॰ स्त्री॰) झंझट बखेड़ा, टंटा।

झब्बा (हिं॰ पु॰) १ रेशम या सूत आदिके बहुतसे तारोंका गुच्छा जो एकमें बंधा रहता है। २ छोटे छोटे चीजें एकमें बंधी या गुथी होती हैं गुच्छे।

झब्बाझाड़—युक्तप्रदेशमें फैजाबाद जिलेके अन्तर्गत अयोध्या नगरके दक्षिणस्थ एक मट्टीका पहाड़। यहांके साधारण लोगोंका विश्वास है, कि रामकोट दुर्ग निर्माणके समय मजदूर अपनी अपनी टोकरीको इस स्थान पर झाड़ कर चले जाते थे इसीसे यह पहाड़सा बन गया है। इसी कारण यह झब्बाझाड़के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

झमकोबी— नवाब हुसेनखांकी पत्नी। इन्होंने महम्मद शाहके राजत्वकालमें (ई॰ स॰ १७२१में) मुजफ्फर नगरसे ११ मील पूर्व मोरना नामक स्थानमें एक बड़ी मसजिद बनवाई थी। इस मसजिदकी बनावट बहुत ही उम्दा है।

झमक (हिं॰ स्त्री॰) १ चमक प्रकाश उजेला। २ झम झम शब्द। ३ गहनेकी झनक।

झरकना (हिं॰ क्रि॰) १ झलकना देखो। २ झिड़कना देखो।

झरझर (हिं॰ स्त्री॰) १ वह शब्द जो जलके बहने, बरसने या हवाके चलने आदिसे होता हो। २ किसी प्रकारसे उत्पन्न झरझर शब्द।

झरझराना (हिं॰ क्रि॰) किसी पात्रमेंसे किसी वस्तुको झाड़ कर गिरा देना।

झरन (हिं॰ स्त्री॰) १ झरनेकी क्रिया। २ वह जो झरा हो।

झरना (हिं॰ पु॰) १ जलप्रपात सोता चश्मा। २ एक प्रकारकी छलनी जो लोहे या पीतलकी बनी होती है। इसमें बहुतसे छेद होते हैं और इसमें रख कर मसूरा अनाज छाना जाता है। ३ एक प्रकारकी करछी या चम्मच। इसका अगला भाग छोटे तवेकासा होता है। यह तली जानेवाली चीजोंको उलटने पलटने अथवा निकालनेके काममें आता है। ४ कई वर्षों तक रहनेवाली एक प्रकारकी घास जिसे पशु बड़े चावसे खाते हैं। (वि॰) ५ झरनेवाला, जो झरता हो।

झरप (हिं॰ स्त्री॰) १ झोंका, झकोर। २ वेग, तेजी। ३ वह सहारा या टेक जो किसी चीजको गिरनेसे बचाता है। ४ चिक परदा।

झरमनिया—युक्तप्रदेशमें गोरखपुर जिलेका एक प्राचीन ध्वंसावशिष्ट नगर।

झरहराना (हिं॰ क्रि॰) १ हवाके झोंकेसे पत्तोंका शब्द करना। २ झटकना झाड़ना।

झरविम (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी चिड़िया।

झरा (सं॰ स्त्री॰) झर।

झरा (हिं॰ पु॰) जल भरे हुए खेतोंमें उत्पन्न होनेवाला एक प्रकारका धान।

झराझर (हिं॰ क्रि॰-वि॰) १ झरझर शब्द सहित। २ लगातार, बराबर। ३ जल्दीसे।

झराबोर (हिं॰ पु॰) जराबोर देखो।

झरि (हिं॰ स्त्री॰) झड़ी देखो।

झरित (सं॰ वि॰) झर अस्त्यर्थे इतच्। १ निर्झरविशिष्ट। २ गलित, गला हुआ।

झरिया—बङ्गालके मानभूम जिलेके अन्तर्गत एक परगना और जमींदारी। इसका रकबा २०० वर्ग मील के करीब होगा। झरियाके राजा गवर्मेण्टको वार्षिक ११६४) रुपये कर देते हैं।

झरियाकी कोयलेकी खान प्रसिद्ध है। यह खान बङ्गालके पश्चिम तरफसे ऊँचे पारसनाथ पर्वतके दक्षिणकी ओर है। गोविन्दपुरके दक्षिणसे लगा कर पूर्व पश्चिममें प्राय: १८ मील तक विस्तृत है। इस खानमें प्राय: जगह कोयलाकी दुहरी तह मिलती है। नीचेकी तहके कोयला बहुत उमदा होते हैं। परीक्षा करनेसे मालूम हुआ है कि उसमें भस्मका भाग फी सदी १४ से ४ तक है। दामोदर तथा उसकी उपनदियां कटरी जमुनी, छोटी जमुनी और खिजरी आदि नदियां इस कोयलेके खेत पर हो प्रवाहित हैं। इनमेंसे अधिकांश नदियोंके किनारे पर कड़ोंकी जमीनको तह नीचेसे ऊपर तक स्पष्ट दिखलाई देती है।

झरी (सं॰ स्त्री॰) झर, पानीका झरना सोत।

झरुआ (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी घास।

झरोखा (हिं॰ पु॰) झंझरीदार छोटी खिड़की या मोखा जो दीवारोंमें बना रहता है। इससे हवा और प्रकाश आदि आनेके लिये बनाते हैं।

झर्झर (सं॰ पु॰) झर्झ इत्यव्यक्तशब्दं रातीति झर्झ-रा-क। अथवा झर्झ-अर। १ वाद्यविशेष एक प्रकारका बाजा। २ चर्मपुटाच्छादित वाद्ययन्त्र वह बाजा जो चमड़ेसे मढ़ा होता है। ३ डिण्डिम, डमरू। ४ पटह बड़ा ढोल। झम्झरि विद्यते इति झर्झ झर्झ अर। ५ कलियुग। झर्झरी झर्झ शब्द इवास्त्यस्य इति अच्। ६ नदविशेष, एक नदका नाम। ७ हिरण्याक्षके एक पुत्रका नाम।

"हिरण्याक्ष सुता पञ्च विद्वांसः सुमहाबलाः।
झर्झरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा।
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च।" (हरिवंश)

८ वेत्रनिर्मित दण्डविशेष, बेतकी छड़ी।

"कल्पोष्णीषिणश्चैव झर्झरपाणयः।" (भारत भी॰ ९१ अ॰)

९ पाकपात्रमें जलमय पदार्थ विशेष लोहे आदिका बना हुआ झरना जिससे कड़ाहोमें पकनेवाली चीज निकालते हैं। इसके पर्याय—झझरी झंझो झझरी और झंझरी है। १० झांझ। ११ झांझर नामका गहना जो पैरोंमें पहना जाता है।

झाझ र्रक (सं० पु०) झाझ र्र संज्ञायां कन्। कलियुग।

झाझ र्रा (सं० स्त्री०) झाझ र्रति निन्द्यति इति झाझ र्र भर्त्स्ने झाझ र्र-अर् स्त्रियां टाप्। १ वेश्या, रण्डी। २ जलशब्दविशेष पानीको आवाज। ३ तारादेवी।

झाझ र्रावती (सं० स्त्री०) झाझ र्रा अस्त्यर्थे मतुप्। मस्य वः स्त्रियां ङीप्। १ गङ्गा। २ झगड़ी, कटमरैया।

झाझ र्रिका (सं० स्त्री०) १ तारिणी, तारादेवी। २ छुमसी, पापड़।

झाझ र्रिन् (सं० पु०) झाझ र्र अस्त्यर्थे इनि। शिव, महादेव। "खं गदी खं शरी चापी खट्वांगी झर्झरी तथा"

(भारत शा० २८६ अ०)

झाझ र्री (सं० स्त्री०) झाझ र्र गौरादित्वात् ङीप्।

झाझ र्र वाद्यविशेष, झांझ नामक बाजा।

"गोमुखाडम्बराणाञ्च भेरीनां मुरजैः सह।
झर्झरी डिण्डिमानाञ्च व्यश्रूयन्त महास्वनाः॥" (हरिवंश)

झाझ र्रीक (सं० पु०) झाझ र्र-ईकन्। १ शरीर, देह। २ देश। ३ चित्र।

झर्रा (हिं० पु०) १ बया पची। २ एक प्रकारकी छोटी चिड़िया।

झर्रैया (हिं० पु०) बया नामकी चिड़िया।

झल (हिं० पु०) १ दाह, जलन। २ उग्रकामना, किसी विषयकी उत्कट इच्छा। ३ सम्भोगकी कामना, कामकी इच्छा। ४ क्रोध, गुस्सा। ५ झुण्ड समूह।

झलक (हिं० स्त्री०) १ द्युति, आभा, चमक, दमक। २ प्रतिविम्ब, आकृतिका आभास।

झलकदार (हिं० वि०) जिसमें चमक दमक हो, चमकीला।

झलकना (हिं० क्रि०) १ चमकना, दमकना। २ कुछ कुछ प्रकट होना।

झलका (हिं० पु०) शरीरका वह छाला जो चलने या रगड़ लगनेसे हो गया हो।

झलकाना (हिं० क्रि०) १ चमकाना, दमकाना। २ आभास देना, दिखलाना, दरसाना।

झलकी (हिं० स्त्री०) झलक देखो।

झलज्झला (सं० स्त्री०) झलज्झल इत्यव्यक्तशब्दः अस्त्यस्य इति झलज्झल-अच्। हस्तिकर्णास्फालनजात शब्दविशेष, वह आवाज जो हाथीके कानोंके फड़फड़ानेसे निकलती है।

झलझल (हिं० स्त्री०) चमक, दमक।

झलझलाना (हिं० क्रि०) चमकना, चमचमाना।

झलझलाहट (हिं० स्त्री०) चमक, दमक।

झलना (हिं० क्रि०) १ किसी दूसरी चीजसे हवा लगना। २ हवा वा व्यार करनेके लिए कोई चीज हिलाना।

झलमल (हिं० पु०) थोड़ा प्रकाश, हलकी रोशनी।

झलमला (हिं० वि०) चमकीला, चमकता हुआ।

झलमलाना (हिं० क्रि०) १ चमचमाना। २ निकलते हुए प्रकाशका हिलना डोलना, अस्थिर ज्योति निकलना।

झलरी (सं० स्त्री०) झल-रा-ड। १ हुडुक नामका बाजा। २ झाझ र्र वाद्यविशेष, बजानेकी झांझ।

झलवां—बलूचिस्तानको कलात रियासतका एक विभाग। यह अचा० २५° २८' से २८° २१' उ० और देशा० ६५° ११' से ६७° २७' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २११२८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें सरवां देश, दक्षिणमें लसबेला राज्य, पूर्वमें काछी और सिन्धु तथा पश्चिममें खारां और मकरा है। सिन्धु और झलवांकी सीमा १८५३-४ ई०में निर्द्धारित हुई और १८६१-२ ई०में बांधी गई। दूसरी जगह अब भी विना निर्द्धारित सीमा है। इस प्रदेशका दक्षिणी भाग ढालू तथा बड़े बड़े पहाड़से घिरा है। इसके पश्चिममें गर्र पहाड़, दक्षिणमें मध्य ब्राहुई पहाड़ तथा मध्यमें कई एक छोटे छोटे पहाड़ हैं जिनमेंसे दोवानजिल, हुशतिर, शाशन और ड्राखेल प्रधान हैं। यहां सबसे बड़ी नदी हिंगोल तथा इसकी सहायक नदियां मुस्काई, अर, मूल और हब प्रवाहित हैं।

१७वीं शताब्दीमें यह प्रदेश सिन्धुके रायवंशके हाथसे अरबीके हाथ लगा। उस समय इसका नाम तुरां था और इसको राजधानी खुजदारमें थी। फिर गजनवियों और गोरियोंने उसे अधिकार किया। इसके पीछे मुगलोंका राज्य हुआ। चङ्गेजखांकी चट्टान उसका स्मारक है। सिन्धुमें सुमर तथा सुम्म-वंशके अभ्युत्थानके समय जाटने इस प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया, किन्तु १५वीं शताब्दीके मध्य वे मिरवारीसे मार भगाये गये। इस-

के बाद यह प्रदेश कई वर्षों तक कलातके खाँके अधीन रहा किन्तु मीर खुदादादखाँके समयमें जो लड़ाई छिड़ी थी उसमें झलवांके बड़े बड़े टमन उनसे पृथक् हुए थे। युद्धमें उनके प्रधान सेनापति ताज मुहम्मदको कैद हुई थी। पीछे १८५८ ई०में नासिरखाँके खानसोरखाँने झलवांके जीतोंसे नूर-उद्दीन् मेंगलके अधीन फिर भी बागी होने को उभाड़ा। किन्तु खुदादादकी लड़ाईमें उनकी पूरी हार हुई और माल असबाब भी खो गई। १८९१ ई०में मेंगलोंके प्रधान नोरोजखाँके अधीन पुनः राजविद्रोह आरम्भ हो गया और १८९३ ई० तक चलता रहा। अन्तमें गरमाफको लड़ाईमें कलात-राज्यको सेनाने उन्हें अच्छी तरह परास्त किया। नोरोजखाँ और उसके लड़के युद्धमें मारे गये।

इस देशमें एक भी बड़ा शहर नहीं है तथा इसमें कुल १८८ ग्राम लगते हैं। यहांके अधिवासी अधिकांश ब्राहुई हैं। ये खेती तथा पशु चरा कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। बहुतसे आदमी कम्बलोंके डेरों और पत्थरोंके झोपड़ोंमें रहते हैं। लोकसंख्या प्रायः २२४०-०१ है। झलवांवासियोंके बड़े सर्दार करकजाई होते हैं। ब्राहुई भाषाका व्यवहार अधिक है। कहीं कहीं सिन्धी भी चलती है। कृषिकर्म तथा पशुपालन मात्र उद्योग है। सितम्बर मासमें बहुतसे लोग कच्छी तथा सिन्धुको जाते और फसलका काम करके लौट आते हैं। खेती अच्छी नहीं। जमीनमें बालू मिली हुई है। ऊसर भूमि अधिक है। बैल छोटे और मजबूत होते हैं। भेड़ों और बकरियोंकी संख्या कम नहीं। पहले यहां कम्बल बनता था।

उपत्यका तथा नदीके किनारेके आसपासको जमीनमें फसल उपजती है। यहांकी प्रधान उपज गेहूं धान, बाजरा ज्वार आदि है।

इस प्रदेशमें दरी, मोटा रस्सा, थैला तथा फर्श आदि प्रस्तुत होते हैं। यहांसे घी, ऊन, जीवित भेड़ तथा बकरे कुलमीके सामान आदिकी रफ्तनी होती है और मोटे कपड़े, चावल सरसोंका तेल तथा ज्वार आदिकी आमदनी होती है।

इस प्रदेशमें एक भी पक्की सड़क नहीं है। ऊँटको राहसे बोझ आते जाते हैं। अनावृष्टिके कारण यहां दुर्भिक्ष सदा पड़ता रहता है। १८८० ई०के भयानक दुर्भिक्षमें यहांके अधिवासीको यथेष्ट कष्ट भोगना पड़ा था। यहां तक कि वे अपनी लड़कीको सिन्धु ले जा कर बेचते और जो कुछ रुपये मिल जाता था उसीसे अपना प्राण बचाते थे।

राजपूतानेकी नाईं यहां भी पिण्डदान प्रचलित थी। ८म शताब्दीके सभ्य कामोत्पादकी निकटवर्ती गुहामें बहुतसी प्राचीन चित्र पाई गई थीं। यहांके अधिवासी भूत प्रेत पर अधिक विश्वास करते हैं। किसीके अस्वस्थ होने पर उन्हींको पूजा आदि करते हैं।

१९०१ ई०में पोलिटिकल एजेण्टको देखभालमें कलातके खाँने खुजदारमें एक नैबी सरकारी रूपनामके लिये रख दिया है। यही जिरगाओंके आज्ञानुसार मामला मुकदमा करते हैं। अदालतमें नायब रहता है। जानमोल उसका अख्तियार है। मालगुजारीमें उत्पन्न द्रव्यका चतुर्थांश वा षष्ठांश लगता है। रसूम या बक्षमात लेनेको भी चाल है इससे राज्यकी आमदनी बहुत बढ़ जाती है। सर्दार लोग हर पीछे मालमें एक भेड़ लेते हैं। विवाह, अन्यान्य उत्सव तथा मृत्युके समय भी भेड़ लिया करते हैं। आय प्रायः ११०००) रु० है। खानिरखाँके लिये कलातके खाँ और ब्रिटिश गवर्मेण्टकी ओरसे कई हजार रुपया मिलता है। कुछ सर्दार अपने लड़के पढ़ानेके लिये मकतब खुला रखते हैं। अन्यथा शिक्षाका अभाव है। जड़ी बूटियोंका प्रयोग इन्हें खूब मालूम है। बुखार आने पर भेड़ या बकरेका ताजा चमड़ा लपेट दिया जाता है।

झमकाना (हिं० क्रि०) किसी दूसरेसे झमकनेका काम कराना।

झसकाया (हिं० पु०) १ ईर्ष्या करनेवाला मनुष्य, हसद करनेवाला आदमी।

झमा (सं० स्त्री०) झमा पृषोद०। १ कन्या, बेटी। २ आतपोंमें धूप, घाम। ३ झिल्लिका झिल्ली, झींगुर।

झमाझम (हिं० वि०) जिसमें बहुत चमक दमक हो खूब झलझलाता हुआ।

झमाझमी (हिं० वि०) चमकीला, चमकदार।

झलाबोर (हिं० पु०) १ साड़ी आदिका चौड़ा अंचल जो कलाबतूनका बुना हुआ होता है। २ कारचोबी। ३ आतिशबाजीका एक भेद। ४ चमक, दमक। (वि०) ५ चमकीला, आबदार।

झलि (सं० स्त्री०) क्रमुक, सुपारी।

झलिदा (झालदा)—१ छोटानागपुर विभागके अन्तर्गत मानभूमजिलेका एक परगना। इसका क्षेत्रफल १२८०३८ वर्गमील है।

२ छोटानागपुर विभागके अन्तर्गत मानभूम जिले-के झलिदा परगनेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २३ २२´ उ० और देशा० ८५ ५८´ पू०में अवस्थित है। पहले यहां वन्दूक तथा उत्कृष्ट अस्त्रादि प्रस्तुत होते थे। अभी गम्भ-आइन हो जानेसे इसका पूर्व गौरव जाता रहा। यहां एक पत्थरकी गोमूर्ति है। प्रवाद है कि पहले एक कपिला गायने पञ्चकोट-राजवंशके आदिपुरुषको अरण्य-में पालन किया था, बाद वह उसी स्थानमें पत्थर हो गई। यहां लाह तथा छूरी चक्कू बनानेका व्यवसाय अधिक होता है। यहांकी लोकसंख्या प्राय: ४८७७ है।

झलु—युक्तप्रदेशके बिजनौर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २९° २०´ १०´´ उ० और देशा० ७८° १५´ ३´´ पू० पर बिजनौर नगरसे ६ मील पूर्वमें अवस्थित है। यह शहर ख्रापिजाम द्रव्योंके वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है।

झलोनी—युक्तप्रदेशके ललितपुर जिलेकी ललितपुर तह-सीलका एक ग्राम। यह चन्देरीसे प्राय: १६ मील उत्तर-में अवस्थित है। इसके निकट ग्वालियरके पथ पर एक पहाड़ है, जिसके ऊपर प्राय: १८ फुट लम्बे एक खण्ड चौर अर्थात् शिला-फलकमें १३५१ सम्वत् (१२८४)-का लिखा हुआ देवनागरी अक्षरमें एक शिलालेख है।

झल्ल (सं० पु०-स्त्री०) झर्च्छ क्विप्, तं लाति ला-क। १ व्रात्यक्षत्रियसे उत्पन्न वर्णसंकर जाति। झाला देखो।

"झल्लो मल्लश्च राजन्यात् व्रात्यात् निच्छिविरेव च।" (मनु)

मनुने इनकी शस्त्रवृत्ति निर्देश किया है।

"झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषा: शस्त्रवृत्तय:।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गति:॥"

२ विदूषक या भांड़। ३ ज्वाला, लपट। ४ हुड़ुक या पटह नामका बाजा। (स्त्री०) ५ झल्ला होनेका भाव।

झल्लक (सं० क्ली०) झर्च्छ क्विप् तं लाति ला-क अथवा झल्ल स्वार्थे कन्। कांस्यनिर्मित करताल वाद्यविशेष, कांसेका बना करताल।

"शिवागारे झल्लकञ्च सूर्यागारे च शंखकम्।
दुर्गागारे वंशिवाद्यं मधुरीञ्च न वादयेत्॥" (तिथितत्त्व

झल्लकण्ठ (सं० पु०-स्त्री०) झल्ली लक्षणया तत्स्वर इव कण्ठ: यस्य, बहुव्री०। पारावत, परेवा।

झल्लरा (सं० स्त्री०) झल्ल अरन् मृगादयादि०। १ झांझ वाद्यविशेष, बजानेकी झांझ। २ हुड़ुक, हुड़ुक नामका बाजा। ३ बालककेश, छोटे छोटे लड़कोंके बाल। ४ शुद्ध। ५ क्लेद, स्वेद, पसीना। ६ चालनका।

झल्लरी (सं० स्त्री०) झल्लरा देखो।

झल्ला (हिं० पु०) १ बड़ा टोकरा, खांचा। २ वृष्टि, वर्षा। ३ बौछार। ४ पके हुए तमाखूके पत्तों पर पड़े हुए दाने। (वि०) ५ जो गाढ़ा न हो, जिसमें पानी बहुत मिला हो।

झल्लाना (हिं० क्रि०) बहुत चिढ़ना, खिजलाना।

झल्लिका (सं० स्त्री०) झल्ली-कन्-क प्रषो०। १ उद्वर्त्तन वटन पोंछनेका कपड़ा, अंगोछा, तौलिया। २ दीप्ति, प्रकाश। ३ द्योत, धूप। ४ उद्वर्त्तनमल, शरीरकी वह मैल जो किसी चीजसे मलने या पोंछनेसे निकले। ५ सूर्य रश्मिका तेज, सूर्यकी किरणोंका तेज।

झल्ली (सं० स्त्री०) झल्ल-ङीष्। झांझर वाद्य, झांझ।

झल्लीषक (सं० क्ली०) नृत्यभेद, एक प्रकारका नाच।

'झल्लीषकन्तु स्वयमेव कृष्ण: सुवंशघोषं नटवेव पार्थ।'
(हरिवंश ।४८ अ०)

झल्केलि (सं० पु०) तर्कुलासक, टेकुएकी कोल।

झल्लोल (सं० पु०) झर्च्छ क्विप्, तया भूत: सन् लोल: पृषोदरा०। झल्लिद देखो।

झष (सं० क्ली०) झष ग्रहे अच्। १ कुड़का। २ वन। (पु०-स्त्री०) झष कर्मणि घ। ३ मत्स्य, मीन, मछली। "वंशीकलेन बडिशेन झषीरिवास्मान्।" (आनन्द-वृन्दा०) ४ मकर, मगर। "झषाणा मकरश्चास्मि।" (गीता ५ मीनराशि। ६ ताप, गरमी। ७ ग्रीष्म। ८ जलचरभेद, एक प्रकारका जलचर।

झषकेतु (सं० पु०) झषः केतुः यस्य बहुव्री०। मदन, कन्दर्प, कामदेव।

झषनिकेत (सं० पु०) १ जलाशय। २ समुद्र।

झषराज (सं० पु०) मकर, मगर।

झषलग्न (सं० पु०) मीनराशि, मीनलग्न।

झषलोचना (सं० स्त्री०) झषा अक्षि मत्स्यकी आँख।

झषा (सं० स्त्री०) झष-अच् टाप्। नागबला, गुलशकरी।

झषाङ्क (सं० पु०) झष अङ्क यस्य, बहुव्री०। कन्दर्प, कामदेव।

झषाशन (सं० पु० स्त्री०) झष अश-ल्यु। शिशुमार, सूँस।

झषोदरी (सं० स्त्री०) झषस्य उदरं उत्पत्तिस्थानतया अस्त्यस्य। मत्स्यगन्धा नामकी व्यासमाता। (त्रिका०) उपरिचर नृपके शुक्र और अद्रिका नाम्नी अप्सराके शापसे मत्स्ययोनि प्राप्त अद्रिका नामकी किसी अप्सराके गर्भसे मत्स्यगन्धा का जन्म हुआ था। (भारत आ० ६३ अ०)

झहनाना (हिं० क्रि०) १ झनकार शब्द करना, झन- कारना।

झहराना (हिं० क्रि०) १ गिरिसे हो कर झनझन शब्द के साथ गिरना। २ खिझाना। ३ झल्लाना, चिट चिटाना खिझलाना।

झा—मैथिल ब्राह्मणोंमें कई एक उपाधियां हैं जिनमेंसे एक झा है। यह शब्द उपाध्याय शब्दका अपभ्रंश है। ये लोग कहीं तो झा और कहीं ओझा कह- लाते हैं। कहते हैं कि ये लोग पूर्व समयमें भूत प्रेतादि डाकिनी शाकिनीका प्रयोग वा झाड़ फूंक करते तथा सर्प आदिके काटनेके इलाज करनेमें बड़े सिद्धहस्त थे, इसी कारण ये ओझा या झा कहलाते।

झाऊ—भारतवर्ष और बेलुचिस्तानके मध्यवर्ती एक उप त्यका। यहांकी लोकसंख्या बहुत कम है। अधिवासि- गण -ब्राहुई, जमदा और मिरवारि (ब्राहुर) जातिके हैं। ये अधिक गाय भैंस, बकरी भेड़, ऊँट आदिको पाल कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। इस प्रदेश में बहुत लम्बा चौड़ा जङ्गल है। यहां कृषिकार्य नहीं होता है। इस उपत्यकामें नन्दाव नामका केवल एक गांव लगता है।

यहां बहुतसे मट्टीके स्तूप हैं, जिनमें प्राचीन काल- की मुद्रादि पाई जाती है। इस प्रदेशमें पहले सुसभ्य जातियोंका वास था ऐसा अनुमान किया जाता है। बहुतोंका अनुमान है, कि अलेकसन्दर इस प्रदेशमें भी एक नगर स्थापन कर गये हैं।

झाऊ (Tamaric Indica) एक प्रकारका वृक्ष। यह वृक्ष अनेक प्रकारका होता है। कोई कोई पेड़ तो १०।१० हाथ ऊँचा होता है और किसी किसीकी ऊंचाई दो १० हाथसे ज्यादा नहीं होती। यह वृक्ष युरोप, अफरीका, भारतवर्ष, अरब, फारस अफगानि- स्तान, सिन्ध और पूर्व उपद्वीप आदि स्थानोंमें उत्पन्न होता है। भारतके उत्तरांशमें किसी किसी जगह झाऊ के पेड़ोंका जङ्गल देखनेमें आता है। यह वृक्ष सरल और ऊंचा ऊंचा शाखाओंसे युक्त होता है इसके पत्ते मोटे दार कांटों जैसे और प्रायः एक विगत लम्बे (सूत जैसे) होते हैं। जरासी हवा चलते ही इनमेंसे सूरत बाजा की भांति सांय सांय शब्द होता रहता है। इसके फल प्रायः एक इंच लम्बे और नीबू जैसे होते हैं, पक जाने पर छिलका फट कर भीतरसे बीज निकलते हैं।

यह पेड़ सब तरहकी जमीनमें पैदा होता है; गुज- रात और कंकरीली जमीनमें भी यह अच्छी तरह बढ़ता है। तालाबके किनारे और बांध आदिको मज- बूत करनेके लिए तथा खेतोंके घेरको रक्षार्थ यह वृक्ष लगाया जाता है। इसकी लकड़ी अत्यन्त कठिन, ऊपर का असारभाग सफेद और सारभाग लाल होता है। साधारणतः हल और अन्य मोटे कामोंमें झाऊकी लकड़ी काममें आती है। इससे गाड़ियां तथा गाड़ीके पहिये भी बनते हैं। बहुत जगह इसकी लकड़ी सिर्फ जलानेके काममें ही आती है। इसकी छोटी छोटी टह- निर्योंसे डालियां बनाई जाती हैं। एक प्रकारका झाऊ मरुभूमिमें बिना पानीके भी उत्पन्न होता है। पाश्च- त्योंमें लोग इसकी लकड़ी जलाया करते हैं। झाऊकी लकड़ीको भस्म अत्यन्त क्षारगुणविशिष्ट है। इसकी छाल और बीज दोनोंसे रङ्ग उत्पन्न होता है।

एक तरहका छोटा झाऊका पेड़ होता है, जिसके पत्ते चपटे व बेंतकी तरहके होते हैं। यह वृक्ष देशमें

बड़ा सुन्दर लगता है तथा सरोवरके किनारे और बगीचोंमें शोभार्थ लगाया जाता है। और भी एक प्रकारका झाऊ होता है जिसके पत्ते ईषत् आरक्तिम, अति क्षुद्र और गुच्छवद्ध होते हैं। इस तरहके झाऊको लाल झाऊ कहते हैं।

एक प्रकारके झाऊके कच्चे पत्ते ईषत् लवणाक्त होते हैं। मुलतानके आसपासके दरिद्रगण नमकके बदले इसके पत्तोंके पानीसे रोटी बनाते हैं।

वस्तुतः झाऊ-वृक्षोंकी डालियोंमें एक प्रकारके कीड़े रह कर फलकी तरह गुटिका उत्पन्न करते हैं। ये गुटिकायें माजूफलके समान और तिक्तगुणसम्पन्न होती हैं। इस वृक्षकी छाल और दोनों ही चीजें वस्त्रादि रंगने और चमड़ा साफ करनेके काममें आती हैं। सङ्कोचक और बलकारक औषधरूपमें इनका व्यवहार होता है। स्थानीय क्षतादि धोनेके लिए इसका पानी कभी कभी अत्यन्त लाभकारी होता है। समय समय पर इस कार्यके लिए पत्ते भी व्यवहृत होते हैं।

इसका गोंद किसी काममें नहीं आता। अरब देशके सिनाई पर्वत पर एक प्रकारका झाऊ होता है, जिस पर कभी कभी सफेद छत्ते लगते हैं। ये छत्ते वृक्षस्थ गर्भरससे उत्पन्न होते हैं। सिन्धु आदि अनेक प्रदेशोंमें झाऊ वृक्षके एक पदार्थसे एक प्रकारका मिष्टरस बना करता है।

झाँई (हिं० स्त्री०) १ प्रतिविम्ब, छाया, परछाईं। २ छल, धोखा। ३ अंधेरा, अन्धकार। ४ प्रतिशब्द, लौटी हुई आवाज। ५ रक्तविकारसे मनुष्योंके मुख पर होनेवाले एक प्रकारके हलके काले धब्बे।

झाँई माँई (हिं० स्त्री०) छोटे छोटे लड़कोंका एक खेल।

झाँक (हिं० स्त्री०) ताकनेकी क्रिया या भाव।

झाँकना (हिं० क्रि०) १ आड़मेंसे मुँह निकाल कर देखना। २ इधर उधर झुक कर देखना।

झाँकर (हिं० पु०) अखाड़ देखो।

झाँका (हिं० पु०) १ जालीदार खाँचा। २ झरोखा।

झाँकी (हिं० स्त्री०) १ अवलोकन, दर्शन। २ दृश्य, वह जो देखा जाय। ३ झरोखा, खिड़की।

झाँख (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा जंगली हिरन।

झाँखना (हिं० क्रि०) झीखना देखो।

झाँखर (हिं० पु०) १ झंखाड़। २ अरहर फसल काटनेके बाद खेतमें लगी हुई खूंटी।

झाँगला (हिं० वि०) ढीलाढाला।

झाँजन (हिं० स्त्री०) झांझन देखो।

झाँजी—आसामकी एक नदी। यह नागा पर्वतके मोकोकचुङ्ग स्थानके निकट निकल शिवसागर जिलेके उत्तरमें बहती हुई ब्रह्मपुत्रमें जा गिरती है। इसकी पूरी लम्बाई ७१ मील है। शिवसागर और जोरहाट विभागोंको झाँजी सीमा जैसी है। ग्रीष्म ऋतुमें यह सूख जाती है। उतरेके ४ घाट हैं। इस पर आसाम-बङ्गाल-रेलवेका पुल बंधा है।

झाँझ (हिं० स्त्री०) १ कांसेके ढले हुए दो गोलाकार टुकड़ोंका जोड़ा। यह टुकड़ा मजीरेकी तरहका होता है किन्तु आकारमें उससे बहुत बड़ा होता है। टुकड़ोंके बीचमें उभार होता है और इसी उभारमें डोरी पिरोनेके लिये एक छेद रहता है। यह पूजन आदिके समय घड़ियालों और शखोंके साथ बजाया जाता है। २ क्रोध, गुस्सा। ३ पाजीपन, शरारत। ४ किसी दुष्ट मनोविकारका आवेग। ५ शुष्क सरोवर, सूखा तालाब। ६ विषयकी कामना भोगकी इच्छा।

झाँझन (हिं० स्त्री०) स्त्रियों और बच्चोंका एक गहना। यह कड़ेकी तरह पैरोंमें पहना जाता है। यह खोखला होता है और झनझन आवाज हो, इस लिये इसमें कंकड़ियां भरी रहती हैं। कभी कभी लोग घोड़ों और बैलों आदिको भी शोभा और झन्झन् शब्द होनेके लिये पीतल या तांबेकी झाँझन पहनाते हैं, पैंजनी, पायल।

झाँझर (हिं० वि०) १ जर्जर, पुराना, छिन्न भिन्न, फटा टूटा। २ छिद्रयुक्त, छेदवाला।

झाँझरी (हिं० स्त्री०) १ झाँझ नामका बाजा, झाल। २ झाँझन नामक पैरका गहना।

झाँझा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कीड़ा। यह बढ़ी हुई फसलके पत्तोंकी बीच बीचमेंसे खा कर फसलको बरबाद कर देता है। इसके कई भेद हैं। इस तरहका कीड़ा सदा तमाकू या मूकलीके पत्तों पर देखा जाता है। २ भांगकी फंकी जो घी और चीनीके साथ भूनी हो। ३ झंझट, बखेड़ा।

झाँझिया (हिं॰ पु॰) वह मनुष्य जो झाँझ बजाता हो।

झाँट (हिं॰ स्त्री॰) १ वह बाल जो पुरुष या स्त्रीके मूत्रेन्द्रिय पर होते हैं, पशम। २ तुच्छवस्तु, बहुत तुच्छ चीज।

झाँप (हिं॰ स्त्री॰) १ कोई चीज ढाँकनेकी वस्तु। २ एक प्रकारकी मोढ़ेकी बनी हुई वस्तु जिससे पकी हुई चीजें निकाली जाती हैं। ३ नींद, झपकी। ४ पर्दा, चिक। (पु॰) ५ उल्लाल, उछल कूद।

झाँपना (हिं॰ क्रि॰) १ आवरण डालना ढाँकना। २ लज्जित करना, शरमाना, शरमाना।

झाँपी (हिं॰ स्त्री॰) १ सरकनपत्ती, पोषित चिड़िया। २ सुपत्नी, छिनाल स्त्री।

झाँवना (हिं॰ क्रि॰) झाँवेसे रगड़ कर धोना।

झाँवर (हिं॰ स्त्री॰) १ गहरी जमीन जहाँ पानी ठहरा रहे नीची भूमि डबर। (वि॰) २ मलिन मैला। ३ कुम्हलाया हुआ, मुरझाया हुआ। ४ शिथिल, मन्द, सुस्त।

झाँवली (हिं॰ स्त्री॰) १ झलक। २ आँखकी झपकी।

झाँवाँ (हिं॰ पु॰) आगमें जल कर काली हो गई हुई ईंट। इससे रगड़ कर पाँवोंकी मैल छुड़ाते हैं।

झाँसना (हिं॰ क्रि॰) १ ठगना, धोखा देना। २ स्त्रीको व्यभिचारमें प्रवृत्त करना, औरतको फँसाना।

झाँसा (हिं॰ पु॰) छल धोखाबाजी दमबुत्ता।

झाँसिया (हिं॰ पु॰) धोखेबाज, झाँसा देनेवाला।

झाँसी (हिं॰ पु॰) ताम्र और तमाकूकी पत्तलकी हानि पहुँचानेवाला एक प्रकारका गुबरैला।

झाँसी—१ युक्तप्रदेशके कमिश्नरके शासनाधीन एक विभाग। इस विभागमें झाँसी, जलाउन और ललितपुर ये तीनों जिले लगते हैं। यह अक्षा॰ २४ ११ से २६ २६ उ॰ और देशा॰ ७८ १० से ८० ११ पू॰में पड़ता है इस विभागका एक विस्तीर्ण अंश बुन्देलखण्डके नामसे विख्यात है।

यहाँका भूपरिमाण ३८८१०६ वर्गमील है, जिसमें सिर्फ २१५८ वर्गमीलमें खेती होती है, इसमें कुल १२ नगर हैं। इस विभागके अधिवासिगण प्रायः सभी हिन्दू हैं। चमार जातिकी संख्या सबसे अधिक है। अन्यान्य जातियोंमें काछी, लोधी अहीर, कोरी, कुर्मी बनिया तेली और नाई भी हैं।

इस नगरोंमें झाँसी, कालपी और ललितपुर ये प्रधान हैं। इस विभागमें ११ दीवानी और कलेक्टरी तथा १२ फौजदारी अदालतें हैं।

२ युक्तप्रदेशके इलाहाबाद विभागमें कमिश्नरके शासनाधीन एक जिला। यह अक्षा॰ २४ ११ से २५ ५० उ॰ और देशा॰ ७८ १० से ७९ २४ पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण ३६८८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें ग्वालियर और सामथर राज्य तथा जलाउन जिला पूर्वमें धसान नदी और नदीके उस पार हमीरपुर जिला, दक्षिणमें ललितपुर और ओरछा राज्य तथा पश्चिममें दतिया, ग्वालियर और खनियाधान राज्य है।

इधर उधर और बहुतसे देशीराज्य और जागीर हैं। उनमेंसे दो चार ग्राम जिलेमें पड़ गये हैं और फिर दूसरी ओर जिलेके ५ गरीब ग्रामसमाधीन दो एक ग्राम देशीय राज्यके भागमें भी हैं। इसी कारण यहाँ बहुधा दुर्भिक्ष के समय शासनकार्यमें बड़ी गड़बड़ी आ पड़ती है। प्राचीन झाँसी नगर अभी ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत है। प्राचीन झाँसीके निकट झाँसी नवाबाद नामक स्थानमें जिलेकी अदालत इत्यादि अवस्थित है। यहाँ नगरमें सबसे अधिक मनुष्योंका वास है।

बुन्देलखण्डके पार्वत्य प्रदेशका एक अंश ले कर झाँसी जिला संगठित है। इसके दक्षिण भागमें विन्ध्य श्रेणीकी प्रान्तस्थित अनुच्च पर्वतश्रेणी है, जो उत्तर पूर्वसे दक्षिण-पश्चिम तक फैली हुई है। उसकी उपत्यका हो कर बहुतसी नदियाँ द्रुतवेगसे उत्तरको ओर यमुनामें जा गिरी हैं। पर्वतके शिखर पर एकसे बड़ा हल देख नेमें नहीं आता है। अधित्यका प्रदेश वृक्षादिसे परिपूर्ण है और उसके नीचे बड़े बड़े हल लगे हैं। बरार दुर्ग सबसे ऊँचे पहाड़ पर अवस्थित है।

उत्तरभागको भूमि प्रायः समतल है कहीं कहीं पहाड़ और जलप्रवाह होनेसे ऊँची नीची हो गई है। जगह जगह गहरे गड्ढे दीख पड़ते हैं। इन छोटे छोटे पहाड़ोंके ऊपर बहुतसे बड़े बड़े सरोवर बने हैं जिनके तीन ओर बहुत ऊँचे पहाड़ हैं और एक ओर पक्की

सुनाई है। इन सरोवरोंमेंसे अधिकांश ८०० वर्ष पहले महोवाके चन्देल राजाओंके शासनकालमें और कुछ १७वीं या १८वींमें बुन्देला राजाओं द्वारा बने हैं। झाँसीसे प्रायः १२ मील पूर्व अजर सरोवर और उससेभी ८ मील पूर्व कचनेया सरोवर है।

झाँसीके उत्तर भागकी भूमि समतल और कृष्णवर्ण है। यह भूमि मार नामसे मशहूर है और उसमें कपास अच्छी उपजती है। पाहुक, वेतवा (वेत्रवती) और धसान नामकी तीन नदियां झाँसीको प्रायः घेरे हुई हैं। वर्षाके समय उन नदियोंमें बाढ़ आ जानेसे झाँसीके अन्यान्य स्थानोंमें आना जाना बन्द हो जाता है। गवर्मेण्टसे रचित जङ्गलका परिमाण ७०००० बीघा है। झाँसी परगनेके दक्षिण भागमें वेत्रवती नदीके किनारे वने जङ्गलमें बोझवरगेके योग्य बड़े बड़े वृक्ष हैं, इसके सिवा खैर, पलाश आदिके वृक्षभी पाये जाते हैं। बीस वर्गके अतिरिक्त घास बेच कर भी गवर्मेण्टको यथेष्ट आमदनी होती है। जङ्गलमें बाघ, चीता, लकड़बग्घा, भिन्न भिन्न जातिके हिरन, जङ्गली कुत्ते आदि रहते हैं।

इतिहास – बहुतोंका अनुमान है कि परिहार राजपूतोंने ही सबसे पहले झाँसीमें राज्यस्थापन किया। उसके पहले यह आदिम असभ्य जातिका वासस्थान था। आज भी परिहारगण झाँसीके २४ ग्राम दखल किये हुए हैं। किन्तु उनका स्पष्ट विवरण कुछ भी मालूम नहीं है। चन्देलवंशीय राजाओंके राजत्वकालसे झाँसीका विवरण कुछ कुछ स्पष्ट है। चन्द्रात्रेय देखो। इनके राजत्वकालमें ही झाँसीके पर्वत पर वर्तमान बड़े सरोवर खोदे गये थे। चन्देलराजवंशके बाद उनके अधीनस्थ खाङ्गडोंने राज्य अधिकार किया। इन्होंने ही करारदुर्ग बनाया था। १४वीं शताब्दीमें बुन्देला नामक निम्नश्रेणीस्थ राजपूत जातिके एक दलने इस प्रदेश पर अधिकार कर माऊनगरमें अपनी राजधानी स्थापित की। क्रमशः उन्होंने करार अधिकार कर अपने नाम पर अभिहित वर्तमान समग्र बुन्देलखण्डमें राज्य फैलाया। बुन्देलावीर रुद्रप्रतापने ओरछा नगर स्थापन कर वहां राजधानी कायम की। वर्तमान अधिकांश सम्भ्रान्त बुन्देला अपनेको रुद्रप्रतापके वंशधर बतलाते हैं। रुद्रप्रताप के परवर्त्ती राजगण समय समय पर दिल्ली सरकारको कर देने पर भी एक तरह स्वाधीनभावसे राज्य करते थे।

१७वीं शताब्दीके आरम्भमें ओरछाके राजा वीरसिंहने झाँसीका दुर्ग निर्माण किया। उन्होंने सलीमको प्ररोचनासे सम्राट् अकबरके विश्वस्त मन्त्री और प्रसिद्ध ऐतिहासिक अबुलफजलका प्राणनाश किया, इसीसे वे अकबरके कोपानलमें आ पड़े।

१६०२ ई०से वीरसिंहको दमन करनेके लिये एकदल सैन्य भेजी गई। सैनिकोंने उस प्रदेशको तहस नहस कर डाला, वीरसिंह प्राण ले कर भाग चले। इसके बाद उनके प्रभु युवराज सलीम जहांगीरका नाम धारण कर सिंहासन पर बैठे। उन्होंने पुनः अपना राज्य प्राप्त किया। १६२७ ई०में शाहजहांके सम्राट् होने पर वीरसिंह विद्रोही हुए, किन्तु वे कृतकार्य न हो सके। सम्राट ने वीरसिंहको क्षमा कर, उन्हें फिर पूर्व पद पर स्थायी कर तो दिया, पर उनकी पहलेकी तरह क्षमता और स्वाधीनता न रही। इसके बाद वहां भयानक विशृङ्खला उपस्थित हुई। ओरछा राज्य कभी तो मुसलमानोंके हाथ, कभी बुन्देला-सर्दार चम्पतरावके और कभी उसके पुत्र छत्रसालके हाथ लगता था। अन्तमें १७०७ ई०को बुन्देला महावीर छत्रसालको सम्राट् बहादुरशाहसे वर्तमान झाँसी तथा निजाधिकृत समस्त भूभाग दखल करनेकी अनुमति मिल गई। किन्तु तिस पर भी मुसलमान सुबादारोंने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करना न छोड़ा। आक्रमणसे बार बार तंग हो जाने पर छत्रसालने १७३२ ई०में पेशवा बाजीरावसे चालित महाराष्ट्रोंकी सहायता प्रार्थना की। इस समय महाराष्ट्रीयगण मध्यप्रदेश पर आक्रमण कर रहे थे। छत्रसालका प्रस्ताव सुन कर उसी समय उन्होंने बुन्देलखण्डकी यात्रा की। युद्धके समाप्त होने पर छत्रसालने पुरस्कार स्वरूप अपने राज्यका एक तृतीयांश महाराष्ट्रोंको प्रदान किया। १७४२ ई०में महाराष्ट्रोंने एक षड़यन्त्र रचा जिससे ओरछा राज्य पर आक्रमण कर उन्होंने अन्यान्य प्रदेशोंके साथ उसे भी अपने राज्यमें मिला लिया। उनके सेनापतिने झाँसी नगर स्थापन किया और ओरछासे अधिवासियोंको ला वहां बसा दिया।

इसके बाद प्रायः १ सदी तक झाँसी प्रदेश महाराष्ट्र पेशवाके अधीन रहा। इसके बाद सूबादारगण एक तरह स्वाधीन भावसे शासन करने लगे। सूबादार शिव रावके राजत्वकालमें अंगरेजोंने उनके साथ १८०४ ई०को एक सन्धि स्थापन कर मातहत्य दान अङ्गीकार किया। १८१४ ई०में शिवरावकी मृत्युके बाद उनके पौत्र रामचन्द्र राव सूबादार हुए। इस समय पेशवाने समस्त बुन्देलखण्डका अधिकार अंगरेजोंको अर्पण किया। अंगरेज गवर्मेण्टने रामचन्द्र रावका राज्य अचल रक्खा। १८३२ ई०में रामचन्द्र रावको सूबेदारकी जगह राजाकी उपाधि दी गई। किन्तु रामचन्द्र अपना पद अक्षुण्ण रख न सके। उनका राजस्व घटने लगा और विपक्ष सेना कई जगहमें लूट मार करने लगी। १८३५ ई०में निःसन्तान रामचन्द्रकी मृत्युके बाद चार राजाओंने राज्य पानेका दावा किया। अंगरेज गवर्मेण्टने रामचन्द्रके चाचा और शिवरावके दूसरे पुत्र रघुनाथरावको राज्य सिंहासन पर आरूढ़ किया। इनके समयमें राजस्व और भी कम हो कर पूर्ववर्ती राजाके समयका ¼ अंश मात्र रह गया। इन्होंने विलासिता और अमितचारिताके दोषसे राज्यका अधिकांश ग्वालियर और ओरछा राजाके यहाँ बन्धक रक्खा। ये १८३८ ई०में बहुत ऋण रख कर परलोकको सिधारे।

रघुनाथके कोई प्रकृत उत्तराधिकारी न थे। चार मनुष्योंने राज्य पानेका दावा किया। अंगरेज गवर्मेण्टने कमिशन द्वारा शिवरावके एकमात्र वंशधर पूर्व राजाके भाई गङ्गाधररावको राज्य प्रदान किया। इसके पहले बुन्देलखण्डकी पोलिटिकल एजेन्सीने झाँसीका शासन भार ग्रहण किया था। गङ्गाधररावके राजा होनेके बाद भी राजकार्यमें विशृङ्खला होनेके डरसे ब्रिटिश एजेन्सी द्वारा वहाँका शासनकार्य चलने लगा और राजा निर्दिष्ट वृत्ति पाने लगे। अंगरेज शासनमें इसका राजस्व दोगुना बढ़ गया। १८४८ ई०में गवर्मेण्टने गङ्गाधरको राज्यभार प्रदान किया था। गङ्गाधर बहुत दक्षतासे राजस्वादि वसूल कर तथा ऋणमेंसे कुछ कर घटा कर राज्य शासन करने लगे। ये प्रजाके प्रिय थे। १८५३ ई०में गङ्गाधरने निःसन्तान अवस्थामें प्राणत्याग किया। झाँसी प्रदेश अंगरेज राज्यभुक्त हुआ और कमिशनर तथा अफसरों जिलेके भार एक सुपरिण्टेण्डेण्ट द्वारा शासित होने लगा। मृत गङ्गाधरकी स्त्री झाँसीकी रानीको एक वृत्ति निर्दिष्ट कर दी गई। किन्तु रानी कई एक कारणोंसे अंगरेज पर नाखुश हो गई। पहले उन्हें दत्तकपुत्र ग्रहण करनेका अधिकार न मिला, दूसरे अपने राज्यमें गोहत्या होती देख वे क्रोधसे अधीर हो उठीं। उन्होंने गोहत्या और अन्यान्य धर्मविरुद्ध व्यापारोंकी कथा चारों ओर प्रचार कर हिन्दुओंको उत्तेजित किया।

१८५७ ई०के विद्रोहमें झाँसी जिला भी शामिल हो गया। ५ जूनको बारह पदातिक सैन्यदलोंमेंसे बहुतोंने सहसा विद्रोही हो कर गोलो, बारूद और अर्थभाण्डारादि पर अधिकार जमाया। बहुतसे अंगरेज कर्मचारी मारे गये। प्रायः ५५ अंगरेजोंने एक दुर्गमें आश्रय लिया किन्तु अन्तमें वे आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुए। इन कृतघ्न सिपाहियोंका गङ्गाजल और कुरान स्पर्श कर शपथपूर्वक अभयदानसे जीवनकी आशा की थी किन्तु वे सबके सब मार डाले गये। झाँसीकी रानीने विद्रोहियोंकी नेत्री होनेकी आकांक्षा की किन्तु अन्यान्य विद्रोही सर्दारगण इसमें सहमत न हुए, अतः आपसमें विवाद शुरू हो गया। ओरछाके सर्दारोंने झाँसी पर आक्रमण कर उसे छिन्न भिन्न कर डाला। बहुतसे अधिवासियोंने अन्नके अभावमें निरुपाय हो कर प्राणत्याग किया। इस समय विस्तीर्ण जनपद ऐसा विध्वस्त हो गया था कि बहुत समयके बाद कुछ कुछ इसकी क्षतिपूर्ति हुई थी। सर ह्यू रोज (Sir Hugh-Rose)ने १८५८ ई०की ३ अप्रेलको झाँसी अधिकार किया और जालौनकी ओर यात्रा की। उनके जानेके बाद पुनः विद्रोह उपस्थित हुआ। अन्तमें ११ अगस्तको कर्नेल लीडल (Colonel Liddel)-के परिचालित सैन्यने विद्रोहियोंको मार भगाया। इसके बाद और बहुतसी छोटी छोटी लड़ाइयाँ हुईं। अन्तमें नवम्बर मासको शान्ति स्थापित हो गई। इसी बीच झाँसीकी रानी तांतियातोपीके साथ भाग गई थीं। ग्वालियरके गिरिदुर्गके पास वे लड़ाईमें पराजित हुईं। सांधिया शब्द देखो। तभीसे झाँसी जिला अंगरेजोंके अधीन आ रहा है। दुर्भिक्ष या बाढ़ आदि

दैव दुर्घटनाके सिवा और किसी प्रकारका विप्लव नहीं हुआ है।

झाँसीमें दैवी और मानुषी आपदका समान उपद्रव है। कभी दीर्घकालव्यापी अनावृष्टि, कभी मुषलधारकी वृष्टि देशको उत्सन्न कर रही है। इससे भी बढ़ कर इसके पूर्ववर्ती महाराष्ट्र और अन्यान्य राजगण ऐसी निठुरताके साथ प्रजासे कर वसूल करते थे कि वे बहुत मुश्किलसे जीविका निर्वाह कर सकती थी और पुनः राष्ट्रविप्लवसे देश तहसनहस हो जाता था। १८५३ ई०में जब यह जिला अंगरेजके अधीन आया, तब यहांके अधिकांश अधिवासी अत्यन्त दरिद्र और दुर्दशाग्रस्त थे। सभी गृहस्थ महाजनोंके ऋणजालमें फँसे हुए थे। हिन्दुराजाओंके नियमानुसार पिताका ऋण पुत्रको देना पड़ता था, किन्तु ऋण अदा नहीं होने पर महाजन ऋणीकी भूसम्पत्ति नहीं ले सकते थे। अङ्गरेज शासनके साथ जमीन नीलामकी प्रथा प्रवर्तित होनेसे अधिवासियोंकी दुर्दशा और भी अधिक बढ़ गई। फिर उसके बाद ही १८५७-५८ ई०की विद्रोहमें दुर्दशा अन्तिम सीमा तक पहुंच गई थी। दुर्भिक्ष और बाढ़की घटना भी न्यारी हो थी। अन्तमें गवर्मेण्टने झाँसी जिलेको इस तरह नितान्त दरिद्र देख कर प्रजाके हितार्थ १८८२ ई०में वहाँ एक नया कानून प्रचलित किया। ऋणग्रस्त प्रजाकी सर्वस्वान्तसे रक्षा करनाही इस कानूनका उद्देश्य था। अधिकांश गृहस्थ ऋण परिशोधमें असमर्थ हो गये थे। ऐसे समयमें उन लोगोंसे केवल मूलधनही ले लिया जाता अथवा सूद कमा दिया जाता अथवा विना कुछ लिये ही उन्हें मुक्त कर देते थे। इस कामके लिये एक पृथक् जज नियुक्त हुए। इसके सिवा असहाय दिवालिया प्रजाको गवर्मेण्ट कम सूदमें रुपया कर्ज देने लगी। किन्तु जब पुनः ऋण शोधका कोई उपाय नहीं देखा जाता तब गवर्मेण्ट उस प्रजाकी सम्पत्ति खरीदने लगी। इस नियमसे प्रजाका बहुत उपकार होने लगा। इसके अतिरिक्त यहाँ गवर्मेण्टका प्राप्य राजस्व और दूसरे स्थानोंसे बहुत कम है।

सिर्फ ललितपुरको छोड़ कर इस झाँसी जिलेके समान अल्प अधिवासीयुक्त जिला युक्तप्रदेशमें दूसरा नहीं है। अङ्गरेज शासनके आरम्भसे यहाँकी जनसंख्या बढ़ रही थी, किन्तु कई एक दुर्भिक्षसे उनमेंसे अनेक परलोकको चल बसे। १८६५ ई०से ले कर १८७२ ई० तक इन आठ वर्षोंमें प्रायः ३८६१६ मनुष्य कम गये अर्थात् लोकसंख्या ३५७४४२ से ३१७८२६ हो गई। इसके बादसे लोकसंख्या क्रमशः बढ़ रही है। आजकल लोकसंख्या प्रायः ६१६७५८ है। पूर्व राजाओंके अधिक करके बोझसे, १८५७-५८ ई०के विद्रोही सिपाहियोंके उत्पातनसे तथा बाद दुर्भिक्ष, देशव्यापी महामारी आदि विपद्‌से अधिकांश लोग प्राणत्याग करने लगे और जो कुछ बचे वे देश छोड़ने लगे थे। १८३२ ई०में झाँसीका क्षेत्रफल प्रायः २८२७ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २८६००० थी। १८८१ ई०में इसका क्षेत्रफल अधिक कम अर्थात् १५६७ वर्गमील होने पर भी लोकसंख्या पहलेसे बढ़ रही है। झाँसीके प्रायः सभी अधिवासी हिन्दू हैं। सैकड़े पीछे चार मुसलमान है। पशुहत्या अधिवासियोंके लिये बहुत ही विरक्तिकर है। जैन और सिक्खोंकी संख्या सबसे कम है। इसके सिवा पारसी और आर्यसमाजी दो चार वास करते हैं। समय समय पर बहुतसे ईसाई सैन्य तथा कर्मचारी आदि यहाँ आ कर रहते हैं। अधिवासी हिन्दुओंमें ब्राह्मणोंकी संख्या चमार छोड़ कर और सब जातियोंसे अधिक है। इसके सिवा राजपूत कायस्थ बनिया काछी, कुर्मी, अहीर, कोहरी, लोधी आदि जातियोंकी संख्या भी कम नहीं है। आदिम असभ्य जाति भी यहाँ रहती है। १०७ ग्रामोंमें अहीर, १०२में ब्राह्मण, ६६में राजपूत, ६८में लोधी, ४४में कुर्मी और ७ ग्राममें काछी रहते हैं। राजपूतोंमेंसे अधिकांश बुन्देला जातिके हैं। अनेक नीच और असभ्य जाति निम्नश्रेणीके शूद्र कहलाते हैं। झाँसी जिलेके माऊ, रानीपुर, गुडसराय, बड़वासागर और भाण्डेर प्रभृति पांच नगरोंमें पांच हजारसे अधिक वास है। झाँसी, नौआबाद नगरमें जिलेकी अदालत, सेनाकी छावनी और म्युनिसपालिटी रहने पर भी यहाँकी लोकसंख्या २०००से अधिक नहीं है।

कृषि—झाँसीकी भूमि स्वभावतः अनुर्वर है। वृष्टिके अभाव तथा खाड़ी द्वारा कृत्रिम उपायसे जल सींचनेकी असुविधा होनेसे यहाँ अच्छी फसल नहीं लगती है। जब कभी जलका अच्छा प्रबन्ध रहता है तभी थोड़ा बहुत

अनाज उत्पन्न होता है। थोड़ीसी हानि होनेसे अधि-वासियोंको अवश्य कष्ट होता है। प्रायः अधिक समय ही इन्हें यह कष्ट भोगना पड़ता है। रब्बीमें गेहूं, जौ, चना, दर्रे और सरसों प्रधान है। खरीफ कालमें ज्वार, बाजरा, तिल, कपास और चावल उत्पन्न होता है। इसके सिवा आल रङ्गकी छोटी झाड़ीसे जिसे आलकी झाड़ी कहते हैं बहुत होती है। यही यह यहांका प्रधान वाणिज्यद्रव्य है और यह सबसे अच्छी जमीनमें उपजती है। मऊरानीपुरका विख्यात खारुवा इस आलसे रंगा जाता है। झांसी और बुन्देलखण्डमें बहुत जगह किसान लोग इसी आलको बेच कर मालगुजारी देते हैं और बहुत जगह आलके बदलेमें अनाज खरीद कर अपनी जीविकानिर्वाह करते हैं। अनेक समय अतिवृष्टिमें कांसके हो जानेसे अनाजमें बहुत नुकसान पहुंचता है। सम्प्रति बहुत कटने पर कांस निर्मूल कर दी गई है। झांसीके उत्पन्न अन्नसे यहांका निर्वाह सम्यक्‌रीति नहीं होता है, तोभी सुवृष्टि होनेसे कभी कभी बहुत अनाजकी रफ्तनी यहांसे होती है।

यहां जलसिञ्चनका प्रबन्ध अच्छा नहीं है। पहले जिन बड़े बड़े सरोवरों या कृत्रिम ह्रदका विषय वर्णन हो चुका है, उनमेंसे अधिकांश संस्कारके अभावसे नष्टभ्रष्ट हो गया है तथा बहुत थोड़े स्थानोंमें उनका जल पहुंचता है। जो कुछ हो आजकल गवर्मेण्टने उन सरोवरोंका संस्कार तथा नहरें इत्यादि खोदनेका अच्छा प्रबन्ध कर लिया है। यहांके कृषक मात्र ही दरिद्र हैं, एक बार फसलके नहीं होनेसे ही उनका सर्वनाश हो जाता है। तब उन्हें महाजनसे ऋण लेनेके सिवा और कोई उपाय नहीं रहता है। बेतवा और धसान इन दो नदियोंके मध्यवर्ती प्रदेशमें प्रायः अनावृष्टि हुआ करती है, सुतरां यहांके कृषकोंकी अवस्था शोचनीय है, ऋणके सिवा उन्हें दूसरा कोई उपाय नहीं रहता है। अंगरेजी शासनकालमें पहले पूर्ववर्ती राजाओंकी नाईं यहां निष्ठुरतासे कर वसूल करते थे, बाद प्रजाकी प्रकृत अवस्था देख कर गवर्मेण्ट अब उदार हो गई है। अभी यहांका राजस्व अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा बहुत कम है।

झांसीमें दैवविड़म्बना अधिक है जिसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है। दुर्भिक्ष अनावृष्टि आदि महामारी आदिका प्रकोप कम नहीं है। दुर्भिक्ष प्रायः पांच वर्षके बाद लगा रहता है। सरकारके रिपोर्टसे मालूम होता है, कि अच्छे वर्षोंमें झांसीमें जितना अनाज उत्पन्न होता है, उससे यहांके अधिवासियोंका केवल दस मास तक पेट चलता है।

१७८३ १८३३ १८३७, १८६७ १८६८ ई०में यहां भीषण दुर्भिक्ष हो गया है। गवर्मेण्ट दुर्भिक्षके समय अनाथसहायतार्थ कर्म (Relief work) खोल कर तथा भिन्न भिन्न स्थानोंमें अस्पताल खोलकर प्रजाका दुःख दूर करती है। देशीय राज्यके शासनमुक्त अनेक ग्राम झांसीकी सीमामें रहनेसे दैनिक कार्यमें विशेष विशृङ्खला होती है।

वाणिज्य—झांसीसे अनाजकी रफ्तनी नहीं होती वरन दूसरे दूसरे देशोंसे ही आमदनी होती है। उसके बदले झांसीसे कपास और आल रंग दूसरे स्थानोंमें भेजा जाता है। शिल्पद्रव्यादि यहां नहींके बराबर है, केवल खारुवा नामक लाल कपड़ा यहां बहुत तैयार होता है। झांसीके बगलसे होते हुए कानपुर जानेकी पक्की सड़क है और नदी प्रभृतिके ऊपर पुल द्वारा सुगम पथ है। अन्यान्य राह बरसातके समय जानेके योग्य नहीं रहती है।

शासन—इण्डियन सिविल सर्विसके सदस्य तथा एक सहकारी डिपुटी कलेक्टर द्वारा शासन-कार्य चलाया जाता है। इसके सिवा कलेक्टर, ज्वाइण्ट मजिष्ट्रेट और तीन डिपुटी कलेक्टर भी हैं। वन विभागके जो कर्मचारी हैं उन्हींके हाथ बुन्देलखण्डके वनका भी इन्तजाम है। दीवानी अदालतमें दो डिष्ट्रिक्ट मुन्सिफ और एक सब-जज हैं। यहां १० फौजदारी और १० दीवानी अदालतें हैं। इनके सिवा पुलिस चौकीदार इत्यादिकी संख्या प्रायः ११०० है। जिलेके सदरमें एक जेल है और प्रत्येक तहसीलमें एक हाजत है। अधिकांश कैदी चोरीके अपराधमें बन्दी हैं।

यहां विद्याशिक्षाकी सुव्यवस्था नहीं है। १८९० ई०से बाद वर्तमान बरसे इसकी अवनति ही हो रही है। बहुतसे विद्यालय उठ गये हैं।

यह जिला ६ तहसीलोंमें विभक्त है। इसमें दो सुनिस

कमिश्नर साहबने ६ठी जूनको निःसन्दिग्ध-चित्तसे सिपाहियोंकी प्रभुभक्तिका विषय प्रकट किया था। इसके एक या दो दिन बाद दिनदहाड़े ही सेनानिवास जल गये। ५ तारीखको दुर्गकी तरफ बन्दूकोंकी आवाज होने लगी। अधिकारीवर्ग किसी तरफ भी दृष्टिपात न कर आत्मरक्षा और सम्पत्तिरक्षाके लिए उद्यत हुआ। युद्धमें असमर्थ यूरोपीयगण अपनी अपनी सम्पत्ति और परिवारवर्गको ले कर नगरके दुर्गमें जा छिपे। पीछे एक दिन सवेरे समय सैनिक दल गवर्मेण्टके विरुद्ध खड़े हुए और अपने अफसरों पर गोली चलाने लगे। प्रायः सभी यूरोपीय मारे गये। सिर्फ एक सेनापतिने किसी तरह भारी चोट खा कर भी अपनी जान बचा ली और घोड़े पर चढ़ दुर्गमें पहुंच गये। उत्तेजित सेनाने सेना-निवासमें खूनकी नदी बहा दी। इसके बाद उन लोगोंने जेलके कैदियोंको छुटकारा दे दिया और कचहरीमें आग लगा दी। अन्तमें उत्तेजित सैनिकों, कारामुक्त कैदियों और विश्वासघातक सिपाहियोंने मिल कर दुर्गको घेर लिया।

७वीं जूनको प्रातःकाल ही कप्तान स्कीनने, दुर्गसे बिना बाधाके अन्यत्र चले जानेका बन्दोबस्त करनेके लिए महारानीके पास कुछ कर्मचारी भेजे। कहा जाता है, कि उन कर्मचारियोंको मार्गमें ही रोक कर रानीके पास पहुंचाया गया था। रानीने उनको उत्तेजित सैनिकोंके हाथ सौंप दिया। सैनिकोंके अस्त्राघातसे सब मारे गये यह अंग्रेजोंका विवरण है, किन्तु दत्तात्रेय बलवन्त पारसनवीसके लिखे हुए लक्ष्मीबाईके जीवनचरित्रमें इसका उल्लेख नहीं है। झांसीके प्रधान सदर अमीन रानीके नौकरोंके हाथ मारे गये। स्कीन और गार्डन साहबने उस दिन चार बार पत्र लिखे थे। ८वीं जूनको अवरुद्ध अंग्रेजोंको बाध्य हो कर सन्धिसूचक श्वेत पताका फहरानी पड़ी।

शेष पहरमें उद्दण्ड सिपाहियोंके अध्यक्षगण दुर्ग द्वार पर उपस्थित हुए और कप्तान स्कीनका गम्भीर भावसे शपथ करके देख, सालिहमहम्मद नामक एक डाक्टरके द्वारा कहलाया कि 'यदि अंग्रेज लोग अस्त्र परित्याग पूर्वक दुर्ग समर्पण करें, तो उनका केशाग्र भी स्पर्श नहीं किया जायगा।' यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। दुर्ग-वासियों ने अस्त्र छोड़ दिये। दुर्गसे यात्रा करनेका आयोजन होने लगा। पर अभागोंके लिए छुटकारा न बदा था। दुर्ग द्वारसे निकलने भी न पाये थे कि इतनेमें सशस्त्र सैनिकोंने आ कर उन्हें बन्दी कर लिया। अब बाधा पहुंचाने वा आत्मरक्षा करनेका भी कोई उपाय न रहा। वे निरीह भेड़ोंकी तरह चुपचाप खड़े रहे। इसी समय कुछ सवारों ने आ कर कहा—"रिसलदारका हुक्म है कि कैदियोंको मार डालो।" फिर क्या था, स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका सबको मार डाला गया। इनकी लाशें तीन दिन तक रास्तेमें ही पड़ी रहीं। पीछे मामूली तौरसे एक तरफ पुरुषोंकी और दूसरी तरफ स्त्रियोंकी समाधि की गई। इस तरह ५०।६० ईसाइयोंके शोणितसे झांसीके माथे पर कलङ्कका टीका लगाया गया।

उत्तेजित सिपाहियोंने अंग्रेजोंकी हत्या की। छावनी लूट ली। झांसीके दुर्गमें—झांसीके सेनानिवासमें उनका प्राधान्य हो गया। इसके बाद उनका राजप्रासाद पर लक्ष्य गया, प्रासाद घेर लिया। उनके दलपतिने रानीसे कहा—"हम लोग दिल्ली जा रहे हैं; इस समय हमें एक लाख रुपये न मिले तो राजप्रासाद तोपसे उड़ा दिया जायगा।" रानी बड़ी प्रत्युत्पन्नमति थीं। उन्होंने, इस विपत्तिसे न घबड़ा कर कहला भेजा कि "मेरा राज्य, मेरी सम्पत्ति सब कुछ परहस्तगत हो गई है। इस समय मैं दारिद्र्यसे पीड़ित हूं—दूसरोंकी मुंहताज हूं—अनाथा हूं। मुझ जैसी अनाथा पर अत्याचार करना आपके देशीय सिपाहियोंके लिए उचित नहीं है।" परन्तु सिपाहियोंने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इधर रानीके पिता सिपाहियोंको शान्त करनेके लिए उनके सर्दारके पास गये। किन्तु सिपाहियोंने उन्हें बांध लिया और कहा—'कुछ रुपये न मिलने पर हम लोग रानीके दामाद सदाशिवराव नारायणको राज-गद्दी पर बैठा सकते हैं।' रानीको कुछ उपाय सूझा।' उन्होंने पिताको छोड़ देनेके लिए कहा और अपनी सम्पत्तिमेंसे एक लाख रुपयेके अलङ्कारादि दे कर सिपाहियोंको शान्त किया। सिपाही लोग अर्थलोभसे उत्फुल्ल हो कर "मुल्क खुदाका। मुल्क झांसीकी रानी लक्ष्मी-

जायेगा ?" यह घोषणा करते हुए किसीकी तरफ चल दिये। रानीने यह सब हाल ब्रिटिश अधिकारियोंको लिख भेजा।

यह निश्चित है कि रानी लक्ष्मीबाईने यहां आनेके लिए सिपाहियोंका साथ नहीं दिया था। वे नितान्त निरावलम्ब थीं। उनके लिए रुपये देनेके सिवा उन उत्तेजित सिपाहियोंके हाथसे बचनेका और दूसरा कोई उपाय ही न था। यदि वे सिपाहियोंका साथ ही देतीं तो फिर उन्हें अपने सम्बन्धादि देने या अंगरेज-अधिकारियोंके पास खबर भेजनेकी क्या आवश्यकता थी? घटना चक्रके अनिवार्य आवर्तनने ही उन्हें इस प्रकारसे सिपाहियोंके सन्तोषसाधनमें प्रवृत्त किया था।

सिपाहियोंके चले जानेके बाद रानीने गवर्मेण्ट द्वारा नियोजित फौजदारी सिरिश्तादार गोपालराव आदि सम्भ्रान्त व्यक्तियोंको बुलाया और कर्त्तव्य-निर्धारणके विषयमें परामर्श पूछा। उस समय सागर प्रदेशमें कुछ गड़बड़ी न थी। इसलिए वहांके कमिश्नरको सब हाल कहने और झांसीके विषयमें उनका आदेश चाहनेके लिए पत्र लिखनेका निश्चय किया गया। तदनुसार गोपालरावने सम्पूर्ण घटना सागरके कमिश्नरको लिख भेजी। अब रानीने भी नाना स्थानोंके राजपुरुषोंको सम्पूर्ण विवरण लिख कर आत्मसमर्पण कर दिया। झांसीके कमिश्नर कप्तान पिङ्कने साहब लिख गये हैं— "विश्वस्तसूत्रसे मालूम हुआ है कि रानीने हमारे विद्रोही लोगोंके निकालनेसे दुःखित हो कर जब्बलपुरके कमिश्नरको पत्र लिखा था। उसमें इस बातका उल्लेख था कि इस विषयमें उनका कोई हाथ नहीं था। जब तक अंगरेज गवर्मेण्ट झांसीके पुनरधिकारका प्रबन्ध न करेगी, तब तक वे ही उस राज्यका शासन करेंगी। इस ढंगके पत्र लिख कर उन्होंने अंगरेजोंसे मित्रता बनाए रखनेकी कोशिश की थी।" इससे सिद्ध होता है कि रानीने ब्रिटिश गवर्मेण्टकी प्रतिनिधिस्वरूपसे झांसीको अपने अधिकारमें रखा था। उस समय झांसीमें, गवर्मेण्टके यहांसे कोई पत्र आने पर, कर्मचारियोंकी अव्यवस्थाके कारण उसका बदस्तूर उत्तर नहीं दिया जाता था, जिससे रानीका उद्देश्य प्रायः अंगरेज राजपुरुषोंके गोचर नहीं होता था। इस तरहकी गड़बड़ीमें भी रानीका पूर्वोक्त पत्र यथास्थान पहुंच न सका था। मार्टिन साहबने एक पत्रमें लिखा है, कि "उन्होंने (रानीने) जब्बलपुरके कमिश्नर मेजर एर्स्किन और आगराके प्रधान कमिश्नर कर्नल फ्रेजरके पास चिट्ठी भेजी थी। मैंने यह पत्र अपने हाथोंसे आगराके प्रधान कमिश्नरको दिया था। रानीके पत्रका कमिश्नर साहब क्या उत्तर देंगे यह जाननेके लिए मुझे बड़ी उत्कण्ठा हुई। परन्तु झांसीका नाम उनके चित्त पटसे ही अन्तर्हित हो गया था। कुछ भी सुनवाई न हुई— रानी अपराधिनी समझी गई।"

इस तरह अभागिनीका भाग्यचक्र पुनः लोटेकी ओर घूम गया। उनके विश्वस्त कर्मचारियोंको हटा दिया गया। रानीके पिता मोरोपन्त राजनीतिमें उतने चतुर न थे। दीवान लक्ष्मणराव भी नये थे इसलिए उनमें भी जितनी चाहिए उतनी कार्य-पटुता या अभिज्ञता न थी। देशकी अवस्थासे परिचित और अंग्रेजी भाषाके जानकार कोई भी उनको सत्परामर्श देने और सन्मार्ग दिखानेके लिए प्रस्तुत न थे। झांसीके नये बन्दोबस्तके समय और रक्षा आदि कामोंमें जो राज्यशासन आदि कार्योंके लिए कर्मचारी नियुक्त हुए थे, उनसे भी रानीका नाटक सद्भाव न था। इस प्रकार रानी लक्ष्मीबाईका भविष्य चारों ओरसे गाढ़ तमोजालसे आच्छन्न था।

उत्तेजित सिपाहियोंके आक्रमणसे झांसीमें अंग्रेजोंका प्राधान्य विलुप्त हो गया था। रानीने झांसीके इस विप्लवका विवरण या सम्वाद अन्यान्य स्थानोंके अंग्रेज राजपुरुषोंको भी दिया था। अंगरेजोंकी अनुपस्थितिमें उन्होंने झांसीका शासनभार ग्रहण किया था। इसी मौके पर रानीके सम्पर्कीय सदाशिवराव नारायण झांसीको अपने अधिकारमें करनेके लिए कोशिश कर रहे थे। सदाशिवने झांसीसे १० कोसकी दूरी पर करैरा नामक एक दुर्ग पर अपना कब्जा कर लिया और वहांसे अंग्रेजोंको भगा दिया। इसके बाद सदाशिवने पार्श्ववर्ती भागों पर अधिकार कर "झांसीके महाराज" यह उपाधि ग्रहण की। इस पर लक्ष्मीबाईने उनके विरुद्ध सेना भेजी। सेनाने जा कर करैराका दुर्ग घेर लिया, जिससे सदाशिवको सिंधेके राज्यमें भाग जाना पड़ा। वहां जा कर वे झांसी

आक्रमण करनेके अभिप्रायसे सेना इकट्ठी करने लगे। रानीने उनके विरुद्ध और एक सेना भेजी। अबकी बार सदाशिव बन्दी हुए और झाँसी लाये गये। इसके बाद रानीकी शासनदक्षताको देख कर दुर्द्धर्ष ठाकुर और बुंदेलोंने भी शान्तभाव धारण किया।

रानीने एक शत्रुको पराजित कर बन्दी कर लिया। इसके बाद दूसरे एक शत्रुने उनका सामना किया। झाँसीसे डेढ़ मीलकी दूरी पर ओरछा राज्य है। इस राज्यके दीवान नथेखाँ झाँसी आक्रमण करनेके लिए बीस हजार सेनाके साथ वेत्रवती नदीके किनारे पहुंचे। यह नदी झाँसीसे नजदीक ही है। इस समय रानीके पास अधिक सेना न थी। अंग्रेज गवर्मेण्टने झाँसी अधिकार कर सेनाकी संख्या घटा दी थी, तोप और बारूद आदि भी नष्ट कर दी थी। परन्तु रानी इससे भीत वा कर्तव्यविमुख न हुईं। उन्होंने नई सेना इकट्ठी कर युद्ध करना शुरू कर दिया। उनके आमन्त्रणसे झाँसीके सर्दार लोग सशस्त्र अनुचरोंको ले कर उपस्थित हुए। रानीने अपने बाहुबलसे झाँसीकी रक्षा की थी। पार्श्ववर्ती दतिया और टेहरी राज्यके कर्णधारोंने मौका देख, उक्त राज्य पर आक्रमण किया था, पर वे कृतकार्य न हो सके। दतिया और टेहरी दोनों राज्य ब्रिटिश गवर्मेण्टके अनुग्रहके पात्र हुए।

झाँसीराज्य जब अंग्रेजोंके हाथसे निकल गया था, तब लक्ष्मीबाईने नियमितरूपसे उसका दश मास तक शासनकार्य चलाया था। उनके समयमें सैनिकव्यवस्था, विचारकार्य, शान्तिस्थापन आदि प्रत्येक विषयमें असामान्य कर्मदक्षताके साथ काम लिया जाता था। जो युद्धकुशल साहसी सेनापति उनके विरुद्ध खड़े हुए थे, वे भी रानीकी क्षमता पर मुग्ध हो कर लिख गये हैं कि "रानीके वंशगौरव, सैनिक और अनुचरों पर उनकी असीम उदारता और सर्वप्रकार विघ्न-विपत्तियोंमें उनकी दृढ़ताने हमें उनका प्रभूत क्षमतापन्न और भयावह प्रतिद्वन्द्वी कर दिया था।"*

रानी प्रतिदिन दिनके तीन बजे, कभी पुरुषके भेषमें, और कभी स्त्रीके भेषमें दरबारमें उपस्थित होती थी। दीवानी और फौजदारी मामलोंके सिवा राज्यरक्षण और बाहरके शत्रुओंके आक्रमण निवारणके लिए अन्यान्य विषयोंमें भी उनको विशेष लक्ष्य रहता था। उन्होंने इंग्लैण्डमें भी दूत भेजा था, क्योंकि उनकी ऐसी धारणा थी कि राजपुरुषोंको उनका अभिप्राय जान कर सन्तोष होगा। परन्तु उनकी धारणा फलवती न हुई। राजपुरुषोंको रानी पर सन्देह था, उस सन्देहने अब शत्रुताका रूप धारण कर लिया। अंग्रेज सेनापति सर हिउरोज रानीके विरुद्ध झाँसीकी ओर चल पड़े।

अंग्रेजी सेनाके झाँसीके विरुद्ध अग्रसर होने पर दरबारमें गड़बड़ी फैल गई थी। झाँसीके ब्रिटिश गवर्मेण्टके अधिकारमें आ जानेसे बहुतसे पुराने कर्मचारियोंकी जीविका नष्ट हो गई थी। रानीने जब अपने अद्भुत साहसके बल पर अंग्रेजोंसे युद्ध करनेका निश्चय कर लिया, तब वहांकी वीर रमणियां भी युद्धके आयोजनमें उनकी सहायता करने लगी।

गवर्नर जनरल लार्ड कैनिङ् और बम्बईके गवर्नर लार्ड एल्फिन्ष्टोनने झाँसी अधिकार करना परम आवश्यकीय समझा था। २१ मार्चको अंग्रेजोंने झाँसीके विरुद्ध युद्ध करना शुरू किया था। पीछे ताँतिया टोपी बहुतसी सेना ले कर झाँसीकी सहायता करने आये थे। रणपारदर्शिनी रानी स्वयं दुर्गप्राकार पर खड़ी रह कर सेनाको उत्साहित और उत्तेजित कर रही थीं। परन्तु अंग्रेजोंने अपनी अधिकतर क्षमता और रण-नैपुण्यके कारण विजय प्राप्त की। अंग्रेजी सेनाके नगरमें प्रवेश करने पर लक्ष्मीबाई दुर्गके भीतर चली गईं। पहले अंग्रेजोंकी रसद वगैरह करीब करीब निबट चुकी थी, किन्तु ताँतिया टोपीके पराजित होने और उनकी रसद आदि पर अंग्रेजोंका अधिकार हो जानेसे अंग्रेजी सेना क्षमतापन्न हो उठी। और इसीलिए अंग्रेजोंके आक्रमणका प्रतीकार करना रानीके लिए असाध्य हो गया।

दूसरा कोई उपाय न देख, रानीने छिप कर भाग जानेका निश्चय किया। तदनुसार वे ४ अप्रैलकी रातको अपने अनुचरोंके साथ दुर्गके उत्तर द्वारसे निकल पड़ीं।

* Sir Hugh Rose's Despatch, April 30th, 1858

दुर्गको अधिकार किया और इसका अनेक अंश तोड़ फोड़ डाला। यहांके मार्ग, घाट और बाजार परिष्कार परिच्छन्न हैं। प्राचीन झाँसीके पूर्व पार्वत्य प्रदेशमें झाँसी-नयाघाट अवस्थित है। ग्रीष्मकालमें यहां अधिक गरमी पड़ती है, उस समय अपराह्न तक छायामें भी तापमान-यन्त्रसे १०८° ताप रहता है। वर्षाकालमें वेत्रवती नदीमें बाढ़ आ जानेसे चारों ओरका रास्ता बन्द हो जाता है। यहां जिलेकी प्रधान अदालत, तहसील, थाना, विद्यालय, औषधालय और डाकघर हैं। लोकसंख्या लगभग ५५७२४ है।

झाँसू (हिं० पु०) धोखेबाज, छल करनेवाला।

झाग (हिं० पु०) जल इत्यादिका फेन, गाज।

झागना (हिं० क्रि०) फेन उत्पन्न होना।

झाझत (सं० क्ली०) झामित्यव्यक्तशब्दस्य कृतं करणं यत्र, बहुव्री०। १ चरणका अलंकारविशेष, पैरोंमें पहननेका एक प्रकारका गहना, पैंजनी। २ झन झन शब्द।

झाजर—युक्तप्रदेशके बुलन्दशहर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८° १६´ उ० और देशा० ७७° ४२´ १५´´ पू० पर बुलन्दशहरसे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। हुमायूंके सहयात्री महम्मद खाँ नामक किसी बेलूचीने यह नगर स्थापन किया। बाद यह पलायित और समाजच्युत बदमाशका आश्रयस्थान हो गया। सिपाही विद्रोहके समय इस नगरने बहुतसे बेलूची घुड़सवारोंकियों-को देकर अङ्गरेजोंकी सहायता की थी। अभी यह नगर अत्यन्त दरिद्र और हीनावस्थामें पड़ा है। यहां एक डाकघर, थाना और विद्यालय है। नगरके प्रत्येक घरके ऊपर स्थापित करसे चौकीदार पहरू आदिका खर्च चलता है।

झाट (सं० पु०) झट-घञ्। १ निकुञ्ज, लतागृह, ऐसा स्थान जो घने वृक्षों और घनी लताओंसे घिरा हो। २ कान्तार, दुर्गमवन, दुर्भेद्य और घना जंगल। ३ क्षत-स्थान प्रभृति परिष्कारकरण, घाव इत्यादिके साफ करने-की क्रिया

झाटकपट (हिं० पु०) राजपूतानेके राज-दरबारोंमें अधिक प्रतिष्ठित सरदारोंको मिलनेवाली एक प्रकारकी ताजीम।

झाटल (सं० पु०) झाटं लाति ला-क। घण्टापाटल वृक्ष, मोखा नामका पेड़। यह सफेद और काला होनेके कारण दो प्रकारका होता है। पाकड़की तरह इस वृक्षमें भी दूध निकलता है। इसमें बड़े बड़े पत्ते लगते हैं और फल घंटियोंकी तरह लटके रहते हैं।

झाटा (सं० स्त्री०) झट लिन पच तनटाप्। १ भूम्यामलकी, भुईं आँवला। २ यूथिका, जूही।

झाटामला (सं० स्त्री०) झाट-कृप्। आमला, आँवला।

झाटिका (सं० स्त्री०) झाट् स्वार्थे कन्, टाप् अत इत्वं। १ भूम्यामलकी, भुईं आमला। २ जातीपुष्प, जायफलका पेड़।

झाड़ (हिं० पु०) १ पेड़ी रहित छोटा पेड़। इसकी डालियां जड़ या जमीनके बहुत पाससे निकल कर चारों ओर खूब फैली रहती हैं। २ रोशनी करनेका एक प्रकारका सामान। यह झाड़के आकारका होता है जो छतमें लटकाया या जमीन पर बैठकोंका तरह रखा जाता है। इसमें कई एक शीशेके गिलास लगे रहते हैं जिनमें मोम-बत्ती, गैस या बिजली आदिका प्रकाश होता है। ३ झाड़के आकारमें दाग पड़नेवाली एक प्रकारकी आतिश-बाजी। ४ एक प्रकारकी घास जो समुद्रमें उत्पन्न होती है। इसका दूसरा नाम जरस या जार भी है। ५ गुच्छा, लच्छा। (स्त्री०) ६ झाड़नेकी क्रिया। ७ डांटडपट कर कही हुई बात। ८ मन्त्रसे झाड़नेकी क्रिया।

झाड़खंड (हिं० पु०) जङ्गल, वन।

झाड़ झंखाड़ (हिं० पु०) १ वे झाड़ियां जिनमें बहुत कांटे हों। २ अप्रयोजनीय वस्तुओंका समूह, व्यर्थकी निकम्मी चीजोंका ढेर।

झाड़दार (हिं० वि०) १ सघन, घना। २ कँटीला, कांटेदार (पु०) ३ बड़े बड़े बेल बूटे बने हुए एक प्रकारका कसीदा। ४ बड़े बड़े बेल बूटे बने हुए एक प्रकारका गलीचा।

झाड़न (हिं० स्त्री०) १ झाड़ देने पर निकली हुई वस्तु। २ गर्द इत्यादि दूर करनेका कपड़ा।

झाड़ना (हिं० क्रि०) १ धूल इत्यादिको साफ करना, झटकारना, फटकारना। २ किसी चीज पर पड़ी हुई मैलको दूसरी चीजसे हटा देना। ३ झाड़ू इत्यादिसे

यह राज्य इसी वंशको जमानत पर दे दिया गया। इस समय राजा गोपालसिंहको उमर यद्यपि सत्तरह वर्षको थी, तो भी सिपाही विद्रोहमें इन्होंने गवर्मेण्टको ओरसे जैसी वीरता दिखलाई थी, वह प्रशंसनीय है। इस ठतज्ञतामें गवर्मेण्टने उन्हें १२५००) रु०की खिलअत दी। इनके दत्तकपुत्र उदयसिंह वर्तमान सरदार १८८४ ई०में राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए थे। ये भी 'राजा' की उपाधिसे भूषित हैं। ११ तोपोंकी सलामी है।

पहले झाबुआ एक विस्तृत राज्य था। अभी यह बहुत सङ्कीर्ण हो गया है, राज्यका अधिकांशही पर्वताकीर्ण है। ये सब पहाड़ १से ६ मील दूर तक उत्तरपश्चिमकी ओर विस्तृत हैं। उपत्यका प्रदेशमें मही, अनस और नर्मदा नदीकी उपनदियां प्रवाहित हैं। यहांकी जमीन बहुत कुछ उत्कृष्ट है। सब पर्वत जङ्गलसे घिरे हैं और उनमें लोहे इत्यादिकी खान हैं, किन्तु उपयुक्त परिश्रमके अभावसे वे किसी काममें लाये नहीं जाते हैं। अनाजकी फसल भी यहां अच्छी होती है। जुन्हरी, तण्डुल, मूंग, उर्द, बाटली और मामली वर्षाकालमें उपजती है। गेहूं और चना रब्बीमें प्रधान है। कपास और अफीम भी कुछ कुछ उत्पन्न होती है। चना और गेहूंकी रफतनी विदेशको होती है। पिटलावद तथा अन्यान्य समतल प्रदेशमें ईख उपजती है। यहांके बगीचेमें अदरख, लहसुन, प्याज तथा सब प्रकारको साग सब्जी पैदा होती है। अस्यन्तिव कहीं कहीं नदीके किनारे और अन्यान्य उर्वर स्थानमें सिंचित है। हर एक प्रजा कितनी जमीन आबाद करती है, उसका निर्धारण करना कठिन है। इसीसे जमीनका परिमाण न ले कर केवल गृहस्थके बैलके हो अनुसार मालगुजारी नियत की जाती है। भील पटेल अर्थात् मण्डलगण वंशपरम्पराक्रमसे राजस्व वसूल करते आ रहे हैं।

झाबुआ राज्यके अधिकांश अधिवासी भील और भीलाल जातिके हैं। ये बहुत परिश्रमी और कृषिनिपुण होते हैं। लोकसंख्या प्रायः ८०८८८ है।

झाबुआ राज्यमें झाबुआ, रानापुर, थान्दला और रम्भापुर नामके चार नगर लगते हैं। इन नगरोंमें विद्यालय है। जो कुछ हो यहां विद्याकी उतनी उन्नति नहीं है। यहांके राजा ५० अश्वारोही और २०० पदातिक सैन्य रखते हैं। इस राज्यमें तीन सड़कें गई हैं। आमदनी प्रायः १३००००) है।

शासन-कार्य यहांके राजा और दीवानसे चलाया जाता है। राजाके हाथमें केवल न्यायविचारकी क्षमता है। जब कभी भीलोंमें खून खराब होता है, तो राजा पोलिटिकल एजेण्टको सूचना देते हैं। इनो मामला कभी कभी पञ्चायतसे भी तै हो जाता है। फौजदारी और दीवानी मामला राजा तथा दीवानके हाथ है।

२ मध्यभारतके भोपावर एजेन्सीके शासनाधीन झाबुआ राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२°४५´ उ० और देशा० ७४° ३८´ पू० पर झालोदसे माउ नगरके रास्ते पर अवस्थित है। नगरके चारों ओर मट्टीका बना हुआ एक प्राचीर है। इस नगरके पूर्व प्रान्तमें एक पर्वत और चारों ओर सरोवर है। सरोवरके उत्तर प्रान्तमें ऊंचा राजप्रासाद और उसके पश्चिमसे नगर है। प्रासादके ऊपर बुर्जोंसे सुशोभित छोटे छोटे पहाड़ हैं। झाबुआ नगरकी सड़क कच्छपकी पीठकी नाईं असमान है। सरोवरके किनारे विद्युताहत झाबुआके राजाका एक स्मृतिचिह्न विद्यमान है। इस नगरकी जलवायु अच्छी नहीं है। यहां विद्यालय, डाकघर और दातव्यचिकित्सालय है। लोकसंख्या प्रायः ३३५४ है।

झामक (सं० क्लो०) झम गवुल। अत्यन्त पक्क इष्टक, जली हुई ईंट, झांवां।

झामका—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके काठियावाड़की एक छोटी जमीन्दारी। यह कुस्वावाड नामक ष्टेशनसे १० मील दक्षिण भवनगर-गोण्डल-रेलपथके धोराजी शाखा-रेलपथ पर अवस्थित है।

झामती (झांपती)—सिन्धुप्रदेशके मीरोंका राजकीय जहाज। ये सब जहाज वृहत् और प्रशस्त है। कोई कोई जहाज १२० फुट लम्बा और १८½ फुट चौड़ा होता है। इसमें ४ मस्तूल लगे रहते हैं। हर एक झामतीमें कमसे कम दो चौड़ी कोठरियां रहती हैं। यह केवल २½ फुट जलको गंभीरता डूबा जाता है। तीस मांझी ६ डांड खे कर झांपतीको ले जाते हैं। कराची और सुगालभिनमें यह बनाया जाता है।

झांमर (स० पु०) झाम राति रा-क। १ तर्कमान टेहुआ रगड़नेको मान, सिल्ली। २ एक प्रकारका आभूषण जिसे स्त्रियां पैरोंमें पैजनकी तरह पहनती हैं।

झाम्पोदार—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके काठिया वाड़ विभागका एक छोटो जमोन्दारो। यह वाधवानसे १० मील दक्षिण, बढ़वान सूई ग्रामसे १० मील पूर्व ; बम्बई बरोदा और सेण्ट्रल-इण्डिया रेलपथ पर अवस्थित है। यहांके तालुकदार झालावंशीय राजपूत हैं।

झार्य झार्य (हि० स्त्री०) १ झनकार झन् झन् शब्द। २ सुनसान स्थानमें हवाका शब्द।

झांव झांव (अनु० स्त्री०) १ तकरार, हुज्जत। २ बक वाद, बकबक।

झार (हि० वि०) १ एकमात्र निपट, केवल, सिर्फ। २ संपूर्ण कुल, सब। ३ समूह झुंड। (स्त्री०) ४ ईर्षा, डाह। ५ अग्निशिखा ज्वाला, लपट। ६ झाल चर परापन। (पु०) ७ झरना, सोता। ८ एक प्रकारका वृक्ष।

झारखंड (हि० पु०) वैद्यनाथसे जगन्नाथ पुरी तक विस्तृत एक जङ्गल।

झारन (हि० स्त्री०) झाड़न देखो।

झारना (हि० क्रि०) १ बालको संज निकालनेके लिये कंघी करना। २ दूर करना, अलग करना।

झारफूंक (हि० स्त्री०) झाड़फूंक।

झारा (हि० पु०) १ पलनो झरो हुई मांग। २ अनाजको साफ करना झारना।

झारी (हि० स्त्री०) एक प्रकारका लम्बोतर पात्र। यह लुटियाको तरह होती है और जल गिरानेके लिये इसमें एक ओर टोंटी लगी रहती है। इस टोंटीमेंसे धार बंध कर जल निकलता है।

झारू (हि० पु०) झाड़ू देखो।

झारोली—राजपूतानेके अन्तर्गत सिरोही राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २४°२५ उ० और देशा० ७३ ४ पू० पर उदयपुरसे प्राय: ४६ मील उत्तर-पश्चिममें तथा सिरोहीसे १० मील पूर्व-दक्षिणमें अवस्थित है।

झाझर (स० पु०) झर्झरवादन शिल्पमस्य झर्झर-अच्। झर्झरवादक, वह जो झन् झन् शब्द करता हो।

झार्झरिक (स० पु०) झर्झर-ठक्। झाझर देखो।

झाल (हिं० पु०) १ कांसेका बना हुआ ताल देनेका बाजा झांझ। २ झोंका, टोकरी। (स्त्री०) ३ जाड़े ऋतुको दो तीन दिनको लगातार जल वृष्टि। ४ तीक्ष्णता चरपराहट। ५ तरङ्ग लहर। ६ कामेच्छा।

झालकाटी (महाराजगञ्ज)—१ बङ्गालके बाकरगञ्ज जिले का एक शहर। यह अक्षा० २२ ३८´ उ० और देशा० ९० ११´ पू०में झालकाटी और नालचोठो दोनों नदियोंके सङ्गमस्थान पर अवस्थित है। पूर्व बङ्गालमें यह भी सोमवारीका एक प्रधान बन्दर है। विशेषकर सुन्दरो काठ यहांसे विदेशको भेजा जाता है। दूर दूर देशोंसे यहां जितनी चीजें आती हैं उनमें नमक प्रधान है। यहां प्रतिवर्ष कार्त्तिक मासमें दीवालीके समय एक मेला लगता है। यहां तेलका एक कारखाना है। लोकसंख्या प्राय: ४२११ है।

झालड़ (हि० स्त्री०) पूजा आदिके समय बजाये जानेका घड़ियाल।

झालना (हि० क्रि०) धातुकी वस्तुओंमें टांका दे कर जोड़ लगाना।

झालर (हि० स्त्री०) १ किसी चीजके किनारे पर लटकता हुआ हाशिया जो सिर्फ शोभाके लिये लगाया जाता है। झालरमें खूबसूरतो बेलबूटे भी बने रहते हैं। २ झालरके आकारकी कोई चीज। ३ किनारा छोर। ४ झांझ, झाला। ५ पूजा आदिके समय बजाये जानेका घड़ियाल।

झालरदार (हि० वि०) जिसमें झालर लगी हो।

झालरापाटन—राजपूतानेके अन्तर्गत झालावाड़ राज्य की पाटन तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २४° ३२ उ० और देशा० ७६°१० पू० पर अग्निकोणमें मालुकोष तक विस्तृत एक पर्वतश्रेणीके नीचे अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ७८९५ है। नगरके उत्तर-पश्चिम पर्वतको अधित्यकासे निकले हुए जलको जमा रखनेके लिये एक सुदृढ़ प्राय: ३ मील लम्बा एक बांध बना हुआ है। इस बांधके ऊपर बहुतसे देवमन्दिर और मौका घाटे विद्यमान हैं। नगरसे ले कर पर्वतके निम्नस्थान तकके उद्यान इसी शोभाको बढ़ाते हैं। यहां

वरकी ओर छोड़ कर नगरकी शेष तीन दिशाओंमें ऊँची दीवार और खाई है। नगरके दक्षिण ४००।५०० सौ गज दूरमें चन्द्रभागा नदी पश्चिमकी ओर प्रवाहित है। नगरसे प्राय. १५० ऊपर गिरिशृङ्ग पर एक छोटा दुर्ग है।

प्राचीन झालरापाटन वर्तमान नगरसे कुछ दक्षिण-में चन्द्रभागाके किनारे अवस्थित था। इसको नामकी उत्पत्तिके विषयमें बहुतोंका मतभेद है। टाड कहते हैं, कि यहां पहले बहुत देवालय थे, जिनमें बड़े बड़े घण्टे बजाये जाते थे। घण्टेके शब्दसेही इसका नाम झालरा पाटन अर्थात् घण्टानगरी रखा गया था। इसी स्थानमें असंख्य देवमन्दिर और सौधमालासे सुशोभित प्राचीन चन्द्रावती नगरी अवस्थित थी। कहते हैं, कि प्राचीन शहर और इसके मन्दिर औरङ्गजेबके समयमें तहस नहस कर डाले गये थे। उनके सामान अब भी चन्द्रभागा नदीके उत्तरीय किनारे पर एकत्रित है। उक्त मन्दिरोंमें से शीतलेश्वर महादेवका लिङ्गम् नामका मन्दिर सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध था, जिसके विषयमें फरगुसन साहब यों कह गये हैं, "भारतवर्षमें जितने मन्दिर मैंने देखे हैं, सभीसे यह मन्दिर सुन्दर तथा कारुकार्यविशिष्ट है।' जनरल कनिंहम साहब भी इस मन्दिरकी खूब प्रशंसा कर गये हैं। उन लोगोंके मतानुसार मन्दिरका निर्माण ६०० ई०में हुआ है। इस चन्द्रावती नगरीका एक मन्दिर "सातसहेली" अर्थात् सात कन्या नूतन झालरापाटनके निकट आज भी विद्यमान है।

चन्द्रावती देखो।

फिर कोई अनुमान करते हैं, कि झाला राजपूतोंसेही झालरापाटन नाम रखा गया होगा। अर्णाटन कहते हैं, झालराका अर्थ प्रस्रवण, पाटनका अर्थ नगर अर्थात् निकटवर्ती पर्वतके जलसे इसका नामकरण हुआ है।

१७९६ ई०में जालिमसिंहने झालरा-पाटन तथा इससे ४ मील उत्तरमें छावनी नामके दोनों नगर स्थापित किये। जालिमसिंहने जयपुर नगरके आदर्शमें इसका निर्माण किया था। झालरा-पाटनके मध्यस्थलमें एकखण्ड शिलालेख पर उन्होंने यह आदेश खुदवा दिया था, कि जो कोई इस नगरमें आ कर वास करेगा, उसे किसी प्रकारका शुल्क नहीं देना पड़ेगा और किसी अपराधमें अभियुक्त होने पर भी उसे १।) सवा रुपयेसे अधिक अर्थ-दण्ड नहीं देना होगा। १८५० ई०में राजाका उक्त आदेश बन्द कर दिया गया। दोनों नगर पक्की सड़कसे संयोजित है। झालरापाटनमें प्रधान प्रधान वणिक् और अर्थसचिवोंका वास है। यहां राजकीय टकसाल और अन्यान्य कर्मस्थान हैं।

झालरापाटन छावनी—राजपूतानेके अन्तर्गत झालावाड़ राज्यका प्रधान शहर और राजकीय राजधानी। यह अक्षा० २४°३६´ उ० और देशा० ७६° १०´ पू० पर समुद्र पृष्ठसे १८०० फुट ऊपरमें अवस्थित है। यह १७९१ ई०में कोटाके अधिपति जालिमसिंहसे स्थापित हुआ है। पहले यहां इनकी एक साधारण छावनी थी। पीछे धीरे धीरे मनुष्योंका वास अधिक हो जानेसे यह छावनी एक बड़े नगरमें परिवर्त्तित हो गई। यहांकी लोकसंख्या प्रायः १४३१५ है, जिनमें फी-सदी ६६ हिन्दू, ४१ मुसलमान और थोड़े दूसरी दूसरी जाति है। यहांसे एक मील दक्षिण पश्चिममें एक जलाशय है जिसके किनारे तरह तरहके फूलोंसे सुशोभित बहुतसे उद्यान लगे हैं। महाराज राणाका प्रासाद और राजकीय अदालत इत्यादि इसी नगरमें अवस्थित है। झालरापाटन और छावनी एक पक्की सड़कसे संयुक्त हैं। झालरापाटन नगर अपने परगनेका सदर और छावनी नगर समस्त राज्यका सदर है। छावनीका मध्यस्थ राजभवन एक चतुरस्र दृढ़ दुर्गके मध्य अवस्थित है। यहांका दुर्ग एक ऊंची पार्वत्यभूमि पर अवस्थित है तथा कोटा राज्यके गग्राउन दुर्गसे २½ मील दूर पड़ता है।

झाला—गुजरात प्रदेशकी एक राजपूत जाति। ये लोग हलवुडके अधिपतिको अपना नेता मानते हैं। टाड साहबका अनुमान है कि, ये लोग अनहिलवाड़-राजाओंके वंशधर होंगे। उक्त वंशीय राजाओंके ध्वंसके बाद झालाओंने विस्तीर्ण प्रदेश अधिकार कर लिया था। झालामुखसाहन नामकी एक सौराष्ट्रवासी शाखा अपनेको राजपूत बतलाती है। किन्तु वे सूर्य, चन्द्र वा अग्निकुल किसी भी वंशके नहीं हैं। हिन्दुस्तान वा राजपूतानेमें इस जातिके लोग वास करते हैं। मेवाड़-राजवंशके तु महामानी महावीर राणा प्रतापसिंहने झालाओंको राज-

पूनाभोंमें उच्च कर प्रभूत सम्मानसे भूषित किया था। जिस समय अकबर बादशाहको प्रति उक्त प्रान्तस्थ सम्पूर्ण राजपूत वोरके विरुद्ध नियोजित थी उस समय एक झाला वीरपुरुष अपने अनुचरों सहित प्रतापके अनुगामी हुए थे। प्रतापसिंहने कृतज्ञतास्वरूप उन्हें अपनी कन्या दे कर सम्मानकी पराकाष्ठा दिखाई थी तथा उन्हें अपने दक्षिण-पार्श्वमें स्थान दिया था। किन्तु वर्त्तमान राजगण झालाओंके साथ विवाह-सम्बन्ध करनेमें शरमाते हैं। इन झालाओंके नामानुसार गुजरातके एक विस्तीर्ण प्रदेशका नाम झालावाड़ हुआ है। इस विभागके नगरोंमेंसे बाँकानिर, वढ़वाण और ध्रांगध्रा प्रधान हैं। झालाओंके प्राचीन इतिहास बिलकुल नहीं मालूम है। कोटा के फौजदार और कोटा राज्यके अन्तर्गत झालावाड़के राजगण झालावंशीय हैं।

झालापति मान्ना—झालाकुलोद्भव एक राजपूत वीर। इन्होंने चिरस्मरणीय हल्दीघाटके युद्धमें भारत-भूप-कुलगौरव सूर्यवंशीय महावीर राणा प्रतापसिंहकी सहायताके लिए प्राणत्याग कर अक्षयकीर्ति पाई है। युद्धके समय प्रताप जब नितान्त अवसन्न हो गये, उनकी प्राणरक्षा तथा उनके साथ महाव्रती राजपूत-वीरगण जब चारों तरफ पतित होने लगे और सहसा असंख्य मुगलसेनाने राणाके मस्तक पर राज-चिह्न देख कर जब उनको घेर लिया, उस समय वीरवर झालापति मान्नाने इन विपत्तियोंको उपस्थित देख अपने शिर्ष देह सो अनुचरोंके साथ प्रतापका राज चिह्न अपने मस्तक पर धारण कर—रणस्थलमें कूद पड़े। मुगलोंने समझ तपनके समान उस वीरको राणा समझ कर घेर लिया झालापति अतुल विक्रमके साथ युद्ध करके रणक्षेत्रमें सदाके लिए सो गये। इधर राणा प्रताप राजपूतों द्वारा स्थानान्तरित कर दिये गये। इस स्वार्थत्याग और प्रभुपरायणताके कारण राजपूत-इतिहासमें झालापतिका नाम स्वर्णाक्षरोंमें चमक रहा है। झालाके वंशधर तभीसे मेवाड़के राणाका राजचिह्न धारण कर राणाके दक्षिणपार्श्वमें आसन पाते आये हैं।

झालावाड़—१ राजपूतानेके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २३ ४५ से २४ ४१ उ० और देशा० ७५ १८ से ७६ १५ पू०में अवस्थित है। यह राज्य करनी और टङ्क एजेन्सीके निरीक्षणमें शासित होता है। तीन परस्पर विच्छिन्न प्रदेश ले कर झालावाड़ राज्य संगठित हुआ है। बड़े खण्डके उत्तरमें कोटाराज्य, पूर्वमें सिन्धिया राज्य और टङ्कराज्यका एकांश दक्षिणमें राजगढ़ नामक क्षुद्रराज्य, सिन्धिया और होलकर राज्यका प्रदेश, देवराज्यका एकांश और जावरा राज्य एवं पश्चिममें सिन्धिया और होलकर राज्यका अधिकृत विच्छिन्न भूभाग है। इसी खण्डमें राजधानी झालरापाटन अवस्थित है। दूसरे खण्डके उत्तर, पूर्व और दक्षिणमें ग्वालियर राज्य एवं पश्चिममें कोटा राज्य है। इस खण्डका प्रधान नगर शाहाबाद है। छपापुर नामक तीसरा खण्ड उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है और यह आयतनमें बहुत छोटा है। इसके उत्तरमें सिन्धिया राज्य, पूर्व, दक्षिण और पश्चिममें मेवाड़ (उदयपुर) राज्य है। समस्त राज्यका भूपरिमाण ८१० वर्गमील है। नगर और ग्रामोंकी संख्या प्राय ४१० है।

झालावाड़ राज्यका बड़ा विभाग एक ऊँची मालभूमि है। इसका उत्तर भाग समुद्रपृष्ठसे प्राय: १००० फुट और दक्षिण भाग क्रमश: १५०० फुट ऊँचा है। इस खण्डका अधिकांश पर्वताकीर्ण है। उपत्यका प्रदेशमें नदी बहुत तेजीसे बहती है। समस्त पर्वत वृक्ष लतादिसे परिपूर्ण हैं। कहीं कहीं पर्वतके मध्य लम्बी चौड़ी झोल शोभा दे रही है। अवशिष्ट भूमिमें प्रचुर शस्य और फलोंकी उपज होती है तथा उसमें कहीं एक बन्दर है। शाहाबाद विभाग भी एक ऊँची मालभूमि तथा पहाड़पूर्ण है। राज्यको भूमि प्रधानतः उर्वरा है तथा उसमें अफीम और अन्यान्य मूल्यवान् फसल उपजती है। यहाँकी जमीन तीन भागोंमें विभक्त है—१ काली, २ माल ३ बालि। इनमेंसे काली मट्टी ही सबसे उर्वरा है। दूसरे प्रकारकी जमीन कुछ कुछ पाण्डुवर्णकी है और उसमें फसल भी अच्छीसी उपजती है। तीसरे प्रकारकी जमीन सबसे अनुर्वर है।

पारवान नदी इस राज्यके दक्षिण-पूर्वांशमें प्रवेश कर प्राय: ५० मील जानेके बाद कोटा राज्यमें प्रविष्ट होती है। राज्यमें नेवाज नामकी एक दूसरी बड़ी नदी इसमें

आ कर मिल गई हैं। मनोहरथाना और भाचूर्णीके निकट पारवान नदीमें तथा भूरिलियाके निकट नेवाज नदीमें पार होनेको घाट है। कालीसिन्धु नदी इस राज्यके किनारे और भीतरमें करीब ३० मील तक पत्थर आदिके ऊपरसे चली गई है। खैरासी और गौड़ामाके पास इस नदीमें एक पार उतारनेका घाट है। आऊ नदी इस राज्यके दक्षिण-पश्चिमभागमें प्रवेश कर ग्वालियर, टङ्क और कोटा राज्यकी सीमाप्रदेश होती हुई ६० मील तक जा कर अन्तमें कालीसिन्धु नदीमें गिरी है। इस नदीका गर्भ और तीर कालीसिन्धुकी तरह ऊँचा-नीचा नहीं है। कहीं कहीं तीरस्थ वृक्षराशिकी शाखा बढ़ कर नदीको स्पर्श करती है। सुकेत और भीलवारी नामक स्थानमें आऊ नदी पार होनेको घाट है। छोटी काली नामकी एक दूसरी नदी इस राज्यके कई अंशमें प्रवाहित है।

इतिहास—भालावाड़का राजवंश भाला नामक राजपूत संशोद्भव है। इसी वंशके आदिपुरुषगण काठियावाड़के अन्तर्गत भालावाड़ प्रदेशमें हलवुड़ नामक स्थानके सर्दार थे। १७०९ ई०में भावसिंह नामक सर्दारके मध्यमपुत्र एक भालावीरने बहुतसे अनुचरको साथ ले स्वदेश परित्याग कर अपने भाग्यके परीक्षार्थ दिल्लीको यात्रा की। राहमें कोटा महाराजके निकट वे अपने पुत्र मधुसिंहको छोड़ गये। इसके बाद भावसिंहका और कोई विवरण मालूम नहीं हैं। मधुसिंह राजाके अत्यन्त प्रिय हो गये। महाराजने मधुसिंहको बहिनके साथ अपने बड़े लड़केका विवाह करा दिया और मधुसिंहको नातना ग्राम दान दे कर फौजदारके पद पर प्रतिष्ठित किया। मधुसिंहके बाद उनके पुत्र मदनसिंह फौजदार हुए। यह पद क्रमशः उनका वंशानुक्रमिक हो गया। मदनसिंहके बाद हिम्मतसिंह तथा उनके बाद उनके भतीजे प्रसिद्ध आठारह वर्षके जालिमसिंह फौजदार हुए। तीन वर्षके बाद जालिमसिंहने कोटा सैन्य ले कर जयपुरके सैन्यदलको पराजित किया। किन्तु शीघ्रही रमणीप्रेम ले कर राजाके साथ जालिमका मनोविवाद आरम्भ हुआ। उन्होंने पदच्युत हो कर उदयपुरको प्रस्थान किया और वहां अनेक महत्कार्य द्वारा शीघ्रही प्रतिपत्ति लाभ की और महाराणासे राजराणाकी उपाधि मिली। मृत्युकालमें कोटाके राजाने पुनः जालिमको बुला कर अपने पुत्र उम्मेदसिंह तथा कोटा राज्यकी रक्षाका भार उन पर सौंपा। तभीसे जालिमसिंह ही एक प्रकार कोटाके अधिपति हुए। इनके सुशासनके गुणसे कोटा राज्यकी सुखसमृद्धि आशातीत बढ़ने लगी तथा क्या मुसलमान, क्या महाराष्ट्र, क्या राजपूत सभीसे इन्होंने ख्याति प्राप्त की। इन्हींके समयमें वृटिश गवर्मेण्टके साथ सन्धि स्थापन की गई। १८१७ ई०में सन्धिके अनुसार कोटाकी रक्षाके लिये बड़ा सेना रखी गई तथा १८१८ ई०में उसमें कुछ भाग और मिला दिये गये। राज-राणा जालिमसिंहके हाथ राज्यशासनका कुल भार सौंपा गया। जालिमकी मृत्यु १८२४ ई०में हुई। बाद उनके लड़के माधोसिंह राजकार्य चलाने लगे। यह अयोग्य शासक थे। प्रजा इनके कामोंसे प्रसन्न नहीं रहती थी। १८३४ ई०में इनके लड़के मदनसिंह इनके उत्तराधिकारी हुए। १८३८ ई०में कोटा-राजकी सम्मतिके अनुसार जालिमसिंहके वंशधरोंके लिये भालावाड़ नामक राज्यका एकांश ले कर एक पृथक् राज्य स्थापनका बन्दोबस्त किया गया। उसीके अनुसार १८३८ ई०में वार्षिक १२ लाख रुपये आयका अर्थात् समग्र राज्यका ⅓ अंश ले कर एक भालावाड़ राज्य संगठित हुआ। इन्होंने कोटा-राजके ऋणका ⅓ अंश भी ग्रहण किया। बाद सन्धिके अनुसार ये अंगरेजोंके आश्रित राजाओंमें गिने जाने लगे। अंगरेज गवर्मेण्टको वार्षिक ८० हजार रुपये राजस्व तथा प्रयोजनके समय साध्यमत सैन्य द्वारा सहायता पहुँचानेके लिये भी ये दायी रहे। मदनसिंहको महाराजाराणाकी उपाधि दी गई और १५ मान्य तोप दे कर अन्यान्य राजपूत राजाओंके समान मर्यादापन्न किये गये। मदनसिंहके बाद पृथ्वीसिंह भालावाड़के राजा हुए। १८५७-५८ ई०में सिपाही विद्रोहके समय ये बहुतसे यूरोपीय कर्मचारीको आश्रय दे कर तथा निरापदसे रक्षा करके गवर्मेण्टके विश्वस्त हुए। १८७६ ई०में उनके दत्तक पुत्र भकतसिंह राजा हुए। ये नाबालिग अवस्थामें अजमीरके मेयो-कालेजमें पढ़ते थे। उतने दिनों तक किसी अंगरेज कर्मचारीसे राजकार्य चलता था। पीछे भकत-

लेकिन १८८८ ई०में १२३) मदनशाही रुपये अङ्गरेजी १००) रुपयेमें बदले जाने लगे। अतः राजराणाने १८०१ ई०को पहली मार्चमें निजका सिक्का उठा कर अङ्गरेजी सिक्का कायम रक्खा।

पूर्व समयमें खेतकी उपज ही मालगुजारीमें दी जाती थी। लेकिन १८०५ ई०में जालिमसिंहने जमीनके अनुसार मालगुजारी स्थिर कर रुपये पैसेमें चुकानेकी प्रथा जारी की। राजकोषसे ५ दातव्य चिकित्सालयका बन्दोबस्त किया गया है।

अधिवासियोंमें सैकड़े पोछे ८६ हिन्दू और शेष मुसलमान हैं। यहां सिन्धिया (सन्ध्या) नामकी एक जाति रहती है। झालावाड़में इसकी संख्या प्रायः २२ हजार है। इस राज्यमें लगभग ८०१७५ लोग बसते हैं। ये न अत्यन्त गोरे हैं और न विशेष काले। सन्ध्यासमयके वर्ण-सा इनका वर्ण है। इन लोगोंका कहना है कि ये एक जातिके राजपूत तथा शार्दूलवटन नामक किसी राजाके वंशधर हैं। ये आलसी, व्यभिचारी तथा इनमेंसे अधिकांश चोर होते हैं। इनकी स्त्रियां अश्वारोहणमें निपुण होती हैं।

राज्यमें ६४½ मील तक पक्की सड़क गई है और बारहों मास उस पर बैलगाड़ी आदि आती जाती हैं। ८८½ मील तककी सड़क वर्षा भिन्न दूसरे समयके लिये सुगम नहीं है। झालरापाटनसे नोमच, आगरा, उज्जयिनी तथा कोटा तक सड़क गई है। दक्षिण और दक्षिण-पूर्वस्थ सड़क द्वारा इन्दोरसे बम्बई नगरमें अफीम और विलायती कपड़ेका अदला बदला होता है। भूपाल और हरवतीसे शस्य तथा आगरासे वस्त्रादिकी आमदनी होती है।

झालावाड़के सोने और चांदीके बरतन, पीतलके बरतन तथा पालिशयुक्त असबाब प्रसिद्ध हैं।

जलवायु—झालावाड़का जलवायु मध्यभारतके जलवायुसे कुछ कुछ स्वास्थ्यकर है।

राजपूतानेके उत्तर भागको नाईं वहां निदारुण ग्रीष्म नहीं पड़ता। ग्रीष्मकालमें दिनके समय छायामें तापका अंश फा० ८५° से ८८° तक होता है। वर्षाकालमें वायु स्निग्ध और मनोरम रहती और शीतकालमें प्रायः ओस पड़ती रहती है।

इस राज्यमें झालरापाटन, शाहाबाद, कैलवार, छिपाबुरोद युकारिसुकेत, मन्दाहार, थाना, पांच पहाड़, डाग और गाङ्गधार प्रधान प्रधान नगर लगते हैं।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके काठियावाड़का एक प्रान्त अर्थात् भूभाग। झाला नामक एक राजपूत जातिसे यह नाम पड़ा है। झालागण ही यहांके प्रधान अधिवासी हैं। यह विभाग गुजरात उप-द्वीपके उत्तर-पूर्व रन नामक लवणाक्त अनुप्रदेशके दक्षिणमें अवस्थित है। ध्रांध्रा, वांकेनेर, लिंबडी, वधवान तथा और कई एक छोटे छोटे राज्य इस विभागके अन्तर्गत हैं। ध्रांध्राके राजा ही झाला-समाजके नेता कह कर आहत होते हैं। इसका भूपरिमाण ३८७८ वर्गमील है। इसमें ८ नगर और ७०२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः ६०५१३८ है।

झालि (सं० स्त्री०) व्यञ्जनभेद, एक प्रकारकी कांजी। यह कच्चे आमको पीस कर उसमें राई, नमक और भूनी हींग मिला कर बनाई जाती है। इसका गुण जिह्वागत, कण्डुनाशक और कण्ठशोधक है।

"आम्रमामफल पिष्टं राजिका लवणान्वितम्।
भृष्टं हिंगुयुत पूतं झोलितं झालिरुच्यते॥" (भावप्रकाश)

झालू—युक्तप्रदेशके बिजनोर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २९° २०´ उ० और देशा० ७८° १४´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६४४४ है। अकबरके समय यह एक महाल या परगनेका सदर था। १८५६ ई०की २०वीं धाराके अनुसार इसका प्रबन्ध होता है।

झालोतार अाजगांई—अयोध्याके अन्तर्गत उनाव जिलेकी मोहान तहसीलका एक परगना। यह मोहान औरामसे दक्षिण तथा हड़ाके उत्तरमें अवस्थित है। इसका भूपरिमाण ८८ वर्गमील है, जिसमें ५५ मील खेती करनेके लायक है। अवध-रोहिलखण्ड रेलवे इसी परगनेसे गयी है। उसीका कुसुम्भि नामक एक ष्टेशन यहां है। यहां पांच हाट लगती है।

झालोद—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत पांचमहाल जिलेके दोहद तालुकका एक छोटा अंश। यह अक्षा० २२° २५´ ५०´´ से २३° २५´ ३०´´ और देशा० ७४° ६´ से

मध्यवर्ती समप्रदेश पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५०८४ है। यहां पहले एक दुर्ग था। अभी भी इस दुर्गके मध्य एक मस्जिद तथा शाह अवदुल रजाक और उनके चार पुत्रोंकी कब्र विद्यमान हैं। ये सब कब्र और मस्जिद सम्राट् जहांगीरके समयमें बनाई गई थी। उनके गुम्बजमें नील वर्णके बहुशिल्प-कार्ययुक्त पुष्प चमक रहे हैं। दरगा इमाम साहब नामकी अट्टालिका सबसे प्राचीन है। शहरके निकट खाटीके रहनेसे वर्षाकालमें बहुत दूर तक जलमग्न हो जाता है। ज्वर, वसन्त आदि यहांका साधारण रोग है। यहाँ एक थाना और डाकघर है।

झिञ्झिम (सं० पु०) झिम् इत्यव्यक्त शब्दं कृत्वा भ्रमति अत्ति वृक्षादीन् इत्यर्थः भ्रम-अच् पृषोदरादित्वात् साधुः। दावानल, वनकी आग।

झिञ्झिरा (सं० स्त्री०) क्षुपविशेष, एक प्रकारकी झाड़ी।

झिञ्झिरिष्ट (सं० स्त्री०) क्षुपविशेष, एक प्रकारका क्षुप। इसके संस्कृत पर्याय—फला, पीतपुष्पा, झिञ्झिरा, रोमाञ्चफला और वृत्ता है। इसके गुण कटु, शीत, कषाय, रक्तातीसारनाशक व्रण्य, सर्पगाल, वल्य और महिषी-क्षीरवर्द्धक है।

झिञ्झी (सं० स्त्री०) कीटविशेष, झिल्ली, झींगुर।

झिञ्झुवाडा—१ गुजरातके काठियावाड़के अन्तर्गत झालावाड उपविभागका एक छोटा राज्य। इसका भूपरिमाण १६५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ११७३२ है। इसमें कुल १८ ग्राम लगते हैं। यहांके अधिपति अंग्रेज गवर्मेण्टको ११०७३) रु० राजस्व देते हैं। यहांके अधिकांश अधिवासी कोलि जातिके हैं। पहले इस राज्यमें नमकके तीन कारखाने थे। गवर्मेण्टने तालुकदारोंको क्षतिपूर्तिस्वरूप कुछ दे कर कारखानेको उठा दिया है। राज्यके अनेक स्थानोंमें सोरा उत्पन्न होता है। निकटवर्ती रणका अधिकांश कई एक द्वीपके साथ इस राज्यके अन्तर्भुक्त है। झिलानन्द नामक बडा द्वीप प्रायः १० वर्गमील चौडा है। इस द्वीपमें बहुतसे तालाव और भोटवा नामक एक उष्णस्रोत है। प्रवाद है, कि आनन्द नामक किसी नरपतिने इस कुण्डमें स्नान कर दुरारोग्य कुष्ठव्याधिसे मुक्ति पाई थी।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके काठियावाड़में झालावाड उपविभागके उक्त झिञ्झुवाडा राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २३° २१' उ० और देशा० ७१° ४२' पू०में अवस्थित है। यह नगर बहुत प्राचीन है। अब भी यहां एक दुर्ग, पर्वत पर खुदा हुआ एक तालाव तथा प्राचीन भास्कर और स्थपतिनैपुण्यके परिचायक बहुतसे शिलालेख, भग्न वहिर्द्वार आदि विद्यमान हैं। यहां बहुतसे पत्थरोंमें 'महान् यो उदाल' नाम खुदा हुआ है। प्रवाद है—कि उदाल अनहिलवाड-पत्तनके अधिपति सिद्धराज जयसिंहके मन्त्री थे। इन्होंने अपनी जन्मभूमि झिञ्झुवाड़ामें उक्त दुर्ग और सरोवर निर्माण किया। अहमदाबादके सुलतानने झिञ्झुवाडा अधिकार कर अपने दुर्गसे मिला लिया। पीछे अकबरने इसे जीत कर यहां मुगल साम्राज्यका एक थाना स्थापन किया। मुगलसाम्राज्यके अधःपतनके समय वर्तमान तालुकदारोंके पूर्वपुरुष काथीजीने इस दुर्गको अधिकार किया। यहांके तालुकदार द्वारा सम्प्रदायभुक्त झालावंशके हैं, किन्तु कोलियोंके साथ विवाह-सूत्रमें आवद्ध हो जानेसे पतित हो गये हैं। कहा जाता है, कि झुञ्जो नामक किसी रवारीने झिञ्झुवाडा स्थापन किया। यह नगर बम्बई-बराटा और मध्यभारतीय रेलपथकी परिशाखाके खाडाघोड़ा स्टेशनसे १६ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां डाकघर और विद्यालय है।

झिड़कना (हिं० क्रि०) १ तिरस्कार वा अवज्ञा-पूर्वक बिगड़ कर कोई बात कहना। २ झटकना, झलग फेंक देना।

झिड़की (हिं० स्त्री०) झिड़क कर कही हुई बात, डाँट, फटकार।

झिड़झिड़ाना (हिं० क्रि०) कटुवचन कहना, चिड़-चिड़ाना, भला बुरा कहना।

झिड़झिड़ाहट (हिं० स्त्री०) झिड़झिड़ानेकी क्रिया या भाव।

झिण्टिका (सं० स्त्री०) झिएटी, कठसरैया, पियावासा।

झिएटी (सं० स्त्री०) झिमिति कृता रटतीति रट-अच् ङीप् ततो पृषोदरादित्वात् साधुः। १ सकण्टक क्षुद्र पुष्प-

हरितवर्णीय कटसरैया पियाबासा। इसके पर्याय—सैरीयक, कण्टकाढ्य, सैरेयक और झिण्टिका है। नीलझिण्टिकाके पर्याय—बाण दासी, आर्त्तगल, बाण, आर्त्तगल सहचर और नीलकुरण्टक। रक्तझिण्टिकाका पर्याय—कुरवक। पीतझिण्टिकाके पर्याय—कुरण्टक, सहचरी, सहचर सहाचर, और पीतपुष्प, दासी और कुरण्टक है। इसके गुण—कटु, तिक्त, दन्तामय शूल वात, कफ, शोथ काश और त्वग् दोष नाशक है। २ सुन्दर वन, कोई वन।

झिण्टीश (स॰ पु॰) १ झाण्टी कटसरैया। २ शिव, महादेव।

झिनवा (हि॰ पु॰) महीन चावलका धान।

झिनाई - बङ्गालके मैमनसिंह जिलेकी एक नदी। यह जमालपुरके निकट ब्रह्मपुत्रसे निकल कर आफरगाछी होती हुई यमुनामें आ गिरी है। ग्रीष्मकालमें इसमें अधिक जल नहीं रहता, किन्तु दूसरे समयमें नाव सदा जाती आती है।

झिनाईदह—१ बङ्गालके अन्तर्गत यशोर जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा॰ २३ २२´ से २३ ४० उ॰ और देशा॰ ८८ ५० से ८९ २२ पू॰के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ७०१ वर्गमील है। इसमें ग्राम और नगर मिला कर कुल ८६३ लगते हैं। पहले यह स्थान भूषणा उपविभागके अन्तर्गत था। १८६१ ई॰के नीलकरके उपद्रवमें मागुराके कई थाने ले कर यहां एक स्वतन्त्र उपविभाग स्थापित हुआ। इस उपविभागमें १ दीवानी अदालत, १ मजिष्ट्रेट और कलेक्टरी अदालत, १ छोटी अदालत, ४ रजिष्टरी आफिस और तीन थाने हैं। लोक संख्या प्रायः ३०८८८८ है।

२ बङ्गालके अन्तर्गत यशोर जिलेके उपरोक्त झिनाईदह उपविभागका सदर और एक शहर। यह अक्षा॰ २३ ३३´ उ॰ और देशा॰ ८९ ११ पू॰ पर यशोरसे २८ मील उत्तर नवगङ्गा नदीके किनारे अवस्थित है। यहांके बाजारमें चीनी तण्डुल और लाल मिर्चका व्यव साय अधिक होता है। नवगङ्गा नदीके द्वारा कई एक स्थानोंसे माल वाणिज्यका सम्बन्ध है, किन्तु उक्त नदीमें अधिक समय बहुत कम पानी रहता है। इहर्स-बङ्गाल स्टेट रेलवेसे झिनाईदह तक एक सड़क बनाई गई है। वारिन हेटि सके समय इस शहरमें भूषणा थानाके बदले एक चौकी स्थापित हुई। १०८६ ई॰में यह मामूदगाके विभागकी कसीलदारीका तथा पीछे १८६१ ई॰में यह एक उपविभागका सदर हो गया।

प्रवाद है, कि पहले झिनाईदहके चारों ओर डकैत रहते थे। वे पथिकको मार कर उनका सर्वस्व ले लेते थे। शहरके समीप जो एक बड़े सरोवरमें वे पथिकको फेंकते थे। आज भी उन सरोवरके 'पथुखोरा' या 'माको खापा' इत्यादि नामसे पथुकपाटन, दन्तभञ्जन प्रभृति लोमहर्षण व्यापारका जो स्मरण आ जाता है। झिनाईदह के निकट वृहस्पति और रविवारको एक साप्ताहिक हाट लगती है। हाटमें जितने लोग आते हैं उनमें हर एकसे स्थानीय कामोंके लिए कुछ महसूल ली जाती है। झिनाईदहके निकटवर्ती सुयाडाङ्गा नामक एक ग्राममें पांडु पीयुर नामक एक ठाकुर हैं। बहुतसी बन्ध्या स्त्रियां सन्तानकी कामनासे उनकी पूजा करने को आती है। झिनाईदह नगरमें बहुत ऊंचा तथा शुष्क और स्वास्थ्यकर है।

झिन्दन महारानी—पञ्जाबकेशरी महाराज रणजित्‌सिंह की प्रियतमा महिषी और महाराज दलीपसिंहकी माता। इनके भाई जवाहिरसिंह कुछ दिन सिख राज्यके वजीर थे तथा अन्तमें दुर्दान्त खालसा सैन्य द्वारा निहत हुए थे।

रणजित्‌सिंहको विवाहिता स्त्रियोंमें झिन्दन सबसे अधिक प्रियतमा थीं इसीलिए रणजित्‌सिंह उनको 'इनेक मी मार हुआ' अर्थात् प्रियपतिको प्रिया कहते थे। खड्ग सिंहको काबुलके सिंहासन पर पुनः स्थापित करनेके लिए जो मसाहा बना था उससे पहले महारानी झिन्दनने दलीपसिंहको प्रसव किया था। महाराज रणजित्‌सिंह इस संवादको पा कर अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होंने इस शुभोमें दरिद्रोंको खूब धन दान किया और १०१ तोप छुड़वा कर इस शुभ संवादको घोषित किया।

महाराज रणजित्‌सिंहके परलोक गमनके बाद यथा क्रमसे खड़गसिंह व नवनिहालसिंह व और शेरसिंह व पञ्जाब-

के सिंहासन पर बैठे थे। शेरसिंहकी मृत्युके उपरान्त पञ्चवर्षीय बालक दलीपसिंह सिंहासन पर अधिष्ठित हुए और महारानी झिन्दन उनकी अभिभावक बन कर राजकार्य चलाने लगीं। ध्यानसिंहके पुत्र हीरासिंह उस समय वजीरके पद पर नियुक्त हुए।

महारानी झिन्दनका चरित्र बड़ा ही विचित्र है। इनमें पुरुषोचित अटलता, सहिष्णुता, निर्भीकता आदि अनेक गुण विद्यमान थे, ये अत्यन्त तेजस्विनी थीं। सोत्साह शक्तिसञ्चालन, सेनाका उत्साहवर्द्धन और अद्भुत मनस्वितामें बहुतसे लोग इनको इङ्गलैण्डकी रानी एलिजाबेथके समान बतलाते हैं। परन्तु केवल एक दोषने इनको साम्राज्यदण्ड परिचालनके लिए अनुपयुक्त कर दिया था। ये अपने चरित्रको निष्कलङ्क न रख सकी थी। कुछ भी हो, झिन्दन प्रतिदिन दरबारमें जा कर सरदार और पञ्चायत अर्थात् खालसा-सेनाके अधिनायकोंके साथ मन्त्रणा करके अत्यन्त दक्षताके साथ राजकार्यकी पर्यालोचना करने लगीं। किन्तु थोरहृदय खालसा-सैन्योंको रानीके चरित्रमें सन्देह होने लगा। राजा लालसिंह इस सन्देहके पात्र थे। महारानीने लालसिंह पर निरतिशय अनुग्रह प्रकट कर अपने प्रासादमें उनको स्थान दिया था। इस विषयको ले कर एक दिन तेजस्वी हीरासिंहके उपदेष्टा और सहायक जल्लाने प्रकाश्य दरबारमें रानीका तिरष्कार किया। रानीके कोपसे उन्हें शीघ्र ही लाहोर छोड़ कर भागना पड़ा, किन्तु भागते समय खालसा-सेना द्वारा वे मारे गये। इसी तरह रानी अपने दोषसे वीरवर हीरासिंहका विनाश कर सिख-राज्यका अधःपतन करने लगीं।

इस समय महारानीके भाई जवाहिरसिंहको और उनके अनुग्रहके पात्र लालसिंहको राज्यके समुच्च पद प्राप्त हुए। ये दोनोंही व्यक्ति विलासप्रिय, कायर और खालसा-सैन्योंको सुशासनसे रखनेमें सम्पूर्ण अयोग्य थे। पेशोरासिंहको छिपी तौरसे हत्या करने पर खालसा-सैन्यने झिन्दन और दलीपके सामनेही जवाहिरसिंहको मार डाला। महारानी भाईके शोकमें अत्यन्त अधीर हो कर बहुत दिनों तक विलाप करती रहीं। पीछे जवाहिरसिंहके निधनके प्रधान प्रधान उद्योगियोंके पदच्युत और निर्वासित होने पर रानी पुनः राजकार्य चलाने लगीं। तेजसिंह सेनापतिके पद पर नियुक्त हुए। प्रथम सिख-युद्धके बाद लालसिंह पञ्जाबके प्रधान सचिव नियुक्त हुए। इसके बाद महारानी अंग्रेजोंके पराक्रमसे ईर्षान्वित हो कर षड़यन्त्रमें लिप्त हुईं। भइरवालको सन्धिके अनुसार दलीपको वयःप्राप्ति पर्यन्त पञ्जाबके राज्यशासनका भार अंग्रेज-गवर्मेण्टने अपने हाथ ले लिया। महारानीको वार्षिक डेढ़ लाख रुपयेकी वृत्ति दे राजकार्यसे हटा दिया गया। इससे पहले अंग्रेजोंके विरुद्ध षड़यन्त्रमें शामिल रहनेके अपराधसे लालसिंहको मासिक सिर्फ दो हजारकी वृत्ति दे कर बनारसमें रक्खा गया। कुछ भी हो, महारानी राजकार्यसे वञ्चित हो कर अत्यन्त क्षुब्ध हुईं और छिपी तौरसे सर्दारोंसे सलाह करने लगीं। राज्यके सभी अशान्त व्यक्ति उनके पास आश्रय पाने लगे। रेसिडेण्टने यह सब हाल गवर्नर जनरलको लिखा, उन्होंने बालक महाराजको रानीसे अलग कर देनेका आदेश दिया। इसके अनुसार रेसिडेण्टने सर्दारोंकी सम्मति ले कर महारानीको शेखोपुरके किलेमें भिजवा दिया। उनको अलङ्कारादि सब ले कर जानेकी अनुमति दी गई थी। जिस समय यह निदारुण सम्बाद दिया गया था, उस समय भी इस तेजस्विनी रमणीने प्रियतम पुत्रसे विच्छिन्न होना पड़ेगा—यह सोच कर जरा भी कातरता नहीं दिखाई थीं।

शेखोपुरमें रहते समय महारानीको वृत्ति घटा कर मासिक ४०००) रुपये निर्द्धारित हुए। शेखोपुरमें ये प्रायः बन्दिनीकी तरह रहती थीं। ये अपनी एकमात्र परिचारिकाके सिवा अन्य किसीसे भी साक्षात् नहीं कर पाती थीं। धीरे धीरे उन्हें यह अवस्था अत्यन्त कठोर मालूम पड़ने लगी। उन्होंने अपने वकीलके द्वारा अपनी दुरवस्थाका हाल गवर्मेण्टको लिखा, पर गवर्नर-जनरलने उनकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसके बाद मुलतानमें कुछ सैनिकोंने महारानीके नामसे विद्रोह उपस्थित किया। परन्तु थोड़े आयाससेही विद्रोहियोंके नेता पकड़े गये और उन्हें दण्ड दिया गया। रेसीडेण्टको यद्यपि यह मानना पड़ा था कि, इस विद्रोहमें महारानी शामिल नहीं थीं, किन्तु तो भी उन्हें शेखो-

पुरसे कारागारान्तरित करनेका षड़यन्त्र किया गया। झिन्दनने आत्मरक्षाके लिए बारम्बार प्रार्थनाएँ कीं, पर वे सब व्यर्थ हुईं। उनके मणि-रत्न अलङ्कारादि समस्त सम्पत्ति सहित बनारस भेज दिया गया।

उनको यह भी कह दिया कि, उनको सम्मानरक्षा और आपत्तिकी बात भी आपदा नहीं करना चाहिये नये स्थानमें उनको विश्वस्त अंग्रेज-कर्मचारीके अधीन रक्खा जायगा। किन्तु अंग्रेजोंके विरुद्ध षड़यन्त्र करने पर उन्हें चुनारमें कैद करके रक्खा जायगा और अवस्था इससे भी बदतर हो जायगी। इस समय महारानीकी वृत्ति और भी घटा दी गई, सिर्फ १ हजार रुपये मासिक दिये जाने लगे। इसके बाद झिन्दन पर और एक विपत्ति आ पड़ी। उनको विद्रोह और षड़यन्त्रमें लिप्त समझ कर अंग्रेजोंने उनके अधिकारस्थित—अलङ्कारादि सब जब्त कर लिए, दो सम्भ्रान्त व्यक्तियों द्वारा उनकी परिचारिकाओंके कपड़े तकको खोज कर विद्रोह सूचक पत्रादिका सन्धान किया गया पर कुछ भी न निकला। तो भी वे अपनी सम्पत्तिसे वञ्चित हो रहीं। इस समय उन्हें अपना खर्च चलाना भी भारी पड़ गया। उन्होंने मिउमार्च साहबको वकील नियुक्त कर उनके जरिये अपनी दुरवस्थाका विषय गवर्मेण्टको ज्ञात कराया। गवर्मेण्टने उस पर कुछ ध्यान भी नहीं दिया। मिउमार्चने विलायत जा कर भारतसभामें महारानीकी तरफसे आवेदन करनेके लिए १०,०००) रुपये माँगे पर उस समय महारानीके पास उतने रुपये थे नहीं इस लिए उन्हें आवेदनका विषयमें बिलकुल उदास होना पड़ा।

इधर रणजित्सिंहकी महिषीके पञ्जाबसे निर्वासित किये जानेके कारण खालसा सेना अत्यन्त असन्तुष्ट हो गई। ये समस्त पञ्जाबवासियोंकी माताजीसी थीं। इनके निर्वासित और प्रपीड़ित होनेका संवाद सुन कर पञ्जाबवासी भीत और क्रुद्ध हो गये। निरपेक्ष ऐतिहासिकोंने स्वीकार किया है कि लार्ड डालहौसीके द्वारा किया गया महारानी झिन्दनका निर्वासन ही इस सिख युद्धका अन्यतम कारण है। इसके बाद २य सिखयुद्धमें चिलियानवालाक्षेत्रमें अंग्रेजोंके अच्छी भांति पराजित होने पर महारानी झिन्दनने गवर्नर जनरलके पास एक प्रस्ताव भेजा कि उनको कारावाससे मुक्त करके पञ्जाबमें भेज दिया जाय, ऐसा होने पर वे शीघ्र ही विद्रोह दमन करनेमें समर्थ होंगी। परन्तु यह प्रस्ताव अग्राह्य हुआ। गुजरातके युद्धमें सिख-सेना बिलकुल परास्त हो गई, अवशिष्ट विद्रोही सेना और सेनापतियों ने अंग्रेजोंसे आश्रयकी प्रार्थना की। कुछ दिन बाद ही पञ्जाबराज्य अंग्रेजोंके अधिकारमें आ गया। शिशुमहाराज वृत्ति सहित फतेपुर भेज दिये गये। इसके कुछ दिन बाद विधवा रणजित् महिषी झिन्दन बनारससे चुनार भेजी गईं। वहाँ १८४९ ई०को ६ अप्रेलको वे कौशल से कारागारसे भाग कर नेपालकी तरफ चल दीं। बहुत कष्टसे अपरिमित दुर्गम पथको अतिक्रम कर वे किसी तरह नेपालके सीमान्तप्रदेशमें उपस्थित हुईं और राजासे आश्रयप्रार्थना की। प्रसिद्ध जङ्गबहादुरने महारानीको उसी समय नेपालस्थ रेसीडेण्टके पास भेज दिया। गवर्मेण्टने इस बातको जान कर महारानीकी अवशिष्ट सम्पत्ति भी जब्त कर ली और मासिक एक हजार रुपये की वृत्ति देना कबूल कर उसी स्थानमें रहनेका आदेश दिया।

कुछ दिन बाद महाराज दलीपसिंह इंलैण्ड गये महारानी नेपालमें ही रहने लगीं। किन्तु नाना कारणोंसे झिन्दनको नेपालका रहना दुष्कर हो गया। जङ्गबहादुर इन पर नाराज थे, विशेषतः झिन्दनको नेपालसे २० हजार रुपये मिलते थे, यही जङ्गबहादुरको खटकता था।

१८६१ ई०में दलीपसिंह अपनी सम्पत्तिकी मीमांसा व्याज मिलाकर और माताके लिये कुछ बन्दोबस्त कर लेनेके लिये भारतवर्षको लौटे। गवर्नर जनरलने झिन्दनको नेपालसे ले आनेकी अनुमति दे दी। महारानीने बहुत दिन बाद पुत्रका मुख दर्शनसे महापुलकित हो कर कहा—"अब मैं तुमसे विच्छिन्न न होऊँगी।" इस समय महारानीका पूर्व सौन्दर्य विलुप्त हो गया था। दुर्विषह चिन्ताके भारसे उनका शरीर क्षीण, मलिन और अन्ध हो गया था। इसके बाद जिन जवाहरातोंको वे चुनारके दुर्गमें छोड़ गई थीं, वे भी उन्हें मिल गये।

दलीपसिंहको शीघ्र ही विलायत लौट जानेकी आज्ञा मिली। महाराणी झिन्दन तथा बहुतसे अनुचर और अनुचरियाँ भी दलीपके साथ विलायत गईं। लन्दनमें लङ्कष्टार गेटके पास एक बड़े भारी मकानमें इन लोगोंको ठहराया गया। वहां एक दिन ये देशीय परिच्छदके ऊपर पाश्चात्य रमणियोंकी पोशाक पहन कर दलीपकी शिक्षयित्रीसे मिलने गई थीं।

इससे पहले महाराज दलीपसिंह ईसाई धर्ममें दीक्षित हुए थे, अब झिन्दनके प्रभावसे उनके धर्मभावोंको शिथिल होते देख अंग्रेजोंने दलीपको झिन्दिनसे पृथक् रखना ही युक्तियुक्त समझा। महाराणीके लिए लन्दनमें एक दूसरा मकान किराये पर लिया गया।

१८६७ ई०के अगस्त मासमें महाराणी झिन्दनकी लन्दन नगरमें ही मृत्यु हुई। जब तक उनका मृतशरीर, सत्कारार्थ भारतवर्षमें नहीं आया था, तब तक वह केनशालके समाधिविवरमें रक्षित था। बहुतसे संभ्रान्त अंगरेजोंने समाधिके समय उपस्थित हो कर महाराणीके प्रति सम्मान दिखलाया था। १८६४ ई०में महाराज दलीपसिंह अपनी माताकी देह ले कर बंबई उपस्थित हुए और नर्मदाके किनारे सत्कार समाप्त कर उन्होंने पवित्र नर्मदाके जलमें भस्म निक्षिप्त की। इस प्रकारसे पञ्जाबकी असामान्य सौन्दर्य-प्रतिमा वीरकेशरी रणजित्‌सहिषीने सौभाग्यकी उच्चतम अवस्थासे भाग्यचक्रकी सभी अवस्थाओंमें पतित हो कर आखिरको विदेशमें इस संसारसे सदाके लिये विदा ग्रहण की।

झिपना (हिं० क्रि०) झेंपना देखो।

झिपाना (हिं० क्रि०) लज्जित होना, शरमिन्दा होना।

झिम—बङ्गालके त्रिहुत जिलेकी एक नदी। इसमें हठात् बाढ़ आ जाती है; इसीसे नौकायात्रा निरापद नहीं है। वर्षामें केवल ५० मन बोझ लाद कर नाव मोणवर्षा तक जाती है।

झिर (हिं० स्त्री०) झिरी देखो।

झिरक—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत सिन्धुप्रदेशके कराची जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २४° ४' से २५° २६' उ० और देशा० ६७° ६' १५" से ६८° २२' ३०" पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें सेहवान, कोहिस्थानके कई अंश और बरणा नदी, पूर्व और दक्षिणमें सिन्धु नद और उसकी शाखा तथा पश्चिममें समुद्र और कराची तालुक है। भूपरिमाण २८८७ वर्गमील है। यह उपविभाग ठट्टा, मीरपुरसको और घोड़ाबाड़ी इन तीन तालुकोंमें विभक्त है और फिर ये तालुक भी २० तप्पोंमें बंटा है। इसमें ४ नगर और १४२ ग्राम लगते हैं।

इस उपविभागका उत्तरांश पर्वतमय और अनुर्वर मरुभूमि है, बीचबीचमें धँड़ नामक छोटी छोटी झील है। पूर्वमें सिन्धुतीरवर्ती भूभाग भी पर्वतमय और अनुर्वर है। इसी भागमें एक पहाड़के ऊपर झिरक नामका एक शहर बसा है। दक्षिणांशकी भूमि पल्वलमय और समतल है, बीच बीचमें खाड़ी और सिन्धुनदकी शाखा प्रवाहित है। इनकी कुछ प्रधान शाखाओंके नाम—पिति, जुना, रिचाल, हजामरो, ककंवारि और खेदेवाड़ी हैं। घाडोखाड़ी भी इसी उपविभागमें अवस्थित है। १८४५ ई०में हजामरो बहुत छोटी नदी थी, बाद धीरे धीरे बढ़ कर अभी वह सिन्धु नदके बड़े मुहानेमें गिरती जाती है। इस मुहानेके पूर्वीय किनारे मल्लाहोंकी सुविधाके लिये ८५ फुट ऊँचा एक आलोकस्तम्भ है। यह स्तम्भ प्रायः २५ मील दूरसे दिखाई पड़ता है। यहां गवर्मेण्टकी ४८ झाड़ी हैं, जिनकी लम्बाई प्रायः ३६० मील होगी। इसके सिवा जमींदारोंकी छोटी छोटी प्रायः १३२१ खाड़ी हैं। बाबह, कलरी और सियान ये ही तीनों सबसे बड़ी हैं। इनमें बाढ़ आ जानेसे बहुतसे मवेशी, बकरे आदि नष्ट हो जाया करते हैं। कोटरीसे कराची तकका रेलपथ इस बाढ़से कई जगह कट जाता है। उपविभागके भिन्न भिन्न स्थानोंका जलवायु भिन्न भिन्न प्रकारका है। झिरक और उसका निकटवर्ती स्थान स्वास्थ्यकर है, किन्तु ठट्टा और उसके चारों ओरके स्थानोंमें ज्वर, उदरामय आदि रोगोंका प्रकोप अधिक है। वसन्त रोगभी प्रायः हुआ करता है। आजकल टीका देनेसे वसन्त रोगका प्रकोप कुछ शान्त हुआ है। वार्षिक वृष्टिपात ७½ इञ्च है। समुद्रजात कुहेरा उपकुल भागमें बहुत दूर तक फैल जाता है, इसीसे यहां गेहूं नहीं उपजता।

यहांकी भूमिकी प्रकृति, जीव और उद्भिद् प्रायः

झिलमिली (हि • स्त्री•) १ बहुतसी आड़ी पटरियोंका ढाँचा पटरियाँ एक दूसरे पर तिरछी जमी रहती और दोनोंको ओर उनकी लम्बी लकड़ो या छड़में जड़ी होती है। यह बाहरसे आनेवाले प्रकाश और धूप आदि रोकनेके लिये किवाड़ी और खिड़कियोंमें जड़ी रहती है। इसको खोलने या बन्द करनेके लिये पटरियोंके पीछे उनकी लम्बी लकड़ी लगी रहती है। २ चिक, चिलमन। ३ एक प्रकारका आभूषण जो कानमें पहना जाता है।

झिल (स • पु•) एक प्रकारका पौधा जो नीलको जातिका होता है। इसके पत्ते और फल बहुत छोटे होते हैं। इसकी छाल और फूल लाल रंगके होते हैं।

झिलङ (हि • क्रि•) पतला और झंझरा।

झिलम (हि • स्त्री•) दरो बुननेके करघेकी बड़ी और मजबूत लकड़ी या शहतीर। इसमें बैना बाँस लगा रहता है इसे गुरिया भी कहते हैं।

झिल्लि (स • पु•) वाद्यविशेष एक प्रकारका बाजा। देवता पूजाके समय पाँच प्रकारके बाजाओंका विधान है, झिल्लि उन पाँचोंमेंसे एक है—

"पणवाम्बुलवाभेरी मृदङ्गो झिल्लिरेव च।

पञ्चानां पूजने वाद्यं देवतारात्रिषु च ॥"

(कर्मार्थचिन्ता•)

झिल्लिका (सं• स्त्री•) झिर इत्यव्यक्तशब्द क्षियति क्षिप-ड़ि स्वार्थे कन् । १ झिल्ली, झींगुर।

"झिल्लिका विरुते दीर्घे स्तनीत इवम्बरः।"

(रामा• ३।२४।१२)

२ सूर्यरश्मि तेजविशेष, सूर्यको किरणका तेज।

झिल्ली (स • स्त्री•) झिल्लि ङीष्। कीटविशेष, झींगुर। इसके पर्याय—झिल्लिका, झिल्लीक, झिरिका, झीरुका, झिरी, चीरिका, चोरिका, चिरी, भृङ्गारी, चोलोका, चीरी और चीरुका है।

"अतएव झिल्लीस्वनकर्कश स्वलक्षणैर्ग्ण्यविलासरास्या।"

(भागवत)

झिल्ली (हि • स्त्री•) १ किसी चीजकी पतली तह। २ बहुत बारीक खाल। ३ आँखका जाला। (वि•) ४ बहुत पतला।

झिल्लीक (सं• पु•) झिल्ली झींगुर।

झिल्लीकण्ठ (स • पु•) झिल्लीवत् कण्ठ कण्ठशब्दो यस्य, बहुव्री•। गृहकपोत, पालतू कबूतर।

झिल्लीका (स • स्त्री•) झिल्ली स्वार्थे कन् ततष्टाप। झिल्ली झींगुर

झिल्लीदार (हिं• वि•) जिस पर झिल्ली हो, जिसके ऊपर बहुत पतली तह जमी हो।

झींक (हि • पु•) झींका देखो।

झींका (हि • पु•) चक्कीमें पीसनेके लिये एक दफामें दिये जानेका अनाजका परिमाण।

झींखना (हि • क्रि•) १ लगातार झगड़े होनेके कारण दुःखी हो कर पछताना और चिढ़ना। २ अपनी विपत्ति का हाल सुनाना। (पु•) ३ खीजनेकी क्रिया या भाव। ४ दुःखका वर्णन, दुखड़ा।

झींमट (हि • पु•) कर्णधार मल्लाह।

झींगा (हि • पु•) सारे भारतकी नदियों और जलाशयों में पाई जानेवाली एक प्रकारकी मछली। चिङ्ग देखो।

झींगुर (हि • पु•) एक प्रकारका छोटा कीड़ा। इसके कई भेद हैं, कोई सफेद कोई काले और कोई भूरे रङ्ग का होता है। इसके छः पैर और दो बड़ी मूँछे होती हैं। यह अन्धेरे स्थानमें रहना बहुत पसन्द करता है। यह खेतों और मैदानोंमें भी पाया जाता है। इसकी आवाज बहुत तेज झींझीं होती है और प्रायः बरसातमें अधिक सुनाई देती है। इसका मांस नीच जातिके मनुष्योंके खानेके काममें आता है।

झीझी (हि • पु•) १ एक प्रकारकी प्रथा। इसमें छोटी छोटी कुमारी कन्याएं आश्विन शुक्लचतुर्दशीको मट्टीको एक कच्ची हाँड़ीमें बहुतसे छिद करके उसके बीचमें एक दीपक बाल कर रखती हैं और वे अपने सम्बन्धियोंके घर जा कर उस दीपकका तेल उनके मस्तक पर लगाती हैं। जो द्रव्य उनसे मिलता है उसीसे वे आमको मैदा कर पूर्णिमाके दिन पूजन करती और आपसमें प्रसाद बाँटती हैं। कहा जाता है कि उस दीपकके तेल लगानेसे नैतुआ रोग जाता रहता है।

झींद—पञ्जाबके फुलकियान राज्यके अन्तर्गत यमुनानदीके पूर्व तीरवर्ती एक देशीय राज्य। यह राज्य तीन बार

पृथक् पृथक् खण्ड ले कर संगठित हुआ है। समस्त राज्यका परिमाणफल १३३२ वर्गमील है। यह राज्य फुलकियान राज्यके अन्तर्गत है। पतियाला देखो। १७६३ ई०में सिखोंने मुसलमानोंसे सरहिन्द प्रान्त जीत करके इसकी नींव डाली थी और १७६८ ई०में यह दिल्लीके सम्राट् द्वारा अनुमोदित हुआ है। झींदके राजा हमेशाके लिए अङ्गरेजोंके शुभचिन्तक थे। महाराष्ट्रोंके अधःपतनके बाद झींदके राजा बाघसिंहने अङ्गरेजोंको यथेष्ट सहायता की थी। जब लार्ड लेक (Lord Lake)ने विपाशाके किनारे होलकरका पीछा किया, तब बाघसिंहसे उन्हें बहुत सहायता मिली थी। इस उपकारके प्रत्युपकार स्वरूप लार्ड लेकने राजाको सम्पत्ति दिल्लीके सम्राट् और सिन्धियासे प्राप्त भूमिका अधिकार दृढ़ कर दिया। फुलकिया राजाओंके पतियाला-राजाके बादही झींदके राजाका संभ्रम है। फुलकिया वंशके अधिष्ठाता चौधरीफुलके बड़े लड़के तिलकने झींद राज्य स्थापन किया। तिलकके पौत्र गजपतिसिंहने १७६३ ई०में सरहिन्दके अफगान-शासनकर्त्ता जैनखांको परास्त कर मार डाला। बाद उन्होंने पानीपथसे कर्नाल तक विस्तृत झींद और सफिदान प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया। दिल्लीके सम्राट्को राजस्व प्रदान तथा उनकी अधीनता स्वीकार कर वे वहां राज्य करने लगे। एक समय राजस्व अदा नहीं होनेके कारण सम्राट्के वजीर नाजिरखां गजपतिसिंहको कैदी बना कर दिल्ली ले गये। सम्राट्ने वहां उन्हें तीन वर्ष तक कैद कर रक्खा। बादमें गजपति अपने पुत्र मेहरसिंहको जामिन रख कर, अपनी राजधानीको लौट आये। पीछे उन्होंने सम्राट्को ३१ लाख रुपये दे कर १७७२ ई०में अपने पुत्रको मुक्त और राजोपाधि प्राप्त की। इन्होंने स्वाधीनभावसे राज्यशासन तथा अपने नामका सिक्का चलाया था। १७७४ ई०में नाभाके राजाके साथ लड़ाई हो जानेके कारण इन्होंने अमलोह, भादसन और सङ्गरूर पर चढ़ाई कर दी। ये सब जनपद नाभाके ही अन्तर्भुक्त थे। अन्तमें पतियालाके राजासे तङ्ग किये जाने पर इन्होंने और सब देश तो लौटा दिये, मगर सङ्गरूरको अपने ही दखलमें रखा। तभीसे यह देश झींदका एक भाग समझा जाता है। दूसरे वर्ष दिल्ली गवर्मेण्टने झींद पर अधिकार करनेकी कोशिश की, किन्तु फुलकियान सरदारोंने उनके आक्रमणको रोक दिया। १७७५ ई०में गजपतिसिंहने यहां एक दुर्ग बनवाया। १७८० ई०में मीरट-आक्रमणके समय ये लोग मुसलमान जनरलसे परास्त हुए, गजपतिसिंह कैद कर लिये गये। पीछे अच्छी रकम दे कर उन्होंने छुटकारा पाया। १७८८ ई०में दो लड़के छोड़ कर आप इस लोकसे चल बसे। बड़े भागसिंह राजा कहलाये। इनके अधिकारमें झींद और सफिदन और छोटे भूपसिंहके अधिकारमें बदरूखां रहा।

राजा भागसिंह ब्रटिश गवर्मेण्टके बड़े खैरख्वाह थे। जसवन्तराव होलकरको खदेरनेमें इन्होंने लार्ड लेकको अच्छी सहायता पहुंचाई थी। इस कृतज्ञतामें इन्हें ब्रटिश गवर्मेण्टकी ओरसे बवाना परगना मिला था। रणजित्सिंहसे भी राजा भागसिंहको कुछ प्रदेश मिले थे जो अभी लुधियाना जिलेके अन्तर्गत है। छत्तीस वर्ष राज्य करनेके बाद १८१९ ई०में इनका शरीरान्त हुआ। बाद इनके लड़के फतहसिंह उत्तराधिकारी हुए। १८२२ ई०में इनके स्वर्गवास होने पर इनके लड़के सङ्गतसिंहने झींदका सिंहासन सुशोभित किया। इस समय ये चारों ओर आपदोंसे घिरे थे, तनिक भी चैन न थी। १८३४ ई०में निःसन्तान अवस्थामें आपने मानवलीला समाप्त की। अब उत्तराधिकारीके लिये प्रश्न उठा। बाद सभीकी सलाहसे सङ्गतसिंहके चचेरे भाई स्वरूपसिंह जो बाजीदपुरमें रहते थे, राजा बनाये गये।

१८४५-४६ ई०के सिखयुद्धके समय अंगरेज कर्मचारीने गजपतिसिंहके निम्न छठे पुरुष झींदके तात्कालिक राजा स्वरूपसिंहसे सरहिन्द विभागके लिए १५० ऊंट मांगे थे। इस पर राजा सहमत न हुए। बाद मेजर ब्रडफुटने राजा पर १० हजार रुपये जुरमाना किया। राजा इस अपवादको दूर करनेके लिये इस तरह आग्रह और अविचलित भावसे अंगरेजोंके उपकार साधनमें प्रवृत्त हुए कि शीघ्र ही उनका पूर्व अपराध माफ कर दिया गया और वे अंगरेजोंसे आदृत

जाने लगी। इसके बाद जब सिख इमाम लहोरसे आसमोर के गुलाबसिंहके विरुद्ध विद्रोह जागा तब झींद राजने विद्रोह दमनमें अंगरेजोंकी सहायताके लिए अपना सैन्य भेजा था। इस व्यवहारसे पूर्वके १० हजार रुपयेको सब दण्ड उन्हें छोड़ दिया गया और साथ ही युद्ध समाप्त होनेपर अंगरेजोंने कृतज्ञता स्वरूप वार्षिक ३ हजार रुपये आयकी भूसम्पत्ति भी मिली। इसके सिवा अंगरेजोंने यह भी स्वीकार किया कि वे उनके उत्तराधिकारियोंसे किसी प्रकारका कर न लेंगे। झींद-राजने इसके बदले अपना सैन्य अंगरेजोंके व्यवहारमें रखा और राज्यमें सड़ककी मरम्मत करने, कृतदासप्रथा, सती-दाह और शिशुहत्या बन्द करनेकी प्रतिज्ञा भी की। इसके अलावा उन्होंने वाणिज्य द्रव्योंके ऊपर जो कर लगता था उसे भी उठा दिया। राजाके इस व्यवहारसे खुश हो कर गवर्नमेण्टने उन्हें और भी वार्षिक १०००) रु० आयकी एक भूसम्पत्ति दी।

सिपाही विद्रोहके समय भी इन्हें राजा स्वरूपसिंह सबसे पहले विद्रोही सैन्यको दमन करनेके लिये दिल्लीकी ओर अग्रसर हुए। यहां उनकी सेना प्रमुख अंगरेजोंके साथ युद्धक्षेत्रमें आगे बढ़ कर बल्कि सेना पतिकी सम्मानभाजन हुई थी। बादलीसरायके युद्धमें झींदके एक सैन्यदलने ऐसी वीरता दिखलाई थी कि इतनेमें ही अंगरेज सेनापति उन्हें धन्यवाद दिये बिना रह न सके। इस पुरस्कारमें सेनापतिने एक तोप उन्हें दी जो लूट कर लाई गई थी। फिर झींदकी दूसरी सेनाने दिल्लीसे ३० मील उत्तर बागपतका पुल विद्रोहियोंके हाथसे बचाया था। इसीसे मोरटके अंगरेजी सेना यमुना पार कर बाबाईके साथ मिल गई थी। हांसी, हिसार, रोहतक प्रभृति स्थानोंके बहुतसे विद्रोही झींदमें प्रवेश कर वहांके अधिवासियोंको तंग करने लगे थे किन्तु राजाने अत्यन्त दक्षतासे सभी विद्रोहियोंका दमन कर डाला।

अंगरेज गवर्मेण्टने राजाकी ऐसी अमूल्य सहायतासे सन्तुष्ट हो पुरस्कारस्वरूप कृतज्ञता और धन्यवाद प्रकट किया। झींदके १० मील दक्षिण दादरीके विद्रोही नवाबकी प्राय: वार्षिक १०३०००) रु० आयकी जमींदारी जब्त कर राजाको दी गई।

इसके अलावा राजाको सङ्गरूरके निकटवर्ती वार्षिक प्राय: ११८०००) रु० आयके १३ ग्राम दिये गये और उनके मानस्वरूप विद्रोही मिर्जा अबूबकरके दिल्लीस्थ वासभवन भी अर्पण किया गया। राजा फर्जन्द दिल्बन्द रासिख-उल्-इतिकाद् नामकी उपाधि राजा स्वरूपसिंह बहादुरको मिली। उनके सम्मानके लिये तोपसंख्या भी बढ़ाई गई तथा उन्हें और भी कई एक अधिकार मिले। सङ्गरूरके सहारा इनके अधीनस्थ सामन्तोंमें लिये जाने लगी और अपुत्रक अवस्थामें राजाकी मृत्यु होने अथवा उत्तराधिकारी नाबालिग रहने पर उचित व्यवस्था करनेका निश्चय किया गया। १८६१ ई०में राजाको "नाइट ग्राण्ड कमाण्डर स्टार अफ इण्डिया"की उपाधि मिली। १८६४ ई०की २६ जनवरीको राजाकी मृत्यु हुई। इसके बाद उनके पुत्र बीरप्रकृति समरकुशल सुबुद्धि रघुवीरसिंह सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। गद्दी पर बैठनेके साथ ही इनका ध्यान दादरीकी ओर आकर्षित हुआ। वहांकी प्रजा नवीन राजस्व जो उन पर निर्धारित किया गया था देनेको राजी न हुई। अन्तमें लगभग पचास गांवके लोग खुल्लमखुल्ला बागी हो गये। उन्हें दमन करनेके लिये रघुवीरसिंहने २००० योद्धाओंको एकत्र किया। विद्रोह ठण्डा किया गया और पुनः पूर्ववत् शान्ति विराजने लगी। इन्होंने १८७८ ई०के अफगानयुद्धमें अंगरेजोंकी खूब सहायता की थी। सरकार बहादुरने इन्हें भी सत्कार किया। इनके समयमें झींद, दादरी और सङ्गरूर उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। १८८७ ई०में ये परलोकको प्राप्त हुए। बाद इनके आठ वर्षके पोते रणवीरसिंह राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनके नाबालिगी तक राज्यकार्य रिजेन्सी द्वारा चलाया गया। १८९८ ई०में राज्यका पूरा भार इन पर सुपुर्द हुआ। इनकी पूरी उपाधि इस प्रकार है—फरजन्द-इ दिल्बन्द, रासिख-उल इतिकाद दौलत-इ-इ इंगलिशिया राजा-इ राजगान महाराज सर रणवीरसिंह राजेन्द्र बहादुर जी० सी० आई० ई०, के० सी० एस० आई०। इन

११ मान्यसूचक तोपें मिलीं। १८७७ ई०के दिल्ली राजकीय दरबारमें ये भारतेश्वरीके सचिव नियुक्त हुए।

इस राज्यमें ४३८ ग्राम और ७ शहर लगते हैं। लोकसंख्या लगभग २८२००३ है। यह दो निजा मतमें विभक्त है, एक सङ्गरूर और दूसरा झींद। यहां जितने शहर हैं उनमें सङ्गरूर ही प्रधान है। जिसकी पुरानी राजधानी झींद थी।

झींदकी चैती फसल ही प्रधान है। इस समय गेहूं, जौ, चना और सरसो उपजती है। रूई और ईख माघ फागुनकी फसल है। झींद तहसीलमें कहीं तो नकद से और कहीं उपजसे मालगुजारी चुकाई जाती है। नकदकी दर प्रति बीघे एकसे लेकर तीन रुपये तक है। यहांके जङ्गलका रकवा २६२३ एकर है और आमदनी २०००) रु०से कमकी नहीं है।

राज्यमें एक भी खान नहीं है। कहीं कहीं पत्थर, कंकड़ और शोराकी खान नजर आती है। यहां सोने, चांदीके अच्छे अच्छे गहने बनते हैं। इसके सिवा चमड़े, काठ और सूती कपड़ा बुननेका भी कारबार है। यहांसे रूई, घी और तिलहनकी रफ्तनी तथा दूसरे दूसरे देशोंसे परिष्कृत चीनी और सूती कपड़ेकी आमदनी होती है। इस राज्यमें लुधियाना धूरी जाखल रेलवे गई है। यहां ४२ मील तक पक्की सड़क और १८१ मील तक कच्ची सड़क गई है। पतियालाके जैसा यहां भी डाक और टेलिग्राफका प्रबन्ध है।

१७८३, १८०३, १८१२, १८२४ और १८३३ ई०में राज्यको घोर दुर्भिक्षका सामना करना पड़ा था। शासनकार्य चार भागोंमें विभक्त है। पहला मन विभाग, इसके कर्मचारीकी देखरेखमें शिक्षा-विभागका भी प्रबन्ध है। दूसरा दीवान इसके अधीन राजस्व और आबकारीका इन्तजाम है, तीसरा जङ्गी लाठके अधीन बख्शी खां इसके अधीन पुलिश तथा फौजकी देखभाल है और दीवानी तथा फौजदारी मामलाके लिये चौथा भाग अदालत है। उक्त विभागोंके प्रधान जब एक साथ बैठते हैं, तो उसे स्टेट कौंसिल या सदरआला कहते हैं। यह काउन्सिल राजाके अधीन रहता है। राजकार्यकी सुविधाके लिए यह राज्य दो निजामत और तीन तह-सीलमें विभक्त है। राज्यकी कुल आमदनी १६ लाख रुपयेसे अधिक है।

राजाके अधीन २२० अश्वारोही, ५६० पदातिक, ८० गोलन्दाज और १६ तोपें हैं।

२ पञ्जाबके अन्तर्गत झीन्द राज्यकी निजामत। वह अक्षा० २८°२४' से २८°२८' उ० और देशा० ७५°५५' से ७६°४८' पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल १०८० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २१७३२२ है। इसमें झीन्द सदर, सफीदन, दादरी, कलियाना और झींद ये शहर तथा ३४४ ग्राम लगते हैं।

३ पञ्जाबके अन्तर्गत झींद राज्य और निजामतकी तहसील। यह अक्षा० ७८°२' से ७८°२८' उ० और देशा० ७६°१५' से ७६°४८' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४८८ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १२४८५४ है। इस तहसीलका आकार त्रिभुजसा है। इसके चारों ओर करनाल, दिल्ली, रोहतक और हिस्सार नामके वृटिश जिले हैं। इसके उत्तरमें पतियालेकी नरवान तहसील है। इस तहसीलमें झींद और सफीदन नामके दो शहर तथा १६१ ग्राम लगते हैं। यहांकी वार्षिक आय प्रायः २.३ लाख रुपयेकी है।

४ पञ्जाबके अन्तर्गत झींद राज्यकी झींद निजामत और तहसीलका सदर। यह अक्षा० २८°२०' उ० और देशा० ७६°१८' पू० पर रोहतकसे २५ मील उत्तर-पश्चिम और संरूरसे ६० मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८०४७ है। पहले यह झींद राज्यकी राजधानी था, इसीसे इसका नाम झींद पड़ा है। यह अब भी झींदके राजाओंका वासस्थान है। यह शहर पवित्र कुरुक्षेत्रके भूभाग पर अवस्थित है। कहा जाता है, कि पाण्डवने यहां जयन्त देवीका एक मन्दिर बनाया और धीरे धीरे जयन्तपुरी नामकी नगरी बस गई। इसी जयन्तपुरीका अपभ्रंश झींद है। मुसलमानी राज्यके समय १७५५ ई०में झींदके प्रथम राजा गजपति-सिंहने इस पर आक्रमण किया। १७७५ ई०में दिल्ली सरकारने रहिमदादखांको उसे दमन करनेके लिये भेजा, किन्तु वहां पर वह पराजित हुआ और मारा गया। सफीदनमें उसका स्मारक अब भी विद्यमान है। यहां

झुठाना (हिं० क्रि०) झूठा साबित करना, झुठलाना।

झुठामूठो (हिं० क्रि०) झूठमूठ देखो।

झुठालना (हिं० क्रि०) झुठलाना देखो।

झुण्ट (सं० पु०) लुण्ट-घञ् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ काण्डहीन वृक्ष, वह पेड़ जिसमें तना न हो, झाड़ी। २ स्तम्ब, खंभा। ३ गुल्म।

झुण्डिया—गौड़ ब्राह्मणोंका एक कुलनाम। इसे कहीं तो वह्व और कहीं अम कहते हैं।

झुन (हिं० स्त्री०) १ एक चिड़िया। २ झुनझुनी देखो।

झुनक (हिं० पु०) नूपुरका शब्द।

झुनकना (हिं० क्रि०) झुनझुन शब्द करना, झुनझुन बजना।

झुनझुन (हिं० पु०) नूपुर आदिके बजनेका झुनझुन शब्द।

झुनझुना (हिं० पु०) छोटे छोटे लड़कोंके खेलनेका एक खिलौना। यह धातु, काठ, ताड़के पत्तों या कागजका बना होता है। इसमें पकड़नेके लिये एक डंडी भी लगी रहती है। डंडीके एक या दोनों सिरों पर पोला गोल लट्टू होता है। किसी किसी झुनझुनेमें आवाज होनेके लिये कंकड़ या किसी चीजके छोटे दाने दिये रहते हैं।

झुनझुनाना (हिं० क्रि०) घुंघुरुके समान आवाज करना।

झुनझुनियाँ (हिं० स्त्री०) १ सनईका पौधा। २ एक प्रकारका गहना जो पैरोंमें पहना जाता है और जिससे झुनझुनका शब्द होता है। ३ बेड़ी, निगड़।

झुनझुनी (हिं० स्त्री०) शरीरके किसी अंगमें उत्पन्न एक प्रकारकी सनसनाहट। यह हाथ या पैरके बहुत देर तक एक स्थितिमें मुड़े रहनेके कारण होती है।

झुनझुनु—राजपूतानेके अन्तर्गत जयपुरराज्यकी शेखावती जिलेका एक परगना और नगर। यह अक्षा० २८° ८' उ० और देशा० ७५° २३' पू० पर दिल्लीसे १२० मील दक्षिण-पश्चिम तथा बिकानेरसे १७० मील पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १२२७८ है। एक पर्वतके पूर्व पाददेश पर यह नगर अवस्थित है। यह पर्वत बहुत दूरसे दीख पड़ता है। शेखावतोंके राजाओंके शासनकालमें यहां पांच सर्दारोंका अलग अलग दुर्ग था। यहां काठके ऊपर अच्छे अच्छे चित्र खोदे जाते हैं।

झुपझुपी (हिं० पु०) १ झुबझुबी देखो।

झुप्पा (हिं० पु०) १ झब्बा देखो। २ झुण्ड देखो।

झुबझुबी (हिं० स्त्री०) कानमें पहननेका एक प्रकारका गहना। इस तरहका गहना सिर्फ देहाती स्त्रियां व्यवहार करती हैं।

झुमका (हिं० पु०) १ एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है। यह छोटी गोल कटोरीके आकारका होता है। कटोरीकी पेंदीमें एक कुंदा लगा रहता और इसका मुँह नीचेकी ओर गिरा रहता है। कुंदेके सहारेसे कटोरी कानसे नीचेकी ओर लटकती रहती है। इसके किनारे पर सोनेके तारमें गुथे हुए मोतियोंकी झालर लगी होती है। यह अकेला भी कानमें पहना जाता है। कोई कोई इसे कर्णफूलके नीचे लटका कर भी पहनती हैं। २ झुमकेके आकारमें फूल लगानेवाले एक प्रकारका पौधा। ३ इस पौधेका फूल।

झुमरा (हिं० पु०) लुहारोंका एक बड़ा हथौड़ा। यह खानमेंसे लोहा निकालनेके काममें आता है।

झुमरि (सं० स्त्री०) रागिणीविशेष, यह प्रायः शृङ्गार रसमें प्रयोज्य है।

झुमरी (हिं० स्त्री०) १ काठकी मुँगरी। २ एक प्रकारका यन्त्र जिससे गच पीटा जाता है।

झुमाऊ (हिं० वि०) झूमनेवाला, जो झूमता हो।

झुमाना (हिं० क्रि०) किसीको झूमनेमें लगाना।

झुमिया—सब जातिकी एक शाखा। ये अपना आदिम वास पहाड़ी प्रदेशमें बतलाते हैं। ये लोग विशेष कर झूम नामक अनाज उपजाते हैं, इसीसे इनका नाम झुमिया पड़ा है।

झुमुर—वीरभूम, छोटा नागपुर और उसके आस पासके प्रदेशोंमें प्रचलित नीचजातियोंका एक प्रकार नृत्य-गीत। साधारणतः दो या उससे ज्यादा स्त्रियां ढोलके बाजेके साथ नानारूप अङ्गभङ्गी करती और गाती हुई नाचा करती हैं। झुमुर-नाच अनेकांशमें अश्लील होने पर भी इसके कुछ गीत अत्यन्त भावपूर्ण हैं।

झुर—राजपूतानेके अन्तर्गत योधपुर राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २६° ३२' उ० और देशा० ७३° १३' पू० पर योधपुरसे १८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

झुरकुट (हिं० वि०) १ कुम्हलाया हुआ, सूखा हुआ। २ कृश, पतला, दुबला।

इस समय जयपुर राज्यमें अराजकता चारों ओर फैल गई और मनमाने कार्य होने लगे। प्रजाके दुःखोंका पारावार न रहा। प्रवाद है, कि झूथारामके ही षड़यन्त्रसे जय सिंहको अकाल मृत्यु हुई थी। रानीके मरने पर ये राजमन्त्रीके पदसे च्युत कर चुनारके किलेमें आजीवन कैद कर लिये गये थे।

झूम (हिं० स्त्री०) १ झूमनेकी क्रिया। २ झपकी, ऊँघ।

झूमक (हिं० पु०) १ होलीके दिनोंमें गाये जानेका एक गीत। इसे देहातकी स्त्रियां झूम झूम कर एक घेरेमें नाचती हुई गाती हैं झूमर। २ झूमर गीतके साथ होनेवाला नाच। ३ विवाहादि मङ्गल अवसरों पर गाये जानेका एक प्रकारका पूरबी गीत। ४ गुच्छा। ५ साड़ी या ओढ़नी आदिमें लगी हुई झूमकों या मोतियों आदिके गुच्छोंकी कतार।

झूमक साड़ी (हिं० स्त्री०) झूमके या सोने मोती आदिके गुच्छे लगे हुए एक प्रकारकी साड़ी। ये गुच्छे साड़ीके उस भागमें लगे रहते हैं जो मस्तकके ठीक ऊपर पड़ता है।

झूमका (हिं० पु०) १ झुमका देखो। २ झूमक देखो।

झूमड़ (हिं० पु०) झूमर देखो।

झूमड़ झामड़ (हिं० पु०) निरर्थक विषय, झूठा प्रपंच।

झूमड़ा (हिं० पु०) झूमरा देखो।

झूमना (हिं० क्रि०) १ आधार पर स्थित किसी वस्तुका इधर उधर हिलना, बार बार झोंके खाना। जैसे— डालोंका झूमना। २ आधार पर स्थित किसी जीवका अपने सिर और धड़को बार बार आगे पीछे नीचे ऊपर हिलाना, लहराना। जैसे-हाथीका झूमना। विशेष कर मस्ती, अधिक प्रसन्नता, नींद या नशे आदिमें इस क्रिया-का प्रयोग होता है। ३ बैलोंका एक ऐब। इसमें वे खूंटे पर बँधे हुए चारों ओर सिर हिलाया करते हैं।

झूमर (हिं० पु०) १ एकप्रकारका गहना जो सिरमें पहना जाता है। इसमें भीतरसे पोली सोची एक पटरी रहती है। पटरीकी चौड़ाई एक या डेढ़ अंगुल और लम्बाई चार पांच अंगुलकी होती है। यह गहना प्रायः सोनेका ही होता है। इसमें घुँघरू या झब्बे लटकते रहते हैं जो छोटी जंजीरोंसे बंधे होते हैं। इसके पिछले भागके कुंडेमें सांपके आकारके एक गोल टुकड़ेमें दूसरी जंजीर या डोरी लगी होती है। इसके दूसरे सिरेका कुंडा सिरकी चोटी या मांगके सामनेके बालों या मस्तकके ऊपरी भाग पर लटकता रहता है। संयुक्त प्रदेशमें सिर्फ सिर पर दाहिनी ओरमें एक ही झूमर पहना जाता है किन्तु पंजाबकी स्त्रियां झूमरोंकी जोड़ी पहनती हैं। २ एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है। कोई कोई इसे झुमका भी कहते हैं। ३ होलीमें गाये जानेका एक प्रकारका गीत। ४ इस गीतके साथ होनेवाला नाच। ५ विहारप्रान्तमें सब ऋतुओंमें गाये जानेका एक गीत। ६ एकही तरहके बहुतसी चीजोंका गोल घेरा, जमघट। ७ बहुतसी स्त्रियों या पुरुषोंका गोलाकारमें हो कर घूम घूम कर नाचना। ८ गाड़ीवानोंकी मोंगरी। ९ एक प्रकारका ताल जिसे झूमरा भी कहते हैं। १० छोटे छोटे लड़कोंके खेलनेका एक प्रकारका काठका खिलौना। इसमें एक गोल टुकड़ेमें चारों ओर छोटी छोटी गोलियां लटकती रहती हैं।

झूमरा (हिं० पु०) चौदह मात्राओंका एक प्रकारका ताल। इसमें तीन आघात और एक विराम होता है। धिं धिं तिरकिट, धिं धिं धा धा, तित्ता तिरकिट धिं धिं धा धा।

झूमरी (हिं० स्त्री०) मालक रागके पांच भेदोंमेंसे एक।

झूर (हिं० स्त्री०) १ जलन, दाह। २ परिताप, दुःख।

झूरा (हिं० पु०) १ शुष्कस्थान, सूखी जगह। २ अवर्षण, पानीका अभाव, सूखा। ३ न्यूनता, कमी।

झूरि (हिं० स्त्री०) झूर देखो।

झूल (हिं० स्त्री०) १ चौपायोंकी पीठ पर डाले जानेका एक चौकोर कपड़ा। इस देशमें हाथियों और घोड़ों आदिकी पीठ पर शोभाके लिये अधिक दामोंकी झूल डाली जाती है। यहां तक कि बड़े बड़े राजाओंके हाथियोंकी झूलोंमें मोतियोंकी झालरें लगी रहती हैं। आजकल कुत्तोंकी पीठ पर भी झूल डाली जाने लगी है। २ वह कपड़ा जो पहना जाने पर भद्दा जान पड़े।

झूलडंड (सं० पु०) झूलदंड देखो।

झूलदंड (हिं० पु०) एक प्रकारकी कसरत। इसमें कसरत करनेवाले एक एक करके बैठक और तब झूलते हुए दंड करते हैं।

झूलन (हि॰ पु॰) १ वर्षा ऋतुमें श्रावण शुक्ला एकादशीसे पूर्णिमा तक होनेवाला एक उत्सव। इसमें श्रीकृष्ण या श्रीरामचन्द्र आदिकी मूर्तियां झूले पर बैठा कर झुलाई जाती हैं। हिंडोल देखो। २ एक प्रकारका रंगीन रेशम।

झूलना (हि॰ क्रि॰) १ किसी आधारके सहारेसे लटक कर कई बार इधर उधर हिलना। २ अनिश्चित अवस्थामें रहना किसीको आशामें रहना। (वि॰) ३ झूलनेवाला। (पु॰) ४ २६ मात्राओंका एक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें ७ ७ ७ और ५ विराम होते हैं और अन्तमें गुरु लघु होते हैं। ५ इसी छन्दका एक दूसरा भेद। ६ हिण्डोल, झूला।

झूलनी बगली (हि॰ स्त्री॰) बगलीकी तरह मुगदरकी एक कसरत। इस कसरतमें कलाई पर अधिक जोर पड़ता है।

झूलनी बैठक (हि॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी बैठक इसमें बैठक करते एक पैरको हाथीकी सूँड़की तरह झुलाता और तब उसे समेट कर बैठता है। इसके बाद फिर उठ कर दूसरे पैरको उसी प्रकार झुलाना पड़ता है।

झूलरि (हि॰ स्त्री॰) वह छोटा गुच्छा या समूह जो हमेशा झूलता रहता हो।

झूला (हि॰ पु॰) १ हिंडोला। इसके कई भेद हैं। कई जगह वर्षा ऋतुमें नीम पेड़ोंकी मजबूत डालोंमें मोटे रस्से बांध कर उसके निचले भागमें तख्ता या पटरी रखते हैं। इसी पटरी पर बैठ कर वे झूलते हैं। दक्षिण भारतमें झूलेका व्यवहार अधिक है। वहां प्राय सभी घरोंके छतोंमें चार रस्सियां लटका कर उसमें चौकीके चारों कोनेसे जकड़ कर बांध देते हैं। झूलेका निचला भाग जमीनसे कुछ ऊपर ही रहता है, ताकि वह जमीनमें अटक न जाय। झूलेके आगे और पीछे जाने और आनेको पेंग कहते हैं। झूला दूसरेसे झुलाया जाता अथवा पैरको तीरछा करके जमीन पर आघात करनेसे आपसे आप झूला जाता है। २ एक प्रकारका पुल जो बड़े बड़े रस्सों जंजीरों या तारोंका बना होता है। इसके दोनों सिरे उस नदीके समीपवाले किसी बड़े खंभे वृक्षों या चट्टानोंमें मजबूतीसे बंधे होते हैं। इससे नीचेका भाग लटकता और झूलता रहता है। कोई कोई इसे लछमन-झूला नामसेभी पुकारते हैं। पूर्वकालमें पहाड़ी नदियों पर इसी तरहके पुल नदी पार होनेके लिये दिये रहते थे। आजकल भी उत्तर भारत और दक्षिण अमेरिकाके पहाड़ी नदियों पर इसी तरहके पुल देखनेमें आते हैं। पुराने तरहका पुल दो तरहका होता है पहला झूला एक बहुत मोटे और मजबूत रस्सेका होता है जो नदी या खाईके किनारे परके किसी मजबूत खंभे या वृक्षोंमें जकड़ कर बंधा रहता और उसके नीचे एक बड़ा टोप या चौपटा आदि लटका दिया जाता है। दूसरा झूला मोटी मोटी मजबूत रस्सियोंसे बुना हुआ जालसा होता है और इन रस्सोंमें लटका कर दोनों ओर रस्सियोंमें इस प्रकार बांध देते हैं कि नदीके ऊपर उन्हीं रस्सों और रस्सियोंको लटकती हुई एक गलीसी बन जाती है। इसीमेंसे हो कर आदमी नदी पार होते हैं। इसके दोनों सिरे भी पहलेके नाईं नदीके किनारे पर चट्टानोंसे बंधे होते हैं। आजकल भी अमेरिका आदिकी बड़ी बड़ी नदियों पर भी इस तरहके बहुतसे पुल बनाए जाते हैं। ३ वह झूल जो जाड़ेके मौसममें पशुओंकी पीठ पर डाला जाता है। ४ एक प्रकारका ढीला कुरता जिसे प्रायः देहाती स्त्रियां पहनती हैं। ५ झोंका झटका।

झूला—पञ्जाब प्रदेशके इरावती और चन्द्रभागा पार्वतीय नदीके ऊपरका झूलता हुआ पुल। इन सेतुओंकी निर्माण प्रणाली बहुत ही सहज है—दोनों ओरके पहाड़में एक या दो रस्से खूब मजबूतीसे बांध कर उसमें एक बड़ी डाली लटका देते हैं जिसमें एक रस्सी बंधी रहती है। उस डालियामें आरोहीके बैठने पर दूसरी पारसे एक आदमी उसको रस्सी पकड़ कर खींच लेता है।

झूसि (सं पु॰) क्रमुकभेद, एक प्रकारकी सुपारी।

झूसि (हि॰ पु॰) झूसी देखो।

झूसी (हि॰ स्त्री॰) वह चद्दर जिससे हवा करके भूसा उड़ाते हैं।

झूसडुम—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातका एक शहर। यह अक्षा॰ २२ ५ उ॰ और देशा॰ ७१ १५´ पू॰के मध्य राजकोटसे १० मील दूर पूर्व दक्षिणमें अवस्थित है।

झूसी—युक्तप्रदेशमें इलाहाबाद जिलेकी झूलपुर तहसील-का एक शहर। यह अक्षा० २५° २६' उ० और देशा० ८१° ५४' पू०के मध्य गङ्गाके दूसरे किनारे अवस्थित है। लोक-संख्या प्रायः ३३४२ है। इलाहाबादके उपकण्ठस्थित दारागञ्ज और झूसीके बीचमें पार होनेका वाट है। ग्रीष्म कालमें नदीके सङ्कीर्ण हो जानेसे वहां नौसेतु प्रस्तुत होता है। यह नगर अत्यन्त प्राचीन है। हिन्दू पुराणादिवर्णित केशिनगर या प्रतिष्ठान इसी स्थान पर था। अकबरके समयमें इलाहाबाद, झूसी और जलाला-बाद ये तीन नगर इलाहाबाद सूबाके सदर थे। इस शहरमें सरकारी त्रिकोणमितिक जरीपका एक अड्डा तथा प्रथम श्रेणीका थाना और डाकघर है।

झेंपना (हिं० क्रि०) लज्जित होना, शरमाना, लजाना।

झेरा (हिं० पु०) प्रपंच, झंझट, बखेड़ा।

झेल (हिं० स्त्री०) १ वह क्रिया जो पानीमें तैरते समय पानी हटानेके लिये हाथ पैरसे की जाती है। २ हलका धक्का, हिलोरा। ३ झेलनेकी क्रिया या भाव।

झेलना (हिं० क्रि०) १ ऊपर लेना बरदाश्त करना। २ पानीको हाथ पैरसे हिलाना। ३ हेलना, तैरना। ४ पचाना, हजम कराना। ५ अग्रसर करना, आगे बढ़ाना, ठेलना, ढकेलना।

झेलनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी जंजीर। यह कानके आभूषणका भार संभालनेके लिये बालोंमें अटकाई जाती है।

झेलम्—१ पञ्जाबके रावलपिण्डी विभागका एक जिला। यह अक्षा० ३२° २७' से ३३° १५' उ० और देशा० ७२° ३२' से ७३° ४८' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २८१३ वर्गमील है। यह जिला पश्चिमसे पूर्व तक ७५ मील लम्बा और ५५ मील चौड़ा है, पञ्जावके ३२ जिलेके मध्य यह जिला परिमाणफलानुसार ८वें और अधिवासी-के संख्यानुसार १८वें स्थानमें है। पञ्जाब प्रदेशके सैकड़े प्रायः ३·६७ अंश भूभाग और ३·१८ अंश अधि-वासी इस जिलेके अन्तर्गत है। इसके उत्तरमें रावल-पिण्डी जिला, पूर्वमें वितस्ता (झेलम) नदी, दक्षिणमें वितस्ता नदी और शाहपुर जिला तथा पश्चिममें बन्नू और शाहपुर जिला अवस्थित है। झेलम् नगर शासनकार्य और वाणिज्यादिका सदर है।

झेलम्की भूमि रावलपिण्डीकी नाईं पहाड़ी नहीं होने पर भी समतल नहीं है। लवणपर्वत हिमालयकी एक शाखा है जो इसी प्रदेशमें अवस्थित है। यह शाखा दो भागोंमें विभक्त हो कर परस्पर समान्तर भावसे पूर्वसे पश्चिमकी ओर जिलेके मेरुदण्डकी नाईं विस्तृत है। पर्वतके नीचे वितस्तातीरवर्ती समतल भूमि अत्यन्त उर्वरा और अतएव वर्द्धिष्णु ग्राम द्वारा सुशोभित है। गैरिकवर्ण लवणगिरि इस स्थान पर दुरारोह है, तथा जगह जगह धूसरवर्ण गह्वरादि द्वारा परिव्याप्त है। इस पर्वत पर लवणका भाग अधिक पाया जाता है, इसीसे उसका नाम लवणपर्वत हुआ है। खिउरामें गव-मेंण्टके निरीक्षणमें इस पहाड़से लवण निकाला जाता है। श्यामल गुल्मोंसे आच्छादित घाटी हो कर बहते हुए स्रोतोंका जल पहले बहुत विशुद्ध रहता है, किन्तु लवणाक्त भूमिके ऊपर आते आते खारा हो जाता है। तब वह जल सींचनेके काममें नहीं आता। उपरोक्त दो पर्वत-श्रेणियोंने एक सुन्दर मालभूमिके ऊपर चारों ओर अनुच्च पर्वतसे घिरा हुआ कल्लारकहार हृद अवस्थित है। इस हृद (झील)के दोनों प्रान्त सम्पूर्ण विपरीत भावापन्न हैं। एक ओरका दृश्य बहुत कुछ मरुसागरकी नाईं लवणमय कूल तृणगुल्म वा जलप्राणीविवर्जित है और दूसरा प्रान्त श्यामल सुन्दर उद्यानोंसे परि-वेष्टित है। जहां हंस आदि तरह तरहके जलपक्षी मधुर स्वरोंसे चहचहाते हैं। लवणपर्वतके उत्तरस्थ प्रदेश-में उच्च बन्धुर मालभूमि है तथा जगह जगह नदी पर्व-तादि द्वारा व्यवच्छिन्न हो कर अन्तमें यह प्रदेश अगण्य पर्वतसमाकीर्ण रावलपिण्डीके निकट जा कर मिल गया है। लवणपर्वतके साथ समकोण कर इस जिलेको उत्तर दक्षिणमें बांटनेसे उसके पश्चिम भागका जल सिन्धुमें और पूर्व भागका जल वितस्तामें आ गिरेगा। यह वितस्ता नदी जिलेके पूर्व और दक्षिणभागमें प्रायः १०० मील तक सीमारूपमें अवस्थित है। इस नदीमें नाव आदि झेलम् नगरसे कुछ दूर तक आ जा सकती है।

लवण-पर्वत अनेक तरहके मूल्यवान् खनिज पदार्थोंसे परिपूर्ण है। अच्छे अच्छे मर्मर और अट्टालिका-बनाने योग्य पत्थरके सिवा यहां भिन्न भिन्न प्रकारके चूर्ण पत्थर

मनुष्य रहते हैं। इनमें झेलम् और पिण्डदादन प्रधान वाणिज्यस्थान है।

छोटे छोटे गाँवके घर मट्टी अथवा कच्ची ईंटोंके बने हैं। कभी कभी बड़े बड़े पत्थर दीवारमें मट्टीके साथ दे दिये जाते हैं। अभी धनवान मनुष्य कटे हुए चौरस पत्थरसे घर और मस्जिद बनाते हैं। सम्भ्रान्तोंके घर तरह तरहके चित्रोंसे चित्रित है तथा घरका भीतरी भाग सुसज्जित भी है। यहाँ सभी अपने घरकी अत्यन्त परिष्कार रखते हैं।

गेहूं और बाजरा यहाँके अधिवासियोंका खाद्य है। जुन्हरी, तण्डुल और जौ भी कभी कभी काममें लाया जाता है। यहाँके प्रायः सभी लोग मांस खाते हैं।

इस जिलेकी २८१२ वर्गमील जमीनमेंसे प्रायः ११७४ वर्गमीलमें खेती होती और १७८ वर्गमील खेतीके उपयुक्त है। अधिकांश खेतमें गेहूं या बाजरा उपजाया जाता है। शेष जमीनमें उपयोगितानुसार धान इत्यादि रोपा जाता है।

अमेरिकन युद्धके समय यहाँ कपास बहुत उपजायी जाती थी; किन्तु इसके बाद उसका मूल्य कम हो जानेके कारण कृषकोंने पूर्व-कृषि अवलम्बन की है। तोभी यहाँसे कपासकी उपज बिलकुल नहीं गई है। भारतवर्षके तरह तरहके फल और साक-सब्जी अधिक उत्पन्न होती है।

शस्यक्षेत्रमें जल सींचनेका कोई विस्तृत उपाय नहीं है। कृषकगण नदीके किनारे अथवा उपत्यकामें कुआँ खोद कर उसीसे अपनी अपनी जमीन सींचते हैं। एक कुएंके जलसे बहुत कम जमीन सींची जाती है। किन्तु खेतमें कृषक इतनी खाद देते और इतने यत्नसे जोतते हैं, कि वर्षभरमें कोई न कोई फसल अवश्य हो ही जाती है। उत्तर भागकी मालभूमिमें बहुतसे छोटे छोटे तड़ागको बंधा कर उनमें जल जमा किया जाता और उसीसे खेत सींचा जाता है। किन्तु ऐसा करनेमें बहुत खर्च पड़ता है। सुतरां सामान्य गृहस्थके लिये बहुत कठिन हो जाता है। बहुतसे अङ्गरेजी राज्यमें अपनी सम्पत्ति निरापद जान कर बांध तैयार करते हैं। इस कारण यहां खेतोंकी खूब सुविधा है। यहाँके कृषकोंकी अवस्था मन्द नहीं है, बहुतसे ऋणमें रहित हैं। एक विषय कई अंशोंमें बँट जानेसे ही अनेक दरिद्र हो गये हैं। बहुतसे सम्भ्रान्त व्यक्तियोंने सम्प्रति अपने अपने विषयको अखण्ड रखनेके लिये एक उपाय सोच निकाला है। परस्पर लड़ाई करके अन्त तक जो उत्तराधिकारी जीतेगा, वही सब सम्पत्तिका अधिकारी होगा।

झेलम्का एक एक ग्राम अन्यान्य स्थानोंके ग्रामसे बहुत बड़ा है। बड़ासे बड़ा १००।१५० वर्गमील तक विस्तृत है। इन ग्रामोंके अधिपतिगण दूसरे दूसरे स्थानोंके अधिपतियोंसे अधिक क्षमतापन्न हैं। अधिकांश स्थानमें जो उत्पन्न फसलसे मालगुजारी दी जाती है। मालगुजारीको शरह स्थानभेदसे उत्पन्न शस्यके ¼ से ½ अंश तक है। ग्राममें मजदूर, नाई, धोबी, बढ़ई, कुम्हार आदिकी तनखाह अनाजसे ही चुकाई जाती है। प्रति वर्ष अनाज काटनेके समय काश्मीरसे बहुत मजदूर यहाँ आ कर काम करते है और काम समाप्त होने पर पुनः वे स्वदेशको लौट जाते हैं।

वाणिज्य।—झेलम् और पिण्डदादन नगर इसी जिलेके वाणिज्यके दो प्रधान केन्द्र हैं। दक्षिण प्रदेशका नमक मुलतान, सिन्धु और रावलपिण्डीमें गेहूं आदि अनाज, उत्तर और पश्चिमके पार्वत्य प्रदेशमें रेशम और सूतीका कपड़ा तथा इसके आसपासके चारों तरफमें पीतल और तांबेके बरतन भेजे जाते हैं। नदीके मुहानेसे मुलतान तक पत्थर लाया जाता है। पञ्जाब-नर्दार्ण-ष्टेट-रेलवे कम्पनीने तरकावालाकी पत्थरकी खान खरीद की है। इन्हीं पत्थरोंसे लाहोरका प्रधान गिरजा बनाया गया है। पहाड़के बड़े बड़े शीमबरगे नाव, रेल और बैलगाड़ी द्वारा दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते हैं। पैकार जिलेके भीतर घूम घूम कर चमड़ा संग्रह करते है। बढ़िया चमड़ा विदेशके लिये कलकत्तेमें और घटिया अमृतसरमें भेजा जाता है। आमदनीमें बिलायती कपड़ा, अमृतसर और मुलतानसे धातु, काश्मीरसे पशमी कपड़ा और पेशावरसे मध्य एशियाका द्रव्यजात प्रधान है। काश्मीरके साथ और भी अनेक तरहकी चीज खरीदी और बेची जाती है।

जिलेकी मध्यस्थ पर्वतश्रेणीकी नमककी खान

गवर्मेण्टके निरीक्षणमें खनियां परिचालित होती हैं। इस कारण गवर्मेण्टको वार्षिक १० लाख रुपयेकी आमदनी होती है। जरूरत पड़ने पर खानसे वार्षिक ४० लाख मन नमक निकाला जा सकता है। एक तरहका पत्थरीया कोयला इसके कई स्थानोंमें देखा जाता है। अभी मकरायखानसे बढ़िया कोयला निकाल कर रेलवेके काममें लगाया जाता है।

शिल्पजात।—झिलम् और पिण्डदादनमें नाव बनाई जाती है। मुलतानपुरके निकट मकरोंमें एक कांचका कारखाना खोला है। कई जगह तांबे और पीतलके बरतन तथा रेशम और सूती कपड़ा तैयार होता है। यहांका मट्टीका बरतन बहुत मजबूत होता है। इसके सिवा और भी यहां कई तरहके पदार्थ प्रस्तुत होते हैं। लवणपर्वतकी निम्न श्रेणियोंसे [illegible] निकाल कर बहुतसे लोग जीविका निर्वाह करते हैं।

लाहोरसे पेशावर तककी पक्की सड़क इस जिलेके प्रायः ६० मील तक दक्षिणसे उत्तरको गई है। इसके अलावा और दूसरी पक्की सड़क नहीं है किन्तु और भी ८८२ मील तक गाड़ी जा सकती है। नर्थ-वेष्टर्न रेलवे जिलेके दक्षिण पूर्व हो कर प्रायः ४८ मील तक गया है। जिलेके अन्तर्गत ष्टेशनोंके नाम—झिलम् दीना डोमेली और सोहावा हैं। मियानी ष्टेशनसे खिउराकी नमककी खान तक शाखा-रेलपथ गया है। झिलम्के समीप वितस्ता नदीके ऊपर रेलवेका एक पुल है और उसके नीचे एक पथ है जिस पर हो कर मनुष्यादिके आने जानेका रास्ता है। झिलम् जिलेके पूर्व वितस्ता नदीमें प्रायः १२७ मील तक नाव आती जाती है। इसके किनारे और प्रधान पक्की सड़कके बगलमें तारके खम्भे गड़े हैं। चैत्र मासमें तीन दिन पर्यन्त यहां दो बड़ा मेला लगता है जिनमेंसे प्रथम कटास नगरमें हिन्दुओंके यत्नसे और दूसरा चोआ से दानगाह स्थानमें मुसलमानोंके यत्नसे होता है। प्रत्येक मेलेमें कमसे कम ५०००० मनुष्य इकट्ठे होते हैं।

शासन विभाग।—१ डिपुटी कमिश्नर, २ सहकारी और १ अतिरिक्त सहकारी कमिश्नर, ४ तहसीलदार और उनके अधीनस्थ कर्मचारी तथा २ मुन्सिफ द्वारा शासन और राजकार्य चलाया जाता है।

गत कई वर्षोंसे विद्याकी विशेष उन्नति हुई है। बेदि खेमसिंह नामक किसी देशीय सम्भ्रान्त व्यक्तिके यत्नसे प्रायः १८ बालिका-विद्यालय स्थापित हुए हैं। सरकारी विद्यालय छोड़ कर और भी कई एक देशीय पाठशालाएं हैं। मिशनरियोंने यहां बहुतसे बालक और बालिका विद्यालय स्थापन किये हैं।

शासन और राजस्व वसूल करनेकी सुविधाके लिये यह जिला ४ तहसीलोंमें विभक्त है—झिलम्, पिण्डदादनखां चकवाल और तलगङ्ग।

झिलम् जिलेकी आबहवा खराब नहीं है, किन्तु नमककी खानके कर्मचारी तरह तरहके कष्ट पाते हैं, और अकसर दुर्बल रहते हैं। गलगण्डरोग भी यहां देखा जाता है। पिण्डदादनखांके चारों ओर ज्वरका प्रकोप अधिक रहता है। वसन्त तथा प्लेग रोगसे भी बहुतोंकी मृत्यु होती है। वार्षिक वृष्टिपात प्रायः २६·११ इञ्च है।

२ पञ्जाब प्रदेशके झिलम् जिलेका पूर्वीय तहसील। यह अक्षा० ३२ ४८ से ३३ १५ उ० और देशा० ७३ ८ से ७३ ४८ पू०में अवस्थित है। इसका भूपरिमाण ८८८ वर्गमील है। इसके पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें झिलम् नदी है। लोकसंख्या प्रायः १३०८७८ है। इसमें कुल ४११ ग्राम और ४ थाने लगते हैं। इस तहसीलकी आय २ लाखसे अधिक रुपयेकी है। यहां जिलेकी सदर अदालत आदि अवस्थित है।

३ पञ्जाबके झिलम् जिलेका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० ३२ ५६ उ० और देशा० ७३ ४४ पू० पर वितस्ता (झेलम्) नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। यह शहर रेल द्वारा कलकत्तेसे १२६० मील, बम्बईसे १४०१ मील और कराचीसे ८४८ मील दूर पड़ता है। लोकसंख्या प्रायः १४८११ है।

वर्तमान झेलम् नगर आधुनिक है। प्राचीन नगर वितस्ताके दाहिने किनारे अवस्थित था। सिक्ख-शासन-कालके समय यह स्थान प्रसिद्ध न था। अंगरेजोंके राज्य शुरू होने पर यहां एक सेनाकी छावनी स्थापित हुई। कई वर्ष तक झेलम्में विभागके कमिश्नर रहते थे, पीछे १८५० ई०में कमिश्नरका आफिस रावलपिण्डीमें उठ कर चला गया। अंगरेजी शासनमें तथा नमककी खानोंके लिये

इस नगरका श्रीवृद्धि दिनों दिन हो रही है। अभी रेल-पथके होजानेसे नमकका व्यवसाय और अधिक बढ़ गया है। इसी कारण यहांके वाणिज्यमें किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती।

झेलममें बड़े बड़े मकान नहीं हैं। अधिकांश मकान मट्टीके बने हुए हैं। नदीके किनारे कई एक सुन्दर अट्टालिकायें हैं। सड़क तथा नालेका भी अच्छा प्रबन्ध है। यहां परिष्कार जल पाया जाता है। नौका निर्माणमें यह नगर प्रसिद्ध है।

शहरसे प्रायः १ मील उत्तर-पूर्वमें सरकारी अदालत और सैन्यनिवास अवस्थित है। यहां सरकारी उद्यान, क्रीड़ास्थान, सैनिकोंका गिरजा, कारागार, दातव्य चिकित्सालय, म्युनिसपालिटी घर और दो सराय हैं। नगरसे प्रायः १ मील दक्षिण पश्चिम एक प्रस्तरमय तृण आदि रहित कठिन प्रान्तरमें सैन्यनिवास अवस्थित है।

४ पञ्जाबकी पांच नदियोंमेंसे एक। वितस्ता देखो।

झेलम्—पञ्जाबकी नहर। यह नहर झेलमके बांई किनारेसे निकल कर झेलम् तथा चनावके मध्यवर्ती समस्त देशोंमें जलसिञ्चनका काम करती है। इसकी कई एक शाखायें हैं, जिनमेंसे प्रधान शाखाकी लम्बाई प्रायः १६७ मील है। गुजरात जिलेके मोंग रसूल ग्रामके निकट इसका विस्तार बहुत अधिक है।

यह नहर १८०१ ई०के ३० अक्टूबरको प्रस्तुत हुई है। इसके बनानेमें लगभग १७५ लाख रुपये खर्च हुए हैं। इस नहरके हो जानेसे कृषकोंका बहुत उपकार हो गया है।

झेलम्—पञ्जाबको झेलम् नदीका शाहपुर जिलास्थ उपनिवेश। इसका क्षेत्रफल ७५० वर्गमील है। औपनिवेशिकोंको अच्छे घोड़े पैदा करनेके लिये एक घोड़ी रखनी पड़ती है। सरकारी घोड़ों और खच्चरोंके लिए भी बहुतसी जगह छोड़ी गयी है। रेलें, सड़कें, कूएं और बाजार बन रहे हैं।

झेंवो (हिं० स्त्री०) बच्चा जनते समय स्त्रीको विशेष प्रकारसे हिलाने डुलानेकी क्रिया।

झोंक (हिं० स्त्री०) १ प्रवृत्ति, झुकाव। २ तराजूके किसी पलड़ेका किसी ओर अधिक नीचा हो जाना। ३ बोझ, भार। ४ प्रचण्ड गति, वेग, तेजी। ५ कार्य्यकी गति, किसी कामको धूमधामसे शुरू करनेकी क्रिया। ६ सजावट, ठाट, चाल। ७ पानीका हिलोरा। ८ बैल गाड़ीको मजबूतीके लिये दोनों ओर लगे हुए दो लट्ठ।

झोंकना (हिं० क्रि०) १ झटकेसे सामनेकी ओर डालना। २ बलपूर्वक आगेकी ओर बढ़ाना। ३ बहुत अधिक व्यय करना बिना सोचे विचारे खर्च करना। ४ किसी आपत्तिमें डालना। ५ कार्य्यका बहुत अधिक भार सौंपना, बहुत ज्यादा काम ऊपर डालना। ६ दोष आदि लगाना।

झोंकवा (हिं० पु०) वह मनुष्य जो भट्ठे या भाड़में भड़ पताई आदि फेंकता है।

झोंकवाई (हिं० स्त्री०) १ झोंकनेकी क्रिया। २ झोंकवानेकी क्रिया।

झोंकवाना (हिं० क्रि०) १ झोंकनेका काम किसी दूसरेसे कराना। २ किसीको आगेकी ओर जोरसे डालना।

झोंका (हिं० पु०) १ आघात, प्रतिघात, धक्का, रेला, झपट्टा। २ वेगसे चलनेवाली वायुका आघात। ३ वायुका प्रवाह, झकोरा। ४ पानीका हिलोरा। ५ बगलसे लगनेवाला ऐसा धक्का जिसके कारण कोई वस्तु गिर पड़े। ६ सजावट, ठाट, चाल। ७ कुश्तीका एक पेंच।

झोंकाई (हिं० स्त्री०) १ झोंकनेकी क्रिया या भाव। २ झोंकनेकी मजदूरी।

झोंकिया (हिं० पु०) वह मनुष्य जो भाड़में पताई आदि झोंकता हो।

झोंकी (हिं० स्त्री०) १ जवाबदेही, बोझ, भार। २ जोखिम, जोखों।

झोंझल (हिं० पु०) क्रोध, गुस्सा।

झोंट (हिं० पु०) १ झुप, झाड़ी। २ झाड़, झुरमुट। ३ समूह, जूरी।

झोंटा (हिं० पु०) १ बड़े बड़े बालोंका समूह। २ एक बार हाथमें आ जानेवाला पतली लम्बी वस्तुओंका समूह। ३ झूलेको इधर उधर हिलानेके लिये दिये जानेका धक्का, झोंका, पेंग। ४ भैंसका बच्चा, पड़वा। ५ महिष, भैंसा।

झोंपड़ा (हिं० पु०) पर्णशाला, कुटी।

झोंपड़ी (हिं० स्त्री०) पर्णशाला, कुटिया।

जाता है। ७ भारोसे भारी चीज़ोंको ऊपर उठानेका रस्सियोंका एक फँदा। ८ राख, भस्म।

झौंकट (हिं० पु०) झंझट देखो।

झौंट (हिं० पु०) उदर, पेट।

झौंर (हिं० पु०) १ समूह, झुंड। २ कुंज, झाड़ियोंका समूह। ३ मोतियों या चाँदी सोनेके दानोंके गुच्छे लटके हुए एक प्रकारका गहना।

झौंरना (हिं० क्रि०) गूंजना, गुंजारना।

झौंरा (हिं० पु०) झौंर देखो।

झौंराना (हिं० क्रि०) १ काला पड़ जाना, बदरंग हो जाना। २ कुम्हलाना, मुरझाना।

झौंसना (हिं० क्रि०) झुलसना देखो।

झौर (हिं० पु०) १ प्रपंच, झंझट, बखेड़ा। २ डाँट, फटकार ऊँचा नीचा।

झौरना (हिं० क्रि०) लपक कर पकड़ना, झोप लेना।

झौरा (हिं० पु०) प्रपंच, झंझट, बखेड़ा, तकरार।

झौरे (हिं० क्रि०) १ समीप निकट, पास। २ सहित, संग, साथ।

झौहाना (हिं० क्रि०) १ गुर्राना। २ जोरसे चिड़चिड़ाना, कुढ़ना।

ञ

ञ—संस्कृत और हिन्दी व्यञ्जनवर्णका दशम अक्षर, द्वितीय वर्गका पञ्चम अक्षर। इसका उच्चार—स्थान तालु और अनुनासिक है। इसका उत्पत्तिस्थान नासिकानुगत तालु है। यह अक्षर अर्द्धमात्रा कालद्वारा उच्चारित होता है। इसके उच्चारणमें आभ्यन्तरीण प्रयत्न जिह्वाके अग्रभाग द्वारा तालुके मध्यभागका स्पर्श है तथा बाह्यप्रयत्न है घोष, संवार और नाद। यह अल्पप्राण वर्णोंमें परिगणित है।

मातृकान्यासमें वामहस्तकी अङ्गुलिके अग्रभागमें न्यास किया जाता है। वर्णमालामें इसकी लिखनप्रणाली इस प्रकार है—"ञ"। इस अक्षरमें सूर्य, इन्दु और वरुण सर्वदा निवास करते हैं। तन्त्रके मतसे इसके पर्याय वा वाचक शब्द—ञकार, बोधनी, विश्वा, कुण्डली, मदद, वियत्, कौमारी, नागविज्ञानी, सव्याङ्गुलनख, वक्र, सर्वग, चूर्णिता, बुद्धि, स्वर्गात्मा, घर्घरध्वनि, धर्मकपाट, सुसुख, विरजा, चन्द्रेश्वरी, गायन, पुष्पधन्वा, रागात्मा और वराक्षिणी। इसका ध्यान करनेसे साधक शीघ्रही अभीष्ट लाभ कर सकता है। ध्यानका मन्त्र—"चतुर्भुजां धूम्रवर्णां कृष्णाम्बरविभूषिताम्।
नानालंकारसंयुक्तां जटामुकुटराजिताम्॥
ईषद्धास्यमुखीं नित्यां वरदां भक्तवत्सलाम्।
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥"
(वर्णोद्धारतन्त्र)

ब्रह्मरूपका इस प्रकारसे ध्यान करके उसका मन्त्र दश बार जपना चाहिये।

कामधेनुतन्त्रके अनुसार ञकारका स्वरूप—सदा ईश्वरसंयुक्त, रक्तविद्युल्लताकार, परमकुण्डली, पञ्चदेवमय, पञ्चप्राणात्मक, त्रिशक्तिसमन्वित और त्रिबिन्दुयुक्त है।

कार्यके प्रारम्भमें इस अक्षरका विन्यास करनेसे भय और मृत्यु होती है।

"भयमरणदरी ञणौ।" (वृत्तर० टी०)

ञ (सं० पु०) १ गायन, गायक, गानेवाला। २ घर्घर ध्वनि, घर घरका शब्द। ३ बलीवर्द, बैल। ४ धर्मच्युत, अधर्मी। ५ शुक्र। "ञकारो बोधनी विश्वा।" (वर्णाभिधान)

ञकार (सं० पु०) ञ स्वरूपे कारः। ञ स्वरूपवर्ण।

ञि (सं० पु०) १ प्रत्यय विशेष। यह प्रत्यय प्रेरणार्थमें लगता और इसका इकार रहता है। २ धातुका अनुबन्धविशेष, यह अनुबंध वर्तमान क्त प्रत्ययबोधक है।

ञ्यन्त (सं० पु०) ञि प्रत्ययविशेषो अन्ते यस्य, बहुव्री०। ञि प्रत्ययान्त, यह प्रत्यय धातु और शब्दके उत्तरमें लगता है।

अष्टम भाग सम्पूर्ण।